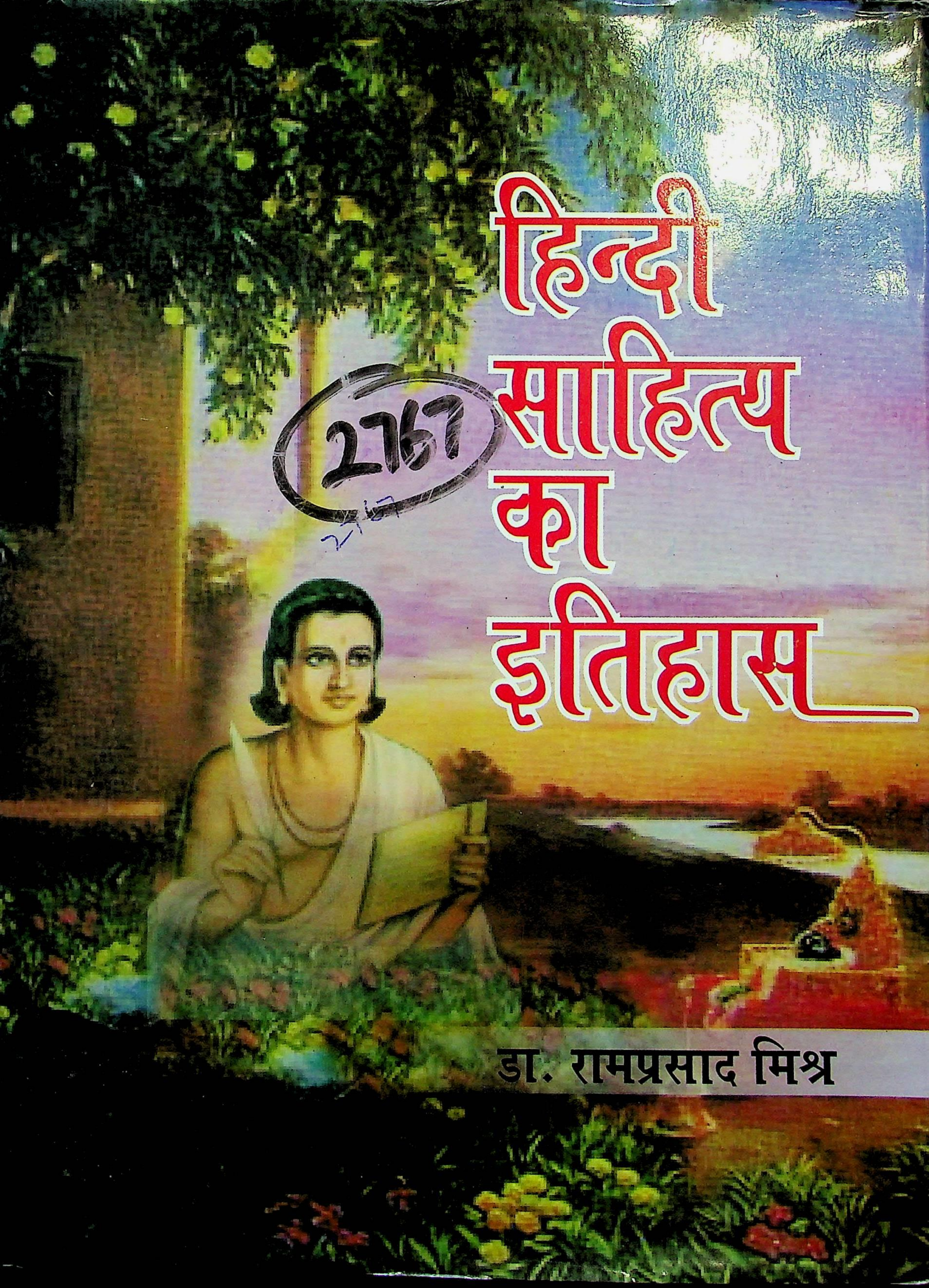

हिन्दी साहित्य का इतिहास

2767
2767

डा. रामप्रसाद मिश्र

[illegible]
([illegible])
[illegible] 2767

हिन्दी साहित्य का इतिहास

(खण्ड-2)

हिन्दी साहित्य का इतिहास

(खण्ड-2)

डॉ. रामप्रसाद मिश्र

नमन प्रकाशन
नई दिल्ली -110002

© लेखक

पहला संस्करण : 2008
ISBN: 81-8129-151-4

नमन प्रकाशन
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002
फोन : 23247003, 23254306

नितिन गर्ग द्वारा नमन प्रकाशन के लिए प्रकाशित तथा एशियन ऑफसेट प्रिंटर्स, मौजपुर
शाहदरा दिल्ली - 53 में मुद्रित।

भूमिका

अमर 'मिश्रबन्धु' के अमर 'विनोद' एवं महान् आ. रामचन्द्र शुक्ल के महान् 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के अतिरिक्त शताधिक ग्रन्थों के होते हुए, मैंने 'हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास' क्यों लिखा? स्वयं आ. शुक्ल ने अपने इतिहास की पाठ्यक्रममूलक त्वरा का उल्लेख किया है, डॉ. नगेन्द्र ने स्वसम्पादित इतिहास में हिन्दी-साहित्य के किसी व्यवस्थित इतिहास के अभाव का सत्य स्वीकार किया है। हिन्दी प्रायः समग्र भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, मॉरीशस, फिजी, सूरीनाम, ट्रिनिडाड, टोबैगो, गुयाना प्रभृति तक किसी न किसी रूप में बोली या समझी जानेवाली विश्वभाषा है, जिसका प्राध्यापन विश्व के अन्यत्र स्थित शताधिक विश्वविद्यालयों में भी होता है। हिन्दी अपने निज रूप में भी अनेक विभाषाओं का समाहार है। अंगों के बिना अंगी कैसा? हिन्दी राष्ट्रभाषा भी है, राजभाषा भी, जनभाषा भी। क्या कोई ऐसा इतिहास उपलब्ध है जिसमें इन बिन्दुओं का ध्यान रखा गया हो? यह ग्रन्थ 1960 ई. से पठित, चिन्तित, परिवर्तित, शत-प्रतिशत मौलिक अनेकानेक स्थापनाओं के समावेश एवं सुनियोजित परिश्रम का परिणाम है, जिस पर भारी व्यय भी किया, जिस पर स्वास्थ्य भी वार दिया। 1960-1963 ई. में चिन्तित-रचित 'हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास' 1967 ई. में प्रकाशित हुआ जिसके संक्रान्तिकाल, पुनरुत्थानकाल, शास्त्रीयकाल नामकरणों ने अनेक परवर्ती साहित्येतिहासकारों को प्रभावित किया (प्रायः यही 1985 ई. में संशौधित 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' के रूप में प्रकाशित हुआ)। अनेक शीर्षस्थ विद्वानों ने इस ग्रन्थ की भारी प्रशंसा की तथा विशाल साहित्येतिहास लिखने को प्रेरित भी किया। प्रस्तुत ग्रन्थ इसी सब का परिणाम है। इसका पूर्व प्रकाशित दोनों इतिहासों से कोई सम्बन्ध नहीं। अब इस संस्करण में वस्तुतः चतुर्थ-अवतार प्रस्तुत है। प्रायः 200 नए साहित्यकार थे; जिनमें प्रतिष्ठापन-सामर्थ्य विद्यमान था, उनका विवेचन पर्याप्त विस्तार से किए बिना कर्त्तव्यपूर्ति सम्भव न थी। आरम्भिक प्रयासों में अनेक परिवर्तन भी किए थे जो इस रूपरेखा से स्पष्ट हो जाएँगे–

संक्रान्तिकाल (800-1300 ई.),
पुनरुत्थानकाल (1300-1600 ई.),
शास्त्रीयकाल (1600-1800 ई.),
बौद्धिककाल (1800 ई. से) :

सन्धियुग (1800-1850 ई.),
सुधारवादी युग (1850-1900 ई.),
आदर्शवादी युग (1900-1920 ई.),
स्वच्छन्दतावादी युग (1920-1940 ई.),
यथार्थवादी युग (1940 ई. से)।

हर्ष है कि अब यह 2008 में संशोधित एवं प्रवर्द्धित ग्रन्थ दो जिल्द में प्रकाशित हो रहा है। उद्धरण कम किए हैं तथा उन्हें यथा आकार कसकर छापा गया है। कुछ अनावश्यक से नाम भी कम किए हैं। अन्य अनुक्रमणिकाएँ हटा दी हैं। पर्याप्त नूतन का समावेश किया है। प्रथम प्रकाशन में व्यवस्था की हत्या की गई थी, कुछ त्रुटियाँ भी रह ही जाती हैं, मूल्य बहुत था। अतः यह ग्रन्थ-रूप सर्वथा उपयोगी सिद्ध होगा।

हिन्दी में भारत की आत्मा सुरक्षित है। उसके साहित्य का आरम्भ सरहपा जैसे बौद्धों और स्वयंभू जैसे जैनों ने लगभग एक साथ किया, उसके पुनरुत्थानकाल के वाहक अमीर ख़ुसरो थे और नायक कबीर, उसके शास्त्रीयकाल के पुरोधा महाकवि केशवदास थे। जिन्होंने 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' भी लिखी तथा इस काल में उत्तर से दक्षिण तक सारे देश में सहस्राधिक मुस्लिम बन्धुओं ने इसे सँवारा, उसके बौद्धिककाल में शत-शत ईसाई-सिख-पारसी प्रभृति बन्धु भी आ जुड़े। कोई प्रमुख राज्य नहीं जहाँ के लोगों ने हिन्दी को दुलार न दिया हो। हिन्दी भारतीय सहिष्णुता एवं धर्मनिरपेक्षता की प्रतीक है। इस सत्य को राजनीति-अन्ध एवं साम्प्रदायिकता-ग्रस्त व्यक्ति ही नकारेंगे। वैचारिक दृष्टि से हिन्दी साहित्य के आयाम अतुलनीय रूप से विराट् हैं। बौद्ध, जैन, सूफ़ी, वेदान्त (अद्वैत),

विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, यत्र-तत्र द्वैत, कहीं-कहीं त्रैत प्रभृति प्रायः समग्र भारतीय दर्शन तो इसमें विद्यमान हैं ही, आधुनातन पाश्चात्य दर्शनों (व्यक्तिवाद, समाजवाद, मनोविश्लेषणवाद, परामनोविज्ञान, अस्तित्ववाद, मानवतावाद, एकविश्ववाद इत्यादि) का भी प्रभावी समावेश प्राप्त होता है।

मेरा यत्न रहा है कि मैं हिन्दी के विश्वभाषा, राष्ट्रभाषा, राजभाषा एवं जनभाषा रूपों के अनुरूप उसके विराट् साहित्य (इतिहास, धर्म, दर्शन, राजनीति प्रभृति से स्वभावतः सम्पृक्त क्योंकि साहित्य समग्र जीवन का ललित उद्‌गार है) का व्यवस्थित एवं एकतान तथा परंपरा-प्रगति के सहज-अद्वय से निष्पन्न मौलिक इतिहास लिखूँ। कितना सफ़ल हूँ? निर्णय सुधीजन करें! कृपया यह ध्यान रखें कि इसमें मैंने सारा जीवन झोंक दिया, 1960 ई. तक का अध्ययन + परवर्ती अध्ययन + तब से अनेक रूप लेखन-प्रकाशन। अपार व्यय, राज्यक्ष्मा, मधुमेह (डाइलिसिस समेत) इत्यादि उपहार स्वीकार! साहित्य मेरा स्वास है। मैं किसी दल, वाद, राज्य का बन्दी नहीं रहा और जो सत्य लगा उसे बलपूर्वक कहा (चतुर न था) किन्तु केवल इसीलिए अनादर एवं उपेक्षा का पात्र नहीं हूँ। 'अन्ततोगत्वा' 1998 ई. के बाद रचा गया है। रुग्णनाकाल से भी जुड़ा। अतः समय अथवा क्रम नहीं है। किन्तु यथास्थान तिथियाँ दी हैं। यह नवीनता तथा अद्यनतता लाभकर सिद्ध होगी, ऐसा विश्वास है।

—रामप्रसाद मिश्र

6/12/2005

एच-41, विकासपुरी
नई दिल्ली-110018

विषय-सूची

प्रवेश

साहित्येतिहास और आलोचना

1. संक्रान्तिकाल

(800-1300 ई.)

प्रस्तावना 23, सिद्ध-काव्य बौद्धधर्म और सहजयान-वज्रयान 24, बौद्धधर्म के चार आर्यसत्य 25, सिद्धयोग 26, पंचमकार 26, अन्तस्साधनावाद और समतावाद 27, प्रतीकवाद और सन्ध्याभाषा 28, संख्या तथा तदनन्तर्गत कवि 29, प्रभाव के कारण 29, पतन के कारण 30, प्रमुख सिद्ध-कवि सरहपा 31, राग द्वेशाख 32, शबरपा 33, लूहिपा (लुइपा) 33, दारिकपा 34, कर्णरीपा (आर्यदेव) 34, डोंभिपा 35, कण्हपा (कहृणपा, कृष्णपा, कर्णपा) 35, कुक्कुरिपा 36, भूसुकपा (शांतिदेव) 36, शांतिपा (रत्नाकर शांति) 37, नाथ-काव्य, सिद्ध और नाथ 37, व्यापक समन्वय 38, प्रमुख नाथ 38, हठयोग 38, विशुद्ध निवृत्तिमार्ग 40, प्रमुख नाथ-कवि, जालंधरनाथ 41, गोरखनाथ 41, ज्ञानेश्वर 42, मुक्ताबाई 43, उमाँबा[2] 43, चर्पटनाथ (चरपट) 44, चौरंगीनाथ 44, जैन-काव्य, तीर्थंकर और महावीर 45, उदात्त किन्तु अव्यावहारिक धर्म 46, बहुआयामी सम्वेदनशीलता 47, प्रमुख जैन-कवि स्वयंभू : 'हिन्दी के आदिकवि' के दावेदार 49, देवसेन 50, हेमचन्द्र[5] 51, विनयचन्द्र सूरि 52, रासो-काव्य, विशुद्ध संक्रान्तिकाव्य 53, प्रमुख नायक 53, मोहम्मदीयत और मोहम्मदी हमले 57, भारत और मोहम्मदी राज्य 57, मृत्युंजय हिन्दू का संक्रान्तिकाल 60, आशान्वित-अनुभूति का उद्गार 62, सम्पन्न परम्परा 63, प्रमुख रासोकार एवं अन्य कवि, नरपति नाल्ह 64, चन्द्रवरदायी 65, पृथ्वीराजरासो 67, उत्कृष्ट शृंगार काव्य 70, उच्चस्तरीय वीरकाव्य 71, जगनिक[4] 71, जज्जल 74, अन्य कवि, मुंज 76, बादरबेणा[1] 77, उपसंहार 77,

2. पुनरुत्थानकाल[1]

(1300-1600 ई.)

प्रस्तावना 79, विकासवाद और पुनरुत्थानवाद 80, महान् जनकाव्य 81, वेद 84, उपनिषद् 85, पुराण 86, दार्शनिक पृष्ठभूमि : शंकर तथा अन्य आचार्य 87, भक्तिमार्ग 89, भक्ति और अवतारवाद 92, सम्पूर्ण जीवन-साहित्य 94, हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वर्णकाल 95, सूफ़ी काव्य, भारत और सूफ़ी-मत 97, सूफ़ी दर्शन 99, भारत के सूफ़ी सम्प्रदाय 99, भारत पर सूफ़ी प्रभाव 100, हिन्दी की सूफ़ी कविता 101, प्रमुख प्रवृत्तियाँ 102, सौन्दर्यवाद 103, प्रेमवाद 104, विरहवाद 105, प्रचारवाद 106, उपसंहार 107, प्रमुख कवि, ख़ुसरो[1] 107, दाऊद 114, क़ुत्बन[1] 119, जायसी 121, पदमावत 122, मंझन 134, सन्त-काव्य, सन्त–पुनरुत्थान के प्रतीक 136, निर्गुणधारा एवं ज्ञानाश्रयीशाखा की निराधारता 137, अद्वैतवाद एवं तत्प्रेरित रहस्यवाद 138, वैष्णव प्रभाव 141, मानवतावाद

एवं रूढ़िखण्डनवाद 143, भाषा-शैली 146, प्रमुख कवि, नामदेव 147, मोहम्मदीयत का प्रभाव 149, जयदेव 150, रैदास 151, सदन 166, सेन 167, धना 167, पीपा 168, धरमदास 168, कमाल 170, नानक 171, सिख पंथ का उद्देश्य 172, दादू[1] 181, बावरी साहिबा 181, वाजिद (बाजिंद) 182, वषना जी 182, अर्जुन 183, आदि ग्रंथ एवं सिख पंथ, राम-काव्य राम की अतुलनीयता 189, महान् मानवतावाद 190, अद्वितीय आशावाद 194, अतुलनीय जीवनकाव्य 195, अप्रतिम काव्यसृजन 196, अभूतपूर्व प्रभाव 196, प्रमुख कवि रामानन्द 197, पुरुषोत्तम[3] 199, जनजसवन्त 200, अग्रदास[3] 201, नाभादास 203, लतीफ़शाह 204, विश्वकवि तुलसी 205, मार्मिक नारी संवेदन 214, उदांत तत्व 224, हास्य व्यंग 236, राजनीति 237, दर्शन 240, कृष्ण-काव्य, कृष्ण की जीवन्तता 248, गहनलीला तत्व 250, ललित मानवतावाद 252, महान् गीतिकाव्य 253, प्रमुख कवि, विद्यापति 255, विष्णुदास 264, हरिदास[2] 265, सूरदास 266, सूरसागर : महाकाव्य या गीतिकाव्य? 270, सूर-श्याम : लघु-सूर 289, सूर-कल्याण[2] 291, सूर-श्रीगोपाल 291, सूरजदास 293, कुंभनदास 294, परमानन्ददास 295, गोविन्दस्वामी 296, छीतस्वामी 296, कृष्णदास 297, चतुर्भुजदास 297, नन्ददास 298, गदाधर भट्ट[1] 299, हित हरिवंश 300, ध्रुवदास 301, हरिराम 'व्यास' 302, जीवनवृत्त एवं 'आत्मकाव्य' में उसकी विवृति 304, लालचदास[1] 313, नरोत्तमदास[1] 314, सुदामा-चरित[3] 314, श्री भट्ट 316, प्रिथीराज (पृथ्वीराज) 316, रसखान[1] 319, नीति-काव्य 322, युग-काव्य 323, शास्त्रीय काव्य 325, विविध रचनाकार, ज्योतिरीश्वर ठाकुर[1] 326, दामो 326, कल्लोल 326, छीहल[1] 327, जसवन्त 327, कृपाराम 328, करनेस 329, वजही 330, आलम (अकबरकालीन) 330, तानसेन[1] 331, तानतरंग ख़ाँ 332, बाज़बहादुर 332, रूपमती[2] 333, फ़ैज़ी 334,बलभद्र मिश्र 335, एकनाथ 335, अकबर 336, बीरबल 339, नरहरि 341, गंग 343, रहीम 345, कुली कुत्बशाह 349, राय प्रवीण 350, लालनदास 350, उपसंहार 351

3. शास्त्रीय काल
(1600-1800 ई.)

प्रस्तावना 353, रसवाद बनाम अद्वैतवाद 354, अंतस्साधना 355, आकर्षक प्रकृतिचित्रण 357, इतिहास-बोध एवं नव्यता-आह्वान 359, हिन्दी ही उर्दू की जननी है 361, ब्रजभाषा तथा कवित्त-सवैया-दोहा-छंदत्रय एवं अलंकरण का परमोत्कर्ष 363, शृंगारकाव्य 365, शृंगाररस का शास्त्रीय निरूपण 366, नायिकाभेद 366, नखशिख367, षड्ऋतु-वर्णन 367, प्रेम एवं सौन्दर्य 367, उल्लेख्य कवि, केशवदास 369, अमरेश[1] 385, हेमविजय 385, मंडन 386, मुबारक 387, पुहकर कवि 388, इब्राहीम आदिलशाह 388, लीलाधर 389, ताहिर 389, सेन (कवि) 389, सेनापति 390, सुंदर 394, तोष (तोषमणि) 394, चिन्तामणि 395, ठाकुर (प्रथम) 397, भीषम 397, अली आदिलशाह 397, बिहारी[1] 398, मतिराम 406, 'मधनायक' ('मध') 411, कुलपति मिश्र 411, सुखदेव 412, महान् गुरु : गुरुनां गुरु 414, विराट् अटनः लाभ एवं हानि 415, जमाल[1] 424, रामजी[4] 424, निशाती 425, शम्भु (शिवाजी-पुत्र) 425, कालिदास त्रिवेदी 427, देव 428, करीम 436, शेख रँगरेज़िन 437, अब्दुल रहमान[1] 438, 'महीपति'[3] 438, 'रसलीन' 439, याकूब ख़ाँ 439, श्रीपति 440, 'सदारंग' 440, मोहम्मदशाह रँगीले 441, 'दक्षन' ('दक्ष') 441, 'रसरंग'[1] 442, 'भूपति' 442, महबूब 442, पठाल सुल्तालन 443, दत्त[2] 443, सूरति[5] मिश्र 444, सोमनाथ 445, रघुनाथ बंदीजन 445,'रसनायक' 447, भिखारीदास 447, 'कवीन्द्र' उदयनाथ[1] 449, कान्ह[5] 449, ठाकुर (द्वितीय) 449, दूलह 450, शिवनाथ 451, शाह आलम 451, देवकीनंदन 452, किशोर 453, मीरन 453, पद्माकर 454, भट्टात्मक-भटकाव्य[2] 457, जवाहिर[3] 458, जानकीराम 459,'रंगखान' 459, वीर काव्य हिन्दु वीरतत्व और मुगल वंश का पतन 459, प्रमुख कवि, जटमल 463, बनवारी 465, भूषण 466, चिरजीवी 472, लाल कवि 473, गोविन्दसिंह 474, रामावतार 475, घनश्याम[1] शुक्ल 478, गंजन 478, भगवंतराय खींची 479, शंभुनाथ[4] मिश्र 479, सूदन 480, रतन कवि[4] 482, राम काव्य, 482, प्रमुख कवि, तुकाराम 485, हृदयराम[1] 485, नरहरिदास[4] 486, बाल अली[1] 487, जानकीरसिकशरण 487, रसिक अली[6] 487, 'प्रेमीयमन' 488, ललकदास 488, ख्यामदास 489, मधुसूदनदास 490, मनियारसिंह 490, खुमान[3] बंदीजन 'मान' 491, कृष्ण काव्य 492, प्रमुख कवि, घासीराम[1] 495, ताज बेग़म 496, आदिल[1] 497, तालिब 497, हरिवल्लभ 498, 'चंदसखी' 498, नागरीदास 499, सुंदरि कुँवरि बाई 499, अलबेली अलि 500, ब्रजवासीदास 500. 'कारे' (कालेखाँ) 501, चाचा हित वृंदावनदास 502, नज़ीर अकबराबादी[1] 503, संत काव्य, 504, प्रमुख कवि, रज्जब 507, मलूकदास 507, गरीबदास 509,

सुंदरदास[1] 510, तेग़बहादुर 510, निपट निरंजन 513, प्राणनाथ 513, अक्षर अनन्य, 515, यारी साहब[2] 515, जगजीवन साहब[1] 516, दरिया साहब (मारवाड़ वाले) 517, सहजोबाई 518, दयाबाई[4] 518, मीतादास[1] 519, दूलनदास 520, दूलनदास 520, चरणदास 521, ग़रीबदास 522, नितानंद 522, दरिया साहब 523, पलटू 524, आत्मपरक प्रेम काव्य, 524, प्रमुख कवि आलम 526, घनआनंद 529, बोधा 535, ठाकुर (तृतीय) 536, सूफी काव्य, 536, प्रमुख कवि, उस्मान 539, नूरमोहम्मद 540, नीति काव्य, 542प्रमुख कवि घाघ 543, गिरिधर कविराय 545, हास्य काव्य, 546 अनुवाद काव्य 547, प्रमुख अनुवादक कवि, जसवंत सिंह 549, सरयूराम पंडित 551, गुमान मिश्र 552, गोकुलनाथ[1] 552, गोपीनाथ[1] 553, मणिदेव 554, गद्य 554, कुछ अन्य रचनाकार, रामप्रसाद निरंजनी 556, जहाँगीर 556, शहरयार 557, क़ादिर 557, लालचन्द (लब्धोदय)[4] 557, बनारसीदास जैन 558, शाहजहाँ[1] 559, जलालुद्दीन 560, भरमी 560, छत्रसाल 560, करन कवि 562, मीर जलील[5] 563, बुल्लाशाह[6] (बुल्लेशाह[7]) 563, अनीस 564, सीतल 565, सौदा 567, पुखी[1] 568, महताव 568, कल्याणदास 569, ‘ग़रीब’[7] 569, थान कवि 569, शीतलादीन 570, विष्णु की प्रार्थना 570, रामचन्द्र 571, शेख़ सादी[1] 572, उपसंहार 572

4. बौद्धिककाल

(1800. ई. से)

प्रस्तावना 576, सन्धि-युग, प्रमुख विशेषताः गद्य 581, कविता 582, नवयुग-वाहक साहित्यकार, लल्लूजी ‘लाल’ 583, सदन मिश्र 584, सदासुखलाल ‘नियाज़’ 584, इंशाअल्ला ख़ाँ 585, युगलकिशोर शुक्लः हिन्दी-पत्रकारिता के जनक 585, राममोहन राय 587, तुलसी साहब 587, बहादुरशाह (द्वितीय[1]) ‘जफ़र’[2] 588, मंचित[1] 589, गुरुदीन पाँडे 589, पहलवानदास 590, ऐनानन्द 591, यशोदानन्दन 591, नवलसिंह कायस्थ 592, दीन दरवेश 592, रसिक गोविन्द 593, बेनी[2] ‘प्रवीन’ 594, बैताल 595, गिरधारीलाल[5] 596, प्रेमसखी[1] 597, जोधराज 597, ‘आशी’ 598, विश्वनाथसिंह 598, गुमानी[1] 600, ग्वाल कवि 601, प्रतापसाहि 602, बकसी[2] 603, दीनदयाल गिरि, 603, चन्द्रशेखर वाजपेयी 605, बलवानसिंह ‘काशिराज’ 606, ‘ललितकिशोरी’ 607, ‘ललितमाधुरी’ 607, नजीब ख़ाँ ‘रसिया’ 608, रामसहायदास 608, बनादास 608, प्रताप 609, घीसादास[3] 609, अयोध्याप्रसाद वाजपेयी ‘औध’ 610, जीतादास 611, नबी कवि 611, स्वातितिरुनाल 612, पजनेस 612, सूर्यमल्ल मिश्रण 613, द्विजदेव 614, प्रकृति-सौन्दर्य 614, नेत्र सौंदर्य 615, प्रेम प्रभाव 615, ‘क्षितिपाल’ 615, ‘लेखराज’[1] 616, गिरिधरदास, (मूलनाम गोपालचन्द्र) 616, सुधारवादी युग, प्रस्तावना 618, आधुनिक विकास का श्रीगणेश 619, गद्य का अभूतपूर्व उत्कर्षः प्रगति का सर्वांगीण सन्देश 620, विविध गद्य-विधाओं का उद्भव एवं विकास, नाटक 623, उपन्यास 624, कहानी 625, निबन्ध 625, आलोचना 627, आधुनिक राष्ट्रीय कविता का प्रस्थान-युग 627, सुधारवादी युग का साहित्य टकसाली-जनसाहित्य है 629, उपसंहार 630, प्रमुख साहित्यकार, रघुनाथदास ‘रामसनेही’ 631, जुगुलानन्यशरण 631, सेवक[1] 632, सरदार कवि 632, गोकुल कवि 633, पतितदास 634, ठाकुरप्रसाद मिश्र ‘पंडित प्रवीन’ 634, रघुराजसिंह 635, शंकरदास 636, गंगादास 636, राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द 638, दयानन्द[1] 639, ख़ैराशाह 640, राजा लक्ष्मणसिंह 641, हरिसेवक[4] 642, श्रद्धाराम फिल्लौरी[6] 642, हरीदास 643, मुरारिदान 644, काली कवि 645, शिवसिंह 646, प्रतापकुँवरि बाई 647, प्रतापबाला 648, गणेशप्रसाद[1] 648, फ़्रेडेरिक पिन्कॉट 649, नवीनचन्द्र राय 650, ‘बेनी[3] द्विज’ 650, बलदेव[1] 651, आलम बेग़म[4] 651, मथुरा[1]प्रसाद मिश्र 652, शरच्चन्द्र ‘सोम’[3] 652 , लछिराम 653, ईसुरी 653, बालकृष्ण भट्ट 654, रसिकबिहारी 655, नेवाज बिलग्रामी 656, सहजराम 656, गोविन्द गिल्लाभाई 657, देवीप्रसाद[4] 657, काशीनाथ खत्री 658, बाघेली विष्णुप्रसाद कुँवरि जी 658, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र 659, ग्रीयर्सन[1] 668, श्रीनिवास 669, प्रेमघन 670, प्रतापनारायण मिश्र[4] 671, हाजी अली ख़ाँ 675, जगमोहन सिंह 675, ‘द्विजराज’ 676, अम्बिका दत्त व्यास 676, रामकृष्ण वर्मा 677, राधाचरण गोस्वामी 678, शीतलाप्रसाद[3] उपाध्याय ‘शीतल’[4] 678, शिवबिहारीलाल मिश्र 679 ‘व्रजराज’ 679, नकछेदी तिवारी[1] ‘अजान’ 680, राधाकृष्णदास 680, रामसुजानसिंह 681, श्रीनिधि 682, ‘विशाल कवि’ 682, युगलप्रिया 683, कन्हैयालाल[1] पोद्दार 683, रामप्रतापसिंह 684, कवि लाल 684,

5. आदर्शवादी युग
(1900-20. ई.से)

प्रस्तावना 687, कविता में सर्वतोमुखी नव्यता 689, राष्ट्रकाव्य 692, रामकाव्य 694, कृष्णकाव्य 695, प्रकृतिकाव्य 697, रहस्यकाव्य 699, व्रजभाषा-काव्य 701, हिन्दी-निबन्ध का स्वर्ण-युग 703, हिन्दी-आलोचना का स्वर्ण-युग 707, कहानी का उद्भव एवं विकास 713, उपन्यास का उत्कर्ष 715, नाटक की विषम यात्रा 721, आकलन 723, प्रमुख साहित्यकार, सीताराम बी.ए. 'भूप' 723, 'नवनीत'[5] 724, जगन्नाथप्रसाद 'भानु' 725, गोविन्दनारायण मिश्र[1] 726, श्रीधर पाठक 727, नाथूराम शर्मा 'शंकर'[2] 729, मदनमोहन मालवीय 730, देवकीनन्दन खत्री 733 ओझा 734, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 734, युगगुरु 735, गद्यमूर्ति 745, बलदेवदास 747, किशोरीलाल गोस्वामी 747, बालमुकुन्द गुप्त 749, मिश्रबन्धु 751, हरिऔध[1] 755, प्रियप्रवास 757, रंगपाल 764, रत्नाकार 765, हरिश्चन्द्र 769, गंगावतरण 772, भगवानदीन 'दीन' 779, गोपालराम गहमरी 780, रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण' 781, डॉ. भगवान्दास[1] 783, बुन्देलाबाला 784, चन्द्रवती मिश्र 784, गंगाप्रसाद अग्निहोत्री 785, माधवप्रसाद मिश्र 785, 100 साल पुर्व की एक कथा- एक अज्ञात लेखिका 786, ब्रजेश[2] 789, रामचरित उपाध्याय 790, अमीरअली 'मीर'[2] 791, आधुनिक-केशव :रामनाथ 'जोतिसी' 792, श्रीरामचन्द्रोदय महाकाव्य 793, मोहम्मद वज़ीर ख़ाँ 794, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी 795, श्यामसुन्दरदास 797, कामताप्रसाद[1] गुरु 799, आचार्य पद्मसिंह शर्मा 799, वचनेश[1] 800, चन्द्रभानुसिंह 801, आग़ा हश्र कश्मीरी 801, शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' 802, कविरत्न 803, प्रेमचन्द 804, रामदास गौड़[1] 816, पूर्णसिंह 816, पुरुषोत्तमदास टंडन[2] 817 , मुंशी अजमेरी 820, सनेही[2] 821, स्मरणीय गुरु 822, रामचन्द्र[2] शुक्ल 826, रूपनारायण पांडेय 'कमलाकर' 835, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद 835, मैथिलीशरण गुप्त 836, बुद्धकाव्य के श्रेष्ठ कवि 845, यशोधरा 852, लोचनप्रसाद पांडेय 860, सन्तराम बी.ए. 861, देवीदत्त शुक्ल 861, प्रभुदत्त ब्रह्मचारी 862, द्वारकाप्रसाद शुक्ल 'शंकर' 863, राधावल्लभ पांडेय 'बन्धु'[3] 863, रामनरेश त्रिपाठी 864, राधेश्याम कथावाचक 867, राधिकारमण प्रसाद सिंह 868, मन्नन द्विवेदी गजपुरी 868, कृष्णबिहारी मिश्र 870, गणेशशंकर विद्यार्थी 870, नारायणप्रसाद 'बेताब' 874, गोपालशरण सिंह 875, कौशिक 876, खलकसिंह देव 876, बनारसीदास चतुर्वेदी 877, हितैषी 878, सियारामशरण[1] गुप्त 881, मुकुटधर पाण्डेय 882, वियोगीहरि 883, सुदर्शन[4] 884, 'कैरव' 885, किशोरीदास वाजपेयी 886, महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति' 887।

6. स्वच्छन्दतावादी युग 891
(1920-40 ई.)

प्रस्तावना 890, छायावाद नहीं प्रत्युत स्वच्छन्दतावाद 891, स्वच्छन्दतावादी कविता आदर्शवादी कविता का विकास है 892, स्वच्छन्दतावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि 893, कल्पना 895, नव्यता 897, प्रतीकवाद 898, अद्वैत का सरस-गान रहस्यवाद 900, अपूर्व प्रकृतिचित्रण 902, गहन नारी-संवेदन 908, राष्ट्रवाद, स्वातन्त्र्य-प्रेम एवं दलित-संवेदन 910, महान् अभिव्यक्ति-पक्ष 913, स्वच्छन्दतावादी कविता : वस्तुवादी मूल्यांकन 914, स्वच्छन्दतावादी गद्य 917, वादमुक्त स्वच्छन्दतावादी कवि 918, गाँधी 919, श्याम बिहारी शर्मा 'बिहारी' 921, काका कालेलकर 923, वृन्दावनलाल वर्मा 924, माखनलाल चतुर्वेदी 925, आ. नरेन्द्रदेव 928, सम्पूर्णानन्द 928, प्रसाद 930, अलेक्सेई वारान्निकोव 949, व्रजरत्नदास 949, बदरीनाथ भट्ट 950, चतुरसेन शास्त्री 951, राय कृष्णदास 951, गुरुभक्तसिंह 'भक्त' 952, हरिभाऊ उपाध्याय 953, शिवपूजन सहाय 954, पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी 954, अवधेश मालवीय 955, दुलारेलाल भार्गव 955, 'बेढब'[1] बनारसी' 956, 'लली' 957, 'शिलीमुख' 957, अमर[2]नाथ झा 958, निराला 958, 'ऊँट' 973, केशवदेव शुक्ल 'केशव' 974, ज्योतिषचन्द्र घोष 974, कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय 975, नवीन[1] 976, 'बिस्मिल' 979, पढ़ीस 980, गोविन्दबल्लभ पन्त[1] 982, बलदेवप्रसाद मिश्र 982, उदयशंकर भट्ट 983, राष्ट्रीय आत्मा 984, मोहनलाल महतो 'वियोगी' 985, भगवतीप्रसाद वाजपेयी 986, अनूप शर्मा 987, पन्त 988, स्फीत कवि 990, कौशलेन्द्र राठौर 1000, द्वारकाप्रसाद[1] मिश्र 1002, मुन्शीराम शर्मा 'सोम' 1003, रामवृक्ष बेनीपुरी 1003, प्रभुदयाल मीतल 1005, कृष्णानन्द गुप्त[2] 1005, भगवतीचरण वर्मा 1006, सुभद्राकुमारी चौहान 1007, जर्नादनप्रसाद झा 'द्विज'[1] 1008, प्रतापनारायण श्रीवास्तव[1] 1009, गंगाशरण सिंह[4] 1009, कृष्णशंकर

शुक्ल 1010, सोहनलाल द्विवेदी 1011, आशुकवि जगमोहननाथ अवस्थी 'मोहन' 1012, डॉ. रामकुमार वर्मा 1014, हृदयेश 1016, नंददुलारे वाजपेयी 1016, महादेवी 1017, रामसहाय पांडेय 'चंद्र' 1021, 'मिलिन्द'[1] 1021, केदारनाथ[1] मिश्र 'प्रभात' 1022, भगतसिंह 1023, रसिकेन्द्र 1023, रघुवीरसिंह 1024, हरिकृष्ण 'प्रेमी'[1] 1025, उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश' 1025, 'प्राणेश' 1026, श्रीराम शर्मा 1026, मुक्त 1028, आरसीप्रसाद सिंह[2] 1028, भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'[1] 1029, 'कमलेश'[1] 1030, बालकृष्ण राव 1030, सुमित्राकुमारी सिन्हा 1032, नगेन्द्र 1032, दिनेशनंदिनी डालमिया 1033, जानकीवल्लभ शास्त्री 1034।

7. यथार्थवादी युग

(1940. ई.से)

प्रस्तावना 1036, यथार्थवाद के अनुरूप परिस्थितियाँ 1039, आक्रोश का उद्‌गार 1040, क्रान्ति और शान्ति 1041, स्वतन्त्र भारत का आलोचना-साहित्य 1044, यथार्थवाद के विभिन्न रूप 1047, समाजपरक-यथार्थवादी साहित्य 1049, वादबद्ध-समाजपरक साहित्य (प्रगतिवादी साहित्य) 1051, वादमुक्त-समाजपरक साहित्य (प्रगतिशील साहित्य) 1053, सांस्कृतिक उपन्यास 1054, व्यक्तिपरक-यथार्थवादी साहित्य 1056, वादबद्ध-व्यक्तिपरक साहित्य 1057, प्रयोगवाद 1058, मनोविश्लेषणवाद, दादावाद, अत्यथार्थवाद 1059, अस्तित्ववाद 1060, वादमुक्त-व्यक्तिपरक साहित्य 1061, (पारम्परिक) यथार्थवादी नव-साहित्य 1062, नवरहस्यवादपरक साहित्य 1063, उत्तर-आधुनिकता 1064, रामपरक साहित्य 1064, कृष्णपरक साहित्य 1066, शिवपरक साहित्य 1067, बुद्धपरक साहित्य 1067, विविध साहित्य 1068, साहित्येतर-साहित्य 1068, आकलन 1068, स्मरणीय साहित्यकार, गुलाबराय[1] 1069, इन्द्र विद्यावाचस्पति 1070, 'व्रजनन्दन' 1071, हनुमानप्रसाद पोद्दार 1073, राहुल सांकृत्यायन 1074, श्रीनारायण चतुर्वेदी 1075, सेठ गोविन्ददास[1] 1076, धीरेन्द्र वर्मा 1077, 'उग्र'[1] : यथार्थवादीयुग के एक अग्रदूत 1078, नबीबख़्श 'फलक' 1079, डॉ. रघुवीर 1080, इलाचन्द्र जोशी 1080, यशपाल 1081, लक्ष्मीनारायण मिश्र 1081, रामसिंहासन सहाय 'मधुर' 1082, वासुदेवशरण अग्रवाल 1083, वंशीधर शुक्ल 1085, उमादत्त सारस्वत 'दत्त' 1086, मनीराम द्विवेदी 'नवीन' 1086, जैनेन्द्र 1087, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' 1087, विश्वनाथप्रसाद मिश्र 1088, बच्चन 1088, श्यामनारायण पांडेय 1092, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी 1093, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य'[1] 1094, मुक्तानन्द 1094, देवेन्द्र सत्यार्थी 1095, दिनकर 1096, माताप्रसाद गुप्त[3] 1104, कामिल बुल्के 1104, सेवकेन्द्र[1] 1105, 'मृगेश': प्रयोगधर्मी, अवधी-कविरत्न 1107, राममनोहर लोहिया 1109, नागार्जुन 1110, भुवनेश्वर : एकांकी-मूर्ति 1111, 'अश्क़' 1111, कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह 1112, शमशेरबहादुर सिंह 1112, 'झड़प' 1113, अज्ञेय 1114, केदारनाथ अग्रवाल 1119, रावी 1120, विष्णु प्रभाकर 1121, रामविलास शर्मा 1121, नरेन्द्र शर्मा 1122, भवानीप्रसाद मिश्र 1122, गोपालसिंह नेपाली[1] 1124, आनन्दशंकर माधवन् 1125, आचार्य तुलसी 1127, विद्यावती 'कोकिल' 1129, कमलारत्नम् (हीरा-कोयला) 1130, गोपालदास व्यास 1130, 'रमई काका' 1131, 'अंचल' 1132, रामदयाल पांडेय 1133, नलिनविलोचन शर्मा 1135, हिमांशु'[1] 1135, शिवमंगलसिंह 'सुमन' 1136, अमृतलाल नागर 1137, क्षेमचन्द्र 'सुमन' 1139, गंगाप्रसाद[3] मिश्र 1139, जगदीशचन्द्र माथुर 1140, डॉ. देवराज[1] 1141, मुक्तिबोध 1142, इन्दिरा गाँधी 1146, प्रभाकर माचवे 1147, गंगारत्न पांडेय 1149, विद्यावती मिश्र 1150, कंचनलता सब्बरवाल 1151, भारतभूषण[1] अग्रवाल 1152, प्रयागनारायण त्रिपाठी 1152, गिरिजाकुमार माथुर 1153, रामकिंकर उपाध्याय 1154, चंद्रकिरण सौनरेक्सा 1155, डॉ. विश्वनाथ अय्यर 1155, दूधनाथ शर्मा 'श्रीश' 1155, फणीश्वरनाथ 'रेणु' 1156, नरेश मेहता[1] 1157, हरिशंकर परसाई 1158, गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी 1158, शकुन्त माथुर 1159, 'राजेश'[1] 1160, काज वेंकटेश्वर राव 1161, शिवानी 1161, 'अरुण'[4] 1162, त्रिलोचन शास्त्री 1163, गुलाब[1] खंडेलवाल 1164, चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा' 1164, डॉ. एन्. चन्द्रशेखरन् नायर 1165, रामदरश मिश्र 1166, मोहन राकेश 1166, विनीत विक्रम बौद्ध 1167, श्रीलाल शुक्ल 1169, दुष्यन्त कुमार 1169, विद्यानिवास मिश्र 1170, 'मधुप' 1170, धर्मवीर भारती 1171, लक्ष्मीनारायण लाल, 1172, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना 1172, कुँवर नारायण 1173, कृष्णा सोबती 1174, स्नेकल 1175, अमरेश[1] 1176, निर्मल वर्मा 1177, विष्णुकान्त शास्त्री 1178, शिवप्रसाद सिंह 1179, रघुवीर सहाय 1179, जगदीश गुप्त 1179, भगवतशरण अग्रवाल 1180, मन्नू भंडारी[2] 1181, लक्ष्मीकान्त वर्मा 1182, राजेन्द्र अवस्थी 1183, श्रीकान्त वर्मा 1183, घुरू, किसान 1184, रजनीश 1185, राजेन्द्र यादव 1187, कुवेरनाथ राय 1187, डॉ. श्यामसिंह

‘शशि’ 1188, धूमिल 1189, हरीश निगम 1191, केदारनाथ सिंह 1192, सुमन राजे 1193, शिबन कृष्ण रैणा 1194, डॉ. स्वामीनाथ पांडेय 1195, सुमेरसिंह ‘शैलेश’[1] 1195, आचार्य विद्यासागर 1197, प्रह्लाद रामशरण 1206, अभिमन्यु ‘अनत’ 1206।

उपविधाएँ एवं नवविधाएँ

1. नवगीत 1208
2. हिन्दी-ग़ज़ल 1209
3. हाइकू[1] = त्रिशूल 1210
4. अगीत 1211
5. लोकगीत 1211
6. शोकगीत 1213
7. गद्यगीत 1214
8. एकांकी 1215
9. लघुकथा 1216
10. आत्मकथा 1217
11. जीवनी 1218
12. लोककथा 1219
13. हास्य-साहित्य 1220
14. यात्रावृत्त 1220
15. संस्मरण 1221
16. रेखाचित्र 1222
17. रिपोर्ताज़ (तात्कालिकी) 1222
18. साक्षात्कार (भेंटवार्ता—इंटरव्यू) 1223
19. परिचर्चा 1224
20. संवाद 1224
21. बाल-साहित्य 1225
22. दर्शनपरक साहित्य 1226
23. वेदपरक साहित्य 1227
24. योगपरक साहित्य 1227
25. पत्र-साहित्य 1228
26. चलचित्र-साहित्य 1229
27. शिकार-साहित्य 1230
28. पत्रकारिता 1231
29. हिन्दी-शोधकार्य 1232
30. कोश-साहित्य 1233
31. भाषाविज्ञान 1234
32. साहित्येतिहास 1235

अन्ततोगत्वा

चरैवेति 1237, क्रान्त-कवि क़ाजी नज़र-उल्-इस्लाम (नज़रुल) 1238, मुचकुन्द शर्मा 1240, सतना-सन्दर्भ 1243, प्रकीर्णक 1244, नोइडा 1244, हरिशंकर ‘आदेश’ 1245, हिन्दी की आरती 1246, मॉरीशस 1247, ‘रसपुंज’ 1247, साहित्यक पत्रकारिता 1248 सिख-हिन्दीसेवी 1248, अंगिका 1249, 1857-काव्य 1250, झाँसी की रानी 1252, तात्या टोपे 1254, कुँवरसिंह 1254, राना बेनीमाधव 1255, चहलारी-नरेश बलभद्रसिंह 1256, शीलादेवी 1257, श्यामलगिरि गोसाईं 1257, गोंड-नरेश शंकरशाह 1258, वाजिदअली शाह 1259, दलित-साहित्यः ऐतिहासिक विश्लेषण 1260, परप्रेरणा 1260, नवबौद्धवाद 1261, ईसाई-साँठगाँठ 1265, ‘आर्य’-विषयक परकीयतावादी राजनीति 1268, घातक प्रतिक्रियावाद 1269, आज का दलित साहित्य 1270, दलित-साहित्य : इतिहास के दर्पण में 1273, पूर्वबौद्धिककालीन दलित-साहित्य 1274, आदर्शवादी युग का दलित-साहित्य 1276, स्वच्छन्दतावादी युग का दलित-साहित्य 1278, यथार्थवादी युग का दलित-इतिहास 1280, डॉ. चक्रधर ‘नलिन’ 1285, हिन्दीः विश्वभाषा, राष्ट्रभाषा, जनभाषा 1287, रूहेलखंड में हिन्दीसेवा 1291, डॉ. कुमार विमल 1292, विजयसिंह ‘पथिक’ 1294, सीताराम चतुर्वेदी 1295, केशरीनाथ त्रिपाठी 1297, शाकुन्ला सिरोठिया 1298ए डॉ. महेश अवस्थी 1299, ब्रजबुलि 1301, भगवतप्रसाद मिश्र ‘नियाज’ 1302, रोहिणीप्रसाद मिश्र 1303, डॉ. किशोरीलाल[1] गुप्त 1304, महेन्द्र प्रसाद ‘मुकुंन्दम’ 1306, डॉ. पवनकुमार 1308, दोहा 1310, डॉ. मेघासिंह चौहान 1311, प्रो. लल्लनप्रसाद[1] 1312, प्रकाश द्विवेदी 1315, डॉ. राय राजेश्वर बली का ब्रजभाषा-काव्य 1318, जयप्रकाश नारायण 1320, डॉ. श्यामसुन्दर घोष 1322, डॉ. रंजना गुप्त 1323, ‘नूतन’ 1326, छन्द की वापसी 1327।

आदर्शवादी युग

(1900-20 ई.)

प्रस्तावना

बौद्धिककाल का समारम्भ 1800 ई. से गद्य के अभूतपूर्व विकास के साथ हुआ। आरम्भ में कविता पारम्परिक ही रही। अतः 1800-1850 ई. का समय सन्धियुग था। 1850-1900 ई. का समय सुधारवादी युग था जिसमें गद्य की विधाएँ विकसित हुई, उसका रूप पर्याप्त व्यवस्थित हुआ, कविता में नव्य-भव्य राष्ट्रवादी भावनाओं का समावेश हुआ, ऐतिहासिक स्वदेशी-भावना का विकास हुआ। 1900-120 ई. का समय आदर्शवादी युग था, जिसमें राष्ट्र तिलक के निष्काम कर्मयोग अर्थात् बलिदान की साँसों में जी रहा था। विदेशी-बहिष्कार, स्वदेशी-प्रयोग, निजभाषासम्मान, निजवेशभूषासम्मान, बलिदान इत्यादि में राष्ट्र विदेशी अरबों, तुर्कों, पठानों, मुग़लों तथा गोरों की परतन्त्रता में लुप्त अस्मिता का अन्वेषण कर रहा था। ऐतिहासिक दृष्टि से यह तिलक-युग था, साहित्यिक दृष्टि से यह द्विवेदी-युग था, किन्तु तत्त्वतः यह आदर्शवादी युग था, जिसमें राष्ट्र ने त्याग-बलिदान के नूतन आयाम विकसित किए तथा संसार भर में सम्मान प्राप्त किया। राष्ट्रीय इतिहास की दृष्टि से इस निर्णायक युग की प्रमुख घटनाएँ हैं—

1. कलकत्ता कांग्रेस में 'स्वराज्य' की घोषणाः 1907 ई.
2. बंगाल में हिंस्र क्रान्ति का व्यापक रूपः 1907-8 ई.
3. प्रथम विश्वयुद्ध : 1014-19 ई.
4. गोखले की मृत्यु : 1915 ई.
5. तिलक की मृत्यु : 1920 ई.
6. असहयोग आन्दोलन का आरम्भ : 1920 ई.

इन सब घटनाओं का हिन्दी-साहित्य पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष भाव पड़ा। एक-एक बिन्दु पर लघु-शोध अपेक्षित है, पूरे पर बृहत्-शोध। राष्ट्रीय जीवन में जैसी त्वरा एवं गतिशीलता इस युग में दृग्गत हुई वैसी पहले कभी न हुई थी और अब तक नहीं हुई। साहित्यिक दृष्टि से भी यह युग विलक्षण था जिसमें अनेक चिरस्मरणीय घटनाएं घटीं—

1. यद्यपि काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना 16 जुलाई, 1893 ई. को हो चुकी थी (संस्थापक थे बाबू श्यामसुन्दरदास, पं. रामनारायण मिश्र एवं ठाकुर शिवकुमार सिंह) किन्तु इसके व्यापक कार्य-कलाप बीसवीं सदी में ही दृग्गत हुए।

2. जनवरी, 1900 में प्रयाग (इलाहाबाद) से 'सरस्वती' का प्रकाशन हुआ (सम्पादक थे श्यामसुन्दरदास, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', राधाकृष्णदास, कार्तिकप्रसाद खत्री एवं किशोरीलाल गोस्वामी) जो सभा का मुख-पत्र ही थी (1905 ई. से ऐसा न रहा)। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी इसके सम्पादक रहे और उन्होंने इस युग का महानेतृत्व किया (वैसे वे इसमें 1903-1920 ई.[2] के समय में आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी इसके सम्पादक रहे और उन्होंने इस युग का महानेतृत्व किया (वैसे वे इसमें 1900 ई. से ही लिखते आ रहे थे)। परवर्ती सम्पादकों (पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, देवीदत्त शुक्ल, श्रीनाथसिंह, पुनः बख़्शी, देवीदयाल चतुर्वेदी एवं श्रीनारायण चतुर्वेदी) पर भी महान् आचार्य का भारी प्रभाव बना रहा। यद्यपि अयोध्याप्रसाद खत्री ने 'खड़ीबोली का आन्दोलन' (1888 ई.) एवं 'खड़ीबोली का पद्य' (दो भाग—1887-89 ई.) के साथ एक आन्दोलन का नेतृत्व किया था तथा 'गौरी—नागरी-कोश' एवं 'देवनागरी की पुकार' के प्रस्तोता पं. गौरीदत्त ने 1894 ई. में नागरी के कार्यालय प्रवेश के हेतु प्रशासन को स्मरणपत्र भी दिया था तथापि खड़ीबोली या नागरी की प्रतिष्ठा द्विवेदी जी ने ही की।

3. पवित्र काशी नगर में महामना मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में 10 अक्टूबर, 1910 ई. को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का समारम्भ जिसका भाषा एवं साहित्य पर व्यापक प्रभाव पड़ा। (अगले अधिवेशनों के अध्यक्षों के नाम हैं—गोविन्दनारायण मिश्र,

---

[1] मुम्बई एवं पुणे में 1896 ई. में प्लेग फैलने पर भी सरकारी पैशाचिकता के विरोध में चाफेकर-बन्धु द्वारा 1897 ई. में रेंड और उसके सहयोगी की हत्या, उनको फाँसी और तिलक को 18 मास की सज़ा से ही उस क्रान्ति का श्रीगणेश हो चुका था।

[2] सक्रिय रूप से 1903-18 ई. तक किन्तु प्राविधिक दृष्टि से 1903-20 ई. ही मानना होगा। 1918-20 ई. में आचार्य अस्वस्थ रहे। 1920 ई. में वे हट गए। उन्हें 50 रुपए मासिक वृत्ति (पेंशन) आजीवन प्राप्त होती रही। यह राशि उस समय पर्याप्त थी। आ. की अस्वस्थता पर 1910 में देवीप्रसाद शुक्ल ने 'सरस्वती' का सम्पादन किया था।

उपाध्याय पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', स्वामी श्रद्धानन्द (महात्मा मुंशीराम), श्रीधर पाठक, श्यामसुन्दरदास, पांडेय रामावतार शर्मा, मोहनदास करमचन्द गाँधी, मदनमोहन मालवीय, विष्णुदत्त शुक्ल, डॉ. भगवानदास, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पुरुषोत्तमदास टंडन, पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', माधवराव सप्रे, अमृतलाल चक्रवर्ती, महामहोपाध्याय रायबहादुर डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, आ. पद्मसिंह शर्मा, गणेशंकर विद्यार्थी, जगन्नाथ 'रत्नाकर', किशोरीलाल गोस्वामी, रावराजा डॉ. श्यामविहारी मिश्र, महाराजा सर सयाजीराव गायकवाड़, मोहनदास करमचन्द गाँधी, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, सेठ जमनालाल बजाज, बाबूराव विष्णु पराड़कर, पं. अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, डॉ. सम्पूर्णानन्द, डॉ. अमरनाथ झा, पं. माखनलाल चतुर्वेदी, गोस्वामी गणेशदत्त, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, वियोगीहरि, राहुल सांस्कृत्यायन, सेठ गोविन्ददास, आ. चन्द्रबली पांडेय, जयचन्द्र विद्यालंकार, कमलापति त्रिपाठी, श्रीनाथसिंह, वियोगीहरि, डॉ. हरवंशलाल शर्मा (लगातार दो बार), रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्राण भारतरत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन आजीवन हिन्दी के सर्वोपरि सेवक रहे। 1908 ई. में तिलक की प्रेरणा से सुब्रह्मण्यम भारती ने मद्रास (चेन्नै) में हिन्दी-पाठशाला स्थापित की थी, किन्तु उसका प्रभाव थोड़ा ही पड़ा था। 1936 ई. में गाँधी ने राष्ट्रभाषा प्रचार समिति वर्धा में स्थापित की, जिसकी प्रेरणा भी डॉ. राजेन्द्रप्रसाद की अध्यक्षता में सम्मेलन के नागपुर अधिवेशन का अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में राष्ट्रभाषा के प्रचार-प्रसार का संकल्प ही था। समिति के सदस्य थे : गाँधी, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, सुभाषचन्द्र बोस, जवाहरलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टंडन, जमनालाल बजाज, आ. नरेन्द्रदेव, काका कालेलकर, बाबा राघवदास, शंकरराव, माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगीहरि, हरिहर शर्मा, ब्रजलाल बियाणी, नर्मदासिंह, श्रीनाथसिंह, लोकसुन्दरी रमन इत्यादि। "एक हृदय हो भारत-जननी" के सूत्र के साथ समिति ने दक्षिण में हिन्दी के लिए प्रशस्य कार्य किया। 10 फरवरी, 1960 ई. को राष्ट्रभाषा प्रचार समति नई दिल्ली का उद्घाटन नेहरू ने किया, जिसके अध्यक्ष थे अनन्तशयनम् आयंगर। इसके प्रेरक भी टंडन जी थे, जिन्हें नरहरि विष्णु गाडगील द्वारा 25001 रुपए की राशि भेंट की गई जो राजर्षि ने वर्धा की समिति को प्रदान कर दी। इसमें 14 सितम्बर, 1949 ई. को संविधान द्वारा हिन्दी के राजभाषा बनाने के उपलक्ष्य में हिन्दी-दिवस मनाने तथा प्रशासनिक कर्मचारियों की हिन्दी-शिक्षा इत्यादि के निर्णय लिए गए। इस प्रकार, सम्मेलन की स्थापना का हिन्दी भाषा एवं साहित्य के इतिहास पर भारी प्रभाव पड़ा। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी सभा-समितियों से दूर रहते थे किन्तु सम्मेलन के कानपुर अधिवेशन में उन्होंने सहर्ष भाग लिया तथा वह प्रसिद्ध भाषण दिया जो 'साहित्य की महत्ता' के रूप में अत्यन्त समादृत निबन्ध बन गया। खड़ीबोली का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। मि. बीम्स ने (विवादास्पद) आर्यों के आगमन से पूर्व की चर्चा की है, बाण भट्ट (सातवीं सदी ई.) ने लोकभाषा की चर्चा की है जो खड़ीबोली ही लगती है। किन्तु यह कविता का सार्वभौम माध्यम न थी। विभाषा-लेखन का ज़ोर था। व्यापक राष्ट्रभाषा होने के कारण अहिन्दीभाषी भी खड़ीबोली में लिखते थे।

4. आचार्य के नेतृत्व में भाषा का रूप सुस्थिर, व्याकरण-सम्मत, विरामचिह्नयुक्त एवं परिनिष्ठित हुआ (जैसा कि सुधारवादी युग में न हो पाया था) तथा वह उच्चारण प्रचलित हुआ जो आज तक गतिशील है। आचार्य की भाषा-नीति हिन्दी में उर्दू इत्यादि के शब्दों को गृहीत करते हुए भी संस्कृत के आधार से अविच्छिन्न रखने की थी, जो सार्वभौम रूप से मान्य हुई।

5. गद्य की विभिन्न विधाओं का महान् उत्कर्ष हुआ। कहानी, उपन्यास, निबन्ध, आलोचना का विशेष तथा नाटक, आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, ज्ञान-विज्ञान-परक विषयों इत्यादि का उल्लेख्य विकास हुआ। आ. रामचन्द्र शुक्ल, आ. श्यामसुन्दरदास, मिश्रबन्धु, पद्मसिंह शर्मा जैसे अग्रणी आलोचक, किशोरीलाल गोस्वामी, प्रेमचन्द, कौशिक, वृन्दावनलाल वर्मा जैसे अग्रणी कथाकार, आ. रामचन्द्र शुक्ल, पं. माधवप्रसाद मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, पूर्णसिंह जैसे अग्रणी निबन्धकार, गणेशशंकर विद्यार्थी, पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, देवीदत्त शुक्ल, बाबूराव विष्णु पराड़कर, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मण नारायण गर्दे जैसे अग्रणी पत्रकार इसी युग में अंकुरित एवं पल्लवित हुए।

6. वैसे तो खड़ीबोली-कविता का आदिरूप 'सिद्ध-हेमचन्द्र-शब्दानुशासन' के उद्धरणों में विद्यमान है, जो 1000 वर्ष पूर्व के हैं, किन्तु तेरहवीं शताब्दी (ई.) में अमीर खुसरो, ज्ञानेश्वर, मुक्ताबाई, नामदेव इत्यादि का कृतित्व विशेष उल्लेखनीय है, जो परवर्ती शताब्दियों में अली आदिलशाह इत्यादि दक्खिनी हिन्दी के रचनाकारों तथा एकनाथ, शिवाजी इत्यादि के उद्गारों से रेख़्ता या उर्दू के आदिकवि वली, आबरू, आरज़ू इत्यादि की शायरी तक प्रसरित है। इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली), हस्तिनापुर (मेरठ जनपद), कुरुक्षेत्र, गुड़गाँव या गुरुग्राम या द्रोणचार्यनगर खड़ीबोली-क्षेत्र में ही पड़ते हैं। किन्तु आचार्य के कारण खड़ीबोली कविता का माध्यम भी बन गई। सुधारवादी युग में गद्य खड़ीबोली तथा कविता व्रजभाषा में रची जाती थी; भाषा का यह द्वैत वांछनीय न था—विशेषतः तब जबकि हिन्दी राष्ट्रभाषा एवं विश्वभाषा बन रही थी। आचार्य ने गद्य-पद्य की भाषा का ही द्वैत नहीं मिटाया प्रत्युत दोनों के वाक्य-विन्यास के द्वैत को भी अवांछनीय घोषित किया, जैसाकि महाकवि वर्ड्सवर्थ अंग्रेज़ी में कर चुके थे, जैसाकि मराठी में प्रचलित था तथा जैसाकि भाषा की विशदता के हित में था। श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शंकर', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' जैसे जाने-माने

व्रजभाषा-कवियों तक ने आचार्य के आह्वान से प्रभावित होकर खड़ीबोली में कविता रची[1] तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' (ओजस्वी कविताओं में 'त्रिशूल'), गोपालशरणसिंह, जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी', हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' इत्यादि तो आचार्य के शिष्य ही थे।

सचमुच 'हिन्दी-कविता में युगान्तर'[2] हो गया। महादेवी के अनुसार, जैसा कार्य राष्ट्र के लिए गाँधी ने किया वैसा ही राष्ट्रभाषा के लिए आचार्य ने। नेता परिपूर्णानन्द वर्मा एवं इतिहासविद्- पुरातत्त्वविद् स्व. डॉ. कृष्णदत्त वाजपेयी ने आचार्य को भारत की विभूति ठीक ही माना है। वस्तुतः आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिन्दी को व्याकरण-सम्मत, व्यापक एवं मानक रूप प्रदान करना, गद्य-साहित्य की विभिन्न विधाओं में उन्नत एवं विशद सृजन करना और (उससे भी बहुत बढ़कर) कराना, तथा कविता को एक सार्वभौम माध्यम प्रदान करना इतना बड़ा कार्य है जिसकी समता संसार-साहित्य में नहीं मिलती। आ. द्विवेदी विश्व के अद्वितीय साहित्य-निर्माता, साहित्य-नेता एवं साहित्य-गुरु थे।

कविता में सर्वतोमुखी नव्यता

जैसे 1800 ई. में फ़ोर्ट विलिअम कॉलेज की स्थापना ने आधुनिककाल या बौद्धिककाल एवं इसके 50-50 वर्षों वाले सन्धियुग एवं सुधारवादी युग के पथ प्रशस्त किए, वैसे ही 1900 ई. में 'सरस्वती' के प्रकट होने ने बौद्धिककाल के आदर्शवादी युग का पथ प्रशस्त किया।

1903 ई. में 'सरस्वती' के सम्पादक बनने से पहले ही महावीरप्रसाद द्विवेदी एक प्रसिद्ध कवि एवं प्रसिद्ध लेखक माने जाते थे। जून, 1909 की[3] 'सरस्वती' में प्रकाशित उनकी 'हे कविते' में गद्य-पद्य भाषा के द्वैत को मिटाने, विविधता लाने तथा नव्यता का आह्वान प्रख्यात हो चुका था :

सुरम्यरूपे, रसराशि - रंजिते!
विचित्र-वर्णाभरणे! कहाँ गई?
अलौकिकानंद-विधायिनी कहा,
कवींद्र-कांते कविते अहो! कहाँ?....
अभी मिलेगा व्रजमंडलांत का
सुभुक्त भाषामय वस्त्र एक ही,
शरीर-संगी करके उसे सदा
विराग होगा तुझको अवश्य ही,
इसीलिए, हे भवभूति-भाविते,
अभी यहाँ हे कविते, न आ, न आ!

जुलाई, 1901 की 'सरस्वती' में प्रकाशित उनका 'कवि-कर्त्तव्य' शीर्षक आलेख राष्ट्रभाषा हिन्दी की कविता का घोषणापत्र ही बन गया, जिसने न केवल आदर्शवादी युग को प्रेरित-प्रभावित किया प्रत्युत समूची परवर्ती कविता पर भी उसकी प्रेरणा एवं प्रभाव का दर्शन सरलतापूर्वक किया जा सकता है :

1. कवियों को विषय के अनुकूल छन्द-योजना करनी चाहिए। अनुकूल वृत्तप्रयोग कविता का आस्वादन करनेवालों को अधिक आनन्द देता है।

2. छन्दविधान में नवीनता लानी चाहिए। हिन्दी के प्रचलित तथा लोकप्रिय छन्द दोहा, चौपाई, सोरठा, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग बहुत हो चुका, इनके अतिरिक्त अन्य छन्दों का भी प्रयोग हो। संस्कृत-काव्यों में प्रयुक्त द्रुतविलम्बित, वंशस्थ

---

[1] उस दिशा में 19 सर्गीय 'नल नरेश' खड़ीबोली-महाकाव्य के प्रणेता पुरोहित प्रतापनारायण का नाम भी उल्लेखनीय है, जिनका स्फीत 'काव्य कानन' व्रजभाषा में है।

[2] डॉ. सुधीन्द्र का 'प्रस्थान'-प्रबन्ध। डॉ. उदयभानुसिंह, डॉ. श्रीकृष्णलाल, डॉ. रामविलास शर्मा इत्यादि ने भी आचार्य एवं युग पर उत्कृष्ट ग्रन्थ रचे हैं।

[3] कहीं-कहीं जून, 1900 लिखा मिलता है।

और वसन्ततिलका इत्यादि ललित वृत्तों का भी प्रयोग होना चाहिए[1]। इससे भाषा-काव्य की शोभा बढ़ेगी। यही नहीं, आजकल की बोलचाल[2] की हिन्दी की कविता उर्दू के से एक विशेष प्रकार के छन्दों में अधिक खुलती है। अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होने चाहिए।[3]

3. पदान्त में अनुप्रासहीन छन्द भी भाषा में लिखे जाने चाहिए। अतुकान्त छन्द जब संस्कृत[4], अंग्रेजी[5], बांग्ला[6] इत्यादि में विद्यमान हैं, तब कोई कारण नहीं कि हमारी भाषा में न लिखे जाएँ। अनुप्रासों को सुनने का जो रूढ़ अभ्यास कानों को हो गया है, उसके बन्धन में पड़ा रहना ठीक नहीं। अनुप्रासों के ढूँढ़ने का प्रयास उठाने में समर्थ शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है, जिससे कविता की चारुता नष्ट हो जाती है।[7]

4. भाषा सरल-सुबोध होनी चाहिए। कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझ सके। कालिदास, भवभूति और तुलसीदास के काव्य सरलता के आकार हैं। इसीलिए इनके काव्यों का इतना आदर है। जो काव्य सर्वसाधारण की समझ के बाहर होता है, वह बहुत कम लोकप्रिय होता है। कवियों को इसका ध्यान रखना चाहिए।[8]

5. भाषा व्याकरण-सम्मत अर्थात् शुद्ध होनी चाहिए।

6. "अर्थ-सौरस्य की कविता का जीवन है।"

7. "चींटी से लेकर हाथी पर्यन्त, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत—सभी पर कविता हो सकती है।।[9]

शताब्दी के उद्गम में ही नवीनता एवं विराटता का काव्य-दर्शन देकर आचार्य ने न केवल अपने युग के कवियों को सृजन के नाना आयाम प्रदान किए अपितु अनेक अगले युगों के कवियों का पथ भी प्रशस्त कर दिया। 'सरस्वती'—सम्पादक बनने पर आचार्य ने अपने घोषणापत्र को चरितार्थ भी कर दिया। 'हे कविते' से 'कवि-कर्त्तव्य' तक के सारे उद्देश्य पूर्ण कर वे आ. शुक्ल के द्वारा युग-प्रवर्तक, आ. श्यामसुन्दरदास द्वारा 'हिन्दी के प्रथम आचार्य' (भाषा का सम्मान), आ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'अवतारी पुरुष' घोषित किए गए। मैथिलीशरण, पन्त, सनेही, गोपालशरण सिंह इत्यादि-इत्यादि-इत्यादि कवियों ने इन पर प्रभूत काव्य-सर्जना की है, जो अब भी होती रहती हैं। सुधीन्द्र, श्रीकृष्णलाल, उदयभानुसिंह इत्यादि ने उन पर शोधकार्य किए हैं, जो अब भी होते रहते हैं। बनारसीदास चतुर्वेदी, किशोरीदास वाजपेयी, देवीदत्त शुक्ल, रामविलास शर्मा इत्यादि ने उन पर जीवनी-संस्मरण-समीक्षा-ग्रन्थ लिखे हैं, जो आज भी लिखे जा रहे हैं। आ. पद्मसिंह शर्मा, जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', कृष्णदत्त वाजपेयी इत्यादि ने उन पर मूल्यवान् निबन्ध-लेख लिखे हैं, जो आज भी लिखे जा रहे हैं और आगे भी लिखे जाते रहेंगे। वे 'हिन्दी के प्रथम आचार्य' थे, उन पर हिन्दी का प्रथम अभिनन्दन-ग्रन्थ निकला, उन पर अभूतपूर्व एवं अभविष्यायोजित द्विवेदी-मेला लगा। तुलसीदास के बाद हिन्दी-साहित्यकारों ने जितना और जैसा सम्मान आचार्य द्विवेदी का किया है, उतना और वैसा किसी का नहीं; और, उनके कार्य को देखते वह अधिक नहीं लगता! गाँधी उनके अभिनन्दन से संपृक्त हुए, रवीन्द्र ने 'सरस्वती' में अपनी एक कहानी से सन्तुष्ट होकर उन्हें प्रशंसात्मक पत्र लिखा, मैथिलीशरण एवं गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे शीर्षस्थ कवि एवं पत्रकार उनके चरणों में नत हुए, महामहोपाध्याय डॉ. सर गंगानाथ झा स्वयं को शिष्यवत् मानकर उनके पदवन्दनार्थ झुके—किस हिन्दीसेवी को ऐसा गौरव मिला? फिर भी, इतिहास-तत्त्व की दृष्टि से मैं व्यक्तिपरक 'द्विवेदी-युग' पर 'वस्तुपरक' 'आदर्शवादी युग' को वरीयता प्रदान करना ही समीचीन मानता हूँ, क्योंकि उनसे प्रेरित होते हुए भी साहित्य का 'समग्र' समय को प्रस्तुत करता है। तिलक एवं द्विवेदी 1900-20 ई. में राष्ट्रीय एवं हिन्दी इतिहासों के मेरुदंड

---

[1] प्रियप्रवास (हरिऔध), सिद्धार्थ (अनूप शर्मा), वर्द्धमान (अनूप शर्मा) इत्यादि महाकाव्यों में ऐसा ही हुआ है।

[2] हरिऔध ने 'बोलचाल', 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' इत्यादि में इस निर्देश को अपनाया है।

[3] मैथिलीशरण, पन्त, बच्चन इत्यादि ने रुबाई भी अपनाई तथा शमशेर, दुष्यन्त, नीरज इत्यादि ने रुबाई, ग़ज़ल वगैरह लिखकर लोकप्रियता पाई (खेद है कि ये छन्द नहीं भाषा भी अपना गए।)

[4] रामायण, रघुवंशम्, नैषधीयचरितम् इत्यादि।

[5] 'पैराडाइज लॉस्ट', पूर्ववर्ती 'फ़ेअरी क्वीन', परवर्ती 'हाइपेरिअॅन' इत्यादि।

[6] 'मेघनादवध' इत्यादि।

[7] प्रियप्रवास, सिद्धराज, प्रेम-पथिक, महाराणा का महत्त्व, प्रलय की छाया, ग्रन्थि, सिद्धार्थ, वर्द्धमान इत्यादि द्रष्टा आचार्य से संपृक्त हैं।

[8] आदर्शवादी युग की कविता आज भी खड़ीबोली की सर्वाधिक लोकप्रिय कविता है।

[9] यथार्थवादी युग की कविता आचार्य को द्रष्टा सिद्ध कर रही है। अज्ञेय, मुक्तिबोध इत्यादि आचार्य के पौत्र थे।

थे किन्तु समय तो समय शरीर पर था। स्वयं इन दोनों पर समय ने प्रभाव डाला था। सारा राष्ट्र संघर्ष की फलासंगशून्य साधना में व्यस्त था। खुदीराम जैसे नवयुवक गीता के मन्त्र बोलते हुए फाँसी पर चढ़ रहे थे—चाफेकर-बन्धुत्रय बलिदान-यज्ञ की पहली आहुतियाँ बन चुके थे! मणिबेन[1], सुभाष[2] एवं नवीन जैसे शत-शत वीर युवती-युवक परतन्त्रता में विवाह न करने का व्रत ले रहे थे। यह रामप्रसाद 'बिस्मिल'[3] को पालनेवाला युग था : ''सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है!'' 'प्रियप्रवास' की राधा को कई आलोचक व्यापक इतिहास की अनदेखी के कारण 'बहिनजियों' के वर्ग में रखते रहें, किन्तु वह चिर से युग की सेतु ही बनी रहेंगी। फ्रायडवादियों को द्विवेदी-युग के नारी-चित्र नीरस, अक्खड़ और वाचाल ही लगेंगे। कामुक शूर्पणखा के पक्षधर बनते ही रहेंगे! किन्तु इससे न राधा एवं उर्मिला पर कोई प्रभाव पड़ेगा, न राम एवं लक्ष्मण पर : मानव महानता को भली-भाँति पहचानता है; और, वह कामकुंठितों के प्रलाप को भी सुनना-सहना जानता है।

आ. शुक्ल ने आदर्शवादी युग की कविता को 'इतिवृत्तात्मक' (भारी-भरकम शब्द जो अर्थ-बोध में बाधक है) घोषित किया है। मैं 'इतिवृत्तात्मक' के स्थान पर 'तथ्यपरक' शब्द का प्रयोग करूँगा, क्योंकि विवेचन-विश्लेषण आचार्यत्व की लपेट में पंगु हो जाता है। एक तो आदर्शवादी युग प्रबन्ध-प्रधान युग था तथा प्रबन्ध संसार में प्रायः सदैव एवं सर्वत्र तथ्यपरक या 'वस्तु-पात्र-रस'-परक ही होते हैं; दूसरे साकेत (गुप्त), पथिक, स्वप्न (रामनरेश त्रिपाठी), 'संचिता' (गोपालशरण सिंह का आचार्य को समर्पित कवितासंग्रह), 'करुणा-कादिम्बिनी' (सनेही) इत्यादि की कविता पर्याप्त भावप्रवण भी है। एक ओर 'स्थूलता' की चर्चा (जिसकी नक़ल का फ़ैशन अब तक चलता है) और दूसरी ओर मैथिलीशरण, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पांडेय इत्यादि की कविता में भावप्रवणता का बारम्बार उल्लेख शुक्लजी की 'शुष्कता' का खंडन स्वयं ही कर देता है। 'छायावादी' आलोचक आ. नन्ददुलारे वाजपेयी एक ओर तो इस युग की कविता को 'शुद्ध कविता' (''यह किस संग्रहालय में प्राप्त है?'' प्रश्न के उत्तर की कृपा न करते हुए) ही नहीं मानते (वे प्रगतिवादी-प्रयोगवादी, विशेषतः प्रयोगवादी, कविता के भी भयंकर आलोचक थे) और दूसरी ओर 'प्रियप्रवास' को बांग्ला के महाकाव्य 'मेघनादवध' से कम भी नहीं मानते (जो स्पष्ट आत्मखंडन है)! वे आचार्य की भरपूर प्रशंसा भी करते हैं और उनके भाषागत गद्य-पद्य—सामीप्य का प्रत्याख्यान भी करते हैं—आज संसार भर में गद्य-पद्य भाषा का सामीप्य आचार्य को द्रष्टा ही सिद्ध कर सकता है (वाजपेयी जी का विचार-बिन्दु कालातीत हो चुका है)! डॉ. रामविलास शर्मा ने आचार्य की भाषा-नीति (संस्कृतनिष्ठ एवं व्याकरणसम्मत रूप का प्रतिपादन) की आलोचना[4] की थी (''भारतेन्दु-युग की हिन्दी से...तो यह ज़ाहिर हो पाएगा कि जिस अस्वाभाविक उच्चारण की बुनियाद पर नए हिन्दी के छन्दों में कविता रची गई है, उसका बहुत बड़ा श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को है'')। क्या शर्माजी व्रजभाषा में काव्यसृजन चाहते थे क्योंकि 'भारतेन्दु-युग' में खड़ीबोली में काव्यसृजन नहीं के बराबर ही हुआ था? क्या शर्माजी की गद्य-भाषा द्विवेदीजी की भाषा से सरल है? सरल वह 'भारतेन्दु-युग' की नहीं, 'द्विवेदी-युग' की भाषा ही है। डॉ. रामविलास शर्मा निराला के भक्त थे; क्या निराला की भाषा क्लिष्टतर नहीं है? आरम्भिकता का यह कच्चापन द्विवेदीजी पर रचित परवर्ती प्रौढ़-ग्रन्थ में नहीं है, जिसमें शर्माजी ने आचार्य के प्रगतिशील सम्पत्ति-दर्शन की प्रशंसा की है। आचार्य द्विवेदी एवं उनके युग की सन्तुलित आलोचना डॉ. सुधीन्द्र, डॉ. श्रीकृष्णलाल, डॉ. उदयभानुसिंह, दिनकर ('चक्रवाल' की भूमिका, 'पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण' ग्रन्थ), डॉ. विनयमोहन शर्मा इत्यादि ने ही की है; आ. शुक्ल, आ. वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र इत्यादि की आलोचना प्रभाववादी होने के कारण तथ्यपरक नहीं है। यह सत्य है कि आचार्य प्रसाद एवं निराला उनका वरदहस्त प्राप्त करने की स्पृहा का मूल्य न कूत सके; यदि वे इसे कूत पाते तो उनकी महानता असीम-आयामी हो जाती! इससे हिन्दी-कविता एवं हिन्दी-साहित्य को यह लाभ प्राप्त होता कि स्वच्छन्दतावादी-काव्यभाषा अपेक्षाकृत सरल होती, वह जनजीवन के निकटतर होती। किन्तु यह भी सत्य है कि आचार्य शृंगारी, कल्पनाप्रवण एवं नव्य कविता के प्रशंसक भी थे। उन्होंने 'शंकर', 'प्रसाद' इत्यादि की कविताएँ भी छापी थीं। वे प्रियप्रवास के प्रशंसक थे, रत्नाकर के व्रजभाषा-काव्य के प्रशंसक थे। उनका भाषा-दर्शन एवं काव्य-दर्शन आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना शताब्दी के आरम्भ में व्यक्त होते समय था। प्रौढ़तम अज्ञेय ने आचार्य के अनुरूप निजयुगसेवा की महत्त्वाकांक्षा व्यक्त की थी।

---

[1] स्वतन्त्र भारत के सर्वश्रेष्ठ नेता एवं स्वातन्त्र्य-संग्राम के अद्वितीय सेनानी सरदार वल्लभभाई झवेरभाई पटेल (1875-1950) की स्वर्गता पुत्री जिन्होंने विवाह किया ही नहीं।

[2] सुभाष ने पौलेण्ड में विदेशी महिला से विवाह कर प्रण-भंग किया, जो आलोच्य है।

[3] 'बिस्मिल' 1927 ई. में फाँसी पर चढ़े।

[4] प्रगति और परम्परा, पृष्ठ 178-79

आचार्य के समय में ही कविता की भाषा में मार्दव आ रहा था, उसमें कल्पनाप्रवणता आ रही थी, उसके आयाम स्फीत हो रहे थे—अपनी आत्मखंडनात्मक शैली में आ. शुक्ल तक ने इसे स्वीकार किया है; डॉ. सुधीन्द्र, डॉ. विनयमोहन शर्मा, दिनकर इत्यादि ने तो इसे प्रतिपादित किया ही है। वस्तुतः आदर्शवादी युग खड़ीबोली-कविता का प्रथम युग था, जिसके आरम्भ में भाषा-रूप का विशेष प्रांजल न हो पाना स्वाभाविक-सा है। किन्तु उसका रूप त्वरा से विकसित हुआ। अनुभूति में ही वंकिमता आई, नवीनता आई। 1920 ई. तक खड़ीबोली-कविता पर्याप्त सक्षम, कल्पनाप्रवण एवं बंकिम हो चुकी थी। स्वच्छन्दतावादी कविता आदर्शवादी कविता का सहज एवं प्रसन्न विकास है, प्रतिक्रिया का प्रतिफलन अथवा विद्रोह का विस्फोट नहीं।

राष्ट्रकाव्य

सुधारवादी युग में प्रारम्भ राष्ट्रकाव्य आदर्शवादी युग में विकसित होता चला गया तथा भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन इत्यादि के योग्य उत्तराधिकारी मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी इत्यादि ने उसे व्यापकतर राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया। मैथिलीशरण की 'भारत-भारती' (1912 ई.) तो अपूर्व लोकप्रिय स्वातन्त्र्य-भारती ही बन गई! राष्ट्रकाव्य का नायक स्वयं राष्ट्र होता है; अतः उसका स्वरूप अनायास ही विशद एवं विस्तीर्ण हो जाता है। भारतवर्ष संसार की प्राचीनतम संस्कृति, धर्म, दर्शन एवं साहित्य से सम्पन्न जीवन्त देश है, अतः यहाँ जैसा राष्ट्रकाव्य रचा जा सकता है वैसा संसार में अन्यत्र नहीं। भारत के प्राचीन साथी मिस्र, इराक़ (आर्यक, मैसोपोटामिया या प्रचीनतर सुमेरु या सुमेरिआ), यूनान (ग्रीस), चीन, ईरान (आर्यासन) इत्यादि की संस्कृतियाँ छिन्न-भिन्न हो चुकी हैं क्योंकि कहीं मोहम्मदीयत ने सब-कुछ तहस-नहस कर दिया, कहीं ईसाइयत ने, कहीं ईश्वर-आत्मा-हीन एवं अमनोवैज्ञानिक मार्क्सवाद ने। ईसाइयत और मोहम्मदीयत तो अपने अनुयायियों के नाम तक बदल देती हैं। उनके पूर्वज भी बदल जाते हैं! मार्क्सवाद प्राचीन गौरव-गरिमा के शव पर खड़ा होकर ही तांडव-नृत्य कर सकता है। अतः मिस्र, इराक़, ईरान या यूनान, इटली (रोम सहित) या चीन प्रभावी एवं प्रकृष्ट राष्ट्रकाव्य नहीं रच सके। प्राचीन या तो कुफ़्र है या असभ्य! नया कुछ ख़ास है नहीं! अरब इत्यादि के पास मोहम्मदीयत के अलावा और है ही क्या जो लिखा जाए? अब रहे अभी कल राष्ट्र बननेवाले अमेरिका, रूस इत्यादि—वे लिखें भी तो क्या लिखें? लिखने को धरा ही क्या है? अतः भारतीय राष्ट्रकाव्य संसार में सर्वश्रेष्ठ है जिसकी ऋग्वेद[1], अथर्ववेद[2], रामायण, महाभारत, कुमारसम्भवम् इत्यादि से भारतवासी, पथिक, मौर्यविजय, हिमकिरीटिनी, रेणुका इत्यादि एक प्रसरित परम्परा की कहीं कोई तुलना नहीं। अथर्वा भारत के आदि-राष्ट्रकवि थे, जिनके 'वंशजों' में वाल्मीकि, कालिदास, चन्द्रवरदायी, तुलसीदास, भूषण, भारतेन्दु, वंकिम, भारती, वल्लत्तोल, मैथिलीशरण, दिनकर इत्यादि-इत्यादि सम्मिलित हैं। आदर्शवादी युग के राष्ट्रकाव्य के प्रमुख वर्ण्य अतीत-गौरव, गौरव-पुनरस्थापन, स्वातन्त्र्य-प्राप्ति-आह्वान, राष्ट्रीय एकता, मानवतावाद, पतनाश्रु, भाषा-प्रतिष्ठापन, प्रकृतिसम्पदानिरूपण इत्यादि हैं। निस्सन्देह, आदर्शवादी युग का राष्ट्रकाव्य समग्र हिन्दी-साहित्येतिहास में अप्रतिम है, 'न भूतो भविष्यति' का प्रतीक है, जिसके स्तम्भ आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा नाथूराम शर्मा 'शंकर', हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पांडेय, गोपालशरणसिंह, जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी', श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' इत्यादि हैं। आदर्शवादी युग के अनुपम राष्ट्राकाव्य की कुछ उत्कृष्ट बानगियाँ पेश हैं :

1. जिसको न जिन गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है।

2. जै जै प्यारे हमारे, तीन लोक में सबसे न्यारे,
हिमगिरि-मुकुट मनोहर धारे, जै जै सुभग सुवेश।
तुझ पर हम निसार हो जावें, तेरी रज हम शीश चढ़ावें,
जगत-पिता से यही मनावें, होवे तू देशेश....।
हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यश गावें सब भाई-भाई,
सबके-सब तेरे शैदाई फूलो-फलो स्वदेश![3]

---

[1] "उपसर्प मातरं भूमिम्।" "अहं राष्ट्री संगमनी।"

[2] बलं राष्ट्रे दधातूत्तमे। (अथर्ववेद का भूमि-सूक्त विश्व के मातृभूमि-प्रेम का आदिकाव्य है। इस 63 मन्त्रों के विशालसूक्त के द्रष्टा-कवि अथर्वा हैं जिनके अधिकांश सृजन के कारण ही इस वेद का नामकरण अथर्ववेद किया गया। वैसे, अथर्ववेद का अर्थ 'न हिलनेवाला ज्ञान' अर्थात् 'अटल ज्ञान' भी है।)

[3] अक्टूबर, 1920

3. माता है जैसी पूज्य सुनो हे भाई! भाषा है उसी प्रकार महामुददायी।
माता से पूज्य विशेष देशभाषा है, मिथ्या यह हमने वचन नहीं भाखा है।
माता से जग के बीच जन्म मिलता है, भाषा से सब व्यवहार सदा चलता है।[1]

—आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी

4. देशभक्त वीरो! मरने से नेक नहीं डरना होगा,
प्राणों का बलिदान देश की वेदी पर करना होगा।

—शंकर

5. क्या लहू रगों में रंग नहीं है लाता, क्या है न कपिल, गौतम, कणाद् से नाता,
क्या नहीं गीत गीता का जी उमगाता, क्या है न मदनमोहन[2] का वचन रिझाता?
मुख-लाली रख लो ऐ माई के लालो! घर देखो-भालो, सम्हलो और सम्हालो।

—हरिऔध

6. अन्धकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है, मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है।
जहाँ नहीं साहित्य वहाँ आदर्श कहाँ है? जहाँ नहीं आदर्श वहाँ उत्कर्ष कहाँ है?

—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

7. जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधर नहीं
वह हृदय नहीं है, पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं

—सनेही[3]

8. नीलांबर-परिधान हरित-पट पर सुंदर है, सूर्य-चंद्र युग-मुकुट, मेखला रत्नाकर है;
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल-तारे मंडन हैं, वंदीजन खगवृंद, शेष-फन सिंहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेश की, हे मातृभूमि! तू सत्य ही सगुण-मूर्ति सर्वेश की।

—मैथिलीशरण गुप्त

9. ....ऐ लाजपत! अकेले अब फूट-फूट रोओ, रोओ ऐ मुल्क! रोओ, जी भर के आज रोओ।
हम मंदभाग्य सारे बह जायँ आँसुओं में। ऐसा रतन गँवा के चुप कौन रह सकेगा?
प्यारे तिलक! कहा हो? प्यारे तिलक! कहाँ हो? रो-रो पुकारते हैं, प्यारे तिलक कहाँ हो?

—रामनरेश त्रिपाठी

10. शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मिटनेवालों का यही बाक़ी निशाँ होगा।[4]

—जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'

11. विजयी विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा!
सदा शक्ति बरसानेवाला, प्रेम-सुधा सरसानेवाला,
वीरों को हर्षानेवाला, मातृभूमि का तन-मन सारा...

—श्यामलाल गुप्त 'पार्षद'

---

[1] नागरी (हिन्दी) की प्रार्थना, 15 मई, 1899

[2] कृष्ण और अपने समय के अंग्रेज़ी, हिन्दी, संस्कृत एवं उर्दू के महान् वक्ता महामना मदनमोहन मालवीय जिनके दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की दुर्दशा पर भाषण से लॉर्ड हार्डिगज रो पड़ा था ('हार्ड' का अर्थ कठोर होता है)!

[3] गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' (ओजस्वी कविताओं का 'त्रिशूल' उपनाम चला नहीं)।

[4] शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले, वतन पर मरने वालों का यही बाक़ी निशाँ होगा।

रामकाव्य

संक्रान्तिकाल से ही अप्रतिहत रूप से प्रवाहित रामकाव्यधारा का आदर्शवादी युग में जैसा विकास हुआ वैसा पुनरुत्थानकाल के अतिरिक्त किसी काल या युग में नहीं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के भावात्मक-निबन्ध 'कवियों की ऊर्मिलाविषयक उदासीनता' ने हिन्दी-साहित्य के रामकाव्य की दिशा ही बदल दी और उपेक्षित पात्राओं पर विशेषतः एवं अन्य पात्रों पर सामान्यतः ऐसा सृजन हुआ जो विस्मयकारी है तथा जिसकी परम्परा अद्यावधि जीवन्त है। अचार्य के चरणों में बैठकर 'सरस्वती'-साधना करनेवाले मैथिलीशरण ने 'साकेत' (1931 ई.) में ऊर्मिला एवं 'पंचवटी' (1925 ई.) में लक्ष्मण को नायक बनाया, जिसका अनुकरण आज तक हो रहा है, तथा यह अनुकरण प्रायः आचार्यप्रेरित एवं गुप्त-अनुप्राणित परिपाटी पर ही चला आ रहा है, जिसके परिणाम हैं 'साकेत-सन्त' (बलदेवप्रसाद मिश्र), 'ऊर्मिला' (बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'), 'कैकेयी' (केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'), 'समरप्रिया' (श्रीकृष्ण मिश्र), 'मांडवी महाशया' (ओउम्प्रेमी), 'ओ अहल्या' (रामकुमार वर्मा), 'अहल्या' (प्रभा खेतान), 'अभिशप्त शिला' (चन्द्रिकाप्रसाद दीक्षित), 'अहल्योद्धार' (दयानन्द जड़िया 'अबोध'), 'सुमित्रा' (लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'), 'कोशलेन्दु भरत' (परमानन्द जड़िया), 'जय गीधराज' (भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश') इत्यादि। 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता) एवं 'जलसमाधि से पूर्व' (बालकृष्ण मिश्र) जैसे आधुनिकता के विशेष आग्रह से प्रेरित खंडकाव्य भी गुप्त के "राम! तुम मानव हो?" प्रश्न के उत्तर-से ही लगते हैंफ्र आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का 'कवि-कर्तव्य' आलेख समूचे आदर्शवादी युग की कविता का घोषणापत्र तो बना ही, भावी युगों का प्रेरणास्रोत भी बन गया; लगभग इसी प्रकार उनका 'कवियों की ऊर्मिलाविषयक उदासीनता' सृजन का अनन्त उत्स बन गया। संसार-साहित्य के इतिहास में 'कवि-कर्तव्य' एवं 'कवियों की ऊर्मिलाविषयक उदासीनता' आलेखों के नानायुगगामी प्रभाव की कोई तुलना नहीं प्राप्त होती। यद्यपि 'साकेत' का प्रकाशन 1931 ई. में हुआ तथापि इसका समारंभादि आदर्शवादी युग (1900-20 ई.) में हुआ था (नवम् सर्ग के विस्तार में ही विशेष समय लगा) तथा अपने 'समग्र' में गुप्तजी इसी युग के कवि हैं। इसी प्रकार हरिऔध कृत 'वैदेही-वनवास' का प्रकाशन 1940 ई. में हुआ था किन्तु इसका उल्लेख 'प्रियप्रवास' (1914 ई.) की भूमिका में भी है तथा हरिऔध भी इसी युग के कवि हैं। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने 'राम-रावण-विरोध' (1906 ई.) रचकर रामकाव्य में योगदान किया। रामचरित उपाध्याय ने 'रामचरित-चन्द्रोदय' एवं 'रामचरित-चिन्तामणि' रचकर एक उल्लेखनीय रामकाव्यकार का गौरव प्राप्त किया।

आदर्शवादी युग का रामकाव्य कोरा-रामकाव्य या पारम्परिक-रामकाव्य न होकर नव्य-रामकाव्य या क्रान्त-रामकाव्य है जिसमें राम इत्यादि के मानव-रूप को अधिक सँवारा-निखारा गया है, उनके पतितपावन एवं दीनबन्धु रूपों को अधिकाधिक उजागर किया गया है, उनके चरित एवं चरित्र को यथार्थ से जोड़ा गया है; और-तो-और, उनके अन्तर्द्वन्द्व तक का स्पर्श किया गया है; तथा यह सब परवर्ती प्रेरित-प्रभावित कवियों ने और अधिक विकसित-विवेचित किया है। कैकेयी इत्यादि के संवेदनशील मनोवैज्ञानिक चरित्र चित्रण की जो परिपाटी मैथिलीशरण गुप्त ने चलाई थी उस पर 'प्रभात' इत्यादि ने स्वतन्त्र सृजन किया, रामकुमार वर्मा इत्यादि ने अहल्या के चरित्र चित्रण को विकसित किया, नरेश मेहता एवं बालकृष्ण मिश्र इत्यादि ने स्वयं को राम से संपृक्त किया। संसार-साहित्य में रामकाव्य-जैसी गरिमा एवं महिमा, मूल्यस्फीति एवं पूर्णताप्रतीति कहीं नहीं मिलती; इसीलिए राम पर अनवतर साहित्य-सर्जना होती चली आ रही है—ऐसी जैसी किसी अन्य पर नहीं। आदर्शवादी युग के रामकाव्य में संवेदन एवं आदर्श की नई भंगिमाएँ प्राप्त होती हैं। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या? विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या?
   तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे; तुम न रमो तो मन तुम में रमा करे।

2. सास-ससुर की स्नेह-लता—बहन ऊर्मिला महाव्रता,
   सिद्ध करेगी वही यहाँ; जो मैं भी कर सकी कहाँ?

3. सबने रानी की ओर अचानक देखा, वैधव्य-तुषारावृता यथा विधु-लेखा।
   बैठी थी अचल तथापि असंख्य-तरंगा, वह सिंही अब थी हहा! गोमुखी गंगा—"....
   "सौ बार धन्य वह एक लाल की माई, जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई।"
   पागल-सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई—"सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।"

(साकेत)

4. किस व्रत में है व्रती वीर यह निद्रा का यों त्याग किए,
राजभोग्य के योग्य विपिन में बैठा आज विराग लिए?
बना हुआ है प्रहरी जिसका उस कुटीर में क्या धन है,
जिसकी रक्षा में रत इसका तन है, मन है, जीवन है?
(पंचवटी)—मैथिलीशरण गुप्त

5. हम खिन्न ऊर्मिला ने है जो सहन-शक्ति दिखलाई,
जिसकी सुध आते, मेरा—दिल हिला, आँख भर आई।
(वैदेही-वनवास)—हरिऔध

6. ईश्वर का अवतार वही जो तारे जग को, विकसित जो कर सके परिष्कृत वैदिक मग को।
राम, आपके काम सदा ऐसे होते थे, ईश आपको समझ सभी सुख से सोते थे।

7. "सुन, कपे! यम, इंद्र, कुबेर की न हिलती रसना मम सामने,
तदपि आज मुझे करना पड़ा मनुज-सेवक से बकवाद भी।
यदि, कपे! मम राक्षस-राज का स्तवन है तुझसे न किया गया,
कुछ नहीं डर है, पर क्यों वृथा, निलज! मानव-मान बढ़ा रहा।"
(रामचरित-चिन्तामणि) —रामचरित उपाध्याय

कृष्णकाव्य

आदर्शवादी युग में कृष्णकाव्य का भी उत्कृष्ट सृजन हुआ। यद्यपि हरिऔध-प्रणीत रस-परिपुष्ट 'प्रियप्रवास' (जो अतुकान्त एवं संस्कृत के द्रुतविलम्बित, मन्दाक्रान्ता, मालिनी, वंशस्थ, शार्दूलविकीडित प्रभूति वर्ण-वृत्तों में रचा गया है) आदर्शवादी युग के कृष्णकाव्य का सर्वोत्तम ग्रन्थ है तथापि इस युग के कृष्णकाव्य के सर्वोपरि कवि मैथिलीशरण गुप्त ही हैं जिन्होंने महाभारतपरक खंडकाव्य 'जयद्रथवध' (1990 ई.) एवं भागवतपरक खंडकाव्य 'द्वापर' (1936 ई.) के द्वारा लोकरक्षक एवं लोकरंजक कृष्णद्वय का सम्पूर्ण चित्रण करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की—उनका 'जयभारत' (1952 ई.) तो 'आधुनिक महाभारत' है ही जिसमें आदर्शवादी युग एवं स्वच्छन्दतावादी युग में रचित खंडकाव्यों इत्यादि का समाहार भी कर दिया गया है। 'नहुष', 'योजनगन्धा', 'हिडिम्बा', 'वक-संहार', 'वन-वभव', 'सैरंध्री' प्रभृति काव्य आदर्शवादी युग अथवा आसपास की कृतियाँ ही हैं। निस्सन्देह, 'जयभारत' खड़ीबोली का एक स्फीत एवं उल्लेख्य महाकाव्य है। यद्यपि प्रायः वर्णनात्मक होने के कारण उसके भावपक्ष एवं कलापक्ष 'साकेत' के सदृश गहन एवं आकर्षक नहीं हैं, तथापि वह विस्तार एवं वर्णन-विभूति में सर्वथा प्रशस्य है। प्रियप्रवास की प्रांजल भाषा एवं सफल रस-निष्पत्ति तो उसे साकेत से भी श्रेष्ठतर सिद्ध कर देती है। आदर्शवादी युग का कृष्णकाव्य पारम्परिक मात्र न होकर नव्यता-निष्पन्न भी है। हरिऔध ने कृष्ण को एक लोकरक्षक-लोकरंजक महापुरुष के रूप में चित्रित किया है।[1] मैथिलीशरण ने कृष्णकाव्य की उत्तरा, विधृता (भागवत के विशेषण को विशेष्य बनाते हुए), कुब्जा, योजनागन्धा, हिडिंबा इत्यादि उपेक्षित पात्राओं एवं एकलव्य[2], युयुत्सु[3] इत्यादि उपेक्षित पात्रों की प्रतिष्ठा कर नूतन आयामों का उद्घाटन किया है।

आदर्शवादी युग के व्रजभाषा सृजन में भी कृष्णकाव्य का भव्य रूप दृग्गत होता है। यदि महाकवि रत्नाकर कृत 'उद्धवशतक' बीसवीं सदी का भ्रमरगीत है, तो सत्यनारायण कविरत्न का 'भ्रमरदूत' देशभक्ति की नव्यता से ओतप्रोत है।

कुल मिलाकर आदर्शवादी युग का कृष्णकाव्य अत्यन्त सरल है, जिसके प्रियप्रवास, जयद्रथवध, द्वापर, जयभारत, उद्धवशतक, भ्रमरदूत जैसे ग्रन्थ सदैव सम्मान पाते रहेंगे। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कल कुवलय के से नेत्रवाले रसीले। वररचित फबीले पीत कौशेय शोभी।
गुणगण मणिमाली मुंजभाषी सजीले। वह परम छबीले लाडिले नंदजी के।।

---

[1] तुलसीदास शर्मा 'दिनेश' के 'पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण' महाकाव्य में भी ऐसा ही है, किन्तु यह सरस नहीं है।

[2] डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य' काव्य रचा है। कई अन्य कवियों ने भी।

[3] अंधयुगकवि स्व. डॉ. धर्मवीर भारती के 'अन्धा युग' गीतिनाट्य में युयुत्सु को महत्त्व प्रदान किया गया है।

यदि कल मथुरा को प्रात ही जा रहे हैं। बिन मुख अवलोके प्राण कैसे रहेंगे?
युग सम घटिकाएँ वार की बीतती थीं। सखि! दिवस हमारे बीत कैसे सकेंगे।

2. प्रिय-पति! वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है। दुख-जलधि निमग्ना का सहारा कहाँ है।
अब तक जिसको मैं देख के जी सकी हूँ। वह हृदय हमारा नेत्र-तारा कहाँ है।।
प्रति पल जिसके मैं पंथ को देखती थी। निशि दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती।
उर पर जिसके हे सोहती मंजु माला। वह नवनलिनी से नेत्रवाला कहाँ है।।
प्रियप्रवास—हरिऔध

3. निश्चेष्ट होकर बैठ रहना यह महादुष्कर्म है, न्यायार्थ अपने बंधु को भी दंड देना धर्म है।
(जयद्रथवध)

4. धनुर्बाण या वेणु लो श्याम-रूप के संग। मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग।।

5. वेदमार्गियों में आ पहुँचा, यह निर्वेद कहाँ से?
लौटा ले जाओ, हे उद्धव! लाए इसे जहाँ से। (द्वापर)

6. मनुज-मानस में तरंगित बहु विचारस्रोत, एक आश्रय, राम के पुण्याचरण का पोत।
नमो नारायण, नमो नर-प्रवर पौरुष-केतु, नमो भारति देवि, वन्दे व्यास, जय के हेतु![1]

7. आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तौपै, ऊधौ! ये बियोग के बचन बतरावौ ना।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ, दुख दरिबे कौ; तौपै अधिक बढ़ावौ ना।।
टूक-टूक हैहै मन-मुकुर हमारौ हाय, चूकि हूँ कठोर-बैन-पाहन चलवौ ना।
एक मनमोहन तो बसिकै उजार्‌यो मोहिं, हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना।।

8. कर-बिनु कैसै गाय दूहिहै हमारी वह, पद-बिनु कैसै नाचि थिरकि रिझाइहै।
कहै रतनाकर बदन-बिनु कैसैं चाखि, माखन, बजाइ बेनु, गोधन गवाइहै[2]।।
देखि-सुनि कैसैं दृग-स्रवनि बिनाहीं हाय, मेरे ब्रजबासिनि की बिपति बराइहै।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म, ऊधौ! कहौ कौन धौं हमारैं काम आइहै।।
(उद्धवशतक)

9. अलबेली कहुँ बेलि द्रुमन सों लिपटि सुहाई। धोए-धोए पातन की अनुपम कमनाई।।
चातक, सुक, कोमल ललित बोलत मधुरे बोल। कूकि-कूकि केकी कलित कुंजन करत कलोल।।
निरखि घन की घटा। लखि यह सुषमा-जाल लाल निज बिन नँदरानी[3]।
हरि सुधि उमड़ी घुमड़ी तन उर अति अकुलानी।
सुधि बुधि तजि, माथौ पकरि, करि करि सोच अपार।
दृगजल मिस मानहुँ निकरि बही बिरह की धार।।
कृष्ण रटना लगी।
कौने भेजों दूत, पूत सों बिथा सूनावै।
बातन में बहराइ जाइ ताको यह लावै।।
त्यागि मधुपुरी को गयो, छाँड़ि सबन के साथ।
सात समुंदर पै भयो दूर द्वारकानाथ[4]।।
जाइगो को उहाँ।

---

[1] 'जय' (जिसे 'महाभारत' कहा जाता है) के प्रत्येक पर्व का आदि इस श्लोक से होता है :
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्।।
'नर' एवं 'नरोत्तम' क्रमशः अर्जुन एवं कृष्ण हैं (यद्यपि मुझे नारायण विष्णु एवं नरोत्तम कृष्ण लगते हैं)।

[2] चराइहै (चराएगा)।

[3] सत्यनारायण कविरत्न के 'भ्रमरदूत' में सन्देश यशोदा भेजती हैं; जिसमें देश की कवि-समय-दशा का हृदयद्रावक निरूपण भी है।

[4] यशोदा द्वारिका के कृष्ण को सन्देश भेजती है; मथुरा के कृष्ण को नहीं (जो व्रत के अत्यन्त निकट है)। द्वारिका ''सात समुन्दर पार'' तो नहीं है, पर 'समुन्दर' के किनारे या व्रज से बहुत दूर अवश्य है अतः 'समुन्दर' का प्रयोग सार्थक है और मुहावरे का प्रयोग तो है ही!

नित न परत अकाल, काल को चलत चक्र चहुँ। जीनव को आनंद न देख्यो जात यहाँ कहुँ।
बढ़्यो यथेच्छाचारकृत जहँ देखौ तहँ राज।। होत जात दुर्बल विकृत दिन-दिन आर्य-समाज।।
दिनन के फेर सों। (भ्रमरदूत)
—सत्यनारायण कविरत्न

प्रकृतिकाव्य

हिन्दी का प्रकृतिकाव्य अतीव सम्पन्न है। विद्यापति, सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, मतिराम, सुखदेव, देव, पद्माकर, रत्नाकर, हरिऔध, मैथिलीशरण, प्रसाद इत्यादि ने मनोहरी उद्दीपनात्मक- प्रकृतिचित्रण किए हैं। तुलसी, द्विजदेव, जगमोहनसिंह, श्रीधर पाठक, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, लोचनप्रसाद पांडेय, मुकुटधर पांडेय, सियारामशरण गुप्त, निराला, पन्त, अज्ञेय इत्यादि ने प्रभावी आलम्बनात्मक-प्रकृतिचित्रण किए हैं और पन्त का प्रकृतिकाव्य तो प्रत्येक दृष्टि से विश्वस्तरीय है। कबीर, तुलसी, रहीम, वृन्द, दीनदयाल गिरि इत्यादि ने प्रेरक उपदेशात्मक-प्रकृतिचित्रण किए हैं और दीनदयाल गिरि तो अपने ढंग के अनूठे कलाकार हैं। केशव, देव, पद्माकर इत्यादि ने आकर्षक अलंकृत-प्रकृतिचित्रण किए हैं, जिनकी कला चमत्कृत किए बिना नहीं रहती। जायसी, तुलसी (एकाध ही सही), देव, निराला, पन्त इत्यादि ने गम्भीर रहस्यात्मक-प्रकृतिचित्रण किए हैं जो अद्वैतसंगीत से प्राण शीतल कर देते हैं।

आदर्शवादी युग की कविता में प्रकृतिचित्रण का स्तर अतीव उत्कृष्ट है। श्रीधर पाठक एवं लोचनप्रसाद पांडेय ने उच्चकोटि के आलम्बनात्मक-प्रकृतिचित्रण किए हैं, जिनकी मौलिकता एवं मार्मिकता अद्वितीय है। मैथिलीशरण गुप्त एवं रामनरेश त्रिपाठी ने 'जयद्रथवध' एवं 'पथिक' में जो अनमोल प्रकृतिचित्रण किया है वह स्थूल दृष्टि से उद्दीपनात्मक लगते हुए भी वस्तुतः आलम्बनात्मक या स्वतन्त्र जैसा है। रामनरेश त्रिपाठी के प्रकृतिचित्रण में वर्ड्सवर्थ की सी दार्शनिकता के दर्शन भी होते हैं (जिसका चरम उत्कर्ष पन्त में हुआ है)। वे प्रकृति-अम्लानता एवं मानव-म्लानता के विपर्यय से क्षुब्ध हैं। मुकुटधर पांडेय एवं सनेही के प्रकृतिचित्रण में राज्य के वे संकेत भी दृग्गत होते हैं जो निराला, पन्त एवं महादेवी में विकसित हुए। राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' एवं रूपनारायण पांडेय ने भी सुन्दर प्रकृतिचित्रण किए हैं। हिन्दी के प्रकृतिकवियों में लोचनप्रसाद पांडेय का स्थान बहुत ऊँचा है। उनका प्रकृतिचित्रण मौलिकता एवं मार्मिकता का प्रयाग है। मेरी दृष्टि में, आदर्शवादी युग के प्रकृतिकाव्यकारों में लोचनप्रसाद पांडेय अग्रणी हैं। उनका तरु-लता-तादात्म्य एवं पशु-पक्षी-संवेदन अद्वितीय है। आज के पर्यावरण-प्रदूषण के युग में उनकी कविता सृजन के समय से भी अधिक मूल्यवान लगती है।

आदर्शवादी युग के उत्कृष्ट प्रकृतिकाय के कतिपय निदर्शन प्रस्तुत हैं :

1. विजन वन-प्रांत था, प्रकृति-मुख शांत था, अटन का समय था, रजनि का उदय था।
प्रसव के काल की लालिमा में लसा बाल-शशि व्योम की ओर था आ रहा।
सद्य उत्फुल्ल-अरविंद-नभ नील सुविशाल नभवक्ष पर जा रहा था चढ़ा। (सांध्य अटन)

2. इस भारत में वन! पावन तू ही तपस्वियों का तप आश्रम था।
जगतत्व की खोज में लग्न जहाँ ऋषियों ने अमग्न किया श्रम था।।
जब प्राकृत विश्व का विभ्रम और था, सात्विक जीवन का क्रम था।
महिमा वनवास की थी तब और, प्रभाव पवित्र अनुपम था। (वन)
—श्रीधर पाठक

3. देख तब वैभव, द्रुमकुल-संत! विचारा उसका सुखद निदान।
करे जो विषम काल की मंद गया गया उस सामग्री पर ध्यान।
रँगा निज प्रभु ऋतुपति के रंग, द्रुमों में अमल्ताश! तू भक्त।
इसी कारण निदाघ-प्रतिकूल दहन में तेरे रहा अशक्त।। (अमल्ताश)
—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

4. दिवस का अवसान समीप था। गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती। कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।।
विपिन बीच विहंगम-वृन्द का। कलनिनाद विवर्द्धित था हुआ।
ध्वनिमयी-विविधा विहगावली। उड़ रही नभ-मंडल मध्य थी।।
झलकने पुलिनों पर भी लगी। गगन के तल की यह लालिमा।
सरि सरोवर के जल में पड़ी। अरुणता अति ही रमणीय थी। (प्रियप्रवास)

5. स्वाति-घटा घहराति मुक्त-पनिप सौं पूरी। कैधौं आवित झुकति सुभ्र-आभा-रुचि रूरी।।
मीन-मकर-जलब्यालनि की चल चिलक सुहाई। सो जनु चपला चमचमाति चंचल-छबि-छाई।।...
छहरावति छबि कबहुँ कोऊ सित सघन घटा पर। फबति फैलि जिमि जोन्ह-छटा हिम-प्रचुर-पटा पर।।
तिहि घन पर लहराति लुरति चपला जब चमकै। जल-प्रतिबिंबित दीप-दाम दीपति सी दमकै।।...
उड़ति फुही की फाब फबति फहरति छबि-छाई। ज्यौं परबत पर परत झीन बादर दरसाई।।
तरनि-किरन तापर बिचित्र बहु रंग प्रकासै। इंद्रधनुष की प्रभा दिव्य दसहूँ दिसि भासै।।...
कहुँ क्रीड़त करि-निकर तरंगनि मैं सुख सरसत। मनु कलिंद के सिखर-बृंद सित-घन-बिच दरसत।।
कहुँ कपि लटकत नीर अटकि तट बिलुलित डारनि। बालखिल्य[1] मनु लहत सु तप-संचित सुख सारनि।।

(गंगावतरण) —जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

6. सखि! निरख नदी की धारा,
ढलमल ढलमल चंचल चंचल, झलमल झलमल तारा।
निर्मल जल अंतस्तल भर के, उछल उछल कर छल छल कर के,
थल थल तर के, कल कल धर के बिखराती है पारा।....

—मैथिलीशरण गुप्त

7. रहती जहाँ साल रसाल तमाल के पादपों की अति छाया घनी।
चर के तृण आते, थके वहाँ बैठते थे मृग औ उसकी घरनी।
पगुराते हुए, दृग मूँदे हुए, वे मिटाते थकावट थी अपनी।
खुर से कभी कान खुजाते, कभी सिर सींग पै धारते थे टहनी।।

(मृगीदुःखमोचन)

8. सुमन विटप बल्ली काल की क्रूरता से।
झुलस जब रही थीं ग्रीष्म की उग्रता से।।
उस कुसमय में हा! भाग्य-आकाश तेरा।
अयि नव लतिके! था घोर अपत्ति घेरा।।
अब तब बुझता था जीवनालोक तेरा।
यह लख उर होता दुःख से दग्ध मेरा।। हा लतिके

—लोचनप्रसाद पांडेय

9. छूता हुआ गाँव की सीमा अति निर्मल जल वाला।
बहता है अविराम निरंतर कल-कल स्वर से नाला।।
अनति दूर पर हरियाली से लदी खड़ी गिरिमाला।
किंतु नहीं इससे हृदयों में है आनंद-उजाला।। (पथिक)

—रामनरेश त्रिपाठी

---

[1] बालखिल्य उल्टे लटककर तप करते थे।

10. अहह! अधम आँधी, आ गई तू कहाँ से?
प्रलय घन घटा सी छा गई तू कहाँ से?
पर-दुख-सुख तूने, हा! न देखा न भाला।
कुसुम अधखिला ही, हाय! यों तोड़ डाला।। (दलित कुसुम)

11. वन बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में एक कपोत-कपोती कहीं।
दिन-रात न एक को दूसरा छोड़ता, ऐसे हिले-मिले दोनों वहीं।।
बढ़ने लगा नित्य नया-नया नेह, नई-नई कामना होती रहीं।
कहने का प्रयोजन है इतना, इनके सुख की रही सीमा नहीं।। (वन-विहंगम)—रूपनारायण पाण्डेय

आदर्शवादी युग के प्रकृतिकाव्य में संवेदन के नए-नए आयाम खुले—वन, वृक्ष, लता, मृग, कपोत इत्यादि के प्रति गहरी आत्मीयता में अद्वैत-संगीत गहनतर हो गया। पारम्परिक वर्णन भी गतिशील रहे। गुण एवं परिमाण में इस युग का प्रकृतिकाव्य बौद्धिककाल के किसी भी युग के पीछे नहीं लगता, भले ही कला में स्वच्छन्दतावादी प्रकृतिकाव्य आगे हो। आ. शुक्ल के 'शुष्क इतिवृत्तात्मकता' के निराधार आत्मपरक-आरोपण, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा इसी से अभिभूत प्रभाववादी प्रत्याख्यान एवं डॉ. नगेन्द्र की संस्कारगत स्वच्छन्दतावादी अभिरुचि में बद्धता के कारण इस महान् युग के काव्य का सम्यक् आकलन नहीं हो सका। इन आलोचकों के त्वराजन्य आत्मपरक निष्कर्ष विकास-दर्शन पर ध्यान न देने के कारण अपेक्षित संवेदन से विपन्न रह गए हैं। वस्तुवादी दृष्टि से इनकी आलोचना यत्र-तत्र निराधार एवं भ्रामक तक हो गई है। इसीलिए, मैंने पर्याप्त उदाहरण दिए हैं जिससे पाठक आलोच्य के सत्य का साक्षात्कार स्वयं ही कर सकें।

रहस्यकाव्य

जीव, जगत् एवं जगन्नियन्ता के पारस्परिक निगूढ़ सम्बन्धों की ललित अभिव्यक्ति रहस्यकाव्य कहलाती है। आत्मा-परमात्मा तथा प्रपच-परमात्मा के बीच बेतार-के-तार के संवाद-सम्बन्ध चिरन्तर हैं, अतः रहस्यकाव्य भी चिरन्तन है। भारत रहस्यकाव्य का आदिदेश है, जहाँ विश्व के आदिग्रन्थ ऋग्वेद में प्रकृति के अवयवों के बीच मधुर सम्बन्धों की अवधारणा में रहस्यकाव्य की आदिसृष्टि हुई थी, जो अद्यावधि उपलब्ध है :

1. कस्त उषः! कधप्रिये! भुजे मर्तो अमर्त्ये? कं नक्षसे विभावरि? (शुनःशेप, ऋग्वेद 1/30/20)[1]

2. अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा विभर्ति परमे व्योमन्।
चरत् प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत् पक्षे हिरण्मये स व्योमः।।
नाके सुपर्णमुप यत् पतन्तं हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा।
हिरण्यपक्षं वरुणस्य दूतं यमस्य योनौ शकुनं भुरण्युम्।।
(भार्गव वेन, ऋग्वेद 10/123/5-6)[2]

3. अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत, विश्वदेवैः।
अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नी अहमश्विनोभा।।
(वाक् ऋषिका, ऋग्वेद 10/125/1)[3]

---

[1] हे कथनप्रिय, अमर उषा! तुम्हारे सम्भोग के लिए कौन मनुष्य है? हे प्रभाव-सम्पन्न! तुम किसे प्राप्त होगी? बिहार के प्रख्यात कवि डॉ. रामवरण चौधरी (दुमका) ने उषा पर 'ऋतावरी' शीर्षक श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य रचा है।

[2] विद्युत् एक अप्सरा है और वेन उसके पति हैं। विद्युत् ने वेन को देखकर, मन्द मुस्कान करते हुए, उनका आलिंगन किया। वेन प्रेमी नायक के समान प्रेयसी विद्युत् की रति-कामना पूर्ण करके सुवर्णमय पक्ष अथवा मेघ में सो गए। वेन! तुम स्वर्ग में उड़नेवाले पक्षी के समान हौ। तुम्हारे दोनों पक्ष स्वर्णमय हैं। तुम वरुण के दूत हो। तुम संसार के भरणपोषणकारी पक्षी के समान हो। सब तुम्हारा दर्शन करते हैं और अन्तःकरण में तुम्हारे प्रति प्रीति धारण करते हैं।

[3] मैं रुद्र, वसु, आदित्य एवं विश्वदेवगण के रूप में विचरती हूँ। मैं ही मित्र और वरुण दोनों को, इन्द्र और अग्नि को एवं अश्विनीकुमार-बन्धुद्वय को धारण करती हूँ।

'क्वासि? तथा "कस्मै देवाय?" रहस्यवाद के आदि-सूत्र हैं। ऋग्वेद से रवीन्द्र तक, अथर्वा से अज्ञेय तक भारत में शत-शत रहस्यवादी-नवरहस्यवादी हुए हैं। विद्यापति, सूर, तुलसी, देव इत्यादि स्पष्ट-अध्यात्मवाद-मर्मियों तक में रहस्यवाद के दर्शन हो जाते हैं; कबीर, नानक, जायसी, महादेवी इत्यादि जाने-माने रहस्यवादियों की तो बात ही क्या! भारत विश्व-रहस्यवाद का प्रेरक रहा है, जहाँ के अद्वैतवाद या सर्ववाद से प्लेटो, ईसा, सूफ़ी-रहस्यवादी, सभी प्रभावित हुए। अतः आ. शुक्ल का रहस्यवाद के पीछे लाठी लेकर दौड़ पड़ना तथा आधुनिक रहस्यवाद को पश्चिम से आयातित मात्र बताना न समीचीन है, न शोभनीय है। प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि शुक्लजी की तुलना में भारतीय चिन्तन के कम मर्मी न थे। शुक्लजी का वैदिक-अध्ययन भी प्रमाणित नहीं होता। वे संकीर्ण-भक्तिवादी थे। आधुनिक रहस्यवाद पर पश्चिम का प्रभाव रवीन्द्र के माध्यम से पड़ा अवश्य है किन्तु वह 'परस्परं भावयन्तः' की स्थिति का है, निरा आयातित नहीं। और, रवीन्द्र तो पीढ़ियों से वेद-वेदान्त में निमज्जित परिवार के दार्शनिक कवि-कलाकार थे जिन्हें गाँधी ने गुरुदेव कहा था—वे 'सर' थे, अमेरिका-यात्रा के सन्दर्भ में ग़दर पार्टी से सम्पर्क की प्रतिक्रिया में डर भी गए थे, उनका 'जन-गण-मन' प्रिंस ऑफ़ वेल्स के स्वागत-हेतु रचित विशुद्ध-चारणगान है, उन्होंने बीसवीं सदी के प्रथम दशक के आसपास बेटी के विवाह में दस हज़ार (आज के पचास लाख) रुपए ख़र्च किए थे[1], यह-सब सत्य है, और वे गंगाजल न थे, किन्तु उनकी गहन मनीषा एवं विशद रहस्य-भावना (जिसके प्रेरक कबीर थे) निरी आयातित नहीं है। आधुनिक हिन्दी-कविता में रहस्यवाद के प्रेरक-तत्त्व वेद, उपनिषद्, कबीर, जायसी और रवीन्द्र हैं, केवल रवीन्द्र नहीं (जिन्होंने कबीर की आत्मा को विद्यापति के शरीर में व्यक्त किया है)।

आदर्शवादी युग की कविता (बक़ौल आ. द्विवेदी) 'सादगी, असलियत और जोश'[2] की कविता है। यह 'सूधो मन, सूधो बचन, सूधी सब करतूति' में रमती है। किन्तु रहस्य की सहज अभिव्यक्ति उसके कवियों में भी प्राप्त होती है :

1. थे, हो और रहोगे तुभ, थी, हूँ और सदैव रहूँगी,
कल निर्मल जल की धारा सी आज यहाँ, कल वहाँ बहूँगी।
2. निकल रही है उर से आह, ताक रहे सब तेरी राह;
चातक खड़ा चोंच खोले है, संपुट खोले सीप खड़ी,
मैं अपना घट लिए खड़ी हूँ, अपनी-अपनी हमें पड़ी। —मैथिलीशरण गुप्त
3. तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ,
तू है महासागर अगम, मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूँद समान हूँ,
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ। —गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'
4. प्रिय की सुध सी ये सरिताएं, ये कानन कांतार सुसज्जित,
मैं तो नहीं, किंतु है मेरा हृदय किसी प्रियतम से परिचित। —रामनरेश त्रिपाठी
5. हुआ प्रकाश तमोमय मग में, मिला मुझे तू तत्क्षण जग में,
दंपति के मधुमय विलास में, शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में,
वन्य कुसुम के शुचि सुवास में था तव क्रीड़ास्थान। (1917 ई.[3])
6. जब संध्या की हट जावेगी भीड़ महान् तब जाकर मैं तुम्हें सुनाऊँगा निजगान,
शून्य कक्ष में अथवा कोने में ही एक बैठ तुम्हारा करूँ वहाँ नीरव अभिषेक। (1920 ई.[4])

—मुकुटधर पाण्डेय[5]

---

[1] 'प्रगतिशील' प्रेमचन्द भी सूद पर रुपए देते थे, बेटी के विवाह में तीसरे दशक के आसपास पाँच हज़ार (आज के बीस लाख) ख़र्च कर सकते थे, उनके दोनों पुत्र (श्रीपतराय एवं अमृतराय) साम्यवादी पूँजीपति थे, किन्तु उनका 'सैद्धान्तिक' दीन-दलित-संवेदन तो प्रशस्य एवं प्रणम्य है ही!

[2] कविता क्या है?

[3] हिन्दी-साहित्य का इतिहास (आ. रामचन्द्र शुक्ल), पृष्ठ 597

[4] वही, पृष्ठ 598

[5] मुकुटधर पाण्डेय की रहस्यवादी कविताओं पर रवीन्द्र की 'गीतांजलि' का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक पड़ा है। स्वच्छन्दतावादी युग में महादेवी पर रवीन्द्र का प्रभाव बहुत पड़ा।

व्रजभाषा-काव्य

आदर्शवादी युग का व्रजभाषा-काव्य समग्र बौद्धिककाल में सर्वश्रेष्ठ है, जिसे आधुनिक व्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (1866-1932 ई.), भावमूर्ति सत्यनारायण कविरत्न (1880-1918 ई.), आधुनिक केशव पं. रामनाथ ज्योतिषी ('जोतिसी'—1874-1953 ई.), लाला भगवानदीन 'दीन' (1866-1930 ई.) जैसे कवियों ने सम्पन्न किया है तथा श्रीधर पाठक (कश्मीर-सुषमा), राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' (संग्राम-निन्दा), नाथूराम शर्मा 'शंकर' ('शंकर-सर्वस्व' जिसमें खड़ीबोली-रचनाएँ भी हैं), हरिऔध (रसकलश), पुरोहित प्रतापनारायण (काव्यकानन) इत्यादि ने भी सँवारा है। यद्यपि परवर्ती युगों में भी श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', 'ब्रजनन्दन', केशवदेव शुक्ल 'केशव', दुलारेलाल भार्गव (दुलारे-दोहावली), वचनेश मिश्र (शबरी), गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, सेवकेन्द्र त्रिपाठी, शंभुदयालसिंह 'सुधाकर' (प्रेमशतक), प्रकाश द्विवेदी इत्यादि व्रजभाषा-कवि हुए तथा हैं; व्रजभाषा-काव्यसृजन आज भी हो रहा है तथा ऐसा होना भी चाहिए; तथापि आदर्शवादी युग के व्रजभाषा-काव्य की समता नहीं—पूर्ववर्ती सुधारवादी युग तक सृजनात्मक मूल्यों में उससे पीछे पड़ जाता है।

आदर्शवादी युग के व्रजभाषा कवियों ने एक ओर पारम्परिक काव्य के सृजन में साफल्य प्राप्त किया है, दूसरी ओर नव्यता को भी उपेक्षित नहीं किया। पारम्परिक काव्यरचना को 'पुराना राग अलापना' कहनेवाले कवि-रुचि की अवहेलना का व्यक्ति-विरोधी अथवा लोकतन्त्र-विरोधी कार्य करते हैं। कवि कैसा लिखे? इसका अधिकार केवल उसे है। कविता का युगनिष्ठ होना ही अलम् नहीं है। थोपी-थापी जीवन-प्रणाली से रूस और चीन तक ऊब चुके हैं। थोपा-थापा काव्य-दर्शन नहीं, उपलब्ध काव्य का वस्तुपरक विवेचन ही आलोच्य के सत्य का सम्यक् आकलन कर सकता है। शुक्लजी की व्यक्तिगत रुचियाँ उनकी आलोचना का मार्गनिर्देशन करती थीं। छुटभैयों ने नक़ल का रास्ता तान दिया। इससे पारम्परिक कविता का सम्यक् आकलन नहीं हो सका, जो सर्वथा दुर्भाग्यपूर्ण है। पारम्परिक व्रजभाषा-काव्य, पारम्परिक अवधी-काव्य इत्यादि को उनकी अस्मिता में देखना ही वरेण्य है। 'युग का राग अलापना' भी तो कहा जा सकता है; यह भी उचित न होगा। उचित है कवि का वस्तुपरक आकलन। दूसरे, हरिऔध, 'जोतिसी', कविरत्न इत्यादि ने देशसेवा, विधवा-समस्या, दयनीय समाज-स्थिति इत्यादि का निरूपण भी किया है।

आदर्शवादी युग के कवियों के व्रजभाषा-काव्य के कुछ निदर्शन प्रस्तुत हैं (समय-सीमा की दृष्टि से कुछ ग्रन्थों के निदर्शन परवर्ती हैं किन्तु कवि एवं कविता के व्यापक जीवन एवं प्रवृत्ति की दृष्टि से इसी युग में समाहित किए जा सकते हैं—'साकेत' इत्यादि के सदृश) :

1. शंकर नदी नद नदीसन के नीरन की, भाप बन अंबर में ऊँची चढ़ जाएगी।
दोनों ध्रुव छोरन लौं पल में पिघलकर, घूम-घूम धरती धुरी सी बढ़ जाएगी।।
झारैंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति, जारैंगे खमंडल में आग मढ़ जाएगी।
काहू बिधि बिधि की बनावट बचैगी नाहिं, जो पै वा वियोगिनी की आह कढ़ जाएगी।।

2. तेज न रहेगा तेजधारियों का नाम को भी, मंगल मयंक मंद-मंद पड़ जायँगे।
मीन बिन मारे मर जायँगे सरोबर में, डूब-डूब शंकर सरोज सड़ जायँगे।।
चौंक चौंक चारों ओर चौकड़ी भरेंगे मृग, खंजन खिलाड़ियों के पंख झड़ जायँगे।।
बोलो इन अँखियों की होड़ करने को अब, कौन से अड़ीले उपमान अड़ जायँगे।।

—नाथूराम शर्मा 'शंकर'[1]

3. निज भाषा बोलहु, लिखहु पढ़हु, गुनहु सब लोग।
करहु सकल विषयन विषै निज भाषा उपयोग।।

4. चारु हिमालय आँचल में एक साल बिसालन कौ बन है।
मृदु मर्मर शीत झरै जल-स्रोत हैं पर्वत-ओट है निर्जन है।।
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन प्रवीन बिहंगन को गन है।
भटक्यो तहाँ रावरौ भूल्यो फिरै, मद बावरो सो अलि को मन है।।

—श्रीधर पाठक[2]

---

[1] जीवनकाल 1859-1932 ई.।

[2] जीवनकाल 1859-1928 ई.।

5. स्यामा सुघर अनूप गुन सील सजीली।
मंडित मृदु मुखचंद मंद मुसक्यानि लजीली।।
काम बाम अभिराम सहस सोभा सुभ धारिनि।
साजे सकल सिंगार दिब्य हेरति हिय हारिनि।।

6. मोर के पखौवनि कौ मुकुट छबीलौ छोरि,
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैं कहा।
कहै रतनाकर त्यों माखन सनेही बिनु
षटरस-ब्यंजन चबाइ करिहैं कहा।।
गोपी-ग्वालबालनि कौं झोंकि बिरहानल मैं
हरि-सुरबृंद की बलाइ करिहैं कहा।
प्यारौ नाम गोबिंद-गुपाल कौ बिहाय हाय,
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैं कहा।।

—जगन्नाथदास 'रत्नाकर'[1]

7. चंद्रमुखी हीरन के भूषन अमंद धारे,
मोतिन किनारी बारी सारी चारु धारी है।
जीवन की ज्योति तैसी रूप की है बेस बनी,
जाति ब्रजनंद सों मिलन हेतु प्यारी है।।
'पूरन' जू जामिनी में कौतुक अनोखो भयो,
जावै कुंजबन ह्वै सिधारी सुकुमारी है।
भोर जानी चोरन ने, मोरन तड़ित जानी,
समुझी चकोरन ने चंद-उजियारी है।।

—राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'[2]

8. जटन को जूट उत, मुकुट बिराजै इतै,
उत भाल चंद, इत चंदन ललाम हैं।
मुंडन की माला उतै, इत मनि माल मंजु,
उते तिरसूल, बान इत अभिराम हैं।।
'जोतिसी' बघंबर उतै, है इत पीत पट,
गौरि उत राजै, इत सिय छबिधाम हैं।
राम के सनेही उतै, इतै सिव नेही सदा,
'जोतिसी' हमारे जान एकै सिव राम हैं।

9. पर्‌यो नाम जंग 'जोतिसी', फेर न होत अमंद।
करत उजेरो कहँ, तऊ कहावत चंद।।
पर्‌यों नाम जग 'जोतिसी', रहै सदा भरपूर।
लोक चच्छु त्रिभुवन लखै, तऊ कहावत सूर।।

—रामनाथ ज्योतिषी (जोतिसी)[3]

---

[1] जीवनकाल 1866-1932 ई.।

[2] जीवनकाल 1868-1915 ई.।

[3] जीवनकाल 1874-1953 ई.।

11. भयो क्यों अनचाहत को संग?
सब जग के तुम दीपक, मोहन! प्रेमी हमहुँ पतंग।।
लखि तव दीपति, देह शिखा में निरत, बिरह लौ लागी।
खींचति आ सों आप उतहि यह, ऐसी प्रकृति अभागी।।
यदपि सनेह भरी तब बतियाँ, तउ अचरज की बात।
योग-वियोग दोउन में इक सम नित्य जरावत गात।।

12. जे तजि मातृभूमि सों ममता, होत प्रवासी।
तिन्हें बिदेसी तंग करत हैं, बिपदा खासी।
नहि आए—निरदय दई! आए—गौरव जाय।
साँप-छछूँदर गति मई, मन ही मन अकुलाय।
रहे सब के सबै।

—सत्यनारायण कविरत्न[1]

बौद्धिककाल के व्रजभाषा-कवियों में केवल भारतेन्दु एवं रत्नाकर का सम्यक् आकलन हो सका है, श्रीधर पाठक एवं सत्यनारायण कविरत्न की प्रशस्ति पर्याप्त अधिक हो गई है, 'शंकर' एवं 'पूर्ण' की चर्चा ठीक-ठाक हुई है (इनका व्रजभाषा-काव्य असाधारण है भी नहीं), 'दीन' का कवि-रूप व्रजभाषा एवं खड़ीबोली दोनों में ही प्रासंगिक मात्र है, केवल रामनाथ ज्योतिषी (जोतिसी) के साथ न्याय नहीं किया जा सका। 'जोतिसी' अलंकृतकाव्य की दृष्टि से आधुनिक केशव हैं[2], किन्तु उनकी कविता स्वातन्त्र्य-संग्राम- नेताओं एवं विधवा-समस्या इत्यादि के प्रभावी वर्णनों के कारण युगनिष्ठ भी है, युगसजग भी है। 'रत्नाकर' एवं 'भारतेन्दु' के अतिरिक्त कोई भी आधुनिक व्रजभाषा-कवि परिमाण एवं गुणवत्ता में 'जोतिसी' से आगे नहीं लगता। इन पर शोधकार्य हुआ है, ध्वंसात्मक आलोचना भी हुई है, किन्तु स्तरीय आकलन अभी शेष ही है। व्रजभाषा-कवि वचनेश मिश्र एवं अवधी-कवि द्वारकाप्रसाद मिश्र पर भी स्तरीय एवं तुलनात्मक आलोचना का अभाव खटकता है। खड़ीबोली गौरव से खड़ी रहे (क्योंकि वह राष्ट्र की प्रतीक है), किन्तु व्रज-रज में न मिले, अवधी औंधी न गिरे (तथा विभाषाएँ भी फलें-फूलें)—विराट् हिन्दी को तभी सन्तोष प्राप्त होगा।

हिन्दी-निबन्ध का स्वर्ण-युग

आदर्शवादी युग हिन्दी-निबन्ध का स्वर्ण-युग था, जिसमें आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, आ. श्यामसुन्दरदास एवं आ. रामचन्द्र शुक्ल की आचार्य-बृहत्त्रयी ने विचारात्मक-निबन्ध को सुधारवादी युग के बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों की आरम्भिकता से उठाकर क्रमशः स्फीति, वैचारिकता एवं मौलिकता की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया, बालमुकुन्द गुप्त ने प्रतापनारायण मिश्र की अनूठी अनौपचारिकता एवं व्यंग्य-विनोद को आगे बढ़ाया, माधवप्रसाद मिश्र एवं पूर्णसिंह ने भावात्मक निबन्ध को गरिमा-मंडित रूप प्रदान किया, महामहोपाध्याय रायबहादुर डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा एवं महामहोपाध्याय पांडेय रामावतार शर्मा ने शोध-निबन्ध एवं पुरा-निबन्ध को अगाध विद्वत्ता के साथ प्रस्तुत किया, तथा मिश्रबन्धु, महामहोपाध्याय पंडित गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी[3], लक्ष्मण नारायण गर्दे, आचार्य पद्मसिंह शर्मा इत्यादि ने विविधविषयक निबन्ध रचकर उसे व्यापकतर किया। गोविन्दनारायण मिश्र, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, यशोदानन्दन, अखौरी, कृष्णविहारी मिश्र इत्यादि इस युग के अन्य प्रसिद्ध निबन्धकार हैं। आ. द्विवेदी, आ. श्यामसुन्दरदास, ओझा, रामावतार शर्मा, मिश्रबन्धु, गर्दे इत्यादि के निबन्धों ने पाठकों एवं लेखकों के लिए विद्वत्ता के वैश्विक एवं राष्ट्रीय द्वार खोले। यदि आ. शुक्ल के निबन्धों ने मौलिक विचारात्मक-निबन्ध को विश्व-स्तर पर प्रतिष्ठित किया, तो पूर्णसिंह ने

---

[1] जीवनकाल 1880-1918 ई.।

[2] कानपुर में 'केशव' एवं 'बिहारी' नामक व्रजभाषा-कवि भी हुए हैं। यत्किंचित् परवर्ती।

[3] इसी युग में पंडित गिरधर शर्मा 'नवरत्न' नामक कवि भी हुए थे।

भावात्मक-निबन्ध को विश्व-स्तर पर प्रतिष्ठित किया। यदि बालमुकुन्द गुप्त ने ललित-निबन्ध के हास्य-व्यंग्य रूप का विस्मयकारी विकास किया (जिसकी समता में गुलाबराय के ललित-निबन्धों के अतिरिक्त सारे परवर्ती व्यंग्य-निबन्ध बौने एवं बनावटी लगते हैं), तो माधवप्रसाद मिश्र ने ललित-निबन्ध के भावात्मक रूप का ज्योतिर्मय सुमेरु प्रदर्शित किया ('सब मिट्टी हो गया' की तुलना में डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का 'अशोक के फूल' जैसा श्रेष्ठतम निबन्ध भी कृत्रिम एवं बांग्ला के बोझ से दबा-दबा लगता है और डॉ. द्विवेदी के अनुवर्ती विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय के सारे ललित-निबन्ध मिलकर भी उसकी समता नहीं कर पाते)—हरियाणा के इन दो महान् निबन्धकारों पर हिन्दी सदैव गर्व करती रहेगी! (इस समय भी डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा जैसे साहित्येतिहासकार, वरिष्ठ विद्वान डॉ. जयनाथ 'नलिन', डॉ. बैजनाथ सिंहल जैसे आलोचक एवं कहानीकार, ओमप्रकाश 'आदित्य' जैसे लोकप्रिय हास्यकवि हरियाणा साहित्य-क्षेत्र को हरियाला बनाए हुए हैं!) आ. पद्मसिंह शर्मा ने 'भगवान् श्रीकृष्ण', 'मेरी तीर्थयात्रा'[1], 'मुझे मेरे मित्रों से बचाओ' इत्यादि विविधविषयक सफल भावात्मक निबन्ध लिखे; सत्यनारायण कविरत्न पर उनका भावात्मक-निबन्ध तो 'क्लासिक' ही है। सुधारवादी युग में निबन्ध का आरम्भ सन्तोषजनक रूप में हुआ था, आदर्शवादी युग में उसका उत्कर्ष विस्मयकारी रूप में हुआ। स्वच्छन्दतावादी युग काव्यप्रधान युग रहा, यथार्थवादी युग में निबन्ध पसरा तो बहुत पर गहराई खो बैठा; रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी इत्यादि ने उसे खंड-खंड कर डाला तथा आलोचना ने उसे चर डालने में कोई कोर-क़सर नहीं छोड़ी—विश्वविद्यालयों के गद्दीधर पाठ्यक्रम-लोभवश निबन्धकार बनने की क़सम ही खा बैठे! गरिमा एवं गुणवत्ता में आदर्शवादी युग का निबन्ध निर्विवादतः सर्वोत्तम एवं अतुलनीय है। आयातित वाद-विवाद से मुक्त, राष्ट्रवाद एवं हिन्दी-गरिमा से ऊभ-चूभ, भारत की अस्मिता से संपृक्त त्याग-सारल्य-श्रम[2] से भरपूर आदर्शवादी युग का निबन्ध तिलक एवं द्विवेदी के लोकेषण-मुक्त कर्मयोग की अभिव्यक्ति में सर्वथा सक्षम सिद्ध होता है।

आदर्शवादी युग का निबन्ध विविधता में विलक्षण है। यदि गोविन्दनारायण मिश्र (1859-1926 ई.) के निबन्ध बाण एवं दंडी की जटिल गद्य-शैली के स्मारक हैं (प्रेमघन के कुछ निबन्धों का स्मरण कराते हैं) तो बालमुकुन्द गुप्त (1865-1907 ई.) के निबन्ध भाषा की रवानी के (जिनका लॉर्ड कर्ज़न एवं ब्रिटिश राज्य पर गहरा व्यंग्य नितान्त कलात्मक है)। यदि माधवप्रसाद मिश्र (1871-1907 ई.) के निबन्ध देश की दयनीय दशा पर आँसू बहाने-बहवाने में सफल हैं, तो चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (1883-1920 ई.) के निबन्ध हँसते-हँसाते राष्ट्र-दौर्बल्य पर प्रकाश डालने में अतीव प्रभावी हैं। यदि पद्मसिंह शर्मा (1876-1932 ई.) के निबन्ध मार्मिकता में अद्वितीय हैं, तो कृष्णविहारी मिश्र (1890-1963 ई.) के निबन्ध आलोचनात्मक सन्तुलन में प्रशस्य। यदि पूर्णसिंह (1881-1939 ई.) के निबन्ध भावयोग में अद्वितीय हैं, तो श्यामसुन्दरदास (1875-1945 ई.) के निबन्ध विचारयोग में प्रशान्त। यदि मिश्रबन्धु (विशेषतः श्यामविहारी मिश्र 1873-1946 ई. एवं शुकदेवविहारी मिश्र 1878-1951 ई.) के निबन्ध वस्तुपरक हैं, तो जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी (1875-1939 ई.) के हास्यपरक। यदि महावीरप्रसाद द्विवेदी (1864-1938 ई.) के निबन्ध युगादेश-प्रतीक हैं, तो रामचन्द्र शुक्ल (1884-1941 ई.[3]) के शाश्वत प्रवृत्तियों से सम्बद्ध।

आदर्शवादी युग के निबन्ध की मुख्य प्रवृत्तियाँ दो हैं : राष्ट्रोत्थान एवं राष्ट्रोत्थान के हेतु अन्धविश्वास, संकीर्णता, अशिक्षा, धार्मिक पाखंड इत्यादि पर प्रहार या व्यंग्य या परिहार-अनुरोध। राष्ट्रभाषा-उत्थान के हेतु भाषागत अद्वय की प्रतिष्ठा एवं नानाविधात्मक नवसृजन का आह्वान किया गया है। इस युग के निबन्ध की भाषा परिनिष्ठित एवं स्तरीय होते हुए भी प्रायः क्लिष्ट एवं कृत्रिम नहीं है। लेखक-पाठक का सम्पूर्ण-तादात्म्य तो सुधारवादी युग के निबन्ध जैसा नहीं है किन्तु दोनों के मध्य वैसी दूरी भी नहीं है जैसी परवर्ती निबन्ध में दृग्गत होती है—रामचन्द्र शुक्ल के निबन्ध अवश्य विश्वविद्यालय-परिसर की संस्कृति से सराबोर लगते हैं किन्तु उनमें यत्र-तत्र लोकमंगलगत एवं लोकजीवन की मार्मिक अनुभूति भी विवृत होती चलती है और वे नन्ददुलारे वाजपेयी या नगेन्द्र के निबन्धों के सदृश परिसर-बन्दी निबन्ध मात्र नहीं हैं।

बालमुकुन्द गुप्त (शिवशम्भु का चिट्ठा), चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ('कछुवा-धर्म' एवं 'मारेसि मोहिं कुठाँव' शीर्षक निबन्ध), जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी ('गद्य-माला' एवं 'निबन्ध-निचय'—विशेषतः 'ब की बहार' एवं 'अनुप्रास का अन्वेषण' निबन्ध), यशोदानन्दन अखौरी ('इत्यादि की आत्मकहानी' निबन्ध) प्रभृति के हास्य-निबन्ध गहरे और पैने हास्य-परिहास-व्यंग्य में अनूठे हैं।

---

1. आ. द्विवेदी के जन्मस्थान दौलतपुर (जिला रायबरेली) की यात्रा पर।
2. आ = सब ओ + श्रम = मेहनत अर्थात् समाज-वर्णाश्रम- व्यवस्था एवं व्यक्ति-जीवनाश्रम-व्यवस्था का आधार 'श्रम' ही था।
3. कई ग्रन्थों में 1940 ई. दिया है जो ग़लत है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एक अत्यन्त स्फीत निबन्धकार हैं; जिन्होंने 'साहित्य की महत्ता', 'उपन्यास-रहस्य', 'कविता क्या है?' जैसे साहित्यिक निबन्ध भी लिखे हैं, 'हम्मीर महाकाव्य', 'सुखदेव मिश्र', 'मधुसूदन दत्त' जैसे शोध-निबन्ध भी, 'कवि-कर्त्तव्य' जैसे आह्वान-निबन्ध भी, 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीना' जैसे प्रेरक भावात्मक-निबन्ध भी, 'आत्मनिवेदन' जैसे आत्मपरक-निबन्ध भी, 'सर विलियम जोन्स ने संस्कृत कैसे सीखी?' एवं 'म्यूनिसिपैलिटी के कारनामे' एवं 'विवाह-विषयक विचार-व्यभिचार' जैसे हास्य-व्यंग्य निबन्ध भी, 'भारत-भारती' एवं 'प्रियप्रवास' इत्यादि पर आलोचनात्मक टिप्पणी-निबन्ध भी। वे केवल हिन्दी साहित्येतिहास के एक निर्णायक एवं महान् निबन्धकार मात्र न थे, भारतेतिहास की एक विभूति भी थे, जैसाकि डॉ. ईश्वरीप्रसाद के 'भारतवर्ष का इतिहास' में उनके 'अतिविख्यात' लेखक एवं उनके निबन्धों एवं लेखों के 'बहुत ज़ोरदार शैली' में लिखे जाने के उल्लेख से भी स्पष्ट होता है। निस्सन्देह वे नितान्त-मौलिक एवं गहन-विचारनिष्पन्न निबन्धकार नहीं है, क्योंकि उनका उद्देश्य युगनिर्माण, युगनेतृत्व एवं युगविकास था, जिसमें वे शतशः सफल हुए, किन्तु उनके जनवादी निबन्ध 'बातों का संग्रह' नहीं हैं, जैसाकि परिसरवादी आ. शुक्ल एवं उनके लग्गू-भग्गू धड़ल्ले से लिखते चले आ रहे हैं (जिनके कारण हिन्दी-निबन्ध पाठ्यक्रम की कारा का दयनीय बन्दी बनकर रह गया है)। आ. द्विवेदी के निबन्ध विषय-व्यापकता, प्रेरणा एवं स्वस्थ-स्वच्छ भाषा-शैली के विलक्षण निदर्शन हैं। उनके 'कवि-कर्तव्य' निबन्ध ने इस शताब्दी की कविता का मार्ग-निर्देश किया, उनके 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता' निबन्ध ने मैथिलीशरण गुप्त, नवीन इत्यादि शत-शत कवियों को रामकाव्य की उपेक्षित पात्राओं एवं पात्रों पर काव्यरचना की प्रेरणा दी, उनके 'सुखदेव मिश्र' निबन्ध ने मिश्रबन्धु की पिंगलाचार्य-कविराज पर 'विनोद' में अमूल्य सामग्री प्रस्तुत करने का पथ प्रशस्त किया (आ. शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में इसी का संक्षेपण किया है), उनके 'साहित्य की महत्ता'[1] निबन्ध ने लाखों पाठकों को हिन्दी-प्रेमी बनाया है।

भावात्मक निबन्धकारों में विश्ववादी पूर्णसिंह एवं भारतवादी मिश्र का युग्म चिरस्मरणीय है। सरदार पूर्णसिंह (अध्यापक पूर्णसिंह[2]) जन्म से सिख, संस्कार से वेदान्ती एवं जीवन से मानवतावादी थे। उन पर गुरु नानक के पुनरुत्थानकालीन सुधारवाद, स्वामी रामतीर्थ के समकालीन अद्वैतवाद, रस्किन के प्रायः समकालीन सहजमानववाद[3] एवं टॉल्स्टॉय के प्रायः सामयिक शरीरश्रमवाद[4] का युगवत् प्रभाव पड़ा था, जिसे आत्मसात् करके उन्होंने यन्त्र-सभ्यता एवं कृत्रिम-सभ्यता के रूसो, ब्लेक, कॉलरिज, वर्ड्सवर्थ इत्यादि के समय से प्रचलित विरोध को अत्यन्त प्रशस्य गति प्रदान की (प्रसाद के 'एक घूँट' एकांकी, 'कामना' नाटक एवं 'कामायनी' महाकाव्य में भी ऐसा ही हुआ है)। उनका महान् भावात्मक निबन्ध 'मज़दूरी और प्रेम' यन्त्र पर मानव को वरीयता देनेवाला मनोहारी और सदाबहार गद्यगीत-सा है। 'आचरण की सभ्यता' में उन्होंने प्रदर्शन की सभ्यता या सभ्यता के रोग ('सिक्नेस ऑफ़ सिविलिज़ेशन'—एक ग्रन्थ भी है) पर सहज-सभ्यता को वरीयता प्रदान की है। 'सच्ची वीरता' में वे अख़बारी-बहादुरी पर जज़्बाती-बहादुरी को तरज़ीह देते हैं। 'पवित्रता' (ब्रह्मकान्ति) में उनका अद्वैत-संगीत गुंजरित है। 'कन्यादान' (नयनों की गंगा) में वे भारतीय विवाह-संस्कृति का भावगान गाते हैं। हिन्दी के भावात्मक निबन्धकारों में पूर्णसिंह का स्थान प्रतापनारायण मिश्र के अनन्तर[5] सर्वश्रेष्ठ है। माधवप्रसाद मिश्र का 'सब मिट्टी हो गया' एक महान् निबन्ध है, किन्तु उसमें सभ्यता की जटिलता एवं मानव की सहजता का वैश्विक द्वन्द्व कहाँ? महाराजकुमार रघुवीरसिंह के 'अवशेष' ('फ़तहपुर सीकरी', 'लाल क़िला'[6], 'ताज' इत्यादि का छोटा-सा संग्रह) की कालातीत सामन्ती शोषणवाद की अतिरंजित भावुकताजन्य स्तुति में सामान्य मानव की श्रममूलक अस्मिता का निःशेष स्वर कहाँ? अतिभावुकता एवं अतिविस्तार के दोषों के बावजूद, पूर्णसिंह के निबन्ध आज भी अत्युत्कृष्ट ही लगते हैं।

रोम-रोम में भारतवादी, देशभक्ति की तीव्रतम भावुकता के विग्रह पं. माधवप्रसाद मिश्र भाव एवं भाषा दोनों में ''गद्य कवीनां निकषं वदन्ति'' के प्रमाण प्रतीत होते हैं। वे छात्रों के राजनीति में भाग लेने के पक्षधर थे और इस विषय पर महामना पं. मदनमोहन मालवीय तक को ललकार सकते थे। वे सनातन संस्कृति के महान् पक्षधर थे। वे राष्ट्र-देवता के अनन्य उपासक थे। उनके निबन्धों की प्रशंसा लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक तक ने की थी। एक बालक के खिलौने के टूटने पर 'सब मिट्टी हो गया' कहने के शिल्प

---

[1] मूलतः भाषण।

[2] पूरनसिंह भी।

[3] शब्द मैंने गढ़ा है जिससे बात एकदम स्पष्ट हो सके।

[4] वही।

[5] प्रतापनारायण मिश्र का सृजन शत-प्रति-शत एवं नितान्त अनौपचारिक है, जबकि पूर्णसिंह का सृजन प्राच्य-पाश्चात्य भावों एवं विचारों का संगत उद्गार मात्र हैं।

[6] आगरे का लाल क़िला (दिल्ली का लाल क़िला नहीं)।

पर आधृत उनका तत्-शीर्षक महान् निबन्ध मिट्टी की मातृभूमि-प्रतीक मानकर अतीत की गौरव-गरिमा एवं वर्तमान के पतन पर जो उद्गार व्यक्त करता है वह हिन्दी ही नहीं अपितु भारतीय साहित्य की निधि है। यह शत-प्रति-शत मौलिक निबन्ध भारत के सर्वश्रेष्ठ निबन्धों में परिगणित होने योग्य है, विश्व के मातृभूमि-प्रेम के साहित्य का एक जाज्वल्यमान् रत्न है--आज के परकीयता-व्यामोह-ग्रस्त युग में यह सृजनकाल से भी अधिक मार्मिक लग सकता है। 'माधव मिश्र निबन्धावली' हिन्दी-निबन्धसाहित्य की एक अमर दीपशिखा है। खेद है कि विश्वविद्यालयों में माधवप्रसाद मिश्र की बड़ी उपेक्षा हुई है क्योंकि वे संस्कृतिवादी थे, मातृभूमिवादी थे, जबकि सम्प्रति संस्कृति-विरोध एवं भारतीय- प्रत्याख्यान विद्वत्ता का परम लक्षण माना जाता है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एक विश्वस्तरीय निबन्धकार हैं। उनके 'लोभ और प्रीति', 'भय और क्रोध', 'श्रद्धा-भक्ति', 'करुणा', 'उत्साह', 'लज्जा और ग्लानि', 'घृणा' इत्यादि रसों के स्थायीभावों से सम्बद्ध निबन्धों में मनोविज्ञान एवं साहित्य का अपूर्व संगम हुआ है, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र', 'तुलसी की भावुकता', 'मानस की धर्मभूमि' इत्यादि कविपरक-ग्रन्थपरक निबन्धों में अगाध विचारात्मक वैभव विवृत हुआ है, 'कविता क्या है?', 'रसात्मक बोध के विविध रूप', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था', 'साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद' इत्यादि काव्यशास्त्रीय निबन्धों में आचार्य का उद्गार व्यक्त हुआ है। प्रातिभ सृजन में प्रतापनारायण मिश्र की अद्वितीयता तो आचार्य श्यामसुन्दरदास तक ने प्रतिपादित की है, किन्तु 'गूढ़-गुम्फित-विचार-सरणि' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार माना जा सकता है। यहढसत्य है कि आ. शुक्ल पर आदर्शवादी युग के सार्वभौम अतिविस्तार का प्रभाव पड़ा है, यत्र-तत्र वे कटु भी हो गए हैं, कहीं-कहीं (जैसे शास्त्रीय संगीत के सन्दर्भ में) उनके व्यंग्य सतही और भोंड़े तक लगने लगते हैं, उनका परिभाषावाद कोशमूलक लगने लगता है, किन्तु उनकी मौलिकता, विद्वत्ता एवं प्रतिभा विश्वस्तरीय है, इसमें सन्देह नहीं।

आ. शुक्ल भारत एवं भारतीयता, हिन्दी एवं हिन्दीपन के वैसे ही उपासक हैं जैसे युगाचार्य आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी या परम देशभक्त माधवप्रसाद मिश्र हैं, किन्तु उनमें समसामयिक पाश्चात्य दार्शनिकों (जैसे बर्गसाँ), पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों (जैसे क्रोचे), पाश्चात्य आलोचकों (जैसे डंटन, बेड्लाम, लौरा राइडिंग, रॉबर्ट्स ग्रेव्ज़, ए.टी. स्ट्राँग, ब्रैडले, रिचर्ड्स) को उद्धृत कर पाठक को आतंकित करने की प्रवृत्ति न राष्ट्रीय अस्मिता के साथ न्याय करती है और न राष्ट्रभाषा-गरिमा के साथ। 'आचार्यत्व की लपेट' के कारण उनके निबन्ध छात्रों को आतंकित अधिक करते हैं, प्रभावित कम। वे परिसर-निबन्धकार हैं, जन-निबन्धकार या सार्वभौम-निबन्धकार नहीं। पश्चिम विश्व का ज्ञान-विज्ञान-नेता है, सर्वाधिक सशक्त है, सर्वाधिक सम्पन्न है, फलतः सर्वाधिक प्रभावी है। भारत पश्चिम का शरीर-दास था, अब मानस-दास है, भाषा-दास है, क्योंकि सर्वशक्तिमान् गौरांगों ने अपने मानस-पुत्रों को ही अपना पुराना ताज नई पॉलिश कराके पहना दिया था। अतः आ. शुक्ल का पाश्चात्य दार्शनिकों, कवियों, काव्यशास्त्रियों, आलोचकों इत्यादि को रोमन-लिपि तक के प्रयोग के साथ उल्लेख साधारण छात्र या प्राध्यापक को अभिभूत कर लेता है। किन्तु ऐसे प्रयोग नितान्त सामयिक होने के कारण कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ पाते। यही कारण है कि किसी निबन्धकार ने आ. शुक्ल का अनुकरण नहीं किया, किसी कवि या कलाकार ने उनसे प्रभावित होकर कोई काव्य या कलाकृति नहीं रची। बर्गसाँ, क्रोचे, फ्रायड, सार्त्र, स्पेंडर इत्यादि से प्रभावित होकर कोई आ. द्विवेदी, प्रेमचन्द, प्रसाद या निराला नहीं बन सकता--स्वयं आचार्य शुक्ल की महानता का कारण उनकी अस्मिता है। परकीय प्रभाव की पहुँच अज्ञेय तक है जो कवि-रूप में हिन्दी के इलिअॅट (एलिअॅट) हैं, उपन्यासकार के रूप में हिन्दी के लॉरेंस; किन्तु जिनका युगीन प्रभाव केवल मुट्ठी भर प्रभावी व्यक्तियों, प्राध्यापकों, शोधकारों एवं कवियों पर पड़कर ही चुक गया! अज्ञेय तो क्या, पन्त जैसा महाकवि तक परकीय प्रभाव से आहत हुआ है। ('पन्त, प्रसाद, निराला' से 'प्रसाद, पन्त, निराला' तथा इससे 'प्रसाद, निराला, पन्त' का क्रम साक्षी है)! पश्चिम से परिचय लाभदायक है क्योंकि पश्चिम बहुत आगे हैं[1] (प्रतिक्रियावादी अरब देश तक पश्चिम से अभिभूत हैं)। किन्तु ऐसा न तो हीनतामूलक होना चाहिए, न प्रदर्शनमूलक। आ. द्विवेदी एवं प्रेमचन्द, मिश्रबन्धु एवं श्यामसुन्दरदास प्रभृति आ. शुक्ल से कम अंग्रेज़ी जाननेवाले न थे, किन्तु इन्होंने राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा की अस्मिता का ध्यान रखते हुए स्वयं को प्रदर्शनवृत्ति से परे रखा था। पश्चिम के साधारण विचारों को भी आसाधारण महत्त्व प्रदान करने की परिपाटी दासता की प्रतीक है। उसका उल्लेख एवं ऊहामोप आलोचनात्मक परीक्षण तक ही सीमित रहे, यही अच्छा। फिर, रोमन लिपि में अंग्रेज़ीबाज़ी तो छोटे-मोटे लेखकों को ही शोभा दे सकती

---

1. विश्व के सत्तर-प्रतिशत पत्रों के पते अंग्रेजी में लिखे जाते हैं, विश्व के सर्वाधिक प्रकाशन अंग्रेजी में होते हैं क्योंकि वह कल के विश्व-प्रमुख ग्रेट-ब्रिटेन की भाषा है, आज के विश्व-प्रमुख अमेरिका की भाषा है, संपन्न कैनेडा (सत्तर प्रतिशत), स्फीत आस्ट्रेलिया, धनी न्यूज़ीलैण्ड की भाषा है, भारत जैसे ब्रिटेन के पिछले गुलाम देशों की रानी-भाषा है। रूस, चीन, जापान इत्यादि भी उसे पढ़ते-पढ़ाते हैं।

है, आ. शुक्ल जैसे महान् निबन्धकार को नहीं। आज कमलेश्वर जैसे कथाकारों को दूरदर्शन पर सुनकर उनके अस्मिताहीन व्यक्तित्व पर तो दुःख होता ही है, हिन्दी पर भी दया आने लगती है। राजेन्द्र यादव के 'धर्मयुग' इत्यादि में प्रकाशित लेख देखकर ऐसा ही लगता है। (संयोगात् दोनों साम्यवादी हैं।)

हिन्दी-आलोचना का स्वर्ण-युग

''किसी पुस्तक या प्रबन्ध में क्या लिखा गया है, किस ढंग से लिखा गया है, वह विषय उपयोगी है या नहीं, उससे किसी का मनोरंजन हो सकता है या नहीं, उससे किसी को भी लाभ पहुँच सकता है या नहीं, लेखक ने कोई नई बात लिखी है या नहीं—यही विचारणीय है। समालोचक को प्रधानतः इन्हीं बातों पर विचार करना चाहिए।'' —आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

सुधारवादी युग (1850-1900 ई.) में 'समालोचना' शब्द सुनाई भर पड़ा था जबकि श्रीनिवासदास कृत 'संयोगिता-स्वयंवर' नाटक की कोरी प्रशंसा की प्रतिक्रिया में बालकृष्ण भट्ट (हिन्दी-प्रदीप) एवं प्रेमघन (आनन्द-कादम्बिनी) ने कमज़ोर पक्षों पर भी प्रकाश डाला, गृहीत तत्त्वों का भी ऊहापोह किया, असंगतियाँ भी स्पष्ट कीं; तथा भट्टजी ने 'नीलदेवी' (नाटकः भारतेन्दु) एवं 'परीक्षा-गुरु' (उपन्यासः श्रीनिवासदास) की भी समालोचना की। 'सरस्वती' की सेवा में आकर आ. द्विवेदी ने पुस्तक-समालोचना[1] का व्यवस्थित समारम्भ किया, जिससे (विशेषतः उनके व्यक्तित्व की महत्ता के कारण) आलोचना की विधा को बड़ा बल मिला। 1907-12 ई. के बीच आ. पद्मसिंह ने हिन्दी के बिहारी और फ़ारसी के सादी तथा संस्कृत और हिन्दी कविता के तुलनात्मक अवतरणों पर प्रकाश डालते हुए 'सरस्वती' में आचार्य के वरदहस्त तले अनेक लेख लिखे, जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है, किन्तु यह विशृंखल एवं व्यवस्था-विहीन प्रयास था, तुलनात्मक-आलोचना का व्यवस्थित एवं स्थायी समारम्भ नहीं। कवि-आलोचना एवं तुलनात्मक-आलोचना का प्रथम महान् ग्रन्थ मिश्रबन्धु (सर्वश्री गणेशविहारी, श्यामविहारी एवं शुकदेवविहारी की त्रयी) प्रणीत 'हिन्दी-नवरत्न' (1910 ई.) है, जिसमें तुलसी, सूर, देव, बिहारी, भूषण-मतिराम (त्रिपाठी-बन्धु), केशव, कबीर, चन्द्रवरदायी एवं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के जीवन-वृत्तों पर विशद शोधपरक ऊहापोह के साथ इनके ग्रन्थों एवं उनमें प्राप्त काव्य का रस-अलंकार-गुणदोष-परक आकलन तो किया ही गया है, यत्र-तत्र सम्बद्ध युगों पर भी प्रकाश डाला गया है। 'नवरत्न' आज भी प्रस्थान-ग्रन्थ के रूप में समादृत है। इससे कवि-आलोचना के द्वार खुले, तुलनात्मक-आलोचना का उद्घाटन हुआ, रसवादी-अलंकारवादी आलोचना-पद्धति का श्रीगणेश हुआ। इस ग्रन्थरत्न में केशव के साथ नहीं हुआ। 'नवरत्न' के कारण शास्त्रीयकाल (मिश्रबन्धु का अलंकृतकाल, आ. श्यामसुन्दरदास एवं आ. शुक्ल इत्यादि का रीतिकाल) के केशव, बिहारी, भूषण, मतिराम एवं देव की प्रतिष्ठा तो बनी रही किन्तु सेनापति, सुखदेव, घनआनन्द एवं पद्माकर के साथ न्याय नहीं हो पाया। इसमें विद्यापति एवं जायसी का समावेश नहीं है। देव-पक्षपात के कारण आ. पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी के पक्ष में बड़ी ही भड़कीली आलोचना लिखी, लाला भगवानदीन 'दीन' ने 'बिहारी और देव' लिखा। मिश्रबन्धु के पक्ष में पं. कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' शीर्षक एक अत्यन्त सन्तुलित तुलनात्मक आलोचना-ग्रन्थ प्रस्तुत किया। सम्प्रति देव, बिहारी, भूषण, मतिराम इत्यादि की प्रतिष्ठा इसी आलोचना-सागर के मन्थन की रत्नराशि है। 1913 ई. में मिश्रबन्धु का महान् 'विनोद' प्रकाशित हुआ जिसे हिन्दी-कवियों का विश्वकोश कहा जा सकता है, जिसका संशोधन-परिवर्द्धन होता गया, जिसमें आठवीं सदी (700 वि. या 743 ई.) से समसामयिक कवियों तक के 4552 वृत्त या नाम प्राप्त होते हैं, जिसमें ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-निरूपण भी किया गया है तथा प्रवृत्तियों का विवेचन भी। कहने के लिए हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास गार्सां द तासी का फ्रेंच में रचित 'इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐं ऐंदुस्तानी' (प्रथम भाग 1839 ई., द्वितीय भाग 1847 ई.—पेरिस) है, जो नाम से ही हिन्दी[2]-उर्दू कवि-कोश लगता है[3], जिसका मूर्तिपूजा के कारण हिन्दू-विद्वेषी लेखक कुरान में ईसा इत्यादि के आदर तथा सर सैयद अहमद ख़ाँ से मित्रता के कारण हिन्दी-विद्वेषी भी था तथा जिसके ग्रन्थ का किसी पर कोई प्रभाव न पड़ना स्वाभाविक था (एक तो अनजानी फ्रेंच, दूसरे उर्दू-भक्ति, तीसरे हिन्दी-हिन्दू-विद्वेष—कारण एक नहीं तीन थे)। हिन्दी का वास्तविक प्रथम इतिहास शिवसिंह सेंगर कृत अमर 'सरोज' (1878 ई.) है,

---

1. बुक-रिव्यू।
2. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने हिन्दी-सम्बन्धी अंश का अनुवाद, 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' के रूप में प्रस्तुत किया है।
3. तासी की नक़ल में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा एवं डॉ. व्रजेश्वर वर्मा ने 'हिन्दी-साहित्य' (द्वितीय खंड—1959 ई.) में उर्दू को भी समाहित किया है।

जिसमें एक सहस्र कवियों के वृत्त एवं रचना-उदाहरण प्राप्त होते हैं तथा जिसका मिश्रबन्धु के 'विनोद' एवं आ. शुक्ल के 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' पर भारी प्रभाव पड़ा है। किन्तु यह ग्रन्थ व्यवस्थित एवं सैद्धान्तिक नहीं है। सर जॉर्ज ग्रीअर्सन के 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान' (1889 ई.) का आधार भी 'सरोज' ही है। यद्यपि इसकी आलोचना व्यवस्थित एवं सैद्धान्तिक है तथापि ईसाइयत के असर और विक्टोरिया के प्रति विशेष भक्ति इत्यादि कारणों से यह वस्तुपरक नहीं रह सका। दूसरे, अंग्रेज़ी में होने के कारण भी इसका प्रभाव अत्यन्त सीमित रहा। डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने इससे अभिभूत होकर इसे 'हिन्दी-साहित्य का प्रथम इतिहास' का आत्मपरक विशेषण तक प्रदान कर डाला है, किन्तु इससे भी 'सरोज' के प्रस्थान-गौरव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सका। 'विनोद' की तुलना में पूर्ववर्ती के उन्मेष में, न परिचय-प्रस्तुति में, न आलोचनात्मक आकलन में, न उदारण-विभूति में अर्थात् न आकार में न प्रकार में। रामचन्द्र शुक्ल का 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (1929 ई.) वस्तुतः 'विनोद' की सामग्री का संक्षेपण प्रस्तुत करता हैः इसके अतिरिक्त भी, थोड़े-से फेरफार के साथ चार काल, उलट-पलटकर लगभग वैसे ही नामकरण, 'भारतेन्दु-काल' का प्रायः ज्यों-का-त्यों ग्रहण। आ. चतुरसेन शास्त्री (हिन्दी-भाषा और साहित्य का इतिहास), डॉ. किशोरीलाल गुप्त (हिन्दी-साहित्य के इतिहासों का इतिहास) इत्यादि ने मिश्रबन्धु एवं 'विनोद' का सम्यक् मूल्यांकन किया है। आ. ललिताप्रसाद सुकुल भी ऐसे ही विद्वान् थे। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक एवं डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र तो आज भी 'विनोद' को ही सर्वोत्तम हिन्दी-साहित्येतिहास मानते हैं। यद्यपि आ. शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' 1929 ई. में प्रकाशित हुआ तथा उसमें 'हिन्दी-शब्दसागर' की सामग्री का नितान्त व्यक्ति-केन्द्रित अधिग्रहण देखकर आ. श्यामसुन्दरदास कृत 'हिन्दी भाषा और साहित्य', डॉ. सूर्यकान्त शास्त्री कृत 'हिन्दी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास', महाकवि अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' कृत 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' तथा डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' कुछ ही वर्षों में ताबड़तोड़ प्रकाशित हुए (जिन्हें आ. रामचन्द्र शुक्ल ने अपनी अहंवादी शैली में 'देखा-देखी' लिखे गए माना—जैसाकि पं. कृष्णशंकर शुक्ल कृत 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास' शीर्षक प्रस्थान-ग्रन्थ की भूमिका में भी दर्ज़ है, यद्यपि बाद में गुरु की मालपचाऊवाद की लत से रुष्ट शिष्य ने वह भूमिका ही चलती कर दी), तथापि इन्हें 'विनोद'-परम्परा के कारण ही नहीं प्रत्युत इन सबमें प्रमुख साहित्येतिहासकारों के आदर्शवादी युग के साहित्यकार होने के कारण भी इसी युग में समाहित करना युक्तियुक्त होगा।

'विनोद' के प्रभाव में ह्रास के दो प्रधान कारण रहे। मिश्रबन्धु और आ. द्विवेदी की आपस में न बनती थी अतः व्यक्तिगत कारण से 'विनोद' में आचार्य एवं उनके मैथिलीशरण गुप्त जैसे शिष्यों की उपेक्षा ने उसके आदर्शवादी युग भाग को अपुष्ट कर दिया। मिश्रबन्धु ने 'भारतेन्दु-काल' तो माना (वस्तुतः प्रतिपादित किया) है किन्तु 'द्विवेदी-काल' नहीं जो व्यक्तिपरक काल-नामों से भरे 'विनोद' के अनुरूप नहीं है—आ. शुक्ल जैसे घोर अहंवादी आलोचक तक ने 'द्विवेदी-काल' को मान्यता प्रदान की है, आ. द्विवेदी की प्रशंसा भी की है। आ. शुक्ल का 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' तभी जम सकता था जब 'विनोद' की उपेक्षा होती अतः चतुर शुक्लजी ने मिश्रबन्धु एवं 'विनोद' पर प्रहार-पर-प्रहार किए, उनके चेले-चाटी एवं सरयूपारीण-दल ने उनका पदानुसरण किया, वे और चेले-चाटी विश्वविद्यालयों एवं पाठ्यक्रमों पर छाए थे ही अतः पाठ्यक्रमजन्य तोतारटंत में शुक्ल ही शुक्ल गूँजते रहे, बाद में अध्ययनविहीन तत्त्वों ने मिश्रबन्धु को आलोचकों एवं साहित्येतिहासकारों की 'अपनी' 'स्तम्भ-सूची'[1] से ही निकाल बाहर किया, डॉ. नलिनविलोचन शर्मा एवं डॉ. देवीशंकर अवस्थी इत्यादि ने 'विनोद'-प्रत्याख्यान एवं 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास'-स्तुति में सबके कान काटने की क़सम ही खा डाली! यह भी दासता की विडम्बना है कि रसवाद, अलंकारवाद, वक्रोक्तिवाद, ध्वनिवाद इत्यादि गहनतर सिद्धान्तों को नहीं प्रत्युत स्वच्छन्दतावाद, अभिव्यंजनावाद, मनोविश्लेषणवाद, मानवतावाद, मार्क्सवाद, अस्तित्ववाद इत्यादि अपेक्षाकृत अल्पजीवी वादों को ही सैद्धान्तिक आलोचनों का पर्यायवाची बना डाला है। परिणाम? साहित्य जीवन से अलग-थलग विश्वविद्यालय-परिसरों का बन्दी हो के रह गया है।

आ. द्विवेदी व्यवहारवादी आलोचक थे, जिनका आदर्शवाद जनकल्याण से संपृक्त था। इसीलिए, उनके सुनिर्दिष्ट एवं व्यवस्थित आलोचक न होने के बावजूद, उनका व्यापकतर प्रभाव पड़ा। आ. शुक्ल का लोकमंगलवाद उनसे प्रभावित था। किन्तु मिश्रबन्धु परम्परावादी-अलंकारवादी आलोचक थे, जो रस को महत्त्व तो देते थे किन्तु भाषा-छन्द-अलंकारादि पर अपेक्षाकृत अधिक

---

[1] 'हिन्दी-आलोचना के आधार-स्तम्भ' शीर्षक छात्रोपयोगी ग्रन्थ में सम्पादकद्वय स्व. डॉ. रामेश्वरलाल खंडेलवाल 'तरुण' एवं स्व. डॉ. सुरेशचन्द्र गुप्त ने आ. रामचन्द्र शुक्ल, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, आ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी एवं आ. नगेन्द्र (सब आचार्य-ही-आचार्य) का ही आरक्षण किया है।

रमते थे। आ. द्विवेदी की आलोचना जन-केन्द्रित थी, तत्त्वतः जनवादी थी। इधर साम्यवादी बन्धुओं ने इस दिशा में ध्यान देकर सत्य का साक्षात्कार किया है। द्विवेदी एवं शुक्ल दोनों महान् आचार्य पूँजी-विरोधी भी थे (शोषण-विरोध तो इसी में अनायास समाहित हो ही जाता है)। मिश्रबन्धु की आलोचना का आधार कृतित्व का आकलन मात्र था। उनकी आलोचना का आधार था : कवि या लेखक क्या कहना चाहता है और उसने उसे कैसा कहा? स्वयं सम्पन्न एवं समादृत होने के कारण वे पूँजी-विरोध न कर सके थे, किन्तु समता एवं सुधार के आदर्शों के हामी थे। सुधार एवं ममता के राजा राममोहन राय एवं स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे वाहकों की उन्होंने भरपूर प्रशंसा की है। 'विनोद' का 'दयानन्द-काल' उनके सुधारवादी आदर्श के प्रति सम्मान का ही द्योतक है। वे अत्यन्त उदार आलोचक थे तथा नूतनता के स्वागत को सदैव प्रस्तुत रहते थे। शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' की उन्होंने नूतन विषयों पर न लिखने के लिए आलोचना की। पन्त की नूतन प्रतिभा का उन्होंने खुले दिल से स्वागत किया। भारतीय इतिहास एवं पाश्चात्य दर्शन का उन्हें अच्छा ज्ञान था। उनके ऐतिहासिक पृष्ठभूमि-निरूपण, सिद्धों, नाथों, सूफ़ियों इत्यादि के सन्दर्भों में दार्शनिक ऊहा-पोह, रचना-परीक्षण, अंकाधृत आकलन इत्यादि पाश्चात्य आलोचना के गम्भीर ज्ञान की स्पष्ट सूचना देते हैं। किन्त वे पाश्चात्य आलोचना से न तो अभिभूत थे, न उसका प्रदर्शन ही करते थे। परिणाम यह हुआ कि 'नवरत्न' एवं 'विनोद' की सुनी-सुनाई चर्चा करनेवाले कई कथाकथित विद्वान् एवं तिकड़म के बल पर गद्दीधर यह समझने लगे कि उनकी आलोचना प्राचीन मात्र है। शिवाजी कॉलेज नई दिल्ली की एक छात्र-प्राध्यापक-गोष्ठी में जब मैंने यह कहा कि मिश्रबन्धु ने हिन्दी-आलोचना को पाश्चात्य मूल्यों से भी परिचित कराया था, तब किसी ने अपने वक्तृत्व में "न! आचार्य शुक्ल ने" का आदेश दिया जो इतना निराधार था कि मैंने खंडन करना भी अपना अपमान समझा। डॉ. रामदरश मिश्र यह सुनकर कि 'विनोद' में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि एवं प्रवृत्तियों का निरूपण भी है, चकित रह गए! लखनऊ विश्वविद्यालय के आचार्यों, प्रपाठकों, प्राध्यापकों एवं एम. फिल. छात्रों की एक गोष्ठी में जब मैंने हिन्दी-आलोचना एवं साहित्येतिहास पर प्रकाश डालते हुए यह स्पष्ट किया कि आ. शुक्ल पर मिश्रबन्धु का भारी प्रभाव था, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी से पहले ही मिश्रबन्धु ने सिद्धों एवं नाथों पर प्रकाश डाला था, डॉ. नगेन्द्र 'रीतिकाव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता' में मिश्रबन्धु के ही ऋणी हैं, तब प्रश्नों के तोपख़ाने से धड़ाधड़ गोलंदाज़ी चालू हुई और काफ़ी देर तक जारी रही। किन्तु मैं पूर्वाग्रहमुक्त सत्य का विश्लेषक हूँ; अतः मुझे कोई कठिनाई नहीं हो सकी। विस्मय यह हुआ कि मिश्रबन्धु लखनऊ के ही थे!

मिश्रबन्धु का क्रियात्मक प्रभाव पं. कृष्णविहारी मिश्र पर पड़ा, जिनकी सन्तुलित एवं गहन, उदाहरणपुष्ट एवं तर्कसंगत आलोचना की प्रशंसा आ. शुक्ल से डॉ. नगेन्द्र तक सभी विद्वानों ने की है। उनके 'देव और बिहारी' तथा 'मतिराम-ग्रन्थावली' (भूमिका) प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं और आज भी आदर के साथ पढ़े जाते हैं। डॉ. नगेन्द्र (देव और उनकी कविता), डॉ. महेन्द्रकुमार (मतिरामः कवि और आचार्य), डॉ. त्रिभुवनसिंह (महाकवि मतिराम) इत्यादि पर उनका भारी प्रभाव पड़ा है। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. हरदेव बाहरी का आदेश है, " 'देव और बिहारी' तुलनात्मक आलोचना का प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें पक्षपातपूर्ण आलोचना के स्पष्ट दर्शन होते हैं।" किन्तु बाहरी का आदर्श बाहरी है क्योंकि उन्होंने कोई तर्क या प्रमाण नहीं दिया। गुणवत्ता, गहनता एवं परिमाण में देव बिहारी से श्रेष्ठ कवि हैं, भले ही बड़े जयपुर-दरबार में रहने, एक दोहे पर एक अशर्फ़ी पाने, कुलंपति मिश्र एवं कृष्ण कवि के सम्बन्धों से भी लगातार ख्याति-पथ पर गतिशील होने, टीका-परम्परा से अधिकतम लाभ उठाने इत्यादि के कारण बिहारी का दबदबा बहुत अधिक रहा है। फ़ारसी शेर के निकटतम हिन्दी-दोहे में रचना के कारण भी बिहारी विशेष लोकप्रिय एवं लोक-प्रचलित रहे—'यथा राजा तथा प्रजा' के आधार पर भी, संक्षिप्तता के आधार पर भी, कसावट के आधार पर भी। किन्तु बिहारी के यहाँ कोई जीवन-दर्शन नहीं है, कोई विशिष्ट प्रतिपाद्य नहीं है। देव का शृंगार-दर्शन परिपुष्ट हैं, रचना-दर्शन सुस्पष्ट हैं, वे रहस्यवादी भी हैं—कलाकार तो वे हैं ही! यह सत्य है कि विपुल रचना-राशि में देव के फस्सड़ छन्द काफ़ी हैं, 'सतसई' की संकीर्ण सीमा में फस्सड़ दोहे कम हैं क्योंकि कवि ने केवल चुने-चुने दोहे ही रखे हैं (लिखे तो उसने बहुत होंगे ही)। किन्तु वस्तुपरक आकलन यथास्थितिवादी होता है। कम लिखने के कारण ही किसी को वरीयता नहीं प्रदान की जा सकती। बिहारी महाकवि हैं, हिन्दी के ग़ालिब हैं। किन्तु देव की नव्य-प्रतिष्ठा के प्रति पूर्वाग्रह उचित नहीं। मिश्रबन्धु के पिता पं. बालदत्त मिश्र का देव को आकश बताना अग्राह्य है, मिश्रबन्धु द्वारा केशव पर देव को वरीयता प्रदान करना अनुचित है। किन्तु जो उचित है, उसका केवल रूढ़िवाद के आधार पर प्रत्याख्यान तो विशेष रूप से अनुचित हो जाता है। बाहरी आ. शुक्ल से आतंकित होने के कारण बिहारी का पक्ष ले गए हैं। मैं स्वयं ऐसी अनेक ग़लतियाँ कर चुका हूँ। अब अध्ययन एवं कठोर वस्तुवाद के आधारों पर उन्हें दूर कर रहा हूँ।

मिश्रबन्धु का प्रतिक्रियात्मक प्रभाव आ. पद्मसिंह शर्मा एवं लाला भगवानदीन 'दीन' पर पड़ा। आ. पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी की सतसई' में प्रभाववादी आलोचना का आश्रय ग्रहण किया है, जो स्थूल वाहवाहवाद की उर्दूबाज़ी की याद दिलाती चलती है। संस्कृत, फ़ारसी और हिन्दी कविताओं में गहरी पैठ के कारण शर्माजी की आलोचना विद्वत्तापूर्ण और भड़कीली तो है किन्तु वस्तुपरक और तर्कसंगत नहीं। वे किसी भी छन्द या शेर को उठाकर उसका प्रयोग बिहारी के पक्ष में ही करते हैं। उनकी तुलना में 'बिहारी और देव' के आलोचक लाला भगवानदीन 'दीन' अधिक सन्तुलित हैं (यद्यपि उनका ग्रन्थ क्रिया की सहजता को नहीं अपितु प्रतिक्रिया की कृत्रिमता को विवृत करता है)। 'सूर-पंचरत्न' की भूमिका में उनकी आलोचना अत्यन्त संयत एवं वस्तुपरक है।[1] 'दीन' जी ने 'कठिन काव्य के प्रेत' महाकवि केशवदास कृत रामचन्द्रिका, कविप्रिया एवं रसिकप्रिया की मानक टीकाएँ लिखकर उनका प्राध्यापकों एवं छात्रों के बीच प्रशस्य प्रवेश कराया। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने उनकी उचित प्रशंसा की है। उनकी 'कवितावली' की टीका[2] प्रात्ययिक है, 'बिहारी-सतसई' की भावुकतापूर्ण। हिन्दी के विद्वानों एवं आलोचकों में 'दीन' सर्वाधिक पीन टीकाकार हैं! उनकी 'अलंकार-मंजूषा' एवं 'व्यंग्यार्थ-मंजूषा' उत्कृष्ट शास्त्रीय पुस्तकें हैं। 'दीन' जी घोर परम्परावादी आलोचक एवं विद्वान् थे। वे 'छायावाद' को 'छोकरावाद' मानते थे!

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल आदर्शवादी युग के ही नहीं प्रत्युत हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ आलोचक हैं, क्योंकि उनमें मिश्रबन्धु से अधिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं, क्योंकि उनमें आचार्य श्यामसुन्दरदास से अधिक तेजस्विता एवं स्थापना-शक्ति प्राप्त होती है, क्योंकि उनके आयाम आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा इत्यादि से बहुत अधिक स्फीत हैं, क्योंकि उनका प्रभाव व्यापकतम पड़ा है। मिश्रबन्धु में अध्यवसाय निस्सन्देह बहुत अधिक है, जिससे आ. शुक्ल ने बेहद फ़ायदा भी उठाया है; किन्तु उनमें वह प्रतिभा न थी जो बालू से भी तेल निकाल सकती है, जिससे आ. शुक्ल सर्वथा परिपूर्ण हैं। आ. वाजपेयी, डॉ. द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. शर्मा इत्यादि आ. शुक्ल की समता न अध्यसाय में कर पाते हैं, न प्रतिभा में। इन चार में 'प्रस्थान' का श्रेय केवल स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) के प्रतिष्ठापक आ. वाजपेयी एवं मार्क्सवादी आलोचना के प्रवर्तक एवं प्रकृष्ट प्रतीक डॉ. शर्मा को प्राप्त हो सकता है, क्योंकि डॉ. द्विवेदी ने आ. शुक्ल द्वारा उपेक्षित सिद्धों, नाथों एवं सन्तों की प्रतिक्रियात्मक प्रतिष्ठा मात्र की है तथा डॉ. नगेन्द्र ने आ. वाजपेयी द्वारा प्रतिष्ठित स्वच्छन्दतावाद, विशेषतः कामायनी, का आधार ग्रहण किया है। वस्तुतः आ. वाजपेयी, डॉ. द्विवेदी एवं डॉ. नगेन्द्र शुक्लोपजीवी आलोचक हैं; प्रथम ने आ. शुक्ल के स्वच्छन्दतावाद-विरोध की प्रतिक्रिया में लिखा, द्वितीय ने आ. शुक्ल के सिद्ध-नाथ-सन्त-अवमूल्यन की प्रतिक्रिया में लिखा, तृतीय ने आ. शुक्ल के स्वच्छन्दतावाद-विरोध की प्रतिक्रिया में लिखा और आ. वाजपेयी की परम्परा को ग्रहण किया। आ. शुक्ल हिन्दी में जायसी के वाहक एवं घनआनन्द के प्रतिष्ठापक हैं, सूफ़ी-कविता के प्रथम आकलनकर्ता हैं। ऐसा कोई कार्य डॉ. द्विवेदी एवं डॉ. नगेन्द्र नहीं कर सके, क्योंकि सिद्ध, नाथ एवं सन्तों की प्रतिष्ठा मिश्रबन्धु कर ही चुके थे, सिद्ध-साहित्य पर बांग्ला में महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री, प्रबोधचन्द बागची, शहीदुल्ला इत्यादि का 'प्रस्थान'-कार्य एवं हिन्दी में महापंडित राहुल सांकृत्यायन का लगभग 'प्रस्थान'-कार्य किया ही जा चुका था, आ. शुक्ल का अवमूल्यन-आयाम व्यर्थ प्रमाणित हो ही चुका था एवं स्वच्छन्दतावाद, प्रसाद, निराला इत्यादि पर 'प्रस्थान'-कार्य का श्रेय आ. वाजपेयी को जाता है। डॉ. शर्मा मार्क्सवादी आलोचना के वाहक एवं नायक तो हैं किन्तु भारतेन्दु, आ. द्विवेदी एवं निराला पर 'प्रस्थान'-कार्य मिश्रबन्धु, आ. शुक्ल एवं आ. वाजपेयी का ही है। 'प्रस्थान'-गरिमा में कवि-आलोचना, तुलनात्मक-आलोचना एवं साहित्येतिहास-प्रस्तुति का निष्ठापूर्ण अध्यवसाय, साधनसम्पन्न होने के कारण व्यय-सामर्थ्य एवं समय थे।

आ. शुक्ल के महान् आलोचक-रूप के दर्शन क्रमशः 'गोस्वामी तुलसीदास', 'जायसी-ग्रन्थावली' की स्फीत भूमिका एवं 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में होते हैं। उनकी तुलसी-आलोचना निर्दोष, सत्यान्वेषिणी एवं प्रात्ययिक है, जिसमें तुलसी की भक्ति-पद्धति, उनके लोकमंगलवाद एवं उनके अतुलनीय प्रभाव का प्रशस्य विवेचन किया गया है। उनकी जायसी-आलोचना प्रशंसा के छोर पर जा पड़ी है (जायसी की उदारता-चर्चा निराधार है, उनकी अतिभावुकता की सीमाएँ विरहबद्ध हैं, उनका उत्तम सृजन बहुत अधिक नहीं है), किन्तु उन्होंने सूफ़ी-दर्शन एवं जायसी की प्रतिभा पर चिरस्मरणीय प्रकाश डाला है, इस पर दो मत नहीं हो सकते। उनकी सूर-आलोचना अपेक्षाकृत साधारण होने के कारण प्रभावहीन सिद्ध हुई है। 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' 'हिन्दी-शब्दसागर' की भूमिका का पल्लवन एवं 'विनोद' का संक्षेपण ऐसी शैली में करता है, जो अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित एवं पर्याप्त तर्कसंगत है। 'विनोद'

---

[1] संपादन 'दीन' ने अपने प्रिय शिष्य मोहनवल्लभ पन्त के साथ मिलकर किया था।

[2] यह टीका 'दीन' ने अपने पट्ट शिष्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र के साथ मिलकर लिखी थी।

का वर्गीकरण जटिल है, वह ग्रन्थ बहुत बड़ा भी है, उसमें व्यवस्था का अभाव-सा है तथा उसका ऊहापोह केवल अनुशीलनवादी-मूल्यवादी विद्वान् ही कर सकते हैं, सत्वरतावादी-सुविधावादी प्राध्यापक नहीं, परीक्षावादी-परिणामवादी छात्र नहीं। 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में वर्गीकरण सरल है, यह ग्रन्थ विषय को देखते छोटा भी है, इसमें व्यवस्था पर्याप्त अधिक है तथा इसका ऊहापोह कठिन नहीं है। आ. शुक्ल एवं शिष्य-प्रशंसक-मंडल के विश्वविद्यालयों से सम्बन्ध के कारण यह प्रश्नपत्रों का आधार-ग्रन्थ भी बन चुका है। किन्तु इसमें अनेक विसंगतियाँ एवं त्रुटियाँ भी हैं। उनका वीरगाथाकाल नाम समीचीन एवं साधार नहीं है, क्योंकि रासो-काव्य केवल दो ही प्राप्त हुए हैं जिनमें वीसलदेवरासो शृंगारप्रधान है तथा पृथ्वीराजरासो में शृंगारकाव्य ही श्रेष्ठतर भी है, परिणामक्षम भी; रासो शब्द स्वयं वीरगाथाकाल के अनुरूप नहीं है; तीसरे, 'रासो'-काव्य प्रामाणिक एवं प्रात्ययिक नहीं हैं। उनका सिद्ध-नाथ इत्यादि के काव्य को सैद्धान्तिक कहना और काव्य की परिधि से बाहर निकालना तथा इसी के साथ उनका समावेश करना आत्मर्विरोधपूर्ण है। उनके भक्तिकाल का नामकरण एकांगी है और सूफ़ी-प्रेमकाव्यों को भक्ति में समाविष्ट करना अनौचित्यपूर्ण। उनका रीतिकाल नाम विवादास्पद है। उनका गद्यकाल नाम आरम्भ से ही प्रभावहीन रहा है। उनके 'प्रथम उत्थान', 'तृतीय उत्थान' नाहक ही उलझानेवाले तथा व्यर्थपरिणामी हैं। उनका एक युग के ही गद्य एवं पद्य का पृथक्-पृथक् एवं दूरी-दूरी पर विवेचन तर्कसंगत नहीं है। उनके सिद्धों, नाथों, सन्तों, केशव इत्यादि कलावादियों, देव इत्यादि अभिधावादियों, प्रसाद इत्यादि स्वच्छन्दतावादियों इत्यादि के प्रत्याख्यान को किसी ने मान्यता प्रदान नहीं की। उनके मिश्रबन्धु, श्यामसुन्दरदास इत्यादि के प्रति विद्वेषपूर्ण कथनों ने उनकी शोभा में कोई वृद्धि नहीं की। उनके 'द्विवेदी-काल' के बाद के साहित्यिक विचारों को कोई महत्त्व प्राप्त नहीं हो सका। अतः प्रबुद्ध एवं वस्तुवादी अध्येताओं के लिए 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' प्रमाणग्रन्थ नहीं रह गया। निस्सन्देह, अपने प्रभाव एवं गौरव में 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' सदैव अमर रहेगा। किन्तु उसकी कमियों पर विचार ही प्रगति का सूचक हो सकता है, अन्धानुकरण नहीं। उनकी प्रतिभा का आतंक इतना विचित्र रहा कि यदि उन्होंने 'सरोज' का प्रकाशन 1883 ई. (सही वर्ष 1878 ई.) लिख दिया तो लोग उसे ही टीपते चले गए, यदि उन्होंने 'परीक्षा-गुरु' (सही होता 'देवरानी-जेठानी की कहानी') को हिन्दी का प्रथम उपन्यास घोषित कर दिया तो पिछलगुए वही रटते रहे, यदि उन्होंने श्रद्धाराम फुल्लौरी (सही है फिल्लौरी) कह दिया तो वही प्रचलित हो गया ('पद्मश्री' देवेन्द्र सत्यार्थी तो मुझसे इसके औचित्य तक पर दुर्बल-सा तर्क कर रहे थे—मज़ा यह है कि वे पंजाबी हैं और फिल्लौर अब भी, विभाजन के बाद भी, भारत में ही है)! उन्होंने लिख दिया कि लंका के निवासी काले-कलूटे होते हैं, जबकि बहुसंख्यक सिंहली न काले हैं, न कलूटे; किन्तु किसी की क्या मजाल जो चूँ भी करे! इसे हमारे यथास्थितिवादी जीवन-दर्शन से भी संपृक्त किया जा सकता है। प्रबुद्ध पश्चिम ईसाई होते हुए भी ईसा की आलोचना कर सकता है; मोहम्मद की ईसा-प्रशस्ति के बावजूद उनके अतिशय विवादास्पद जीवन का प्रत्याख्यान कर सकता है; शेक्सपियर, मॉर्लो, ऑस्कर वाइल्ड की समकामुकता पर प्रकाश डाल सकता है; शेली (शेले) की उच्छृंखल कामुकता एवं नारी-वृत्ति तक को उजागर कर सकता है; शेक्सपियर, मिल्टन, शॉ इत्यादि की कड़ी आलोचना कर सकता है; और, हम आचार्य शुक्ल के आत्मविरोधी बिन्दुओं एवं उनकी निर्विवाद त्रुटियों तक पर विचार नहीं कर सकते! क्या यही विकास है? क्या यही बुद्धिमत्ता है?क्या यह मानव-समता, राष्ट्र-गरिमा एवं राष्ट्रभाषा-विकास के अनुरूप है? आ. शुक्ल हमारे आलोचना-संसार के एक शिखर हैं; किन्तु हमें उस शिखर से आगे बढ़ना ही पड़ेगा क्योंकि यही जीवन का नियम है; अतः पीछे ही देखते रहने से आगे ठोकर लगने या खड्ड में गिरने की सम्भावना है। यह सत्य है कि धनुष की प्रत्यंचा को पीछे खींचने पर ही शर आगे जाता है, ऊँची कूद के लिए पीछे से दौड़ना पड़ता है, ऊँची छलाँग के लिए हाथ पीछे ले जाना आवश्यक है; किन्तु लक्ष्य तो 'आगे' का ही होता है! हम आ. शुक्ल को पढ़ें, सराहें, किन्तु आगे भी बढ़ें! जो राष्ट्र सत्य के साक्षात्कार का साहस नहीं रखता, वह प्रगति नहीं कर पाता। जो भाषा स्थिर हो जाती है, वह उर्दू के सदृश पिछड़ जाती है। जो साहित्य परिशोध-सक्षम नहीं होता, वह प्रतिक्रियावादी हो जाता है।

आ. शुक्ल शास्त्रवादी-लोकमंगलकारी आलोचक थे। उनका शास्त्रवाद मिश्रबन्धु के परम्परावाद से अधिक गतिशील एवं व्यापक है, उनका लोकमंगलवाद आ. द्विवेदी के लोकमंगलवाद से अधिक सैद्धान्तिक एवं विद्वत्तापूर्ण है। वे कृतित्व का परीक्षण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि रस, अलंकार, भाषा, छन्द, लोकमंगल एवं प्रभाव के समाहार के साथ करते हैं, जो अपने-आप में पूर्ण-सा प्रतीत होता है। वे व्यक्तिवैचित्र्यवाद अथवा मनःतरंगवाद के विरोधी हैं तथा चमत्कारवाद के कटु आलोचक। वे रहस्यवाद के विरोधी हैं, पारम्परिक-भक्तिवाद के समर्थक। उनकी व्यक्तिगत भावनाएँ इतनी अधिक अनियन्त्रित हैं कि वे बहुत बार रचनाकार को उसकी अस्मिता में विवृत न करके अपनी अस्मिता में विवृत करने लगते हैं। आलोचक का कर्तव्य आलोच्य के सत्य का उद्घाटन है, जिसमें कई बार कठोरता का प्रयोग भी अपरिहार्य हो जाता है। किन्तु आलोचक का धर्म आलोच्य के सत्य को विवृत करना है, अपने-आप

को नहीं। इस बिन्दु पर आ. शुक्ल की आलोचना अनेक बार निराशाजनक लगने लगती है—केशव, देव, प्रसाद इत्यादि के प्रसंग प्रमुख उदाहरण हैं। इस बिन्दु पर उनकी तुलसी-आलोचना अवश्य परमोत्कृष्ट एवं विश्वस्तरीय है, जायसी की वस्तुवादी न होते हुए भी विद्वत्तापूर्ण है, सूर की साधारण है।

आ. श्यामसुन्दरदास का आलोचक-रूप आ. शुक्ल एवं मिश्रबन्धु के अनन्तर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि उन्होंने 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला' (भाग 1-2; 1909 ई.) एवं 'हिन्दी-गद्य के निर्माता (भाग 1-2; 1940 ई.) में हिन्दी के प्रमुख कवियों, आचार्यों एवं लेखकों का जीवनवृत्त एवं उनके कृतित्व की आलोचना प्रस्तुत की, जिनमें प्रथम का भरपूर लाभ 'विनोद' एवं 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के प्रस्तोताओं ने भी उठाया है तथा द्वितीय का परवर्ती ग्रन्थकारों ने; क्योंकि 'गोस्वामी तुलसीदास' (1931 ई.) एवं 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (1927 ई.) अपने विषयों के साथ वस्तुपरक न्याय करते हैं; क्योंकि 'हिन्दी भाषा और साहित्य' (1930 ई.) में आलोचनात्मक मूल्यों की दृष्टि से पृथ्वीराजरासो, केशवदास इत्यादि पर उच्चकोटि की सामग्री प्राप्त होती है; और, केवल विशुद्ध आलोचना-दृष्टि से केवल यही कार्य अत्यन्त महान् है—जबकि उनके अनेकानेक ग्रन्थावली-सम्पादनों के 'कबीर-ग्रन्थावली' (1928 ई.) में कबीर एवं 'रत्नाकर ग्रन्थावली' (1933 ई.) में रत्नाकर की जैसी वस्तुपरक टकसाली आलोचना मिलती है वैसी डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के 'कबीर' की भाषणवादी आलोचना एवं पं. कृष्णशंकर शुक्ल के 'कविवर रत्नाकर' की अपेक्षाकृत अधिक परम्परावादी आलोचना में भी नहीं मिल पाती। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा (16 जुलाई, 1893) के प्रमुख संस्थापक, आर्य भाषा पुस्तकालय (1903 ई.) के संस्थापक, 'हिन्दी-शब्दसागर' (1907 ई.) के प्रधान सम्पादक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष (1921 ई. से), 'सरस्वती' (1900 ई.) के सम्पादकमंडल-सदस्य, प्राथमिक से उच्चतम स्तर के पाठ्यपुस्तक-प्रस्तोता इत्यादि-इत्यादि के रूपों में वे हिन्दी के महानतम सेवकों की उस पंक्ति में भी प्रतिष्ठित हैं, जिसमें महामना पंडित मदनमोहन मालवीय एवं भारतरत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे राष्ट्रनायक। व्यक्तित्व की महानता में आ. शुक्ल, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र इत्यादि उनके आसपास तक नहीं आ पाते—केवल आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी का महतोमहीयान् गुरुत्व ही उनसे आगे आ पाता है, जिनका अनेक विरोधों के बावजूद भी वे चरणस्पर्श किया करते थे तथा जिनके 'प्रस्थान'—अभिनन्दनग्रन्थ (द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ, 1933 ई.) के वे सम्पादक भी थे। आ. श्यामसुन्दरदास व्यक्तित्व एवं कृतिष्व दोनों में अध्यापक थे तथा उनकी आलोचना अध्यापक की आलोचना है—अध्ययनपुष्ट, वस्तुपरक, शालीन एवं सन्तुलित—जिसमें मिश्रबन्धु की विशद सहृदयता, आ. शुक्ल की प्रखर प्रतिभा—तेजस्विता, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी (जो उनके पट्ट शिष्य थे) की प्रचंड प्रहार-शक्ति, डॉ. द्विवेदी की मोहक भाषणवादिता, डॉ. नगेन्द्र की कलात्मक भाषा-प्रांजलता एवं डॉ. रामविलास शर्मा की सुनियोजित जनवादिता नहीं है, किन्तु जिसकी स्फीति एवं उपादेयता उन्हें आ. शुक्ल एवं मिश्रबन्धु के साथ आलोचक-बृहत्त्रयी में प्रतिष्ठित कर देती है। ब्राह्मणवाद के कारण आ. श्यामसुन्दरदास के साथ न्याय नहीं हो पाया। आ. शुक्ल उनके भयंकर विरोधी थे। आ. द्विवेदी से भी उनकी चलती थी। इससे उनका आकलन बाधित हुआ। वे एक सन्तुलित विश्वस्तरीय आलोचक हैं, जो सेंट्सबरी का स्मरण करा देते हैं।

आ. श्यामसुन्दरदास वस्तुवादी आलोचक हैं, जो आलोच्य के सत्य को निस्संग रूप से प्रस्तुत करते हैं तथा उच्चकोटि के विद्वान् के रूप में अपना निर्णय भी देते चलते हैं। उनकी भाषा में हिन्दी की अस्मिता ज्योतिर्मय हुई है क्योंकि वे विदेशी शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर ही करते हैं। विशुद्ध बौद्धिकता के उत्कर्ष के साथ आ. श्यामसुन्दरदास का आलोचक-रूप अधिकाधिक विशिष्ट माना जाता चला जा सकता है। प्रायः 1893 ई. (किशोरावस्था) से प्रायः 1945 ई. (निधन-वर्ष) तक उनकी प्रचारात्मक, प्रशासन-प्रतिष्ठात्मक, शैक्षिक एवं साहित्यिक सेवाओं की समुचित प्रशस्ति राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने इन सक्षम शब्दों में की है :

मातृभाषा के हुए जो विगत वर्ष पचास,
नाम उनका एक ही है श्यामसुंदरदास।[1]

× × ×

आदर्शवादी युग में आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरक-आलोचना, मिश्रबन्धु की स्फीत परंम्परावादी-अलंकारवादी आलोचना, आ. शुक्ल की प्रातिभ शास्त्रवादी-लोकमंगलवादी आलोचना तथा आ. श्यामसुन्दरदास की प्रशान्त वस्तुवादी आलोचना का उद्भव

---

1. राष्ट्रकवि ने उक्त पंक्तियों में स्वगुरु आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के आ. श्यामसुन्दरदास के लिए निम्नलिखित आशीर्वादकां बड़ा सजीव विकास किया है :

मातृभाषा के प्रचारक, विमल, बी.ए. पास,
सौम्य, शीलनिधान बाबू श्यामसुन्दरदास।

आ. श्यामसुन्दरदास को विमल प्रियनाम से पुकारा जाता था।

परवर्ती कालों तक प्रभावी रहा, आज भी प्रभावी है, कल भी प्रभावी रहेगा। शुक्ल-मिश्रबन्धु-दास की आलोचक-बृहत्त्रयी वस्तुतः भी अद्वितीय है, तत्त्वतः भी अद्वितीय है। आ. पद्मसिंह शर्मा, पं. कृष्णविहारी मिश्र एवं लाला भगवानदीन 'दीन' इत्यादि ने तुलनात्मक-आलोचना का विद्वत्तापूर्ण विकास किया। वास्तव में हिन्दी-आलोचना के विशाल भवन का शिलान्यास भी इसी काल में हुआ था तथा निर्माण भी इसी काल में हुआ। परवर्ती आलोचकों के लिए उनके अपने युग मात्र शेष रहे, कतिपय पाश्चात्य आलोचना-सिद्धान्ताधृत प्रयास मात्र शेष रहे। निस्सन्देह, आदर्शवादी युग हिन्दी-आलोचना का स्वर्ण-युग था, जिसमें आलोचना का स्वर्ण-युग था, जिसमें आलोचना जनवादी रही, उच्चादर्शवादी रही, 'प्रस्थान'-गौरव से सम्पन्न रही; और उसने विश्व-स्तर की विस्मयकारी प्राप्ति कर ली।

कहानी का उद्भव एवं विकास

सुधारवादी युग (1850-1900 ई.) में राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द कृत अमर कथात्मक-निबन्ध 'राजा भोज का सपना' एवं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कृत कथात्मक-निबन्ध 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' जैसी रचनाएँ तो प्रकाश में आई थीं, किन्तु कहानी की रचना नहीं हुई थी। कथात्मक-निबन्ध में कथातत्त्व साधन अथवा शिल्प के रूप में प्रयुक्त किया जाता है तथा साध्य विचार-विशेष ही होता है। अतः उसे निबन्ध ही माना जा सकता है, कहानी नहीं। कहानी का आधुनिक रूप जीवन की किसी एक घटना अथवा चरित्र की किसी एद्व प्रवृत्ति अथवा इतिहास के किसी एक कांड-विशेष को इस भाँति प्रस्तुत करता है कि देशकाल साकार हो उठे तथा मानव-चरित्र का स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण पाठक को अभिभूत कर ले। विंटरनिट्ज़ जैसे विदेशी विद्वानों ने स्वीकार किया है कि कहानी का जन्म भारत में हुआ तथा ईसप का कथालोक यूनान-प्रेरित न होकर भारत-प्रेरित है। अंग्रेज़ी-ग्रन्थकार प्रो. शारदाप्रसाद सक्सेना तथा हिन्दी-विद्वान् डॉ. मोतीचन्द्र ने कहानी की भारतमूलकता का प्रभावी प्रतिपादन किया है। प्राचीन कहानी (जिसके बीज मानव-जाति के आदिग्रन्थ ऋग्वेद में मिलते हैं तथा फल उपनिषद्, बाइबिल, ईसप[1], कथासरित्सागर[2], पंचतन्त्र, हितोपदेश, कुरान इत्यादि में) का उद्देश्य नैतिक था, मध्यकालीन कहानी (जो अलिफ़-लैला, बोक्कैशिओ या बोक्केचिओ[3] इत्यादि में उपलब्ध है) का मनोरंजन, किन्तु आधुनिक कहानी का उद्देश्य मनुष्य के चरित्र की किसी एक प्रवृत्ति, उसके जीवन-द्वन्द्वों में किसी एक द्वन्द्व, उसके जीवन की घटनाओं में किसी;एक घटना की स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक प्रस्तुति है (भले ही वह नैतिक प्रेरणा भी दे जाए, मनोरंजन भी करं जाए)। इसके समारम्भ का श्रेय अमेरिका के एडगर एलन पो को दिया जाता है (यद्यपि उनमें औत्सुक्य एवं नाटकीयता का आग्रह पर्याप्त अधिक है); इसका परमोत्कर्ष फ्रांस के मोपासाँ एवं रूस के चेख़व में प्राप्त होता है। मोपासाँ, ओ' हेनरी इत्यादि विश्व के अग्रणी कहानीकार हैं।

हिन्दी की पहली मौलिक कहानी माधवप्रसाद मिश्र रचित 'मन की चंचलता' (1900 ई.) है, जिनकी 'लड़की की बहादुरी' (1904 ई.), 'विश्वास का फल', 'दया का फल', 'पितृभक्ति का फल', 'सत्य और सन्तोष का फल', 'पुरोहित का आत्मत्याग' इत्यादि कहानियाँ भी सोद्देश्य एवं आदर्शवादी हैं अर्थात् अपने युग एवं उनके अपने व्यक्तित्व के सर्वथा अनुरूप हैं। किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' (1900 ई.) शेक्सपियर की कामदी 'टेम्पेस्ट' का छायानुवाद है (उनकी 1887 ई. की 'प्रणयिनी-परिणय' लेखक के निर्णय एवं आकार-प्रकार, सभी में उपन्यासिका है, कहानी नहीं), माधवराव सप्रे की 'सुभाषित-रत्न' (1900 ई.) शीर्षक से शरीर तक सर्वत्र एक उपदेशात्मक घटना मात्र है तथा उन्हीं की 'एक टोकरी मिट्टी' (1901 ई.) प्राचीन ईरान के नौशेरवाने-आदिल की प्रसिद्ध-न्यायकथा का स्थानीय अस्वाभाविक-लोककथा से गड्डमड्ड मात्र। अतः 'मन की चंचलता' (1900 ई.) के कहानीकार माधवप्रसाद मिश्र की हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी के प्रणेता सिद्ध होते हैं। माधवप्रसाद मिश्र, माधवराव सप्रे एवं किशोरीलाल गोस्वामी ने 1900-2 में मौलिक एवं छायाकृत कहानियाँ लिखीं। 'इन्दुमती' को महान् 'सरस्वती' में प्रकाशित होने, किशोरीलाल गोस्वामी के 'सरस्वती' के सम्पादकों में एक होने तथा अपने युग के प्रख्यात उपन्यासकार होने के कारणत्रय से विशेष ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त हो गया है, किन्तु

---

[1] यूनान के प्राचीन नैतिकता-प्रेरक कथाकार, जिनका प्रेरक भारतीय कथा-साहित्य था।

[2] जिसका आधार गुणाढ्य कृत अनुपलब्ध 'बड्डकहा' या बृहत्कथा थी। कथाकार सोमदेव थे।

[3] इटली के अमर कथाकार।

उसका छायानुवाद होना निर्विवाद है। 'सरस्वती' में ही भगवानदीन बी.ए. की 'प्लेग की चुड़ैल' (1902 ई.) प्रकाशित हुई, जो यथार्थ के अंकन में अद्वितीय है। इसी महान् पत्रिका में रामचन्द्र शुक्ल की भारी-भरकम और मौलिकता-प्रश्नित 'ग्यारह वर्ष का समय' (1903 ई.) का प्रकाशन हुआ तथा बंगमहिला की सफल और मौलिक 'दुलाईवाली' (1907 ई.) का। 'सरस्वती' में ही वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखीबन्द भाई' (1909 ई.) प्रकाशित हुई, जिसे हिन्दी की प्रथम मौलिक ऐतिहासिक कहानी माना जा सकता है। 1909 ई. में काशी से प्रसिद्ध 'इन्दु' पत्रिका निकली, जिसके प्रेरक थे जयशंकर 'प्रसाद' तथा सम्पादक उनके भांजे अम्बिकाप्रसाद गुप्त, जिसमें प्रमुखतः प्रसाद की विभिन्न रचनाएँ प्रकाशित होती थीं—इसी में प्रसाद की प्रथम कहानी 'ग्राम' (1912 ई.) प्रकाशित हुई थी। राधिकारमणप्रसाद सिंह की प्रसिद्ध कहानी 'कानों का कँगना' (1913 ई.) 'इन्दु' में ही प्रकाशित हुई थी। हिन्दी की प्रथम महान् कहानी 'उसने कहा था' (जून, 1916) का प्रकाशन 'सरस्वती' में हुआ था, जिसके लेखक के रूप में चन्द्रधर शर्मा गुलेरी अमर हो गए। 'उसने कहा था' आ. क्षेमचन्द्र 'सुमन' के अनुसार पश्चिम की एक युद्धकथा (1914-19 ई. के प्रथम विश्वयुद्ध का काल था) का छायानुवाद है, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार भारी-भरकम (उपन्यासिका का नॉवेलेट जैसी) है, और मेरी समझ में अस्वाभाविक आदर्शवाद से लदी-बदी है, किन्तु बहुत-कुछ तो 'सरस्वती' में प्रकाशित होने, शेषतः लेखक के उच्चपदस्थ विद्वान् होने तथा ऐतिहासिकताः आ. शुक्ल के लेखक के मित्र होने के कारणों से उसे भारी प्रशंसा प्राप्त हो गई है, जो वस्तुपरक नहीं है। 'उसने कहा था' छायाग्रस्त भारी-भरकम कहानी है, जो अस्वाभाविक आदर्शवाद से आच्छन्न है। फिर भी, आ. शुक्ल ने इसे अपने साहित्येतिहास में हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी कहा और प्रायः अनुकरण में डॉ. नगेन्द्र ने अपने 'विचार और अनुभूति' ग्रन्थ में 'उसने कहा था' शीर्षक स्तुति-निबन्ध ही लिख डाला। कहानी स्वस्थ एवं रोचक है, किन्तु स्वाभाविक नहीं, साधार नहीं। प्रसाद की 'गुण्डा' कहानी मिलते-से कथानक के बावजूद अधिक स्वाभाविक है; शतशः मौलिक तो है ही।

1900-15 ई. का समय 'हिन्दी-कहानी के इतिहास का निर्णायक समय है, जिसमें 'मन की चंचलता' (1900 ई.) को प्रथम कहानी[1] होने का महत्त्व प्राप्त है, 'प्लेग की चुड़ैल' (1902 ई.) को प्रथम यथार्थवादी कहानी होने का महत्त्व प्राप्त है, 'दुलाईवाली' (1907 ई.) को प्रथम कलात्मक कहानी होने का महत्त्व प्राप्त है, 'राखीबंद भाई' (1909 ई.) को प्रथम ऐतिहासिक कहानी होने का गौरव प्राप्त है, 'कानों का कँगना' (1913 ई.) को प्रथम मार्मिक सामाजिक कहानी होने का गौरव प्राप्त है, तथा 'उसने कहा था' (1915 ई.) को प्रथम महान् कहानी होने का गौरव प्राप्त है (भले ही व्यक्तिगत रूप से कोई सहमत हो या असहमत)। इसी ऐतिहासिक मोड़ पर, हिन्दी के महान् कहानीकार प्रेमचन्द की 'पंच-परमेश्वर'[2] (जून, 1916) का 'सरस्वती' में ही प्रकाशन हुआ। उनकी 'सज्जनता का दंड', 'ईश्वरीय न्याय', 'दुर्गा का मन्दिर' इत्यादि कहानियाँ भी 'सरस्वती' में प्रकाशित हुईं। ज्वालादत्त शर्मा की 'मिलन', प्रख्यात कहानीकार विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' की प्रख्यात कहानी 'रक्षाबन्धन', पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी की 'झलमला' इत्यादि कहानियों का प्रकाशन भी महान् 'सरस्वती' में ही हुआ। 'सरस्वती' के कारण कहानी का अपूर्व विकास तो हुआ ही, उसे लोकप्रियता भी प्राप्त हुई। इस दिशा में 'इन्दु' भी उल्लेख्य है। 1918 ई. में काशी से हिन्दी के प्रथम कहानी-मासिक 'हिन्दी-गल्पमाला' का प्रकाशन विधा की विशिष्ट लोकप्रियता का द्योतक है। अब तो कहानी-मासिक चलाना एक अच्छा-ख़ासा धन्धा ही बन गया है।

आदर्शवादी युग की कहानी युगीन कविता, निबन्ध, आलोचना इत्यादि के सदृश ही नैतिकता-प्रतिष्ठा, त्याग-प्रतिपादन एवं देशप्रेम की कहानी है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसने मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण एवं सजीव देशकाल-चित्रण पर ध्यान ही नहीं दिया। 'पंच-परमेश्वर' में आदर्श की प्रतिष्ठा के साथ-साथ यथार्थ का मार्मिक अंकन भी स्पष्टतः दृष्टिगत होता है। कौशिक की महान् कहानी 'ताई' हिन्दी की प्रथम मनोवैज्ञानिक कहानी है, जिसमें ईर्ष्या-द्वेष का गहन अंकन प्राप्त होता है—साथ ही, पश्चात्ताप के सहज दर्शन भी होते हैं। 'प्लेग की चुड़ैल' में यथार्थ का भीषण रूप विद्यमान है। 'उसने कहा था' जैसी आदर्श-बोझिल कहानी तक में सैनिक-छलकपट का मनोहारी अंकन प्राप्त होता है। इस युग की 'उसने कहा था,' 'पंच-परमेश्वर', 'सज्जनता का दंड', 'दुर्गा का मन्दिर', 'ताई', 'रक्षाबन्धन' इत्यादि श्रेष्ठ कहानियाँ आज भी लोकप्रिय हैं। प्रेमचन्द और कौशिक इस युग के प्रमुख कहानीकार हैं। इस युग के अन्तिम कहानीकार सुदर्शन (बदरीनाथ) हैं जिनकी 'रामकुटिया' (1917 ई.), 'पुष्पलता' (1919 ई.) जैसी रचनाएँ प्रकाशित हुईं;

---

[1] कहानी युगानुरूप एवं लेखकानुरूप आदर्शवादी है।

[2] प्रेमचन्द ने शीर्षक 'पंचों में परमेश्वर' रखा था, जिसे आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'पंच-परमेश्वर' कर दिया तथा कहानी का आद्यंत भाषा-परिष्कार भी किया, जिसका प्रेमचन्द पर भारी प्रभाव पड़ता गया।

आदर्शवादी युग के अन्त की ओर, 1920 ई. में 'सरस्वती' की कृपा भी प्राप्त हुई। यद्यपि उनके अनेकानेक कहानी-संग्रह परवर्ती युग में प्रकाशित हुए तथापि वे प्रकृत्या आदर्शवादी युग के कहानीकार ही हैं; जैसा कि उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'हार की जीत' से स्पष्ट है, उन पर प्रेमचन्द के प्रभाव से स्पष्ट है।

प्रेमचन्द ने तीन सौ से अधिक कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें से 'पंच-परमेश्वर', 'बड़े घर की बेटी', 'नमक का दारोग़ा', 'परीक्षा', 'मन्त्र' इत्यादि अधिकतर आदर्शवादी कहानियाँ हैं। उन्होंने 'वज्रपात', 'रानी सारंधा', 'हरदौल' इत्यादि अनेक ऐतिहासिक कहानियाँ भी लिखी हैं, जो आदर्शवादी ही मानी जा सकती हैं। कालान्तर में, साम्यवाद के परोक्ष प्रभाव एवं अपनी प्रौढ़ता के कारणद्वय से प्रेमचन्द ने यथार्थवादी कहानियाँ भी लिखीं जिनमें, मेरे मत से, 'ईदग़ाह' सर्वश्रेष्ठ है (दरिद्रता का हृदयद्रावक चित्रण, खिलौने के रूप में चिमटे की ख़रीद इत्यादि सारा-कुछ इतना मार्मिक एवं इतना सजीव है कि 'ईदग़ाह' तलस्पर्शी मानवतावाद का एक शाश्वत अभिलेख बन गई है—विश्व की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में एक बन गई है)। यद्यपि प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानी का गौरव 'कफ़न' को दिया जाता है, तथापि इसका भयावह-यथार्थवाद स्वाभाविक-यथार्थवाद नहीं रह गया क्योंकि घर में लाश, कफ़न के लिए चन्दा और चन्दे के पैसे से मद्यपान तथा तत्सम्बद्ध-खानपान यथार्थ न होकर यथार्थ की मानव-अपमानकारी कल्पना मात्र है। 'कफ़न' में भारत के दरिद्र मानव का घोर अपमान किया गया है। खेद का विषय यह है कि वह इतना पतित नहीं है जितना उसे चित्रित किया गया है। भारत के दरिद्र में अस्मिता विद्यमान है। 'कफ़न' कहानी भारतीय दरिद्र एवं भारतीय दरिद्रता के साथ घोर अन्याय करती है। ऐसा लगता है कि अपने को आदर्शवादी नहीं अपितु घोर-यथार्थवादी के रूप में प्रस्तुत कर रूस इत्यादि के साहित्यकारों एवं पाठकों तथा भारत के साम्यवादियों को प्रभावित करने की फड़फड़ाहट में प्रेमचन्द ने 'कफ़न' की भयानक कल्पना कर डाली थी। निस्सन्देह 'कफ़न' दारिद्र्य के वैवश्य का दर्दीला दस्तावेज़ है, एक महान् कहानी है, किन्तु न तो वह यथार्थवादी है, न मानवतावादी। भयानक यथार्थवाद की दूसरी कहानी 'बूढ़ी काकी' तक इसकी तुलना में सन्तुलित है। 'शतरंज के खिलाड़ी' के अतीतरस का यथार्थ नितान्त परिपुष्ट है। 'ईदगाह', 'कफ़न', 'बूढ़ी काकी', 'पूस की रात', 'शतरंज के खिलाड़ी' इत्यादि प्रेमचन्द की विश्वस्तरीय यथार्थवादी कहानियाँ हैं। 'नशा', 'लाटरी', 'बड़े भाई साहब' इत्यादि मनोवैज्ञानिक कहानियों में भी प्रेमचन्द बहुत सफल हुए हैं। मूलतः महान आदर्शवादी कहानीकार होते हुए भी, प्रेमचन्द एक सफल मनोवैज्ञानिक कहानीकार एवं एक गौरवशाली यथार्थवादी कहानीकार भी हैं। आयामों की व्यापकता में उनकी समता न आदर्शवादी कहानीकार कौशिक कर पाते हैं, न स्वच्छन्दतावादी कहानीकार प्रसाद, न मनोवैज्ञानिक कहानीकार जैनेन्द्र, न साम्यवादी-यथार्थवादी कहानीकार यशपाल, न व्यक्तिवादी-यथार्थवादी कहानीकार निर्मल वर्मा। प्रेमचन्द हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार तो हैं ही; वे मोपासाँ, चेख़व, ओ'हेनरी, रवीन्द्र प्रभृति के स्तर के विश्व के एक सर्वश्रेष्ठ कहानीकार भी हैं। उनके एकसदृशताबद्ध एवं आदर्श-बोझिल उपन्यासकार रूप को अधिक ख्याति प्राप्त हुई है, वे विश्व के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों में भी प्रतिष्ठित होने योग्य हैं, किन्तु उनका कहानीकार-रूप उनके उपन्यासकार-रूप से श्रेष्ठतर है, क्योंकि इसके आयाम सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक इत्यादि तक प्रसरित हैं तथा आदर्श, यथार्थ, घोर-यथार्थ तक से संपृक्त हैं।

उपन्यास का उत्कर्ष

सुधारवादी युग (1850-90 ई.) में पंडित गौरीदत्त ने हिन्दी का प्रथम उपन्यास 'देवरानी-जेठानी की कहानी' (1870 ई.)[1] लिखा था। दूसरा उपन्यास श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' (1877 ई.) था। श्रीनिवासदास ने 'परीक्षागुरु' (1882 ई.), बालकृष्ण भट्ट ने 'नूतन ब्रह्मचारी' (1886 ई.) एवं 'सौ अजान एक सुजान' (1892 ई.), जगमोहनसिंह ने 'श्यामा-स्वप्न' (1888 ई.), राधाकृष्णदास ने 'निस्सहाय हिन्दू' (1890 ई.), किशोरीलाल गोस्वामी ने 'त्रिवेणी वा सौभाग्यवती' (1890 ई.) एवं 'लवंगलता' (1890 ई.), लज्जाराम शर्मा ने 'धूर्त रसिकलाल' (1890 ई.), देवकीनन्दन खत्री ने 'चन्द्रकान्ता' (1888 ई.) एवं 'चन्द्रकान्ता-सन्तति' (1896 ई.), गोपालराम गहमरी ने 'अद्‌भुत लाश' (1896 ई.) एवं 'गुप्तचर' (1899 ई.), हरेकृष्ण जौहर ने 'कुसुमलता' (1899 ई.) इत्यादि के द्वारा सामाजिक, ऐतिहासिक (वस्तुतः ऐतिहासिकप्राय), स्वच्छन्दतावादी, ऐयारी-तिलिस्मी, जासूसी इत्यादि विविध प्रकार के उपन्यास प्रस्तुत किए थे।

---

1. आ. शुक्ल ने 'देवरानी-जेठानी' मात्र लिखा है, पंडित गौरीदत्त का उल्लेख भी (इस प्रसंग में) नहीं किया, रचनाकाल 1858 वि. (1901 ई.) ग़लत दिया है, क्योंकि आ. क्षेमचन्द्र ने मुझे चित्रप्रति दिखलाई थी, जिसमें 1870 ई. स्पष्टतः अंकित है।

प्रतापनारायण मिश्र, ठाकुर गदाधरसिंह, राधाचरण गोस्वामी, हरितनारायणलाल इत्यादि ने बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, रमेशचन्द्र दत्त तथा दामोदर मुखर्जी, स्वर्णकुमारी इत्यादि के उपन्यासों के अनुवाद किए थे। प्रमुखतः बांग्ला एवं सामान्यतः अंग्रेज़ी से अन्य अनेक उपन्यास भी अनूदित किए गए थे। बांग्ला से लिया गया 'उपन्यास' शब्द चल निकला था, जिसका प्रमुख श्रेय खत्री, गहमरी एवं गोस्वामी को प्राप्त था। किन्तु इन उपन्यासों का उद्देश्य या तो नैतिक शिक्षा देना था या सुधार करना या इन्द्रजाललोक की सृष्टि करना या अतिरंजित अपराध-जगत् का चित्रण करना या कल्पित प्रेमलोक का अटन कराना। स्वाभाविक समाजचित्रण एवं मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण से सम्पन्न उपन्यास आदर्शवादी युग में ही रचे गए। आदर्शवादी युग में चार प्रकार के (ऐयारी-तिलस्मी, जासूसी, ऐतिहासिक एवं सामाजिक) उपन्यास रचे गए :

1. ऐयारी-तिलस्मी उपन्यासों की सुधारवादी युग की परम्परा को स्वयं देवकीनन्दन खत्री ने 'भूतनाथ' (आरम्भिक 6 भाग-1906 ई.) इत्यादि के द्वारा आगे बढ़ाया; उनके पुत्र दुर्गाप्रसाद खत्री ने इसके शेष भाग पूर्ण किए तथा अन्य उपन्यास भी रचे। हरेकृष्ण जौहर, रामलाल वर्मा इत्यादि ने भी इस प्रकार रचना की—यहाँ तक कि प्रमुख सामाजिक-ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी ने भी 'तिलस्मी शीशमहल' (1905 ई.) द्वारा इस विधा पर भी हाथ आज़माया। ये उपन्यास अत्यन्त लोकप्रिय थे।

2. जासूसी उपन्यासों की सुधारवादी युग की परम्परा का विकास स्वयं गोपालराम गहमरी ने 'सरकटी लाश' (1900 ई.), 'जासूस की भूल' (1901 ई.), 'जासूस पर जासूसी' (1904 ई.), 'गुप्त भेद' (1913 ई.) इत्यादि के द्वारा किया। रामलाल वर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, जयरामदास गुप्त इत्यादि ने भी इस विधा में लिखा।

ऐयारी-तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों में अपराध और औत्सुक्य के तत्त्व मिलते-जुलते हैं, किन्तु जहाँ प्रथम में अतिप्राकृतिक घटनाओं की भरमार रहती है वहाँ द्वितीय में यथार्थ का सम्मान भी किया जाता है। 'शर्लाक होम्स' के प्रसिद्ध जासूसी उपन्यासकार आर्थर कानन डायल (1856-1930 ई.) आज तक लोकप्रिय हैं क्योंकि वे प्रात्ययिकता के प्रति भी सजग रहते हैं। गोपालराम गहमरी हिन्दी के आर्थर कानन डायल बनते-बनते रह गए क्योंकि उन्होंने अत्यधिक लिखा; कुछ उपन्यासों को उलट-पलट कर नया उपन्यास रचने की प्रथा के प्रवर्तक वे ही थे। उनके प्रायः सौ उपन्यासों के स्थान पर कसे हुए पाँच उपन्यास होते हैं, जिनमें प्रात्ययिकता के प्रति सजगता की गुणवत्ता विद्यमान होती, तो वे अधिक सफल उपन्यासकार होते। इसमें सन्देह नहीं कि ओमप्रकाश शर्मा, वेदप्रकाश काम्बोज, सुरेन्द्रमोहन पाठक, कर्नल रंजीत (कल्पित नाम) इत्यादि एक दिन में एक जासूसी उपन्यास लिखनेवाले जीव (साहित्यकार नहीं)। गहमरी की 'प्रस्थान'-प्रतिभा की समता नहीं कर सकते, किन्तु ये हैं उन्हीं के 'वंशज'! गहमरी से शर्मा तक हिन्दी के प्रायः सारे जायूसी उपन्यासकार अंग्रेज़ी के जासूसी उपन्यासों (एवं यथासमय अंग्रेज़ी की जासूसी फ़िल्मों अथवा उनकी भोंड़ी नक़ल में बनी हिन्दी की जासूसी फ़िल्मों) पर बेतरह रीझने के कारण मौलिकता-विपन्न भी रह गए। उच्चकोटि का जासूसी उपन्यास वही प्रतिभाशाली व्यक्ति लिख सकता है जो ऐसी घटना या ऐसे विशेष कांड का स्वयं अध्ययन करे, पुलिस के विवरणों को देखकर उसे अपने अध्ययन से मिलाए और घटाए-बढ़ाए, अदालत में उससे सम्बन्धित पक्ष-विपक्ष के वकीलों की दलीलें सुने और उनका विश्लेषण करे, अदालत का फ़ैसला सुने, उसके औचित्य-अनौचित्य का विश्लेषण करे, इस 'समग्र' पर चिन्तन करके 'अपनी' संश्लिष्ट कृति रचे। स्पष्ट है कि ऐसी कृति में पाँच या दस वर्ष तक लग सकते हैं, और यह पत्रिका चलाने (गहमरी 'जासूस' चलाते थे) वाले, या ऐसी पत्रिका के लिए प्रतिबद्ध होकर लिखनेवाले, या प्रकाशक के आग्रह या उससे अनुबन्ध के आधार पर लिखनेवाले जासूसी-उपन्यासकार के वश की बात नहीं।

ऐयारी-तिलस्मी उपन्यासों की अतिप्राकृतिकता एवं जासूसी उपन्यासों की काल्पनिकता की प्रतिक्रिया में लौकिकता एवं यथार्थता के लिए रुझान बढ़ा तथा रेनॉल्ड्स के 'मिस्टीज़ ऑफ़ द कोर्ट ऑफ़ लन्डन' के 'लन्दन-रहस्य' अनुवाद का अच्छा स्वागत हुआ। विट्ठलदास नागर कृत 'क़िस्मत का खेल' (1905 ई.), बाँकेलाल चतुर्वेदी कृत 'ख़ौफनाक ख़ून' (1912 ई.), दुर्गाप्रसाद खत्री कृत 'अद्भुत भूत'[1] (1916 ई.) इत्यादि इसी के परिणाम थे।

भारतीय कथा-साहित्य एवं भारतीय चलचित्र, दूरदर्शन, आकाशवाणी इत्यादि के कथा-साहित्य में गहन-गम्भीर यथार्थ की प्रतिष्ठा न हो पाने का एक प्रधान कारण भारतीय जन-जीवन का कल्पना-प्रवण होना भी है। इक्कीसवीं सदी चल रही है किन्तु भारतीय जन-मानस बौद्धिकतापूर्ण यथार्थ एवं वैज्ञानिकी जीवन-पद्धति से दूर-सा पड़ा है! दुर्भाग्यवश भारत में अधुनातनता का अर्थ पाश्चात्य

---

[1] कालान्तर में कुशवाहा 'कान्त' ने 'काला भूत' लिखा, जो मौलिक तो नहीं था पर अत्यन्त रोचक है।

सज्जा, अंग्रेज़ी-वार्ता, होटल-सभ्यता, क्लब-संस्कृति, कॉफ़ी हाउस-वादविवाद इत्यादि मात्र को मान लिया गया है, जबकि वस्तुतः वह यथार्थ-संपृक्ति एवं एकमानववाद में प्रतिफलित होती है। अतः उच्चकोटि के यथार्थ एवं तलस्पर्शी बौद्धिकता से निष्पन्न साहित्य की रचना कम ही हो पा रही है और जो हो रही है उसे न्यस्त-स्वार्थ के प्रभाव के कारण न्याय नहीं मिल रहा।

3. ऐतिहासिक उपन्यासों की मौलिक रचना सुधारवादी युग में नाम मात्र को ही हुई थी, यद्यपि बांग्ला के ऐतिहासिक उपन्यासों के अनुवाद धड़ाधड़ निकलने लगे थे। आदर्शवादी युग में ऐतिहासिक उपन्यास पर्याप्त लिखे गए, यद्यपि उनमें सम्बद्ध युग के व्यापक जीवन-सत्य को चित्रित करने पर ध्यान नहीं दिया गया। किशोरीलाल गोस्वामी के 'सुल्ताना रज़िया बेग़म वा रंगमहल के हलाहल' (1904 ई.) एवं 'लखनऊ की क़ब्र वा शाही महलसरा' (1917 ई.) को ऐतिहासिक उपन्यासों के रूपों में अच्छी ख्याति प्राप्त हुई। गंगाप्रसाद गुप्त के 'नूरजहाँ' (1902 ई.), 'कुमारसिंह सेनापति' (1903) एवं 'हम्मीर' (1903 ई.) भी अच्छे चले। जयरामदास गुप्त के 'काश्मीर[1]-पतन' (1907 ई.), 'नवाबी परिस्तान वा वाजिदअली शाह' (1909 ई.), 'मल्का चाँदबीबी' (1909 ई.) भी लोकप्रिय हुए। ये सारे उपन्यास इतिहास को कल्पना की रंगीनी-भरे चश्मे से ही देख पाए हैं। मथुराप्रसाद शर्मा के उपन्यास 'नूरजहाँ बेग़म व जहाँगीर' (1905 ई.) में इतिहास को इतिहास के रूप में देखने का यत्न किया गया है, किन्तु वस्तु-प्रस्तुति में युग साकार नहीं हो सका।

सफल ऐतिहासिक उपन्यास में युग को साकार तभी किया जा सकता जब उसका ऐतिहासिक अध्ययन ही न किया जाए प्रत्युत पुरातात्त्विक अनुशीलन भी किया जाए तथा दोनों का अन्योन्य रूप प्रस्तुत किया जाए, जिसमें उस युग की वेशभूषा, आवास, मार्ग, वाहन, व्यापार, वस्तुएँ, शब्द इत्यादि भी समाविष्ट हों। ऐतिहासिक ग्रन्थ ही नहीं, पुरातात्त्विक-संग्रहालय भी अलुशीलन के आधार हों, तभी सफल ऐतिहासिक उपन्यास रचा जा सकता है। केवल कक्षाओं में पढ़े-पढ़ाए या सुने-सुनाए इतिहास को पढ़कर सफल ऐतिहासिक उपन्यास नहीं रचा जा सकता। संसार में सफल ऐतिहासिक उपन्यास बहुत कम हैं। किशोरीलाल गोस्वामी ने इतिहास को काम-कल्पनाओं की सृष्टियाँ तो बना दिया है, किन्तु वे इतिहास के व्यापक सत्य को विवृत नहीं कर सके। एक ओर ऐतिहासिक उपन्यास लिखना और दूसरी ओर 'इतिहास को दूर से ही नमस्कार' करना इतना अन्तर्विरोधपूर्ण है कि इसकी प्रशस्ति नहीं की जा सकती। उनके समकालीनों में अधिकांश उनसे अभिभूत होने के कारण विफल रहे। कालान्तर में चतुरसेन शास्त्री, गुरुदत्त, यज्ञदत्त शर्मा इत्यादि जाने या अनजाने किशोरीलाल गोस्वामी के अनुकरण में सफल ऐतिहासिक उपन्यास न लिख सके। इन्होंने भी उनके सदृश राशि-राशि उपन्यास रचे। चतुरसेन शास्त्री एवं गुरुदत्त ने हिन्दुत्व के प्रति अत्यधिक सजगता में भी किशोरीलाल गोस्वामी का अनुकरण किया, जबकि यज्ञदत्त शर्मा ने कांग्रेसी होने के कारण नेहरू-छाप कृत्रिम धर्मनिरपेक्षता के फेर में पड़कर इतिहास का कबाड़ा कर दिया। सम्बद्ध युगों को कोई साकार नहीं कर पाया। डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'बाण भट्ट की आत्मकथा' एक आदर्श ऐतिहासिक उपन्यास है जिसमें युग को साकार किया गया है अर्थात् पाठक को सातवीं शताब्दी की वेशभूषा, रहन-सहन, आत्मविश्वास, मूढ़ता-अन्धविश्वास, भाषा-शैली के निकट पहुँचाया गया है (भले ही चरित्र-चित्रण में तद्वत् सफलता न प्राप्त की जा सकी हो)। मनु शर्मा, युगेश्वर, नरेन्द्र कोहली इत्यादि ने अपने-अपने स्तरों पर डॉ. द्विवेदी का अनुकरण किया है तथा थोड़ा-बहुत सफल भी हुए हैं। प्रसाद की 'इरावती' तक पर सुदूर अतीत की तुलना में लेखक का युग हावी हो गया है। वृन्दावनलाल वर्मा को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यासकार माना जाता है, जो ठीक भी है, क्योंकि उन्होंने सम्बद्ध युगों के साथ न्याय किया है (यद्यपि तत्कालीन वस्तुओं की विशद एवं यथेष्ट प्रस्तुति में रुचि नहीं दिखा पाए)।

प्रेमचन्द-पूर्ववती उपन्यासकारों में किशोरीलाल गोस्वामी का स्थान गुण, परिमाण एवं प्रभाव के त्रित् में अन्यतम है। उनके उपन्यास निस्सन्देह साहित्यिक हैं, क्योंकि उनमें जीवन है, कला है, उद्देश्य है, जबकि देवकीनन्दन खत्री एवं गोपालराम गहमरी के उपन्यासों में कल्पना मात्र का प्राधान्य है। किन्तु कामचित्रण के अतिरेक एवं हिन्दूवाद के विशेष आग्रह के कारणों से उनके उपन्यास यथार्थ से न्याय नहीं कर सके। बंकिम भी हिन्दूवादी हैं, कठोर हिन्दूवादी हैं (जिसके कारण रोम-रोम से मौलाना अबुल कलाम आज़ाद एवं उनके मित्र नेहरू ने 'वन्देमातरम्' से भारत का राष्ट्रगीत[2] बनने का इतिहास-पुष्ट अधिकार छीन लिया) किन्तु कामवादी नहीं।

---

[1] अंग्रेज़ी की गुलामी के कारण 'काश्मीर' और काश्मीरी, 'आसाम', 'कर्नाटका', 'केरला', 'कारगिल', जैसे शब्दों का व्यापक प्रसार है। 'कः शिमिरः' (जल से उभरा या निकला) हो या कश्यप़मीर 'कश्मीर' ही शुद्ध है। 'कश्मीरी' ही ठीक है। परम अंग्रेज़ी-प्रेमी नेहरू तक 'कश्मीर' इत्यादि ही बोलते थे। खेद है कि श्रीधर पाठक जैसे उल्लेखनीय कवियों एवं जयशंकर प्रसाद जैसे महाकवियों ने 'काश्मीर' का ग़लत प्रयोग किया। साहित्य अकादमी के सचिव रहे डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी जैसे 'सरकारी विद्वान्' तो ख़ैर 'काश्मीरी' बोलेंगे ही!

[2] नेशनल एंथेम।

अतः वे अब भी पूरी गरिमा के साथ खड़े हैं। कामवाद ने किशोरीलाल गोस्वामी को हिन्दी का बंकिम नहीं बनने दिया। कामुकता के चित्रण का अतिरेक कुशवाहा 'कान्त', प्यारेलाल आवारा, गुलशन नन्दा, कृष्णचन्दर इत्यादि तक ही पहुँच पाता है—निस्सन्देह ये सब किशोरीलाल गोस्वामी के ही 'वंशज' हैं! किशोरीलाल गोस्वामी के यहाँ एक दृष्टिकोण भी है (भले ही वह अतिरेक पर जा पड़ा हो) वे हिन्दुत्व-प्रतिष्ठापन के लिए यत्नशील रहते हैं, अन्यथा वे इन साहित्येतर उपन्यासकारों के वर्ग में जा पड़ते। जब यथार्थ के साथ कम न्याय करनेवाले शीर्षस्थ चलचित्र-पटकथाकार (जैसे मुखराम शर्मा) तथा शीर्षस्थ दूरदर्शन-धारावाहिक-कथाकार (यथा मनोहर श्याम जोशी, राही मासूम रज़ा इत्यादि) साहित्येतर हो जाते हैं, तब किशोरीलाल गोस्वामी का साहित्यिक गौरव केवल उनकी राष्ट्रीय जागरूकता के कारण ही स्थिर माना जा सकता है। हिन्दुत्व भारतीय राष्ट्रीयता का अनन्य प्रतीक है :

रक्खो हिंदूपन का गर्व, यही ऐक्य-साधन का सर्व!
हिंदू! निज संस्कृति का त्राण, करो, भले ही दे दो प्राण![1]

—मैथिलीशरण गुप्त

बंकिम, मुंशी[2], गोस्वामी इत्यादि-इत्यादि उपन्यासकार हिन्दुत्व के कारण भी चिरस्मरणीय हैं। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, निराला इत्यादि भी हिन्दुत्व के प्रहरी रहे हैं। जब गाँधी इत्यादि का मुस्लिम-तुष्टीकरण साम्प्रदायिक नहीं है, तब बंकिम, मुंशी, गोस्वामी इत्यादि अथवा भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि का हिन्दूवाद साम्प्रदायिक कैसे हो सकता है? व्यक्तिगत रूप से मैं एकांगी-हिन्दूवाद एवं मुस्लिम-तुष्टीकरणवाद दोनों से अरुचि रखता हूँ। दोनों ही साम्प्रदायिक हैं। चाहे हिन्दू धर्म हो या मोहम्मदी मज़हब, सबकी उन्मुक्त आलोचना, सबके लिए विशेषाधिकारमुक्त समान लोकतान्त्रिक विधि-विधान, सबके लिए एक-सी उदारता ही सच्ची धर्मनिरपेक्षता है (जो भारत में क़तई नहीं है)। किन्तु मैं डॉ. राधाकृष्णन् के 'इंडियन फिलॉसॉफी' के (विभाजन-पूर्ववर्ती) इस उद्गार से वस्तुस्थिति के आधार पर सहमत हूँ कि "भारत आज भी प्रमुखतः हिन्दू है"[3] और 'हिन्दुत्व' शब्द सुनकर ही चौंक पड़ने की पाखंड-लीला को समादृत नहीं करता। अज्ञेय ने भी हिन्दू होकर भी हिन्दुत्व से कतराने की पाखंड-वृत्ति की आलोचना की थी (जो उनकी बोली की ही तरह नरम-नरम थी) और जिसे समय-समय पर केंचुल बदलने में माहिर पर प्रमुखतः कांग्रेसी होते हुए भी डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने समादृत किया है।

4. सामाजिक उपन्यासों का आरम्भ सुधारवादी युग में हुआ तो था किन्तु वे चरित्रसुधार के स्थूल अथवा उपदेशात्मक धरातल पर ही खड़े थे, सजीव देशकालचित्रण एवं मनोवैज्ञानिक चरित्रचित्रण के उच्च कलात्मक शिखर तक न चढ़ पाए थे। उनकी भाषा भी ऊबड़-खाबड़ थी। आदर्शवादी युग में सामाजिक उपन्यास का प्रशस्य उत्कर्ष हुआ। किशोरीलाल गोस्वामी ने 'लीलावती वा आदर्श सती', 'चपला का नव्य समाज', 'पुनर्जन्म या सौतियाडाह', 'माधवीमाधव वा मदनमोहिनी', 'अँगूठी का नगीना' इत्यादि अनेक लोकप्रिय सामाजिक उपन्यास रचे। उनसे प्रभावित एवं हिन्दुत्व-ओतप्रोत लज्जाराम शर्मा ने 'आदर्श दम्पती', 'बिगड़े का सुधार अथवा सती सुखदेवी', 'आदर्श हिन्दू' इत्यादि उपन्यासों की रचना की तथा गंगाप्रसाद गुप्त ने रेनॉल्ड्स के 'लव्ज़ ऑफ द हेअर' का 'रंगमहल' अनुवाद प्रस्तुत किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के 'अधखिला फूल' और 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' उपन्यासों को भी प्रसिद्धि मिली, यद्यपि प्रथम अन्धविश्वास-दुष्परिणाम के आदर्शवादी-सुधारवादी दृष्टिकोण पर आधृत है और दूसरा इंशा की 'रानी केतकी की कहानी' की भाषा के ख़ालिसपन की शब्दों की जादूगरी में उलझा है। राधिकारमणप्रसाद सिंह के 'नवजीवन या प्रेमलहरी' तथा व्रजनन्दन सहाय के 'सौन्दर्योपासक' एवं 'राधाकान्त' में बांग्ला प्रेमाकुलता तथा भावुकता की बानगी मिलती है, जबकि मन्नन द्विवेदी गजपुरी के 'रामलाल' में यथार्थपरक ग्रामीण चित्रण का सजीव रूप प्राप्त होता है। अनेक लेखकों ने अनेक अंग्रेज़ी एवं बांग्ला उपन्यासों के अनुवाद भी प्रस्तुत किए।

आदर्शवादी युग के प्रेमचन्द-पूर्ववर्ती सामाजिक उपन्यासकारों में (ऐतिहासिक उपन्यासकारों के सदृश ही) किशोरीलाल गोस्वामी का स्थान सर्वोपरि है। उनके 'वा' वाले दोहरे शीर्षक कइयों ने अपनाए, उनके हिन्दुत्व के उद्देश्य को कइयों ने अपनाया, उनकी

---

[1] 'हिन्दू' काव्य में

[2] गुजराती के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार तथा भारत के अन्यतम ऐतिहासिक-उपन्यासकार, गुजराती-साहित्येतिहासकार, अंग्रेज़ी- ग्रन्थकार, विद्वान्, कूटनीतिज्ञ, राजनीतिज्ञ एवं प्रशासक श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, जो संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के उत्कट समर्थक थे तथा सम्मेलन के अध्यक्ष भी बने थे।

[3] "इंडिया", इवेन टुडे, इज़ मेनली हिन्दू।

रंगीनी को भी कइयों ने अपनाया। जहाँ तक त्याग, तप, देशप्रेम इत्यादि आदर्शों तथा नारी-जागरण, ग्रामोत्थान, शोषण-विगर्हण इत्यादि के विविध सुधारात्मक बिन्दुओं का सम्बन्ध है, प्रायः सारे उपन्यासकार 'एक' थे। सार्वभौम लक्ष्य भी विवादास्पद तब बने जब परकीय-प्रभाव एवं सत्ता-लिप्सा के न्यस्त-स्वार्थ प्रभावी हुए—आज उन्हीं का बोलबाला है।

किशोरीलाल गोस्वामी ने सामाजिक, ऐतिहासिक, जासूसी, ऐयारी-तिलस्मी, सभी प्रकार के उपन्यास लिखे तथा अत्यधिक लोकप्रिय हुए। उन्होंने अपार सम्पदा का अर्जन भी किया, जो उस समय सम्भवतः भारत में किसी अन्य उपन्यासकार ने न की थी। उनका समसामयिक उपन्यासों (लज्जाराम शर्मा, गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, राधिकारमणप्रसाद सिंह इत्यादि) पर तो प्रभाव पड़ा ही, परवर्ती उपन्यासकार (चतुरसेन शास्त्री, गुरुदत्त, कुशवाहा 'कान्त', गुलशन नन्दा इत्यादि) भी उनसे किसी-न-किसी (हिन्दुत्व या रंगीनी या नारी-समस्याओं की प्रस्तुति) रूप में प्रभावित हुए बिना न रह सके। हाँ, अपने ऐयारी-तिलस्मी उपन्यासों में वे देदकीनन्दन खत्री से प्रभावित हुए थे तथा जासूसी उपन्यासों में गोपालराम गहमरी से, किन्तु उनके ऐसे उपन्यास बहुत कम हैं। उनकी प्रतिभा में अस्मिता तो थी ही, सोद्‌देश्यता भी थी। प्रेमचन्द-पूर्ववर्ती उपन्यासों में किशोरीलाल गोस्वामी की सर्वश्रेष्ठता उन्हें हिन्दी-साहित्येतिहास में एक निश्चित स्थान पर प्रतिष्ठित करती है; वे सदैव हिन्दी-उपन्यासकारों की प्रथम पंक्ति में स्थान प्राप्त करते रहेंगे।

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार प्रेमचन्द के 'प्रेमा' एवं 'रूठी रानी' (1907 ई.) शीर्षक दो सामान्यस्तरीय तथा 'सेवासदन' (1914 ई.)[1] एवं 'प्रेमाश्रम' (1918 ई.)[2] शीर्षक दो उच्चस्तरीय अर्थात् चार उपन्यास आदर्शवादी युग में रचित थे ही, प्रवृत्ति की दृष्टि से भी वे इस युग के प्रतिनिधि एवं प्रकृष्ट उपन्यासकार थे। 1964 ई. में दिवंगत राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, 1941 ई. में दिवंगत आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एवं 1936 ई. में दिवंगत प्रेमचन्द, तीनों आदर्शवादी द्रष्टा-स्रष्टा थे, क्योंकि तीनों राष्ट्रवाद, समाजसुधार, शोषणविरोध इत्यादि के वादमुक्त[3] बिन्दुओं पर 'एक' थे, तीनों भारतीय अस्मिता के रक्षक थे[4], तीनों सोद्‌देश्य साहित्य-सर्जना के पक्षधर थे : मैथिलीशरण ''केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए'' की घोषणा के साथ आद्यंत तद्वत् रचना ही करते हैं, आ. शुक्ल आद्यंत लोकमंगलवादी हैं तथा लोकमंगल का प्रतिपादन भी करते हैं, प्रेमचन्द कोरा मनोरंजन करना ''भाटों, भाँड़ों, विदूषकों'' का कार्य बतलाते हैं। उनके सारे श्रेष्ठ उपन्यास आदर्शवादी हैं, सुधारवादी हैं। सेवासदन में वेश्यावृत्ति की सुधारवादी समस्या उठाई गई है, उसका आदर्शवादी हल (आश्रमवाद) निकाला गया है—सुमन वेश्या होकर भी तन की शुचिता की रक्षा में सफल चित्रित की गई है। प्रेमाश्रम में हृदयपरिवर्तनवादी आदर्श के दर्शन होते हैं। निर्मला (रचनाकाल 1923 ई.) में वृद्धविवाह की तत्कालीन सुधारवादी समस्या उठाई गई है, जिसका करुणांत प्रकारान्तर से इस प्रकार के विवाह से विरत रहने का आदर्श प्रस्तुत करता है। रंगभूमि (रचनाकाल 1924-25 ई.) तो शतशः आदर्शवादी कलाकृति है ही, जिसका नायक सूरदास हिन्दी-उपन्यास में आदर्शवाद का सुमेरु है। ग़बन (1931 ई.) आभूषण-समस्या पर आधृत हृदयपरिवर्तनवादी आदर्श में अवसित होता है। कर्मभूमि (1932 ई.) धनिक युवक के समाजसेवा एवं स्वातन्त्र्य में आन्दोलनात्मक रुचि, नागर युवकों की ग्रामसेवा, साम्प्रदायिक सौमनस्य इत्यादि के आदर्शों पर आधृत है। यहाँ तक कि गोदान (1936 ई.) तक में मेहता, मालती इत्यादि के चरित्र अन्ततः हृदयपरिवर्तन के आदर्श से ऊभचूभ चित्रित किए गए हैं और गोविन्दी तो पारम्परिक आदर्शवाद की प्रतिमा ही है—उसमें क्रान्ति के प्रतीक गोबर का उभार मात्र दृग्गत होता है, उसे कोई सफ़लता प्राप्त नहीं होती (उस समय यही यथार्थ था और खेद है कि अब भी है)। गोदान निरीहता का अभिलेख है, क्रान्ति का घोषणापत्र नहीं। पुनर्जन्मवाद पर आधृत, अन्य उपन्यासों से शतशः भिन्न, कायाकल्प (1926 ई.) मनोरमा तो समर्पित एवं आदर्श प्रेम की प्रतीक ही है। अपरिसमाप्त मंगलसूत्र (1936 ई.) में आदर्शवाद के कारण विचलित साहित्य की जटिल परिस्थितियों का चित्रण तो किया गया है किन्तु किसी अन्य वाद को वरीयता प्रदान नहीं की जा सकी—वैसे, आत्मकथात्मक उपन्यास का छोटा-सा

---

1. रचनाकाल 1914 ई., प्रथम प्रकाशन 1916 ई. (गोरखपुर से), एक पुराना संस्करण 1918 ई. का भी है; अतः इन तीनों वर्षों का कहीं सही तो कहीं ग़लत प्रयोग मिल जाता है 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने ठीक विवरण दिया है।
2. प्रकाशन 1922 ई. में कलकत्ता से।
3. प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशर (लखनऊ) में बोलते हुए उन्होंने वाद-संकीर्ण 'प्रगतिशील' शब्द की व्यर्थता स्पष्ट की थी क्योंकि साहित्य की प्रकृति की प्रगति की है। अन्ततः साम्यवाद के प्रति रुचि के बावजूद प्रेमचन्द थे भारतवादी ही।
4. राजर्षि पुरुषोत्तम टंडन ने प्रेमचन्द के उपन्यासों के सांस्कृतिक धरातल की प्रशंसा की थी।

आकार एवं अपरिसमाप्त रह जाना इस पर किसी निर्णय के अनुकूल नहीं है। स्वयं प्रेमचन्द ने अपने 'उपन्यास'[1] शीर्षक निबन्ध में 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' को वरेण्य बताया है; यथार्थवाद हो अवश्य किन्तु उसकी दिशा (लक्ष्य) आदर्श ही हो। उनका अधिकांश साहित्य ('कफ़न' जैसी कुछेक कहानियों को छोड़कर) आदर्शप्रधान ही है; वह बात और कि उन्होंने यथार्थ की आत्यंतिक उपेक्षा नहीं की। तभी तो उनका कृतित्व सदाबहार है क्योंकि कोरा यथार्थ प्रायः युगबद्ध होकर चुक जाता है तथा कोरा आदर्श वाग्जाल बनकर प्रभावहीन हो जाता है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों पर अंग्रेज़ी, रूसी, बांग्ला इत्यादि के उपन्यासें के प्रभाव पर प्रो. अवध उपाध्याय ने प्रकाश डाला (जिस पर प्रेमचन्द बहुत ही अधिक उत्तेजित हुए तथा 'कलम का सिपाही' में उनके पुत्र स्व. अमृतराय[2] तो गाली-गलौज तक पर उतर आए)। 'प्रेमचन्द' शीर्षक पुस्तक (जो यत्र-तत्र ध्वंसात्मक भी है) में आ. नन्ददुलारे वाजपेयी ने उनकी रचनाओं में परिष्कृति और गहराई के अभाव की चर्चा की है, सुविधानुसार दनादन आत्महत्याएँ कराते जाने के बिन्दु की सटीक शैली में पकड़कर 'वाणी के न्याय-मन्दिर में' ('विचार और अनुभूति' में भी, 'आस्था के चरण' में भी) डॉ. नगेन्द्र ने उन्हें विश्व-उपन्यासकारों की द्वितीय पंक्ति में खड़ा किया है[3], मुझे उनके उपन्यासों में एकरूपता-सी खटकती है, रंगभूमि एवं गोदान में ग्राम-नगर का गड्डमड्ड गहन प्रभावान्विति में व्यवधान बन जाता है। उनका कायस्थ-ब्राह्मण-विद्वेषजन्य संकीर्ण-जातिवादी ब्राह्मण-विद्वेष कुरुचिपूर्ण एवं मानवतावाद विरोधी है (जिसके लिए उन्होंने न्यायालय में क्षमायाचना करके स्वयं को दंड से बचा लिया था), उनका विस्तारवादी (जो आदर्शवादी युग में सर्वत्र व्याप्त है—आ. द्विवेदी में, आ. शुक्ल में, हरिऔध में, मैथिलीशरण में) कई बार जी उबाने लगता है, उनका हृदयपरिवर्तनवाद प्रायः ऊपर से लादा गया (अर्थात् फ़ालतू) लगता है (ऐसा लगता है, जैसे उपन्यासकार साहित्य के मैदान में गाँधी का खूँटा गाड़ रहा है—उसका कोई व्यक्तित्व ही नहीं है); प्रेमचन्द जनता को प्रेरित करते-करते प्रायः जनता से ही प्रेरित होने लगते हैं, जिससे कला को आघात लगता है। किन्तु कमियाँ कहाँ नहीं हैं? सॉमरसेट मॉम के शब्दों में टॉल्स्टॉय कृत 'युद्ध और शान्ति' (वार एंड पीस) संसार का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। किन्तु पाँच सौ पात्रों के फैलाव में वह आदमियों और औरतों का अजायबघर बनकर रह गया है, रूसी कलाकार पर नैपोलियन बोनापार्ट के चित्रण में पर्याप्त संवेदन के अभाव का आरोप भी लग सकता हैं; तब औरों की चर्चा ही क्या! प्रेमचन्द अपने दीनदलित-संवेदन, शोषणप्रपीड़न-विगर्हण, विराट् आयामों के चित्रण, सरल किन्तु यथास्थान सरल तथा प्रायः सर्वत्र स्तरीय भाषा, रोचक शैली इत्यादि के कारण विश्व के महान् उपन्यासकारों के प्रतिष्ठित किए जाने योग्य हैं। अपने उपन्यास-साहित्य में अप्रतिम रूसी भाषा के आलोचकों ने उनकी तुलना टॉल्स्टॉय से की है। शचीरानी गुर्टू सम्पादित 'गोर्की और प्रेमचन्द' पुस्तक में दोनों उपन्यासकारों की अच्छी तुलना प्राप्त होती है। प्रेमचन्द अंग्रेज़ी-उपन्यासकार डिकेंस से सर्वथा तुलनीय हैं क्योंकि दोनों ने जनजीवन के अन्तराल में प्रवेश कर ('गहरे पानी पैठ' कर) समाज एवं व्यक्ति का विशद अंकन किया है, दोनों सामान्य वर्ग के प्रतिनिधि कलाकार हैं, दोनों में हास्य-व्यंग्य का अपार सामर्थ्य है। शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय के उपन्यास समकालीन बांग्ला-भावुकता के दर्पण तो हैं, किन्तु उनमें जूझते हुए आदमी का विराट् चित्रण प्रेमचन्द का सा नहीं हो पाया। रवीन्द्र अभिजातवादी कलाकार हैं जिनमें चित्रण की परिष्कृति अधिक है, मनोवैज्ञानिक गहराई अधिक है, सैद्धान्तिक मानवतावाद अधिक है, किन्तु उनमें प्रेमचन्द के दयनीय किन्तु सामाजिक मानव की हिमालय-जैसी विशाल आकृति नहीं उभर आई। मुंशी का क्षेत्र पौराणिक-ऐतिहासिक है, जिनकी विद्वत्ता का एक अंश तक प्रेमचन्द में ढूँढ़ना की शैक्षिक-सामान्यता के साथ अन्याय करना होगा; किन्तु जिस युगमानव को प्रेमचन्द ने उरेहा है वह विराटतर है। निस्सन्देह, प्रेमचन्द की समता भारतीय उपन्यासकारों में केवल शरद, रवीन्द्र एवं मुंशी ही कर सकते हैं।

---

[1] 'कुछ विचार' शीर्षक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में। 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' (प्रसाद) के सदृश 'कुछ विचार' का भी प्रकाशन मरणोपरान्त हुआ। दोनों 1938 ई. में ही प्रकाशित हुए।

[2] प्रेमचन्द की दूसरी पत्नी (पहली को उन्होंने गँवार और उजड्ड कहकर त्याग दिया था) शिवरानीदेवी की 'प्रेमचन्द घर में' (1944 ई.) पुस्तक भी पठनीय है, जिसकी अन्तरंग अनौपचारिकता में प्रेमचन्द के व्यक्तित्व का सत्य अनायास ही व्यक्त हो गया है।

[3] जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' कृत 'प्रेमचन्द की उपन्यास-कला' (1933 ई.) प्रस्थान-ग्रन्थ है। असंख्य ग्रन्थों के प्रस्तुतकर्ता रामरतन भटनागर ने 'प्रेमचन्द : एक अध्ययन' (1944 ई.), 'प्रेमचन्द' (1948 ई.), 'कलाकार प्रेमचन्द' (1951 ई.) के रूप में तीन सरल छात्रोपयोगी पुस्तकें लिखी हैं। शिवरानीदेवी एवं अमृतराय की पुस्तकें कहीं अच्छी हैं। आ. वाजपेयी की पुस्तक 'विपक्ष का मत' है। डॉ. नगेन्द्र ने पुस्तक तो नहीं लिखी किन्तु 'हिन्दी-उपन्यास', 'वाणी के न्याय-मन्दिर में', 'गोदान' इत्यादि निबन्धों में उच्चस्तरीय आलोचना की है जो 'आस्था के चरण में प्राप्य है। किन्तु अभी प्रेमचन्द पर कोई विश्वस्तरीय, विशाल एवं वस्तुपरक आलोचना-ग्रन्थ नहीं लिखा गया।

आदर्शवादी युग के उपन्यासकारों में प्रेमचन्द के निकटतर हैं विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', जिनके 'संघर्ष', 'माँ' और 'भिखारिणी' सफल उपन्यास हैं। किन्तु वे प्रमुखतः कहानीकार हैं। प्रेमचन्द का उन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। परवर्ती उपन्यासकारों में प्रतापनारायण श्रीवास्तव, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल इत्यादि एवं अधुनातन उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर तक पर प्रेमचन्द का प्रभाव शोधप्रबन्ध का विषय है। यज्ञदत्त शर्मा इत्यादि तत्त्वतः प्रेमचन्द की परिपाटी पर ही चले हैं।

आदर्शवादी युग का उपन्यास स्फीत भी है, गहन भी। चाहे ऐयारी-तिलस्मी उपन्यासों का 'भले काम का भला नतीजा, बुरे काम का बुरा नतीजा' वाला कामचलाऊ और पुराना आदर्श हो, चाहे जासूसी उपन्यासों का 'कब तक छिपोगे पत्तों की आड़ में?' अथवा 'कानून के हाथ बहुत लम्बे हैं' का बना-बनाया[1] आदर्श, चाहे ऐतिहासिक उपन्यासों का त्याग, बलिदान, वीरत्व, देशप्रेम इत्यादि सद्गुण-प्रेरक आदर्श, चाहे सामाजिक उपन्यासों का अन्धविश्वास, शोषण, प्रपीड़न, बालविवाह, वृद्धविवाह, परतन्त्रता इत्यादि का विरोधी आदर्श अथवा स्वातन्त्र्य के लिए संघर्ष का प्रेरक आदर्श—विभिन्न शरीरों में प्राप्त एक आत्मा के सदृश आदर्श सर्वत्र व्याप्त है। सुधारपरक-आदर्शवाद तो सुधारवादी युग का भी प्राणतत्व था, किन्तु आदर्शवादी युग में वह सर्वव्यापी हो गया (प्राचीन एवं नवीन, युद्ध एवं शान्ति, समाज एवं व्यक्ति, सब उच्चादर्शों के रंग में रँग गए) : 'भारत-भारती' का राष्ट्रीय-आदर्शवाद हो या 'साकेत' का त्यागोज्ज्वल-आदर्शवाद या 'प्रियप्रवास' का जनसेवापरक-आदर्शवाद या 'चिन्तामणि' का लोकमंगलपरक-आदर्शवाद या 'सेवासदन' का समाजसुधारपरक-आदर्शवाद—इस युग का आदर्शवाद विराटतम भी है, प्रभवत्तम भी। यथार्थ मनुष्य की जागृति है, आदर्श स्वप्न। जागृति एवं स्वप्न का अन्योन्य सम्बन्ध एक निर्विवाद मनोवैज्ञानिक सत्य है। अतः आदर्श प्रत्येक युग में प्रभावी रहता है। कभी उसका रूप धार्मिक या मज़हबी होता है, कभी आर्थिक, कभी राजनैतिक, कभी राष्ट्रस्वार्थसंकीर्ण, कभी सम्प्रदायस्वार्थबद्ध, कभी स्वच्छन्दतावादी, कभी यथार्थवादी। किन्तु आदर्शवादी युग में आदर्श का रूप न धामिक मात्र था, न आर्थिक मात्र, न राजनैतिक मात्र, न राष्ट्रस्वार्थसंकीर्ण, न सम्प्रदायस्वार्थबद्ध, न कोरा स्वच्छन्दतावादी, न कोरा यथार्थवादी—वह इन सबके समाहार से निर्मित, संकीर्णता-मुक्त, विराट् मानवतावादी आदर्श था। अतएव, मैंने इस युग को आदर्शवादी युग कहा है, क्योंकि इस युग के आदर्शों के टाइटन[2] आ. द्विवेदी भी उसी के अंग थे। आज भी इसी युग के साहित्यकार सर्वाधिक लोकप्रिय एवं समादृत हैं।

नाटक की विषम यात्रा

हिन्दी-नाटक का समारम्भ बहुत सन्तोषजनक हुआ था। सुधारवादी युग (1850-1900 ई.) में नाटक का विकास आशातीत रूप से हुआ, जिसका प्रमुख कारण था भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, श्रीनिवासदास, राधाकृष्णदास, राधाचरण गोस्वामी इत्यादि का जन-नाट्यकार होना तथा मंच में सक्रिय रुचि लेना। सुधारवादी युग का नाटक जनता का था, जनता के लिए था। आदर्शवादी युग (1900-20 ई.) में नाटक का विकास सन्तोषजनक नहीं रहा, जिसके तीन कारण थे—एक, व्यावसायिक पारसी कम्पनियों के बाज़ारू ढंग के नाटकों का प्रचार-प्रसार; दो, 1912 ई. में मूवी (मूक-चलचित्र) का उद्भव जिसका विकास तेज़ी से हुआ; और, तीन, युग-साहित्य के सम्राट् आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी की नाटक में अत्यल्प रुचि। फिर भी, नाटक लिखे अवश्य गए तथा उनके अभिनय भी होते रहे। सुधारवादी युग के नाटक आदर्शवादी युग में भी लोकप्रिय रहे। सुधारवादी युग के नाट्यकारों में प्रतापनारायण मिश्र कृत 'भारत-दुर्दशा' (1902 ई.), राधाचरण गोस्वामी कृत 'श्रीदामा' (1904 ई.) एवं बालकृष्ण भट्ट कृत 'वेणुसंहार' (1909 ई.) इत्यादि नाटक आदर्शवादी युग में प्रकाशित हुए। पारसी थिएटर के दुष्प्रभाव ने 'वेणुसंहार' तक को विकृत कर डाला है, जिसमें ग़ज़लबाज़ी और अंग्रेज़ी-शब्दप्रयोग बालकृष्ण भट्ट के स्तर के साथ घोर अन्याय मात्र करता है। आश्चर्य तो यह है कि भट्टजी पारसी थिएटर के कटु आलोचक थे! (जादू वह जो सर पर चढ़कर बोले!)

वैसे, आदर्शवादी युग में पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक इत्यादि नाटक तो रचे ही गए, प्रहसन भी प्रकाश में आए। व्रजनन्दन सहाय कृत 'सुदामा' (1907 ई.) एवं 'उद्धव' (1909 ई.), बनवारीलाल कृत 'कंसवध' (1909 ई.), नारायण मिश्र कृत 'कंसवध' (1910 ई.), रामनारायण मिश्र कृत 'जनकबाड़ा' (1906 ई.), गंगाप्रसाद गुप्त कृत 'रामाभिषेक' (1910 ई.), गिरिधरलाल कृत 'रामवनयात्रा' (1910 ई.),

---

1. रेडी-मेड
2. महदाकार, दिव्याकार, सूर्य।

नारायणसहाय कृत 'रामलीला' (1911 ई.), रामगुलामलाल[1] कृत 'धनुषयज्ञलीला' (1912 ई.), लक्ष्मीप्रसाद कृत 'उर्वशी' (1910 ई.), शिवनन्दन मिश्र कृत 'शकुन्तला' (1911 ई.), गंगाप्रसाद गुप्त कृत 'वीर जयमल' (1913 ई.), वृन्दावनलाल वर्मा कृत 'सेनापति ऊदल' (1909 ई.), बदरीनाथ भट्ट कृत 'चन्द्रगुप्त' (1915 ई.), कृष्णप्रकाश सिंह कृत 'पन्ना' (1915 ई.), जीवानन्द शर्मा कृत 'भारत-विजय' (1906 ई.), हरिदास माणिक कृत 'संयोगिता-हरण' (1915 ई.), कृष्णानन्द जोशी कृत 'उन्नति कहाँ से होगी' (1915 ई.), मिश्रबन्धु कृत 'नेत्रोन्मीलन' (1915 ई.) इत्यादि इस कथन के प्रमाण हैं। 1915 ई. आदर्शवादी युग के नाटक का गौरव-वर्ष था जिसमें अनेक ऐतिहासिक एवं सामाजिक नाटक रचे गए। संयोगात् जयशंकर प्रसाद कृत आरम्भिक नाटक 'राज्यश्री' भी इसी वर्ष प्रकाशित हुआ था! यद्यपि गंगाप्रसाद श्रीवास्तव (गोंडा के प्रसिद्ध जी.पी. श्रीवास्तव) के कई प्रहसन आदर्शवादी युग में भी प्रकाशित हुए थे, तथापि वे साहित्यिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। बदरीनाथ भट्ट कृत 'चुंगी की उम्मीदवारी' (1912 ई.) अवश्य सफल प्रहसन है। इस युग में संस्कृत, बांग्ला एवं अंग्रेज़ी के अनेक नाटकों के अनुवाद भी किए गए किन्तु वे इतने शिथिल एवं पुरातनताबद्ध हैं कि उल्लेख आवश्यक नहीं। नाट्य-विशृंखलता के इस युग में माखनलाल चतुर्वेदी कृत पावन राष्ट्रवाद से ऊभचूभ एवं सरस 'कृष्णार्जुनयुद्ध' (1918 ई.) सर्वश्रेष्ठ नाटक माना जा सकता है।

आग़ा हश्र कश्मीरी, नारायणप्रसाद 'बेताब', तुलसीदत्त 'शैदा' एवं राधेश्याम कंथावाचक पारसी थिएटर की व्यावसायिकता अथवा उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया के प्रतीक नाट्यकार आदर्शवादी युग में ही उभरे। ये अगले युग में भी प्रभावी रहे। मोहम्मद मियाँ 'रौनक', हुसैन मियाँ 'जरीफ़', सैयद मेहंदी हसन 'अहसान' एवं मुंशी विनायकप्रसाद 'तालिब' ने भी पारसी थिएटर के लिए नाटक लिखे। इन सारे नाटकों में उर्दूबाज़ी एवं असम्बद्ध-हास्य-संपृक्ति न होती तो ये साहित्य में समाहित किए जाते, क्योंकि इनमें भी सत् की विजय का ध्यान रखा जाता था तथा त्याग, बलिदास, वीरत्व, कर्मठता इत्यादि का चित्रण भी किया जाता था। राधेश्याम कथावाचक (जिनकी राधेश्याम-रामायण की कई दशकों तक इतनी धूम रही कि गाँधी तक ने इसे देखा—जिनके कारण बरेली अपने पागलखाने और 'झुमके' के कारणों से भी अधिक प्रसिद्ध हुई) अपेक्षाकृत अधिक सन्तुलित रहे; फलतः उनका 'वीर अभिमन्यु' नाटक पाठ्यक्रम-समादृत भी हुआ।

आकलन

आदर्शवादी युग ऐतिहासिक दृष्टि से राष्ट्रनिर्माण का अभूतपूर्व युग था, जिसमें सुधारवादी युग का विकास तो हुआ ही, नव्यता एवं भव्यता के दर्शन भी हुए। राजनैतिक दृष्टि से कांग्रेस के 'गरम दल' के लोकमान्य तिलक, लाला लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द घोष इत्यादि तथा 'नरम दल' के दादाभाई नौरोजी, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले[2], मदनमोहन मालवीय इत्यादि के कारण आदर्श तथा यथार्थ का उच्च स्तर विकसित हो चुका था। यह स्वदेशी, स्वराज्य, अतीत-स्तवन, बलिदान-आह्वान, समाज-सुधार इत्यादि तत्त्वों से परिपूर्ण राष्ट्रवाद के चरम उत्कर्ष का युग था, जिसे साहित्य ने निष्ठापूर्वक बिम्बित किया है। पर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने आत्मकथा का नाम 'ए नेशन इन मेकिंग' (एक राष्ट्र : निर्माण-प्रक्रिया में) ठीक ही रखा था। इस युग के हिन्दी-साहित्य के इतिहास पर विशद राष्ट्रनिर्माण-प्रक्रिया छाई हुई है। खेद है कि व्यापक ऐतिहासिक परिदृश्य को भुलाने के लिए, इस युग के विशद जन-साहित्य का सम्यक् आकलन आ. शुक्ल, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी एवं डॉ. नगेन्द्र इत्यादि पाश्चात्य आलोचना से अभिभूत परिसरवादी आलोचक नहीं कर सके तथा 'परप्रत्ययनेयबुद्धि- के वन्दी जन उनके अनुकरण में बहकर स्वयं अपने एवं साहित्य दोनों के साथ अन्याय करते रहे हैं। दिनकर, सुधीन्द्र, श्रीकृष्णलाल, विनयमोहन शर्मा इत्यादि ने इस युग के साथ न्याय करने का यत्न तो किया है, किन्तु इनके आ. शुक्ल, आ. वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र इत्यादि के स्तर के आलोचक न होने, विश्वविद्यालय-राजनीति में तद्वत् प्रभावी न होने अथवा कुछ के प्रकीर्ण विचारों मात्र में सीमित होने जैसे कारणों से 'इतिवृत्तात्मक', 'स्थूल', 'लौह-अनुशासन' इत्यादि की सत्य का हनन करनेवाली लफ़्फ़ाज़ी अब तक (कम-से-कम साधारण स्तर के छात्रों, शोधकर्ताओं, प्राध्यापकों इत्यादि के संवादों तथा लेखनों में) प्रभावहीन नहीं हो सकी। साम्यवाद-बद्ध होने के कारण डॉ. रामविलास शर्मा तथा अध्यवसायी शोधकर्ता होते हुए भी आलोचक-प्रतिभा

---

[1] मिर्ज़ापुर के प्रख्यात रामचरितमानस-मर्मज्ञ एवं रामचरितमानस के आदि-कथावाचक (जयरामदास 'दीन', बच्चू सूर, विजयानन्द त्रिपाठी, बिन्दुजी महाराज, कपीन्द्र, रामकिंकर उपाध्याय, मुरारीबाबू इत्यादि के 'पूर्वज', जिन्होंने 'कवित्त-प्रबन्ध', 'हनुमानाष्टक', 'श्रीरामाष्टक', 'रामविनय', 'रामस्तवराज' इत्यादि काव्य रचे थे) रामगुलाम द्विवेदी (देहान्त 1931 ई.) से भिन्न। रामगुलाम द्विवेदी पल्लेदार से तुलसी के प्रधान जीवन-विवेचक बने थे—इस दृष्टि से, कुली से भाषाशास्त्री ('पर हार नहीं मानी' के आत्मकथात्मकार) स्व. डॉ. भोलानाथ तिवारी तथा कवि घूमिल का स्मरण अनायास आ जाता है।

[2] महादेव गोविन्द रानाडे के शिष्य तथा मोहनदास करमचन्द गाँधी के गुरु।

के अभाव के कारण डॉ. उदयभानु सिंह भी इस दिशा में सत्य का निर्णायक उद्घाटन नहीं कर सके, यद्यपि दोनों के ग्रन्थ पठनीय एवं मननीय हैं।

निस्सन्देह, स्वच्छन्दतावादी कविता का समग्र बौद्धिककाल में प्रमुख स्थान है क्योंकि इसे प्रसाद, निराला एवं पन्त के रूपों में तीन महाकवियों तथा महादेवी जैसी महाकवयित्री ने तो सम्पन्न किया ही, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', मोहनलाल महतो 'वियोगी' इत्यादि ने भी इसके उन्नयन से अपना-अपना योगदान किया, माखनलाल, नवीन, सुभद्रा, बच्चन जैसे उन्मुक्त एवं उत्कृष्ट कवियों ने भी इसे विकसित किया। आदर्शवादी युग में मैथिलीशरण एवं हरिऔध के रूपों में दो महाकवि हुए तथा इस युग की कविता को श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पांडेय जैसी स्वच्छन्द प्रतिभाओं ने अपनी सर्जना से सम्पन्न किया—लोचनप्रसाद पांडेय का अतिशय मूल्यवान् प्रकृति-काव्य भी इसकी एक उपलब्धि है। जहाँ तक व्रजभाषा-काव्यसृजन का प्रश्न है, आदर्शवादी युग की समता बौद्धिककाल का कोई युग नहीं कर सकता—सुधारवादी युग भी इन्हीं जिसमें काव्याभिव्यक्ति का माध्यम व्रजभाषा ही थी! रत्नाकर एवं रामनाथ 'जोतिसी', 'शंकर' एवं राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', सत्यनारायण कविरत्न एवं रूपनारायण पांडेय इत्यादि की व्रजभाषा-काव्यरचना आधुनिककाल में अप्रतिम है। परिमाण एवं प्रभाव में आदर्शवादी युग की कविता स्वच्छन्दतावादी युग की कविता से भी अधिक पड़ जाती है, किन्तु गुणवत्ता (जिसका प्रधान आधार कामायनी एवं आँसू, अनामिका एवं परिमल, पल्लव एवं गुंजन, नीहार एवं दीपशिखा हैं) में स्वच्छन्दतावादी कविता निस्सन्देह आगे है। व्रजभाषा-काव्य की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी युग आदर्शवादी युग से बहुत पीछे पड़ जाता है।

गद्य-साहित्य की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी युग आदर्शवादी युग की समता नहीं कर सकता। हिन्दी के दोनों महान् विश्वस्तरीय गद्यकार प्रेमचन्द एवं आ. शुक्ल आदर्शवादी युग से ही संपृक्त किए जा सकते हैं—ध्येयवादिता में, मर्यादावदिता में, भाषा में, शैली में, सब में। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी का गद्यावतार-व्यक्तित्व तो हिन्दी-साहित्य के समग्र इतिहास में अकेला है ही, जिनका दिया गया उच्चारण आज भी मानक बना हुआ है। उन जैसे व्यक्ति को डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही 'अवतारी' बतलाया है। व्यक्तित्व-गरिमा में आदर्शवादी युग के आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, हरिऔध, रत्नाकर, प्रेमचन्द, आ. रामचन्द शुक्ल एवं मैथिलीशरण की समता स्वच्छन्दतावादी युग के प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी एवं माखनलाल नहीं कर पाते।

आदर्शवादी युग में खड़ीबोली कविता का सार्वभौम माध्यम बनी, गद्य का मानक रूप प्रकाश में आया (वर्तनी एवं विरामचिह्न-योजना सुनिश्चित हुई), गद्य की प्रायः सारी विधाएँ-उपविधाएँ उद्भूत एवं विकसित हुईं, अतः साहित्येतिहास की समग्र दृष्टि से इस युग का स्थान समग्र बौद्धिककाल में अन्यतम है।

प्रमुख साहित्यकार

सीताराम बी.ए. 'भूप'

रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, मेघदूतम्, मालविकाग्निमित्रम्, ऋतुसंहारम्, शृंगारतिलकम्[1] (कालिदास), उत्तररामचरितम्, मालतीमाधवम्, महावीरचरितम् (भवभूति), मृच्छकटिकम् (शूद्रक), नागानन्द (हर्ष) के सरल-सुगम अनुवादक के रूप में स्मरणीय रायबहादुर लीला[2] सीताराम बी.ए. 'भूप' (1853[3]—3 जनवरी, 1937[4], जन्म अयोध्या[5], मृत्यु प्रयाग[6]) ने शेक्सपिअर के कुछ नाटकों के भी अनुवाद किए तथा 'हितोपदेश' एवं 'प्रजाकर्तव्य' ग्रन्थ भी प्रस्तुत किए[7]। 'सावित्री' जैसे ग्रन्थ भी रचे। 'अवध अख़बार' के सम्पादक भी रहे। क्वीन्स कॉलेज काशी में अध्यापक और सीतापुर में प्रधानाध्यापक का कार्य करने के अनन्तर वे डेपुटी-कॅलेक्टर भी हुए। वे धार्मिक रुचि

---

[1] कालिदास-कृत होना विवादास्पद। रघुवंशम्, कुमारसम्भवम्, मेघदूतम् (संस्कृत की प्रसिद्ध महाकाव्य-लघुत्रयी), अभिज्ञान शाकुन्तलम्, विक्रमोर्वशीयम् मालविकाग्निमित्रम् (नाटक-त्रय) एवं 'ऋतुसंहारम्' (काव्य) 7 ग्रन्थ ही कालिदास के प्रामाणिक ग्रन्थ माने जाते हैं। वैसे, 39 ग्रन्थों तक की चर्चा की गई है।

[2] कायस्थ। (विनोद)

[3] हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास (चतुरसेन शास्त्री)। आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास (कृष्णशंकर शुक्ल) में 1858 ई. (1925 वि.) दिया है। शिक्षा-दीक्षा, शैक्षिक-प्रशासनिक पदादि देखते 1853 ई. में ठीक लगता है क्योंकि अनुवाद-कार्य भारतेन्दु (1850-85 ई.) के जीवनकाल में आरम्भ किया गया था।

[4] हिन्दी-साहित्य का इतिहास (शुक्ल)।

[5] विनोद (मिश्रबन्धु)।

[6] हिन्दी-साहित्य का इतिहास (शुक्ल)।

[7] हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 में डॉ. देवीशंकर अवस्थी।

के महानुभाव थे। उनके अनुवादों में दोहा-चौपाई या घनाक्षरी या विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। दोहे-चौपाई अवधी-प्रधान हैं तथा घनाक्षरी-सवैये इत्यादि अवधी-व्रज-मिश्रित। गद्य खड़ीबोली में है। उनके अनुवादों की भाषा बोलचाल की साधारण भाषा है, कालिदास जैसे महाकवियों का कलात्मक सम्प्रेषण करानेवाली मानक साहित्यिक भाषा नहीं। सम्भवतः इसीलिए आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी-कालिदास की आलोचना'[1] (1898 ई.) में इनके अनुवादों की भाषा एवं उनके भाव-सम्बन्धी दोषों[2] की कठोर एवं विस्तृत चर्चा की। वस्तुतः ये अनुवाद साधारण जनता के लिए थे।[3]

लाला सीताराम बी.ए. 'भूप' ने राजापुर (बाँदा) में प्राप्त रामचरितमानस के अयोध्याकाण्ड की प्रति का सम्पादन करते हुए ''मैं पुनि निज गुरु सन सुनी कथा सो सूकर खेत'' के आधार पर तुलसीदास का जन्मस्थान सोरों (एटा) सिद्ध करना चाहा। रामनरेश त्रिपाठी ने 'रामचरितमानस की टीका' एवं 'तुलसीदास और उनकी कविता' में इस कल्पना को आगे बढ़ाया। बाद में स्व. डॉ. रामदत्त भारद्वाज तो सोरों-सामग्री के आचार्य ही बन गए! 'नई खोज' के प्रेमीजन (विशेषतः 'नएपन' की दीवानी दिलवाली दिल्ली में) सोरों पर बेहद फ़िदा हो गए हैं।

कालिदास के अनुवादक एवं सोरों-सामग्री के प्रवर्तक के रूपों में लाला सीताराम बी.ए. 'भूप' सदैव स्मरणीय रहेंगे। 'भूप' के अनुवाद-राज्य के यत्किंचित् दर्शन करिए:

1. बन लगत डाढ़ा प्रबल चहुँ दिशि भूमि सब लखियत जरी। लू चलत इत-उत उड़त सूखे पात रूखन मनझरी।।
दिननाथ तेज प्रचंड बस नहिं नीर देखिय ताल में। डर लगत देखत बन सकल यहि कठिन ग्रीषमकाल में।।

2. सुनत अप्सरन गीत मनोहर। भए समाधि भंग नहिं संकर।।
जिन निजचित्तवृत्ति धरि साधो। सकै तोरि को तासु समाधी।।

3. राखत सँयोग आस प्रान सौं पियारि आजु, करहुँ मनोरथ अनेक जिय धीर धरि।
आपन सोहाग मम जीवन अधार जानि, होहु ना निरास कछु चित्तहि उदास करि।।
यहि जग कौन सुख भोगत सदैव भूप काहि पुन दुःख एक रहत जनम भरि।
ऊपर उठावत गिरावत धरनि पर, चक्र-कोर-सरिस नचावत सबहिं हरि।।[4]

'नवनीत'[5]

श्रीमथुरा हरिजन्मभू तरनितनूजा तीर। लगी रहत निसिदिन जहाँ मुनि सिद्धन की भीर।
तहाँ घाट बल्लभ बिदित श्री हलधर की पौर। ता पीछे मारू गली उज्जल सुंदर ठौर।
बसत जहाँ माथुर सबै जग जस चारि हजार। बिप्र बेद मैं बिदित जे जानत सब संसार।।
ता कुल कोबिद कृष्ण[6] सुत बूलचंद सुपुनीत। तिन त्रयसुत मैं एक लघु कहत नाम नवनीत।।

(गोपीप्रेमपियूषप्रवाह)

बौद्धिककाल के सुधारवादी युग से आदर्शवादी युग तक प्रसरित सक्षम एवं सुविख्यात पारम्परिक व्रजभाषा-कवि नवनीतलाल चौबे 'नवनीत' (1858-1932 ई., मथुरा) ने 'गोपीप्रेमपियूषप्रवाह' के अतिरिक्त 'प्रेमरत्न', 'सनेहशतक', 'छन्दनवनीत', 'काव्यनवनीत', 'षड्ऋतु-नवनीत', 'श्यामांगापयभूषण' इत्यादि अनेक ग्रन्थ रचे। 'नवनीत' एक आचार्य-कवि हैं, जिन्होंने गोविन्द गिल्लाभाई, रत्नाकर प्रभृति कवियों को प्रभावित किया। 'रहिमन-शतक' इनका एक अन्य उल्लेख्य ग्रन्थ है। इन्होंने 'मूर्खशतक' लिखकर व्रजभाषा-हास्यकाव्य में भी योगदान दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती के गुरु विरजानन्द इनके भी गुरु थे। पं. गंगादत्त से इन्होंने व्याकरण एवं काव्यशास्त्र सीखा। आ. पद्मसिंह शर्मा ने 'पद्मपराग' में इनके व्यक्तित्व-कृतित्व पर प्रकाश डाला है; यह 'प्रस्थान'-कार्य है। आ. शुक्ल ने लिखा

---

[1] 'कालिदास की निरंकुशता' से भिन्न ग्रन्थ।
[2] ''गुण नहीं ढूँढ़े गए।'' —आ. शुक्ल
[3] ''संस्कृत से अनभिज्ञ पाठकों का इनके द्वारा बड़ा उपकार हुआ है।'' —मिश्रबन्धु
[4] अनुवाद मौलिक लगते हैं और इससे अनुवादक की सफलता प्रमाणित होती है।
[5] 'व्रजवासी' के कवि तथा 'ध्वनि-विमर्श' ('ध्वन्यालोक' का सटीक व्रजभाषा-अनुवाद) के प्रस्तोता गोविन्द कवि (1912 ई.) नवनीत जी के पुत्र हैं।
[6] माथुर चौबे महाकवि बिहारी के पुत्र कृष्ण कवि (जिन्होंने बिहारी-सतसई की आचार्यत्वपूर्ण वार्तिक-निष्पन्न टीका रची थी) से भिन्न, क्योंकि उनका रचनाकाल 1730 ई. के आसपास का था।

है, ''पुरानी परिपाटी के आधुनिक कवियों में चौबेजी की बहुत ख्याति रही।'' मिश्रबन्धु ने इनके ''संस्कृत के अच्छे विद्वान्'' होने की सूचना भी दी है। शुक्लजी का उल्लेख नितान्त प्रासंगिक है, मिश्रबन्धु की चर्चा अत्यल्प। इनकी तुलना में 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में देवनारायण द्विवेदी का संक्षिप्त विवरण बहुत अच्छा है, जिसके अनुसार इनका प्रथम छन्द यह छप्पय है :

बंदौं श्री सिव-सुवन प्रथम मंगल-स्वरूप बर। लंबोदर गजबदन सदन-बुधि बिमल बेषधर।।
भाल चंद भुज चारि पास अंकुस बिचित्र कर। रक्त मलय सिंदूर अंग सोभित सु आँख पर।।
मंजु मुकुट कुंडल प्रभा सुभग सुंड मोदक लिए। प्रनत दीन नवनीत उर सो प्रकास कीजै हिए।।

'नवजीत' जी के समय तक ब्रजभाषा-कविता की पुरानी रंगत बनी हुई थी। अम्बिकादत्त व्यास एवं रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर' का कवि-समाज (काशी), जिसमें पं. नकछेदी तिवारी 'अजान' (डुमराँव) एवं विजयानन्द त्रिपाठी जैसे विद्वान् सहृदय कवि बन जाते हैं, तथा राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'[1] का रसिक-समाज[2] (कानपुर) इत्यादि जीवन्त काव्य-संस्थाएँ तो थी हीं, निज़ामाबाद (आज़मगढ़) के सिख-सन्त बाबा सुमेरसिंह का स्थान भी काव्यतीर्थ था, जिसमें उनके शिष्य हरिऔध एवं अन्य कवि सोत्साह भाग लेते थे। भारतेन्दु का घर तो कविता का घर ही था जहाँ स्थान-स्थान के कवि एकत्र होते, भाँग छानते, रबड़ी उड़ाते और जी भरकर गाते। जहाँ तक ब्रजभूमि का सम्बन्ध है (जिसमें 'नवजीत' जी जन्मे, जिए और मरे), वहाँ आज भी यमुना के साथ-साथ ब्रजभाषा की काव्य-गंगा प्रवाहित है! किन्तु सम्प्रति पत्र-पत्रिकाओं, दूरदर्शन, आकाशवाणी, शत-शत कार्यालयादि के कारण दिल्ली की पाखंडपूर्ण राजनैतिक महानगरी के साहित्य-केन्द्र बन जाने के कारण व्रज, अवधी, बुन्देली, बघेली, भोजपुरी इत्यादि विभाषाओं के श्रेष्ठ कवियों की उपेक्षा हो रही है तथा आधुनिकता के नाम पर खड़ीबोली के नाम पर खड़ीबोली के कई टकहवे कवियों की गुड्डी सातवें आसमान तक उड़ती बताई जा रही है! कांदिशीक पटरानी बनी बैठी है!

जगन्नाथप्रसाद 'भानु'

'छन्द-प्रभाकर' (1894 ई.), 'काव्य-प्रभाकर' (1909 ई.)[3], 'छन्दसारावली' के प्रख्यात छन्दःशास्त्री, 'हिन्दी-काव्यालंकार', 'अलंकार-प्रश्नोत्तरी' के उल्लेख्य अलंकारशास्त्री तथा 'रसरत्नाकर' के स्मरणीय रसशास्त्री, साहित्य-वाचस्पति, रायसाहब, जगन्नाथप्रसाद 'भानु' (8 अगस्त, 1859-25 अक्टूबर, 1945 नागपुर, कार्यक्षेत्र विलासपुर) ने 'नवपंचामृत-रामायण', 'कालप्रबोध', 'दुर्गा सान्वय भाषा-टीका', 'काव्य-कुसुमांजलि' एवं 'काव्यप्रबन्ध' ग्रन्थ भी रचे थे तथा 'गुलज़ार सखुन उर्दू' भी पेश किया था। वे संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी, फ़ारसी, उर्दू के अतिरिक्त प्राकृत, मराठी, उड़िया प्रभृति अनेक भाषाओं के ज्ञाता थे। 'भानु' को आधुनिक-भिखारीदास कहा जा सकता है क्योंकि उन्होंने प्रायः सर्वांगीण काव्यनिरूपण किया है। उनका समग्र परवर्ती छन्दःशास्त्रियों पर विशेष एवं अलंकारशास्त्रियों तथा रसशास्त्रियों पर सामान्य प्रभाव शोध का अच्छा विषय है। 'भानु' को बौद्धिककालीन काव्यशास्त्रियों में कविराजा मुरारिदान, कन्हैयालाल पोद्दार, रामदहिन मिश्र, अर्जुनदास केडिया, श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, भगवानदीन 'दीन', गुलाबराय, नगेन्द, अवध उपाध्याय, रामबहोरी शुक्ल प्रभृति के मध्य एक उच्च स्थान प्राप्त है। 'हिन्दी के रसशास्त्र-विवेचक', 'हिन्दी के अलंकारशास्त्र-विवेचक', 'हिन्दी के छन्दःशास्त्र-विवेचक', 'आधुनिक काव्यशास्त्र आचार्य' जैसे विषयों पर पीएच.डी. शोधकार्य तथा हिन्दी-छन्दःशास्त्र का इतिहास और पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र' जैसे विषय पर डि.लिट् शोधकार्य होना चाहिए। यद्यपि वे कवि भी थे, तथापि साहित्येतिहास में उनका स्थान सामान्यतः काव्यशास्त्री एवं विशेषतः छन्दःशास्त्री के रूप में ही लिया जाता है। उन्होंने कठिन एवं शुष्क रसशास्त्र, अलंकारशास्त्र एवं छन्दःशास्त्र को सरल परिभाषाओं एवं सटीक उदाहरणों द्वारा बोधगम्य रूप प्रदान करने में प्रशस्य सफलता प्राप्त की है। इस दृष्टि से वे एक सफल आचार्य हैं। यद्यपि वे परम्परावादी हैं, तथापि उनका विषय-निरूपण सफल है। वस्तुतः रसशास्त्र, अलंकारशास्त्र एवं छन्दःशास्त्र इत्यादि अथवा दशांग-काव्य का सम्यक् विवेचन परम्परा से एकदम कट-छँट कर किया भी नहीं जा सकता। फिर, पारम्परिक विषयों के विवेचन में परम्परा से बिचकने-बिदकने का कोई तर्कसंगत कारण भी दृग्गत नहीं होता।

---

1. जिनसे मिलने आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी प्रयागनारायण का शिवाला परिसर में स्थित उनके घर गए थे।
2. इसमें महान् निबन्धकार एवं कवि पं. प्रतापनारायण मिश्र समस्या-पूर्तियाँ सुनाया करते थे।
3. डॉ. नित्यानन्द तिवारी (हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2, पृ. 201)

'काव्य-प्रभाकर' का काव्य-भूमिका प्रस्तुत है :

छंद को प्रबंध त्यों ही व्यंग्य नायिकादि भेद, उद्दीपन भाव अनुभाव पति बामा के।
भाव सनचारी असथायी रस भूषण ह्वै, दूषन अदूषन जे कविता ललामा के।।
काव्य को विचार 'भानु' लोक उक्ति सार कोष, 'काव्य-प्रभाकर' में साजि काव्य सामा के।
कोबिद कबीसन को कृष्ण मानि भेंट देत, अंगीकार कीजै चारि चाउर सुदामा के।।

गोविन्दनारायण मिश्र[1]

'हिन्दी का अलंकृत-गद्य' शोध का विषय बन चुका है, क्योंकि प्रेमघन, गोविन्दनारायण मिश्र (1859-1926 ई.), बालकृष्ण भट्ट के 'आँसू' और 'चन्द्रोदय' निबन्ध इत्यादि से लेकर माखनलाल चतुर्वेदी, प्रसाद, महादेवी इत्यादि तथा राय कृष्णदास, चंडीप्रसाद 'हृदयेश', वियोगीहरि, 'रावी' इत्यादि तक उसके विविध रंग एवं रूप एक विशेष प्रकार की कला का दर्शन कराते हैं। माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'साहित्य-देवता' हिन्दी के अलंकृत-गद्य की एक अन्यतम उपलब्धि है। संस्कृति में बाण एवं दण्डी, अंग्रेज़ी में सर टॉमस ब्राउन एवं बर्टन इत्यादि अलंकृत-गद्य के लिए विख्यात हैं। प्रत्येक उन्नत भाषा में अलंकृत-गद्यशैली के दर्शन भी हो ही जाते हैं, जिसे केवल प्रदर्शन मानना उचित नहीं है। अलंकृत-गद्य गद्यगीत से भिन्न है (भले ही कई गद्यगीतकारों जैसे माखनलाल चतुर्वेदी, राय कृष्णदास, रामप्रसाद 'रावी' इत्यादि ने इसे भी अलंकृत किया हो—हिन्दी—गद्यगीत का अलग इतिहास है जिसमें राय कृष्णदास, भँवरमल सिन्धी, चतुरसेन शास्त्री, माखनलाल चतुर्वेदी, मुक्तानन्द परमहंस, दिनेशनन्दिनी डालमिया, राकेशनन्दिनी गुप्त इत्यादि समाविष्ट हैं।) हिन्दी में गोविन्दनारायण मिश्र अलंकृत-गद्य के एक श्रेष्ठतम लेखक हैं।

पं. गोविन्दनारायण मिश्र संस्कृत एवं हिन्दी के गम्भीर विद्वान् थे तथा अपने भाई पं. सदानन्द मिश्र के 'सार-सुधानिधि' में लिखा करते थे। जब भाषा में 'अनस्थिरता' शब्द के प्रयोग के कारण बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने 'आत्माराम' के छद्मनाम से आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी से चुहलबाज़ी शुरू की और छोटा-मोटा व्याकरण-युद्ध[2] ही छिड़ गया तब मिश्रजी ने 'आत्माराम की टें-टें' पर प्रहार किया। स्वयं आ. द्विवेदी ने 'सरगौ नरक ठिकाना नाहिं' के ख़ालिस बैसवाड़ी (बैसवारी) में रचित आल्हा के साथ कल्लू अल्हइत के छद्मनाम से व्यंग्य किया :

...भैंसि भवानी कै तब सेवा लागेन करन, पढ़ब गा छूटि। बटुवन दूधु दुहा इन हाथन, धार न कबहुँ दुहत माँ टूटि।।
मोटरिन कटिया भथुरा, सानी कीन्ह रोजु हम बाँह चढ़ाय। मस्त भएन तब आल्हा गावा उपर दुहत्था हाथु उठाय।।
अचकन पहिरि, बूट हम डाटा, बाबू[3] बनेन डेरात-डेरात। लागेन आवै-जाय सभन मा, कंठु फूट तब बना बतात।।
जब तक हमरे तन माँ तनिकौ रहा गाँव के रस का अंसु। तब तक हम अखबार किताबै लिखि-लिखि कीन उजागर बंसु।।

इस व्याकरण-युद्ध ने बड़ों-बड़ों को सोच-विचार कर लिखने के लिए सचेत करने की प्रेरणा दी, हास्य-साहित्य की श्रीवृद्धि की। 'आ. द्विवेदी एवं बाबू बालमुकुन्द गुप्त का व्याकरण-द्वन्द्व तथा उस पर रचित साहित्य' लघुप्रबन्ध का एक उत्तम विषय है। किन्तु ये लोग इतने महान् थे कि जब बाबू साहब आचार्य से मिले तब चरणस्पर्श करने में नहीं झिझके और अर्से बाद आ. किशोरीदास वाजपेयी द्वारा 'अनथिरता' शब्द की चर्चा पर गुरु ने 'भाई मेरे' प्रिय सम्बोधन के साथ स्वीकार किया कि वह त्रुटि थी जो ध्यान न देने के कारण लगातार छपती रही! कभी-कभी तिल का ताड़ भी अच्छे झोंके दे जाता है‍त्र

पं. गोविन्दनारायण मिश्र का द्वितीय हिन्दी-साहित्य सम्मेलन (प्रयाग, 1968 वि.[4]) का अध्यक्षीय भाषण चिरस्मणीय है जो उन्होंने प्रसन्न एवं सहज गद्य में दिया था, जिसके ''मातृभाषा की यथोचित उन्नति के साथ ही अपने और अपने देश की दशा को सहज ही सुधार सकते हैं'', ''मातृभाषा हिन्दी की यथाशक्ति सेवा और भक्ति-आराधना करना हमारा परम कर्तव्य है'', ''जब तक अपनी मातृभाषा का आदर और सम्मान करना न सीखेंगे तब तक इसकी दुर्दशा का अन्त न होगा'' जैसे सूत्र आज भी, पूर्ववत् ही,

---

[1] 'त्रिवेणी' के हाइकूकार गोविन्दनारायण मिश्र समनामी हैं।

[2] मिश्रबन्धु एवं कृष्णबिहारी मिश्र तथा भगवानदीन 'दीन' एवं पद्मसिंह शर्मा के क्रमशः देव तथा बिहारी के पक्ष में आलोचना-युद्ध का स्मरण आता है।

[3] ध्वनिपूर्ण श्लिष्ट प्रयोग।

[4] 1911 ई.। प्रथम सम्मेलन काशी में महामना पं. मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में एक वर्ष पूर्व (1910 ई.) हुआ था।

महत्त्वपूर्ण हैं। 'गोविन्द-निबन्धावली' (1925 ई.) के कारण मिश्र जी को आदर्शवादी युग के एक विशिष्ट निबन्धकार का स्थान प्राप्त है। 'विभक्ति-विचार'[1] (1911 ई.) इनका अन्य उल्लेख्य ग्रन्थ है। 'शिक्षा-सोपान' एवं 'सारस्वती-सर्वस्व'[2] उनके अन्य ग्रन्थ हैं। 'हिन्दी के व्याकरणाचार्य' ग्रन्थ या शोधप्रबन्ध में भी पं. गोविन्दनारायण मिश्र को आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं. कामताप्रसाद गुरु, आ. किशोरीदास वाजपेयी इत्यादि के साथ टिकाऊ जगह मिलेगी। इनके सहज-गद्य के उदाहरण सम्मेलन के भाषण में प्राप्त हैं, अन्यत्र भी। इनके अलंकृत-गद्य का उदारहण प्रस्तुत है : ''सरदपूनो के समुदित पूरचन्द की छिटकी जुन्हाई सकल मनभायी के भी मुँह मसि मल, पूजनीय अलौकिक पदनखचन्द्रिका की चमक के आगे तेजहीन मलीन और कलंकित कर दरसाती, लजाती सरस-सुधाधौली अलौकिक सुप्रभा फैलाती, अशेष मोहजड़ता-प्रगाढ़-तम-सोम सटकाती, मुसकाती, निजभक्तजन-मनवांछित वराभय भक्ति-मुक्ति सुचारु चारों मुक्त हाथों से मुक्ति लुटाती...मुक्ताहारी नीरक्षीरविचार-सुचतुरकवि-कोविद-राज–राज-हिय-सिंहासन-निवासिनी मन्दहासिनी, त्रिलोक-प्रकाशिनी सरस्वती माता के अति दुलारे, प्राणों से प्यारे पुत्रों की अनुपम अनोखी अतुल बलवाली परम प्रभावशाली सुजनमन-मोहिनी नवरसभरी सरस-सुखद विचित्र वचना-रचना का नाम ही साहित्य है।'' सचमुच, ''सहितस्य भावः इति साहित्यः'' या ''ज्ञान-राशि के संचित कोष ही का नाम साहित्य है'' जैसी परिभाषाओं की तुलना में यह परिभाषा विकट ही है! यह सहज एवं प्रसन्न गद्य नहीं है। किन्तु यदि किसी को बाण और दंडी तथा ब्राउन और बर्टन के गद्य की छटा देखनी हो तो वह मिश्र और प्रेमघन के गद्य में देख सकता है।

श्रीधर पाठक

आ. शुक्ल के शब्दों में 'सच्चे स्वच्छन्दतावाद के प्रवर्तक' कविवर श्रीधर पाठक (1859-1928 ई.)[3] का जन्म जोंधरी, जनपद आगरा में हुआ तथा निवास क्रमशः पन्नी गली, आगरा एवं लूकरगंज, इलाहाबाद में। वे नहर विभाग में उच्च पदाधिकारी थे। उन्हें संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी इत्यादि कई भाषाओं की गहरी जानकारी थी। गोल्डस्मिथ के 'हर्मिट'[4] का 'एकान्तवासी योगी', 'ट्रैवेलर' का 'श्रान्त पथिक' एवं 'डेज़र्टेड विलेज' का 'ऊजड़ ग्राम' शीर्षकों से अनुवाद करने के कारण उन्हें अच्छी ख्याति मिली क्योंकि उन दिनों अंग्रेज़ी से अनुवाद बहुत बड़ी प्रतिभा का प्रमाण माना जाता था (जैसाकि आ. द्विवेदी एवं आ. शुक्ल के नाना अनुवादों से स्पष्ट है)। किन्तु उन्होंने कालिदास के ऋतुसंहारम् का अनुवाद भी किया था। 'जगत सचाई', 'कश्मीर-सुषमा', 'भारत-गीत', 'मनोविनोद' (तीन भाग), 'वनाष्टक', 'स्वर्गीय वीणा' इत्यादि कृतियों में श्रीधर पाठक एक सशक्त जीवनवादी, प्रकृतिप्रेमी एवं राष्ट्रभक्त कवि सिद्ध होते हैं। उनका व्रजभाषा-सृजन नव्य एवं भव्य है तथा खड़ीबोली-सृजन साधारण होते हुए भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वे 1897-98 ई. में ही आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आ गए थे, जो 1903 ई. में 'सरस्वती' के सम्पादक बनने से पूर्व ही गद्यभाषा खड़ीबोली को पद्यभाषा भी बनाने तथा नए-नए विषयों, भावों, विचारों, छन्दों, अतुकान्त छन्दों इत्यादि के समावेश का आन्दोलन कर रहे थे (जैसा कि 1900 ई. में 'सरस्वती' के समारम्भ से ही उनके इस पत्रिका में प्रकाशित निबन्धों एवं कविताओं से स्पष्ट है)। द्विवेदी पाठक का बहुत आदर करते थे जिसे उनके बीच हुए अंग्रेज़ी-पत्रव्यवहार में आज भी देखा जा सकता है (पाठक के पौत्र श्री पद्मधर पाठक ने अच्छी-ख़ासी पुस्तक के रूप में प्रकाशन करा दिया है)।

---

1. मिश्रबन्धु एवं शुक्ल इसकी संस्कृत-परिपाटी के विरोधी थे। हिन्दी एक स्वतन्त्र भाषा है।
2. कवि, विद्वान् एवं व्यंग्यकार स्व. पं. उमादत्त 'दत्त' पर 'सारस्वत' (1988 ई.) का स्मरण आता है, जिसका सम्पादन उनके पुत्र कवि, लेखक एवं सम्पादक डॉ. गणेशदत्त सारस्वत ने किया है। डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' के एक प्रसिद्ध निबन्धसंग्रह का नाम भी 'सारस्वत' है। डॉ. ओमानन्द सारस्वत एक जाने-माने साहित्यकार हैं।
3. शुक्ल के 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में जन्मसंवत् 1933 वि. दिया है जो एकदम ग़लत है। शुक्ल के उपजीव्य-ग्रन्थ मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' में 1916 वि. दिया है जो ठीक है। शुक्ल के 'इतिहास' का मृत्यु-संवत् 1985 वि. ठीक है। जीनवकाल 1916-85 वि. है।
4. झालरापाटन (गुजरात) के पं. गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' (जयपुर, राजस्थान के विख्यात संस्कृत-विद्वान् एवं हिन्दी-प्रेमी महामहोपाध्याय पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी से स्पष्टतः भिन्न) ने 'हर्मिट' का संस्कृत-अनुवाद किया। संयोगात् कवि गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' एवं विद्वान् गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी का जन्म 1881 ई. में ही हुआ था। 'नवरत्न' आचार्य की 'सरस्वती' के एक मान्य कवि थे जिनकी ये पंक्तियाँ आज तक प्रसिद्ध हैं :
मैं जो नया ग्रंथ विलोकता हूँ, भाता मुझे सो नव मित्र सा है। देखूँ उसे मैं नित बार-बार मानो मिला मित्र मुझे पुराना।।
''ब्रह्मन! तजो पुस्तक-प्रेम आप, देता अभी हूँ यह राज्य सारा।'' कहे मुझे यदि यों चक्रवर्ती, ''ऐसा न राजन! कहिए'', कहूँ मैं।।

शुक्ल की मनतरंग पाठक के प्रकृतिप्रेम एवं स्वच्छन्दतावाद पर बहुत रीझी है। अज्ञेय ने आचार्य का अनुकरण करते हुए, द्विवेदी के पाठक को लिखे गए अंग्रेज़ी-पत्रसंग्रह ग्रन्थ की भूमिका में, द्विवेदी-प्रतिपादित तथ्यपरक कविता के प्रत्याख्यान में पाठक की आवश्यकता से अधिक प्रशस्ति कर डाली है : यहाँ तक कहा है कि पाठक ही वास्तविक नवकाव्य-प्रतिष्ठापक थे तथा यदि उनके नेतृत्व पर चला गया होता तो वरेण्य रहता! स्वच्छन्दतावादी कविता ही असली कविता है, अन्य सब नक़ली? फिर, द्विवेदी न तो स्वच्छन्दता के विरोधी थे (प्रसाद की कविताएँ छापी थीं, निराला चरणवन्दन करते थे और 'परिमल' की भूमिका में प्रशस्ति भी, पन्त ने कविता लिखी है, महादेवी ने राष्ट्र-सेवा एवं राष्ट्रभाषा-सेवा के तुलना-सन्दर्भ में गाँधी से तुलना की है, जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' ने श्रद्धापूर्ण निबन्ध लिखा है), न प्रकृतिप्रेम के (उनके एक निकटतम शिष्य लोचनप्रसाद पांडेय प्रकृति के कवि के रूप में पन्त के अतिरिक्त किसी से भी आगे हैं)। स्वच्छन्दतावाद की मूल प्रवृत्तियाँ आलम, घनआनन्द, द्विजदेव, भारतेन्दु, जगमोहन सिंह इत्यादि कवियों में भी प्राप्त हैं। दिनकर ने स्वच्छन्दतावाद के मूल में घनआनन्द का उल्लेख ठीक किया है। अज्ञेय की किसी स्थापना का कोई भी अर्थ नहीं निकला, क्योंकि उनका अधुनातन कविता के अतिरिक्त अन्य किसी कविता का कोई अध्ययन न तो था ही तथा न कहीं व्यक्त ही किया गया है (यह भी विडम्बना है कि उन्होंने वृद्धावस्था में अपने को युगप्रवर्तक सिद्ध करने के प्रयोजन से अपने क्रियाकलाप के सन्दर्भ में आ. द्विवेदी का नाम लिया है तथा वे आचार्य के पट्ट शिष्य मैथिलीशरण का चरणस्पर्श भी किया करते थे)। पाठक की 'हिमालय', 'कश्मीर-सुषमा' जैसी कुछेक प्रकृति-कविताएँ भी उत्कृष्ट हैं तथा विलक्षण प्रयोगों से निष्पन्न 'सांध्य-अटन' जैसी खड़ीबोली-कविताएँ उन्हें आधुनिक प्रयोगवाद का आदिकवि अथवा अज्ञेय का काव्य-पितामह (पिता इलिअॅट या एलिअॅट) भले ही सिद्ध करती हों किन्तु सम्प्रेषण एवं प्रभाव में सफल नहीं हैं। पाठक की खड़ीबोली पर व्रजभाषा की छाप प्रायः अनमिल हो गई है। वे व्रजभाषा-कविता में ही विशेष सफल हैं। किन्तु उनकी खड़ीबोली कविता का ऐतिहासिक महत्त्व निर्विवाद है। आ. द्विवेदी ने कविता को विराट् जीवन से शतशः संपृक्त किया, जिससे पाठक जैसे अग्रज, हरिऔध जैसे प्रायः समवयस्क, मैथिलीशरण जैसे शिष्य ही नहीं प्रभावित हुए—स्वयं शुक्ल ने द्विवेदी-काल का प्रतिष्ठापन किया। ('विनोद' में भारतेन्दु-काल तो था जिसे शुक्ल ने ग्रहण किया किन्तु व्यक्तिगत राग-द्वेष के कारण द्विवेदी-काल न था)! पाठक एक उत्कृष्ट कवि मात्र थे, युगप्रवर्तक आचार्य नहीं। पारम्परिक एवं नवीन दोनों प्रकार की कविताओं में उन्हें अच्छी सफलता मिली है। सांग-रूपक उनका प्रिय अलंकार है। कुछ उद्धरण भी उन्हें सफल कवि सिद्ध कर सकते हैं :

1. प्रकृति इहाँ एकान्त बैठि जिन रूप सँवारति। पल-पल पलटति भेष, छनिक छबि छिन-छिन धारति।।
बिलम अंबुसर-मुकुरन महँ मुखबिम्ब निहारति। अपनी छबि पर मोहित आप ही तन-मन वारति।। (कश्मीर-सुषमा)
2. उज्जल ऊँचे सिखर दूरि देसन लौं चमकत। परत भानु नव किरन प्रात सुबरन सम दमकत।। (हिमालय)

3. ऐ घन! स्यामता तो मैं घनी, तन बिज्जु-छटा को पितंबर राजै।
दादुर-मोर-पपीहा-मयी अलबेली मनोहर बाँसुरी बाजै।।
सौ बिधि सों नबला अबला उर आस बिलास हुलास उपाजै।
जो कछु स्याम कियो ब्रजमंडल सो सब तू भुवमंडल साजै।

4. चंचल जो सफरी फरकैं मनु मंजु लसी कटि किंकिनि डोरी।
सेत बिहंगन की सुठि पंगति राजति सुंदर हार लौं गोरी।
तीर के बृच्छ बिसाल नितंब सुमंद प्रवाह भई गति थोरी।
राजति या रितु मैं सरिता गजगामिनि कामिनि सी रसबोरी।।

5. कहो न प्यारे! मुझसे ऐसा, झूठा है यह सब संसार, थोथा झगड़ा, जी का रगड़ा, केवल दुख का हेतु अपार। (जगत सचाई)
6. उस कारीगर ने यह कैसा सुंदर चित्र बनाया है, कहीं पै जलमैं कहीं रेतमैं कहीं धूप कहिं छाया है।
7. नव जोबन के सुधा-सलिल में क्यां विष-बिन्दु मिलाया है, अपनी सौख्य-वाटिका में क्या कंटक-वृक्ष लगाया है।
प्रानपियारे की गुनगाथा, साधु! कहाँ तक मैं गाऊँ, गाते-गाते नहीं चुकै वह चाहे मैं भी चुक जाऊँ।।
8. कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमंजु वीणा बजा रही है। सुरों के संगीत की सी केसी सुरीली गुंजार आ रही है।
कोई पुरंदर की किंकरी है कि या किसी सुर की सुंदरी है। वियोगतप्ता सी भोगमुक्ता वियोग उद्गार गा रही है।।

कभी नई तान प्रेममय है, कभी प्रकोपन, कभी विनय है। दया है, दाक्षिण्य का उदय है, अनेकों[1] बानक बना रही है।।
भरे गगन में हैं जितने तारे, हुए हैं मदमस्त गत पै सारे। समस्त ब्रह्माण्ड भर को मानो दो उँगलियों पर नचा रही है।

9. जिन वन-प्रांत था, प्रकृति-मुख-शान्त था। अटन का समय था, रजनि का उदय था।
प्रसव के काल की लालिमा में लसा। बालशशि व्योम की ओर था आ रहा।।
सद्य उत्फुल्ल-अरविन्द-नभ नील सुवि-शाल नभ-वक्ष पर जा रहा था चढ़ा।.... (सांध्य अटन)

अन्ततः उनकी प्रशस्ति में युग के महानतम साहित्यसेवी एवं इतिहास के महानतम साहित्य-निर्माता आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के उद्‌गार का एक अंश प्रस्तुत है :

बाला-वधू अधर-अद्‌भुत स्वादुताई दाक्षाहु की मधुरिया, मधु की मिठाई।
एकत्र जो चहहु पेखन प्रेम-पागी, तो श्रीधरोक्त कविता पढ़िएऽनुरागी।
पीयूष है यदि पदार्थ, यथार्थ कोऊ, काहे न ताहि करि पान प्रसन्न होऊ।
प्रत्येक पद्य, प्रति पंक्तिहु में, सदाहीं, सो विद्यमान कवि-श्रीधर काव्य माहीं।

नाथूराम शर्मा 'शंकर'[2]

व्रजभाषा एवं खड़ीबोली के कुशल कवि, जाने-माने आर्यसमाजी एवं अपने समय में ग्रीअर्सन, आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रेमचन्द, गणेशशंकर विद्यार्थी, सनेही इत्यादि द्वारा सम्मानित होने के कारण अतिविख्यात नाथूराम शर्मा 'शंकर' (1859-1935 ई., हरदुवागंज, जनपद अलीगढ़[3], उ.प्र.) उर्दू में शायरी एवं ब्रजभाषा में समस्यापूर्ति इत्यादि करते हुए, आ. द्विवेदी के प्रभाव से श्रीधर पाठक, 'पूर्ण', सनेही इत्यादि के सदृश, खड़ीबोली के उतरे अपने-अपने अक्खड़पन, सुधारवाद इत्यादि के कारण कविसम्मेलनों पर छा गए। उन्हें आरम्भिक प्रेरणा नहर-विभाग के कर्मचारी के रूप में कानपुर- प्रवासकाल के मध्य सुधारवादी युग के एक सीमान्त प्रतापनारायण मिश्र एवं उनके विख्यात पत्र 'ब्राह्मण' से प्राप्त हुई थी। उनके सुपुत्र हरिशंकर शर्मा भी प्रसिद्ध कवि एवं लेखक थे।

विधवाविवाह के समर्थन में रचित विशाल प्रबन्धकाव्य 'गर्भरण्डारहस्य' उनकी सर्वविख्यात कृति है। उनके तीखे व्यंग्य-प्रहार 'वायस-विजय' में भी दृग्गत होते हैं। 'अनुराग-रत्न' में उनके व्यक्तित्व-कृतित्व का सहज-कोमल पक्ष विवृत हुआ है। 'शंकर-सरोज' उनका अन्य कवितासंग्रह है। निधनोपरान्त, 1951 ई. में 'शंकर-सर्वस्व' ('गीतावली', 'कविता-कुंज', 'दोहा', 'समस्या-पूर्ति' एवं 'विविध कृतित्व- का पंचरत्न) प्रकाशित हुआ। अपनी श्रृंगारिक रचनाएँ उन्होंने स्वयं (सम्भवतः आर्यसमाजी प्रभाववृद्धि के कारण) नष्ट कर दी थीं, 'शंकर-सतसई' को आग निगल गई! निस्सन्देह, 'शंकर' एक स्फीत कवि हैं, किन्तु सामयिकता के अतिरेक के कारण उनका स्थायी महत्त्व का कृतित्व अत्यल्प है। तात्कालिकी-प्रतिभा की विलक्षणता के कारण वे 'महाकवि शंकर' कहे जाते थे। एक बार कानपुर में कविता-प्रतियोगिता के लिए आमन्त्रित थे। किन्तु पुरस्कार सनेही को मिला। सनेही ओजस्वी कविता-रचना 'त्रिशूल' उपनाम से करते थे। जब इनसे कवितापाठ का आग्रह किया गया तब हाव-भाव एवं हस्त-प्रतीक के साथ यह दोहा सुनाया जो आज तक प्रसिद्ध है :

शंकर कविता क्या कहे, कहना है बेकार। पुरस्कार तो ले गया शंकर का हथियार[4]।।

शास्त्रीयकालीन श्रृंगारिक कविता से लेकर बौद्धिककालीन सुधारवादी युग का सोद्‌देश्य कविता तक एवं देशभक्ति की कविता से लेकर दलित-संवेदन की कविता तक स्फीत रचना करके 'शंकर' ने आयामों की व्यापकता का प्रशस्य परिचय तो दिया ही है,

---

[1] 'अनेक' का अर्थ ही है, जो एक न हो अर्थात् एक से अधिक हो। 'अनेकों' का प्रयोग ग़लत।

[2] द्वारिकाप्रसाद शुक्ल 'शंकर' रायबरेली के न्यायाधीश-कवि थे (रामचन्द्र शुक्ल रायबरेली के पूर्व न्यायाधीश-कवि हैं) जिनके अनुज रामअवतार शुक्ल 'चातुर' की ख्याति अब तक क़ायम है। 'शंकर' एवं 'चातुर' बन्धुद्वय का प्रभावकाल 1900-20 ई. रहा। 'चातुर' के ज्येष्ठ पुत्र श्री कृष्णशंकर शुक्ल 'कृष्ण' (1915-37 ई.) भी एक उल्लेखनीय कवि थे। कृपाशंकर मिश्र 'शंकर' एवं स्व. हरिशंकर उपाध्याय 'शंकर' (1906 ई.) अन्य समोपनामी हैं। नाथूराम शर्मा 'शंकर', द्वारिकाप्रसाद शुक्ल 'शंकर', कृपाशंकर मिश्र 'शंकर' एवं हरिशंकर उपाध्याय 'शंकर' के अतिरिक्त अन्य 'शंकर भी हुए हैं। किन्तु नाथूराम शर्मा 'शंकर' की ही ख्याति अधिक है।

[3] नाथूराम शर्मा 'शंकर' के अतिरिक्त जैनेन्द्र, नगेन्द्र, दीनदयाल गुप्त, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, यशपाल जैन, जीवनप्रकाश जोशी इत्यादि भी अलीगढ़ जनपद या नगर में जन्मे। डॉ. हरवंशलाल शर्मा, डॉ. मनोहरलाल गौड़ इत्यादि विद्वान् वहाँ रहे और लोकप्रिय कवि 'नीरज' बसे। अतएव, अलीगढ़ को हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक उल्लेख्य स्थान प्राप्त है।

[4] 'त्रिशूल' निस्सन्देह 'शंकर' का अस्त्र है! जब मूढ़ता-निलय दूरदर्शन-आकाशवाणी के परम प्रिय 'हथियार' और 'हथियार-नियन्त्रण' शब्द सुनता हूँ तब भी यह दोहा याद आ जाता है!

आदर्शवादी युग के आचार्य द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, ईश्वरीप्रसाद वर्मा, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी इत्यादि के सदृश हास्यकाव्य भी लिखा है। अत्युक्ति में उनकी विशेष रुचि थी। अलंकरण में विशेष रुचि के कारण उनकी कविता शास्त्रीयकालीन कविता का स्मरण बहुत कराती है, किन्तु उन्होंने नव्यता की उपेक्षा नहीं की। उदाहरण देखें :

1. शंकर नदी नद नदीसन के नीरन की, भाप बन अंबर में ऊँची चढ़ जाएगी।
दोनों ध्रुव-छोरन लौं पल में पिघलकर, घूम-घूम धरनी धुरी-सी बढ़ जाएगी।।
झारैंगे अँगारे ये तरनि तारे तारापति, जारैंगे खमंडल में आग मढ़ जाएगी।
काहू विधि विधि की बनावट बचैगी नाहिं, जो पै वियोगिनी की आह कढ़ जाएगी।।

2. फैल गया हुड़दंग होलिका की हलचल में। फूल फूल कर फाग फला महिला मंडल में।
जननी भी तज लाज बनी ब्रजमक्खी सब की। पर मैं पिण्ड छुड़ाय जवनिका में जा दबकी।।

3. भड़क भुला दो भूतकाल की, सजिए वर्तमान के साथ। फैसन फेर इंडिया[1] भर के, गोरे गॉड[2] बनो ब्रजराज!
गौर वर्ण वृषभानुसुता का, काढ़ो काले तन पर तोप। नाथ! उतारो मोर-मुकुट को, सिर पै सजो साहिबी टोप।।
पौडर चंदन पोंछ लपेटो, आनन-श्री की ज्योति जगाय। अंज अँखियों में मत आँजो, आला ऐनक लेहु लगाय।।
रवधर कानों में लटका लो कुंडल काढ़ मेकराफून। तज पीताम्बर कम्बल काला, डाटो कोट और पतलून।[3]

4. काटे पेट अकिंचन सोय रहे। बिन भोजन बालक रोय रहे।।
चिथड़े तक भी न रहे तन पै। धिक! धूल पड़े इस जीवन पै।।

मदनमोहन मालवीय

भारत के शीर्षस्थ राष्ट्रीय नेताओं में 'महामना' (तिलक)[4], 'भारत-भूषण' (गाँधी)[5], 'देश-पूज्य' (रामचन्द्र शुक्ल)[6], पं. मदनमोहन मालवीय (25 दिसम्बर[7], 1861[8]—12 नवम्बर, 1946 जन्म प्रयाग, निधन काशी) हिन्दी के अन्यतम उन्नायक थे। रामानन्द, मदनमोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, जवाहरलाल नेहरू, गणेशशंकर विद्यार्थी, इन्दिरा गाँधी जैसे नेताओं तथा बालकृष्ण भट्ट, सुभद्राकुमारी चौहान, बच्चन जैसे साहित्यकारों, भारतीय चलचित्र-इतिहास के सर्वश्रेष्ठ अभिनेता हिन्दीप्रेमी अमिताभ बच्चन के जन्मस्थल और निराला, पन्त, महादेवी की अमर-कवित्रयी के जीवनस्थल प्रयाग को राष्ट्र के इतिहास में भी महान् स्थान प्राप्त है, राष्ट्रभाषा के इतिहास में भी। उक्त समग्र विभूतियों में केवल परम उर्दूप्रेमी जवाहरलाल नेहरू ही प्रकृत्या हिन्दी-प्रेमी न थे। मोतीलाल ने परिवार तक में 1898 ई. में ही केवल अंग्रेज़ी-प्रयोग का आदेश दिया था। क्या आश्चर्य यदि एक ही वर्ष में जन्मे मोतीलाल नेहरू एवं मदनमोहन मालवीय में कभी नहीं पटी! किन्तु यह एक सुखद आश्चर्य है कि मालवीय जी के निधन पर जवाहरलाल नेहरू ने उनको भारतीय राष्ट्रवाद का जनक (फ़ादर ऑफ इण्डियन नेशनलिज़्म) कहा था।

मालवीय जी संस्कृत, हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेज़ी के असाधारण वक्ता थे। केवल महान् अंग्रेज़ी-वक्ता के रूप में उनकी तुलना डॉ. ऐनी बेसेन्ट, सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, राइट ऑनरेबल मि. श्रीनिवास शास्त्री, श्रीमती सरोजिनी नायडू जैसे श्रेष्ठतम वक्ताओं से की जाती थी। वे अध्यापक एवं वकील, सम्पादक एवं सांसद के रूपों में भी बहुत सफल रहे। एक बार दक्षिण अफ्रीका में अश्वेतों, विशेषतः भारतीयों, पर अत्याचार पर उनका हृदयद्रावक भाषण सुनकर गवर्नर-जनरल तथा वाइसरॉय लॉर्ड हार्डिंज रो पड़े थे! (हार्ड का अर्थ कठोर होता है!) शहीद-सम्राट! चन्द्रशेखर आज़ाद (क्रान्तिकारी समाजवादी सेना के अधिनायक) द्वारा इम्पीरियल लेजिस्लेटिव असेम्बली

---

[1] इंडिआ को सभी ग़लत 'इंडिया' ही लिखते हैं।

[2] ईश्वर।

रामवृक्षब्रेनीपुरी की 'बीसवीं सदी के श्रीकृष्ण' कविता पर प्रभाव स्पष्ट है।

[4] बाल्यकाल में पढ़ा था। स्रोत ज्ञात नहीं।

[5] 'सत्य के प्रयोग' (आत्मकथा) में। गाँधी मालवीयजी जी के पैर छूते थे।

[6] 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में।

[7] बड़ा दिन। क्रिसमस। ईसा का जन्मदिवस।

[8] 1861 ई. में सर रवीन्द्रनाथ टैगोर, मोतीलाल नेहरू, मदाम भिखाईजी कामा, सर प्रफुल्लचन्द्र राय, सर मोक्षगुंडम विश्वेश्वैरया एवं महामना मालवीय उत्पन्न हुए थे : एक महान् वर्ष।

में बम फेंकने के लिए नियुक्त भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त को अनुमतिपत्र मालवीय जी ने ही दिलाया था (उस पर उनके हस्ताक्षर थे)। बम-काण्ड के समय वे सदन में विद्यमान थे।

1886 ई. की मद्रास कांग्रेस में उनके भाषण से देश के शीर्षस्थ नेता तक अभिभूत हो गए थे। कालाकाँकर के राजा रामपालसिंह उनसे इतने प्रभावित हुए कि 'हिन्दोस्तान' का सम्पादक बनाने को राज़ी कर लिया। 'अभ्युदय', 'लीडर', 'भारत', 'मर्यादा', 'सनातन धर्म', 'मिश्रबन्धु' (लाहौर), 'द हिन्दुस्तान टाइम्स', 'हिन्दुस्तान' इत्यादि के सम्पादक या प्रेरक के रूपों में मालवीय जी राष्ट्र की पत्रकारिता के इतिहास में ज्योति-पुरुष के रूप में अमर रहेंगे। पहले भारत धर्म महामण्डल तथा कालान्तर में अखिल भारतीय सनातन धर्म सभा की स्थापना कर उन्होंने हिन्दूधर्म एवं भारतीय संस्कृति की चिरस्मरणीय सेवा की। अस्पृश्यता का विरोध करते हुए, वे हरिजन बन्धुओं को मन्त्र भी देते थे। हरिजनों को यज्ञोपवीत धारण कराके मन्त्र देने के कारण उन पर प्राणघातक आक्रमण तक किया गया, जिसमें बच गए।[1] श्री जगजीवनराम के साथ उनके सद्व्यवहार[2] ने विख्यात हरिजन-नेता एवं कुशल प्रशासक को इतना अधिक प्रभावित किया कि वे डॉ. भीमराव अम्बेडकर के धर्मपरिवर्तनवाद का सशक्त विरोध करते हुए एक महान् हिन्दू के रूप में ही जिए और मरे। गाँधी ने मालवीय को आदर्श एवं श्रेष्ठतम हिन्दू माना था।

मालवीय कांग्रेस के महान् नेता थे तथा चार बार 'राष्ट्रपति' (तब कांग्रेस-अध्यक्ष का विशेषण) बने। कांग्रेस-अध्यक्ष प्रायः ईसाई, पारसी और मुसलमान ही होते थे। मालवीय जी प्रथम हिन्दू थे। नरम दल के निकट होने पर भी, उन्होंने फ़ीरोज़शाह मेहता, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इत्यादि के विपरीत 'सर'[3] की पदवी का प्रस्ताव ठुकरा दिया था। किन्तु जब गाँधी ने ख़िलाफ़त आन्दोलन की ओखली में नाहक ही सर डालने की ऐतिहासिक भूल की तब वे लाजतपराय इत्यादि के सदृश पार्टी से हट गए। लाजपतराय एवं मालवीय (जिन्होंने हिन्दू

---

[1] राष्ट्रधर्म (सं. वीरेश्वर द्विवेदी) के दिसम्बर, 1988 अंक में (फरवरी 2005 में 98 वर्ष की आयु में निधन) स्व. आ. सीताराम चतुर्वेदी का तथ्यसम्पन्न एवं शोधपूर्ण लेख। इसी के अप्रैल, 1991 अंक के पृष्ठ 47 पर महामना की खंडित मूर्ति (धड़ आधार-स्थित ज्यों-का-त्यों खड़ा और सिर धरती पर लुढ़का पड़ा) देखकर क्लेश हुआ क्योंकि यह कार्य बहुजन समाज पार्टी का बताया जाता है, जिसके कार्यकर्ताओं ने इसी वर्ष गाँधी समाधि (दिल्ली) में चप्पलबाज़ी और तोड़फोड़ की। दोनों महापुरुष हरिजन-सेवक थे।

[2] काशी विश्वविद्यालय के छात्रावास में कहारों ने युवा हरिजन छात्र जगजीवनराम के बर्तन माँजने से इनकार किया तो वह जला-भुना मालवीय के पास पहुँचा, खुलकर बोला और मालवीय के चुपचाप सुनते रहने पर भुनभुनाते हुए पूछा : कौन माँजेगा मेरे बर्तन? उत्तर मिला : मैं! युवा अभिभूत हो गया। काश, जातिवादी नेता अम्बेडकर को कोई मानववादी नेता मालवीय मिला होता!

[3] साम्प्रदायिक इक़बाल ने अपना टुच्चापन ज़ाहिर किया :
कर चुके ख़िदमत बहुत-कुछ क़ौम की, देखिए कब होते हैं सर मालवी!
इक़बाल खुद 'सर' बना तो पंजाब के ही शायर अमरसिंह ने व्यंग्य किया :
मालवी जी की हजों से शायरे-पंजाब अब, जो न हो सकते थे सर वह जल्द सर हो जाएँगे।
इक़बावल के दो चेहरे देखिए :

> सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा, हम बुलबुले हैं इसकी, यह गुलिसताँ हमारा
> परबत वो सबसे ऊँचा, हमसाया आसमाँ का वो सन्तरी हमारा, वो पासबाँ हमारा
> गोदी में खेलती हैं, जिसकी हज़ारों नदियाँ गुलशन है जिसके दम से, रश्क-एक-ज़िहाँ हमारा
> मज़हब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना हिन्दी हैं हमवतन हैं, हिन्दोस्ताँ हमारा
> ऐ आबरूदे गंगा, वह दिन है याद तुमको उतरा तेरे किनारे, जब कारवाँ हमारा
> कुछ बात है कि हस्ती, मिटती नहीं हमारी सदियों रहा है दुश्मन, दौर-ए-ज़माँ हमारा
> इक़बाल कोई मरहम अपना नहीं जहाँ में मालूम क्या किसी को दर्दे-निहाँ हमारा।
> चीन-ओ-अरब हमारा हिन्दोस्ताँ हमारा मुस्लिम हैं हम, वतन है सारा जहाँ हमारा
> तौहीद की अमानत सीनों में है हमारे आसाँ नहीं मिटाना नामो-निशाँ हमारा
> दुनिया के बुकहदों में पहला वो घर खुदा का हम उसके पासबाँ है वह पासबाँ हमारा
> तेगों के साए में हम पल कर जवाँ हुए हैं खंजर हिलाल का क़ौमी निशाँ हमारा
> मगरिब की वादियों में गूँजी अजाँ हमारी थमता न था किसी से सैल-ए-रवाँ हमारा
> ऐ गुलिस्तान-ए-उन्दलुस वो दिन है याद तुझको था मेरी डालियों पर जब आशियाँ हमारा
> सालार-ए-कारवाँ मीर-ए-हिजाझ अपना इस नाम से है बाकी आराम-ए-जाँ हमारा
> इक़बाल का तराना, बाँग-ए-दरा है गोया होता है, जादा पैमा फिर कारवाँ हमारा।

महासभा स्थापित की), डॉ. केशव बलीराम हेडगेवार (जिन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ स्थापित किया) इत्यादि को कांग्रेस छोड़नी पड़ी। आज कई छुटभैये तिलक, लाजपतराय, मालवीय जैसे समद्रष्टा किन्तु संस्कृतिनिष्ठ राष्ट्रनिर्माताओं तक को साम्प्रदायिक कहकर इतिहास का गला घोंट रहे हैं। जो छुटभैये कम्युनिस्ट मुसलमान (हिन्दू भी) मालवीय जी को साम्प्रदायिक मानकर अपनी साम्प्रदायिकता व्यक्त करते हैं उन्हें अकबर इलाहाबादी के शेर पढ़ने चाहिए जिन्होंने सर सैयद अहमद ख़ाँ तक पर उन्हें तरज़ीह दी थी। यह और अन्य शेर पेश हैं :

1. हज़ार दाढ़ी बढ़ाई शेख़ ने मन की सी, मगर वह बात कहाँ मालवी मदन की सी।
2. भाई गाँधी खुदस्सर की आरजू के साथ हैं, और साहब लोग गरबी रंग-बू के साथ हैं।
मालवी जी सबसे बेहतर हैं मेरी दानिश्त में, यानी मन्दिर में हैं और अपनी गऊ के साथ हैं।
3. तेरे क़दम से रौनक़े-शहरे-प्रयाग है, यानी तेरे ही दम से बुतों का सुहाग है।
भड़की है आग गुवालिन के इश्क़ की, अहबाब कह रहे हैं कि कंडे की आग है।

स्वयं एक महान् अधिवक्ता मालवीय ने न्यायालयों में हिन्दी-प्रयोग हेतु प्रयत्न 1890 से ही आरम्भ कर दिया था, जिसमें 1900 ई. में सफलता प्राप्त हुई और तत्कालीन संयुक्त प्रान्त (अब उत्तर प्रदेश) के गवर्नर (राज्यपाल) ने उनका आवेदन स्वीकार कर लिया। गंगा के प्रवाह को नहरों में बदलने के प्रयास को उन्होंने रोका; हरिद्वार (हरद्वार, गंगाद्वार, माया, कनखल) में हर की पौड़ी पर उनकी भव्य मूर्ति ठीक ही लगी है। चौरीचौरा काण्ड के अनेक अभियुक्तों को उन्होंने कठोरतम दण्डों से बचाया था जिसे न्यायाधीश ने सादर स्वीकार किया था। 1893 ई. में डॉ. श्यामसुन्दरदास, पं. रामनारायण मिश्र एवं ठा. शिवकुमार सिंह के द्वारा काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना को उनका वरदहस्त प्राप्त था। 1910 ई. में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना के प्रेरक भी वे ही थे, जिसके काशी में हुए प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष पद को उन्होंने ही सुशोभित किया था—सम्मेलन के प्राण पुरुषोत्तमदास टंडन उनके प्रति सदैव श्रद्धानत रहे। 1916 ई. में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी (बी.एच.यू. अथवा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) की स्थापना ने इस महान् विद्यातीर्थ को मालवीय का अमर स्मारक बना दिया है। कुलपति-रूप में वे प्रायः हिन्दी में भाषण देते थे। इस विश्वविद्यालय से ही हिन्दी उच्चतम पाठ्यक्रमों में सम्मिलित हुई तथा इसके आ. श्यामसुन्दरदास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, आ. केशवप्रसाद मिश्र, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी प्रभृति विभागाध्यक्षों ने अमूल्य सेवाएँ कीं। श्री अयोध्यानाथ शर्मा, डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, पं. कृष्णशंकर शुक्ल इत्यादि इसी के छात्र थे। आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र से डॉ. शिवप्रसाद सिंह इत्यादि तक अनेक नाम इसी से संपृक्त हुए हैं। इसके सर सुन्दरलाल, सर राधाकृष्णन्, आ. नरेन्द्रदेव जैसे उपकुलपति प्रसिद्ध हैं, जिनमें आ. नरेन्द्रदेव हिन्दी-ग्रन्थकार भी थे।

यद्यपि महामना मालवीय का कोई व्यवस्थित हिन्दी-ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, तथापि उनका हिन्दी-उन्नयन-कार्य ऐतिहासिक एवं महान् है और वे हिन्दी-साहित्येतिहास के एक अभिन्न अंग हैं। उनके कुछ उद्‌गार (वस्तुतः मन्त्र) प्रस्तुत हैं :

1. ऐसा यत्न करें, जिससे आपकी भाषा राष्ट्रभाषा होने का गौरव पाए।
2. हमें जगह-जगह से और विभिन्न भाषाओं से अच्छे-अच्छे विचारों को चुनना चाहिए।
3. हमें यह देखना चाहिए कि हमारी भाषा के शब्द ऐसे हों जिनसे सब प्रदेशों के लोग लाभ उठावें।
4. हिन्दी अपनी बहिनों में सबसे प्राचीन और बड़ी है।
5. भारतीय विद्यार्थियों के मार्ग में आने वाली वर्तमान कठिनाइयों का कोई अन्त नहीं है। सबसे बड़ी कठिनता यह है कि शिक्षा का माध्यम हमारी मातृभाषा न होकर एक अत्यन्त दुरूह विदेशी भाषा है। सभ्य संसार के किसी भी अन्य भाग में जन-समुदाय की शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा नहीं है।

हिन्दी का सर्वोपरि संस्थागत बहुआयामी उन्नयन मालवीय जी ने किया, साहित्यजगत बहुआयामी उन्नयन आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने; हिन्दी के ये दो परमपूज्य उन्नायक सदैव अजर-अमर रहेंगे। मैंने नवयौवन में मालवीय जी पर एक कविता लिखी ('प्रताप' में छपी) थी, जिसकी आरम्भिक-अन्तिम दो-दो पंक्तियाँ याद आ गई हैं :

ओ बापू के भारतभूषण! ओ लोकमान्य के महामना! तुम उन कुछ नेताओं में थे, जिनसे यह भारत राष्ट्र बना।...
जब तक काशी का ज्ञानतीर्थ, तब तक गंगा-यमुना में जल, जब तक तुम जीवित हो भू पर, हे निर्विकार त्यागी निर्मल!

देवकीनन्दन खत्री

'चन्द्रकान्ता', 'चन्द्रकान्ता-सन्तति', 'भूतनाथ', 'नरेन्द्र मोहिनी', 'वीरेन्द्र वीर', 'कुसुम कुमारी', 'काजल की कोठरी', 'अनूठी बेग़म', 'नौलखा हार' इत्यादि उपन्यासों के प्रणेता (तिलस्मी और ऐयारी दुनिया के अदबी जादूगर) देवकीनंदन खत्री[1] (1861-1913 ई., जन्म ननिहाल मुज़फ़्फ़रपुर, पिता का लाहौर से काशी-प्रवास, जीवनयापन काशी में) हिन्दी के प्रथम लोकपिय उपन्यासकार के रूप में ऐतिहासिक महत्त्व तो रखते ही हैं, 1900 ई. में पं. माधवप्रसाद मिश्र के सम्पादकत्व में 'सुदर्शन' (मासिक) निकालने के कारण भी स्मरणीय हैं (भले ही 'सुदर्शन' के सुदर्शन केवल सवा-दो वर्ष ही हो पाए)। नायक-नायिका एवं खलनायक-खलनायिका के घटनाचक्र-कूटचक्र को ऐयार के सहयोग से संघर्षान्तर-सुखान्त देने में परत-दर-परत इन्द्रजाल की सृष्टि में सक्षम खत्री के उपन्यासों को पढ़ने के लिए लाखों लोगों ने हिन्दी सीखी। 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में शुक्ल ने लिखा है, ''चन्द्रकान्ता और चन्द्रकान्ता-संतति पढ़कर न जाने कितने नवयुवक हिन्दी के लेखक हो गए।'' तिलस्मी-क्षेत्र में उन्होंने हरिकृष्ण जौहर का उल्लेख किया है। प्रसिद्ध तिलस्मी-उपन्यासकार दुर्गाप्रसाद खत्री तो देवकीनन्दन खत्री के पुत्र ही थे। यह प्रवाद निराधार है कि चन्द्रकान्ता या चन्द्रकान्ता-सन्तति या भूतनाथ जैसी कृतियाँ केवल अल्पशिक्षित या अर्द्धशिक्षित लोग पढ़ते थे क्योंकि भारत में समाजवादी आन्दोलन के एक प्रवर्तक, प्रकाण्ड विद्वान्, शिक्षाविद् एवं 'बौद्ध धर्म दर्शन'' के प्रणेता आ. नरेन्द्रदेव (1889-1956 ई.) ने छात्रजीवन में 'चन्द्रकान्ता-संतति' को सत्रह बार पढ़ा था! खत्री की कृतियाँ 'बोस्ताने-ख़्याल' या 'दास्ताने-अमीर हमज़ा' से भिन्न हैं, जैसाकि 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने स्पष्ट किया है : ''आपके उपन्यासों में वासना की गन्ध भी नहीं मिलती।'' प्रसिद्ध है कि खत्री को सृजन-प्रेरणा फ़ैज़ी कृत विराट् 'तिलस्म-ए-होशरुबा' से मिली (संयोगात् कालान्तर में प्रेमचन्द को भी)। किन्तु मेरी समझ में स्वयं फ़ैज़ी उन भारतीय कथाओं से प्रभावित थे, जिन्हें दाऊद, कुत्बन, जायसी, मंझन इत्यादि ने सूफ़ी रंग दिया था और जिन्हें उन्होंने 'तिलस्म होशरुवा' के रंग में रँगा। कालान्तर में उस्मान इत्यादि ने इन तिलस्मी कथाओं को अधिकाधिक तिलस्मी बनाया। चुनार (चरणाद्रिः मंझन का स्थान) के प्रवासकाल में खत्री इनके सम्पर्क में आए तथा पाश्चात्य तिलस्म से भी लाभ उठाकर अपनी महान् तिलस्मी दुनिया का ढाँचा खड़ा किया। 'विनोद' में मिश्रबन्धु ने लिखा है, ''इनके पहले तिलिस्म, रूप बदलने से व्यक्तित्व का दिखलौवा बदलाव आदि का पूर्वरूप रेनॉल्ड्स कृत 'पीतल की मूर्ति' नामक उपन्यास में है।...'फ़िसाना आज़ाद' में भी ऐयारी का पूर्वरूप है। सं. 1853 वाले एक वैष्णवता-विवर्द्धक हिन्दी उपन्यास में ऐयारी बढ़ी हुई है। यह बहुत बड़ा ग्रन्थ है। फिर भी बाबू साहब ने चन्द्रकान्ता तथा चन्द्रकान्ता-सन्तति में तिलिस्म और ऐयारी को नितान्त रोचक रूप देकर ऐसी सुन्दर रचना की है जैसी इनके पूर्ववर्ती लेखक न कर पाए थे। भूतनाथ में तिलिस्म और घटनाओं के रहस्य इतने फैल गए हैं कि कोई घटना दृढ़ होती ही नहीं। भूतनाथ अधिकाधिक घटना-गोपन से बिल्कुल विकृत हो गया है। बाबू साहब ने इसका आदिम भाग ही लिखा भी था और पीछे का विकृत भाग इतरों का है। चन्द्रकान्ता-सन्तति इनकी सर्वोत्कृष्ट रचना है।'' खत्री की भाषा न उर्दू है, न हिन्दुस्तानी, वह मिश्रबन्धु के शब्दों में, '''बहुत सरल और मनोहर'' है। खत्री हिन्दी के फ़ैज़ी हैं; रेनॉल्ड्स के योग्यतर उत्तराधिकारी। वे आज भी लोकप्रिय हैं। 1987 में प्रकाशित 'देवकीनन्दन खत्री समग्र' हाथोंहाथ बिका था। 'चन्द्रकान्ता' दूरदर्शन-धारावाहिक भी खूब चला। वे कल्पनालोक के विचक्षण स्रष्टा थे।

यद्यपि हिन्दी-उपन्यास का आरम्भ पं. गौरीदत्त, श्रद्धाराम फिल्लौरी, श्रीनिवासदास इत्यादि ने किया था, तथापि हिन्दी के प्रथम उपन्यास-पुरुष देवकीनन्दन खत्री ही थे (भले ही विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से किशोरीलाल गोस्वामी प्रेमचन्द-पूर्ववर्ती उपन्यासकारों में श्रेष्ठतम हों) क्योंकि उन्होंने सर्वप्रथम 'उपन्यास' शब्द को जनजीवन में प्रविष्ट कराया। डॉ. नगेन्द्र कृत 'विचार और अनुभूति' ग्रन्थ के 'हिन्दी-उपन्यास' शीर्षक सुन्दर कल्पना-प्रवण निबन्ध में जब उपन्यासकारों की गोष्ठी के संयोजक प्रेमचन्द से अनुरोध करते हैं तब प्रेमचन्द नम्रतापूर्वक देवकीनन्दन खत्री की ओर इंगित करते हैं—परिणामतः देवकीनन्दन खत्री ही समारम्भ-भाषण देते हैं (डॉ. नगेन्द्र का यह निबन्ध उनका श्रेष्ठतम निबन्ध है, यद्यपि इसमें किशोरीलाल गोस्वामी का अभाव ऐतिहासिक न्यूनता का कारण बन गया है)!

---

1. नानक, अर्जुन, तेग़बहादुर प्रभृति सिख-गुरुओं के अतिरिक्त, सुन्दरदास, मलूकदास, देवकीनन्दन, दुर्गाप्रसाद, पुरुषोत्तमदास टंडन, श्यामसुन्दरदास इत्यादि खत्रियों ने अपने-अपने स्तर पर हिन्दी की प्रशस्य सेवा की है।

ओझा

'प्राचीन लिपिमाला' के उच्चतम-विश्वस्तरीय पुरातत्त्वविद् एवं विद्वान्, 'राजपूताना का इतिहास' के अमर इतिहासकार, टॉड के 'प्रस्थान'-महाग्रन्थ 'राजस्थान' (अंग्रेज़ी) के शोधक-संशोधक, साहित्य-वाचस्पति, महामहोपाध्याय, रायबहादुर डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा (1863-1947 ई.—ग्राम रोहेड़ा, जनपद सिरोही, राजस्थान) का हिन्दी-साहित्येतिहास में लिपि-विशेषज्ञ एवं पृथ्वीराजरासो के इतिहास-शल्यचिकित्सक के रूपों में एक निश्चित स्थान बना रहेगा। हिन्दी के विश्वस्तरीय विद्वानों की सूची में उनका शीर्षस्थान निर्विवाद है, क्योंकि डॉ. रघुवीर का कार्य प्रायः पारिभाषिक-शब्दबद्ध है, पूर्वाग्रह-जर्जर राहुल में गहनता एवं प्रात्ययिकता का अभाव है, पांडेय रामावतार शर्मा का कार्य धर्म, दर्शन, इतिहास, तर्क, साहित्य इत्यादि के सत्य के अतिशोध में बिखर गया है, अन्य किसी की उनसे विद्वत्तामूलक तुलना उचित न होगी। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष 'नागरी-प्रचारिणी पत्रिका' के सम्पादक[1] प्रभृति रूपों में भी उन्होंने हिन्दी की सेवा की थी। 'नागरीलिपि का उद्भव और विकास' के शोधकर्ता डॉ. ओमप्रकाश भाटिया 'अराज' इत्यादि उनके ऋणी हैं। उन जैसे महान् विद्वान् के हिन्दी-प्रेम से राष्ट्रभाषा को बल मिला था।

जयानक कृत संस्कृत-महाकाव्य 'पृथ्वीराज-विजय' के गहन-गम्भीर सम्पादन-काल में ओझा को चन्द्रवरदायी (जल्हण, मलैसिंह, अन्यान्य चारण भी) कृत डिंगल-पिंगल महाकाव्य 'पृथ्वीराजरासो' ऐतिहासिक दृष्टि से एकदम जाली लगा तथा उनकी सशक्त मान्यताओं ने हिन्दी-शोध को नए आयाम दिए। 'ओझा-निबन्धावली' अथवा 'ओझा-निबन्ध-संग्रह' में भी उनका महान् शोधकार्य ही विवृत हुआ है। यह सत्य है कि पृथ्वीराजरासो पर उनके प्रहार 'अति' का स्पर्श करते हैं तथा उनका क्षेत्र शुष्क-शोधबद्ध है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनका अगाध पांडित्य गर्व-योग्य है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

बहु कलण्ठ खगों के आश्रय, पोषक या प्रतिपाल प्रणाम, भव-भूतल को भेद गगन में, उठने वाले, शाल प्रणाम;
हरे-भरे आँखों को शीतल करने वाले तुम्हें प्रणाम, छाया देकर पथिकों का श्रम हरने वाले तुम्हें प्रणाम।
अटल अचल, न किसी बाधा से डरने वाले तुम्हें प्रणाम, शुद्ध सुमन सौरभ समीर में भरने वाले तुम्हें प्रणाम;
देने वाले औरों को ही सारे स्वफल, रसाल प्रमाण, भव-भूतल को भेद गगन में, उठने वाले शाल प्रणाम।
व्रत में रत, आतप, वर्षा, हिम सहने वाले, तुम्हें प्रणाम; स्वावलम्बयुत, उन्नत भी नत रहने वाले, तुम्हें प्रणाम;
खींच रसातल से भी रस को गहने वाले, तुम्हें प्रणाम, सब कुछ करके भी न कभी कुछ कहने वाले, तुम्हें प्रणाम।
जन्मभूमि के छत्र, पत्रमय, अहो समुन्नत भाल, प्रणाम, भव-भूतल को भेद गगन में, उठने वाले शाल प्रणाम;
—मैथिलीशरण गुप्त

गुण मंजु द्विवेदी के गा रही है, स्वरों की लहरी लहरा रही है;
वह बानी नबीना बनी सी बनी, कवि बानी में बीना बजा रही है।
—रत्नाकर

भारतेन्दु पर गये भारती की वीणा-निर्माण, किया अमर स्पर्शों से जिसका बहुविधि स्वर-संधान।
निश्चय उसमें जगा आपने प्रथम स्वर्ण झंकार, अखिल देश की वाणी को दे दिया एक आकार।
चिर स्मारक सा, उठ युग-युग में, भारत का साहित्य, आर्य! आपके यशःकाय को करे सुरक्षित नित्य।
—सुमित्रानन्दन पन्त

एक ही वेदी बहुत पर तुम द्विवेदी थे बलिदान-गाथा के विग्रह, अभेदी[2] थे! —रामप्रसाद मिश्र

---

[1] वे गुजरात साहित्य सभा के अध्यक्ष भी थे—मीराँ के बाद ओझा ही हिन्दी-गुजराती के संयोजक सिद्ध हुए। सिरोही जिला राजस्थान-गुजरात सीमा पर है, जिसका प्रख्यात सौन्दर्य-स्थल मॉउंट-आबू कभी-कभी गुजरात का अंग भी रह चुका है।

[2] गद्य-पद्य खड़ीबोली-व्रजभाषा-भेद मिटानेवाले।

खड़ीबोली-कविता के आचार्य एवं मानक हिन्दी-उच्चारण के जन्मदाता महावीरप्रसाद द्विवेदी (15 मई[1], 1864-21 दिसम्बर, 1938 ई.) संसार-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ साहित्य-निर्माताओं एवं युग-निर्माताओं की पंक्ति में प्रतिष्ठित हैं। 1907 ई. में ही वरिष्ठ कवि नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने सरस्वती[2]–सम्पादक के रूप में उनकी प्रशंसा की थी।

आ. के 'सरस्वती' के हटने के बाद ही नहीं अपितु उनके भी अनन्तर, इसी पत्रिका के फरवरी, 1939 अंक में गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' का उद्‌गार छपा था :

> कला-भृद् विश्व-विद् विद्वान् श्रीसरस्वत्युपासकः। महावीरप्रसादोऽसौ यशोदेहेन राजताम्।।

आचार्य पद्‌मसिंह शर्मा ने लिखा था, "आप अकेले हिन्दी[3] के लिए जो कर रहे हैं, वह भारतवर्ष के सारे हिन्दी-हितैषी भी नहीं कर सकते।" 'मेरी अपनी कथा' में श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी ने लिखा है, "यदि कोई मुझसे पूछे कि द्विवेदीजी ने क्या किया तो मैं उसे समग्र आधुनिक साहित्य दिखला कर सकता हूँ यह सब उन्हीं की सेवा का फल है।" मैंने बचपन में 'आचार्य' के स्थान पर 'आश्चर्य' की मुद्रणत्रुटि देखी : अब सोचता हूँ, वह कितनी 'शुद्ध' थी! उन्होंने पचपन पुस्तकें लिखीं तथा उनका समग्र लेखन तीस हज़ार पृष्ठों का रहा, जो स्वयं में एक विलक्षण कीर्तिमान है। उनका लेखन मौलिकता या 'प्रस्थान' का नहीं, निर्माण या सेवा का था। आधुनिक भारतीय साहित्य के बांग्ला के बंकिमचन्द्र, उड़िया के फ़क़ीरमोहन सेनापति, तेलुगू के वीरेशलिंगम, गुजराती के नर्मद, हिन्दी के भारतेन्दु, उर्दू के सर सैयद अहमद ख़ाँ इत्यादि महान् निर्माताओं में भी कोई आचार्य द्विवेदी की समता नहीं कर सकता, क्योंकि स्वयं सृजनात्मक प्रतिभा भी अभाववत् अल्पता के बावजूद उन्होंने हिन्दी-कविता को एक नवीन और विशाल माध्यम प्रदान करने का विश्व-इतिहास में अभूतपूर्व कार्य तो निष्पन्न किया ही, हिन्दी-पद्य को एक सुनिश्चित एवं विशुद्ध वर्तनी, विरामचिह्न-योजना, व्याकरण एवं व्यवस्था भी प्रदान की। यही नहीं, उन्होंने साहित्य की कविता, कहानी, आलोचना, यात्रावृत्त, जीवनी इत्यादि नाना विधाओं को समुन्नत रूप भी प्रदान कराया।

भाषा-परिष्कार

'भारत की विभूतियाँ' शीर्षक शालोपयोगी परिचयात्मक ग्रन्थ में स्व. श्री परिपूर्णानन्द वर्मा ने प्रसाद, प्रेमचन्द, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि समेत अनेक साहित्यकारों के नाम देते हुए लिखा है कि इन सबको आचार्य द्विवेदी ने अँगुली पकड़कर चलना सिखाया। ललित साहित्यकार एवं प्रकांड विद्वान् न होते हुए भी परिपूर्णानन्द वर्मा ने यहाँ ललित साहित्यजगत एवं प्रकांड विद्वत्तापूर्ण उद्‌गार व्यक्त किया है। आचार्य श्यामसुन्दरदास ने उन्हें "इस युग की हिन्दी का सबसे बड़ा उन्नायक" कहा था, किन्तु वस्तुतः वे हिन्दी के सर्वयुगीन सर्वोपरि उन्नायक थे। उनके भाषा-परिष्कार की प्रशस्ति आचार्य शुक्ल[4] ने की है, उनके भाषा-सुधार एवं साहित्य-संप्रेरण के युगपत् कार्य को आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी[5] ने अप्रतिम कहा है, उनकी विलक्षण सेवाओं के आधार पर उनको 'अवतारी पुरुष' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी[6] ने बताया है।

युगगुरु

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, कविवर गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'[7], कविवर जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी', कविवर गोपालशरण सिंह, कविवर सियारामशरण गुप्त, कविवर लोचनप्रसाद पाण्डेय, कविवर रामचरित उपाध्याय, कविवर हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश', सम्पादक प्रवर पं. देवीदत्त शुक्ल, सम्पादक प्रखर एवं अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी, साहित्यसेवी एवं पत्रकार नारायणप्रसाद अरोड़ा,

---

1. पाक्षिक 'जागरण' (वर्ष 1, अंक 2, फरवरी, 1932) की अपील में 15 मई, 1964 लिखा था। 'आचार्य द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ : अतीत के कुछ मननीय प्रसंग' शीर्षक लेख में (प्रयाग के मासिक 'सम्पादक की वाणी' के जनवरी, 1992 अंक, पृष्ठ 19) डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव ने इसे उद्धृत किया। कहीं-कहीं 9 मई लिखा मिलता है।
2. जिसकी 'महावीरता' शंकर जी ने 'सरस्वती' के मिस से थी बखानी।...(सनेही)
3. "अपने देश, अपने प्रान्त, अपने जन-समुदाय के सर्वांगीण कल्याण की रामबाण-औषधि है हिन्दी-भाषा का प्रचार।" –आ. (अप्रैल, 1915)
4. हिन्दी-साहित्य का इतिहास।
5. 'आधुनिक साहित्य' एवं 'नया साहित्य : नए प्रश्न'।
6. हिन्दी-साहित्य की भूमिका।
7. राष्ट्रीय एवं ओजस्वी कविताओं में 'त्रिशूल'।

व्याकरणाचार्य कामताप्रसद गुरु एवं किशोरीदास वाजपेयी, कवि एवं लेखक लक्ष्मीधर वाजपेयी इत्यादि अपने शत-शत शिष्यों के द्वारा उन्होंने साहित्य को जो प्रायः सर्वव्यापी आयामों में सम्पन्न कराया, उसकी मिसाल संसार-साहित्य में दुर्लभ है। उनकी गुरुता इतनी विशद थी कि डॉ. नगेन्द्र सम्पादित 'भारतीय साहित्य कोश' में (ग़लत ही सही) हरिऔध (1865-1947 ई.) तक को उनका शिष्य बतलाया गया है! वे सारे युग पर आकाश बनकर छा गए थे। कोई उनके प्रभाव से अछूता न रह सका था चाहे अग्रज (श्रीधर पाठक जैसे) हों या समवयस्क (हरिऔध जैसे) या अनुज (शत-शत)। 1900-20 ई. का युग द्विवेदी-युग माना जाता है। उनकी गुरुता पर 'सनेही' ने ठीक ही लिखा है :

क्या कहिए गुरुता उनकी, गुरु के गुरु हैं जिनके हुए चेले,
मेले लगे जिन्हें देखने को, सुरलोक गए ही हाय, अकेले।[1]

उनके निधन पर 'सरस्वती'[2] के विशेषांक में जो मार्मिक कविताएँ एवं लेख-संस्मरणादि प्रकाशित हुए थे, वे स्वयं उच्चकोटि का साहित्य हैं।

महान् निर्माता

वेंकटेशनारायण तिवारी ने आचार्य द्विवेदी को 'हिन्दी का 'जॉन्सन' कहा था, किन्तु जॉन्सन को भाषा उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी जबकि द्विवेदी ने स्वयं उसका निर्माण किया था तथा जॉन्सन गुरुता-गरिमा में द्विवेदी की समता नहीं कर सकते, यद्यपि मौलिक लेखन एवं कोशकार्य में वे श्रेष्ठतर हैं। महादेवी वर्मा के शब्दों में आचार्य द्विवेदी की तुलना राष्ट्रपिता गाँधी से की जा सकती है। क्योंकि जैसा कार्य राष्ट्र के लिए गाँधी जी ने किया, वैसा ही राष्ट्रभाषा के लिए द्विवेदी जी ने, किन्तु गाँधी के नेतृत्व में राष्ट्र खण्डित हुआ तथा द्विवेदी के नेतृत्व में राष्ट्रभाषा अखण्डित हुई—हिन्दवी या हिन्दुकी या हिन्दुगी या हिन्दुई या 'भाषा' को एक सुनिश्चित एवं विराट् 'हिन्दी' रूप प्राप्त हो गया। 'आचार्य' शब्द द्विवेदी के साथ जितना सार्थक हुआ है उतना हिन्दी में किसी अन्य के साथ नहीं, क्योंकि उनके आधार पर आचार बनाने वालों की संख्या अपार रही है। उनके 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता' शीर्षक एक निबन्ध ने मैथिलीशरण गुप्त से 'साकेत' जैसा अमर महाकाव्य लिख डाला, जिसकी परम्परा में बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'साकेत-सन्त'[3] लिखा, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'ऊर्म्मिला', केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने 'कैकेयी' तथा सोहनलाल रामरंग' ने 'उत्तर-साकेत'[4]। एक नूतन काव्यायाम ही उद्घाटित हो गया। शिवसिंह 'सरोज' (लक्ष्मण), डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' (सुमित्रा), बालकृष्ण मिश्र (जलसमाधि से पूर्व), स्व. ओउम् प्रेमी (माण्डवी महाशया)[5], श्रीकृष्ण मिश्र (समरप्रिया), गणेशदत्त सारस्वत (विभीषण), भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' (गीधराज) जैसे कवि भी द्विवेदीजी की प्रेरणा-परम्परा से पृथक् नहीं हैं। सुधाकर शर्मा 'सुधाकर' 'जाम्बवान्' से इसी परम्परा को समृद्ध करते हैं। विख्यात कवि नरेश मेहता कृत साधारण 'संशय की एक रात' आरोपित आधुनिकता की तड़क-भड़क के साथ भी साकेत

---

1. 'करुणा-कादम्बिनी' संग्रह की 'हा द्विवेदी जी' कविता, जो एक अद्वितीय 'शोकगीत' ('इलेजी' या 'मर्सिया') है।
2. जनवरी, 1900 ई. से आरम्भ—सम्पादक-मंडल : जगन्नाथदास (रत्नाकर), श्यामसुन्दरदास, राधाकृष्णदास, कार्तिकप्रसाद (खत्री) एवं किशोरीलाल (गोस्वामी)। 1901 ई. में सम्पादक केवल श्यामसुन्दरदास। 1903-20 ई. के सम्पादक महावीरप्रसाद द्विवेदी, तब क्रमशः पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, देवीदत्त शुक्ल, श्रीनाथ सिंह, पुनः बख़्शी, देवीदयाल चतुर्वेदी एवं श्रीनारायण चतुर्वेदी।
   आचार्य ने 1903 ई. में 25 रुपए (कहीं 30 रुपए भी पढ़ा था) के 'भत्ते' पर सेवा का आरम्भ किया तथा झाँसी से सम्पादन होता रहा। 1904 ई. के अन्त में रेलवे की मोटी नौकरी छोड़कर पूरा समय देने लगे तथा कानपुर (जुही) से सम्पादन किया। द्विवेदी-विरोधियों ने दो वर्ष का बहिष्कार किया तो वे अकेले-दम पत्रिका चलाते रहे। तीसरे वर्ष से अनेकानेक नए रचनाकारों के कारण पत्रिका 'यथा नाम तथा गुण' हो चली। अनिद्रा-रोग के कारण 1910 ई. में स्वास्थ्य सुधारार्थ अवकाश लेना पड़ा। देवीप्रसाद शुक्ल सम्पादक बने। किन्तु 1911 ई. में वे पुनः लाए गए। 1917 ई. तक चलाया। पुनः अस्वस्थ। पुनः देवीप्रसाद शुक्ल सम्पादक। 1920 ई. में पुनः लाए गए। किन्तु 1921 ई. में पूरी विदाई। अब सम्पादक पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी बने। किन्तु आचार्य प्रायः आजीवन 'सरस्वती' से लेखक-रूप में जुड़े ही रहे, यद्यपि 1928 ई. के बाद स्वास्थ्य-शैथिल्य ने लेखन-विरतप्राय कर दिया था।
3. परमानन्द जड़िया कृत काव्य 'कौशलेन्द्र भरत' (अगस्त, 1988) में 'सांकेत-सन्त' की परम्परा का विकास दृग्गत होता है किन्तु कोसलेन्द्र (कोशलेन्द्र तक ग़नीमत थी) के स्थान पर ग़लत प्रयोग खटकता है।
4. विशालकाय काव्य अत्यन्त साधारण है।
5. काव्य रद्दी है, किन्तु विषय उल्लेख्य।

की परम्परा से एकदम अलग-थलग नहीं है। डॉ. रामकुमार वर्मा कृत महाकाव्य 'ओ अहल्या' परम्परा, कल्पना, प्रतीक एवं चिन्तन की सभी दृष्टियों से 'साकेत' के अनन्तर खड़ीबोली के रामकाव्य की सर्वोपरि उपलब्धि है। उनके कुछ प्रशंसा-शब्दों ने 'प्रियप्रवास' को न्यायसंगत गौरव प्रदान कराया, 'भारतभारती' को स्वातन्त्र्य-संग्राम की गीता बना दिया। 'सरस्वती' में जिसकी कुछ कविताएँ छप गईं वह कवि माना गया, जिसकी कुछ कहानियाँ छप गईं वह कहानीकार, जिसके कुछ निबन्ध छप गए वह निबन्धकार, जिसके कुछ यात्रावृत्त छप गए वह यात्रावृत्तकार। भारी-भरकम आदर्शवादी उपन्यासिका चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत 'उसने कहा था' एक अमर कहानी बन गई, यद्यपि आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' के अनुसार वह यूरोप की प्रथम विश्वयुद्ध-सन्दर्भी एक कहानी से बेतरह प्रभावित थी। प्रेमचन्द कृत अनगढ़ कहानी 'पंचों में परमेश्वर' ललित एवं अमर 'पंच-परमेश्वर' बन गई। 'मज़दूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता', 'आचरण की सभ्यता' जैसे थोड़े-से निबन्धों के स्रष्टा पूर्णसिंह अमर निबन्धकार हो गए। मिर्ज़ापुर के एक स्कूल का ड्राइंग-टीचर आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के रूप में महान् निबन्धकार माना गया। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक के टूटे-फूटे यातावृत्त जब 'सरस्वती' में सुव्यवस्थित रूप में प्रकाशित हुए तब उन्होंने विस्मय व्यक्त किया था। आचार्य श्यामसुन्दरदास ने 'साहित्यालोचन' का भाषा-परिष्कार उस आचार्य-सम्राट् से कराना आवश्यक समझा था जिससे उनकी बहुत चल चुकी थी! क्या आश्चर्य कि शिष्य ही नहीं, प्रशंसक ही नहीं, प्रत्युत बाबू बालमुकुन्द गुप्त एवं आचार्य श्यामसुन्दरदास जैसे विरोधी भी आचार्य-सम्राट् को समक्ष पाकर चरणस्पर्श से विरत न रह पाते थे! क्या आश्चर्य कि महामहोपाध्याय डॉ. सर गंगानाथ झा जैसे विश्वविख्यात शिक्षाविद् एवं अग्रज उनके चरणों की ओर झुक गया था! क्या आश्चर्य यदि आधुनिक भारत के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपनी एक कहानी के अनुवाद से प्रसन्न होकर उनको कृतज्ञतापत्र लिखा था! क्या आश्चर्य यदि 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पर रचित काव्य'[1], 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पर रचित निबन्ध, संस्मरण व रेखाचित्र[2], 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पर रचित आलोचना-साहित्य'[3], 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पर रचित शोध-प्रबंध'[4] उच्चस्तरीय आलोचना या शोध के विषय बन गए हैं! यद्यपि हिन्दी में महान् आचार्य रामानन्द जैसे अमर गुरु हो चुके हैं जिनके चरणों का पावन स्पर्श कर कबीर, रैदास, सेन, धना, पीपा इत्यादि नाना-धर्मी, नाना-जातीय एवं नाना-प्रान्तीय सन्त कृतार्थ हुए थे, जिन्होंने आज की न्यस्तस्वार्थग्रस्त एवं पाखण्डपूर्ण, निर्वाचनमूलक एवं विभाजक धर्मनिरपेक्षता की जैसी खोखली नहीं प्रत्युत परमार्थन्यस्त एवं सहज, सेवामूलक एवं संयोजक धर्मनिरपेक्षता की बुद्ध एवं महावीर से भी अधिक विशद[5] प्रतिष्ठा की थी, तथापि जैसा सार्वभौम गुरुत्व आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी में प्राप्त होता है, वैसा हिन्दी ही नहीं अपितु समग्र संसार में नहीं प्राप्त हो पाता। व्यक्तित्व की अप्रतिहत साहित्यिक गरिमा में तुलसीदास के अतिरिक्त हिन्दी का कोई व्यक्ति महावीरप्रसाद द्विवेदी की समता नहीं कर पाता, क्योंकि कबीर नेता अधिक हैं, सूर कवि अधिक हैं, केशव कलाकार अधिक हैं। आचार्य द्विवेदी व्यक्तिगत जीवन में जितने प्रगतिशील थे उतने बेटी के विवाह में अपने-अपने समयों के भारी दहेज देनेवाले रवीन्द्र और प्रेमचन्द भी नहीं। उन्होंने अपने प्यारे भांजे की बेटी के विवाह का विज्ञापन निकाला था जिसमें रूढ़िपालन का निषेध था। डॉ. रामविलास शर्मा ने 'सम्पत्तिशास्त्र' में व्यक्त उनके विचारों का प्रशस्य निरूपण किया है। नारी-संवेदन एवं नारी-श्रद्धा में भी वे अतुलनीय हैं। आश्चर्य तो यह है कि द्विवेदी कवि के रूप में अपेक्षाकृत साधारण हैं, जैसा कि मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में साफ़-साफ़ लिख दिया है, भले ही उसके मूल में व्यक्तिगत कारण भी रहे हों; उनके निबन्ध भाषा-निर्माण एवं साहित्याग्रयाम-विस्तार की दृष्टियों से ही अमर हैं, भले ही वे 'बातों का संग्रह' न हों, जैसा कि आचार्य शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में लिख दिया है, और उनकी आलोचना बस प्रेरणा की विभूति है; फिर भी, उनकी समता समग्र आधुनिककाल का कोई 'कृती' नहीं कर सकता! वे अपने युग की सारी कृतियों के अदृश्य प्रेरक थे। उनकी दी हुई सरल किन्तु शुद्ध भाषा आज भी प्रेरक है, कल भी रहेगी और सैकड़ों साल बाद भी उसका ऐतिहासिक महत्त्व रहेगा—जैसाकि अमीर खुसरो की भाषा का है। सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।

---

[1] शंकर, रत्नाकर, सनेही, मैथिलीशरण, पन्त, गोपालशरणसिंह इत्यादि द्वारा प्रणीत।

[2] आचार्य पद्मसिंह शर्मा, पत्रकारप्रवर बनारसीदास चतुर्वेदी एवं पं. देवीदत्त शुक्ल, कविवर जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' इत्यादि द्वारा प्रणीत।

[3] आचार्य शुक्ल, आचार्य वाजपेयी, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. बच्चनसिंह इत्यादि द्वारा प्रणीत।

[4] डॉ. सुधीन्द्र, डॉ. श्रीकृष्णलाल, डॉ. उदयभानुसिंह इत्यादि द्वारा प्रणीत।

[5] बुद्ध के प्रमुख शिष्य सारिपुत्र एवं मौद्गल्यायन ब्राह्मण थे, कौण्डिन्य इत्यादि पंचवर्गीय भिक्षु भी ब्राह्मण थे। निकटतम शिष्य आनन्द क्षत्रिय एवं निकट सम्बन्धी थे। किन्तु इनके भाई देवदत्त बुद्ध के आहार-विहार-शैथिल्य के कारण विरोधी हो गए थे। महावीर का भी कोई सामान्यवर्गीय शिष्य ज्ञात नहीं है।

महान् व्यक्तित्व

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का जन्म उत्तर प्रदेश के रायबरेली की डलमऊ[1] तहसील के प्रायः गंगा-तट स्थित दौलतपुर ग्राम में हुआ था। रायबरेली ज़िले के जायस नामक स्थान से हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ सूफ़ी कवि मलिक मोहम्मद जायसी जुड़े हैं, डलमऊ से हिन्दी-प्रेमाख्यान-परम्परा के आदिकवि दाऊद। डलमऊ में ही निराला की ससुराल थी और 'कुल्ली भाट' उपन्यास की स्थली यही है। स्वयं दौलतपुर शास्त्रीयकालीन पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र को गुरुदक्षिणा में प्राप्त हुआ था और वे यहीं बस गए थे। उनके प्रपौत्र शीतलादीन भी अच्छे कवि थे। बीसवीं सदी में भी गयादीन मिश्र, गणेशदत्त मिश्र, गंगासागर मिश्र, डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र, फूलचन्द्र मिश्र 'चन्द्र' इत्यादि ने साहित्य-सेवा की है।[2] दौलतपुर के पूर्व में रायबरेली ज़िला फैला पड़ा है, दक्षिण में गंगा पार करते ही फ़तेहपुर, पश्चिम एवं उत्तर में उन्नाव। पश्चिम में पास ही, ठीक गंगातट पर, चन्द्रिकादेवी का तीर्थ बक्सर (उन्नाव) है, जहाँ 1857 ई. के स्वातन्त्र्य संग्राम के अमर सेनानी बाबू रामबख़्शसिंह शहीद हुए थे, जिन पर कवि स्व. राममनोहर त्रिपाठी ने 'वीर बैसवारा' खण्डकाव्य लिखा है, बक्सर में ही पं. देवीदत्त शुक्ल (1887-1971 ई.) का जन्म हुआ था जिन्होंने 'द्विवेदी-काव्यमाला' एवं 'बाल द्विवेदी' (प्रकाशित) तथा 'आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी' (अप्रकाशित) ग्रन्थ लिखे हैं। दक्षिण में, गंगा पार करने पर, नातिदूर बिंदकी है, जहाँ के राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदी थे। दौलतपुर प्रसिद्ध बैसवारे के हृदयभाग में स्थित है। पुराने 'बैस' ठाकुरों का राज्य बैसवारा कहा गया जो सम्प्रति उन्नाव-रायबरेली ज़िलों के गंगा-स्पर्शी अंचलों तथा आगे तक फैला है। डॉ. चक्रपाणि पाण्डेय ने बैसवारी में शंकरगढ़ के राना बेनीमाधव पर उत्कृष्ट 'बैसवंश-भूषण' खण्डकाव्य रचा है। द्विवेदी जी के पिता पण्डित रामसहाय द्विवेदी अंग्रेज़ी सेना में रहे और झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की सेना में भी लड़े थे।[3] ब्रिटिश राज्य के क्रोध से बचने के लिए रामसहाय द्विवेदी बम्बई (अब मुम्बई) चले गए थे। (निराला के पिता का नाम भी रामसहाय था, जो त्रिपाठी या तिवारी थे।) उन्होंने बेटे का नाम महावीरसहाय रखा था, जो स्कूल के किन्हीं अध्यापक की 'कृपा' से 'महावीरप्रसाद' हो गया—लगभग ऐसी ही घटना द्विवेदी जी के पट्ट शिष्य 'मिथिलाधिपनन्दिनीशरण' के 'मैथिलीशरण' होने पर घटी थी, जबकि इन दोनों पर ही कविता लिखने वाले श्रद्धालु कवि पन्त ने गोसाईंदत्त से 'सुमित्रानन्दन' बनने का कार्य स्वयं सम्पादित किया था। पता नहीं झारखण्डेप्रसाद (पुकारने का नाम खाँड़ेराव) जयशंकर प्रसाद कैसे बने? घर में संस्कृत (शीघ्रबोध, दुर्गासप्तशती, अमरकोश) इत्यादि) एवं हिन्दी के मक़तब में उर्दू की आरभिक शिक्षा प्राप्त करने के अनन्तर द्विवेदी जी ने रायबरेली एवं पुरवा (उन्नाव) में भी शिक्षा प्राप्त की। इसी सन्दर्भ में उन्हें फ़तेहपुर और उन्नाव भी जाना पड़ा। उनकी शिक्षा बहुत ही संघर्षपूर्ण रही। अंग्रेज़ी सीखी। एंट्रेंस पास किया। रेलवे में अच्छी नौकरी मिल गई। उन्होंने विराम-पद्धति (सिगूनलिंग) पर अंग्रेज़ी में एक ऐसी पुस्तक लिखी जिसने भारी प्रभाव डाला। दशाब्दियों तक उनकी विराम-पद्धति गृहीत रही। रेलवे-सेवा में प्रायशः स्थानान्तरण होते रहे, जिनसे लाभ उठाकर द्विवेदी जी ने मराठी, गुजराती, बांग्ला इत्यादि भाषाएँ भी सीखीं। साहित्य में रुचि थी ही। रेलवे में काम करते हुए साहित्य-साधना चलती रही तथा वे एक विख्यात कवि एवं लेखक माने जाते रहे। 'वेंकटेश्वर', 'भारतमित्र', 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका', 'हिन्दोस्तान', 'सरस्वती', 'संस्कृत-चन्द्रिका' इत्यादि में उनकी हिन्दी एवं संस्कृत रचनाएँ प्रकाशित होती रहीं। उन्होंने ''गद्य खड़ीबोली में और कविता व्रजभाषा में'' वाले द्वैत पर प्रहार किया, जो जून, 1901 ई. की 'सरस्वती' में कविता के रूप में प्रकाशित हुआ :

सुरम्यरूपे, रसराशिरंजिते, विचित्रवर्णाभरणे, कहाँ गई?
अलौकिकानंद विधायिनी महा, कवीन्द्रकान्ते कविजे, अहो कहाँ?
अभी मिलेगा व्रजमण्डलान्त का सुभुक्तभाषामय वस्त्र एक[4] ही,
शरीर-संगी करके उसे सदा विराग होगा तुझको अवश्य ही।
इसीलिए ही भवभूति-भाविते, अभी यहाँ, हे कविते, न आ, न आ!

---

[1] अब लालगंज। दौलतपुर अनेक हैं; दिल्ली राज्य में, उत्तर प्रदेश में, अन्यत्र।

[2] द्रष्टव्य है, श्री शम्भुनाथ आई.ए.एस. एवं डॉ. पाण्डेय रामेन्द्र सम्पादित 'आचार्यश्री' ग्रन्थ का प्रथम लेख 'दौलतपुर की साहित्यिक देन' (लेखक डॉ दुर्गाशंकर मिश्र)।

[3] सरदार पटेल (1875-1950. ई.) के पिता झवेरभाई पटेल भी झाँसी की रानी की सेना में लड़े थे।

[4] आचार्य व्रजभाषा के विरोधी न थे, स्वयं व्रजभाषा-कवि थे तथा रत्नाकर (1866-1932 ई.) की कविता का आदर करते थे; किन्तु अभिव्यक्ति का अटपटा द्वैत न चाहते थे, नवीनता चाहते थे, विराटता चाहते थे।

उपर्युक्त कविता 'हिन्दी-कविता में युगान्तर'[1] की वाहिका बन गई। क्रमशः श्रीधर पाठक, अयोध्यासिंह उपाध्याय जैसे प्रतिष्ठित व्रजभाषाकवि तक खड़ीबोली में लिखने लगे। स्वयं मैथिलीशरण, जिन्होंने काव्यारम्भ व्रजभाषा में किया था, खड़ीबोली के प्रतिनिधि कवि बने। प्रसाद, महादेवी इत्यादि व्रजभाषा में काव्यारम्भ करनेवाले तो खैर खड़ीबोली के अमर कवि सिद्ध हुए ही। जुलाई, 1901 ई. की 'सरस्वती' में प्रकाशित द्विवेदीजी का 'कवि-कर्तव्य' राष्ट्रभाषा हिन्दी की कविता का घोषणापत्र सिद्ध हुआ। 1903 ई. में 'सरस्वती' के सम्पादक बनने के समय से लेकर 1920 ई. में अवकाश ग्रहण करने के बीच द्विवेदीजी इस घोषणापत्र को समग्रतः चरितार्थ करने में सफल हुए। उन्होंने डेढ़ सौ रुपए मासिक की रेलवे की बड़े बाबू की मोटी नौकरी छोड़कर तीस रुपए मासिक का 'सरस्वती' के सम्पादक का दायित्व स्वीकार किया था। उनका यह त्याग उनकी महानता के सर्वथा अनुकूल था। कालान्तर में भी, उनका अधिकतर अर्जन अतिथि-विसर्जन बनता रहा! 'सरस्वती' का आरम्भिक सम्पादन एक महान् सम्पादक-मण्डल कर रहा था, जिसमें प्रमुख कार्य आचार्य श्यामसुन्दरदास करते थे। नागरी-प्रचारिणी सभा के कार्य में अत्यधिक व्यस्तता के कारण जब उन्होंने हटने की इच्छा व्यक्त की तब प्रकाशक इंडियन प्रेस इलाहाबाद के स्वामी बाबू चिन्तामणि घोष ने किसी उपयुक्त सम्पादक का नाम सुझाने का आग्रह किया। उस समय तक द्विवेदीजी बहुत प्रसिद्ध हो चुके थे और उनकी कविताओं एवं निबन्धों का प्रकाशन स्वयं 'सरस्वती' में होता आ रहा था। प्रतिभा के महान् पारखी[2] आचार्य श्यामसुन्दरदास ने द्विवेदीजी का नाम सुझाया। 'भारतवर्ष का इतिहास' में इतिहासकार डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने लिखा था, ''आधुनिक युग के अतिविख्यात लेखकों में 'सरस्वती' के सम्पादक आचार्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी थे जिन्होंने बहुत-से निबन्ध और लेख बड़ी ही जोरदार शैली में लिखे हैं।'' 'सरस्वती' के सम्पादन-काल में द्विवेदी जी ने काव्यभाषा एवं गद्यभाषा में अद्वैत स्थापित किया; शृंगार एवं भक्ति की सीमाओं से निकालकर कविता को शत-शत इतिवृत्तों, राष्ट्रीयता, प्रेरणा एवं उपयोगिता से संपृक्त कराया; गद्य की कहानी, निबन्ध, आलोचना इत्यादि विधाओं का आश्चर्यजनक विकास कराया; हिन्दी को राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्रसाहित्य का रूप प्रदान कर दिया। अवकाश प्राप्त करके वे दौलतपुर चले गए तथा अनवरत रूप से साहित्य-सेवा करते रहे। संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, मराठी, गुजराती, फ़ारसी, उर्दू और अंग्रेज़ी भाषाओं का उनका ज्ञान अपने-आप में पूर्ण और गम्भीर था। सारे भारत से इन भाषाओं के शत-शत साहित्यकार उन्हें अपने ग्रन्थ भेजते थे। पत्र लिखने में वे सदैव कर्तव्यनिष्ठ रहे। इस दिशा में वे आचार्य शुक्ल, कवयित्री महादेवी वर्मा, कविवर अज्ञेय, आलोचक शान्तिप्रिय द्विवेदी इत्यादि अहं से ऐंठे व्यक्तियों से नितान्त भिन्न थे तथा कविवर बच्चन, विद्वद्वर डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', आलोचकप्रवर डॉ. रामविलास शर्मा, उपन्यासकार अमृतलाल नागर, आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' इत्यादि उदार सर्वहंसम्माजनक व्यक्तियों के 'पूर्वज' थे। वे किसी की पुस्तक पर समीक्षा या लेख या निबन्ध लिखने को प्रस्तुत रहते थे—यह नहीं देखते थे कि यह 'किसने' लिखी है, प्रत्युत यह देखते थे कि इसमें लिखा 'क्या' है। उनके समय में ही दौलतपुर साहित्य-तीर्थ बन गया था, जो अब भी बना हुआ है। आचार्य पद्मसिंह शर्मा ने 'मेरी तीर्थयात्रा' लिखा ही है। जिन दिनों वे कानपुर के कुरसवाँ या जुही[3] मुहल्लों में रहते हुए 'सरस्वती' का सम्पादन कर रहे थे, उन दिनों किसी से मिलने जाते और वह न होता तो उनके भव्य एवं असाधारण व्यक्तित्व[4] से अभिभूत कोई भी आबालबृद्ध यह अवश्य पूछता था कि क्या बताऊँगा कि कौन आया था, और उनका उत्तर होता था, ''कहि दीन्ह्यो महबिरवा आवा रहै''! 'सरस्वती' की काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की आलोचना से क्षुब्ध सभा-पुस्तकालय के प्रधान पंडित केदारनाथ पाठक निबटारा करने के लिए आ धमके। हिन्दी के यह अनन्य उपासक[5] अत्यन्त दुर्धर्ष एवं कलहप्रिय व्यक्ति थे। द्विवेदीजी के द्वार खोलते ही बरस पड़े। द्विवेदीजी ने उन्हें बैठाया और अन्दर चले गए। कुछ देर में एक हाथ में जल का लोटा और उस पर मिठाई का कटोरा तथा दूसरे में डंडा लिए दिखाई पड़े। पाठकजी चकित! द्विवेदीजी ने कहा कि दूर से आए हैं,

---

1. डॉ. सुधीन्द्र का प्रस्थान शोध-ग्रन्थ।
2. आ. रामचन्द्र शुक्ल को काशी नागरी-प्रचारिणी सभा एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में लाने की महान् परख एवं अन्य ऐतिहासिक उदाहरण है।
3. कानपुर के प्राध्यापक स्व. डॉ. बालकुमुन्द गुप्त ने मुझे बताया था कि अपने शैशव में वे द्विवेदीजी के पड़ोसी थे। द्विवेदीजी जब ध्यान से 'सरस्वती' के लिए रचनाएँ देखते और संशोधन करते होते तब वे सामने बैठ जाते। द्विवेदीजी उन्हें स्नेह से देखते और कुछ देर बाद एक पैसा देते। वह एक पैसा आज के एक रुपये से अधिक था। प्रत्येक आगन्तुक को वे ताम्बूलपत्र-सम्मानित करते, वार्ता-कृतार्थ करते तथा पुनः ताम्बूलपत्र-सम्मानित करते जो समय-रक्षा का प्रतीक होता।
4. सुदृढ़ शरीर, गौरवर्ण, असामान्यतः गहन एवं सुदीर्घ भृकुटियाँ, दुंदुभिस्वन। कानपुर के एक कवि स्व. पं. देवीदत्त त्रिपाठी 'प्रचण्ड' के अनुसार। श्री रामपाल सिंह चौहान 'प्रचण्ड' समानोनामी थे जिनका उल्लेख कवि, ग़ज़लकार और लेखक श्री भागवतप्रसाद मिश्र 'नियाज़' (अहमदाबाद में 'अतीत की झलकियाँ' में किया है।)
5. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' की भूमिका में इनका सादर उल्लेख किया है जो सर्वथा प्रशस्य है। 'हिन्दी-साहित्यकोश' भाग-2 में रामचन्द्र वर्मा ने इन पर अच्छा प्रकाश डाला है। यह बधिर थे; किशोरीलाल गोस्वामी इन्हें 'बहरे खुदा' (फ़ारसी—'ख़ुदा के लिए') कहा करते थे।

थक गए होंगे—पहले हाथ-मुँह धोकर जलपान करिए, इसके बाद यह डंडा उठाइए ''कर कुठार आगे यह सीसा''! पाठक जी फफक-फफक कर रो पड़े। जब वे दौलतपुर में रहने लगे, तब एक अतिथिशाला बनवानी पड़ी। 25 फरवरी, 1964 को नई दिल्ली में मैंने मैथिलीशरण जी से पूछा था, ''क्या आप दौलतपुर गए थे?'' वे बोले, ''हाँ, एक बार।'' दर्शनपुरवा, कानपुर के एक प्रख्यात वैद्यजी ने मुझे बतलाया था कि एक बार किसी कार्यवश वे बक्सर गए। कुल चार लोग थे। गंगास्नान एवं चन्द्रिकादेवी-पूजन के अनन्तर इच्छा हुई कि तीर्थयात्रा पूर्ण कर ली जाए। जून की विकट दोपहरी, कच्चे और अव्यवस्थित रास्ते की जलती धूल, आँधी जैसा आलम और धुर ठेठ गाँव! फिर भी, चारों व्यक्ति निकल ही पड़े। दौलतपुर बहुत पास भी नहीं है। बीच में हरिपुर पड़ता है जो इस तरफ़ से रायबरेली ज़िले का पहला गाँव है। 'भद्दर दुपहरी' में दौलतपुर पहुँचे। पसीने से लथपथ, धूल-धूसरित। द्विवेदीजी सो रहे थे। सकुचाते-सकुचाते कुंडी खटखटाई। द्विवेदीजी वृद्ध थे। स्वास्थ्य भी शिथिल था। फिर भी, द्वार खुलते देर न लगी। अतिथिशाला साथ ही थी। सादर बैठाया। स्वयं जल एवं लोटा लाए। यथासमय हाथ-मुँह धोकर चारों अतिथि बैठे। तब मिठाई से स्वागत किया गया। श्रद्धा एवं विस्मय से आवेष्टित चारों अतिथि प्रसन्न होकर ''क्लेशः फलेन हित पुनर्नवतां विधत्ते[1]'' का साकार अनुभव करते, जलपान कर रहे थे कि क्या देखते हैं—द्विवेदीजी चारों के जूते लटकाए चले आ रहे हैं, ''भाई मेरे'[2], जलतिः धूप में रख आए थे; निकलते तो पहनने पर पैर जलकर रह जाते; कोई चुरा ले या कुत्ते दबा ले जाएँ!'' ये सब चकित, स्तब्ध, मूक; और वे हाथ धोकर पास आ बैठे। और यह घटना तब की है जब 'द्विवेदी-युग' स्थापित हुए कम से कम दो दशाब्दियाँ व्यतीत हो चुकी थीं, सभा द्वारा उन्हें ''हिन्दी का प्रथम आचार्य'' घोषित किए अर्सा हो चुका था, हिन्दी का प्रथम अभिनन्दनग्रन्थ 'द्विवेदी-अभिनन्दन-ग्रन्थ' (1933 ई.) निकले समय हो चुका था, प्रयाग का ऐतिहासिक ''न भूतो न भविष्यति'' द्विवेदी-मेला (1933 ई.) लगे समय हो चुका था। क्या आश्चर्य, यदि आज (1997 ई.) भी वे, जिन्होंने उन्हें देखा भर था, उनका स्मरण करते ही पुलकित हो जाते हैं! क्या आचार्य, यदि प्रसाद उनके वरदहस्त को लालायित थे![3] क्या आश्चर्य, यदि निराला उनके अवसान पर गढ़ाकोला (उन्नाव) से पैदल दौलतपुर दौड़े गए और उनके कक्ष के बाहर पड़े आसन पर बैठकर लगातार आधा घंटे रोते रहे थे![4] कुछ ही दिन हुए थे, जब जलोदर-रोगग्रस्त आचार्य ने उन्हें बड़ी कठिनाई से रायबरेली से घर भेजा था।[5] इधर से गढ़ाकोला आए, उधर आचार्य रायबरेली में चल बसे। आचार्य की इच्छा के अनुसार, उनका पार्थिव शरीर दौलतपुर लाया गया था। क्या आश्चर्य यदि पन्त ने उन पर कविता रची है! क्या आश्चर्य, यदि महादेवी ने उनकी तुलना गाँधी से की है! तिलक, रवीन्द्र और गाँधी को छोड़कर इतना महान् व्यक्ति बीसवीं सदी में भारत को मिला ही कौन है? जो साधारण स्तरीय 'व्यक्ति' आचार्य की छायावाद-आलोचना के कारण 'प्रतिक्रियावादी' या 'लौह-अनुशासन' या 'स्थूलता' इत्यादि शब्दों का प्रयोग करते हैं, वे न आचार्य को जानते हैं, न प्रसाद को, न निराला को, न पन्त को, न महादेवी को और न 'इतिहास' को! आचार्य ने प्रसाद की 'खोलो प्रियतम, खोलो द्वार' जैसी कविताएँ प्रकाशित की थीं, अजातशत्रु नाटक को सराहा था।[6] निराला आचार्य की सदा प्रशस्ति करते रहे थे।[7] स्वच्छन्दतावादी कविता आदर्शवादी कविता का सहज एवं प्रसन्न विकास है। यह प्रतिक्रिया या विद्रोह का ज्वालामुखी-उद्गार नहीं, जैसा कि उसके रूप से ही स्पष्ट है। दिनकर, डॉ. सुधीन्द्र, डॉ. श्रीकृष्णलाल, डॉ. विनयमोहन शर्मा इत्यादि ने इस या उस रूप में ऐसा माना भी है। आचार्य शुक्ल एवं डॉ. नगेन्द्र का क्रमशः प्रतिक्रिया-सिद्धान्त एवं उसका ही परिवर्तित विद्रोह-सिद्धान्त वस्तुपरक न होकर आत्मपरक है। आचार्य कविता में ''सादगी, असलियत और जोश''[8] चाहते थे। अपने इस सिद्धान्त के कारण वे कठिनता, कल्पनाप्रवणता एवं कोमलता से ओतप्रोत छायावादी कविता को वरदहस्त न दे पाए। यदि वे चाहते तो छायावादी युग या स्वच्छन्दतावादी

---

[1] कुमारसम्भवम्, सर्ग 5, अन्तिम पंक्ति।

[2] प्रायः सार्वभौम सम्बोधन।

[3] द्रष्टव्य है, रत्नशंकर प्रसाद सम्पादित 'प्रसाद को पत्र'।

[4] 1964 ई. में द्विवेदीजी के दूर के रिश्ते से भांजे स्वर्गीय कमलाकिशोर त्रिपाठी ने मुझे उसी आसन पर बैठाकर, संयोगात् प्रसंग आने पर, यह बताया था! 1959 ई. में जब मैं प्रयाग में निराला से मिला था तब उन्होंने दौलतपुर पर इतने सूक्ष्म प्रश्न किए कि मैं हक्का-बक्का रह गया, क्योंकि तब संसार को उन्हें विक्षिप्त समझते दस से अधिक वर्ष व्यतीत हो चुके थे! खेद है कि 10 फरवरी, 1987 को दौलतपुर गया तब देखा यह जीर्ण-शीर्ण है और 16 सितम्बर, 1991 को यह कहीं था ही नहीं—अतिथिशाला खंडहर, उपभवन ध्वस्तप्राय, मुख्य भवन खस्ता हालत में!

[5] भारती-भवन अब भागिनेय-तनया द्वारा बेचा जा चुका है!

[6] द्रष्टव्य है, 'प्रसाद को पत्र'।

[7] 'परिमल' की भूमिका। स्वयं मुझसे।

[8] मिल्टन का कथन—''सिंपूल, सेंसुअस एंड इंपैशंड''।

युग के गुरु भी बन सकते थे किन्तु यहाँ उनकी सीमाओं ने उन्हें बन्दी बना लिया तथा वे एक अन्य महान् श्रेय को प्राप्त करने से वंचित रह गए। किन्तु उनके इस वंचित होने के पीछे कारण तो थे ही। स्वच्छन्दतावादी कविता कोटि-कोटि जनता के जीवन के तल तक प्रवेश नहीं कर पाई और उसके बाद तो कविता और जनता की दूरी बढ़ती ही चली गई। ध्यान रहे, 'ए कंपेंडिअस् हिस्ट्री ऑफ़ इंग्लिश लिटरेचर' (अंग्रेजी-साहित्य का सुसंक्षिप्त[1] इतिहास) में अंग्रेजी-साहित्य के धुरन्धर विद्वान् एवं अतुलनीय प्राध्यापक स्व. प्रो. आर.डी. त्रिवेदी (रामदुलारे त्रिवेदी) ने विश्व-काव्य में आधुनिकता के सर्वतोमहान् वाहक महाकवि इलिअॅट (एलिअॅट) की काव्य-जनजीवन-दूरस्थता के कारण ही कठोर आलोचना की है।

खड़ीबोली-कविता के आचार्य

कविता के क्षेत्र में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी केवल माध्यम की नवीनता ही नहीं अपितु नए-नए संस्कृत एवं उर्दू के छन्दों का समावेश भी चाहते थे। परिणाम यह हुआ कि कवित्त, सवैया, दोहा, गेय पद इत्यादि में मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका इत्यादि संस्कृत तथा रुबाई, ग़ज़ल इत्यादि उर्दू अभिव्यक्ति-माध्यम भी जुड़ गए। एक विराट् अभिव्यक्ति-लोक विकसित हो गया। हिन्दी-कविता तुकधर्मी है किन्तु क्रान्तदर्शी आचार्य ने अतुकान्त कविता का भी प्रतिपादन किया। छन्दमुक्त एवं स्वच्छन्द कविता का युग अभी कुछ दूर था। किन्तु आचार्य ने उसका पथ-प्रशस्त कर दिया था। वे केवल खड़ीबोली ही नहीं लाए, नए छन्द और नए रूप भी लाए। उन्होंने परम्परा की एकान्त अवहेलना का त्वरामूलक उत्साह नहीं दिखलाया क्योंकि कोई भी कविता अपनी मूल प्रकृति से उच्छिन्न होकर जनजीवन को संस्फुरित नहीं कर पाती, किन्तु स्वस्थ नव्यता एवं भव्यता की प्रतिष्ठा भी कर डाली। यह कार्य सर्वथा अप्रतिम सिद्ध हुआ है।

'प्रगति और परम्परा' शीर्षक उत्साह-कलित ग्रन्थ में डॉ. रामविलास शर्मा ने लिखा है कि डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने "उनके भाषा-संस्कार-सम्बन्धी कार्य की प्रशंसा की है और उन्हें अवतारी पुरुष कहा है। लेकिन अगर द्विवेदीजी की हिन्दी और उनके आदेशों के अनुसार लिखी हुई कविता की तुलना भारतेन्दु युग की हिन्दी से करें तो यह ज़ाहिर हो जाएगा कि जिस अस्वाभाविक उच्चारण की बुनियाद पर नए हिन्दी के छन्दों में कविता रची गई है, उसका बहुत श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को है।" फ़िराक़ गोरखपुरी भी आचार्य पर क्लिष्टता का आरोप लगा गए हैं, मैथिलीशरण इत्यादि की एतद्विषयक आलोचना कर गए हैं। संयोगात् दोनों अंग्रेज़ी के छात्र एवं व्याख्याता रहे (परिणामतः हिन्दी की जड़ों का कमज़ोर रह जाना स्वाभाविक है)। किन्तु डॉ. रामविलास शर्मा एवं फ़िराक़ गोरखपुरी की आचार्य एवं परवर्ती कवियों की क्लिष्टताविषयक आलोचना तथ्य एवं तर्क पर आधृत नहीं प्रतीत होती। भारतेन्दु-युग में खड़ीबोली-कविता का सृजन नहीं के बराबर हुआ था। इससे आलोचना का आधार ही समाप्त हो जाता है। दूसरे, संस्कृत का आधार खोकर हिन्दी अपनी बंग्ला, असमिया, उड़िया, मराठी, गुजराती इत्यादि सगी तथा मलयालम, कन्नड़, तेलुगू, तमिल इत्यादि मौसेरी बहनों से अलग-थलग पड़ जाएगी। क्या रवीन्द्र, भारती और वल्लत्तोल की कविता कम संस्कृतनिष्ठ है? संस्कृतरहित हिन्दी संस्कृति-विच्छिन्न हो जाएगी। सर बेनेगल नरसिंह राव, सर अल्लादि कृष्णस्वामी अय्यर, गोपालस्वामी आयंगर, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी प्रभृति द्वारा प्रस्तुत तथा संविधान परिषद् के अध्यक्ष डॉ. राजेन्द्रप्रसाद के निर्देशन में निर्मित (विधि मन्त्री के पदेन-संयोजक डॉ. भीमराव राव अम्बेडकर द्वारा प्रभावित) भारतीय संविधान तक हिन्दी के संस्कृतप्रवण रूप का प्रतिपादन करता है। सुधारवादी युग की उत्कृष्ट व्रजभाषा-कविता से आदर्शवादी युग की उत्कृष्ट खड़ीबोली-कविता कहीं अधिक सरल और कहीं अधिक लोकप्रिय है। स्वयं सप्तक-कवि के रूप में डॉ. रामविलास शर्मा की कविता की भाषा आचार्य-प्रतिपादित भाषा से भिन्न नहीं है। मैथिलीशरण की सर्वोपरि लोकप्रियता डॉ. रामविलास शर्मा एवं रघुपति सहाय 'फ़िराक़' गोरखपुरी (1896-1982 ई.) की, सम्भवतः व्यक्तिगत कारणों में मूलभूत, आलोचना की निस्सारता प्रमाणित कर देती है। आचार्य कविता में "सादगी, असलियत और जोश" चाहते थे, जो स्वयं उनकी कविताओं से भी स्पष्ट है।

और तो और, उन्होंने 'कल्लू अल्हइत' के नाम से "सरगौ नरक ठिकाना नाहिं"[2] शीर्षक कविता अवधी (बैसवारी विभाषा) एवं आल्हा छन्द में लिखकर जनवादिता को रोचक प्रश्रय दिया था जिसमें जन-जीवन से कटे-छटे बाबुओं पर तीखा व्यंग्य किया गया

---

[1] कॉंपेंडिअस् = फ़ेअरली ब्रीफ़।

[2] यह कविता, 'भाषा की अनस्थिरता' में 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर बाबू बालमुकुन्द गुप्त की बात का बतंगड़ बनानेवाली चुटकियों के जवाब में, लिखी गई थी।

था : "अचकन पहिरि, बूट हम डाटा, बाबू बनेन डेरात-डेरात।" ब्रजभाषा में भी लिखते थे। किसी समय उनका कवि-रूप उच्चकोटि का माना जाता था। संस्कृत, ब्रजभाषा, अवधी एवं खड़ीबोली के कवि के रूप में 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का कवि-रूप' शोध का विषय है। उनकी कविता में राष्ट्रीयता का स्वर प्रधान था। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं जो आज रचनाकाल से भी अधिक प्रेरक हैं :

1. जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं नरपशु निरा है और मृतक समान है।।[1]

2. जै जै प्यारे देश हमारे
जै जै प्यारे देश हमारे, तीन लोक में सबसे न्यारे।
हिम गिरि-मुकुट मनोहर धारे, जै जै सुभग सुवेश।।
हम बुलबुल, तू गुल है प्यारा, तू सम्बल, तू देश हमारा।
हमने तन-मन मुझ पर वारा, तेजस्-पुञ्ज विशेष।।
तुझ पर हम निसार हो जावें, तेरी रज हम शीश चढ़ावें।
जगत-पिता से यही मनावें, होवे तू देशेश।।
जै जै हे देशों के स्वामी, नामवरों में भी हे नामी।
हे प्रणम्य तुझको प्रणमामम, जीते रहो हमेश।
आँख अगर कोई दिखलावे, उसका दर्प-दलन हो जावे।
फल अपने कर्मों का पावे, बने नाम निःशेष।।
बल दो हमें ऐक्य सिखलाओ, सँभलो देश होश में आओ।
मातृ-भूमि-सौभाग्य बढ़ाओ, मेटो सकल कलेश।।
हिंदू, मुसलमान ईसाई, यश गावें सब भाई-भाई।
सब के सब तेरे शैदाई, फूलो-फलो स्व-देश।।
इष्टदेव आधार हमारे, तुम्हीं गले के हार हमारे।
भुक्ति-मुक्ति के द्वार हमारे, जै जै जै जै देश।।
—(अक्टूबर, 1920)

3. अयोध्या का विलाप!
प्रासाद जासु नभ-मण्डल में समाने,
प्राचीर जासु लखि लोकपहु सकाने
अत्यन्त दिव्य दृढ़ दुर्ग विलोकि जाको,
आश्चर्ययुक्त मन मुग्ध भयो न काको?
जाकी समस्त सुनि सम्पति की कहानी,
नीचो नवाय सिर देव-पुरी लजानी।
ताकी अरे, निपट निष्ठुर काल! ऐसी,
तूरे करी शठ! दशा अति ही अनैसी।।
प्राचीर नाहिं, नहिं दुर्ग, न सौध-माला,
अट्टालिकाहु नहिं हेरि परैं विशाला।
उध्वस्त जर्जरित, भग्न शरीर मेरो;
हा, हा! न जाय अब मोसन दृश्य हेरो।।

---

[1] कहीं-कहीं ये पंक्तियाँ मैथिलीशरण गुप्त और कहीं-कहीं सनेही की लिखी बताई गई हैं। किन्तु यह ग़लत है। वैसे, दोनों आचार्य के शिष्य थे। आचार्य ने ये पंक्तियाँ अपने एक अन्य प्रिय शिष्य गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप' के हेतु लिखी थीं जो बराबर छपती रहीं—सूत्र के रूप में।

अत्युच्च मन्दिर महाई जहाँ रहे हैं,
देखो, तहाँ कबर, आज चहूँ छह हैं!
अल्लाह और बिसमिल्लाह आदि बैन,
कीन्हों तहाँ बधिर मोंहि सुनो परै न।।
जाही स्थल प्रचुर हीरन सों सँवारो,
सिंहासन-प्रवर राम! रहो तिहारो।
पर्णालयस्थ, तहँ मस्जिद-मध्य, देखी,
त्वन्मूर्ति! दुःख-दव मोहिं दहै विशेषी।। (मई, 1900)

4. इंग्लिश का ग्रन्थ-समूह बहुत भारी है,
अति-विस्तृत-जलधि समान देहधारी है।
संस्कृत भी सबके लिए सौख्य-करी है,
उसका भी ज्ञानागार हृदयहारी है।
इन दोनों में से अर्थ-रत्न ले लीजे,
हिन्दी के अर्पण उन्हें प्रेमयुत कीजै।

5. माता है जैसी पूज्य सुनो हे भाई!
भाषा है उसी प्रकार महा-मुद-दायी।
माता से पूज्य विशेष देश-भाषा है,
मिथ्या यह हमने वचन नहीं भाखा है।
माता से जग के बीच जन्म मिलता है,
भाषा से व्यवहार सदा चलता है।
इससे ही उसकी कीर्ति विज्ञ गाते हैं,
तत्-सेवा कर आनन्द अमित पाते हैं।
इसलिए स्व-भाषा-भक्ति देश-हितकारी,
कर भली-भाँति हूजिए पुण्य अधिकारी।
रचिए स्व-गौरव-पूर्ण ग्रन्थ-गण सारा,
बस, यही आपसे विनय विनीत हमारा।। (15 मई, 1899)

मानक भाषा के जन्मदाता

द्विवेदीजी ने हिन्दी भाषा को शुद्ध वर्तनी, उपयुक्त विराम-चिह्न एवं मानक उच्चारण प्रदान किए जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रभाषा का मानक रूप बन सका तथा स्वभावतः साहित्य का भी परिनिष्ठत राष्ट्रीय-रूप सामने आया। 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है, ''हमारा हिन्दी-साहित्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का सदा ऋणी रहेगा। व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफ़ाई के प्रवर्तक द्विवेदीजी ही थे।...भाषा पर द्विवेदीजी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण जब तक भाषा के लिए शुद्धता आवश्यक समझी जाएगी, तब तक बना रहेगा।'' द्विवेदीजी ने हिन्दी को वह भाषागत अस्मिता प्रदान की थी जिसके बिना वह गौरवच्युत हो जाती।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का गद्य-पद्य-भाषा-ऐक्य सिद्धान्त एक महान् सिद्धान्त प्रमाणित हुआ, क्योंकि यथार्थवादी युग की समाजपरक एवं व्यक्तिपरक दोनों चेतनाओं के आदिपुरुष महाप्राण निराला उसी पर चलकर अमर हुए हैं। भाषागत अद्वयता साधारणीकरण की आत्मा है। जिस साहित्य में गद्य एवं पद्य की भाषा में अन्तर होता है वह जनजीवन से दूर हट सकती है। अंग्रेज़ी की रोमैंटिक कविता के सीमान्त महाकवि वर्ड्स्वर्थ (1770-1850) ने गद्य एवं पद्य की भाषागत एकरूपता का प्रतिपादन

किया था। मराठी में गद्य-पद्य की भाषा अभिन्न है। अब तो सारे संसार में गद्य-पद्य की भाषा अभिन्न ही हो गई है। गद्य एवं पद्य जितने निकट आज हैं, उतने पहले कभी नहीं हुए थे। इससे आचार्य का महान् द्रष्टा-रूप विवृत हुआ है। किन्तु, पता नहीं स्वच्छन्दतावाद या अभिव्यंजनावाद या प्रभाववाद की किस आत्मपरक एवं क्षणिक झोंक में आकर 'आधुनिक साहित्य' शीर्षक ग्रन्थ के विद्वान् आलोचक नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिख दिया, "द्विवेदीजी ने काव्य की भाषा पर अपना वक्तव्य देते हुए यह कहा है कि गद्य और पद्य में एक ही भाषा, एक-सी ही शब्दावली होनी चाहिए। इस वक्तव्य से लक्षित होता है कि काव्य का स्वरूप उस समय इतना अविकसित था कि कविता और गद्य के भाषा-प्रयोग सम्बन्धी अन्तर की ओर भी दृष्टि नहीं जा सकी।" अब कविता स्वयं द्विवेदीजी को सार्थक एवं वाजपेयी को निरर्थक सिद्ध कर रही है। फिर भी, "एक ही-सी शब्दावली" वाजपेयी जी की मौलिक सूझ का परिणाम है। आचार्य द्विवेदी कविता में "आकाश-कुसुमों के गुलदस्ते" नहीं अपितु धरती की सच्चाइयाँ अभिव्यक्त होते देखना चाहते थे। बौद्धिक-काल का वैज्ञानिक जीवन गद्य एवं पद्य के पार्थक्य का समर्थन नहीं कर सकता। स्वयं आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'आधुनिक साहित्य' में ही लिखा है, "विचार के क्षेत्र में नई और बहुमुखी सामग्री एकत्र करने का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को है, जिन्होंने हिन्दी के लिए भाषा का एक नया प्रतिमान भी प्रस्तुत किया है। नए विचार और नई भाषा—नया शरीर और नई पोशाक़—दोनों ही नई दिल्ली को द्विवेदी जी की देन हैं। इस कारण वे नई हिन्दी के प्रथम युग-प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं।...साहित्य के क्षेत्र में किसी एक व्यक्ति पर इतना कड़ा उत्तरदायित्व इतिहास की शक्तियों ने कदाचित् पहली बार रखा था और पहली ही बार द्विवेदीजी ने इस उत्तरदायित्व के सफल निर्वाह का अनुपम निदर्शन प्रस्तुत किया है।" वस्तुतः इस सफल निर्वाह के पीछे आचार्य का संस्कृत का अथाह पाण्डित्य,[1] अंग्रेज़ी पर पूर्ण अधिकार,[2] मराठी में पूरी महारत,[3] बांग्ला, गुजराती, उर्दू, फ़ारसी इत्यादि की गहरी जानकारी तथा इस सबसे पूरा-पूरा लाभ उठा सकने का अप्रतिम सामर्थ्य तो था ही, परम्परा एवं प्रगति का सम्यक् बोध भी था। संसार के साहित्य में प्रतिभा की अभाववत् अल्पता के बावजूद महतोमहीयान् धारणाशक्ति का आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसा कोई प्रतीक दृष्टिगोचर नहीं होता। और, यह किस प्रतिभा से कम है!

नव्य नारी-संवेदन के प्रेरणा-स्रोत

आचार्य के विराटवादी नेतृत्व का परिणाम यह निकला कि कविता में एक ओर तो षड्ऋतु-योजना, दूत-योजना (प्रियप्रवास के पवन-दूत प्रकरण में) इत्यादि की परम्परा गतिशील रही जिससे ज़नजीवन उससे संपृक्त बना रहा था तथा दूसरी ओर नव्य-भव्य नारी-संवेदन (प्रियप्रवास की राधा का नवरूप, वैदेहीवनवास की सीता का नवरूप, साकेत की ऊर्मिला का नवरूप, यशोधरा की नवनारी-अस्मिता इत्यादि में—आचार्य ने अपनी पत्नी के असामयिक अवसान पर आयु होते हुए भी विवाह नहीं किया तथा उनकी एक छोटी-सी संगमरमर की मूर्ति को दौलतपुर में घर के सामने के 'स्मृति-मन्दिर' में प्रतिष्ठित किया), प्रेम के उदात्त रूप (प्रियप्रवास, प्रेमपथिक, ग्रन्थि इत्यादि में), शोषण-विगर्हणा (मैथिलीशरण कृत "किसान', सनेही कृत 'कृषक-क्रन्दन', कवि रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' कृत 'अछूत की आह', सियारामशरण गुप्त कृत 'एक फूल की चाह'[4] एवं 'खिलौना' इत्यादि में) के आयाम खुले। हीरा डोम की दलित-कविता का प्रकाशन आचार्य को दलितकाव्य का पुरोधा सिद्ध करता है। परम्परा एवं प्रगति को परस्पर-विरोधी समझने की आदर्शनिकता के कारण 'आधुनिक साहित्य' में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है, "पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय जैसे कवि भी अपने प्रियप्रवास में पवनदूत की योजना करते हैं जो मेघदूत की छाया लिए हुए है और

---

1. वे संस्कृत में सरलतापूर्वक छन्द-रचना कर लेते थे तथा इसे धाराप्रवाह बोल सकते थे। उनके मेघदूतम् एवं वेणीसंहारम् इत्यादि के अनुवाद अप्रतिम हैं। कालिदास, माघ, श्रीहर्ष इत्यादि के कठिनतम छन्दों को वे सरलतम हिन्दी में ढाल देते थे।
2. श्रीधर पाठक को लिखे गए उनके अंग्रेज़ी-पत्र आज भी एकदम तरोताज़ा लगते हैं। पाठकजी के पौत्र श्री पद्मधर पाठक ने इन्हें ग्रन्थरूप में प्रकाशित कराया है। 'बेकन-विचार-रत्नावली' एवं 'स्वतन्त्रता' (जॉन स्टुअर्ट मिल कृत 'ऑन लिबर्टी' का प्रगतिसम्पन्न अनुवाद) इत्यादि उनके दोनों भाषाओं पर असाधारण अधिकार के ज्वलन्त निदर्शन हैं। 'आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का अंग्रेज़ी से अनूदित साहित्य' भी शोध का उत्तम विषय है।
3. उन्होंने चिपलूणकर के निबन्धों का सुन्दर अनुवाद किया है।
4. अस्पृश्यता-समस्या पर अत्यन्त मार्मिक कविता। माखनलाल चतुर्वेदी की अधिक प्रसिद्ध 'एक फूल की चाह' कविता से भिन्न है।

मैथिलीशरण जो साकेत के नवम सर्ग में भी ऋतु-वर्णन की पुरानी परिपाटी और पुराने भाव-संकेत को नहीं छोड़ सके हैं।'' इस दिशा में हिन्दी-साहित्य के तलस्पर्शी विद्वान् और गम्भीर आलोचक न होते हुए भी अज्ञेय[1] के त्रिशंकु'–ग्रन्थगत विचार कसावट के अभाव में भी मननीय हैं, ''साहित्य में भी, विशेषतया आलोचना के प्रसंग में, यह फ़ैशन-सा हो गया है कि रूढ़ि का तिरस्कार किया जाए। जब यह तिरस्कार इतना स्पष्ट नहीं भी होता, तब भी किसी आधुनिक लेखक की समकालीनता अथवा कि 'आधुनिकता' का मूल्यांकन इसी कसौटी पर करते हैं कि यह किस हद तक रूढ़ियों को मानता अथवा तोड़ता है। उदाहरणतया हम प्रायः कहते हैं कि हरिऔध रूढ़िवादी हैं तथा पन्त और निराला आधुनिक हैं, यानी रूढ़ियों के प्रति विद्रोही हैं। आलोचना के वर्तमान फैशन की ओर तनिक ध्यान दें तो हम देखेंगे, आजकल हिन्दी में (हिन्दी की क्यों, प्रायः सर्वत्र ही) लेखक या कवि की रचनाओं के मौलिक व्यक्तिगत विशेष गुणों पर ज़ोर देने की परिपाटी-सी चल पड़ी है। आजकल का साहित्यकार अपनी भिन्नता के लिए ही प्रशंसा पाता है, मौलिकता भिन्नता की ही पर्यायवाची बन गई है। कवि को हम उसके पूर्ववर्तियों से उच्छिन्न करके देख सकें तभी हमें सन्तोष होता है। आलोचकों के आगे यह कहना अपने को हास्यास्पद बना देना होगा कि कभी-कभी साहित्यकार का गौरव, उसकी रचना का महत्त्व, इस बात से भी हो सकता है कि उसमें साहित्यकार के पूर्ववर्तियों की लम्वी परम्परा उसके साहित्य की रूढ़ि पुनः जी रही और मुखर हो रही है।'' आधुनिक कविता में नव्यता के सर्वतोमहान् कवि इलिअॅट (एलिअॅट) परम्परावादी थे। प्रौढ़तम अज्ञेय ने यह लिखा कि उनका ध्येय अपने समय के अनुरूप आचार्य द्विवेदी जैसा कार्य करना था। निस्सन्देह अपनी छोटी-सी प्रयोगवादी सीमा में अज्ञेय को सफलता भी मिली थी।

आचार्य के युग के नारी-चरित्रों को 'नैतिक दंभ से पीड़ित, अक्खड़ और नीरस' कहनेवाले 'विचार और विवेचन' ग्रन्थ के लेखक प्रसिद्ध आलोचक डॉ. नगेन्द्र की आलोचना 'साकेत : एक अध्ययन' के चरित्रों को प्रशस्ति द्वारा स्वयमेव हो जाती है। आचार्य द्विवेदी उस उदात्त नारी-संवेदन के वार्तावह थे, जिसने राधा, ऊर्मिला, यशोधरा, श्रद्धा इत्यादि का विकास किया। नव्य नारी-संवेदन बौद्धिककालीन कविता की एक सर्वोपरि विशिष्टता है। यह नव्य नारी-संवेदन ऊर्मिला, यशोधरा, एवं श्रद्धा के चरित्रों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित हुआ है। ऊर्मिला-काव्य एक पृथक् एवं विशिष्ट रूप ग्रहण कर सकने में सक्षम सिद्ध हुआ है। दूसरे, फ़्रायड की नक़ल पर ही नारी-चित्रण उतना अपरिहार्य नहीं है जितना आत्मपरक कारणों से, डॉ. नगेन्द्र समझते हैं। आदर्शवादी नारी-चरित्र लोकप्रियता में भी अप्रतिम सिद्ध हुए हैं।

गद्यमूर्ति

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी गद्यमूर्ति थे जो उनके गद्य-पद्य की निकटता के प्रतिपादन से तो स्पष्ट है ही, निबन्ध, आलोचना, आत्मकथा इत्यादि विधाओं में स्फीत सृजन से भी स्पष्ट है, पृथुल संस्कृत-अंग्रेज़ी-मराठी से हिन्दी में अनूदित साहित्य से भी स्पष्ट है। उनका युग हिन्दी-गद्य का स्वर्णयुग था जिसमें, उनके अतिरिक्त, पं. माधवप्रसाद मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, आचार्य पद्मसिंह शर्मा, सम्पादकाचार्य अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी एवं श्री लक्ष्मण नारायण गर्दे, महामहोपाध्याय डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा एवं महामहोपाध्याय पण्डित रामावतार शर्मा इत्यादि ने निबन्ध तथा मिश्रबन्धु एवं आचार्य शुक्ल, आचार्य श्यामसुन्दरदास एवं लाला भगवानदीन 'दीन', आचार्य पद्मसिंह शर्मा एवं पण्डित कृष्णविहारी मिश्र इत्यादि ने आलोचना को अतुलनीय गौरव प्रदान किया था तथा नाटक के अतिरिक्त उसकी प्रत्येक विधा का उत्कर्ष हुआ था।

---

1. आचार्य द्विवेदी द्वारा श्रीधर पाठक को लिखे गए अंग्रेज़ी-पत्रों के संग्रह की भूमिका में अज्ञेय ने युगप्रवर्तक का गौरव द्विवेदीजी को नहीं अपितु पाठकजी को प्रदान कर डाला है–सम्भवतः 'सांध्य अटन' कविता के प्रयोगवाद से रीझकर–किन्तु स्वयं पाठकजी ने द्विवेदीजी से प्रभावित होकर ही 'सांध्य अटन' जैसी खड़ीबोली-कविताएँ लिखी थीं अन्यथा वे 'हिमालय' एवं 'कश्मीर-सुषमा' जैसी सुन्दरतर व्रजभाषा-कविताओं के कवि थे। कवि-रूप में द्विवेदीजी से श्रेष्ठतर–किन्तु उन्हें युगप्रवर्तक मानना निराधार भी होगा, अनुत्तरदायित्वपूर्ण भी। अपने 'इतिहास' में आचार्य शुक्ल अपनी विशिष्ट लक्षणा-व्यंजनाबद्ध रुचि के कारण आचार्य द्विवेदी के अभिधाप्रधान-यथार्थप्रधान काव्यवाद का विरोध तथा श्रीधर पाठक के युद्ध स्वच्छन्दतावाद का समर्थन कर गए हैं। अज्ञेय उसे ही संकीर्णकोणबद्ध रूप में पुनर्प्रस्तुत करते लगते हैं। किन्तु एक विराट् साहित्य-निर्माता को अहंकेन्द्रित एवं एकांगी दृष्टि से देखना साहित्य के साथ न्याय करना नहीं।

आलोचना के वाहक

आलोचना के वास्तविक वाहक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ही थे जिनके द्वारा 'सरस्वती' में सर्वप्रथम पुस्तक-समीक्षा के साथ इस विधा का व्यवस्थित एवं वास्तविक विकास हो सका, यद्यपि विधा के उद्‌भव की सूचना भारतेन्दु, प्रेमघन एवं पण्डित बालकृष्ण भट्ट पूर्ववर्ती युग में दे चुके थे। द्विवेदीजी ने प्रियप्रवास, भारतभारती जैसे काव्यों की आलोचना लिखकर इन ग्रन्थों की प्रतिष्ठा में भारी योगदान किया। उनकी आलोचना भावात्मक एवं परिचयात्मक रूपों में प्राप्त होती है, विवेचनात्मक या विश्लेषणात्मक एवं सैद्धान्तिक रूपों में नहीं। उनके आलोचना-साहित्य का दूसरा रूप 'कविता क्या है?', 'उपन्यास-रहस्य' इत्यादि विधाओं पर प्रकाश के रूप में काव्यशास्त्र या साहित्यशास्त्र से सम्बद्ध है किन्तु यह एकान्तरूपेण परिचयात्मक है, यद्यपि इसकी प्रेरणा का अपार महत्त्व ऐतिहासिक सिद्ध हुआ। उनके नैषधचरितचर्चा, विक्रमांकदेवचरितचर्चा, कालिदास की निरंकुशता इत्यादि ग्रन्थ उन्हें संस्कृत-ग्रन्थों का श्रेष्ठ हिन्दी-आलोचक प्रमाणित करते हैं। उनका यह आलोचक-रूप उल्लेख्य है।

महान् निबन्धकार

द्विवेदीजी एक स्फीत निबन्धकार हैं। उन्होंने 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता', 'महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन', 'जगद्धर भट्ट की स्तुति-कुसुमांजलि', 'नल का दुस्तर दूत-कार्य', 'दिक्पालों की विरहव्यथा' जैसे उत्कृष्ट भावात्मक-निबन्ध भी लिखे हैं (भले ही वे क्रमशः रवीन्द्र, माघ, जगद्धर भट्ट, श्रीहर्ष[1] जैसों से प्रेरित हों), 'साहित्य की महत्ता'[2], 'कविता क्या है?' 'श्रीहर्ष का कलियुग', 'हम्मीर महाकाव्य'[3], 'महाकवि माघ की राजनीति', 'लोभ', 'क्रोध' जैसे उत्कृष्ट विचारात्मक-निबन्ध भी (भले ही वे अधिकांशतः विषयाधृत अधिक हों तथा मौलिक कम, और मनोविश्लेषणात्मक न होकर वार्तात्मक हों), 'वैदिक देवता', 'आर्यों की जन्मभूमि', 'कालिदास का स्थिति-काल', 'प्राचीन जैन-लेख-संग्रह' जैसे उत्कृष्ट शोध-निबन्ध भी (भले ही वे अधिकांशतः सर विलियम जोन्स, जैकोबी, मैक्समूलर, वूलर, विल्सन, तिलक, नारायण भवानराव पावगी, चिन्तामणि विनायक वैद्य, मुनि जिनविजय इत्यादि से प्रेरित हों), 'सर विलियम जोन्स ने संस्कृत कैसे सीखी?', 'विवाह-विषयक विचार-व्यभिचार' जैसे उत्कृष्ट हास्य-निबन्ध भी लिखे हैं (भले ही बांग्ला एवं मराठी से प्रेरित हों) और उन्होंने 'धनुर्वेद', 'कविराज सुखदेव मिश्र' इत्यादि मौलिक निबन्ध एवं प्रस्थान-निबन्ध भी लिखे हैं। 'मधुप' बनकर मैथिलीशरण ने माइकेल मधुसूदनदत्त के 'मेघनादवध' का जो उत्कृष्ट अनुवाद किया है, उसमें दिया गया 'माइकेल मधुसूदन दत्त का जीवनचरित'[4] भी एक अमर निबन्ध है। उनके निबन्ध उनके सृजनात्मक भाषाविद् होने का भी, सृजनात्मक भावज्ञ होने की भी, सृजनात्मक शोधकर्ता होने की भी सूचना देते हैं, और, इस प्रकार वे एक महान् निबन्धकार सिद्ध होते हैं। 'साहित्य-सन्दर्भ', 'साहित्य-सीकर', 'रसज्ञ-रंजन', 'सुकवि-संकीर्तन', 'प्राचीन पण्डित और कवि' इत्यादि का प्रणेता निस्सन्देह एक विश्वकोषीय निबन्धकार है। 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में आचार्य शुक्ल ने उनके निबन्धों को 'बातों का संग्रह' बतलाया है, जो उक्त उल्लेख मात्र से निराधार सिद्ध हो जाता है; 'हिन्दी-निबन्ध' में आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने उनका सटीक प्रत्याख्यान भी किया है।

आचार्य द्विवेदी की भाषा एकदम खरी टकसाली हिन्दी है और जिसने भाषा को बनाया उसकी भाषा का ऐसा होना स्वाभाविक भी है। उनकी शैली में कहीं कोई खिंचाव या तनाव या झटका नहीं है। उनकी भाषा-शैली प्रवाहपूर्ण भी है, प्रफुल्ल भी। वे ठीक ही संस्कृतनिष्ठ हिन्दी के पक्षपाती थे क्योंकि हिन्दी संस्कृत की सुस्पष्ट वंशजा एवं उत्तराधिकारिणी है, जिस पर संस्कृत एवं संस्कृति दोनों के संरक्षण का दायित्व है, तथा संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ही राष्ट्रभाषा और राजभाषा का भार वहन कर सकती है, किन्तु वे फ़ारसी,

---

[1] 'नैषधीयचरितम्' के महाकवि। 'रत्नावली', 'नागानन्द' एवं 'प्रियदर्शिका' के नाट्यकार हर्ष (सम्राट हर्ष?) से भिन्न। इस सन्दर्भ में यह लिखना आवश्यक है कि 'दमयन्ती का चन्द्रोपालम्भ' निबन्ध द्विवेदीजी का नहीं है जैसा कि 'साहित्य-सन्दर्भ' के 'वक्तव्य' से ही स्पष्ट है। खेद है कि कई अधकचरे लेखकों ने इस 'वक्तव्य' पर ध्यान नहीं दिया है।

[2] वस्तुतः भाषण किन्तु निबन्ध के रूप में सर्वाधिक प्रसिद्ध।

[3] नयचन्द्र सूरि कृत संस्कृत-महाकाव्य।

[4] सरस्वती, अगस्त, 1903 ई. में मूलतः प्रकाशित।

अरबी, तुर्की, अंग्रेज़ी इत्यादि के शब्दों का यथास्थान प्रयोग करने से नहीं कतराए। वे आचार्य-सम्राट् थे किन्तु उनकी भाषा-शैली में आचार्यत्व की लपेट कहीं नहीं है। उनका साहित्य प्रेरक भी है, ज्ञानवर्धक भी। उनकी प्रगतिशीलता विस्मयकारिणी है।[1]

यद्यपि वे कवि भी थे,[2] प्रेरक आलोचक भी, आत्मकथाकार भी, अप्रतिम अनुवादक भी, और 'उल्लेख के लिए उल्लेख' की दृष्टि से 'सुहाग की रात' के लेखक भी, तथापि साहित्य में वे निबन्धकार के रूप में स्मरणीय हैं; और इतिहास में खड़ीबोली-कविता के प्रतिष्ठापक एवं हिन्दी के मानक उच्चारण के जन्मदाता के रूप में अजर-अमर आचार्य तो वे हैं ही। यों, उनकी विराट् बहुखंडीय 'ग्रन्थावली' ('आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली') का अवलोकन उनकी विराटता को भी उजागर करता है किन्तु उनका निर्माता-रूप अद्वितीय है।

बलदेवदास

'वर्ण-रामायण', 'हनुमत--हाँक', 'राजापुर-महात्म', 'जानकी-विजय', 'मानव-परीक्षा', 'बलदेव-हज़ारा' इत्यादि चालीसेक छोटी-बड़ी तथा प्रकाशित-अप्रकाशित कृतियों के तुलसी तथा भूषण इत्यादि से प्रभावित पारम्परिक व्रजभाषा-कवि बलदेवदास (खटवार, निकट तुलसीतीर्थ राजापुर धाम, जनपद बाँदा, उत्तर प्रदेश, कविताकाल 1900 ई. के लगभग) आदर्शवादी-युग के एक उल्लेखनीय रामकाव्यकार माने जा सकते हैं। उनकी तत्सम-शब्दसम्पन्न कविता प्रवाहपूर्ण एवं अलंकृत है। 'हनुमत-हाँक' से एक छन्द प्रस्तुत है :

जीते राम रावण को कीश की सहायता से, पायो है विभीषण स्वराजभोग लंका को।
राघव को सँदेश कहि सीय को अँदेश हर्‌यो, पीय पह ल्यायो बलदेव देत डंका को।।
सानुज ससीता राम आवत अवध धाम, कुशल सुनया मेट्‌यो भरत के शंका को।
द्रवत निशंका बलदेव राउ रंका सबैं। जाको है भरोसो एक हनूमान हंका को।

किशोरीलाल गोस्वामी

पूर्व-प्रेमचन्द उपन्यासकारों में अग्रणी[3] किशोरीलाल गोस्वामी[4] (1865-1932 ई.) का सबसे अच्छा, संक्षिप्त किन्तु पूर्ण परिचय मिश्रबन्धु के 'विनोद' में प्राप्त होता है : ''जन्मकाल—संवत् 1922। रचनाकाल—संवत् 1947। मृत्युकाल—संवत् 1989। वृन्दावनवासी[5] श्री गोस्वामी जी संस्कृत तथा हिन्दी के अच्छे पंडित थे। आपने कई संस्कृत-ग्रन्थ, प्रायः 100 हिन्दी-ग्रन्थ स्फुट विषयों पर, 65 हिन्दी-उपन्यास लिखे और 'उपन्यास' मासिक-पुस्तक बहुत दिन तक निकाली। लेखों में आपकी भाषा में संस्कृत शब्दों का बाहुल्य रहता है, तथा उपन्यासों में साधारण भाषा का। आपने 'प्रेमरत्नमाला'-नाम्नी एक पद्य-रचना भी की है। इक्कीसवें हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप सभापति थे। आपके उपन्यास यूरोपीय ग्रन्थों पर भी अवलम्बित हैं तथा कहीं-कहीं उनमें रसियापन की मात्रा कुछ बढ़ गई है। आपने उपदेशों पर ध्यान न देकर ऐसे उपन्यास लिखे हैं जो जनता में अधिक लोकप्रिय हों। कुछ दिन आपको उनसे चार-पाँच

---

[1] 'सम्पत्तिशास्त्र' में उनके विचार 2000 ई. में और आगे भी क्रान्तिकारी माने जाएँगे। उन्होंने दूर के रिश्ते के भांजे और अपने उत्तराधिकारी की पुत्री के विवाह का विज्ञापन निकाला था जिसमें रूढ़िवाद-पालन का निषेध था; इसे मैंने स्वयं देखा है। पं. देवीदत्त शुक्ल ने उनके ग्रामसुधार एवं अस्पृश्यता-विरोधी जीवन पर प्रकाश डाला है (प्रयाग के मासिक 'सम्पादक की वाणी' के जनवरी, 1992 अंक में 'बैसवाड़े के दौलतपुर गाँव में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी' के रूप में पुनर्प्रस्तुत)। स्वयं आचार्य के दो विचार देखें :

''इस दुनिया की सृष्टि ऐसे ईश्वर ने की है, जिसकी कोई जाति नहीं, जो ऊँच-नीच का क़ायल नहीं, जो ब्राह्मण-अब्राह्मण, चाण्डालों और कीड़ों-मकोड़ों तक में अपनी सत्ता प्रकट करता है। छुआछूत के माननेवालों को ऐसे भ्रष्ट का रचा संसार छोड़ देना चाहिए।'' (अगस्त, 1924)

''देहात में उस शिक्षा की आवश्यकता है, जो किसानों को दो दफ़े खाने को दे सके। उन्हें खेती और छोटे-मोटे उद्योग-धन्धे सिखाइए। औरंगज़ेब की राजनीति सिखाने और मिसीसिपी या वोल्गा के उद्‌गम के रटाने की आवश्यकता नहीं है।'' (अप्रैल, 1920)

[2] पं. देवीदत्त शुक्ल ने 'द्विवेदी-काव्य-माला' (1904 ई.) सम्पादित कर आचार्य के कवि-रूप को उजागर किया है।

[3] 'विचार और अनुभूति' के उत्कृष्ट 'हिन्दी-उपन्यास' निबन्ध में किशोरीलाल गोस्वामी का न होना उसकी अपूर्णता का सूचक है।

[4] 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. शिवप्रसाद सिंह त्वरा में 'गुप्त' लिख गए हैं (क्योंकि डॉ. किशोरीलाल गुप्त का विवरण नहीं है) एवं मृत्यु-वर्ष अनुल्लिखित है। वैसे, विवरण सन्तोषजनक है।

[5] किशोरीलाल गोस्वामी का जन्म काशी में हुआ एवं शिक्षा-दीक्षा भी काशी में ही हुई। वृन्दावन मूलस्थान था।

सहस्र की वार्षिक आय भी रही। गोस्वामीजी हमारे परमोत्कृष्ट लेखकों में से थे।'' शुक्ल ने भी ''उच्च वासनाएँ व्यक्त करनेवाले दृश्यों की अपेक्षा निम्नकोटि की वासनाएँ प्रकाशित करनेवाले दृश्य अधिक भी हैं और चटकीले भी'' का आरोप लगाया है। डॉ. शिवप्रसाद सिंह के शब्दों में उन्होंने ''अपने उपन्यासों का उद्देश्य 'प्रेम के विज्ञान' का प्रचार माना है।'' उनके 'त्रिवेणी', 'प्रणयिनी-परिणय', 'लवंगलता वा आदर्श बाला', 'सुख-शर्वरी', 'लीलावती', 'लीलावती वा आदर्श पत्नी', 'राजकुमारी', 'तारा', 'कनककुसुम वा मस्तानी', 'हीराबाई या बेहयाई का बोरका', 'जिन्दे की लाश', 'तरुण तपस्विनी या कुटीर-वासिनी', 'लखनऊ की क़ब्र', 'रज़िया बेग़म या रंगमहल में हलचल', 'पूर्वजन्म या सौतियाडाह', 'गुलबहार', 'लावण्यमयी' इत्यादि उपन्यासों में काम के सत्-असत् उभय-पक्षों का उत्तेजक चित्रण प्राप्त होता है, जिसने चतुरसेन शास्त्री, ऋषभचरण जैन, कृष्ण चन्दर इत्यादि मांसलता के चतुर चितरों को प्रेरित किया—परोक्षतः किशोरीलाल गोस्वामी कुशवाहा कान्त, प्यारेलाल 'आवारा', 'गुलशन नन्दा इत्यादि के पितामह थे! बंकिम के सदृश गोस्वामी कट्टर हिन्दूवादी थे और गुरुदत्त पर उनका प्रभाव अवश्य ही पड़ा है। कहीं-कहीं इतिहास को 'दूर से ही नमस्कार' करने की प्रवृत्ति ने इनको वृन्दावनलाल वर्मा का वास्तविक अग्रज नहीं बनने दिया, यद्यपि अपने ऐतिहासिक उपन्यासों की अनैतिहासिकता में वे बंकिम एवं मुंशी[1] से बहुत भिन्न नहीं हैं—बस, कामातिरेक ने उन्हें बंकिम या मुंशी नहीं बनने दिया! किशोरीलाल गोस्वामी हिन्दी के प्रथम अनौपचारिक ऐतिहासिक-उपन्यासकार थे—गंगाप्रसाद गुप्त, जयरामदास गुप्त, मिश्रबन्धु, वृन्दावनलाल वर्मा, प्रसाद, राहुल, चतुरसेन शास्त्री, यशपाल, इक़बाल बहादुर देवसरे, यज्ञदत्त शर्मा, अमृतलाल नागर, माया शबनम इत्यादि विविध प्रकार के ऐतिहासिक उपन्यासकारों के अग्रज-पूर्वज। रांगेय राघव का 'मुर्दो का टीला' भी ऐतिहासिक उपन्यास माना जाता है, किन्तु वह वस्तुतः काल्पनिक रचना है। किन्तु अपनी वास्तविक अथवा तथाकथित साम्प्रदायिकता एवं वास्तविक तथा अत्यधिक कामुकता के बावजूद उनके अनेक उपन्यास उन्हें हिन्दी के एक अग्रणी उपन्यासकार के रूप में ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य प्रदान करते हैं।

गोस्वामी ने 'चौपट-चपेट' शीर्षक अतिशय अश्लील प्रहसन एवं 'मयंक-मंजरी' शीर्षक शृंगारपूर्ण नाटक भी लिखा, किन्तु नाटक की विधा में वे कोई पहचान न बना सके। आ. शुक्ल ने उनकी 'इन्दुमती' (1900 ई.) कहानी को ''बँगला कहानी की छाया'' के सन्देह के साथ ''हिन्दी की पहली मौलिक कहानी'' का जो गौरव प्रदान करना चाहा था वह अब कालातीत हो चुका है क्योंकि 'इन्दुमती' शेक्सपिअर के प्रसिद्ध नाटक 'टेम्पेस्ट' पर आधृत है, अमौलिक है, यद्यपि उसका ऐतिहासिक महत्त्व बना रहेगा ('उसने कहा था' एवं 'दुलाईवाली' की मौलिकता पर भी विवाद है)। वास्तव में, हिन्दी के प्रथम मौलिक कहानीकार पं. माधवप्रसाद मिश्र हैं और 'मन की चंचलता' (1900 ई.) से लेकर 'लड़की की बहादुरी' (1904 ई.) तक यह तथ्य निर्विवादतः प्रसरित है। 'इन्दुमती' का प्रकाशन 'सरस्वती' में हुआ। 'सरस्वती' में प्रकाशन तत्काल प्रसिद्ध हो जाता था। 'मन की चंचलता' एवं 'लड़की की बहादुरी' का प्रकाशन 'सुदर्शन' में हुआ, जिसका बोलबाला न था। किन्तु इससे इतिहास के सत्य पर प्रभाव न पड़ना चाहिए। अतएव, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 1—पारिभषिक शब्दावली)[2] में डॉ. विजयेन्द्र स्नातक[3] की यह स्थापना विचित्र लगती है, ''बंगमहिमला (?) की 'दुलाईवाली' 'सरस्वती' में 1907 में प्रकाशित हुई, जो हिन्दी की प्रथम मौलिक आधुनिक कहानी है!'' बंगमहिला का व्यक्तित्व एवं कृतित्व (विशेषतः 'दुलाईवाली') स्वयं विवादास्पद रहा है। शुक्ल अपने संस्करण में सुधार चाहते थे, किन्तु प्राणभय से न कर सके। पता नहीं, 'दुलाईवाली' को ''प्रथम मौलिक कहानी'' कहने की कल्पना उभरी कैसे?

हिन्दी में कोई बंकिम नहीं हुआ[4], किन्तु यदि हुआ है तो वह किशोरीलाल गोस्वामी ही हैं। हिन्दी में कोई मुंशी नहीं हुआ[5], किन्तु यदि हुआ है तो वह किशोरीलाल गोस्वामी ही हैं। यदि वे कामवाद को सन्तुलित रख पाते तो बंकिम या मुंशी हो सकते थे। फिर भी, प्रथम उग्र-हिन्दूवादी उपन्यासकार एवं प्रथम स्वच्छन्द कहानीकार के रूपों में हिन्दी-साहित्य का इतिहास सदैव उनका सम्मान करता रहेगा।

---

[1] महान् गुजराती साहित्यकार एवं ऐतिहासिक उपन्यासकार कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी। गुजरात एवं बंगाल में 'मुंशी' ब्राह्मण होते हैं।

[2] तृतीय संस्करण, 1985 ई.।

[3] 'वि. रा.' लिखा है जो आरम्भ के 'लेखक' में नदारद है। इस मूल्यवान् कोश के दोनों भाग त्रुटियों एवं विशृंखलाओं से आपूर्ण हैं। डॉ. नगेन्द्र इत्यादि सम्पादित 'भारतीय साहित्य कोश' ऐसा भी नहीं है—यह साम्यवाद के साहित्येतर प्रचार-भार से चरमरा गया है। डॉक्टर साहब ने सारा देखा तक नहीं?

[4] बांग्ला में कोई प्रेमचन्द नहीं हुआ। ऐसा होता ही रहता है।

[5] गुजराती में कोई वृन्दावनलाल वर्मा नहीं हुआ। वस्तुपरकता में वर्मा विश्व-साहित्य के बेजोड़ उपन्यासकार हैं। स्कॉट, बंकिम, मुंशी, गोस्वामी इत्यादि भावुकता के पुंज हैं।

बालमुकुन्द गुप्त

'शिवशम्भु के चिट्ठे' एवं 'चिट्ठे और ख़त' (दोनों 1905 ई.) के अद्वितीय हास्यनिबन्धकार, 'गुप्त-निबन्धावली' के हास्यव्यंग्येतर लेखक भी, 'स्फुट कविता' के कवि, 'रत्नावली' (हर्ष-कृत संस्कृत-नाटिका) के अनुवादक एवं 'भारतमित्र'[1] के सम्पादक श्री बालमुकुन्द गुप्त[2] (1865-1907 ई.) हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक गहन-गम्भीर व्यंग्यकार के रूप में सदा अमर रहेंगे—उनकी तुलना में अन्नपूर्णानन्द ('अकबरी लोटा'[3] के स्मरणीय व्यंग्य-निबन्धकार) तक नहीं खड़े हो पाते और हरिशंकर परसाई इत्यादि राजनीतिजीवी लगते हैं! उनकी पैनी व्यंजना और सूक्ष्म देशभक्ति से आज तक स्थूल एवं शिथिल व्यंग्यकार शिक्षा ले सकते हैं। वे उर्दू से हिन्दी में आए। परवर्ती प्रेमचन्द के सदृश। प्रेमचन्द ने इसका उल्लेख भी किया है। बालमुकुन्द गुप्त में सुधारवादी युग के महान् साहित्यकार-द्वय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं प्रतापनारायण मिश्र की ज़िन्दादिली एवं अनौपचारिकता तथा आदर्शवादी युग के आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी[4] एवं पं. माधवप्रसाद मिश्र का भाषा-परिष्कार एवं स्वातन्त्र्य-भाव-विकास एकाकार हो गए हैं—वे सुधारवादी एवं आदर्शवादी युगों के सुदृढ़ सेतु थे (किन्तु अपने जीवनकाल, अपनी राष्ट्रीय चेतना, अपने विचार-भाव, अपने भाषा-परिष्कार इत्यादि सभी बिन्दुओं की दृष्टि से निस्सन्देह आदर्शवादी युग के साहित्यकार (यत्र-तत्र उन्हें तरंग या स्व. डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' इत्यादि के अनुकरण में सुधारवादी युग से जोड़ना संरचनात्मक, भाषिक, सामयिक, सभी दृष्टियों से ग़लत है)। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' का ज्योतीन्द्रनाथ बनर्जी ने अंग्रेज़ी में अनुवाद किया था। यह ग्रन्थ आज भी एकदम ताज़ा-टटका (डाल का टूटा) लगता है!

बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी के शीर्षस्थ व्यंग्यकार हैं। केवल 'मेरी असफलताएँ' एवं 'ठलुवा क्लब' के स्रष्टा गुलाबराय ही 'शिवशम्भु के चिट्ठे' एवं 'चिट्ठे और ख़त' के स्रष्टा के कुछ निकट पहुँच पाते हैं ('कुछ' से अभिप्राय गुलाबराय में गुप्त के पैनेपन के अभाव से है—ख़लिस व्यंग्य पर बौद्धिकता लदी-सी लगती है; दोनों वैश्यों में गुप्त ही साहसी हैं जो गौरांग शासकों पर शहद लगी कटारी चलाते हैं)। गुप्त एक उत्कृष्ट व्यंग्य-कवि भी हैं। गोपालप्रसाद व्यास ने हास्य कविताएँ अधिक नहीं लिखीं, बरसानेलाल चतुर्वेदी की हास्य कविताएँ हल्की हैं, काका हाथरसी की अधिकतर साहित्येतर। देवराज 'दिनेश', सुरेन्द्र शर्मा, के.पी. सक्सेना, शरद जोशी, सरोजनी[5] 'प्रीतम', अल्हड़ बीकानेरी इत्यादि नित्य लिखनेवाले व्यावसायिक व्यंग्यकारों की अधिकतर रचनाएँ साधारण हैं। पूर्वाधुनिक हिन्दी-हास्यकाव्य तुलसी (नारद-मोह, कपटमुनि-प्रसंग, शिला-चन्द्रमुखी सवैया इत्यादि), सूर (बाललीला, मुरलीमाधुरी, भ्रमरगीत इत्यादि), सुखदेव (शिवगृह-तस्करवर्णन, आत्मव्यंग्य), अली मुहिब ख़ाँ 'प्रीतम' (खटमल-बाईसी), बेनी बंदीजन (भँड़ौवे), देवीदास (सूमसागर जो अपूर्ण रूप में मिला है तथा जिसका प्रकाशन-आलोचन अपेक्षित है), रामसुजानसिंह (रुपिया-महात्म) इत्यादि तक पर्याप्त सम्पन्न है जिसकी समता भारतेन्दु को छोड़ दिया जाए तो आधुनिक हिन्दी-हास्यकाव्य नहीं कर पाता; किन्तु आधुनिक हिन्दी-हास्यगद्य भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, प्रेमचन्द, भगवतीचरण वर्मा, अन्नपूर्णानन्द, गुलाबराय इत्यादि के स्फीत सृजन में ऐसा घुला-मिला चलता है कि बहुत सन्तोष होता है। दीनदलित-संवेदन से ऊमचूभ वे सच्चे जनवादी थे। बालमुकुन्द गुप्त ने भयावह मिन्टो[6]शाही-कर्ज़न[7]शाही

---

[1] "संवत् 1934 में पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र., पं. छोटूलाल मिश्र, पं. सदानन्द मिश्र, बाबू जगन्नाथप्रसाद खन्ना के उद्योग से कलकत्ते में 'भारतमित्र कमेटी' बनी और 'भारतमित्र' पत्र बड़ी धूमधाम से निकला और बहुत दिनों तक हिन्दी-संवादपत्रों में एक ऊँचा स्थान ग्रहण किए रहा।" (शुक्ल) 1877 ई. में निकले इस पत्र का संपादन गुप्त ने 1899 ई. से मरण-पर्यन्त किया।

[2] जन्मस्थान गुरयाना या गुड़याना (कहीं गुरयानी पढ़ा था—गुरुग्राम या गुड़गाँव के सदृश गुरु द्रोणाचार्य से सम्बद्ध लगता है? जनपद रोहतक जो महाभारत में उल्लिखित है, हरियाणा, मृत्युस्थान दिल्ली) यह दुखद संयोग रहा कि हरियाणा की भूमि ने हिन्दी को जो तीन उत्कृष्ट साहित्यकार (बालमुकुन्द गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक) प्रदान किए वे सब अपेक्षाकृत अल्पजीवी ही रहे। गुप्त एवं मिश्र तो एक ही वर्ष (1907 ई.) में दिवंगत हुए!

[3] कथा-शैली में रचित।

[4] जिनके भाषा-सम्बन्धी 'अनस्थिरता' के ग़लत प्रयोग के तिल को गुप्त ने ताड़ बनाकर ऐतिहासिक वाद-विवाद किया (जो उनकी भाषा-जागरूकता का सूचक भी था), जिसमें चुहलबाज़ी का बड़ा पुट था। गोविन्दनारायण मिश्र ने आचार्य के पक्ष में 'आत्माराम की टें-टें' (आत्माराम छद्मनाम से गुप्त—आत्माराम प्रायः तोते को कहते रहे हैं जैसा कि प्रेमचन्द की 'आत्माराम' कहानी से भी प्रतीत किया जा सकता है) लिखा और स्वयं गम्भीर आचार्य ने कल्लू अल्हइत बनकर बैसवाड़ी (बैसवारी) में "सरगौ नरक ठिकाना नाहिं" का आल्हा-छन्द में रचित ऐलान कर डाला!

[5] वे 'सरोजिनी' नहीं हैं!

[6] लॉर्ड मिन्टो जिसने विदेशी साम्प्रदायिकतावादी आग़ा ख़ाँ से भारत में मुस्लिम-पृथकतावाद की नींव डलवाई।

[7] लॉर्ड कर्ज़न जिसने ताजमहल को नीलामी से बचाकर विश्व का एक आश्चर्य बना दिया, विक्टोरिया-मेमोरियल (कलकत्ता) बनवाया। इसका मूँछ-कट (कर्ज़न-कट) बहुत दिन चला।

का परिहास जिस कौशल (शैली-शिल्प में भंगड़ का प्रलाप या होली का हुड़दंग) से किया है वह उन्हें एक उच्चकोटि का देशभक्त भी प्रमाणित करता है और यह एक ऐसा गौरव है जिसकी समूचे हास्य-साहित्य में मिसाल नहीं। गद्य-पद्य के एक-एक उदाहरण देखें :

1. इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उतर रही हैं। तबीयत भुरभुरा उठी। इधर भंग, उधर घटा—बहार में बहार! इतने में वायु का वेग बढ़ा, चीलें अदृश्य हुईं। अँधेरा छाया, बूँदें गिरने लगीं; तड़पड़-धड़धड़ होने लगी। देखा, ओले गिर रहे हैं। ओले थमे, कुछ वर्षा हुई, बूटी[1] तैयार हुई। 'बम-भोला' कहकर शर्मा[2] जी ने एक लोटा भर चढ़ाई। ठीक उसी समय लालडिग्गी पर बड़े-लाट[3] मिन्टो ने बंगदेश के भूतपूर्व छोटे-लाट[4] बुडवर्न की मूर्ति खोली[5]। ठीक एक ही समय कलकत्ते में यह दो[6] आवश्यक काम हुए। भेद इतना ही था कि शिवशम्भु शर्मा के बरामदे की छत पर बूँदें गिरती थीं और लॉर्ड मिन्टो के सिर या छाते पर। भंग छानकर महाराज[7] जी ने खटिया पर लम्बी तानी और कुछ काल सुषुप्ति के आन्दोलन में लीन रहे।...हाथ-पाँव सुख में, पर विचार के घोड़ों को विश्राम न था। वह[8] ओलों की चोट से बाजुओं को बचाता हुआ परिन्दों की तरह इधर-उधर उड़ रहा था। गुलाबी नशे में विचारों का तार बँधा कि बड़े-लाट फ़ुर्ती से अपनी कोठी में घुस गए होंगे और दूसरे अमीर अपने-अपने घरों में चले गए होंगे। पर वह चील कहाँ गई होगी?...हा! शिवशम्भु को इन पक्षियों की चिन्ता है पर वह यह नहीं जानता कि इन अभ्रस्पर्शी अट्टालिकाओं से परिपूरित महानगर में सहस्रों अभागे रात बिताने को झोपड़ी भी नहीं रखते।

2. हुए मारली[9] पद पर पक्के, वराडरिक[10] के लग गए धक्के।
बंगाली समझे पौ-छक्के, होली है भई होली है!
बंग-भंग[11] की बात चलाई, काटन[12] ने तख़रीर सुनाई।
तब मुरली[13] ने तान लगाई, होली है भई होली है!
होना था सो हो गया भैया, अब न मचाओ तौबा-दैया।
घर को जाओ, लेउँ बलैया, होली है भई होली है।
जैसे लिबरल[14] तैसे टोरी[15], जो परनाला सोई मोरी[16],
दोनों का है पंथ अघोरी, होली है भई होली है!

---

1. बूटी=भंग, विजया। भंगड़, भंगड़ा इत्यादि शब्दों की जननी।
2. शिवशम्भु शर्मा (व्यंग्य की अभिव्यक्ति के माध्यम)।
3. बड़े-लाट = वाइसरॉय और गवर्नर-जनरल। 'लाट' शब्द ऊँची-लाट से नहीं, 'लॉर्ड' से निकला लगता है।
4. छोटे-लाट = गवर्नर।
5. अनावरण किया।
6. एक में भाँग का नशा, दूसरे में सत्ता का नशाः बहुत गहरा व्यंग्य।
7. ब्राह्मण (चाहे रसोइया ही हो) को 'महाराज' कहा करते थे।
8. पहले 'घोड़ों' और अब 'वह' का ग़लत प्रयोग त्वरा में हो गया है।
9. मॉर्ले या मॉर्ली भारत-सचिव थे। मिन्टो-मॉर्ले-सुधार इतिहास-प्रसिद्ध हैं।
10. बॉड्रिक।
11. मिन्टो, कर्जन, कॉटन इत्यादि के विभाजक-षड्यन्त्र से बंग-भंग की बात उछली पर टल गई, किन्तु माउंटबेटन, गाँधी, जिन्ना, नेहरू इत्यादि ने देश के साथ बंग का भंग भी करा ही डाला।
12. कॉटन।
13. अभिप्राय मॉर्ली से लगता है। श्लेष-सौन्दर्य।
14. ब्रिटेन की ऐतिहासिक लिबरल पार्टी (उदार दल)।
15. ब्रिटेन की ऐतिहासिक टोरी पार्टी (अनुदार दल)।
16. जैसे नागनाथ वैसे साँपनाथ।

मिश्रबन्धु

1. साहित्य-वाचस्पति पण्डित गणेशबिहारी मिश्र (1865-1937 ई.)
2. साहित्य-वाचस्पति, रावराजा रायबहादुर डॉ. श्यामबिहारी मिश्र (1873-1947 ई.)
3. साहित्य-वाचस्पति, रायबहादुर डॉ. शुकदेवबिहारी मिश्र (1878-1951 ई.)

हिन्दी के 'प्रथम' महान् आलोचक (साहित्येतिहास-लेखक के आधार-ग्रन्थ 'विनोद' के अमर प्रस्तोता, कवि-आलोचना के प्रस्थान-ग्रन्थ 'नवरत्न'[1] के प्रणेता, तुलनात्मक आलोचना के जन्मदाता) मिश्रबन्धु ने आलोचना की विधा की जितनी व्यापक सेवा की है उतनी रामचन्द्र शुक्ल समेत किसी आलोचक ने नहीं (भले ही प्रतिभा में शुक्ल आगे हों)। युगसम्राट् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी[2] एवं आलोचक-सम्राट् आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विरोध एवं विध्वंस, भारी ज़मींदारी और महाजनी तथा उच्च प्रशासनिक पद-व्यस्तता के कारण स्वप्रतिष्ठापन-यत्नाभाव, उनके परम्परावाद-अलंकारवाद के प्रति परिवर्तित जनरुचि, शिथिल भाषा-शैली, प्रस्तुति-अव्यवस्था, विश्वविद्यालय-क्षेत्र से बाहर के जीवन प्रभृति कारणों से मिश्रबन्धु का सम्यक् आकलन न हो पाना दुर्भाग्यपूर्ण ही नहीं प्रत्युत कृतघ्नतापूर्ण भी माना जाएगा। हर्ष है कि आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, डॉ. किशोरीलाल गुप्त एवं डॉ. वियजेन्द्र स्नातक ने प्रासंगिक रूपों में मिश्रबन्धु की महान् साहित्येतिहास-साधना एवं आलोचना-सेवा के प्रति न्यायपूर्ण दृष्टिकोण अपनाया है, किन्तु अध्ययन-भीरु या अध्ययन-पराङ्मुख एवं शुक्ल-अभिनिवेश-प्रेरित तत्त्व (विशेषतः प्रश्नोत्तर-रुचिप्रधान विश्वविद्यालय-प्राध्यापकगण-छात्रगण) उनके विराट् कार्य से या तो समग्रतः अपरिचित हैं या नितान्त अंशतः परिचित। मिश्रबन्धु पर एक विराट् आलोचना-ग्रन्थ अपेक्षित है।

वैसे, मिश्रबन्धु ने कविता, नाटक एवं उपन्यास भी रचे हैं, 'भारत का इतिहास' (दो खण्ड : 6000 विक्रमी-पूर्व से मुस्लिमशासन-पूर्व तक) जैसा अमूलय ग्रन्थ रचा है, चारुचयनग्रन्थ 'देव-सुधा' एवं 'भूषण-ग्रन्थावली' प्रस्तुत की है, फिर भी हिन्दी-साहित्य में उनकी अमरता का आधार 'विनोद' एवं 'नवरत्न' ही हैं। मिश्रबन्धु की कविता उनके अलंकृतकाल (शास्त्रीय काल) की कविता से बहुत प्रभावित है। आलोचना में भी वे शास्त्रीयकाल-सीमान्त हैं। उनके पिता पण्डित बालदत्त मिश्र इटौंजा (ज़िला लखनऊ) के नामी रईस एवं काव्यरसिक थे, जिनका प्रभाव तीनों भाइयों के सारे कृतित्व पर पड़ा है। कविता के कुछ उदाहरणों से उनका व्यक्तित्व-कृतित्व परखा जा सकता है :

1. मथन लगे जब सिंधु देव-दानव मिलि सारे।
कढ़े त्रयादश रत्न, सभै परभा अति धारे।।
लियो सबन तिन बाँटि, कढ़्यो तब विषम हलाहल।
लगे जरन सब लोक, दूरि भाग्यो धीरज, बल।।
तब पान कियो जेहि विषम विष, तीनि लोक तारन-तरन।
सोइ आसुतोष संकट सकल हरहु संभु! असरन-सरन।।

2. मनभावन छैल-छबीले लखौ इत राधिका प्रेम-प्रभा सों सनी।
उत कान्ह बजावत बाँसुरिया, दुहुँ ओरन सों सुषमा है घनी।।
इत राधिका झूलत भूला भले, चमकैं जुत भूषण जामैं कनी।
जड़ी हीरन सों गहने पहने छबि देखिए जोरी अनूप बनी।।

(गणेशबिहारी मिश्र)

---

[1] वस्तुतः 'दशरत्न' क्योंकि भूषण एवं मतिराम को 'त्रिपाठी-बन्धु' में समाहित कर लिया गया है।

[2] 'भारतेन्दुकाल' रखना और 'द्विवेदीकाल' न रखना मिश्रबन्धु के अनैतिहासिक-पूर्वाग्रह का परिणाम था। शुक्ल ने 'विनोद' के 'भारतेन्दुकाल' को ग्रहण किया तथा 'द्विवेदीकाल' का प्रतिष्ठापन जो उचित था।

1. समरथ सुतन पै राखत पिता है प्रेम, मातु पै कुपूतन बिसेख अपनावती।
देखि प्रौढ़ सुत को सुजस मन मोद भरै, कादर को तबहू छिनौ न बिसरावती।।
मातु भारती को हौं कादर कपूत मति, याते अब चरन सरन तकि धावती।
अरविंद नंद सों न सकति अमंद पाइ, मातु नखचंद की छटा ही चित भावती।।
(श्यामबिहारी मिश्र)

2. बालमीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति आदि, लाड़िले सुतन को न तेरे बिसरायो मैं।
पंगु-सम तऊ गिरि-लंघन को धाय मातु! तो सुत बनन-हेतु लालसा बढ़ायो मैं।।
भ्रातन के धवल सुजस मैं कपूत बनि, केवल कराल कालिमा को चपकायो मैं।
राखु मातु सरदा! दया की दीठि फेरु तऊ, साहस कै अब तौ सरन तकि आयो मैं।।
(शुकदेवबिहारी मिश्र)

कुंठामुक्त, सन्तुष्ट एवं सम्पन्न जीवनयापन के कारण मिश्रबन्धु में अद्भुत नम्रता, अटल आस्था एवं अप्रतिहत अध्यवसाय का समावेश हो गया था, किन्तु इन्हीं कारणों से प्रतिभा की बंकिमता, प्रतिपादन की तेजस्विता एवं संस्थापन की प्राणवत्ता का अभाव भी आ गया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि काल-निर्धारण, काल-नामकरण, सामग्री-संचयन इत्यादि सभी दृष्टियों से उनका ही माल पचाकर तथा इसी कारण से उन्हीं को धराशायी करने के यत्न में पर्याप्त सफल होकर रामचन्द्र शुक्ल उनसे आगे निकल गएः परिस्थिति-विशेष में गुण भी क्षति कर डालते हैं! वैसे, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक एवं डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र (निवर्तमान प्राचार्य, लखनऊ) इत्यादि अब भी 'विनोद' को ही श्रेष्ठतम साहित्येतिहास मानते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि विनोद प्रायः पाँच-सहस्र साहित्यकारों का विश्वस्तरीय महान् कविकोश भी है, महान् साहित्येतिहास भी, जिसने धीरेन्द्र वर्मा, क्षेमचन्द्र 'सुमन', नगेन्द्र इत्यादि प्रमुख साहित्यकोशकारों से लेकर रामचन्द्र शुक्ल, रामकुमार वर्मा, हज़ारीप्रसद द्विवेदी इत्यादि प्रमुख साहित्येतिहासकारों तक को भारी लाभ पहुँचाया है। हिन्दी के किसी भी साहित्यकोशकार एवं साहित्येतिहासकार के किसी भी ग्रन्थ में उतनी और वैसी सामग्री एवं तत्परक उतना और वैसा विवरण-विवचेन उपलब्ध नहीं है।

आलोचना-पद्धति : परम्परावाद-अलंकारवाद

मिश्रबन्धु ने साहित्येतिहास-लेखन में शिवसिंह 'सरोज' के कविवृत्त-कविकीर्तन में राष्ट्रीय इतिहास की व्यापक पृष्ठभूमि एवं प्रवृत्तियों के निरूपण को जोड़कर उस प्रशस्त पथ का निर्माण किया जिसका अनुकरण रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि सभी परवर्ती साहित्येतिहासकारों ने किया। कवि-आलोचना में मिश्रबन्धु ने रस, अलंकार, छन्द, शब्दशक्ति, गुण-दोष, लोकप्रभाव इत्यादि का वह समन्वित शास्त्रीय पथ-प्रशस्त किया जिसका अनुकरण करते हुए रामचन्द्र शुक्ल ने उसमें पाश्चात्य सिद्वातों का भी समावेश किया। अपनी आलोचना में मिश्रबन्धु पाश्चात्य ऐतिहासिक-पृष्ठभूमि-निरूपण से लाभ उठाते हुए भी पूर्णतः भारतीय हैं। रामचन्द्र शुक्ल ने भारतीयता को वरीयता देते हुए पाश्चात्य सैद्धान्तिकता से भी लाभ उठाकर आलोचना को वैश्विकता एवं अधुनातनता की ओर गतिशील किया। किन्तु नन्ददुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र, रामविलास शर्मा इत्यादि इतर श्रेणी के आलोचकों ने पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद, अभिव्यंजनावाद, मनोविश्लेषणवाद, मार्क्सवाद इत्यादि को वरीयता प्रदान की जिसके कारण आलोचना के आयाम जनजीवन-दुर्लभ एवं परिसर-बन्दी बनकर रह गए। शुक्ल ने पाश्चात्य सिद्धान्तों पर भारतीय सिद्धान्तों को वरीयता प्रदान की थी, किन्तु नन्ददुलारे, नगेन्द्र और रामविलास ने आलोचना को पश्चिम के हाथों बेच दिया। नगेन्द्र ने अवश्य प्रौढ़ता तक आते-आते रसवाद-मनोविज्ञानवाद का समन्वय किया जो तत्त्वतः रामचन्द्र से ही प्रेरित था, किन्तु आधुनिककाल (विशेषतः छायावाद) में बद्धप्राय होने के कारण वे कोई व्यापक प्रभाव न डाल सके। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने कबीर एवं रवीन्द्र का मानवतावाद अपनाया, जो नेता-छाप होकर रह गया। अतः हिन्दी-आलोचना के वास्तविक सीमान्त मिश्रबन्धु एवं शुक्ल ही बने रहे। आधुनिक पाश्चात्य सिद्धान्तों का हौवा खड़ा करनेवाले यह भूल गए कि स्वच्छन्दतावाद, अभिव्यंजनवाद, मार्क्सवाद, मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद, अत्यथार्थवाद इत्यादि रसवाद, अलंकारवाद, रीतिवाद, वक्रोक्तिवाद, ध्वनिवाद, औचित्यवाद इत्यादि की तुलना में न तो गहनतर-गम्भीतर ही हैं, न स्थायित्वसम्पन्नतर-प्रभवत्तर ही तथा सबसे बड़ी बात यह है कि भारत की कोटि-कोटि जनता के लिए अजूबे ही लगते हैं, जबकि साहित्य जीवन के हृदय की धड़कन है। इन सिद्धान्तों को जानने के लिए कोशों, ग्रन्थों इत्यादि की कमी नहीं। ये क्लिष्ट भी नहीं हैं। मिश्रबन्धु भी अंग्रेज़ी के विद्वान् थे किन्तु वे हिन्दी की जड़ों से जुड़े रहे। शुक्ल भी अंग्रेज़ी के विद्वान् थे किन्तु वे हिन्दी को ही वरीयता देते रहे। खेद है कि परवर्ती

आलोचक परकीयता की चकाचौंध से नाहक ही अभिभूत होकर रह गए। यह सच है कि नयी कविता, नये नाटक, उपन्यास इत्यादि की आलोचना पाश्चात्य आधार पर भी की जा सकती है, किन्तु प्रतिभा तो तब सिद्ध होगी जब भारतीय आलोचना के ही आयाम स्फीत करके इनकी आलोचना भी भारतीय ही रखी जाए। किन्तु पूर्वाधुनिक साहित्य की पाश्चात्य शैली की आलोचना तो ख़लिस धक्काशाही ही मानी जाएगी। मिश्रबन्धु एवं शुक्ल भारतप्रधानता के कारण शास्त्रीयकाल (मिश्रबन्धु का अलंकृतकाल) एवं पुनरुत्थानकाल (शुक्ल का भक्तिकाल) की ही उच्चस्तरीय आलोचना प्रस्तुत कर सके। नन्ददुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र एवं रामविलास शर्मा पश्चिमप्रधानता के कारण बौद्धिककाल (आधुनिककाल) की ही स्तरीय आलोचना कर सके। अभी तक हिन्दी-आलोचना को वह विराट् आलोचक नहीं प्राप्त हुआ जो भारताधृत वैश्विक आलोचना के आयामों को अतिस्फीत कर समग्र साहित्य की उच्चतम-स्तरीय आलोचना प्रस्तुत कर देता। किन्तु जो आलोचक हुए हैं उनमें मिश्रबन्धु का (मेरे शब्दों में) परम्परावादी-अलंकारवादी आलोचना-सिद्धान्त सर्वाधिक अध्यवसायपूर्ण सिद्ध होता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है जो पाश्चात्य सिद्धान्तों के मिथ्या आतंक के आधार पर स्वप्रतिष्ठा का पाखण्ड-नाटक खेलनेवालों की लघुता तथा भारतीय सिद्धान्तों के गहन अनुशीलन के आधार पर साहित्य के सत्य के उद्घाटन की गुरुता का बोध सरलतापूर्वक करा सकता है :

"जे पुर-ग्राम बसहिं मग माहीं। तिनहिं नाग-सुर-नगर सिहाहीं।।
केहि सुकृती केहि घरी बसाए? धन्य पुन्यमय परम सोहाए।।
जहँ-जहँ राम-चरन चलि जाहीं। तहँ-समान अमरावति नाहीं।।
परसि राम-पद पदुम-परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा।।

ये दो चौपाई-छन्द हैं। तुलसीदास की चौपाइयों में दस-पन्द्रह छन्द निकलते हैं, परन्तु उन्होंने इन सबको चौपाई कहा है। ऊपर लिखे छन्द पादाकुलक हैं।

पुर कहिए छोटा नगर राजनगर के तीर।
बन में जे लघु पुर बसें तिनको कहियत ग्राम।।

नगर पुर से भी बहुत बड़ा होता है। कवि ने यहाँ लिखा है कि इन ग्रामों और पुरों को न केवल साधारण नगर वरन् नाग एवं सुर-नगर सिहाते हैं, सो यहाँ अयोग्य के योग्य वर्णन से सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार पूरा हुआ। पुर-ग्रामों में स्वयं बड़ाई नहीं है, परन्तु राम के रास्ते में पड़ने से उन्हें गौरव आया है, जिससे द्वितीय-अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। पहले नाग-नगर सिहाए और फिर उनसे भी श्रेष्ठतर सुर-नगर सिहा गए, सो उत्तरोत्तर महत्त्ववृद्धि से सार अलंकाल आया। 'केहि सुकृती केहि घरी बसाए?' में 'केहि' के उत्तमतापूर्वक दो बार आने से पदार्थावृत्त दीपक अलंकार है। ऐसे स्थानों पर वर्ण्य एवं अवर्ण्य का धर्म प्रायः एक नहीं होता, परन्तु आचार्यों ने फिर भी यह अलंकार माना है। इन दोनों प्रश्नों से कवि का कुछ पूछने का प्रयोजन नहीं है, वरन् इनसे वह प्रकट होता है कि किसी बड़े सुकृती ने उन्हें किसी अच्छी घड़ी में बसाया। इस कारण काकु अलंकार हुआ। इन दोनों प्रश्नों एवं 'धन्य पुन्यमय परम सोहाए' से उनके माहात्म्य का बड़ा भारी गौरव दिखलाया गया है, जिनसे उदात्त अलंकार होता है। 'धन्य पुन्य' में छेकानुप्रास है। किसी सुकृती ने अच्छे समय पर ग्राम बसाया, जिसके योग से अल्प ग्राम ने भी इतनी बड़ाई पाई कि उसमें रामचरण गए। यहाँ द्वितीय-अर्थानन्तरन्यास अलंकार है। 'जहँ-जहँ' में वीप्सा अलंकार है, और 'राम-चरन चलि जाहीं' में उपादान लक्षणा है, क्योंकि चरण राम के चलाने से चलते हैं। 'तहँ-समान अमरावति नाहीं' में चतुर्थ-प्रतीप अलंकार है, क्योंकि यहाँ उपमेय से उपमान का निरादर हुआ है। द्वितीय-अर्थान्तरन्यास अलंकार एवं सम्बन्धातिशयोक्ति भी है। 'परसि पद-पदुम-परागा' में आदि-वर्ण वृत्यानुप्रास आया है। इन दोनों पदों में अधिक अभेद रूपक है। पराग के कारण परिणाम नहीं होने पाया। 'भूरि, भूमि, भागा' में भी वृत्यानुप्रास है। राम-पद-रज के स्पर्श से भूमि के भूरि भाग्य-वर्द्ध से उसमें श्लाघ्य चरित्र का महत्त्व प्रकट हुआ, जिससे उदात्त अलंकार आया। यहाँ ऋषि से भी उदात्त हो सकता है, परन्तु आचार्यों ने ऋद्धिवाले उदात्त का धन से ही रूढ़ि कर लिया है। पुन-ग्राम धन्य, पुण्यमय तक शोभायमान हैं। यहाँ समुच्चय अलंकार हुआ। प्रथम दो पादों में विशेष वर्णन, द्वितीय दो में सामान्य और तृतीय दो में फिर विशेष है, सो यहाँ विकस्वर अलंकार हुआ। कुल अलंकारों में अप्रस्तुत-प्रशंसा मुख्य है, क्योंकि प्रस्तुत राम की सीधी बड़ाई न करके कवि ने मार्गस्थ ग्रामों आदि का यश किया है, जिससे राम-यश निकलता है।

इन छन्दों में यद्यपि लाक्षणिक पद आए हैं, तथापि वाचक पात्र है, और उसी का सर्वत्र प्राधान्य है। यहाँ अर्थव्यक्त प्रधान गुण है, परन्तु समता, समाधि, सुकुमारता, उदारता, प्रसाद और कान्ति भी हैं। सो इन दो छन्दों में साहित्य के दस गुणों में से श्लेष,

माधुर्य और ओज छोड़कर सभी वर्तमान हैं। इतने गुणों का एक इतने छोटे स्थान पर मिलना प्रायः असम्भव है। इनमें भारती और सात्वती वृत्तियाँ हैं। दोषों में यहाँ भूरि शब्द पर ध्यान जाता है, जो भाग और भूमि दोनों की ओर जा सकने से संदिग्ध हुआ जाता है, परन्तु वह भी भाग का प्राबल्य से विशेषण होता है, सो द्वोषोद्धार हो जाता है। वर्णन नागर है; क्योंकि पदरज पड़ने से प्रतिस्थान ऐसा हो जाता है कि उससे अमरावती भी शरमाती है। यहाँ अद्भुतरस का समावेश है। इसके आलम्बन राम-चरण एवं मार्गस्थ पुर-ग्राम हैं, और स्थायी यह आश्चर्य है कि मार्गस्थ पुर-ग्रामों के महत्त्व को नाग तथा सुर-नगर सिहाते हैं एवं अमरावती उनकी समता नहीं कर पाती। उद्दीपन यहाँ राम-गमन का समय है। राम-चरण का चलना, भूमि-द्वारा राम-पद का स्पर्श होना, तथा अपना भूरि भाग माना जाना संचारी है। 'केहि सुकृती केहि घरी बसाए?', 'धन्य पुन्यमय परम सोहाए' और 'तहँ-समान अमरावति नाहीं' अनुभाव हैं। चलने में उग्रता संचारी है, जो शृंगाररस में वर्जित है, किन्तु इतर रसों में नहीं। अतः अद्भुतरस पूर्ण है। यह रस प्रच्छन्न है।

सब बातों के ऊपर यहाँ रामचन्द्र का महत्त्व और कवि की उनमें प्रगाढ़ भक्ति मुख्य है, सो तात्पर्याख्यावृत्ति सर्वप्रधान है। कुल बातों पर ध्यान देने से प्रकट है कि यह उत्तम काव्य है।''

मिश्रबन्धु-विनोद की भूमिका का यह उद्धरण सिद्ध करता है कि महान् आलोचक कठिन किन्तु पूर्ण शास्त्रपथ पर अग्रसर आलोचना की सृष्टि कर रहे थे। उन्होंने इसी भूमिका में देव के 'सखी के संकोच' शीर्षक घनाक्षरी, बिहारी के 'अरी खरी' शीर्षक दोहे एवं लेखराज के 'करि अंजन' शीर्षक सवैये की भी ऐसी ही व्याख्या की है। 'विनोद' एवं 'नवरत्न' में उनका यही आलोचना-निकष प्रभावी रहा है। इससे भारतीय आलोचना-पथ की गहनता विवृत होती है। यह सत्य है कि सम्प्रति हम इतने कठिन आलोचना-पथ पर नहीं चल सकते, किन्तु इससे हमारी विवशता प्रकट होती है, आलोचना-पथ की व्यर्थता नहीं, क्योंकि इसी पथ पर चलकर मम्मट, विश्वनाथ, जगन्नाथ इत्यादि आचार्य अमर हुए हैं तथा इसी आधार पर काव्यसृष्टि करके कालिदास, भारवि, श्रीहर्ष इत्यादि विश्व के अद्वितीय कवियों में प्रतिष्ठित। रामचन्द्र शुक्ल बहुत व्यस्त व्यक्ति थे, जो इतना अध्यवसाय नहीं कर सकते थे; फिर भी, उन्होंने इस पथ की उपेक्षा नहीं की। वे इससे लगातार प्रभावित भी रहे। शास्त्रीयकाल तक की कविता के लिए यह निकष आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना 1913 ई. में 'विनोद' के प्रकाशन के समय था। मिश्रबन्धु की आधुनिकता के प्रति रुचि आचार्य शुक्ल की आधुनिकता के प्रति रुचि से भी अधिक संकीर्ण एवं दुर्बल थी अतः 'विनोद' का चतुर्थ खंड पर्याप्त संकीर्ण एवं दुर्बल रह गया है। इसमें पूर्वाग्रह भी अधिक है, त्रुटियों भी अधिक हैं, जिन पर पं. देवीदत्त शुक्ल ने 'कुछ खरी-खरी' (विशेषतः इसके 'मिश्रबन्धुओं की भद्दी भूलें' लेख) एवं श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने 'दिवंगत हिन्दीसेवी' (विशेषतः प्रथम काण्ड की भूमिका) में प्रकाश डाला है। किन्तु उनकी पूर्वाधुनिक आलोचना यत्र-तत्र पक्षपात के बावजूद मननीय है। पश्चिम के किसी कोश या विश्वकोश या लेख या ग्रन्थ से थोड़ा-बहुत टीप-टाप कर तुलसी या देव या बिहारी पर पिल पड़ना और लहू-लुहान होकर गिर पड़ना व्यर्थ है। इन महाकवियों की ठीक परख उसी निकष पर सम्भव है, जिससे अंशतः ही परिचित होने के कारण नगेन्द्र जैसे विद्वान् देव पर, बच्चनसिंह, गणपतिचन्द्र गुप्त जैसे अध्येता बिहारी पर तथा त्रिभुवनसिंह, महेन्द्रकुमार जैसे शोधकर्ता मतिराम पर मिश्रबन्धु तथा कृष्णविहारी मिश्र से भरपूर लाभ उठाने के यत्न के बावजूद उनके आसपास तक नहीं आ पाए।

तुलनात्मक आलोचना

मिश्रबन्धु तत्त्वतः हिन्दी के प्रस्थान-साहित्येतिहासकार हैं क्योंकि तासी का हिन्दी-उर्दू-खिचड़ी-इतिहास उर्दू-पक्षपात के कारण पक्षाघातग्रस्त भी है तथा फ्रेंच में लिखित होने के कारण वस्तुतः अज्ञात भी, शिवसिंह का 'सरोज' अपने एकसहस्र-कविकीर्तन के कारण प्रभावी एवं प्रेरक तो है किन्तु स्थूलतः इतिहास की दृष्टि से नहीं लिखा गया तथा गीअर्सन का इतिहास एक तो 'सरोज' पर ही आधृत है तथा दूसरे अंग्रेज़ी में होने के कारण केवल कुछ लोगों में ही प्रभावी हो सका है। इनमें से कोई एक तो क्या, ये तीनों इतिहास मिलकर भी स्थापन-प्रतिष्ठापन, विवेचन-विश्लेषण, गुण-परिमाण, प्रभाव-प्रेरणा की किसी भी दृष्टि से 'विनोद' की समता नहीं कर सकते; स्वयं शुक्ल का इतिहास भी प्रत्येक दृष्टि से 'विनोद' का ऋणी है तथा सामग्री एवं ज्ञानवर्द्धन में 'विनोद' की समता नहीं कर सकता (यद्यपि उसका स्वरूप अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक अर्थात् बुद्धिसंगत है तथा विवेचन अपेक्षाकृत अधिक नूतन); अन्य इतिहास उसके समकक्ष नहीं हैं। तत्त्वतः प्रस्थान-साहित्येतिहासकार होने के साथ-साथ मिश्रबन्धु प्रस्थान-कविआलोचनाकर भी हैं, क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम हिन्दी के दस महाकवियों की व्यवस्थित एवं विस्तृत आलोचना प्रस्तुत की, जिसका महत्त्व शुक्ल कृत तुलसी-जायसी-सूर-आलोचना से निश्चित रूप से अधिक है तथा अन्य कोई आलोचक इस दिशा में भी उनके समकक्ष नहीं है। प्रस्थान-साहित्येतिहासकार एवं

प्रस्थान-कविआलोचनाकार होने के साथ-साथ मिश्रबन्धु प्रस्थान-तुलनात्मक-आलोचनाकार भी हैं, जिनका 'विनोद' सामान्यतः तथा 'नवरत्न' विशेषतः तुलनात्मक आलोचना से ओतप्रोत है, जिसके कारण तुलसी और सूर (या सूर और तुलसी), देव और बिहारी (या बिहारी और देव) प्रभृति तुलनाओं पर विचार-विवेचनादि हुए, शुक्ल ने 'गोस्वामी तुलसीदास' में तुलसी को सूर पर, मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने 'सूर-सौरभ', 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य' तथा 'भक्ति का विकास' में सूर को तुलसी पर, भगवानदीन 'दीन' ने 'बिहारी और देव' में बिहारी को देव पर, कृष्णबिहारी मिश्र ने 'देव और बिहारी' में देव को बिहारी पर तथा पद्मसिंह शर्मा ने 'संजीवन भाष्य' में बिहारी को सब पर वरीयता प्रदान की; और, तुलनात्मक आलोचना के आयाम व्यापक ही होते गए।

आकलन

मिश्रबन्धु परिमाण में हिन्दी के अतुलनीय आलोचक हैं, किन्तु गुण में रामचन्द्र शुक्ल उनसे (भरपूर प्रभावित होते हुए भी) आगे निकल जाते हैं। प्रभाव में भी शुक्ल-परवर्ती साहित्येतिहास एवं आलोचना के शुक्ल के ही आसपास चक्कर लगाने के कारण शुक्ल आगे निकल जाते हैं, यद्यपि सारे साहित्येतिहासकार एवं तुलसी, सूर, कबीर, केशव, देव, बिहारी, भूषण, मतिराम, चन्द्र तथा भारतेन्दु पर ग्रन्थकार मिश्रबन्धु से भी प्रभावित हुए हैं। अतः रामचन्द्र शुक्ल को मिश्रबन्धु से श्रेष्ठतर आलोचक माना जा सकता है, यद्यपि डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र (लखनऊ) एवं डॉ. विजयेन्द्र स्नातक जैसे विद्वान् मिश्रबन्धु को रामचन्द्र शुक्ल से श्रेष्ठतर स्थान प्रदान करने के अधिकार से वंचित नहीं करते। बौद्धिक विकास के साथ-साथ हिन्दी के वस्तुपरक एवं वास्तविक विद्वानों में शुक्ल के प्रति अन्धभक्ति कम होती जा रही है तथा मिश्रबन्धु के प्रति न्यायदृष्टि का विकास होता जा रहा है, जैसा कि डॉ. किशोरीलाल गुप्त के विद्वत्तापूर्ण साहित्येतिहास-आलोड़न से स्पष्ट है।

सम्प्रति आवश्यकता है मिश्रबन्धु के प्रति दायित्वपूर्ण अध्ययन, अनुशीलन एवं आकलन अथवा 'मिश्रबन्धु और तासी', 'मिश्रबन्धु और शिवसिंह', 'मिश्रबन्धु और ग्रीअर्सन', 'मिश्रबन्धु और रामचन्द्र शुक्ल' तथा 'हिन्दी-साहित्येतिहास और मिश्रबन्धु', 'मिश्रबन्धु और तुलनात्मक-आलोचना' जैसे लघुप्रबन्धों की जो भविष्य में किसी अधिकारी विद्वान् को 'मिश्रबन्धुः विश्व-आलोचना के एक सीमान्त' जैसा महान् ग्रन्थ लिखने के लिए प्रेरित कर सकें क्योंकि हिन्दी-विश्वकोशीय विनोद एवं हिन्दी-महाकविकोशीय 'नवरत्न' मिश्रबन्धु को इस स्तर पर जाकर ही समझा जा सकता है। तभी साहित्यिक-ऋषिऋण-पितृऋण की युगपत् पूर्ति हो पाएगी। अब तक की कृतघ्नता के पंक का प्रक्षालन भी ऐसे ही साधना-मानसरोवर-निमज्जन के द्वारा ही सम्भव है।

हरिऔध[1]

कवि-सम्राट् पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (1865-1947 ई.) खड़ीबोली के प्रथम महाकाव्यकार हैं। हरिऔध का जन्म आज़मगढ़ जनपद के निज़ामाबाद उपनगर में हुआ। उनके पिता पण्डित भोलासिंह उपाध्याय एक प्रतिष्ठित कृषक थे। बाबा सुमेरसिंह के प्रभाव के कारण हरिऔध सिख हो गए थे—हिन्दी के डॉ. हरिभजन सिंह, डॉ. महीप सिंह जैसे सिख विद्वान्, कहानीकार इत्यादि इस पर गर्व कर सकते हैं। बाबा सुमेरसिंह, भारतेन्दु-मंडल के व्रजभाषा-कवि भी थे। हरिऔध ने युगानुरूप आरम्भ व्रजभाषा से किया और उनका 'रसकलश' नायिकाभेद में देशसेविका, समाजसेविका प्रमति नव्य नायिकाओं की उद्भावना के कारण सर्वथा उल्लेख्य है। यद्यपि डॉ. नगेन्द्र इत्यादि जाने-माने 'रसिकों' ने 'बहिनजियों' का वर्ग खड़ा करने पर व्यंग्य किया है, तथापि राष्ट्र में तिलक-युग एवं साहित्य में द्विवेदी-युग तक यह वर्ग इतिहास का एक सत्य था। पं. कृष्णशंकर शुक्ल ने व्रजभाषा-कवि के रूप में रत्नाकर के अनन्तर हरिऔध को श्रेष्ठतम माना है, तथापि 'जोतिसी', वचनेश, आ. श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', 'ब्रजनन्दन', 'सेवकेन्द्र' प्रभृति व्रजभाषा-कवि निस्सन्देह श्रेष्ठतर हैं। प्रियप्रवास[2] निस्सन्देह एक सफल महाकाव्य है,

---

1. हरि = सिंह + औध = (उपनाम नामाधृत है, नामभिन्न या गुणव्यंजक नहीं)। मिलते-जुलते से नाम वाले अयोध्याप्रसाद वाजपेयी 'औध' (1802-85 ई.) ने बौद्धिककाल के सन्धियुग में शास्त्रीयकालीन परम्परा पर आधृत साहित्यसुधासागर, रामकवितावली, रससर्वस्व, शंकर-शतक इत्यादि कई ग्रन्थ रचे थे। अयोध्याप्रसाद खत्री, अयोध्याप्रसाद गोयलीय, अयोध्यानाथ शर्मा के नाम भी याद आ जाते हैं।
2. हिन्दी-साहित्य-कोश भाग 2 (सम्पादक डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि) में डॉ. रवीन्द्र 'भ्रमर' की टिप्पणी के अनुसार, प्रकाशन-वर्ष 1914 ई. (वैसे, कहीं-कहीं 1913 ई. लिखा मिलता है)।

जिसका अंगीरस उदात्तीकृत विप्रलम्भ-शृंगार है, जिसके धीरोदात्त नायक कृष्ण एवं जिसकी धीरोदात्त नायिका राधा विवाहित दम्पति हैं, जिसमें वात्सल्य रस की कतिपय निष्पत्तियाँ हरिऔध को खड़ीबोली का सूर प्रमाणित करती हैं, जिसमें समाजसेवा का युगादर्श मूर्तिमन्त किया गया है, जिसके सफल वर्ण-वृत्त केशव का स्मरण कराते हैं तथा जिसकी अतुकान्त-कविता से मैथिलीशरण (सिद्धराज) प्रसाद (महाराणा का महत्त्व), पन्त (ग्रन्थि) इत्यादि महाकवि तक प्रभावित हुए हैं। महाकाव्यकार अनूप शर्मा कृत 'सिद्धार्थ' एवं 'वर्द्धमान' पर तो वे छाए ही हैं। अधुनातन कवयित्रियों में माधवीलता शुक्ल प्रभावित हुई हैं। आचार्य शुक्ल ने अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में कथानक के अभाव के आधार पर 'प्रियप्रवास' को महाकाव्य नहीं माना, किन्तु उनकी मान्यता निराधार है क्योंकि प्रियप्रवास में कृष्ण का व्रज-सम्बद्ध कथानक सरसतापूर्वक वर्णित है (भले ही वह स्थूल-कथात्मक न होकर सूक्ष्म-स्मृत्यात्मक हो)। पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल ने 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में प्रियप्रवास को खड़ीबोली का सर्वश्रेष्ठ काव्य माना है, यद्यपि 'वह बात' (जो उन्हें अन्य काव्यों में नहीं दीखी) स्पष्ट नहीं की। आ. शुक्ल की आलोचना मन की तरंगों पर आधृत होती है, वस्तु पर नहीं (यद्यपि यह सत्य है कि वे अपने मन की तरंगों को वास्तविक अथवा अवास्तविक तर्क से अवश्य अनुस्यूत कर देते हैं)।सम्प्रति उनकी कबीर या केशव या देव या हरिऔध या प्रसाद से सम्बद्ध मान्यताओं का कोई महत्त्व नहीं रह गया। प्रियप्रवास निर्विवाद रूप से महाकाव्य माना जाता है। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'हिन्दी-साहित्य : बीसवीं शताब्दी' में हरिऔध के परम्परावाद पर जो प्रहार किए हैं वे परम्परा-प्रगति के द्वैत के भ्रम के विस्फोट मात्र हैं, क्योंकि इन दोनों में वैर नहीं है तथा हरिऔध की समाजदृष्टि युगानुकूल थी, जिसके कारण उन्हें महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे अमर नेता तक से आदर एवं सुमित्रानन्दन पन्त जैसे अमर महाकवि तक से श्रद्धा प्राप्त हुई थी। मालवीय ने उन्हें आग्रहपूर्वक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सम्मानित (अवैतनिक) प्राध्यापक बनाया, पन्त 'प्रियप्रवास' का ''प्रिय पति! वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है?'' से आरम्भ यशोदा-विलाप आँसू बहाते हुए पढ़ा करते थे। डॉ. नगेन्द्र ने 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ' में हरिऔध की नारी में समाजसेवा-भावना पर व्यंग्य करते हुए ''बहिनजियों'' के वर्ग इत्यादि की जो चर्चा की है, वह हरिऔध के सृजनयुग की उपेक्षा अथवा इतिहासबोध के अभाव के कारण भ्रामक हो गई है; दूसरे, 'जीवन की तरल रसिकता' वही नहीं है जिसे फ्रायड ने विश्लेषित किया है तथा डॉ. नगेन्द्र ने जीवन-दर्शन ही बना डाला है। अपनी बैसाखी से प्रत्येक कवि को हाँकना अशोभनीय ही हो सकता है। प्रत्येक कवि की अस्मिता का अनुशीलन एवं तदनुकूल विवेचन-विश्लेषण-संश्लेषण आलोचक का प्रथम कर्तव्य है तथा अपनी रुचि के अनुकूल आकलन अन्तिम (जिसे सरलतापूर्वक छोड़ा भी जा सकता है)। शुक्ल, वाजपेयी एवं नगेन्द्र की हरिऔध-आलोचना न वस्तुपरक है, न इतिहाससम्मत, न संवेदनसम्पन्न। इसलिए, उसको कोई महत्त्व नहीं प्राप्त हो सका। जनता सर्वोपरि आलोचक है। उसने कृष्णशंकर शुक्ल की प्रसाद-विरोधमूलक हरिऔध-प्रशंसा को भी महत्त्व नहीं प्रदान किया। उसने श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' कृत 'महाकवि हरिऔध' (1934 ई.) को उचित महत्त्व भी ठीक ही प्रदान किया है।

हरिऔध के सृजन की स्फीति असाधारण है : 'प्रद्युम्न-विजय' (1893 ई.) एवं 'रुक्मिणी-परिणय' (1894 ई.) नाटक हैं तो 'प्रेमकान्ता' (1894 ई.), 'ठेठ हिन्दी का ठाठ'[1] (1899 ई.) एवं 'अधखिला फूल' (1907 ई.) उपन्यास, जिनका महत्त्व इतना ही है कि वे नाट्यकार एवं उपन्यासकार भी थे! 'प्रियप्रवास' की भूमिका में वे एक विद्वान् के रूप में दृग्गत होते हैं; उनकी विद्वत्ता की एक झलक 'वैदेही-वनवास' की भूमिका में भी मिल जाती है; किन्तु उसका विशेष रूप 'कबीर-वचनावली' की भूमिका एवं 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास' में दृग्गत होता है। निस्सन्देह उनकी अमरता का आधार उनकी कविता ही है—1889 ई. में प्रकाशित 'रसिक-रहस्य' से 1940 ई. में प्रकाशित 'वैदेही-वनवास' तक की सुदीर्घ-सृजन-प्रक्रिया में 'प्रेमाम्बुवारिधि', 'प्रेमप्रपंच', 'प्रेमाम्बुप्रस्रवण', 'प्रेमपुष्पहार', 'उद्बोधन', 'काव्योपवन', 'कर्मवीर', 'ऋतुमुकुर', 'पद्म-प्रसून', 'पद्मप्रमोद', 'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे' इत्यादि साधारण, 'रसकलश' (व्रजभाषा) उल्लेखनीय एवं 'प्रियप्रवास' महान् कृतित्व की सूचना देते हैं। 'पारिजात', 'बोलचाल' एवं 'बाल-कवितावली' शीर्षक संकलन भी पर्याप्त प्रसिद्ध हुए हैं। 'रसकलश' के आधार पर पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल ने उन्हें रत्नाकर के अनन्तर सफलतम आधुनिक-व्रजभाषा कवि माना है। हिन्दी के बालकविताकारों में भी हरिऔध को एक उच्च स्थान प्राप्त है। किन्तु 'प्रियप्रवास' के अतिरिक्त शेष सब प्रासंगिक मात्र लगता है।

---

[1] इंशा की 'रानी केतकी की कहानी' के अजायबघरी-गद्य की परम्परा की एकमात्र उल्लेख्य रचना।

प्रियप्रवास

रसविभूति में कामायनी एवं साकेत से भी सम्पन्नतर प्रियप्रवास खड़ीबोली का प्रथम महाकाव्य तो है ही, अपनी औपचारिकता (मंगलाचरण-परम्परा-अपालन) में कामायनी एवं आदर्शवादिता (राधा-जनसेवाभाव) में साकेत को प्रभावित करनेवाला महाकाव्य भी है, अनूप शर्मा कृत अतुकान्त महाकाव्यद्वय 'सिद्धार्थ' एवं 'वर्द्धमान' का तो वह प्रेरक ही है। कृष्ण के लोकरंजक- लोकरक्षक-रूपद्वय को एकीकृत करने के कारण वह द्वारकाप्रसाद मिश्र के संस्कृतनिष्ठ-अवधी महाकाव्य 'कृष्णायन' को भी प्रभावित कर सका है। 'पुरुष-प्रकृति' के कवि तथा दरिया साहब और मैथिलीशरण समीक्षक डॉ. धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने 'हरिऔध का प्रियप्रवास' शीर्षक उपयोगी ग्रन्थ रचा है। यह सत्य है कि अपनी अनूठी काव्यात्मकता, प्रतीक-पद्धति एवं दार्शनिकता के कारण, रसविभूति में पीछे होते हुए भी, कामायनी कुल मिलाकर प्रियप्रवास से श्रेष्ठतर महाकाव्य है, जिसका प्रभाव भी व्यापकतर पड़ा है, किन्तु उपेक्षिताओं के लिए न्याय की नव्यता तथा बलदेवप्रसाद मिश्र (साकेत-सन्त), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन;' (ऊर्म्मिला), नरेश मेहता (संशय की एक रात), रामकुमार वर्मा (ओ अहल्या) इत्यादि पर प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव के कारण ऐतिहासिक महत्त्व की दृष्टि से अधिक उल्लेखनीय होते हुए भी साकेत उससे रसविभूति में ही नहीं प्रत्युत छन्दलालित्य एवं भाषा-प्रांजल्य में भी पीछे पड़ जाता है। रस-विभूति एवं भाषा-प्रांजल्य ही प्रियप्रवास को 'लोकायतन' (पन्त), 'पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण' (दिनेश)[1], उर्वशी (दिनकर), ऊर्म्मिला (नवीन) इत्यादि पर वरीयता प्रदान करा देते हैं। शीर्षक से ही विरहप्रधानता की स्पष्ट सूचना देनेवाला यह सप्तदशसर्गीय मार्मिक महाकाव्य आमूलचूल नव्यता से आपूर्ण है, जिसका आरम्भ कुमारसम्भवम् के सदृश वस्तुनिर्देशात्मक है, जिसके नायक कृष्ण एक आदर्श लोकरक्षक-लोकनायक हैं, जिसकी नायिका राधा स्वकीया तो हैं ही, जनसेवारत भी हैं, जिसकी यशोदा का कृष्णवियोगविलाप कविता की एक निधि है, जिसके नन्द का चित्र अभूतपूर्वतः मर्मस्पर्शी है (जिसने 'द्वापर' के नन्द को प्रभावित किया है), जिसके श्रीदामा इत्यादि कृष्ण-सखा सक्रिय पात्र हैं (कोरे नाम नहीं)। प्रथम सर्ग काव्य की मूल 'वस्तु' का पूर्वाभास कराने में सक्षम सिद्ध हुआ है, जिसके आरम्भ का 'दिवस' का अवसान' तत्त्वतः 'व्रजसुख का अवसान' व्यंजित करता है, 'कमलिनी कुलवल्लभ' की 'प्रभा' का 'तरु-शिखा' पर कुछ क्षणों के लिए राजना व्रज में कृष्ण के कुछ समय तक ही रहने वाली शोभा का व्यंजक है। ग्रन्थ की कथावस्तु के जितना अनुकूल, सुन्दर तथा उत्कृष्ट प्रारम्भ 'प्रियप्रवास' का हुआ है, उतना हिन्दी के किसी दूसरे काव्य का नहीं :

दिवस का अवसान समीप था। गगन था कुछ लोकित हो चला।
तरुशिखा पर थी अब राजती। कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा।।

दूर की कौड़ी लाने वाला मंगलाचरण-आरोप इस छन्द पर व्यर्थ ही सिद्ध हो सकता है, क्योंकि यह स्पष्टतः वस्तुवर्णनात्मक है, और दूसरे हरिऔध ने 'वैदेही-वनवास' में भी मंगलाचरण नहीं लिखा।

प्रथम सर्ग में कृष्ण के रूप, चरित्र तथा स्वभाव की महत्ता की हल्की-सी झाँकी दिखाकर कवि ने व्रज-जनता का उन पर अपार प्रेम चित्रित किया है। यह चित्रण व्रजजीवन की कृष्ण-वियोग-वेदना को तीव्र करने में सहायक होता है। राधा और गोपियों के घेरे से बाहर निकालते हुए कृष्ण को समग्र व्रज-जनता का प्राणाधार चित्रित करके हरिऔध ने कृष्णकाव्य के आयाम व्यापकतर किए हैं। द्वितीय सर्ग में अक्रूर-आगमन एवं कृष्ण के मथुरा ले जाने की घोषणा से यह प्रेम आशंकाओं से पुष्ट हो गया है (क्योंकि कंस कृष्ण की हत्या के अनेक परोक्ष यत्न कर चुका था और उनमें असफल होकर अब प्रत्यक्ष यत्न पर उतर गया था)। प्रियप्रवास का तृतीय सर्ग आसन्न-वात्सल्य-वियोग की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य में अन्यतम है। हरिऔध प्रायः सर्गो का आरम्भ प्रकृति-चित्रण से करते हैं जो वर्ण्य के अनुरूप होता है। तृतीय वर्ग का लम्बा आरम्भिक प्रकृति-चित्रण प्रकृति को भयानक रूप में प्रस्तुत करता है जो सर्गगत नन्द-यशोदा आशंका-व्यथा को उद्दीप्त करने की दृष्टि से अतीव सफल है। मथुरा-प्रस्थान से पूर्व नन्द की व्यथा का जैसा सजीव चित्र हरिऔध ने खींचा है, वैसा अन्य कोई कवि नहीं खींच सका :

---

[1] तुलसीराम शर्मा 'दिनेश' ने सत्यनारायण 'कविरत्न' के सदृश कृष्णकाव्य में आधुनिक दीनदलित-संवेदन का अच्छा समावेश किया है। स्व. देवराज 'दिनेश' समोपनामी परवर्ती हास्यकवि थे।

सित हुए आने मुख-लोम को। कर गहे दुख-व्यंजक भाव से।
विषम संकट बीच पड़े हुए। बिलखते चुपचाप व्रजेश थे।
हृदय-निर्गत वाष्प-समूह से। सजल थे युग-लोचन हो रहे।।
वदन से उनके चुपचाप ही। निकलती अति तप्त उसाँस थी।।
शयित हो अति चंचल नेत्र से। छत कभी वह थे अवलोकते।।
टहलते फिरते सविषाद थे। वह कभी निज निर्जन कक्ष में।
जब कभी बढ़ती उर की व्यथा। निकट जा करके तब द्वार के।।
वह रहे नभ नीरव देखते। निशि-घटी अवधारण के लिए।।

यशोदा का चित्र प्रियप्रवास का सबसे महान् एवं सर्वाधिक रस-निष्पन्न चित्र है। समूचे कृष्णकाव्य में यशोदा का इतना विशद, सजल, विकल, करुण एवं इस सब के साथ ही स्वाभाविक चित्र अन्यत्र दुर्लभ है। तृतीय सर्ग में ही सोते हुए कृष्ण की शय्या के निकट बैठी उनका साश्रु किन्तु मौन चित्र अद्वितीय है :

हरि न जाग उठें इस सोच से। सिसकती तक भी वह थीं नहीं।।
इसलिए उनका दुख-वेग से। हृदय था शतधा अब हो रहा।।

चतुर्थ सर्ग में महाकाव्य की नायिका राधा[1]का स्वाभाविक चित्र प्राप्त होता है। उनके सौन्दर्य के चित्रण में पारम्परिक होते हुए भी हरिऔध पर्याप्त सफल हैं। किन्तु यह सफलता उत्कृष्ट आसन्नविरह-वर्णन की तुलना नहीं कर सकती, क्योंकि हरिऔध पर्याप्त सफल हैं। किन्तु यह सफलता उत्कृष्ट आसन्नविरह-वर्णन की तुलना नहीं कर सकती क्योंकि हरिऔध सौन्दर्य के कवि न होकर विरह के कवि हैं :

कल कुवलय के-से नेत्र वाले रसीले। वररचित फबीले पीत कौशेय शोभी।
गुणगण मणिमाली मंजुभाषी सजीले। वह परम छबीले लाडिले नंदजी के।।
यदि कल मथुरा को प्रात ही जा रहे हैं। बिन मुख अवलोके प्राण कैसे रहेंगे?
युग सम घटिकाएं वार की बीतती थीं। सखि! दिवस हमारे बीत कैसे सकेंगे?

पंचम सर्ग में कृष्ण की सार्वभौम लोकप्रियता का चित्रण अभूतपूर्व है जो रामकाव्य-सीमान्त तुलसी का स्मरण कराता है। इसमें यशोदा के आशंकाकुल मातृहृदय का चित्रण भी अतीव प्रभावी है। मथुरा की ओर गतिशील होते रथ के चित्रण में हरिऔध कालिदास (अभिज्ञान शाकुन्तलम्) एवं तुलसीदास (रामचरितमानस) जैसे विश्वकवियों का स्मरण करा देते हैं। प्रियप्रवास का षष्ठ सर्ग महाकाव्य के सप्तम एवं पंचदश सर्गों के साथ सर्वोत्तम है जिसमें घरों, द्वारों, चौपालों, चरागाहों, कुंजों, सर्वत्र कृष्ण की नानागुणपुष्ट व्यापक स्मृति अतीव मर्मस्पर्शी है। लोकजीवन एवं लोक-काव्य में काक का प्रियगमन-सूचक बोल अनमोल बना दिया गया है। और लोककवि हरिऔध उसे भी नहीं भूले—

आके कागा यदि सदन में बैठता था कहीं भी। तो तन्वंगी उस सदन की यों उसे थी सुनाती।।
जो आते हों कुँवर उड़के काक तो बैठ जा तू। मैं खाने को तुझे प्रतिदिन दूध औ भात दूँगी।।

यशोदा षष्ठ सर्ग में भी विद्यमान है। किन्तु षष्ठ सर्ग के महत्त्व का सर्वोपरि कारण पवनदूत का आयोजन है जिसमें नायिका राधा पवन से मथुरा जाकर कृष्ण को अपनी सुधि दिलाने का निवेदन करती हैं। भारतीय विरहकाव्य में चेतन एवं अचेतन का प्राणियों एवं वस्तुओं को दूत का पद बड़े समारोह के साथ दिया गया है। हनुमान, नल, हंस, भ्रमर, मेघ, पवन इत्यादि विरहियों की भारी सहायता कर चुके हैं। पर्वतों, वृक्षों तक अपने विराट् प्रेमतत्त्व एवं भक्तिभाव को व्याप्त करनेवाली भारत की अद्वैतभावना इन सन्देशों को बहुत सजीव एवं विश्व में अतुलीय बना देती है। पवनदूत पर मेघदूत[2] का प्रभाव तो पड़ा है किन्तु दोनों में उतना ही अन्तर है जितना हरिऔध और कालिदास में: पवनदूत आदर्शप्रधान है, मेघदूत कामप्रधान; पवनदूत ध्येयनिष्ठ है, मेघदूत कलानिष्ठ—पवनदूत हिन्दी-

---

[1] प्रो. कल्याणमल लोढ़ा ने 'भारतीय साहित्य में राधा' ग्रन्थ सम्पादित किया है। जानकीवल्लभ शास्त्री ने स्फीत 'राधा' महाकाव्य लिखा है।

[2] द्रष्टव्य है मेरे 'खड़ीबोली-कविता में विरह-वर्णन' या 'चार महाकवियों के विरहकाव्य' या 'आधुनिक साहित्य के विविध पक्ष' शीर्षक ग्रन्थों में 'महाकवि हरिऔध का विरह-वर्णन'-सम्बन्धी निबन्ध का एतद्विषयक विवेचन।

कविता का एक उल्लेख्य प्रसंग है, मेघदूत विश्वकविता का एक गौरवग्रन्थ। फिर भी, हरिऔध ने मार्मिक काव्यसृष्टि में सफलता अवश्य प्राप्त की है :

जो चित्रों में विरहविधुरा का मिले चित्र कोई। तो जा निकट उसके भाव से यों हिलाना।।
प्यार होके चकित जिससे चित्र की ओर देखें। आशा है यों सुरति उनको हो सकेगी हमारी।।
कोई प्यारा कुसुम कुम्हला गेह में जो पड़ा हो। तो प्यारे के चरण पर ला डाल देना उसी को।।
यों देना ऐ पवन! बतला फूल सी एक बाला। म्लाना हो-हो कमल-पग को चूमना चाहती है।।

यदि कोई मुझसे पूछे कि प्रियप्रवास का सर्वोत्तम सर्ग कौन-सा है? तो मैं कहूँगा सप्तम, जिसके प्रारम्भ में मथुरा से कृष्ण-बलराम रहित एकाकी लौटते नन्द का व्रज में आना अद्वितीयतापूर्वक चित्रित है, जो रामचरितमानस के राम-सीता-लक्ष्मण रहित एकाकी लौटते सुमन्त्र के अयोध्या में आने के चित्रण से प्रभावित होते हुए भी विस्तार एवं मार्मिकता में अधिक प्रभावी है, जिसने 'द्वापर' के मैथिलीशरण को प्रभावित किया है तथा जिसके यशोदा-विलाप हिन्दी-वात्सल्यवियोग कविता की एक निधि है, जो महाकवि पन्त को रुलाकर अपनी उत्कृष्टता का एक महान् प्रमाण दे चुका है :

प्रिय पति! वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है? दुख-जलधि निमग्ना का सहारा कहाँ है?
लख मुख जिसका मैं आज लौ जी सकी हूँ।[1] वह हृदय हमारा नेत्र-तारा कहाँ है?
मुखरित करता जो सद्म को था शुकों-सा। कलरव करता था जो खगों-सा वनों में।।
सुध्वनित पिक-सा जो वाटिका को बनाता। वह बहुविध कंठों का विधाता कहाँ है?...
हा! वृद्धा के अतुल धन हा! वृद्धता के सहारे। हा! प्राणों के परम-प्रिय हा! एक मेरे दुलारे।।
हा! शोभा के सदन सम हा! रूप लावण्य वाले। हा! बेटा हा! हृदयधन हा! नेत्र-तारे हमारे।

अष्टम सर्ग में समग्र-व्रज-व्याप्त कृष्णवियोग-व्यथा का जन्मादि-स्मृति माध्यम से ऐसा सुन्दर वर्णन किया गया है जैसा सूर के बाद कोई कवि नहीं कर सका। हरिऔध खड़ीबोली के सूर है। किन्तु नवम सर्ग में कृष्ण का उद्धव को मथुरा से व्रज भेजना (जिसमें उनका आदर्शवादी भाषण भी सम्मिलित है) तथा उद्धव की यात्रा के सन्दर्भ में 'असंख्य' वृक्षों एवं लताओं की 'सूची' समग्र असफलता की सूचक ही है। प्राकृतिक-सूचीवाद (जायसी, सूर इत्यादि के भोज्य-सूचीवाद के सदृश अरुचिकर न होते हुए भी) कादम्बरी के गद्य-महाकवि बाणभट्ट से लेकर रामचन्द्रिका के महाकवि केशवदास तक की क्षति कर चुका है—फिर, हरिऔध इस क्षति से कैसे बचते? किन्तु दशम सर्ग में यशोदा की दयनीय दशा तथा उद्धव से उनके पुत्रवियोग का वर्णन उत्कृष्ट एवं सरस हुआ है। प्रियप्रवास के यशोदा-सम्बद्ध अंश सर्वोत्कृष्ट हैं। एकादश, द्वादश एवं त्रयोदश सर्गों में गोपों का कृष्ण-वियोग स्मृति के व्यापक आयामों में वर्णित है, जो प्रभावी है। इन वर्णनों में कृष्ण के भागवत-चित्रित एवं सूरसागर-परिपुष्ट लीलाबिहारी रूप को जनसेवा-जनमंगल से सम्पृक्त कर महाकवि ने परम्परा एवं प्रगति को एकाकार रूप प्रदान किया है। इसमें 'बता दो' का अनुरोध अतीव मर्मस्पर्शी है :

विपुल-ललित-लीलाधाम-आमोद-प्याले। सकल कलित-क्रीड़ा कौशलों में निराले।।
अनुपम वनमाला को गले बीच डाले। कब उमग मिलेंगे लोक-लावण्य वाले?
अब कुसुमित-कुंजों में बजेगी बता दो। वह मधुमय प्यारी बाँसुरी लाड़िले की।।
कब कल-यमुना के कूल वृंदाटवी में। चित-पुलकितकारी चारु आलाप होगा?

चतुर्दशसर्गगत उद्धव-गोपी-संवाद रागात्मिकावृत्ति को बौद्धिकता से आच्छन्न करने के कारण प्रभावहीन रह गया है किन्तु अन्त में रास-प्रेरित दृश्यांकन 'महानिशि'[2] के चिन्त्य प्रयोग के बावजूद मनोहारी है :

जैसी मनोहर हुई यह यामिनी थी। वैसी कभी न जनलोचन ने विलोकी।।
जैसी बही सुरसरी इस शर्वरी में। वैसी कभी न व्रज-भूतल में बही थी।।
जैसी बजी मधुर बीन मृदंग वंशी। जैसा हुआ रुधिर नृत्य विचित्र नाना।।
जैसा बँधा इस महानिशि में समा था। होगी न कोटि मुख से उसकी प्रशंसा।।

---

[1] पाठान्तर : "अब तक जिसको मैं देख के जी सकी हूँ"।

[2] 'महा' शब्द प्रलयसूचक है : महादेव, महारात्रि, महापात्र, महापंडित इत्यादि से स्पष्ट है।

प्रियप्रवास का पंचदश सर्ग महाकाव्य के षष्ठ एवं सप्तम सर्गों के साथ-साथ सर्वोत्तम है, जिसमें विरहिणी राधा का विशद चित्रांकन प्राप्त होता है तथा यह चित्रांकन विविध प्राकृतिक अवयवों के कृष्णसाम्यबोध से परिपुष्ट भी है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने पंचदश सर्ग को सर्वोत्तम माना है, किन्तु सहज अनुभूति की जो मार्मिक प्रभावान्विति षष्ठ सर्ग एवं सप्तम सर्ग में प्राप्त होती है वह पंचदश सर्ग में नहीं। वैसे, विरह एवं प्रकृति का जो विशद सामंजस्य पंचदश सर्ग में प्राप्त होता है वह कविता का शृंगार अवश्य है। संवेदन एवं विश्लेषण का एक चित्र प्रस्तुत है :

> मधुकर! सुन तेरी श्यामता है न वैसी। अति अनुपम जैसी श्याम के गात की है।।
> पर जब-जब आँखें देख लेती तुझे हैं। तब-तब सुधि आती श्यामली मूर्ति की है।।
> तव तन पर जैसी पीत आभा लसी है। प्रियतम-कटि में है सोहता वस्त्र वैसा।।
> गुन-गुन करता औ गूँजना देख तेरा। रसमय मुरली का नाद है याद आता।।

इस सर्ग के अनेक भोले-भाले उद्गार भी अतीव प्रभावी हैं जिनमें एक प्रस्तुत है (यद्यपि इसकी अन्तिम पंक्ति शब्दमैत्रीहीन है) :

> जब विरह विधाता ने सृजा विश्व में था। तब स्मृति रचने में कौन-सी चातुरी थी?
> यदि स्मृति विरचा तो क्यों उसे है बनाया। वपन कटु कुपीड़ा-बीज प्राणी-उरों में?

षोडश सर्ग में उद्धव का कृष्ण-सन्देश-निवेदन एवं राधा का उत्तर लोकमंगल के अतिरेक, मोह-प्रणय-स्वार्थ-विषय[1]—प्रियव्याप्ति-विश्वात्मा इत्यादि के निरूपण के कारण उपदेशात्मक हो गया है। 'शास्त्रविज्ञात बातें', निष्कामभक्ति, नवधाभक्ति प्रभृति का निरूपण विषयान्तर-सूचक प्रतीत होने लगता है। कौमारव्रत के साथ सर्ग का अन्त भी कलात्मक नहीं बन पड़ा। अन्तिम सप्तदश सर्ग करुणा एवं निराशा से परिपूर्ण हैं। कंस के श्वसुर जरासन्ध के मथुरा पर ताबड़तोड़ आक्रमणों एवं कृष्ण के मथुरा-त्याग अथवा द्वारिका-प्रस्थान ने व्रज-जनता को निराश कर दिया। राधा ने सेवाश्रम खोलकर व्यापक जनसेवा आरम्भ कर दी। विरह का उदात्तीकरण प्रियप्रवास की युगनिष्ठ उपलब्धि है। वैदेही-वनवास का शान्ति-निकेतन भी ऐसा ही आश्रम है। प्रेमचन्द भी सेवासदन, प्रेमाश्रम, ग़बन इत्यादि उपन्यासों तथा 'सेवामार्ग' जैसी कहानियों में लगातार सेवा-धर्मी बने रहे। रवीन्द्र, गाँधी, कर्वे इत्यादि भी आश्रम खोल रहे थे, हरिऔध, प्रेमचन्द, प्रसाद ('कंकाल' एवं 'तितली' में) भी। अतः इस आश्रमवाद पर प्रहार युगजीवन पर प्रहार होगा। इसमें सन्देह नहीं कि आश्रमवाद-सेवावाद कलात्मक नहीं है, किन्तु कला का आधार मात्र सुन्दरम् नहीं है—सत्यम् भी है, शिवम् भी है। अतएव, हरिऔध पर नन्ददुलारे वाजपेयी एवं नगेन्द्र की आलोचना इतिहास-बोध से विपन्न एवं निराधार है।

अपनी उच्चस्तरीय रसनिष्पत्ति, अपनी अप्रतिम छन्दयोजना एवं अपनी प्रांजल भाषा के कारण प्रियप्रवास को पृथ्वीराजरासो, पद्मावत, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका एवं कामायनी के अनन्तर हिन्दी-महाकाव्यों में उच्चस्थान प्राप्त हो चुका है, क्योंकि साकेत में कविता प्रयत्नज प्रतीत होती रहती है, लोकायतन तो एक सुनियोजित विश्ववादी महाकाव्य है ही जिसमें अनुभूति के दर्शन नहीं हो पाते, उर्वशी नितान्त कामदर्शनबद्ध अर्थात् एकांगी है।

वैदेही-वनवास

'प्रियप्रवास' के अनन्तर, 'वैदेही-वनवास' हरिऔध की दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना है। इस अष्टदशसर्गीय महाकाव्य में सामान्यतः वाल्मीकि की रामायण एवं कालिदास के रघुवंशम् तथा विशेषतः भवभूति के उत्तररामचरितम् (महाकाव्य-नाटक[2]) के विश्रुत आधार को आदर्शवादी युग के जनमंगलवाद-जनसेवावाद से संपृक्त किया गया है। यद्यपि रचना 1940 ई. के प्रकाशित हुई तथापि इसका सभारम्भ बहुत पहले हो चुका था, जैसा कि प्रियप्रवास की भूमिका[3] से ही स्पष्ट है। दूसरे, प्रायः रचनाकार का प्रतिभा-प्रस्फुटन उसके प्रतिभा-विकास से भी सम्पृक्त ही रहता है, जैसाकि आदर्शवादी युग के अन्य प्रतिनिधियों प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल एवं मैथिलीशरण गुप्त की परवर्ती रचना-राशियाँ प्रायः स्पष्ट करती हैं। सायास- नवयुगोन्मेषकारी पन्त तक परवर्ती प्रस्तावना में अपने आरम्भिक स्वच्छन्दतावाद से प्रमुक्त नहीं हो सके : "लरिकाई को पैरिबो तुलसी बिसरि न जाइ"। वैदेही-वनवास के कथानक में अठारह सर्गों का विस्तार हरिऔध ने निकाला तो है पर वह प्रियप्रवास जैसा सुशृंखलित एवं एकरस नहीं है। प्रारम्भ के चार सर्ग यदि एक कसे हुए सर्ग के रूप में होते तो बेहतर होता क्योंकि इनमें गुप्तचर दुर्मुख के द्वारा अवधवासियों में सीता के लंका-निवास के प्रति असन्तोष

---

[1] शब्द-स्पर्श-रूप—रस-गन्ध।

[2] एपिक-प्ले।

[3] 'भाषा-शैली' उपशीर्षक में, पृष्ठ 9

की भावना जानकर राम का चिन्तित होना, भाइयों से मन्त्रणा तथा वसिष्ठ से परामर्श मात्र का वर्णन हुआ है। इसके बाद तीन सर्गों में सीता का अवध-परित्याग वर्णित है जो एक सुन्दर सर्ग के लिए ही उपयुक्त है। बाद के सर्गों में वाल्मीकि-आश्रम में सीता के पहुँचने, अवध की स्थिति और राम की विरह-दशा, सीता के वेदनापूर्ण विरह-निवेदनों, आश्रम में शत्रुघ्न के आगमन, लव, कुश के नामकरण, सत्यवती के लवकुश-प्रेम, आत्रेयी के शुभ वचनों, दाम्पत्य जीवन की दिव्यता के प्रकाश में सीता के पतिप्रेम की झाँकी तथा उनके लवकुश के प्रति वचना में पतिव्रत, पुत्रप्रेम तथा उन्हें अच्छे-अच्छे उपदेश, लवकुश का विभिन्न कलाओं (विशेषतः संगीत) का अभ्यास, शम्बूक-प्रकरण में राम का पंचवटी पहुँचना तथा अतीत-स्मृति में विभोर होना तथा सीता का स्वर्गारोहण वर्णित है।

प्रियप्रवास भावात्मक-महाकाव्य है, वैदेही-वनवास वर्णनात्मक। स्पष्टतः प्रियप्रवास अधिक प्रभावी एवं अधिक सरस है, क्योंकि हरिऔध की प्रबन्ध-कला कथानक को सुन्दर रूप दे सकने में अपेक्षाकृत कम समर्थ रही है, उसकी क्षमता कथानक को निमित्तमात्र बनाकर तदनुकूल भावचित्रण में ही अधिक पुष्ट तथा रमणीय रूप लेकर प्रकट होती है। आधुनिक महाकाव्यकार या तो कथानक-भीरु रहे हैं या कथानक-विपन्न। मैथिलीशरण कथानक-विपन्न हैं तो प्रसाद कथानक-भीरु। प्रियप्रवास में हरिऔध ने भावनिष्पन्नता में पूर्वदीप्तिजन्य कथानक संपृक्त करने के प्रयोग में उल्लेख्य सफलता प्राप्त की है, किन्तु तत्त्वतः महाकाव्य भावप्रवण ही है—कथानक को केवल गौण महत्त्व प्राप्त है। वैदही-वनवास में वर्णन को प्रधानता दी गई है किन्तु वह महाकवि भवभूति की वैश्विक प्रतिभा के प्रतीक विषय को कोई गति नहीं प्रदान कर सका। भवभूति ने राम की मनोव्यथा एवं उनके अन्तर्द्वन्द्व का जो चित्रण किया है, प्रकरणवक्रता के जो मार्मिक प्रयोग किए हैं, भाषा की शक्ति का जो असाधारण प्रदर्शन किया है, उस सबकी तुलना में 'वैदेही-वनवास' एक कोरा आदर्शवादी कथानक मात्र लगता है। फिर भी, हिन्दी के उत्तररामकाव्य में स्फीति, सांस्कृतिकता एवं आदर्शवादिता के कारणों से उसका महत्त्व अन्यतम है। उसने अनेक कवियों को प्रभावित किया है। महाकवि भवभूति का एकाध कण कवियशःप्रार्थी नरेश मेहता को 'संशय की एक रात' खण्डकाव्य में अवश्य प्राप्त हुआ है, किन्तु उसमें वैदेही-वनवास की महाकाव्योचित भव्यता कहाँ? सोहनलाल 'रामरंग' कृत स्फीत द्विखण्डीय उत्तर-साकेत स्थूल वर्णनात्मकता एवं काव्यनुभूति-विपन्नता के कारण स्तरीय महाकाव्य नहीं बन पाया। वह बस सबलसिंह चौहान कृत 'महाभारत' का स्मरण करा सकता है। बालकृष्ण मिश्र कृत 'जलसमाधि से पूर्व' खण्डकाव्य सांस्कृतिक गरिमा से च्युत होने के कारण गौरवशाली नहीं रह गया। चक्रधर 'नलिन' कृत 'दूसरा वनवास' सांस्कृतिक गरिमा से सम्पन्न होते हुए भी प्रकरण-वक्रता की दृष्टि से साधारण है। राहुल (कवि) कृत 'युगांक' महाकाव्य 'वैदेही-वनवास' की परम्परा को आगे नहीं बढ़ा पाया, क्योंकि इससे प्रेरित तथा मैथिलीशरण के 'भारतभारती', 'साकेत' इत्यादि से अत्यधिक प्रभावित तो है ही, कलारहित भी है।

राम का सीता-त्याग (शम्बूक प्रकरण के सदृश) एक परवर्ती कल्पना है जो नारी पर अत्याचार के युगों में इसलिए की गई जिससे उसे एक प्राचीन एवं आर्ष आधार प्राप्त हो सके। गुप्तकाल में जब ऋषभदेव (आदिनाथ या प्रथम जैन-तीर्थंकर) तथा बुद्ध को विष्णु का अवतार घोषित कर हिन्दू-जैन-बौद्ध को एकरूप बनाया गया तब बुद्ध, महावीर इत्यादि के निंद्य नारीत्याग को 'मर्यादा' से संपृक्त करने के लिए 'पुरुषोत्तम' (राम) को भी नारीत्याग से संपृक्त कर दिया गया, जिससे निन्दा मिटाई जा सकेः वैसे भी, राम, बुद्ध, महावीर तीनों इक्ष्वाकु-वंश के थे और राम की प्राचीन मान्यता सार्वभौम थी। काश, आज के अशिक्षित या अर्द्धशिक्षित या अल्पशिक्षित जाति-आखेटक टुच्चे नेता-नेत्री यह समझे पाते! वैदिककाल में नर एवं नारी का जीवन विषम न था। प्राचीनतम विश्व में अपहृता दण्डयोग्य माना जाता था और यही उचित भी था। रामायण एवं इलिअड इस तथ्य के प्रमाण हैं। किन्तु कल्पना अनेक सन्दर्भों में सत्य से भी बढ़कर अतिसत्य बन जाती है—अवैदिक सीता-त्याग, अवैदिक शम्बूक-प्रकरण (बौद्ध-जैन-प्रभावजन्य अहिंसा-अतिप्रयोग या मांसाहारनिषेध ने 'चाण्डाल' शब्द को 'अस्पृश्य' में बदला तथा इस अमानवीय प्रथा को भी 'मर्यादा'-सम्पन्न करने के लिए राम का ही आखेट किया गयाः प्रो. इरफ़ान हबीब ने अस्पृश्यता का कारण बौद्धों को माना है) अप्रात्ययिक 16000 कृष्ण-पत्नियाँ, निराधार रत्नावली-कथा इत्यादि कुछ निदर्शन मात्र हैं। राम के सीता-त्याग का आधार वाल्मीकि-रामायण का उत्तरकाण्ड है, जो सर्वसम्मत रूप से प्रक्षिप्त है, क्योंकि आदिकवि ने युद्धकाण्ड में ही काव्यसमापन की विधिवत् घोषणा कर दी है तथा राम के अयोध्या-आगमन एवं रामराज्य के वर्णन इसी काण्ड में प्रस्तुत कर दिए हैं। रामायण एक सुखान्त महाकाव्य है। उत्तरकाण्ड परवर्ती एवं प्रक्षिप्त स्वच्छन्द एवं अधिकांशतः असम्वद्ध कथाओं का संकलन है, महाकाव्य का व्यवस्थित एवं सहज अंग नहीं। तुलसीदास ने उसे नितान्त उपेक्षणीय मानते हुए रामचरितमानस को सुखान्त महाकाव्य ही बनाए रखा है—साथ ही, 'उत्तरकाण्ड' शब्द की लोकप्रियता का भी सम्मान करते हुए उसे दर्शनकाण्ड का रूप भी दे दिया है। किन्तु सीता-त्याग कालिदास (रघुवंशम्) एवं भवभूति (उत्तररामचरितम्) ने भी चित्रित किया है, क्योंकि कल्पित होते हुए भी यह अतीव मार्मिक है। राम का सीता-त्याग 'रंजयति इति राजा' का द्योतक, उनकी समष्टिगत

कर्तव्य-जागरूकता अथवा समाज के आनन्द पर 'स्व' के आनन्द के त्याग का द्योतक तो है, जैसा कि व्यापक समाज-दृष्टि मानती भी आई है, किन्तु उससे सीता के व्यक्तित्व के साथ अन्याय तो होता ही है, जिसे कालिदास एवं भवभूति जैसे महाकवियों से लेकर नरेश मेहता एवं बालकृष्ण मिश्र जैसे कवियों तक ने अपने-अपने ढंगों से आलोचित किया है। कालिदास ने वाल्मीकि एवं भवभूति ने जनक के कंठों से अपनी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कराई हैं, नरेश मेहता एवं बालकृष्ण मिश्र इत्यादि ने राम के अन्तर्द्वन्द्व के माध्यमों से। मधुरिमा सिंह ने बहती गंगा में हाथ धोते अतिसामयिकता से अभिभूत वर्णन किए हैं। हरिऔध और चक्रधर 'नलिन' ने अपसंस्कृतिमुक्त एवं उत्तेजनाविहीन पारम्परिक शैली अपनाई है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के भावात्मक निबन्ध 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता' एवं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के महाकाव्य 'साकेत' के अनन्तर ऊर्मिला का अभिधान रामकाव्य में अपरिहार्य हो गया है। हरिऔध की सीता के उद्‌गार भी इसी तथ्य के प्रमाण हैं :

इस खिन्न ऊर्मिला ने है। जो सहनशक्ति दिखलायी।।
जिसकी सुध आते मेरा। दिल हिला आँख भर आयी।।

हरिऔध ने सीता का गृहत्याग अत्यधिक आदर्शवादी शैली में चित्रित किया है, जिसमें उनके कौसल्या, मांडवी आदि के प्रति उपदेशवत् भाषण केशवदास के वनगमनरत राम के कौसल्या-प्रबोध का स्मरण कराने लगते हैं। सीता के प्रस्थान के समय उनकी तथा राम की अन्तर्वाह्य दशाओं का बड़ा मार्मिक चित्रण किया जा सकता था, किन्तु ऐसा नहीं हो सका। प्रियप्रवास की जनसेविका राधा के सदृश वैदेही-वनवास की सीता कर्तव्यसजग आदर्शवादी महामानवी अधिक हैं, विगलित-हृदया वियोगिनी कम। ठीक ऐसे ही, प्रियप्रवास के कृष्ण के सदृश वैदेही-वनवास के राम कर्तव्यसजग महामानव ही अधिक हैं, विगलित-हृदय विरही नहीं के बराबर। भवभूति के विरही राम की तुलना में हरिऔध के विरही राम विरही प्रतीत ही नहीं होते। दशम सर्ग में सीता चन्द्रिका के प्रति जो कुछ कहती हैं, वह मर्मस्पर्शी न होकर आदर्शक्रान्त है (महाकवि श्रीहर्ष कृत नैषधीयचरितम् में दमयन्ती के चन्द्रोपालम्भ से उसकी तुलना-वितुलना का प्रश्न ही नहीं उठता)। एकादश सर्ग में मेघ को देखकर वे राम का स्मरण करती हैं, किन्तु इसमें कोई नव्यता एवं भव्यता दृग्गत नहीं हो पाती। शत्रुघ्न का निवेदन प्रियप्रवास में उद्धव के निवेदन से भी गया-गुज़रा है। बाद में प्रियप्रवास की राधा के सेवाश्रम से मिलता-जुलता तपस्विनी-आश्रम या शान्ति-निकेतन खोलकर सीता सर्वजीव-सेवाव्रत का पालन करने लगती हैं।

कोई समय था जब मरुधर्मी शासन एवं सर्वभक्षी गौरांगशासन के 'यथा राजा तथा प्रजा' के द्योतक अतीतगत संस्कारों से अभिभूत तथाकथित मैकॉलेवादी शिक्षा में दीक्षित सभ्यजन पर्वतादर, नद्यादर, वनादर, वृक्षादर, पश्वादर, पक्ष्यादर इत्यादि पर व्यंग्य किया करते थे, किन्तु सम्प्रति यह सिद्ध हो गया है कि पर्वत, नदी, वन, वृक्ष, पशु, पक्षी पर्यावरण-परिशुद्धि के अपरिहार्य अंग हैं। यज्ञ, पर्वतपूजा, नदीपूजा, वनपूजा, वृक्षपूजा, पक्षीपूजा इत्यादि कोरे अन्धविश्वास-मूलक नहीं थे, उनके पीछे ठोस जीवनवाद विद्यमान था। ऋग्वेद, रामायण, कालिदास-साहित्य, तुलसीदास-साहित्य, रवीन्द्र-साहित्य, पन्त-साहित्य इत्यादि में विवृत प्रकृतिदर्शन कोरा सौन्दर्यवादी न होकर ठोस जीवनवादी है। अतः हरिऔध प्रभृति कवियों के सर्वभूतदयावाद का परिहास स्थूल भी है, मूर्खतापूर्ण भी। हाँ, पशु-पक्षियों का काव्य में प्रवेश कराना जितना सरल है, उनके प्रवेश को सरस-सजीव बनाना उतना ही कठिन भीः कालिदास इस कथन के एक छोर हैं, हरिऔध दूसरे। सारे आदर्शवाद के बीच भी कहीं-कहीं सहज उद्‌गार भी व्यक्त हो ही गए हैं :

कलपेगा आकुल होता ही रहेगा। व्यथित बनेगा करेगा न मति की कही।।
निज वल्लभ को भूल न पाएगा कभी। हृदय हृदय है सदा रहेगा हृदय ही।
कभी समीर नहीं होगा गति से रहित। होगा सलिल तरंगहीन न किसी समय।।
कभी अभाव न होगा भाव विभाव का। भावहीन होगा न कभी मानव-हृदय।।

वैदेही-वनवास में कोई ऐसी नवीतना या सहजता नहीं दृष्टिगोचर होती कि उसे महान् कृति कहा जाए। वस्तुतः वह प्रियप्रवास का आवश्यकता से अधिक विस्तृत परिशिष्ट मात्र है। पर उसकी प्रभावी विरहमूलकता इस तथ्य का ज्वलन्त प्रमाण है कि हरिऔध विरह के कवि हैं; और यही उसका महत्त्व भी है। नानाछन्दसामर्थ्य में वैदेही-वनवास के हरिऔध भी महाकवि ही प्रमाणित होते हैं।

वैविध्यसम्पन्न कृतित्व

हरिऔध का कृतित्व प्रयोगसम्पन्न है। यदि प्रियप्रवास में पहली बार संस्कृत के वर्णवृत्तों मात्र में निबद्ध अतुकान्त कविता का महान् प्रयोग दृग्गत होता है, तो 'बोलचाल' इत्यादि में उर्दू-शैली का अच्छा प्रदर्शन प्राप्त होता है। प्रियप्रवास में संस्कृतनिष्ठ हिन्दी

के दर्शन होते हैं, तो वैदेही-वनवास में सामान्य हिन्दी के और 'चोखे-चौपदे' इत्यादि में मुहावरेदार-हिन्दी के। महाकवि हरिऔध के प्रियप्रवास ने अनूप शर्मा जैसे, वैदेही-वनवास ने नरेश मेहता जैसे, 'बोलचाल' ने दुष्यन्तकुमार जैसे अनेकानेक कवियों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित किया है। गद्य में भी हरिऔध ने प्रयोगशीलता का प्रदर्शन किया है। 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' संस्कृत-फारसी-अरबी-तुर्की-अंग्रेज़ी इत्यादि के शब्दों से मुक्त इंशाअल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' का स्मरण कराता है। हरिऔध के पूर्ववर्तियों में श्रीधर पाठक एवं परवर्तियों में अज्ञेय का कृतित्व भी प्रयोगसम्पन्न है। वैसे, नए-नए प्रयोग सभी समर्थ कवि करते हैं; किन्तु ये तीन कवि इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय हैं। हरिऔध की प्रयोगशीलता का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत है :

हम कहेंगे क्या कहेंगे यह सभी। आँख के आँसू न ये होते अगर।।
बावले हम हो गए होते सभी। सैकड़ों टुकड़े हुआ होता जिगर।।

'आवश्यकता आविष्कार की जननी है' से 'साहित्य समाज का दर्पण है' तक सारी परिभाषाएँ सुधारवादी-आदर्शवादी-स्वच्छन्दतावादी युगों में राष्ट्रकाव्य-सृजन को अपरिहार्य सिद्ध करती हैं। कोई समर्थ कवि राष्ट्रोत्थान-युगों में राष्ट्र-पराङ्मुख कैसे रह सकता था? हरिऔध ने भी इस दिशा में योगदान किया है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. फरहरा हमारा था नभ में फहराया। सिर पर सुरपुर ने था प्रसून बरसाया।।
था रत्न हमें देता समुद्र लहराया। था भूतल से कमनीय फूल-फल पाया।
हम-त्रिलोक में सुखित कौन दिखलाता? था कभी हमारा यश वसुधातल गाता।।

2. तेरा रहा नहीं है कब रंग-ढंग न्यारा। कब था नहीं चमकता भारत तेरा सितारा।।
किसने भला नहीं कब जी में जगह तुझे दी। किसका भला रहा है तू आँख का न तारा।।
वह ज्ञान-ज्योति सबसे पहले जगी तुझी में। जग जगमगा रहा है जिसका लिए सहारा।।
किस जाति को नहीं है तूने गले लगाया। किस देश में बही है तेरी न प्यार धारा।।

नाभादास, रहीम, बेनी प्रवीन, वेणीमाधवदास[1], रघुवरदास[2], मैथिलीशरण, प्रसाद, निराला इत्यादि के सदृश हरिऔध ने भी तुलसी-काव्य से सृजन में योगदान दिया है :

1. रामचरित-सरसिज-मधुप, पावन चरित नितांत।
जय तुलसी कवि-कुल-तिलक, कविता-कामिनि कांत।

2. बन राम रसायन की रसिका रसना रसिकों की हुई सफला।
अवगाहन मानस में करके जन मानस का मल सारा टला।।
बने पावन भाव की भूमि भली, हुआ भावुक भावमता का भला।
कविता करके तुलसी न लसे, कविता लसी पा तुलसी की कला।।

विरह-महाकवि

हरिऔध विरह के महाकवि हैं। उनका प्रियप्रवास हो या वैदेही-वनवास या अन्य काव्यसर्जन, विरह प्रायः सर्वत्र व्याप्त है। अपनी प्राणप्रिया अनन्तकुमारी देवी के देहान्त के समय वे केवल चालीस वर्ष के थे। घर सम्पन्न था। वे सदर-कानूनगो के प्रभावी पद तक पहुँचे थे। किन्तु उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। वे पत्नी की स्मृति को बराबर सँजोए रहे। प्रियप्रवास एवं वैदेही-वनवास की मार्मिक विरह-वेदना 'अनन्त'-सम्पृक्त भी है! हरिऔध का जीवन निर्विवाद उच्चादर्शों का अमृतालय है। अतः उनका विरह भी उच्चादर्शपूर्ण है। यह सत्य है कि उनकी विरह-वेदना में वंकिमता नहीं है, वक्रोक्ति नहीं है। किन्तु यह भी सत्य है कि उनकी विरह-वेदना प्रशान्त एवं उदात्त है। हरिऔध ने विरह को पति-पत्नी या प्रेमी-प्रिया के संकीर्ण आयाम से मुक्त करके उसे पिता-पुत्र, माता-पुत्र, मित्र-मित्र, स्वजन-परिजन इत्यादि तक के 'अनन्त' आयामों तक भी प्रसरित कर दिया—उनका विरह-वर्णन समाज की विराटता से सम्पृक्त है।

---

[1] बीसवीं सदी में कल्पित तुलसी-शिष्य जो तथाकथित 'गोसाईंचरित' के रचयिता माने जाते हैं।

[2] बीसवीं सदी में कल्पित दूसरे तुलसी-शिष्य जो तथाकथित 'तुलसीचरित' के रचयिता माने जाते हैं।

हिन्दी के विरह-कवियों में हरिऔध का स्थान सूर, जायसी, घनआनन्द एवं मैथिलीशरण के साथ-साथ अन्यतमवर्गीय है। प्रसाद एवं महादेवी के विरहकाव्य मार्मिक हैं, कलात्मक हैं, बंकिम हैं, किन्तु उनमें हरिऔध की व्यापकता नहीं है, सहजता नहीं है, सरलता नहीं है। उनके विरहकाव्य की तुलना में जायसी का दाम्पत्यबद्ध एवं घनआनन्द का वैयक्तिक विरह संकीर्ण लगता है।

आकलन

निस्सन्देह, आयामों की विराटता एवं युगसजगता के कारण मैथिलीशरण, कलागत बंकिमता एवं दार्शनिकता के कारण प्रसाद, नव्यता एवं भव्यता के कारण निराला, शिल्पवैभव एवं नवमानवता के कारण पन्त खड़ीबोली के प्रतिनिधि एवं श्रेष्ठतम कवि हैं, किन्तु अपनी विशद सरसता एवं मार्मिक विरह-वेदना के कारण हरिऔध को इनके अनन्तर अन्यतम स्थान प्राप्त है, क्योंकि महादेवी में उनकी स्फीति नहीं है, दिनकर में उनकी रसविभूति नहीं है, बच्चन में उनकी सांस्कृतिकता नहीं है, अज्ञेय में उनकी प्रभावान्विति नहीं है तथा मुक्तिबोध में उनकी जीवनास्था नहीं है। केवल प्रियप्रवास ही हरिऔध को एक अमर महाकवि का गौरव प्रदान कर चुका है।

रंगपाल

क्षत्री सूर्यवंश वर ईश्वरीप्रसाद पाल, दाशरथि राम कुल सुयशविशाल है।
तिनके तनय श्री विश्वेश्वरबकस[1] पाल, ध्याये अखिलेश्वर सब त्यागि जगजाल है।।
तिनकौ मैं सुत निज जननी[2] को शिष्य, रहे सज्जन चरणरज रंजित सुभाल है।
स्याम कौ सखा हौं, राधा रानी कौ गुलाम, कछु बुद्धि न ललाम मेरो नाम रंगपाल है।।[3]

('सज्जनानन्द' में आत्मपरिचय)

अनेकरसनिष्पन्न किन्तु शृंगार-निष्णात् कवि रंगनारायण पाल 'रंगपाल' (1865 ई.—सोमवार, फाल्गुन कृष्ण 10, 1921 वि. हरिहरपुर, जनपद बस्ती) प्रकृत्या जनकवि थे, जिनके फाग आज तक लोकप्रिय हैं। सम्पन्न सामन्त होते हुए भी, वे कवि, संगीतकार (गायन-वादन) एवं चित्रकार तो थे ही, सफल वैद्य भी थे। 'रसिकानन्द' (सोरठा, दोहा, झपताला, तिताला, ठुमरी, दादरा, राग केदारा, राग विहाग, राग खमाच, झंझोटी, पुरवी इत्यादि में निबद्ध राम-कृष्ण-लीलालास), 'पुस्तक रंग-उमंग' (फागसंग्रह), 'सज्जनानन्द' (पपीहे पर 16 सुन्दर छन्द) एवं 'पुस्तक शांतरसार्णव' (राधाकृष्णभक्तिपरक) उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं। 'रंग-तरंगिणी', 'रंग-महोदधि', 'चिरियानामा', 'फूलनामा', 'पपीहापचीसी', 'अंगादर्श', 'गीतसुधानिधि', 'वीरविरुद', 'ऋतुरहस्य', 'कृष्णचरितचर्चा', 'गोदुर्दशा', 'छत्रपति शिवाजी' इत्यादि अन्य कृतियाँ उनकी परम्परागत रुचि से लेकर नव्य राष्ट्रभक्ति तक के प्रस्तार में आदर्शवादी युग के सर्वथा अनुकूल हैं। फाग के कवि के रूप में वे एक सफल जनकवि हैं। बुन्देलखंड के ईसुरी, बिहार के भिखारी ठाकुर, प्रायः उन्हीं के अंचलों के छोटकुन और भागीरथी[4] इत्यादि के साथ रंगपाल को एक श्रेष्ठ जनकवि का गौरव प्राप्त होना चाहिए। रंगपाल यथानाम-तथागुण 'रंग-उमंग के कवि'[5] हैं।

साफ़-सुथरी व्रजभाषा और नाना राग-रागिनियों के साथ नाना छन्दों के कुशल कवि रंगपाल परम्परा और प्रगति के समन्वय में द्वितीय प्रतापनारायण मिश्र तक कहे जा सकते हैं। मिश्र के सदृश रंगपाल भारी गोभक्त थे। मिश्र के सदृश रंगपाल प्रखर राष्ट्रवादी थे। इन दृष्टियों से ईसुरी, छोटकुन, भागीरथी, भिखारी ठाकुर इत्यादि उनकी समता नहीं कर पाते। उनकी रचना-राशि परिमाण में तो उल्लेख्य है ही, गुण में भी विपन्न नहीं है। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

---

1. बकस=बख़्श।
2. इनकी माता सुशीला देवी विदुषी एवं कवयित्री थीं। पत्नी 'राधाप्यारी' या 'प्यारी' भी।
3. भारतेन्दु के आत्मपरिचय से प्रभावित (जबकि भारतेन्दु बोधा से प्रभावित हैं)।
4. गोरखपुर, बस्ती, आज़मगढ़, मऊ नाथभंजन इत्यादि जनपदों में छोटकुन-भागीरथी का ज़ोर अब भी है।
5. 'मंजुल-मयंक' (मेंहदावल, बस्ती) के मार्च, 1985 अंक में आनन्दस्वरूप श्रीवास्तव का लेख।

1.

झूमर फाग

हाँ अरे झूमत आए हो बालम हाँ। हाँ अरे...
कहाँ छके छबि छाक छबीले, नैन अरुणता छाए,
पायन धरत परत डग-मग-डग, इत-उत जुलफन बिथुराए–हो बालम....

2.

मंगल फाग

यहि द्वारे मंगलचार होरी होरी है।
राजि प्रजा नर नारि सबै घर सुख संपत्ति बढ़ै अपार। होरी है....
बरस बरस को मनभायो, हिलि-हिलि सब खेलहु भार। होरी है....
रंगपाल आसीस देत यह, सब मगन रहो फगुहार। होरी है....
('पुस्तक रंग-उमंग' से)

3.

बूँद की प्यास, न और की आस, सबै जग धूरि समान बिचार्‌यो।
हाय दई! तिहि को बद वारिद पाहन सों हनि भू पर डार्‌यो।।
तू धनि रंग जू पाल बिहंग तऊ नहिं वाको सनेह बिसार्‌यो।
प्रान पयान समै हू पपीहा वही निरमोही की ओर निहार्‌यो।।[1]
('सज्जनानन्द' से)

4.

वसन्त-चित्रण

बैहर सुगंधमयी, अंध मधुकर-पुंज, रोहित सनेह, मान मानिन खसंत भो।
कल धुनि पूरित, पराग-पुष्प दस दिसि, रंगपाल तारापति सौगुनौ लसंत भो।
दहके दवा-से दीह किंसुक-अनार बन, बापुरे बियोगिन के हियरे ससंत भो।
आनँद सँयोगिन अनंत सरसंत राग, रंग बरसंत आज आवत बसंत भो।।[2]

रत्नाकर

आधुनिक काल में व्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' (1866-1932 ई., जन्म काशी, निधन हरिद्वार) का स्थान समग्र हिन्दी-कविता में पर्याप्त उच्च अथवा देव, पद्‌माकर, घनआनन्द प्रभृति के साथ है। आधुनिक व्रजभाषा-कवियों में रत्नाकर निर्विवाद रूप से अतुलनीय हैं क्योंकि भारतेन्दु, 'नवनीत', श्रीधर पाठक, 'शंकर', 'पूर्ण', हरिऔध, सत्यनारायण कविरत्न, सनेही, राय कृष्णदास, उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश', दुलारेलाल भार्गव, रामशंकर शुक्ल 'रसाल', केसरीसिंह बारहट, प्रसाद, वचनेश, वियोगीहरि, रामनाथ 'जोतिसी', श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', केशवदेव शुक्ल 'केशव', 'ब्रजनन्दन', सेवकेन्द्र त्रिपाठी', गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, 'राजेश', प्रकाश द्विवेदी इत्यादि में कोई भी गुणवत्ता की दृष्टि से उनकी समता नहीं कर पाता तथा उनका परिमाण भी बहुतों से अधिक है। अपनी समग्रता में भारतेन्दु रत्नाकर से उच्चतर स्थान पर अधिष्ठित हैं, हरिऔध न्यून हैं, किन्तु व्रजभाषा-कवि के रूप में रत्नाकर अग्रणी हैं। रामनाथ 'जोतिसी' का 'श्रीरामचन्द्रोदय' रामचन्द्रिका के वर्ग का एक अतीव कलात्मक महाकाव्य है, किन्तु उसकी स्फीत षोडश 'कलाएँ' केवल बालकांड-बद्ध हैं; जिससे प्रायः वर्णन-विस्तार अतिरेक पर जा पड़ा है तथा असम्बद्ध वर्णन, अन्यरचना-संव्यूहन प्रभृति तत्त्व संहिति में बाधा डालते हैं। रत्नाकर का रसतत्त्व अधिक पुष्ट है। वैसे, जोतिसी एवं रत्नाकर अन्योन्य माने जा सकते हैं। रत्नाकर एवं जोतिसी पर शोधग्रन्थों के प्रस्तोता डॉ. आत्माराम शर्मा 'अरुण' ने तो जोतिसी को रत्नाकर का नियामक-सहायक तक घोषित किया है, ''रत्नाकर को भाषा, संस्कृत तथा काव्यशास्त्र आदि विषयक जानकारी कराने में पंडित रामनाथ जोतिसी ने बहुत सहायता की थी। यहाँ तक कि रत्नाकर द्वारा पूर्व-रचित ग्रन्थों की हरिद्वार, कश्मीर, मसूरी आदि स्थानों पर प्रतिलिपि कर लाने पर उसमें भाषा तथा पिंगल सम्बन्धी संशोधन भी जोतिसी जी ही किया करते थे। 'बिहारी-रत्नाकर' के लिए आधारभूत प्रमुख सामग्री का संकलन जयपुर में तीन महीने दस दिन रहकर पं. रामनाथ जोतिसी ने ही किया था। हमारी मान्यता तो यहाँ तक कि यदि जोतिसी

---

[1] तुलसीदास (दोहावली के चातक-प्रकरण) से प्रभावित मौलिक छन्द।
[2] पद्‌माकर का प्रभाव (किन्तु वह प्रभाव कहाँ!)

जी रत्नाकर की कुछ भी सहायता न करते तो रत्नाकर उतनी ख्याति प्राप्त न कर पाते जितनी कि वे प्राप्त कर चुके हैं।''[1] रत्नाकर एवं जोतिसी[2] दोनों अयोध्या-नरेश से जुड़े थे। रत्नाकर निजी-सचिव थे, जोतिसी राज्य-पुस्तकाध्यक्ष। दोनों की मैत्री चिरस्मरणीय है, जिससे रत्नाकर को भरपूर लाभ हुआ। रत्नाकर आयु में वरिष्ठ, पद में उच्चतर एवं कवि-रूप में श्रेष्ठतर भी थे।

आचार्य श्यामसुन्दरदास ने इस शब्द-योजना के अद्भुत आचार्य द्वारा रचित कविता में उच्चकोटि की संगीतात्मकता एवं अप्रतिम कला के आधार पर इसे अंग्रेज़ी के कलाकार-महाकवि टेनीसन (1809-92 ई.) से तुलनीय माना है[3], यद्यपि टेनीसन चिर एवं युग दोनों के कवि थे, सामयिक अधुनातनता के प्रतिनिधि कवि भी थे, राष्ट्रकवि भी थे तथा रत्नाकर केवल चिर के, जैसा कि आचार्य ने भी स्वीकार किया है, ''रत्नाकर जी तो मध्ययुग की मनोवृत्ति को लेकर मध्ययुग के ही वातावरण में निवास करते थे।'' आधुनिकता के प्रति उनकी कोई विशेष रुचि न थी। महाकवि पद्माकर से महाकवि रत्नाकर की तुलना करते हुए आचार्य श्यामसुन्दर दास ने लिखा है, 'उद्धवशतक' में उनकी कविता पद्माकर से अधिक ओजपूर्ण और भक्तिभावापन्न है और 'गंगावतरण' में प्रबन्ध का विचार पद्माकर के 'रामरसायन' से अधिक प्रौढ़ है।'' किन्तु कुल मिलाकर यह कहना अधिक समीचीन होगा कि पद्माकर श्रेष्ठतर कलाकार हैं, रत्नाकर श्रेष्ठतर कवि तथा दोनों का योगदान-स्तर एक-सा है। किन्तु पूर्ववर्ती एवं प्रेरक होने के कारण 'पद्माकर' एवं 'रत्नाकर' कहना ही न्यायसंगत है। देव निस्सन्देह गुणवत्ता में पद्माकर एवं रत्नाकर दोनों से बीस हैं। उन्होंने दोनों को प्रभावित भी किया है। घनआनन्द में अनुभूति एवं अभिव्यक्ति का प्रशस्य समानुपात प्राप्त होता है; यद्यपि उनके स्फीत सृजन का अधिकांश नितान्त शिथिल है, तथापि वे रत्नाकर के समकक्ष कवि माने जा सकते हैं। खड़ीबोली के कवियों में गुण की दृष्टि से प्रसाद, निराला एवं पन्त तक रत्नाकर से आगे नहीं जा सकते। आयामों की व्यापकता के कारण कलाकृच्छता के बावजूद, मैथिलीशरण एवं रसात्मकता के कारण हरिऔध रत्नाकर के समकक्ष महाकवि हैं। कोई अन्य आधुनिक कवि उनके समकक्ष नहीं लगता। अग्रजों में देव, पद्माकर एवं घनआनन्द, सामसामयिकों में हरिऔध एवं मैथिलीशरण तथा अनुजों में प्रसाद, निराला एवं पन्त के स्तर के महाकवि रत्नाकर हिन्दी-कविता के एक स्तम्भ हैं।

रत्नाकर व्रजभाषा एवं व्रज-साहित्य के अगाध विद्वान् भी थे, जो उनके सूरसागर के स्तरीय सम्पादन (अपरिसमाप्त) एवं बिहारी-रत्नाकर जैसी अप्रतिम टीका से भी स्पष्ट हो जाता है। उन्होंने चन्द्रशेखर वाजपेयी कृत 'हम्मीरहठ' का भी अच्छा सम्पादन किया, जिससे वीररस के इस श्रेष्ठ कवि को प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उनकी कविता में प्राप्त टकसाली व्रजभाषा आधुनिककाल में अन्यत्र दुर्लभ है। वे बहुत ही खरी व्रजभाषा बोल भी सकते थे। उनकी युगनिरपेक्षता के बावजूद उनको आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य श्यामसुन्दरदास, महाकवि प्रसाद, डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' इत्यादि का हार्दिक सम्मान प्राप्त हुआ था। प्रसाद की गोष्ठी में जब कभी रत्नाकर आ जाते थे तब उन्हें सभी का गहरा आदर प्राप्त होता था। प्रसाद के अन्तरंग मित्र श्री विनोदशंकर व्यास[4] ने 'प्रसाद और उनका साहित्य' में भी इसका उल्लेख किया है। प्रसिद्ध आलोचक पं. कृष्णशंकर शुक्ल ने 'कविवर रत्नाकर' शीर्षक प्रस्थान-ग्रन्थ में उनकी प्रतिभा का प्रभावी आकलन किया है। डॉ. गुलाबराय ने 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास' में उन पर न्यायसंगत प्रकाश डाला है। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'गंगावतरण' को उत्कृष्ट काव्य माना है। वे आज की दयनीय एवं विभाजनग्रस्त परिस्थिति से भिन्न, महान् हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, तब की महान् काशी नागरी-प्रचारिणी सभा, तब की प्रभावी हिन्दुस्तानी एकेडेमी प्रयाग इत्यादि द्वारा पर्याप्त सम्मानित भी हुए थे। रत्नाकर की युग-निरपेक्ष प्रतिभा को प्रचुर युग-सम्मान प्राप्त होना उनकी प्रणवत्ता का सूचक तो है ही, प्रतिभा की चिरंतनता का प्रतीक भी है।

महाकवि रत्नाकर का जन्म कबीर, रैदास, दीनदयाल गिरि, भारतेन्दु, श्यामसुन्दरदास, प्रेमचन्द[5], प्रसाद, सम्पूर्णानन्द इत्यादि को जन्म देनेवाली तथा तुलसी, मदनमोहन मालवीय, रामचन्द्र शुक्ल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि द्वारा अपनाई जानेवाली भारत की आत्मा काशी में हुआ था। रत्नाकर पार्क क्षेत्र इसकी सूचना देता है। इनके धनकुबेर पूर्वज पानीपत[6] (हरियाणा—पहले पंजाब) के निवासी थे। उत्तर-मुग़लकाल

---

[1] पं. रामनाथ ज्योतिषी एवं श्रीरामचन्द्रोदय काव्य, पृ. 38-39।

[2] वे 'जोतिसी' छाप का प्रयोग करते थे। डॉ. अरुण ने रत्नाकर कृत 'गंगालहरी' एवं 'विष्णुलहरी' का सम्पादन किया है। 'जगन्नाथ 'रत्नाकर : एक पुनर्मूल्यांकन' एवं 'जगन्नाथदास' 'रत्नाकर' द्वारा प्राप्त काव्यग्रन्थों का उपयोग' ग्रन्थ ध्वंसात्मक होते हुए भी रोचक हैं।

[3] रत्नाकर (दो भाग) शीर्षक ऐतिहासिक ग्रन्थावली की विद्वत्तापूर्ण भूमिका द्रष्टव्य है।

[4] स्व. श्री लक्ष्मीशंकर व्यास (सुप्रसिद्ध पत्रकार एवं लेखक) इसी घराने के थे।

[5] पाँडेपुर के निकट लमही ग्राम 'वस्तुतः' काशी ही में है।

[6] पानीपत में 1526 ई. (बाबर-इब्राहिम लोदी) 1556 ई. (अकबर-हेमू विक्रमादित्य) एवं 1761 ई. (अहमदशाह अब्दाली-मराठे) में तीन ऐतिहासिक युद्ध हुए। 'मुसद्दस' के मोहम्मदीयत-उत्कर्षकर्ता शायर मौलाना अल्ताफ़ हुसैन 'हाली' (1826-1914 ई.) पानीपत के ही थे।

के दरिद्र बादशाहों की गृद्ध-दृष्टि से शोधित-प्रपीड़ित होकर इनके पूर्वज काशी में आ बसे थे; ठीक वैसे ही जैसे बंगाल के इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द[1] के वंशज अंग्रेज़ों की गृद्ध-दृष्टि से बचकर इसी नगरी में आए थे। संयोगात् दोनों परिवारों में घनिष्ठ सम्बन्ध थे। रत्नाकर के पिता बाबू पुरुषोत्तमदास अग्रवाल की भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से गहरी मित्रता थी। विनोदी महापुरुष एवं मनमौजी कलाकार भारतेन्दु इनके पिता को वेश बदलकर चकमा देने में भी रुचि लेते थे। एक बार तो भारतेन्दु को पैसा मिलते-मिलते रह गया क्योंकि ऐन मौके पर पकड़ में आ गए—भिक्षुक के छद्म-वेष में आए थे! परिवार में हिन्दी, उर्दू और फ़ारसी तीन भाषाओं का पांडित्य व्याप्त था। रत्नाकर ने बी. ए. तक शिक्षा प्राप्त की, फ़ारसी में एम.ए. करने का विचार परिस्थितिवश पूर्ण न हो पाया। तब वे 'ज़की' उपनाम से फ़ारसी में शायरी भी करते थे। डॉ. आत्माराम शर्मा 'अरुण' अपने स्वतन्त्र लघुशोध 'रत्नाकर : कवि-जीवन के प्रारम्भिक छह वर्ष (सन् 1888 से सन् 1894 तक)' जिसे बढ़ाकर 'रत्नाकर : कवि-जीवन के चवालीस वर्ष' कर दिया है, में महाकवि के 'ज़की' होने के कारण उनकी कृतियों को गृहीत सिद्ध करने का यत्न करते हैं। किन्तु भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, प्रेमचन्द इत्यादि भी उर्दू में साहित्य-रचना करते थे; बालमुकुन्द गुप्त एवं प्रेमचन्द तो उर्दू से हिन्दी में आए थे! सुदर्शन, अश्क़, शौक़त थानवी, कृष्ण चन्दर, बलराज साहनी इत्यादि हिन्द-उर्दू में एक साथ लिखनेवाले अनेकानेक 'लोकप्रिय' साहित्यकार विद्यमान हैं। वस्तुतः उर्दू स्वयं भी कोई भाषा न होकर एक लिपि मात्र है; तत्त्वतः भाषिक दृष्टि से यह हिन्दी की एक शैली है। डॉ. 'अरुण' ने रत्नाकर पर चन्द्रशेखर वाजपेयी तथा उनके परिवार के कवियों की रचनाएँ जीम जाने का जो आरोप लगाया है वह प्रात्ययिक नहीं है, क्योंकि रत्नाकर के समग्र कृतित्व की भाषा-शैली एक है; यद्यपि यह स्पष्ट है कि रत्नाकर केशव, सेनापति, सुखदेव, देव, पद्‌माकर इत्यादि के साथ चन्द्रशेखर वाजपेयी से भी पर्याप्त प्रभावित थे। रत्नाकर पर अन्य कवि-प्रभाव बहुत हैं, किन्तु ऐसा केशव, बिहारी, पन्त, अज्ञेय इत्यादि पर भी है। 'रत्नाकर' द्वारा उपेक्षित कवि-मंडल ग्रन्थ में डॉ. अरुण ने दूलह, हंसराम, टीकाकार मनीराम कवि, चन्द्रशेखर वाजपेयी, गौरीशंकर वाजपेयी, उमादत्त वाजपेयी 'दत्त', कुंजबिहारी लाल, बाबू मन्नूलाल, हरिचरणदास, सूरति मिश्र, सरदार कवि, प्रतापसाहि, बेनी वाजपेयी, रामनाथ ज्योतिषी के नाम गिनाए हैं, किन्तु इनमें से अनेक को रत्नाकर ने उपेक्षित नहीं किया तथा अन्य का उन पर प्रभाव विवादापद है। अतः इसे तूल देना उचित नहीं, यद्यपि शोध प्रशस्य है। शेक्सपिअर की कृतियों को 1987 ई. में ऑक्सफर्ड के 17वें मेयर अर्ल एडबर्ड द बेरे की बताने वाले तो अमेरिका के सर्वोच्च न्यायालय तक जा चुके हैं कि वह शेक्सपिअर को प्रवंचक घोषित करे—पहले इन कृतियों (37 नाटक, 5 काव्य, 154 सॉनेट्स[2]) को कोई तीस वर्ष का जीवन पानेवाले मार्लो की बताता था, कोई दार्शनिक-वैज्ञानिक-राजनीतिज्ञ-अंग्रेज़ी निबन्ध-जनक बेकन की (यह ध्यान देना व्यर्थ है कि कोई व्यस्त या बहुदिशाबद्ध राजनीतिज्ञ या तीस वर्षीय व्यक्ति—जिसकी अपनी पर्याप्त रचनाएँ विद्यमान हैं—इतना अधिक एवं इतना विशिष्ट साहित्य कैसे लिख सकता है?) यह सभी जानते हैं कि शेक्सपियर कभी मौलिक न थे तथा उन्होंने कभी मौलिक होने का यत्न भी न किया था। वे प्राचीन कृतियों को नवीन रूप प्रदान करते थे।

रत्नाकर ने पहले आवागढ़ राज्य में कोषाध्यक्ष का कार्य किया, तदनन्तर अयोध्या राज्य के महाराज एवं उनके निधनोपरान्त महारानी जगदम्बा देवी के व्यक्तिगत सचिव का। अवधेश्वरी जगदम्बादेवी की रत्नाकर पर अपार कृपा थी, जो शिवसिंह की महारानी लक्ष्मीदेवी (लखिमादेई) की विद्यापति पर अपार कृपा कर स्मरण कराती है। स्वभाव से बहुत ही सरल, उदार एवं विनोदप्रिय रत्नाकर ने गाँधी के उदय पर खड़ीबोली में भी दो छन्द रचे थे जो पारम्परिक कविता के बहुत सुन्दर उदाहरण हैं (आ. द्विवेदी पर भी एक छोटा-सा छन्द मिलता है)। यहाँ रत्नाकर-प्रिय घनाक्षरी (कवित्त) है :

1. आशा व्योमंडल अखंड तममंडित में, उषा के शुभागम का आगम जनाता है।
उच्च अभिलाषा कंजकलिका अधोमुख को, प्रान फूँक फूँक मुकुलित दरसाता है।।
भारत प्रताप भानु उच्च उदयाचल से कुहरा कुबुद्धि का चिरस्थित हटाता है।
भावी भव्य भारत सुभग सुमनावली का गंधी[3] गंधबाहक सुगंध लिए आता है।।

---

1. डॉ. ईश्वरीप्रसाद ने 'ए न्यू हिस्ट्री ऑफ इंडिया' में अमीचन्द को 'एक सिक्ख सौदागर' लिखा है। सम्भवतः वे हरिऔध के जैसे सिख थे। हिन्दू-सिख तत्त्वतः अभिन्न रहे हैं।
2. दे. 'द ट्यूडर' एडिशन ऑफ विलियम शेक्सपिअर द कम्प्लीट वर्क्स'।
3. सुगन्धित पदार्थ इत्यादि बेचनेवाले (प्रायः वैश्य) गंधी कहलाते थे ("गंधी! गन्ध गुलाब की गँवई गाहक कौन?"—बिहारी-सतसई)। "माइ एक्स्पेरिमेंट्स विद ट्रूथ' (सत्य के प्रयोग) शीर्षक आत्मकथा में गाँधी ने भी इसे स्पष्ट किया है। अंग्रेज़ी ने मिश्र को मिश्रा, शुक्ल को शुक्ला, गुप्त का गुप्ता, विष्ट को विष्टा के सदृश गंधी को गाँधी बना दिया!

2. नीरव दिगंगना उमंग रंग प्रांगण में जिसके प्रसंग का अभंग गीत गाती है।
अतुल अपार अंधकार विश्व व्यापक में जिसकी सुज्योति की छटाएं छहराती हैं।।
जिसके अमंद मुखचंद के विलोके बिना पारावार तरल तरंगें उफनाती हैं।
पाने को उसी की बाँकी झाँकी मन-मंदिर में मंद मुसकाती गिरा गुप्त चली आती है।।

इन दो अमूल्य छन्दों के कारण रत्नाकर गाँधी-कवियों की सियारामशरण गुप्त (बापू–खंड-काव्य), गोपालशरणसिंह (जगदालोक–महाकाव्य), पन्त (बापू–कविता), सोहनलाल द्विवेदी (बापू–कविता), दिनकर (बापू–महाकविता), रामकुमार वर्मा (बापू–कविता), महादेवी वर्मा (बापू के प्रति–कविता), सनेही (बापू की चिरनिद्रा–कविता), अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' (गाँधी-पारायण–महाकाव्य), नरेश मेहता (प्रार्थना-पुरुष–खंडकाव्य) इत्यादि की श्रृंखला की एक कड़ी के रूप में स्मरण किए जाएँगे। वैसे, गाँधी पर मैथिलीशरण गुप्त ने भी प्रकीर्ण पंक्तियाँ लिखी हैं तथा गाँधीचरितमानस[1] वर्णनात्मक महाकाव्य भी रचा गया है।

हृदयरोग के कारण 21 जून, 1932 को हरिद्वार[2] के गंगा-सान्निध्य में काशी के गंगा-सान्निध्य में उत्पन्न एवं जीवन 'गंगावतरण' के गंगा-सान्निध्य में व्यतीत करने वाले इस महाकवि को गंगा-लाभ हुआ। व्यापक दृष्टि से गंगावतरण हरिद्वार में ही होता है।

रत्नाकर ने पुनरुत्थानकाल की आत्मा को शास्त्रीयकाल के शरीर में सफलतापूर्वक अवतरित किया है। उनका अमर मुक्तकाव्य 'उद्धवशतक' उन्हें सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, तुलसीदास, देव, भारतेन्दु, सत्यनारायण कविरत्न, रामशंकर शुक्ल 'रसाल', 'ब्रजनन्दन', गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, गिरीश चतुर्वेदी, शम्भुदयालसिंह 'सुधाकर', प्रकाश द्विवेदी इत्यादि ब्रजभाषा तथा हरिऔध, मैथिलीशरण इत्यादि खड़ीबोली की भ्रमरगीत-कविपरम्परा में सूरदास के अनन्तर एवं नन्ददास के साथ-साथ अमर कर देता है। उनका त्रयोदशसर्गीय 'गंगावतरण' उच्चकोटि का महाकाव्य[3] है, जिसकी सर्वथा सफल नानारसनिष्पत्ति, जिसका 'राम की शक्तिपूजा' से भी अधिक विलक्षण उदात्त, जिसका भव्यतर बिम्बालेखन, कुल मिलाकर कामायनी, प्रियप्रवास एवं साकेत के स्तर का सिद्ध होता है। गंगा पर संस्कृत से हिन्दी तक प्रभूत साहित्य प्राप्त है। गंगा ने शंकराचार्य जैसे प्रचंडबुद्धि-दार्शनिक को भावनाशील कवि बना दिया! हिन्दी में विद्यापति, तुलसी, भारतेन्दु, दिनकर इत्यादि ने गंगा पर काव्य-रचना की है, पद्माकर ने 'गंगालहरी' लिखी है, किन्तु रत्नाकर हिन्दी के सर्वोपरि गंगा-कवि हैं–गुण की दृष्टि से भी, परिमाण की दृष्टि से भी[4]। 'संस्कृत-कविता में गंगा', 'हिन्दी-कविता में गंगा' जैसे सुन्दर शोधविषयों पर कार्य होना चाहिए। खेद है कि गंगावतरण की 'आपराधिक' अपेक्षा की गई है।

हिंडोला

रत्नाकर का प्रथम काव्य 'हिंडोला' था, जिसका रचनाकाल कवि ने अन्तिम (101 वें) छन्द की ''मन इन्द्रिय अरु भक्ति सहित गोपालहिं लायौ'' की श्लिष्ट तृतीय पंक्ति में स्वयं दे दिया हैः मन = 1, इन्द्रियाँ = 9, भक्ति = 5, गोपाल = 1, अर्थात् 1951 वि. या 1894 ई.। 'रत्नाकर' (ग्रन्थावली–पहला भाग) की भूमिका में इसे प्रबन्धकाव्य बतलाया गया है क्योंकि इसमें कृष्ण की एक ललित प्रेमलीला का वर्णन प्राप्त होता है, किन्तु वस्तुतः यह मुक्तककाव्य है जिसमें कथानक पर प्रकृतिचित्रण एवं लीलालास्य को वरीयता प्रदान की गई है। काव्य का अंगीरस श्रृंगार है, भक्ति नहीं। कृष्णकाव्य में हिंडोला को उल्लेख्य स्थान प्राप्त है। तुलसी ने गीतावली में हिंडोला का समावेश करके रामकाव्य के रसिक कवियों का एतद्क्षेत्रीय पथ-प्रदर्शन कर दिया था। 'हिन्दी कविता में हिंडोला' लघुप्रबन्ध का विषय है, जिसमें रत्नाकर को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त होगा।

---

[1] इस अवधी-महाकाव्य के कवि विद्याधर महाजन साहित्य से सम्बद्ध न थे और इस पर रामचरितमानस का प्रभाव भी बहुत अधिक है। अतः इसे विस्मृत कर दिया गया। प्रकाशन 1954 ई. में हुआ।

[2] महाभारत में 'गंगाद्वार' शैवों का हरद्वार। पुराणों की 'माया'। कालिदास का 'कनखल'।

[3] यदि मेघदूतम् लघुत्रयी का महाकाव्य है, यदि कोमलांगी कामायनी महाकाव्य है, यदि चम्पू यशोधरा महाकाव्य है, यदि गीतिनाट्य उर्वशी महाकाव्य है, तो 'गंगावतरण' के महाकाव्य होने पर क्या विवाद? लोकतन्त्र-युग में महाकाव्य का भी लोकतन्त्रीकरण कर दिया गया है।

[4] रायबरेली के जाने-माने स्वातन्त्र्य-सेनानी, रचनात्मक संघ रायबरेली के महामन्त्री, कवि श्री शीतलाप्रसाद दीक्षित ने गंगा पर एक विशद एवं शोधपूर्ण काव्य रचा है–खेद है कि यह अप्रकाशित है। गंगा पर वेद-युग समाप्त हो चुका है, खेद-युग आ गया है।

समालोचनादर्श

रत्नाकर की द्वितीय कृति 'समालोचनादर्श' अंग्रेज़ी-कवि अलेक्जैण्डर पोप (1688-1744 ई.) कृत 'एस्से ऑन क्रिटिसिज्म' काव्य का बहुत ही सफल अनुवाद है। अनुवाद की सफलता है कि वह अनुवाद न लगे। 'समालोचनार्श' का मौलिक लगना उसकी भारी उपलब्धि है। यह अनुवाद श्रीधर पाठक द्वारा ऑलिवर गोल्डस्मिथ (1728-74 ई.) कृत 'डिजर्टेड विलेज' के 'ऊजड़ ग्राम', 'ट्रैवेलर' के 'श्रान्त पथिक' एवं 'हर्मिट' के 'एकान्तवासी योगी' तथा रामचन्द्र शुक्ल द्वारा एड्विन आर्नोल्ड कृत 'द लाइट ऑफ़ एसिआ'[1] के 'बुद्धचरित' अनुवादों से श्रेष्ठतर है, जिसका कारण रत्नाकर का विशिष्ट एवं श्रेष्ठतर कवि होना है। रत्नाकर ने अपने अनुवाद में कृति का भारतीयकरण कर दिया है, जिसमें यूरोपीय नामों के स्थान पर भारतीयों के नामों का प्रयोग किया गया है–हिमालय, आचार्य भरत, कवि जयदेव इत्यादि की विद्यमानता ने कृति को मौलिक-सा बना दिया है। प्रेमचन्द ने अनातोले फ्रांस के अमर उपन्यास 'थाया' (थाइस) का 'अहंकार' शीर्षक खड़ीबोली-गद्यानुवाद भी इसी ढब पर किया है, जिसमें पॉप्न्यूशिअस तो एकदम पापनाशी ही बना दिए गए हैं। मेरे मत से, अनुवाद में मूल की मूल प्रकृति के विरुद्ध जाना उचित नहीं, क्योंकि उसका उद्देश्य मूल लेखक की अस्मिता को उजागर करना होता है। द्वैत अनुवाद का प्राण है। अनुवाद का अनुवाद न लगना गुण है, आधार का लोप अवगुण। छायानुवाद की बात और है। भगवतीचरण वर्मा ने अनातोले फ्रांस की 'थाया' का छायानुवाद 'चित्रलेखा' के रूप में किया है, जो सफल है। खेद है कि इस कृति में अब अनातोले फ्रांस और 'थाया' का उल्लेख तक नहीं मिलता, जबकि आरम्भिक संस्करणों में मिलता था। इसे धड़ल्ले की मौलिकता कहा जा सकता है। इस मौलिकता की घुसपैठ से किशोरीलाल गोस्वामी, बंगमहिला, गुलेरी, प्रेमचन्द, चतुरसेन शास्त्री, अज्ञेय इत्यादि-इत्यादि ने भी काफ़ी नाम-दाम-काम बनाया है किन्तु रत्नाकर ने ऐसा कुछ नहीं किया था। उनका अनुवाद, अनुवाद का मौलिकीकरण-सा तो है, मौलिकता की घुसपैठ नहीं। अन्त के छन्द कवि ने अपनी ओर से जोड़े हैं, जिनमें रसवादविरोधियों, पुरातनरचनाविरोधियों, खड़ीबोली-कवियों एवं आचार्यों, अतुकान्त-काव्यकारों एवं काव्यानन्द-विरोधियों का प्रत्याख्यान किया गया है, जो रत्नाकर को घोर परम्परावादी सिद्ध करता है। सम्भवतः आरम्भ में रत्नाकर विशेषतः अयोध्याप्रसाद खत्री एवं सामान्यतः महावीरप्रसाद द्विवेदी के खड़ीबोली-आन्दोलन के प्रबल विरोधी थे। समय के साथ यह विरोध कम होता गया, परन्तु मिटा कभी नहीं। वैसे, आचार्य द्विवेदी व्रजभाषा-विरोधी नहीं थे। उन्होंने स्वयं व्रजभाषा-कविता भी लिखी है। उनके शिष्यों में सनेही इत्यादि ने सुन्दर व्रजभाषा-कविता भी की है। वे रत्नाकर की कविता के भी प्रशंसक थे। किन्तु वे व्रजभाषा में कविता एवं खड़ीबोली में गद्य के द्वैत को मिटाना चाहते थे, जो हिन्दी के राष्ट्रभाषा एवं विश्वभाषा के भावी रूपों की प्रतिष्ठा के हेतु अपरिहार्य था। शताब्दियों से खड़ीबोली ही राष्ट्रभाषा रही है जैसा कि हेमचन्द्र, खुसरो, नामदेव, प्राणनाथ इत्यादि के उद्धरण एवं सृजन ही स्पष्ट कर देते हैं। समय ने आ. द्विवेदी को ही द्रष्टा सिद्ध किया। स्वयं रत्नाकर ने खड़ीबोली में कुछ छन्द रचकर इसे प्रमाणित किया, जिनमें एक आचार्य द्विवेदी पर है! श्रीधर पाठक, शंकर, पूर्ण इत्यादि तो खड़ीबोली-कवि ही बन गए।

हरिश्चन्द्र

रत्नाकर कृत 'हरिश्चन्द्र' चार सर्गों का एक उत्कृष्ट खंडकाव्य है, जिसका स्थान भारतेन्दु कृत स्फीत 'सत्य-हरिश्चन्द्र' नाटक के साथ-साथ हिन्दी के हरिश्चन्द्र-साहित्य[2] में अन्यतम है। 'सत्य-हरिश्चन्द्र' तत्त्वतः अनुवाद है, वस्तुतः मौलिक। 'हरिश्चन्द्र', परम्परा-लाभान्वित होते हुए भी, सर्वतः मौलिक है। काव्य की रचना रत्नाकर के लिए प्रियतर घनाक्षरी (कवित्त) के साथ-साथ प्रिय छन्द रोला में हुई है। इसके प्रथम सर्ग चौंतीस छन्द हैं, द्वितीय में पैंतीस, तृतीय में अट्ठावन तथा चतुर्थ में एक सौ नौ, जिससे स्पष्ट होता है कि कवि ने नियोजन शिथिल रखा है। खंडकाव्य के नायक हरिश्चन्द्र धीरशान्त रूप में चित्रित किए गए हैं, जो उचित ही है। पुरियों में प्रथम[3], वाल्मीकि-रामायण के अनुसार स्वयं मनु द्वारा स्थापित, अयोध्या के विश्वविख्यात सूर्य-वंश (जिसके लिए रघुवंशम्

---

1. अश्वघोष कृत 'बुद्धिचरितम्' पर आधृत। रचना उत्कृष्ट न होने पर भी बहुत प्रशंसित हुई है। 'डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया' में नेहरू ने तो तारीफ़ों के पुल ही बाँध डाले हैं जिसका कारण अल्प साहित्यानुशीलन है।
2. 'हिन्दी का हरिश्चन्द्र-साहित्य' लघुशोध का अच्छा विषय है।
3. अयोध्या मथुरा माया काशी कांची अवन्तिका। पुरी-द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः।
   (माया हरिद्वार या गंगाद्वार में है)।

के कवि-कुल-गुरु कालिदास तक ने "क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषयामतिः" लिखना आवश्यक समझा) में हरिश्चन्द्र अट्ठाइसवें नरेश थे तथा राम से पैंतीस पीढ़ी पहले हुए थे :

अट्ठाइसवौं भयौ भूप हरिचंद गुनाकर। रामचंद सौं भयौ पूर्व सो पैंतिस पीढ़ी।।

मनु, मान्धाता, हरिश्चन्द्र, भगीरथ, रघु, राम, सीता, भरत, लक्ष्मण प्रभृति चिर-विभूतियों से जाज्वल्यमान् सूर्य-वंश की समता संसार के समग्र इतिहास का कोई राज-वंश नहीं कर सकता। बुद्ध एवं महावीर भी इसी वंश से सम्बद्ध हैं। इक्ष्वाकुवंशी।

'हरिश्चन्द्र' काव्य का आरम्भ वस्तुनिर्देशात्मक है। इसमें कुमारसम्भवम्, प्रियप्रवास, कामायनी इत्यादि के सदृश ही मंगलाचरण नहीं है। अयोध्या-वर्णन प्रतीक-रूप में अथर्ववेद से आरम्भ होकर रामायण, रघुवंशम्, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, साकेत इत्यादि-इत्यादि तक प्रसरित है। सामान्यतः 'हरिश्चन्द्र' एवं विशेषतः 'गंगावतरण' के कारण रत्नाकर अयोध्या-वर्णन के एक उत्कृष्ट कवि हैं। 'साहित्य में अयोध्या-वर्णन' शोध का एक उत्कृष्ट विषय है, जिसे अब अधुनातन उत्खनन का बिन्दु भी प्राप्त है। रत्नाकर का अयोध्या-वर्णन देशभक्तिनिष्पन्न भी है :

मृत्युलोक को मुकुट देस भारत जो सोहै। ताके उत्तर-पश्चिम भाग माहिं मन मोहै।।
अवधपुरी अति रम्य परम पावनि मंगलमय। है तिहि कौ नरनाह भूप हरिचंद महासय।।

प्रथम सर्ग में नारद द्वारा हरिश्चन्द्र-प्रशंसा से ईर्ष्यालु इन्द्र के आग्रह पर विश्वामित्र का अयोध्या-प्रस्थान, द्वितीय में अयोध्या-आगमन तथा राज्ययाचनादि, तृतीय में काशी-आगमन (काशी में आज भी हरिश्चन्द्र-घाट है, जहाँ अंत्येष्टि होती है तथा प्रायः मणिकर्णिका घाट की सी प्रभावी मानी जाती है—हरिश्चन्द्र-घाट के डोम-राजा का आज भी बड़ा दबदबा है) तथा चाण्डाल-सेवादि, और चतुर्थ में रोहिताश्व-अवसान, शैव्याप्रकरण, विष्णु इत्यादि देवताओं के आगमन, हरिश्चन्द्र एवं शैव्या का रोहिताश्व को राजपद प्रदान कर सशरीर स्वर्गारोहण वर्णित है। काव्य सुखान्त है। अंगीरस कोई करुण मान सकता है जिसका गुणगत ही नहीं अपितु परिमाणगत महत्त्व भी है, तो कोई हरिश्चन्द्र को धर्मवीर[1] मानकर उनके दान एवं शैव्या-प्रकरण-दायित्वपालन को उत्साह स्थायीभाव में समाहित करते हुए वीर कह सकता है जो शास्त्रीय दृष्टि से अधिक युक्तियुक्त होगा। चतुर्थ सर्ग के आरम्भ का भयानक-पुष्ट वीभत्सरस-वर्णन हिन्दी-साहित्य में अप्रतिम है, यद्यपि इस रस की कविता तुलसी से सुदामाप्रसाद 'धूमिल' तक प्रसरित है तथा उग्र, यशपाल, श्रीलाल शुक्ल, कमलेश्वर इत्यादि के कथा-साहित्य में भी इसके उल्लेख्य होते हैं :

कहुँ सुलगति कोउ चिता कहूँ कोउ जाति जलाई। एक लगाई जाति एक की राख बहाई।
बिबिध रंग की उठति ज्वाल दुर्गन्धनि महकति। कहुँ चरबी सौं चटचटाति कहुँ दह-दह दहकति।।
कहुँ फूकन हित धर्‌यो मृतक तुरतहिं तहँ आयौ। पर्‌यौ अंग अधजर्‌यौ कहूँ कोऊ कर खायौ।
कहूँ स्वान इक अस्थिखंड लै चाटि चिचोरत। कहुँ कारी महि काक ठोर सौं ठोंकि टटोरत।।
कहुँ सृंगाल कोउ मृतक-अंग पर ताक लगावत। कहुँ कोउ सव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत।।
जहँ तहँ मज्जा मांस रुधिर लखि परत बगारे। जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे।।
हरहरात इक दिसि पीपर को पेड़ पुरातन। लटकत जामैं घंट घने माटी के बासन।।
बरषा ऋतु के काज औरहू लगत भयानक। सरिता बहति सबेग करारे गिरत अचानक।।

चतुर्थ सर्ग में भाव-शांति[2] का एक महान् उदाहरण उपलब्ध है, जिसकी अद्‌भुतरसनिष्पत्ति रत्नाकर की गौरवमयी प्रतिभा के सर्वथा अनुरूप है :

"...फाड़ि कफन तैं अर्ध बसन कर बेगि चुकाऔ। देखौ चाहत भयौ भोर जनि देर लगाऔ।"
सुनि महिषी बिलखाइ कफ़न फारन उर ठायौ। पै ज्यौंही उत "जो आज्ञा" कहि हाथ बढ़ायौ।"....

---

[1] दान धर्म का ही एक अंग है तथा श्मशान-कांड तो दान-भिन्न शुद्ध धर्म-पालन है ही। अतः हरिश्चन्द्र प्रधानतः धर्मवीर हैं। उनका दानवीर होना उनके धर्मवीर होने का ही एक पक्ष है। युद्धवीर के सदृश धर्मवीर, दानवीर, दयावीर, कर्मवीर भी वीररस के नायक हो सकते हैं। वर्द्धमान का स्वयं को 'वीर' नहीं प्रत्युत 'महावीर' कहना सार्थक माना जाता है।

[2] 'हिन्दी-कविता में भाव-शान्ति' लघुप्रबन्ध का सुन्दर विषय है। 'हिन्दी-कविता में भावोदय', 'हिन्दी-कविता में भाव-सन्धि' एवं 'हिन्दी—कविता में भावशबलता' भी ऐसे ही विषय हैं। ये विषय 'निरा-शोध मात्र' के सूचक नहीं, ललित भी हैं।

त्यौं ही एकाएक लगी काँपन महि सारी। भयौ महा इक घोर सब्द अति बिस्मयकारी[1]।।
बाजे परे अनेक एक ही बेर सुनाई। बरसन लागे सुमन चहूँ दिसि जय-धुनि छाई।।
फैलि गई चहुँ ओर बिज्जु कैसी उँजियारी। महि लीन्ह्यौ कर आनि अचानक हरि असुरारी।।

निस्सन्देह, 'हरिश्चन्द्र' 'बेलि क्रिशन रुकमणी री', 'सुदामा-चरित', 'पार्वती-मंगल', 'जयद्रथवध', 'पंचवटी', 'सिद्धराज', 'पथिक', 'तुलसीदास', इत्यादि के साथ-साथ हिन्दी के सर्वोत्तम खंडकाव्यों में एक है। 'नहुष', 'प्रेमपथिक', 'महाराणा का महत्त्व', 'ग्रन्थि', 'संशय की एक रात' इत्यादि खंडकाव्य इसकी समता नहीं कर सकते। बेलि, सुदामाचरित, पथिक एवं तुलसीदास हिन्दी के सर्वोत्तम खंडकाव्य हैं और इनसे तुलनीयता 'हरिश्चन्द्र' की श्रेष्ठता सूचित करती है। रत्नाकर काव्यों में 'उद्धवशतक' एवं 'गंगावतरण' के अनन्तर 'हरिश्चन्द्र' अन्यतम है।

कल-काशी

रत्नाकर की 'कल-काशी' नामक काव्य-रचना सुदीर्घकालप्रसरित होने पर भी अपरिसमाप्त रह गई, जिसका अन्तिम 142वाँ छन्द एक पंक्ति से अपूर्ण है:

मित्र-मंडली चलति कबहुँ आराम रमन कौं। सेवन सुचि जल वात तथा श्रम बिसम समन कौं।।
बहु प्रकार व्यापार-जनित दुख-दंद दमन कौं। ....।।

काशी-काव्य संस्कत से हिन्दी तक स्फीत रूप से प्रसरित है। राजशेखर ने तो एतद्विषयक मार्मिकतम सर्जना की है। हिन्दी में कबीर, जायसी, मीराँ (मीरा), सूर इत्यादि-इत्यादि ने काशी के प्रासंगिक उल्लेख किए हैं, जबकि तुलसीदास एवं भारतेन्दु ने उल्लेख्य काव्य-रचना की है। रत्नाकर पर भारतेन्दु के सत्य-हरिश्चन्द्र का यत्किंचित् प्रभाव हरिश्चन्द्र खंडकाव्य पर पड़ा तथा इसी नाटक की 'गंगा-छवि' कविता का गंगावतरण एवं कल-काशी पर, यद्यपि वे अपने-आपमें मौलिक भी हैं, व्यापक भी। 'हिन्दी का काशी-काव्य' लघुप्रबन्ध का सुन्दर विषय है। खेद है कि सांस्कृतिक लघुप्रबन्ध सम्भवतः इतिहासभीरुता के कारण नहीं लिखे जा रहे।

'कल-काशी' के कुछ उत्तम छन्द उद्धृत हैं :

श्रीकैलास बिहाइ आइ जहँ बसत पुरारी। गिरिजाहू सुख लहति चहति आनँद-बन[2] भारी।।
हाट-बाट के ठाट लखत दोउ बालक[3] जोहैं। हरित भरित लहि भूमि झूमि नंदीगन मोहैं।।
तिहि कासी की करि बंदना ताही कौ बरनन करौं। रज ध्यानसिद्ध अंजन समुझि हरषि हृदय आँखिन धरौं।।

रत्नाकर का काशी-वर्णन भारत की आत्मा काशी के धार्मिक, सांस्कृतिक, व्यावसायिक, शैक्षिक इत्यादि सारे गौरव-बिन्दुओं से न्याय करता है। खेद है कि देखते-देखते जनसंख्या-विस्फोट ने तीन लोक से न्यारी काशी को भयानक भीड़ में प्रायः लुप्त कर दिया है!

काशी के इतिहास पर डॉ. मोतीचन्द्र ने गौरव-ग्रन्थ रचा है, विश्वनाथ मुखर्जी ने लोकप्रिय ग्रन्थ प्रस्तुत किया है, काका कालेलकर ने भी लिखा है।

स्फुट सृजन

रत्नाकर के विविधविषयक शत-शत छन्दी हिन्द-कविता के शृंगाररत्न हैं, जिनमें वीर, भयानक इत्यादि रसों का सुन्दर परिपाक हुआ है। भीष्म पर उनके छन्द तुलसी एवं भूषण का स्मरण करा देते हैं। अभिमन्यु पर उन्होंने उत्कृष्ट काव्य-सृष्टि की है। छत्रसाल बुन्देला[1] पर उनके छन्द भूषण के छन्दों से टक्कर लेते हैं।

---

1. 'विस्मयकारी' की स्थायीभाव-सूचना से स्वशब्दवाच्यत्व दोष आ गया है।
2. आनन्दवन काशी का ही एक नाम है।
3. कार्तिकेय (गुह) एवं गणेश।
4. छत्रसाल पर भूषण, लाल कवि, कवि पुरुषोत्तम, रत्नाकर, अम्बिकेश, सेवेकेन्द्र त्रिपाठी प्रभृति ने प्रभूत काव्यसृष्टि की है, प्राणनाथ के शब्द भी मिलते हैं, लोककाव्य एवं लोककथा की दृष्टि से भी उन पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है, कहावतें तक मिलती हैं—अतः 'हिन्दी-साहित्य में छत्रसाल' या 'छत्रसाल और हिन्दी-साहित्य' (वे श्रेष्ठ कवि भी थे ही) शोध के विषय बन गए हैं।

अपने काव्य की समग्रता में रत्नाकर प्रायः सर्वरससिद्ध महाकवि सिद्ध होते हैं। तुलसी के अतिरिक्त, वस्तुतः उनके अनन्तर, तत्त्वतः उनके अनन्तर, रत्नाकर की रससिद्धि सर्वथा प्रशस्य है। रसदृष्टि से आधुनिककाल के कवियों में केवल हरिऔध एवं मैथिलीशरण ही रत्नाकर की समता कर सकते हैं। उनसे श्रेष्ठतर कवियों में सूर, केशव, देव इत्यादि ने सर्वरससिद्धि को ध्यान में रखकर सृजन नहीं किया। उनके समकक्ष कवियों में पद्माकर इत्यादि का प्रमुख रस शृंगार है, भूषण का वीर, हरिऔध एवं मैथिलीशरण का नानारससाफल्य उन जैसा है (भले ही तद्वत् अलंकृत एवं कलात्मक न हो), जबकि प्रसाद, निराला एवं पन्त ने रसवाद-स्वच्छन्दतावाद को वरीयता प्रदान की है (इस बृहत्त्रयी में सर्वरसनिष्पत्ति के दर्शन नहीं होते)।

गंगावतरण

'गंगावतरण' रत्नाकर का अमर महाकाव्य है। गीतिकाव्यप्रधान व्रजभाषा में गंगावतरण को महान् एवं हरिश्चन्द्र की उल्लेख्य प्रबन्धकाव्यपटुता रत्नाकर को एक विशिष्ट महाकवि का स्तर प्रदान करती है। यद्यपि संस्कृत में नीलकण्ठ दीक्षित प्रणीत 'गंगावतरण' काव्य एवं शंकराचार्य कृत 'गंगालहरी' काव्य विद्यमान हैं तथा हिन्दी में भी पद्माकर कृत 'गंगालहरी' एवं काली कवि कृत 'गंगागुणमंजरी' काव्य उपलब्ध हैं, तथापि रत्नाकर कृत 'गंगावतरण' एक स्वतन्त्र एवं उत्कृष्ट कृति है। जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, गंगावतरण रामायण, ओडिसी, ऐनीड (ऐनिअड), पृथ्वीराजरासो, पद्मावत, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, प्रियप्रवास, कामायनी इत्यादि की परम्परा का व्यक्तिप्रधान काव्य न होकर महाभारत, इलिअड, 'डिवाइन कॉमेडी', 'पैराडाइज़ लॉस्ट', साकेत इत्यादि की परम्परा का वृत्तप्रधान काव्य है।[1] कुछ महाकाव्य नायकप्रधान या नायिकाप्रधान होते हैं, कुछ वस्तुप्रधान या वृत्तप्रधान। गंगावतरण शीर्षक से ही वृत्तप्रधान महाकाव्य है। गंगा का उल्लेख स्पष्ट है, किन्तु गंगा 'वस्तुतः' व्यक्ति नहीं हैं; अतः उनके अवतरण का वृत्त ही प्रधान है। यदि गंगावतरण के नायक का निर्धारण किया जाए तो निर्विवादतः वह भागीरथ होंगे क्योंकि काव्य का शीर्षक, मंगलाचरण का प्रथम छन्द एवं वृत्तविभाग तीनों उन्हीं का पक्ष लेंगे। मैं भगीरथ को भारत का महानतम विश्वकर्मा[2] मानता हूँ। उन्होंने हिमालय में व्यापक अनुसन्धान-कार्य किया, नदियों का संयोजन किया तथा विराट् गंगा का विकास किया। गंग का भागीरथी नाम उपयुक्त है किन्तु हिमालय पर एक स्वतन्त्र भागीरथी भी है जो महान् विश्वकर्मा का स्वतन्त्र स्मरण भी कराती है! सहस्रबाहु ने भगीरथ का अनुकरण कर रेवा का प्रवाह बदला, सुय्य ने वितस्ता (झेलम) का (कश्मीर का सोपोर मूलतः सुय्यपुर है)। भगोरथ धीरशांत नायक हैं। अतः गंगावतरण का अंगीरस शान्त है। रत्नाकर आत्मा से भक्त एवं मन से शृंगारी थे। इस दृष्टि से वे विद्यापति के निकट हैं, क्योंकि देव, बिहारी, मतिराम, पद्माकर, अपेक्षाकृत अधिक शृंगारी हैं। रामभक्त पोतन ने कृष्णकाव्य का प्रणयन किया था—पोतन तेलुगू के सूर हैं। कृष्णभक्त रत्नाकर ने रामपूर्वजों भगीरथ इत्यादि (गंगावतरण) एवं हरिश्चन्द्र का गान किया है। वैसे, कृष्ण पर भी उन्होंने उद्धवशतक रचा है तथा भीष्म, अभिमन्यु इत्यादि पर रचित मुक्तक छन्द भी कृष्णकाव्य में ही अन्तर्भूत होंगे। निस्सन्देह उनके काव्य के आयाम पर्याप्त व्यापक हैं, जिन्हें 'भ्रमरगीत'-काव्य, गंगाकाव्य, काशीकाव्य, हरिश्चन्द्रकाव्य एवं मुक्तककाव्य के रूपों में विभक्त किया जा सकता है।

गंगावतरण का मंगलाचरण अत्यन्त उच्चकोटि का है, जिसके तीन छप्पयों में क्रमशः गंगा, सरस्वती एवं गणेश की बहुत ही सजीव वन्दना की गई है। रत्नाकर की गणपति-वन्दना ने साकेत के मैथिलीशरण गुप्त की गणपति-वन्दना को प्रभावित किया है, यद्यपि दोनों का उत्स संस्कृत-काव्य है। प्रथम सर्ग में सुन्दर अयोध्या-वर्णन के पश्चात् पुत्रकामनारत राजा सगर का केशिनी एवं सुमति रानियों के साथ हिमगिरि के प्रस्रवण क्षेत्र में ऋषिराज भृगु के आश्रम में जाने तथा वरदान पाकर अयोध्या लौटने, केशिनी के असमंजस एवं सुमति के साठ-सहस्र सुतबीजों (जिन्हें घृतघटों में डालकर पाला-बढ़ाया गया) के उद्भव, असमंजस की दुष्टताजन्य क्रीड़ाओं (जिनमें

---

[1] रामायण, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका नायक राम, ओडिसी नायक ओडीसिअस, ऐनीड (ऐनीअड) नायक ऐनिअस, पृथ्वीराजरासो नायक पृथ्वीराज, पद्मावत नायिका पद्मिनी, प्रियप्रवास नायक कृष्ण तथा कामायनी नायिका श्रद्धा की प्रत्यक्ष या प्रायः प्रत्यक्ष सूचना दे देते हैं। महाभारत भरतवंशियों, इलिअड, इलिअम या ट्रॉय, 'डिवाइन कॉमेडी' ईसाई स्वर्ग-सुखान्तता, 'पैराडाइज लॉस्ट' आदम के स्वर्ग खोने तथा साकेत अयोध्या-घटनाचक्र की सूचना देते हैं।

[2] एंजिनीअर (इंजीनियर)। वल्लभ विद्यानगर विश्वविद्यालय (गुजरात) में 'बिड़ला विश्वकर्मा महाविद्यालय' विद्यमान है जो सिद्ध करता है कि भारत अंग्रेज़ी का शत-प्रतिशत दास नहीं है।

एक पुरबालकों को नौकाविहार हेतु ले जाकर डुबो मारना थी) से क्षुब्ध राजा का उसे देशनिष्कासन-दंड तथा उसके यशस्वी पुत्र अंशुमान को युवराज पद देने, साठ-सहस्र वीर राजकुमारों की दिग्विजय-यात्रा, इन्द्र-षड्यन्त्र एवं अश्व श्यामकर्ण का हरण, सगर-पुत्रों के असफल अश्वान्वेषण तथा उनकी निराश वापसी का वर्णन किया गया है। अधिकांशतः सर्ग वर्णन-बाहुल्य का सूचक बनकर रह जाता, यदि अन्त की ओर सगर-पुत्रों से सम्बद्ध उच्चस्तरीय वीररसनिष्पत्ति न होती :

1. तव भूपति-ढिग आनि व्यवस्था बिषम बखानी। विस्मय-व्रीड़ा-त्रास-ह्रास-लटपट मदु बानी।।[1]
परयौ रंग मैं भंग दंग ह्वै सकल बिचारत मूक-भाव सौं एक एक कौ बदन निहारत।।
2. उपाध्यायगन धाइ धवल आनन लटकाए। त्रिकुट उँचै ससंक बंक भ्रकुटी भभराए।।
भरि गँभीर स्वर भाव भूप सौं कियौ निवेदन। गयौ पर्व-दिन अस्व भयौ भारी हित-छेदन।
3. सुनि अति अनहित बैन भए नृप नैन रिसौहैं। फरकि उठे भुजदंड तने तेवर तरजौहैं।
कह्यौ सारथी टेरि त्रिपथगामी रथ नाधौ। महाचाप सायक अमोघ भाथनि भरि बाँधौ।।
सेनप होहिं सनद्ध सकल जग जीतनहारे। हम चलि देखैं आप कौन कौं प्रान न प्यारे।।
काकौ सिर धर त्यागि धरा पर परन चहत है। को जम-गाल कराल भाल निज भरन चहत है।
चाह्यौ उठन भुलि भाखि इमि बलकति बानी।।[2]

द्वितीय सर्ग में राजा के दैवज्ञों के परामर्श करने, उनके द्वारा अश्व के पाताल में होने का 'विचार', राजा के आह्वान पर पुत्रों का विकट भूमि-उत्खनन[3], किन्तु निराश होकर वापस आने, पुनराह्वान पर विकटतर अभियान तथा भगवान् कपिल के आश्रम में इन्द्रषड्यन्त्रजन्य श्यामकर्ण-दर्शन, कपिल को अश्वचोर समझने के कारण उद्दंडता तथा उनके कोप से भस्म होने का सुन्दर वर्णन किया गया है, जिसमें वीर और रौद्र रसों की सुन्दर निष्पति हुई है। तृतीय सर्ग में सगर के आग्रह पर पौत्र अंशुमान की पाताल-यात्रा, वहाँ गरुड़ के द्वारा घटनाचक्र के निरूपण, अंशुमान की पितृव्यान्त-व्यथा, गरुड़ के द्वारा गंगा से ही उनके उद्धार का निदानोल्लेख एवं उत्कृष्ट गंगा-महिमा वर्णन प्राप्त होता है, जिसकी प्रमुख विशेषता करुण रस की श्रेष्ठ निष्पत्ति है। चतुर्थ सर्ग में अंशुमान की जिज्ञासा पर गरुड़ के द्वारा परब्रह्म-रूप कृष्ण का पराशक्ति-रूप राधा के साथ हठयोग-संपृक्त गहन वर्णन प्राप्त होता है, जिसमें ब्रह्मादि देवताओं के साथ युगलछवि के अप्रतिम शिव-गान के परिणामस्वरूप राधाकृष्ण रसरूप हो जाते हैं, ब्रह्मा के द्वारा रहस्योद्घाटन पर देवताओं की प्रार्थना के कारण पुनः प्रकट होते हैं, किन्तु रस-रूप गंगा के विग्रह के साथ, जिसके कारण राधा सपत्नीभाव-रुष्ट हो जाती हैं और गंगा कृष्णलीन, देवतागण रसरूप-प्राप्ति की प्रार्थना करते हैं, तब कृष्ण चरण-नख से उन्हें पुनः प्रकट करते हैं, देवतागण उस पावन रस को सिर या आँखों पर लगाकर या आचमन कर कृतार्थ होते हैं, प्रभुसंकेत पर ब्रह्मा उसे कमंडलु में भर लेते हैं जिससे उन्हें अपरिसीम शक्ति प्राप्त हो जाती है। 'देवी भागवतम्' से अत्यधिक प्रभावित गंगावतरण का चतुर्थ सर्ग कृष्णकाव्य का एक महान् अध्याय है। इसमें कृष्ण के परब्रह्मत्व का अद्वितीय वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु यह कृष्णसम्प्रदायपरक है। गंगा विष्णुचरणनखोद्भूत मानी गई हैं। कृष्णभक्त होते हुए भी भारतेन्दु ने ऐसा ही लिखा है और कृष्ण हैं तो विष्णु के ही अवतार :

श्रीहरिपदनख-चंद्रकांतमनि-द्रबित सुधारस। ब्रह्म-कमंडल-भंडन भव-खंडन सुर-सरबस।।

तुलसी इत्यादि ने भी ऐसा ही पुराणप्रसिद्ध वर्णन किया है।[4] रत्नाकर के गंगावतरण के चतुर्थ सर्ग में गंगा को कृष्णप्रिया तथा अन्ततः कृष्णनखोद्भूता बताने में स्थूलतः कालदोष का आभास भी हो सकता है, यद्यपि सूक्ष्मतः कृष्ण एवं उनकी लीला, राधा, वृन्दावन, अक्षयवट[5] इत्यादि की चिरंतनता के आधार पर उसका निराकरण सम्भव है। यह वर्णन उड़िया-रामायण के कवि बलरामदास के राम

---

[1] 'विस्मय' अपनी अजेयता तथा अश्वहरण के दुस्साहस पर, 'व्रीड़ा' उद्देश्य-असिद्धि पर, 'त्रास' पिता का, 'ह्रास' अश्व-अन्वेषणजन्य श्रमातिरेक का, 'लटपट' इन अनेक कारणों से, 'मृदु' यज्ञ-अनुष्ठानरत पिता को आक्रोश से बचाए रहने के लिए—महान् पंक्ति, स्मरणीय भावशबलता।

[2] प्रसिद्ध आलोचक आचार्य कृष्णशंकर शुक्ल (1904-85 ई.) को यह प्रकरण बहुत पसन्द था। उच्चकोटि का काव्य-सृजन है। आ. कृष्णशंकर शुक्ल 'कविवर रत्नाकर' शीर्षक प्रस्थान-ग्रन्थ के प्रणेता थे।

[3] 'सगर' से ही 'सागर' शब्द बना है। 'सगरपुत्रों' के भूमि-उत्खनन से ही 'सागर' बना।

[4] ''पद नख निरखि देवसरि हरषी।'' (मानस), ''तुलसी जेहिके पदपंकज ते प्रगटी तटिनी'' (कवितावली)।

[5] वंशीवट। प्रयाग के अक्षयवट से भिन्न। अप्रयुक्तत्व दोषः ''रूढि योगात् बलीयसी''।

की पुरी-तीर्थयात्रा इत्यादि के वर्णन का स्मरण करा देता है तथा कृष्ण-दर्शन की गहनता के बावजूद खटक सकता है। इसमें गंगा के कृष्ण की नवप्रिया के रूप में सौन्दर्य-चित्रण बहुत ही सुन्दर है :

> स्यामा[1] सुघर अनूप-रूप गुन-सील सजीली। मंडित मृदु-मुख-चंद-मंद-मुसक्यानि[2]-लजीली।।
> काम-बाम[3]-अभिराम-सहस-शोभा शुभ धारिनि। साजे सकल सिंगार दिव्य हेरत हिय-हारिनि।।

पंचम वर्ग में अंशुमान के कपिल-पूजन कर अश्व के साथ अयोध्या लौटने, सगर के यज्ञ पूर्ण करने तथा उनके निधन, अंशुमान के राजा बनने तथा दिलीप को राज्य देकर गंगा-प्राप्ति हेतु तप करने तथा उनके निधन, दिलीप के कुछ काल हेतु राजा बनने तथा गुरु से तप-हेतु प्रस्थान की उनके रोगी होने के कारण आज्ञा न मिलने (क्योंकि रोगी, ऋणग्रस्त, विकलांग, क्षणबुद्धि, अविचारी, ये किसी भी भाँति तपस्या के अधिकारी नहीं)[4] तथा उनके निधन, भगीरथ के राजा बनने तथा कुछ काल तक राज्य करके मंत्रियों को शासन-दायित्व देकर यौवन में ही तपोद्योग द्वारा गंगा को लाने के लिए निकल पड़ने का वृत्त मनोहारी शैली में वर्णित है। रत्नाकर का वर्णन-कौशल तुलसीदास का स्मरण कराता है। सूर, घनआनंद इत्यादि तक वर्णनात्मक कविता में सफल नहीं हो सके, पद्माकर का 'रामरसायन' तक शिथिल रह गया, किन्तु रत्नाकर ने सफल वर्णनात्मक कविता लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि शताब्दियों तक कविता की रानी और अद्यावधि प्रभावी व्रजभाषा में श्रेष्ठ वर्णनात्मक कविता भी की जा सकती है—गीतों की रानी प्रबन्धों की रानी भी बन सकती है।

षष्ठ सर्ग में भगीरथ के गोकर्णधाम जाकर सुंदर-सुरम्य प्राकृतिक परिवेश में घोर तप करने का पारम्परिक वर्णन प्राप्त होता है, जिस पर कुमारसम्भवम्, रामचरितमानस एवं पार्वतीमंगल के एतद्विषयक वर्णनों की थोड़ी-सी छाप पड़ी है। भगीरथ के तपः कृश शरीर का वर्णन बहुत अच्छा है :

> रह्यौ भूप कौ रूप भावना के लेखा सौ। अस्ति नास्ति कै बीच गनित कल्पित रेखा सौ।।

इस सर्ग में ब्रह्मा एवं शिव के तपतुष्ट होने का वर्णन मनोहारी है। ब्रह्मा कमंडलु से गंगा की धारा को छोड़ने के लिए प्रस्तुत थे किंतु उसे ग्रहण करने की शक्ति केवल शिव में थी। इस सर्ग में शिवशोभावर्णन अच्छा हुआ है, जिस पर शिवताण्डवस्तोत्रम्, शिवमहिम्नस्तोत्रम् इत्यादि का कुछ प्रभाव परिलक्षित होता है।

'गंगावतरण' के सप्तम सर्ग में महान कविता के विश्वस्तरीय दर्शन होते हैं। त्रयोदशसर्गीय महाकाव्य में यह सर्ग सर्वश्रेष्ठ है, जिसमें गंगा के ब्रह्म-कमंडलु से अवतरण का वर्णन दान्ते की 'डिवाइन कॉमेडी'[5], तुलसीदास की कवितावली[6] तथा निराला की 'राम की शक्तिपूजा' के 'उदात्त' से बखूबी टक्कर लेता है। (यद्यपि 'राम की शक्तिपूजा' महाकविता है, महाकाव्य नहीं तथापि अपने संकीर्ण कलेवर में उदात्त से प्रशस्यतः निष्पन्न है।) गंगावतरण हिंदी की 'डिवाइन कॉमेडी' है : वही पवित्रता, वही तप-त्याग, वही उदात्त कल्पना का भव्य चमत्कार, किन्तु वह मजहबी संकीर्णता नहीं जिसके नरकवाद में स्वर्ग केवल ईसाइयों के लिए आरक्षित है। हिन्दूधर्म ने प्रायः सदैव सत्कर्म से मोक्ष का प्रतिपादन किया था, किन्तु सम्भवतः भीतरी-बाहरी प्रभावों (जिनमें किसी व्यक्ति को मानने से ही निर्वाण या कैवल्य या सिद्धशिला या स्वर्ग या जन्नत की प्राप्ति बताई गई है) के कारण उसमें भी विष्णु या राम या कृष्ण या शिव का नाम लेने मात्र से मोक्ष-सिद्धि प्रतिपादित की गई। ऐसा किया तो गया किन्तु यह केवल भक्ति में ही खप पाया, क्योंकि ज्ञान या योग या कर्म में इतना लचीलापन संभव नहीं था। धर्मों और मजहबों ने मनुष्य को परावलंबी और पापकर्मप्रवृत्त करने में बड़ा योगदान दिया है, किन्तु हिन्दूधर्म में मूलतः ऐसा न था और बाद में भी इसका प्रभाव सीमित ही रहा—जहाँ रहा भी वहाँ मानव-मानव में भेद नहीं डाला गया।

---

[1] श्यामा = कृष्णा = अपूर्व गौरांगी सुन्दरी। उज्ज्वल शृंगाररस के देवता विष्णु श्याम व कृष्ण हैं।

[2] प्रसाद की 'मुसक्यान' पर प्रभाव।

[3] कामबामा = रति।

[4] रोगी ऋनिया अंगभंग आतुर अविचारी।
ये नहिं काहू भाँति तपस्या के अधिकारी।।

[5] विशेषत नरक तथा समान्यतः शुद्धिलोक एवं स्वर्ग का क़दम-दर-क़दम चित्रण।

[6] सुंदरकांड का लंकादहन-वर्णन, जो विश्व-काव्य के सर्वोत्तम अंशों में एक है।

'गंगावतरण' के सप्तम सर्ग में शिव के गंगाग्रहण-प्रस्तुत रूप का अतीव भव्य चित्रण प्राप्त होता है, क्योंकि गंगा गर्वोक्ति कर चुकी थीं। ब्रह्मकमंडलु से शिव-जटाजूट तक गंगा का अवतरण मुख्यतः अद्‌भुत एवं प्रसंगतः भयानक रसों, महान् उत्प्रेक्षा-संदेह-संकर, यमक, रूपक, उदात्त एवं बिम्ब से सर्वविध सम्पन्न होने के कारण संसार-साहित्य की एक अमर निधि है :

निकसि कमंडल तैं उमड़ि नभमंडल खंडति। धाई धार अपार बेग सौं बायु बिहंडति।।
भयौ घोर अति सब्द धमक सौं त्रिभुवन तरजे। महामेघ[1] मिलि मनहु एक संगहिं सब गरजे।।
भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके। हरके बाहन रुकत नैकु नहिं बिधि हरि हर के।।
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय-थरके। धुनि प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके।।....
बिपुल बेग सौ कबहुँ उमगि आगे कौं धावति। सौ सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिं चलि आवति।।
फटिक सिला के बर बितान मन बिस्मय बोहत। मनहु बिसद छद अनाधार अंबर मैं सोहत।।
स्वाति घटा लहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी। कैधौं आवति झुकति सुभ्र आभा अति रूरी।।
मीन-मकर-जलब्यालनि की चल चिलक सुहाई। सो जनु चपला चमचमाति चंचल छबि छाई।।....

क्रोध, वेग, उत्साह इत्यादि से ऊभचूभ गंगा शिव को अपनी लपेट में लेकर शक्ति-नष्ट करने, पाताल से टकराने तथा पुनः कंदुक के सदृश वापस आ जाने के उद्‌देश्य से अवतरण कर रही थीं। किन्तु शिव की मनोहर झाँकी ने उन्हें अकस्मात् मोहित कर लिया। वीरादिरस शृंगारसंपृक्त हो गए! यहाँ महान् भाव-संधि एवं भावोदय के क्रमिक दर्शन होते हैं :

....बिपुल बेग बल बिक्रम कैं ओजनि उमगाई। हरहराति हरषाति संभु-सनमुख जब आई।।
भई थकित छबि छकित देखि हर[2]-रूप मनोहर। ह्वै आनहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर।।
भयौ कोप कौ लोप चोप औरै उमगाई। चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष-रुखाई।
छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग मैं। थहरन के ढरि ढंग भरे उछरति तरंग मैं।।
भयौ बेग उद्वेग पैंग छाती पर धरकी। हरहरान धुनि बिघटि सुरट उघटी हर-हर की।।
भयौ हुतौ भ्रूभंग-भाव जो भव-निदरन कौ। तामैं पलटि प्रभाव पर्‌यौ हिय हेरि हरन कौ।।...

अष्टम सर्ग में शिव-गंगा-प्रणय से उद्‌देश्य-छिन्न भगीरथ के पुनः योग-जप-तप-यज्ञापि करने, शिवस्तुति, शिव के प्रसन्न होकर गंगा से उनकी अनुशंसा तथा गंगा के हिमालय-प्रवाह किन्तु जह्नु द्वारा पान, जह्नु-स्तुति तथा जाह्नवी के पुनः प्रवाहित होने का वृत्त अत्यन्त ललित रूप में वर्णित है। नवम सर्ग में भगीरथ के पीछे-पीछे गंगा के कर्णप्रयाग, उत्तरकाशी, देवप्रयाग, ऋषिकेश तथा हरिद्वार (हरद्वार)[3] पहुँचने का उत्कृष्ट वर्णन किया गया है। 'गंगावतरण' में गंगा-महिमा की यत्र-तत्र-सर्वत्र व्याप्ति स्वाभाविक है। यह सर्ग भी अपवाद नहीं है।

दशम सर्ग में गंगा पृथिवी पर प्रवाहित होती हैं। यह सर्ग कल्पनाशक्ति एवं प्रकृति-चित्रण की दृष्टि से अत्यन्त उच्च कोटि की कविता से निष्पन्न है तथा सप्तम सर्ग के अनन्तर महाकाव्य में सर्वोत्तम है। एक छन्द की बानगी से भी काम चल सकता है :

कहुँ क्रीड़त करि-निकर तरंगनि मैं सुख सरसत। मनु कलिंद के सिखर-बृन्द सित घन बिच दरसत।।
कहुँ कपि लटकत नीर अटकि तट बिलुलित डारनि। बालखिल्य मनु लहत सु तप-सँचित-सुख-सारनि।।

गंगा की मोक्ष-शक्ति पर शंकराचार्य, विद्यापति, तुलसी, पद्‌माकर इत्यादि प्रशस्य काव्य-सृष्टि कर चुके थे। रत्नाकर ने उसमें चार चाँद लगाए हैं। अंक-काव्य तुलसी, बिहारी, देव, सनेही[4] इत्यादि ने भी रचा है, किन्तु रत्नाकर की सफलता व्यापकतर है, रम्यतर हो या न हो :

---

1. प्रलय-घन।
2. परिकरांकुर का यमक-सम्पन्न महान् प्रयोग।
3. बदरीनाथ या बदरी-नारायण (विष्णु) के कारण वैष्णव हरिद्वार कहते हैं, केदारनाथ (शिव) के कारण शैव हरद्वार। बदरीनाथ के 'धाम' के कारण हरिद्वार अधिक प्रसिद्ध है, क्योंकि शिव का 'धाम' रामेश्वरम् है। चार में दो अन्य 'धाम' द्वारिकापुरी तथा जगन्नाथपुरी हैं। महाभारत में हरिद्वार या हरद्वार के लिए 'गंगाद्वार' नाम का प्रयोग किया जाता है। पुराण-प्रसिद्ध 'माया' नगरी हरिद्वार में ही है। सात 'पुरियों' में अयोध्या, मधुरा (मथुरा), माया (हरिद्वार), काशी, कांची, अवंतिका (उज्जयिनी, उज्जैन) एवं द्वारिकापुरी समाविष्ट हैं। केवल द्वारिका ही 'धाम' भी है, 'पुरी' भी। वैसे, भारत की आत्मा काशी (वाराणसी जिसका नगर-भाग रहा है) ही रही है।
4. "जग ते रहु छत्तीस ह्वै राम-नाम छा-त्तीन।", "कहत सबै बेंदी दिए आँकु दसगुनौ होत।", "चारि कौ आँकु" (कटि-प्रदेश), 'बारहबाट किया अड़तीस ने...तूने दसों किया तू थी उन्नीस तो क्यों बनी थी तू इक्कीस दिसम्बर'' (आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी का देहान्त 21 दिसम्बर, 1938 को हुआ था) इत्यादि में।

कोउ पापिहिं पंचत्व प्राप्त सुनि जमगन धावत। बनि बनि बावन बीर बढ़त चौचंद मचावत।।
पै ताकी लखि लोथ त्रिपथगा के तट ल्यावत। नौ-द्वै-ग्यारह होत तीन-पाँचहि बिसरावत।।

इस सर्ग में गंगा-पूजन-अर्चन-स्नानादि के बड़े सुन्दर वर्णन हुए हैं। सुन्दरियों के प्रकरण रत्नाकर की रुचि के विशेष निकट हैं, जो पिछले सर्गों में यत्र-तत्र अगले सर्गों में यथास्थान प्राप्त होते रहते हैं। ऐसे प्रकरणों में भारतेन्दु की 'गंगा-छवि' कविता (जो 'सत्य-हरिश्चन्द्र' नाटक की वैसी ही निधि है जैसी 'यमुना-छवि' कविता 'चन्द्रावली' नाटिका की) ध्यान में आ जाती है। ब्रह्मावर्त (बिठूर, जनपद कानपुर देहात) से होते गंगा तीर्थराज प्रयाग पहुँचती है। संगम-वर्णन में रत्नाकर तुलसी से प्रभावित होते हुए भी कम पावन एवं रमणीय नहीं है :

मनहु सितासित चमर ढुरत दुहँ दिसि तैं आवत। तीर्थराज पर हिलत मिलत सुखमा सरसावत।।
उभय कछारनि बीच बिसद अच्छयबट राजै। मरकत मनि कौ अटल छत्र मानौ छबि छाजै।।
चहुँदिसि संख-मृदंग-झाँझ-भेरी-धुनि छाई। मनहु मंजु राज्याभिषेक की बजति बधाई....

एकादश सर्ग में गंगा के विंध्यादि एवं चरणाद्रि होते काशी पहुँचने का सुन्दर वर्णन किया गया है, जो शिव-सन्दर्भवश शृंगार-स्पर्श से पुलकित है, किन्तु सविस्तार वर्णन सुन्दरियों के स्नान-पूजन-आराधन इत्यादि का ही है, जिसमें यत्र-तत्र महान् कल्पना के दर्शन हो जाते हैं :

...कोउ झुकि करति प्रनाम टेकि महि माथ मयंकहिं। मेटति मनहु बिसाल भाल के कठिन कुअंकहिं।।[1]

काशी से गंगा के विश्वामित्र-धाम बकसर (बक्सर, बिहार)[2] मगधदेश एवं बंग होते हुए सुन्दरवन पहुँचने तथा सागर से मिलने का वर्णन भी बहुत अच्छा है।

द्वादश सर्ग में सगर के आठ सहस्र पुत्रों के उद्धार, स्वयं ब्रह्मा द्वारा भगीरथ-प्रशस्ति तथा विष्णु द्वारा वरदान (भगीरथ ने भारत पर कृपादृष्टि चाही जो कवि के आदर्शवादी युग की प्रवृत्ति के सर्वथा अनुरूप थी) का वर्णन किया गया है। अन्तिम त्रयोदश सर्ग में भगीरथ द्वारा उच्च कोटि की गंगा-स्तुति (जिसमें पुनः कवि की देशभक्ति दृग्गत होती है), काशी तक गंगा के साथ यात्रा, तदनन्तर उनके अयोध्या-आगमन एवं भव्य राज्यारोहण का वर्णन है। महाकाव्य सर्वतः सुखान्त है। 'गंगावतरण' 1923 ई. में समाप्त हुआ। कवि ने अन्त में काव्य-समापन तिथि पर एक दोहा दे दिया है :

संवत् उनइस-सौ-असी[3] गुरु-पूनौ भृगु-बार। गंग-अवतरन काव्य यह पूरन भयौ उदार।।[4]

उद्धवशतक

यद्यपि यह निर्णय कर पाना कठिन है कि रत्नाकर का सर्वोत्तम काव्य 'गंगावतरण' है अथवा 'उद्धवशतक', तथापि लघ्वाकार में दीर्घगुणवैभव एवं लोकप्रियता दो-दो बिन्दु उद्धवशतक के पक्ष में गए हैं। उद्धवशतक के एक सौ अठारह छन्द हिन्दी-काव्य-कोष के एक सौ अठारह रत्न हैं। एक भी छन्द (घनाक्षरी या कवित्त) शिथिल नहीं है। गहन प्रेमानुभूति, भव्य बिम्बालेखन, मार्मिक विरहवर्णन एवं सूक्ष्म दार्शनिकता के समाहार में उद्धवशतक हिन्दी-साहित्य का एक महान् काव्य है। इसका शीर्षक नायक-व्यंजक न होकर भ्रमरगीत-परम्परा-व्यंजक है। यह वृत्तसंकेत के बावजूद मुक्तककाव्य[5] है, क्योंकि एक तो प्रत्येक छन्द अपने-आप में पूर्ण है; दूसरे काव्य वृत्तप्रधान न होकर भावप्रधान अथवा विचार-प्रधान है। हिन्दी की भ्रमरगीत-परम्परा के आदिकवि-मूर्द्धन्यकवि सूर ने निर्गुण पर सगुण,

---

[1] मंत्र महामनि विषय ब्याल के।
मेटत कठिन कुअंक भाल के।। ('राम' पर तुलसी)

[2] एक बकसर (बक्सर) उत्तर प्रदेश में गंगातट पर ही उन्नाव जनपद में भी है। यहाँ चन्द्रिकादेवी का प्रसिद्ध मन्दिर है। 'सरस्वती' के एक यशस्वी सम्पादक देवीदत्त शुक्ल का जन्म यहीं हुआ था। पास ही आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी का विख्यात दौलतपुर (जनपद रायबरेली) है तथा पास ही गंगा-पार सोहनलाल द्विवेदी की बिंदकी (जनपद फ़तेहपुर)।

[3] गोस्वामी तुलसीदास के निधन के तीन-सौ वर्ष पश्चात्।

[4] शुक्रवार, आषाढ़-पूर्णिमा, संवत् 1980 विक्रमी को यह विशद 'गंगावतरण' काव्य पूर्ण हुआ।

[5] यदि मेरे द्वारा प्रतिपादित 'मध्यस्थ-काव्य' स्वीकार किया जाए तो प्रबन्धकाव्य एवं मुक्तककाव्य दोनों से संपृक्त भी तथा अस्मिता-निष्पन्न भी। ('खड़ीबोली-कविता में विरह-वर्णन' ग्रन्थ में इस विषय पर प्रकाश डाला है—यह 1964 ई. में प्रकाशित हुआ था।)

निराकार पर साकार, ज्ञान पर भक्ति एवं योग पर प्रेम को गहन वरीयता प्रदान की है, जो भावप्रधान है। नन्ददास का भँवरगीत विचारप्रधान है। इस प्रकार, सूरदास और नन्ददास एक-दूसरे के पूरक हो गए है। रत्नाकर में सूरदास एवं नन्ददास का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। उनका भ्रमरगीत-परम्परा का उत्तराधिकार नितान्त अस्मितासम्पन्न है। 'उद्धवशतक' आदि से अन्त तक मौलिक कृति है। भ्रमरगीत निवृत्ति पर प्रवृत्ति का विजयगीत है। भ्रमरगीत जीवनगीत है, पलायनगीत नहीं। स्वभावतः उसका अंगीरस शृंगार है, जिसकी आध्यात्मिकता में स्वकीया एवं परकीया ('साहित्य-दर्पण' के आचार्य विश्वनाथ का ''परोढ़ां वजयित्वा'' की महान् स्थापना) अथवा रस-निष्पत्ति एवं रसाभाव के बिन्दु निर्विवादतः विलीन हो जाते हैं। सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, तुलसीदास इत्यादि जीवनवादी महाकवियों ने आध्यात्मिकता को जीवन-निरपेक्ष होने से बचाया है। जीवन-निरपेक्ष आध्यात्मिकता कोरे वाग्विलास के ही अनुकूल हो सकती है। रत्नाकर प्रखर जीवनवादी के रूप में सूर एवं तुलसी के सक्षम वंशज हैं।

वेदमार्ग प्रवृत्ति की उस उदात्तता का मार्ग है जिसमें निवृत्ति अनायास समाहित हो जाती है। धर्मानुसार अर्थ एवं काम से निष्पन्न जीवन स्वतः मोक्षमय हो जाता है। वैकुण्ठ का अर्थ ही कुण्ठाहीन-लोक है। स्वर्ग में मानव स्वतः गमन करता है, किसी असली या नक़ली दिव्यपुरुष की अँगुली पकड़कर नहीं। वेदमार्ग उदारमार्ग है जिसके ''एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति'' तथा ''एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति'' के सर्ववाद अथवा अद्वैतवाद एवं बहुदेववाद, निर्गुणवाद एवं सगुणवाद, निराकारवाद एवं साकारवाद इत्यादि के बीज अनायास ही प्रतिपादित किए जा सकते हैं। मनुस्मृतिकार ने ''वेदोऽखिलोधर्ममूलम्'' इसी दृष्टि से कहा है। किन्तु स्वपूजामूलक वैयक्तिक धर्मों एवं मज़हबों में ऐसी उदरता कहाँ? यदि उनमें उदारता आ जाए तो नए प्रवर्तक पुरानों को ले डूबें!

सहज धर्म वह है जो मानव मनोविज्ञान से न्याय करते हुए भी उसे स्वच्छन्द या हिंस्र या कुकर्मी न बनाए। ''हम चाहे जो करें, हमारा देवता या आराध्य या गुरु या पीर या पैग़म्बर हमें स्वर्ग दिला ही देगा'' की भावना या प्रतीति मानव को कुमार्गगामी बना देती है। साथ ही, संकीर्ण विचारधारा वाला व्यक्ति अपने अतिरिक्त सबको नरकगामी या हीन या पापी समझने का पाप भी करने लगता है। मध्यकाल में शासकधर्म के आतंक के कारण निर्गुण-निराकार के प्रतिपादक सगुण-साकार के प्रतिपादकों को हीन या अबोध या स्वर्गच्युत समझने लगे थे। गुणरहित, आकाररहित परमात्मा का प्रतिपादन ज़ोरों पर था। निगुण-निराकार के ठेकेदार निर्गुण-निराकार को पीछे ढकेलकर स्वयं अपनी पूजा कराने लगे। राम या कृष्ण के आधार पर प्रहार कर निर्गुण-निराकार की आड़ में अपनी पूजा कराने का कुलक्ष्य सफल हो जाता तो हिन्दूधर्म (जिसकी दशा राजनैतिक कारणों से दयनीय थी ही) सैकड़ों पंथों में बँटकर समाप्त हो सकता था। अतः निर्गुण-निराकार पर सूर इत्यादि ने व्यंग्य भी किए तथा ललित-जीवनवादी कृष्णप्रेम की तुलना में उसे त्याज्य भी सिद्ध किया। 'निगुण' सम्भव ही कहाँ है? 'निराकार' से मानव का कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा? हम अपनी सनातन संस्कृति एवं कलासम्पन्न परम्परा क्यों त्यागें? कृष्ण की मनोहर मूर्ति, संगीत के स्वर्ग का साकार-रूप वंशी, मोहक नृत्य की त्रिभंगी मुद्रा, प्रेम और विरह का धन त्यागकर हम ठूँठ क्यों बनें? ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका उत्तर सरल नहीं। अतः गोपियाँ जीतीं और उद्धव हारे—हारी संस्कृति जीती और बाहरी प्रभाव हारे! भ्रमरगीत का जीवनवादी-कलासम्पन्न ललित-दर्शन आज भी प्रभावी है। शम्भुदयाल सिंह 'सुधाकर' कृत 'अनुरागशतक' (1983 ई.) एवं प्रकाश द्विवेदी कृत 'पारावार ब्रज कौं' (1990 ई.) शीर्षक ब्रजभाषा-काव्य इस कथन के दो नए प्रमाण हैं। 'बेर भीलनी के' (खंडकाव्य) सियाराम मिश्र ने 'उद्धवशतक' की रसवत्ता एवं कला को रत्नाकर की प्रेरणा से ही राम-काव्य तक प्रसरित किया है। रत्नाकर भ्रमरगीत-परम्परा के एक प्रतिनिधि महाकवि हैं। सूर के अतिरिक्त कोई भ्रमरगीतकार उनसे आगे नहीं जा पाता।

'उद्धवशतक' मंगलाचरण से लेकर अन्तिम छन्द तक टकसाली ब्रजभाषा एवं मनोहारी अलंकरण से निष्पन्न है। भावशबलता की दृष्टि से इसके अनेक छन्द अतीव आकर्षक हैं। किन्तु इसकी सर्वोपरि उपलब्धि है, प्रेमतत्त्व की प्रतिष्ठा, जो व्यवधानों से सशक्त होती है; प्रेमी का योग प्रियतमसिद्ध है, जिसे वियोग से शक्ति मिलती है—एक हृदयदर्पण में एक प्रियबिम्ब परिस्थिति-प्रहार से टूक-टूक होकर प्रत्येक टुकड़े के बिम्ब के कारण अनेकगुण ही हो सकता है :

आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तोपै, ऊधौ ये बियोग के बचन बतराबौ ना।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ, दुख दरिबें कौं तोपै अधिक बढ़ावौ ना।।
टूक-टूक ह्वैहै मन-मुकुर हमारौ हाय, चूकि हूँ कठोर बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यो मोहिं, हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना।।

इस महान् छन्द में 'योग' शब्द का श्लिष्ट प्रयोग अपूर्व गहन है, किन्तु ''प्रेम-विरत करने का यत्न प्रेम-रत करने में सहायक मात्र सिद्ध होगा'' का लक्ष्यार्थ गहनतर है तथा ''सारे प्रहार हमारी सनातन एवं बहुरंगी धर्मसाधना को अनेकमुखी शक्ति ही प्रदान

कर सकते हैं' का व्यंग्यार्थ गहनतम। रत्नाकर का 'योग' एवं 'वियोग' का यह चमत्कारपूर्ण शब्दप्रयोग 'द्वापर' में मैथिलीशरण के 'वेद' एवं 'निर्वेद' के ऐसे ही प्रयोग का स्मरण करा देता है—रत्नाकर कला-गहन हैं तो मैथिलीशरण संस्कृति-गहन :

वेदमार्गियों में आ पहुँचा, यह निर्वेद कहाँ से?
लौटा ले जाओ हे उद्धव, लाए इसे जहाँ से![1]

निराकारवाद-दुराग्रह तर्क को सन्तुष्ट नहीं कर सकता था या तो सांख्य-शास्त्र के महादार्शनिक कपिल के ''ईश्वरासिद्धेः'' की ओर प्रेरित करता है या बुद्ध के ''सर्वं अनात्मम्'' की ओर या मार्क्स के ''धर्म अफ़ीम'' की ओर। धर्म या जीवन को नीरस या ठूँठ बनाना रत्नाकर को इष्ट नहीं। वे सूर के वंशज थे, भारतेन्दु के ठेठ उत्तराधिकारी। निर्गुण-निराकार न प्रत्यक्ष है न लालित्यपूर्ण। रत्नाकर ने जीवनवाद के मंडन एवं व्यावहारिकता के पक्ष में बहुत सुन्दर छन्द लिखे हैं। यथा :

रस के प्रयोगनि के सुखद सु जोगनि के, जेते उपचार चारु मंजु सुखदायी हैं।
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन, देत ना सुदर्शन हूँ यौं सुधि सिराई हैं।।
करत उपाय न सुभाय लखि नारिनि कौ, भाय क्यों अनारिनि कौ भरत कन्हाई हैं।
ह्याँ तौ विषमज्वर-वियोग की चढ़ाई, यह पाती कौन रोग की पठावत दवाई हैं।।

हिन्दूधर्म कभी आसमान या हवा में क़िले बनाने के यत्न में नहीं रमा। वह सदैव धरती में रमा है। वेद के देवता इन्द्र (इन्द्रियशक्ति या जीवन्तता के प्रतीक), अग्नि (ऊर्जा के प्रतीक), सोम (रस की मोहकता-मादकता के प्रतीक) रहे हैं या फिर प्रत्यक्ष जीवनकारण सूर्य, मरुत्, नदी इत्यादि! मनुष्य के सच्चे देवता, नदी, वन, वृक्ष, पशु, पक्षी हैं, तो पर्यावरणरक्षा अथवा जीवनरक्षा करते हैं। दूसरे, राम और कृष्ण हमारे सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण, साँस-साँस में ऐसे रम, रस और रच गए हैं कि इनके बिना हमारा जीवन जीवनरहित हो जाएगा—हमारे तीर्थ, हमारे तीज-त्योहार, हमारा साहित्य, हमारे लोकगीत, हमारी लोककथाएँ, हमारे नाटक-नौटंकी, हमारे रास-विलास सबके प्राण ये ही हैं। इनको छोड़कर हम संस्कृतिहीन, क्रांतेहीन, जीवनहीन हो जाएँगे। निर्गुण-निराकार से हमारा कोई कार्य नहीं सर सकता :

कर-बिनु कैसैं गाय दूहिहै हमारी वह, पद बिनु कैसैं नाचि थिरकि रिझाइहै।
कहै रत्नाकर बदन बिनु कैसैं चाखि, माखन, बजाइ बेनु, गोधन गवाइहै।।
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवनि बिना ही हाय, मेरे ब्रजबासिन की बिपति बराइहै।
रावरो अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म, ऊधौ, कहौ कौन धौं हमारैं काम आइहै।।

प्रेम में, मिलन हो या विरह, पुलक है, जीवन है, रस है, कला है, सौन्दर्य है :

बिकसित बिपिन बसंतिकावली कौ रंग लखियत गोपिन के अंग पियराने[2] मैं।
बौरे बृन्द लसत रसाल-बर बारिनि के, पिक की पुकार है चवाव उमगाने मैं।।
बैहरि बतास लै होत पतझार झार तरुनि-समूहनि कौ उसास अधिकाने मैं।
काम-बिधि बाम की कला मैं तीन मेष कहा, ऊधौ, नित बसत संत बरसाने मैं।

भ्रमरगीत-परम्परा में निर्गुणवादी-निराकारवादी ज्ञानी उद्धव को अन्ततोगत्वा सगुणवादी-साकारवादी प्रेमी उद्धव के रूप में परिणत कर अन्धविश्वास पर विश्वास, निवृत्ति पर प्रवृत्ति, दुराग्रह पर आग्रह की विजय चित्रित की गई है। निर्गुणवादी-निराकारवादी नामदेव, कबीर, नानक इत्यादि को भी सगुणवाद-साकारवाद की शरण लेनी पड़ी है, जैसा कि उसके सृजन से निर्विवादतः स्पष्ट है। सम्प्रति यत्र-तत्र कबीरपन्थी मन्दिरों में हनुमान् जो विद्यमान हैं (माओ के व्यक्तिगत कक्ष में हनुमान् जी विराजमान रहते थे और उस अकुंठित-महान् क्रान्तिकारी-कवि ने 'महाकपिराज' जैसी कविताएँ लिखी हैं), नानक के निर्गुणवाद-निराकारवाद का विरोध

---

[1] 'वेद' सकारात्मक है, 'निर्वेद' नकारात्मक। पता नहीं, किन अनपेक्षित तत्त्वों से प्रेरित होकर या नव्यता-व्यामोहवश या स्वप्रतिष्ठार्थ बुद्ध, महावीर इत्यादि ने अवैदिक पथ पकड़कर राष्ट्र को निर्बल बनाया? द्रष्टा ऋषि, भारतीय-काव्यशास्त्र के जनक भरत ने अमर 'नाट्यशास्त्र' में 'वेद' के कारण ही 'आठ रस' माने हैं ('शान्त भी' अवश्य कह दिया है)!

[2] महान् श्लेषः पीताभा एवं प्रियमयता! वैसे, सारा छन्द श्लिष्ट-सांगरूपक का एक अद्वितीय उदाहरण है, 'उद्धवशतक' के षड्ऋतुवर्णन का धन है। पवर्गगत श्रुत्यनुप्रास भी उच्चस्तरीय है। 'बरसाने' के श्लेष ने ''नित बसन्त बरसाने मैं'' में विरोधाभास की चमक भी ला दी है। यह हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ छन्दों में एक है; और, रत्नाकर ने इस वर्ग के कई छन्द रचे हैं। उनका महाकवि-रूप पद्माकर या प्रसाद के स्तर का है।

स्वयं उनके पुत्रद्वय श्रीचन्द्र-लक्ष्मीचन्द्र (श्रीचन्द्र-लखमीचन्द्र) ने किया था तथा उत्तराधिकारी अंगद ने कृष्ण को परम देवता माना था। नामदेव, कबीर, नानक, माओ इत्यादि क्रान्तिकारी नेता अकुंठित महापुरुष थे, जो परवर्ती कुंठित-क्षुद्रपुरुषों की संकीर्णता के बन्दी नहीं बन सकते थे। निर्गुणवाद अवैज्ञानिक भी है, अमनोवैज्ञानिक भी। गुणरहित गुण-स्रष्टा नहीं हो सकता। मानव-मन गुणरहित में नहीं रम सकता। निराकारवाद अवैज्ञानिक एवं अमनोवैज्ञानिक होने के साथ-साथ अव्यावहारिक भी है। आकारहीन से अन्धविश्वासहीन-जड़वादिताहीन लगाव सम्भव नहीं। आकार को आकार से ही सुख, उल्लास एवं आनन्द प्राप्त हो सकता है। इसीलिए, निर्गुण-निराकार ऋषि-मुनि या प्रभुपुत्र-पैग़म्बर या गुरु-ज्ञानी की बैसाखी के बिना नहीं चल पाता, जबकि सगुण-साकार खड्ग एवं प्रलोभन से बचनेवाले अनुयायियों को गतिशील करता है। विजयी भ्रमरगीत-दर्शन की सरस निष्पत्ति में रत्नाकर ने सूर इत्यादि का सफल अनुकरण किया है :

> प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ, थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।।
> कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ, मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है।।
> धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं, सारत बहोलिनि जो आँस-अधिकाई है।
> एक कर राजे नवनीत जसुदा कौ दियौ, एक कर बंसी बर राधिका पठाई है।।

यह भावना-बिम्ब रसखान, रहीम, ताज बेग़म, नज़ीर अकबराबादी इत्यादि का स्मरण करा देता है। यदि आधुनिक भारत में खुसरो, रामानन्द, रैदास, अंगद, तुलसीदास, अकबर, गोविन्दसिंह जैसे योग्य-सफल अथवा उदार-मानवतावादी नेता हुए होते, तो राष्ट्र का रूप-रंग कुछ और ही होता। इन सारे महान् और सदाबहार नेताओं ने हमें परम्परा से उच्छिन्न नहीं किया क्योंकि परम्परा से उच्छिन्न राष्ट्र की दशा पंख-कटे पंछी की जैसी हो जाती है, वह अन्य राष्ट्रों की परम्परा का दास बनकर अस्मिता खो बैठता है। राष्ट्र-जीवन कुछ प्रतीकों पर चलता हैः हमारे प्रतीक रहे हैं राम और कृष्ण। रामानन्द, तुलसी, सूर, गोविन्दसिंह इत्यादि ने हमें राम और कृष्ण से जोड़े रखा। साथ ही, राष्ट्र केवल परम्परा से बद्ध होकर प्रगति नहीं कर सकता अतः इन महान् नेताओं ने समता, प्रेम, मानवतावाद का प्रतिपादन भी किया। इन नेताओं को देखकर आज के उन नेताओं पर तरस तक नहीं आ पाता जो स्वार्थ के लिए राष्ट्र की बलि तक चढ़ा सकते हैं! सूर, रत्नाकर इत्यादि ने भ्रमरगीत द्वारा भारतीय परम्परा की रक्षा का प्रशस्य यत्न किया है।

आकलन

रत्नाकर की कविता पर कला के अत्यधिक आग्रह का आरोप लगाया जा सकता है। किन्तु उनकी कला ने भाव को आघात न पहुँचाकर उसे सजाया-सँवारा है—इस सत्य को नकारना सम्भव नहीं है। बौद्धिककाल की समग्र कविता में रत्नाकर जैसा मँजा हुआ कलाकार कोई नहीं दिखता—पन्त तक नहीं क्योंकि 'पल्लव' और 'गुंजन' के अनन्तर वे प्रयत्नज-कविता के एक प्रतीक बन गए थे, जबकि रत्नाकर आद्यन्त एकरस-एकरूप हैं। निस्सन्देह, पन्त रत्नाकर के स्तर के महाकवि हैं—जीवनायामों मे बृहत्तर भी। किन्तु काव्यकला की समग्रता में रत्नाकर अद्वितीय हैं। रत्नाकर को देव और बिहारी, प्रसाद और पन्त का स्तर प्राप्त है तथा वे हिन्दी-साहित्य के इतिहास की एक महान् विभूति हैं।

भगवानदीन 'दीन'

आदर्शवादी युग के आलोचकों में लाला भगवानदीन 'दीन' (1866-1930 ई.) को एक उल्लेखनीय स्थान प्राप्त है। उनकी पत्नी बुन्देलाबाला एक उत्कृष्ट राष्ट्रीय कवयित्री थीं। 'दीन' का जन्म ग्राम बरबट, जनपद फ़तेहपुर के एक कायस्थ परिवार में हुआ। वे उर्दू एवं फ़ारसी के अच्छे विद्वान् थे। किन्तु छतरपुर में लगभग चौदह वर्षों तक अध्यापन के कारण वे बुन्देलखण्ड में काफ़ी रम-रस गए, जिसका परिणाम 'ठाकुर-ठसक' का 'प्रस्थान' प्रकाशन था जिसके कारण ठाकुर (तृतीय) की हिन्दी-साहित्य में समुचित प्रतिष्ठा हो सकी, क्योंकि आचार्य शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में ठाकुर के विवरण का आधार यह ग्रन्थ ही है। 'दीन' जी केशव-काव्य के पुनरुद्धारक भी कहे जा सकते हैं क्योंकि शुक्ल जी की तरंगवादी-आलोचना के प्रमुख आखेट महाकवि कृत महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' एवं शास्त्रीयकाव्यद्वय 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' की स्तरीय टीकाएँ लिखकर उन्होंने 'कठिन काव्य का प्रेत' सभी अध्येताओं के लिए सुलभ कर दिया। उनकी 'कवितावली' एवं 'बिहारी-सतसई' की टीकाएँ भी स्तरीय हैं। वे हिन्दी के प्रात्ययिक एवं सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक

टीकाकार हैं। 'सूर-पंचरत्न' उनका उत्कृष्ट सम्पादित ग्रन्थ है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक के रूप में वे सफल भी रहे, लोकप्रिय भी। आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र उनके पट्ट शिष्य थे, जिन्होंने उनकी स्मृति में दीन विद्यालय चलाया था। प्रो. मोहनबल्लभ पन्त उनके एक अन्य उल्लेखनीय शिष्य थे। दीन जी अपने शिष्यों का मालपचाऊ या रुपयाखाऊ शोषण न करते थे तथा सम्बद्ध ग्रन्थों में उनका न्यायसंगत उल्लेख करके उदारता का परिचय देते थे। उन्होंने हिन्दी-शब्दसागर एवं विख्यात तुलसी-ग्रन्थावली के सम्पादक-मण्डल के रूप में भी राष्ट्रभाषा की स्मरणीय सेवाएँ कीं।

'दीन' जी कवि थे (आश्चर्य हख कि उन्होंने छायावाद को 'छोकरावाद' कैसे कहा?) जो उपनाम से ही स्पष्ट है। 'नवीन वीन', 'नदी में दीन' (नदीम-ए-दीन), 'वीरपंचरत्न' प्रभृति उनके काव्यग्रन्थ 'दीन-ग्रन्थावली' में समाहित हैं। उनकी कविता पुरानी-शैली की है। उनकी वीररस की कविता उत्कृष्ट भी है और प्रेरक भी।[1] आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के वे विरोधी थे, जो न साधार हो सकता था, न लाभदायक। छायावाद को वे छोकरावाद मानते थे, जो ग़लत ही सिद्ध हो सकता था। 'अलंकार-मंजूषा' एवं 'व्यंगार्थ-मंजूषा' उनके अलंकारशास्त्र एवं शब्दशास्त्र के पाण्डित्य को उजागर करने वाले प्रशस्य ग्रन्थ हैं।

दीन जी पाठवादी-आलोचक थेः शुद्ध पाठ (स्तरीय टीका के साथ भी, बिना भी) को संक्षिप्त किन्तु अमूल्य भूमिका से सजाकर शेष सब कुछ वे पाठक पर छोड़ देते थे। कोई चाहे तो कह सकता है कि वे टीकाकार एवं सम्पादक थे, आलोचक एवं प्रतिपादक नहीं, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उनकी भूमिका+पाठ+टीका (या टिप्पणियाँ) आलोचना-मूल्यों से सम्पन्न हैं। इसके अतिरिक्त 'बिहारी और देव' ग्रन्थ में वे एक शुद्ध आलोचक के रूप में भी दृष्टिगोचर होते हैं; यही नहीं, मिश्रबन्धु, आचार्य पद्मसिंह शर्मा एवं पण्डित कृष्णबिहारी मिश्र के साथ-साथ हिन्दी की तुलनात्मक आलोचना के जन्मदाताओं में भी प्रतिष्ठा प्राप्त कर लेते हैं। सम्भवतः उनके प्रभाव के कारण ही आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र देव पर बिहारी को वरीयता प्रदान करते हैं अन्यथा अन्य 'मिश्रगण' (मिश्रबन्धु, कृष्णबिहारी मिश्र, भगीरथ मिश्र, प्राचार्य डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र) बिहारी पर देव को वरीयता प्रदान करते आए हैं।

गोपालराम गहमरी

'अद्‌भुत लाश', 'गुप्तचर', 'बेक़सूर की फाँसी', 'सरकती लाश', 'ख़ूनी कौन?', 'बेगुनाह का ख़ून', 'जमुना का ख़ून', 'डबल जासूस', 'मायाविनी', 'चक्करदार चोरी', 'जासूस की भूल', 'भयंकर चोरी', 'जादूगरनी मनोरमा', 'मालगोदाम में चोरी', 'जासूस की चोरी', 'अद्‌भुत ख़ून', 'जासूस पर जासूसी', 'डाके पर डाका', 'जासूस चक्कर में', 'ख़ूनी का भेद', 'ख़ूनी की खोज', 'इन्द्रजालिक जासूस', 'लाइन पर लाश', 'क़िले में ख़ून', 'भोजपुर की ठगी', 'गुप्त भेद', 'जासूस की तैयारी' और इतने पर भी इत्यादि उपन्यासों तथा 'जासूस की डाली' और 'हंसराज की डायरी' जैसी कहानियों[2] का कथाकार केवल जासूसी कथाकार ही हो सकता है—और गोपालराम गहमरी (1866-1946 ई.)[3] वस्तुतः हिन्दी के शीर्षस्थ जासूसी- उपन्यासकार हैं। वे 'जासूस' नामक पत्रिका निकालते थे तथा पाँच-छह सेट फ़ार्मूलों पर दनादन लिखते चले जाते थे। रचना-बाहुल्य में गहमरी की प्रतिभा खो गई और वे हिन्दी के ऑर्थर कॉनन डायल न हो पाए। चटपटवाद में यथार्थ को स्थान कहाँ? अतः उनके जासूसी उपन्यासों में जीवन नगण्यवत् है, कल्पना सर्वस्ववत्। किन्तु उन्होंने अपने रचना-युगों (सुधारवादी युग कुछ तथा आदर्शवादी युग अधिकांश—यों, बाद तक) की निपट अवहेलना न करते हुए रचनाओं को नितान्त निरुद्‌देश्य नहीं रहने दिया और इसी कारण से वे कुशवाहा कान्त, वेदप्रकाश काम्बोज, ओम्प्रकाश शर्मा, परशुराम शर्मा, सुरेन्द्रमोहन पाठक इत्यादि साहित्येतर जासूसी-उपन्यासकारों से बहुत उच्च भूमि पर एकदम अकेले खड़े दिखाई पड़ते हैं। सम्भवतः उनकी साहित्यिक प्रतिभा की संरक्षा के हेतु ही आ. शुक्ल ने उनके ढेरों बांग्ला-अनूदित नाटकों एवं उपन्यासों का उल्लेख़ तथा बंकिम की शैली से प्रभावित होते हुए भी रोचक मौलिक निबन्धों में एक 'ऋद्धि और सिद्धि' से प्रस्तुत

---

[1] तर्पण मुझे दरक़ार नहीं तीर्थ के जल का। पिंडा नहीं दरक़ार गया धाम के थल का।।
करना न कभी ध्यान मेरी और टहल का। आतंक सुना चाहती हूँ मैं तेरे बल का।।
मंजूर अगर हो मेरे प्राणों का रिझाना। तो मेरी चिता रक्त की धारा से बुझाना।।

[2] हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 में डॉ. रामचन्द्र तिवारी द्वारा प्रस्तुत सूची।

[3] ग़ाज़ीपुर जनपद के गहमर ग्राम में जन्म के कारण गहमरी।

उदाहरण मात्र देकर सन्तोष कर लिया है : "अर्थ या धन अलाउद्दीन[1] का चिराग़ है। यदि वह हाथ में है तो तुम जो चाहो सो पा सकते हो। यदि अर्थ के अधिपति हो तो वज्र मूर्ख होने पर भी विश्वविद्यालय तुम्हें डी.एल.[2] की उपाधि[3] देकर अपने तईं धन्य समझेगा।[4]....बरहे पर चलनेवाला नट हाथ में बाँस लिए बरहे पर दौड़ते समय 'हाय पैसा, हाय पैसा' करके चिल्लाया करता है। दुनिया के सभी आदमी वैसे ही नट हैं। मैं दिव्य दृष्टि से देखता हूँ कि ख़ुद पृथ्वी भी अपने रास्ते पर 'हाय पैसा, हाय पैसा' करती हुई सूर्य की परिक्रमा कर रही है। काल-माहात्म्य और दिनों के फेर से ऐश्वर्यशाली भगवान् ने तो अब स्वर्ग से उतरकर दरिद्र के घर शरण ली है और उनके सिंहासन पर अर्थ जा बैठा है।....अर्थ ही इस युग का परब्रह्म है। इस ब्रह्मवस्तु के बिना विश्व, संसार[5] का अस्तित्व नहीं रह सकता। यही चक्राकार चैतन्यरूप कैशबॉक्स में प्रवेश करके संसार को चलाया करते हैं।...साधकों के हित के लिए अर्थनीतिशास्त्र में इसकी उपासना की विधि लिखी है।....बच्चों की पहली पोथी में लिखा है—'बिना पूछे दूसरे का माल लेना चोरी कहलाता है।' लेकिन कहकर ज़ोर से दूसरे का धन हड़प कर लेने से क्या कहलाता है, यह उसमें नहीं लिखा है। मेरी राय में यही कर्मयोग का मार्ग है।" किन्तु मेरी समझ में, गहमरी को कोरा अनुवादक या कुछ रोचक निबन्धों का लेखक मात्र उनकी जासूसी-उपन्यासकार की सहज प्रतिभा एवं रचना-राशि के साथ अन्याय करना होगा जिसमें वे शीर्षस्थानिक ही नहीं प्रत्युत 'एकमात्र' भी हैं—जासूसी-उपन्यासकार के रूप में वे साहित्येतिहास में अमर हैं।

रायदेवीप्रसाद 'पूर्ण'

> अंधकार है वहाँ जहाँ आदित्य नहीं है, मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है।[6]
>
> —राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'

व्रजभाषा एवं खड़ीबोली काव्यरचना में एकरस सफल कवि, सनातन धर्म के प्रबल समर्थक, नरम दल के कांग्रेस नेता एवं कुशल वकील राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' (1868-1915 ई., जन्मस्थान जबलपुर, निवास कानपुर) ने प्रकृतिकाव्य एवं राष्ट्रकाव्य का उत्कृष्ट सृजन किया है। वे कानपुर के जनजीवन पर वर्षों तक छाए रहे थे। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में विद्वद्वर सत्यनारायण त्रिपाठी ने 'पूर्ण' की रचनाओं का यह विवरण दिया है: "धाराधर-धावन (मेघदूत का पद्यानुवाद—1902 ई.), मृत्युंजय (मृत्यु और ज्ञान पर 91 अतुकान्त छन्द—1904 ई.), प्रदर्शिनी-स्वागत (सामाजिक अवस्था से सम्बन्धित खड़ीबोली के 206 छप्पय—1906 ई.), राम-रावण-विरोध (चम्पूकाव्य—1906 ई.), स्वदेशी-कुंडल (देशभक्तिविषयक 52 कुंडलिया—1910 ई.), राजदर्शन (अंग्रेज़ी-हिन्दी-मिश्रित काव्य—1911 ई.), वसन्त-वियोग (खड़ीबोली का काव्य—1912 ई.), रम्भा-शुक-संवाद (संस्कृत के इसी नाम के ग्रन्थ का अनुवाद), तत्त्व-तरंगिणी (शंकराचार्य के तत्त्व-बोध का पद्यानुवाद) और चन्द्रकला-भानुकुमार नाटक (कल्पित कथानक पर आधारित सुखान्त

---

[1] प्रचलित रूप 'अलादीन'।

[2] डॉक्टर ऑफ़ लॉज़ (विधि-विद्वान्)। इसे एलएल.डी. भी कहते हैं।

[3] वन्दे रुपया आना पाई।
जिसके बल पर लंठों तक ने डी. लिट्. की डिगरी पाई।। (बेढब बनारसी)

[4] अब असली गधे नेता बनकर दनादन डी. लिट्, डी. एससी., एल.डी. इत्यादि हो रहे हैं—इन पर कुछ ख़ास नहीं लिखा गया।

[5] अनावश्यक पुनरुक्ति।

[6] 'पूर्ण' की इन पंक्तियों के साथ-साथ कानपुर के कवियों की निम्नलिखित पंक्तियाँ भी सारे राष्ट्र पर छाई रही हैं :
जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं नरपशु निरा है और मृतक-समान है। —आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी
जो भरा नहीं भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं,
वह हृदय नहीं है पत्थर है जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं। —सनेही
शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मिटनेवालों का यही बाक़ी निशाँ होगा। —हितैषी
कवि कुछ ऐसी तान सुना दो जिससे उथल-पुथल मच जाए! —नवीन
विजयी विश्व तरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा। —पार्षद

नाटक)।'' 'वसन्त-वियोग' 'पूर्ण' की सर्वोत्तम मौलिक कृति है। आ. शुक्ल के शब्दों में, 'वसन्त-वियोग' बहुत बड़ी कविता है, जिसमें कल्पना अधिक सचेष्ट मिलती है। उसमें भारतभूमि की कल्पना एक उद्यान के रूप में की गई है। प्राचीन काल में यह उद्यान सत्त्वगुणप्रधान तथा प्रकृति की विभूतियों से सम्पन्न था और इसके माली देवतुल्य थे। पीछे मालियों में प्रमाद और अनैक्य से उद्यान उजड़ने लगता है। यद्यपि कुछ यशस्वी महापुरुष (विक्रमादित्य ऐसे) कुछ काल के लिए उसे सँभालते दिखाई पड़ते हैं, पर उसकी दशा गिरती ही जाती है। अन्त में उसके माली साधना और तपस्या के लिए कैलास-मानसरोवर की ओर जाते हैं जहाँ आकाशवाणी होती है कि विक्रम की बीसवीं शताब्दी में जब पश्चिमी शासन होगा तब उन्नति का आयोजन होगा।'' भारतेन्दु, शिवसिंह, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि के सदृश 'पूर्ण' ने भी अंग्रेज़-राज्य का स्वागत किया है। शुक्ल ने 'पूर्ण-संग्रह' से अनेक उद्धरण दिए हैं। कल्पना-प्रवण प्रबन्ध-रचना उस्मान इत्यादि ने की है किन्तु आधुनिककाल में इसको जैसी प्रवृत्ति रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' एवं 'स्वप्न', प्रसाद के 'प्रेमपथिक', पन्त की 'ग्रन्थि' इत्यादि में प्राप्त होती है, उसके प्रवर्तक 'पूर्ण' ही प्रतीत होते हैं। मेघदूत-अनुवादकों में महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनन्तर केशवप्रसाद मिश्र एवं पूर्ण के नाम अग्रगण्य हैं। सत्यनारायण कविरत्न का व्रजभाषा-काव्य एवं वासुदेवशरण अग्रवाल का गद्यानुवाद-युक्त विवेचन भी प्रसिद्ध है। नागार्जुन ने मेघदूत का मुक्त कविता में अनुवाद किया है। अन्य अनुवाद भी विद्यमान हैं। किन्तु जैन-दर्शन के प्रकांड विद्वान् एवं संस्कृत के आशुकवि पं. अमृतलाल आ. द्विवेदी के अनुवाद को सर्वोत्तम मानते हैं। सामयिकता के अतिरेक तथा अनुवाद की प्रधानता अर्थात् 'प्रस्थान' के अभाव के कारण 'पूर्ण' को हिन्दी-जगत् ने शीघ्र ही भुला-सा दिया, किन्तु उनके कल्पना-प्रवण प्रबन्ध-सर्जन एवं उत्कृष्ट प्रकृतिचित्रण का ऐतिहासिक महत्त्व अकाट्य है; और, उनका ''मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है'' सूत्र अमर है ही।

'पूर्ण' हिन्दी के प्रथम एवं उच्चस्तरीय वकील-कवि एवं साहित्यकार थे; विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, श्रीकृष्ण मिश्र, विश्वदेवसिंह चौहान इत्यादि कथाकार, कृष्णबिहारी मिश्र, परशुराम चतुर्वेदी जैसे आलोचक, बालकृष्ण मिश्र जैसे कवि, चक्रधर 'नलिन' जैसे बालसाहित्यकार के पूर्वज। कानपुर में पूर्ण ने जिस 'रसिक-समाज' की स्थापना की थी, उसे उनके अनन्तर पं. रामरतन 'रत्नेश' ने प्राणवान रखा। किन्तु क्रमशः प्रभाव क्षीण हो गया। पूर्ण के समय 'रसिक-समाज' की बड़ी धाक थी। शिवाला-परिसर में स्थित पूर्ण के आवास पर रसिक-समाज का रसानुभव करने साहित्य-सम्राट् महावीरप्रसाद द्विवेदी तक अपने आप (बिना किसी औपचारिकता के) पधारे थे।

पूर्ण की कविता से दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1.
देख तब वैभव द्रुमकुल-संत! विचारा उसका सुखद निदान।
करे जो विषम काल को मंद, गया उस सामग्री पर ध्यान।।
रँगा निज प्रभु ऋतुपति के रंग, द्रुमों में अमल्तास! तू भक्त।
इसी कारण निदाघ प्रतिकूल दहन में तेरे रहा अशक्त।।

2.
कर देते बाहर भुनगों का परिवार।
तब करते हैं कीश उदुंबर का आहार।।
पक्षीगृह विचार तरुगण को नहीं हिलाते हैं गजवृंद।
हंस भृंगहिंसा के भय से खाते नहीं बंद अरविंद।।
धेनुवत्स जब छक जाते हैं पीकर छीर।
तब कछ दुहते हैं गउओं को चतुर अहीर।।
लेते हैं हम मधुकोशों से मघु जो गिरे आप ही आप।
मक्खी तक निदान इस थल की पाती नहीं कभी संताप।

निस्सन्देह, पूर्ण की कल्पना, भाषा, शैली सभी आदर्शवादी युग से वैसे ही संपृक्त हैं जैसे उनका जीवन-युग। द्विवेदी-मडल, उसके अन्दर और बाहर की स्थापनाएँ प्रत्येक दृष्टि से निराधार हैं। यह अवश्य सत्य है कि पूर्ण (हरिऔध के सदृश) द्विवेदी के शिष्य न थे। किन्तु उनकी रचना-प्रक्रिया युगसंपृक्त थी। व्यक्तिबद्ध युग-नाम संकीर्णता की सृष्टि करते हैं।

डॉ. भगवानुदास[1]

उपनिषदमूलक नवअध्यात्मवादी अथवा नवरहस्यवादी चेतना ने राममोहन राय, रामप्रसाद, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रवीन्द्र, अरविन्द इत्यादि बंगीय चिन्तकों को ही विकसित नहीं किया, नारायण गुरु, रमण महर्षि, राजगोपालाचारी, राधाकृष्णन्, कृष्णमूर्ति, मुक्तानन्द इत्यादि दाक्षिणात्य चिन्तकों को भी स्फुरित किया तथा हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में भगवानुदास, सम्पूर्णानन्द, महेश योगी, रजनीश इत्यादि को भी। इन सब को प्रेरणा शंकराचार्य, गोरखनाथ, कबीर इत्यादि से भी मिली, जो याज्ञवल्क्य, उद्दालक, श्वेताश्वतर, पतंजलि, बादरायण प्रभृति विश्व के अतुलनीय अध्यात्मवादी दार्शनिकों के उत्तराधिकारी थे। इस प्रकार, भारतीय चिन्तन का सहस्राब्दियों तक प्रसरित इतिहास श्रृंखलाबद्ध भी प्रमाणित हुआ है, विकासशील भी।

भारतरत्न डॉ. भगवानुदास (1869-1858 ई.) उसी पवित्र काशी धाम में उत्पन्न हुए जहाँ कबीर, रैदास, दीनदयाल गिरि, भारतेन्दु, रत्नाकर, प्रेमचन्द, प्रसाद, श्यामसुन्दरदास, सम्पूर्णानन्द इत्यादि उत्पन्न हुए थे तथा तुलसी, मदनमोहन मालवीय, रामचन्द्र शुक्ल, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, कृष्णशंकर शुक्ल इत्यादि ने शरीरत्याग किए थे। डॉ. भगवानुदास वैश्य-कुलभूषण थेः श्रवणकुमार, हेमू विक्रमादित्य, लाजतपतराय, गाँधी, लोहिया प्रभृति नेताओं तथा भारतेन्दु, रत्नाकर, मैथिलीशरण, प्रसाद प्रभृति साहित्यकारों की श्रृंखला की एक चमकती कड़ी। उनके राजनीतिज्ञ एवं लेखक पुत्र श्रीप्रकाश ने 'भारतरत्न डॉ. भगवानुदास' शीर्षक प्रात्ययिक जीवनी लिखकर प्रशस्य कार्य किया, क्योंकि जीवनियाँ, संस्मरण इत्यादि आरम्भ में प्रायः निकटवर्ती व्यक्ति ही लिखते हैं, जैसा कि बॉस्वेल (जॉन्सन), लॉकर्हट (स्कॉट), शिवरानीदेवी एवं अमृतराय[2] (प्रेमचन्द) के ग्रन्थों से प्रमाणित होता है। डॉ. भगवानुदास के 'द एसेंशल यूनिटी ऑफ़ रिलीजन्स' एवं 'वर्ल्ड वार एंड इट्स ओनली क्योर—वर्ल्ड ऑर्डर एण्ड वर्ल्ड रिलीजन' प्रभृति अंग्रेज़ी-ग्रन्थ विश्वविख्यात हैं, किन्तु उन्होंने 'पुरुषार्थ', 'समन्वय', 'शास्त्रवादः बुद्धिवाद', 'दर्शन का प्रयोजन', 'सब धर्मों में एकता' प्रभृति हिन्दी-ग्रन्थ भी रचे, जो राष्ट्रभाषा के श्रृंगार हैं। वे हिन्दी के दर्शन-सम्बन्धी ग्रन्थकार में शीर्षस्थ स्थान के अधिकारी हैं।

डॉ. भगवानुदास एक गम्भीर अद्वैतवादी हैं जो मानव की एकता, धर्मों की एकता, सर्वायामी समन्वय का बड़ा ही निगूढ़ प्रतिपादन करते हैं। प्राचीन एवं पारम्परिक अद्वैतवादियों से आगे बढ़कर वे अद्वैतवाद को मानवतावाद का पर्यायवाची सिद्ध करते हैं। रवीन्द्र[3], राधाकष्णन्[4] इत्यादि भी ऐसा ही करते हैं किन्तु उन पर पश्चिम का स्वभाव बहुत खुलकर पड़ा है, जबकि डॉ. भगवानुदास ने, अरविन्द, रमण महर्षि, सम्पूर्णानन्द इत्यादि के सदृश, वेद-वेदान्त की सर्वोपरिता एवं आमूलचूल भारतीयता से संपृक्त रहकर ऐसा किया है।

महान् दाशनिक डॉ. भगवानुदास के 'पुरुषार्थ' ने अपने 'कामाऽध्यात्म' (कामाध्यात्म) से महाकवि प्रसाद (कामायनी), कविवर दिनकर (उर्वशी), विकृतयोगी रजनीश (सम्भोग से समाधि) इत्यादि को प्रभावित किया है तथा अपनी चिन्तनपुष्ट 'रस-मीमांसा' से रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, नगेन्द्र इत्यादि विवेचकों को। यद्यपि इनमें से किसी ने उनका आभार नहीं माना क्योंकि कृतज्ञता-संस्कृति जिस उच्च-सम्यता से अनुस्यूत है, परतन्त्रता ने उसका लोप कर दिया है, तथापि इससे सत्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। 'डॉ. भगवानुदास से कामाध्यात्म का प्रसाद, दिनकर और रजनीश पर प्रभाव' और 'डॉ. भगवानुदास की रसमीमांसा का रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय और नगेन्द्र पर प्रभाव' शोध के अच्छे विषय हैं। डॉ. भगवानुदास ने ऋग्वेद से श्रीमद्भगवद्गीता तक, उपनिषद् से कामसूत्र तक, फ्रायड के जुंग तक प्रसरित कामतत्त्व को हृदयंगम करते हुए कामाध्यात्म पर जो विशद विवेचन किया है, वह विश्व-दर्शन की एक महान् उपलब्धि है, क्योंकि न तो वे प्लेटो के सदृश कोरे आदर्शवादी हैं और न फ्रायड के सदृश कोरे अतिवादी। उनका 'पुरुषार्थ' कामप्रधान है, जो व्यापक जीवन के प्रकट यथार्थ को देखते सर्वथा समीचीन है; यद्यपि यत्र-तत्र उन्होंने धर्म, अर्थ एव मोक्ष पर भी प्रकाश डाला है। मेरी समझ में, धर्म साधनपथ है जिसका एक प्रतीक-ग्रन्थ मनुस्मृति है, अर्थ साधनशक्ति है जिसका एक प्रतीक-ग्रन्थ अर्थशास्त्र है, काम साधनस्फूर्ति है जिसका एक प्रतीक-ग्रन्थ कामशास्त्र (कामसूत्र) है तथा मोक्ष साध्य है जिसका एक प्रतीक-ग्रन्थ उपनिषद्

---

1. वे भगवानुदास लिखते थे।
2. पद्मश्री आ. क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने मुझे बताया कि यह ग्रन्थ मदनगोपाल के द्वारा लिखित 'कलम का मज़दूर' से इतना प्रेरित है कि साहित्य अकादमी पुरस्कार का सम्मान अमृतराय ने प्राप्त किया किन्तु राशि मदनगोपाल को देनी पड़ी! 'सुमन' उन दिनों अकादमी में अधिकारी थे। अमृतराय सर्वोपरि साहित्य-तस्कर थे।
3. सर रवीन्द्रनाथ टैगोर पर प्रचुर परकीय प्रभाव सदैव एक स्पष्ट तथ्य रहा है।
4. सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् भारतीय दर्शन के पश्चिमवादी व्याख्याता हैं।

(विशेषतः बृहदारण्यक) है।[1] तत्त्वतः वे चारों परस्पर-संस्पृक्त हैं, पृथक्-पृथक् नहीं। वेद, रामायण, महाभारत (गीता अन्तर्भूत), तिरुक्कुरल एवं रामचरितमानस में 'पुरुषार्थ' का समग्र-रूप विवेचित अथवा बिम्बित है। अरविन्द के सदृश, भगवानूदास भी वेद को समग्र तत्त्वज्ञान एवं विज्ञान का उद्गम मानते हैं। मेरी समझ में, अद्वैतवाद, शून्य, दशमलव, वायुयान-परिकल्पना, दूरदर्शन-परिकल्पना, आग्नेयास्त्रादि-प्रक्षेपण-परिकल्पना प्रभृति के ज्ञान-विज्ञान ने विश्व को ऐसा प्रभावित किया है कि अरविन्द, भगवानूदास इत्यादि का वेदगौरवमंडन वास्तविक ही सिद्ध होता है। पश्चिम का अहं तक अब इन सत्वों को स्वीकार करने की दिशा में चलने पर विवश होता जा रहा है।

बुन्देलाबाला

'बाला-विचार' (सं. चतुर्भुजसहाय वर्मा—पारिवारिक एवं राष्ट्रीय कविताओं का 40 पृष्ठीय लघुसंग्रह) की कवयित्री बुन्देलाबाला (वास्तविक नाम? देहान्त 1910 ई) विद्वान्, आलोचक एवं कवि लाला भगवानदीन 'दीन' की पत्नी थीं। इनकी सरल खड़ीबोली-कविता उत्कृष्ट बालसाहित्य में अन्तर्भूत की जा सकती है :

भारत का नक्शा[2]

हे प्यारे! कदापि तू इसको तुच्छ श्याम रेखा मत मान। यह है शैल हिमाचल[3] इसको भारतभूमि-पिता पहचान।
नेह-साहित ज्यों पितु पुत्री का सादर[4] पालन करता है। यह हिमगिरि त्यों ही भारत-हित-पितृ-भाव हिय भरता है।।
गंगा यमुना युगल रूप से प्रेमधार का देकर दान। भारत-भूमि-रूप दुहिता का नेह-सहित करना सनमान।।

* * *

कोई ऐसा स्थान नहीं है जहाँ अमर चिह्नों के रूप।
वीर कहानी रजपूतों की लिखी न होवे अमर अनूप।। क्षत्री-कुल-अवतंस वीर वर है प्रताप जी का यह देश।
रानी पद्मावती सती ने यहीं किया था नाम विशेष। क्षत्री-वंशजात को चहिए करना इसको नित्य प्रणाम।
इससे क्षत्रीवर्ग का जग में सदा रहेगा रोशन नाम।

चन्द्रवती मिश्र

बीसवीं सदी ई. में रायबरेली जनपद में श्रीमती गुलज़ार बाई, इन्दुमती देवी 'इन्दु', तोरनदेवी शुक्ल 'लली', 'देवहुती देवी 'सुधा', सरस्वती देवी 'वाणी', सावित्री देवी 'गिरा', सावित्री सिन्हा 'रश्मि', आशा वर्मा, भुवनेश्वरी तिवारी, अतीया परवीन, शैलजा 'मीतू' प्रभृति अनेक कवयित्रियाँ एवं लेखिकाएँ हुई हैं, किन्तु पास के उन्नाव में संख्या कम ही रही, यद्यपि यहाँ की सुमित्राकुमारी सिन्हा विशेष प्रसिद्ध हुईं। एक अज्ञातप्राय कवयित्री हैं 'आनन्दरस भजनरामायण' की भक्त-कवयित्री चन्द्रवती मिश्र (मवई ख़ानपुर, जनपद उन्नाव—एवं रायबरेली के अनेक अंचलों को जो .1गड़नेवाला बैसवारा क्षेत्र) का काशीवासियों द्वारा बनाया गया 'उर्फ़' या उपनाम मीराबाई था। वे काशी में ही अधिक रहीं। मणिकार्णिका घाट स्थित राम-मन्दिर में खूब रमीं। उनकी रामायण में भी सात कांड हैं। ग्रन्थ का उत्तरार्द्ध कृष्ण से सम्बद्ध हैं। कविता साधारण पर रोचक है :

1. लीला अगम अपार प्रभु, कहि न सकत मतिमान। निज मति के अनुसार कछु, भक्त करत हैं गान।।
   प्रभु के चरित रसाल, सुनत नित्य, सब सुख कहत, चरन-कमल की आस चंद्रवती गावत रहत।।
2. जिनको भेद वेद नहिं पावै सो प्रभु ख्याल बनावै।
   प्रभु यशुदा गोद खिलावै।।
   ब्रह्मादिक जोहि ध्यान न पावहिं यशुमति लाड़ लड़ावै।
   इक दिन माखन खात मातु कर ग्वालिनि देखि सिहावै।।...[5]

---

[1] मैंने 'हिन्दूधर्म' एवं 'हिन्दूधर्म : फ़ेथ ऑफ़ फ्रीडम एंड वे ऑफ़ लाइफ़' (1991 ई.) (पहले 'हिन्दूइज़्म : द फ़ेथ ऑफ द फ्यूचर') ग्रन्थों में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष (पुरुषार्थ) का अपने ढंग से निरूपण किया है।

[2] अमर चलचित्र-गीतकार प्रदीप (रामचन्द्र द्विवेदी) कृत जागृति के "आओ बच्चों तुम्हें दिखाएँ झाँकी हिन्दुस्तान की" गीत को प्रेरणा प्राप्त हुई लगती है।

[3] शैल = पर्वत। अचल = पर्वत। पुनरुक्ति-दोष। हिमालय होना चाहिए था।

[4] कन्या पूज्य मानी जाती है—पैर पूजे जाते हैं।

[5] उद्धरण 'श्रीमती चन्द्रवती मिश्र की काव्यसाधना' (डॉ. भुवनेश्वरी तिवारी) शीर्षक लेख ('महावाणी-4', वार्षिकी-1991, सम्पादक चक्रधर 'नलिन', प्रकाशक रायबरेली रचनात्मक संघ) से लिए हैं।

चन्द्रवती मिश्र ने सेहरा, सोहर, ज्योनार, गारी इत्यादि नारी-रुचिकर विषयों पर अच्छा लिखा है। चौपाई, दोहा, सोरठा, पद प्रभृति माध्यमों का भी प्रयोग भी ठीकठाक है। उनकी कविता मौलिकता या नवीनता की दृष्टि से विपन्न हो सकती है, किन्तु जीवनरस से सराबोर है।

गंगाप्रसाद अग्निहोत्री

सनातनधर्मपरक, नीतिपरक एवं हिन्दीपरक विषयों पर आदर्शवादी युग के अनुरूप किन्तु भाषा की दृष्टि से मराठी से प्रभावित निबन्धों के प्रणेता एवं प्रस्तोता गंगाप्रसाद अग्निहोत्री[1] (1870-1931 ई., जन्मस्थान नागपुर, मृत्युस्थान जबलपुर) ने समाजसुधार एवं चरित्रनिर्माण के उद्देश्य से प्रशस्य लेखन किया था। मराठी-ग्रन्थों के अनुवादक के रूप में भी वे स्मरणीय हैं। यदि गद्यकार के रूप में वे समयुगीन किन्तु सफलतर माधवराव सप्रे का स्मरण कराते हैं तो कवि के रूप में महान् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का। उनके 'समालोचना', 'हिन्दी के विभक्ति प्रत्यय', 'मध्यप्रदेश में हिन्दी की अवस्था', 'हिन्दी-कविता किस ढंग की हो' प्रभृति निबन्ध[2] तत्कालीन साहित्य एवं भाषा के सम्यक् बोध में सदैव सहायक बने रहेंगे। 'अहिंसावाद की असफलता' (गोपालन-सन्दर्भयुक्त) शीर्षक अन्तिम लेख उनकी दूरदर्शिता का सूचक है। 'मध्यप्रदेश में हिन्दी की अवस्था' शीर्षक वर्णनात्मक-निबन्ध में उन्होंने अनेक मार्मिक तथ्य प्रस्तुत किए हैं जिनमें से एक विशेष स्मरणीय है—प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिए प्रथम हिन्दी-पुस्तक मराठीभाषी पं. विनायकराव ने लिखी, क्योंकि कोई हिन्दीभाषी विद्वान् न मिल सका था!

पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री को अपने समय में अच्छी ख्याति प्राप्त हुई थी। उनके 'समालोचना' जैसे निबन्धों का आ. श्यामसुन्दरदास एवं 'अभिमान' जैसे निबन्धों का आ. रामचन्द्र शुक्ल पर प्रभाव सम्भव है। आ. श्यामसुन्दरदास, जयशंकर प्रसाद इत्यादि खिचड़ी-भाषा के समर्थक न थे। सम्भव है, इन तथा इन जैसे साहित्यकारों पर भी पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री का प्रभाव पड़ा हो, जो स्वयं राजा लक्ष्मणसिंह से प्रेरित हुए हों।

माधवप्रसाद मिश्र

"आप 'सुदर्शन' मासिकपत्र के सम्पादक और हिन्दी के बड़े ही प्रबल गद्यलेखक थे।....प्रायः गम्भीर विषयों पर ही लिखते थे।...आपकी अकाल-मृत्यु[3] से हिन्दी की बड़ी हानि हुई।" —मिश्रबन्धु (विनोद)

"ये बड़े तेजस्वी, सनातन धर्म के कट्टर समर्थक, भारतीय संस्कृति की रक्षा के सतत अभिलाषी विद्वान् थे। इनकी लेखनी में बड़ी शक्ति थी। जो कुछ ये लिखते थे बड़े जोश के साथ लिखते थे, इससे इनकी शैली बड़ी प्रगल्भ होती थी।....इस प्रभावशाली लेखक के उदय की उज्ज्वल आभा हिन्दी-साहित्य-गगन में कुछ समय के लिए दिखाई पड़ी, पर खेद है कि अकाल ही विलीन हो गई। पं. माधवप्रसाद मिश्र के मार्मिक और ओजस्वी लेखों को जिन्होंने पढ़ा होगा उनके हृदय में उनकी मधुर[4] स्मृति अवश्य बनी होगी। उनके निबन्ध अधिकतर भावात्मक होते थे और धारा-शैली पर चलते थे। उनमें बहुत सुन्दर[5] मर्मपथ का अनुसरण करनी हुई स्निग्ध[6] वाग्धारा लगातार चली चलती थी।" —रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी-साहित्य का इतिहास)

'हिन्दी-साहित्य में आवेग-शैली के अन्यतम निबन्धकार[7], प्रथम मौलिक कहानीकार, 'स्वामी विशुद्धानन्द का जीवन-चरित्र' ('विशुद्ध-चरितावली') के सफल जीवनीकार एवं तेजस्विता की जाज्वल्यमान् मूर्ति माधवप्रसाद मिश्र (1971-1907 ई.) एक विचक्षण साहित्यकार ही नहीं प्रत्युत एक भारत-भक्त महापुरुष भी थे, जिनकी प्रशंसा भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम में बीसवीं सदी के सर्वश्रेष्ठ

---

[1] 'पं. गंगाप्रसाद अग्निहोत्री रचनावली' (सं. हरिकृष्ण त्रिपाठी) में 1895-1931 ई. के 37 वर्षों के मध्य रचित 20 से अधिक पुस्तकों, 500 लेख एवं 12 कविताएँ ही संकलित की गई हैं। ('प्रकर', जुलाई, 1992 में डॉ. त्रिलोचन पाण्डेय)।

[2] वे कारक को संवद्ध शब्द से जोड़कर लिखते थे। आज भी अनेक महानुभाव, विशेतः आर्यसमाजी बन्धु, ऐसा ही करते हैं। 'प्रकर' के सं. विद्यासागर विद्यालंकार एक निदर्शन हैं। किन्तु व्यापक प्रयोग अब कहीं ऐसा ही ('मैंने', 'उसके' इत्यादि में) करता है, तो अन्यत्र भिन्न ('हिन्दी के', 'मध्य प्रदेश में', 'ढंग की' इत्यादि में)।

[3] आकस्मिक् अवसान का कारण प्लेग (ताऊन) था। यह रोग तुलसी को भी हुआ था।

[4] मैं 'तेजोदीप्त' शब्द का प्रयोग करता।

[5] मैं 'तलस्पर्शी' शब्द का प्रयोग करता।

[6] मैं 'प्रखर' शब्द का प्रयोग करता।

[7] दे. 'माधवप्रसाद मिश्र निबन्धावली'।

नेता लोकमान्य तिलक, सुधारवादी युग के प्रख्यात निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट, आदर्शवादी युग के एक विद्वान् निबन्धकार पं. गोविन्दनारायण मिश्र, इसी युग के अमर हास्यनिबन्धकार श्री बालमुकुन्द गुप्त एवं प्रसिद्ध कहानीकार-निबन्धकार-भेंटवार्ताकार-विद्वान् श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी इत्यादि ने की थी। हिन्दी के महान् साहित्येतिहासकारों में मिश्रबन्धु ने सामान्यतः एवं शुक्ल ने विशेषतः उनकी उचित स्तुति की है। महान् शुक्ल ने उनकी महान् समीक्षा की है। प्रख्यात विद्वान्, शिक्षाविद एवं समाजवादी नेता आ. नरेन्द्रदेव के पिता श्री बलदेवप्रसाद इनके मित्र थे तथा मूलनाम अविनाशीलाल से नरेन्द्रदेव इन्होंने ही रखा था। डॉ. मुरारीलाल गोयल 'शापित' ने 'द्विवेदी-युगः गद्य-साहित्य—पं. माधवप्रसाद मिश्र का योगदान' एवं 'हिन्दी के प्रथम मौलिक कहानीकार पं. माधवप्रसाद मिश्र का प्रमुख कथा-साहित्य' शीर्षक ग्रन्थद्वय लिखकर उनकी प्रतिभा को उजागर किया है।

हेमू के हरियाणा की इस वीर विभूति का जन्म भाद्र शुक्ल 13, सं. 1928 वि. को भिवानी के निकट कूँगड़ ग्राम में हुआ एवं अकाल-अवसान वहीं चैत्र कृष्ण 4, सं. 1964 वि. को। उनकी कहानियाँ उपदेशात्मक होते हुए भी विलक्षण रूप से यथार्थसम्पन्न हैं। 'मन की चंचलता', 'लड़की की बहादुरी', 'विश्वास का फल', 'दया का फल', 'पितृभक्ति का फल', 'सत्य और सन्तोष का फल', 'पुरोहित का आत्मत्याग' इत्यादि निबन्धशीर्षात्मक होते हुए भी सफल सोद्देश्य कहानियाँ हैं। आदर्शवादी युग के नितान्त आरम्भिक कहानी-रूप का इतिहास पं. माधवप्रसाद मिश्र की कहानियों में ही विवृत होता है। कट्टर साम्यवादी कहानीकार कमलेश्वर द्वारा सम्पादित 'पहली कहानी' पुस्तक में स्वयं उनके तथा अन्य कट्टर साम्यवादी बन्धुओं (डॉ. धनंजय एवं श्री देवीप्रसाद वर्मा) के द्वारा पहले 'छत्तीसगढ़ मित्र' में 1901 ई. (मास नहीं लिखा जिससे प्रात्ययिकता पर प्रश्नचिह्न लगता है) में प्रकाशित माधवराव सप्रे (1871-1926 ई.)[1] की 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिन्दी की प्रथम कहानी का गौरव प्रदान किया है, किन्तु इसके कुछ नौशेर वाने-आदिल की प्रसिद्ध न्याय-कथा और कुछ अस्वाभाविक लोककथा के गड्डमड्ड होने का कारण दबकर दूसरी ही साँस में श्री सप्रे की ही 1900 ई. (यहाँ भी मास नहीं दे सके) में 'सुभाषित-रत्न' को यह ख़िताब अता कर डाला है जो एक उपदेशात्मक घटना-मात्र है—दुगम्भी के कारण निष्कर्ष न घर का रहा न घाट का! इसी सन्दर्भ में आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं आ. शुक्ल पर अनावश्यक एवं अशोभनीय आरोप तक लगा डाले गए हैं तथा माधवप्रसाद मिश्र की उपेक्षा कर डाली गई है, क्योंकि ये तीन अमर साहित्यकार कमलेश्वरी या धनंजयी या देवीप्रसादी सँकरे रूसी-चौखटे[2] में फ़िट नहीं बैठते! यह पुस्तक कम्युनिस्ट प्रोपेगेंडा होने के कारण टाँय-टाँय-फिस्स रही। डॉ. बच्चन सिंह 1887 ई. में छपी किशोरीलाल गोस्वामी की उपन्यासिका 'प्रणयिनी-परिणय' को हिन्दी की प्रथम कहानी का गौरव (सम्भवतः स्थापना-लोभवश) प्रदान करने का आयाम करते हैं, जो न तो स्वयं किशोरीलाल गोस्वामी की प्रस्तुति से मेल खाता है, न आकार-प्रकार से ही। डॉ. श्रीकृष्णलाल का शुक्ल-शंकित[3] किन्तु 'इतिहास'-अंकित किशोरीलाल गोस्वामी की ही 'इन्दुमती' (1900 ई. —मास इस सन्दर्भ में भी नहीं दिया गया) पर अड़ना अब स्पष्टतः कालातीत हो चुका है क्योंकि यह कृति कामदी 'टेम्पेस्ट' का छायानुवाद मानी गई है। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने 1907 ई. (मास का उल्लेख नहीं) में प्रकाशित बंगमहिला कीं 'दुलाईवाली' को हिन्दी की प्रथम कहानी होने का आदेश दिया है जो किसी पुष्ट प्रमाण एवं तर्क के अभाव में विचारणीय नहीं हो सका। मैं 'दहेज दानव' पत्रिका (लखनऊ, 11-26 जनवरी, 1991, पृ. 9) से प्रायः सौ वर्ष पूर्व की एक कहानी प्रस्तुत कर रहा हूँ जो अत्यन्त मार्मिक है, किन्तु समय, रचनाकार इत्यादि के अभाव में उपेक्षित ही हो सकती है। एक तो समय पक्का नहीं, दूसरे भाषा उर्दू के निकट है, तीसरे लेखिका अज्ञात। अतः माधवप्रसाद मिश्र के प्रथम कहानीकार होने में व्यवधान नहीं।

100 साल पूर्व की एक कथा

—एक अज्ञात लेखिका

(यह कहानी एक अज्ञात हिन्दू महिला ने आज से करीब 100 वर्ष पूर्व लिखी थी। कहानी की भाषा उस समय की प्रचलित भाषा और शैली में है। कहानी सत्य घटना पर आधारित है। आज हम 21वीं सदी में प्रवेश करने जा रहे हैं और रचना 19वीं सदी की है। रचना में जो कुछ कहा गया है, क्या वह आज के तथाकथित प्रगतिशील समाज में बिल्कुल बदल गया है। आप अपने चारों

---

[1] श्री सप्रे का 'जीवन-संग्राम में विजय-प्राप्ति के कुछ उपाय' किसी सीमा तक ''हिन्दी का 'सेल्फ़-हेल्प' '' है—किशोर छात्रों के हेतु नितान्त उपयोगी।

[2] अब यह चौखटा चारों पैर ऊपर उठाए 'चित्त' पड़ा है! 1990-91 ई. साम्यवादी विफलता एवं मानवतावादी सफलता के वर्षद्वय के रूप में सदैव स्मरणीय रहेंगे।

[3] भ्रमवश बांग्ला (वे 'बँगला' लिखते थे) रचना के प्रभाव से सम्बद्ध।

तरफ देखेंगे तो नारी को हेय और उत्पीड़न करने वाली आज भी इस कहानी की घटनाएँ मिल जाएँगी। सोचने की बात है कि नारी के प्रति आज भी पुरुष की वही मानसिकता है, जो 19वीं सदी में थी।)

हिन्दुस्तान में किसी अमीर की एक लड़की थी, नाम उसका पार्वती था। खूबसूरती में पार्वती से भी बढ़कर थी। पाँच वर्ष की न होने पाई थी कि माँ मर गई। बाप ने दो महीने बाद दूसरी शादी कर ली। जब वह सात वर्ष की हुई बाप ने किसी अमीर का लड़का तलाश कर उसकी शादी कर दी। शादी के दो महीने न गुजरने पाए कि लड़का चेचक के मर्ज में मर गया। उस बेचारी की तमाम उम्र खराब कर गया। पार्वती की इस कद्र-छोटी उम्र देख हरेक को बड़ा रंज होता था, मगर लड़की खाविंद के नाम से भी वाकिफ न थी।

जो इसको देखकर रोता था, वह उसके पास तक न जाती, बल्कि बड़ी खफा होकर कहती मैंने तुम्हारा क्या बिगड़ा है जो मुझे देखकर रोती हो? बड़ी खुशी से हँसती, खेलती, खाती, फिरती थी, रंज का नाम भी न जानती थी।

नहीं जानती थी कि यह मुसीबत का पहाड़ मेरे ही ऊपर गिरा है, यह दुखों का घोर समुद्र मेरे ही आने वाले रास्ते में लहरें मार रहा है।

इस अर्से में बाप की दूसरी औरत भी मर गई, चार महीने बाद बाप ने तीसरी शादी कर ली। लड़की की उम्र अब तेरह वर्ष की थी। अब देख उस बुड्ढे की उम्र और उस लड़की की अठारह वर्ष तक उसने अपना धर्म सँभाले रखा, आखिर, लाचार, परमेश्वर ने यह चीज इंसान, हैवान, नर, मादा सब में ऐसी पैदा की है कि कोई आदमी इससे छूट नहीं सकता और सिवाय इसके, इस जवानी में इसकी ज्यादा ख्वाहिश होती है। जब से दुनिया पैदा हुई कोई ऐसा आदमी या देवता नहीं हुआ जिसने जवानी में इसके जोश को सँभाला हो। इसके पैदा की यही मुराद थी कि दुनिया ज्यादा हो। यह उसकी मुराद न थी एक के मरने से औरत या मर्द सारी उम्र बगैर एक दूसरे के बैठा रहे।

जब साठ वर्ष का बूढ़ा अपनी इन्द्रियाँ नहीं रोक सकता तब वह लड़की जिसकी जवानी ने आँखें अन्धी कर दी हैं कब रोक सकती है। फिर कोई हथियार न था उसके पास इसके रोकने को। न कुछ इल्म रखती थी, न किसी नेक अशरफ की सोहबत, न हकीमों ने कोई ऐसी दवा ईजाद की है बस, वजूज खौफ बाप के और किसी तरह का डर न था।

आखिर एक नौकर से खराब हुई, लेकिन इसको खराब होना न कहना चाहिए। आदमी की भूख और रंज के वक्त सब्र ओर शर्म दोनों रुखसत हो जाती है। ऐसे वक्त अगर मेहतर का खाना मिले वह भी रवा समझता है। किसी ने उसके बाप से खबर की कि फलाने से तुम्हारी लड़की खराब है। यह अक्ल का दुश्मन सुनते ही आग के मानिन्द भड़क उठा, बेवकूफ ने यह न समझा कि साठ वर्ष की उम्र हुई, चार[1] शादियाँ कीं और अभी ख्वाहिश बाकी है तब यह लड़की जिसने खाविन्द का मुँह भी नहीं देखा कैसे परसा रहेगी। लड़की को बुलाकर कहने लगा, 'ऐ कमबख्त, तूने मेरी इज्जत में खाक डाली, कुल का नाम डुबोया, तेरा मुँह देखना मुझे गँवारा नहीं, या तू ही इस दुनिया में रहेगी या मैं', वह बेचारी मरने का नाम सुन काँप उठी, रोने लगी। हाय उस संगदिल बाप ने जिससे पदराना मोहब्बत बिल्कुल किनारा कर गई थी, हमजिन्सी दर्द भी जिसके दिल में न रहा था दूध में जहर मिला लड़की से कहने लगा, 'इसे पी ले।' रोती हुई लड़की ने इनकार किया। फिर दुबारा उस जल्लाद ने कहा और जबरदस्ती करनी चाही। जब लड़की ने देखा यह जालिम नहीं मानेगा काँपते और रोते हाथ जोड़कर आपको उसके पाँवों में गिरा और बड़ी आजमी से कहा–'मुझे घर से निकाल दो। किसी पहाड़ या जंगल में छोड़ दो, वहाँ मैं आप ही मर जाऊँगी, मगर इस तरह की मौत से मुझे माफ कर। मैं फिर कभी ऐसा काम न करूँगी, एक दफा माफ कर दे, क्या मैं तेरी वह लड़की नहीं जिसे तुमने माँ के मरने से बड़ी तकलीफों से पाला था अब अपने ही हाथ से उसका काम तमाम करना चाहते हो। बाप ने झिड़ककर कहा, नहीं तू अब मेरी लड़की नहीं बल्कि मेरी दुश्मन है, मैं तुझे इस दुनिया में नहीं छोड़ूँगा बल्कि मौत के चंगुल में छोड़ूँगा।

देख लो प्यारी बहनों, फिर मैं तुम्हें दिखाई न दूँगी। कोई दिल में खाक का ढेर हो जाऊँगी यही आखिरी मुलाकात है। हर एक के गले से लग-लग के रोती थी, जो कोई रोने का बाइस पूछती बाप के खौफ से खामोश हो जाती थी। तमाम दिन रोने में गुजरा, गोया यह उसके लिए कयामत का दिन था। जब रात हुई तब फिर वह उसका जानी दुश्मन बाप जहर का प्याला ले आया। लड़की ने फिर भी इनकार किया, यह जिन्दगी अजीज है, इंसान को चाहे कितनी ही तकलीफ हो, चाहे बीमारी से नाक में दम आ जाए, तब भी यह कहता है कोई बचा ले, कोई रख ले, यह दुनिया ऐसी चीज है, चाहे हजार वर्ष इसकी लज्जतें उठावें फिर भी मरने की तबियत नहीं चाहती और खास करके जवानी में तो परमेश्वर किसी को मौत न दे।

---

[1] 'तीन' ठीक रहता।

जब आप ने देखा कि यह न पीयेगी तब तो धमका कर कहा अगर यों नहीं पीती तो मैं और तरह तेरा काम तमाम करूँगा। तलवार से छुरी से आज ही गला काट दूँगा।

लड़की ने कोई सूरत बचने की न देखी, लाचार हो पी लिया। बाप का कलंक छूटा आप मौत के बिस्तर पर आराम किया। बाप ने लोगों में मशहूर कर दिया कि लड़की हैजे से मर गई। क्या इस लड़की को कोई बदमाश कह सकता है? नहीं! बेशक बेवकूफ थी। अगर अक्लमन्द होती, सरकार में इत्तिला दे दूसरी शादी कर तमाम उम्र आराम से बसर करती। अगर बदमाश होती बाप की मुहब्बत हरगिज़ न करती, फौरन घर से निकल अमृतसर के चकले में बैठती।

हाय, उस बेरहम बाप के दिल में परमेश्रर का खौफ भी न आया। एक उसकी ख्वाहिश को रोका, दूसरे जहर दिया। परमेश्वर के सामने क्या मुँह दिखाएगा।

यह किताबी जिक्र नहीं यह एक बड़े खानदान की लड़की का हाल है। आगे तो तमाम हिन्दुस्तान में ऐसा करते थे। मगर अंग्रेज़ों के खौफ से जाहिर नहीं मार सकते। अब भी चोरा चोरी जहाँ तक जिसकी जितनी पेश जाती हैं, काम भी तमाम कर देते हैं और साबित तो जिब्रईल आवे तो भी नहीं कर सकता क्योंकि इसका भारी दोस्त हैजा है जो फाँसी चढ़ने से बचा लेता है।

डॉ. मुरारीलाल गोयल 'शापित' का माधवप्रसाद मिश्र को हिन्दी का प्रथम कहानीकार मानना शोध एवं तर्क से परिपुष्ट होने के कारण मान्य है। निस्सन्देह, माधवप्रसाद मिश्र को हिन्दी का प्रथम कहानीकार होने का गौरव प्राप्त है, किन्तु यह गौरव ऐतिहासिक मात्र है क्योंकि उनकी कहानियाँ नितान्त आरम्भिक स्तर की तो हैं ही, अत्यादर्श-बोझिल भी हैं। उनके उच्चकाय, सुन्दर, आकर्षक एवं तेजस्वी वीर-व्यक्तित्व की सम्यक् अभिव्यक्ति उनके महान् निबन्धों में ही हो सकी है, जिनमें 'सब मिट्टी हो गया' सर्वश्रेष्ठ है। महाकवि श्रीहर्ष कृत महाकाव्य 'नैषधीयचरितम्' के पक्ष में वे महावीरप्रसाद द्विवेदी से भिड़ गए थे, छात्रों को राजनीति-विरत रहने के परामर्श के विरोध में मदनमोहन मालवीय से! मेरे विचार से, 'नैषध' की महान् सर्जना एवं युवा-शक्ति के निर्णायक महत्त्व को देखते माधवप्रसाद मिश्र अतीव-महत्तर आचार्य एवं महामना की आलोचना में अधिक वस्तुपरक थे। आ. शुक्ल ने लिखा है कि उनका देश द्रेम 'बहुत गम्भीर' था। श्रीधर पाठक के ऋतुशोभा एवं देशछटा के वर्णनों का विरोध उन्होंने देश की दयनीय दशा एवं कंकालवत् निवासियों के तर्क पर किया था। इस बिन्दु पर न्यायसंगत मतभेद सम्भव है। 'वेबर का भ्रम' निबन्ध पाश्चात्य विद्वानों की पूर्वाग्रहग्रस्त दृष्टि के प्रत्याख्यान पर लिखा गया था। 36-37 वर्ष की अल्पायु में दिवंगत होने से पूर्व सन्निपात-दशा में उनका अन्तिम उद्गार थाः ''हाय अभागिनी आर्यभूमि! और कब तक तू दासता की शृंखला में बँधी रहेगी?'' उनकी अशान्त मृत्यु तिलक की 31 जुलाई–1 अगस्त, 1920 ई. को अर्द्धरात्रि के अनन्तर हुई अशान्त मृत्यु का स्मरण कराती है जिसमें उस द्रष्टा महापुरुष ने ''गाँधी भारत को कहाँ ले जाएगा?'' कहते-कहते प्राणत्याग किया था (उन दिनों गाँधी का असहयोग आन्दोलन ज़ोरों पर था जिसे कालान्तर में गौरांग-महाप्रभु का रुख़ देखकर वापस ले लिया गया था–जिस पर नवीन ने ''आज खड्ग की धार कुंठिता है ख़ाली तूणीर हुआ'' गीत लिखा था)! मृत्युगत महानता में पं. माधवप्रसाद मिश्र हुतात्मा खुदीराम बोस एवं हुतात्मा रामप्रसाद 'बिस्मिल' का स्मरण भी कराते हैं।

यदि केवल एक निबन्ध '' 'इत्यादि' की आत्मकहानी'' के आधार पर यशोदानन्दन अखौरी अमर हो गए,[1] केवल एक कहानी 'उसने कहा था'[2], के आधार पर चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, तो केवल एक निबन्ध 'सब मिट्टी हो गया' के आधार पर माधवप्रसाद मिश्र। यह एक निबन्ध किसी एक निबन्धसंग्रह से कम नहीं ('चिन्तामणि' की बात नहीं कर रहा)! 'सब मिट्टी हो गया' आवेग-शैली का सर्वश्रेष्ठ हिन्दी-निबन्ध है, जिसकी समता सामन्तवादी मनोवृत्ति पर आधृत स्व. डॉ. रघुवीरसिंह का 'अवशेष' तक नहीं कर सकता। यह एक महान् गद्यगीत-सा है। इसकी तुलना तो सर्वश्रेष्ठ अंग्रेज़ी-निबन्धकार चार्ल्स लैम्ब के महान् निबन्ध 'ड्रीम चिल्ड्रेन' से की जा सकती है। 'भारत-भारती' तक में इनती शक्ति नहीं है। आज जिसे ललित-निबन्ध कहा जाता है (जिसके प्रवर्तक हज़ारीप्रसाद द्विवेदी एवं अनुवर्तक स्व. विद्यानिवास मिश्र एवं स्व. कुबेरनाथ राय बताए जाते हैं) उसका श्रेष्ठतम रूप 'सब मिट्टी हो गया' में देखा जा सकता है। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का 'अशोक के फूल' या 'आम फिर बौरा गए' जैसे श्रेष्ठ निबन्ध भी इसकी तुलना में प्रयत्नज लगते हैं। क्या कल्पना-शक्ति, क्या देशभक्ति, क्या सृजनशक्ति, क्या शैली-शिल्प, क्या भाषा-वैभव--सभी दृष्टियों से 'सब मिट्टी हो गया' विश्व-साहित्य का एक महान् निबन्ध है। मेरे मत से, 'राजा भोज का सपना' (शिवप्रसाद सितारेहिन्द), 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न' (भारतेन्दु), 'दाँत', 'भौं', 'आप' (प्रतापनारायण मिश्र), 'आँसू' (बालकृष्ण भट्ट), 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता' (महावीरप्रसाद

---

1. चतुर्भुज शर्मा औदीच्य का 'कवित्व' निबन्ध उन्हें अमर करने योग्य है।
2. गुलेरी की 'सुखमय जीवन' एवं 'बुद्धू का काँटा' असफल कहानियाँ हैं। वैसे, उन्होंने अन्य कहानियाँ एवं लघुकथाएँ भी लिखी थीं, जो अब प्रकाशित हो चुकी हैं।

द्विवेदी), 'मेले का ऊँट' (बालमुकुन्द गुप्त), '' 'इत्यादि' की आत्मकहानी'' (यशोदानन्दन अखौरी), 'कवित्व' (चतुर्भुज शर्मा औदीच्य), 'मज़दूरी और प्रेम' (पूर्णसिंह), 'लोभ और प्रीति', 'कविता क्या है?', 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' (रामचन्द्र शुक्ल), 'कला' (श्यामसुन्दरदास), 'महाराणा प्रताप' (गणेशशंकर विद्यार्थी), 'अशोक के फूल', 'आम फिर बौरा गए' (हज़ारीप्रसाद द्विवेदी), 'हिन्दी-उपन्यास', 'वाणी के न्याय-मन्दिर में' (नगेन्द्र), 'शहीद शोएबुल्ला ख़ान' (कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर') जैसे हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ निबन्ध विश्वस्तरीय हैं और 'सब मिट्टी हो गया' इनमें भी किसी से अणु मात्र न्यून नहीं है। गद्य के जादूगर के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. लोग केवल घर के ही नष्ट होने पर 'सब मिट्टी हो गया' नहीं कहते हैं और जगह भी इसका प्रयोग करते हैं। किसी का जब बड़ा भारी श्रम विफल हो जाए तब कहेंगे कि 'सब मिट्टी हो गया', किसी का धन खो जाए, मान-मर्यादा भंग हो जाए, प्रभुता और क्षमता चली जाए तो कहेंगे कि 'सब मिट्टी हो गया'। इससे जाना गया कि नष्ट होना मिट्टी होना है। किन्तु मिट्टी को इतना बदनाम क्यों किया जाता है? अकेली मिट्टी ही इस दुर्नाम को क्यों धारण करती है? क्या सचमुच मिट्टी इतनी निकृष्ट है? और क्या केवल मिट्टी ही निकृष्ट है, हम निकृष्ट नहीं हैं? भगवती वसुन्धरे! तुम्हार 'सर्वसहा' नाम यथार्थ है। अच्छा, माँ! यह तो कहो तुम्हारा नाम वसुन्धरा किसने रखा? यह नाम तो उस समय का है! यह नाम व्यास, वाल्मीकि, पाणिनि, कात्यायन आदि सुसन्तानों का दिया हुआ है। जाने वे तुम्हारे सुपुत्र कितने आदर से, कितनी श्लाघा से और श्रद्धा से तुम्हें पुकारते थे!

2. आर्य-वंश के धर्म, कर्म और भक्तिभाव का वह प्रबल प्रवाह जिसने एक दिन जगत् के बड़े-बड़े सन्मार्ग-विरोधी भूधरों का दर्प दलन कर उन्हें रज में परिणत कर दिया था और उस परम पवित्र वंश का वह विश्वव्यापक प्रकाश जिसने एक समय जगत् में अन्धकार का नाम तक न छोड़ा था, अब कहाँ है? इस गूढ़ और मर्मस्पर्शी प्रश्न का यही उत्तर मिलता है कि सब महाकाल के पेट में समा गया! ....जहाँ महा महामहीधर लुढ़क जाते थे और अगाध अतलस्पर्शी जल था वहाँ अब पत्थरों में दबी हुई एक छोटी-सी किन्तु सुशीतल वारिधारा बह रही है। जहाँ के महाप्रकाश से दिग्दिगन्त उद्भासित हो रहे थे वहाँ अब एक अन्धकार से घिरा हुआ स्नेहशून्य[1] प्रदीप टिमटिमा रहा है जिससे कभी-कभी यह भूभाग प्रकाशित हो जाता है!....भारतवर्ष की सुख, शान्ति और भारतवर्श का प्रकाश अब केवल 'राम नाम' पर अटक रहा है।....पर जो प्रदीप स्नेह से परिपूर्ण नहीं है तथा जिसकी रक्षा का कोई उपाय नहीं है, वह कब तक सुरक्षित रहेगा?

पं. माधवप्रसाद मिश्र हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ निबन्धकारों की पंक्ति में बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, पूर्णसिंह, रामचन्द्र शुक्ल और हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के साथ सदैव प्रतिष्ठित रहेंगे। इधर, साम्यवादियों के शिक्षा-क्षेत्र में छा जाने के कारण भट्ट, मिश्र, द्विवेदी प्रभृति के साथ उनकी भी उपेक्षा की जा रही है, क्योंकि मार्क्स के अनुसार भारत में कभी स्वर्णयुग नहीं था (और वह भारतीय साम्यवादी ही ला सकेंगे)। धर्मनिरपेक्षता के कारण 'मातृभूमि' शब्द को तिरस्कृत करना ही बौद्धिकता का द्योतक है क्योंकि मुसलमान 'भारत माता' शब्द से बिदकते हैं : 'वन्देमातरम्' (बंकिम) तक की उपेक्षा अपरिहार्य हो गई है। संस्कृत शब्दावली न साम्यवादी पसन्द करते हैं, न मुसलमान भाई क्योंकि अध्यवसाय केवल राजनीति में ही किया जाता है। अतः माधवप्रसाद मिश्र की उपेक्षा क्यों न हो? आख़िर, लोकतन्त्र और धर्मनिरपेक्षता के साथ समाज़वाद या साम्यवाद तभी ही तो आएगा जब मातृभूमि, देशभक्ति, संस्कृति एवं संस्कृत को समूल उच्छिन्न कर दिया जाए!

ब्रजेश[2]

'बिरह-वाटिका', 'माधव-विलास', 'ब्रजेश-विनोद', 'शृंगार-शिरोमणि' जैसे अतिशय-पारम्परिक ब्रजभाषा-काव्यों के प्रसिद्ध प्रणेता ब्रजेश (1871-1956 ई.)[3] ने 'रससमावेश-निर्णय', 'अलंकार-निर्णय' जैसे विशुद्ध शास्त्रीयकाव्य भी रचे। वस्तुतः ब्रजेश काव्य-सर्जन में

---

[1] स्नेह = घृत, तैल। प्रेम। श्लेष।

[2] 'विनोद' में ब्रजेश बुन्देलखंडी और ब्रजेश महापात्र दो नाम ग़लग लगते हैं तथा सम्भवतः इन्हीं एक के हैं। यह रीवाँ में पैदा हुए तथा ब्रह्मभट्ट-परम्परा के कवि थे जो 'नारे पर की गढ़ी- (जनपद रायबरेली) में बस गए थे। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. किशोरीलाल ने गाँव का ग़लत नाम 'नारी की गढ़ी' लिखा है जो यहाँ की नारियों की पुरानी प्रभुता एवं कार्यमुक्त कोमलता की कथाओं के कारण रोचक लगता है। 'असनी के कवि' (डॉ. विपिनबिहारी त्रिवेदी) में इन पर भी विवरण मिलता है। ब्रजेश भट्ट नामक एक कवि इस समय (1997 ई.) विद्यमान हैं। भट्ट लोगों ने हिन्दी की महान् सेवाएँ की हैं : चन्द्रवरदायी, जगनिक, गदाधर भट्ट, सूरजदास (सूरजचन्द्र), होलराय, ठाकुर प्रथम, ठाकुर द्वितीय, पद्माकर, बेनी बन्दीजन, बालकृष्ण भट्ट, श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', उदयशंकर भट्ट, डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ. रामविलास शर्मा, त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु', सुधाकर शर्मा 'सुधाकर' तथा शत-शत अन्य! संस्कृत में बाण भट्ट, विश्वनाथ महापात्र, भट्ट लोल्लट, भट्ट नायक, जगद्धर भट्ट इत्यादि की संख्या भी कम नहीं है। अन्य साहित्यों में भी भट्ट विद्यमान हैं—भट्ट महान् साहित्य-भट सिद्ध होते हैं। 'भट्ट-नामावली' या 'भट्टों की साहित्य-सेवा' जैसे ग्रन्थ प्रकाशित होने चाहिए।

[3] 1928-2014 वि.। 86 वर्ष की आयु प्राप्त की।

देव इत्यादि तथा आचार्यत्व में भिखारीदास इत्यादि के एक उल्लेख्य उत्तराधिकारी थे। उन्होंने राम, शिव इत्यादि पर भक्तिकाव्य भी रचा, शान्तरस के छन्द भी रचे, 'महात्मा गाँधी' काव्य भी रचा। व्यक्तित्व एवं वेषभूषा में वे अतीत के एक मानवीकरण विशुद्ध चारण या ब्रह्मभट्ट लगते थे। अपनी क्षमता पर उन्हें पूर्ण प्रत्यय था :

जाने अलंकार, ध्वनि, व्यंग्य, लक्षणादि, रस, छंदरचना में देव, दास ते न दबि हैं।
काव्यशास्त्र-पंडित ब्रजेश ब्रजभाषा काज, अच्छ प्रतिपच्छिन पछारिबे मैं पवि हैं।।

रीवाँ-दरबार के प्रतिष्ठित कवि एवं ओरछा के राजकवि के रूप में उन्हें अच्छी ख्याति प्राप्त हुई। ब्रजेश की ब्रजभाषा-कविता में रामनाथ 'जोतिसी' की कलासमन्वित-आधुनिकता, 'ब्रजनन्दन' की भावुकतासमन्वित रसिकता, वचनेश की मार्मिकतासमन्वित सरसता के दर्शन नहीं होते, किन्तु श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' का आचार्यत्व अवश्य प्राप्त होता है। वे आधुनिक ब्रजभाषा के एक उत्कृष्ट कवि थे, इसमें सन्देह नहीं। विविध छन्दों, विशेषतः सवैया के अनेक रूपों, पर उनका पूरा अधिकार था। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं[1] :

1. बाहन बाजि के बृंद 'ब्रजेश' गयंद खरे के खरे रहि जायँगे।।
भोजन भाजन भूषण भूरि भँडार भरे के भरे रहि जायँगे।।
अंत समय कफ बात सों ग्रासित बैन गरे के गरे रहि जायँगे।
पीनस पालने पालकी पाल पलंग परे के परे रहि जायँगे।।

2. खरी चटसारिका मैं लट खोले रही पट सों तन की दुति फूटि।
'ब्रजेश' अकेली अचानक पाय गयो हरि को मन हाथ सो छूटि।।
चलावन पानि उरोजनि आछे लियो उपमा कबि मौज सों लूटि।
बृषध्वज के गिर्‌यो सीस पै मंजु मनौ मकरध्वज को ध्वज टूटि।।

रामचरित उपाध्याय

आदर्शवादी युग के एक प्रतिनिधि कवि एवं आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के एक प्रमुख शिष्य के रूप में रामचरित उपाध्याय (1872-1938 ई.)[2] का नाम उल्लेखनीय है। वे 'ब्रज-सतसई' (1937 ई.) के कारण ब्रजभाषा-कवियों में भी परिगणित किए जाने के अधिकारी हैं। 'देवी द्रौपदी'[3] (1922 ई.) उपन्यास के कारण वे 'द्रौपदी की आत्मकथा', 'द्रोण की आत्मकथा', 'कर्ण की आत्मकथा', 'कृष्ण की आत्मकथा' प्रभृति महाभारतपरक आत्मकथाओं का ढेर लगानेवाले मनु शर्मा तथा उनके अनुकरण में रामायणपरक पात्रों में आधुनिकता की चटक-मटक के साथ परिचयात्मक ग्रन्थों की झड़ी लगाने वाले डॉ. युगेश्वर के पूर्वज सिद्ध होते हैं—अब तो बैजनाथप्रसाद 'भव्य' द्वारा 'द्रौपदी' (1989 ई.) एवं डॉ. सूर्यनारायण शुक्ल द्वारा 'सैरिन्ध्री' (1993 ई.) महाकाव्य भी रचे जा चुके हैं। डॉ. नरेन्द्र कोहली ने रामायण एवं महाभारत दोनों पर अतिस्फीत युगनिष्ठ उपन्यास-रचना की है। 'भारत-भक्ति' एवं 'राष्ट्र-भारती' प्रभृति कविताएँ उन्हें अपने महत्तर अनुज (गुरुभाई) राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त से जोड़ती हैं। उनका प्रमुख काव्य 'रामचरित-चिन्तामणि' भी उन्हें साकेतकार के निकट खड़ा करता है। 'रामचरित-चन्द्रोदय' उनका दूसरा आदरणीय रामकाव्य है। 'देवता', 'देवदूत', 'देवसभा', 'विचित्र विवाह' इत्यादि कविताओं में वे मानव-मूल्य प्रतिष्ठापक एवं सुधारवादी कवि के रूप में प्रकट होते हैं। यह भी एक विलक्षण संयोग है कि वे अपने गुरु के निधन-वर्ष 1938 ई. में ही दिवंगत हुए (उर्दू का घोर साम्प्रदायिक शायर इक़बाल भी इसी वर्ष मरा)!

रामचरित-चिन्तामणि काव्य राम को बौद्धिककाल के सर्वथा अनुरूप वैसे ही रूप में चित्रित करता है जैसे रूप में 'प्रियप्रवास' कृष्ण को—'साकेत' में "राम! तुम मानव हो?" जैसा प्रश्न इसी विराट् चेतना का उद्‌गार है :

---

1. इन छन्दों के लिए मैं ब्रजभाषा-काव्य के एक परम रसिक, श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' के एक अनन्य शिष्य एवं 'ब्रज-बिहार' के एक सहृदय ब्रजभाषा-कवि गयाप्रसाद तिवारी 'मानस' (लखनऊ) का आभारी हूँ।
2. जन्मस्थान ग़ाज़ीपुर—प्रसिद्ध है कि जायसी यहीं के थे, उस्मान तो थे ही। आज भी यहाँ डॉ. विवेकीराय विद्यमान हैं। उपाध्याय जी आज़मगढ़ में भी रहें।
3. आ. शुक्ल ने इसे काव्य रूप में उल्लिखित किया है।

ईश्वर का अवतार वही जो तारे जग को, विस्तृत जो कर सके परिष्कृत वैदिक मग को।
राम! आपके काम सदा ऐसे होते थे, ईश आपको समझ सभी सुख से सोते थे।

रामकाव्य अपने संवाद-वैभव के लिए प्रख्यात है। परशुराम-लक्ष्मण-संवाद, दशरथ-कैकेयी-संवाद, राम-भरत-संवाद, अंगद-रावण-संवाद, काकभुशुंडि-गरुड़-संवाद इत्यादि अनेकबिन्दुबद्ध संवाद विश्व-साहित्य में अद्वितीयता के सूचक हैं। रामचरित उपाध्याय के महाकाव्य 'रामचरित-चिन्तामणि' में भी संवादों के सुन्दर दर्शन होते हैं। अंगद-संवाद की आ. शुक्ल ने भी प्रशंसा की है। उनकी प्रिय पंक्तियाँ उद्धृत हैं :

1. कुशल से रहना यदि है तुम्हें, दनुज! तो फिर गर्व न कीजिए।
शरण में गिरिए रघुनाथ के, निबल के बल केवल राम हैं।।
2. सुन कपे! यम, इन्द्र, कुबेर की न हिलती रसना मम सामने।
तदपि आज मुझे करना पड़ा मनुज-सेवक से बकवाद भी।।
यदि कपे! मम राक्षसराज का स्तवन है तुझसे न किया गया।
कुछ नहीं डर है, पर क्यों वृथा निलज! मानव-मान बढ़ा रहा।।

'रामचरित-चिन्तामणि' में तुकान्त-अतुकान्त उभयप्रकारगत कविता के दर्शन होते हैं। शुक्ल के 'इतिवृत्तात्मक' जैसे आचार्यत्व की लपेट का भारी-भरकम शब्द की जगह सीधा-सादा 'वर्णनात्मक' शब्द प्रयुक्त करते हुए मैं यह कहना चाहूँगा कि इस प्रकार की कविता को आँख मूँद कर शुष्क मानना समीचीन नहीं है, क्योंकि इसमें भी मार्मिक एवं बौद्धिक प्रभाव उत्पन्न करनेवाले अंश विद्यमान हैं। यह सत्य है कि यह कविता कलाप्रवण न होकर सन्देशप्रवण है। उस समय सन्देश कला से भी अधिक आवश्यक था तथा आ. द्विवेदी एवं उनके शिष्य इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु सन्नद्ध थे। ''साहित्य समाज का दर्पण है'' की दृष्टि से यह कविता प्रशस्य है।

रामचरित उपाध्याय हिन्दी-साहित्य के इतिहास में 'रामचरित-चिन्तामणि' के प्रणेता के रूप में ख्यात रहेंगे। यह महाकाव्य न तो खड़ीबोली के 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त) के सदृश भावसम्पन्न है और न 'ओ अहल्या' (रामकुमार वर्मा) के सदृश विचारसम्पन्न, न व्रजभाषा के 'श्रीरामचन्द्रदोय' (रामनाथ 'जोतिसी') और 'शबरी' (वचनेश मिश्र) के सदृश कलासम्पन्न, किन्तु इसकी सांस्कृतिक बौद्धिकता इसे 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता), 'जलसमाधि' से पूर्व' (बालकृष्ण मिश्र), 'समरप्रिया' (श्रीकृष्ण मिश्र), 'कोशलेन्दु भरत' (परमानन्द जड़िया) इत्यादि से श्रेष्ठतर सिद्ध करती है तथा इसकी तुलना में स्फीत द्विखंडीय 'उत्तर साकेत' (सोहनलाल 'रामरंग'), आर्यसमाज-भाषणकाव्य 'माण्डवी महाशय' (ओउम्प्रेमी), 'एक विश्वास और' (डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र) इत्यादि कोरे-काव्य कहीं भी नहीं ठहर पाते। बौद्धिककाल के रामकाव्यकारों में मैथिलीशरण, नवीन, बलदेवप्रसाद मिश्र, रामकुमार वर्मा (खड़ीबोली), रामनाथ 'जोतिसी', वचनेश मिश्र (व्रजभाषा), डॉ. महेश अवस्थी ('जन-रामायण': अवधी) इत्यादि को विशिष्ट माना जा सकता है, और इनके साथ हरिऔध[1] एवं रामरित उपाध्याय-द्वय के नाम समाविष्ट हैं।

अमीरअली 'मीर'[2]

'नीतिदर्पण की भाषा-टीका', 'बूढ़े का ब्याह', 'बच्चे का ब्याह', 'सदाचारी बालक' इत्यादि के लेखक एवं कवि सैयद अमीरअली 'मीर' (1873-1937 ई.—जन्म एवं सबेरे की सैर के सिलसिले में रेल से कटकर[3] मृत्यु सागर में) हिन्दू-मुस्लिम एकता, गोवध-निषेध[4]

---

1. वैदेही-वनवास के कारण।
2. उर्दू में मीर तक़ी 'मीर' एवं मीर 'दर्द' जैसे शायर हुए हैं, किन्तु हिन्दी में वह अकेले 'मीर' हैं!
3. लेखक एवं पत्रकार श्री शत्रुघ्नलाल शुक्ल की 1988 ई. में उन्नाव में रेल-दुर्घटना के कारण मेडिकल कॉलेज लखनऊ में मृत्यु हुई। यूनेस्को-पुरस्कार सम्मानित उपन्यासकार एवं पत्रकार शत्रुघ्नलाल शुक्ल के देहान्त का कारण उनकी विकट बधिरता थी जिसके कारण एंजिन की सीटो न सुन पाए। डॉ. पाण्डेय रामेन्द्र एवं श्री सुधीर मिश्र ने 'शत्रुघ्नलाल शुक्ल : व्यक्ति एवं साहित्य' ग्रन्थ प्रस्तुत किया है। रेल ने कुछेक अन्य साहित्यकारों के प्राण भी लिए हैं।
4. अमीरअली 'मीर' ने मानवीय-राष्ट्रीय भावना से गोवध-निषेध चाहा था। अत्याचारी विदेशी आक्रान्ता बाबर तक, राजनैतिक कारणों से ही सही, वसीयत में हुमायूँ से गोवध-निषेध की सलाह दे गया था। अकबर ने गोवध-निषेध लागू किया था। गाँधी एवं विनोबा जैसे कांग्रेसवादी तक गोवध-निषेध के पक्षधर थे।

इत्यादि के कट्टर समर्थक प्रखर राष्ट्रवादी थे—मौलाना अबुल कलाम 'आज़ाद', ज़ाकिर हुसैन, फ़ख़रुद्दीन अली अहमद जैसे क्रमशः हिन्दी-शत्रु, परिवार-नियोजन विरोधी एवं विदेशी मुसलमानों को बसा-बसा कर असम-समस्या के एक मूल कारण बननेवाले तथाकथित राष्ट्रवादियों से भिन्न मोहम्मदअली करीम छागला (चागला), रफ़ी अहमद किदवई, अब्दुल हमीद जैसे ख़ालिस टकसाली राष्ट्रवादी! यह सज्जन पुलिस विभाग में थे। प्रख्यात एवं प्रथम साहित्येतिहासकार ठाकुर शिवसिंह सेंगर ('सरोज' के सहस्र-सुरभिदाता) भी पुलिस विभाग में थे। हिन्दी-लेखक न होने पर भी हिन्दुत्व एवं हिन्दी के उपासक श्रीशचन्द दीक्षित, एम.पी. (लोकसभा—1991 ई. निर्वाचन) का स्मरण आ जाता है (जो महाधिकारी थे)। मिश्रबन्धु के अनुसार, ''अमीरअली 'मीर' कविता अच्छी करते थे।'' वे समस्यापूर्तिकार के रूप में प्रसिद्ध थे जिनकी ''लोभ में अमी के अहि चढ्यो जात चंद्र पे'' पूर्ति बहुत लोकप्रिय हुई थी। उनकी कविता एकदम सरल और दिलचस्प है, जिसे साधारण किन्तु अच्छी कह सकते हैं। दशहरा पर उनकी कविता नज़ीर अकबराबादी की ''कृष्ण-कन्हैया के बालपन'' वाली कविता का स्मरण कराती है। 'मीर' प्रतिवर्ष दशहरे पर कविता लिखते थे तथा पर्व के आयोजकों में रहते थे। इनका यह कुंडलिया छन्द बहुत है :

बगला बैठा ध्यान में प्रातः जल के तीर। मानो तपसी तप करे मल कर भस्म शरीर।।
मल कर भस्म शरीर तीर जब देखी मछली। कहैं 'मीर' ग्रसि चोंच समूची फ़ौरन निगली।
फिर भी आवें शरण बैर तज के जो अगला। उनके भी तू प्राण हरे रे छी छी बगला।।

आधुनिक-केशव : रामनाथ 'जोतिसी'

बौद्धिककाल (1800 ई. से) में भी प्रत्येक युग में व्रजभाषा-काव्य का उच्चस्तरीय सृजन सोलहवीं सदी से उन्नीसवीं सदी तक चार सौ वर्षों तक हिन्दी-कविता की रानी-विभाषा की जीवन्त महिमा का प्रतीक है। सन्धि-युग (1800-50 ई.) एवं सुधारवादी युग (1850-1900 ई.) तो व्रजभाषा-प्रधान थे ही, जिनमें क्रमशः द्विजदेव तथा प्रतापसाहि एवं भारतेन्दु तथा प्रतापनारायण मिश्र श्रेष्ठ कवि हुए। आदर्शववादी युग (1900-1920 ई.) में महाकवि रत्नाकर एवं कविवर रामनाथ 'जोतिसी' (जिनका सृजनकाल स्वच्छन्दतावादी युग तक प्रसरित रहा तथा जीवन यथार्थवादी युग तक) तो समग्र व्रजभाषा-काव्याकाश के जाज्वल्यमान् नक्षत्रद्वय हैं ही (संयोगात् दोनों घनिष्ठ मित्र भी थे)। स्वच्छन्छतावादी युग (1900-40 ई.) में वचनेश एवं हरदयाल सिंह के 'शबरी' एवं 'रावण' काव्य सर्वथा स्मरणीय हैं। यथार्थवादी युग (1940 ई. से) में श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' एवं 'व्रजनन्दन' जैसे उत्कृष्ट कवियों ने अपनी सर्जना से साहित्य को सम्पन्न किया। बौद्धिककाल के प्रत्येक युग में व्रजभाषा के अनेकानेक कवि हुए हैं। द्विजदेव, प्रतापसाहि, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, श्रीधर पाठक, नाथूराम शर्मा 'शंकर', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', सत्यनारायण कविरत्न, हरिऔध, रत्नाकर, जोतिसी, वचनेश, हरदयालसिंह, दुलारेलाल भार्गव, 'बिहारी', 'केशव', 'व्रजनन्दन', अनूप शर्मा, गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, राजेश, निशंक, प्रकाश, मधु इत्यादि आधुनिक व्रजभाषा-कवियों की सूची बहुत लम्बी हो सकती है, जिनमें द्विजदेव, प्रतापसाहि, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीधर पाठक, रत्नाकर, जोतिसी, वचनेश, 'बिहारी', 'केशव', अनूप, 'व्रजनन्दन' एवं प्रकाश निस्सन्देह उच्चकोटि के कवि हैं तथा अन्य कवियों ने भी अनेक उत्कृष्ट छन्द रचे हैं।

आधुनिक व्रजभाषा-कवियों में रामनाथ 'जोतिसी' का स्थान अत्यन्त उच्च है। रत्नाकर एवं भारतेन्दु के अनन्तर कोई कवि उनसे आगे जाता नहीं दीखता, क्योंकि क्या उच्चस्तरीय कलानिष्पन्न महाकाव्य हो, क्या प्रगतिशील राष्ट्रकाव्य, क्या विधवा-संवेदनात्मक काव्य, क्या नीतिकाव्य, सर्वत्र वे सफल ही दृग्गत होते हैं। श्रीधर पाठक में 'जोतिसी' की स्फीति नहीं है, वचनेश, 'बिहारी', 'केशव' एवं 'व्रजनन्दन' में 'जोतिसी' की जागरूकता नहीं। निस्सन्देह, 'जोतिसी' समूची आधुनिक कविता के एक ज्योति-स्तम्भ हैं।

परिचय

रायबरेली प्रांत, निकट बछरावाँ को पुर। विद्याभूषण रामनाथ कवि, पुर भैरवपुर।।
कान्यकुब्ज कुल सुकुल, तात बिंध्याप्रसाद बुध। कल्याणी पतिदेव, जननि जनि मार्ग चौथ सुध।
महिं गुन नवेन्दु विक्रमि जनमि, जन्मदिवस वय ब्रह्म सर। भो अवधपुरी में 'जोतिसी' रचित राम-जस पूर्वतर।।

('श्रीरामचन्द्रोदय' में कवि का आत्मपरिचय)

उपर्युक्त छप्पय के अनुसार 'श्रीरामचन्द्रोदय' महाकाव्य के प्रणेता पं. रामनाथ 'जोतिसी' का जन्म रायबरेली जनपद में बछरावाँ के निकट भैरमपुर में हुआ, वे कान्यकुब्ज (शुक्ल) ब्राह्मण थे, उनके पिता का नाम पं. विंध्याप्रसाद एवं माता का नाम श्रीमती कल्याणी था, उनका जन्म मार्गशीर्ष (अग्रहायण या अगहन) शुक्ल 4, सं. 1931 वि. (1874 ई.) को हुआ था तथा उन्होंने अयोध्या में महाकाव्य की रचना की। जोतिसी जी के पिता विद्वान् व्यक्ति थे। उनके गुरु पं. रघुनन्दन झा शास्त्री (रहवाँ वाले), भी विद्वान् थे। अतः जोतिसी जी ने विज्ञान (वेदोपनिषदादि), व्याकरण, न्याय, काव्यशास्त्र, ज्योतिष इत्यादि का गहन अध्ययन किया तथा प्रसिद्ध विद्वान् माने गए। बारह वर्षों तक चन्दापुर राज्य में रहने के बाद, 1906 में अयोध्या पहुँचे तथा राजकीय पुस्तकालयाध्यक्ष नियुक्त किए गए। उन दिनों महाकवि जगन्नाथ 'रत्नाकर' (1866-1932 ई.) अयोध्या-नरेश के सचिव थे। जोतिसी जी ने रत्नाकर को साहित्यिक जीवन में भारी सहयोग दिया। वे बहुत बड़े शास्त्रार्थी भी थे। उन्होंने वैष्णव सम्मेलन के मुख्यपत्र 'धर्मभूषण' के सम्पादक के रूप में भी ख्याति अर्जित की थी। भारत धर्म महामण्डल (काशी) ने उन्हें 'विद्याभूषण' एवं 'साहित्यालंकार' तथा संस्कृत कार्यालय अयोध्या ने 'साहित्यार्णव' से अलंकृत किया। जुलाई, 1937 में श्रीरामचन्द्रदोय महाकाव्य का प्रकाश हुआ, जिस पर उन्हें तत्कालीन प्रसिद्ध देव-पुरस्कार प्राप्त हुआ। महान् मिश्रबन्धु, आ. रामचन्द्र शुक्ल, कविवर रामनरेश त्रिपाठी इत्यादि ने इस महाकाव्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उनके अन्य काव्यों में 'वीर-नारी', 'विधवा-बत्तीसी' एवं (संस्कृत में रचित) 'गाँधी शतनाम स्तोत्र' उल्लेखनीय हैं। उनका 'महाभारत' अप्रकाशित है। फ़ैज़ाबाद में भवन बनाकर, जीवन-संध्या व्यतीत करते हुए, वे 12 जून, 1953 को वहीं दिवंगत हुए।

चितरंजनदास, गाँधी, स्वदेशी, स्वराज्य, विधवा इत्यादि विषयों पर प्रगतिशील चिन्तनपरक काव्यसृजन को देखते हुए मिश्रबन्धु ने उन्हें 'राष्ट्रकवि' कहा था। संस्कृत के अगाध विद्वान् होते हुए भी जोतिसी जी ने विधवा के प्रति अद्वितीय संवेदन व्यक्त किया है जो प्रशस्य ही नही अपितु प्रणम्य भी है :

मौन मन मारे किती अंचल पसारे फिरैं अरि रहीं केती लोकलाज के पसारा में।।
मूरज समाज अंध बंधन प्रबंधन मैं। केती बँधी रोवैं, केती गेह के निसारा मैं।।
पापी-पुण्यवंतन की नजरि समान नित। नजरि लगी रहे 'जोतिसी' इसारा मैं।।
बूड़ी बही जात, न लजाति यह हिन्दू-जाति। विधवा बिचारिन की अस्रु वारिधारा मैं।।

……

बढ़े अधिक जब दुर्गुन सरित उमाह। तब स्वजात मैं करिए बिधवा-ब्याह।।
मृत पत्नी सँग बय कुल लखि निरवाह। करन चहिय विधिपूर्वक विधवा-ब्याह।।

कविवर रामनाथ जोसिती ने पाखंडियों, देशद्रोहियों, प्रतिक्रियावादियों इत्यादि के कठोर प्रत्याख्यान में भी एक ओजस्वी राष्ट्रकवि होने का परिचय दिया है।

श्रीरामचन्द्रोदय महाकाव्य

केवल बालकांड के वृत्त पर आधृत, महाकवि केशवदास कृत 'रामचन्द्रिका' के सदृश अलंकृत व्रजभाषा एव विविध छन्दों में रचित, षोडस-कला-विभक्त श्रीरामचन्द्रोदय महाकाव्य कविवर रामनाथ जोतिसी के नानाशास्त्रपांडित्य, कवि-कौशल एवं रचनासामर्थ्य का भव्य निदर्शन है जिसके कारण हिन्दी-साहित्येतिहास में उनको एक निश्चित स्थान प्राप्त हो चुका है। यह सत्य है कि उन पर वाल्मीकि, कालिदास, तुलसीदास, केशवदास, रत्नाकर इत्यादि कवियों का भारी प्रभाव पड़ा किन्तु ऐसे भारी प्रभाव अन्य सन्दर्भों में तुलसी, सूर, केशव, बिहारी, भारतेन्दु, पन्त, अज्ञेय इत्यादि पर भी पड़े हैं अतः उनके आकलन में व्यवधान न पड़ना चाहिए। यह सत्य है कि खड़ीबोली-काव्यरचना-युग मे व्रजभाषा-काव्यरचना को न्याय नहीं मिल सका किन्तु प्रतिभा के आकलन में युगीन व्यवधान को विशेष महत्त्व देना उचित नहीं है। शोधपंडित डॉ. आत्माराम शर्मा 'अरुण' ने 'पं. रामनाथ ज्योतिषी एवं श्रीरामचन्द्रदोय काव्य' और 'श्रीरामचन्द्रोदय काव्य : समीक्षात्मक विश्लेषण' में इस व्रजभाषा-महाकवि और प्रतीक-ग्रन्थ पर समुचित प्रकाश डाला है। मैं वर्णन-सामर्थ्य, नानाछन्द-प्रयोग, अलंकार-चमत्कार इत्यादि को ध्यान में रखने पर रामनाथ जोतिसी को ’च़ा’आधुनिक-केशव कहना न्यायसंगत समझता हूँ। मैं महान् रायबरेली जनपद की साहित्यिक बृहत्-चतुष्टयी हिन्दी के आदि सूफ़ीकवि मुल्ला दाऊद (डलमऊ, रचनाकाल 1379 ई. के आस-पास), हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ सूफ़ी कवि मलिक मोहम्मद जायसी (जायस, रचनाकाल 1540 ई. के आसपास),

मिश्रबन्धु के शब्दों में 'हिन्दी छन्द : शास्त्र के सर्वोत्कृष्ट आचार्य' कविराज सुखदेव मिश्र (दौलतपुर, जीवनकाल 1635-1737 ई.)[1] तथा खड़ीबोली-कविता के आचार्य एवं मानक गद्य के जन्मदाता पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी (1864-1938 ई.) के अनन्तर, कविवर रामनाथ जोतिसी को जनपद की अद्वितीय साहित्यविभूति समझता हूँ। प्रमाणस्वरूप उनके सीता-सौन्दर्य, गंगा एवं शिव पर रचित कुछ छन्द उद्धृत करता हूँ जिनमें उच्चकोटि की काव्यकला के दर्शन अनायास हो जाते हैं :

बासी आसमान को कलंक सों उदासी बंक राहु रिपु ग्रासी पुनि पुन्निमासी पारे को।
बाप जाको आप, पाप चौथि को निहारे लगे प्रजापति साथ सों अनाप पाप कारे को।।
औगुन अनेक इमि चौगुन कला मैं ऊन सौगुन बतावैं सदा बिरही बिचारे को।
ऐसो है मयंक, तौ हूँ भाखत मयंकमुखी 'जोतिसी' सिया को धन्य बरननवारे को।
नैन उड़ि जाते मदमाते मंजु खंजन से पलक सुपींजरे मैं जदपि समाधै ना।
आनन कमल कैसो रहत अमल रूप रबि बिन्दु जाल को भाल अवराधै ना।।
नासा कीर 'जोतिसी' उड़ात कढ़ि कानन कौ कुलिस नुकीली कील पै कै जदि साधै ना।
विषधर कारे केस बेस करि देतो प्रलै ऐंचि ऐंचि जो पै सीय रैनि दिन बाँधे ना।।
जटन को जूट उत, मुकुट बिराजै इतै, उत भाल चंद, इत चंदन ललाम है।
मुंडन की माला उतै, इत मनिमाल मंजु, उतै तिस्सूल, बान इत अभिराम है।।
'जोतिसी' बघम्बर उतैं, इत पीत पट मोहे, गौरि उत राजै, इत सिय छविछाम है।
राम के सनेही उतै, इतै सिव नेही सदा। 'जोतिसी' हमारे जान एकै सिव-राम हैं।।[2]

कविवर रामनाथ 'जोतिसी' की साहित्यिक-यात्रा अपूर्व तथा अविस्मरणीय है। उन्होंने जो कुछ भी लिखा है वह उच्चकोटि की प्रतिभा का प्रकटीकरण है। आशा है कि हिन्दी-साहित्य के निरपेक्ष मूल्यांकनकर्ता 'जोतिसी' जी के साहित्यिक अवदान का निरन्तर स्मरण करते रहेंगे। हिन्दी भाषा को ऐसे महान् साहित्यसेवी पर गर्व है, जिनका कवि-निकष सर्वथा मननीय है :

कवि

सब्द अरथ सम सरल, तरल गति लघु गुरु राखै, दंद ताल विश्राम, बरन के सम रस भाखै।
कहुँ मरोरि कहुँ तोरि इति की उत जोरै, माली सम सम पाँति सामयिक भाव निचौरै।
अनुभव समेत काव्यांग के, नेम 'जोतिसी' उर धरै। मधुराच्छर पोहै हार इव, सो कबीस कविता करै।

मोहम्मद वज़ीर ख़ाँ

आदर्शवादी युग के व्रजभाषा-सवैयाकारों में मोहम्मद वज़ीर ख़ाँ (1875 ई., हिंडोरियो, जनपद दमोह, मध्य प्रदेश) का नाम स्मरणीय माना जा सकता है। इनकी कविता में देशभक्ति, साम्प्रदायिक-सौमनस्य एवं सदाचार के दर्शन होते हैं। इनकी कविता आज विभाजित भारत को भी साम्प्रदायिकता से सन्त्रस्त करनेवाले, धर्मनिरपेक्षता के पाखंड से राजनैतिक लाभ उठानेवाले, वस्तुतः राष्ट्रद्रोही एवं तत्त्वतः देशद्रोही, लघुनेताओं के युग में पहले से भी अधिक मूल्यवान लगती है। यह सैयद अमीरअली 'मीर' के शिष्य तथा 'सुकवि' (कानपुर) के कवियों में भी थे। दो उदाहरण अवतरित हैं :

1. देशसुधार करैं न कछू पर भेषसुधार अनेक करैंगे। आपुस में करि बैर सदा कबहूँ नहिं धर्म मैं ध्यान धरैंगे।।
   मानत सीख न बेदन की कुल-लाज-जहाज डुबाय मरैंगे। ते नर दूसरे द्वारिन तैं खर कूरहिं स्वान समान फिरैंगे।।
2. पालहु धर्म सबै अपनो, नहिं दूसरे के पथ पैर अड़ाओ। आपुस बैर तजो अबहू, निज देख दशा हिय में शरमाओ।।
   भ्रात-स्नेह करो सबसे अरु फूट-प्रपंच को दूर भगाओ। जान 'वज़ीर' सुऔसर को अब देश के शीश कलंक न लाओ।।

---

[1] पूर्वस्वीकृत (मिश्रबन्धु आधृत) 1633-1703 ई. जीवनकाल मान्यता से भिन्न नवशोधाधृत जीवनकाल।

[2] राम-शिव समन्वय का श्रेष्ठ छन्द, जो विनयपत्रिका के 'हरि-शंकरी' पद का स्मरण कराता है।

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी

हिन्दी-साहित्य को 'जगन्नाथ' ने बहुत सम्पन्न किया है। महान् मिश्रबन्धु के अमर किन्तु विशृंखल 'विनोद' में 1661 ई. में 'कोकभूषण' (कामशास्त्र) के प्रस्तोता जगन्नाथ जोशी (जैसलमेर) के अतिरिक्त उन्नीसवीं सदी में फैले 'चौरासीबोल' के रचयिता जगन्नाथ, 'रसप्रकाश' के रचयिता जगन्नाथ भट्ट, 'राजा हरिश्चन्द्र की कथा' के रचयिता जगन्नाथ मिश्र (जौनपुर), '10 वर्ष की फलरीति' के रचयिता जगन्नाथप्रसाद कायस्थ (जनपद मथुरा), 'ब्रजदरशमाला' के रचिता जगन्नाथप्रसाद कायस्थ (समथर, बुन्दलेखंड), जगन्नाथ अवस्थी (सुमेरपुर, उन्नाव), 'पीयूषरत्नाकर' के रचयिता जगन्नाथ, 'सुखसिन्धु', 'नीलमणि' एवं 'आनन्द सुन्दरी' के रचयिता जगन्नाथ शरण, जगन्नाथप्रसाद कायस्थ (बनारस), 'यमुना-पचीसी' इत्यादि के रचयिता जगन्नाथ चौबे माथुर, 'पत्नीवियोग' के रचयिता जगन्नाथ सिंह, 'चौताल रसिक मनभावन' के रचयिता जगन्नाथ 'द्विज', 'फाग-शिरोमणि' के रचयिता जगन्नाथप्रसाद, 'स्त्रीशिक्षा' एवं 'व्याख्यान-विधि' के रचयिता जगन्नाथ शुक्ल, जगन्नाथ कायस्थ (छतरपुर), जगन्नाथसिंह चौहान (हरदोई), 'कालिकाष्टक' के रचयिता जगन्नाथ वैश्य (पेंतेपुर, बाराबंकी—इनका देहान्त 1901 ई. में हुआ) का उल्लेख प्राप्त होता है तथा प्रख्यात छन्दःशास्त्री, साहित्य-वाचस्पति जगन्नाथप्रसाद 'भानु' (8 अगस्त, 1859—25 अक्टूबर, 1945) का ठीकठाक विवरण तो दिया ही गया है; बीसवीं सदी में लिखने वाले जगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल' (पटना), प्रख्यात जगन्नाथप्रसाद 'मिलिंद', 'कलकत्ता-समाचार' एवं 'भारत-मित्र' के सम्पादक जगन्नाथप्रसाद मिश्र, जगन्नाथप्रसाद सिंह, जगन्नाथप्रसाद मिश्र 'उपासक' का उल्लेख भी प्राप्त होता है; इनमें हास्य-प्रधान जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी जाने-माने तथा जगन्नाथों में जगन्नाथ महाकवि जगन्नाथदास 'रत्नाकर' तो अजर-अमर हैं ही (खेद है कि 'विनोद' में जगन्नाथों का उल्लेख नितान्त अव्यवस्थित है जो बिना कठिन परिश्रम के ज्ञात तक नहीं होता—मैंने उसे व्यवस्थित रूप में संकेतिक करने का यत्न किया है किन्तु 'विनोद में जगन्नाथ नामक कवि एवं लेखक' शोध की अपेक्षा रखते हैं)। 'हिन्दी-साहित्य कोश' भाग 2 न 'विनोद' है, न 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास'; किन्तु उसमें भी जगन्नाथदास 'रत्नाकर', जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, जगन्नाथप्रसाद 'भानु', जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' एवं 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' करनेवाले डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा (सम्भवतः समयसीमावश 'विनोद' में अनुल्लिखित) के विवरण प्राप्त होते हैं। मैं डॉ. विजयपालसिंह के प्रेरक गुरु तथा केशव के विद्वान् प्रो. जगन्नाथ तिवारी का नाम जोड़ना चाहता हूँ। किसी एक 'नाम' (सूर, तुलसी तक नहीं) का ऐसा बाहुल्य किसी भी साहित्य में नहीं मिलता। 'चतुर्वेदी' ब्राह्मणोपवर्गीय महानुभावों में महाकवि बिहारी, कविवर नवनीत जी, कविवर माखनलाल चतुर्वेदी, कवि गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी 'नवरत्न', कवि देवीदयाल चतुर्वेदी 'मस्त', पारम्परिक व्रजभाषा के एक अधुनातन कवि गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, कवि नन्द चतुर्वेदी, कवयित्री हीरादेवी चतुर्वेदी, अकविता का रमरसरा छेड़नेवाले जगदीश चतुर्वेदी, विद्वद्वर पं. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी, कोशकार द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, उनके पुत्र हिन्दी-वीर श्रीनारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर', पत्रकार-शिरोमणि बनारसीदास चतुर्वेदी, पत्रकार जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, राजस्थान के टंडन युगलकिशोर चर्तुवेदी, पुरातत्त्व-ग्रन्थकार जगदीशचन्द्र चतुर्वेदी इत्यादि हिन्दी साहित्याकाश के नक्षत्र हैं ही। इन्हीं नक्षत्रों में एक हास्यरसावतार जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी (1875-1939 ई.[1], स्थान मलयपुर, मुंगेर, बिहार) हैं, जिनके 'वसन्तमालती', 'संसार-चक्र', 'तूफ़ान', 'विचित्र विवरण', 'भारत की वर्तमान दशा', 'स्वदेशी आन्दोलन', 'गद्यमाला'[2], 'मधुर मिलन', 'मिस्टर व्यास की कथा' एव 'निरंकुशता-निदर्शन' (आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी कृत 'कालिदास की निरंकुशता' की प्रत्यालोचना) शीर्षक दस ग्रन्थों का उल्लेख 'विनोद' में प्राप्त होता है। 'हिन्दी-साहित्य कोश' (भाग 2) में 'कृष्णचरित', 'राष्ट्रीय गीत', 'अनुप्रास का अन्वेषण', 'सिंहावलोक'[3] एवं 'हिन्दी लिंग विचार' शीर्षक पाँच अन्य ग्रन्थ भी उल्लिखित हैं। यद्यपि जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी कवि, उपन्यासकार, नाट्यकार एवं हास्यनिबन्धकार के अतिरिक्त अलंकार-पंडित एवं वैयाकरण भी थे, तथापि उनकी ख्याति का प्रधान आधार उनका एक शीर्षस्थ हास्य व्यंग्यकार होना ही है—वे सचमुच हास्यरसावतार थे! उन्होंने गद्य एवं पद्य दोनों में सफल हास्य-सर्जना की है। वे एक विद्वान् के रूप में अत्यधिक समादृत थे। वे अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के द्वादश अधिवेशन (जो लाहौर में 1978 वि.[4] में हुआ) के सभापति बनाए गए थे।

---

1. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 2), पृष्ठ 201
2. 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2), पृष्ठ 201 में 'गद्य-पद्यमाला' लिखा है।
3. यशपाल ने भी संकीर्ण साम्यवादी 'सिंहावलोकन' किया है।
4. 1921 ई.

'भारतमित्र'-सम्पादक गहनहास्यसर्जक बालमुकुन्द गुप्त के मित्र एवं उस विख्यात पत्रिका के लेखक होने के कारण जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी की आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी से सम्बद्ध 'निरंकुशता-निदर्शन' की प्रत्यालोचना प्रभावी नहीं है। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के बाइसवें अधिवेशन (जो ग्वालियर में 1989 वि.[1]) में सभापति रायबहादुर पं. श्यामबिहारी मिश्र (मिश्रबन्धु-त्रिपूर्ति के विष्णु, रावराजा, रायबहादुर, साहित्य-वाचस्पति डॉ. श्यामबिहारी मिश्र) ने हिन्दी को व्याकरण की जकड़ से मुक्त रखने का जो आह्वान किया था वह सर्वथा सामयिक एवं प्रगतिशील था—वस्तुतः हिन्दी जैसी स्फीति विश्वभाषा-राष्ट्रभाषा एवं नानाविभाषामयी-वाग्रूपा को व्याकरण-बद्ध किया भी नहीं जा सकता। पिछली शताब्दी में अंग्रेज़ी को व्याकरण-पाशमुक्त करने का लाभकारी आन्दोलन चला था तथा प्रख्यात कवि ब्रॉउनिंग ने 'द फ़्यूनेरल ऑफ़ ए ग्रैमैरिअन' (वैयाकरण-शवयात्रा) शीर्षक प्रसिद्ध कविता लिखी थी। व्याकरण की अज्ञानमूलक विगर्हणा मूर्खतापूर्ण है, किन्तु व्याकरण-बद्धता का प्रतिपादन भी बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं। अतः जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के 'व्याकरण-विच्छेद' ('जागरण', काशी, होली—अंक 1932 ई.) एवं 'व्याकरणांतक' (''सुधा', अप्रैल, 1933) लेख पांडित्यपूर्ण हास्य व्यंग्य के बावजूद समीचीन नहीं लगते। रामनरेश त्रिपाठी द्वारा हिन्दी के केवल 300 शब्द बताए जाने, रोटी-तवा-अबीर-गुलाल-ढोल जैसे शब्दों को अरबी-फ़ारसी को मानने तथा इनका बहिष्कार करने का विरोध (जो 'त्रिपाठी की लाठी'[2] शीर्षक प्रार्थनापत्र के रूप में छपा) अवश्य स्तुत्य माना जा सकता है, क्योंकि 'बहिष्कार' नहीं 'स्वीकार' ही भाषा का विकास करता है। यत्र-तत्र रूढ़, यत्र-तत्र पंडिताऊपन-भरा, यत्र-तत्र पूर्वाग्रहणग्रस्त होते हुए भी जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का काव्यगत-गद्यगत हास्य-व्यंग्य-साहित्य अपने समग्र में उच्चस्तरीय पांडित्य एवं असाधारण विद्वत्ता से सम्पन्न है तथा वे अली मुहिब ख़ाँ 'प्रीतम' बेनी बन्दीजन जैसे उन्मुक्त हास्यकवियों से लेकर के.पी. सक्सेना, शरद जोशी जैसे पत्रकारिता-संपृक्त नियमित (व्यावसायिक) हास्यलेखकों के दोनों वर्गों में अपना एक असाधारण एवं उच्चस्थान अवश्य रखते हैं। उनका हास्यकाव्य तुलसी, सूर इत्यादि की गहनता, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि की व्यापकता और हास्यगद्य बालमुकुन्द गुप्त, गुलाबराय इत्यादि की सूक्ष्मता में विपन्न हो सकता है, किन्तु उसका विदग्धतापूर्ण पैनापन अत्यन्त प्रभावी है। उनकी समता कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी' तथा काका हाथरसी जैसे जाने-माने और लोकप्रिय हास्यलेखक तथा हास्यकवि भी नहीं कर सकते। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. रोअक्कड़—
रोना धोना सार है, जाने सकल जहान। रोने से ही होयगा, भारत का कल्यान।।
कबिरा हँसना दूर कर, रोने से कर प्रीत। बिन रोए किन पाइयाँ, प्रेम पियारा मीत।।
रोकर आया जगत में, रोना ही बस काम। हठकर हर्गिज़ मत हँसे, हँसना जान हराम।।
हँसक्कड़—
इस असार संसार में, हँसना ही है सार। हँसने से ही होयगा, भारत का उद्धार।।
जग सुख जो हैं चाहते, सुन लें मंत्र नवीन। पराधीन रोते सदा, हँसते हैं स्वाधीन।।
जनमा था तब मात का, दूध पिया तत्काल। अब खाता है क्यों, बता, चावल-फुलका-दाल।।

2. होली है भाँग छने पट्ठे! बेफ़िक्रे हिलहिल कर बैठें, सड़कें खुब सिलबट्टे।।
छान-छून के रंग लगा के, पीवें सब हट्टे-कट्टे। रंग-बिरंगी होली गावें, जी भर उड़ें हँसी-ठट्टे।।
होली को जो करे मुहर्रम, उनके दाँत करो खट्टे। मनमौजी की तान निराली, करते नित्य नए रट्टे।।

3. इनका नाम मद न मोह न इस बात का प्रमाण है कि इन्हें न मद है और न मोह।

4. पुरुषों में उत्तम होने के अलावा उनका नाम ही यह प्रकट करता है कि उधर घड़ी ने किया 'टन' इधर काम हुआ 'डन'[3] क्योंकि आप हैं टंडन।

5. ''आपका आश्रम?''

---

[1] 1932 ई.।

[2] जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के एक पुत्र श्री उमावल्लभ चतुर्वेदी कृत 'विचार-वीथी' संग्रह (सं. श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु') का 'श्री जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी और उनका हास्य-व्यंग्य साहित्य' शीर्षक अनमोल निबन्ध, पृष्ठ 91-92।

[3] पूर्ण। समाप्त।

''गृहस्थाश्रम!''

''आप तो मज़ाक करते हैं! मैं पूछ रहा हूँ कि आपका वर्ण क्या है?''

''स्पष्ट है कि मैं गौर वर्ण हूँ!''

''महाशय, आप किस जाति के हैं?''

''मनुष्य जाति का!''[1]

9 6

1 3

7 [2] चौहान और सुमित्रानन्दन पन्त का परिचय कराते हुए एक सज्जन उचरे कि यह बहन सुभद्रा और यह बहन सुमित्रा हैं।'' (''व्याकरण विच्छेद हो गया, जो मन में आवे बोलो, कोई रोक-टोक नहीं'' के आधार पर।)

श्यामसुन्दरदास

मातृभाषा के प्रचारक, विमल, बी.ए. पास।
सौम्य, शीलनिधान बाबू श्यामसुन्दरदास। —आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी
मातृभाषा के हुए जो विगत वर्ष पचास।
नाम उनका एक ही है श्यामसुन्दर दास। —राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त

खड़ीबोली-कविता के आचार्य, गद्य की विविध विधाओं के सर्वोपरि सृजन-प्रेरक एवं मानक हिन्दी-उच्चारण के जन्मदाता आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनन्तर, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के पण्डित रामनारायण मिश्र एवं ठाकुर शिवकुमार सिंह के साथ-साथ संस्थापक, अन्यतम प्रेरक तथा प्रतिष्ठापक, 'सरस्वती'[3] उद्भव-प्रेरक, साहित्य-सम्मेलन प्रयाग के महामना मदनमोहन मालवीय एवं राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के अनन्तर एक अन्यतम स्तम्भ, विश्वविद्यालयों में हिन्दी के प्रथम एवं प्रमुख वाहक एवं उन्नायक, 'भाषाविज्ञान'- प्रस्थानग्रन्थकार, काव्यशास्त्र[4] प्रस्थानग्रन्थकार, ऐतिहासिक 'हिन्दी-शब्दसागर', 'हिन्दी-वैज्ञानिक कोष' के प्रधान सम्पादक होने के कारण कोश-सम्राट्, पृथ्वीराजरासो के प्रधान प्रस्तोता, कबीर-ग्रन्थावली एवं रत्नाकर-ग्रन्थावली के प्रथम प्रदाता, आलोचक एवं निबन्धकार आचार्य श्यामसुन्दरदास (1875-1945 ई.) को एक अन्यतम हिन्दी-महापुरुष माना जा सकता है, जो खड़ीबोली-कविता के प्रतिष्ठापक, साहित्य की विविध विधाओं के अप्रतिम उन्नायक एवं मानक हिन्दी-उच्चारण के जन्मदाता युगसम्राट् आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा आलोचना एवं निबन्ध की सृजनात्मक प्रतिभा के प्रतीक आ. रामचन्द्र शुक्ल के साथ मिलकर हिन्दी आचार्यों की बृहत्त्रयी के अंग बन चुके हैं। 13 जुलाई, 1893 को काशी नागरी-प्रचारिणी सभा की स्थापना का हिन्दी-साहित्य के इतिहास में विशेष महत्त्व है। इसका पुस्तकालय शोधकर्ताओं का कल्पवृक्ष रहा है। इसकी 'खोज'-रिपोर्टों ने साहित्येतिहास बनाए हैं। 1897 ई. से निकलती रहनेवाली इसकी 'पत्रिका' सदैव समादरणीय रही है। इसने अब तक 5000 से अधिक मानक ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी साहित्य-नेता थे, साहित्य-गुरु थे, साहित्य-प्रेरक थे और स्वयं श्यामसुन्दरदास की 'सभा' ने उन्हें ठीक ही 'हिन्दी के प्रथम आचार्य' का गौरव प्रदान किया था। वे रामानन्द के स्तर के गुरु एवं अन्यतम आचार्य थे। शुक्ल कृतित्व के धनी आचार्य थे। श्यामसुन्दरदास में द्विवेदी के नेतृत्व-महत्त्व एवं शुक्ल के सृजनत्व का समन्वय दृग्गत होता है, अतः वे मध्यवर्ती-आचार्य थे। व्यक्तित्व की गरिमा में द्विवेदी एवं सेवा की महिमा में श्यामसुन्दरदास के समकक्ष न होने पर भी अपेक्षाकृत अधिक मौलिक सृजन-शक्ति के कारण शुक्ल इनके साथ गण्य होने योग्य भी हैं, मान्य होने योग्य भी। द्विवेदी ने श्यामसुन्दरदास की सेवा, शिक्षा एवं शील की प्रशस्ति की है। वैसे दोनों में ख़ूब चली भी थी। किन्तु श्यामसुन्दरदास ने महत्तर आचार्य के चरणस्पर्श का वैसे ही परित्याग न किया था जैसे कटुतर विवाद के बाद भी निबन्धकार बालमुकुन्द गुप्त ने तथा आचार्य ने भी 'साहित्यालोचन' का संशोधन स्वीकार कर लिया था।

---

1. सच्ची घटना। उत्तर चतुर्वेदी जी के हैं। दे. 'विचार-वीथी', प. 95-96।
2. 'कुमारी' ठीक होता, क्योंकि वे सुभद्राकुमारी थीं, सुभद्रादेवी नहीं।
3. ऐतिहासिक मासिक पत्रिका जो 1900 ई. में प्रयाग (इलाहाबाद) से निकली। आचार्य श्यामसुन्दरदास सम्पादक-मण्डल के प्राण थे। 1903 ई. में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को एकमात्र सम्पादक बनवाने में भी उनका हाथ था।
4. साहित्यालोचन।

यह था इन महापुरुषों का सौजन्य! आचार्य की गद्यात्मक प्रशस्ति को उनके पट्ट शिष्य ने काव्यात्मक रूप प्रदान किया और श्यामसुन्दरदास को अर्द्धशताब्दिगत हिन्दी-प्रगति का मानवीकरण माना, जो उचित था। सभा के प्रमुख संस्थापक, 'सरस्वती' के प्रथम प्रधान सम्पादक, साहित्य सम्मेलन के एक प्रमुख अध्यक्ष 'हिन्दी-शब्दसागर' के प्रधान सम्पादक (सहायक सम्पादक बालकृष्ण भट्ट, रामचन्द्र शुक्ल, अमीरसिंह, जगमोहन वर्मा, लाला भगवानदीन 'दीन' एवं रामचन्द्र वर्मा) एवं काशी हिन्दी विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के प्रथम अध्यक्ष (1922 ई., हरिऔध, 'दीन' एवं शुक्ल अन्य प्राध्यापक)[1] के रूपों में श्यामसुन्दरदास सदैव अमर रहेंगे।

आचार्य श्यामसुन्दरदास का जन्म पावन काशी धाम में हुआ, जहाँ कबीर से प्रसाद तक अनेक अमर साहित्यकार जन्मे हैं। वे खन्ना खत्री थे। आचार्य श्यामसुन्दरदास, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन, देवकीनन्दन, दुर्गाप्रसाद, कार्तिकप्रसाद, बलराज मधोक इत्यादि खत्रियों ने हिन्दी की प्रशस्य सेवा की है।

आचार्य श्यामसुन्दरदास एक महान् वस्तुवादी आलोचक हैं जो आलोच्य की सैद्धान्तिकता की संकीर्णता में जकड़ते नहीं प्रत्युत उसकी अस्मिता का उद्‌घाटन करते हैं। यह सत्य है कि आदर्शवादी युग की परिस्थितियों के अनुरूप वे केशव, देव, बिहारी इत्यादि की स्तरीय आलोचना नहीं कर सके किन्तु वह उतनी निराधार, भ्रामक एवं अनुत्तरदायित्वपूर्ण भी नहीं है जितनी शुक्ल की एतद्विषयक आलोचना। 'कबीर-ग्रन्थावली' की भूमिका में श्यामसुन्दरदास 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के कबीर-प्रहारवादी शुक्ल एवं 'कबीर' के कबीर-प्रशस्तिवादी हज़ारीप्रसाद से श्रेष्ठतर आलोचक सिद्ध होते हैं। 'रत्नाकर-ग्रन्थावली' की भूमिका में भी वे उच्चकोटि के आलोचक के रूप में दृग्गत होते हैं। वे ऐसे ठोस आलोचक हैं जो कबीर, रत्नाकर इत्यादि के गुणों का भी तर्कसंगत विवेचन करते हैं, दोषों का भी। 'पृथ्वीराजरासो' पर उनकी मानक आलोचना विश्वस्तरीय है। उनकी छायावाद-आलोचना भी स्तरीय है, यद्यपि उसमें संवेदनशीलता की अल्पता दृष्टिगोचर होती है। उनका 'गोस्वामी तुलसीदास' ग्रन्थ शुक्ल के 'गोस्वामी तुलसीदास' के स्तर का ग्रन्थ नहीं है, किन्तु अपनी सरल एवं प्राध्यापकीय आलोचना में स्मरणीय अवश्य है। उनका 'हिन्दी भाषा और साहित्य' शुक्ल के 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के स्तर का ग्रन्थ नहीं है, किन्तु उसका सन्तुलन सर्वथा प्रशस्य है। आलोचना में मिश्रबन्धु एवं शुक्ल के सदृश श्यामसुन्दरदास 'प्रस्थान' तो नहीं कर सके किन्तु 'हिन्दी भाषा और साहित्य' एवं 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला' के द्वारा ऐसा व्यापक कार्य अवश्य कर गए हैं कि अन्य कोई आलोचक उनकी समता नहीं कर सकता। उनके महान् शिष्य आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के आयाम स्फीत नहीं हैं तथा उनकी आदर्शवादी युग की कविता, विशेषतः हरिऔध एवं मैथिलीशरण की कविता, प्रेमचन्द, प्रगतिवादी कविता, प्रयोगवादी कविता इत्यादि की आलोचना भ्रामक एवं ध्वंसात्मक है। डॉ. नगेन्द्र तो एक बड़ी दूरी तक आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा प्रतिष्ठापित छायावाद, प्रसाद, कामायनी इत्यादि के प्रशंसक मात्र हैं, जिनका स्तर आचार्य श्यामसुन्दरदास वाला है ही नहीं। हज़ारीप्रसाद मूलतः एक अन्वेषक एवं पण्डित हैं, जिनके आयाम भी मुख्यतः नाथ–कबीर-बद्ध हैं तथा जो आलोचना न करके भाषण देने लगते हैं। डॉ. रामविलास शर्मा का भारतेन्दु, महावीरप्रसाद द्विवेदी और निराला पर किया गया कार्य अध्यवसायपूर्ण तो है, किन्तु उसमें बतियाया ज़्यादा गया है, विवेचन कम किया गया है। उनकी जनवादी चेतना प्रशस्य है किन्तु वह वस्तुवादी विवेचन का स्तर नहीं प्राप्त कर सकती। मैंने एक छात्रोपयोगी स्तुतिपरक संकलन देखा था जिसका शीर्षक था 'हिन्दी-आलोचना के आधार-स्तम्भ' किन्तु जिसमें 'चर्चा' थी केवल शुक्ल, हज़ारीप्रसाद, नन्ददुलारे और नगेन्द्र की–मिश्रबन्धु, श्यामसुन्दरदास एवं रामविलास शर्मा की उपेक्षा के कारण वह केवल निराधार ही नहीं लगा अपितु भ्रामक भी लगा। ऐसे शीर्षक साहित्य की भयावह क्षति करते हैं। विश्वविद्यालयवादी आलोचना ने साहित्य की भयावह क्षति की है।

जैसे आलोचक होते हुए भी नन्ददुलारे और नगेन्द्र निबन्धकार माने जाते हैं, वैसे ही श्यामसुन्दरदास भी निबन्धकार हैं। उनके 'पृथ्वीराजरासो', 'साहित्य और समाज', 'कला' इत्यादि निबन्ध उच्चकोटि के हैं।

आचार्य श्यामसुन्दरदास व्रत एवं वृत्ति दोनों से प्राध्यापक थे। अतः उनकी आलोचना में प्राध्यापकीय वस्तुवाद एवं भाषा में प्राध्यापकीय गरिमा के दर्शन तो होते हैं किन्तु प्रातिभ-प्रखरता एवं प्रातिभ-बंकिमता नहीं मिलती। वे परकीय शब्दों का प्रयोग नहीं के बराबर ही करते हैं। उनकी गहन विद्वत्ता एवं सहज गम्भीरता उनके एक-एक शब्द में दृष्टिगोचर होती रहती है। उनकी शैली व्यंग्य-विद्रूप-रहित, एकरस एवं प्रशान्त है, जिसमें गौरव तो है किन्तु कला नहीं। उनकी मौलिकता को प्रश्नचिह्नित करने का रोग ईर्ष्या

---

[1] वैसे, महान् शिक्षाविद् सर आशुतोष मुखर्जी (प्रख्यात नेता श्यामाप्रसाद मुखर्जी एवं न्यायमूर्ति रामाप्रसाद मुखर्जी के अमर पिता) ने कलकत्ता विश्वविद्यालय में हिन्दी एम.ए. का श्रीगणेश किया था तथा श्री नलिनीमोहन सान्याल हिन्दी के प्रथम एम.ए. थे। बंगाल के राजा राममोहन राय ने हिन्दी-राष्ट्रभाषा-रूप का प्रथम प्रतिपादन किया, बंगाल के आशुतोष मुखर्जी ने हिन्दी एम.ए. का समारम्भ किया, –बंगाल और हिन्दी का सम्बन्ध अटूट है।

के कारण प्रसरित किया गया था। भाषाविज्ञान, काव्यशास्त्र, साहित्येतिहास इत्यादि में मौलिकता सीमित ही हो सकती है, जैसी कि शुक्ल के 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में है जिसकी अधिकांश सामग्री 'विनोद', 'नवरत्न', 'व्रजमाधुरीसार', 'ठाकुर-ठसक', 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला,' 'कविता-कौमुदी' इत्यादि से ग्रहण की गई है। वैसे भी, मौलिकता का हौवा खड़ा करने पर तुलसी, सूर, केशव, बिहारी, पन्त, अज्ञेय, नगेन्द्र इत्यादि का वास्तविक आकलन कर पाना तक कठिन हो जाएगा। इस दिशा में संकेत तो ठीक हैं, किन्तु हौवाबाज़ी विघातक। ''नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः!''

कामताप्रसाद[1] गुरु

हिन्दी के मानक उच्चारण के जन्मदाता एवं महतोमहीयान् निर्माता आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ने व्याकरण-ग्रन्थ की प्रस्तुति हेतु जो समिति बनाई थी उसके प्राण व्याकरणाचार्य पण्डित कामताप्रसाद गुरु (24 दिसम्बर, 1875—15 नवम्बर, 1947, जन्म सागर, निवास जबलपुर) थे, जिनका 'हिन्दी-व्याकरण' (1920 ई.) अमर हो चुका है तथा जिन्होंने 'भाषा-वाक्य-पृथक्करण' ग्रन्थ भी लिखा था। गुरु द्विवेदी के एक प्रमुख शिष्य थे। वे उपन्यासकार एवं नाट्यकार भी थे, किन्तु सृजनात्मक साहित्य की रचना में उनका कवि-रूप प्रधान रहा जिसमें उन्होंने व्रजभाषा एवं खड़ीबोली दोनों में ही रचना की। खड़ीबोली-कविता के आचार्य द्विवेदी के इस गुरु शिष्य की खड़ीबोली-कविता आदर्शवादी युग का अच्छा प्रतिनिधित्व करती है :

1. उदय-अस्त में एक-सा है जिसका व्यवहार। वही मित्र सूरजमुखी कर सकता है प्यार।।
ज्ञान, द्रव्य, यश, स्वार्थ की है जिसमें भरमार। बसे हुए उस हृदय में कहाँ बसेगा प्यार।।
2. जिसे जन्म की भूमि भाती नहीं है, जिसे देश की याद आती नहीं है;
कृतघ्नी महा कौन ऐसा मिलेगा, जिसे देख जी क्या किसी का खिलेगा?
3. विद्वान् भी वहाँ सुन विद्वान् की बड़ाई, लेते उसाँस मानो उन पर विपत्ति आई।

आचार्य पद्मसिंह शर्मा

आदर्शवादी युग के वाहवाहवादी आलोचक एवं सशक्त निबन्धकार आचार्य पद्मसिंह शर्मा (1876-1832 ई.) 'बिहारी की सतसई' (महान् किन्तु अपरिसमाप्त 'संजीवन भाष्य' की भूमिका) एवं 'पद्मपराग' के कारण तो स्मरणीय हैं ही, देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसाद एवं आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' प्रभृति हिन्दी-साहित्यकारों के गुरु के रूप में भी प्रणम्य हैं। बिजनौर जनपद के एक ग्राम में उत्पन्न एवं ज्वालापुर महाविद्यालय (गुरुकुल) के संस्थापक-प्राध्यापकादि के रूप में कार्य के कारण उन्होंने पश्चिमी उत्तरप्रदेश के साहित्यकारों को पर्याप्त प्रेरित एवं प्रभावित किया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं सत्यनारायण कविरत्न से उनके प्रगाढ़ सम्बन्ध थे। बिहारी और सादी, बिहारी और ग़ालिब इत्यादि की तुलनाओं के कारण हिन्दी की तुलनात्मक आलोचना के 'प्रस्थान'-कर्ताओं में उनको ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है। संस्कृत, फ़ारसी, उर्दू इत्यादि के काव्यांशों द्वारा हिन्दी-काव्यांशों के विशद अनुशीलन के कारण वे समानार्थी-उद्धरणों के आचार्य भी माने जा सकते हैं। 1907 ई. से 1911 ई. तक की 'सरस्वती' पद्म-पराग से विलसित मिलेगी! बिहारी-भक्त होने के कारण प्रबन्धकाव्य पर मुक्तककाव्य को वरीयता प्रदान की, जिससे परवर्ती प्रसाद, निराला, पन्त प्रभृति कवि एवं आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे आलोचक प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः प्रभावित हुए बिना न रह सके।

आचार्य पद्मसिंह शर्मा प्रभाववादी आलोचक हैं, जिनका प्रभाव स्वच्छन्दतावादी-अभिव्यंजनावादी आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी और रसवादी-मनोविज्ञानवादी डॉ. नगेन्द्र की छायावाद-भक्ति में भी देखा जा सकता है। उनका प्रभाववाद प्रशस्ति में वाहवाहवाद (जैसा कि 'बिहारी की सतसई' और 'संजीवन भाष्य' में पद-पद पर दृग्गत होता है) एवं प्रत्याख्यान में लट्ठमारवाद (या गालीगलौजवाद, जैसा कि मिश्रबन्धु एवं पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र की आलोचना एवं टीका पर प्रहारों में दृग्गत होता है) के छोरों पर जो गिरने के कारण प्रभावी

---

[1] कामद या कामता का अर्थ है चित्रकूट। अयोध्याप्रसाद, काशीप्रसाद, मथुराप्रसाद, गयाप्रसाद इत्यादि के सदृश कामताप्रसाद तीर्थकृपामूलक नाम है। इस नाम के तीन अन्य साहित्यकार भी हुए हैं : असोथर (जनपद फ़तेहपुर) के 'नखशिख'-कवि कामताप्रसाद (रचनाकाल 1860 ई. के लगभग), तारापुर (जनपद फ़तेहपुर ही) के 'रामबत्तीसी' एवं 'हरिनामपच्चीसी' के कवि कामताप्रसाद 'सेवक' (जन्म 1847 ई.) तथा चिरगाँव (जनपद झाँसी) के कामताप्रसाद कायस्थ (जन्म 1860 ई.) जिन्होंने 'रामाष्टक' एवं 'संक्षिप्त-रामाश्वमेध' जैसी कई पुस्तकें रचीं किन्तु पत्नी-पुत्रादि के अकाल अवसान पर नष्ट भी कर दीं।

नहीं सिद्ध हो सका। उनकी 'गाहा-सतसई', 'आर्या-सप्तशती' एवं 'अमरु-शतक' प्रभृति विहारी-सतसई के उपजीव्यकाव्यों के उद्धरणों की छीछालेदार से न तो बिहारी के गौरव में कोई वृद्धि हुई है और न उनके। 'कुछ खरी-खरी' पुस्तक के 'शर्मा जी का गौरव' शीर्षक लेख में पं. देवीदत्त शुक्ल ने उन पर जो शंका की है वह तर्कसंगत है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे स्फीत अध्येता एवं प्रखर विद्वान् थे, जिन्होंने तुलनात्मक आलोचना के प्रस्थानकारों में स्थान प्राप्त किया। उनके पाण्डित्य से ग़ालिब के शागिर्द एवं 'मुसद्दस' के शायर हाली भी प्रभावित हुए थे। अपूर्ण 'संजीवन भाष्य' पर साहित्य सम्मेलन ने उन्हें उन दिनों का गौरवशाली मंगलाप्रसाद पुरस्कार प्रदान किया था तथा 'हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी' भाषण पर हिन्दुस्तानी एकेडेमी ने अपना एक हज़ार रुपए का। उन्हें सम्मेलन ने पहले प्रान्तीय तथा बाद में भारतीय अध्यक्ष का गौरव भी प्रदान किया था।

आचार्य पद्मसिंह शर्मा एक सफल और मौलिक निबन्धकार थे। 'भगवान् श्रीकृष्ण' शीर्षक निबन्ध में उन्होंने चिरनेता पर प्रशस्य प्रकाश डालते हुए युगनेता के अवसरवाद पर जो परोक्ष व्यंग्य किया है वह उनकी द्रष्टा-रूप का परिचायक है, क्योंकि उस समय व्यक्तिभक्ति की 'आँधी' बड़े ज़ोर-शोर से चल रही थी। 'मेरी तीर्थयात्रा' (आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के जन्मस्थान दौलतपुर ज़िला रायबरेली की यात्रास्मृति), 'सत्यनारायण कविरत्न', 'सरदार पूर्णसिंह' प्रभृति अमूल्य निबन्धों में संस्मरण-रेखाचित्र-काव्यात्मकता का त्रित् उच्चकोटि का है। 'मुझे मेरे मित्रों से बचाओ' जैसे आत्मपरक-हास्यनिबन्धों में वे महान् निबन्धकार प्रतापनारायण मिश्र का स्मरण कराते हैं।

वचनेश[1]

आधुनिक व्रजभाषा के एक सिद्ध एवं प्रसिद्ध कवि वचनेश मिश्र (जन्मवर्ष अनुमानतः 1877 ई.[2]) के 'नररत्न', 'वचनेश-शतक', 'विनोद', 'अभिनव-पिंगल' एवं 'शबरी' ग्रन्थों का उल्लेख प्राप्त होता है (जिसके लिए मैं लखनऊ-वासी श्री गयाप्रसाद तिवारी 'मानस' का ऋणी हूँ)। फ़र्रुख़ाबाद के वचनेश-शिष्य वीरेन्द्र 'मृदु' के अनुसार 'शान्ति-समीर' एवं 'गोपालहृदय' अन्य कृतियाँ हैं। मिश्रबन्धु ने उन्हें 'गद्य और पद्य के अच्छे लेखक' के रूप में प्रस्तुत किया है तथा 'हिन्दी साहित्य कोश', भाग 2 के अनुसार, 'आधुनिककालीन व्रजभाषा के कवि। राष्ट्रीय भावधारा और शृंगाररस से अनुप्राणित रचनाएँ लिखीं। आपकी कृतियों में 'शबरी' का विशेष महत्त्व है। आपके व्रजभाषा के सवैये रीतिकालीन कवियों की तुलना में रखे जा सकते हैं।'' वस्तुतः वचनेश कवि थे (यद्यपि गद्य में भी लिखा) तथा प्रमुखतः व्रजभाषा-कवि होते हुए भी उन्होंने खड़ीबोली में भी काव्य-रचना की थी। वे फ़र्रुख़ाबाद के थे किन्तु कालाकाँकर (प्रतापगढ़) राज्य में कर्मचारी रहे। प्रख्यात देशप्रेमी राजा रामपालसिंह से उनका अच्छा परिचय था। राजा रामपालसिंह ने 'हिन्दोस्तान' पत्र निकाला था, जिसके सम्पादक महामना पं. मदनमोहन मालवीय जी रहे। पन्त भी कालाकाँकर में रहे थे ('नौका-विहार' में उल्लेख भी है : ''कालाकाँकर का राजभवन, सोया जल में निश्चिन्त प्रमन'')। इस राजपरिवार में ब्रजेशसिंह (जिनसे पूर्व सोवियत यूनियन के महान् नेता स्तालिन की पुत्री स्वेटलाना ने विवाह किया), सुरेश सिंह (हिन्दीप्रेमी) एवं दिनेशसिंह (जो इन्दिरा गाँधी के अत्यधिक निकट रहे, केन्द्रीय मन्त्री रहे, सांसद रहे) इत्यादि प्रसिद्ध व्यक्ति बराबर होते रहे।

रत्नाकर एवं भारतेन्दु के अनन्तर जो व्रजभाषा-कवि हुए हैं, उनमें रामनाथ 'जोतिसी' अग्रणी हैं जिन्होंने सफल महाकाव्य, प्रभावी राष्ट्रकाव्य एवं मार्मिक सुधारकाव्य रचा। रत्नाकर-भारतेन्दु-जोतिसी की त्रयी के अनन्तर श्रीधर पाठक, 'शंकर', 'पूर्ण', सत्यनारायण 'कविरत्न', 'हरिऔध', 'व्रजनन्दन', 'बिहारी', 'केशव', 'राजेश', अनूप शर्मा, गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, 'निशंक', 'प्रकाश' इत्यादि ने व्रजभाषा-कविता का प्रशस्य शृंगार किया है; ऐसों में 'शबरी'[3] के कवि को हिन्दी भी नहीं भूलेगी। इस श्रेष्ठ पारम्परिक व्रजभाषा-कवि का यह खड़ीबोली-हास्यछन्द भी प्रसिद्ध है :

---

[1] प्रायः 'वचनेश' लिखा मिलता है, क्योंकि अधिकतर व्रजभाषा में लिखते थे। 'विनोद' में भी 'वचनेश' ही लिखा है। किन्तु ठीक 'वचनेश' ही है– 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में ठीक ही लिखा है। किन्तु 'विनोद' की दो (पूरी) तथा 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 की छह (अधूरी) पंक्तियों में कुछ भी विशेष सूचना नहीं प्राप्त हो पाती। प्रख्यात हिन्दूवादी लेखक वचनेश त्रिपाठी समनामी हैं।

[2] 'विनोद' (1934 वि.)।

[3] दयाशंकर अवस्थी 'देवेश' ने खड़ीबोली में 'शबरी-चरित्र' खंडकाव्य (1975 ई.) लिखा है। बालाप्रसाद त्रिपाठी कृत 'शबरी' खंडकाव्य (1989 ई.) भी उल्लेख्य कृति है। किन्तु वचनेश की 'शबरी' अद्वितीय है।

बम! बम! का शोर सुन बँगले के पास ही तो चौंक उठी मेम, सिर साहब का तमका।
फोन किया सैन को तो 'वचनेश' फ़ौरन ही पुलिस समेत कपतान आय धमका।
घेर कर बाबा की कुटी की ली तलाशी तब हरी पत्तियों में कुछ गोल-गोल चमका।
हाथ से टटोला तब बोला 'बम! भोला!' साधु, 'गोला है ये भंग का न गोला यहाँ बम का।'
(स्वातन्त्र्य-संग्राम के समय गोरों का डर)

गहरी व्रजभाषा-कविता की बानगी पेश है :

हमसे दुरिबे को रमे सब में, हमहूँ कवि हैं सब में रम जैहैं। तुम आनँद रूप हौ तौ वचनेश नवौ रस में अपने को रसैहैं।।
मन लै के बसे मन में हौ सखा छलछंद ये एकहु काम न ऐहैं। प्रतिभा छलकान लगी तौ हमें विश्वास कबौं न कबौं गहि पैहैं।।

चन्द्रभानुसिंह

'दोहा-सतसई' (1910 ई.) के सहृदय कवि दीवान-बहादुर चन्द्रभानुसिंह (1878 ई.) बुन्देलखंड के प्रसिद्ध हिन्दी-प्रेमी थे। वे आदर्शवादी युग के एक उल्लेख्य व्रजभाषा-कवि हैं। उनकी सतसई निरी पारम्परिक नहीं है; उसमें मौलिकता के दर्शन भी होते हैं। व्रजभाषा सरल किन्तु यत्र-त्तत्र यमक-अलंकृत है। आध्यात्मिक रुचि भी विद्यमान है। प्रेम की अबूझ पहेली खोलने में उन्हें प्रशस्य सफलता मिली है। अनेक दोहे मनोहर हैं :

उझकि झिझकि सकुचत हँसत लसत दृगन रतनाह। लचत मचत चलिबे चहत बनत न कछु मन माह।
छिन बैठत छिन-छिन उठत भुज उठाय जमुहात। अरी सखी यह गात की बात कही नहिं जात।।
मुरलीधर मुरली धरी मुरली धरत बनै न। मुरलीधर मुरली धरें मुरली धरत न बैन।
बनसी बनसी बन बसी वा बन बसी विशेष। बन बिनसी बन बन बसी बनसी बनसी भेष।

आग़ा हश्र कश्मीरी

औरंगज़ेब[1] (देहान्त 1707 ई.) के बाद मुग़ल-सत्ता के कमज़ोर होने तथा नाट्य सम्पन्न अंग्रेज़ी के अंग्रेज़ों के राजनैतिक अभ्युदय के साथ ही भारत में नाटक का पुनरोदय हुआ। वाजिदअली शाह और अमानत लखनवी वग़ैरह के ज़माने में 'इन्दर[2] सभा' का अच्छा ज़ोर रहा। सुधारवादी युग (1850-1900 ई.) में भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन इत्यादि के हिन्दी-नाटक अच्छे जमे। इसी बीच व्यावसायिक पारसी थिएटर आ कूदा। आग़ाज़ सेठ पिस्टनजी फ्रामजी की ऑरिजिनल थिएट्रिकल कम्पनी के रौनक़ बनारसी के 'इंसाफ़े-महमूदशाह' (1882 ई.) शीर्षक उर्दू-नाटक से हुआ। इन सेठ के मरने पर इनकी कम्पनी के एक प्रमुख अभिनेता खुर्शीदजी बालाबाला ने विक्टोरिया नाटक कम्पनी चालू की, जिसने दिल्ली-दरबार में अपने नाटक दिखाए। इसके प्रमुख नाट्यकार विनायकप्रसाद 'तालिब बनारसी' (देहान्त 1914 ई.) थे, जिन्होंने 'विक्रम-विलास', 'गोपीचन्द' इत्यादि हिन्दी-नाटक भी लिखे। दूसरे प्रमुख अभिनेता काउसजी ने एल्फ्रेड थिएट्रिकल कम्पनी चलाई, जिसके एक प्रमुख नाट्यकार नारायणप्रसाद 'बेताब' थे।

पारसी थिएटर के इतिहास में आग़ा हश्र कश्मीरी (1879-1935 ई., बनारस) का स्थान स्मरणीय है, जिन्होंने उर्दू में तो लिखा ही, हिन्दी में 'विल्वमंगल', 'गंगा-अवतरण', 'मधुर मुरली', 'आँख का नशा', 'वनदेवी', 'सीता-वनवास', 'भीष्म-प्रतिज्ञा', 'श्रवणकुमार' जैसे नाटक भी रचे, जिनकी भाषा अपेक्षाकृत शुद्ध हिन्दी थी तथा जिनमें हिन्दूधर्म का वास्तविक रूप चित्रित किया गया था, नारायणप्रसाद 'बेताब' के नाटकों के सदृश आर्यसमाज के दृष्टिकोण से अभिभूत रूप नहीं। आग़ा हश्र कश्मीरी को 'उर्दू का मॉर्लो'[3] कहा जाता है। हिन्दी में उन्हें साधारण स्थान ही प्राप्त है।

---

[1] मोहम्मदीयत में पुनर्प्रस्तुति-निषेध के कारण नाटक के लिए सुभीता न था। औरंगज़ेब ने संगीत की शवयात्रा कराके अपने ठूँठपन का विशेष परिचय भी दिया था।

[2] भारत के मुसलमान भाई बद्र, हश्र इत्यादि बख़ूबी बोलते हैं, परन्तु इन्द्र, मिश्र इत्यादि को इन्दर, मिशर (मिशरा) ही कहना उचित मानते हैं। वे हिमालय को हिमालिया, कृष्ण को क्रिशन (किशन), संस्कृत को संसकीरत, वाणी को बानी इत्यादि बोलकर श्रेष्ठता-ग्रन्थि में बँधने का आयास करते नहीं थकते—उन्हें भारतीयता-स्वीकृति हीनता-ग्रन्थि की पर्याय लगती है।

[3] उर्दू भाषा और साहित्य (फ़िराक़ गोरखपुरी), पृ. 341।

शिवरत्न शुक्ल 'सिरस'

'श्रीरामावतार', 'श्रीरामतिलकोत्सव महाकाव्य', 'भरतभक्ति महाकाव्य' एवं 'सिरस-नीतिसतसई' के चिरस्मरणीय कवि शिवरत्न शुक्ल 'सिरस' (1879–2 दिसम्बर, 1970–बछरावाँ, ज़िला रायबरेली) एक समर्थ किन्तु पारम्परिक हिन्दी-रामकाव्यकार हैं। 'विनोद' के कर्ता मिश्रबन्धु के शब्दों में ''आपका साहित्य श्लाघ्य है।....नवीन विषय पर लिखा होता तो आपका परिश्रम वास्तविक प्रशंसनीय होता।'' किन्तु 'हिन्दी-साहित्य कोश' भाग 2 में सत्यनारायण त्रिपाठी अधिक तर्कसंगत समीक्षा प्रस्तुत करते हैं, ''रामचरित्र जैसे बहुचर्चित विषय में भी आपने नूतन उद्भावनाएँ की हैं। नीति-सतसई जीवन के नए सत्यों से भरी पड़ी है। आधुनिक अवधी-काव्य के आप एक समर्थ कवि हैं।'' उनका 'बैसवारी बोली और उसका व्याकरण' शीर्षक अमूल्य ग्रन्थ अमूल्य काव्योदाहरणों से सम्पन्न है, जिसे उन्होंने प्रख्यात व्याकरणाचार्य किशोरीदास वाजपेयी को समर्पित किया है। खेद है कि आ. शुक्ल के 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में उपेक्षित होने के कारण अन्य अन्धानुकरणवादी साहित्येतिहासकारों एवं आलोचकों ने भी कवि 'सिरस' की उपेक्षा की अन्यथा वे 'कृष्णायन' (अवधी) के कवि द्वारकाप्रसाद मिश्र, 'नल-नरेश' (खड़ीबोली) के कवि पुरोहित प्रतापनारायण एवं 'पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण' (खड़ीबोली) के कवि तुलसीदास शर्मा 'दिनेश' से श्रेष्ठतर कवि सिद्ध होते, तथा उनकी तुलना 'शबरी' (ब्रजभाषा) के सरस कवि वचनेश एवं 'श्रीरामचन्द्रोदय' के आचार्य-कवि श्री रामनाथ 'जोतिसी' से की जाती। इस उपेक्षा का एक कारण उनकी कविता का पारम्परिक अभिव्यक्ति-पक्ष है। वचनेश एवं जोतिसी भी उपेक्षित से हैं। सिरस ने अवधी के अतिरिक्त ब्रजभाषा, खड़ीबोली और बैसवारी या बैसवाड़ी (अवधी का ही एक रूप) विभाषाओं में ही कविता की है। 'विनोद' से एक तथा अन्य सात[1] उद्धरण प्रस्तुत हैं जो सिरस को ब्रजभाषा एवं अवधी (बैसवारी) का एक उत्कृष्ट कवि सिद्ध करते हैं तथा यह स्पष्ट करते हैं कि वे एक विशुद्ध-जनवादी बैसवारी-कवि थे जिन्होंने रमई काका, काका बैसवारी इत्यादि को प्रभावित किया :

1. लागि गै गुलाब लूक, आब सब फीकी भई, मेघन हू मौन कीन्ह कोकिला बनाय कै।
चौंकि-चौंकि चातक चितै कै चहुँ ओर हेरि, शरद है काह कीन्ह खंजन बुलाय कै।
शिशिर हेमंत हू तुषार वार कीन्ह बहु, दलि डार्‌यो कंज-दल भौरन भजाय कै।
माघ सुदि पंचमी शिशिर शीत ढाह करि। गाड़्यो है बसंत ढाह ढोलहू बजाय कै।

बैसवारी-कविता[2]

2. **'जाड़ा में गाँव के गरीब'**

लावैं पाती लकरी बीनि अस गरीब हैं बहुतै छीनि।
तिनुकु तापि दरवाजे साँझ पहुड़ैं भीतर कोठरि माँझ।।
जाड़ा केरि न कपरा पास पहुड़ैं पैरा सिकुरि उपास।
गठरी बनिगे तबहुँ जड़ाँय कोठरी घुसे न जाड़ा जाय।।
ऊपर नीचे पैरा डारि तिहि माँ घुसें बाल नर नारि।
आधी राति क लागि प्यसाब बाहर जाड़ा करिसि ब्यताब।
काँपत लौटैं जाड़ न जाय पैरा तरे बहुत सिसियायँ।
मुँह माँ खाँसी औरु खखारु नींद न आवै जीवन भारु।
राम राम कै भा जब भोरु तबहूँ उठैं न, जाड़ा जोरु।
द्याखैं फैलि गवा जब घाम निकरैं घर ते कहि कै राम।।
तपता तापैं उठि कै भोर ओढ़े धोती आधी कोर।
खोले पेटु आगि की ओर स्याकैं ठंढ लागिगै जोर।।

---

[1] कवि श्री गयाप्रसाद तिवारी 'मानस' की कृपा से प्राप्त। उन्होंने ही 'सिरस' जी के पौत्र श्री रामेन्द्र शुक्ल से पूछकर निधन-तिथि लिख भेजी। दोनों सम्प्रति लखनऊ-वासी हैं।

[2] 'जाड़ा में गाँव के ग़रीब' बैसवारी में रचित ऐतिहासिक महत्त्व की यथार्थसम्पन्न-प्रगतिशील कविता है।

कबौं रजाई कम्मर पास रहा नहीं, ना कबहूँ आस।
ओढ़ै आधी धोती राति काटैं कवनिउ बिधि जमुहाति।।
चले मजूर मजूरी हेत ठिठुरैं, अँगुरी भई अचेत।
तबहूँ चले जात हैं रेत जियत यातना यम जनु देत।।
साग पात तै भरि के पेटु रखैं अधन्नहु[1] ना निजु टेंटु।
हुक्का पियैं राखि संतोष जिहि तिहि बिधि राखैं वै होस।।

3. **समय की दौड़**

लरिकईं बीति जात ख्यालत। जवानी जोर शोर जागत।
बुढ़ापा काँखत घर भागत। दिन जात देर नहिं लागत।।

4. **दुनियाँ बदलि गै**

दुनियाँ बदलिगै, न बहू मुँह मूँदे रहैं, घर घालि घूमै, तन मन पाप पाटै हैं।
लूटत लूट्यार रहे उनका भगाइन जो बैठे जौनि डार पर वहि का वै काटै हैं।।
मनन बिका जो नाजु सो तौ डेढ़ सेर आजु बढ़िगै मजूरी, रंग राउ रोज डाँटै हैं।
''सिरस' न छुआछूत, छूत तौ अछूत भे हैं, चौबे औ चमार साथ बैठि चाट चाटै हैं।।

कविरत्न

'भ्रमरदूत'[2] में यशोदा के द्वारा द्वारिका के कृष्ण को जन्मभूमि-दयनीयता की समसामयिकता से संपृक्त सन्देश दिलानेवाले, मौलिकतानिष्पन्न व्रजव्रजेश-व्रजभाषा-प्रेमी सत्यनारायण कविरत्न (1880-1918 ई.)[3] की 'हृदय-तरंग' को विवृत कर तथा 'कविरत्न सत्यनारायण की जीवनी' लिख कर अमर सम्पादक एवं अप्रतिम जीवनीकार पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अतीव प्रणम्य कार्य किया है, क्योंकि आ. शुक्ल द्वारा समादृत इस कवि का मार्मिक व्यक्तित्व-कृतित्व स्फीत माध्यमों के सर्वथा योग्य है। आचार्य पद्मसिंह शर्मा ने भी उन पर मार्मिक निबन्ध लिखा है। उनकी 'प्रेमकली' काव्यकृति, तिलक-गोखले-रवीन्द्र-रामतीर्थ-सरोजिनी इत्यादि की प्रशस्तियाँ, भवभूति के 'उत्तररामचरित' एवं 'मालतीमाधव' तथा मैकॉले के 'होरेशस' के अनुवाद प्रसिद्ध हैं ही। सत्यनारायण त्रिपाठी ने लिखा है, ''सत्यनारायण हिन्दी के राष्ट्रीय गायक और आधुनिक व्रजभाषा-काव्य की बृहत्त्रयी (भारतेन्दु, रत्नाकर, सत्यनारायण कविरत्न) के कवि हैं।'' मेरे विनम्र मत से इस 'स्थापना' से श्रीरामचन्द्रोदय के प्रणेता रामनाथ जोतिसी एवं 'शबरी' के प्रणेता वचनेश मिश्र के साथ अन्याय हो जाता है, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि सत्यनारायण कविरत्न (केवलमात्र), 'रसकलश' के हरिऔध[4], 'दुलारे-दोहावली' के दुलारेलाल भार्गव, 'वीर-सतसई' के वियोगीहरि' के (हरिप्रसाद[5] द्विवेदी), 'अजसमोचन' के 'रसाल' (रामशंकर शुक्ल) इत्यादि से नव्यतर-भव्यतर व्रजभाषा-कवि हैं। उनकी अधिकांश कविताएँ विज्ञप्तियाँ मात्र हैं। अपनी उत्कृष्ट कविता में भी वे देशभक्त पहले हैं, कवि बाद में। सत्यनारायण कविरत्न का काव्य कलापक्ष में पर्याप्त विपन्न है, यद्यपि उनकी देशभक्ति, दीन-संवेदन, हिन्दी-भक्ति तथा आत्मकरुणा में मार्मिकता की कमी नहीं। उनकी व्रजभाषा खरी तो है, किन्तु बाँकी नहीं। उनका प्रकृत्या सरस एवं कृष्णभक्ति-ऊभचूभ जीवन एक दुखान्त-खंडकाव्य था जिसमें हृदयहीन आर्यसमाजी पत्नी की भूमिका खलनायिका की रही :

1. जो मो सों हँसि मिलै होत मैं तासु निरंतर चेरो। बस गुन ही गुन निरखत मधि सरल प्रकृति को प्रेरो।
यह स्वभाव को रोग जानिए, मेरो बस कछु नाहीं। नित नव विकल रहत याही सों सहृदय बिछुरन माहीं।।

---

[1] आध-आना या दो पैसे का सिक्का।

[2] साहित्य में दूत-परंपरा अत्यंत प्राचीन है, हिन्दी की भ्रमर-गीत-परम्परा महान्। स्वयं कृष्ण दूत बनकर दुर्योधन-सभा में गए थे जिस पर स्व. भूपनारायण दीक्षित ने 'कृष्णदूत' खंडकाव्य लिखा है।

[3] जीवनयापन ताजमहल के पास धाँधूपुर ग्राम में।

[4] 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास' जैसे 'प्रस्थान'-ग्रन्थ के प्रणेता पं. कृष्णशंकर शुक्ल हरिऔध को रत्नाकर के बाद दूसरा स्थान प्रदान करते हैं, जो न्यायसंगत नहीं है।

[5] 'हरप्रसाद' भी मिलता है।

सदा दारुयोषित[1] सम बेबस आशा मुदित प्रमानै। कोरो सत्य ग्राम को बासी कहा तकल्लुफ जानै।
2. भयो क्यों अनचाहत को संग? सब जग के तुम दीपक, मोहन! प्रेमी हमहुँ पतंग।।
लखि तव दीपति देह शिखा में निरत बिरह लौ लागी। खींचति आप सों आप उतहि यह, ऐसी प्रकृति अभागी।।
यदपि सनेह-भरी तब बतियाँ तउ अचरज की बात। योग-वियोग दोउन में इक-सम नित्य जरावत गात।।
3. नित नव परत अकाल, काल को चलत चक्र चहुँ। जीवन को आनंद न देख्यो जात यहाँ कहुँ।।
बढ्यो यथेच्छाचार कृत जहँ देखौ तहँ राज। होत जात दुर्बल दिन-दिन आर्य-समाज।
दिनन के फेर सों।
जे तजि मातृभूमि सों ममता होत प्रवासी। तिन्है बिदेसी तंग करत दै बिपदा खासी।।
4. नारी-शिक्षा अनादरत जे लोग अनारी। ते स्वदेश-अवनति प्रचंड-पातक-अधिकारी।।
निरखि हाल मेरो प्रथम लेहु समुझि सब कोय। विद्याबल लहि मति परम अबला सबला होय।।
लखौ अजमाय कै!

प्रेमचन्द

उपन्यास-सम्राट एवं कहानी-चक्रवर्ती प्रेमचन्द (31 जुलाई, 1880-8[2] अक्टूबर, 1936, लमही[3], वाराणसी के निकट) विश्वस्तरीय साहित्य-स्रष्टाओं में परिगणित होने योग्य हैं। वे रवीन्द्र, शरद एवं मुंशी[4] के साथ भारत के प्रमुख उपन्यासकार हैं। वे रवीन्द्र के साथ भारत के प्रमुख कहानीकार हैं। उनका नाम टॉलस्टॉय, गोर्की, डिकेन्स इत्यादि विश्व के शीर्षस्थ उपन्यासकारों तथा मोपासाँ, चेख़व, ओ'हेनरी इत्यादि विश्व के शीर्षस्थ कहानीकारों के साथ लिया जा सकता है। उर्दू-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार एवं कहानीकार होने के कारण वे दो प्रसिद्ध साहित्यों के शीर्षस्थ कथाकार का अतुलनीय सम्मान प्राप्त कर सके हैं। भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, सुदर्शन, अश्क़ इत्यादि अनेक साहित्यकारों ने हिन्दी-उर्दू दोनों में लिखा है, किन्तु प्रभावी सफलता केवल प्रेमचन्द को प्राप्त हो सकी है। उनकी प्रथम कृति 'सोज़े-वतन' (मातृभूमि की पीड़ा) उर्दू में थी; लेखक के स्थान पर नवाबराय लिखा था। इसकी 600 प्रतियाँ हमीरपुर के कलक्टर ने जलवा दी थीं। कहानीकार पर फटकार भी पड़ी : सल्तनत-मुग़लिया होती तो हाथ कटवा दिए जाते! यह घटना कुलपहाड़ में घटी थी।

हिन्दी-उपन्यास के केन्द्र-पुरुष एवं भारत के प्रतिनिधि-उपन्यासकार

प्रेमचन्द हिन्दी-उपन्यास के केन्द्र-पुरुष हैं। उनके पूर्ववर्ती पं. गौरीदत्त (देवरानी जेठानी की कहानी), श्रद्धाराम फिल्लौरी (भाग्यवती), श्रीनिवासदास (परीक्षागुरु), बालकृष्ण भट्ट ('सौ अजान तक सुजान' एवं 'नूतन ब्रह्मचारी'), जगमोहनसिंह (श्यामा-स्वप्न) इत्यादि उपन्यासकार बस ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं तथा देवकीनन्दन खत्री (चन्द्रकान्ता-सन्तति, चन्द्रकान्ता, भूतनाथ) अभूतपूर्व लोकप्रियता के बावजूद ऐयारी एवं तिलिस्मी दुनिया के जादूगर मात्र हैं। गोपालराम गहमरी जासूसी उपन्यासकारों में प्रस्थान के कारण

---

1. कठपुतली : उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं।। —तुलसी
2. डॉक्टर ए.एन. अग्निहोत्री नामक सज्जन ने 9 अक्टूबर लिखा है : 'शब्दशिल्पियों के आसपास (भोपाल) ने पृष्ठ 2, जुलाई 2005 अंक में 16 जून दिया है जो ग़लत लगता है, क्योंकि इसी वर्ष 'गोदान' छपा था और वे प्रगतिशील लेखक संघ लखनऊ के प्रथम अधिवेशन के अध्यक्ष बने थे। 'राय' शब्द संस्कृत के 'रयि' से बना है जिसका अभिप्राय 'सम्पन्न' है। रायबरेली में कायस्थ-प्रभाव विद्यमान है। 'राम' पैतृक है : अजायब राय, धनपत राय (नवाब राय), श्रीपत राय एवं अमृत राय, आलोक राय (अमित राय के पुत्र) इत्यादि। 'यंग इंडियन' साप्ताहिक, नई दिल्ली, 11-17 अगस्त 2001, 'मुंशी प्रेमचन्द का ऐतिहासिक जब्तशुदा दस्तावेज़', पृष्ठ 19।
3. लमही में प्रेमचन्द (वास्तविक नाम धनपतराय, पुकारने का नाम नवाबराय तथा मुंशी दयानारायण निगम प्रदत्त साहित्यिक नाम प्रेमचन्द) के जन्मकक्ष में ही अक्टूबर, 1941 में 'महाभारत कोश सम्पूर्ण', 'राजतरंगिणी कोश' इत्यादि के परिश्रमी प्रस्तोता रामकुमार राय का जन्म हुआ था। लमही का स्मारक साधारण है किन्तु गोरखपुर (जहाँ वे बचपन में रहे थे) का प्रेमचन्द-पार्क असाधारण (प्रतिमा के साथ)!
4. गुजराती के महान् ऐतिहासिक उपन्यासकार एवं विद्वान् कन्हैयालाल मणिकलाल मुंशी, जो राजनीतिज्ञ, संविधान-निर्माता एवं विद्याभवन (मुम्बई-शाखाएँ अन्यत्र भी) के संस्थापक इत्यादि भी थे।

ही उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द-पूर्ववर्ती उपन्यासकारों में सर्वोच्च स्थान के अधिकारी किशोरीलाल गोस्वामी का कट्टर-हिन्दूवाद एवं उत्तेजक-मांसलतावाद उन्हें सार्वभौम प्रतिष्ठा नहीं दिला सका। किशोरीलाल गोस्वामी ने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक, जासूसी, तिलिस्मी सभी तरह के राशि-राशि उपन्यास रचे तथा अपने समय में भारत के प्रतिष्ठित उपन्यासकार थे, जिनकी आय पाँच हज़ार रुपए तक हो जाती थी। किन्तु विशद-मानवतावाद एवं सन्तुलित प्रवृत्तिवाद के अभाव में वे अपेक्षाकृत शीघ्र ही छीज गए। परवर्ती वृन्दावनलाल वर्मा ('झाँसी की रानी', 'मृगनयनी', 'विराटा की पद्मिनी' इत्यादि), जैनेन्द्र ('त्यागपत्र', 'सुखदा', 'विवर्त', 'परख', 'अनामस्वामी', 'मुक्तिबोध' इत्यादि), अज्ञेय ('शेखर : एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी'), यशपाल ('झूठा सच', 'दिव्या', 'अमिता' इत्यादि), इलाचन्द्र जोशी ('संन्यासी', 'लज्जा' इत्यादि), भगवतीप्रसाद वाजपेयी ('राजपथ', 'अधिकार कर प्रश्न' इत्यादि), भगवतीचरण वर्मा ('चित्रलेखा', 'टेढ़-मेढ़े रास्ते', 'भूले-बिसरे चित्र', 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' इत्यादि), अमृतलाल नागर ('बूँद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'मानस का हंस', 'खंजन नयन', 'अब मैं नाच्यों बहुत गोपाल' इत्यादि) अपने-अपने जीवन-कोणों में उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त करने के बावजूद न तो उनके से विराट् आयाम प्रदर्शित कर पाए हैं, न उनकी सी संवेदनशीलता ही चित्रित कर पाए हैं और 'प्रस्थान' के गौरव का प्रश्न ही नहीं उठता। गुरुदत्त, यज्ञदत्त शर्मा इत्यादि स्फीत-कथाकार हैं, कुशल-कलाकार नहीं। फणीश्वरनाथ 'रेणु' (मैला आँचल), श्रीलाल शुक्ल (राग दरबारी) इत्यादि कोई स्वस्थ जीवनवाद विम्बित नहीं कर पाए। विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, प्रसाद, उग्र, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, प्रतापनारायण श्रीवास्तव इत्यादि ने कुछ अच्छे उपन्यास लिखे हैं किन्तु इनका कृतित्व ससीम महत्त्व का ही है। अन्य असंख्य उपन्यासकारों का उल्लेख यहाँ अप्रासंगिक होगा। जीवन-आयाम, जीवन-दृष्टि, जीवन-स्वास्थ्य एवं मानव-संवेदन में प्रेमचन्द की समता करनेवाला उपन्यासकार हिन्दी में कोई नहीं है। रवीन्द्र की आभिजात्य कला एवं शरद की अपरिसीम भावुकता में गहनता एवं मार्मिकता अधिक है किन्तु विराट् जीवन-दृष्टि कम। मुंशी में विद्वत्ता अधिक है, अतीत अधिकाधिक है किन्तु यथार्थ अपेक्षाकृत कम, युगीनता अधिकाधिक कम। अतः प्रेमचन्द को भारत का प्रतिनिधि उपन्यासकार माना जा सकता है क्योंकि उनकी कृतियाँ भारत की कोटि-कोटि जनता के सुख-दुःख, हानि-लाभ, हारी-बीमारी, सबलता-निर्बलता, तीज-त्योहार, रीति-रिवाज़ इत्यादि का अतीव विराट् अंकन करती हैं। उनकी कृतियों में भारत के चार दशकों का इतिहास प्रतिबिम्बित है। अपनी अप्रतिम संवेदनशीलता के कारण प्रेमचन्द कोरे कथाकार मात्र न होकर भारतीय जन-जागरण के एक नायक-उन्नायक भी हैं। यद्यपि रचनाओं पर चलचित्र-निर्माण कोई निकष नहीं, तथापि महान् कथाकारों की कृतियों पर चलचित्र निर्माण एक व्यापक सत्य है। प्रेमचन्द चलचित्र-जगत् में गए भी थे, किन्तु लौट आए; बस, दो फिल्में बनी थीं। उनके निर्धनोपरान्त 'मज़दूर', 'हीरा-मोती', 'सौतेला भाई', 'गोदान, 'ग़बन', 'शतरंज के खिलाड़ी', 'साँच को आँच नहीं', 'सद्गति' प्रभृति अनेक बनीं।

महान् उपन्यासकार

प्रेमचन्द हिन्दी साहित्य में दो महान् उपन्यास (रंगभूमि और गोदान) लिखनेवाले एकमात्र उपन्यासकार हैं। हिन्दी का तीसरा महान् उपन्यास 'शेखर : एक जीवनी' अपनी अखंड वैयक्तिकता में 'रंगभूमि' और 'गोदान' की अनन्त सामाजिकता का पूरक-मात्र प्रतीत होता है। अन्य किसी उपन्यास में 'महान्' विशेषण वहन करने का सामर्थ्य नहीं है। संसार में महान् उपन्यास हैं ही कितने? मैं रंगभूमि को प्रेमचन्द का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानता हूँ क्योंकि उसके सामाजिक आयाम गोदान से भी अधिक व्यापक हैं, उसमें गाँधी-युग अधिक सजीवता से चित्रित हुआ है, उसमें उद्योगवृद्धि के नाम पर ग्राम-नाश की समस्या का प्रभावी स्पर्श किया गया है (नगर के अजगर से ग्राम के गोवत्स की रक्षा का यत्न दृग्गत होता है), अधुनातन दृष्टि से पर्यावरण-रक्षा का बिन्दु विद्यमान है, उसमें औपन्यासिक रस अधिक निष्पन्न है, उसमें प्रेमचन्द का आत्मपरक ब्राह्मण-विद्वेष अपेक्षाकृत अल्प विवृत हुआ है, तथा उसमें गोदान के म्रियमाण कलाकार की आहत काम-कुंठाए आवश्यक-अनावश्यक ताकझाँक नहीं करतीं। स्वयं प्रेमचन्द 'रंगभूमि' को अपना सर्वश्रेष्ठ उपन्यास मानते थे। रंगभूमि का विराट् कथानक सुशृंखलित है, जबकि 'गोदान' का ग्राम्य एवं नागर दो रूपों में संग्रथित और इस 'संग्रथन' को आ. नन्ददुलारे वाजपेयी ने ठीक ही इंगित किया है, स्व. पं. कृष्णशंकर शुक्ल भी तनखा जैसे भरती के पात्रों की व्यंग्यचर्चा किया करते थे। मेरी समझ में, गोदान के मेहता, मालती, खन्ना, गोविन्दी, तनखा इत्यादि पात्र फ़ालतू हैं जिनका उपन्यास की प्रकृत वस्तु से कोई अपरिहार्य सम्बन्ध नहीं है, सहज कलेवर से कोई गहरा रस-बस नहीं है तथा जो विचारों की अभिव्यक्ति के व्यामोह एवं 'गद्य में महाकाव्य' बनाने के आयास के परिणाम मात्र हैं जबकि 'रंगभूमि' के जान सेवक, प्रो. गांगुली, विनय, सोफिया, जाह्नवी इत्यादि उसमें खप गए हैं।

गोदान की एक विशिष्टता, जो 'रंगभूमि' में नहीं है, गोबर का विद्रोह है, जो अपने अस्थायित्व एवं असाफल्य के बावजूद, भविष्य का संकेतक रहा है तथा अब भी है। परवर्ती 'आधे-अधूरे' नाटक में मोहन राकेश ने भी रचना का अन्त भारत के व्यापक जीवन-परिवेश के अनुरूप ही किया है। किन्तु यह स्पष्ट है कि रंगभूमि का नायक सूरदास स्वयं एक अप्रतिहत विद्रोही एवं हुतात्मा है, भले ही उसका रूप वैसा क्रान्त (आयातित क्रान्तिपूर्ण) न हो। अन्धे, भिखारी और जाति से चमार सूरदास को एक अमर नायक बनाना प्रेमचन्द को स्रष्टा सिद्ध करता है। सम्भव है, निराला के 'चतुरी चमार' और प्रेमनाथ 'प्रेमी' के सामाजिक-महाकाव्य 'प्रायश्चित' ('प्रायश्चित' शुद्ध होता) पर प्रेमचन्द का प्रभाव पड़ा हो? इधर, 2003-04 ई. में, देशी-विदेशी राजनैतिक विभाजनवादियों की आर्थिक प्रेरणा से, प्रेमचन्द के 'चमार' शब्द-प्रयोग पर चाय की प्याली में तूफान के 'साहित्यिक दृश्य' दिखाई दिए। पर इस शब्द का सर्वाधिक प्रयोग रैदास ने किया है। निराला, प्रेमनाथ 'प्रेमी' इत्यादि ने किया है। उत्तर प्रदेश के एक नेता और मन्त्री अपना नाम 'मुंशीलाल चमार' लिखते थे। प्रेमचन्द ने गोबर को सफल न होने देने में कलाकार की निष्ठा का परिचय दिया है क्योंकि भारत में वास्तविक क्रान्ति की परिस्थितियाँ न तब थीं, न अब हैं। 'ग़बन' के कलाकार के रूप में प्रेमचन्द ने देबीदीन खटिक के माध्यम से कांग्रेसी नेताओं पर जो प्रहार किया है वह उन्हें 'द्रष्टा' का गौरव प्रदान करता है और यह गौरव 'गोदान' के झिंगुरीसिंह के शोषक तत्त्वों के भविष्य पर व्यक्त सन्तोष से द्विगुणित हो गया है। इतिहासकार डॉ. ईश्वरीप्रसाद की सितम्बर, 1947 की भविष्यवाणी "स्वतन्त्रता के नाम पर पिंडारी-राज्य की पुनर्स्थापना हुई है और इस सत्य का अनुभव चालीस वर्ष बाद होगा" प्रेमचन्द की भविष्यवाणियों से भी अधिक स्पष्ट है। स्वयं मैंने तेरह-चौदह वर्ष की आयु में स्वतन्त्रता के अनन्तर आशंकाएँ सुनी थीं जो ('जागता गाँव', जो परिवर्द्धित 'कुछ खोता कुछ पाता गाँव' रूप में प्रकाशित हुआ है, आंचलिक उपन्यास में चित्रित हैं) लगातार सत्य प्रमाणित हुई हैं। वैसे तो 'रंगभूमि' और 'गोदान' दोनों दुखान्त-उपन्यास हैं क्योंकि दोनों के नायक सूरदास और होरी क्रमशः शासन और समाज की क्रूरता के आखेट होते हैं, किन्तु सूरदास की शहादत की उदात्तता सबके गले उतरने वाली चीज़ नहीं है, जबकि होरी की मृत्यु अपने साधारणीकरण में सर्वबोधगम्य है। सूरदास का तो एक दौर था जो निकल गया, किन्तु होरी अब भी रोज़-ब-रोज़ मर रहा है! सूरदास की महानता की कल्पना भी अब कठिन है, जबकि होरी आज भी ज़िन्दा है। इसलिए गोदान को देश-विदेश में अधिक मान्यता मिली है। संसार में टॉलस्टॉय और डॉस्टाएव्स्की, गोर्की और शोलोख़व इत्यादि का रूसी उपन्यास-साहित्य सर्वश्रेष्ठ है और रूसी आलोचकों ने 'गोदान' को बीसवीं सदी की महान् रचनाओं में एक माना है। रंगभूमि विशुद्ध आदर्शवादी रचना है, जिसका कलाकार गाँधीवादी है। गोदान आदर्शात्मक-यथार्थवादी रचना है, जिसका कलाकार लम्बे गाँधीवादी संस्कारों से मुक्ति के लिए छटपटाते हुए नए मार्क्सवादी संस्कारों की ओर ललकभरी नज़र से देख रहा है। मेहता का आदर्शवाद इसी छटपटाहट का उद्गार है, मालती का हृदयपरिवर्तन प्रायः शुद्ध गाँधीवादी है, स्वयं होरी की टूटन शोषण-प्रपीड़नजन्य कम है तथा कन्याविक्रयजन्य आन्तरिक कुंठा-स्फोट अधिक। गाँधी या मार्क्स की द्विधा के कारण गोदान न शुद्ध आदर्शवादी उपन्यास बन सका है, न शुद्ध यथार्थवादी। वस्तुवादी गहन दृष्टि रंगभूमि को ही श्रेष्ठतर उपन्यास मान सकती है, क्योंकि उसका यथार्थ-बलित आदर्शवाद एकरस-एकतान है, जो एक समन्वित प्रभाव की सृष्टि करता है। सम्प्रति मार्क्सवाद की जो वैश्विक असफलता दृष्टिगोचर हो रही है, वह भी गोदान के पक्ष में नहीं जाती। वैसे, दोनों उपन्यास महान् हैं, जिनमें विराट् भारत के विराट् जीवन का जैसा विराट् चित्रण प्राप्त होता है वैसा प्रेमचन्द के समकक्ष उपन्यासकारों रवीन्द्र, शरद एवं मुंशी के किसी एक उपन्यास या किन्हीं दो उपन्यासों में नहीं।

अपनी 'प्रेमचन्द' शीर्षक ध्वंसात्मक[1] किन्तु यत्र-तत्र मननीय पुस्तिका में आ. नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि प्रेमचन्द 'रंगभूमि' में सूरदास द्वारा जान सेवक को अपना भूखंड न देने के पक्ष में कोई तर्क नहीं प्रस्तुत कर सके। यह ग़लत है। पूँजीपतियों एवं उनके रक्षकों (चाहे वे विदेशी रहें हों या देशी—अन्तर बस गोरी और अगोरी चमड़ी का है) के शोषण का शहरी अजगर गाँवों को नृशंसतापूर्वक निगलता जा रहा है, यह तटस्थ चिन्तकों से छिपा नहीं है। कारखाने गाँव के पर्यावरण को प्रदूषित करते हैं। उनके लिए विशेष स्थलों का चयन ही वरेण्य है—जहाँ मन वहाँ नहीं! फिर, जान सेवक सिगरेट का कारख़ाना खोलना चाहता है। धूम्रपान मानवता का एक घातक रोग है। सूरदास पशुचारण का तर्क देता है, जो एकदम उचित है। पशु मानव के अपरिहार्य मित्र हैं। प्रेमचन्द के मन में गाय इत्यादि पशुओं

---

[1] निराला कृत 'पन्त और पल्लव' एवं मुक्तिबोध कृत 'कामायनी : पुनर्विचार' की तुलना में नन्ददुलारे कृत 'प्रेमचन्द' कम ध्वंसात्मक है, क्योंकि विद्वान् आचार्य ने अनेक चिन्त्य बिन्दु भी उभारे हैं। निराला और मुक्तिबोध आलोचक न थे; बस, आक्रोश से अभिभूत होकर लिख गए थे, जिसका कोई तात्त्विक महत्त्व नहीं सिद्ध हुआ।

के प्रति कहीं गहरी संवेदनशीलता छिपी पड़ी रहती थी जो कहीं 'रंगभूमि' के सूरदास के पशुचारण के प्रति निष्ठापूर्ण लगाव में विवृत होती है, कहीं 'गोदान' के शीर्षक एवं तत्सम्बद्ध घटनाचक्र तथा कहीं 'पंच-परमेश्वर' के बैल-प्रकरण में, कहीं 'दो बैलों की कथा' (जिसके नायक हीरा एवं मोती हैं) में, कहीं यहाँ, कहीं वहाँ। पूँजीवादी अजगर पशुओं, चरागाहों, मैदानों, वनों, नदियों, पर्वतों, तीर्थों, किसी को नहीं बख़्श रहा है और पर्यावरण-प्रदूषण की समस्याएँ उद्जन एवं अणु बमों की समस्याओं से भी अधिक घातक सिद्ध हो रही हैं।

'रंगभूमि' एवं 'गोदान' के चित्रण-फलक अत्यन्त स्फीत हैं जिनमें जीवन की अनेक समस्याएँ अनायास समाहित हो गई हैं। रंगभूमि की समस्या निरीह भूस्वामी पर प्रचंड पूँजीपति का अत्याचार है, जिसमें प्रथम पक्ष की अस्मिता को कोई महत्त्व प्राप्त नहीं है। कहने को लोकतन्त्र है, किन्तु निरीह कृषक की भूमि, कभी-कभी घर तक छीन लिया जाता है! नौशरवाने-आदिल से नैपोलियन बोनापार्ट तक राजाओं और सम्राटों ने निवासी के अधिकार का आदर किया था, किन्तु आज इसे भी नकार दिया जाता है! हिन्दी-उपन्यास साहित्य का सर्वश्रेष्ठ सामाजिक[1] पात्र सूरदास निर्धन भूस्वामी की अस्मिता की रक्षा के लिए अपना बलिदान करता है। सूरदास की टक्कर का कोई पात्र भारत का कोई उपन्यासकार नहीं दे पाया। उसके सामने गोरा, श्रीकान्त, सव्यसाची, शेखर, भुवन, सज्जन इत्यादि या तो प्रयत्नज प्रतीत होते हैं या अनुकृत या संकीर्ण। प्रेमचन्द भी सूरदास के स्रष्टा नहीं हैं, विस्तारक मात्र हैं, क्योंकि उनके जन्मस्थान लमही नामक पुरवे के पास वाराणसी-सारनाथ राजपथ पर स्थित पांडेपुर में एक ऐसा अन्धा एक वास्तविक व्यक्ति था और इसका संकेत 'कुछ विचार' शीर्षक उल्लेख्य निबन्धसंग्रह के 'उपन्यास' शीर्षक निबन्ध में प्रेमचन्द ने स्वयं किया है। मैं जब किशोर था तब पांडेपुर के एक वृद्ध मिले, जिनसे उस समय बार-बार पढ़े उपन्यास से प्रेरित होकर पूछा तो तथ्य का पता चला कि पांडेपुर में आन्दोलन भी हुआ था, दमन भी। सूरदास की वीरता एवं उसके बलिदान के समय साधारण व्यक्ति यह जान तक न सकता था कि वह कितना महान् था! रंगभूमि के बौद्धिकता-प्रतीक पात्र प्रो. गांगुली ने बलिदानी सूरदास का सम्यक् आकलन किया है। सूरदास की समता करनेवाले पात्र संसार के उपन्यास-साहित्य में बहुत कम ही मिलेंगे। रंगभूमि की नगर द्वारा ग्राम के शोषण एवं प्रपीड़न की समस्या आज भी विद्यमान है, जबकि गोदान की जमींदारी-प्रथा में किसान के शोषण, अन्य (महाजन, पटवारी, पतरौल, पुलिस) माध्यमों द्वारा उसके प्रपीड़न में भारी अन्तर पड़ा है। 'प्रेमाश्रम' की प्रमुख समस्या ज़मींदारी-शोषण की है और समय में परिवर्तन के साथ उपन्यास का महत्त्व सामाजिक इतिहास में परिसीमित हो गया है। 'सेवासदन' की वेश्यावृत्ति-समस्या आज भी विद्यमान है, किन्तु अनमेल-विवाह की मूल समस्या अब नहीं के बराबर ही बची है। कर्मभूमि की शिक्षितों के ग्रामों से पराङ्मुख होने की मुख्य समस्या भी आज तक दृष्टिगोचर हो रही है और उसमें ग्रामीण प्रतिभा के पलायन की उससे मिलती-जुलती समस्या अतिरिक्त रूप से आ जुड़ी है। भारत को अमेरिका बनाने के सपने देखनेवाले नेताओं ने ग्राम को आधुनिक-मार्गों, विद्युत्, स्वच्छता, मनोरंजन, सुरक्षा, आजीविका इत्यादि में से प्रायः कुछ नहीं दे पाया है। परिणाम यह है कि अभावग्रस्त एवं असुविधापूर्ण, असुरक्षित एवं अन्यायग्रस्त ग्रामों से लोगों की भगदड़ मची है—लोग आँख मूँदकर भी भाग रहे हैं जिसका परिणाम स्लम हैं जो महानगरों को महानरकों का रूप दे रहे हैं! 'ग़बन' उपन्यास की नारी के आभूषण-प्रेम की समस्या नारी-शिक्षा में प्रसार, सज्जा-प्रसाधनों में परिवर्तित रूप, अनुकृतियों के चारुत्व, सरेआम लूटपाट और सर्वग्रासी महँगाई के कारणों से उतनी जटिल नहीं रह गई, किन्तु उसकी मनोवैज्ञानिकता उसे मरने तो दे नहीं सकती। 'निर्मला' की वृद्ध-विवाह समस्या कालातीत हो चुकी है। रेगिस्तान में नख़लिस्तान जैसा कायाकल्प प्रेमचन्द की रोमैंटिक (स्वच्छन्दतावादी) कृति है, जिसकी मनोरमा प्रेमचन्द की सृष्टि ही नहीं लगती ठीक वैसे ही जैसे 'बिराटा की पद्मिनी' कुमुद वृन्दावनलाल वर्मा की सृष्टि नहीं लगती। मनोरमा और कुमुद तो प्रसाद की पात्राएँ हैं—वस्तुतः देवसेना (स्कन्दगुप्त), मालविका (चन्द्रगुप्त) और कोमा (ध्रुवस्वामिनी) से भी अधिक अनुभूतिमयी! प्रेमचन्द का 'मंगलसूत्र' उपन्यास साहित्यकार के व्रत एवं वृत्ति के द्वन्द्व की जीवन्त यथार्थकथा है, किन्तु लघ्वाकार में ही अपरिसमाप्त होने के कारण उस पर निर्णय समीचीन नहीं। 'प्रतिज्ञा' और 'वरदान' जैसे उपन्यास बस उपन्यास हैं।

प्रेमचन्द के अनूदित उपन्यास 'सुखदास' (साइलस मेरिनर), 'अहंकार' (थाया[2]), 'आज़ाद-कथा' (फ़साना-ए-आज़ादी) इत्यादि उनके मसिजीवी होने के अवशेष मात्र हैं। प्रेमचन्द अच्छे अनुवादक न थे। वे प्रेरणा के बीजों को मौलिक तरुओं का रूप प्रदान कर सकते थे, क्योंकि प्रकृत्या कलाकार थे; किन्तु अनुवाद उनके बूते के बाहर की चीज़ थी।

---

[1] ऐतिहासिक चिरचरित्रों को छोड़कर।

[1] अनातोले फ्रांस के इस उपन्यास पर आधृत भगवतीचरण वर्मा की 'चित्रलेखा' प्रसिद्ध ही है। आरम्भिक संस्करणों में प्रभाव-संकेत अंकित रहता था, किन्तु परवर्ती संस्करणों में मौलिकता का आग्रह उसे उड़ा ले गया।

प्रवृत्तियाँ

प्रेमचन्द के उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता उनके आयामों की व्यापकता है। राजा, ज़मींदार, नेता, नेत्री, पटवारी, चरवाहे, किसान, पंडित, पुरोहित, व्यापारी, उद्योगपति, अधिकारी, लिपिक, मज़दूर, दूधिए, खोंचे वाले, भिखारी, वेश्या, बुद्धिजीवी पत्रकार, लेखक, डॉक्टर, धर्मी, अधर्मी, कोई उनकी कलापरिधि से बाहर नहीं लगता। इतने विराट् आयामों का उपन्यासकार विश्व में कोई दूसरा नहीं। किन्तु इसी गुण के कारण एक भारी दोष भी आ गया है। प्रेमचन्द प्रत्येक जन-वर्ग का चित्रण करने की असम्भवप्राय महत्वाकांक्षा से अभिभूत होकर, सामान्य ज्ञान के कारण, उठान तो अच्छा करते हैं किन्तु विशेष ज्ञान के अभाव में अन्ततः धड़ाम से गिर पड़ते हैं। गिरते-गिरते वे पात्रों को गिराते-मिटाते चलते हैं। पात्रों की इस बेतरतीब भगदड़ में अनेक कुचल जाते हैं, अनेक घायल हो जाते हैं, अनेक भाग निकलते हैं। उनके पात्रों को आत्महत्या के द्वारा समाप्त करने के दोष का बहुत ही कलात्मक प्रत्याख्यान डॉ. नगेन्द्र ने 'वाणी के न्याय-मन्दिर में'[1] किया है, किन्तु उनके द्वारा प्रेमचन्द को उपन्यासकारों की द्वितीय पंक्ति में खड़ा करने का निर्णय विवादास्पद है। जिस बनारसी-झपाटे से वे हृदयपरिवर्तन करते हैं, वह भी इसी दुर्बलता का एक अंग है। वे वर्ग-प्रतिनिधि तो चुन लेते हैं, किन्तु सूक्ष्म जीवन-चित्रण नहीं कर पाते। टॉलस्टॉय अपने पीअरी, नटाशा, एंड्रयू, कुटुसोफ़ (युद्ध और शान्ति), अन्ना (अन्ना कारनीना) इत्यादि का जैसा सूक्ष्म अंकन करते हैं वैसा प्रेमचन्द नहीं। निस्सन्देह, प्रेमचन्द के सूरदास (रंगभूमि), होरी (गोदान), सुमन (सेवासदन), प्रेमशंकर (प्रेमाश्रम), अमरकान्त (कर्मभूमि), जालपा (ग़बन) इत्यादि पात्र अमर हैं, किन्तु सूरदास और होरी के अतिरिक्त वे किसी का भी विशद एवं अभिभूतकारी चित्रण नहीं कर पाए। उनके उपन्यास कथानकप्रधान हैं, चरित्रप्रधान नहीं, देशकालप्रधान नहीं। हार्डी भी ग्राम्य जीवन के कुशल चितेरे हैं, प्रेमचन्द भी। किन्तु हार्डी वर्ण्य का जैसा स्फीत एवं पूर्ण चित्रण करते हैं वैसा प्रेमचन्द नहीं कर पाते। प्रेमचन्द पांडेपुर, सेमरी, बेलारी इत्यादि में किसी को बिम्बित नहीं कर पाए। किन्तु कथानक की रोचकता में प्रेमचन्द टॉलस्टॉय से भी आगे हैं, हार्डी से भी; भले ही विश्व-उपन्यास के तीन मूर्द्धन्य कलाकारों में टॉलस्टॉय की श्रेष्ठता निर्विवाद हो तथा हार्डी कुशलतर शिल्पी माने जा सकते हों। दो को नोबेल प्राइज़ नहीं मिला; प्रेमचन्द को भी कोई पुरस्कार नहीं मिला। हिन्दी-उपन्यास चरित्र के सहज किन्तु गहन अंकन तथा परिवेश के स्वाभाविक किन्तु पूर्ण चित्रण की दृष्टियों से पाश्चात्य उपन्यास की समता नहीं कर पाता, भले ही सरल रोचकता में उससे आगे हो।

प्रेमचन्द के उपन्यासों की एक बड़ी विशेषता उनकी विशाल संवेदनशीलता है। वे प्रत्येक पात्र को उसकी अपनी स्थिति में देखने का यत्न करते हैं; यद्यपि मूल संवेदन प्रपीड़ित एवं पददलित पात्रों को प्रदान करते हैं। उन्होंने शोषण एवं प्रपीड़न के प्रभावी चित्रांकन किए हैं, किन्तु भारत में शोषण एवं प्रपीड़न के असाधारण एवं दीर्घकाल से सशक्त रहने के कारणों पर प्रकाश नहीं डाल सके, जिनमें से एक स्वयं शोषितों एवं प्रपीड़ितों की संगठनहीनता या उद्देश्यहीनता या क्षुद्रस्वार्थवादिता भी है। वे एक प्रमथोपचारकर्ता हैं, चिकित्सक नहीं। इसका एक कारण उनमें गहन अध्ययन-अनुशीलन एवं चिन्तन का अभाव है तथा दूसरा संवेदन का केवलमात्र बौद्धिक रूप, जो अनुभूति की गहराइयों तक नहीं जा पाया था अन्यथा वे स्वयं सूदख़ोरी न करते, दहेज-प्रदर्शन न करते, नेतागीरी के फेर में न पड़ते।[2] उनका शोषित-संवेदन, जैनेन्द्र को पत्र द्वारा सूचित उनकी 'धन की दुश्मनी' और बनारसीदास चतुर्वेदी को पत्र द्वारा ही प्रतिपादित 'मै धन में इतराते व्यक्ति को महान् नहीं मान सकता' के सदृश ही, सैद्धान्तिक है, व्यवहारपुष्ट नहीं। एक व्यकित के रूप में प्रेमचन्द की प्रशस्ति करना वस्तुपरक दृष्टि से सम्भव नहीं है। यहाँ मैं उनके प्रथमपत्नीत्याग के पाप पर विचार नहीं कर रहा जिसकी ग्लानि दूसरी पत्नी (जो विधवा थीं) शिवरानीदेवी कृत 'प्रेमचन्द घर में' से लेकर इन दोनों के कनिष्ठ पुत्र स्व. अमृतराय कृत 'कलम का सिपाही' तक प्रसरित है, दूसरे विवाह के बाद भी उनके 'कहरिया' के प्रति प्रेम पर विचार नहीं कर रहा जिसकी सूचना मुझे दिसम्बर, 1964 में प्रसिद्ध उपन्यासकार तथा प्रेमचन्द-परिवार से भली-भाँति परिचित प्रतापनारायण

---

1. 'विचार और अनुभूति' का एक श्रेष्ठ एवं शैली-शिल्प-सम्पन्न निबन्ध, जिसमें आलोचना ललित-कला बन गई है।
2. 'ग़ालिब बेनक़ाब', 'गाँधी बेनक़ाब', 'नेहरू बेनक़ाब' जैसे अमूल्य ग्रन्थों के तपस्वी लेखक स्व. श्री हंसराज 'रहबर' ने प्रेमचन्द को बेनकाब नहीं किया, क्योंकि उनके भक्त थे। डॉ. कमलकिशोर गोयनका ने सत्य का प्रशस्य उद्घाटन किया है। शिवरानीदेवी कृत सहज 'प्रेमचन्द घर में' एवं अमृतराय कृत प्रयत्नज 'कलम का सिपाही' ग्रन्थों मे उनके नेतृत्व के प्रति रुझान की सूचना मिलती है।

श्रीवास्तव[1] से प्राप्त हुई (श्रीवास्तवजी ने 'प्रेमचन्द घर में' इसका उल्लेख) बतलाया, क्योंकि यहाँ मेरा उद्देश्य प्रेमचन्द के शोषण-चित्रण में गहराई के अभाव का मनोवैज्ञानिक कारण संकेतित करना मात्र है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों की एक उल्लेखनीय विशेषता उनका ग्रामचित्रण है जिसकी समता हिन्दी का ही नहीं अपितु भारत का भी कोई अन्य उपन्यासकार नहीं कर सकता। इस चित्रण में वह गहराई और सूक्ष्मता तो नहीं है जो समग्र बिम्बालेखन में सक्षम हो किन्तु वह फैलाव और सूचना है जो परिचय करा देती है। उन्होंने कृषकों का चित्रण किया है किन्तु उससे कृषिपद्धति का बोध नहीं हो पाता (गुण-दोष-निरूपण का तो प्रश्न ही नहीं उठता)। उन्होंने पशुचारण का वर्णन किया है किन्तु उससे चरवाहों और पशुओं की प्रवृत्तियों की सूचना तक नहीं मिल पाती।[2] प्रेमचन्द नियमित रूप से नित्य-प्रति, अंग्रेज़ी के अधुनातन कथा-साहित्य के अध्ययन (सवेरे दातुन करते-करते) के अनन्तर लिखनेवाले कथाकार थे, किसी प्रेरणा से लिखनेवाले अप्रयत्नज कलाकार नहीं। उन्हें पत्र-पत्रिकाओ के आग्रह पर उनके लिए भी लिखना पड़ता था। वे अनुवाद भी करते थे। वे पहले मसिजीवी थे, तदन्तर मुद्रणालय एवं मासिक[3] के ठीकठाक धनी-मानी मालिक बने थे। वैसे, जीवन का आरम्भ उन्होंने अन्यत्र एवं कानपुर में प्राथमिक शाला के प्रमुख शिक्षक एवं विद्यालयों के सहायक-उपनिरीक्षक के रूपों में किया था किन्तु नौकरी और साहित्य से आर्थिक स्थिति सम्हलते ही जमे सम्पादक एवं उपन्यासकार-कहानीकार के रूपों में ही थे। कानपुर में वे 1905 ई. में पहुँचे और उन दिनों 'ज़माना' बनानेवाले मुंशी दयानारायण निगम के सम्पर्क में आए, जो 1904 ई. में इकबाल का 'सारे जहाँ से अच्छा' तराना छाप चुके थे। इनके सहायक अध्यापकों में नवीन एवं डॉ. रामदत्त भारद्वाज अमर एवं स्मरणीय रहे। प्रेमचन्द के विकास में कानपुर का भी योग रहा है। सरकारी नौकरी वे बड़ी चतुरता से निभाते रहे (दिनकर की तरह) और काफी पैसेवाले होने पर साहित्य में ही टिक गए। नन्ददुलारे वाजपेयी ने उनके उपन्यासों में परिष्कृति और गहराई के अभाव की जो शिक़ायत की है, उसे नकारना कठिन है।

प्रेमचन्द ने हिन्दी-उपन्यास को सुधारवादी युग की उपदेशात्मकता तथा समसामयिक उपन्यासकारों की ऐंद्रजालिकता, उत्सुकता, अश्लीलता इत्यादि की संकीर्ण सीमाओं से निकालकर, आदर्शवादी युग के अनुरूप यथार्थ, कला एवं स्फीति का अनन्त अजिर प्रदान किया, जिसका ऐतिहासिक महत्त्व तो विशद है ही, प्रभावगत महत्त्व विशदतर है। समसामयिक उपन्यासकारों में विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' (संघर्ष, माँ इत्यादि), प्रसाद (कंकाल, तितली) इत्यादि तो उनसे प्रभावित हुए ही, परवर्ती यशपाल, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल नागर, कैलाश कल्पित, यज्ञदत्त शर्मा इत्यादि भी होते रहे। उनकी आदर्शोन्मुख रचना-प्रक्रिया की प्रतिक्रिया में भगवतीचरण वर्मा, उग्र, ऋषभचरण जैन इत्यादि ने नूतन कामचिन्तन-संपृक्त, यथार्थवादी कृतित्व प्रस्तुत किया तथा इलाचन्द्र जोशी, जैनेन्द्र, अज्ञेय, देवराज इत्यादि ने नूतन मनोविज्ञान का आश्रय ग्रहण किया। जैनेन्द्र उनके कृतित्व से ही नहीं प्रत्युत व्यक्तित्व से भी प्रभावित हुए। सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन को 'अज्ञेय' उपनाम उन्होंने ही प्रदान किया। कुछ लोग 'अज्ञेय' उपनाम का श्रेय जैनेन्द्र को देते हैं। प्रेमचन्द हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उपन्यास-पुरुष के रूप में अमर हैं।

महान् कहानीकार

कहानीकार-प्रेमचन्द उपन्यासकार-प्रेमचन्द से भी श्रेष्ठतर हैं, जिसका कारण विधा के वे लघु आयाम हैं जिनके लिए अध्येता या चिन्तक होना अपरिहार्य नहीं है तथा जिनके कारण कलाकार प्रायः विस्तार के अतिरेक का आखेट हो ही नहीं पाता। चित्रण की

---

[1] 1964 ई. में हुई व्यक्तिगत वार्ता का स्मरण आता है—उपन्यासकार प्रतापनारायण श्रीवास्तव के अनुसार, प्रेमचन्द की आर्थिक स्थिति दयनीय न थी (जैसाकि कई हमदर्दी-दरिया-छाप लेखकों ने चित्रित कर डाली है)। वे अच्छे-खासे से एक खाते-पीते नागरिक थे। बेटी के विवाह में उस समय के पाँच हज़ार का भारी दहेज, प्रेस मासिक 'हंस' इत्यादि से तो सम्पन्नता की सूचना ही मिलती है। जीवन-संध्या में प्रेमचन्द पर्याप्त सम्पन्न थे जैसाकि 'प्रेमचन्द विश्वकोश' इत्यादि उन पर अनेक ग्रन्थों के प्रस्तोत डॉ. कमलकिशोर गोयनका। प्रेमचन्द के निर्धन के चौदह दिन पूर्व बनारस बैंक के खाते में चार हज़ार चार सौ इकत्तर रुपए पॉच आने ग्यारह पाई तथा दूसरे खाते मे लगभग तीन सौ रुपए जमा होने के प्रात्ययिक अनुसन्धान से स्पष्ट है। उस समय ये राशियाँ बहुत बड़ी थी। हाँ, उन्हें स्वयं को ग़रीब दिखाने का शौक़ अन्त तक रहा। उनके साम्यवादी पुत्र स्व. अमृत राय तो ख़ैर करोड़पति थे ही! अमृतराय की पत्नी सुधा सुभद्राकुमारी चौहान की पुत्री थीं (देहान्त 22 अप्रैल, 1996 को)। अमृतराय में भी ग़रीब बताने का झूठ लिखा, किन्तु ज्येष्ठ पुत्र श्री श्रीपतराय ने ऐसा नहीं माना। श्रीपतराय करोड़पति थे। प्रेमचन्द पुत्रद्वय को खूब फले!

[1] 'दो बैलों की कथा' (जिस पर 'हीरा-मोती' फ़िल्म बनी थी) अपवाद है, क्योंकि यह एक फ्रेंच कहानी से प्रेरित-प्रभावित है।

[2] 'हंस' जिसे हिन्दी-साहित्येतिहास में स्थान प्राप्त है। 'अक्षर प्रकाशन' के धन्धे में करोड़पति बने कट्टर कम्युनिस्ट नेता तथा कथाकार राजेन्द्र यादव ने भी 'हंस' को ख़ूब उड़ाया।

सर्वांगीणता तथा अंकन की सूक्ष्मता कहानी के लिए अपरिहार्य नहीं है। प्रेमचन्द एक पैदाइशी क़िस्सागो थे और कहानी उनकी प्रकृति के निकटतर थी। उनकी तीन सौ छह कहानियाँ ('चक्रवाक', नई दिल्ली अप्रैल-जून, 2005) गुण एवं परिमाण दोनों में ही उन्हें उनके दस के लगभग उपन्यासों के उपन्यासकार की तुलना में कहीं बड़ा कहानीकार सिद्ध करती हैं। पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी ने उनको उपन्यासकार की तुलना में श्रेष्ठतर कहानीकार माना है जो उचित है (यद्यपि उन्होंने पर्याप्त कारण नहीं दिए)।

मैंने व्यावसायिक प्रकाशक एव परिचयात्मक साहित्यकोशकार श्री यशपाल महाजन के आग्रह पर प्रेमचन्द की कहानियों का जो वर्गीकरण किया है, उसके आधार पर 'प्रेमचन्द की आदर्शवादी कहानियाँ', 'प्रेमचन्द की यथार्थवादी कहानियाँ', 'ग्राम्य जीवन की कहानियाँ', 'प्रेमचन्द की ऐतिहासिक कहानियों', 'नारीजीवन की कहानियों', 'प्रेमचन्द की मनोवैज्ञानिक कहानियों' एवं 'प्रेमचन्द की हास्य कहानियाँ' शीर्षक सात संग्रह प्रकाशित किए गए। यह सत्य है कि कहानीकार प्रेमचन्द प्रकृत्या आदर्शवादी कहानीकार हैं, क्योंकि संख्या में ऐसी कहानियाँ अधिक है तथा गुणवत्ता में भी कुल मिलाकर वे आगे निकल जाती हैं। 'पंच-परमेश्वर', 'सेवा-मार्ग', 'परीक्षा', 'नमक का दारोगा', 'मुक्तिमार्ग', ''विश्वास', 'स्वर्ग की देवी', 'आधार', 'माता का हृदय', 'दंड', 'मुक्तिधन', 'सौभाग्य के कोड़े', 'घासवाली', 'स्मृति का पुजारी', 'दो क़ब्रें', 'मन्त्र'[1], 'मन्त्र'[2], 'सुजान भगत', 'प्रायश्चित्त', 'इस्तीफ़ा', 'यह मेरी मातृभूमि', 'लाग-डाँट', 'अमावस्या की रात्रि', 'जेल', 'पत्नी से पति', 'शराब की दुकान', 'जुलूस', 'मैकू', 'समर-यात्रा', 'शान्ति', 'जिहाद', 'फ़ातिहा', 'महातीर्थ' जैसी आदर्शवादी कहानियों में प्रेमचन्द का सहज रूप विवृत हुआ है, जबकि उनकी 'कफ़न', 'बूढ़ी काकी', 'नया विवाह', 'निर्वासन', 'नैराश्य-लीला', एक आँच की क़सर', 'नैराश्य', 'विचित्र होली', 'बाबाजी का भोग', 'सवा-सेर गेहूँ', 'सद्गति', 'मन्दिर', 'रामलीला', 'हिंसा परमो धर्मः', 'बहिष्कार', 'आभूषण', 'गृहदाह', 'चकमा', 'शंखनाद', 'प्रारब्ध', 'ग़रीब की हाय' जैसी यथार्थवादी कहानियाँ प्रयत्नज एवं शिल्प-सज्जित लगती हैं, भले ही युग के कारण उन्हें अधिक ख्याति मिली हो। 'कफ़न' को प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानी माननेवालों की कमी नहीं हैः घर में मरी पड़ी युवती के कफ़न के चन्दे की राशि लेकर निकलनेवाले ससुर और पति मधुशाला के सामने ठिठकते हैं, कुछ क्षण अन्तर्द्वन्द्व में फँसते हैं, अन्ततः प्रवेशकर पीते भी हैं, खाते भी हैं, नाचते-गाते भी हैं और मदहोश या बेहोश हो ढेर हो जाते हैं—इस भयावह यथार्थवाद के अतिप्रशंसकों की संख्या निश्चित करना सम्भव नहीं है; किन्तु यह किसी ने नहीं सोचा कि यह अस्वाभाविक कहानी भारत के ग़रीब का कितना बड़ा अपमान करती है! भारत का ग़रीब इतना पतित नहीं है, जितना उसे 'कफ़न' में दिखाया गया है। 'कफ़न' का कलाकार भारत के ग़रीब का अपमान करने का अपराधी है! कालान्तर में, सत्यजित राय अपने बांग्ला-चलचित्रों एवं मरहूम टेरसा (टेरीसा) अपने कलकत्ता इत्यादि के धर्मपरिवर्तन-आश्रमों में भारत का ऐसा ही अपमान करके 'भारतरत्न' हो गए! (प्रेमचन्द तो वैसे भी 'विश्वरत्न' हैं!) भारत का पतित-रूप भारतीय साम्यवादियों को उतना ही प्रिय लगता है जितना पाश्चात्य पूँजीवादियों को! इसी प्रकार, 'बूढ़ी काकी' का भयावह-यथार्थवाद भी स्वाभाविक नहीं है तथा एक बूढ़ी बेक़स विधवा का घोर अपमान है। प्रेमचन्द का यथार्थवाद ऊपर से ओढ़ा गया होने के कारण भड़कीला तो है किन्तु स्वाभाविक नहीं। गहनतम आलोचक को वह कृत्रिम ही लग सकता है, क्योंकि वह कृत्रिम ही है। मानव का पतन, विशेषतः वे परिस्थितियाँ जो उसे पतित करती हैं, चित्रित करना प्रशस्य है, क़्योंकि वह विरेचक होता है, प्रेरक होता है; किन्तु इस चित्रण को अस्वाभाविक भयावहता प्रदान करना आपराधिक है, क्योंकि वह मानवता के प्रति आस्था को विशृंखल कर सकता है, जबकि प्रत्येक कलाकृति का ध्येय मानवता को शृंखलित रूप प्रदान करना ही हो सकता है और इस ध्येय में कोई वाद आड़े नहीं आता।

प्रेमचन्द ग्राम-जीवन के कुशल चितेरे हैं। उनकी 'पंच-परमेश्वर', 'मुक्तिमार्ग', 'अलग्भोझा', 'बड़े घर की बेटी', 'ठाकुर का कुवाँ', पूस की रात', 'दो बैलों की कथा', 'सवा-सेर गेहूँ', 'मन्दिर', 'सुजान भगत', 'पिसनहारी का कुवाँ', 'लाग-डाँट', 'आत्माराम', 'खून सफ़ेद', 'ग़रीब की हाय', 'बेटी का धन', 'बलिदान', 'विध्वंस', 'ईदगाह' जैसी ग्राम्य जीवन की कहानियाँ', चाहे आदर्शवादी हों या यथार्थवादी या अन्य, बहुत आकर्षक हैं। पन्त को लिखना पड़ा था :

> भारतीय ही नहीं बल्कि मैं हूँ ग्रामीण हृदय के भीतर

तथा गिरिजाकुमार माथुर ने विदेश में लिया था :

> नभभवनों में याद आ रहे वे कच्चे घर-द्वार सलोनी!

---

[1] पंडित लीलाधर चौबे वाली

[2] डॉक्टर चड्ढा वाली

किन्तु प्रेमचन्द जन्म से जीवन तक सर्वत्र गाँव से जुड़े रहे थे। मैं 'ईदग़ाह' को प्रेमचन्द की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानता हूँ क्योंकि उसका यथार्थ सहज है, गहनतम मानवतावाद से परिपुष्ट है, बेहद मार्मिक है।

प्रेमचन्द एक महान् हास्यव्यंग्यकार थे। जीवन में भी वे ठहाके लगाकर हँसते रहते थे! उनकी 'लाटरी', 'गुल्ली-डंडा', 'रसिक सम्पादक', 'नशा', 'मोटर की छींटें', 'दो बैलों की कथा', 'कानूनी कुमार', 'जादू', 'नया विवाह', 'मुफ़्त का यश', 'कौशल', 'दीक्षा', 'सत्याग्रह', 'मनुष्य का परम धर्म', 'गुरुमन्त्र', 'विनोद', 'माँगे की घड़ी', 'तगादा', 'डिमाँस्ट्रेशन' जैसी हास्य-कहानियाँ अपने दम-खम में हिन्दी के किसी भी हास्यलेखक या व्यंग्यकार को पीछे छोड़ देती हैं। हास्य-व्यंग्य में उनकी प्रतिभा विश्वस्तरीय है। कहीं-कहीं उनके हास्य में चुलबुलापन कुछ ज़्यादा हो जाता है, किन्तु ज़िन्दगी में चुलबुलाहट की अपनी रंगत कौन नहीं मानेगा?

प्रेमचन्द विद्वान् न थे, चिन्तक न थे, दार्शनिक न थे। वे अतिशिक्षित भी न थे। कई बार असफल रहने के बाद बी.ए. हो पाए थे और जब कोई 'बाबू धनपतराय बी.ए.' कहता तो बड़े प्रसन्न होते थे। किन्तु वे ग़ज़ब के कथा-कहानी के पढ़ाकू अवश्य थे। किशोरावस्था में तिलिस्म-होशरुबा जैसी अतिस्फीत कथा पढ़ जाना उन्हीं के दम का जलूसा था। कालान्तर में वे कहानीकार गंगाप्रसाद मिश्र के शब्दों में नित्य-प्रति अंग्रेजी भाषा में प्राप्त अंग्रेज़ी तथा अन्य भाषाओं की नई-से-नई कहानियाँ पढ़ते थे। जिनका प्रभाव स्वाभाविक था। उपन्यासकार प्रतापनारायण श्रीवास्तव के अनुसार, प्रेमचन्द को उन्होंने अनेक कहानियाँ दिखाईं जिन्हें वे गड़प गए। श्रीवास्तव ने नाम भी गिनाए थे।[1] उनका इतिहास का अध्ययन सामान्यतर था, किन्तु अपने असामान्य सृजन-प्रतिभा के बल पर उन्होंने अनेक सफल ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं—'वज्रपात', 'परीक्षा', 'रानी सारंधा', 'राजा हरदौल', 'विक्रमादित्य का तेग़', 'दिल की रानी, 'शतरंज के खिलाड़ी', 'क़ैदी', 'न्याय', 'धिक्कार', 'लैला', 'सती', 'मर्यादा की वेदी', 'पाप का अग्निकुण्ड', 'जुगुनू की चमक', 'धोखा', 'राज्यभक्त' जैसी कहानियाँ प्रायः इतिहास की वस्तु की दृष्टि से गहन न होकर भी प्रभावी अवश्य हैं।

प्रेमचन्द नर के चितेरे थे, नारी के नहीं—ऐसा कहना बहुत अधिक अनुपयुक्त न होगा। शरद नारी के चितेरे पहले थे, नर के अनन्तर। जैनेन्द्र नारी के चितेरे पहले थे, नर के अनन्तर। किन्तु प्रेमचन्द ने अनेक नारी-रूप तन्मयता से प्रस्तुत अवश्य किए हैं, जिनमें अनेक स्वाभाविक प्रतीत होते हैं। 'रानी सारंधा', 'सेवामार्ग', 'पत्नी के प्रति', 'बूढ़ी काकी', 'विमाता', 'सुहाग की साड़ी', 'एक्ट्रेस', 'दो सखियाँ', 'माँगे की घड़ी', 'स्मृति का पुजारी', 'स्त्री और पुरुष', 'स्वर्ग की देवी', 'माता का हृदय', 'लैला', 'कुसुम', 'वेश्या', 'मिस पद्मा', 'नया विवाह', 'शूद्रा', 'माँ', 'ज्योति', 'दिल की रानी', ''सुभागी', 'घासवाली', 'कफ़न', 'गृहनीति' जैसी कहानियों मे कहीं आदर्शवादी, कहीं यथार्थवादी, कहीं घटनावादी तो कहीं स्वाभाविकतावादी नारी-चित्रण अपने अनेक आयामों में विस्मयकारी तक लगने लगता है। उपन्यासकार-प्रेमचन्द की तुलना में कहानीकार-प्रेमचन्द का नारी-चित्रण अधिक व्यापक भी है, अधिक गम्भीर भी, अधिक प्रभावी भी।

प्रेमचन्द व्यवहारिक-मनोविज्ञान के आचार्य हैं, भले ही शास्त्रीय मनोविज्ञान की जटिलताओं में न उलझते हों। 'उन्माद', 'नशा', 'बड़े भाई साहब', 'कुत्सा', 'ईदग़ाह', 'लांछन', 'आत्माराम', 'सुहाग की साड़ी', 'लोकमत का सम्मान', 'धर्मसंकट' जैसी कहानियों में उन्होंने मनोविज्ञान के विविध (श्रेष्ठताग्रन्थि, कुंठा, बाल-वृत्ति, एकाकी-वृत्ति या अजनबीयत इत्यादि) बिन्दुओं के मनोहारी दर्शन कराए हैं।

अपनी आदर्शवादी कहानियों में प्रेमचन्द एक सिद्ध कहानीकार हैं, अपनी यथार्थवादी कहानियों में प्रेमचन्द एक गौरवशाली कलाकार हैं, अपनी हास्य-कहानियों में प्रेमचन्द एक सफल कथाकार हैं। उनकी ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक कहानियाँ भी आकर्षक एवं रोचक हैं। नारी के गहन चितेरे न होकर भी प्रेमचन्द ने नारी-जीवन के अनेकानेक पक्षों को विदग्धतापूर्वक उद्घाटित किया है। उनका ग्राम-चित्रण अनूठा है। अपने समग्र कहानीकार-रूप में प्रेमचन्द संसार के प्रथम श्रेणी के कहानीकारों मोपासाँ, चेख़व, ओ'हेनरी, रवीन्द्र प्रभृति के साथ प्रतिष्ठित किए जाने के अधिकारी हैं।

प्रेमचन्द की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषताएँ वे ही हैं जो उनके उपन्यासों की। कहानीकार-प्रेमचन्द आयामों की व्यापकता में उपन्यासकार-प्रेमचन्द भी से आगे हैं। किन्तु उपन्यासों के सदृश ही अपनी कहानियों में भी प्रेमचन्द कथानकप्रधान अधिक हैं, देशकालप्रधान अपेक्षाकृत अधिक हैं, चरित्रप्रधान कम, मनोविश्लेषणात्मक अपेक्षाकृत अल्प। प्रेमचन्द अपने उपन्यासों एवं कहानियों दोनों में ही पाट के कलाकार अधिक हैं, गहराई के कम-भले ही, 'ईदग़ाह', 'नशा', 'लॉटरी' जैसी अनेक कहानियाँ अपवाद मानी जा सकती हैं।

---

[1] 'कोमा' (कानपुर), अक्टूबर-दिसम्बर अंक 2004 में डॉ. सेवक वात्स्यायन, पृ. 38

अपनी आदर्शवादी कहानियों में प्रेमचन्द ने भारत के पारम्परिक सांस्कृतिक मूल्यों का प्रभावी चित्रण किया है, जो सीधे जीवन से गृहीत है क्योंकि वे विद्वान् या चिन्तक न थे—वे बस कलाकार थे। भारतरत्न राजर्षि पुरुषेत्तमदास टंडन ने प्रेमचन्द की सफलता का कारण उनका भारतीय संस्कृति का सजीव चित्रण बतलाया था। सम्यक् या महान् साधना जिन संगीत, साहित्य इत्यादि ललित-कलाओं में विवृत होती है, उसकी गरिमा का पूरा ध्यान प्रेमचन्द ने रखा है। सेवा, त्याग, सहानुभूति इत्यादि संस्कार-गौरव सांस्कृतिक मूल्यों की संरक्षा में प्रेमचन्द अग्रणी रहे। भारत की वास्तविक तस्वीर उरेहने में रुचि रखते हुए भी प्रेमचन्द ने उस वास्तविकता के तल में अदृश्यतः विद्यमान जीवनमूल्यों की उपेक्षा नहीं की। 'सेवासदन' (उपन्यास) हो या 'सेवामार्ग' (कहानी), 'रंगभूमि' (उपन्यास) हो या 'परीक्षा' (कहानी), प्रेमचन्द अधिकाशतः नारी (सुमन हो या तारा) की सहज गरिमा एव सेवाभावना, पुरुष (सूरदास हो या सरदार सुजानसिंह) के त्याग एवं संवेदन प्रभृति मानवीय मूल्यों के प्रतिष्ठापन का ध्यान रखते प्रतीत होते हैं। प्रेमचन्द की आदर्शवादी कहानियाँ अतीव आकर्षक भी हैं, प्रेरक भी। उनकी कहानियों से प्रेरणा पाकर अनेक नागरिकों ने उन्नति की थी, जिनमें एकाध ने तो उनसे मिलकर कृतज्ञता-ज्ञापन भी किया)ग्था, जैसाकि 'प्रेमचन्द घर में' से स्पष्ट है। स्वयं एक साधारण जीवन जीते हुए भी (जिसमें प्रशासन-भय से छिपकर लिखना, मानहानि के प्रतिवाद पर कारा-भय से न्यायालय में क्षमायाचना करना, विवाहित पत्नी को बिना किसी कारण-विशेष के त्यागकर दूसरा विवाह करना, कहरिया के प्रति आसक्ति, बेटी के विवाह में उस समय की भारी राशि पाँच हज़ार रुपए का दहेज देना अर्थात् विवाह-रूढ़ि पालन-प्रदर्शन, उच्छृंखल खानपान अर्थात् राह चलते खोंचेवालों से सामान लेकर खाना इत्यादि—जिसका परिणाम यह रहा कि कभी स्वस्थ न रहे, सदैव दुर्बल रहे, जलोदर के कारण प्रायः असमय काल-कवलित हुए, सूदख़ोरी इत्यादि आपूर्ण रहे) उन्होंने मानव को सामान्य बनाने का यत्न नहीं किया।

अपनी यथार्थवादी कहानियों में प्रेमचन्द अतीव गम्भीर एवं हृदयविदारक कलाकार प्रतीत होते हैं। इन कहानियों में आकर्षण या रोचकता कम हो सकती है किन्तु प्रच्छन्न-प्रेरणा का परिवर्तित एवं क्रान्तिकारी रूप प्रशस्य है। दरिद्र एवं दयनीय समाज को दरिद्र एवं दयनीय बनाए रखनेवाले या बनानेवाले शोषक एवं प्रपीड़क तत्त्वों के उच्छेद की प्रेरणा सत्य, अहिंसा, सेवा, त्याग इत्यादि पारम्परिक गुणों को ग्रहण करने की प्रेरणा से भी महत्तर प्रेरणा है। 'कफ़न', 'बूढ़ी काकी' इत्यादि स्तरीय यथार्थवादी कहानियों में प्रेमचन्द ने क्षुधा के वैवश्य का गहनतम चित्रण किया है। प्रेमचन्द की यथार्थवादी कहानी-कला का चरम उत्कर्ष 'ईदगाह' कहानी में होता है, जिसमें बालक हमीद पर निर्धनता की परोक्ष प्रतिक्रिया से उत्पन्न संवेदन का चित्रण संसार-साहित्य की एक अजर-अमर निधि है। 'नशा' में बीर नामक पात्र का बहुत ही सजीव मनोवैज्ञानिक चित्रण प्राप्त होता है (भिश्ती निज़ाम का बच्चा सक्का की याद आ रही है)! 'लॉटरी' में महत्त्वाकांक्षा एवं शंका की प्रवृत्तियों का स्तरीय चित्रण तो अतीव रोचक भी है।

प्रेमचन्द ने 'कर्बला', 'संग्राम' एवं 'प्रेम की वेदी' शीर्षक तीन नाटक भी लिखे हैं, उनकी आलोचना में यह कहना पर्याप्त होगा कि ''उन्होंने तीन नाटक भी लिखे थे''! नाट्यकार प्रेमचन्द, कवि रामचन्द्र शुक्ल और निबन्धकार प्रसाद ''इस विधा में भी लिखा'' मात्र से विवृत हो सकते हैं, यद्यपि निबन्धकार प्रसाद का रूप विशदतर है। 'कुछ विचार', 'कलम' एवं 'तेग़ और तलवार' में उनके निबन्ध दृग्गत होते हैं। उनके 'उपन्यास' और 'कहानी' पर लिखे निबन्ध स्तरीय हैं। उनकी 'शेख़ सादी' एवं दुर्गादास' नामक जीवनियाँ, 'कुत्ते की कहानियाँ', 'जंगल की कहानियाँ', 'रामचर्चा' एवं 'मनमोदक' शीर्षक बालसाहित्य-पुस्तकें तथा 'टॉलस्टॉय की कहानियाँ', 'सुखदास', 'अहंकार', चाँदी की डिबिया', 'न्याय', 'हड़ताल' एवं 'आज़ाद कथा' शीर्षक अनूदित कृतियाँ उनके मसिजीवी होने की सूचना मात्र दे पाती हैं।

आदर्शवादी कथाकार

निस्सन्देह, प्रेमचन्द प्रकृत्या एक आदर्शवादी कथाकार हैं। उनके उपन्यासों एवं उनकी कहानियों में आदर्शवाद एक विशेष प्रभावी तत्त्व है, जिसका कारण उनका युग था। प्रेमचन्द आदर्शवादी युग (1900-20 ई.) के कथाकार थे तथा आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, हरिऔध, आ. रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि के सदृश पारम्परिक मानवमूल्यों के साथ नवविकास का आह्वान कर रहे थे। आदर्शवादी युग का नवविकास-नेतृत्व इतना सफल था कि अज्ञेय (जिन्हें यह उपनाम आदर्शवादी प्रेमचन्द ने दिया और आदर्शवादी प्रेमचन्द की प्रतिष्ठा 'पंच-परमेश्वर' प्रकाशित कर आदर्शवादी-सम्राट् आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने की थी) तक ने प्रौढ़तर काल में लिखा कि वे अपने युग में वही कार्य करना चाहते थे जो अपने युग में आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने किया था—और, अज्ञेय आदर्शवादी मैथिलीशरण के पैर छूते थे! सादगी, असलियत, जोश, देशप्रेम, त्याग, स्वस्थ-नव्यता इत्यादि की जो प्रतिष्ठा आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी

ने की थी, वह आज भी उपयोगी है। प्रेमचन्द पर गाँधीवाद के सुधारवाद का भी भारी प्रभाव पड़ा। गाँधी स्वच्छन्दतावादी कोटि के आदर्शवादी थे। भारतीय इतिहास के गाँधी-युग (1920-48 ई.) से प्रेमचन्द का प्रभावित होना स्वाभाविक था, जिसका परिणाम हरिजान-उत्थान, मन्दिर-प्रवेश, अस्पृश्यता- निवारण, नारी-जागृति, विधवा-विवाह, वेश्या-सुधार, स्वदेशी, बहिष्कार-आन्दोलन, नशाबन्दी, त्याग, कारागर-यात्रा, ग्रामोत्थान इत्यादि पर रचित उनका प्रचुर कहानी-साहित्य है तथा जिसकी प्रेरणा से उनके उपन्यास भी ऊभचूभ हैं। किन्तु प्रेमचन्द ने यथार्थवाद की अवहेलना कभी नहीं की। यथार्थवाद शाश्वत है, अन्य वाद प्रायशः सामयिक या सामयिकता-प्रधान। यथार्थवाद अंगी है, अन्य वाद अंग। चन्द्र, विद्यापति, कबीर, तुलसी इत्यादि ने यथार्थवाद को भारी सम्मान प्रदान किया है। स्वयं बौद्धिककाल (आधुनिककाल) के सन्धियुग, सुधारवादी युग, आदर्शवादी युग, स्वच्छन्दतावादी युग उतने व्यापक नहीं रहे जितना वर्तमान यथार्थवादी युग है, क्योंकि यह 1940 ई. से चलता आ रहा है और अभी चलता रहेगा तथा इसने प्रत्येक वाद (समाजवाद या साम्यवाद या व्यक्तिवाद या नवरहस्यवाद सब) को प्रभावित किया है। आदर्शवादी प्रेमचन्द ने यथार्थवाद का सम्मान करते हुए अपना सिद्धान्त आदर्शोन्मुख- यथार्थवाद बतलाया। प्रेमचन्द न कोरे आदर्शवादी हैं, न कोरे यथार्थवादी; वस्तुतः वे जीवनवादी कथाकार हैं। वे साहित्य को राजनीति का लाग्गू-भग्गू बनाने के पक्षधर न थे, जैसाकि 1936 ई. के लखनऊ में हुए प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन में अध्यक्ष पद से उनके 'प्रगतिशील' शब्द पर आपत्ति करने से स्पष्ट है—साहित्य की सहज प्रकृति की प्रगति है। निस्सन्देह, साम्यवादी साहित्यकारों ने सम्भवतः सोविएट यूनिअन (अतीतगत) की प्रेरणा से उनके आसपास घेरा डालना शुरू कर दिया था तथा निधन के बाद भी उनको अपने लाल रंग में रँगना नहीं छोड़ा—1980 ई. के प्रेमचन्द-जन्मशताब्दी समारोह तक इस तथ्य के दर्शन किए जा सकते हैं—तथापि प्रेमचन्द जैसे महान् कलाकार को दलबद्ध दृष्टि से देखना उनकी महान् प्रतिभा के साथ अन्याय करना होगा। प्रेमचन्द साम्यवादियों के आयातित-संस्कृतिवाद के समर्थक न थे। साहित्य, संगीत, नृत्य इत्यादि के प्रति प्रेमचन्द के विचार सर्वतः भारतीय थे। प्रेमचन्द एवं निराला स्वस्थ-स्वच्छ साहित्य-मनीषी होने के कारण यथार्थवादी भी थे, प्रगति-प्रेमी भी थे, किन्तु वे राहुल, यशपाल, नागार्जुन इत्यादि जैसे इतर श्रेणी के साहित्यजीवियों के सदृश साम्यवादी नहीं हैं, जैसाकि कई अनुत्तरदायी अथवा पूर्वाग्रहग्रस्त तत्त्व बताते फिरते हैं। श्रीपतराय एवं अमृतराय के साम्यवादी या रूसवादी या आयातवादी होने मात्र से प्रेमचन्द साम्यवादी नहीं हो जाते! साम्यवादी दल के प्रेमचन्द-घेराव की प्रतिक्रिया के एक क्षीण दर्शन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की विचारधारा से प्रेरित डॉ. कमलकिशोर गोयनका के प्रेमचन्द के व्यक्तित्व पर प्रहारों में किए जा सकते हैं, यद्यपि इससे आर्थिक एवं साहित्यिक क्षतियाँ देखकर उन्होंने रंग बदल दिया और प्रेमचन्द पर साहित्य-कोश के परिश्रम में जुट गए जो उपयोगी है। किसी महान् साहित्यकार के व्यक्तित्व के दुर्बल पक्षों पर प्रहार, आलोचक का एक कठोर कर्तव्य है, भले ही वह अपरिहार्य वर्ग में न आता हो, किन्तु ऐसा तभी उचित है जब वह अनुकरणजन्य न होकर मौलिक हो, डुगडुगीबाज़ी से प्रेरित न होकर सत्य के उद्घाटन के कर्तव्य से प्रेरित हो, दलगल न होकर निष्ठागत हो। प्रेमचन्द की आलोचना राजनीति के इस या उस पक्ष से मुक्त हो, यही वरेण्य है।

दुर्बलताएँ

प्रेमचन्द की कला में दोष भी गुण के सदृश विशाल हैं। किसी एक सुचिन्तित विचारधारा का अभाव प्रेमचन्द की कला में दार्शनिक गहराई नहीं आने देता। रंगभूमि तथा कर्मभूमि के अहिंसा एवं असहयोग तथा ग्रामोत्थान एवं सर्वधर्मसद्भाव में वे गाँधीवादी हैं क्योंकि सूरदास साहित्य का गाँधी है तथा अमरकान्त जागरूक ग्रामोत्थानवादी युवक। 'सेवासदन', 'प्रेमाश्रम', 'ग़बन' इत्यादि में वे पारम्परिक सुधारवादी एवं गाँधीप्रेरति हृदयपरिवर्तनवादी हैं। 'गोदान' में क्रान्तिवाद के स्पर्श का आयास दृग्गत होता है किन्तु वह उनके अवसान-सामीप्य के सदृश ही म्रियमाण है, जीवन्त नहीं। गोबर क्रान्ति के उभार के साथ उठता है किन्तु बिना कुछ-ख़ास किए-धरे ही टायँ-टायँ-फिस्स हो जाता है। 'मंगलसूत्र' में प्रेमचन्द सहज एवं सशक्त यथार्थवाद की ओर बढ़ते हैं किन्तु तभी समाप्त हो जाते हैं; फिर भी, अपरिसमाप्त उपन्यास पूँजीवाद-प्रेरित एवं साम्राज्यवाद-पोषित पाखंडपूर्ण गाँधीवाद से मुक्ति का द्योतक होने के कारण उल्लेखनीय अवश्य है—संयोगात् प्रसाद अपने अपरिसमाप्त ऐतिहासिक उपन्यास इरावती में भूमिका से लेकर कथानक एक सर्वत्र बुद्धवाद या अशोकवाद या गाँधीवाद पर प्रहार करते हैं। स्पष्ट है कि 1935-36 ई. तक गाँधीवाद उच्च साहित्य से प्रायः उखड़ चुका था। कलाकार के लिए एक सुनिश्चित विचारधारा अपरिहार्य नहीं है। विश्व-वाङ्मय के एक सीमान्त शेक्सपिअर तक किसी सुनिश्चित विचारधारा से मुक्त हैं। किन्तु प्रेमचन्द सर्वत्र विचार व्यक्त भी करते हैं तथा प्रतिपादित भी, जिसका असफल अनुकरण भगवतीप्रसाद वाजपेयी एवं अमृतलाल नागर में देखा जा सकता है। उन जैसा महान् कलाकार यज्ञदत्त शर्मा जैसे स्फीत किन्तु शिथिल कथाकार के

मात्र के सदृश अविचारवादी हो भी नहीं सकता था। एक समग्र एवं सशक्त जीवन-दर्शन के अभाव में प्रेमचन्द न शास्त्रवादी-लोकमंगलवादी शुक्ल का सा एक समग्र एवं सशक्त प्रभाव छोड़ पाते हैं, न गतिशील-वैष्णवतावादी मैथिलीशरण गुप्त का, न शैव-आनन्दवादी प्रसाद का, न क्रान्त-अद्वैतवादी निराला का, यद्यपि वे इनके समकक्ष साहित्यकार अवश्य हैं। प्रेमचन्द का प्रभाव सतही है, गहरा नहीं। प्रभाव-परिवर्तनवादी पन्त तक उनसे गहन कलाकार सिद्ध होते हैं क्योंकि उनमें चिन्तन एवं मनन का सामर्थ्य विद्यमान था। प्रेमचन्द समस्याएँ तो बड़ी-बड़ी उठा लेते हैं, जैसे औद्योगीकरण के पूँजीवादी अजगर द्वारा निरीह ग्रामों को निगलने की (रंगभूमि), ज़मींदार-पटवारी-पुलिस के सर्वविध कृषक-शोषण की (गोदान एव प्रेमाश्रय), वेश्यावृत्ति की (सेवा-सदन), शिक्षित युवकों के ग्राम-पराङ्मुख होने तथा इसके परिणामस्वरूप ग्रामों के पिछड़ेपन की (कर्मभूमि), आभूषण-व्यामोह की (ग़बन), और इनके दबाव में आकर पात्रों की भरमार करते चलते हैं, किन्तु चिन्तनशील न होने के कारण या तो उन्हें बिना किसी समाधान के छोड़ देते हैं या बना-बनाया समाधान (रेडीमेड फार्मूला) पेश करते हुए चटपट आश्रम बनाके या हृदयपरिवर्तन कराके हाथ झाड़ते हुए अलग खड़े हो जाते हैं, और इस झपाटेबाज़ी में अनेक पात्रों को या तो एकदम बिसरा देते हैं या आत्महत्या का आखेट बनाकर फुर्सत पा लेते हैं।

खानपान से लेकर चालढाल तक में असंयमी होने के कारण प्रेमचन्द के साहित्य में चुहलबाज़ी और चोंचलेबाज़ी प्रायः दृग्गत होती रहती है, जिससे उन जैसे महान् कलाकार की बड़ी क्षति हुई है। प्रसंग हो या न हो, प्रेमचन्द को हँसने का रोग है जिससे विचारतत्त्व या भावतत्त्व के गहनत्व को आघात लगता है। 'गोदान' तो कामकुंठाओं का अखाड़ा ही बन गया है। इसके अलावा भी मालती-ओंकारनाथ, कबड्डीबाज़ी इत्यादि प्रकरण गौरवहीन हैं। गोदान में मातादीन के मुँह मे हड्डी-ठुसाई और 'रंगभूमि' में नायकराम पंडा की प्रभु सेवक द्वारा पिटाई तो सही ब्राह्मण-विद्वेष की उद्भूतियाँ मात्र प्रतीत होती हैं जिसमें प्रेमचन्द सदैव आकंठ निमग्न रहे तथा जिसके कारण उन्हें भरी अदालत में माफ़ी तक माँगनी पड़ी। ब्राह्मण-विद्वेष पैतृक सिद्ध हुआ; उनके पौत्र (अमृतराय के पुत्र) आलोक राय नामक सज्जन ने 'हिन्दी इम्पीरिअलइज़्म' (हिन्दी साम्राज्यवाद) शीर्षक ग्रन्थ ही लिख मारा जिसमें बमनी-हिन्दी और कैथी-हिन्दी का पृथक्करण दिखाने का यत्न किया गया है। क्या स्वयं प्रेमचन्द की हिन्दी अलग है? क्या महादेवी की भाषा बमनी (ब्राह्मणी) नहीं? छुवाछूत सारे हिन्दू-समाज की बीमारी है, जिसे मिटाने के यत्न रामानन्द, राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, तिलक, मालवीय, नेहरू, इन्दिरा इत्यादि ब्राह्मणों ने सबसे अधिक किए हैं। छुवाछूत-समस्या को ब्राह्मण मात्र पर थोपना बेहद सतही है। 1857 ई. के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम में मंगल पांडे, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, नानाराव पेशवा इत्यादि ब्राह्मणों ने सबसे अधिक भाग लिया था। अतः साम्राज्यवादी अंग्रेज़ों ने अपनी गहरी ''फूट डालो और राज्य करो'' नीति के अनुसार ब्राह्मण-विरोधी प्रचार आरम्भ कर दिया और ''यथा राजा तथा प्रजा'' के अनुरूप छुटभैये यही रट लगाने लगे। प्रेमचन्द के अनेक उपन्यासों तथा अनेक कहानियों में ब्राह्मण पुरुषों और नारियों का जो चित्रण प्राप्त होता है, वह उनके कायस्थ-ब्राह्मण-विवाद की संकीर्णता में मूलभूत है। ब्राह्मण-विरोध पुरूरवा, नहुष, सहस्रार्जुन, बुद्ध, महावीर, अशोक, बृहद्रथ, महमूद ग़ज़नवी, बख़्तियार ख़िलजी, फ़ीरोज़ तुग़लक, सिकन्दर लोदी, बाबर, औरंगज़ेब, रामास्वामी नायकर जैसे शासकों, आक्रान्ताओं, नेताओं इत्यादि ने किया; फिर भी, ब्राह्मण ही समाज का अग्रणी उन्नायक रहा—यही ब्राह्मण-विरोध के खोखले होने का सबसे बड़ा प्रमाण है। पृथकतावादी या न्यस्त-स्वार्थ-ग्रस्त राजनीतिजीवी ब्राह्मणवाद का हौवा खड़ा करके लाभ उठाने का यत्न करते ही रहते हैं। किन्तु प्रेमचन्द जैसे महान् कलाकार का दयनीय इतिहास-बोध एवं व्यक्तिगत राग-द्वेष निराशाजनक प्रतीत होता है। जातिप्रथा, कामुकता, वेश्या-वैवश्य सारी जातियों में हैं। भारत के मुसलमान, ईसाई, सिख, जैन इत्यादि तक जातिवादी हैं। जातिवाद या अस्पृश्यता का उन्मूलन सार्वभौम आर्थिक एवं शैक्षिक उन्नति से ही सम्भव है। प्रेमचन्द ने घोर ब्राह्मण-विरोध में प्रो. अवध उपाध्याय, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, प्रो. रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' इत्यादि के उनकी कृतियों के अर्द्धमौलिकता, अपरिष्कृति, अगहनता इत्यादि के संकेतों को बड़ी ही कटुता से ग्रहण किया तथा उनके कनिष्ठ पुत्र स्व. अमृतराय तो ''पुत्रात् शिष्यात् पराजयम्'' के द्योतक तक ही बन गए! ब्राह्मण-विरोध उतना ही विगर्हणीय है जितना कायस्थ-विरोध या शूद्र-विरोध या अन्य-विरोध, क्योंकि यह संकीर्णता का द्योतक एवं मानवतावाद का विरोधी है।

साम्प्रदायिकता भारत का एक ऐतिहासिक अभिशाप रही है, जिसे न गाँधी समझ पाए, न नेहरू और न इनसे अभिभूत स्वचिन्तनहीन प्रेमचन्द। 'रंगभूमि' उपन्यास में ईसाइयत तथा 'जिहाद' जैसी कहानियों में इस्लाम का वस्तुपरक चित्रण करनेवाले प्रेमचन्द नेहरू से मिलने पर हिन्दू विरोधी या मुस्लिमवादी बन गए इससे राजनैतिक लाभ हुआ; मुसलमानों, कांग्रेसियों और कम्युनिस्टों ने उन्हें हाथोंहाथ लिया। किन्तु पक्षपात एवं तुष्टीकरण विघातक होता है। गाँधी के मुस्लिम-तुष्टीकरणवाद ने भारत का विभाजन कराया तथा स्वयं उनकी जान भी ली, नेहरू के मुस्लिम-तुष्टीकरण ने विभाजित भारत में भी साम्प्रदायिकता की भयावह वृद्धि की। यह सत्य है कि विभाजित भारत में तत्कालीन अन्य दलों के नेताओं (मुस्लिम लीग, शेड्यूल्ड कास्ट्स फ़ेडरेशन, हिन्दू महासभा, अकाली दल इत्यादि)

ने स्वाभाविक जनसख्या-परिवर्तन की इच्छा व्यक्त की थी, किन्तु गाँधी एव नेहरू ने मुसलमानों को एक तरह से बन्धक बनाकर यहीं-का-यहीं बनाए रखना चाहा, क्योंकि वे कांग्रेस का मताधिकोष (वोट-बैंक) बनने पर विवश थे—मुसलमान पाकिस्तान के पक्ष में मत देकर भी यहाँ रहने के कारण आत्मग्लानि से सन्त्रस्त भी थे। प्रत्येक निर्णय मुस्लिम-साम्प्रदायिकता की वृद्धि करनेवाला सिद्ध हुआ—मुसलमानों को परिवार-नियोजन से बाहर रखना, उन्हें बहुविवाह की छूट देना, उन्हें हज की अत्यधिक सुविधाएँ देना, कश्मीर हेतु संविधान की धारा 370 तो कुछ निदर्शन मात्र हैं। इन्दिरा ने कुछ सुधार करने चाहे, संजय ने कुछ सख़्ती बरतनी चाही, किन्तु विलम्ब हो चुका था! पेट्रो-डॉलर ने अनेक मुसलमानों और पाकिस्तान को फुलाकर कुप्पा कर दिया और वे भयावह रूप से साम्प्रदायिक हो गए। आवश्यकता किसी विराट् माओ की थी, किन्तु मिले नन्हें-से और क्षुद्र नेतागण जिनके पास अपना कोई चिन्तन सम्भव न था, अतः इमामों की क़दमबोसी एवं साम्प्रदायिक सांसदों की मनुहार के अलावा और करते ही क्या? परिणाम कश्मीर में विघातक एवं पंचमांगी साम्प्रदायिकता का विकट आतंकवाद के रूप में प्रकट होना सिद्ध हुआ। देशहित की उपेक्षा करते, उदारता एवं मानवतावाद की डफली पीटकर विश्व-पूज्य बनने का रोग राष्ट्ररोग बन गया (पंजाब तथा कश्मीर की समस्याएँ ऐतिहासिक प्रमाण हैं)! अतीतगत सोविएट यूनिअन, चीन इत्यादि के मुसलमानों के सदृश भारत के मुसलमानों को न रहने देने के दोषी नेताओं को इतिहास कभी क्षमा नहीं करेगा। इनके कारण हिन्दू-मुसलमान दोनों की क्षति हुई और विश्व भर में सबसे अधिक पिछड़े मुसलमान भारत में बेहद पिछड़ गए। अमेरिका, ब्रिटेन इत्यादि मे एक जैसे नागरिक कानून सिद्ध करते हैं कि ये देश सच्चे धर्मनिरपेक्ष हैं। भारत की मताधिकोषवादी, न्यस्तस्वार्थवादी, साम्प्रदायिकतापूर्ण धमनिरपेक्षता मानवता के मुख पर कलंक का धब्बा बनकर रह गई है। प्रेमचन्द के समय तक हालात इतने ख़राब न थे, क्योंकि अग्रेज़ उतने पाखंडी एवं निम्न नहीं थे जितने कांग्रेसी या जनतादली या भाजपाई साबित हुए। फिर भी, मुस्लिम लीग का ज़हर उगलना क़ायम था, केरल में हिन्दू-घाती मोपला-विद्रोह हो चुका था, कानपुर (जहाँ प्रेमचन्द प्राथमिक शाला-प्रधान के रूप में रह चुके थे और जहाँ के मुंशी दयानारायण निगम उनके गुरु से थे) का 1931 ई. का भयानक दंगा हो चुका था (जिसमें मुसलमानों ने मुस्लिम-रक्षक गणेशशंकर विद्यार्थी को महज़ काफ़िर होने के कारण मार डाला था)। तब प्रेमचन्द को नेहरू की रबड़ की मोहर बनकर मुस्लिमपरस्ती की क्या आवश्कयता थी? मुस्लिम साम्प्रदायिकता की फूँक देकर साम्यवादियों ने भी देश का बड़ा अहित किया गया है। मैं प्रबुद्ध साम्यवादियों एवं कांग्रेसियों से जब मुसलमानों द्वारा विद्यार्थी की हत्या, श्रद्धानन्द की हत्या, प्रकाशक राजपाल की हत्या, पत्रकार शोएबुल्ला ख़ान की निज़ामशाही में हत्या, तस्लीमा नसरीन (बाँग्ल-उपन्यासकार) से व्यवहार, परिवार-नियोजन-विरोध, एक नागरिकता कानून विरोध, पाकिस्तानपरस्ती इत्यादि पर प्रश्न करता हूँ तब वे बगलें झाँकते रह जाते हैं। भीष्म साहनी के साम्प्रदायिक उपन्यास 'तमस' का समर्थन 'सेक्युलर' है और सलमान रुश्दी के विशाल एवं विलक्षण उपन्यास 'द सेटेनिक वर्सेज़' का 'कॉम्युनल'। क्या दोगलापन है!! यह 'प्रगति' के ठेकेदारों का असली चेहरा!! धर्मनिरपेक्षता में किसी एक मजहब को विशेषाधिकार क्यों? नागालैंड, मिज़ोरम एवं मेघालय जनपदों को राज्यों में परिणत करना ईसाइयों के तुष्टीकरण का कुपरिणाम मात्र है। यहाँ भी समस्याओं का समाधान नहीं हो सका। प्रेमचन्द का अधिकांश मुस्लिम-चित्रण प्रगतिशील नहीं माना जा सकता।

भाषा-शैली

प्रेमचन्द की भाषा उन्हीं की तरह हल्की-फुल्की और चुहल-चोंचलों से लबालब भाषा है, जो बहुत सरल-सजीव और बहुत रोचक-आकर्षक है। वे मुहावरों के बादशाह हैं। वे कहावतों के आचार्य हैं। 'प्रेमचन्द का मुहावरा-प्रयोग' एवं 'प्रेमचन्द का कहावत-प्रयोग' लघुप्रबन्ध के अच्छे विषय हैं। किन्तु उनकी भाषा में 'शेखर : एक जीवनी' का लालित्य और 'त्यागपत्र' की गहराई नहीं मिलती। वे अभिधावादी हैं, जिन्हें लक्षणा-व्यंजना से कोई ख़ास सरोकार नहीं। 'उसने कहा था' शीर्षक शुक्लाभिभूत प्रशंसात्मक निबन्ध में लघु-शुक्ल डॉ. नगेन्द्र ने प्रेमचन्द की भाषा की जो आलोचना की है वह मननीय है, भले ही शुक्ल की ही भाषा की आलोचना उन दिनों की आत्मप्रतिष्ठान की छटपटाहट से भरी त्वरा का परिणाम मात्र हो! प्रेमचन्द ने शैली में प्रयोग नहीं किए, न उसमें अतिनाटकीयता इत्यादि को ही वरीयता प्रदान की। वे अवाम के क़िस्सागो ही रहे।

आकलन

उपन्यासकार प्रेमचन्द और कहानीकार प्रेमचन्द को हिन्दी-साहित्य के इतिहास में द्विविध महत्त्व प्राप्त हैं : ऐतिहासिक एवं सृजनात्मक। ऐतिहासिक महत्त्व कई बार अभाव से भाव में चमत्कृत होने के कारण अतिरेक का वरण कर लेता है। अंग्रेज़ी में एकमात्र

उपन्यास 'द विकर ऑफ़ वेक्फ़ील्ड' लिखने पर गोल्डस्मिथ को ऐसा ही महत्त्व प्राप्त हुआ था। इस उपन्यास को सर वाल्टर स्कॉट जैसे अमर उपन्यासकार तक ने विश्व का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास बताया था, यद्यपि वह अत्यधिक-संयोगप्रधान अथवा चमत्कारिक है। रूसी के टॉलस्टॉय तो ख़ैर स्फीत कृतित्व में भी विश्व के अग्रणी उपन्यासकार हैं, किन्तु उनके 'युद्ध और शान्ति' (वार एंड पीस) को ही शान्तिकामी युग के कारण अत्यधिक प्रशस्ति प्राप्त हुई और सॉमरसेट मॉम ने इसे विश्व का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास माना। यद्यपि 'युद्ध और शान्ति' पात्रबाहुल्य एव चित्रणस्फीति में अव्यवस्थितप्राय है तथा नैपोलियन के चित्रण में महान् कलाकार तटस्थ नहीं रह पाया, तथापि यदि विश्व-साहित्य मे किसी एक उपन्यास का उल्लेख करने की बाध्यता हो तो उसी का नाम लेना पड़ेगा। तो, प्रेमचन्द को प्रथम मौलिक, व्यवस्थित एवं सोद्देश्य उपन्यासकार होने का ऐतिहासिक गौरव प्राप्त है। दूसरे, प्रेमचन्द अब भी सृजनात्मक दृष्टि से हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं—यही नहीं, विश्व में भारत के प्रतिनिधि उपन्यासकार भी हैं क्योंकि रवीन्द्र का आभिजात्य, शरद की भावुकता एवं मुंशी का अतिरंजित अतीत-चित्रण भारतीय जीवन का विराट् एवं विशद प्रतिनिधित्व नहीं कर पाता। कहानीकार प्रेमचन्द पर भी ठीक यही बातें लागू होती हैं और इस विधा में तो वे सफलतर भी हैं। भारत एवं पाकिस्तान (हिन्दी और उर्दू) में समान रूप से समादृत, भारतीय साम्यवादियों द्वारा 'अपनों' में कोई महान् कलाकार न होने के कारण न्यस्तस्वार्थपूर्ण रूप से गृहीत (साम्यवादी) पश्चिम बंगाल में विशेष—और बांग्ला-विरोध के कारण असमिया-क्षेत्रों में टैगोर पर वरीयता के साहित्येतर महत्त्व से संपृक्त) तथा पूर्व-सोवियत यूनियन एवं पूर्वी यूरोप के पूर्व-साम्यवादी देशों, चीन इत्यादि के साम्यवादी जगत् में विशेष लोकप्रिय प्रेमचन्द विश्व-कलाकार हैं। हिन्दी-साहित्य में उनका नाम सदैव अजर-अमर रहेगा।

रामदास गौड़[1]

अद्वितीय एवं सर्वांगपूर्ण 'हिन्दुत्व' एवं उत्कृष्ट 'वैज्ञानिक अद्वैतवाद' के प्रणेता, प्रामाणिक पाठशोधनयुक्त रामचरितमानस के प्रस्तोता तथा हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों के अन्यतम लेखक रामदास गौड़ (1881-1937 ई., जन्म जौनपुर, निधन वाराणसी) 'रस' एवं 'रघुपति' उपनामों से कविता भी लिखते थे। वे प्रयोग की विज्ञान परिषद् के संस्थापक थे तथा इसके मुखपत्र 'विज्ञान' के सुयोग्य सम्पादक भी। प्रयाग की 'गृहलक्ष्मी' में वे नारी-उपयोगी विषयों पर भी लगातार लिखते रहते थे। वे रसायनशास्त्र के प्रसिद्ध प्राध्यापक तो थे ही। अनेकमुख विद्वत्ता एवं निष्ठापूर्ण हिन्दीसेवा शतशः प्रणम्य है।

रामदास गौड़ धर्म, दर्शन, विज्ञान एवं साहित्य के विद्वान् होने के अतिरिक्त आदर्शवादी युग के एक उत्कृष्ट देशभक्त कवि भी थे। रूपकसम्पन्न कविता देखिए :

वंदे भारतवर्षमुदारम्।
पावन आर्यभूमि मनभावन सरसावन सुखासारम्।। हिमगिरि सेत मुकुट सन भ्राजत, सुर प्रसून बरसावत।
सरन दीप जिमि कमल चरन पर सागर पाद्य दिखावत।। धमनी सिरा मनहुँ घन सरिता बहत अमिय की धारा।....

पूर्णसिंह

'मज़दूरी और प्रेम', 'सच्ची वीरता', 'आचरण की सभ्यता', 'पवित्रता (ब्रह्मकान्ति)', 'कन्यादान या नयनों की गंगा' एवं 'अमेरिका

---

[1] यह कायस्थ थे, ब्राह्मण नहीं है (जैसाकि 'विनोद' से भी स्पष्ट है)। इन्हें पं. रामदास गौड़ पावन पांडित्य के कारण कहा जाता था, जो सर्वथा उचित था। स्वातन्त्र्य-सेनानी एवं लेखक एवं श्री आनन्दीप्रसाद माथुर से ज्ञात हुआ कि प्रसिद्ध गाँधीवादी लेखक पं. सुन्दरलाल और महान् क्रान्तिकारी पं. परमानन्द (झाँसी) भी कायस्थ थे। पं. रामप्रसाद 'बिस्मिल' ठाकुर थे। जैन-विद्वान् एवं सुखलाल एवं पं. अमृतलाल तो विख्यात हैं ही। संगीत-क्षेत्र में पं. पन्नालाल घोष, पं. हरिप्रसाद चौदसिया प्रभृति विख्यात हैं। आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः। एक अन्य रामदास वर्मा भी हुए थे, जिन्होंने लखनऊ से 'दिनकर-प्रकाश' (1883 ई.) निकाला था। 'गौड़' के प्रयोग से संगीत-शिरोमणि, साहित्य-भूषण उस्ताद पंडित नत्थाराम शर्मा गौड़ (हाथरस वाले) की याद आ जाती है, जो नौटंकी-कला के आचार्य एवं स्फीत लेखक थे। (तुलसी साहब, नत्थाराम शर्मा गौड़, काका हाथरसी, निर्भय हाथरसी, हीरालाल 'सुमन' इत्यादि हाथरस के हिन्दी-व्यक्तित्व स्मरणीय हैं।) हिन्दी अकादमी दिल्ली के एक पूर्व सचिव डॉ. रामशरण गौड़, सरकारी या राजनैतिक दबावों के बावजूद, ठीकठाक हिन्दीसेवा कर रहे हैं। अन्य 'गौड़' भी हुए हैं।

का मस्त योगी वाल्ट व्हिट्मैन' कुल 6 निबन्ध[1] लिखकर अमर निबन्धकारों की पंक्ति में प्रतिष्ठित होनेवाले अध्यापक पूर्णसिंह (1881-31 मार्च, 1931 ई.) आ. द्विवेदी एवं उनकी 'सरस्वती' की देन थे। उनका जन्म पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त के सलहड ग्राम में हुआ तथा देहान्त देहरादून में। पिता का नाम गंगाप्रसाद मिश्र था। पंजाबी-साहित्य सम्राट् भाई वीरसिंह के प्रभाव के कारण सिख हो गए थे (बाबा सुमेरसिंह के प्रभाववश हरिऔध भी सिख हो गए थे)। 'भाई' मूलतः ब्राह्मण थे; कई सिख हो गए, कई हिन्दू ही बने रहे। पूर्णसिंह के निबन्ध रस्किन, टॉल्स्टॉय, भारतीय स्वदेशी आन्दोलन (जिसकी विवृति भारतेन्दु के बलिया, बस्ती इत्यादि के भाषणों में होती है, तिलक-युग के स्वदेशी वस्तुप्रयोग के आग्रह में होती है, गाँधी-युग में तो यह विराट् रूप लेता दीखता ही है) के विचारदधि के नवनीत हैं, जो इलहामी-भाषा में प्राप्त होते हैं। आ. शुक्ल ने पूर्णसिंह की भाषा की लाक्षणिकता की बड़ी तारीफ़ की है और बेचारे डॉ. देवीशकर अवस्थी ने तो नक़ल-नक़ल में ही ''द्विवेदी-युग की नीरस निर्वैयक्तिकता'', ''द्विवेदी-युग की प्रमुख प्रवृत्ति उपदेशात्मकता तथा प्यूरिटनिज़्म'', ''आश्चर्य होता है कि गाँधी से कुछ पहले ही पूर्णसिंह ने चरखा या हाथ से बनी वस्तुओं को मशीनी उत्पादन की अपेक्षा तरज़ीह'' इत्यादि की देश-विदेश के इतिहास की ही नहीं प्रत्युत आदर्शवादी युग के साहित्य की भी वस्तुवादिता का खंडन करनेवाली 'बातें' कही हैं। क्या स्वयं द्विवेदी के 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता', 'जगद्धर भट्ट की स्तुति-कुसुमांजलि', 'महाकवि माघ का प्रभात-वर्णन' इत्यादि निबन्ध 'नीरस', 'निर्वैयक्तिक', 'उपदेशात्मक' या 'प्यूरिटन' हैं? क्या प्यूरिटन होना कलाविरोधी है? क्या प्यूरिटन मिल्टन किसी भी रोमैंटिक या अन्य 'वादी' से कम हैं? क्या बालमुकुन्द गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र एवं स्वयं पूर्णसिंह आदर्शवादी युग (द्विवेदी-युग) के ही प्रतिनिधि निबन्धकार नहीं हैं? क्या स्वदेशी गाँधी तो क्या, तिलक से भी पूर्व विद्यमान न थी? शुक्ल एवं अन्धानुवर्तियों ने विराट् इतिहास एवं स्फीत साहित्य के अपर्याप्त अध्ययन या उसके अभाव तथा 'स्थापना'-व्यामोह के द्वारा 'इतिहास' एवं साहित्य की बड़ी अवहेलना की है।

पूर्णसिंह के निबन्ध उच्चकोटि के भावात्मक-निबन्ध हैं, किन्तु वे अव्यावहारिक आदर्शवादिता, धार्मिक गल्पवादिता, अतिविस्तार, पुनरुक्ति इत्यादि के कारण सर्वथा आलोच्य भी हैं। उनके भाषा-परिष्कार के पीछे वे ऑ. द्विवेदी ही विद्यमान हैं जिनके युग पर बेतरह पिल पड़ने के रोग से साहित्येतिहास के स्वच्छ-दर्शन में व्यवधान डाले हैं।

पूर्णसिंह पर नानक इत्यादि सिख-गुरुओं के निर्धन-दलित-सेवावाद, रस्किन के यन्त्रविरोधवाद, टॉल्स्टॉय के शरीरश्रमवाद, रामतीर्थ के अद्वैतवाद (वेदान्त-दर्शन) एवं जापानी श्रमवाद का युगपत् प्रभाव तो पड़ा ही है (जो क्रमशः उनके सर्वश्रेष्ठ निबन्ध 'मज़दूरी और प्रेम' एवं 'आचरण की सभ्यता' तथा 'पवित्रता (ब्रह्मकान्ति)' निबन्धों में व्यक्त हुआ है, बुद्ध-ईसा-मंसूर इत्यादि के क्षमादयावाद-बलिदानवाद को भी सम्मान प्रदान किया गया है ('सच्ची वीरता' में); और भारतीय जीवन के पवित्र विवाह से भी वे अभिभूत हुए हैं ('कन्यादान या नयनों की गंगा' में)। वे भावविह्वल होकर लिखते हैं, जिससे उनके गद्य को पढ़कर ''गद्यं कवीनां निकषं वदंति'' का स्मरण हो आता है। उनके निबन्ध प्रेरक प्रसंगों से अपूर्ण होते हैं। किन्तु वे अतिभावुकता से नहीं बच पाते।

पुरुषोत्तमदास टंडन[2]

भारतरत्न! भारती के हेतु त्याग में अनुपम राजर्षि! राजनैतिक पावित्र्य में दुर्गम
'पुरुषोत्तम'-मास जन्म! जन्म से ही उत्तम 'दास'! संतता की मूर्ति! सेवाव्रत मात्र अलम्।

—रामप्रसाद मिश्र

भारतरत्न[3] राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन (11 अगस्त—1 जुलाई, 1962, जन्म-निधन प्रयाग) भारतीय स्वातन्त्र्य सेनानियों, देशभक्तों एवं राजनीतिज्ञों की प्रथम पंक्ति में प्रतिष्ठित होकर भी सर्वप्रथम हिन्दी के सेवक एवं उन्नायक थे। गोलोकवासी परम-सन्त देवरहा

---

[1] प्रभात शास्त्री ने 'पूर्णसिंह के निबन्ध' सम्पादित किए हैं। रामअवध शास्त्री ने 'सरदार पूर्णसिंह' ग्रन्थ लिखा है। आ. पद्मसिंह शर्मा एवं विख्यात इतिहासकार डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल ने उनके असाधारण व्यक्तित्व पर बहुत अच्छा प्रकाश डाला था। हिन्दी के कम्युनिस्ट लेखक (यथा डॉ. रामदरश सिंह) पूरनसिंह लिखते हैं जो निबन्धों एवं ग्रन्थों के प्रकाशन से भिन्न है—कई लोग 'भिन्नता' की भिनभिनाहट ही पसन्द करते हैं! हाँ, पंजाबी में सरदार पूरनसिंह चल सकता है।

[2] श्री शिवअवतार 'सरस' के शब्दों में, ''टंडन शब्द मार्तण्ड का अपभ्रंश है।'' इस नाते राजर्षि का परिवार सूर्य-वंशी माना जाता है और परिवारजन राजा टोडरमल के वंशधर भी हैं। (मासिक 'आदर्श कौमुदी' सितम्बर, 1987, पृष्ठ 7)। टंडन में मार्तण्ड का तेजस् विद्यमान था, क्षत्रिय (खत्री) का शौर्य भी।

[3] हिन्दी-प्रेमी को मन्त्री या भारतरत्न बनाना सरकार को पसन्द न था। किन्तु देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने 1961 ई. मे सदलबल प्रयाग जाकर पुरुषोत्तमदास टंडन पार्क में पहिया-कुर्सी पर लाए गए अतिरुग्ण पुरुषोत्तमदास टंडन को 'भारतरत्न' से अलंकृत किया था।

बाबा (शरीरत्याग 1990 ई.) ने उन्हें राजर्षि कहा था। महामना मदनमोहन मालवीय द्वारा स्थापित हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के प्राण राजर्षि ही थे—महामना के प्रति अगाध श्रद्धावान राजर्षि भी एक संस्थापक थे। लाला लाजपतराय के साथ राजर्षि पंजाब नेशनल बैंक के उन्नायकों में भी थे—लाल-बाल-पाल[1] की ऐतिहासिक उग्र-त्रिमूर्ति के रत्न के प्रति उन्हें बड़ी श्रद्धा थी। 1922 ई. में सम्मेलन के तेरहवें अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप में उनका भाषण राष्ट्रभक्ति-राष्ट्रभाषाभक्ति-विद्वत्ता का प्रयाग ही था जो कानपुर में प्रकट हुआ था।[2] वे और उनके प्रेरक महामना मालवीय प्रयाग में जन्मे थे : ''तहाँ अवध जहँ राम निवासू''! राजर्षि टंडन भारत के द्वितीय प्रधानमन्त्री एवं निष्कलंक नेता लालबहादुर शास्त्री के गुरु थे, जिन्होंने राजनीति के बड़े-से-बड़े पदों पर रहकर भी ''ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया'' को असाधारण रूप से चरितार्थ किया था। स्वतन्त्र भारत के सर्वाधिक सफल हरिजन-नेता एवं प्रशासक जगजीवनराम के अनुसार, टंडन पंजाबी-भाषी थे। किन्तु हिन्दी-प्रेम में उनका सानी नहीं। गाँधी की द्विलिपिवादी 'हिन्दुस्तानी' का टंडन ने विरोध किया जिसके परिणामस्वरूप गाँधी को 1945 ई. में सम्मेलन से हटना पड़ा। टंडन ने पाकिस्तान के प्रति ''शठे शाठ्यं समाचरेत्'' का प्रतिपादन किया। नेहरू हिन्दुस्तानी को राजभाषा बनाना चाहते थे। टंडन ने विरोध किया। लौहपुरुष सरदार पटेल, देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, प्रखर हिन्दी-हितैषी सांसद सेठ गोविन्ददास, हिन्दी-प्रेमी सांसद बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', विख्यविख्यात भाषाविद् एवं अमर पारिभाषिक-शब्दकोषकार डॉ. रघुवीर, हिन्दी-प्रेमी बहुभाषाविद् एवं गुजराती के महान् साहित्यकार एवं राजनीतिज्ञ कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, देशभक्त डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी इत्यादि ने संस्कृतिघाती-हिन्दीघाती 'रोमन लिपि में लिखित हिन्दुस्तानी' से राष्ट्र की रक्षा की और 14 सितम्बर, 1949 को हिन्दी भारत की राजभाषा घोषित की गई, उसे संवैधानिक महत्त्व प्राप्त हुआ। किन्तु मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने भविष्य का संकेत डॉ. रघुवीर से कर ही दिया था—तुम लोगों ने बहुमत के बल पर हिन्दी को राजभाषा बनवा तो लिया है किन्तु देखता हूँ कि अमल कैसे हो पाएगा! नेहरू वगैरह ने जी-तोड़ मेहनत करके देवनागरी अंकों को लागू नहीं होने दिया—अन्तरराष्ट्रीय अंक भारती की छाती के पीपल बनाए गए! नेहरू ने हिन्दी-विरोधियों को आश्वासन दिया : जब तक एक भी राज्य विरोध करेगा तब तक हिन्दी लागू न की जाएगी। हिन्दी-विरोधी तो इस महान् भाषा को राजनैतिक एवं राष्ट्रीय स्तर पर समाप्त ही कर डालते, किन्तु पटेल, राजेन्द्रप्रसाद, टंडन, मुंशी इत्यादि ने उनकी दुरभिसन्धि को पूर्णतः सफल नहीं होने दिया। हिन्दी-प्रतिष्ठापक के रूप में टंडन तब तक अमर रहेंगे जब तक हिन्दी है, हिन्दीपन है, हिन्द है। 'मिली-जुली संस्कृति' पर बहुत ज़ोर न देकर टंडन ने सदैव 'एक विराट् संस्कृति' का प्रतिपादन किया। पटेल, राजेन्द्रप्रसाद इत्यादि टंडन के महान् तप-त्याग का सम्मान करते थे। अतः नेहरू की इच्छा के विरुद्ध टंडन कांग्रेस-अध्यक्ष निर्वाचित किए गए। गाँधी के पौत्र राजमोहन गांधी ने 'पटेल : एक लाइफ़' ग्रन्थ में लिखा है कि टंडन की विजय को पटेल ने ''नेहरू के मुँह पर तमाचा'' (स्लैप इन जवाहरलाल्स फ़ेस) कहा था। 15 दिसम्बर, 1950 को मुम्बई मे सरदार पटेल के निधन के बाद नेहरू ने टंडन[3] से वही व्यवहार किया जो गाँधी[4] ने सुभाष के साथ किया था। टंडन ने जीवन में त्याग-ही-त्याग किया : पंजाब नेशनल बैंक की प्रधानता त्यागी, राधास्वामी सम्प्रदाय के प्रधान का पद स्वीकार नहीं किया, कांग्रेस-अध्यक्ष का पद त्यागा, अन्ततोगत्वा संसद-सदस्यता भी त्यागी—क्या आश्चर्य है कि परम विरोधी नेहरू ने दिल्ली से प्रस्थान के समय उनका चरणस्पर्श किया तथा स्वीकार किया कि अपने सुदीर्घ राजनैतिक जीवन मे ऐसा त्यागनिष्ठ व्यक्ति नहीं देखा! रुग्ण टंडन को देखने एवं चरण-वन्दन करने एक बार नेहरू, इन्दिरा और राजीव संयोगात् साथ-साथ गए; तब द्रष्टा राजर्षि ने कहा था : भारत के तीन प्रधानमन्त्रियों को एक साथ देख रहा हूँ! टंडन राजद्वेषमुक्त राजर्षि थे। किन्तु समय के पाबन्द (हास्यरसावतार जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के शब्दों में ''पुरुषों में उत्तम होने के अलावा उनका नाम ही यह प्रकट करता है कि उधर घड़ी ने किया 'टन' इधर काम हुआ 'डन' क्योंकि आप हैं टंडन) और नियमों के पक्के। जिस समय टंडन उत्तर प्रदेश विधान सभा के अध्यक्ष (स्पीकर) थे, उस समय हिन्दी-नीति को दृढ़ता

---

1. लाला लाजपतराय, बाल गंगाधर तिलक एवं विपिनचन्द्र पाल कांग्रेस के 'गरम दल' के नेता के रूप में अमर हैं। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सर फ़ीरोज़शाह मेहता, गोपालकृष्ण गोखले इत्यादि 'नरम दल' के नेता बहुमत में थे। किन्तु राष्ट्र में 'गरम दल' की धाक थी। नरमदलियों ने सूरत कांग्रेस में तिलक पर जूता फेंकवाया और उन्हें कभी कांग्रेस-अध्यक्ष नहीं बनने दिया। गाँधी गोखले के शिष्य थे।
1. अब मानस-संगम के कारण प्रयाग कानपुर में आ गया है।
2. किसी समय प्रयाग नगरपालिका के प्रधान टंडन थे, एक सदस्य नेहरू। कांग्रेसियों में टंडन के प्रति श्रद्धा थी, नेहरू के प्रति आतंक। दाक्षिणात्य सांसद प्रायः कहा करते थे कि वे टंडन की संस्कृतनिष्ठ हिन्दी समझ लेते हैं, नेहरू की उर्दू-लदी हिन्दी नहीं। टंडन हिन्दी-नायक थे।
3. रजनी पामदत्त ने लिखा है कि यदि अवसर मिलता तो गाँधी निकृष्टतम अधिनायक (द वर्स्ट डिक्टेटर) बन जाते। संयोगात्, आन्दोलनों में गाँधी 'डिक्टेटर' की पदवी ही धारण करते थे।

से लागू किया—एक बार उन्होंने तत्कालीन मन्त्री विजयलक्ष्मी पंडित (अगस्त, 1900—1 दिसम्बर, 1990) को अंग्रेज़ी बोलने पर बैठा दिया था! यही विजयलक्ष्मी पंडित जब तत्कालीन सोवियत यूनियन में राजदूत पद का परिचयपत्र अंग्रेज़ी में प्रस्तुत करने के कारण अपमानित हुईं (कहा गया कि या तो अपने या इस देश की भाषाए अपनाएँ) तब उन्होंने टंडन से ही अनुवाद का आग्रह किया था। विधान-सभा के अध्यक्ष के रूप में एक बार टंडन ने घोषणा की कि एक भी सदस्य ने उनकी निष्पक्षता पर शंका की तो वे त्यागपत्र दे देंगे। प्रधानमन्त्री (उन दिनों राज्य के मुख्यमन्त्री को भी प्रधानमन्त्री कहा जाता था) गोविन्दबल्लभ पन्त इत्यादि बहुत चिन्तत हुए, क्योंकि पंचमांगी राष्ट्रघाती मुस्लिम लीग की सदन में अच्छी शक्ति थी तथा इस देशद्रोही दल का सरगना दल का सरगना लियाक़त अली था जो बाद में पाकिस्तान का प्रथम प्रधानमन्त्री बना (जिसकी हत्या की गई)। किन्तु कुख्यात लोग एवं लियाक़त तक कभी टंडन की निष्पक्षता पर शंका नहीं कर सके! भारत का प्रथम राष्ट्रपति हो या पाकिस्तान का प्रथम प्रधानमन्त्री—टंडन के समक्ष सब नत थे! भारत का प्रथम राष्ट्रपति उन्हें अलंकृत करने प्रयाग गया था और भारत का द्वितीय प्रधानमन्त्री उनका शिष्य था।

सरकारी विरोध के बावजूद राजर्षि टंडन का पवित्र नाम अतीतगत नहीं हो सका—सरदार पटेल के सदृश (दो बार केन्द्रीय राज्य मन्त्री रहे सांसद एवं पत्रकार स्व. श्री चन्दूलाल चन्द्राकर ने मुझसे वार्तालाप में कहा था कि ये ही नेता हैं जिनके नाम आगे चलकर आदर पाएँगे)। प्रयाग, लखनऊ, दिल्ली इत्यादि में भव्य मूर्तियाँ, लखनऊ, मेरठ इत्यादि में उनसे संपृक्त हिन्दी-भवन, उत्तर प्रदेश राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय इलाहाबाद इत्यादि उनके प्रति कोटि-कोटि हिन्दीप्रेमियों एवं देशवासियों की तलस्पर्शी श्रद्धा को देखते कुछ नहीं के बराबर हैं। टंडन के कारण हिन्दी अनमिल विदेशी रोमन-लिपि एवं दोगली हिन्दुस्तानी से बच गई। वे तो अन्तरराष्ट्रीय अंकों के विरुद्ध भी लड़े थे किन्तु खेद है कि एक मत से देवनागरी-अंक रह गए! संसार को अंक-गणित (शून्य, दशमलव इत्यादि समेत) का उपहार प्रदान करनेवाले भारत (जिसे सात सौ साल पहले अमीर खुसरो ने 'नुह सिपहर' में माना था, आज 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' मानती है) से उसके अंक छीन लिए गए! देवनागरी अक्षरों के साथ अन्तरराष्ट्रीय अंक ऐसे लगते हैं जैसे धोती-कुर्ते पर टाई! तुलसी के गले पर क्रॉस लटका दिया गया है! प्रत्येक भारतवादी एवं भारतीवादी का दायित्व है कि वह देवनागरी अंकों को जीवित रखे : सिखाकर, बच्चों को सिखाकर, यथासम्भव पत्र-व्यवहार इत्यादि में प्रयोगकर।

राजर्षि टंडन हिन्दी-साहित्य सम्मेलन के प्राण, देवनागरी-लिपि में लिखित हिन्दी के राजभाषा-राष्ट्रभाषा प्रतिष्ठापक एवं हिन्दी के अन्यतम नेता मात्र न थे, 'अभ्युदय' के सम्पादक एवं 'भीष्म पितामह', 'हिन्दी साहित्यकानन' जैसे श्रेष्ठ निबन्धों के प्रणेता, प्रभावी एवं प्रेरक वक्ता इत्यादि भी थे। उनका देशभक्त-रूप भी महान् था, उनका राजनीतिज्ञ-रूप ऐतिहासिक सिद्ध हो चुका है। राजनीति में वे मालवीय एवं लाजपतराय से प्रेरित-प्रभावित हुए तथा पटेल एवं राजेन्द्रप्रसाद के मित्र थे। शत-शत लेखक एवं कवि उनसे प्रेरित हुए। कानपुर जनपद मे नरवल के निवासी कवि श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' ने 'राष्ट्रीय-पताका नमो-नमो' शीर्षक गीत लिखा, राजर्षि को सुनाया तो परामर्श प्राप्त हुआ जिसका परिणाम विख्यात झंडा-गान 'विजयी विश्व तिरंगा प्यारा' है। उनके चरणों की पवित्र छाया में विद्यानिवास मिश्र जैसे अनेक साहित्यकार पले। वे प्रयाग में ही जन्मे और रहे। सुधारवादी युग के अमर निबन्धकार बालकृष्णट भट्ट के साहित्य-शिष्य थे। आदर्शवादी युग के सूर्य आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रति उनके मन में अगाध श्रद्धा थी। 21 दिसम्बर, 1938 को रायबरेली में आचार्य की मृत्यु हुई। इससे कुछ ही पूर्व, आचार्य की गम्भीर, रुग्णावस्था में राजर्षि दर्शनार्थ पधारे और मीलित-लोचन शय्यागत आचार्य के चरणों पर मस्तक रखकर बहुत रोए! सारे स्थानीय कांग्रेसी नेता एवं स्वातन्त्र्य-सेनानी इत्यादि स्तब्ध! रायबरेली के प्रसिद्ध स्वातन्त्र्य-सेनानी, सन्तवत् पूज्य पं. रमाकान्त पांडेय ने 13 जून, 1986 को एक साहित्यिक आयोजन में मुझे बताया कि हम कांग्रेसी तो टंडनजी को ही सर्वश्रेष्ठ महापुरुष समझते थे किन्तु जब उन्हें आचार्यजी के चरणों में नत एवं अश्रुभरित देखा तब लगा कि वे कितने महान् थे! अस्तंगत आचार्य ने आँखे खोलीं। दो महापुरुषों के वे क्षण कितने मार्मिक रहे होंगे! यह भी विचित्र संयोग था कि 1938 ई. में ही पाकिस्तान के कवि-पिता डॉ. सर मोहम्मद इक़बाल मरे थे जिनके दर्शन करने नेहरू दौड़े-दौड़े लाहौर पहुँचे थे! 'संयोगात्' इक़बाल के पुरखे सप्रू (कश्मीरी पंडित) थे और नेहरू मूलतः कौल (कश्मीरी पडित)!

टंडन की कबीर, रैदास, नानक, दादू इत्यादि सन्तों के साहित्य में गहरी रुचि थी। वे कबीर का यह दोहा प्रायः उद्धृत करते थे :

सिंहन के लेंहड़े नहीं, हंसन की नहिं पाँत।
लालन की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात।।

वे प्रायः कहा करते थे, ''पैराडाइज़ लॉस्ट' का महाकवि मिल्टन हमारे कबीर के सामने बच्चा लगता है।'' संयोगात् टी. एस. इलिअॅट (एलिअॅट) ने भारत में प्राचीन दार्शनिकों की तुलना में पाश्चात्य दार्शनिकों को पीठ पर बस्ते लटकाए स्कूली बच्चे माना भी है :

बस्ते पीठों पर लटकाए स्कूली बच्चे एलिअॅट को थे लगे दार्शनिक अपने कच्चे
दर्शन नन्दन यहाँ, नहीं हैं खाई-खच्चे नहीं विषमता, बस अद्वय के भावन सच्चे।

(रामप्रसाद मिश्र)

टंडन प्रेमचन्द की प्रशंसा उनकी भारतीय संस्कृति के प्रति आस्था के कारण करते थे। सचमुच, प्रेमचन्द के पात्र, विशेषतः उनकी नारियाँ, भारतीयता की मूर्ति हैं। प्रेमचन्द अपने समग्र में आदर्शवादी कलाकार थे।

गुरु गोरखनाथ के निम्नलिखित उद्‌गार टंडन को विशेष प्रिय थे (संयोगात् वे इस उद्‌गार का साकाररूप थे) :

ऊँचे ऊँचे कूल्हे औ लम्बे-लम्बे-पेट। भई ना रे पूताँ! गुरु सों भेंट।।
खड़खड़ काया, निरमल नेत। भई रे पूताँ! गुरु सों भेंट।।

आधुनिककाल में ही नहीं प्रत्युत हिन्दी-साहित्य के समग्र इतिहास में जो कुछ गिने-चुने महापुरुष हुए हैं, उनमें पुण्यश्लोक भाररत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन भी सम्मिलित हैं, जिनके सम्यक् उल्लेख के बिना हिन्दी-भाषा एवं हिन्दी-साहित्य का वृत्त अपूर्ण रहेगा।

मुंशी अजमेरी

''भाई कृष्णदास[1], अजमेरी और सियारामशरण की प्रेरणाएँ और उनकी सहायताएँ मुझे प्राप्त हुईं तो ऐसा होना उचित ही था। स्वयं वे ही मुझे प्राप्त हुए हैं।''

(मैथिलीशरण गुप्त : 'साकेत' के 'निवेदन' में)

धार्मिक सद्‌भाव की मूर्ति एवं 'ओरछा-राजवंश', 'बुन्देलखंड-वर्णन', 'समुद्र-वर्णन', गोकुलदास', 'चित्रांगदा', इत्यादि कई छोटे-बड़े ग्रन्थों तथा विशद बालकाव्य 'रामकथा' के प्रणेता मुंशी अजमेरी (28 नवम्बर, 1881–25 मई, 1937, चिरगाँव, जनपद झाँसी) के विषय में प्रायः सारे साहित्येतिहासकार एवं कोशकार मौन हैं; केवल मिश्रबन्धु के बेजोड़ 'विनोद' में थोड़ा-सा उल्लेख मिलता है (यद्यपि जन्मकाल सं. 1935 के लगभग[2] तथा रचनाकाल सं. 1960[3] ग़लत लिखा है) जिसे यथावत् उद्धृत कर रहा हूँ : ''आप चिरगाँव, ज़िला झाँसी, निवासी, जाति के मुसलमान हैं। इनके पूर्वपुरुष भाट थे। देखकर कोई इन्हें 'अहिन्दू[4] नहीं कह सकता। आशुकवि तथा सभाचतुर हैं। दूसरों का कंठस्वर तथा वाद्ययन्त्रों के स्वर[5] सुगमतापूर्वक मुख से उतार सकते हैं। वर्तमान ओरछा-नरेश ने 50 रु. मासिक नियत कर लिए हैं, और इन्हें वहाँ साल में दो ही बार जाना पड़ता है। आपका साहित्य देशभक्तिपूर्ण, रोचक, सरस, नवविचारयुक्त, गम्भीर तथा उत्कृष्ट है। वर्तमान कवियों में आपका पद उच्च है।'' इनके पूर्वज जैसलमेर के पालीवाल ब्राह्मण थे जिन्हें 1301 ई. में मुसलमान बनना पड़ा। किन्तु संस्कार हिन्दुओं के रहे। पिता का नाम भीखाजी था जो पिंगल-परम्परा के सम्मानित कवि थे तथा चिरगाँव में आदरपूर्वक बसाए गए थे। उन्होंने इनका नाम प्रेमबिहारी रखा था। 'मुंशी अजमेरी' के रूप में विख्यात होने पर भी यह 'प्रेम' उपनाम का प्रयोग करते थे। 2 अप्रैल, 1931 को यह सपरिवार हिन्दू बन गए थे। यह धोती-कुर्ता-पगड़ी पहनते थे। मुंशी अजमेरी विलक्षण प्रतिभा से सम्पन्न व्यक्ति थे। उनकी भाषा आदर्शवादी युग में उससे आगे चली है। वे अपने उत्कृष्ट एवं संवेदनशील प्रकृतिचित्रण में भी स्वच्छन्दतावादी युग के एक अग्रदूत प्रतीत होते हैं। उन पर शोध तो हुआ है, किन्तु ग्रन्थ-प्रकाशन अपेक्षित है-सम्यक् आकलन अपेक्षित है। निस्सन्देह, वे मुकुटधर पांडेय के स्तर के कवि हैं (किन्तु पांडेयजी प्रस्थान-छायावाद-विवेचक भी थे तथा काव्य-नेता भी)।

---

1. (पद्‌मविभूषण) राय कृष्णदास जो गुप्त एवं प्रसाद के द्वितट-सेतु भी थे।
2. 1878 ई. के लगभग।
3. 1903 ई. के लगभग।
4. उस्ताद अलाउद्दीन ख़ाँ (विश्वविख्यात सितारवादक पं. रविशंकर के गुरु एवं श्वसुर जो नातिदूर मइहर के थे) का स्मरण आता है। अकबर, रहीम, रसखान, नज़ीर, छागला, किदवई और गफ़्फ़ार ख़ान की परम्परागत उदारता याद आती है। पाखंडी एवं सत्तालोभी नेताओं ने इस परम्परा को छिन्न-भिन्न कर डाला है। किन्तु वह मिट नहीं सकती। भारत का हिन्दू मुसलमान से संपृक्त है, मुसलमान हिन्दू से। भारत एक राष्ट्र है।
5. मुंशी अजमेरी कई बार गद्य को पद्य के सदृश गाकर श्रोताओं को चकित कर देते थे।

अत्यन्त प्रभावी व्यक्तित्व वाले और भारी-भरकम मुंशी अजमेरी गम्भीर होते हुए भी हास्यमूर्ति थे।[1] साहित्य एवं संगीत दोनों में निष्णात्। मैथिलीशरण एवं सियारामशरण गुप्तद्वय की उन्होंने उल्लेख्य गुप्त सहायता की थी। 1936 ई. में मैथिलीशरण के 50 वर्ष के होने (स्वर्ण-जयन्ती) पर मुंशी अजमेरी ने कानपुर के ऐतिहासिक 'प्रताप' में जो लेखमाला निकाली थी, उसे 'प्रस्थान' का गौरव प्राप्त है, जिसने सारे परिचय-लेखकों एवं जीवनीकारों को प्रभावित किया है। उनका काव्य पन्त-पूर्व का पन्त-काव्य लगता है :

> जो अपार जलराशि—सर्वदा उथल-पुथल क्यों होती है? ओ उन्मादिनि! क्या क्षण भर भी कभी नहीं तू सोती है?
> देवि! दूर से देख रहा हूँ हिल्लोलित हृदय-स्पंदन, साथ-साथ ही सुन पड़ता है कोमल कंठ करुण क्रन्दन।
> आती और लौट जाती हैं भग्न भावनाएँ तेरी, आती हैं, गिरती हैं, फिर भी करती हैं फिर-फिर फेरी।
> क्षण भर भी न छिपा रहता है उद्वेलित उर का उच्छ्वास, अश्रुधार प्रतिपल पड़ती है पैरों पर, पैरों के पास।

सनेही[2]

हिन्द-उर्दू की निकटता के पक्षधर, सहज कविता के 'सनेही' एवं ओजस्वी कविता के 'त्रिशूल', व्रजभाषा के भी सफल कवि, 'सुकवि' (1928-50 ई., कानपुर) के कविगुरु एवं कविसम्मेलन के प्रतिष्ठापक के प्रति आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', डॉ. रामदरश मिश्र, स्व. डॉ. देवीशंकर अवस्थी, डॉ. व्रजलाल वर्मा, डॉ. जगदीशनारायण त्रिपाठी, साहित्य-वाचस्पति बद्रीनारायण तिवारी इत्यादि विद्वानों, कवियों एवं साहित्य-सेवकों ने गम्भीर सम्मान व्यक्त किया है। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के एक प्रमुख शिष्य तथा स्वयं 'गुरूना गुरुः' पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' (1883-1972 ई.)[3] साहित्यकार-गर्भा उन्नाव ज़नपद की पावन भूमि के हड़हा नामक ग्राम में उत्पन्न हुए तथा निकटवर्ती कानपुर में जमे-बढ़े। 1913 ई. में प्रकाशित 'कृषक-क्रन्दन' से प्रभावित होकर आ. द्विवेदी ने उन्हें 'सरस्वती'- परिवार में सम्मिलित किया। श्री मनोहरलाल मिश्र के 'रसिकमित्र', श्री गणेशशंकर विद्यार्थी के 'प्रताप', आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी की 'सरस्वती', स्वामी नारायणानन्द की 'कवीन्द्र' एवं स्वयं उनके 'सुकवि' में उनकी राशि-राशि कविताओं का प्रकाशन हुआ। उनमें से कुछ 'करुणा-कादम्बिनी', 'कृषक-क्रन्दन', 'राष्ट्रीय मन्त्र', 'राष्ट्रीय वीणा', 'त्रिशूल-तरंग', 'कला में त्रिशूल', 'संजीवनी', 'कुसुमांजलि', 'प्रेम-पचीसी के छोटे-छोटे रूपों मे प्रकाशित हुईं एवं वर्गीकरणवादी आ. शुक्ल ने सनेही को "द्विवेदी-मंडल के बाहर की काव्यभूमि" पर खड़ा कर दिया है, किन्तु वस्तुतः एवं तत्त्वतः वे इसी मंडल के कवि हैं तथा आचार्य द्विवेदी के प्रमुख शिष्यों में रहे हैं। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके युग पर आ. शुक्ल, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र इत्यादि ने बहुत कुछ भ्रामक और निराधार लिखा है क्योंकि ये तीनों आलोचक वस्तुवादी न होकर वस्तुतः प्रभाववादी हैं; इस विषय पर डॉ. सुधीन्द्र, डॉ. श्रीकृष्णलाल, डॉ. उदयभानु सिंह, डॉ. विनयमोहन शर्मा, दिनकर इत्यादि ने श्रेष्ठतर लिखा है भले ही वह तड़कभड़कधर न हो। डॉ. रामविलास शर्मा ने प्रौढ़ावस्था में आचार्य का आकलन ठीकठाक किया है किन्तु वह दलबद्ध-सा है।

---

[1] मुंशी अजमेरी ने एक बार प्रसाद को समस्यापूर्ति हेतु दादरे की "पी लई राजा तुम्हारे संग भँगिया" पंक्ति भेजी जिसकी पूर्ति "क्वचिद् अश्लीले गुणे" (मम्मट) के मर्मी महाकवि ने "ना जानूँ कैसे सारी सरकि गई ना जानू कैसे मसकि गई अँगिया" के रूप में की (कवि-कथाकार एवं उत्कट हिन्दीसेवी श्री कैलाश 'कल्पित' कृत 'गीत-गरिमा' के 'प्राक्कथन', पृष्ठ 12 से)। मुझे लगता है, गुप्त एवं प्रसाद में अच्छी-खासी लाग-डाँट के कारण मुंशी अजमेरी ने बनारसी-रसियापन पर चुटकी लेनी चाही थी जिस पर प्रसाद ने बहुत ही ज़्यादा ज़ोरदार चोट की! बाद में प्रसाद ने गुप्त का सम्मान किया था, जैसाकि 'इन्द्रजाल' कहानीसंग्रह के समर्पण से स्पष्ट होता है। 1936 ई. में मुंशी अजमेरी गाँधी से मिलने उस समय के बीहड़ सेगाँव और आज के सेवाग्राम पहुँचे। स्थान की दुर्गमता पर व्यंग्य किया। गाँधी ने उनके एक महीने रुकने तथा पथ के साथ उनके भारी शरीर के सुधार पर 'एक पंथ दो काज' की लोकोक्ति उद्धृत की तो उत्तर मिला, "ठीक है बापू, एक महीने में तो न रोग रहेगा और न रोगी ही—'एक पंथ दो काज' हो जावेंगे।" प्रख्यात लेखक एवं स्वातन्त्र्य-सेनानी आनन्दीप्रसाद माथुर (19 मई, 1914, कानपुर, निवास दिल्ली) ने 'समर्पित व्यक्तित्व' (1992 ई.) शीर्षक महानुभावों की झलकियाँ देनेवाले पठनीय ग्रन्थ के 'मुंशी अजमेरी' लेख में इस घटना का उल्लेख किया है।

[2] राष्ट्रीय एवं ओजस्वी कविताओं में 'त्रिशूल'। श्रीनारायण चतुर्वेदी कविता में 'श्रीवर' एवं व्यंग्य-रचनाओं में 'विनोद शर्मा' का प्रयोग करते थे—'भइया साहब' और 'भइया जी' तो थे ही। किन्तु केवल कविता में दो उपनामों का प्रयोग सर्वथा उल्लेख्य है। "जिसका बल पाके बढ़ा आगे त्रिशूल, सनेही वही, हा! विभूति बिलानी" में दोनों उपनामों का प्रयोग है (आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के निधन पर)।

[3] नरेशचन्द्र चतुर्वेदी ने "गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' " ग्रन्थ लिखा है। स्व. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल ने 'सनेही-रचनावली' प्रस्तुत की है, जो हिन्दी-साहित्य सम्मेलन प्रयाग द्वारा प्रकाशित की गई—'सम्मेलन-पत्रिका' का 'गयाप्रसाद शुक्ल सनेही जन्मशती-विशेषांक' भी महत्त्वपूर्ण है। सनेही, प्रेमनारायण शुक्ल एवं नरेशचन्द्र चतुर्वेदी का सम्बन्ध कानपुर से रहा है।

यद्यपि सनेही ने राष्ट्रीय, समाजसुधारकपरक, प्रकृतिपरक एवं प्रेमपरक कविताएँ भी बहुत लिखी हैं तथापि उन्हें स्मरणीय सफलता करुणकाव्य के सृजन में ही प्राप्त हुई है।

सनेही सनेह से अधिक करुणा के कवि थे (यद्यपि स्नेह का करुणा से भी सम्बन्ध है)। मृत्युगीत या शोकगीत (एलेजी या मर्सिया) लिखने में वे बहुत ही सफल हुए हैं। वे हिन्दी के एक श्रेष्ठतम शोकगीतकार हैं। सनेही की उर्दू-कविताएँ, आ. शुक्ल के शब्दों में, ''बहुत ही अच्छी थीं'', किन्तु मुस्लिम-साम्प्रदायिकता की प्रतीक भाषा होने के कारण वह अपवादों[1] के अतिरिक्त हिन्दुओं की उपेक्षा करती है अन्यथा भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, रत्नाकर, अश्क़ इत्यादि का नाम तो लिया ही जाता। साम्प्रदायिकता-पिशाचिनी उर्दू हिन्दीपन लिए उर्दू-शायरी तक का अनादर करती है—वली, आबरू, आरज़ू, नज़ीर, साग़र निज़ामी इत्यादि के बजाय वह मीर, ग़ालिब, हाली, जिगर, जोश इत्यादि को ज़्यादा चाहती है। मुसलमान नसीम, चकबस्त, फ़िराक़ इत्यादि तक को इज़्ज़त बख़्शने से कतराते हैं। गाँधी, नेहरू, इन्दिरा, राजीव इत्यादि द्वारा साम्प्रदायिकता में भयावह वृद्धि करने के परिणामस्वरूप, सिखों ने भी पंजाबी पर पन्थ का एकाधिकार घोषित कर दिया है। पंजाबी को पन्थ की लपेट में लेने के कारण पंजाबी के कुछ हिन्दू-कवियों को जान से हाथ भी धोना पड़ा है।

स्मरणीय गुरु

सनेही की बहुत बड़ी शिष्य-मंडली में अनूप शर्मा प्रमुख रहे जिन्होंने व्रजभाषा और अवधी में तो काव्यरचना की ही, खड़ीबोली में भी 'प्रियप्रवास' की अतुकान्त शैली पर 'सिद्धार्थ' एवं 'वर्द्धमान' शीर्षक दो महाकाव्य लिखे। भावुक कवि पं. देवीप्रसाद शुक्ल 'प्रणयेश' (1909-54 ई.) उनके प्रिय शिष्य थे। अभिराम शर्मा (1909 ई.) भी उनके एक प्रसिद्ध शिष्य हैं। डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' उनके अनन्य भक्त हैं जिन्होंने 'सुकवि'-परम्परा को 'सुकवि-विनोद' द्वारा बाद तक गतिशील रखा। सनेही के प्रायः समकक्ष कवि जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' आ. द्विवेदी के साथ उनके भी शिष्य थे, यद्यपि बाद में दोनों में भारी मतभेद भी हो गए थे। एक बार हितैषी की ''भंग की तरंग में तुरंग बढ़ा जाता था'' पंक्ति पर गुरु ने ''भंग की तरंग-सा तुरंग बढ़ा जाता था'' सुधार किया था जो वस्तुतः प्रशस्य है। गुरु-शिष्य दोनों भंग की तरंग से भली-भाँति परिचित थे किन्तु गुरु का कवि-मानस अधिक सतर्क था! सनेही के परवर्ती शिष्यों में 'हितैषी' के चचेरे भाई और 'आचमन', 'अन्तर उमाह' एवं 'रस सरि तीरे' के कवि ओंकारनाथ मिश्र 'वीरेश कात्यायन' एकदम उन्हीं की शैली में उन्हीं के कवित्त-सवैये सुनाकर मन मुग्ध कर देते हैं। उन्हें देखकर भी अनुरंजन होता है, सुनकर भी। डटाडट्ट लगते हैं—गुरुवत्! निस्सन्देह, सनेही एक बहुत बड़े गुरु थे—अपने गुरु आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनन्तर अपने समय में अद्वितीय। सनेही के एक शिष्य 'श्रीमद्भगवद्गीता दोहावली' के प्रस्तोता किशोरचन्द कपूर 'किशोर' धनाढ्य होने पर भी भाँग-ठंडाई अपने हाथों से पीसकर पिलाते थे—और, यह प्रेम बीसियों वर्ष चला! सनेही-परम्परा और हितैषी-परम्परा के ध्वजवाहक, सवैया के कुशल रचनाकार तथा साहित्यिक संस्था 'विकासिका' (कानपुर) के संस्थापक विनोद त्रिपाठी का नाम लिए बिना सनेही-मंडल का इतिहास अपूर्ण रह जाएगा। उनको प्रायः 'गुरु' ही कहा जाता था।

सनेही की कविता पुरानी परिपाटी की है, जिसमें कवित्त को प्रधानता प्राप्त है। किन्तु उसमें नव्यता की भव्यता भी विद्यमान है :

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूँ, तू है महासागर अगम, मैं एक धारा क्षुद्र हूँ।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूँद समान हूँ, तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूँ।

डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने लिखा है, ''खड़ीबोली हिन्दी को काव्य-माध्यम के रूप में विकसित, पुष्ट एवं प्रसारित करने में उनका स्थान किसी भी अंश में श्रीधर पाठक, हरिऔध एवं मैथिलीशरण गुप्त से कम नहीं हैं।'' यह कथन न तो वस्तुपरक है, न उत्तरदायित्वपूर्ण। श्रीधर पाठक ने व्रजभाषा में 'हिमालय', 'कश्मीर-सुषमा' जैसी कुछ सुन्दर कविताएँ अवश्य लिखी हैं किन्तु खड़ीबोली में उनकी 'एकान्त अटन' जैसी कुछेक कविताएँ ही ऐतिहासिक कारणों से उल्लेखनीय हैं। वे सनेही जैसे स्फीत कवि की समता नहीं कर सकते। हरिऔध की महाकाव्य-प्रतिभा की समता सनेही नहीं कर सकते क्योंकि वे 'प्रस्थान' से लेकर गुणवत्ता एवं प्रभाव तक में आगे हैं। जहाँ तक मैथिलीशरण का सम्बन्ध है, उनकी विराट् प्रतिभा, स्फीत सृष्टि एवं अपार प्रभाव की समता सनेही तो क्या, हरिऔध भी नहीं कर पाते—सनेही ने स्वयं ''अब भी जिसका न कहीं कोई सानी'' (1938 ई.) कहा है!

---

[1] प्रेमचन्द बला के मुस्लिमपरस्त थे—एकदम नेहरू के अनुवाद! अतः वे पाकिस्तान तक में लोकप्रिय हैं। मुस्लिमपरस्त मुसलमानों में गुण का अनादि-अनन्त भांडार मात्र देखा जाता है; उन्हें देशभक्त, प्रगतिशील, धर्मनिरपेक्ष इत्यादि मानता है जिसके लिए हिन्दू-निन्दा अपरिहार्य है।

करुणा के कवि

सनेही करुणा के कवि हैं, जैसाकि उनकी विख्यात कविताओं 'श्रवण-शोक', 'कृषक-क्रन्दन'[1], 'बुझा हुआ दीपक', 'विधुर-विलाप', 'हा! द्विवेदी जी!' प्रभृति से ही स्पष्ट है। सनेही अपनी कविता में मुहावरों, कहावतों और अकों का अद्वितीय प्रयोग करते हैं। यमक उनका प्रिय अलंकार है। अपनी गहन शोकसंवेदना, अपने श्लिष्ट उद्‌गार एवं अपने उत्कृष्ट प्रवाह के साथ ही अपनी आमूलचूल मौलिकता के कारण भी 'हा! द्विवेदी जी!' को सनेही की सर्वोत्तम कविता माना जा सकता है। स्तरीय शब्दचयन एवं सशक्त प्रवाह की अल्पता में भी गहरे संवेदन के कारण सनेही के शोकगीत साहित्य क़ी निधि माने जा सकते हैं। सनेही हिन्दी के एक अमर शोकगीतकार, सफल राष्ट्रकाव्यकार, उल्लेख्य रहस्यकाव्यकार एवं चिरस्मरणीय कविगुरु हैं। हर्ष का विषय है कि डॉ. पवनकुमार ने 'हिन्दी-शोकगीत' का स्वतन्त्र अस्तित्व उजागर किया है तथा डॉ. रानीशंकर मिश्र ने इस दिशा में शोध किया है। साहित्य-जगत उन्हें भूला नहीं है और कानपुर-उन्नाव-लखनऊ में तो वे जीवनकालवत् विद्यमान हैं। नोइडा में 'सनेही-मंडल' सक्रिय है जिसके आधार बाबा कानपुरी लोकप्रिय हास्यकवि हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. मोहिं परैं मृग से महि मानव, तान सुरीली सुनावन लागै।
प्यावन लागै 'सनेही' सुधा, रस की बरसा बरसावन लागै।।
जीवन में नव ज्योति जगै, नव जीवन सी छवि छावन लागै।
बैठिकै मो मन-मंदिर मैं जब सारदा बीन बजावन लागै।।

2. जो भरा नहीं है भावों से, बहती जिसमें रसधार नहीं;
वह हृदय नहीं है, पत्थर है, जिसमें स्वदेश का प्यार नहीं।[2]

3. सुनाएँ किसे दुःख की हम कहानी, हमारा यहाँ कौन है दोस्त जानी।
बहुत मिल चुके हैं, बहुत ख़ाक़ छानी, लिया स्वाद क्या हमने करके किसानी।
नहीं कटते दिन, पेट हम काटते हैं, खुशी बोते हैं हाय! ग़म काटते हैं!
('आर्त कृषक' से)

4. करने चले तंग पतंग जला कर, मिट्टी से मिट्टी मिला चुका हूँ।
तम तोम का काम तमाम किया, दुनियाँ को प्रकाश दिखा चुका हूँ।।
नहीं चाह सनेही सनेह की और, सनेह में जी मैं जला चुका हूँ।
बुझने का मुझे कुछ दुःख नहीं, पथ सैकड़ों को दिखला चुका हूँ।।
('बुझा हुआ दीपक' से)

5. चाहिए था जिसको कि उम्रे ज़ाविदानी मिले फ़ानी दुनियाँ में वही फ़ानी हाय! हो जाए।
पत्थर को पानी करने का जिनमें था दम, ऐसी व्याधि आई वही पानी हाय! हो गए।।[3]
मौत नागहानी से किसी का कुछ चारा नहीं, छोड़ यह जहाँ आँजहानी हाय! हो गए।
जिन प्रेमचन्द की कहानी चले घर-घर, वही प्रेमचन्द जी कहजी हाय! हो गए।

---

[1] उनके गुरुभाई मैथिलीशरण गुप्त ने भी 'किसान' लिखा था। किन्तु वह प्रवासी भारतीयों की व्यथा को विवृत करनेवाला खंडकाव्य है। सनेही हड़हा के पंचायत-नेता भी थे। वे कृषक की रग-रग से परिचित थे। धोती-कुर्ता-संदरी वगैरह की वेशभूषा में वे 'ठेठ' कृषक लगते भी थे!

[2] कानपुर के राष्ट्रीय कवियों में 'पूर्ण' (मुर्दा है वह देश जहाँ साहित्य नहीं है), सनेही, हितैषी, नवीन, श्यामलाल गुप्त 'पार्षद' (झंडा ऊँचा रहे हमारा), छैलविहारी दीक्षित 'कंटक' (वेदी पर शीश चढ़ाएँगे, ज़ालिम सरकार मिटाएँगे) इत्यादि तो अग्रणी हैं ही, 'प्रताप' को सूत्र प्रदान करनेवाले महतोमहीयान् गुरु आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी भी समाहित हैं :

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है
वह नर नहीं नरपशु निरा है और मृतक समान है।

(उक्त पंक्तियों को मैथिलीशरण या सनेही की माननेवाले ग़लत हैं।) 'राष्ट्रीय कविता में कानपुर का योगदान' शोध का विषय है।

[3] 8 अक्टूबर, 1936 को काशी में प्रेमचन्द का देहान्त जलोदर रोग के कारण हुआ। जलोदर रोग से ही आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं निराला की भी मृत्यु हुई।

6.

हा द्विवेदी जी!

एक ही भारती भक्त का भावुक, राष्ट्र की भाषा का सच्चा पयंबर।
विराता में विधि दूसरा था, तप-त्याग-विराग में जैसे दिगंबर।।
बारहबाट किया अड़तीस ने, आ गया नंदन जाने का नंबर।
तूने दसों किया, तू थी उन्नीस, तो क्यों बनी थी तू इक्कीस दिसंबर।।[1]

स्वत्व का तत्त्व-महत्त्व जताकर, जीवन-युद्ध में जान पै खेले।
संपदा की परवाह न की, विपदाएँ सहीं, दुख शान से झेले।।
क्या कहिए गुरुता उनकी गुरु के गुरु हैं जिनके हुए चेले।
मेले लगे जिन्हें देखने को सुरलोक गए वही हाय! अकेले।।[2]

सुरलोक में है, इस लोक में भी, उनके यश की है पताका गड़ी।
जनता को जगा गए, दे गए जोश, जता गए जीवन की हैं जड़ी।।
वचनावली में वे सरस्वती[3] को हैं पिन्हा गए मोतियों की सी लड़ी।
उनके ही वियोग में रोती पड़ी जिनके बल से हुई हिन्दी खड़ी[4]।।

जिसकी 'महावीरता' शंकरजी[5] ने 'सरस्वती' के मिस से थी बखानी।
जिसका वर पाके 'गणेश'[6] गणेश हुए थे, 'प्रताप'[7] ध्वजा जग में फहरानी।।
जिसने कि पता दिया 'मैथिली'[8] का, अब भी जिसका न कहीं कोई सानी।
जिसका बल पाके बढ़ा आगे 'त्रिशूल', 'सनेही' वही हा! विभूति बिलानी।।

सुध आती है तो फटता उर है, पहरों लगी अश्रु झड़ी रहती है।
उनके प्रिय व्यंग-विनोद को सोच के शोक-घटा उमड़ी रहती है।।
लिखें तो भी दिखाएँ-सुनाएँ किसे, बस लेखनी मौन पड़ी रहती है।
सुरलोक से प्रेरणा देंगे हमें, यही सामने आशा खड़ी रहती है।।

7.

दहेज की कुप्रथा[9]

पत्थर के दिल हुए हमारे, नहीं पिघलते। कन्यायें थक रहीं आग में जलते-जलते।।
शुष्क हृदय हैं हाय! अश्रु भी नहीं निकलते। हम ऐसे खल हुए, नहीं ऐसे दुख खलते।।
पाती पावन प्रेम, प्राण-प्यारे फल फलती। क्यों तनाग्नि में स्नेहलता सीतल तिल जतली।।

---

2. आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी का देहान्त 21 दिसम्बर, 1938 को रायबरेली में हुआ।
3. 1933 ई. में प्रयाग का द्विवेदी-मेला हिन्दी-साहित्येतिहास की अकेली घटना है।
4. 'सरस्वती' (प्रयाग) के सम्पादक के रूप में आचार्य ने इतिहास गढ़ा।
5. महावीरप्रसाद द्विवेदी खड़ीबोली-कविता के आचार्य हैं।
6. नाथूराम शर्मा 'शकंर' ने 'सरस्वती' मे आचार्य की प्रशस्ति की थी।
7. अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी।
8. विद्यार्थी जी ने 'प्रताप' के प्रतापी सम्पादक के रूप में इतिहास रचा।
9. मैथिलीशरण गुप्त आचार्य के पट्ट-शिष्य हैं।
10. आदर्शवादी युग में किसान, अछूत, विधवा, विवाहरूढ़िविरोध, दहेज इत्यादि पर प्रभूत काव्यसृजन इस युग के सच्चे प्रगतिशील एवं उन्नत होने का प्रमाण है, जिसे अनेक विजातीयतावादी प्रगति के ठेकेदार स्वार्थवश या अज्ञानवश नकारते हैं।

यह दहेज की आग सुवंशी[1] ने दहकाई प्रलय वह्नि-सी वही आज चारों दिशि धाई।।
घर उजाड़ वन बना रही, कर रही सफ़ाई। ताप रहे हम मुदित, समझते होली आई।।
ख़बर न इसकी हमें, ख़ूब ही धूल उड़ेगी। विकट लपट कर भस्म हमें आमूल उड़ेगी।
स्वत्व-स्वत्व चिल्लायें न घर हम अपना देखें। रहें झोपड़ी मध्य महल का सपना देखें।।
वज्र हृदय हो जाय न द्रवै, विलपना देखें। कन्याओं का तापपुंज में तपना देखें।।
हों असभ्य या सभ्य कहीं यों अधम न होंगे। महादुष्ट हों, किंतु कहीं यों अधम न होंगे।
शिक्षित भी बन गये, सभ्य भी हैं कहलाते। बने सुधारक कभी सभापति भी बन जाते।।
करते हुए कुकृत्य नहीं जी में शरमाते। हो जो पुत्र विवाह हज़ारों की ठहराते।।
मिले मुनासिब मोल तभी होते हैं राज़ी। तुर्की कोई पुत्र बना कोई है ताजी।।
धन्य धन्य है धन्य परस्पर नाता ऐसा। और देश में प्रेम पंथ कब भाता ऐसा।।
गिना चलें व्यवहार खोल कर खाता ऐसा। किससे यों कुल नियम निबाहा जाता ऐसा।।
शक्ति और तो हाय न हममें खाक़ रही है। कटती जिससे नाक उसी में नाक रही है।।
अड़ी कहाँ इस दुष्ट प्रथा की टाँग नहीं है। द्रव्य छोड़कर और गुणों की माँग नहीं है।
घर का यह है हाल कि भूनी भाँग नहीं है। 'आर्म्स एक्ट' से हाय घरों में साँग नहीं है।।
पति से मिलता नहीं उसी से मिलता सीना। कन्याओं का हाय न होता दुर्लभ जीना।।
कहते हैं सब लोग जवानी दीवानी है। देखें क्या-क्या हाय व्यथा सिर पर आनी है।।
अन्धी इनमें नहीं न तो कोई कानी है। फिर भी दुष्ट दहेज प्रथा से हैरानी है।।
दीनबन्धु! अब एक आसरा रहा तुम्हारा। कर दो हा, हा नाथ! किसी विधि से निपटारा।।
या तो करके कृपा कुलीनों में कन्यायें। दयासिंधु! दुखदलन! न यहाँ पर जन्मावें।।
जन्में तो दो-चार वर्ष ही में मर जावें। सहने को वो व्यथा जवान न होने पावें।।
या युवकों के चित्त मध्य यह बात बिठा दें। वे दहेज की महा घृणित दुष्प्रथा उठा दें।।

(रचनाकाल 1914 ई.)

गुलेरी

'सुखमय जीवन', 'बुद्धू का काँटा' और, सबसे बढ़कर 'उसने कहा था' (सरस्वती, जून, 1915) शीर्षक तीन कहानियाँ, 'कछुवा धरम' और 'मारेसि मोहि कुठाउँ' शीर्षक दो हास्यनिबन्ध, 'जयसिंह काव्य', 'पृथ्वीराज-विजय महाकाव्य' और, सबसे बढ़कर, 'पुरानी हिन्दी' शीर्षक तीन शोधनिबन्धों—विशेषतः 'उसने कहा था'—के बल पर हिन्दी साहित्य के इतिहास में अपनी एक अलग पहचान बना पाने में समर्थ पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी (1883-1920 ई., जन्मस्थान जयपुर, मूलस्थान हिमाचल प्रदेश के काँगड़ा जिले में स्थित गुलेर) एक बहुत ही भाग्यशाली साहित्यकार थे, जिन्हें बहुत थोड़ा लिखने पर भी बहुत बड़ी ख्याति मिली है, जिसका प्रमुख कारण उनके मित्र एवं तरंगवादी आलोचक आ. रामचन्द्र शुक्ल का 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' है, जिसमें 'उसने कहा था' की तिहाई-पृष्ठ तथा 'कछुवा धरम' एवं 'मारेसि मोहिं कुठाउँ' की चार पृष्ठों में सोदाहरण तारीफ़ तो की ही गई है, अन्यत्र भी यथास्थान सादर चर्चा प्राप्त होती है (इतना 'स्पेस' आ. द्विवेदी, आ. श्यामसुन्दरदास, प्रेमचन्द जैसे शीर्षस्थ गद्यकारों तक को नहीं 'दिया' गया, मिश्रबन्धु से तो ख़ैर 'चलती' ही थी अतः लगभग 'ब्लैक-ऑउट' और महादेवी को आधा पृष्ठ—यह है वह 'इतिहास' जिसकी हम पूजा करते आ रहे हैं)! मेयो कॉलेज अजमेर के भूतपूर्व अध्यापक एवं ओरिएंटल कॉलेज (बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी) के प्राचार्य, संस्कृत एवं अंग्रेज़ी के भी विद्वान् गुलेरी से शुक्ल सर्वतः अभिभूत हो गए थे। डॉ. नगेन्द्र (एक प्रमुख शुक्लोपजीवी आलोचक) ने भी 'उसने कहा था' ('विचार और अनुभूति' का एक निबन्ध) में 'उसने कहा था' की भरपेट वकालत की है। इस कहानी में पहले एक गीत भी था जिसे फ़ौज़ी

---

[1] उत्तम वंश वालों।

गाते थे। इसे बाद में अश्लीलता तथा पाठ्यक्रम-समावेश के कारणों से हटा दिया गया।[1] 'उसने कहा था' की प्रशस्ति एक रूढ़ि बन गई है। केवल एक आ. नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'आधुनिक साहित्य' में इस कहानी पर भारी-भरकम होने का आरोप लगाते हुए इसे 'नॉवेलेट' जैसी कृति बताया है। आ. क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने मुझे बताया था कि 'उसने कहा था' प्रथम विश्व-युद्ध (1914-19 ई.) काल की एक पाश्चात्य युद्धकथा का छायानुवाद है। पाश्चात्य युद्धकथा एवं चलचित्र से वह हूबहू मिलती भी है। मुझे यह कहानी घोर-आदर्शवादी लगती है, जबकि शुक्ल इसके 'पक्के यथार्थवाद' (सामान्य बाल-परिचय तथा कालान्तर में उसी के आधार पर नायक का नायिका के पति एवं पुत्र की रक्षा मे बलिदान) पर 'मोहित' थे! 'उसने कहा था' में न तो 'कफ़न' और 'ईदग़ाह' (प्रेमचन्द) का यथार्थपरक चित्रण प्राप्त होता है, न 'आकाशदीप' और 'पुरस्कार' (प्रसाद) की स्वच्छन्द कला। निस्सन्देह अपनी अनूठी भाषा, अपने सजीव देशकालचित्रण एवं अपनी बलिदानवृत्ति में 'उसने कहा था' एक विश्वस्तरीय महान् कहानी है, किन्तु उसकी विवादास्पद मौलिकता, उसका भारीभरकमपन एवं उसका अत्यादर्शवाद भी सर्वथा विवेच्य हैं तथा शुक्ल का 'अपने' इतिहास की विषयसूची में उसे 'हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानी' कह मारना नितान्त अनुत्तरदायित्वपूर्ण एवं भ्रामक है। किसी को आसमान पर चढ़ाना और किसी को पाताल में धकेलना आलोचना नहीं है। इसी प्रकार, गुलेरी के विद्वत्तापूर्ण हास्यनिबन्ध उत्कृष्ट तो हैं किन्तु वे प्रतापनारायण मिश्र के 'दाँत' या 'आप' के स्तर के नहीं हैं क्योंकि सृजन अल्प है, विचार अधिक। गुलेरी मिश्र से प्रभावित भी हैं।

वास्तव में गुलेरी ने 7 कहानियाँ तथा 17 लघुकथाएँ लिखी थीं। लघुकथा वेद, उपनिषद्, ईसप इत्यादि से जुड़ी एक प्राचीन विधा है। गुलेरी की 7 कहानियाँ है : घंटाघर, धर्मपरायण रीछ, सुकन्या, सुखमय जीवन, बुद्धू का काँटा, उसने कहा था, हीरे का हीरा। उनकी 17 लघुकथाएँ हैं : महर्षि, बन्दर, पोपदेव, कर्ण का क्रोध, साँप का वरदान, भूगोल, पाठशाला, शक्कर का चूर्ण, स्त्री का विश्वास, बकरे का स्वर्ग, विद्या से दुःख, जन्मान्तर कथा, कुमारी प्रियंकारी, बरक़्क़त, राजा की नीयत, न्यायरथ, न्यायघंटा। 'गुलेरी-साहित्य के खोजीराम' डॉ. मनोहरलाल को समर्पित तथा बलराम द्वारा सम्पादित 'बुद्धू का काँटा' (1992 ई.) पुस्तक में ये सब उपलब्ध हैं।

डॉ. विष्णु 'पंकज' (संयोगात् जयपुर के ही) 'हिन्दी-इंटरव्यू : उद्भव और विकास' में प्रचलित विधा-जनक बनारसीदास चतुर्वेदी के स्थान पर सितम्बर, 1905 के 'समालोचक' (जयपुर) में प्रकाशित 'संगीत की धुन : एक संवाद' के आधार पर चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को विधा-जनक का गौरव प्रदान करते हैं, जो अवश्य मननीय है।

निस्सन्देह , गुलेरी एक बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न गद्यकार थे : कहानीकार, निबन्धकार, भेंटवार्ताकार, विद्वान् शोधकार; किन्तु उनकी रचनाएँ विधाओं में बिखर भी गई हैं तथा किसी भी एक विधा में वे कोई निर्णायक महत्त्व नहीं बना गए।

रामचन्द्र[2] शुक्ल

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (1884[3]-1941[4] ई.) को प्रायः निर्विवाद रूप से हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ आलोचक भी माना जाता है, सर्वश्रेष्ठ निवन्धकार भी। जैसे प्रेमचन्द उपन्यास एवं कहानी की विधाओं के सम्राट् हैं, वैसे रामचन्द्र शुक्ल आलोचना और निबन्ध की दो विधाओं के। उनके जन्मस्थान अगोना (बस्ती) तथा बस्ती में स्मरण जीवन्त हैं। वाराणसी में जहाँ उन्होंने साधना की तथा प्राण त्यागे, उनके

---

1. 'साहित्य-चिन्तन' (डॉ. भगवतशरण अग्रवाल), 2002 ई., पृष्ठ 80
2. कवि रामचन्द्र शुक्ल 'सरस', आ. रामचन्द्र शुक्ल, पूर्व न्यायाधीश कवि रामचन्द्र शुक्ल (रायबरेली), 'सागर, सरिता और अकाल' के उपन्यासकार रामचन्द्र तिवारी, डॉ. रामचन्द्र तिवारी, डॉ. रामचन्द्र मिश्र, 'ओ मेरे मन' के कवि रामचन्द्र तिवारी प्रभृति से स्पष्ट है कि रामचन्द्रों ने हिन्दी की बड़ी सेवा की है!
3. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल द्वारा सम्पादित 'सम्मेलन-पत्रिका' के स्फीत 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जन्मशती विशेषांक' में विक्रम संवत् 1940 में जन्म होना लिखा है और जिस लेख में यह लिखा है वह (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जीवनवृत्त एवं संस्मरण) स्वयं आचार्य के पुत्र श्री केशवचन्द्र शुक्ल का है। यह ग़लत है। डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी द्वारा सम्पादित 'रामचन्द्र शुक्ल' ग्रन्थ के श्री रमापति शुक्ल द्वारा लिखित 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' शीर्षक लेखक में जन्मतिथि अश्विन पूर्णिमा सं. 1941 (4 अक्टूबर, 1884) दी गई है। डॉ. पवनकुमार कृत 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : एक अध्ययन' में जन्मतिथि 4 अक्टूबर, 1884 ही दी है। यह ठीक है। बाल्यकाल में मैंने आचार्य श्यामसुन्दरदास-सम्पादित 'हिन्दी-गद्य-कुसुमावली' में जन्मसंवत् 1941 ही पढ़ा था। आश्विन पूर्णिमा निर्विवाद है। अतः जन्म 1884 ई. लिखना ठीक लगता है। जन्म-शताब्दी उत्सव भी 1984 में हुए थे।
4. हिन्दी-साहित्य कोश भाग 2 (डॉ. धीरेन्द्र वर्मा) में 1940 ई. दिया है जो ग़लत है। रामचन्द्र शुक्ल (सं. श्री सुरेशचन्द्र त्यागी) में श्री रमापति शुक्ल के आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' लेख में निधन 2 फरवरी, 1941 दिया है जो ठीक है। देहान्त 1997 वि. के अन्त में हुआ। पूस-माघ से ही नया ई. सन् लग जाता है। आचार्य का जीवनकाल 4-10-1884 से 2-2-1941 का रहा।

नाम पर मार्ग, भजन वाले चौराहे पर आवक्ष प्रतिमा, रामचन्द्र शुक्ल शोध संस्थान, रामचन्द्र शुक्ल सभागार प्रभृति उनकी प्रतिभा का उचित सम्मान करते हैं। कानपुर में डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल ने आचार्य शुक्ल साधना सदन चलाया था।

यद्यपि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने प्रभूत गद्य-पद्य-अनुवादकार्य किया है, बड़ी संख्या में नानापत्रपत्रिका-प्रकाशनार्थ लेख-निबन्धादि लिखे हैं, जिनका विवरण सम्मेलन पत्रिका के स्व. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल द्वारा सम्पादित 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जन्मशती विशेषांक' ग्रन्थ के श्री उदयभानु दुबे कृत 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की रचना-सूची (कालक्रमानुसार' एवं श्री सुरेशचन्द्र त्यागी द्वारा सम्पादित 'रामचन्द्र शुक्ल' ग्रन्थ के अन्त में दिए गए 'शुक्ल-सन्दर्भ' (इसमें शुक्ल-विषयक साहित्य का विवरण भी है) में देखा जा सकता है तथापि उनका प्रभावी एवं विशिष्ट कृतित्व 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', 'गोस्वामी तुलसीदास', 'जायसी-ग्रन्थावली' की भूमिका एवं 'चिन्तामणि' (विशेषतः प्रथम भाग जिसमें सत्रह निबन्ध हैं तथा सामान्यतः द्वितीय भाग[1] जिसमें तीन महानिबन्ध हैं) में ही प्राप्त होता है। शुक्ल पर श्री शिवनाथ कृत प्रस्थान-ग्रन्थ 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' के अतिरिक्त डॉ. जयचन्द्र राय कृत ग्रन्थ-द्वय 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : सिद्धान्त और साहित्य' एव 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और उनका साहित्य', डॉ. गुलाबराय एवं डॉ. विजयेन्द्र स्नातक सम्पादित 'आलोचक रामचन्द्र शुक्ल', डॉ. नगेन्द्र कृत 'भारतीय समीक्षा और आचार्य शुक्ल की काव्य-दृष्टि' प्रभृति ग्रन्थ अच्छे स्तर के हैं, किन्तु इनमें आलोचक के सत्य के उद्घाटन के कठोर दायित्व का निर्वाह दृष्टिगोचर नहीं हो पाता जिसका कारण महान् आचार्य का आतंक है।[2] और, हम आतंकवादी विश्व में जी रहे हैं। आलोचक आचार्य शुक्ल साहित्य में जायसी के प्रतिष्ठापक, घनआनन्द के वाहक, तुलसी के व्याख्याता, शास्त्रवाद-लोकमंगलवाद के प्रतिपादक, प्रभाववाद-अभिव्यंजनावाद-कलावाद के प्रत्याख्यानक, रहस्यवाद के विरोधी प्रभृति रूपों में हिन्दी में अमर रहेंगे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी विवादास्पद स्थापनाओं एवं त्रुटियों इत्यादि पर प्रकाश न डाला जाए। विकास सभ्यता की पहचान है, संस्कृति का जीवन है, साहित्य की आत्मा है।

सैद्धान्तिक रूप से आचार्य शुक्ल शास्त्रवादी एव लोकमंगलवादी हैं। उनका शास्त्रवाद रस-अलंकार-छन्द-शब्दशास्त्र इत्यादि समग्र तत्त्वों का यथास्थान आकलन करते हुए भी मूलतः रसवादी है। उनका लोकमंगलवाद शक्ति, शील और सौन्दर्य की स्फीति से निष्पन्न होते हुए भी मूलतः पौराणिक है। वे साधारणीकरण के समर्थक तथा व्यक्तिवैचित्र्यवाद, अभिव्यंजनावाद एवं रहस्यवाद के विरोधी हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' एक अमर ग्रन्थ माना जाता है। किन्तु यह न भूलना चाहिए कि यह उस महान् 'हिन्दी-शब्दसागर' की भूमिका का विकसित रूप है जिसके सम्पादक-मंडल में प्रधान आचार्य श्यामसुन्दरदास थे तथा अन्य सम्पादक बालकृष्ण भट्ट, भगवानदीन 'दीन', अमीरसिंह, जगमोहन वर्मा, रामचन्द्र वर्मा एवं रामचन्द्र शुक्ल थे, जिसके 1929 ई. में प्रकाशन पर लेखन-सम्बन्धी कटु विवाद उठा था, पाँच दशकों के बाद (1978 ई.) भी डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास' में इस विवाद को कालातीत नहीं माना और विशेष रूप से आचार्य श्यामसुन्दरदास के योगदान को प्रमाणित किया है। हिन्दी में सामूहिक कृतित्व पर एकाधिकार की परिपाटी के प्रवर्तक आचार्य शुक्ल ही थे। जिस 'विकसित' संसार में विद्वानों, अधिकारियों एवं सचिवों के लिखे भाषण भाषणकर्ताओं के माने जाते हों, उसमें मत्स्य-न्याय एक कठोर सत्य है। परिणाम यह हुआ कि अगले वर्षों में ही आचार्य श्यामसुन्दरदास कृत 'हिन्दी भाषा और साहित्य', महाकवि हरिऔध कृत 'हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास', डॉ. सूर्यकान्त शास्त्री कृत 'हिन्दी-साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' एवं डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ प्रकाश में आए, जिससे सामूहिक स्थापनाएँ वैयक्तिक न मान ली जाएँ, किन्तु तब तक आचार्य शुक्ल, उनके अनुजों, पुत्रों, शिष्यों, भक्तों इत्यादि के सम्मिलित प्रयत्नों के कारण देर हो चुकी थी! बाद में भी शुक्ल शिष्यों की सामग्री का मनमाना वैयक्तिक प्रयोग करते रहे जिसके परिणामस्वरूप उनके एक प्रमुख शिष्य आलोचकप्रवर पंडित कृष्णशंकर शुक्ल से कटु विवाद भी हुआ और शिष्य ने 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास' प्रथम संस्करण की गुरु की भूमिका हटा दी, जो इस दृष्टि से भी समीचीन था कि इसमें कालपरक-साहित्येतिहास-लेखन का प्रतिपादन करते हुए आचार्य ने समग्रपरक इतिहासों को 'देखादेखी' लिखा गया घोषित किया था अर्थात् श्यामसुन्दरदास इत्यादि के अमूल्य इतिहासों पर प्रहार किया था। 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' (1800 ई. से) के प्रख्यात

---

[1] इसका सम्पादन आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने किया है, जिन्होंने रस-मीमांसा का सम्पादन भी किया।

[2] 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : व्यक्ति, आलोचक, निबन्धकार' (1983 एवं 1986 में पृथक्-पृथक् प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित) शीर्षक एक लघुग्रन्थ मैंने भी लिखा है जो बृहत् 'आलोचना-सागर' का एक अंग भी है।

कोशकार आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने श्री रामचन्द्र शुक्ल नामक कवि कृत 'अछूत की आह' शीर्षक अपने समय की एक प्रसिद्ध कविता को आचार्य शुक्ल द्वारा 'जीमते रहने' की कई बार चर्चा की है, यद्यपि मूल त्रुटि श्री रामनरेश त्रिपाठी ने की थी। शुक्ल अपने ग्रन्थ के प्रतिष्ठापनार्थ आधारग्रन्थकारों का अवमूल्यन एवं अपमान करना भी आवश्यक समझते थे, जैसाकि उनके मिश्रबन्धु (श्री गणेशबिहारी मिश्र, रावराजा साहित्यवाचस्पति डॉ. श्यामबिहारी मिश्र एवं रायबहादुर साहित्यवाचस्पति डॉ. शुकदेवबिहारी मिश्र) एवं उनके अमर ग्रन्थ 'विनोद' पर प्रहारों से स्पष्ट है। सभी अध्येता जानते हैं कि शुक्ल का 'इतिहास' अपने कालों के नामकरण एवं सामग्री-संकलन में 'विनोद' पर आश्रित है। 'रासोकाल' एवं 'वीरगाथाकाल', 'सौरकाल-तुलसीकालादि' एवं 'भक्तिकाल' तथा 'अलंकृतकाल' एवं 'रीतिकाल' कोई मूलभूत अन्तर नहीं रखते। 'भारतेन्दु-काल' तो ज्यों-का-त्यों गृहीत है। शुक्ल ने कविवृत्त एवं काव्योदाहरण प्रायः मिश्रबन्धु से ही लिए हैं। सामग्री की दृष्टि से 'विनोद' आज भी 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' से अधिक मूल्यवान ग्रन्थ है। आचार्य चतुरसेन शास्त्री, आचार्य ललिताप्रसाद सुकुल, प्राचर्य डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र[1], डॉ किशोरीलाल गुप्त, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक प्रभृति विद्वानों ने मिश्रबन्धु को न्याय प्रदान करने की दिशा में जो कार्य किया है, वह वस्तुपरक है। मिश्रबन्धु हिन्दी के 'प्रथम' महान् आलोचक थे। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक लिखते हैं, ''हिन्दी साहित्य के इतिहास-लेखन की परम्परा लगभग एक शताब्दी पुरानी है, किन्तु हिन्दी भाषा के माध्यम से सही तरीके से लिखा गया इतिहास मिश्रबन्धु का 'विनोद' ही है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सुप्रसिद्ध इतिहास की इतिवृत्तात्मक सामग्री भी मिश्रबन्धु-विनोद से ही ग्रहण की गई है।....काल-विभाजन और प्रवृत्ति-निर्धारण की दृष्टि से उनके इतिहास में विशेष मौलिकता लक्षित नहीं होती।''[2]

जहाँ तक आचार्य शुक्ल के काल-निर्धारण का सम्बन्ध है वह न तो इतिहाससम्मत है, न इतिहासबोधसम्मत। वह स्वखंडनात्मक एवं अतिसंकीर्ण भी है। उसके प्रभाव के कारण हमारा साहित्येतिहासबोध प्रतिगामिता एवं संकीर्णता का आखेट हो गया है। 'वीरगाथाकाल' नामकरण स्वयं शुक्ल द्वारा रासो-काव्यों के भट्ट-भणंत और कपोल-कल्पित मानने से ही कट जाता है। दूसरे, केवल दो रासोकाव्य पृथ्वीराजरासो एवं वीसलदेवरासो प्राप्त होते हैं तथा इनकी प्रामाणिकता नितान्त विवादास्पद है। दो अप्रामाणिक अथवा भट्ट-भणंत रासोकाव्यों के आधार पर किसी-न-किसी रूप में उपलब्ध स्फीत एवं प्रभावी सिद्ध-नाथ-जैन एवं खुसरो-दाऊद-विद्यापति काव्य की उपेक्षा न्यायसंगत कैसे मानी जा सकती है? एक ओर शुक्ल सिद्ध-नाथ-जैन काव्य को सैद्धान्तिक कहकर अपने शुद्ध साहित्य के अजिर से निष्कासित करते हैं तथा दूसरी ओर पुनः अपना ही खंडन करते हुए उनका विवेचन भी। यदि वीरगाथाकाल नामकरण रासोकाव्यों के आधार पर किया गया है तो मिश्रबन्धु का रासोकाल नामकरण अधिक सार्थक, सरल एवं ग्राह्य है। उपयुक्ततर नामकरण होने पर नए नाम की क्या आवश्यकता? ऐतिहासिक दृष्टि से भी उस सर्वग्रासी पतनकाल को वीरगाथाकाल कहना समीचीन नहीं है। संसार-साहित्य के अनेकानेक वीरगाथाकाल नामकरण साक्षी हैं कि उनका सम्बन्ध विजेताओं से रहा है, सोद्देश्य योद्धाओं से रहा है, आपस में बिना तुक के युद्ध करनेवालों, विवाह के लिए जूझनेवाली फूट से ग्रस्त होकर विदेशियों द्वारा परास्त किए जानेवाले पतनकारी तत्त्वों से नहीं। मेरे विनम्र मत से रास, रासक, रासउ, रासो इत्यादि शब्दों में उतना अधिक अन्तर नहीं है जितना वीसलदेवरास और पृथ्वीराजरासउ के विद्वान् सम्पादक डॉ. माताप्रसाद गुप्त मानते हैं तथा ये सारे शब्द शृंगारमूलक भी हैं, शृंगारव्यंजक भी, जैसाकि सन्देशरासक, पृथ्वीराजरासो, वीसलदेवरासो और रासपंचाध्यायी तक देखा जा सकता है। रास या रासो शब्द के प्रयोग द्वारा कवि अपने चरितनायक की शृंगारिकता को लीला जैसा एक दार्शनिक गौरव प्रदान करते हैं, उसे कहीं सूफ़ियाना अन्दाज़ से सजाते हैं, कहीं शौर्येश्वर्य से, कहीं भक्ति से। रासो शब्द की शृंगारमूलकता वीरगाथाकाल का विपर्यय घोषित करती है। पृथ्वीराजरासो एवं वीसलदेवरासो अपने अभिधान के अनुरूप शृंगाररसप्रधान काव्य हैं। निस्सन्देह, वीरगाथाकाल नामकरण निराधार भी है, आत्मविरोधग्रस्त भी, भ्रामक भी। सुदीर्घ चिन्तन के अनन्तर, 1962-63 में लिखित एवं 1967 ई. में 'हिन्दी-साहित्य का नवीन इतिहास' तथा 1985 ई. में संशोधित 'हिन्दी-साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' रूपों में प्रकाशित ग्रन्थ में मैंने इस काल के विभिन्न नामकरणों का परीक्षण करने के उपरान्त 'संक्रान्तिकाल' का नया नामकरण समीचीन माना था, जिसका संक्रमणकाल के रूप में प्रयोग डॉ. रामखेलावन पांडेय के 'हिन्दी-साहित्य का नया इतिहास' तथा डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा और डॉ. रामनिवास शर्मा के द्विलेखकीय ग्रन्थ 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में किया गया है, कुछ अन्य छोटे-मोटे इतिहासों में किया गया है।

---

[1] आचार्य दुर्गाशंकर मिश्र अथवा डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र से भिन्न।

[2] 'कादम्बिनी' (अप्रैल, 1986); मेरे 'हिन्दी-साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' की समीक्षा, पृ. 179।

'भक्तिकाल' नामकरण एवं उसका वर्गीकरण भी क्रमशः इतिहासबोधविहीन है। संक्रान्तिकाल से उबरकर राष्ट्र ने जो नया काल सर्जित किया वह पुनरुत्थानकाल था, जिसके प्रतीक अमीर खुसरो, मुल्ला दाऊद, विद्यापति[1], कबीर, रसखान, सूर, तुलसी इत्यादि कविसम्राट् ही नहीं प्रत्युत शेरशाह, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ इत्यादि लोकसम्राट् तथा सूरदास[2], हरिदास, तानसेन, बैजू बावरा इत्यादि संगीतसम्राट् भी हैं। आमेर का शीशमहल, ग्वालियर का गूजरीमहल, फ़तहपुर सीकरी का बुलन्द दरवाज़ा, आगरे का जहाँगीरी महल इत्यादि इसी पुनरुत्थान के अन्य परिणाम थे, जो ताजमहल इत्यादि तक प्रसरित है तथा जिसका हनन औरंगज़ेब की धर्मान्धता ने किया था। 'भक्तिकाल' 'नामकरण इस सारे इतिहासबोध से रहित है। संकीर्ण साहित्यिक दृष्टि से भी 'भक्तिकाल' नामकरण कृपाराम, कर्ण (करन) कवि, प्रिथीराज, रहीम, नरहरि, बीरबल इत्यादि सुकवियों से लेकर केशवदास और सेनापति जैसे महाकवियों तक की उपेक्षा करने के कारण ग्राह्य नहीं हो सकता। उसका फुटकल खाता तो कठोर परिहास लगता है। भक्ति तत्कालीन जीवन के आध्यात्मिक पक्ष को विवृत करती है, समग्र जीवन को नहीं। स्वयं तुलसी और सूर जैसे साहित्य-सीमान्तों का काव्य कोरा भक्तिकाव्य मात्र न होकर विराट् जीवनकाव्य है जो दोनों की सर्वरसनिष्पत्ति एवं कतिपयरसनिष्पत्ति से ही स्पष्ट है। सूफ़ीकाव्य को भक्तिकाव्य मानना धक्काशाही है। कबीर[3] इत्यादि को निर्गुण एवं तुलसी इत्यादि को सगुण धाराओं में बहाना भी उचित नहीं क्योंकि निर्गुणप्रधान होते हुए भी कबीर इत्यादि सगुण में रुचि रखते हैं तथा सगुणप्रधान होते हुए भी तुलसी इत्यादि निर्गुण का पूरा सम्मान करते हैं। कबीर इत्यादि को ज्ञानाश्रयी शाखा में लटकाना उचित नहीं क्योंकि उनमें ज्ञान भी है, योग भी, भक्ति भी, कर्म भी। जायसी इत्यादि को प्रेमाश्रयी शाखा में बाँधना भी समीचीन नहीं है क्योंकि उनमें ज्ञान भी है, योग भी, कर्म भी। सूर कोरे कृष्णाश्रयी नहीं हैं, वे रामाश्रयी (सूरसागर का नवम स्कन्ध, अन्यत्र) भी हैं। तुलसी कोरे रामाश्रयी नहीं हैं, वे कृष्णाश्रयी (श्रीकृष्णगीतावली, विनयपत्रिका, कवितावली, अन्यत्र भी) भी हैं। शुक्ल का 'भक्तिकाल' नामकरण एकांगी है, उसका वर्गीकरण संकीर्ण, उसका फुटकल खाता खेदजनक। विराट् पुनरुत्थानकाल के स्फीत साहित्य को सन्तकाव्य, सूफ़ीकाव्य, शास्त्रीयकाव्य, रामकाव्य, कृष्णकाव्य, नीतिकाव्य एवं स्वतन्त्रकाव्य में विभक्त करना ही इतिहासबोधपूर्ण, व्यापक एवं गतिशील निरूपण हो सकता है। आश्चर्य है कि शताधिक शुक्लपरवर्ती इतिहासकारों का ध्यान इतने बड़े विषयबिन्दु की ओर आकृष्ट नहीं हुआ।

रीतिकाल नामकरण वामन के ''विशिष्टा पदरचना रीतिः'' में उलझाने के कारण भ्रामक है। रूढ़ि योगात् बलीयसी! यह नाम प्रवृत्तिबोध कराने में असफल है। मिश्रबन्धु का अलंकृतकाल एवं डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल' का कलाकाल नाम रीतिकाल से अधिक साधारणीकरणसक्षम है। यह नामकरण इस उत्कृष्ट काल में सृजित शृंगारकाव्य, वीरकाव्य, नीतिकाव्य, भक्तिकाव्य, अध्यात्मकाव्य, प्रेमकाव्य एवं स्वतन्त्रकाव्य की स्फीति के साथ भारी अन्याय करता है।

आधुनिककाल को गद्यकाल कहना इस काल के श्रेष्ठतर काव्य की अवहेलना के कारण एकांगी एवं अग्राह्य है। यह प्रभावहीन भी हो चुका है। आधुनिककाल पर शुक्ल की आलोचना मिश्रबन्धु की निराशाजनक आधुनिककाल-आलोचना से श्रेष्ठतर है, किन्तु वह विशेष मूल्यवान नहीं हैं, क्योंकि उनकी मूल रुचि 'अपने भक्तिकाल' में थी जिसके वे अद्वितीय आलोचक हैं भी। शुक्ल के आधुनिककाल के विवेचन में सबसे अधिक निराधार एवं भ्रामक उपपत्ति है कि छायावादयुग की कविता द्विवेदीयुग की कविता की स्थूलता की प्रतिक्रिया में रची गई। नन्ददुलारे एवं नगेन्द्र ने इसका अनुकरण करते हुए आदर्शवादी युग की कविता पर स्तरहीन आलोचना लिखी है। डॉ. सुधीन्द्र, डॉ. श्रीकृष्णलाल, डॉ. विनयमोहन शर्मा, दिनकर इत्यादि ने इस भ्रम का निराकरण किया है किन्तु वह अल्प एवं प्रासंगिक मात्र है। मैं 'खड़ीबोली-कविता में विरह-वर्णन' (1964 ई.) से लगातार स्वच्छन्दतावादी कविता को आदर्शवादी कविता का सहज एवं प्रसन्न विकास घोषित करता आ रहा हूँ। स्वच्छन्दतावाद काव्य की एक चिरन्तन धारा है। प्रत्येक युग में स्वच्छन्दतावादी काव्यसृजन होता है। उसकी प्रधानता हो तब उसका नामकरण कर दिया जाता है जैसा कि अंग्रेज़ी इत्यादि में किया गया है। विद्यापति, रसखान, घनआनन्द, रामनरेश इत्यादि स्वच्छन्दतावादी कवि हैं।

स्पष्ट है कि शुक्ल का काल-वर्गीकरण न इतिहास-सम्मत है, न साहित्य-सम्मत। शुक्ल का 'इतिहास' अत्यधिक आत्मपरक है। वस्तुपरक न होने के कारण वह मनमानी स्थापनाओं एवं अन्यायपूर्ण आकलनों से आच्छन्न है। सिद्धों और नाथों पर वे कुछ न लिखते

---

[1] जिनके 'कीर्तिकला'-नायक (कीर्तिसिंह) की रक्षा इब्राहीमशाह करता है और वह भी मुस्लिम-सत्तादस्यु से!

[2] 'आईने-अकबरी' का महान् गायक जो महाकवि सूर से शतशः भिन्न है।

[3] कबीर उन रामानन्द के शिष्यों में एक थे जो स्वयं सगुणाचार्य होते हुए भी निर्गुणसम्मानक थे, जिनके राम दाशरथि भी थे, सृष्टिरमणक भी।

तो बेहतर होता। कबीर पर लिखते समय उनकी व्यंग्यपूर्ण शैली उनको जातिवादी सिद्ध करने लगती है जिससे श्रीकान्त वर्मा जैसे राजनीति-प्रेरित व्यक्तियों को उन पर ही नहीं अपितु उनकी आड़ कर तुलसी तक पर आक्षेप का अवसर मिल जाता है। उनके सिद्ध-नाथ-कबीर-प्रहार से एकमात्र लाभ यह हुआ कि उनकी प्रतिक्रिया में डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी को ये दिशाएँ प्राप्त हो गईं, यद्यपि डॉ. द्विवेदी का एतद्विषयक लेखन शोध एवं स्तुति अधिक है तथा आलोचना एवं आकलन कम। प्रतिक्रिया प्रायः एक छोर पकड़ लेती है। केशव पर आचार्य शुक्ल के प्रहार नितान्त आत्मपरक एवं एकांगी हैं, जिनकी परोक्ष आलोचना उनके ही शिष्य पंडित कृष्णशंकर शुक्ल ने उस समय की थी जब गुरु-शिष्य सम्बन्ध अच्छे थे। 8 फरवरी, 1984 को जब मैंने आचार्य शुक्ल के केशव-विषयक पूर्वाग्रह की चर्चा की तब पंडित शुक्ल ने स्पष्ट शब्दों में कहा था, ''लेकिन मैंने तो ऐसा नहीं किया!'' लाला भगवानदीन 'दीन' की विद्वत्तापूर्ण टीका तथा पंडित कृष्णशंकर शुक्ल की 'केशव की काव्यकला' ने केशव के साथ कुछ न्याय किया। आचार्य शुक्ल के केशव-अन्याय की प्रतिक्रिया में प्रेरक विद्वान् पंडित जगन्नाथ तिवारी एवं उनके शिष्य डॉ. विजयपाल सिंह ने अच्छा कार्य किया है जिस पर पंडित कृष्णशंकर शुक्ल का प्रभाव स्पष्ट है। श्री इक़बाल बहादुर देवसरे का 'बाबा कहि-कहि जाहिं' उपन्यास भी इस दिशा में स्मरणीय है। केशवदास एक महाकवि थे जिन्होंने महाकाव्य 'रामचन्द्रिका', शास्त्रकाव्य 'कविप्रिया' एवं 'रसिकप्रिया', चरितकाव्य 'वीरसिंहदेवचरित', 'जहाँगीरजसचन्द्रिका' एवं 'रतनबावनी' तथा अध्यात्मकाव्य 'विज्ञानगीता' लिखकर अपनी बहुमुखी प्रतिभा का ऐसा विलक्षण परिचय दिया है कि तुलसी और सूर के अतिरिक्त कोई हिन्दी-कवि उनसे आगे जाता नहीं दीखता। प्रभाव की दृष्टि से वे सर्वथा महान् हैं। शास्त्रीयकाल के उद्घाटनकर्ता के रूप में वे अमर हैं। यद्यपि 'चिन्तामणि' शब्द के निजी आकर्षण के कारण आचार्य शुक्ल ने अपने रीतिकाल का आरम्भ चिन्तामणि त्रिपाठी से कर डाला है—उनके अपने निबन्ध-संग्रह का नाम भी 'चिन्तामणि' है, किन्तु इसका साहित्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। श्यामसुन्दरदास से लेकर भगीरथ मिश्र तक केशव को ही शास्त्रीयकाल का उद्घाटनकर्ता स्वीकार करते हैं। कबीर की प्रतिभा सन्त-प्रतिभा अधिक है, कवि-प्रतिभा कम। जायसी की प्रतिभा एकांगी है। अतः शताब्दियों से हिन्दी-जगत केशव को सूर-तुलसी के साथ स्मरण करता आ रहा है। केशव की लोकप्रियता भी जनकथाओं से लेकर रामलीलाओं तक व्यापक एवं जीवन्त है। अलंकृत काव्य अपनी व्यापक अवस्थिति के कारण विधांग के रूप में स्वीकृति किया जाना चाहिए, न कि निजी तरंग के कारण आखेट के रूप में। भारवि, माघ, श्रीहर्ष, उपेन्द्र भंज (उड़िया) जैसे महाकवियों ने अलंकारवादी काव्यसृष्टि की है। 'राघवपाण्डवीयम्' जैसी आद्यन्त अलंकृत साहित्य में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर चुकी है। तुलसी ने बरवै-रामायण से गीतावली तक, सूर ने दृष्टकूटों में, कबीर ने उलटबाँसियों में, मैथिलीशरण ने 'साकेत' में कई स्थलों पर अलंकृत काव्यसृष्टि की है। फिर, केशव का अलंकारवादी या चमत्कारवादी काव्य गुण एवं परिमाण में बहुत अधिक नहीं है। उन्होंने मार्मिक काव्यरचना भी की है। अतः आचार्य शुक्ल का केशव-प्रत्याख्यान न वस्तुपरक है, न न्यायसंगत। अपने मिश्रबन्धु-विद्वेष के कारण वे महाकवि देव पर बेतरह टूटे हैं। शुक्ल का रीतिकाल मिश्रबन्धु के अलंकृतकाल की छाया होते हुए भी मतिराम, बिहारी, देव इत्यादि की मिश्रबन्धु की सी समीक्षा नहीं कर पाता। शुक्ल ने घनआनन्द को उठाकर साहित्य की सेवा की है, किन्तु विविधता, कला एवं प्रवाह में घनआनन्द न देव के समकक्ष हैं, न बिहारी के। उन्होंने पच्चीस से अधिक उच्चस्तरीय छन्द नहीं रचे। एक ही भाव को बार-बार दुहराकर घनआनन्द पाठक को उबा डालते हैं। निस्सन्देह, एक निष्ठावान आत्मपरक प्रेमकाव्यप्रणेता, एक गम्भीर विरह-कवि एवं एक अनूठे भाषाशिल्पी के रूप में घनआनन्द का शास्त्रीयकाल के कवियों में एक विशिष्ट स्थान है किन्तु वह केशव, मतिराम, भूषण, बिहारी, देव एवं पद्माकर के अनन्तर ही है, क्योंकि ये कवि भावपक्ष में अधिक स्फीत एवं कलापक्ष में अधिक आकर्षक हैं।

आचार्य शुक्ल ने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य श्यामसुन्दरदास एवं मिश्रबन्धु पर जो लिखा है वह भ्रामक है।

1. ''द्विवेदीजी ने सन् 1903 में 'सरस्वती' के सम्पादन का भार लिया। तब से अपना सारा समय उन्होंने लिखने में ही लगाया। लिखने की सफलता वे इस बात में मानते थे कि कठिन-से-कठिन विषय भी ऐसे सरल रूप में रख दिया जाए कि साधारण पाठक भी उसे बहुत कुछ समझ जाए। कई उपयोगी पुस्तकों के अतिरिक्त उन्होंने फुटकल लेख भी बहुत लिखे। पर इन लेखों में अधिकतर लेख 'बातों के संग्रह' के रूप में ही हैं।''

2. ''शिक्षोपयोगी तीन पुस्तकें—'भाषाविज्ञान', 'हिन्दी भाषा और साहित्य' तथा 'साहित्यालोचन'—भी आपने लिखी या संकलित की हैं।''

3. ''मिश्रबन्धुओं के प्रकांड कविवृत्तसंग्रह 'मिश्रबन्धु-विनोद' का उल्लेख हो चुका है। रीतिकाल के कवियों के परिचय लिखने में मैंने प्रायः उक्त ग्रन्थ से ही विवरण लिए हैं। अतः आधुनिक शिष्टता के अनुसार उसके उत्साही और परिश्रमी संकलनकर्ताओं को धन्यवाद देना मैं बहुत ज़रूरी समझता हूँ।''

उक्त तीन अहं-विस्फोटों का अभिप्राय है कि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इधर-उधर की बातें इकट्ठी करके लेख लिख मारे हैं, आचार्य श्यामसुन्दरदास एवं मिश्रबन्धु मौलिक लेखक न होकर संकलनकर्ता मात्र हैं। तीनों अहंविस्फोट मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों से उत्पन्न हुए हैं क्योंकि द्विवेदी ने शुक्ल के निबन्ध देख-सुधार कर, 'सरस्वती' में प्रकाशित कर, उन्हें विख्यात किया था, श्यामसुन्दरदास ने उन्हें शब्द-सागर-सम्पादकमंडल के कनिष्ठ सदस्य के रूप में नियुक्त कर उन्हें आगे बढ़ाया था, मिश्रबन्धु की सामग्री एवं काल-नामकरण को ही थोड़ा-बहुत उलट-पलटकर वे 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के बारे में अमर आलोचक बने थे—अतः स्वप्रतिष्ठापन के लिए तीनों आधारों का अवमूल्यन अपरिहार्य लगा। आचार्य द्विवेदी के निबन्ध गुरु के युगनिर्देश हैं, भाषा के प्रतिष्ठापक हैं, साहित्य के लोकप्रसारक हैं और उनका वस्तुपरक आकलन उन्हें अपूर्वतः सफल ही सिद्ध करेगा। फिर, 'नल का दुस्तर दूत-कार्य', 'महाकवि माघ का प्रभातवर्णन', 'महाकवि माघ की राजनीति', 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता', 'साहित्य की महत्ता', 'उपन्यास-रहस्य' इत्यादि स्तरीय साहित्य-निबन्ध हैं, जिनसे साहित्य ही नहीं अपितु जनजीवन भी प्रभावित हुआ है। अपने सम्पादित निबन्ध-संग्रह की भूमिका में डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल की इस भ्रामक मान्यता का प्रभाव खंडन करते हुए 'आचार्यत्व की लपेट' का जो संकेत किया है वह प्रशस्य है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी युगप्रवर्तक निर्माता एवं प्रेरक थे। अपने व्यक्तित्व की विराटता के करण वे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण, प्रसाद, निराला, सबसे महत्तर सिद्ध होते हैं, यद्यपि रचना-गौरव में वे इनमें से किसी के निकट नहीं आ सकते। आचार्य श्यामसुन्दरदास अपने सारे साहित्य में मौलिक हैं। उनकी कबीर-ग्रन्थावली की भूमिका शुक्ल की एतद्विषयक ध्वंसात्मक आलोचना से तो बहुत श्रेष्ठ है ही, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'कबीर' शीर्षक ग्रन्थ की शुक्ल-प्रतिक्रियाप्रसूत स्तुतिपरक भाषणालोचना से भी श्रेष्ठतर है। उनकी 'रत्नाकर' (ग्रन्थावली) की भूमिका भी उच्चकोटि की है। अपने 'गोस्वामी तुलसीदास' में तुलसी-साहित्य पर उनके विचार मननीय हैं—विशेषतः दर्शन एवं समन्वय पर। 'हिन्दी भाषा और साहित्य' में पृथ्वीराजरासो, कबीर, सूर, तुलसी, केशव, रीतिकाल इत्यादि पर उनकी सामग्री सर्वथा मूल्यवान है—शुक्ल से कम भड़कीली पर अधिक सन्तुलित। 'साहित्यालोचन' में हिन्दी-साहित्य की नाना विधाओं का निरूपण तो मौलिक है ही, संस्कृत काव्यशास्त्र को भी विदग्धतापूर्वक ग्रहण किया गया है। उनका कला-निरूपण उच्चकोटि का है। साहित्य, विधाओं, रस इत्यादि के निरूपण में उन्होंने ठीक ही अंग्रेज़ी एवं संस्कृत के ग्रन्थों से भरपूर सहायता ली है, क्योंकि इसके बिना ये विषय स्पष्ट नहीं हो सकते थे। साहित्यालोचन को हडसन कृत 'एन् इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ़ लिटरेचर' से अत्यधिक प्रभावित माननेवाले महानुभाव दोनों ग्रन्थों के अध्ययन के अभाव की सूचना मात्र देते हैं। पूर्वमान्य परिभाषाओं एवं स्थापनाओं का निरूपण अमौलिकता का पर्याय नहीं माना जा सकता। काव्यशास्त्र एवं भाषाविज्ञान में मौलिकता सीमित ही हो सकती है, जैसा कि शुक्ल की 'रस-मीमांसा' से भी स्पष्ट है। गुणवत आधार पर कबीर, रत्नाकर, तुलसी, चन्द्र (पृथ्वीराजरासो) प्रभृति की वस्तुवादी आलोचना तथा काव्यशास्त्र एवं भाषाविज्ञान पर प्रस्थान-ग्रन्थों के प्रणयन के कारण हिन्दी-साहित्य में आचार्य श्यामसुन्दरदास का स्थान ऊँचा है। श्यामसुन्दरदास साहित्य के महत्तर सेवक थे, शुक्ल साहित्य के महत्तर ग्रन्थकार। दोनों का एक स्तर एक-सा है यद्यपि प्रतिभा में शुक्ल श्रेष्ठतर हैं। हिन्दी-आलोचना में शुक्ल, मिश्रबन्धु एवं श्यामसुन्दरदास की त्रयी ने जितना और जैसा कार्य किया है, उतना और वैसा नन्ददुलारे, हजारीप्रसाद एवं नगेन्द्र की त्रयी नहीं कर सकी। पूर्वत्रयी कार्य, प्रस्थान, प्रभाव इत्यादि की दृष्टियों से उत्तरत्रयी से विवादरहित रूप में श्रेष्ठतर है। हिन्दी-आलोचना में मिश्रबन्धु, श्यामसुन्दरदास, शुक्ल, नन्ददुलारे, हज़ारीप्रसाद, नगेन्द्र एवं रामविलास को सर्वोपरि स्थान प्राप्त होना चाहिए जिनमें शुक्ल को शीर्षस्थान प्राप्त है। शुक्ल की समीक्षा पर रिचर्ड्स के 'प्रिंसिपिल्स ऑफ़ लिटरेरी क्रिटिसिज़िम' तथा 'प्रैक्टिकल क्रिटिसिज़म' का भारी प्रभाव पड़ा है। उन पर मैथ्यू आर्नोल्ड का भी बहुत प्रभाव पड़ा है। उनका 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' मिश्रबन्धु के 'विनोद', श्यामसुन्दरदास के 'हिन्दी-कोविद रत्नमाला', रामनरेश त्रिपाठी की 'कविता-कौमुदी', वियोगीहरि के 'व्रजमाधुरीसार', भगवानदीन 'दीन' की 'ठाकुर-ठसक' इत्यादि की सामग्री से भरा पड़ा है। साहित्येतिहासगत मौलिकता प्रस्थान-ग्रन्थों में सामग्री-संकलनपरक होती है, परवर्ती ग्रन्थों में विवेचनपरक। शिवसिंह के 'सरोज' में वह संकलनपरक है, मिश्रबन्धु के 'विनोद', शुक्ल के 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', श्यामसुन्दरदास के 'हिन्दी भाषा और साहित्य' इत्यादि में संकलनपरक भी, विवेचनपरक भी, अतः शुक्ल द्वारा 'विनोद' एवं 'हिन्दी भाषा और साहित्य' के अवमूल्यन का आयास निराधार है। मिश्रबन्धु जैसे तपस्वी एवं त्यागी साहित्यसेवियों को 'उत्साही एवं परिश्रमी संकलनकर्ता' कहना 'विनोद' एवं 'नवरत्न' में व्याप्त स्थापनाशक्ति एवं आलोचनाशक्ति से आँखें मूँदना है, क्योंकि उनके ग्रन्थों से सारे साहित्येतिहासकारों ने प्रभाव एवं प्रेरणा प्राप्त की है, जिनमें शुक्ल प्रथम हैं जिनका इतिहास उनकी सामग्री से अन्यों की तुलना में कहीं अधिक भरा पड़ा है। मिश्रबन्धु वैभवशाली एवं पदप्राप्त व्यक्ति थे तथा अपने विद्याव्यसनवश ही साहित्यसेवा में प्रवृत्त हुए थे। उन्होंने अपार अध्ययन

एवं व्यय करके लगभग पाँच हजार कवियों के नाम एवं वृत्त एकत्र किए, उनके कालनिर्धारण किए, उनका प्रवृत्तिनिरूपण किया, उनमें से प्रमुखों की आलोचना प्रस्तुत की, उनमें से सहस्रों को उद्‌धृत किया। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक एवं प्राचार्य डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र प्रभृति विद्वान् 'विनोद' को ही हिन्दी-साहित्य का सर्वोत्तम इतिहास मानते हैं। 'विनोद' से शुक्ल ने भी अपार लाभ उठाया है जिनके इतिहास का रीतिकाल तो उस पर आधृत ही है, वीरगाथाकाल, भक्तिकाल एवं गद्यकाल भी उसके भरपूर ऋणी हैं। मिश्रबन्धु का आलोचना-कार्य शुक्ल के आलोचना-कार्य से अधिकतर है किन्तु प्रतिभा में शुक्ल श्रेष्ठतर हैं। दोनों हिन्दी के मूर्द्धन्य आलोचक हैं जिनकी समता अन्य नहीं कर सकते। शुक्ल के इतिहास में त्रुटियाँ भी कम नहीं हैं। 'विनोद' में मुल्ला दाऊद (चौदहवीं सदी) का, नाम मात्र का ही सही, उल्लेख है, किन्तु परवर्ती होने पर भी शुक्ल के इतिहास में नहीं। शुक्ल मंझन (शाहेवक़्त इस्लामशाह या सलेमशाह) को जायसी (शाहेवक़्त शेरशाह सूरी) का पूर्ववर्ती मानते हैं जबकि जायसी पूर्ववर्ती हैं और मंझन परवर्ती, उन्होंने धनआनन्द को नादिरशाह की सेना के आक्रमण में मारा गया लिखा है जबकि वे अहमदशाह अब्दाली की सेना के आक्रमण में मारे गए थे जैसाकि आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने 'घनआनन्द-कवित्त' की भूमिका में स्पष्ट किया है, इंशाअल्लाह खाँ की मृत्यु सं. 1857 वि. (1800 ई.) में लिखी है जो 1817 ई. होनी चाहिए, आचार्य द्विवेदी का जन्म सं. 1927 वि. (1840 ई.) लिखा है जो 1921 वि. (1864 ई.) होना चाहिए। उन्होंने शिवसिंह के 'सरोज' का काल ग़लत (1883 ई.) दिया है जो 1878 ई. में प्रकाशित हुआ जैसाकि डॉ. किशोरीलाल गुप्त 'सरोज सर्वेक्षण' एवं डॉ. माताप्रसाद गुप्त 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' में स्पष्ट कर चुके हैं, उन्होंने श्रीनिवासदास कृत 'परीक्षागुरु' (1882 ई.) को हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास घोषित किया है जबकि श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' (1877 ई.) का स्वखंडनात्मक उल्लेख भी कर गए हैं किन्तु हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास पंडित गौरीदत्त कृत 'देवरानी जेठानी की कहानी'[1] (1870 ई.) है जैसाकि 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' में आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने प्रमाणित किया है, उन्होंने 'फिल्लौरी' को 'फुल्लौरी' लिख दिया है जबकि फिल्लौर तब भी भारत में था और सौभाग्यवश अब भी है। गुजराती (जन्म आगरा में) लल्लूजी 'लाल' ('लाल' उपनाम) को उन्होंने 'लल्लूलाल' बना डाला! लंकानिवासियों को काला-कलूटा मानना भी एकांगी है। ये आर्य-नृवंश के हैं, तमिल द्रविड़-नृवंश के अर्थात् वहाँ के बहुसंख्यक कृष्ण न होकर 'शुक्ल' ही हैं! आचार्य शुक्ल सावधान विद्वान् न थे! खेद है कि अधिकांश परवर्ती साहित्येतिहासकारों एवं कोशकारों ने भक्तिपूर्वक आँख मूँदकर इन त्रुटियों का अनुकरण किया है—वे यह भूल गए कि ''महा जनो एन गतः स पंथः'' चार्वाक ने लिखा था तथा 'मूढ़ पर प्रत्ययनेय बुद्धिः'' कालिदास ने।

'गोस्वामी तुलसीदास' आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का वह गौरवशाली आलोचना-ग्रन्थ है जिसकी तुलना में पूर्ववर्ती ग्रियर्सन की अंग्रेज़ी और मिश्रबन्धु की हिन्दी में रचित तुलसी-आलोचना एक प्रारम्भिक लगती है तथा जो अपने विषय की अप्रतिम उपलब्धि बना हुआ है। इस ग्रन्थ में तुलसी की भक्ति-पद्धति, काव्य-पद्धति, उनके लोकमंगल, उनके साहित्यस्थान का प्रशस्य आकलन किया गया है तथा त्रुटिसंकेत भी। आचार्य शुक्ल का भक्ति-विवेचन अपनी ऐतिहासिकता में विवादास्पद हो सकता है किन्तु अपने निरूपण में वह पूर्णतः सफल है।

'जायसी-ग्रन्थावली' की भूमिका में आचार्य शुक्ल ने सूफ़ी दर्शन एवं काव्य पर विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डालते हुए जायसी के काव्य, विशेषतः उनके विरह-वर्णन की प्रशस्तिपरक आलोचना प्रस्तुत की है, तथापि 'प्रस्थान', 'प्रतिष्ठापन' एवं पांडित्य के कारणों से उनके महान् आलोचक होने की सूचक है।

आचार्य शुक्ल की 'भ्रमरगीतसार' की भूमिका भ्रमरगीत के दार्शनिक पक्ष का गम्भीर निरूपण न कर सकने तथा सूर के प्रति पर्याप्त संवेदन की यत्र-तत्र प्राप्त अल्पता के बावजूद ठीकठाक लगती है। उनकी कबीर, केशव, देव इत्यादि की निन्दा को देखते वह बहुत अच्छी है।

निबन्धकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल निस्सन्देह एवं निर्विवाद रूप से आलोचक रामचन्द्र शुक्ल से महानतर हैं। यद्यपि 'साहित्यालोचन' में आचार्य श्यामसुन्दरदास ने प्रतापनारायण मिश्र को 'हिन्दी का मान्तेन' एवं 'हिन्दी का लैम्ब' बताते हुए बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं रामचन्द्र शुक्ल से सफलतर-श्रेष्ठतर निबन्धकार माना है तथा इसमें सन्देह नहीं कि भौं, दाँत, बुढ़ापा, आप, च ट, ह जैसे विषयों पर प्रातिभ निबन्ध लिखना 'साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद', 'काव्य में रहस्यवाद', 'काव्य में अभिव्यंजनावाद', 'काव्य में प्राकृतिक दृश्य', 'काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था' जैसे अध्यवसायपूर्ण निबन्ध लिखने से अधिक

---

[1] शीर्षक 'ए टेल ऑफ टू सिटीज़' के सदृश है। टेल = कथा, कहानी।

विलक्षण है; तथापि शुक्ल को प्रायः सभी हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ निबन्धकार मानते हैं। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही उन्हें भारतीय साहित्य का अप्रतिम निबन्धकार माना है। शुक्ल एक उच्चतम श्रेणी के विश्व-निबन्धकार हैं। प्रखर आत्माभिव्यक्ति, अजेय प्रतिभा, अखंड विश्वास एवं अगाध पांडित्य के कारण उनके 'चिन्तामणि'[1] को विश्व के निबन्ध-साहित्य की एक अमर उपलब्धि माना जा सकता है। बौद्धिकता एवं भावुकता में शुक्ल के निबन्ध बेजोड़ हैं। उनके निबन्ध प्राचीनता एवं नूतनता तथा सूत्रशैली (समाज शैली) एवं व्याख्याशैली (व्यास शैली) के समन्वय के कारण एक विलक्षण एवं पूर्ण प्रभाव की सृष्टि करने में सक्षम हैं। उनके व्यंग्य भी चुभते हुए हैं। उनकी भाषा अतीव शक्तिमयी एवं प्रभावी है। उनके निबन्ध तीन प्रकार के हैं :

1. भावपरक निबन्ध—इनमें रसों के स्थायीभावों पर विशद, गम्भीर एव मौलिक विवेचन-विश्लेषण प्राप्त होता है। उत्साह, श्रद्धा-भक्ति, करुणा, लोभ और प्रीति, घृणा, भय, क्रोध इत्यादि इसी प्रकार के निबन्ध हैं।

2. सैद्धान्तिक निबन्ध—इनमें भावबोध, रसबोध, काव्य के स्वरूप, काव्य में लोकमंगल, साधारणीकरण, व्यक्तिवैचित्र्यवाद, काव्य में प्रकृतिचित्रण, अभिव्यंजनावाद, रहस्यवाद जैसे गम्भीर विषयों पर उच्चतम स्तर का वैचारिक ऊहापोह किया गया है, वैयक्तिक स्पर्श से ऊर्जस्वित् स्थापनाएँ की गई हैं। भाव या मनोविकार, कविता क्या है?, रसात्मक बोध के विविध रूप, काव्य में प्राकृतिक दृश्य, काव्य में अभिव्यंजनावाद, काव्य मे रहस्यवाद इत्यादि इसी प्रकार के निबन्ध हैं।

3. व्यक्तिपरक निबन्ध—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, तुलसी का भक्तिमार्ग, मानस की धर्मभूमि शीर्षक निबन्ध इसी प्रकार के हैं जिनमें अन्तिम निबन्ध 'गोस्वामी तुलसीदास' ग्रन्थ के अन्तिम निबन्ध के रूप में भी प्राप्त होता है।

तीनों प्रकार के ही निबन्धों से आचार्य शुक्ल को अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। 'लोभ और प्रीति' विषय-विवेचन, विषय-विश्लेषण एवं विषय-संश्लेषण की दृष्टि से तो महान् निबन्ध है ही, आत्माभिव्यक्ति, आत्मप्रतिष्ठापन एवं हास्य-व्यंग्य की दृष्टि से भी अद्वितीय है। 'कविता क्या है?' आचार्य शुक्ल का सर्वश्रेष्ठ निबन्ध है जिसमें रस की लोकोत्तरता, उनकी विशिष्ट साधारणीकरण-दृष्टि, उनका विशिष्ट व्यक्तिवैचित्र्यवाद-प्रत्याख्यान, उनकी विशेष प्रकृति-दृष्टि, उनका विख्यात लोकमंगल इत्यादि समाविष्ट हो गए हैं तथा जो उनका प्रतीक-निबन्ध माना जा सकता है। 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' आचार्य शुक्ल का एक महान् निबन्ध है जिसमें छोटे-से दायरे में आधुनिक हिन्दी के जनक का व्यक्तित्व एवं कृतित्व विदग्धतापूर्वक विवृत किया गया है। भारतेन्दु पर जितने उत्कृष्ट एवं गम्भीर विचार आचार्य शुक्ल ने व्यक्त किए हैं उतने डॉ. रामविलास शर्मा समेत किसी ग्रन्थकार तक ने नहीं।

आचार्य शुक्ल के निबन्धों में उच्चकोटि की विचारशक्ति, स्थापनाशक्ति, संवेदनशीलता एवं आदर्शप्रवणता के दर्शन प्राप्त होते हैं। उनके निबन्धों में विचार तथा भाव एवं विषय तथा व्यक्ति का अद्वितीय समन्वय प्राप्त होता है। विचारात्मक निबन्धकार की दृष्टि से शुक्ल हिन्दी या भारत ही नहीं प्रत्युत समग्र विश्व के अग्रणी साहित्यस्रष्टाओं में हैं। उनके निबन्ध परिभाषा, वर्गीकरण, आत्माभिव्यक्ति, हास्य-व्यंग्य तथा प्राणवान भाषा से संपृक्त हैं और समास एवं व्यास शैलियों का समन्वय उनको अपने-आप में पूर्ण रूप प्रदान कर देता है। उनकी परिभाषात्मक सूक्तियाँ मन मोह लेती हैं, यथा, "भक्ति धर्म की रसात्मक अनुभूति है", "साहसपूर्ण आनन्द की उमंग का नाम उत्साह है", "बुद्धि द्वारा पूर्ण रूप से निश्चित की हुई व्यापार-परम्परा का नाम ही प्रयत्न है", "अपनी बुराई, मूर्खता, तुच्छता इत्यादि का एकान्त अनुभव करने से वृत्तियों में जो शैथिल्य आता है, उसे ग्लानि कहते हैं"; "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है"; इत्यादि।।

शुक्ल की अधिकतर परिभाषाएँ बड़ी सटीक हैं किन्तु विशुद्ध शास्त्रीय धरातल पर सुख को आनन्द का पर्यायवाची मानना, बारम्बार 'वस्तु' या 'बातों' जैसे सामान्य शब्दों का प्रयोग करना, विचार एवं भाव अथवा मस्तिष्क एवं हृदय की द्वैतपरक स्थापना-पुनःस्थापना इत्यादि बिन्दुओं को आचार्यत्व की दृष्टि से प्रशस्य नहीं कहा जा सकता। 'सु' का अर्थ है सुगम, सुकर। 'ख' का अर्थ है इन्द्रिय, विषयग्राहक। जो इन्द्रियों को सुकर लगे, वह सुख है। अंग्रेज़ी में प्लेज़र शब्द 'सुख' का अर्थ व्यक्त करता है। सुख स्थूलव्यंजक है। उल्लास सुखोत्तर स्थिति का सूचक है, वह उत्कर्षप्राप्त मनःतोष का प्रतीक है। अंग्रेज़ी में 'जॉय' शब्द 'उल्लास'

---

[1] प्रथम संस्करण 'विचार-वीथी' के रूप में निकला था, किन्तु एक दिन जब आ. केशवप्रसाद मिश्र, आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र एवं डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा के साथ इक्के पर सवार आ. रामचन्द्र शुक्ल ने बताया कि द्वितीय संस्करण निकलनेवाला है और मैं शीर्षक से सन्तुष्ट नहीं हूँ तब आ. केशवप्रसाद मिश्र ने तत्काल 'चिन्तामणि' नाम सुझाया तथा डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने "पायो नाम चारु 'चिन्तामणि' उर कर ते न खसैहौं" कहकर अनुमोदन किया, जिसका परिणाम यह नया शीर्षक निकला!

का अर्थ व्यक्त करता है। उल्लास सूक्ष्मव्यंजक है। आनन्द सुख एवं उल्लास से ऊपर तत्त्वतः सबसे ऊपर की स्थिति का सूचक है : 'आ' अर्थात् यत्र-तत्र-सर्वत्र एक अतीन्द्रिय एवं अनिवार्य हर्ष का सम्यक् बोध। आनन्द चरम है, परम है। तैत्तिरीयोपनिषद् के अनुसार अन्नमय (स्थूल, शारीरिक), मनोमय (मननयुक्त, विचारयुक्त), प्राणमय (चेतन, संस्फूर्त) और विज्ञानमय (विवेकमय, बोधगम्य) कोषों से भी ऊपर आनन्दमय कोष को ही महतोमहीयान् स्थिति प्राप्त है। सुख शरीर की प्रसन्नता का सूचक है, उल्लास मन के तोष का, आनन्द आत्मा की तल्लीनता का—''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' (छान्दोग्योपनिषद्) की अनुभूति से प्राप्त कैवल्य की महती शक्ति का। शुक्ल ने सुख एवं आनन्द शब्दों के अदार्शनिक प्रयोग किए हैं। ''नई-नई बातें'' या ''आनन्द देनेवाली वस्तु'' जैसे प्रयोगों से आचार्य की सूत्र-शैली को शक्ति नहीं प्राप्त हो सकती। 'हृदय' और 'मस्तिष्क' के प्रचलित प्रयोग चल सकते हैं, किन्तु इनका तात्त्विक प्रयोग अदार्शनिक एवं द्वैतमूलक है, जबकि रस-सिद्धान्त की आनन्दमूलकता सर्वतः अद्वैतपरक है। आश्चर्य तो यह है कि रसतत्त्वमीमांसा में शुक्ल अद्वैतविरोधी नहीं हैं! ऐसा दूसरा आश्चर्य समग्रतः अद्वैतवादी अथवा आनन्दवादी प्रसाद के भावपक्ष या हृदयपक्ष (श्रद्धा) एवं विचारपक्ष या मस्तिष्कपक्ष (इड़ा) के द्वैतचित्रण में दृग्गत होता है।

जिस महान् शास्त्रीय संगीत को विश्व भर में प्रतिष्ठा प्राप्त है, जिसके कारण पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जैसे महान् गायक एवं पंडित रविशंकर जैसे महान् वादक भारत का गौरव बढ़ाते हैं, जिसकी पूर्णता की प्रशस्ति विश्वविद्यालय जुबीन मेहता करते हैं,[1] उसके सन्दर्भ में आचार्य की इस तरंग को देखकर क्षोभ होने लगता है, ''संगीत के पेंच-पाँच देखकर भी हठयोग याद आता है। जिस समय कोई कलावन्त पक्का गाना गाने के लिए आठ अंगुल मुँह फैलाता है और 'आ-आ' करके विकल होता है। उस समय बड़े-बड़े धीरों का धैर्य छूट जाता है।'' खेद है कि यह अंश 'श्रद्धा-भक्ति' का है, जिसने हरिदास, तानसेन, बैजूबावरा, त्यागराज, भारतरत्न सुब्बालक्ष्मी जैसी अमर विभूतियों को प्रेरित किया है।

शुक्ल के निबन्ध रसपरक पहले हैं, मनोविश्लेषणपरक तदनन्तर या नहीं। काम, कुंठा, विकृति, सन्त्रास, अहं, जिजीविषा, विजिगीषा, आध्यात्मिकता प्रभृति विशुद्ध मनोवैज्ञानिक आधारों पर अपने 'लोभ और प्रीति', 'लज्जा और ग्लानि', 'भय', 'घृणा', 'ईर्ष्या', 'क्रोध', 'उत्साह', 'करुणा', 'श्रद्धा-भक्ति', 'कविता क्या है?' इत्यादि निबन्ध लिखते हुए आचार्य शुक्ल ने व्यावहारिक-रसवादी आधारों का ही आश्रय ग्रहण किया है, जिनसे विशुद्ध वैज्ञानिकता तो परितुष्ट नहीं होती किन्तु काव्यात्मक सरसता प्रायः परितुष्ट हो जाती है।

शुक्ल का परिभाषावाद कई बार कोशमूलक लगने लगता है तथा वर्गीकरणवाद शास्त्रवादी। उनका हास्य-व्यंग्य कहीं-कहीं विवादास्पद हो गया है। आदर्शवादी युग की विस्तारवृत्ति ने उनका भी पिंड कहीं नहीं छोड़ा। उनकी भाषा आम तौर पर विषयों के अनुरूप गम्भीर रहती है, किन्तु कहीं-कहीं वे 'बातों' और 'वस्तुओं' के फेर में पड़ जाते हैं। उनकी परिनिष्ठित एवं संस्कृतपुष्ट भाषा अतीव शक्तिशालिनी है, जिसमें वे हास्य-व्यंग्य के सन्दर्भों में फुलझड़ी-उर्दू के शब्दों का हल्का-फुल्का प्रयोग बड़ी विदग्धता से करते हैं। डॉ. नगेन्द्र 'उसने कहा था' शीर्षक प्रशंसात्मक निबन्ध में आचार्य शुक्ल एवं प्रेमचन्द की भाषाओं पर जो मत व्यक्त करते हैं, वे निराधार हैं क्योंकि साधारणीकरण और रहस्यवाद उस भाषा में नहीं लिखे जा सकते जिसमें 'उसने कहा था' कहानी लिखी गई है तथा प्रेमचन्द ने 'पंच-परमेश्वर' से 'कफ़न' तक, 'आत्माराम' से 'ईदग़ाह' तक जिस प्रवाहपूर्ण भाषा का प्रयोग किया है, वह सर्वथा प्रशस्य है।

भक्ति की जो ऐतिहासिकता शुक्ल प्रतिपादित करते हैं, वह प्रमाणपुष्ट नहीं है। प्रकृतिचित्रण में आलम्बनात्मकता पर वे जो बेहद ज़ोर देते हैं, उसे उद्दीपनात्मकता, रहस्यात्मकता, आलंकारिकता इत्यादि के साथ अन्याय हो जाता है। कला में प्रकृति मानव-निरपेक्ष नहीं हो सकती। रहस्यवाद पर आचार्य शुक्ल के विचार न ऐतिहासिक दृष्टि से समीचीन हैं, न काव्यात्मक दृष्टि से। ऋग्वेद (ऋषि शुनःशेप से ऋषि का वाक् तक अनेक ऋषि-ऋषिकाओं द्वारा) से अरविन्द तक, कबीर से रवीन्द्र तक, जायसी से महादेवी तक जिस रहस्यवादी काव्य का कहीं गहन और कहीं सरस सृजन प्राप्त होता है, उसका रूप कहीं साधनात्मक है तो कहीं काल्पनिक, किन्तु वह काव्य की अजर-अमर निधि है।

* * *

आचार्य शुक्ल एक महान् एवं विश्वस्तरीय आलोचक तथा एक महान् एवं विश्वस्तरीय निबन्धकार के रूपों में अजर-अमर हो चुके हैं, किन्तु उनकी आलोचना भी आत्मवादी है तथा उनके निबन्ध भी आत्मवादी हैं; दोनों ही विधाओं में वे वस्तुवादी कहीं नहीं

---

[1] पश्चिम को भारतीय संगीत की आवश्यकता है, भारत को पाश्चात्य संगीत की नहीं, क्योंकि वह अपने-आप में पूर्ण है।

हैं। वे परम्परावादी, शास्त्रवादी एवं आदर्शवादी आलोचक एवं निबन्धकार हैं तथा प्रेरणा एवं स्फूर्ति प्रदान करते हैं। यद्यपि गहन इतिहासबोध, विकसित दर्शनबोध एवं तटस्थ वस्तुवाद की दृष्टियों से उनका साहित्य बहुत सन्तोषजनक नहीं है तथा अधुनातनता उन पर अनेक शंकाएँ करने का अधिकार रखती है, तथापि अपनी निष्ठा, तेजस्विता, स्थापनाशक्ति एवं प्रभावान्विति के कारण वे समग्र हिन्दी-साहित्य की प्रथम श्रेणी की विभूतियों में सदा-सर्वदा गण्य भी रहेंगे, मान्य भी। हिन्दी-आलोचना पर तो वे आकाश की तरह छाए थे, छाए हैं तथा छाए रह सकते हैं। वैश्विक प्रतिभा की दृष्टि से वे बेकन, हैज़्लिट इत्यादि के स्तर के विचारात्मक निबन्धकार एवं आर्नोल्ड, रिचर्ड्स इत्यादि के स्तर के आलोचक माने जाते रहेंगे।

रूपनारायण पांडेय 'कमलाकर'

'निगमागम-चन्द्रिका', 'नागरी-प्रचारक', 'इन्दु', 'माधुरी' एवं 'सुधा' के सम्पादनों एवं बांग्ला, संस्कृत इत्यादि से अनुवादों में काव्य-प्रतिभा के बिखर जाने के कारणों से पारम्परिक ब्रजभाषा एवं नव्य खड़ीबोली के एक उल्लेखनीय कवि रूपनारायण पांडेय 'कमलाकर' (1884-1959 ई., लखनऊ—मूलस्थान, नेगासों[1], जनपद रायबरेली) की बड़ी क्षति हुई। 'पराग' के कवि के रूप में रूपनारायण पांडेय ने आदर्शवादी युग के एक समर्थ प्रकृति-गायक का गौरव प्राप्त किया है। उनकी 'दलित-कुसुम', 'वन-विहंगम' इत्यादि प्रकृतिपरक कविताएँ अपने समय में बहुत प्रसिद्ध रहीं। उनकी 'एकलव्य' शीर्षक कविता चिरस्मरणीय है। वे कुसुम के प्रमुख कवि हैं। आदर्शवादी युग के कवियां में श्रीधर पाठक एवं हरिऔध, लोचनप्रसाद पांडेय एवं मुकुटधर पांडेय (बन्धुद्वय), रूपनारायण पांडेय एवं रामनरेश त्रिपाठी प्रभृति ने मनोहारी प्रकृतिकाव्य रचा था, जिसका विकास पन्त में हुआ। रूपनारायण-पांडेय ने छायावाद-रहस्यवाद का भरपूर स्वागत करते हुए आ. शुक्ल के इन पर प्रहार का करारा जवाब दिया था। प्रसाद, प्रेमचन्द, निराला, सनेही, हितैषी, श्रीवर (श्रीनारायण चतुर्वेदी) इत्यादि से उनकी घनिष्ठ मित्रता रही। डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने प्रथम कवितासंग्रह 'शतदल' उन्हें समर्पित किया तथा 'अनुपमा' (कवितासंग्रह—निराला का एक उपन्यास 'अनुपमा' भी है) में 'कमलाकर जी के प्रति' एक सार्थक घनाक्षरी रची है। रूपनारायण पांडेय के शिष्यों में उपन्यासकार स्व. अमृतलाल नागर एवं कवि डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' को प्रमुख माना जाता है। पांडेय जी की कविता से दो उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. बुद्धि-विवेक की जोति बुझी है, ममता-मद-मोह घटा छबि घेरी।
है न सहारौ, अनेकन हैं ठग, पाप के पन्नग की रहै फेरी।।
त्यों अभिमान को कूप इतै, उतै कामना-रूप सिलान की ढेरी।
तू चलु मूढ़ सँभारि अरे मन! राह न जानी है रैनि अँधेरी।।

2. अहह! अधम आँधी आ गई तू कहाँ से? प्रलय घन घटा सी छा गई तू कहाँ से?
पर-दुख-सुख तूने, हा! न देखा न भाला, कुसुम अधखिला ही, हाय! यों तोड़ डाला।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद

ऐतिहासिक महत्त्व की 'आत्मकथा', अप्रतिम संस्मरण-ग्रन्थ 'बापू के क़दमों में', राजनैतिक-ऐतिहासिक ग्रन्थ 'खंडित भारत' ('इंडिया डिवाइडेड' का अनुवाद) तथा भाषणसंग्रह 'संस्कृत का अध्ययन', 'साहित्य, शिक्षा और संस्कृति', 'भारतीय शिक्षा', 'गाँधीजी की देन' इत्यादि के कारण जनता के 'देशरत्न' तथा प्रशासन के 'भारतरत्न' डॉ. राजेन्द्रप्रसाद (3 दिसम्बर, 1884-28 फरवरी, 1963, जन्म जीरादेई जनपद सारन, निधन पटना, बिहार) राष्ट्रीय नेताओं में हिन्दी के सबसे सफल साहित्यकार हैं। मैं उनको हिन्दी का सर्वोत्तम आत्मकथाकार एवं सर्वोत्तम संस्मरणकार मानता हूँ, क्योंकि 'आत्मकथा' स्फीति, ऐतिहासिकता एवं प्रेरणा के त्रित् में सर्वोत्तम है एवं

---

[1] गर्गाश्रम (गेगासों) गंगातट पर स्थित है। 'गेयासों के पँड़ि' प्रसिद्ध हैं। अवधेश मालवीय (कानपुर-वासी कवि) गेगासों में पैदा हुए थे :

है गर्गाश्रम या कि गेगासों भगीरथि के कल कूल पै पावन।
रायबरेली ज़िला कहिए, अवधेश वही मम ग्राम सुहावन।।

गेगासो के लगभग सामने-सी, गंगा-पार, प्रख्यात असनी (अश्विनी) जनपद फ़तेहपुर में पड़ती है।

'बापू के क़दमों में' की गरिमा अतुलनीय। उनके भाषण निबन्ध लगते हैं तथा कोई चाहे तो उन्हें श्रेष्ठ विचारात्मक-निबन्धकार भी मान सकता है।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद छात्रकाल से ही हिन्दीप्रेमी थे, यद्यपि आरम्भ में उस समय एवं कायस्थ परिवार के कारणों से उर्दू-फ़ारसी भी पढ़नी पड़ी थी। 1990 ई. में हिन्दी-साहित्य सम्मेलन की स्थापना (10 अक्टूबर को मालवीय जी की अध्यक्षता में काशी में प्रथम अधिवेशन) के समय से ही वे इससे जुड़े और 1926 ई. में नागपुर अधिवेशन के अध्यक्ष भी बने। वे काशी नागरी-प्रचारिणी सभा से भी सम्बद्ध रहे, उसके अध्यक्ष भी हुए। 1910 ई. में 'भारतोदय' में उनका प्रथम लेख 'समाज-संशोधन' प्रकाशित हुआ। सम्पादक आ. पद्मसिंह शर्मा को उनका साहित्यिक-गुरु माना जा सकता है। वे अंग्रेज़ी-प्रेमी नेहरू को भी हिन्दी में पत्र लिखते थे, जैसाकि 'कुछ पुरानी चिट्ठियाँ' (बंच ऑफ़ ओल्ड लेटर्स) से स्पष्ट है। नेहरू के विदेशवाद में उन्हें रुचि न थी। दोनों में सदैव मतभेद रहे और दोनों ने कन्धा मिलाकर काम किया।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद परम हिन्दी-वीर राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन का बहुत सम्मान करते थे तथा राष्ट्रपति-रूप में रुग्ण राजर्षि को 'भारतरत्न'[1] से अलंकृत करने सदलबल प्रयाग गए थे। कई बार कांग्रेस-अध्यक्ष, संविधान परिषद् के अध्यक्ष (भारतीय संविधान के सर्वोपरि निर्माता), भारत के कृषि मन्त्री एवं राष्ट्रपति के विविध उच्च पदों पर रहकर भी वे हिन्दी-हित नहीं भूले। टंडन एवं उनके उद्योग से सरदर पटेल हिन्दी-समर्थक बने तथा उर्दू के छद्म-रूप हिन्दुस्तानी से राष्ट्रभाषा की रक्षा हो पाई। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद का कृतित्व उनकी महनीय-विनम्रता एवं अस्मितानिष्पन्न शालीनता में तो बेजोड़ है ही, अपनी सहज-साहित्यिक भाषा में भी प्रशस्य है। कुछ सूत्र प्रस्तुत हैं :

1. राष्ट्र का प्राण साहित्य होता है और उस साहित्य का निर्माणकर्ता समाज का बहुत बड़ा सेवक होता है।
2. भारतवर्ष में अनेक भाषाएँ हैं और अनेक धर्म हैं तथापि सबकी तह में संस्कृति का एक ही स्रोत बहता है, जिससे जो चाहता है कुछ खोकर अपनी प्यास बुझाता है।
3. किसी के दिल में यह शक़ नहीं होना चाहिए कि हिन्दी-प्रचार का अर्थ प्रान्तीय भाषाओं के लिए बाधक या घातक हो सकता है।
4. कोई विदेशी भाषा हमारी संस्कृति और हमारे स्वरूप तथा भाव को व्यक्त करने की शक्ति नहीं रखती।
5. देश की स्वतन्त्रता के लिए एक देशी भाषा का राष्ट्रभाषा होना आवश्यक है।
6. हिन्दी को हम राष्ट्रभाषा मानते हैं और राष्ट्र के कामों में उसका व्यवहार अनिवार्य कर देना हमारा ध्येय है।
7. हिन्दी चिरकाल से ऐसी भाषा रही है, जिसने मात्र विदेशी होने के कारण किसी शब्द का कभी बहिष्कार नहीं किया।

मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (14 अगस्त, 1886—12 दिसम्बर, 1964 ई.)[2] आधुनिक भारत के सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वाधिक लोकप्रिय कवियों में एक थे, जिनका स्थान बांग्ला के रवीन्द्र, उर्दू के इक़बाल, तमिल के भारती, मलयालम के वल्लत्तोल की कोटि का है, यद्यपि राजनैतिक कारणों से रवीन्द्र[3] एवं इक़बाल को भारत-बांग्लादेश एवं भारत-पाकिस्तान में 'स्मारक', 'संस्थानामकरण', 'भाषणमाला' एवं 'भाषण' इत्यादि का लाभ अधिक प्राप्त हुआ है तथा इनके 'जन गण मन' एवं 'सारे जहाँ से अच्छा' गीत प्रचार-माध्यमों के बल पर अत्यन्त 'लोकप्रिय' बना दिए गए हैं। रवीन्द्र की प्रान्त-गणना का भारत टुकड़े-टुकड़े हो गया, उनकी धर्म-मज़हब-गणना का राष्ट्र साम्प्रदायिकता का विकट क्षेत्र बनाया जा चुका है। उसी राष्ट्र का जीवन समुन्नत एवं गौरवशाली हो सकता है जो केवल राजनीतिज्ञों की पूजा में ही न चुकता चलता हो वरन् दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, कवियों, लेखकों, कलाकारों का सम्यक् आदर करता चले , उनके समता

---

[1] मोरारजी भाई रणछोड़ भाई देसाई को मुम्बई में घर पर 24 अगस्त, 1991 को 'भारतरत्न' से अलंकृत किया गया, किन्तु संयुक्त सचिव द्वारा। आह, ''अब न दुनिया में आएँगे 'वो' लोग''। सम्माननीय ही समान कर सकता है।

[2] सोमवार, श्रावण शुक्ल 3, 1943 वि. (14 अगस्त, 1886) को जन्म। 11-12 दिसम्बर की रात्रि (अन्तरराष्ट्रीय दृष्टि से) 12 दिसम्बर, 1964 को देहान्त। जन्म-मरण चिरगाँव में ही।

[3] 10-8-1986 के 'द टाइम्स ऑफ़ इंडिया' में स्वर्गीय डॉ. शिशिर कुमार घोष ने बिना पढ़े-समझे रवीन्द्र-पूजा का प्रशस्य प्रत्याख्यान किया था।

एवं एकता के चिन्तन तथा सौन्दर्यबोध से भरपूर लाभ उठाता चले। दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, कवियों, लेखकों, कलाकारों का यह कर्तव्य है कि वे राजनीतिज्ञों की शक्ति (धनशक्ति समेत) से अभिभूत न हों। खेद है कि भारत में वे अभिभूत हुए हैं। जब तक पुराने नेताओं की माला फेरी जाती रहेगी, राष्ट्र दुर्वल रहेगा।। आज भारत को तथाकथित महापुरुषों की नहीं प्रत्युत ऐसे वास्तविक नेता की आवश्यकता है जो राष्ट्र को वास्तविक-धर्मनिरपेक्ष एवं सच्चा-लोकतान्त्रिक रूप प्रदान कर सके। यह कार्य छुटभैयों के बूते का नहीं। ठोस लोकप्रियता में मैथिलीशरण की अप्रतिमता विस्मयकारिणी है, क्योंकि साम्प्रदायिक या राजनैतिक लाभों से रहित होते हुए भी उनके काव्य सबसे अधिक बिके और पढ़े गए हैं। अगस्त, 1986 के पटना समारोह में बिहार के राज्यपाल वेंकटसुब्बैया ने कहा था कि दक्षिण में मैथिलीशरण गुप्त उत्तर भारत के कवियों में सर्वाधिक लोकप्रिय थे तथा अनेक लोगों ने उनके ग्रन्थ, विशेषतः 'भारतभारती', पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी थी। गुप्त जी का काव्य विशुद्ध भारतीय है। इसलिए वे भारतीय संस्कृति के प्रति अटल निष्ठा से निष्पन्न दक्षिण में विशेष लोकप्रिय हुए। उनकी 'मातृभूमि' एवं 'यह पुण्य-पताका फहरे' जैसी कविताएँ 'जन गण मन' एवं 'सारे जहाँ से अच्छा' से श्रेष्ठतर भी हैं, गहनतर भी हैं।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनके युग के हरिऔध, मैथिलीशरण, प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि शीर्षस्थ साहित्यकार प्रायः शासन-सत्ता से अभिभूत नहीं हुए—रत्नाकर ने तो युग से कोई विशेष सरोकार ही नहीं रखा क्योंकि वे प्रकृत्या परम्परावादी थे और उनमें वह शक्ति विद्यमान थी जो परम्परा का रथ युग की आँधी के ठीक बीचोबीच से निकाल ले जाती है। प्रेमचन्द, विशेषतः अपने जीवन की अन्तिम दशाब्दि में, राजनीति से प्रभावित हुए अवश्य थे, किन्तु वह प्रभाव सत्ता-सम्बद्ध न होकर साम्यवाद-सम्बद्ध था, जो अब साम्यवाद के कालातीत हो जाने के कारण स्वयमेव कालातीत हो गया है, किन्तु जिसका ऐतिहासिक महत्त्व स्वयंसिद्ध है। शेष सारे साहित्यकारों ने राष्ट्रवाद, त्याग, बलिदान, सेवा एवं स्वावलम्ब को गतिशील करके राष्ट्र की अत्यन्त महान् सेवा की। मैथिलीशरण ने कृषि एवं श्रम की महिमा के नवगान गाकर राष्ट्र पर व्यापक प्रभाव डाला :

1. हम राज्य लिए मरते हैं!
सच्चा राज्य परन्तु हमारे कृषक ही करते हैं!
जिनके खेतों में है अन्न,
कौन अधिक उनसे सम्पन्न?
पत्नी-सहित[1] विचरते हैं वे, भव-वैभव भरते हैं।
हम राज्य लिए मरते हैं!

वे गोधन के धनी उदार,
उनको सुलभ सुधा की धार
सहनशीलता के आगर वे श्रम-सागर तरते हैं।
हम राज्य लिए मरते हैं। (साकेत, नवम सर्ग)

2. स्वावलम्ब की एक झलक पर न्योछावर कुबेर का कोष।
(पंचवटी)

3. चलो नदी को, घड़े उठो लो, करो और पुरुषार्थ...
(पंचवटी)

उनके मानवतावाद से संपृक्त प्रेरक राष्ट्रकाव्य की दो बानगियाँ पेश हैं :

1. यह पुण्य पताका फहरे,
मुक्त वायुमंडल में अपनी मानस-लहरी लहरे! कर्म-क्षेत्र हरा है अपना, ज्ञान शुभ्र मनमाना,
बलि बलवती विनीत भक्ति का कल केसरिया बाना, इस त्रियोग के तीर्थराज में हमें स्वधर्म निभाना,
अपनी स्वतंत्रता से सबका मुक्ति-मंत्र है पाना! काल-चक्र यह हाथ हमारे, लक्ष्य न क्यों थक थहरे,
यह पुण्य पताका फहरे!

---

[1] कृषकों की पत्नियाँ सदैव यथाशक्य सहयोग देती हैं—निराई, कटाई इत्यादि में विशेषतः (और ऐसा 'कमज़ोर वर्गों' में बहुत होता है)।

2. राम! तुम्हारे इसी धाम में नाम, रूप, गुण, लीला लाभ,
इसी देश में हमें जन्म दो, लो प्रणाम है नीरजनाभ!
धन्य तुम्हारा भूमि-भार भी जिस पर तुम अवतार धरो,
मुक्ति-मुक्ति क्या माँगें तुमसे, मुझे भक्ति दो ओ अमिताभ!

मैथिलीशरण गुप्त की रवीन्द्र, गाँधी, नेहरू, राजेन्द्रप्रसाद इत्यादि से अच्छी मैत्री थी। गाँधी, नेहरू इत्यादि उनके कारण चिरगाँव गए थे। राधाकृष्णन् ने ठीक ही कहा था, राष्ट्रपति और राष्ट्रकवि में राष्ट्रकवि श्रेष्ठतर है, क्योंकि राष्ट्रपति होते ही रहते हैं किन्तु राष्ट्रकवि अनेक नहीं होते। कवि मानवीय प्रवृत्तियों की थाती सुरक्षित रखते हैं, राष्ट्र की संस्कृति को जीवन्त एवं प्रवाहसम्पन्न बनाए रहते हैं। भारत के नेत्र राम एवं कृष्ण की छवि को उभारने वाले कौन हैं? वाल्मीकि एवं व्यास! हिन्दी के नेत्र तुलसी एवं सूर के कारण ही हम भारत के नेत्र राम एवं कृष्ण के सामने खड़े हैं! राष्ट्र का सच्चा इतिहास कवियों एवं लेखकों की वाणी में मिलता है, दरबारी इतिहासकारों के पूर्वाग्रहग्रस्त ग्रन्थों में तो सत्ता का दबदबा ही इतिहास का रूप ले लेता है या वाद का विवाद इतिहास को ढँक लेता है। इतिहासकार विन्सेन्ट ए. स्मिथ ने अकबर से भी श्रेष्ठतर घोषित करते हुए तुलसी को मुग़ल काल का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति माना, क्योंकि अकबर का साम्राज्य पोथियों में बन्द है और तुलसी का जन-जन-व्याप्त! लोकनायक जयप्रकाश नारायण ने कहा था, यह कहना ग़लत है कि तुलसी अकबर के समय हुए थे; यह कहना ठीक है कि अकबर तुलसी के समय में हुए थे। छत्रसाल ने भूषण की पालकी में कन्धा लगा दिया था क्योंकि (उन्हीं के शब्दों में “कीरति के बिरवा कवि हैं इनको कबहूँ कुम्हिलान न दीजै”!) कवि की वाणी मानवता की बाणी बन जाती है!

मैथिलीशरण गुप्त अपने समय में भारत के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे तथा उन्हें अनेक सम्मान भी प्राप्त हुए थे, जिनमें लगातार दो बार की राज्यसभा-सदस्यता (1952-64 ई.), पद्मविभूषण का अलंकार, डी.लिट्. की सम्मानित उपाधि, ‘साकेत’ पर उस समय का मानक मंगलाप्रसाद पुरस्कार (जो हिन्दी का नोबेल प्राइज़ था), गाँधी द्वारा लोकर्पित मैथिली-मान-ग्रन्थ, राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद द्वारा भेंट किया गया मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय हैं। कालान्तर में चिरगाँव, लखनऊ, ग्वालियर, कानपुर, ग्वालियर के निकट डबरा (21 जून, 2002) इत्यादि में प्रतिमा-प्रतिष्ठा इत्यादि उल्लेखनीय हैं। ताराचन्द पाल ‘बेकल’[1] ने ‘राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त’ (1987 ई.) शीर्षक स्फीत जीवनकाव्य लिखकर उन्हें विशेषतः तुलसी एवं निराला तथा सामान्यतः मीराँ (मसरा) और प्रेमचन्द के साथ प्रबन्धकाव्य-नायक भी बना दिया है। सूर्यप्रकाश गोस्वामी का ‘मैथिलीमानस महाकाव्य’ (1990 ई.) भी विद्यमान है। मुंशी अजमेरी ने 1936 ई. में ‘प्रताप’ में छह लेखों के साथ गुप्तजी की जीवनी पर जो प्रस्थान-कार्य किया था उसे स्व. डॉ. प्रभाकर माचवे ने ‘मैथिलीशरण गुप्त’ पुस्तिका द्वारा अध्यवसायपूर्वक गतिशील किया है। डॉ. उमाकान्त गोयल ने ‘मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता’ शोधग्रन्थ लिखा है। डॉ. धीरेन्द्र ब्रह्मचारी ने ‘गुप्तजी के काव्य की कारुण्य-धारा’ एक उपयोगी ग्रन्थ है। किन्तु यह सब, यहाँ तक कि राष्ट्रकवि का गौरव भी, उनके खड़ीबोली के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाने की तुलना में प्रायः कुछ न था—‘पथ के साथी’ में महादेवी ने इसे व्यंजित किया है, ‘पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण’ में दिनकर ने इसे स्पष्ट किया है, राज्यसभा-सदस्यता से मुक्त होने पर सम्मानार्थ हुए आयोजन में राधाकृष्णन् ने इसे स्वीकार किया था, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के शोक में ‘हा द्विवेदी जी’ कविता में सनेही[2] ने “जिसने कि पता दिया मैथिली का अब भी जिसका न कहीं

---

1. बेकल उत्साही का स्मरण आता है।
2. डॉ. जगदीशनारायण त्रिपाठी ने एक बार मुझसे कहा था कि सनेही मैथिलीशरण से कम नहीं हैं, मानस संगम कानपुर के व्यक्तित्व-विवादस्पद हिन्दी-सेवी श्री बद्रीनारायण तिवारी ने सनेही के ललित छन्दों का हू-ब-हू पाठ कराने वाले वीरेश कात्यायन के एक सफल कार्यकलाप के अनन्तर मुझसे कहा था कि गुप्तजी के शब्दचयन में यह लालित्य कहाँ! किन्तु स्वयं सनेही के कथन का ध्यान किसी ने न रखा। मैथिलीशरण वाल्मीकि के प्रतिनिधि हैं, व्यास के प्रतिनिधि हैं; न कि कालिदास के, भवभूति के। वे पाट के कवि हैं, गहराई के नहीं; किन्तु उनका भारी पाट कहीं उथला-छिछला नहीं है। उनका कवि ऊर्मिला, कैकेयी, भरत इत्यादि के ‘प्रस्थान’ का कवि बन गया है, जिसका प्रभाव अतुलनीय सिद्ध हुआ है। प्रसाद ने इन्हें ‘इन्द्रजाल’ समर्पित किया, निराला उनके लिए घड़ा उठाकर संगम से गंगाजल लाने जाते थे, महादेवी ‘पथ के साथी’ के रूप में उनकी प्रेरणा भी स्वीकारती हैं और वर्चस्व भी, दिनकर उन्हें प्रमुख कवि मानते हैं (पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण), अज्ञेय उनके पैर छूते थे। मैथिलीशरण न तुलसी थे, न सूर, न केशव; किन्तु वे खड़ीबोली के श्रेष्ठतम कवि थे तथा अब भी हैं।

कोई सानी'' लिखकर इसे प्रतिपादित किया था; और इसे सर्वोपरि मान्यता महाकवि पन्त ने प्रदान की है (जिसकी अतिरंजना गुप्त के प्रकट व्यापकत्व की सूचना तो देती ही है) :

सूर सूर तुलसी शशि लगता मिथ्यारोपण,
स्वर्गंगा छायापथ में कर आपके भ्रमण।

मैथिलीशरण गुप्त वैश्य थे। वैश्यों ने हिन्दी की महान् सेवा की है। भारतेन्दु, राधाकृष्णदास, श्रीनिवासदास, रत्नाकर, व्रजरत्नदास, मैथिलीशरण, सियाराशरण, प्रसाद, राय कृष्णदास, वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रभुदयाल मीतल, दीनदयाल गुप्त, माताप्रसाद गुप्त, डॉ. किशोरीलाल गुप्त, भगवतशरण अग्रवाल, काका हाथरसी इत्यादि का हिन्दी-जगत् सदैव ऋणी रहेगा। झाँसी जनपद ने वृन्दावनलाल वर्मा के रूप में एक अन्य अमर साहित्यकार भी प्रदान किया है और सियारामशरण गुप्त तो मैथिलीशरण गुप्त के अनुज ही हैं। आधुनिक भारतीय इतिहास के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी, हॉकी के जादूगर ध्यानचन्द भी झाँसी के थे। और काशी में जन्मी, क्षत्राणियों में क्षत्राणी किन्तु जन्म से ब्राह्मणी, ग्वालियर के निकट शहीद हुई, विद्युत्-वीरांगना, मानव-जाति के इतिहास की एक सर्वश्रेष्ठ नारी लक्ष्मीबाई भी झाँसी के वागर्थविव संपृक्त हैं। ''झाँसी गले की फाँसी'' का सीमित-व्यावहारिक सत्य झाँसी की महानता पर कोई प्रभाव नहीं डाल पाता। मैथिलीशरण के कारण झाँसी जनपद का चिरगाँव वास्तव में चिरगाँव बन गया। बुन्देलखंड वास्तव में बुलन्दखंड है। मेवाड़ का ध्यान आता है : कालिंजर चित्तौड़ के समतुल्य है, लक्ष्मीबाई प्रताप के; किन्तु मेवाड़ को तुलसी, केशव, बिहारी, पद्माकर, मैथिलीशरण जैसे महाकवि, वृन्दावन वर्मा जैसा अमर ऐतिहासिक उपन्यासकार और ध्यानचन्द जैसा सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी नहीं प्राप्त! मैथिलीशरण बुन्देलखंड की एक बुलन्द हस्ती थी। उनके पिता सेठ रामचरण गुप्त पर लक्ष्मी-सरस्वती दोनों की कृपा थी। वे राम के मधुरोपासक थे तथा कनकलता के सखी-रूप में कविता भी करते थे—कृष्ण के मधुरोपासकों में ललितकिशोरी, ललितमाधुरी, चन्द्रसखी इत्यादि प्रसिद्ध हैं किन्तु राम के मधुरोपासक भी हुए हैं, भले ही वे कम हों। उनके पाँच पुत्रों में मैथिलीशरण एवं सियारामशरण प्रसिद्ध कवि सिद्ध हुए। उन्होंने नाम मिथिलाधिपन्दिनीशरण रखा था, पाठशाला के एक अध्यापक ने पंजिका का छात्रनाम खाने में अँटता न देखकर इसे मैथिलीशरण कर दिया। उनके गुरु के पिता रामसहाय द्विवेदी ने पुत्र का नाम महावीर सहाय रखा था, जिसे पाठशाला के एक अध्यापक ने ही महावीरप्रसाद कर दिया था। एक अतिथि ने अपने नाम से बालक गोसाईं दत्त को इतना प्रभावित किया कि वह सुमित्रानन्दन बन गया। पता नहीं, झारखंडेप्रसाद (घरेलू नाम खाँड़ेराव) जयशंकर प्रसाद कैसे बने थे?[1] रवीन्द्र पाठशाला को कारागार मानते थे, मैथिलीशरण इस दृष्टि से कुछ ही नरम थे। वैसे, स्कूल गए ज़रूर, पर गम्भीरता से नहीं—बीड़ी के चसके के साथ। किन्तु स्वाध्याय के बल पर उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, बांग्ला, गुजराती, फ़ारसी, उर्दू इत्यादि अनेक भाषाओं का ज्ञान प्राप्त किया। उनका संस्कृत, हिन्दी एवं बांग्ला के साहित्यों का ज्ञान पर्याप्त स्फीत था। आदर्शवादी युग के साहित्यकार (आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, हरिऔध, रत्नाकर, प्रेमचन्द, आ. रामचन्द्र शुक्ल, मैथिलीशरण इत्यादि) बहुभाषी थे और इस दृष्टि से उन्होंने सुधारवादी युग के साहित्यकारों (भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट इत्यादि) की बहुभाषा-विज्ञता की परम्परा को विकसित किया था। कालान्तर में यह परम्परा कुछ शिथिल पड़ गई, यद्यपि अंग्रेज़ी का दबदबा अवश्य बढ़ा। उनके जीवन की सबसे बड़ी घटना आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी से परिचय की थी। यह परिचय द्विवेदीजी के 'सरस्वती' सम्पादक बनने से पहले तब हुआ था जब वे रेलवे विभाग के बाबू के रूप में झाँसी में रहे थे। झाँसी हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान की अधिकारिणी है। वैसे सारा बुन्देलखंड[2] राजा गंड, राज परमाल, वीर आल्हा, योद्धा मलखान, जुझारू ऊदल, शेरशाह-हंता राष्ट्र-वीर भारतीचन्द्र, राजा हरदौल, रानी सारंधा, वीर-शिरोमणि छत्रसाल, विश्व-इतिहास की महानतम वीरांगना लक्ष्मीबाई इत्यादि के कारण अतुलनीय है ही, किन्तु साहित्य को भी उसकी देन जगनिक, तुलसीदास, केशवदास, बिहारी, लालकवि, पद्माकर; ठाकुर (तृतीय), बोधा, मैथिलीशरण, सियारामशरण, मुंशी अजमेरी, वृन्दावनलाल वर्मा, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' इत्यादि के कारण सर्वथा अप्रतिम है। आचार्य उस समय तक कवि, आलोचक एवं निबन्धकार के रूप में विख्यात हो चुके थे। मैथिलीशरण उस महान् युग-गुरु एवं अप्रतिम युग-प्रवर्तक के पट्ट-शिष्य थे। आचार्य के प्रति उनकी श्रद्धा सदैव एकरस

---

[1] मैं नरम या कठिन नाम से अरुचि के कारण रामप्रसाद हाई स्कूल परीक्षा का प्राइवेट प्रत्याशी प्रारूप भरते समय 1947 ई. में अचानक ही और स्वयं ही बन गया था। 1948 ई. में हाई स्कूल पास किया तो अनेक नामों के बाद यह पेटेन्ट हो गया, यद्यपि बाद में भी आनन्दशंकर नाम से 'पथ पर' उपन्यास (1955 ई.) एवं धर्मयुग' में लेख-कविता (1957-58 ई.) लिखा।

[2] आज बुन्देलखंड में उत्तर प्रदेश के जालौन, हमीरपुर, बाँदा, चित्रकूट, महोबा, झाँसी, ललितपुर इत्यादि तथा मध्य प्रदेश के ओरछा, छतरपुर, दतिया इत्यादि जनपद हैं, किन्तु पहले ग्वालियर, खजुराहो इत्यादि भी थे।

रही, जिसे 1910 ई. में प्रकाशित 'जयद्रथवध' खंडकाव्य के समर्पण में देखा जा सकता है, 'साकेत' के 'निवेदन' में देखा जा सकता है, उत्कृष्टतर-परवर्ती कविता ''भाव-भूतल को भेद व्योम में उठने वाले शाल प्रणाम'' में देखा जा सकता है :

1. पाई तुम्हीं से वस्तु जो कैसे तुम्हें अर्पण करूँ? पर क्या परीक्षा रूप में पुस्तक न यह आगे धरूँ?
अतएव, मेरी धृष्टता पर ध्यान कुछ मत कीजिए, कृपया इसे स्वीकार कर कृत्कृत्य मुझको कीजिए।
2. करते तुलसीदास भी कैसे मानस-नाद महावीर का यदि उन्हें मिलता नहीं प्रसाद।

और यह श्रद्धा उनके जीवन के अन्तिम वर्ष तक बनी रही—24 फरवरी, 1964 को राज्य सभा के प्रवेश-द्वार पर वार्ता हुई तो आचार्य के जन्म-शताब्दी-वर्ष का प्रसंग भी उठा, जिसमें उन्होंने बतलाया कि संचारमन्त्री से डाक-टिकट निकालने के लिए कह दिया है। यह सुन्दर डाक-टिकट निकला भी था। वैसे, आचार्य के लिए टिकट या मूर्ति या स्मारक का क्या महत्त्व?—सारी खड़ीबोली-कविता एवं सारा मानक गद्य ही उनका स्मारक है, किन्तु बिन्दु जनकर्तव्यपूर्ति का होता है। मैथिलीशरण का व्यक्तिगत जीवन दुःख से भरा था। दो पत्नियाँ नहीं रहीं। उनकी सन्तानें नहीं रहीं। 1924 ई. में सत्यदेवी से तीसरा विवाह किया। किन्तु 'जिया' को भी आठ सन्तानों का चिरवियोग झेलना पड़ा। 1936 ई. में 'जिया' ('बड़ी दीदी' के रूप में प्रसिद्ध) ने एकमात्र पुत्र ऊर्मिलाचरण को जन्म दिया। पति-पत्नी ने बड़े धैर्य से पारिवारिक आघात झेले। 'जिया' एक महान् नारी थीं। उनका देहान्त 6 दिसम्बर, 1988 को हुआ। विवाह के समय वे पति से काफ़ी छोटी थीं।

मैथिलीशरण की विनम्रता अद्‌भुत थी। जिस व्यकित को बुद्ध से गाँधी तक, रवीन्द्र से नेहरू तक, कोई अभिभूत न कर सका था, जो अर्द्धशताब्दि तक महाकवि एवं राष्ट्रकवि के रूपों में छाया रहा, जो भारत का सर्वाधिक लोकप्रिय कवि था, जो सर्वसम्मानित महापुरुष बन चुका था, वह पहले बुन्देलखंडी ग्रामीण तथा कालान्तर में खद्दर के धोती-कुर्ता-टोपी के सरलतर परिधान में ही नहीं रहता था, किसी भी अतिथि का दिल खोलकर स्वागत करता था तथा उसके बैठ जाने पर ही बैठता था—मैंने स्वयं इसका अनुभव प्राप्त किया था। जैनेन्द्र ने 'मैथिलीशरण' एव नगेन्द्र ने 'दद्दा : एक महान् व्यक्तित्व' में उनके सहज अद्वैत को प्रशस्य रूप में विवृत किया है। आ. क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने मुझे बताया, एक बार अर्थकृच्छतावश उन्होंने अपने आवास के क्रय का विज्ञापन निकाला तो संयोगात् गुप्तजी से सौदा किया। पाँच सौ की (उस समय की) बड़ी राशि बयाने में ले ली। किन्तु 'सुमन' जी की माँ के बेघर करने मार्मिक उद्‌गार से गुप्तजी इतने प्रभावित हुए कि गृहक्रय भी नहीं किया और पाँच सौ भी नहीं लिए—चुपचाप तकिए के नीचे रख आने पर, पता लगते ही, पर भिजवा दिए![1] मैथिलीशरण बौद्धिककाल के तुलसी थे—साधना के कवि। उन्हें 'करहुँ प्रनाम जोरि जुग पानी'' की संस्कृति उत्तराधिकार में प्राप्त हुई थी। मैथिलीशरण आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के शिष्य थे; उनकी विनम्रता गुरुदत्त भी थी।

यद्यपि डॉ. सत्येन्द्र कृत 'गुप्तजी की कला' एवं श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' कृत 'गुप्तजी की काव्यधारा', शीर्षक प्रस्थान-ग्रन्थों में मैथिलीशरण की प्रतिभा के वाह्यान्तर पक्षों का प्रशस्य उद्‌घाटन किया गया है तथा डॉ. नगेन्द्र कृत 'साकेत : एक अध्ययन', डॉ. कन्हैयालाल सहल[2] कृत 'साकेत के नवम सर्ग का काव्य-वैभव' एवं श्री फूलचन्द जैन 'सारंग' कृत 'साकेत की टीका' अपने संकीर्ण सीमा में अतीव उपयोगी हैं—डॉ. उमाकान्त गोयल ने बहुत परिश्रम करके अपने शोधप्रबन्ध 'मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता' में उनके साहित्य का साधारण किन्तु व्यापक परिचय कराया है, अधुनातन के एक झंडाबरदार पत्रकार-लेखक डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय ने 'अतीत के हंस : मैथिलीशरण गुप्त' (अमृतलाल नागर कृत उपन्यास 'मानस का हंस' की तर्ज पर किन्तु एकांगी क्योंकि गुप्तजी अतीत-कवि अल्प एवं वर्तमान-कवि अधिक हैं) प्रस्तुत किया है,[3] तथापि राष्ट्रीय एवं वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उनकी विराट् प्रतिभा का सम्यक् आकलन अभी शेष ही है। मैथिलीशरण के काव्य में विरह इत्यादि विषयों पर अनेक शोधकार्य हुए हैं। वे कोटि-कोटि जनता द्वारा आज भी पढ़े जाते हैं। उनके ग्रन्थों के संस्करण-पर-संस्करण निकलते रहते हैं। पता नहीं क्यों, 'लोकप्रिय-बुद्धिजीवियों' ने आई.ए.एस. के पाठ्यक्रम के स्वर्णलोक (एल डोरेडो) से इन्हें ही नहीं प्रत्युत आदर्शवादी युग (प्रचलित भाषा में द्विवेदी-युग) के सारे साहित्य-मनीषियों को निकाल बाहर किया है। सम्भवतः यह भारतप्रेम का दंड है : विजातीयतावादी क्यों न थे?

---

[1] खेद है कि ऐसे सहृदय एवं उदार महाकवि-महापुरुष को श्रीनारायण चतुर्वेदी 'मैथिलीशरण' कह गए! चतुर्वेदीजी आ. महावीरप्रसाद पर भी 'कृपालु' न थे। इस कारण ठाकुर श्रीनाथ सिंह ने उनकी अच्छी ख़बर ली थी।

[2] डॉ. कन्हैयालाल सहल कृत 'आलोचना के पथ पर' ग्रन्थ भी उत्कृष्ट है।

[3] हिन्दी की आधुनिक कविता की दृष्टि से दिनकर कृत 'पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण' प्रौढ़ एवं वस्तुवादी आलोचना का एक श्रेष्ठतम ग्रन्थ है।

स्फोत आयामों के महाकवि

आयामों की व्यापकता में मैथिलीशरण की तुलना न रवीन्द्र कर सकते हैं, न इक़बाल। मैथिलीशरण परिमाण के कवि पहले हैं, गुण के अनन्तर। निस्सन्देह, रवीन्द्र कवि थे, इक़बाल महाकवि थे। किन्तु, निस्सन्देह, मैथिलीशरण महाकवि थे, प्रसाद महाकवि थे। गाँधी के ''हिन्दी में कोई रवीन्द्र नहीं है'' कथन को निराला ने ललकारा था और गाँधी ने अपना अज्ञान स्वीकृत किया था। दक्षिण अफ़्रीका से भारत आने पर गाँधी ने अपने राजनैतिक गुरु गोपालकृष्ण गोखले से उनकी संस्था सर्वेन्ट्स ऑफ़ इंडिया सोसाइटी की सदस्यता की अनुमति चाही थी, किन्तु उन्होंने इस आधार पर मना कर दिया था कि गाँधी का बौद्धिक स्तर उपयुक्त न था। गाँधी विश्वविख्यात नेता थे, जिनका बहुत आदर है। किन्तु सीमाएँ कहाँ नहीं होतीं? हिन्दी-विद्वेषी डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के ''हिन्दी व्याकरणहीन भाषा है'' प्रलाप को 'हिन्दी-शब्दानुशासन' के प्रणेता, हिन्दी के पाणिनि आ. किशोरीदास वाजपेयी ने ललकारा था और चाटुर्ज्या ने अपनी ग़लती मान ली थी। हिन्दी के कवियों एवं विद्वानों को निराला जी एवं किशोरीदास जी से प्रेरणा लेते हुए स्वाभिमानी बनना चाहिए तथा तथ्यसंगत एवं वस्तुपरक सत्य के उद्घाटन में घेंचूपन से काम न लेना चाहिए। इसमें कोइ सन्देह नहीं है कि आयामों की व्यापकता के कारण मैथिलीशरण एवं कलानिष्पन्न दार्शनिकता के कारण प्रसाद रवीन्द्र एवं इक़बाल के सर्वथा समकक्ष हैं। वैसे, कामायनी न रवीन्द्र लिख पाए हैं, न इक़बाल। मैथिलीशरण का काव्यलोक निस्सन्देह अतीव विराट् है, जिसमें वैदिककाव्य, रामकाव्य, कृष्णकाव्य, बुद्धकाव्य, चैतन्यकाव्य, मोहम्मदीकाव्य, तुलसीकाव्य, सिखकाव्य तथा राष्ट्रकाव्य का अतुलनीय समावेश तो है ही (जो भारत जैसे प्राचीनतमवर्गीय एवं स्वभावतः विविधतानिष्पन्न राष्ट्र के राष्ट्रकवि के गौरव के साथ पूरा-पूरा न्याय करता है), यह विश्वकाव्य के प्रशस्य स्पर्श से पुलकित भी है तथा वीरकाव्य, रहस्य-काव्य एवं गीतिकाव्य के प्रभावी उत्कर्ष से निष्पन्न भी। यही नहीं, यह अनुवादकाव्य से सम्पन्न भी है तथा उनकी प्रतिभा को अतीव गौरवशाली रूप प्रदान करता है। प्रस्तुत तालिका से विषय सरलतापूर्वक स्पष्ट हो सकता है :

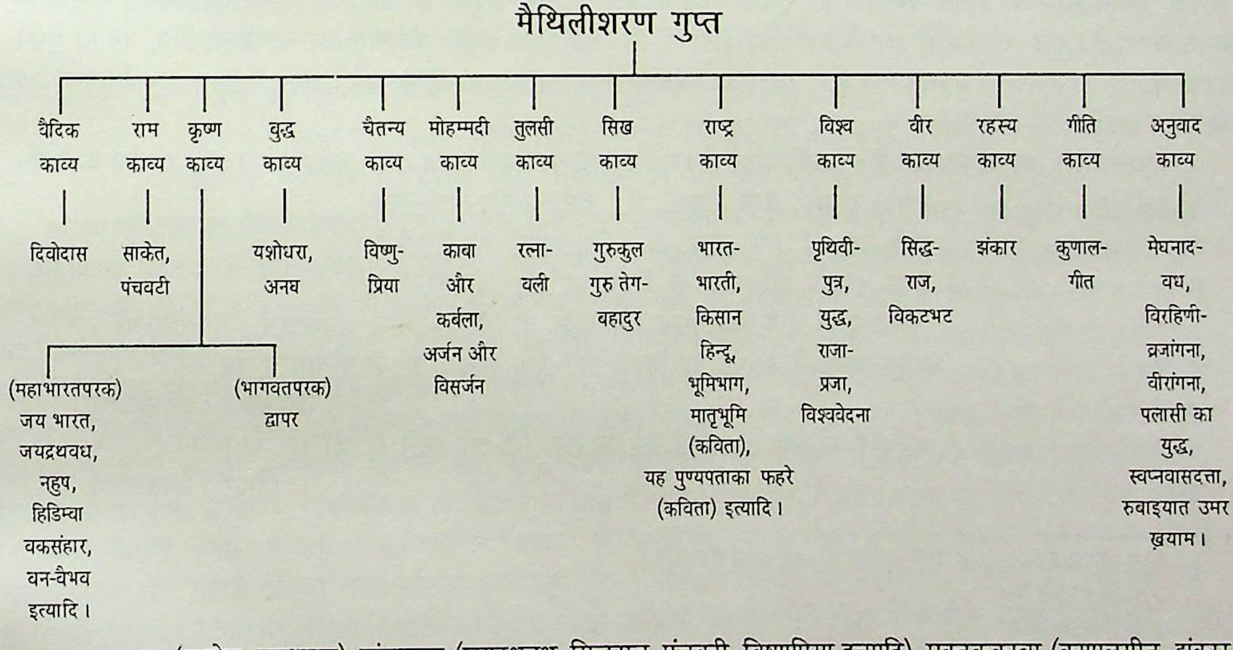
मैथिलीशरण गुप्त
वैदिक काव्य
दिवोदास
राम काव्य
साकेत, पंचवटी
कृष्ण काव्य
(महाभारतपरक) जय भारत, जयद्रथवध, नहुष, हिडिम्बा वकसंहार, वन-वैभव इत्यादि।
(भागवतपरक) द्वापर
बुद्ध काव्य
यशोधरा, अनघ
चैतन्य काव्य
विष्णु-प्रिया
मोहम्मदी काव्य
कावा और कर्बला, अर्जन और विसर्जन
तुलसी काव्य
रत्ना-वली
सिख काव्य
गुरुकुल गुरु तेग-बहादुर
राष्ट्र काव्य
भारत-भारती, किसान हिन्दू, भूमिभाग, मातृभूमि (कविता), यह पुण्यपताका फहरे (कविता) इत्यादि।
विश्व काव्य
पृथिवी-पुत्र, युद्ध, राजा-प्रजा, विश्ववेदना
वीर काव्य
सिद्ध-राज, विकटभट
रहस्य काव्य
झंकार
गीति काव्य
कुणाल-गीत
अनुवाद काव्य
मेघनाद-वध, विरहिणी-व्रजांगना, वीरांगना, पलासी का युद्ध, स्वप्नवासदत्ता, रुबाइयात उमर ख़ैयाम।

महाकाव्य (साकेत, जयभारत), खंडकाव्य (जयद्रथवध, सिद्धराज, पंचवटी, विष्णुप्रिया इत्यादि), मुक्तककाव्य (कुणालगीत, झंकार इत्यादि), चम्पूकाव्य (यशोधरा) जैसे सभी प्रसिद्ध काव्यरूपों में उन्होंने तुलसी के अनन्तर अपूर्व सर्जना की है। छन्दबद्ध, तुकान्त, अतुकान्त (सिद्धराज)[1], गीत प्रभृति अनेक शैलियों को उन्होंने सफलतापूर्वक आज़माया है। यद्यपि वे मात्रिक छन्दों, विशेषतः हरिगीतिका

---

[1] 'सिद्धराज' की छन्दबद्ध अतुकान्त शैली में कविवर पं. भूपनारायण दीक्षित (24 अक्टूबर, 1885—28 जून, 1986) उचित महाकाव्य 'गाँधी-गाथा' उल्लेखनीय है। दीक्षित जी ने प्रियप्रवास की वर्णवृत्त शैली (मन्द्रकान्ता छन्द) में 'कृष्णदूत' खंडकाव्य भी रचा था।

में अधिक रुचि रखते थे, तथापि वर्णिक एवं लयात्मक छन्दों में रचना करते समय वे कहीं भी शिथिल नहीं प्रतीत होतेः समाहिति में उनकी सर्वरसनिष्पत्ति तुलसी का स्मरण कराने लगती है। प्रत्येक दृष्टि से वे महाकवि हैं।

रामकाव्य के महाकवि

यद्यपि मैथिलीशरण ने सर्वाधिक ग्रन्थ कृष्णकाव्यपरक रचे हैं तथा बुद्धकाव्य इत्यादि का भी प्रभावी सृजन किया है तथापि वे आधुनिककाल में रामकाव्य के प्रतिनिधि कवि हैं, इसमें सन्देह नहीं। रामकाव्य में उनका महाकाव्य 'साकेत' उनका सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। कामायनी के अनन्तर एवं प्रियप्रवास के लगभग साथ-साथ समूची खड़ीबोली-कविता के विभाषागत सृजन में व्रजभाषा-महाकाव्य गंगावतरण ही खड़ीबोली महाकाव्यत्रय कामायनी प्रियप्रवास-साकेत के समतुल्य है क्योंकि व्रजभाषा-महाकाव्य 'श्रीरामचन्द्रोदय' अत्यलंकृत है, अवधी-महाकाव्य 'बुद्धचरित-चन्द्रोदय' (विनीत विक्रम बौद्ध—पूर्वनाम रामखेलावन वर्मा) अम्बेडकरवादी या राजनीति-प्रेरित हो गया है (अन्य अवधी-महाकाव्य 'कृष्णायन' में कला का स्तर विशेष प्रभावी नहीं था)। खड़ीबोली-महाकाव्य 'कुरुक्षेत्र' विचारप्रधानता के कारण कलाविपन्न रह गया है, महाकाव्यवत् गीतिनाट्य उर्वशी में जीवन के आयाम अत्यधिक संकीर्ण हैं, ऊर्मिला (बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' कृत स्फीत प्रबन्ध—आज की दृष्टि से महाकाव्य क्योंकि यदि चम्पूकाव्य यशोधरा तथा गीतिनाट्य उर्वशी महाकाव्य हैं, रश्मिरथी महाकाव्य है, तो ऊर्मिला महाकाव्य क्यों नहीं?) की विरह-व्याप्ति सहज नहीं है तथा 'विरहिणी' (मुंशीराम शर्मा 'सोम' कृत रहस्यवादी महाकाव्य) अलौकिक अधिक है और लौकिक कम। यही बात गंगारत्न पांडेय कृत महाकाव्य 'नचिकेता' पर लागू होती लगती है, यद्यपि इसमें जीवन-तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक हैं। 'अन्धा युग' एवं 'कनुप्रिया' (धर्मवीर भारती के गीतिनाट्य) तथा 'संशय की एक रात' एवं 'प्रार्थना-पुरुष' (नरेश मेहता के राम एवं गाँधी पर), 'कालजयी' (भवानीप्रसाद मिश्र का अशोक पर), 'कुणाल' (सोहनलाल द्विवेदी) प्रभृति खंडकाव्य अथवा खंडकाव्यवर्गीय कृतियाँ तो जयद्रथवध, पथिक इत्यादि के स्तर की भी नहीं हैं। 'साकेत' मैथिलीशरण का प्रतीक बन गया है। रामकाव्यगत पंचवटी प्रौढ़ एवं उत्कृष्ट खंडकाव्य है। साकेत एवं पंचवटी गुप्तजी के मानक काव्य हैं। यदि 'जयभारत' स्वतन्त्र महाकाव्य होता तो भी रसगौरव में साकेत की समता न कर पाता; फिर, वह तो पुराने खंडकाव्यों एवं नवसृजन का संग्रथन मात्र है। 'जयद्रथवध' अवश्य सरस एवं उत्कृष्ट खंडकाव्य है। द्वापर के कारण उनके कृष्णकाव्य का गौरव अप्रतिम हो गया है।

मैथिलीशरण राममय महाकवि हैं—आधुनिक तुलसी। यशोधरा हो या जयभारत या द्वापर, सर्वत्र वे रामवन्दन अवश्य करते हैं :

1. राम, तुम्हारे इसी धाम में नाम-रूप-गुण-लीला-लाभ,[1]
इसी देश में हमें जन्म दो,[2] लो प्रणाम हे नीरजनाभ!
धन्य हमारा भूमि-भार भी जिस पर तुम अवतार धरो,[3]
भुक्ति-मुक्ति माँगे क्या तुमसे, हमें भक्ति दो ओ अमिताभ![4] (यशोधरा : मंगलाचरण)

2. मनुज-मानस में तरंगित बहु विचार-स्रोत, एक आश्रय राम के पुण्याचरण का पोत।[5]
(जयभारत : मंगलाचरण)

3. धनुर्बाण या वेणु लो श्याम रूप के संग, मुझ पर चढ़ने से रहा राम दूसरा रंग।[6]
(द्वापर : मंगलाचरण)

---

[1] सगुण-साकार की कलात्मक धार्मिकता को वरीयता प्रदान की गई है।

[2] राष्ट्रकवि-रूप की विवृति।

[3] अवतारवाद का मंडन।

[4] बुद्ध का एक अभिधान (या विशेषण)। दशरथ-जातक में राम बोधिसत्त्वावतार हैं, भागवत में बुद्ध विष्णु-अवतार। तत्त्वतः राम-बुद्ध अभिन्न हैं।

[5] एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
राम राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास।। (दोहावली)

[6] विचार्य है तुलसी के नाम से प्रचलित यह अप्रामाणिक किन्तु सुन्दर दोहा :
का छबि बरनौं आपकी भले बने हौ नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै धनुष-बान लो हाथ।।

यह प्रश्न उठ सकता है कि जिस रामकाव्य का सृजन आदिकवि वाल्मीकि, कविकुलगुरु कालिदास, महाकवि भवभूति, महाकवि स्वयम्भू, महाकवि कम्बनू (कम्बर), गोस्वामी तुलसीदास तथा केशवदास, गोविन्द सिंह, माधव कंदलि, कृत्तिवास, बलरामदास, एकनाथ, गिरधर, गोनबुद्ध, कुमारवाल्मीकि, एड्डत्तच्छन् इत्यादि अनेक अमर कविरत्न कर चुके हैं तथा चीनी-रामायण, जापानी-रामायणद्वय (एक चीनी-रामायण पर आधृत और दूसरी 'होबुत्सुसू'), कम्बोडियाई- रामायण, थाई-रामायण, बर्मी-रामायण, मलेसियाई-रामायण, इंडोनेसियाई-रामायण इत्यादि ने जिसे अतुलनीय विश्वगौरव प्रदान किया है, उस पर नवसृजन क्यों? क्या यह पिष्टपेषण नहीं? क्या यह चर्वितचर्वण नहीं? उत्तर है, नहीं, नहीं। मेघनादवध के अनुवाद तक में गुप्तजी तुलसी को उद्धृत करते हुए द्वितर्कित उत्तर दे देते हैं :

1. भाव कुभाव अनख आलसहू। नाम जपत मंगल दिसि दसहू।।
2. हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि श्रुति संता।।

ईसाई बनकर माता-पिता को भयावह यातना देनेवाले[1], नितान्त उच्छृंखल, अत्यधिक चरित्रहीन तथा इस सबके कारण अनेक कष्ट झेलने वाले माइकेल मधुसूदन दत्त (25 जनवरी, 1825—29 जून, 1873 ई.) की प्रतिभा का सम्यक् आदर करते हुए मैथिलीशरण ने उनके महाकाव्य 'मेघनादवध' का 'मधुप' बनकर उच्चस्तरीय एवं मानक हिन्दी-अनुवाद तो कर दिया, किन्तु राम को नहीं भूले। राम से घृणा करने की वाचालता के लिए कुख्यात माइकेल मधुसूदन दत्त को भी अमरता मिली राम-काव्य से ही! राम के पूर्वज अमर, राम के स्वजन अमर! राम के मित्र अमर, राम के शत्रु अमर[2], राम के सेवक अमर, राम के कवि अमर! आधुनिक काल में माइकेल मधसुदून दत्त (बांग्ला), भानुभक्त (नेपाली), सत्यनारायण (तेलुगू), पुट्टप्पा (कन्नड़) इत्यादि रामकाव्य का सृजन कर अमर हो गए। वस्तुतः रामकाव्य के जीवनायाम इतने स्फीत हैं कि वह कभी कालातीत नहीं हो सकता। मैथिलीशरण के गुरुभाई रामचरित उपाध्याय ने 'रामचरितचिन्तामणि' एवं 'रामचरितचन्द्रोदय' शीर्षक प्रबन्धकाव्य रचे थे जो बौद्धिककाल के आदर्शवादी युग के अनुरूप सर्वथा नवीन थे :

> ईश्वर का अवतार वही जो तारे जग को, विस्तृत जो कर सके परिष्कृत वैदिक मग को।
> राम आपके काम सभी ऐसे होते थे, ईश आपको समझ सभी सुख से सोते थे।

और स्वयं मैथिलीशरण गुप्त का रामकाव्य बौद्धिककाल के अनुरूप सर्वथा नव्य है :

> राम, तुम मानव हो? ईश्वर नहीं हो क्या? विश्व में रमे हुए नहीं सभी कहीं हो क्या?
> तब मैं निरीश्वर हूँ, ईश्वर क्षमा करे; तुम न रमो तो मन तुमसे रमा करे!

केवल बौद्धिककाल के आदर्शवादी युग के अनुकूल ही नहीं प्रत्युत ऊर्मिला की प्रधानता में भी 'साकेत' की सृष्टि सर्वथा मौलिक है। इसी प्रकार 'पंचवटी' के नायक लक्ष्मण हैं तथा काव्यायाम मौलिक। मैथिलीशरण का वरिष्ठ-कनिष्ठ सभी रामकाव्यकारों पर भारी प्रभाव पड़ा—हरिऔध ने 'वैदेहीवनवास' में ऊर्मिला का मार्मिक स्मरण किया, डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'साकेत-सन्त' की सर्जना की और परमानन्द जड़िया ने 'कौशलेन्दु भरत' ('कोसलेन्दु' या अधिक-से-अधिक 'कोशलेन्दु' ठीक रहता) महाकाव्य एवं डॉ. उमेशचन्द्र 'मधुकर' ने 'भरत-मांडवी' काव्यनाटक प्रस्तुत कर इस परम्परा को गतिशील किया, नवीन ने स्फीत 'ऊर्मिला की रचना की, सोहनलाल 'रामरंग' ने बृहदाकार 'उत्तर-साकेत' (दो भारी-भारी खंड) लिख डाला, आचार्य तुलसी ने 'अग्निपरीक्षा' दी तो चक्रधर 'नलिन' ने 'अग्निशिखा' का दर्शन किया, डॉ. रणधीर श्रीवास्तव ''धीर' ने 'भाई' 'भरत' का चित्रण किया, स्व. ओउमप्रेमी ने 'मांडवी महाशया' के दर्शन कराए, गणेशदत्त सारस्वत ने 'विभीषण' से परिचय कराया, बालकृष्ण मिश्र ने 'जलसमाधि से पूर्व' की कल्पना की, त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री ने 'चित्रकूट' चित्रित किया, जगदीशनारायण त्रिपाठी ने 'चित्रकूट' चित्रित किया, रामेश्वर दयाल दुबे ने 'चित्रकूट' चित्रित किया, मिर्ज़ा हसन नासिर ने 'देख रहा मैं राम को' कहा, सुधाकर शर्मा 'सुधाकर' ने 'जाम्बवान' रचा, भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' ने 'जय गीधराज' रचा। कविवर नासिर ने राम पर संस्कृत में भी लिखा है। वे संस्कृत-कवि भी हैं। यदि मैथिलीशरण 'साकेत' में यह ऐतिहासिक सत्य भूल गए कि साकेत अयोध्या का बौद्धकालीन नाम है तो विद्वान् डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र से भावुक श्री सोहनलाल 'रामरंग' तक सभी इसे भूलते चले गए तथा त्रुटि का साधारणीकरण हो गया! श्रीनरेश मेहता से डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र तक अनेकानेक कवियों ने अपने-अपने

---

[1] 9 फरवरी, 1843 ई. को हिन्दू से ईसाई बने।

[2] जिसे राम ने मार डाला वह भी अमर हो गया! ताटका, सुबाहु, मारीच, विराध, कबन्ध, वालि, कुम्भकर्ण, रावण, सबको राम ने अमर कर दिया—राम जैसा जीवनदाता कौन है?

ढंगों से रामकाव्य को युगानुरूप नव्यता प्रदान की। 1984 ई. में प्रकाशित डॉ. कुँवर चन्द्रकाश सिंह कृत महाकाव्य 'रामदूत' एवं 1985 ई. में प्रकाशित पं. ब्रह्मदेव त्रिपाठी 'ब्रह्मा' कृत खंडकाव्य 'रामाश्वमेध' अधुनातन रामकाव्य की दो विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं। 'ब्रह्मा' जी ने रामगीतिका, रामानुराग, हनुमतस्तुति जैसी अन्य कृतियों के द्वारा भी रामकाव्य को सम्पन्न किया है। महेश अवस्थी ने अवधी में 'जन-रामायण' रची है। 1990 ई. राम-सम्बन्धी तथा विविध विषयों पर अनेक वर्णनात्मक काव्यों के प्रस्तोता राजेन्द्र 'चान्द्रायण' ने सवैया छन्द में 'रामायत-तिथिपत्र' लिखा, जिसमें महवभारत-पूर्वदिवस पर कृष्ण के पूछने पर हनुमान् रामकथा-सारांश तिथिक्रम से सुनाते हैं। यह नई कल्पना उल्लेख्य अवश्य है। बाबूलाल 'सुमन' ने युग-दृष्टि से 'अम्बेडकर' महाकाव्य रचा था पर चिर-दृष्टि से 'रामार्चन' भी किया। आख़िर राम अम्बेडकर के पिता थे! अहल्या जैसी उपेक्षिता पर भी डॉ. रामकुमार वर्मा जैसे एक अमर कवि से लेकर प्रभा खेतान जैसी एक सामयिक कवयित्री तक ने महाकाव्य से खंडकाव्य तक रच डाले, अन्य कई कवियों ने भी लिखा। सूर्यनारायण कृत खंडकाव्य 'सती सुलोचना' एवं चन्द्रकला मिश्र (वे 'मिश्रा' लिखती हैं) कृत खंडकाव्य 'प्रमिला' (1996 ई.—प्रमिला नाम सुलोचना के लिए माइकेल मधुसूदन दत्त ने कल्पित किया था : सारा वृत्त ही प्रक्षिप्त एवं कल्पित है) भी उल्लेख्य हैं।

कृष्णकाव्य के महाकवि

राम एवं कृष्ण भारत के नेत्र हैं। हाथों तक दाएँ-बाएँ का अन्तर होता है किन्तु नेत्र प्रायः 'दो में एक' ही होते हैं। रोग हो तो बात और! भारत सहस्राब्दियों से राम-कृष्ण रूपी नेत्रों से ही देखता आया है। राम के जीवन में ऐसी पूर्णता है जैसी किसी अन्य के जीवन में नहीं-कहीं शक्ति मिलेगी तो शील एवं सौन्दर्य न मिलेंगे, कहीं शील तो शक्ति एवं सौन्दर्य न मिलेंगे, कहीं सौन्दर्य मिलेगा तो शक्ति एवं शील न मिलेंगे। राम में शक्ति भी है, शील भी है, सौन्दर्य भी है। वे पूर्णपुरुष हैं, पुरुषोत्तम हैं। उनमें धर्म भी विद्यमान है, मर्म भी, कर्म भी। कोरी शक्ति पाशविक हो सकती है, कोरा सौन्दर्य शक्ति के द्वारा हथियाया जा सकता है। शक्ति से ही शील की रक्षा होती है,[1] शक्ति से ही सौन्दर्य की रक्षा होती है। इसके अतिरिक्त, राम ने व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय और मानवीय सम्बन्धों का युगपत् निर्वाह किया है : वे पिता, माता, भ्राता, पत्नी, गुरु, परिजन, पुरजन, आदिवासी, वनवासी, पर्वतवासी, ऋषि, मुनि, सबके प्रति दायित्व का ऐसा निर्वाह करते हैं जैसा संसार में अन्य कोई करता नहीं मिलता। इसीलिए, राम पर जितना और जैसा साहित्य रचा गया है उतना और वैसा अन्य किसी पर नहीं। आज भी चीनी-रामायण, जापानी-रामायण,[2] कोरियाई-रामायण, मलेसियाई-रामायण, कम्बोडियाई-रामायण, इंडोनेसियाई–रामायण, बर्मी-रामायण, सिंहली-रामायण इत्यादि से मिस्र, पेरू, अर्जेन्टीना, मेक्सिको ('प्रथम' वाली कोलम्बस-कल्पना को भिक्षु चमनलाल से कुर्त शिल्डमान् तक भारतीय से जर्मन विद्वान् तक कालातीत सिद्ध कर चुके हैं) इत्यादि तक रामकथा का कोई-न-कोई रूप प्रचलित है और भारत में कम-से-कम सौ रामायणें प्राप्त हैं। कृष्ण ने कर्तव्य, संघर्ष एवं कर्मयोग के सदाबहार सन्देश के साथ शाश्वत आत्मवाद का जो दर्शन दिया, वह भारत का व्यापक जीवन-दर्शन है, जिस पर तिलक, गाँधी, अरविन्द, विनोबा इत्यादि मुग्ध थे। आज भी राम और कृष्ण भारतीय जीवन पर छाए हैं, सर्वाधिक प्रासंगिक एवं प्रभावी हैं। कारण? राम का विश्व-इतिहास का अतुलनीय व्यक्तित्व एवं कृष्ण का विश्व-इतिहास का अतुलनीय कृतित्व, जिनके कारण जीवन को त्याग एवं पौरुष तथा कला एवं दर्शन की अतुलनीय विभूतियाँ प्राप्त हो सकी हैं। यदि राम पर विश्व-साहित्य में सर्वाधिक महाकाव्य रचे गए, तो कृष्ण पर विश्व-साहित्य में सर्वाधिक महाकाव्य रचा गया। महाभारत के कृष्ण पर महाकाव्य भी कम नहीं रचे गए : पंप, कुमारव्यास, नन्नय-तिक्कर-एर्रन, सारलादास, गुरु गोविन्दसिंह, सबलसिंह चौहान, गोकुलनाथ-गोपीनाथ-मणिदेव, मैथिलीशरण, दिनकर, द्वारकाप्रसाद मिश्र[3], महेश अवस्थी (जन-कृष्णायनः अवधी) इत्यादि की संख्या बड़ी ही है; किन्तु भागवत के कृष्ण महाभारत के कृष्ण में भी बहुत आगे निकल गए, परिमाण में भी, प्रभाव में भी; विष्णुचित्त, गोदा (आंडाल), पुरंदरदास, पोतन[4], शंकरदेव, माधवदेव, विद्यापति, मीराँ (मीरा), सूरदास, परमानन्ददास, नन्ददास, रसखान, हित हरिवंश, ताज़ बेग़म, प्रेमसखी[5], नज़ीर अकबराबादी, हरिऔध, मैथिलीशरण इत्यादि की संख्या बहुत बड़ी है। महाकवियों में मैथिलीशरण एवं अन्य कवियों में स्व. धर्मवीर 'भारती' जैसों ने क्रमशः स्वस्थ एवं रुग्ण रूपों

---

[1] धर्म रक्षा करता है, किन्तु उसकी रक्षा भी करनी पड़ती है : धर्मो रक्षति रक्षितः।

[2] एक बौद्ध-रामायण या दशरथजातक पर आधृत चीनी-रामायण की अनुकृति, दूसरी 'होबत्शुसू' (जापान में दो रामायणें हैं)।

[3] वे 'द्वारिका' का विरोध करते थे। कृष्णायन में महाभारत-भागवत के कृष्णों का समन्वय किया गया है।

[4] मूलतः रामभक्त किन्तु कृष्णकाव्य के अमर प्रणेता-सूर-तुलनीय।

[5] कई। स्त्री भी, पुरुष भी।

में महाभारत के कृष्ण पर भी सृजन किया है, भागवत के कृष्ण पर भी। 'जय भारत' एवं 'द्वापर' तथा 'अन्धा युग' एवं 'कनुप्रिया' कृतियाँ इस द्विविध सृजन की सूचक हैं। मैथिलीशरण के उत्कृष्ट खंडकाव्य 'जयद्रथवध' का आधार महाभारत है। उनके साधारण खंडकाव्य नहुष, सैरन्ध्री, हिडिम्बा, वकसंहार इत्यादि भी महाभारत पर आधृत हैं, किन्तु इन्हें 'जय भारत' में समाविष्ट कर दिया गया है।

यद्यपि मैथिलीशरण का महाभारतमूलक कृष्णकाव्य एवं भागवतमूलक कृष्णकाव्य अर्थात् कृष्णकाव्य का उभयरूपगत सृजन अतीव स्फीत है, उनके रासकाव्य से स्फीततर है, तथा 'जय भारत', जयद्रथवध एवं द्वापर हिन्दी-साहित्य के अमर काव्य हैं, तथापि उनके रामकाव्य में उनका सृजन सहज एवं प्रफुल्लित है तथा कृष्णकाव्य में प्रयत्नज एवं सुचिन्तित, भले ही वह तुलसी के कृष्णकाव्य के सदृश प्रासंगिक मात्र न हो। मैथिलीशरण अपने मानस का सहज उल्लास राम को ही प्रदान कर गए हैं, यद्यपि उनका कृष्ण, बुद्ध इत्यादि के प्रति पूरा ध्यान रहा है, तथा उनका सम्मान हसन, हुसैन, तेग़बहादुर इत्यादि हुतात्माओं से लेकर गाँधी, विनोबा इत्यादि नेताओं तक प्रशस्यतः प्रसरित है।

बुद्धकाव्य के श्रेष्ठ कवि

'यशोधरा' रचकर मैथिलीशरण ने बुद्धचरितम् एवं सौन्दरनन्द के महाकवि अश्वघोष की परम्परा का भी उत्तराधिकार प्राप्त किया है। हिन्दी में सरहपा इत्यादि सिद्धों ने बुद्ध के परमतत्त्वपरक उल्लेख किए हैं, नानक ने 'जपजी' में करोड़ों बुद्धों के द्वारा भी परब्रह्म का पार न पा सकने का (वास्तव में "सर्वं अनित्यम्" एवं "सर्वं अनात्मम्" के उद्घोषक बुद्ध को नास्तिक माना गया है) उल्लेख किया है, तुलसीदास ने विनयपत्रिका में विष्णु-अवतार प्रकरण में बुद्ध की स्तुति की है किन्तु दोहावली में वेदनिन्दा के कारण बुद्ध को 'निन्दित' घोषित किया है। जनता में बुद्धू शब्द प्रचलित है। बुद्ध की विश्व-मान्यता के कारण भारत का गौरव बढ़ा है। वे पूज्य हैं। किन्तु उनका पत्नी-त्याग एवं नवजात-शिशुत्याग आदर्श नहीं माना जा सकता है। बौद्धिककाल में अंग्रेज़ों ने भारतीय राष्ट्र को शक्तिहीन करने के लिए बुद्ध एवं अशोक, कनिष्क एवं हर्ष को सातवें आसमान पर चढ़ाया। इससे हमारा जीवन एकांगी हो गया। "यथा राजा तथा प्रजा" के अनुरूप चटपट राम, कृष्ण, पांडव इत्यादि शक्ति-प्रतीक नायकों को 'कथा' में डालने तथा इन नए नायकों पर लिखने की होड़ाहोड़ी चल पड़ी। अहिंसा का इतना ज़ोर बढ़ा कि हिंसा करनेवाले हावी हो गए। 1962 ई. में चीन से हार एक नासूर बन गई। भारत का इतिहास ही बुद्ध से आरम्भ किया गया। (वह बात और रही कि 1922-23 ई.[1] में मोहेनजोदड़ो-उत्खनन ने भारतीय इतिहास को कम-से-कम ढाई हज़ार और पीछे कर दिया।) बुद्ध का ईसा पर भारी प्रभाव एक स्पष्ट तथ्य है, जिसे विल ड्यूराँ इत्यादि ने स्वीकार भी किया है। इस कारण से भी ईसाई-गोरे बुद्ध के प्रति श्रद्धानत रहे। बुद्ध महापुरुष थे भी। शॉपेनहॉएर एवं विल ड्यूराँ जैसे दार्शनिकों एवं दर्शन-व्याख्याताओं, एड्विन आर्नोल्ड एवं इलिअॅट (एलिअॅट)[2] जैसे अनुवाद-कवियों एवं मौलिक-कवियों पर बुद्ध का भारी प्रभाव इतिहससिद्ध तथ्य हैं। बुद्ध पूर्व में गौरांग-श्रद्धा के प्रतीक बन गए। सर रवीन्द्रनाथ टैगोर ने पूरे जोश-खरोश से हरी झंडी दिखाई और 'महादौड़'[3] शुरू हो गई। हिन्दी में 'अजातशत्रु' (प्रसाद), 'वत्सराज' (लक्ष्मीनारायण मिश्र), 'गौतम-नन्द' (जगन्नाथ 'मिलिन्द'), 'लहरों के राजहंस' (मोहन 'राकेश') इत्यादि नाटक तो लिखे ही गए, 'सिद्धार्थ' (अनूप शर्मा—इन्होंने 'वर्द्धमान' महाकाव्य भी रचा), 'भगवान् बुद्ध' (विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद') 'गोपा-गौतम' एवं 'बोधिवृक्ष' (जगदीश गुप्त), 'मृगदाव' (त्रिवेदी रामनन्द शास्त्री) विविध प्रकार के प्रबन्धकाव्य तथा 'अरी वरुणा की शान्त कछार' एवं 'उस दिन जब जीवन के पथ में' (प्रसाद—'लहर') इत्यादि कविताएँ भी रच डाली गईं। आ. रामचन्द्र शुक्ल ने अश्वघोष कृत 'बुद्धचरितम्' का तो नहीं, किन्तु उसी पर आधृत एड्विन आर्नोल्ड कृत 'लाइटऑफ़ एसिआ' का 'बुद्धचरित' शीर्षक व्रजभाषा अनुवाद भी कर डाला था। अब अशोक कैसे पीछे रहते? 'देवानांप्रिय' का बुद्धू या मूर्ख अर्थ कालातीत हो गया तथा 'अशोक' (कहानी—संग्रह), 'अशोक की चिन्ता' (कविता—प्रसाद), 'अशोक' (नाटक—लक्ष्मीनारायण मिश्र), 'कुणाल' (खंडकाव्य—सोहनलाल द्विवेदी), 'कालजयी' (खंडकाव्य—भवानीप्रसाद मिश्र), 'अशोक' (महाकाव्य—विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद') इत्यादि नानाविधामयी 'सर्जना' की धूम मच गई। 'स्रष्टा'-समूह यह भूल गया कि निवृत्ति नहीं, प्रवृत्ति सत्य है, क्योंकि निवृत्तिवादी

---

[1] इसी समय, 1923 ई. में, गोरों ने भारतीयों को चाय के व्यसन का बन्दी बनाना आरम्भ किया।

[2] 'क्राइस्ट द टाइगर' का प्रयोग 'शाक्य-सिंह' का अनुवाद मात्र है।

[3] महाकाल, महापंडित, महाभिनिष्क्रमण, महापरिनिर्वाण इत्यादि शब्दों का ठीक-ठीक अर्थ महारात्रि, महापात्र, महाभोज इत्यादि के अर्थों को समझकर ही लगाया जा सकता है।

भी उससे मुक्त नहीं रह सकते, जैसाकि अहिंसावादी बुद्ध के शूकरमार्दव-अतिखादन एवं तज्जन्य उदररोग के कारण अवसान से भी स्पष्ट है (महापरिनिव्वान-सुत्त से धर्मानन्द कोसम्बी कृत 'भगवान् बुद्ध' ग्रन्थ तक साक्षी हैं)। 'दुःखम्' पर उपदेश देने के अनन्तर बुद्ध राजगृह में बिम्बसार, श्रावस्ती में प्रसेनजित् एवं कौशाम्बी में उदवन का सुखोल्लास-सम्पन्न आतिथ्य स्वीकार करते थे। कपिलवस्तु का छोटा-सा भूमिपति महाराजाओं का महाराजा बन गया था। उधर, अशोक अपने पिता बिन्दुसार द्वारा नियत उत्तराधिकारी सुसीम इत्यादि भाइयों की हत्या कर सम्राट् बने थे तथा महानतम बौद्धधर्मप्रसारक होने के काफ़ी बाद भी बुढ़ापे में तरुणी तिष्यरक्षिता से विवाह करने से नहीं चूके थे, जिसका नतीजा इस नई पत्नी का उनके किसी पूर्वपत्नी से उत्पन्न समवयस्क पुत्र कुणाल से प्रणयनिवेदन तथा अस्वीकृति पर आँखें निकलवाने के षड्यन्त्र इत्यादि के रूप में निकला—बाद में, भाँड़ा फूटने पर, तक्षशिला के कुणाल के आँखें निकाले जाने वाले स्थान पर ही अशोक-पत्नी के रूप में सहजयौवनज्वाला से लगातार जलती आ रही 'अपराधिनी' तिष्यरक्षिता को 'परमन्यायी' सम्राट् ने ज़िन्दा जलवाया था। निर्वेदवादी बुद्ध या शान्तिवादी अशोक पर रचा गया कोई ग्रन्थ 'कामायनी' या 'प्रियवास' या 'साकेत' या 'गंगावतरण' या 'कृष्णायन' या 'राम की शक्तिपूजा' या 'तुलसीदास' या 'सरोज-स्मृति' या परिवर्तन या 'स्वर्णोदय' या 'नौकाविहार' या 'कुरुक्षेत्र' या 'उर्वशी' या 'अँधेरे में' या 'स्कन्दगुप्त' या 'चन्द्रगुप्त' या 'सिन्दूर की होली' या 'राक्षस का मन्दिर' या 'आधे-अधूरे तो दूर', 'गीतफ़रोश' या 'असाध्य-वीणा' के स्तर का भी स्पर्श न कर पाया।

मैथिलीशरण निवृत्तिवादी या पलायनवादी या रिक्तादर्शवादी नहीं थे। राम का मर्मी निवृत्तिवादी या पलायनवादी या रिक्तादर्शवादी कैसे हो सकता है? कृष्ण का ज्ञाता निवृत्तिवादी या पलायनवादी या रिक्तादर्शवादी कैसे हो सकता है? धर्म केवल विहार या चैत्य या उपदेश का बन्दी नहीं। राम या कृष्ण का मर्मी या ज्ञाता साकेत या कुरुक्षेत्र में रसता-बसता है। मैथिलीशरण किसी विदेशी या देशी प्रेरणा की झोंक में आकर लिख मारने (या लिख मरने) वाले कवि भी नहीं थे। अतः उन्होंने सशक्त एवं स्वस्थ जीवनवाद या प्रवृत्तिवाद पर आधृत रहकर हिन्दी के बुद्धकाव्य को 'यशोधरा' के रूप में उसकी सर्वोत्तम जीवनवादी या प्रवृत्तिवादी कृति प्रदान करने में सफलता प्राप्त की। 'यशोधरा' वेदवादी कलाकृति है, निर्वेदवादी काव्यरचना नहीं। यशोधरा शत-प्रतिशत मौलिक काव्य है। वैसे, 'अनघ' भी बुद्धकाव्य की ही कृति है जो पारम्परिक होने के कारण साधारण रह गई है, जबकि 'कुणालगीत' जीवन की करुणा का काव्य तो है किन्तु निवृत्तिवादी नहीं प्रत्युत वह जीवन की नई पहेलियों को बुझाने की प्रवृत्ति में सक्षम है। 'यशोधरा' से पूर्व 'साकेत' में ऊर्मिला तथा इसके अनन्तर 'विष्णुप्रिया' में नायिका चैतन्य-पत्नी एवं 'रत्नावली' में (मेरे विचार से कल्पित) नायिका तुलसी-पत्नी को गौरवशाली रूपों में प्रस्तुत कर मैथिलीशरण विश्व-साहित्य में नारी-संवेदन के सर्वश्रेष्ठ कवि के रूप में अमर हैं। उन्होंने बुद्ध और कुणाल पर सृजन के लिए अनेक कवियों को प्रेरणा प्रदान करके भी साहित्य की महती सेवा की।

विशद नारी-संवेदन

यदि कोई मुझसे पूछे कि खड़ीबोली-कविता की सर्वश्रेष्ठ विशेषता क्या है?—तो मैं बिना किसी झिझक के उत्तर दूँगा, विश्व-साहित्य का अभूतपूर्व एवं महान् नारी-संवेदन! जिस कविता के आचार्य ने अपनी प्राणप्रिया के निधन के उपरान्त, आयु होते हुए भी, निस्सन्तान होते हुए भी, दूसरा विवाह नहीं किया तथा उसके स्मृति-मन्दिर में प्रतिमा[1] स्थापित की, 'कवियों की ऊर्मिला-विषयक उदासीनता[2] जैसा विश्व-साहित्य के इतिहास का सर्वाधिक सृजन-प्रेरक भावात्मक-निबन्ध लिखा, उसका नारी-संवेदन अद्वितीय कैसा न होता? हरिऔध का जीवन, प्रतिमा-स्थापन के अतिरिक्त, प्रायः आचार्य के जीवन जैसा रहा, जिनके 'प्रियप्रवास' की वियोग-व्यथा व्यक्तिगत-वियोगव्यथा[3] को उदात्त रूप प्रदान करने में सहायक सिद्ध हुई। मैथिलीशरण तो उपेक्षिताओं के कवि के रूप में अमर ही हैं : ऊर्मिला ('साकेत'), 'यशोधरा', 'विष्णुप्रिया', 'रत्नावली', 'सैरन्ध्री', 'हिडिम्बा', विधृता, कुब्जा एवं देवकी ('द्वापर') इत्यादि अकाट्य प्रमाण इस विषय को निर्विवाद घोषित करते हैं। कामुक व्यक्ति प्रायः नारी की आत्मा नहीं पहचान पाता, किन्तु प्रसाद ने नारी को 'केवल श्रद्धा' कहा है।

---

1. संसार-साहित्य के इतिहास में पत्नी-मन्दिर की स्थापना केवल आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ही की। आचार्य का पत्नी-व्रत सर्वथा प्रणम्य है।
2. बेंगलूर विश्वविद्यालय में हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष एवं प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. सरगु कृष्णमूर्ति के अनुसार, आन्ध्र के तेलुगू-भाषा के लोकगीतों में ऊर्मिला की विरह-व्यथा विवृत की गई है। तुलसी की गीतावली में लक्ष्मण-ऊर्मिला की विवाह-शोभा पर एक सुन्दर पद प्राप्त होता है। किन्तु सामान्यतः भारतीय एवं विशेषतः हिन्दी के ऊर्मिला-काव्य के प्रेरक आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं महाकवि मैथिलीशरण गुप्त ही हैं। वस्तुतः भी, तत्त्वतः भी।
3. द्रष्टव्य है, श्री गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश' कृत 'महाकवि हरिऔध' ग्रन्थ।

उच्छृंखल, मद्यप, भंगप्रेमी, सर्वमांसभक्षी, वेश्यागामी एवं उन्मत्त किन्तु संवेदन-सम्राट्, दीनबन्धु, अतिथिप्रेमी, गहन-रहस्यवादी एवं महापुरुष निराला व्यक्तित्व में ग़ालिब, व्यक्तित्व में माइकेल मधुसूदन दत्त, हिन्दी का गोल्डस्मिथ, हिन्दी का हरक्युलिस—नारी के प्रिया-रूप की दृष्टि से मनोहरादेवी को समर्पित 'गीतिका' तथा पुत्री-रूप की दृष्टि से 'अनामिका' की एक अजर-अमर कविता 'सरोज-स्मृति' में नारी-संवेदन का महान् कलाकार है। निराला की श्रेष्ठ कविता 'राम की शक्तिपूजा' नारी-संवेदन की अप्रतिम दार्शानक उपलब्धि है : एक तो 'शक्ति' नारी की परम छवि है; दूसरे राम सीता-स्मृति से भी संस्फुरित होते हैं। निराला की 'राम की शक्तिपूजा' के समकक्ष महान् काव्यकृति 'तुलसीदास' भी सम्प्रेरक नारी-संवेदन की एक अद्वितीय सृष्टि है। 'विधवा' से 'वह तोड़ती पत्थर' तक निराला का नारी-संवेदन जीवनवाद की करुणा से ओतप्रोत है। यदि मैथिलीशरण नारी-संवेदन के व्यापकतम कवि हैं, तो निराला नारी-संवेदन के गहनतम कवि हैं। सक्रिय प्रिया-संवेदन से रहित महाकवि पन्त का ''जननि, सखी, प्यारी'' नारी के प्रति संवेदन सर्वथा प्रशस्य है, जबकि अज्ञेय ने तीन स्त्रियों[1] से सम्बन्ध जोड़े और नारी-संवेदन में शून्य रहे। नारी के प्रति अपरिसीम एवं सततसक्रिय रुचि के धनी नरपुंगव दिनकर की उर्वशी तो दिनकर की कामायनी ही है। यद्यपि ''बच्चन का विकास तेजी से हुआ''[2], तथापि उनके कृतित्व की प्राण स्वर्गता श्यामा थीं जिन्होंने 'मधुशाला' एवं 'मधुबाला' के 'लोकप्रिय कवि' को 'निशा निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत', 'आकुल अन्तर' एवं 'व्याकुल विश्व' का स्मरणीय कविरत्न बना दिया। स्वच्छन्दतावाद की लघुत्रयी के कवि डॉ. रामकुमार वर्मा की 'ओ अहल्या' नारी-संवेदन की उत्कृष्ट काव्य-कृति है। वैसे, उनका 'एकलव्य' महाकाव्य भी उपेक्षित-संवेदन की ही सृष्टि है। कुंठा-विकृति-संत्रसबद्ध मोहन राकेश की 'आषाढ़ का एक दिन' से 'आधे-अधूरे' तक नारी के प्रति गहरी संवेदना से ऊभचूभ हैं, पश्चिमवादी धर्मवीर भारती (जिनकी पूर्वपत्नी कान्ता भारती ने 'रेत की मछली' उपन्यास लिखने के बाद कान्ता पन्त बनकर ईंट का जवाब पत्थर से दिया) ने 'कनुप्रिया' में मार्मिक नारी-संवेदन का परिचय दिया है। रामकृष्ण डालमिया तक नारी के प्रति आदर रखते थे। लुच्चे-लफंगे कवि एवं लेखक तक आचार्य, राष्ट्रकवि, प्रसाद, निराला की ज्ञात या अज्ञात प्रेरणा से कम-से-कम रचनाओं में प्रशस्य नारी-संवेदक बन गए हैं।

मैथिलीशरण का साकेत कविता में उपेक्षिताओं को प्रतिष्ठा प्रदान कराने वाला प्रतीक-महाकाव्य है। इसमें ऊर्मिला तो नायिका हैं ही, कैकेयी को भी मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्रित कर संवेदन-पात्रा बना दिया गया है; और ऐसा दशरथ या राम या सीता या लक्ष्मण के चरित्र के गौरव को अक्षुण्ण रखकर किया गया है, जिससे साकेत मेघनादवध की असांस्कृतिकता का आखेट नहीं बन पाया। मैथिलीशरण रामायण, महाभारत, पुराण, रामचरितमानस इत्यादि आर्ष-ग्रन्थों के गहन अध्येता थे। अतः उनसे असांस्कृतिक विपर्यय की सृष्टि सम्भव न थी। वे माइकेल मधुसूदन दत्त (बांग्ला) की तरह मातृद्रोही (ईसाई बनने के कारण), उच्छृंखल, अपव्ययी और लबार न थे; गहन-गम्भीर व्यक्ति थे, गहन-गम्भीर कवि थे। राम को पूर्वाग्रह-जर्जर रूप में प्रस्तुत करने वाले महाकवि सत्यनारायण (तेलुगू) तक जिस घाटे में रहे, उसे उठाने का सवाल भी उन पर सम्भव नहीं। वे मधुसूदन से भी श्रेष्ठातर कवि हैं, सत्यनारायण से भी।

साकेत के बाद, भरत (बलदेवप्रसाद मिश्र, परमानन्द जड़िया इत्यादि), मांडवी (स्व. ओमप्रेमी इत्यादि), सुमित्रा (लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'), शत्रुघ्न (त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु') इत्यादि पर तो काव्यरचना हुई हो, कैकेयी पर स्फीत सर्जना की गई; 'कैकेयी' (केदारनाथ मिश्र 'प्रभात'), 'समरप्रिया' (श्रीकृष्ण मिश्र), 'वीरांगना कैकेयी' (दयानन्द जड़िया 'अबोध'), 'कैकेयी' (सुरेन्द्रसिंह सक्सेना 'इन्दु') इत्यादि पर 'साकेत' का प्रभाव निर्विवाद है।

विराट् राष्ट्रवाद

मैथिलीशरण गुप्त एक विराट् राष्ट्रवादी थे। उनकी 'भारतभारती'[1] हिन्दी में राष्ट्रवाद की प्रतीक एवं प्रमुख कृति है। 'भारतभारती' भारतीय संस्कृति एवं भारतीय राष्ट्रीयता का काव्येतिहास है। भारतभारती स्वातन्त्र्य-सेनानियों की गीता बन गई थी। अहिन्दी क्षेत्रों के

---

1. स्व. कवि पं. देवीदत्त त्रिपाठी 'प्रचंड' के पुत्र (स्वयं व्यंग्यकार-कवि) श्री राघवेन्द्र त्रिपाठी (कानपुर) अज्ञेय के नई दिल्ली के पोशमपोश सरदार पटेल मार्ग स्थित महान् आवास पर पहुँचे क्योंकि एक पुस्तक भेजी थी। लौटकर बताया, वे न थे अतः उनकी पुत्री को दे आया हूँ! यह बताने पर कि पुत्री नहीं पत्नी को, वे चकित रह गए और बोले, क्या बड़े लोगों पर कानून नहीं लागू होता? मैंने 'रूल्स फ़ॉर फ़ूल्स' (नियम मूर्खों हेतु) का मन्त्र उद्धृत कर दिया।
2. व्यक्तिगत विनोद-वार्ता में श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन'।
3. 'भारत-भारती' का प्रकाशन कुर्री-मुदौली (रायबरेली) के राजा रामपालसिंह ने कराया था। यह राजर्षि रामपालसिंह कालाकाँकर (प्रतापगढ़) के प्रख्यात राजा रामपालसिंह एवं नायन (रायबरेली) के राजा रामपालसिंह से भिन्न थे। तीन राजा रामपालसिंह हुए है; जिनमें कालाकाँकर वाले व्यक्तित्व एवं कर्तव्य में विशेष उल्लेखनीय हैं। भारतभारती के प्रभाववश 'भारती' उपनामों का प्रयोग होने लगा, हिन्दी का भारती पर्याय संस्थाओं में प्रयुक्त होने लगा।

लाखों लोगों ने इसे पढ़ने के लिए हिन्दी सीखी। शासकदलग्रस्त उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (लखनऊ) ने अपने सर्वोच्च पुरस्कार का नाम 'भारतभारती' पुरस्कार रखकर अच्छा कार्य किया है। संस्थान के बाहर राष्ट्रकवि की मूर्ति प्रतिष्ठित है।

मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्र की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक एकता का स्वाभाविक एवं प्रसन्न वर्णन किया है, प्रान्तों एवं धर्मों के नाम गिनाने वाली स्थूल एवं विभाजक शैली का अनुगमन नहीं किया, क्योंकि वह विविध प्रकार के अहं को बढ़ावा देकर विनाश का पथ-प्रशस्त करती है। राष्ट्र की एकता के साथ विभिन्नता का राग अलापने से एकता की बात ही समाप्त हो जाती है। विभिन्नता स्वाभाविक है: दो मानव 'एक-ही' नहीं हो सकते, दो तृणगुल्म तक 'एक-ही' नहीं हो सकते, क्योंकि प्रकृति पुनरुक्ति नहीं करती। कोई राष्ट्र (विशेषतः विशाल राष्ट्र) विभिन्नता से रहित न तो है, न उसे ऐसा होना चाहिए, क्योंकि 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना', ''भिन्नरुचिर्हिलोकाः'', '''वादे वादे जायते तत्वबोधः'' सनातन सत्य हैं। अतः विभिन्नता की राजनैतिक डफली पीटना या 'सम्मिलित संस्कृति' का राजनीति-प्रेरित राग अलापना एकता की जड़ें काटना मात्र सिद्ध हो सकता है। मैथिलीशरण इस सबके फेर में नहीं पड़े। वे सच्चे राष्ट्रकवि हैं। मैथिलीशरण जन्मजात राष्ट्रकवि थे। यह विशेषण केवल उनका प्रतीक बन गया है, जो ठीक है। दिनकर का अपने-आपको 'डिपुटी राष्ट्रकवि' कहना सर्वथा उचित था। मैथिलीशरण का विराट् राष्ट्रवाद एक ओर भारत की अद्वितीय प्राकृतिक गरिमा पर आधृत है, दूसरी ओर अप्रतिम प्राचीन सांस्कृतिक महिमा पर, तीसरी ओर भारत-प्रतीक हिन्दू-जाति पर, चौथी ओर मानवतावाद परः

1. नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है, सूर्य चन्द्र युग-मुकुट, मेखला रत्नाकर है,
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन है, वंदीजन खग-वृंद, शेष-फन सिंहासन है,
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेश की, हे मातृभूमि! तू सत्य की सगुण मूर्ति सर्वेश की।
2. परिवर्तन ही यदि उन्नति है तो हम बढ़ते जाते हैं, किन्तु मुझे तो सीधे पूर्व-भाव ही भाते हैं।
3. रक्खो हिंदूपर का गर्व, यही ऐक्य साधन का सर्व,
हिन्दू! निज संस्कृति का त्राण, करो, भले ही दे दो प्राण।
4. उसी उदार की कथा सरस्वती बखानती, उसी उदार से धरा कृतार्थ-भाव मानती,
उसी उदार की सदा सजीव कीर्ति कूजती, उसी उदार को सदा समस्त सृष्टि पूजती,
अखंड आत्मभाव जो असीम विश्व में भरे, वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।
5. क्षुधार्त रंतिदेव ने दिया करस्थ थाल भी, तथा दधीचि ने दिया परार्थ अस्थिजाल भी,
उशीनर-क्षितीश[1] ने स्वमांसदान भी किया, सहर्ष वीर कर्ण ने शरीर वर्म भी दिया,
यही पशुप्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे, वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।

मैथिलीशरण गुप्त ने राष्ट्र[2] के विभिन्न घटकों के बीच अकृत्रिम एकता के जो गान गाए हैं वे उनके युग की स्वदेशी-भावना, प्रकृति-संवर्द्धन, श्रम, स्वावलम्बन, समता, प्रेम इत्यादि के दर्पण कहे जा सकते हैं :

1. जय देवमंदिर देहली समभाव से जिस पर चढ़ी—
नृप हेममुद्रा और रंक-वराटिका। मुनि-सत्य-सौरभ की कली—
कवि-कल्पना जिसमें बढ़ी, फूले-फले साहित्य की वह वाटिका।
2. तरु-तले विराजे हुए,—शिला के ऊपर, कुछ टिके,—धनुष की कोटि टेककर भू पर।
निज लक्ष्य-सिद्धि-सी, तनिक घूमकर तिरछे, जो सींच रही थीं पर्णकुटी के बिरछे—
3. औरों के हाथों यहाँ नहीं पलती हूँ, अपने पैरों पर खड़ी पर खड़ी आप चलती हूँ।
श्रमवारि बिन्दु फल स्वास्थ्य शुक्ति फलती हूँ, अपने अंचल से व्यजन आप झलती हूँ।
4. ओ भोली कोल-किरात-भिल्ल-बालाओं, मैं आप तुम्हारे यहाँ आ गई, आओ।
मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ; दो अहा! नव्यता और भव्यता पाओ।
लो, मेरा नागर-भाव भेंट जो लाया, मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।

---

[1] राजा शिवि।

[2] देशभक्ति एवं संस्कृति के मूल बिन्दुओं से जुड़ा जन-समूह (नेशन, क्रौम)

सब ओर लाभ ही लाभ बोध-विनिमय में, उत्साह मुझे है विविध वृत्त-संचय में,
तुम अर्द्धनग्न क्यों रहो अशेष समय में, आओ, हम कातें-बुनें गान की लय में।
निकले फूलों का रंग, ढंग, से ताया, मेरी कुटिया में राजभवन मन भाया।
(साकेत)

5. गृह, निषाद, शबरों तक का मन रखते हैं प्रभु कानन में, क्या ही तरल वचन रखते हैं इनके भोले आनन में!
इन्हें समाज नीच कहता है, पर हैं ये भी तो प्राणी, इनमें भी मन और भाव हैं किन्तु नहीं वैसी वाणी

उन्होंने हसन, हुसैन, तेग़बहादुर इत्यादि की स्तुति की, किन्तु हिन्दू-अवमानना के साथ नहीं। तुष्टीकरण सर्वधर्मसमभाव एवं पक्षपात मानवीय संवेदन ही सच्ची धर्मनिरपेक्षता की आँखें हैं, जिसके बिना वह वैसी ही अन्धी रहेगी जैसी दुर्भाग्यवश स्वतन्त्र भारत में रही है। धर्मनिरपेक्षता का दायित्व सबका है, केवल हिन्दुओं का नहीं! केवल हिन्दुओं पर वोटवादी धर्मनिरपेक्षता थोपने का परिणाम राष्ट्रीय अशान्ति के रूप में ही प्रकट हो सकता है, जैसाकि हो रहा है। मैथिलीशरण की धर्मनिरपेक्षता ही वास्तविक धर्मनिरपेक्षता है। सच्ची धर्मनिरपेक्षता अपनाए बिना भारत में शान्ति सम्भव नहीं।

राष्ट्रवाद, मानवतावाद अथवा अन्तरराष्ट्रीयतावाद का सुदृढ़ , सहज एवं अपरिहार्य है, न कि विपर्यय है जैसाकि आदर्शवाद की झोंक में आकर यथार्थवाद की ओर आँखें मूँदने वाले सर रवीन्द्र, सर राधाकृष्णन् इत्यादि प्रतिपादित कर गए हैं। यह सत्य है कि यूरोप में अठारहवीं शताब्दी में उद्भूत राष्ट्रवाद खलों की शरणस्थली[1] बन गया क्योंकि इसकी आड़ में खलगण प्रतिष्ठा एवं सत्ता प्राप्त करने लगे थे, किन्तु आज के विश्ववादी युग में उसका रूप बदल चुका है। राष्ट्रवाद का कोई विकल्प भी नहीं है। फिर, अद्वैतवादी अथवा आत्मवादी भारत तो प्रकृत्या ''मित्रस्य चक्षुषा''[2], ''वसुधैव कुटुम्बकम्''[3] इत्यादि के नैतिक, ''सर्वे भवन्तु सुखिनः''[4] इत्यादि के साहित्यिक उद्गारों में मानवतावाद अथवा विश्ववाद का अकेला प्रतिपालक रहा है। हिन्दूधर्म प्रकृत्या मानवतावादी रहा है। मैथिलीशरण का राष्ट्रवाद-पुष्ट मानवतावाद परम्परानुमोदित भी है, व्यावहारिक भी, नव्य भी।

महान् प्रगतिशील कवि

मैथिलीशरण गुप्त धरती के बेटे थे। वे श्रम के प्रति सदैव गौरव का भाव रखते थे। सदा अपने ख़र्च से सामान्य श्रेणी[5] में यात्रा करते (मनोनीत राज्यसभा-सदस्य या एम.पी. होने पर भी)। पहले बुन्देलखंडी तथा कालान्तर में खादी की धोती-कुर्ते की सामान्य वेशभूषा में रहते (पगड़ी ने टोपी का रूप अवश्य ले लिया था—गाँधी-टोपी को छोड़कर बहुत-से नेता लगाते थे और अब भी इक्के-दुक्के लगाते हैं)। सामान्य भाषा बोलते, प्रत्येक व्यक्ति का आदर करते (इतना कि स्व. कवि रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की परिनिष्ठित स्वच्छन्दतावादी एवं आरोपित प्रगतिवादी दृष्टि को कृत्रिमता का आभास हो गया)। साकेत की सीमा कातते-बुनने में रुचि लेती हैं, 'पंचवटी' की सीता खुरपी लेकर अपनी खेती निराती हैं (जिससे कई अभिजातवादी खिन्न हो जाते हैं)। उनके लक्षण उटज-निर्माण करते हैं। वस्तुतः श्रम भारतीय संस्कृति का मेरुदंड रहा है, जैसाकि 'आश्रम' शब्द से ही स्पष्ट है (जिसका अर्थ है, श्रमपूर्ण या जहाँ चारों तरफ श्रम-ही-श्रम व्याप्त हो)। वर्णाश्रम-व्यवस्था का मेरुदंड श्रम ही रहा है। वैदिक जीवन सर्वायामीश्रम से ओतप्रोत था। कृष्ण ने ''योगः कर्मसु कौशलम्'' के प्रतिपादन द्वारा श्रम को गौरवान्वित किया है। कालान्तर में वीरशैव सम्प्रदाय ने 'कायक' या श्रम को सर्वोपरि महत्त्व प्रदान किया। गाँधी ने श्रम की महिमा का सक्रिय प्रतिपादन कर भारतीय संस्कृति को गौरवान्वित किया। मैथिलीशरण जैसा भारतीय संस्कृति का अनन्य प्रेमी एवं श्रमिक, भूमि एवं कृषक (''....सच्चा राज्य हमारे कृषक ही करते हैं'') का जागरूक गायन कैसे न करता? उन्होंने 'किसान' शीर्षक मार्मिक काव्य भी रचा है। चेलीशेव ने, भारतीय साम्यवादियों की पूर्वाग्रह-जीर्णता के विपरीत, मैथिलीशरण गुप्त को 'प्रगतिशील कवि' कहकर वस्तुपरक दृष्टिकोण का परिचय दिया था। किन्तु आज भी साम्यवादी भाई उनके पीछे पड़े रहने से बाज़ नहीं आए।

---

[1] नेशनलिज़्म इज़ द लास्ट रिफ़्यूज़ ऑफ ए एकॉउण्ड्रेल।

[2] यजुर्वेद।

[3] महाभारत (विदुरनीति)।

[4] नागानन्द (हर्ष कृत नाटक)।

[5] उन दिनों तृतीय। तब प्रथम, द्वितीय, मध्यम एवं तृतीय श्रेणियाँ चलती थीं। अब सामान्य श्रेणी को केवल नाम से बदलकर 'द्वितीय' का 'जनमोदकारी-रूप' दे दिया गया है।

साकेत

साकेत महाकवि मैथिलीशरण गुप्त का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है। इस महाकाव्य ने बलदेवप्रसाद मिश्र (साकेत-सन्त), केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' (कैकेयी), बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (ऊर्मिला), नरेश मेहता (संशय की एक रात), बालकृष्ण मिश्र (जलसमाधि से पूर्व), रामकुमार वर्मा (ओ अहल्या), रमेशचन्द्र मिश्र (एक विश्वास और), ओउम्प्रेमी (माण्डवी महाशया), श्रीकृष्ण मिश्र (समरप्रिया), चन्द्रिकाप्रसाद दीक्षित (अभिशप्त शिला), प्रभा खेतान (अहल्या), त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' (श्री शत्रुहन), लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' (सुमित्रा), भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' (जय गीधराज), सुधाकर शर्मा 'सुधाकर' (जाम्बवान्), उमादत्त सारस्वत 'दत्त' (मन्दोदरी), गणेशदत्त सारस्वत (विभीषण), परमानन्द जड़िया (कौशलेन्दु भरत), दयानन्द जड़िया 'अबोध' (कैकेयी) इत्यादि कवियों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रेरित-प्रभावित किया है—उपेक्षित-उपेक्षिता पात्र-पात्रा के स्फीत चित्रण में मनोवैज्ञानिक चित्रण में, नव्यता-संवहन में। कैकेयी पर काव्य-रचना में 'प्रभात', श्रीकृष्ण मिश्र, 'अबोध', सुरेन्द्रसिंह सक्सेना 'इन्दु' इत्यादि मैथिलीशरण से प्रेरित हैं ही, परम-उपेक्षिता अहल्या पर काव्य-रचना में 'प्रभात', श्रीकृष्ण मिश्र, 'अबोध', सुरेन्द्रसिंह सक्सेना 'इन्दु' इत्यादि मैथिलीशरण से प्रेरित है ही, परम-उपेक्षिता अहल्या पर काव्य-रचना में रामकुमार वर्मा, रमेशचन्द्र मिश्र, चन्द्रिकाप्रसाद दीक्षित, प्रभा खेतान इत्यादि की परोक्ष प्रेरणा के स्रोत भी वे ही हैं; यह सत्य है कि अधिकांश रचनाएँ साधारण हैं, एकाध निराधार भावुकता की द्योतक भी हैं; किन्तु इन सबसे रामकाव्य की श्रीवृद्धि तो हुई है। यद्यपि मैथिलीशरण के एक भक्त महाकवि पन्त 'यशोधरा' को वरीयता प्रदान करते थे, सम्भवतः कि उसमें नारी-संवेदन प्रौढ़ एवं तेजस्वितापूर्ण है, तथापि मूलसंवेदनात्मकता, विविधता एवं काव्यकला के त्रितू में साकेत को ही सर्वोपरिता प्रदान करनी पड़ती है। दीपावाली 1986 वि. (1929 ई.) को समाप्त एवं 1931 ई. में प्रकाशित द्वादशसर्गीय महाकाव्य साकेत में अनन्त अपरिसीम रामकाव्य के अयोध्या-केन्द्रित इतिवृत्त का मनोहारी चित्रण प्राप्त होता है, जैसाकि शीर्षक से भी व्यंजित है। अथर्ववेद में प्रतीक-रूप तथा रामायणादि में वस्तु-रूप में वर्णित सप्तपुरियों (अयोध्या, मथुरा, माया या हरिद्वार, काश, काञ्जी, अवन्तिका या उज्जैन और द्वारिकापुरी) में प्रथम अयोध्या का साकेत नाम बौद्धकाल में पड़ा था; अतः शीर्षक कालदोषयुक्त है किन्तु मैथिलीशरण ने साकेत शब्द को इतना लोकप्रिय कर दिया है कि दिल्ली जैसे महानगरों में साकेत जैसे नगर मिल जाते हैं तथा स्व. डॉ. रामकुमार वर्मा ने प्रयाग में साकेत बसाया था, कानपुर में 1996 ई. में 100 वर्ष पूर्व करनेवाले प्राध्यापक-प्रवर पं. अयोध्यानाथ शर्मा ने (कानपुर में साकेतनगर भी है)! महाकाव्य में ऊर्मिला की प्रधानता मौलिक है। ऊर्मिला महाकाव्य-नायिका होने में सर्वथा सक्षम हैं। वे राम, सीता एवं लक्ष्मण के वनवासकाल में अयोध्या की सर्वाधिक मार्मिक पात्रा हैं। भरत-शत्रुघ्न तक नन्दिग्राम में हैं। अष्टम सर्ग का उत्कृष्ट चित्रकूट-प्रकरण साकेत शीर्षक एवं उसकी व्यंजना को प्रश्नचिह्नित कर सकता है, किन्तु कवि ने कुशलतापूर्वक समाधान कर दिया है:

चल, चपल, कलम, निज[1] चित्रकूट चल देखें, प्रभु चरण-चिह्न पर सफल भाल-लिपि लेखें।
सम्प्रति साकेत-समाज वहीं है सारा, सर्वत्र हमारे संग स्वदेश हमारा।[2]

द्वादश सर्ग में लंका-युद्ध का प्रकरण है, किन्तु उसे साकेत में ही वसिष्ठ ने दिव्यदृष्टिदान कर दिखाया है,[3] क्योंकि एकादश सर्ग में संजीवनी ले जाते हुए हनुमान् को असुर समझकर भरत ने शर-प्रहार द्वारा धराशायी कर दिया था, जिन्होंने समग्र रावण-प्रकरण से अवगत करा दिया था, जिसके परिणामस्वरूप अवधपुरी का पत्ता-पत्ता सजग हो गया और गुरु को लंका-प्रस्थान के लिए उद्यत एवं आतुर जनसमूह की समस्या का समाधान करना पड़ा। अतः साकेत की साकेतता यहाँ भी अव्याहत रही। प्रथम सर्ग में ऊर्मिला-लक्ष्मण-संयोग से श्रीगणेश तथा द्वादश सर्ग में ऊर्मिला-लक्ष्मण-संयोग से ही इतिश्री से साकेत का अंगीरस शृंगार सिद्ध होता है, यद्यपि अंशतः अनेक तथा मुख्यतः नवम् एवं दशम सर्गों में व्याप्त विरह की प्रधानता के साथ साकेत में विरह-व्यथा स्वाभाविक है! महाकाव्य सुखान्त है। कवि ने रामायण, रघुवंशम्, उत्तररामचरितम् एवं रामचरितमानस जैसे विश्वस्तरीय गौरवग्रन्थों के वृत्तों से बचकर, अयोध्यामूलक वृत्त को प्रधानता प्रदान कर, प्रकरणवक्रता[4] का अतीव प्रभावशाली परिचय दिया है; साकेत निस्सन्देह मौलिक महाकाव्य है। फिर भी, कृतज्ञ कवि ने वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, भवभूति एवं तुलसीदास की

---

[1] अपना ('साकेत' का)।

[2] अर्थान्तरन्यास (लोकोक्ति) अलंकार का सुन्दर प्रयोग। देशभक्ति के व्यापक आयामों तक प्रभावी।

[3] महाभारत (गीता जिसका अंश है) के संजय का निदर्शन प्राप्त है ही। (कई 'विद्वान्' मानते हैं कि तब भी दूरदर्शन विद्यमान था!)

[4] द्रष्टव्य है, आ. कुन्तक (कुन्तल) की अमर कृति 'वक्रोक्तिजीवितम्'।

स्तुति की है, जो यथास्थान अनेक सर्गों में प्रसरित है। मैथिलीशरण ने तुलसी के मानस के सदृश साकेत के प्रत्येक सर्ग के आरम्भ में भी मंगलाचरण का प्रयोग किया है किन्तु सर्वथा नव्य-रूप में अथवा सर्गवस्तुपात्ररसानुरूप। विश्वविख्यात रामकथा शत-शत महाकाव्य-खंडकाव्य-नाटक-लोकगीत-लोककथा इत्यादि से आपूर्ण है तथा उसमें साकेत की मौलिकता मैथिलीशरण की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की सूचक है।

महान् नारी-संवेदन 'साकेत' की सर्वोपरि उपलब्धि है, जिसने ऊर्मिला, कैकेयी, माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति को नव्य-भव्य जीवन-दान दिया है। मोहम्मदीयत में न विश्पला[1] है न लक्ष्मीबाई, न सीता न सावित्री[2], न राज्यश्री न इन्दिरा। परतन्त्रता ने भारत में नारी की छवि धूमिल कर दी थी। गुप्तजी ने नारी को पुनर्प्रतिष्ठित किया। उनके लक्ष्मण स्वयं को ऊर्मिला का दास कहकर कालिदास के शिव के स्वयं को पार्वती का दास कहने का पावन स्मरण कराते हैं। गुप्त जी ने हिन्दी कविता को वाल्मीकि, भास, कालिदास इत्यादि की सुसंस्कृत नारी-प्रशंसा से गौरवान्वित किया। भारतीय परम्परा में नारी को सदैव उच्चस्थान प्राप्त रहा है तथा वह पुरुष की सहधर्मिणी-सहकर्मिणी रही है। विश्वावारा, घोषा, अपाला, सूर्या, श्रद्धा, वाक्, गार्गी, मैत्रेयी, भारती, आंडाल (गोदा), उमाबाई (उमाबा), लल्लेश्वरी (लल्ल), मुक्ताबाई, मीराँ (मीरा), सहजोबाई, दयाबाई, तोरु दत्त, सरोजिनी नायडू, महादेवी, आशापूर्णादेवी, महाश्वेतादेवी हों या विश्पला, दुर्गावती, लक्ष्मीबाई या दमयन्ती, सावित्री, सीता या रुक्मिणी अरुंडेल, सिद्धेश्वरी देवी, सुब्बालक्ष्मी, लता या राज्यश्री, विजयलक्ष्मी, इन्दिरा—भारत ने जितनी महान् नारियाँ उत्पन्न की हैं उतनी किसी अन्य देश ने नहीं।

यद्यपि प्रायः आदि एवं मध्य से अन्त तक 'साकेत' का अंगीरस शृंगार है—कहीं लक्ष्मण-ऊर्मिला से सम्बद्ध तो कहीं राम-सीता से सम्बद्ध, कहीं संयोग से कहीं वियोग—तथापि कवि के सुविख्यात नवम सर्ग में करुणा के प्रति एक सम्बोधन के कारण यत्र-तत्र करुणरस की चर्चा भी हुई है जो निराधार है, क्योंकि करुणरस का स्थायीभाव शोक है तथा शृंगार का रति। साकेत में शृंगार का करुण-विप्रलम्भ रूप भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि इसमें निराशा का कोई कारण अथवा उसकी प्रतीति तक विद्यमान नहीं है; स्वयं कवि ने 'मेरी विभूति' कहकर काव्य की विशिष्ट स्थिति स्पष्ट कर दी है :

> करुणे! क्यों रोती है? 'उत्तर' में और अधिक तू रोई,
> 'मेरी विभूति' है जो, उसको 'भव-भूति' क्यों कहे कोई?'

'साकेत' की नानारसयोजना 'प्रियवास' का स्मरण कराती है, यद्यपि प्रियप्रवास का रसरूप अधिक पुष्ट भी है, सहज भी, क्योंकि हरिऔध व्यापकतर संवेदन के महाकवि सिद्ध होते हैं। कुल मिलाकर, हरिऔध मैथिलीशरण की समता नहीं कर सकते क्योंकि मैथिलीशरण में चिरकवियुगकवि का विराट् समानुपात मूर्तिमन्त होता है, जबकि हरिऔध की श्रेष्ठ कवि केवल एक है, किन्तु खड़ीबोली का 'प्रस्थान' महाकाव्य होने के अतिरिक्त सहजतर-सरसतर होने के कारण भी प्रियप्रवास साकेत से श्रेष्ठतर है, भले ही 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के प्रणेता आलोचकप्रवर पंडित कृष्णशंकर शुक्ल की प्रियप्रवास की समग्र खड़ीबोली-कविता में सर्वोत्तमता की स्थापना कामायनी के कारण अस्वीकार्य हो, क्योंकि प्रसाद का महाकाव्य रसदृष्टि से विशेष सम्पन्न न होने पर भी शैली, शिल्प, प्रतीक, दर्शन एवं नव्यता में अप्रतिम है। अपनी टकसाली व्रजभाषा, अपने अप्रतिहत प्रवाह, अपनी सफल नानारसनिष्पत्ति एवं अपने विलक्षण 'उदात्त' में रत्नाकर कृत महाकाव्य 'गंगावतरण' को कामायनी के समक्ष रखना ही न्यायसंगत होगा, यद्यपि उसमें आधुनिकता[3] का तनिक भी समावेश नहीं है (जबकि प्रियप्रवास--साकेत-कामायनी में क्रमशः अधिक से अधिकतर होता गया है)। साकेत या प्रियप्रवास या कामायनी अथवा गंगावतरण या कृष्णायन की रामचरितमानस से तुलना करना संकीर्ण अभिभूतवादिता का चपल प्रदर्शन करना मात्र होगा क्योंकि वह सर्वरसनिष्पन्न, सर्वालंकारसम्पन्न, ज्ञान-योग-भक्ति-कर्म-संपृक्त, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष-आपूर्ण, अप्रतिम प्रभावशाली

---

1. विश्व की प्रथम वीरांगना विश्पला जिसे युद्ध में पैर कट जाने पर दुःख था कि अब वह युद्ध में कैसे जाएगी—अश्विनीकुमार—बन्धुद्वय (वैज्ञानिक-देवता) ने धातुचरणों द्वारा उसका दुःख दूर किया। ऋग्वेद की इस वीरांगना पर काव्यरचना होनी चाहिए। मैंने कई कवयित्रियों से कहा है। किन्तु पढ़कर लिखना! अब हिन्दी की प्रकृति के विरुद्ध हो गया है!!
2. 'तुजुके-जहाँगीरी' अथवा जहाँगीरनामा में बादशाह जहाँगीर तक ने स्वीकार किया है कि मुसलमान-औरतों के चरित्र हिन्दू-औरतों जैसे नहीं हैं।
3. पुरोहित प्रतापनारायण के 19 सर्गीय स्फीत महाकाव्य 'नल नरेश' में पारम्परिक महाकाव्य-तत्त्वों के प्रयत्नज समावेश से जो अरोचकता-सी आ गई है, वह 'साकेत'- में नहीं है। यद्यपि मैथिलीशरण ने परम्परा का सम्मान षड्ऋतु-वर्णनादि के द्वारा किया है जिस पर आ. रामचन्द्र शुक्ल एवं आ. नन्ददुलारे वाजपेयी 'आधुनिकता' के नाम पर बहुत खफ़ा भी हुए हैं तथापि आधुनिककाल में भी छह ऋतुएँ तो होती ही हैं अतः खफ़ा होना एक सीमा तक ही ठीक हो सकता है—आधुनिकता का हौवा खड़ा करना अदार्शनिक है, क्योंकि काल एवं मानव अपनी समग्रता में एक और अखंड है। हाँ, कोरा चर्वित-चर्वण जी उबा सकता है जो 'नल नरेश' में है पर 'साकेत' में नहीं।

महाकाव्य रामायण, महाभारत, इलिअॅड, शाहीनामा इत्यादि के महतांमहीयान् वर्ग में प्रतिष्ठित हो चुका है। साकेत की नानाछन्दयोजना रामचन्द्रिका का स्मरण करा सकती है, यद्यपि आचार्य-महाकवि का सामर्थ्य स्पष्टतः श्रेष्ठतर है। पद्मावत भावुकता में आगे है तथा उसकी एकरस मार्मिक अभिव्यक्ति भी रम्यतर है। पृथ्वीराजरासो चन्द्र, जल्हण, मलैसिंह इत्यादि अनेक कवियों का अप्रात्ययिक महाकाव्य है, किन्तु यथास्थिति में वह भी अपनी महाभारत एवं शाहनामा का स्मरण करानेवाली स्फीति एवं बहुरंगेपन में आगे चला जाता है। साकेत की कविता का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह सहज नहीं, प्रयत्नज लगती है। फिर भी, अपनी रससम्पन्नता, अलंकृति, नानाछन्दविभूति, मनोहारी, गीतिकाव्य, प्रकरणवक्रता, देशभक्ति एवं प्रभावशालिता[1] के कारण साकेत को रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, पद्मावत, पृथ्वीराजरासो, कामायनी, गंगावतरण एवं प्रियप्रवास के अनन्तर हिन्दी का श्रेष्ठतम महाकाव्य मानना ही पड़ता है। यहाँ अभिप्राय केवल महाकाव्यों से है क्योंकि विद्यापति-पदावली, बीजक, मीराँ-पदावली, सूर-सागर, बिहारी-सतसई, रसराज, रसार्णव, रसविलास, सुजानसागर, जगद्विनोद, उद्धवशतक, अनामिका, पल्लव इत्यादि भी उच्चकोटि के काव्य हैं।

यशोधरा

'यशोधरा' मैथिलीशरण गुप्त की प्रौढ़तम कृति है, जिसमें नारी की आहत अस्मिता को ऊर्जस्वित् अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। हिन्दी की गौरवशालिनी स्वस्थ-प्रवृत्तिवादी परम्परा में यशोधरा एक जगमगाती हुई कड़ी है। तुलसी के भक्ति-दर्शन में हो या सूर के भ्रमरगीत-दर्शन में, हिन्दी-संस्कृति एवं हिन्दी-दर्शन की प्रकृति रिक्तादर्शवादी निवृत्ति पर सहजोज्ज्वल प्रवृत्ति को निर्विवाद वरीयता प्रदान करने की रही है। वेदमार्ग स्वभावतः निर्वेदमार्ग नहीं रहा। नाट्यशास्त्र तक में महामुनि भरत ने नाटक में आठ रस मानते हुए, शान्त को 'भी' वर्गीय (शान्तोऽपि) घोषित किया है, न कि शृंगारादि के सदृश 'ही'-वर्गीय। बुद्ध (563-483 ईसा-पूर्व) परमपावन महापुरुष थे, जिन्होंने ईसा को प्रभावित किया। अशोक, कनिष्क, हर्ष, चंगेज़ ख़ान, शॉपेनहॉएर, एच.जी. वेल्स, इलिअॅट (एलिअॅट), नेहरू, अम्बेडकर इत्यादि उनके भक्तों ने उनको विश्वपुरुष का गौरव प्रदान किया है। वे राम, कृष्ण, मूसा, ज़रथुस्त्र, मोहम्मद, नानक इत्यादि यथार्थवादियों से भिन्न, महावीर, सुकरात, ईसा, गाँधी इत्यादि आदर्शवादियों की परम्परा में प्रथम स्थान पर अधिष्ठित हैं। बुद्ध संसार के प्रथम स्वपूजाप्रवर्तक महापुरुष थे, जिनका अनुकरण अपने ढंगों से ईसा इत्यादि ने किया, जिसके परिणामस्वरूप सारे संसार[2] में एक ही सहज प्रकृति-प्रतीकपरक धर्म पर मतों और मज़हबों ने राजनैतिक एवं हिंस्र आधारों पर वर्चस्व स्थापित कर लिया।

अश्वघोष कृत 'बुद्धचरितम्' में रामायण के अनुकरण पर[3] उनके जीवन का कल्पित वृत्त प्राप्त होता है, जिसमें उन्हें राम के सदृश ऐश्वर्यशाली राजकुमार, स्वयंवरजयी यशोधरापति तथा (युद्धविजेता न सही) मारविजेता के रूपों में प्रस्तुत किया गया है, जिसे बौद्ध विद्वान् धर्मानन्द कोसम्बी[4] से लेकर आर्य विद्वान् आचार्य रामदेव[5] तक सभी उच्चतम अध्येता महत्त्व नहीं देते—उन्हें मध्यवर्गीय भूमिपति शुद्धोदन के उस पुत्र के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसे कृषि का कर्मठतापूर्ण अनुभव प्राप्त था। कपिलवस्तु को आज की नेपाल की तराई का एक छोटा-सा ठिकाना माना जाता था, किन्तु बीसवीं सदी ई. के नवम दशक में पुरातत्त्व-अन्वेषण के आधार पर वह उत्तर प्रदेश के सिद्धार्थनगर जनपद में निकली बताई गई है (यहाँ प्राप्त चावल जापानी विद्वानों ने ईसा-पूर्व सातवीं सदी के माने जाते हैं)—मैंने यह स्थान देखा है। सम्भवतः इसका सांख्यशास्त्र के प्रवर्तक दार्शनिक कपिल की स्मृति से कोई-न-कोई सम्बन्ध था। कपिलवस्तु के भूस्वामी श्रावस्ती के करद थे। श्रावस्ती-सम्राट् रामवंशज या राम-सम्बद्ध थे, जो कुछ पीढ़ियों पूर्व सम्भवतः सरयू की बाढ़ के कारण राजधानी अयोध्या से श्रावस्ती ले आए थे। मैथिलीशरण ने बुद्ध को राम का 'वंशजात' प्रायः ठीक ही कहा है। महावीर का वैशाली क्षेत्र इक्ष्वाकु-पुत्र विशाल ने बसाया था, जैसाकि वाल्मीकि-रामायण मे स्पष्टतः वर्णित है। राम, बुद्ध, महावीर तीनों इक्ष्वाकुवंशी हैं। बौद्धों

---

1. साकेत-सन्त, ऊर्मिला, उत्तर-साकेत इत्यादि-इत्यादि तक अद्वितीयतः प्रसरित, नगर नामकरणों से भवन नामकरणों तक अद्वितीयतः प्रसरित। मानस एवं सूरसागर, रामचन्द्रिका एवं बीजक के अरिक्त साहित्य-सृजन एवं समाज पर जितना प्रभाव साकेत का पड़ा है उतना किसी ग्रन्थ का नहीं। 'साकेत : एक अध्ययन' (डॉ. नगेन्द्र), 'साकेत के नवम सर्ग का काव्यवैभव' (डॉ. कन्हैयालाल सहल), 'साकेत पुनर्विचार' (डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित), 'साकेत की टीका' (डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना) इत्यादि ग्रन्थ महाकाव्य के गौरव की सूचना देते हैं।
2. बाइबिल, कुरान एवं भागवत के अनुसार, आरम्भ में संसार में एक ही धर्म था।
3. द्रष्टव्य है आचार्य नरेन्द्रदेव कृत महान ग्रन्थ 'बौद्ध धर्म दर्शन'
4. 'भगवान् बुद्ध'।
5. 'प्राचीन भारतवर्ष का इतिहास'।

ने 'दशरथजातक' में राम को बुद्ध-पूर्ववर्ती बौद्धिसत्त्वावतारों में प्रतिष्ठित किया है। जैनों में प्राकृत का 'पउम-चरिउ' से अपभ्रंश के 'पउम चरिउ' तक या विमल सूरि से स्वयंभू तक तथा बाद में भी अनेक रामकथाकार हुए हैं। बुद्धसमकालीन कौशाम्बी-नरेश उदयन पांडव-वंशज थे, जिनके पूर्वज गंगा की बाढ़ के कारण राजधानी हस्तिनापुर से यहाँ ले आए थे। सूर्य-वंशी बुद्ध का आदर सूर्यवंशी प्रसेनजित्, चन्द्रवंशी उदयन एवं शिशुनाग-वंशी बिम्बसार इत्यादि सभी पार्श्ववर्ती सम्राट् एवं राजा करते थे। बुद्ध ने चार 'आर्य-सत्य' (सर्वं अनित्यम्, सर्वं अनात्मम्, दुःखम्, निर्वाणं शान्तम्) ''स हि धम्मो सनन्तनो'' के अन्तर्गत ही किए थे; इसीलिए विद्वान् दम्पत्ति रीस-डेविड्स ने उन्हें जन्म, लालन-पालन, जीवन-यापन एवं निर्धन की प्रत्येक दृष्टि से हिन्दू माना है (स्वयं हिन्दू भागवत इत्यादि से विनयपत्रिका तक उन्हें राम, कृष्ण इत्यादि के सदृश विष्णु का एक अवतार मानते आए हैं—भारतीय संविधान तक बौद्धों को हिन्दू मानता है)। किन्तु बुद्ध ने वैदिक यज्ञवाद एवं ऊर्जावाद के विपरीत अहिंसावाद एवं दुःखवाद का प्रचार किया जो उनकी व्यक्तिगत रुचि का प्रतिफल था।

राष्ट्रकवि का बुद्धकाव्य में योगदान स्वाभाविक-सा है, क्योंकि भारतीय संस्कृति पर राम, कृष्णएएवं बुद्ध का प्रभाव अपरिसीम है (भले ही आज का हिन्दूधर्म व्यास, शंकराचार्य एवं तुलसीदास द्वारा अनुप्राणित हो)। यद्यपि उनकी नास्तिकता कोई हिन्दू नहीं मानता, तथापि अहिंसा का प्रभाव अवश्य पड़ा है। कुशल महाकवि मैथिलीशरण ने पिष्ट-पेषण एवं चर्वित-चर्वण से बचते हुए, साकेत की ही मौलिक परिपाटी पर चलकर बुद्धकाव्य को अभूतपूर्व यशोधरा-संवेदन से सम्पन्न किया है, जिसमें ''गोपा[1] बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको''[2] का आधार ग्रहण किया गया है।[3]

कृष्णकाव्यगत द्वापर हो या जयभारत तथा बुद्धकाव्यगत यशोधरा हो या अन्य कृति, मैथिलीशरण का मंगलाचरण राम से ही होता है, जो उनकी अप्रतिहत आस्था का सशक्त व्यंजक है। यशोधरा में बुद्ध के दुःखवाद अथवा क्षणभंगुरतावाद पर प्रभावी सृजन प्राप्त होता है, किन्तु वरीयता जीवनवाद[4] को ही प्रदान की गई है :

निज बंधन को संबंध सयत्न बनाऊँ। कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ।।
जाना चाहे यदि जन्म, भले ही जावे, आना चाहे तो स्वयं मृत्यु भी आवे,
पाना चाहे तो मुझे मुक्ति ही पावे, मेरा तो सब कुछ वही, मुझे जो भावे।
मैं मिलन-शून्य में विरह-घटा-सी छाऊँ! कह मुक्ति, भला, किसलिए तुझे मैं पाऊँ?

संसार के सम्बन्धों में पति-पत्नी-सम्बन्ध सर्वाधिक गम्भीर, व्यापक, प्रभावी एवं नैसर्गिक है। पिता-पुत्र-सम्बन्ध भी मानवता की पावन एवं प्रगतिप्रतीक निधि है। कोई साधना या कोई सिद्धि ऐसी नहीं जो पत्नी या पुत्र के साथ प्राप्त न की जा सकती हो। किसी कारण या रुचिवश विवाह न करना अनुचित नहीं। हनुमान्, भीष्म, शंकराचार्य, दयानन्द, विवेकानन्द, विनोबा इत्यादि ने विवाह न करके सीमांतक अथवा टिकाऊ अमरता प्राप्त की है। किन्तु विवाह करके पत्नी-त्याग एवं पिता बनके पुत्र-त्याग प्रशस्य नहीं माना जा सकता। यशोधरा का जागरूक पत्नीत्व का क्षोभ सर्वथा सकारण है :

सिद्धि हेतु स्वामी गए, यह गौरव की बात।
पर चोरी-चोरी गए, यही बड़ा व्याघात।।
सखि! वे मुझसे कहकर जाते,
कह, तो क्या वे मुझको अपनी पथ-बाधा ही पाते?—
स्वयं सुसज्जित करके क्षण में,
प्रियतम को प्राणों के पण में,
हमीं भेज देती हैं रण में,
क्षात्र धर्म के नाते।
सखि! वे मुझसे कहकर जाते।....

---

1. यशोधरा का पुकारने का नाम।
2. वाक्य सूर्यवंशी भूपति शुद्धोदन द्वारा कहलाया गया है।
3. ''काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चरितं महत्'' का स्मरण आता है।
4. यशोधरा पलायनवाद पर मातृत्व की विजय का अमरगान है।

और, यह अतिविख्यात काव्य-सूत्र सहस्राब्दियों से भारतीय नारी का इतिहास-सूत्र भी है :

अबला जीवन, हाय! तुम्हारी यही कहानी—
आँचल में है दूध और आँखों में पानी!

सृजन, उन्नयन, पालन-पोषण के दिव्य कर्म का फल अश्रुः अश्रु-मर्मभेदक सत्य है! लगभग एक सहस्राब्दि पूर्व बीसलदेवरासो[1] के कवि नरपति नाल्ह ने राजा बीसलदेव की विरहिणी रानी राजमती के सन्दर्भ में ऐसा ही मार्मिक सृजन किया था :

अस्त्रीय जनम कत दीधउ महेस। अवर जनम थारइ घणा रे नरेस।।
रानि न सिरजीय रोझड़ी। घणह न सिरजीय धउलीय गाय।।
बनखंड काली कोइली। हउँ बइसती अम्बा तइ चम्पा की डाल।।

और तुलसीदास ने इसी मार्मिक सत्य को इन अप्रतिम मार्मिक शब्दों में व्यक्त किया था :

कत बिधि सृजी नारि जग माहीं। पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं।।

निस्सन्देह नारी-दयनीयता का चित्रण चरम सत्य न होकर अर्थवाद-गत सत्य है, किन्तु पूर्ण हो या आंशिक, सत्य तो है ही। प्रसाद के नारी को 'केवल श्रद्धा' कहने के छह दशाब्दियों के अनन्तर भी इस सत्य की आंशिकता समाप्त नहीं हुई।[2]

यशोधरा में कविता, गीत, नाटक के नाना तत्त्वों का समावेश उसे वस्तुतः चम्पूकाव्य प्रमाणित कर सकता है किन्तु उसकी वस्तुगत गहनता एवं नारी-संवेदनगत उदात्तता उसे महाकाव्य सिद्ध कर सकती है। जब दिनकर कृत गीतिनाट्य 'उर्वशी' महाकाव्य माना जाता है, तब मैथिलीशरण कृत चम्पू महाकाव्य क्यों नहीं माना जाएगा? यशोधरा में जीवन तत्त्वों की व्याप्ति उर्वशी से अधिक है।

मैथिलीशरण भारतीय सुखान्ततावाद का सम्मान करते हुए यशोधरा का समापन बुद्ध के कपिलवस्तु-आगमन, मानिनी गोपा के निकट स्वयं जाने, नारी-महिमा का प्रतिपादन करने तथा कृतज्ञ गोपा द्वारा राहुल-दान के साथ करते हैं।

द्वापर

यद्यपि मैथिलीशरण के खंडकाव्यों में 'जयद्रथवध', 'पंचवटी', 'विष्णुप्रिया' एवं 'सिद्धराज' को बहुत ख्याति मिली है तथा मुक्तककाव्य भारत-भारती तो इन सबसे भी अधिक ख्यात है, तथापि द्वापर का एक विशिष्ट स्थान मानना ही समीचीन होगा। रामकृष्णैक्यमूलक किन्तु राम को सम्बोधित दोहे के मंगलाचरण के अनन्तर, श्रीकृष्ण, राधा, यशोदा, विधृता[3], बलराम, ग्वाल-बाल, नारद, देवकी, उग्रसेन, कंस, अक्रूर, नन्द, कुब्जा, उद्धव, गोपी एवं सुदामा शीर्षक षोडशप्रकरणबद्ध इस नन्हें-से भागवत में षोडशकलाधारी कृष्ण एवं उनके युग का सागर गागर में लहराता दीख सकता है। भागवत के कृष्ण जयदेव, विद्यापति, शंकरदेव, माधवदेव, पोतन, नरसी, सूर, रसखान आदि शत-शत कवियों एवं आंडाल (गोदा), मीराँ (मीरा), ताज बेग़म इत्यादि अनेकानेक कवयित्रियों द्वारा नाना भारतीय भाषाओं में सहस्र-सहस्र गीतों में गाए जा चुके थे, हरिऔध और उनका आधुनिकीकरण भी कर चुके थे, किन्तु साकेत एवं यशोधरा के महाकवि ने उन पर रचित काव्य में भी प्रकीर्ण-शैलीगत ही नहीं प्रत्युत यत्र-तत्र अनुभूतिगत मौलिकता भी निकाल ही ली—'विधाता' को अमर करके ही नहीं, कृष्ण के अन्नकूट-पूजन मे वैदिक-यज्ञवाद के विरोध-दर्शन में भी। वह महाभारत के कृष्ण से सम्बद्ध जयद्रथवध, वकसंहार, सैरन्ध्री इत्यादि कई खंडकाव्य रच चुका था, अतः

---

[1] डॉ. माताप्रसाद गुप्त 'रासो', 'रासउ', 'रास', 'रासा' इत्यादि का विद्वत्तापूर्ण भेदनिरूपण करते हुए 'बीसलदेवरास' का प्रतिपादन करते हैं और डॉ. भोलानाथ तिवारी उनका समर्थन, किन्तु मुझे ऐसा कुछ नहीं लगता कि "रूढि योगात् बलीयसी" में परिवर्तित किया जाए।

[2] कामायनी का प्रकाशन 1936 ई. में हुआ और जनवरी, 1937 ई. में प्रसाद नहीं रहे।

[3] विशेषतः वि (वि) + धृता (पकड़कर रखी गई) : पति द्वारा कृष्णदर्शनार्थ न जाने देने पर उसने प्राण त्याग दिए—विशेषण को संज्ञा का रूप प्रदान किया गया है। भागवत के एक श्लोक की अनाम पात्रा को उपेक्षिताओं के खोजी कवि ने प्रकरण-नायिका का पद दिया है। ये अतिविख्यात पंक्तियाँ इसी प्रकरण में हैं : एक नहीं दो दो मात्राएँ नर से भारी नारी!

उसने भागवत के कृष्ण पर 'द्वापर' की रचना की और इस प्रकार कृष्णकाव्य की पूर्णता का स्पर्श करने का सफल प्रयत्न किया। द्वापर का प्रत्येक प्रकरण अपने-आप में पूर्ण है; फिर भी, यह षोडश कविताओं का संग्रह न होकर षोडश प्रकरणों का खंड-काव्य है। इसे महाकाव्य कहना कठिन है, क्योंकि इसके आयाम एवं इसका कथ्य-तथ्य सभी खंडकाव्य के ही अनुरूप है। श्रीकृष्ण के वैदिकयज्ञविरोध का संकेत ऐतिहासिक दृष्टि से समीचीन है, क्योंकि कृष्ण कर्मकांडविरोधी अथवा अध्यात्मप्रधान औपनषदिक द्रष्टा थे जैसा कि छान्दोग्य उपनिषद्, में स्पष्टतः देवकी-पुत्र के रूप में उनके उल्लेख से ही सिद्ध है। वेद की आलोचना करने वालों में कृष्ण प्रथम थे जैसाकि महाभारत[1] से ही स्पष्ट है। भागवत का इन्द्र-विरोध भी इसकी सूचना देता है। इन्द्र इन्द्रिय-प्रतीक हैं: शरीर-रक्षक, बलदायक, शौर्य-सुख-प्रतीक। उपनिषद् के दार्शनिकों ने आत्मा को वरीयता प्रदान की। कृष्ण आत्मवाद-वरीयता के प्रतीक हैं। किन्तु 'इंडियन फिलॉसाफी' के विद्वान् प्रस्तोता सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने ऋग्वेद के कृष्णासुर के संहारक इन्द्र के वृत्त-बिन्दु के आधार पर कृष्ण के अनार्य होने की जो सम्भावना उछाली है वह पाश्चात्य भेदवाद को अत्यन्त प्रिय लगने के बावजूद निराधार है, क्योंकि कृष्ण का उपनिषद्-उल्लेख एवं उनके चन्द्रवंशी क्षत्रिय होने का महाभारतगत तथा पुराणगत वृत्त इसके विपरीत है। कृष्ण को अनार्य एवं इन्द्र को आर्य कहकर एक प्रकार के नए देवासुर-आख्यान या आर्य-द्रविड़-द्वन्द्व की कल्पना 'सर' का सर ही कर सकता है! ऐसे कुछ लाल-बुझक्कड़ों ने पांडवों को चीनी सिद्ध किया है क्योंकि पांडु का अर्थ पीला होता है और चीनी पीले हैं! साम्यवादी राहुल ने 'वोल्गा से गंगा' ('गंगा से वोल्गा' नहीं) में आर्यों को मूलतः रूसी सिद्ध किया था। पूँजीवादी हो या साम्यवादी, भारत एवं भारतीयता पर प्रहार के परम धर्म से विरत नहीं होता, क्योंकि यह नाम-दाम-काम बनाने का सुगम मार्ग है। चिरकाल से भारत में आर्य, गन्धर्व, किन्नर, नाग, यक्ष, द्रविड़, वानर, भल्ल, भास (गृद्ध), कोल, किरात, खस, भील, शबर, संथाल, मिज़ो, डाफला इत्यादि एक साथ रहते आ रहे थे। बाद में ईरानी, यूनानी, शक, कुषाण, हूण, शान इत्यादि आकर इन्हीं से मिल गए। इस विराट् एकता के निर्माता अगस्त्य, पुलस्त्य, परशुराम, राम, लव, कुश, तक्ष[2], कृष्ण, अर्जुन, चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, पुष्यमित्र, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त (द्वितीय), विक्रमादित्य इत्यादि थे। मध्यकाल के भयावह वातावरण में भी भारतवर्ष या हिन्दुस्तान की व्यापकता की पारम्परिक धारणा अप्रतिहत रही। अकबर महान् तो वर्तमान सहस्राब्दि में एकता का सर्वोपरि वाहक-नायक है ही। किन्तु गौरांगो ने "फूट डालो और राज्य करो"[3] की दुर्नीति को आधार बनाकर जो फूट डाली उसने राष्ट्र की दुर्दशा कर डाली। स्वतन्त्र भारत का नेतृत्व एकता-स्थापना एवं एकता-पल्लवन में नितान्त विफल रहा। विभिन्न जातियों, सम्प्रदायों इत्यादि में भेदवृद्धि का कारण घातक एवं स्वार्थलिप्त राजनीति है अन्यथा हमारी भौगोलिक एवं भावात्मक एकता प्रकृतिसिद्धि एवं इतिहाससिद्ध है। मैथिलीशरण गुप्त ने सदैव सहज एवं अकृत्रिम राष्ट्रीय एकता के गान गाए। उन्होंने चिरन्तन वेदमार्ग का सम्मान किया।

यह सत्य है कि स्वप्रतिष्ठापन के आग्रहवश ही कृष्ण, बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक इत्यादि ने वेदालोचना की है (अहं मानव की सहज प्रवृत्ति है अन्यथा व्यक्ति पुजे कैसे?) अन्यथा जो वेद मैंने पढ़े हैं वे प्राचीनतम मानवता का विश्वकोश हैं न कि "त्रैगुण्यविषया"; और बलि (नरबलि तक) बाइबिल एवं कुरान में भी वर्णित है! जो वेद मैंने पढ़े हैं उनमें "छ रस चारिबिधि" जैसे पाकशास्त्र के बिन्दु नहीं मिले। किन्तु मैं कृष्ण, बुद्ध, तुलसी इत्यादि का आदर करता हूँ क्योंकि इन्होंने मानवता के विकास में अमर योगदान किया है। डॉ. सम्पूर्णानन्द ने गीता का वेदनिन्दा के कारण प्रत्याख्यान किया है। यह उनकी निष्ठापूर्ण विद्वत्ता का प्रतीक तो है, किन्तु ज्ञानविकास-उदारता की सूचना नहीं देता।

'साकेत' में कैकेयी को न्याय मिला है जो 'द्वापर' में देवकी को कैसे न मिलता? अक्रूर, नन्द इत्यादि के अन्तर्द्वन्द्व को कवि ने बड़ी प्रौढ़ता से चित्रित किया है तथा कुब्जा पर गम्भीर संवेदनशीलता से सम्पन्न सर्जना की है। द्वापर की कुब्जा पारम्परिक

---

1. भीष्मपर्व के पच्चीसवें अध्याय से आरम्भ श्रीमद्भगवद्गीता में विशेष रूप से :

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः। वेदवादरताः पार्थ नान्दस्तीतिवादिनः।
त्रैगुण्यविषयावेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। निर्द्वन्द्वोनित्यसत्त्वस्थोनिर्योगक्षेम आत्मवान्।।
यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके। तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः।।
(2/42, 45-46)

2. भरत के पुत्र जिन्होंने तक्षशिला बसाई जैसाकि वाल्मीकि-रामायण में उल्लिखित है।

3. डिवाइड एंड रूल।

परिहासपात्रा न होकर अस्मितानिष्पन्न प्रेमिका है। उपेक्षिताओं के कवि ने उसे भी पूरा-पूरा न्याय प्रदान किया है। 'सुदामा' का प्रकरण कविवर नरोत्तमदास कृत सुदामाचरित[1] की अद्वितीयता के कारण उखड़ा-उखड़ा लग सकता है किन्तु अपने-आप में ठीक-ठाक है।

उद्धव एवं गोपी प्रकरणों में मैथिलीशरण ने सूर, नन्ददास, रत्नाकर इत्यादि की भ्रमरगीत-परम्परा का उत्तराधिकार ग्रहण किया है। यहाँ उद्धव का गोपियों के प्रति दृष्टिकोण सम्मानपूर्ण भी है, संवेदनपूर्ण भी और इसकी अतिस्फीत मालोपमा तो संसार के साहित्य की एक निधि ही है, जिसकी यह बानगी भी सत्य का सम्यक् उद्घाटन कर सकती है :

श्रम कर जो क्रम खोज रही हो उस भ्रमशीला स्मृति-सी,
एक अतर्कित स्वप्न देखकर चकित चौंकती धृति-सी।
हो हो कर भी हुई न पूरी ऐसी अभिलाषा-सी,
कुछ अटकी आशा-सी, भटकी भावुक की भाषा-सी।
सत्य-धर्म-रक्षा हो जिससे ऐसी मर्म मृषा-सी,
कलश कूप में, पाश हाथ मे ऐसी भ्रान्ति तृषा-सी।

'द्वापर' की काव्यकाल-प्रौढ़ता उसके 1936 ई. मे प्रकाशन के साथ पूरा न्याय करती है : इसी वर्ष 'कामायनी' एव 'अनामिका' का प्रकाशन हुआ, 'गोदान' का प्रकाशन हुआ। मैथिलीशरण ने स्वच्छन्दतावादी कविता के सर्वश्रेष्ठ वर्ष 1936 ई. में द्वापर के प्रकाशन के साथ आदर्शवादस्वच्छन्दतावाद की गंगा-जमुनी कविता की रचना में सफलता की सूचना दी है। द्वापर की मालोपमा कामायनी की चिन्ता सर्ग की मालोपमा एवं निराला की 'विधवा' की मालोपमा से किचिन्मात्र न्यून नहीं है।। मैथिलीशरण ने स्वच्छन्दतावादी नव्य-भव्य कला से लाभ तो साकेत एवं यशोधरा में भी उठाया था तथा 'झंकार' तो अपने ढंग के रहस्यवाद की श्रेष्ठ कृति ही है, किन्तु द्वापर में उसका रूप गहनतम है।

द्वापर का भ्रमरगीत नव्य एवं गम्भीर जीवनवाद से निष्पन्न है। जीवनवाद मैथिलीशरण की कविता का सर्वव्यापी दर्शन है। भारतीय संस्कृति के व्यास एवं तुलसीदास के अनन्तर सर्वस्फीत एवं सर्वव्यापक उद्गाता मैथिलीशरण ही हैं। वाल्मीकि कथाप्रधान हैं, कालिदास कलाप्रधान, इतर श्रेणी के रवीन्द्र, इक़बाल, प्रसाद अद्वैतप्रधान, जबकि मैथिलीशरण में अद्वैत, प्रेमाद्वैत, द्वैत की अद्वैतकला एवं सर्वस्फीत जीवन्तता व्याप्त है। द्वापर में 'गोपी' प्रकरण सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इसमें मैथिलीशरण की सर्वस्फीत जीवन्तता के बहुत ही प्रभावी दर्शन होते हैं : कहीं "ध्याने ध्याने स्वरूपता" का विद्यापति, सूर, बिहारी, देव इत्यादि द्वारा गृहीत दर्शन प्राप्त होता है :

राधा हरि बन गई, हाय! यदि
हरि राधा बन पाते,
तो उद्धव, मधुवन से उलटे
तुम मधुपुर ही जाते

तो कहीं शुष्कतामूलक निर्गुणवाद-निराकारवाद पर सरसतामूलक सगुणवाद-साकारवाद को वरीयता प्रदान की जाती है, जिससे सूर, तुलसी, रत्नाकर इत्यादि का स्मरण अनायास आ जाता है :

ज्ञान-योग से हमें हमारा
यही वियोग भला है,
जिसमें आकृति, प्रकृति, रूप, गुण,
नाट्य, कवित्व, कला है।

तो कहीं निवृत्ति पर प्रवृत्ति की विजय की सीधी स्थापना जो उस आशावाद से निष्पन्न है जिसने तुलसीदास को पिछली सहस्राब्दि में हिन्दू-धर्म के महानतम रक्षक का गौरव प्रदान किया है :

वेदमार्गियों में आ पहुँचा,
वह निर्वेद कहाँ से?

---

[1] गुजराती मे भी एक सुन्दर सुदामाचरित मिलता है जो स्वाभाविकतर है क्योंकि सुदामापुरी (कालान्तर में पोरबन्दर जहाँ 2 अक्टूबर, 1869 को गाँधी पैदा हुए—आत्मकथा या 'सत्य के प्रयोग' में इसका उल्लेख है) गुजरात में ही है। सुदामा आज के पोरबन्दर से आज की समुद्रगर्भगत द्वारिकापुरी (अधुनातन ऐतिहासिक शोध की एक विलक्षण उपलब्धि) गए थे। किसी समय वे उज्जयिनी या अवन्तिका में कृष्ण के सहपाठी थे, साँदीपन के कारण गुरुभाई थे। वैसे, बेटद्वारिका (भैंटद्वारिका) इस सन्दर्भ मे प्रसिद्ध है जो द्वीप है तथा जहाँ तीर्थयात्री जाते रहते हैं।

लौटा ले जाओ हे उद्धव,
लाए इसे जहाँ से।
हम सौ वर्ष जिएँगी, अपनी
आशा लेकर उर में,
वह प्रसन्नता से प्रमोदरत
रहें प्रतिष्ठित पुर में।

जयभारत

मैथिलीशरण गुप्त के काव्यों में 'द्वापर' के साथ-साथ 'जयभारत' की भी बहुत उपेक्षा हुई है। इसका एक कारण इसमें पूर्ववर्ती स्वतन्त्र खण्डकाव्यों नहुष, हिडिम्बा, वकसंहार इत्यादि का संग्रथन है। यद्यपि कवि ने उनमें बहुत परिवर्तन किया है तथापि कृति की अस्मिता प्रश्न-चिह्नित हो ही गई है। दूसरा कारण सुश्रृंखलित अथवा एकतान वस्तु का अभाव-सा है जिसके परिणामस्वरूप काव्य प्रकरण-समाहार अधिक प्रतीत होता गया है, व्यवस्थित महाकाव्य अल्प। जयभारत महाकाव्य है या खंडकाव्य-समुच्चय? इस प्रश्न की उपेक्षा नहीं की जा सकती। तीसरा कारण इसमें साकेत जैसी काव्यकला, यशोधरा जैसी नव्यता एवं द्वापर जैसी दार्शनिकता का अभाव-सा है, जिसके परिणामस्वरूप वर्णनात्मकता का अतिरेक प्रायः शुष्क एवं गद्यात्मक लगने लगता है।

जयभारत के नहुष, यदु और पुरु, योजनगन्धा, कौरव-पांडव, बन्धुविद्वेष, द्रोणाचार्य, एकलव्य[1], परीक्षा, याज्ञसेनी, लाक्षागृह, हिडिम्बा, वकसंहार, लक्ष्यवेध, इन्द्रप्रस्थ, वनवास, राजसूय, द्यूत, वनगमन, अस्त्रलाभ, तीर्थयात्रा, द्रौपदी और सत्यभामा, वनवैभव, दुर्योधन का दुःख, वनमृगी, जयद्रथ, अतिथि और आतिथेय, यक्ष, अज्ञातवास, सैरन्ध्री, वृहन्नला, उद्योग, विदुर-वार्ता, रण-निमन्त्रण, अनाहूत, मद्रराज, केशों की कथा, शान्ति-सन्देश, कुन्ती और कर्ण[2], युयुत्सु[3], समर-सज्जा, अर्जुन का मोह, युद्ध, हत्या, विलाप, कुरुक्षेत्र, अन्त एवं स्वर्गाराहण शीर्षक सैंतालिस सर्गों में तीन आरम्भिक अलग से जोड़े लगते हैं, किन्तु चतुर्थ से वृत्त का व्यवस्थित समारम्भ हो जाता है जिसका अन्त तक सुन्दर निर्वाह हुआ है।[4] द्रोणाचार्य के दारिद्य का चित्रण बहुत ही उच्चकोटि का हुआ है। कवि ने उनके एकलव्यमूलक प्रत्याख्यान (अब छुटभैयों की 'प्रगतिवादी लपेट' में) की रूढ़ि से हटकर वस्तुवादी आकलन में प्रशस्य साफल्य प्राप्त किया है। कन्दुक-कूप-प्रकरण के साथ उनका आगम प्रभावशाली रूप से चित्रित किया गया है। स्वयं उनके व्यक्तित्व का वर्णन भी प्रभावी है :

आगत जन था एक साथ ही सुभट-सुपण्डित, क्षात्र-तेज से और ब्राह्म-गौरव से मण्डित।
दण्ड छोड़ कोदण्ड-कमण्डलु धार चला था, परशुराम यदि न था, उन्हीं का अनुज भला था।

भारत सरकार ने खिलाड़ियों के अर्जुन-पुरस्कार के साथ क्रीड़ा-गुरुओं को द्रोणाचार्य-पुरस्कार देकर इतिहास के सबसे बड़े खिलाड़ी (कौन-सा खिलाड़ी महाकाव्य-नायक बन सका है?) और सबसे बड़े क्रीड़ा-गुरु (कौन-सा क्रीड़ा-गुरु इतना महान् हुआ है?) की स्मृतियों से स्वयं को पवित्र किया है।

रण-निमन्त्रण पूर्वरचित प्रकरण था, जिसे जयभारत में बहुत अच्छी तरह से खपा लिया गया है। यह वर्णन बहुत सुन्दर है, जिसका काव्यस्तर जयद्रथवध का स्मरण करा देता है। 'केशों की कथा' में द्रौपदी, वकसंहार, लक्ष्यवेध, इन्द्रप्रस्थ, वनवास, राजसूय, द्यूत, वनगमन, अस्त्रलाभ इत्यादि में पांडवों का तेजस्वी रूप एव उनकी युद्ध-प्रेरणा रसात्मक भी है, कलात्मक भी। युसुत्सु का अन्तर्द्वन्द्व-चित्रण उत्कृष्ट है। युद्ध का आरम्भिक सूत्र ''युद्ध कहीं पाल पाता अपने नियम ही'' चिरसत्योद्घाटक है। किन्तु सर्ग शिथिल है। युद्ध पर कविवर

---

1. डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'एकलव्य' काव्य रचा है। कई औरों ने 'पछियाया' है!
2. दिनकर के 'रश्मिरथी' का प्रेरणा-स्रोत।
3. धर्मवीर 'भारती' के 'अन्धा युग' का एक प्रेरक-तत्त्व; 'हत्या', 'विलाप' इत्यादि अन्य तत्त्व हैं।
4. दूरदर्शन का स्मरणीय धारावाहिक 'महाभारत' (1988-90 ई.) पर 'जयभारत' का प्रभाव पड़ा है, यद्यपि उल्लेख नहीं किया गया। किन्तु 'जयभारत' में भीष्म के साथ न्याय नहीं किया गया, जबकि धारावाहिक 'महाभारत' प्रायः आद्यन्त भीष्म-प्रभाव से प्रशस्यतः ओतप्रोत है। स्वयं 'महाभारत' महाकाव्य भीष्म का सम्यक् आकलन करता है। 'हिन्दी का भीष्म-साहित्य' शोध का विषय है: सबलसिंह चौहान के महाभारत, गोकुलनाथ गोपीनाथ-मणिदेव के अनूदित महाभारत, रत्नाकर के छन्द, द्वारकाप्रसाद मिश्र के कृष्णायन, भारतरत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन के निबन्ध 'भीष्म पीतामह', दिनकर के 'कुरुक्षेत्र', परमानन्द जड़िया के 'गंगानन्दन भीष्म' इत्यादि के रूप मे पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।

दिनकर का सृजन अन्यतम है; इस दृष्टि से महाकवि गुप्त से कवि धर्मवीर 'भारती' तक कोई उनकी समता नहीं कर पाता। (मैं दिनकर जैसे अकुंठ-तेजस्वी कवि-रत्न में शान्तिरोगी या ''अन्धे को अँधेरे में बड़ी दूरी की सूझी'' की याद दिलानेवाले समय-कवि धर्मवीर भारती की तुलना नहीं कर रहा—केवल सादृश्य-संकेत कर रहा हूँ।) अन्तिम सर्ग स्वर्गारोहण उच्चकोटि का है, जिसके कारण काव्य का अंगीरस शान्त बन गया है, जो उपलब्ध प्रक्षेपणबहुल महाभारत के विराट् कलेवर के भी प्रतिकूल नहीं लगता :

भव-विभव-भरे गृह से निःस्पृह, निज धर्म-कर्म कर भले-भले,
सम्पूर्ण प्रपंचों से ऊपर उठ पाँच पंच ये कहाँ चले?[1]
रख एक शांतरस अंतस में विष-सा विषयों को त्याग चले,
दुःखों से लड़कर शूर-सदृश, सुख के सपनों से भाग चले।
बल से भूमण्डल-जय करके ये स्वर्ग-विजय के हेतु चले,
तर सकें अन्य भी भव-सागर रच अचल शील का सेतु चले।

हिमालय-आरोहण में क्रमशः द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन एवं भीम के अवसान पर युधिष्ठिर का चित्रण बहुत ही गौरवशाली है। 'अन्धा युग' में शान्ति-रोगी धर्मवीर 'भारती' अपने असन्तुलित युधिष्ठिर-पक्षपात के बावजूद उस धर्मवीर का, उस धर्मधीर का, उस धर्मराज का इतना गौरवशाली चित्रण नहीं कर सके। कर भी कैसे सकतेः वह सांस्कृतिक गौरव एवं वह महाकवि-स्तर कहाँ से लाते? युधिष्ठिर भारतीय साहित्य, वस्तुतः विश्व-साहित्य, के एकमात्र ऐसे महाकाव्य-नायक हैं जिनमें अपनी सीमाओं में राम, लक्ष्मण, अर्जुन जैसे धीरोदात्त तथा भरत, बुद्ध, महावीर इत्यादि धीरशान्त नायक-वर्गद्वय की एकान्विति दृगगत होती है, जिससे उनका जीवन-पूर्णत्व जाज्वल्यमान् होता है :

उन्मुक्त जीव-से वे सुकृती[2] स्वच्छन्द, स्वस्थ[3] अब दीख पड़े
उनकी गति देख सुवर्ण-शिखर रह गए जहाँ के तहाँ खड़े!

इस ऊर्ध्वस्थिति में वे अद्वयभूमि का 'उभयपक्षीय' स्पर्श कैसे न करते? किन्तु यहाँ भी कवि जीवनवाद को ही वरीयता प्रदान करता है क्योंकि जीवन चरम सत्य है, परम सत्य है, सत्यों का सत्य[4] है तथा मुक्ति या निर्वाण या कैवल्य उसके अंग मात्र हैं: ''न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्''। मैथिलीशरण गहनतम दार्शनिकता को सरलतम कला से संपृक्त करने में जितने सफल हैं उतना तुलसी और सूर के अनन्तर कोई नहीं :

कहता है अहा! अहं, तू क्या, 'कुछ ऐसा खेल न खेलूँ क्यों,
जो मुझे झेल ले अपने में उसकी मैं आप न झेलूँ क्यों?'

कालान्तर[5] में एक लघु-कविता में उनका मन्त्र था :

पार उतरना है तो तर, नारायण हो मेरे नर!

स्वर्गारोहण-साफल्य के कारण 'जयभारत' सुखान्त महाकाव्य है। चरम एवं परम फल के भोक्ता युधिष्ठिर हैं, किन्तु जयभारत शीर्षक स्वयं स्पष्ट करता है कि केवल वही महाकाव्य के नायक नहीं हैं क्योंकि काव्य भारतवंशियों अथवा भारत का वृत्त प्रस्तुत करता है, नायक-विशेष का चित्रण नहीं। किन्तु यदि व्यक्ति-विशेष के नायक रूप का निर्धारण करना ही हो तो वह युधिष्ठिर ही होंगे, क्योंकि 'जय' का फल राज्य भी उन्हें ही मिला था और मोक्ष का परमफल भी उन्हें ही मिलाः धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का पूर्ण पुरुषार्थ-लाभ युधिष्ठिर को ही नायक सिद्ध कर सकता है। साकेत, यशोधरा, जयभारत इत्यादि की सुखान्तता मैथिलीशरण की भारतीय काव्यशास्त्र की सुखान्त-प्रतिपादन परम्परा में अभिरुचि की द्योतक है। भारतीय संस्कृति के एक अप्रतिम आख्याता-व्याख्याता-त्राता मैथिलीशरण पश्चिम के दुखान्त-प्रतिपादन, भयावह-चित्रण, विरेचन-सिद्धान्त इत्यादि की ओर नहीं लपके।

---

1. यमक, विरोधाभास, पुनरुक्तवदाभास इत्यादि से अलंकृत सुसंस्कृत छन्द।
2. सुन्दर विरोधाभासः कृती भी, मुक्त भी।
3. स्व-स्थ का अभिप्राय है 'निज' में 'अवस्थित'। स्थितप्रज्ञ (गीता)। ''तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'' (योगशास्त्र या योगदर्शन)। अभी तक परिवारस्थ भी थे।
4. सबेर ऊपर मानुष सत्य!
5. 'जयभारत' का प्रकाशन 1952 ई. में हुआ था।

'जयभारत' शीर्षक अपूर्व सुनियोजन की सूचना देता है। व्यास ने अपने अजर-अमर महाकाव्य का नाम 'जय' रखा था, जिसकी मूल श्लोक संख्या 8000 या 8800 थी तथा जिसका शीर्षक स्पष्टतः सुखान्त-सूचक था। परवर्ती प्रक्षेपों ने 'जय' को वर्तमान महाभारत के विश्व-साहित्य के बृहत्तम-महत्तम महाकाव्य का रूप प्रदान किया। रामायण भी सुखान्त महाकाव्य था, जिसे प्रक्षिप्त उत्तरकांड ने क्षत-विक्षत कर दिया[1]। रामचरितमानस तक की अनेक ऐसी प्रतियाँ उपलब्ध एवं प्रचलित हैं जिनमें प्रक्षिप्त लवकुशकांड जोड़ दिया गया है, यद्यपि काशी नागरी-प्रचारिणी सभा एवं गीता प्रेस गोरखपुर के प्रभाव के कारण प्रबुद्धजन उनकी सम्पूर्ण उपेक्षा करते हैं जो शतशः उचित है। वाल्मीकि, व्यास एवं तुलसीदास के वास्तविक उत्तराधिकारी मैथिलीशरण ने साकेत, जयभारत इत्यादि में कविपितृ-ऋण की भी पूर्ति की, साथ ही 'महाभारत' की विश्वख्याति का सम्मान करते हुए उन्होंने 'भारत'[2] शब्द का साधारणीकरण की दृष्टि से अमूल्य संयोजन भी कर दिया है। 'राष्ट्रकवि' विशेषण भी अनायास सार्थक हो गया! जयभारत का शीर्षक बहुत ही विशद एवं सटीक है।

'जयभारत' हिन्दी का गौरवशाली महाकाव्य है जिसने 'रश्मिरथी' के कविवर दिनकर एवं 'अन्धा युग' के कवि धर्मवीर 'भारती'[3] इत्यादि को प्रेरित किया है। पन्त कृत स्फीत महाकाव्य 'लोकायतन' के सदृश, जयभारत पर न्यायसंगत आलोचना का अभाव खटकता है। अपने 'समग्र' में 'जयभारत' आधुनिक कृष्णकाव्य की सर्वोत्तम कृति है : 'कृष्णायन' में इस जैसी सांस्कृतिक गहनता नहीं है, 'रश्मिरथी' में इस जैसी व्यापकता नहीं है, जहाँ तक 'अन्धा युग' का सम्बन्ध है वह शान्ति के उन्माद की नितान्त युगबद्ध कृति है जो अब समग्रतः कालातीत हो चुकी है तथा 'कनुप्रिया' अपने सारे लालित्य एवं युद्धशान्ति-ऊहापोह के साथ भी गुण-परिमाण में नितान्त लघु है।

ब्रजभाषा-सृजन

24 फरवरी, 1964 को राज्यसभा भवन में मेरे यह पूछने पर कि आपने रचना का समारम्भ किस विभाषा में किया था, उन्होंने तत्क्षण कहा थाः ब्रजभाषा में! उन दिनों सभी ऐसा ही करते थे। उनकी ब्रजभाषा-कविता का स्वतन्त्र प्रकाशन और आकलन होना चाहिए, जिसके प्रति उनका अगाध सम्मान चिरस्मरणीय है :

> ब्रजभाषे! हौं भूलि सकत कबहूँ नहिं तोकौं, तेरी महिमा और मधुरिमा मोहत मोकौं।
> वे करील के कुंज चीर उरझावनहारे, रहे आप घनश्याम जहाँ सुरझावनहारे।...
> यह जो तेरी बहिन 'खड़ी' है तेरे आगे, दै याकूँ आशीष और का तोसौं माँगे!

आकलन

मैथिलीशरण गुप्त बौद्धिककाल के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, क्योंकि हरिऔध एवं रत्नाकर अधिक सरस एवं अधिक कलात्मक होने पर भी युग-चिर के बृहदानुपात में उनकी समता नहीं कर पाते, प्रसाद[4] कामायनी में श्रेष्ठतर होते हुए भी साकेत, यशोधरा, जयभारत इत्यादि के स्फीत कवि से कवि-रूप में पीछे पड़ जाते हैं, निराला का महान् सृजन केवल 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास', 'सरोज स्मृति' एवं उत्कृष्ट सृजन केवल 'बादल राग', 'तुम और मैं', 'विधवा', 'वह तोड़ती पत्थर' कविताओं में ही प्राप्त होता है जो गुणगौरव के बावजूद मैथिलीशरण के व्योमवैराट्य के समकक्ष सिद्ध नहीं किया जा सकता, पन्त के 'पल्लव' एवं 'गुंजन' रम्यतर एवं शिल्पाप्रतिम हैं तथा 'लोकायतन' विराट् है किन्तु उनके ललित पूर्वसृजन में जीवनवैराट्य नहीं है तथा वैराट्यनिष्पन्न उत्तरसृजन में लालित्य नहीं है जबकि मैथिलीशरण जयद्रथवध से पृथ्वीपुत्र तक एकरस-एकतान ही दृष्टिगेचर होते हैं। अन्य कवियों में किसी से भी उनकी तुलना न्याय-संगत नहीं हो सकती और पन्त ने उनकी महानता पर कविता लिखी है जिसमें "छूता स्नेह से चरण" का उद्गार भी व्यक्त है। जहाँ तक प्रभाव का सम्बन्ध है, उन्होंने वरिष्ठ हरिऔध (वैदेहीवनवास के ऊर्मिला-सन्दर्भ से राष्ट्रकाव्य तक), समवयस्कप्राय प्रसाद

---

[1] द्रष्टव्य है, मेरा 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' (रामायण, महाभारत, इलिअॅड, आडिसी, ऐनीड, शाहनामा, रामचरितमानस) ग्रन्थ।

[2] भारतवंशी कौरव-पांडव।

[3] 'द्वापर' ने 'कनुप्रिया' को प्रेरणा दी है।

[4] प्रसाद ने अन्तिम कहानी-संग्रह 'इन्द्रजाल' मैथिलीशरण गुप्त को समर्पित किया है।

(कानन-कुसुम इत्यादि), कनिष्ठा पन्त, महादेवी[1], दिनकर[2], नवीन[3] रामकुमार वर्मा[4], धर्मवीर 'भारती'[5] इत्यादि से लेकर शत-शत रामकाव्यकारों, कृष्णकाव्यकारों, बुद्धकाव्यकारों, राष्ट्रकाव्यकारों को प्रभावित एवं प्रेरित किया है। एक बार स्वयं को मैथिलीशरण के साथ पंक्तिबद्ध किए जाने पर माखनलाल चतुर्वेदी ने सम्मान-सामग्री फेंक दी थी (स्वयं मैथिलीशरण उपस्थित थे)! अज्ञेय उनका चरण-स्पर्श करते थे। प्रसिद्ध आलोचक नगेन्द्र को दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रपाठक-विभागाध्यक्ष उन्होंने ही बनवाया था, क्योंकि सेकंडक्लास प्राइवेट हिन्दी-एम.ए. (वैसे, थर्ड क्लास अंग्रेज़ी-एम.ए. भी) को आगरा विश्वविद्यालय में हिन्दी के सर्वेसर्वा एवं प्रतिभा-पारखी अयोध्यानाथ शर्मा द्वारा सीधे डी. लिट्. करा देने पर भी, नौकरी में बाधाएँ स्वाभाविक थीं—नगेन्द्र सदा चरणावनत रहते थे। अपने विस्मयकारी सृजन-वैराट्य, अपनी हीनताग्रन्थिमुक्त सांस्कृतिक गरिमा, अपने अदम्य आशावाद, अपने तेजस्वी राष्ट्रवाद, अपने गहन मानवतावाद, अपने अप्रतिम संवेदन एवं अपनी अकृत्रिम प्रगतिशीलता के कारण वे रवीन्द्र एवं इक़बाल से अधिक नहीं तो न्यून भी नहीं हैं तथा महत्तर तुलसी, सूर इत्यादि की परम्परा के अमर कवि हैं। निस्सन्देह, उनकी शब्दमैत्री यत्रतत्र सामान्य प्रतीत होने लगती है, तुक यत्रतत्र हास्यास्पद तक लगने लगते हैं ('सन्त तुकाराम' के व्यंग्य-कारण), वर्णनात्मकता यत्रतत्र स्थूल रूप ग्रहण कर लेती है, परम्परावाद यत्रतत्र प्रतिक्रियावाद का आभास कराने लगता है, किन्तु यह सब उनके विराट् सृजन एवं विराट् प्रभाव को देखते उनके विराट् स्तर की क्षति नहीं कर पाता अन्यथा निराला उनके आगमन पर विह्वल हो संगम से पवित्र जल लाने न दौड़ा करते, पन्त "सूर सूर तुलसी शशि लगता मिथ्यारोपण" की अतिप्रशस्ति न कर पाते, दिनकर 'पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण' का सोपानक्रम न निर्धारित करते, सनेही "अब भी जिसका न कहीं कोई सानी" की स्थापना न कर सकते तथा राधाकृष्णन् "हिन्दी कवियों का शिरमौर" कहते हुए राष्ट्रकवि की राष्ट्रपति से श्रेष्ठता की जीवन्त-श्रद्धांजलि न दे पाते (राष्ट्रपति सदा होता ही रहता है; आज भी है। पर राष्ट्रकवि सदा नहीं होता—आज नहीं है)!

लोचनप्रसाद पांडेय

पशु-संवेदन के अग्रणी कवि पं. लोचनप्रसाद पांडेय (1886-1956 ई.) का जन्म बालापुर, जनपद विलासपुर, मध्य प्रदेश में हुआ था। वे संस्कृत, हिन्दी, उड़िया एवं अंग्रेज़ी के प्रसिद्ध विद्वान् थे तथा उड़िया-कवि भी थे। कविवर मुकुटधर पांडेय उनके अनुज थे।। 1905 ई. से 'सरस्वती' से इनकी कविताएँ लगातार प्रकाशित होती रहीं। यह आ. द्विवेदी के प्रमुख शिष्यों में थे तथा अपने गुरुभाई मैथिलीशरण गुप्त के जन्मवर्ष में ही उत्पन्न हुए थे। इन्होंने सुधारवादी नाटक, उपन्यास, बालसाहित्य की भी प्रभावी सर्जना की तथा प्रदेश के साहित्यकारों का नेतृत्व भी किया। 'मृगीदुःखमोचन' इनकी अमर कविता है। 'मेवाड़-गाथा' (ऐतिहासिक खंडकाव्य) तथा 'पद्य-पुष्पांजलि' (संग्रह) इनके अन्य उल्लेख्य ग्रन्थ हैं। कलापक्ष सामान्य होने पर भी, इनकी सरल-सहज प्रकृति-कविता भावपक्ष में द्विजदेव, जगमोहनसिंह एवं श्रीधर पाठक की प्रकृति-कविता से श्रेष्ठतर है। इनका सम्यक् आकलन उपेक्षित है। सुस्पष्ट मौलिकता एवं गहन संवेदनशीलता में लोचनप्रसाद पांडेय की समता बहुत कम कवि पर पाएँगे।

लोचनप्रसाद पांडेय का पशु-पक्षी, पौधों इत्यादि के प्रति अद्वितीय संवेदन आज के पर्यावरण-प्रदूषण को देखते उन्हें द्रष्टा-कवि सिद्ध करता है। पद-पद पर आ. द्विवेदी एवं उनके शिष्यों की कविता के 'इतिवृत्तात्मक' होने पर नाक-भौं सिकोड़नेवाले आ. शुक्ल तक ने स्वीकार किया है कि "यह भावुकता इनकी अपनी है" तथा दो सुन्दर उदाहरण देकर इसे पुष्ट भी किया है :

1. चढ़ जाते पहाड़ों में जाके कभी, कभी झाड़ों के नीचे फिरें-बिचरें।
कभी कोमल पत्तियाँ खाया करें, कभी मीठी हरी-हरी घास चरें।।
सरिता-जल में प्रतिबिंब लखें निज, शुद्ध कहीं जलपान करें।
कहीं मुग्ध हो झर्झर निर्झर से तरु-कुंज में जा तप-ताप करें।।

---

[1] महादेवी ने मैथिलीशरण की प्रेरणा से काव्यभारम्भ किया था तथा 'पथ के साथी' में उन्हें युग का प्रमुख हिन्दी-कवि माना है।

[2] दिनकर स्वयं को 'डिपुटी राष्ट्रकवि' कहते थे।

[3] नवीन की 'ऊर्मिला' दद्दा को समर्पित है।

[4] डॉ. रामकुमार वर्मा के 'आधुनिक काव्यसंग्रह' में प्रथम कवि मैथिलीशरण गुप्त ही हैं, दूसरे हरिऔध।

[5] कान्ता-आहतकारी धर्मवीर! (कान्ता प्रथम त्यक्त पत्नी—अब कान्ता पन्त।) 'भारती' भारतभारतीकार के प्रति कृतज्ञता व्यक्त न कर पाया!

रहती जहाँ साल रसाल तमाल के पादपों की अति छाया घनी।
चरके तृण आते, थके वहाँ बैठते थे मृग औ उसकी घरनी।।
पगुराते हुए दृग मूँदे हुए वे मिटाते थकावट थे अपनी।
खुर से कभी कान खुजाते, कभी सिर सींग पै धारते थे टहनी।।

2. सुमन विटप वल्ली काल की क्रूरता से।
झुलस जब रही थीं ग्रीष्म की उग्रता से।।
उस कुसमय में हा! भाग्य-आकाश तेरा।
अयि नव लतिके! था घोर आपत्ति घेरा।।
अब तक बुझता था जीवनालोक तेरा।
यह लख उर होता दुःख से दग्ध मेरा।।

सन्तराम बी.ए.

श्री सन्तराम बी.ए. (1886-1988 ई.) ने आयुवर्षवत् मौलिक-अनूदित विविधविषयक स्फीत ग्रन्थरचना कर प्रभुदत्त ब्रह्मचारी के लगभग साथ-साथ[1] बौद्धिककाल के सर्वाधिक दीर्घजीवी लेखक होने का कीर्तिमान स्थापित कर लिया है। मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' में उनका एकपंक्तीय स्मरण ''अच्छे गद्यलेखक तथा 'आर्यप्रभा' पत्र के सम्पादक'' के रूप में किया गया है, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि सम्पादित 'हिन्दी-साहित्य कोश' भाग 2 में उनका ''हिन्दी गद्य के विकास-काल में विभिन्न विषयों पर निबन्ध तथा पुस्तकें लिखने'' का त्रिपंक्तीय उल्लेख प्राप्त होता है, किन्तु प्रकृत्या अभिजातवादी, सस्कारात् ब्राह्मणवादी एवं परिस्थितिवशात् सरयूपारीणवादी आ. शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में उनका 'कंप्लीट ब्लैक-ऑउट' स्वाभाविक है, क्योंकि वे ''जात-पाँत-तोड़क'' के रूप में विख्यात रहे हैं। श्री अखिल विनय ने उन्हें ठीक ही ''एक ज़िन्दा शहीद''[2] कहा है। उनके शती-समारोह के हेतु श्री अखिल विनय ने स्तुत्य श्रम किया था।

श्री सन्तराम बी.ए. उर्दू से हिन्दी में आए और उन्हें हिन्दी के अतुलनीय निर्माता आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी का वरदहस्त प्राप्त हुआ। 1912 ई. में उनके पहले लेख 'हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों की उन्नति के उपाय' पर ही काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का 'राधाकृष्णदास स्मारक पदक' प्रदान किया गया। वे कठोर आर्य-समाजी थे। आर्य-समाजी विचारधारा के प्रचार-प्रसार, जाति-प्रथा पर प्रहार, चरित्रनिर्माण, बालविकास इत्यादि पर उनकी विपुल रचनाराशि का साहित्यिक महत्त्व नगण्य हो सकता है, किन्तु उसका सामाजिक महत्त्व निर्विवाद है। 'भारती', 'विश्वज्योति', 'ऊषा', 'जात-पाँत-तोड़क', 'क्रान्ति', ('आर्यप्रभा' का उल्लेख तो 'विनोद' में है ही) के सम्पादक के रूप में वे हिन्दी-पत्रकारिता के इतिहास में अमर रहेंगे। एक प्रखर सुधारवादी साहित्यकार के अतिरिक्त, एक प्रभावी बालसाहित्यकार के रूप में भी वे सर्वथा स्मरणीय हैं।

देवीदत्त शुक्ल

पंडित देवीदत्त शुक्ल (जन्मतिथि 13 अप्रैल, 1887[3], निधन-तिथि 20 मई, 1971, जन्मस्थान बक्सर[4], ज़िला उन्नाव, उ.प्र., निधनस्थल प्रयाग) ने आचार्योत्तर 'सरस्वती' का दीर्घकाल तक सम्पादन किया जो 'सम्पादक के पचीस वर्ष' शीर्षक अनमोल आत्मकथा में बड़ी शालीनता से विवृत किया गया है। 1919-47 ई. के लगभग तीन दशकों तक उस समय की महान् 'सरस्वती' से

---

[1] प्रभुदत्त ब्रह्मचारी 102 के होकर दिवंगत हुए, जबकि सन्तरामजी 102 में, जनार्दन भट्ट 101 में वें। पं. अयोध्यानाथ शर्मा ने 6 दिसम्बर, 1996 को 100 वर्ष पूर्ण किए हैं।

[2] डॉ. तोताराम गुप्त 'विरही' सम्पादित 'क्रान्तिस्वर' (फ़तेहपुर, उ.प्र.), 29-2-1988 अंक, पृ. 5

[3] 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने ग़लती से जन्म वर्ष 1888 ई. लिख दिया है।

[4] एक बक्सर बिहार में भी है जो इतिहास-विख्यात है। 1764 ई. के बक्सर-युद्ध में अंग्रेज़ों ने दिल्ली के मुग़ल-बादशाह, बंगाल के नवाब एवं अवध के नवाब की सम्मिलित सेना को हराया था।

जुड़े रहना ही साहित्येतिहासिक है। फिर, इस बीच 'कुछ खरी-खरी' (शुक्ल जी की प्रसिद्ध पुस्तक) कहना तो शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण है। पंडित देवीदत्त शुक्ल आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनन्य भक्त एवं शिष्य थे। प्रकाशित 'द्विवेदी-काव्यमाला' एवं 'बाल-द्विवेदी' तथा अप्रकाशित 'आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी' ग्रन्थों के अतिरिक्त 'सम्पादक के पचीस वर्ष' एवं 'कुछ खरी-खरी' ग्रन्थ भी आ. द्विवेदी से ओत-प्रोत है। यह सत्य है कि पं. देवीदत्त शुक्ल पत्रकार एवं सम्पादक थे, सृजनात्मक-साहित्यकार नहीं; किन्तु 'सम्पादक' के पचीस वर्ष' में साहित्यिकता अनायास ही आ गई है। पत्रकार, सम्पादक, जीवनीकार एवं आत्मकथाकार के रूपों में पं. देवीदत्त शुक्ल निस्सन्देह स्मरणीय हैं। उनके 'खद्योत-प्रकाश' शीर्षक कवितासंग्रह[1], 'विक्रम' शीर्षक ऐतिहासिक उपन्यास, 'एकादशी' शीर्षक कहानीसंग्रह, 'हास नहीं परिहास' शीर्षक हास्यव्यंग्यग्रन्थ, 'हिन्दुओं की पोथी' शीर्षक धर्मविषयकग्रन्थ उनकी बहुमुखी लेखक-क्षमता के द्योतक हैं। वे सच्चे जनलेखक थे जिनके विषय सरल एवं जिनकी भाषा सुगम है।

पं. देवीदत्त शुक्ल हिन्दी के अनन्य-अखंड भक्त थे तथा गाँधी के विश्वख्याति-आखेट-जन्य तुष्टीकरणमूलक-राजनीति से प्रेरित 'हिन्दुस्तानी' के समर्थन के विरोध में अग्रणी रहे। उनकी त्यागोज्ज्वल हिन्दीसेवा सर्वथा प्रणम्य है।

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

'भागवत चरित' (महाकाव्य), 'भागवती कथा' (118 भाग), 'भागवत-महिमा नाटक', 'राघवेन्द्र-चरित', 'श्रीकृष्णचरित', 'महात्मा कर्ण', 'भक्त-चरितावली', 'श्रीचैतन्य-चरितावली', 'मतवाली मीरा', 'मेरे महामना मालवीयजी', 'बाल महाभारत' प्रभृति निःश्रेयसवादी ग्रन्थों के प्रणेता श्रद्धेय सन्त-कवि, नाट्यकार, जीवनचरितकार एवं बालसाहित्यकार श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी (1888-1990 ई.) 'आज', 'निगमागम-चन्द्रिका', 'आर्य-महिला', 'वैष्णव-वैभव' एवं 'युद्धवीर' के यशस्वी पत्रकार, स्वातन्त्र्य-सेनानी, कारा-यात्री एवं प्रखर विद्रोही भी रहे हैं :

मर जाएँगे, मिट जाएँगे, शूली पर चढ़ जाएँगे।
कभी न पीछे पग रक्खेंगे, युद्धवीर कहलाएँगे।

ये ओजस्वी पंक्तियाँ तब की हैं जब गाँधी भारत को अहिंसा पर चलने का आग्रह कर रहे थे! ब्रह्मचारी जी ने नेहरू के विरोध में 1952 ई. के प्रथम महानिर्वाचन में भाग लिया। नेहरू ने पहले घोषणा की कि वे अपने निर्वाचनक्षेत्र में एक भी सभा न करेंगे तथा कोई प्रचार न होगा किन्तु जब लगा कि पाँसा पलट सकता है तब उनकी बेटी इन्दिरा गाँधी घर-घर दौड़ीं, उनकी बहन विजयलक्ष्मी पंडित ने उन्हत्तर सभाएँ कीं तथा स्वयं उन्हें तेरह सभाओं में भाषण देने पड़े जिनका प्रमुख तर्क उनके राजनैतिक कौशल के सर्वथा अनुरूप थाः ब्रह्मचारी जी तो धार्मिक व्यक्ति हैं, उन्हें राजनीति से क्या प्रयोजन—दूसरे, वे चुनाव जीतकर इस्तीफ़े की बात कर रहे हैं अतः आप अपना वोट क्यों जाया करें? तब भी ब्रह्मचारी जी को अस्सी हज़ार वोट मिले! ब्रह्मचारीजी का जन्म मथुरा में हुआ, शिक्षा-दीक्षा खुर्जा में हुई, मुक्तिपीठ कालिदास-वर्णित एवं आचार्य किशोरीदास वाजपेयी से संपृक्त कनखल (हरिद्वार) में बनाया, किन्तु अन्ततः झूँसी (प्रयाग क्षेत्र) में आकर बस गए जो उनके कारण तीर्थ बन गई। उनका शताब्दि-अधिक प्रसरित जीवनकाल (मृत्युंजय देवरहा बाबा का स्मरण कराता हुआ) 102 वर्ष की आयु में दिल्ली में होली, 11 मार्च, 1990 को 'सम्पन्न' हुआ।

असहयोग-आन्दोलनकाल के 1920-21 ई. वर्षों में ब्रह्मचारीजी ने नेहरू को खुर्जा बुलाया तथा दोनों ने समूचे क्षेत्र में अनेक सफल सभाएँ कीं। उन्हीं दिनों लखनऊ जेल में वे मोतीलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टंडन, सम्पूर्णानन्द, आ. कृपलानी, जवाहरलाल नेहरू, देवदास गाँधी (गाँधी के एक पुत्र जो चक्रवर्ती राजगोपालाचारी की पुत्री लक्ष्मी से ब्याहे थे) इत्यादि के सम्पर्क में आए। 1947 ई. में जब कांग्रेसियों एवं मुस्लिमलीगियों ने देश का अप्राकृतिक एवं हिन्दू-मुस्लिम-सर्व-घातक विभाजन करा डाला और गाँधी "पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा" की प्रतिज्ञा को भूलकर पाकिस्तान-तुष्टीकरण की नीति की नींव रखने लगे, तब तथा आगामी समय में भी ब्रह्मचारीजी ने शरणार्थियों की प्रशस्य सेवाएँ कीं। उनका सारा जीवन तपोनिष्ठ एवं सेवापूर्ण रहा। वे प्रखर हिन्दीप्रेमी रहे। हिन्दी के लिए आन्दोलनों में भी उन्होंने सक्रिय भाग लिया।

---

[1] 'विनोद' में लिखा है, "किंकर नाम से कविताएँ भी लिखा करते हैं।"

ब्रह्मचारीजी द्वारा विरचित चैतन्य, मीरा इत्यादि के जीवन-चरित हिन्दी की निधियाँ हैं। वे एक प्रेरक एवं समर्थ कवि भी हैं। उनकी भाषा सरल किन्तु स्तरीय है। शैली में कहीं आवेग या उद्वेग नहीं। जिन धार्मिक विद्वानों ने हिन्दी-ग्रन्थरचना की है उनमें वे अग्रगण्य हैं, क्योंकि रजनीश अपनी विश्व भर में भटकती विद्वत्ता से आतंकित करके चुक जाते हैं, रामकिंकर उपाध्याय मानस में प्रतीकों की व्याख्या से अभिभूत मात्र कर पाते हैं, जबकि ब्रह्मचारीजी पाठक पर टिकाऊ छाप भी छोड़ते हैं तथा उसे शान्ति भी प्रदान करते हैं। प्रसिद्ध कवि, उपन्यासकार एवं भेंटवार्ताकार श्री कैलाश कल्पित ने अपने अनमोल भेंटवार्ता-ग्रन्थ 'साहित्यकारों के संग' में उनका समावेश ठीक ही किया है।

द्वारकाप्रसाद शुक्ल 'शंकर'

'दुरवह रन-द्वादशी', 'शक्ति-शतक', 'शंकर-हृदय' एवं स्फुट छन्दों के पारम्परिक व्रजभाषा एवं खड़ीबोली के कवि द्वारका[1]प्रसाद शुक्ल 'शंकर'[2] (21 मई, 1888—2 जून, 1974, रायबरेली) ने अनेक स्थानों में अनेक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएँ स्थापित की थीं। वे न्यायाधीश थे। (संयोगात् जौनपुर-मूलक न्यायाधीश-कवि रामचन्द्र शुक्ल रायबरेली-वासी हैं।) इनके अनुज रामअवतार शुक्ल 'चातुर' और उनके 'चातुर-मंडल' को रायबरेली जनपद में बहुत ख्याति प्राप्त हुई थी। 'शंकर' की कविता का प्रधान विषय स्वयं शंकर और उनकी शक्ति ही रहे। शंकर के प्रिय बैल और उसकी 'पाती' (पत्र) पर भी इन्होंने कई छन्द रचे। इनकी कविता में अलंकारों का अच्छा प्रयोग प्राप्त होता है। व्याजस्तुति अलंकार के प्रयोग में इन्हें सफलता मिली है। प्रधान छन्द वही सवैया और घनाक्षरी (कवित) हैं। दो उदाहरण देखें:

1. ज्ञान-अगार समर्पि गणेशहि, कीन कुबेरहि माल खजाने।
सेन लियो अगुवाय कुमार ने, पाप-प्रनासन जह्नुसुता ने।।
नाचि रिझाय जियावत पेट, लखै जग आपको अन्नदाथाने।
का लखि आस करै कोउ 'शंकर', आपहु शैलजा हाथ बिकाने।।

2. शंकर जी सुनो यही होता अनुमान हमें, नगरी में न आपकी न कोई कभी जाएँगे।
दिन ही में पड़ते हैं डाके गली-गली यहाँ, जन्म की कमाई कौन आकर लुटाएँगे।।
गंगा से बची तो झट भैरव झपेट लेंगे, उनसे बची तो ढुंढिराज अपनाएँगे।
पड़ इस झमेले मे मन में ठानी है अब, काशी कहे कौन, हम जग में न आएँगे।।

राधावल्लभ पांडेय 'बन्धु'[3]

पं. राधावल्लभ पांडेय 'बन्धु' (1888-1972 ई., मगवासी, जनपद उन्नाव)[4] की कविता कृषकों एवं श्रमिकों के प्रति सशक्त संवेदन तथा शोषकों एवं प्रपीड़कों के प्रति तीक्ष्ण व्यंग्य के कारण उल्लेखनीय मानी जा सकती है। वे जनकवि थे। उन्हें सनेही-स्कूल का कवि माना जा सकता है, जो उन्नाव के टाउन स्कूल (सम्प्रति अटलबिहारी[5] इंटर कॉलेज) में उनके साथ पढ़ाते भी थे। उन्नाव जनपद के विख्यात स्वातन्त्र्य-सेनानी एवं नेता विशम्भरदयालु त्रिपाठी पर 'बन्धु' का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था। वे कांग्रेस, गाँधी एवं खादी के समर्थक थे। उनका जनकाव्य पर्याप्त सशक्त है। उन्होंने अवधी एवं खड़ीबोली दोनों में कवित्त, सवैये इत्यादि छन्द रचे:

---

[1] 'रायबरेली के कवि' (चन्द्रशेखर पांडेय 'चन्द्रमणि'—1958 ई.) में 'द्वारिका' नहीं लिखा। चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, द्वारकाप्रसाद मिश्र इत्यादि के सदृश यह भी द्वारकाप्रसाद शुक्ल हो सकते हैं!

[2] नाथूराम 'शंकर', द्वारकाप्रसाद शुक्ल 'शंकर', हरिशंकर उपाध्याय 'शंकर' प्रभृति अनेक शंकरों ने हिन्दी को सम्पन्न किया है।

[3] हाइकूकार शम्भुशरण द्विवेदी 'बन्धु', लघुकथाकार राजेन्द्रमोहन त्रिवेदी 'बन्धु' एवं कवि राधेश्याम 'बन्धु' ('दशरथ' महाकाव्य के प्रणेता) समोपनामी हैं। अन्य 'बन्धु' भी हैं।

[4] त्रैमासिक 'अनुमेहा' (उन्नाव, सं. डॉ. रजनीकान्त लहरी एवं डॉ. बालगोविन्द मिश्र) के सितम्बर, 1988 अंक मे श्री कृष्णवल्लभ पांडेय का लेख 'कविवर बन्धु', जो साप्ताहिक 'रणनाद' (उन्नाव) में पहले-पहल निकला था।

[5] प्रख्यात राजनीतिज्ञ अटलबिहारी वाजपेयी (क़ैदी कविराय) से कोई सम्बन्ध नहीं। स्थानीय।

1. ''बहु बाढ़यो लगान'' किसान कहैं, अब कैसे बेबाक बकाया करैं।
हम 'बंधु' हैं आपकी दीन प्रजा, न उजाड़ें हमें, कछु दाया करैं।
हम और न आपसे माँगें कछू, मलिकौ! इतनी बस माया[1] करैं।
हम दूब बने हरियाया करैं, चरि आप गधे-से मुटाया करैं।।

2. नंगे या अनंगपन का न भेद जानै रंच, परवा करे न कभी भले-बुरे वेश की।
खाके जो धतूरा और भंग पी के मस्त रहे, सिंगे पर मारै 'बंधु' संपति धनेश की।।
खेलने दे गोद में जो विषधर कालों को भी, भूल के भी भावना हो मन में न क्लेश की।

रामनरेश त्रिपाठी

आदर्शवादी युग (1900-20 ई.) एव स्वच्छन्दतावादी युग (1920-40 ई.) के सेतु पं. रामनरेश त्रिपाठी[2] (1889[3]-1962 ई.) आ. शुक्ल की ''छायावाद का चलन द्विवेदीकाल की रूखी इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ'' तथा डॉ. नगेन्द्र के द्वारा इसके भड़कीले अनुवाद ''स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह'' जैसी स्थापनाओं की अतिरंजना सिद्ध करने वाले प्रमुख कवि हैं, क्योंकि कवि-रूप में वे श्रीधर पाठक एवं मुकुटधर पांडेय से विशुद्धतर हैं—स्वच्छन्दतावाद के मूल तत्त्वों में पाठक केवल प्रकृति एवं पांडेय केवल रहस्य को वरीयता प्रदान कर सके हैं, जबकि त्रिपाठी में प्रकृति एवं रहस्य के अतिरिक्त मानवतावादी संवेदन भी विद्यमान है। राष्ट्रवाद उनकी कविताओं की अन्य विशेषता है। स्वच्छन्दतावादी कविता आदर्शवादी कविता का सहज एवं प्रसन्न विकास है, प्रतिक्रिया की उद्भूति अथवा विद्रोह का प्रस्फोट नहीं जैसाकि उसके विकसनशील प्रशान्त स्वरूप से ही स्पष्ट है। स्वयं शुक्ल ने मैथिलीशरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय, बदरीनाथ भट्ट एवं पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की सोदाहरण चर्चा करते हुए लिखा, ''अतः हिन्दी-कविता की नई धारा के प्रवर्तक इन्हीं को (विशेषतः श्री मैथिलीशरण गुप्त और मुकुटधर पांडेय को) समझना चाहिए। इस दृष्टि से छायावाद का रूपरंग खड़ा करनेवाले कवियों के सम्बन्ध में अंग्रेजी या बंगला की समीक्षाओं से उठाई इस प्रकार की पदावली का कोई अर्थ नहीं कि 'इन कवियों के मन में एक आँधी उठ रही थी जिसमें आन्दोलित होते हुए वे उड़े जा रहे थे; एक नूतन वेदना की छटपटाहट थी जिसमें सुख की मीठी अनुभूति भी लुकी हुई थी; रूढ़ियों के भार से दबी हुई युग की आत्मा अपनी अभिव्यक्ति के लिए हाथ-पैर मार रही थी।' न कोई आँधी थी, न तूफ़ान; न कोई कसक थी, न वेदना; न प्राप्त युग की नाना परिस्थितियों का हृदय पर कोई नया आघात था, न उसका आहत नाद। इन बातों का कुछ अर्थ तब हो सकता था जब काव्य का प्रवाह ऐसी भूमिओं की ओर मुड़ता जिन पर ध्यान न दिया गया रहा होता। छायावाद के पहले नए-नए मार्मिक विषयों की ओर हिन्दी कविता प्रवृत्त होती आ रही थी।''[4] रामनरेश त्रिपाठी का सम्यक् आकलन करते हुए शुक्ल ने लिखा है, ''काव्य-क्षेत्र में जिस स्वाभाविक स्वच्छन्दता (रामैंटिसिज़्म) का आभास पं. श्रीधर पाठक ने दिया था उसके पथ पर चलनेवाले द्वितीय उत्थान में त्रिपाठीजी ही दिखाई पड़े।'' यहाँ 'ही' शब्द असमीचीन है, क्योंकि लोचनप्रसाद पांडेय ने मौलिक एवं ललित प्रकृतिचित्रण किया था, उनके अनुज मुकुटधर पांडेय ने मार्मिक रहस्य-संकेत किए थे, बख़्शी ने प्रतीक का आयोजन—हाँ, यह लिखना उचित होता कि त्रिपाठी प्रमुख थे। इस स्थिति में शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र इत्यादि का विरोधाभासपूर्ण एवं अनुकरणजन्य द्विवदीयुग- काव्यावमूल्यन एवं छायावाद-संस्तवन उच्चतर एवं वस्तुपरक आलोचना में अयुक्तियुक्त प्रमाणित होता है।

---

[1] कृपा, ममत्व।

[2] जन्मतिथि 4 मार्च, जन्मस्थान कोइरीपुर, तब जिला जौनपुर किन्तु अब ज़िला सुल्तानपुर निवास सुल्तानपुर। (12 एवं 13 मार्च की जन्मतिथि भी सुनी थी।)

[3] खेद है कि डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रवीन्द्र 'भ्रमर' ने 1881 ई. लिख दिया है (सम्भव है, यह मुद्रण की त्रुटि हो)।

[4] छायावाद को एक साँस में द्विवेदी-युग की स्थूलता की प्रतिक्रिया कहना और दूसरी साँस में प्रवृत्तियों की दृष्टि से पूर्वयुग का ही प्रवाह या विकास बताना नितान्त अन्तर्विरोधपूर्ण है।

उत्कृष्ट कवि : स्वच्छन्दतावाद के एक अग्रदूत

'मिलन' (1918 ई.)[1], 'पथिक' (1921 ई.)[2] एवं 'स्वप्न' (1929 ई.) शीर्षक स्वप्रतिभाप्रसूत खंडकाव्य एवं 'मानसी' (1927 ई.) शीर्षक कविता-संग्रह रामनरेश त्रिपाठी को एक उत्कृष्ट कवि सिद्ध करते हैं। वे आदर्शवादी युग के कवि थे, अतः उनकी कविताओं में युग का साकार होना स्वाभाविक है। किन्तु खंडकाव्यों में प्राप्त उनकी कल्पना में पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद के पितामह फ्रांस के दार्शनिक रूसो का सहज-जीवन, पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कविता के सुमेरु अंग्रेजी-महाकवि वर्ड्स्वर्थ का प्रकृतिप्रेम एवं प्रकृति-मानवकृति-विपर्यय, वैश्विक स्वच्छन्दतावाद का विशद मानव-संवेदन, बांग्ला-स्वच्छन्दतावाद के महाकवि रवीन्द्र का रहस्यवाद तो विवृत हुआ ही है, सामयिक राष्ट्रवाद, बलिदानवाद, कर्मठतावाद इत्यादि की उज्ज्वल अभिव्यक्ति भी हुई है (जो उनके मदनमोहन मालवीय, गाँधी[3] इत्यादि के निकट सम्पर्क को देखते और अधिक स्वाभाविक लग सकती है) :

1. सच्चा प्रेम वही है जिसकी तृप्ति आत्मबल पर हो निर्भर।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है, करो प्रेम पर प्राण निछावर।।
देशप्रेम वह पुण्य क्षेत्र है अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें मनुष्यता होती है विकसित।।

2. प्रति क्षण नूतन वेष बनाकर रंग-बिरंग निराला।
रवि के सम्मुख थिरक रही है नभ में वारिदमाला।।
नीचे नील समुद्र मनोहर, ऊपर नील गगन है।...(पथिक)

3. छूता हुआ गाँव की सीमा अति निर्मल जल वाला।
बहता है अविराम निरंतर कल-कल स्वर से नाला।।
अनति दूर पर हरियाली से लदी खड़ी गिरिमाला।।
किंतु नहीं उससे हृदयों में है आनंद-उजाला। (पथिक)

4. सेवा है महिमा मनुष्य की[4], न कि अति उच्च विचार,[5] द्रव्य, बल।
मूल हेतु रवि के गौरव का है प्रकाश ही न कि उच्च स्थल।। (स्वप्न)

5. मैं तो नहीं किंतु है मेरा हृदय किसी प्रियतम से परिचित।
जिसके प्रेमपत्र आते हैं प्रायः सुख-संवाद-सन्निहित।। (स्वप्न)

राष्ट्रवाद

विशुद्ध राष्ट्रकाव्य के सृजन में भी रामनरेश त्रिपाठी का योगदान प्रशस्य रहा। 'पथिक' राष्ट्रवादी चेतना का स्तरीय खंडकाव्य है, जिसमें अन्तरराष्ट्रीयतावाद की रवीन्द्र[6]-प्रेरित रोमानी आदर्शवादिता की अवहेलना न करते हुए भी राष्ट्रवाद को उचित वरीयता प्रदान की गई है :

---

1. डॉ. नगेन्द्र इत्यादि सम्पादित 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के 'द्विवेदी-युगः काव्य-धारा' में डॉ. उमाकन्त ने 1917 ई. लिखा है।
2. उक्त 'इतिहास' में डॉ. उमाकान्त ने 1920 ई. लिखा है।
3. अपने ही शब्दों में एक 'विदेशी' के रूप में भारत लौटे 'शिक्षात् ईसाई' ('संस्कारात् मुसलमान') नेहरू को रामचरितमानस पढ़ाने का काम गाँधी ने त्रिपाठी को सौंपा था।
4. सेवा धर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः।
5. सफलता पाई अथवा नहीं? उन्हें क्या ज्ञात—दे चुके प्राण!
विश्व को चाहिए उच्च विचार? नहीं, केवल अपना बलिदान!
(1889 ई. में ही जन्मे माखनलाल चतुर्वेदी)
6. रवीन्द्र का 'इंटरनेशनलिज़्म' ग्रन्थ भी है। जो विदेश में पुजे वह भारत में तो पुजेगा ही!

पैदा कर जिस देश, जाति ने तुमको पाला-पोसा। किए हुए है वह निज हित का तुमसे बड़ा भरोसा।।
उससे होना उऋण प्रथम है सत्कर्तव्य तुम्हारा। फिर वसुधा को दे सकते हो शेष स्वजीवन सारा।।

''स्वतन्त्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है'' के उद्घोषक, महान् राष्ट्र-नेता तिलक के अवसान पर उनकी मार्मिक वेदना 'हिन्दी कविता में मृत्युगीत'[1] विषय की एक निधि है :

रोवो अभागे भारत! ऐ बदनसीब! रोवो। टूटी भुजा तुम्हारी गाँधीजी! आज रोवो।।[2]
ऐ लाजपत! अकेले अब फूट-फूट रोवो। रोवो ऐ मुल्क! रोवो, जी भर के आज रोवो।।

यथार्थवाद और प्रगतिवाद

कालान्तर में जिसे यथार्थवाद, यही नहीं अपितु प्रगतिवादी[3], कहा गया, उसके बीज भी आदर्शवादी युग के इधर-उधर ही बोए जा चुके थे जैसाकि मैथिलीशरण के 'किसान', सियारामशरण की 'अछूत' एवं 'खिलौना', रामचन्द्र शुक्ल 'सरस'[4] की 'अछूत की आह', निराला की 'भिक्षुक' एवं 'विधवा' इत्यादि कविताओं से स्पष्ट है, जैसाकि रामनरेश त्रिपाठी के उद्गार से स्पष्ट है :

मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुंज और वन में, तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में,
तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था, मैं था तुझे बुलाता संगीत में, भजन में।
मेरे लिए खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू, मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में;
बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू, मैं देखता मुझे था माशूक़ के बदन में।[5]

प्रार्थना-साहित्य

'हिन्दी का प्रार्थना-साहित्य' शोध का उत्कृष्ट विषय है। 'हिन्दी की प्रसिद्ध प्रार्थनाएँ संकलित की जानी चाहिए। प्रार्थना-साहित्य के प्रणयन में बौद्धिककाल का योगदान भी सन्तोषजनक है, जैसाकि सुधारवादी युग में रचित पं. प्रतापनारायण मिश्र की ''पितु मातु सहायक स्वामि सखा'' एवं ''शरणागतपाल कृपाल प्रभो'', श्रद्धाराम फिल्लोरी की ''ॐ जय जगदीश हरे'', आदर्शवादी युग में रचित नारायणप्रसाद 'बेताब' की ''अजब हैरान हूँ भगवन्'', स्वच्छन्दतावादी युग में रचित निराला की ''वीणावादिनि वर दे'' इत्यादि विख्यात प्रार्थनाओं से स्पष्ट है; इस दिशा में भी रामनरेश त्रिपाठी का योगदान स्मरणीय हैः

हे प्रभो आनंददाता! ज्ञान हमको दीजिए, शीघ्र सारे दुर्गुणों को दूर हमसे कीजिए।
लीजिए हमको शरण में हम सदाचारी बने, ब्रह्मचारी, धर्मरक्षक, वीरव्रतधारी बने।।

बहुआयामी साहित्यसेवा

ऐतिहासिक महत्त्व के उत्कृष्ट कवि के अतिरिक्त पं. रामनरेश त्रिपाठी नाट्यकार, उपन्यासकार, संस्मरणकार, आलोचक, टीकाकार एवं ग्रन्थसम्पादक भी थे। बालपत्रिका 'वानर' के सम्पादक (1931-41 ई.) एवं बालसाहित्यकार के रूप में भी उनका नाम आदर के साथ लिया जाएगा। 'सुभद्रा' (1924 ई.) 'जयन्त' (1924 ई.), 'प्रेमलोक' (1934 ई.) शीर्षक नाटक, 'वीरांगना' (1911ई.),

---

1. डॉ. पवनकुमार ने इस विषय पर श्रेष्ठ निबन्ध लिखा है। रानीशंकर मिश्र शोध कर रही हैं।
2. गाँधी के सम्पर्क के कारण ऐसा लिखा है अन्यथा तिलक-युग (1900-20 ई.) में तिलक की सर्वश्रेष्ठता निर्विवाद है, जैसाकि भारतरत्न डॉ. भगवानूदास ने लिखा भी है।
3. साम्यवाद का लग्गू-भग्गू बनने के कारण प्रगतिवाद संकीर्णता-व्यंजक हो गया। इस पर साम्यवादियों ने जनवाद का नया चोंगा पहना दिया। वादमुक्त साहित्यकारों ने 'प्रगतिशील' शब्द का आश्रय ग्रहण कियाः वाद आज पैदा होता है, कल मर जाता है; किन्तु शील शाश्वत है।
4. आ. रामचन्द्र शुक्ल, कवि रामचन्द्र शुक्ल (सरस), न्यायाधीश-कवि रामचन्द्र शुक्ल समनामी हैं।
5. वियोगीहरि ने प्रसिद्ध भावात्मक-निबन्ध 'दीनों पर प्रेम' में इस कविता का अच्छा प्रयोग किया है। उर्दू के शब्द लिखकर भी त्रिपाठी आशिक-माशूक की चोंचलेबाज़ी पर व्यंग्य करना नहीं भूले।

'वीरबाला' (1911 ई.), 'लक्ष्मी' (1924 ई.) शीर्षक उपन्यास, 'तीस दिन मालवीयजी के साथ 'शीर्षक संस्मरण-ग्रन्थ, 'तुलसीदास और उनकी कविता' एवं 'हिन्दी-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास' शीर्षक शोधसम्पन्न आलोचना-ग्रन्थ तथा 'रामचरितमानस की टीका' से उनकी स्मरणीय बहुमुखी साहित्य-सेवा एवं बहुमुखी प्रतिभा विवृत होती है। किन्तु सम्पादक के रूप में वे अप्रतिम रूप से महान् थे—जैसा कि ऐतिहासिक 'कविताकौमुदी' के आठ भाग गुहार-गुहार कर कहते हैं। संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, उर्दू भाषाओं की श्रेष्ठ कविताओं तथा लोकगीतों का उच्चकोटि का सम्पादन कर उन्होंने हिन्दी की महान् सेवा की। आ. शुक्ल ने 'कविता-कौमुदी' (हिन्दी) से लाभ उठाया, तो दिनकर ने 'कविता-कौमुदी' (उर्दू) से। यद्यपि उर्दू को हिन्दी से जोड़ने के कार्य का आरम्भ आ. पद्मसिंह शर्मा ने किया था, तथापि वह बिहारी से बँधा था। रामनाथ 'सुमन', अयोध्याप्रसाद गोयलीय, प्रकाश पंडित इत्यादि उर्दू-शायरों को हिन्दी में लानेवाले रामनरेश त्रिपाठी के ऋणी रहे हैं, जिनका 'प्रस्थान'-कार्य उन्हें सर्वोपरि महत्त्व प्रदान करता है। इस सन्दर्भ में आदर्शवादी युग के एक प्रसिद्ध कहानीकार तथा गीता-सम्बन्धी ग्रन्थकार ज्वालादत्त शर्मा (1888-1958 ई.) का नाम भी ऐतिहासिक महत्त्व का है जिन्होंने 1916 ई. में 'मिर्ज़ा ग़ालिब और उनका उर्दू-काव्य' (ग़ालिब ने फ़ारसी-शायरी भी की थी) एवं 'उस्ताद ज़ौक और उनका काव्य' तथा 1917 ई. में 'महाकवि दाग़ और उनका काव्य' ग्रन्थ प्रस्तुत किए और 'मौलाना हाली और उनका काव्य' भी लिखा। जनता सहज-कवि है, जनता आदि-कवि है, जनता अनन्त-कवि है, जिसकी कविता लोकगीत कहलाती है। पं. रामनरेश त्रिपाठी ने 'कविता-कौमुदी' (लोकगीत) शीर्षक 'प्रस्थान'-ग्रन्थ द्वारा लोकगीतों की प्रस्तुति का ऐतिहासिक कार्य सम्पादित किया। वे लोकगीत विधा पर शोध एवं सर्जन करनेवालों (डॉ. महेश अवस्थी अग्रणी) के 'पूर्वज' थे। कविता-कौमुदी के सारे भाग उनकी विद्वत्ता का परिचय देते हैं। कवि-परिचय हो या कविता-परिचय या विधा-निरूपण, सर्वत्र वे सम्पूर्ण अधिकार के साथ लिखते हैं।

नेता-सम्पर्क के कारण हिन्दुस्तानी का समर्थन उनकी भूल थी। हिन्दुस्तानी की आड़ में उर्दू को थोपने का राजनैतिक दाँव मुस्लिम-तुष्टीकरण के एक हथकंडे के रूप में आया था। राहुल, यशपाल, रांगेय राघव जैसे कठोर बाममार्गी तक हिन्दी के कारण हिन्दी-द्रोही साम्यवादी दल से निकाले जाने पर लाभ में रहे! हिन्दुस्तानी ने उनकी क्षति की। फिर भी, हिन्दी-साहित्य का इतिहास पं. रामनरेश त्रिपाठी को 'पथिक' के यशस्वी कवि, आदर्शवादी- स्वच्छन्दतावादी युगों के सेतु, हिन्दी में उर्दू-शायरी के वाहक एवं लोकगीतों पर 'प्रस्थान'-ग्रन्थ के प्रस्तोता के रूपों में सदैव आदर प्रदान करता रहेगा।

राधेश्याम कथावाचक

स्फीत 'राधेश्याम-रामायण' के कारण विख्यात जनकवि एवं 'वीर अभिमन्यु', 'भक्त प्रह्लाद', 'श्रीकृष्णावतार' इत्यादि अनेकानेक नाटकों के कारण अपने समय के एक लोकप्रिय नाट्यकार राधेश्याम कथावाचक (जन्म 1890 ई.[1], बरेली) के पाठकों में गाँधी[2] इत्यादि तक सम्मिलित थे, नेपाल के महाराजातिधराज ने इन्हें 'कथावाचक' की उपाधि दी थी और इनके 'वीर अभिमन्यु' नाटक को इंटरमीडिएट में पाठ्य-पुस्तक बनाया गया था। इनके नाटक आग़ा हश्र कश्मीरी, नारायणप्रसाद 'बेताब', तुलसीदत्त 'शैदा' इत्यादि के नाटकों के वर्ग में रखे जा सकते हैं। 'चन्द्रमणि' के नाटक भी इसी प्रकार के रहे। स्वामीदयाल व्यास कृत खंडकाव्य 'उषा-अनिरुद्ध' पर भी राधेश्याम कथावाचक की शैली का प्रभाव स्पष्ट है। सुरेशचन्द्र शुक्ल 'शुक्लश्रेष्ठ' कृत 'जयश्रीराम' (पद्म-महाकाव्य) भी इस वर्ग में आता है। अल्फ्रेड कम्पनी के नाट्यकार होने के कारण इनके नाटक लोकप्रिय तो हुए किन्तु साहित्यिक न रहे। कवि-रूप में भी यह साधारण ही रहे। पर कमाया बहुत। यह 'भ्रमर'[3] (बरेली) पत्र के सम्पादक भी रहे। कविता की बानगी पेश है :

> जब खर-दूषण का हुआ रण में काम तमाम। शूर्पणखा को तब कहाँ पल भर भी विश्राम।।
> जैसे कुबरी ने किया अवध प्रदेश उजार। त्यों लंका का करेगी नकटी बंटाढार।।
> आग उस समय हो गई वह बानिए-फ़साद। रावण के दरबार में जाकर की फ़रियाद।

---

[1] 'विनोद' (मिश्रबन्धु) में ''लगभग सं. 1945'' (1888 ई.) लिखा है, जो ग़लत है।

[2] साहित्य से गम्भीर परिचय न होने के कारण गाँधी ने रामचरितमानस और राधेश्याम-रामायण की एक साथ चर्चा की है, किन्तु उन तक ने रामचरितमानस (वे जनप्रचलित 'रामायण' लिखते-कहते थे) की श्रेष्ठता मानी है!

[3] राधेश्याम कथावाचक रसिया-भ्रमर न थे, सर्वरसग्राहक-भ्रमर थे। उन्होंने बहुत-बहुत लिखा, किन्तु मौलिक कुछ भी न था! अतः पत्रनाम् 'भ्रमर' सार्थक है। 'कृष्णायन' के अवधी-कवि द्वारकाप्रसाद मिश्र का 'मधुप-स्वभाव' याद आता है, किन्तु मिश्र साहित्यिक थे।

भाई! दो लड़के राम-लखन उस दंडक-वन में अए हैं। और संग में एक सिया नामी सुकुमारी नारी लाए हैं।।
बाँके हैं और लड़ाके हैं गोया शमशीर उन्हीं की है। यों पंचवटी में रहते हैं जैसे जागीर उन्हीं की है।।
नागाह उधर में निकल गई उस नारी से मिलना चाहा। उस समय निगोड़े लक्ष्मण ने मुझसे कुछ छल करना चाहा।
तब मैंने तेरा नाम लिया, सुनते ही उसने दी गाली। फिर मेरे कान कतर डाले और मेरी नाक काट डाली।।

राधिकारमण प्रसाद सिंह

'कानों में कँगना' ('इन्दु : 1913 ई.) के अमर कहानीकार, 'राम-रहीम' (1936 ई.) के मानवतावादी उपन्यासकार एवं 'सूरदास'; (1942 ई.) के मार्मिक संस्मरणकार राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह (1890-1971 ई.)[1] सूर्यपुरा (शाहाबाद, बिहार) के कुलीन कायस्थ-राजवंश के रत्न थे। वे बिहार में अग्रणी कथाकार हुए हैं। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने 'आत्मकथा' में उनकी बड़ी प्रशंसा की है। वे गाँधी के सम्पर्क में भी आए जिन्होंने 'राम-रहीम' की खिचड़ी-भाषा के प्रयोग की प्रेरणा दी (उन जैसा मुस्लिमपरस्त अदूरदर्शी नेता और कर ही क्या सकता था)! आ. शुक्ल के शब्दों में "रधिकारमण प्रसाद सिंह जी हिन्दी के एक अत्यन्त भावुक और भाषा की शक्तियों पर अद्भुत अधिकार रखनेवाले" लेखक हैं। उन पर डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' ने 'राजा राधिकारमण प्रसाद सिंहः व्यक्तित्व और कृतित्व' शीर्षक ग्रन्थ भी लिखा है। राजा साहब की अन्य प्रसिद्ध कृतियों में दो कहानीसंग्रह 'कुसुमांजलि' (1912 ई.) एवं 'गाँधी टोपी' (1938 ई.) तथा दो उपन्यास 'पुरुष और नारी' (1939 ई.) एवं 'चुम्बन और चाँटा' (1957 ई.) उल्लेखनीय हैं।

राधिकारमण प्रसाद सिंह सुधारवादी-मानवतावादी उपन्यासकार के रूप में प्रेमचन्द-परम्परा की एक विभूति हैं। कहानीकार के रूप में वे भावुक नारी-संवेदन के लिए स्मरणीय हैं। श्री ओंकार 'शरद' ने 'राम-रहीम' को हिन्दी के श्रेष्ठतम उपन्यासों में माना है। किन्तु यह उत्कृष्ट कृति साम्प्रदायिक एकता के स्थूल एवं रूढ़, परिणामहीन एवं पंगु गाँधी-छाप राग अलापने के अतिरिक्त कुछ नवीन एवं विशेष नहीं दे पाती। जब तक मुसलमानों का कांग्रेस-मार्का (या अन्य) राजनैतिक शोषण बन्द न होगा, उनमें शैक्षिक एवं सामाजिक जागृति न आएगी, हिन्दू अपनी बहुमत-शक्ति से उन्हें शान्त रखने की स्थिति में न आएगा, तब तक 'मन्दिर और मस्जिद' (कहानी : प्रेमचन्द) या 'राम-रहीम' का किया-कराया बेकार ही जाएगा।

मन्नन द्विवेदी गजपुरी

हिन्दी-राष्ट्रकाव्य के एक स्तम्भ एवं उल्लेखनीय जीवनीकार मन्नन द्विवेदी गजपुरी (1890-1921 ई.)[2] का जन्म गोरखपुर जनपद के राप्ती-तटस्थित गजपुर नामक ग्राम में हुआ, जहाँ इनके पिता पं. मातादीन द्विवेदी नामी रईस और व्रजभाषा-कवि थे। हिन्दी-अंग्रेज़ी साहित्यों के धुरन्धर विद्वान् तथा 'हिन्दी साहित्य के विकास की रूपरेखा', 'अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य', 'हिस्ट्री ऑफ़ हिन्दी लिटरेचर' प्रभृति मान्य ग्रन्थों के प्रणेता डॉ. रामअवध द्विवेदी इनके अनुज थे। मिश्रबन्धु ने अपने अमर 'विनोद' में इनके 25 ग्रन्थों का उल्लेख किया है—1. मातृभूमि से विदाई, 2. मातृभूमि, 3. मृत्युशय्याशायी रावण, 4. विन्ध्याचल, 5. भारतमाता-गाँधी के प्रति, 6. प्रेमपंचक, 7. ग्रामीण दृश्य, 8. अर्धरात्रि, 9. जन्माष्टमी, 10. दासत्व, 11. गृहलक्ष्मी, 12. सती सुलोचना, 13. प्रार्थना, 14. काशी-प्रयाग, 15. हमारा ग्राम, 16. विश्वामित्र दशरथ के प्रति, 17 उच्छ्वास, 18. चकोर की वेदना और वर्षा, 19. बन्धु-विनय, 20. धनुष-भंग, 21 रणजीतसिंह, 22. आर्य-ललना, 23. गोरखपुर विभाग के कवि, 24. भारतवर्ष के प्रसिद्ध पुरुष[3], 25. मुसलमानी काल का भारत। 'जमशेदजी नौसेरवानजी ताता का जीवन-चरित्र' तथा 'रामलाल' एवं 'कल्याणी' उपन्यास, 'विनोद'[4] (बालकाव्य) इत्यादि उनकी कुछ अन्य कृतियाँ भी प्राप्त होती हैं। उनका मंसूर पर लिखित निबन्ध भी पर्याप्त प्रसिद्ध रहा है। तहसीलदार जैसे सरकारी पदों पर काम और अल्पायु को देखते उनकी प्रतिभा विलक्षण ही प्रतीत होती है।

---

1. ओंकार 'शरद' ने 'राधिकारमण प्रसाद सिंह : व्यक्तित्व और कला' में जन्म 1891 ई. में लिखा है, रवीन्द्र 'भ्रमर' ने 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में 1890 ई.।
2. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 2) में श्रीशंकर शुक्ल ने जन्मवर्ष 1884 ई. में लिखा है। 'विनोद' में मिश्रबन्धु ने आषाढ़ी प्रतिपदा, 1947 वि. लिखा है, जो ठीक लगता है। मन्नन द्विवेदी के अनुज डॉ. रामअवध द्विवेदी का जन्म 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में जनार्दन उपाध्याय ने 1907 ई. दिया है?
3. अपराधशास्त्र पर कई ग्रन्थ प्रस्तुत करनेवाले स्व. परिपूर्णानन्द वर्मा की छात्रोपयोगी 'भारत की विभूतियाँ', 'संयुक्त प्रान्त की विभूतियाँ' जैसी उपयोगी पुस्तकों के प्रेरक मन्नन द्विवेदी गजपुरी ही लगते हैं।
4. 'विनोद-वाटिका' जैसी श्रेष्ठ बालपुस्तकों की प्रेरक। बालसाहित्यकार विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद' ने भी 'विनोदवाटिका' लिखी है।

मन्नन द्विवेदी गजपुरी प्रथम श्रेणी के राष्ट्रकाव्यकार एवं उत्कृष्ट प्रकृतिकाव्यकार हैं। ग्राम्य प्रकृति के चित्रण में उनकी समता कोई कवि नहीं कर सकता। खेद है कि रामचन्द्र शुक्ल समेत अधिकांश साहित्येतिहासकारों में इस प्रतिभाशाली कवि की निपट उपेक्षा की है। धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' एवं डॉ. नगेन्द्र इत्यादि द्वारा सम्पादित 'भारतीय साहित्य कोश' इत्यादि सामग्रीसंकलन-प्रधान ग्रन्थ हैं; किन्तु इनमें भी इस मर्मस्पर्शी कवि की उपेक्षा ही दृग्गत होती है। केवल अपने अपर्याप्तः संक्षिप्त विवरण में मिश्रबन्धु ने उनके साथ न्याय किया है, "शोक का विषय है, आपका देहान्त बहुत थोड़ी अवस्था में हो गया। आप उच्च श्रेणी के लेखक और देशभक्त थे। आपकी रचनाओं में एक अनूठापन रहता था। यदि आप दीर्घजीवी होते तो वर्तमान लेखकों में बहुत ऊँचे स्थान के अधिकारी होते। अब भी आपकी रचनाएँ बहुत ही श्रेष्ठ हैं।" मेरी समझ में, मन्नन द्विवेदी गजपुरी राष्ट्रकाव्यकार के रूप में सोहनलाल द्विवेदी तथा प्रकृतिकाव्यकार के रूप में लोचनप्रसाद पांडेय के स्तर के कवि हैं तथा जीवनीकार के रूप में उनको एक शीर्षस्थ स्थान प्राप्त होना चाहिए। उनकी राष्ट्रीय रचनाओं में दिनकर और श्यामनारायण पांडेय का पैनापन नहीं है, किन्तु सुभद्रा और सोहनलाल द्विवेदी का सारल्य अवश्य है। उनकी रचनाओं में माखनलाल चतुर्वेदी और नवीन की वंकिमता नहीं है, किन्तु मैथिलीशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी की तरलता अवश्य है। वे आदर्शवादी युग की कविता के एक सच्चे प्रतिनिधि हैं। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. जन्म दिया माता-सा जिसने, किया सदा लालन-पालन, जिसके मिट्टी-जल से ही है रचा गया सबका तन।
गिरिवरगण रक्षा करते हैं उच्च उठाके शृंग महान्, जिसके लता-द्रुमादिक करते हमको अपनी छाया दान।
माता केवल बाल्यकाल में निज अंकम[1] में धरती है, हम अशक्त जब तलक तभी तक पालन-पोषण करती है।

2. ऐ राजहंस! आओ क्षण छोड़ मानसर[2] को, सुन लो सँदेश, जाकर यह गोखले[3] से कहना।
गोपाल कृष्ण प्यारा, था प्राणधन हमारा, दिल में समा रहा है, यह गोखले से कहना।
उसकी अजीब सूरत, वह भव्य मंजु मूरत, हा! नाचती दृगों में, यह गोखले से कहना।
वह देशभक्त अद्भुत, बलिदान शक्ति-विद्युत्, हम याद कर रहे हैं, यह गोखले से कहना है।

दिग्पाल छन्द में रचित इस शोकगीत पर 'नवीन पिंगल' के यशस्वी लेखक प्रो. अवध उपाध्याय ने लिखा है, "हिन्दी-भाषा में भी पहले इस बात पर विचार करना चाहिए कि किस-किस भाव के लिए कौन-से छन्द उपयुक्त हो सकते हैं। जो रोने में सुन्दर लगेगा, वह गाने में कभी अच्छा नहीं लग सकता। रोने के लिए हिन्दी में दिग्पाल छन्द उपयुक्त है।....उदाहरण से यह बात स्पष्ट होगी।"

मन्नन द्विवेदी गजपुरी कोमल प्रकृति के व्यक्ति थे।[4] अतः उनकी रचनाओं में भी एक विशेष कोमलता के दर्शन होते हैं। जहाँ उग्रता उपेक्षित है वहाँ भी वे अपेक्षाकृत कोमल ही दृग्गत हो पाते हैं। कांग्रेस के 'नरम दल' में रुचि भी उनकी कोमल प्रकृति के ही अनुरूप थी। गोखले एवं गाँधी में उनकी रुचि भी कोमल प्रकृति का ही परिणाम थी। सम्भवतः इस कारण से भी जनता पर उनका प्रभाव उतना नहीं पड़ सका जितने के वे अधिकारी थे। राष्ट्रकाव्य का कवि तेज़-तर्रार हो तो विशेष लोकप्रिय हो जाता है, जैसे कि माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' एवं दिनकर हुए हैं। किन्तु अपनी अस्मिता में विशिष्ट मनन द्विवेदी गजपुरी हिन्दी-राष्ट्रकाव्य के इतिहास में स्थान प्राप्त करने का अधिकार रखते हैं।

---

[1] कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपने हूँ नहिं तजी, रही अंकम लपटाई।। (भारतेन्दु : गंगा-छवि–'सत्य-हरिश्चन्द्र')

[2] मानससरोवर, मानसरोवर। 'मानसर' नाम का ग्राम भी उसी अंचल में है। चीन ने तिब्बत को हड़प लिया; अतः चीन में।

[3] कांग्रेस के 'नरम दल' के एक शीर्षस्थ नेता, असाधारण वक्ता, गाँधी के राजनैतिक गुरु गोपाल कृष्ण गोखले का देहान्त 1915 ई. में हुआ था। कांग्रेस के 'गरमदल' के महान् नेता बाल गंगाधर तिलक 1920 ई. में दिवंगत हुए। इन दोनों शाण्डिल्यगोत्रीय चितपावन-ब्राह्मणों में कभी नहीं पटी–वैसे, दोनों ऐतिहासिक फ़र्ग्युसन कॉलेज पुणे में ही प्राध्यापक भी थे! प्रभाव एवं प्रेरणा में तिलक आगे(थे, गौरांग-जगत् एवं शान्तिवादी भारतीयों पर गोखले का भारी प्रभाव था।

[4] मन्नव द्विवेदी गजपुरी दादाभाई नौरोजी, फ़ीरोज़शाह मेहता (दोनों पारसी), बदरुद्दीन तैयबजी (मुसलमान), सर सुरेन्द्रनाथ चटर्जी (ईसाई), गोखले (हिन्दू) इत्यादि के 'नरम दल' के परिवेश में पले थे, स्वयं सरकारी अफ़सर थे; अतः उन्हें तिलक, लाजपतराय, विपिनचन्द्र पाल इत्यादि का 'गरम दल' का परिवेश अव्यावहारिक लगता था–यही नहीं, वे गाँधी की आँधी की रफ्तार भी कम चाहते थे। गाँधी द्वारा असहयोग आन्दोलन वापस लेना उन्हें द्रष्टा सिद्ध करता है।

कृष्णबिहारी मिश्र

आदर्शवादी युग के आलोचकों में स्व. कृष्णबिहारी मिश्र (जन्मवर्ष 1890 ई.) मिश्रबन्धु की देव-वरीयता तथा आचार्य पद्मसिंह शर्मा एवं भगवानदीन 'दीन' की बिहारी-वरीयता के छोरों के मध्य सेतु-आलोचक के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं जिनके प्रख्यात ग्रन्थ 'देव और बिहारी' में देव के प्रति विशेष रुचि के बावजूद सन्तुलन विद्यमान है तथा जिनकी 'मतिराम-ग्रन्थावली' की भूमिका में विवेचन, विश्लेषण एवं संश्लेषण उच्चकोटि के हैं। मिश्रबन्धु-विरोधी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तक ने, इनके मिश्रबन्धु से प्रभावित तथा मिश्रबन्धु-प्रतिष्ठापित अलंकृतकालीन या शास्त्रीयकालीन (रीतिकालीन) कविता के आलोचक होने के बावजूद, इनकी चर्चा इन तरंगवादी शब्दों में कही है : ''मिश्रबन्धुओं की अपेक्षा पंडित कृष्णबिहारी मिश्र साहित्यिक आलोचना के कहीं अधिक अधिकारी कहे जा सकते हैं। मिश्र जी ने जो कुछ कहा है, शास्त्रीय विवेचन के साथ कहा है।'' (हरिऔध द्वारा सियारामशरण को मैथिलीशरण से सफलतर कवि मानने की तरंग का स्मरण आ जाता है!) छायावाद-भक्त डॉ. नगेन्द्र 'रीतिकाव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता' (दोनों का एकरूप डी. लिट् प्रबन्ध) के ग्रन्थकार होने के कारण इनके सम्पर्क में आए और प्रशंसक बन गए। 'नटनागर-विनोद' उनकी अन्य रचना है। 'हिन्दी नाट्यसाहित्य और रंगमंच की मीमांसा' (दो खंड), 'मध्यकालीन हिन्दी नाट्य-परम्परा और भारतेन्दु', 'हिन्दी नाट्य-साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास' प्रभृति महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के प्रणेता डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने 'पंडित कृष्णबिहारी मिश्र ग्रन्थावली' सम्पादित की है। 'महाकवि मतिराम' (डॉ. त्रिभुवन सिंह) एवं 'मतिरामः कवि और आचार्य' (डॉ. महेन्द्रकुमार) जैसे शोध-ग्रन्थों पर उनका प्रभाव स्पष्ट है। 'माधुरी' एवं 'आज' से सम्बद्ध मिश्रजी के सहकर्मियों में प्रेमचन्द एवं सम्पूर्णानन्द जैसे विख्यात व्यक्ति रहे। वे 'समालोचक' भी निकालते थे।

कृष्णबिहारी मिश्र का जन्म सीतापुर जनपद के गँधौली नामक ग्राम में हुआ था। 'गंगाभरण', जैसे उत्कृष्ट अलंकृतकाव्य के प्रणेता नन्दकिशोर मिश्र[1], 'लेखराज' तथा युगलकिशोर[2] मिश्र 'ब्रजराज' (शास्त्रीयकालीन ब्रजभाषा-काव्य के मर्मज्ञ विद्वान् एवं कवि) से इन्हें साहित्य उत्तराधिकार में प्राप्त हुआ था। सम्बन्ध अतिरिक्त भी, यह मिश्रबन्धु के बहुत निकट रहे। विद्यमान विद्वान् एवं लेखक डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र के सदृश। बी.ए., एल.एल.बी. करके लखनऊ में वकालत में लग गए। यदि फ़ीरोज़शाह मेहता, मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, चितरन्जनदास, तेजबहादुर सप्रू, पटेल, राजेन्द्रप्रसाद इत्यादि सफल तथा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू इत्यादि अंशतः सफल वकीलों ने राष्ट्र में नाम कमाया है तो वृन्दवनलाल वर्मा, परशुराम चतुर्वेदी, कृष्णबिहारी मिश्र, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', सोहनलाल द्विवेदी इत्यादि सफल तथा द्वारकाप्रसाद मिश्र, भगवतीचरण वर्मा इत्यादि असफल वकीलों ने राष्ट्रभाषा में। कवि बालकृष्ण मिश्र, व्यंग्यकार सन्तोष खरे, बालसाहित्यकार चक्रधर 'नलिन', उपन्यासकार श्रीकृष्ण मिश्र, बहुविधाकार कुँवर विश्वदेवसिंह चौहान (मार्मिक 'मिन्नी' उपन्यास के आदरास्पद प्रणेता) जैसे वकील भी राष्ट्रभाषा-सेवा में संलग्न हैं।

कृष्णबिहारी मिश्र ने 'चीन का इतिहास' भी लिखा तथा 'गंगाभरण', 'नवरसतरंग', 'मोहनविनोद', प्रभृति ग्रन्थों का सम्पादन भी किया। वे कवि भी थे।

कृष्णबिहारी मिश्र रसवादी आलोचक थे। उनका रस, अलंकार, काव्यगत गुण-दोष इत्यादि का अध्ययन स्फीत भी था, गम्भीर थी। उनमें मिश्रबन्धु की विराटता एवं 'प्रस्थान'-कारिता, आचार्य पद्मसिंह शर्मा की प्रखरता एवं भगवानदीन 'दीन' की विविधता के दर्शन तो नहीं होते किन्तु अपनी धृति एवं मति के कारण वे इन्हीं के साथ स्मृति के अधिकारी थे।

गणेशशंकर विद्यार्थी

संसार की पत्रकारिता के इतिहास में गणेशशंकर विद्यार्थी (26 अक्टूबर, 1890—25 मार्च[1] 1931, जन्मस्थान प्रयाग, बलिदानस्थान कानपुर) की समता करने वाला तेजस्वी, संघर्षशील एवं बलिदानी व्यक्ति कोई नहीं हुआ। उनकी प्रखर प्रतिभा को साहित्य के समग्र इतिहास में प्रतिभा के सबसे बड़े पारखी आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने परखा और 'सरस्वती' में अपने साथ लगाया। वे 'अभ्युदय' से अभ्युदय करते 'प्रताप' (प्रथम अंक 9 नवम्बर, 1913) से प्रतापी बने! वे अग्निवर्षी पत्रकार एवं प्रखर देशभक्त थे।

उन्होंने एक ओर माखनलाल चतुर्वेदी एवं 'नवीन' जैसे जुझारू क्रान्तिकारियों को प्रेरणा दी, दूसरी ओर आज़ाद एवं भगतसिंह जैसे जुझारू क्रान्तिकारियों को। उनका बलिदान भी 1931 ई. के उस जुझारू वर्ष में हुआ जिसमें 7 फरवरी को आज़ाद शहीद हुए,

---

[1] सागर के प्रख्यात स्वातन्त्र्य सेनानी डॉक्टर बी.बी. राय (पूर्वविधायक) ने सा. 'क्रान्तिस्वर' (फ़तेहपुर) के 16 जुलाई, 1990 अंक में इन्दुमती गोयनका को विद्यार्थी जी द्वारा 25 मार्च का पत्र प्रकाशित कराके तिथि-विवाद का निराकरण कर दिया है—उसी दिन 4 बज़े सायं विद्यार्थी जी शहीद हुए। कहीं-कहीं बलिदान-दिवस 24 मार्च लिखा मिलता है जो ग़लत है।

23 मार्च को भगतसिंह, राजगुरु एवं सुखदेव, 25 मार्च को स्वयं वे। 1931 ई. के शहीदों का वर्ष था। 'साकेत' के 'निवेदन' में उनके गुरुभाई मैथिलीशरण गुप्त एवं 'हा द्विवेदी जी' कविता में उनके एक अन्य गुरुभाई 'सनेही' ने उनका भावपूर्ण स्मरण किया है। सियारामशरण गुप्त ने उन पर 'आत्मोत्सर्ग' (1933 ई.) काव्य रचा, 'नवीन' ने 'प्राणार्पण', डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' ने 'गणेशगीतांजलि' रची। भारत सरकार के प्रकाशन-विभाग ने उनकी जीवनी प्रकाशित की है। श्री लल्लन मिश्र ने 'गणेशशंकर विद्यार्थीः हिन्दी निबन्ध तथा पत्रकारिता में देय' ग्रन्थ लिखा है। प्रसिद्ध पत्रकार स्व. श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी ने 'अमर शहीद गणेशंकर विद्यार्थी' ग्रन्थ में उनकी प्रामाणिक जीवनी के साथ उनके सर्वाधिक प्रसिद्ध अग्रलेख, भाषण, निबन्ध, संस्मरण और एक कहानी का संकलन किया है। डॉ. पवनकुमार ने उन पर एक उत्कृ[illegible] निबन्ध लिखा है। श्री विद्याप्रकाश ने 'अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी' अंग्रेज़ी-ग्रन्थ प्रस्तुत किया है, जिसमें जन्मस्थान फ़तेहपुर लिखा है जो ठीक नहीं लगता क्योंकि वे मूलतः फ़तेहपुद के तो थे परन्तु संयोगात् जन्म ननिहाल प्रयाग (अतरसुइया, जो अत्रि-अनसूया का स्मरण कराता है) में हुआ था, जैसाकि 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. हरदेव बाहरी ने ठीक लिखा है। डॉ. गंगानारायण त्रिपाठी ने 'कालजयी एक पुरुष' की रचना की है। 'गणेशशंकर विद्यार्थी पर रचित साहित्य' स्वयं शोध का विषय बन चुका है। श्री भगवतप्रसाद मिश्र 'नियाज़' ने उनकी हत्या देखी थी (अतीत की झलकियाँ)। उन्होंने व्यक्तित्व को शब्दों बाँधा है : "एक छरहरे बदन लम्बे क़दम और साँवले रंग वाले चशमा लगाए हुए सज्जन"।

कानपुर में गणेशशंकर विद्यार्थी मेडिकल कॉलेज, गणेश उद्यान (फूलबाग़, जिसमें मूर्ति प्रतिष्ठित है), गणेशशंकर विद्यार्थी पार्क (जिसमें आवक्ष-मूर्ति प्रतिष्ठित है) इत्यादि उन्हें आज भी नगर का प्राण सिद्ध करते हैं। उनके सहयोगी क्रान्तिकारी पत्रकार-द्वय सुरेशचन्द्र भट्टाचार्य एवं रामदुलारे त्रिवेदी के कारण प्रताप-ध्वजा काफ़ी बाद तक फहरती रही। उनके ज्येष्ठ पुत्र स्व. श्री हरिशंकर विद्यार्थी कानपुर के नगर-प्रमुख रहे। उनके कनिष्ठ पुत्र स्व. प्रो. ओंकारशंकर विद्यार्थी डी.ए.वी. कॉलेज कानपुर में अंग्रेज़ी के प्राध्यापक रहे। वे अपने पिता की हत्या का प्रेरक नेहरू को मानते थे। उनकी जुझारू स्वातन्त्र्य-सेनानी पुत्री श्रीमती विमला विद्यार्थी भाइयों, सम्बन्धियों इत्यादि के विद्यार्थी-विरोधी क्रियाकलापों की सोदाहरण भर्त्सना करती हैं। ऐसी भर्त्सना अन्य सज्जन भी करते हैं। उनके भागिनेय प्रो. महेन्द्रकुमार विद्यार्थी डी.ए.वी. कॉलेज कानपुर में हिन्दी-विभागाध्यक्ष रहे। उनकी पौत्री मधुलेखा विद्यार्थी (सुपुत्री श्री हरिशंकर विद्यार्थी) कानपुर के साहित्यिक जीवन का एक अंग हैं। किन्तु वह प्रताप?...

ऐतिहासिक मुंशीगंज हत्याकाण्ड

जनवरी, 1921 में रायबरेली से लगे मुंशीगंज में अंग्रेज़ों और उनके एक गुलाम ताल्लुक़ेदार सरदार वीरपाल सिंह ने जो भयानक कृषक-मेध किया उसे दूसरा जलियाँवाला बाग़ हत्याकाण्ड कहा जा सकता है। इसका कठोर प्रत्याख्यान करते हुए विद्यार्थी जी ने दो ऐसे अग्रलेख लिखे जिन्होंने अंग्रेज़ों और सरदार वीरपालसिंह की पैशाचिकता का पूरा पर्दाफ़ाश कर दिया। दोनों तिलमिला उठे। मानहानि का दावा किया गया। इस ऐतिहासिक मुकद्दमे में मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू, पुरुषोत्तमदास टंडन, जवाहरलाल नेहरू समेत सैकड़ों गवाहियों के बावजूद उन्हें तथा 'प्रताप' के यशस्वी संचालक श्री शिवनारायण मिश्र को उस समय को देखते बहुत भारी 1000 रुपये जुर्माने तथा 1-1 वर्ष के कारावास के कठोर दण्ड दिए गए। ज़मानत नामंजूर होने पर जनता ने ऐसा विप्लव किया कि उसे मंजूर करना पड़ा। विद्यार्थी जी के वकीलों में फ़ौज़दारी के नामी वकील और प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा भी सम्मिलित थे। एक दिन कानपुर के पुराने रेलवे स्टेशन के प्लेटफ़ार्म पर आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी अपने प्रिय शिष्य विद्यार्थी जी के साथ टहल रहे थे, वर्माजी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके आने पर आचार्य ने रोकर कहा था, "भइया, गनेस जी का बचाय लेव!" स्व. (आचार्य सामान्य वार्ता बैसवारी में ही करते थे।) रायबरेली के प्रख्यात स्वातन्त्र्य सेनानी एवं 'जनता राज' साप्ताहिक के सम्पादक स्व. पं. मदनमोहन मिश्र सम्पादित 'भूला जनपद बिखरा इतिहास' शीर्षक स्फीत ग्रन्थ में मुंशीगंज हत्याकाण्ड पर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। स्व. डॉ. श्रीरामसिंह ने 'रायबरेली : किसान आन्दोलन की यज्ञ-भूमि' शीर्षक शोधपूर्ण ग्रन्थ में भी इसका प्रात्ययिक वर्णन किया है। श्री गोविन्दनारायण मिश्र ने इस घटना पर 'सई-तट' खण्डकाव्य रचा है। (मुंशीगंज सई नदी के तट पर बसा है तथा संयोगात् हत्याकंड पुराने पुल और आस-पास ही हुआ था, जहाँ आज भव्य स्मारक खड़ा है।)

---

1. श्रीकृष्ण मिश्र कृत कहानीसंग्रह 'लकुटिया' की 'इस्तीफ़ा' कहानी एवं अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी जन्मशती समारोह (20-21 अक्टूबर, 1990) मैनपुरी की 'स्मारिका' में उन्हीं का 'गणेशशंकर विद्यार्थी और मैनपुरी' लेख जो सारा-का-सारा इसी विषय पर है।
2. उक्त स्मारिका में ही विशाल खत्री का लेख 'भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में गणेशशंकर जी का योगदान', पृ. 41।

मैनपुरी की घटना

शिकोहाबाद के कुख्यात दारोग़ा शिवदयालसिंह के धज्जे उड़ाने पर मुकद्दमा चला जिसके कारण अप्रैल, 1926 में 6 मास कारावास या उस समय को देखते 500 रुपए के भारी दण्ड का निर्णय सुनाया गया। जुर्माना न देने पर हथकड़ी लगाकर जेल भेजा गया। पर कुछ देर बाद ही स्वयं मैजिस्ट्रेट द्वारा जुर्माना अदा करने के कारण छोड़ दिए गए। मैजिस्ट्रेट ज्वालाप्रसाद ने इस्तीफ़ा भी दिया, विरक्त भी हो गए।[1] किन्तु इस घटना पर विवाद है। एक स्रोत के अनुसार वे इलाहाबाद उच्च न्यायालय द्वारा छोड़े गए।[2]

अमर पत्रकार मात्र नहीं, महान् साहित्यकार भी

पत्रकारिता-सुमेरु गणेशशंकर विद्यार्थी एक महान् साहित्यकार भी थे। राणा प्रताप पर उनका अमर निबन्ध साहित्य की एक निधि है। 'अरे ओ दुनियादार' से आरम्भ क्रान्तिकारियों को सिरफिरा कहनेवालों पर लताड़ ग़ज़ब की रचना है। उन्होंने अन्य अनेक साहित्यिक निबन्ध, संस्मरण इत्यादि भी रचे थे। उनके अनेक भाषण एवं अग्रलेख साहित्यिक मूल्यों से ओतप्रोत हैं। 'गणेशशंकर विद्यार्थी ग्रन्थावली' का प्रकाशन किया जाए तो पता चले कि वे एक महान् साहित्यकार भी थे। उनके प्रख्यात व्यक्तित्व ने उनके गम्भीर साहित्यिक व्यक्तित्व को आच्छन्न-सा कर लिया है। पाठ्यक्रमों में उनके निबन्ध प्रस्तावित होने चाहिए।

उत्कट हिन्दी-प्रेम

गणेशशंकर विद्यार्थी आद्यन्त हिन्दी-प्रेमी एवं हिन्दी-सेवक रहे। अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के गोरखपुर में होने वाले उन्नीसवीं अधिवेशन (1930 ई.—1986 वि. किन्तु फाल्गुन मास) के अध्यक्ष पद से दिया गया उनका भाषण ऐतिहासिक तो है ही, उन्हें एक द्रष्टा भी प्रमाणित करता है, जिसके कुछ अंश प्रस्तुत हैं :

"....पूजनीय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की अनुपस्थिति में उनके एक बहुत छोटे सेवक के नाते मैं गोरखपुर अधिवेशन की साधारण कार्यवाही को भले या बुरे, जिस ढंग से बने, इसे पूरा करा दूँ.... । कहाँ राजनीति का चंचल क्षेत्र और उसका नित्य का अस्थिर और उच्छृंखल पर्यटन और कहाँ यह सुन्दर सुललित साहित्य-सर जिसमें पैठने के लिए बड़ी साधना और पुण्य की आवश्यकता है! ....यद्यपि इस देश के मुसलमान शासक बहुत समय तक विजेता और विदेशी नहीं रहे और उनकी भाषा का विशेष प्रभाव देश के अन्य भागों पर बहुत कम पड़ा है, किन्तु तो भी उनके कारण, भारतीय भाषाओं का सहज स्वाभाविक विकास नहीं हो सका। सबसे अधिक हिन्दी की हानि हुई।....फ़ारसी के आगमन और उर्दू के जन्म से बहुत पहले भी हिन्दी गद्य रूप में वर्तमान थी और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व था। फ़ारसी से जो कुछ हुआ वह उसका पासंग भी नहीं है जो अंग्रेज़ी के आगमन से इस देश में हुआ। हिन्दी भाषा जिसे सम्मेलन के मंच से स्वर्गीय पं. बदरीनारायणजी नागरी भाषा के और स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी आर्य भाषा के नाम से पुकारना उचित समझते हैं, अंग्रेज़ी के कारण जितने घाटे में रही और अब तक है, उतने घाटे में वह शाही समय में न थी और यदि उसे स्वाभाविक वायुमण्डल मिलता तो कभी न रहती।....उर्दू हिन्दी का ही फ़ारसी-मिश्रित रूप है, और डॉ. अन्सारी और मौ. ज़फ़र अली ऐसे मुसलमान नेता तक हिन्दी को राष्ट्रभाषा के नाम से पुकारना आवश्यक और गौरव की बात समझते हैं....यदि आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' में अपनी खरी आलोचना द्वारा इन साहित्यिकों को भाषा और व्याकरण के सम्बन्ध में ठीक रास्ते पर न लगाते, तो बहुत समय तक हिन्दी के क्षेत्र में बहुत बड़ी अस्तव्यस्तता रहती।....मैं अन्य भाषाओं से कुछ भी लेने, शब्दों और वाक्यों के लेने तक के, विरुद्ध नहीं हूँ, किन्तु अपनी भाषा के व्यक्तित्व की रक्षा का विचार रखते हुए, मैं कुछ लेना चाहता हूँ उसे खोकर नहीं।....लाला हरदयाल के कथनानुसार उन कठिन दिनों में भी हिन्दी यदि बची रही तो केवल स्त्रियों के कारण, और माताओं, बहनों और पत्नियों को पत्र लिखने के लिए पुरुषों को विवश होकर नागरी अक्षरों का परिचय प्राप्त करना पड़ा था।....मुझे तो ऐसा भासित होता है कि संसार की कोई भी भाषा मनुष्य जाति को उतना ऊँचा उठाने, मनुष्य को यथार्थ में मनुष्य बनाने और संसार को सुसभ्य और सद्भावनाओं से युक्त बनाने में उतनी सफल नहीं हुई जितनी कि आगे चलकर हिन्दी भाषा होने वाली है। हिन्दी को अपने पूर्वसंचित पुण्य का बल है। ....स्वाधीनता पत्र पर हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों में अपने हस्ताक्षर करते दिखाई देंगे।"

गम्भीर क्रान्तिकारी एवं सच्चे प्रगतिवादी विद्यार्थी जी का एक लेख प्रस्तुत है जो उनको और पाठक को आमने-सामने खड़ा कर सकता है :

राष्ट्र महलों में नहीं रहता

राष्ट्र-महलों में नहीं रहता। प्रकृत राष्ट्र के निवास-स्थल वे अगणित झोपड़े हैं, जो गाँवों और पुरवों में फैले हुए खुले आकाश के देदीप्यमान सूर्य और शीतल चन्द्र और तारागण से प्रकृति का सन्देश लेते हैं और इसलिए, राष्ट्र का मंगल, और उसकी जड़ मज़बूत उस समय तक नहीं हो सकती, जब तक इन अगणित लहलहाते पौधों की जड़ों में जीवन का, मज़बूती का जल नहीं सींचा जाता। भारतीय राष्ट्र के निर्माण के लिए उसके गाँवों और पुरवों में जीवन की ज्योति की आवश्यकता है कि हम अपने हाथ-पैर और कान-नाक को भी उस मिठास की कल्पना करने का निमन्त्रण दें, जिसकी कल्पना हमारे मन में है। करोड़ों प्राणियों की जागृति के लिए हम आगे बढ़ें, और उन्हें आगे बढ़ावें, जिनके बढ़ाने की शक्ति हमारे हाथों में है।

देश की म्यूनिसिपैलिटियों को अधिक स्वतन्त्र बनाने के लिए सरकार ने कृपा करके अभी एक प्रस्ताव प्रकाशित किया था। यद्यपि उसमें सकपकाहट भरी हुई है, और सरकार उन्नति के नाम पर भी अपनी ही लाठी के सहारे एक क़दम भी आगे बढ़ाने का साहस प्रकट नहीं कर सकती है, तो यह भी नहीं कहा जा सकता कि उस प्रस्ताव में अच्छी बातें नहीं हैं। एक अच्छी बात यही थी कि गाँवों में पंचायतें स्थापित की जाएँ, और जहाँ-जहाँ वे हैं, वहाँ दृढ़ की जाएँ। काम होने पर पता लग सकेगा कि सरकार गाँवों के लिए कितना आगे बढ़ सकती है? यह बात उल्टी ही भले ही प्रकट हो पर एक समय था, कि हमारे गाँव प्रजासत्ता के उस बड़े भाव के केन्द्र-स्थल थे, जिसके आधार पर आगे बढ़ना आज प्रत्येक उन्नतिशील देश अपना कर्तव्य समझता है। मुसलमानों ने देश के अधिकांश भाग पर अपना झंडा फहरा दिया, पर बड़े-से-बड़े मुसलमान सम्राट् का शासन या तो देश के बड़े-बड़े नगरों पर था, या उस भूमि पर जिस पर उसकी सेना के कदम पड़ते थे, पर देश के लाखों गाँवों में उन्हीं की तूती बोलती थी, जो उन्हीं के थे, और उन्हें पता भी न लगता था, कि कौन आया, और कौन गया? परन्तु अंग्रेज़ी राज्य के स्थापित होते ही गाँवों की स्वाधीनता लोप हो चली। उन्हें मालूम हुआ कि हमारे सिरों पर शासकों का ज़बर्दस्त लोहा पड़ गया। पंचायतें टूट चलीं, और गाँव की कभी न टूटने वाली शान्ति ने अपना बोरियाबन्धन सँभाला। जहाँ प्रजा-सत्ता आनन्द से विचरती थी, वहाँ स्वेच्छाचारिता का राज्य हुआ। कोयल के घोंसले में काक का निवास हुआ। चौकीदारों और पुलिसवालों ने सबको एक ही डंडे से हाँकना आरम्भ कर दिया। जहाँ प्यार और आदर के सूत्र से सब बँधे हुए थे, वहाँ स्वेच्छाचारिता की छत्र-छाया के विरोध और कलह, उत्पात और नालिशबाज़ी ने अपना रंग जमाया। बना-बनाया खेल बिगड़ गया, और इस टूटी हुई अट्टालिका के सुधार, या उसकी नींव पर दूसरी अट्टालिका की नींव रखने का भी विचार भी उनके हृदयों में न पैदा हुआ, जिनके हाथों में बिगड़े हुए भाग्य की डोरी थी। वर्षों से देश के गाँवों की बुरी दशा है। प्रति वर्ष वे उजड़ते जाते हैं। प्रति वर्ष लाखों आदमी उनसे निकलकर नगरों में आ बसते हैं। कुछ रोज़ी कमाने के लिए और कुछ अपने गाँव के स्वेच्छाचारी सरकारी प्रतिनिधियों की ज़ोर-जबर्दस्ती से बचने के लिए। पर, अब सरकार की दृष्टि इन पर पड़ी है। उसने उनमें पंचायत के स्थापित करने की आवश्यकता समझी है। बात अच्छी है, और भविष्य की उज्ज्वलता की कुछ आशा की जा सकती है। परन्तु उस समय तक आशाओं के बहुत बड़े महल बनाने की आवश्यकता नहीं है, जब तक काम का रूप न देख लिया जाए। यदि कार्य उसी ढंग से आरम्भ किया गया, जिस ढंग से आरम्भ करने के अभ्यासी हमारे शासकगण हैं तो विशेष लाभ की कोई आशा नहीं।

पंचायत स्वराज्य का एक रूप है। पंचायत को अपने गाँव के भीतरी मामलों में पूरी स्वाधीनता थी। वर्तमान आवश्यकताओं के लिहाज़ से एक पंचायत को अपने गाँव की पाठशाला, उसकी स्वास्थरक्षा, उसके छोटे-छोटे मामलों के निपटारे आदि विषयों में पूरी स्वाधीनता प्राप्त होनी चाहिए। परन्तु आज वर्षों से गाँव में स्वाधीनता का ह्रास हो रहा है, और स्वेच्छाचारी शक्तिमान लोग गाँव वालों पर अत्याचार करने, उन्हें धूल के बराबर समझने, उन्हें लड़ा मारने, उनकी कलह और मुकदमेबाज़ी से लाभ उठाने के पूरे अभ्यासी हो चुके हैं। इन स्वेच्छाचारियों को दाब में रखने से गाँव वाले कुछ स्वाधीन हो सकते हैं। परन्तु क्या ये लोग किन्हीं बन्धनों में रखे जा सकेंगे? हमें सन्देह है, क्योंकि इन स्वेच्छाचारियों में अधिकांश हमारे अधिकारी हैं, और उनका दाबा जाना उस समय तक अत्यन्त कठिन जान पड़ता है, जब तक देश के शासन में देश वालों का हाथ बहुत-कुछ नहीं होता है, और जब तक सरकार की वर्तमान नीति—अपने आदमियों का अनुचित पक्ष लेने की नीति—का अन्त नहीं होता। पर स्थिति चाहे जो हो, इससे किसी को सन्देह नहीं हो सकता कि गाँवों के उठाने की बड़ी भारी आवश्यकता है, न केवल गाँवों की दुर्दशा का मूलोच्छेदन करने के लिए, उनमें से कलह, अज्ञान और मुकदमेबाज़ी दूर करने के लिए, परन्तु देश में राष्ट्रीय भावों की जड़ों को पाताल तक पहुँचाने के लिए। सरकार कुछ करना चाहती है। वह बुरा हो या भला, इस आलोचना ही से हमारा काम समाप्त नहीं होता। हम, जिनके हृदयों में जागृति के कुछ भाव हैं, और जो देश के अलग-अलग अंगों को जुड़ा हुआ देखना चाहते हैं, और जो एक महान् राष्ट्र का स्वप्न देख रहे हैं, हम जो देश और

देशवासियों के पूर्ण विकास और उनकी उन्नति रोकने पर दूसरों का तिरस्कार करते हैं और जो मनुष्यता के कल्याण ही में संसार का कल्याण समझते हैं, उस समय तक अपने कर्तव्य से गिरे हुए रहेंगे, जब तक हम स्वयं अपने हाथों से इस बड़े महल की नींव रखने के लिए आगे न बढ़ेंगे और आगे बढ़कर उन अपने करोड़ों भाइयों को आगे बढ़ने का रास्ता न देंगे, जो स्तब्ध होने के कारण हमें पीछे घसीटनेवाले, और देश के बोझ बन रहे हैं। (प्रताप, 28 जून, 1915)

अन्त में श्रीमती विमला विद्यार्थी का पत्र

श्रीमती विमला विद्यार्थी
(स्वतन्त्रता सेनानी)
पुत्री—स्व. गणेशशंकर विद्यार्थी

डी-12, आफिसर्स फ्लैट,
सर्किट हाउस, कानपुर

दिनांक : 01-12-1990 को प्राप्त

आदरणीय मिश्र जी

नमस्कार,

अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी जन्म-शती समारोह मैनपुरी में जो स्मारिका प्रकाशित हुई है, उसमें आपका लेख ''गणेशशंकर विद्यार्थी का हिन्दी प्रेम'' पढ़ा। अच्छा लगा, किन्तु क्षोभ भी हुआ।

आपने उनको परिवार से जोड़ा वह भी उन नामों से जो उनके आदर्शों के ठीक विपरीत हैं। इन लोगों के बारे में आप कितना जानते हैं? केवल जो स्थान इन लोगों ने छल-बल से प्राप्त किया है या किया था बस यही साधन है उनके परिचय का। इन सभी नामों ने विद्यार्थी जी के नाम, उनकी गरिमा का शोषण किया है। अपनी अयोग्यता की छाप 'प्रताप' को बन्द करवा के छोड़ी है। उनके नाम और काम को आगे बढ़ाने में, उनकी कीर्ति को अक्षय रखने में योगदान करना तो दूर रहा, इन सभी महानुभावों ने अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए उनके नाम पर कालिमा लगाने की कोशिश की, किन्तु वह तो ऐसे प्रखर ज्योति-पुंज हैं कि उस पर असर नहीं हुआ।

उनके श्रद्धा-कर्म उनकी कीर्ति-रक्षा करने में इन लोगों का तिल-भर सहयोग नहीं है।

नहीं तो क्या कारण है अभी तक उनके द्वारा अनुवाद की हुई 'ला मिजरेबूल' जो उन्होंने 1930 हरदोई कारवास में की थी, अभी तक स्वार्थियों के कब्ज़े में है वह प्रकाशित नहीं हो सकी। हिन्दी साहित्य अकादमी वालों ने इसे छपवाना भी चाहा था और यह दिल्ली गई किन्तु निजी स्वार्थवश उसे उन्हीं लोगों ने छपवाने से इनकार करवा दिया आज भी वह इन लोगों के शिकंजे से मुक्त नहीं हो पाई है। आप ही मुक्ति दिला दीजिए। दुनिया के सामने तो विद्यार्थी द्वारा अनूदित पुस्तक सामने आए।

उनका परिवार असीम है। उनको किसी सीमा में बाँधा नहीं जा सकता है। यदि ऐसा ही होता तो वह मेरी बीमार माँ, दादी एवं हम लोगों को छोड़कर क्यों आग में कूद पड़ते।

मैं उन लोगों को जिनका ज़िक्र किया है उनका आत्मीय मानने को तैयार नहीं हूँ।

आप श्री जगदीशप्रसाद से अधिक जानकारी ले सकते हैं कि इन लोगों ने केवल उस नाम से लाभ कमाया है, श्रद्धा का एक फूल भी अर्पित नहीं किया है।

धृष्टता के लिए क्षमा-याचना चाहती हूँ। मैं सत्यनिष्ठ एवं स्पष्टवादी हूँ।

भवदीया
विमला विद्यार्थी

नारायणप्रसाद 'बेताब'

मूलतः कश्मीरी पंडित[1] किन्तु दिल्लीवासी ढलाराय (जो ग़ालिब के शिष्य थे) के पुत्र नारायणप्रसाद 'बेताब' (जन्म 1891 ई.[2], दिल्ली) ने एल्फ्रेड थिएट्रिकल कम्पनी कलकत्ता के लिए नाटक लिखने शुरू किए और धड़ाधड़ लिखते रहे। वे उर्दू के गण्यमान्य नाट्यकार थे[3], किन्तु 'रामायण, 'महाभारत', 'कृष्ण-सुदामा', 'गोरखधन्धा', 'पटनी प्रताप' इत्यादि हिन्दी-नाटकों के प्रस्तोता के रूप में भी स्मरणीय

---

1. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 में डॉ. रामचन्द्र तिवारी, पृष्ठ 303
2. विनोद (मिश्रबन्धु) : ''लगभग सं. 1848'' वि., नया संस्करण, खंड 2, पृष्ठ 467
3. उर्दू भाषा और साहित्य (फ़िराक़ गोरखपुरी), पृष्ठ 338-40

हैं। उनका 1913 ई.[1] में प्रथमतः अभिनीति 'महाभारत' बहुत सफल रहा। 'प्रासकुंज'[2] में उन्होंने अंत्यानुप्रासों का ऐसा संकलन प्रस्तुत किया जिसे डॉ. रामचन्द्र तिवारी ने ठीक ही 'तुक़ों का कोश'[3], माना है। आर्यसमाजी होने के कारण वे अपने धर्मालोचन में असंयत हो जाते थे। मिश्रबन्धु के शब्दों में, ''इनके नाटकों में बेपढ़ी जनता को प्रसन्न करनेवाली बातें अधिक रहती हैं।...'यथानाम तथागुण' की कहावत चरितार्थ करते हैं।'' फ़िराक़ गोरखपुरी ने इनके 'महाभारत' में यथार्थ-चित्रण (जैसे, कृष्ण की घायल अँगुली पर द्रौपदी का साड़ी फाड़कर पट्टी बाँधना) की तारीफ़ की है। 'बेताब' आग़ा हश्र कश्मीरी, तुलसीदास 'शैदा', राधेश्याम कवाचाचक, 'चन्द्रमणि' इत्यादि के वर्ग के जन-नाट्यकार थे, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, श्रीनिवासदास, प्रसाद इत्यादि के वर्ग के साहित्यिक-नाट्यकार नहीं जबकि चिरंजीत ने जन-नाट्यकार से साहित्यिक-नाट्यकार तक की कठिन यात्रा तय की है (सफ़दर हाशमी इत्यादि नुक्कड़-नाटक के प्रणेता-अभिनेता थोड़ी-सी इतर-श्रेणी के जन-नाट्यकार भी इस दिशा में स्मरणीय हैं)। किन्तु उनके कारण भी हिन्दी-नाटक को लोकप्रियता अवश्य प्राप्त हुई।

गोपालशरण सिंह

आदर्शवादी युग में साफ़-सुथरी भाषा, खड़ीबोली में सफल कवित्त सवैया-सृजन, प्रसन्न रहस्यदर्शिता एवं विशद नारी-संवेदन के कारण अपनी अलग पहचान बनानेवाले कवि ठाकुर गोपालशरण सिंह (1891-1960 ई.) रीवाँ (मध्यप्रदेश) क्षेत्र की नई गढ़ी के इलाक़ेदार थे। मध्य प्रदेश के विभिन्न राजाओं में छत्रसाल, विश्वनाथ सिंह, रघुराज सिंह, स्व. रघुवीरसिंह (निधन 1991 ई.), गोपालशरण सिंह इत्यादि ने सर्जना द्वारा तथा मधुकर शाह, वीरसिंहदेव, इन्द्रजित सिंह[4], छत्रसाल (स्वयं कवि), हिन्दूपति इत्यादि ने अर्चना द्वारा हिन्दी के विकास में प्रशस्य योगदान किया है। 'माधवी', 'मानवी', 'संचिता', 'ज्योतिष्मती', 'कादम्बिनी', 'सुमना' शीर्षक संग्रहों के अतिरिक्त गोपालशरण सिंह ने गाँधी पर 'जगदालोक' शीर्षक महाकाव्य भी रचा। 'संचिता' आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी को समर्पित है जिन्हें कवि अपना गुरु मानता है। इनकी कृतियों में नारी के वधू, देवदासी, भिखारिन, विधवा, वारांगना इत्यादि नाना रूपों को विवृत करनेवाली 'मानवी' एवं सरल-तरल रहस्यवादी कविता-संग्रह 'ज्योतिष्मती' विशेष उल्लेखनीय है। गोपालशरणसिंह नानाक्षेत्रीय नारी-संवेदन के श्रेष्ठतम कवियों में प्रतिष्ठित किए जा सकते हैं। इस दिशा में पं. रामदयाल पांडेय का नाम भी स्मरणीय है।

सनेही, हितैषी, गोपालशरण सिंह, मुकुटधर पाण्डेय इत्यादि आदर्शवादी युग के कवियों ने ही प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि स्वच्छन्दतावादी कवियों का रहस्य-पथ प्रशस्त किया था। श्रीधर पाठक, लोचनप्रसाद पाण्डेय, रामनरेश त्रिपाठी इत्यादि आदर्शवादी युग के कवियों ने ही प्रसाद, निराला, पन्त इत्यादि स्वच्छन्दतावादी कवियों का प्रकृति-पथ प्रशस्त किया था। नाथूराम शर्मा 'शंकर', रामनरेश त्रिपाठी, गोपालशरण सिंह, मुकुटधर पाण्डेय इत्यादि आदर्शवादी युग के कवियों ने ही परवर्ती निराला, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' इत्यादि का दीन-संवेदन-पथ प्रशस्त किया था। खेद है कि 'प्रतिक्रिया' अथवा तदनुकरण-प्रसूत 'विद्रोह' की भड़कीली शब्दावली ने इतिहास-बोध की अवहेलना कर साहित्य की प्रकृत विकास-कथा में कृत्रिम विक्षेप उत्पन्न कर दिया है। वस्तुतः एवं तत्त्वतः स्वच्छन्दतावादी कविता आदर्शवादी कविता का सहज एवं प्रसन्न विकास थी, प्रतिक्रिया का प्रतिफल अथवा विद्रोह की विभीषिका नहीं।

ठाकुर गोपालशरण सिंह की कविता के उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. तेजधारियों में कृशानु का है नाम बड़ा, किंतु भानु सबसे महान तेजवान है।
पादपों में परिजात, पर्वतों में हिमवान, नदियों में जाह्नवी मनोज्ञता की खान है।।
मोर सा मनोहर न कोई खग रूपवान, फूल कौन दूसरा गुलाब के समान है।
यद्यपि सभी हैं उपमान इन्हें मान चुके किंतु उस छवि सा न कोई छविमान है।।

2. सुषमा उसी की अवलोक के सुधाकर में रूप-सुधा पीकर चकोर न अघाते हैं।
घन की घटा में नव निरख उसी की छटा मंजुल मयूर होते मोद-मद-माते हैं।।

---

1. वही, पृष्ठ 338
2. 'प्रासपुंज' बेहतर होता।
3. हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2
4. केशवदास के शिष्य एवं आश्रयदाताः ''भूतल को इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुगजुग जाके राज केसोदास राज सो करत है।''

3. जान गया, जान गया, कौन हो सुजान! तुम, तुम्हें पहचान गया, मत बतलाओ तुम।
खोल दो नयन, मत मुझे तरसाओ और, सुख सरसाओ, प्रेम-सुधा बरसाओ तुम।।
ख़ूब छिटकाओ निज छवि की निराली छटा, भाँति-भाँति के अनूप रूप दिखलाओ तुम।
छिप कर जाने अब पाओगे कदापि नहीं, जाओ या न जाओ, फिर आओ या न आओ तुम।।
4. तू अनंत द्युतिमय प्रकाश है, मैं हूँ मलिन अँधेरा। पर सदैव संबंध अटल है जग में मेरा-तेरा।।
उदय-अस्त तक मेरा साथी मैं ही हूँ इस जग में। मैं तुमसे ही मिल जाता हूँ होता जहाँ सवेरा।।

कौशिक

'चित्रशाला', 'मणिमाला' एवं 'कल्लोल' संग्रहों के कहानीकार, 'माँ', 'भिखारिणी' एवं 'संघर्ष' के उपन्यासकार एवं 'दुबेजी की चिट्ठियाँ' के व्यंग्यकार विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक (1891-1945 ई., जन्मस्थान अम्बाला, पूर्वजस्थान गंगोह, जनपद सहारनपुर चाचा के दत्तक-पुत्र के रूप में निवास एवं वकालत कानपुर में जहाँ कचहरी के बाहर पार्क में आवक्ष-मूर्ति प्रतिष्ठित है) हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कहानीकारों, उल्लेखनीय उपन्यासकारों एवं स्मरणीय व्यंग्यकारों में परिगणित होने योग्य हैं। हरियाणा की हिन्दी-बृहत्त्रयी बालमुकुन्द गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र एवं विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ही हैं: तीनों उच्च कोटि के मौलिक स्रष्टा, तीनों प्रायः समसामयिक, तीनों अल्पजीवी। कौशिक पहले उर्दू में लिखते थे क्योंकि अम्बाला तक पंजाब में जहाँ उर्दू का पूरा-पूरा दबदबा था। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से हिन्दी में आए तथा 1913 ई. में 'रक्षाबन्धन' प्रभृति कहानियों के 'सरस्वती' में प्रकाशन के साथ ही विख्यात हो गए। कानपुर में उनके यहाँ साहित्यिक गोष्ठी अच्छी जमती थी, जिसमें विजया की तरंगें भी उठती थीं। भगवतीचरण वर्मा भी विजयाप्रेमी थे। अतः जा पहुँचते। पर माँगते कभी न। एक दिन गोष्ठी को ख़ूब जमी, पर विजया का रंग जमता न दीखा, तो वर्मा बहुत बेचैन नज़र आए। कौशिक सूक्ष्म निरीक्षण कर रहे थे: दोनों वकील! आख़िरकार, वर्मा को पूछना ही पड़ा कि पंडितजी, आज कुछ प्रबन्ध नहीं है क्या? कौशिक ने हँसकर कहा कि है; और उन्होंने वर्मा की बेचैनी दूर की! कौशिक एक सहृदय कथाकार ही न थे, एक सहृदय सज्जन भी थे। हास्य-व्यंग्य में उनकी गहरी रुचि थी।

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक नारी-संवेदन के मर्मी कलाकार थे। 'माँ' एवं 'भिखारिणी' उपन्यास हों या उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी 'ताई'—वे नारी के त्याग, वात्सल्य, अन्तर्द्वन्द्व इत्यादि का ऐसा चित्रण करते हैं जैसा आदर्शवादी युग का कोई अन्य कथाकार नहीं कर पाया। महान् प्रेमचन्द तक नारी-चित्रण में या तो अत्यन्त स्थूल हैं या अत्यन्त आदर्शवादी, जबकि नारी का वास्तविक उत्कर्ष स्थूलवृत्ति एवं आदर्शवादिता के मध्य होता है। यथार्थवादी युग में श्रेष्ठतर कथाकार जैनेन्द्र की नारी किताबी अधिक है, समाजगत कम। कौशिक पारिवारिक जीवन का बहुत ही सजीव चित्रण करते हैं। जैसे प्रेमचन्द की पुरुषप्रधान सामाजिक विराटता का उत्तराधिकार यशपाल को मिला, वैसे ही कौशिक की नारीप्रधान व्यक्तिगत गहनता का उत्तराधिकार जैनेन्द्र को। यह सत्य है कि कौशिक की कहानी-कला में कुतूहल स्वयं लेखक स्पष्ट करता चलता है (जैसे 'रक्षाबन्धन' में) तथा उपन्यास-कला में सम्बद्ध विचार भी स्वयं उसके द्वारा ही व्यक्त किए जाते हैं (जैसे 'संघर्ष' में—प्रेमचन्द, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, जैनेन्द्र, अमृतलाल नागर इत्यादि में भी ऐसा ही है); फिर भी, उनका कथा-साहित्य न विचार-बोझिल ही है, न लालित्यरहित ही।

खलकसिंह देव

खलकसिंह देव (जन्म 1892 ई.) ने 'सत्यकथासंग्रह' ग्रन्थ लिखा। किन्तु वे बुन्देलखंड के एक लोककवि के रूप में स्मरणीय हैं जिनका 'बुन्देलखंड का श्रावण' अत्यन्त रमणीय है; इसमें बुन्देलखंडी विभाषा का सौन्दर्य प्रशस्यतः विवृत हुआ है। खनियाधाना के राजा[1] होते हुए भी खलकसिंह देव जनजीवन में ख़ूब रस-बस गए थे :

साउन समयो मोहन नभ घनश्याम। पच्छिम धरें सुरंगी रँग अभिराम।।
बैहर चलत पुरबिया धीमी चाल। हरियल भूमि लुभनिया, हिलुरत ताल।।

---

[1] अकबर, शाहजहाँ जैसे बादशाहों से लेकर छत्रसाल, भगवन्तराय खींची जैसे राजाओं तक हिन्दी-कविता का प्रसार रहा है। दक्षिण के कई सुल्तान हिन्दी-कवि भी रहे हैं। महाराज विश्वनाथसिंह, महाराज रघुराजसिंह, द्विजदेव, रणवीरसिंह, रणंजयसिंह इत्यादि से 'राजा' पदवीधारी शिवप्रसाद सितारेहिन्द, लक्ष्मणसिंह इत्यादि तक विशद हिन्दीसेवी तो साहित्यकार के रूपों में ही विख्यात हैं। 'बादशाहों, सुल्तानों, महाराजाओं और राजाओं द्वारा रचित साहित्य' शोध का अच्छा विषय है।

राखी भोर भुँजरिया दिन त्योहार।। गाँव-गाँव सब झारत निज घर-द्वार।।
बिटियाँ रुचि-रुचि रचतीं माँदी आँग। धानी सुरँग चुनरिया, सेंदुर माँग।।
धानी केरई कोकई सुही सुरंग। गलियन साउन उमगो रंग-बिरंग।।
माथे पीरि भुँजरिया, हिरदय माल। साउन गाउत चलतीं सिंधुर चाल।।
ढपला, बंसी बज रहे महलन-चौक। सुन-सुन ज्वानन उमगत मन में सौक।।
भर-भर तुपकैं साँके फेट सँभार। मूछन ताव चढ़ावत कस हर बार।।
साउन समय हमारो बहुतइ ठीक। खेलन बीर बनाउन सच्ची लीक।।
बीरभूमि रस पूरति सुख की मूल। खंड-बुँदेल कि रज-रज पावन फूल।।

बनारसीदास चतुर्वेदी

हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ जीवनीकार[1], एक शीर्षस्थ संस्मरणकार[2], एक स्मरणीय रेखाचित्रकार[3], प्रवासी भारतीयों पर अतुलनीय लेखक[4] उल्लेख्य निबन्धकार[5] एवं एक शीर्षस्थ पत्रकार[6] बनारसीदास चतुर्वेदी (1982—2/5/1985 ई.—जन्मस्थान-स्थायीवासस्थान फ़ीरोज़ाबाद, उ.प्र.) का स्फीत जीवन स्फीत यात्राओं, स्फीत सम्पर्कों, स्फीत अनुभवों एवं स्फीत लेखन से निष्पन्न रहा। उनकी 'हृदय-तरंग' एवं 'राष्ट्रभाषा'—निष्ठा का भी एक महत्त्व है। शहीदों के प्रति उनका अटल अनुराग उनके जीवन में ही नहीं प्रत्युत रामप्रसाद 'बिस्मिल' की 'आत्मकथा' के सम्पादन इत्यादि तक विवृत हुआ है। 'कर्मवीर पं. सुन्दरलाल' का सम्पादन (विश्वम्भरनाथ पांडे के साथ) भी स्वातन्त्र्य-सम्बद्ध है। अनेक युवा लेखकों के लिए वे कल्पवृक्ष ही सिद्ध हुए थे। रवीन्द्र, आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, गाँधी, राजेन्द्रप्रसाद, मैथिलीशरण, नेहरू इत्यादि से उनके निकट सम्बन्ध रहे। डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी जैसे प्रतिभाशाली साहित्यकारों को उन्होंने आगे बढ़ाया। मैं समझता था, कभी कहीं पढ़ा भी था, कि हजारीप्रसाद द्विवेदी को शान्ति निकेतन में आ. क्षितिमोहन सेन ने लगवाया था, किन्तु वहाँ के पूर्व हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. सियाराम तिवारी के अनुसार बनारसीदास चतुर्वेदी ने यह कार्य किया था। डॉ. द्विवेदी उन्हें गुरुवत् आदर करते थे किन्तु दोनों में हासपरिहास भी चलता था। एक बार जब वे बनारसी लोगों (विशेषतः साहित्यकारों) की स्फीत भर्त्सना में निमग्न थे तब हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'आज' बनारसियों की आलोच्य-स्थिति किन्तु कल वह प्रतिष्ठा कि लोग बच्चों के नाम बनारसीदास रखते थे, स्मरण कराया! जब चतुर्वेदी जी को आगरा विश्वविद्यालय ने डी. लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की तब उन्होंने डॉ. द्विवेदी को लिखा :

बड़े बड़न की अकल जब चरन लगी है घास। फोकट में डी. लिट्. बने श्री बनारसीदास।।

जिस पर गुरुभक्त डॉ. द्विवेदी ने उत्तर दिया :

बड़े बड़न की अब अकल आई अस बिस्वास। डी. लिट्. गुरु डी. लिट्. बने श्री बनारसीदास।।

वस्तुतः दोनों महामानव घास (अपनी माटी की प्यारी रोमराजि) से जुड़े थे! बारह वर्षों तक वे राज्य सभा के मनोनीत सदस्य रहे। इस बीच मैथिलीशरण गुप्त, नवीन, दिनकर, अज्ञेय, नगेन्द्र, पृथ्वीराज कपूर इत्यादि के ऐश्वर्यशाली गुप्त-दरबार में उनकी अच्छी धाक रही। उनकी अमेरिकन विचारक इमर्सन और थोरों के प्रति अनन्य भक्ति थी, जिनकी चर्चा वे सदैव ही करते रहते थे। एक बार जब उन्होंने यह चर्चा न की तब गुप्त जी ने कहा, "भइया, आज आपने इमर्सन और थोरो की चर्चा नहीं की!" नवीन उन्हें

---

1. 'कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी', 'रानाडे', 'केशवचन्द्र सेन', 'भारतभक्त एंड्रयूज़', 'हमारे आराध्य' इत्यादि।
2. 'संस्मरण' : 'फिजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' इत्यादि।
3. 'रेखाचित्र'।
4. 'प्रवासी भारतवासी', 'फिजी में भारतीय', 'फिजी की समस्या' इत्यादि। चिरस्मरणीय प्रवासी भारतीय सेवक, हिन्दीसेवी एवं गाँधी-सहयोगी भवानीदयाल संन्यासी से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा। संयोगात् दोनों का जन्मवर्श 1892 था!
5. 'साहित्य और जीवन' इत्यादि।
6. 'विशाल भारत' (कलकत्ता) एवं 'मधुकर' (टीकमगढ़) के यशस्वी सम्पादक।

उनके ख़ासमख़ाम डीलडौल के कारण 'बनारसी साँड़' कहकर विनोदप्रफुल्लित किया करते थे। ''घास चरने चल दिया यह बनारसी साँड़'' व्यंग्य चलता था। नवीन भी अपनी माटी और हरी घास के आसपास ही रहे!

बनारसीदास चतुर्वेदी एक स्फीत पत्र-लेखक भी थे। उनके आ. द्विवेदी, प्रसाद इत्यादि को लिखे गए पत्र ऐतिहासिक महत्त्व के हैं। वे कविता में सरलता एवं प्रेरणा के पक्षधर थे—'जयद्रथवध' (मैथिलीशरण) के आदर्श पर रचना चाहते थे। उनका गद्य प्रशान्त, प्रेरक एवं प्रांजल है। सृजनात्मक प्रतिभा की अल्पता के बावजूद उनकी विराट् संवेदनशीलता, उनका विराट् अनुभवलोक एवं उनकी अप्रतिहत राष्ट्रभाषा-निष्ठा उन्हें एक उच्चकोटि का साहित्यकार एवं प्रणम्य महापुरुष बना देती है किन्तु विभाषाओं के पृथकता-प्रतिपादन में वे दूरदर्शी नहीं दीखे। मैथिली, भोजपुरी, अंगिका, व्रजी, राजस्थानी (कौन?—मेवाती? मेवाड़ी? मारवाड़ी?) इत्यादि के रमरसरे हिन्दी की अस्मिता को खंडित करते हैं।

हितैषी

'कल्लोलिनी', 'नवोदिता', 'मातृगीता', 'दर्शना' एवं 'मधुमन्दिर' के सफल कवि जगदम्बाप्रसाद[1] मिश्र 'हितैषी'[2] (1895-24) मार्च, 1947, गंजमुरादाबाद[3], जनपद उन्नाव, निवास कानपुर) ने उच्चस्तर की आत्मपरक कविता भी लिखी है, गम्भीर रहस्यपरक कविता भी लिखी है, रोचक व्यंग्यपरक कविता भी लिखी है तथा चुभती हुई समयपरक कविता भी रची है। खड़ीबोली, अवधी एवं व्रज हिन्दी-विभाषाओं के अतिरिक्त उन्होंने उत्कृष्ट उर्दू-कविता भी रची है। शिवसिंह सेंगर, नन्ददुलारे वाजपेयी, रामविलास शर्मा, कृष्णशंकर शुक्ल जैसे आलोचकों, भगवतीचरण वर्मा जैसे उपन्यासकारों, प्रतापनारायण मिश्र जैसे बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न स्रष्टाओं तथा सनेही, श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', हितैषी, निराला, डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन', सुमित्राकुमारी सिन्हा, रमई काका जैसे कवियों का उन्नाव जनपद साहित्य की तपोभूमि रहा है! हितैषी सनेही-पाठशाला के अग्रणी कवि थे। वस्तुतः उनका कवि-रूप सनेही के कवि-रूप से किंचिन्मात्र न्यून न था, भले ही वे सनेही के सहश 'सार्वभौम' गुरु न रहे हों। हितैषी आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के भी शिष्य थे (सनेही के सदृश)। सनेही-पाठशाला के एक अमर कवि अनूप शर्मा ने 'सिद्धार्थ' और 'वर्द्धमान' शीर्षक दो अतुकान्त महाकाव्य एवं 'सुमनांजलि' शीर्षक कवितासंग्रह के अतिरिक्त अन्य कृतियाँ भी रचीं, किन्तु उनकी कविता में हितैषी की कविता जैसी गहन सरसता दृग्गत नहीं होती। सनेही-हितैषी बहुत निकट भी रहे और दोनों में विकट विवाद भी हुआ। हितैषी सबसे लड़ने को तैयार रहते थे। उनका डंडा प्रसिद्ध था। वे भँड़ौवे की चुटीली चोट भी करते थे। निराला की बुवा पर व्यंग्य के कारण दोनों में द्वन्द्वयुद्ध की नौबत आ गई थी—हितैषी को दाँवों का भरोसा था[4], निराला को डीलडौल का! उन्होंने श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' पर भी भँड़ौवा लिखा था। मानस संगम कानपुर के प्राण एवं स्मरणीय हिन्दीसेवक बद्रीनारायण तिवारी के पिता शेषनारायण तिवारी के ''यदि 'ष' को 'ख' पढ़ा-कहा जाए तो हितैषी जी हितैखी जी हो जाएँगे'' व्यंग्य पर उन्होंने तुरन्त कहा था, ''हाँ, शेख़ नारायण जी''! वे बहुत अच्छे हाज़िरजवाब भी थे।

हितैषी एक अत्यन्त सम्मानित कवि थे। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने उन्हें 'महामनीषी' कहा था, उनकी व्रजभाषा-वाणीवन्दना सुनकर रत्नाकर ने गले लगा लिया था। सनेही एवं आ. रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि उनके प्रशंसक थे। रमाशंकर शुक्ल 'कमलेश', पद्मेश, रमाशंकर पाण्डेय 'प्रभाकर', बनवारीलाल दीक्षित 'बनवारी' जैसे शिष्यों ने खड़ीबोली में हितैषी की मधुर सवैया-शैली को बाद तक गतिशील रखा। डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', स्व. त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु', योगेश दयालु इत्यादि खड़ीबोली के उल्लेख्य सवैयाकार भी उनसे प्रभावित हुए। सम्मेलनों एवं गोष्ठियों में वे खूब जमते थे।

---

[1] मिश्रबन्धु के 'विनोद' में जगन्नाथप्रसाद 'हितैषी' लिखा है जो ग़लत है। जगदम्बाप्रसाद शर्मा 'कलाधर' (1912 ई., पेसारा, जनपद जौनपुर, उ.प्र.) का स्मरण आता है जिन्होंने 'स्वदेशगीत', 'कर्णशतक', 'कलाधर-काव्यसंग्रह' प्रभृति कई ग्रन्थ रचे हैं।

[2] 'हित', 'गँवार', 'अलबेला' उपनामों का प्रयोग भी किया है।

[3] हितैषी का जन्म एक महान् वंश में हुआ था। उनके बाबा बाजीलाल मिश्र एवं उनके चाचा रमानाथ मिश्र 1857 ई. के प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम में शहीद हुए थे। स्वयं हितैषी एक उत्कट स्वातन्त्र्य-सेनानी थे जो कई बार जेल गए तथा अंग्रेज़ों द्वारा सारी सम्पत्ति ज़ब्त किए जाने पर भी विचलित नहीं हुए। हितैषी भारतरत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी, पद्मभूषण कविवर बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' इत्यादि के घनिष्ठ मित्र थे तथा इन्हीं (बनारसीदास चतुर्वेदी, सेठ गोविन्ददास, दिनकर इत्यादि भी) के सदृश हिन्दी-प्रेम के कारण पद-वंचित रहने के गौरव से निष्पन्न भी!

[4] हितैषी के एक पूर्वज देवीदयाल मिश्र 'मिस्सर पहलवान' भारत-विख्यात थे, जिन्हें गामा के पूर्वज गुरु मानते थे।

हितैषी के देशप्रेम एवं प्रकृतिप्रेम की कविताएँ उच्चकोटि की हैं। उन्होंने सूफ़ियाना अन्दाज़ की अनेक सफल कविताएँ भी लिखी हैं तथा अद्वैतपरक कविताओं में भी कुशल हैं; फलतः उनकी रहस्यवादी सर्जना भी मनोहारी है। एक देशभक्त एवं रहस्यवादी कवि के रूप में हितैषी चिरस्मरणीय हैं। कहीं-कहीं उनकी गर्वोक्तियाँ सुरुचि की अवहेलना कर गई हैं, कहीं-कहीं व्यंग्य-कविता स्थूल रह गई है, किन्तु उनकी अधिकतर कविता का गहरा दर्द मन को झकझोर देता है। उनकी आत्मपरक कविता मार्मिक है, वस्तुपरक कविता मननीय है।

वैसे तो हितैषी साहित्येतिहास-सम्मानित कवि हैं, किन्तु कानपुर, उन्नाव, लखनऊ इत्यादि में उनकी स्मृति विशेष जीवन्त है। भूषण, मतिराम, चिन्तामणि, दत्त, केशवदेव शुक्ल 'केशव' इत्यादि कानपुर जनपद में जन्मे कवि एवं भगवतीप्रसाद वाजपेयी जैसे कानपुर जनपद में जन्मे उपन्यासकार--कहानीकार तथा पद्माकर, प्रतापनारायण मिश्र, राय देवीप्रसाद पूर्ण, महावीरप्रसाद द्विवेदी, सनेही, श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', हितैषी, कौशिक, विद्यार्थी, नवीन, सोम, सेवक वात्स्यायन इत्यादि कानपुर नगर में रसे-बसे साहित्यकार कानपुर को साहित्य का एक अविस्मरणीय तीर्थ बना देते हैं। 'शंकर', भगवतीचरण वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, 'नीरज', भगीरथ मिश्र इत्यादि कानपुर के रत्न भी हैं। हितैषी को कानपुर आज भी अपनी छाती से लगाए है।

उदाहरण प्रस्तुत हैं जो अनुभूति की गहनता एवं अभिव्यक्ति की प्रांजलता में हितैषी को एक महान् कवि सिद्ध करते हैं :

1. है हितैषी सताया हुआ किसी का, हर तौर किसी का बिसारा हुआ।
घर से किसी के हूँ निकाला हुआ दर से किसी के दुतकारा हुआ।
नज़रों से गिराया हुआ किसी का, दिल से किसी का हूँ उतारा हुआ।
अजी, हाल हमारा हो पूछते क्या? हूँ मुसीबत का इक मारा हुआ।।[1]

2. दुखिया बनी दीन कुटी में कभी, महलों में कभी महरानी बनी।
बनी फूटती ज्वालामुखी तो कभी हिमकूट की देवी हिमानी बनी।।
चमकी बन विद्युत रौद्र कभी, घन आनँद अश्रु कहानी बनी।
सविता ससि स्नेह सोहागसनी, कभी आग बनी कभी पानी बनी।। (किरण)

3. दृष्टि प्रसार विचित्र प्रकार के चित्र के घेरे को देख रहा हूँ।
वर्ण विमिश्रित वर्ण विवर्ण को दूर को नेरे को देख रहा हूँ।।
क्या दिन-रात, क्या प्रात, क्या साँझ, प्रकाश-अँधेरे को देख रहा हूँ।
देखना है छवि का छल केवल, मैं तो चितेरे को देख रहा हूँ।।

4. इन बौरे रसालों की डालों में पीतिमा मध्य बबूलों में क्या छिपा है?
कलियों के स्वरूप में ओट लिए हरिताभ दुकूलों में क्या छिपा है?
उलझाते हैं आँचल जो हठवादिता की इन मूलों में क्या छिपा है?
भँवरे अनजान न जान सके मुसकान में फूलों की क्या छिपा है?

व्यंग्य

5. देवियाँ विवाहिता भी थीं, कुमारिकाएँ भी, शुक--शुकी भी थे, पिक भी थे, सारिकाएँ भी।
स्नान को थी साबरमती सी स्वच्छ तटनी, रोटी सोयाबीन की थी, नीम की चटनी।
कुछ लोग माता बकरी का दूध पीते थे, कुछ लोग पत्ते, फल-फूल खा के जीते थे।
नूतन मुसलमान लोग कुछ यार थे, दिन-रात प्याज़-प्याज़ करते पुकारते थे![2]...

---

[1] मुहावरों का विशेष प्रयोग भाषा-शैली का उल्लेख्य बिन्दु है।

[2] ''नया मुसलमान प्याज अधिक खाता है'' लोकोक्ति का गाँधी की मुस्लिम-तुष्टीकरण नीति के सन्दर्भ में सुन्दर प्रयोग।

श्रम करने से जन होते न विरत थे, युवती-युवक सब काम[1] में ही रत थे।...
हिन्दी का न हित करें, उर्दू के जो हामी हों, गाँधी सेवा संघ आरमी के जो कि टॉमी हों[2]!
6. नाचति नेहरू के रुख़ पै, है सरोजिनी आज बनी प्रेसीडेन्टा![3]
7. अल्लाह के बन्दे मंत्री हैं, मंत्राणी अल्ला रक्खी हैं,
पर बालकृष्ण शर्मा, टंडन दोनों ही दूध की मक्खी हैं।[4]

अवधी में बैसवारियों पर व्यंग्य

8. चारि मास आँब खाय, चारि अठुली चबाय, बीते मास चारि ससुरारि के सहारे माँ।
गट्टा सी गढ़ति है, घिसति सिल-बट्टा रोज, ठट्ठा न करति है बसति बैसवारे माँ।।

अवधी में कुशासन-भर्त्सना

9. गाड़े देत जिन्दा जमींदार हैं जमीन ही में, ब्याज पर ब्याज बैरी ब्योहर बढ़ाए जात।
मूसे लेत मुंसी घूस लै लै रक्त चूसे लेत, चूकत न चपरासी नटई दबाए जात।।
पिए लेत प्रान पटवारी बटमारी करि, बाकी अस्थि-पंजर पुलिस है पचाए जात।
दौरौ दौरौ दीनबंधु औसर यही है हाय, कुटिल कुसासन किसानन को खाए जात।।

व्रजभाषा

10. बैठि 'हितैषी' बिबेक-मराल पै, मानस-ताल में पैठि प्रबीना।
मो मुख-कंज समानी सदा बरबानी बजावहिं बानी की बीना।।....[5]

उर्दू की दो अमर एवं लोकप्रिय ग़ज़लें

11. वतन की आबरू का पास देखे कौन करता है, सुना है आज मक़तल में हमारा इम्तहाँ होगा।
इलाही वह भी दिन होगा जब अपना राज देखेंगे, जब अपनी ही ज़मीं होगी और अपना आसमाँ होगा।
शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले, वतन पर मरने वालों का यही बाक़ी निशाँ होगा।
12. हम सरेदार वसद शौक़ जो घर करते हैं, ऊँचा सर क़ौम का हो नज़रए-सर करते हैं।
सूख जाए न कहीं पौदा ये आज़ादी का, ख़ून से अपने इसे इसलिए तर करते हैं।
इस ग़ुलामी में खुशी हमको तो आई न नज़र, खुश रहो अहले-वतन हम तो सफ़र करते हैं।[6]

---

[1] गाँधी के आश्रमों में काम-क्रीड़ा की ओर श्लिष्ट संकेत। स्वयं गाँधी नग्न युवतियों को दाएँ-बाएँ लिटाकर ब्रह्मचर्य-परीक्षण करते थे (जो काम-विकृति का सूचक है)। विदेशी मीरा बेन को उनके प्रेमपत्र प्रकाश में आए हैं (सुधीर कक्कड़ ने अंग्रेज़ी में प्रकाश डाला है)।

[2] गाँधी की उर्दूभक्ति एवं तज्जन्य हिन्दुस्तानी-प्रतिपादन का विरोध हितैषी ने सदैव ही किया था। हितैषी ने गाँधी को गहराई से समझा था।

[3] सरोजिनी नायडू के कांग्रेस-प्रेसिडेंट ('प्रेसिडेंटा' स्त्रीलिंग-प्रयोग) बनने पर उनके मोतीलाल नेहरू से अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध की ओर संकेत (संयोगात् मोती-पुत्र जवाहर के सरोजिनी-पुत्री कु. पद्मजा नायडू से ऐसे ही सम्बन्ध रहे)। सरोजिनी-जिन्ना सम्बन्ध भी घनिष्ठतम थे।

[4] जवाहरलाल नेहरू की मुस्लिमपरस्ती एवं उनके हिन्दी-विद्वेष पर करारी चुटकी।

[5] एक कविसम्मेलन में ये पंक्तियाँ सुनकर रत्नाकर ने हितैषी को गले से लगाकर कहा था, ''भाई, मेरे पास तो नहीं आई—तुम्हारे पास आ गईं।'' और अपनी 'सरस्वती'-वन्दना भी सुनाई थी :

गुण मंजु द्विवेदी के गा रही है, स्वरों की लहरी लहरा रही है;
वह बानी नबीना बनी सी बनी कवि बानी में बीना बजा रही है।

रत्नाकर द्वारा आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं मासिक 'सरस्वती' की प्रशंसा का ऐतिहासिक महत्त्व है।

[6] वाजिदअली शाह 'अख़्तर' की ग़ज़ल के इस मशहूर शेर को गणेशशंकर विद्यार्थी के शहीदों की भावना के अनुरूप बनाने के आग्रह पर :
दरो-दीवार पर हसरत से नज़र करते हैं, खुश रहो अहले-वतन, हम तो सफ़र करते हैं!

सियारामशरण[1] गुप्त

'मौर्य-विजय'[2] (1914 ई.), 'आर्द्रा' (1928 ई.), 'दूर्वादल' (1929 ई.), 'बापू' (1938 ई.) इत्यादि के कवि, 'गोद' (1932 ई.), 'अन्तिम आकांक्षा' (1934 ई.) एवं 'नारी' (1934 ई.) के उपन्यासकार, 'उन्मुक्त' (1941 ई.) के गीतिनाट्यकार, 'मानुषी' के कहानीकार 'झूठ-सच' के निबन्धकार सियारामशरण गुप्त (4 सितम्बर, 1895–20 मार्च, 1963 ई., जन्म चिरगाँव, जनपद झाँसी, निधन दिल्ली) एक अत्यधिक संवेदनशील मानवतावादी साहित्यकार थे। उन्होंने जैनेन्द्र के सदृश गाँधी के आत्मपीड़न-दर्शन को विदग्धतापूर्वक चित्रित किया है। 'एक फूल की चाह'[3], 'स्मृति', 'नर किंवा पशु?' जैसी कविताएँ, 'नारी' जैसे उपन्यास, 'काकी' जैसी कहानियाँ, 'रामलीला' जैसे निबन्ध उनकी गहन संवेदनशीलता को बहुमुखी प्रतिभा के साथ व्यक्त करने में सर्वथा सफल हैं। 'उन्मुक्त' उनकी गाँधीवादी यूटोपिया है। 'दैनिकी' उनकी परवर्ती कविताओं का प्रौढ़संग्रह है। 'जयहिन्द' उनकी नवराष्ट्रवादी कविता है। पारिवारिक शोक और दमा रोग झेलते हुए भी वे सदा आशावादी रहे। अपने विख्यात अग्रज मैथिलीशरण गुप्त के लिए वे दाएँ हाथ ही थे। उनके निधन के अलगे वर्ष ही राष्ट्रकवि भी न रहे! विनम्र शालीनता उनके व्यक्तित्व की भी विभूति थी, कृतित्व की भी। जहाँ वे अपने सर्वश्रेष्ठ बिन्दु पर होते हैं वहाँ अद्वितीय लगते हैं। 2 नवम्बर, 1993 को उनकी 'नर किंवा पशु' कविता पढ़ाते समय मैं रो पड़ा था! ऐसे ही एक बिन्दु पर हरिऔध ने उन्हें मैथिलीशरण से श्रेष्ठतर कवि कह डाला था! 'अनाथ', 'आर्द्रा', 'दैनिकी' जैसी कृतियों में वे करुणा को मार्मिक उद्‌गार प्रदान करने में अद्वितीयतः सफल हुए हैं। किन्तु दिनकर हरिऔध के कथन से ठीक ही असहमत थे, क्योंकि मैथिलीशरण एक विराट्-आयामी महाकवि हैं।

सियारामशरण की बहुमुखी प्रतिभा अपने गहन मानवीय संवेदन में गोल्डस्मिथ का स्मरण कराती है। सियारामशरण हिन्दी के गोल्डस्मिथ थेः वही अगाध संवेदन, वही प्रखर देशभक्ति, वही प्रशान्त करुणा! गोल्डस्मिथ के जीवन-आयाम व्यापक थे। वह श्रेष्ठतर साहित्यस्रष्टा था। किन्तु दोनों में समता के बिन्दु विद्यमान हैं। जैसे गोल्डस्मिथ अनेक विधाओं के सफल सर्जक होते हुए भी किसी एक विधा के सर्वोच्च वर्ग में प्रतिष्ठित नहीं हो पाते तथा अपने समाहार में भी चूड़ांत महिमा से निष्पन्न नहीं हो पाते, वैसे ही सियारामशरण भी। बहुमुखी प्रतिभा में शीर्षस्थ प्रसाद एवं तदनन्तर अज्ञेय तथा हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के नाम ही लिए जाएँगे। किन्तु सियारामशरण गुप्त धर्मवीर भारती इत्यादि से श्रेष्ठतर साहित्यकार थे, इसमें सन्देह नहीं, क्योंकि उनका संवेदन गहनतर था, व्यापक था और सांस्कृतिक धरातल स्वस्थ-स्वच्छ।

सियारामशरण की प्रतिभा में संवेदन का सहज अतिरेक तो है किन्तु शक्ति नहीं, प्रखरता नहीं, प्रहार नहीं। गाँधी के से द्विधा-दौर्बल्य ने उनके साहित्य को गम्भीर एवं व्यावहारिक जीवन-सापेक्षता से संपृक्त नहीं होने दिया। इस दिशा में उन्होंने अपने अग्रज से प्रेरणा नहीं ली जो गाँधी के मित्र होते हुए भी गाँधीवादी नहीं बने और लाभ में रहे। किन्तु सियारामशरण का गाँधीसंपृक्त मानवतावाद अपनी नानाआयामिता में उल्लेख्य अवश्य है। डॉ. नगेन्द्र सम्पादित 'सियारामशरण गुप्त' ग्रन्थ में उनकी साहित्य-साधना पर सम्यक् प्रकाश डाला गया है। डॉ. ललित शुक्ल ने उन पर परिश्रमपूर्ण शोधकार्य किया है तथा पाँच खंडों में 'सियारामशरण गुप्त रचनावली' का सम्पादन भी। अध्यवसायी एवं महाजन-पंथानुयायी डॉ. शुक्ल पर गुप्त-परिवार की सदैव कृपा रही है। इन्होंने जैनेन्द्र की कृपा भी प्राप्त की, उन पर भी कुछ कार्य किया। दोनों ही मैथिलीशरण के कृपापात्र थे अतः ग्रन्थ प्रात्ययिक हैं, भले ही वस्तुवादी आलोचना के निदर्शन न हों। महादेवी ने 'पथ के साथी' में इन पर बहुत सुन्दर संस्मरणात्मक-रेखाचित्र लिखा है। उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. क्षुद्र-सी हमारी नाव, चारों ओर है समुद्र, वायु के झकोरे उग्र रुद्र रूप धारे हैं।
शीघ्र निकल जाने को नौका के चारों ओर सिंधु तरंगें सौ-सौ जिह्वाएँ पसारे हैं।।
हारे सभी भाँति हम, अब तो तुम्हारे बिना झूठे ज्ञात होते और सबके सहारे हैं।
और क्या कहें, अहो! डुबा दो या लगा दो पार, चाहे जो करो, शरण्य! शरण तुम्हारे हैं।।[4]

---

1. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह के 'रामभक्ति में रसिक-सम्प्रदाय' में सियारामशरण 'प्रेमलता' तथा उनके 33 ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है। मिश्रबन्धु के 'विनोद' में सियारामशरण एवं उनके 'ज्ञानोपदेश' का उल्लेख है। तीन सियारामशरणों में गुप्त की प्रमुखता प्रकट है।
2. कृष्णपालसिंह गौतम के अप्रकाशित नाटक 'भारत-विजय' का शीर्षक-साम्य याद आता है।
3. माखनलाल चतुर्वेदी की अतिविख्यात देशभक्तिपूर्ण कविता 'एक फूल की चाह' से भिन्न, हरिजन-मन्दिर-प्रवेश-समस्या पर रचित मार्मिक कविता।
4. प्रस्तुत छन्द आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी को प्रिय था, जिसे उन्होंने 'साहित्य-सन्दर्भ' ग्रन्थ के 'जगद्धर भट्ट की स्तुति-कुसुमांजलि' निबन्ध में उद्धृत भी किया है।

2. जग में अब भी गूँज रहे हैं गीत हमारे। शौर्य-वीर्य-गुण हुए न अब भी हमसे न्यारे।।
रोम, मिस्र, चीनादि काँपते रहते सारे। यूनानी तो अभी-अभी हैं हमसे हारे।।
सब हमें जानते हैं सदा भारतीय हम हैं अभय। फिर एक बार हे विश्व! तुम गावो भारत की विजय।।
(मौर्य-विजय)

3. प्राप्त इसे दूर के अतल से सत्य हरिश्चन्द्र की अटलता,
लब्ध इसे तारागृह-मंडल से श्री प्रह्लाद की अनन्य भक्ति समुज्ज्वलता,
क्रुद्ध कुरुक्षेत्र के समर में साधा है अकाम ज्ञान कर्मयोग इसने,
पुण्यरत पाञ्चजन्य स्वर में जीवन का पाया है अमर योग इसने।
(बापू)

4. कोई दिव्य देवी दया-दीप लिए जाती थी, उर्ग में सुवर्ण-रश्मि–राशि बरसाती थी।
उसमें से एक यह रश्मि आ पड़ी थी यहाँ, किंतु वह रहती यहाँ कहाँ?—
मेरा घर सूना था, अगम अरण्य नमूना था!
रोकता उसे मैं यहाँ हाय! किस मुख से? बाँधता उसे मैं किस भाँति भव-दुःख से?
आई वह, है क्या यही कम! एक ही निमेष वह मेरे एक जन्म सम!
मेरे मनोदोल पर अनंतकाल झूलेगा, सुकृति ममान वह मुझको न भूलेगा।

मुकुटधर पाण्डेय

स्वच्छन्दतावादी चेतना के अग्रदूत के रूप में अमर कविवर मुकुटधर पाण्डेय (1895-1989 ई., बालापुर, जनपद विलासपुर, मध्य प्रदेश) ने 'कानन-कुसुम'[1] (1913 ई.) एवं 'पूजा-फूल' (1916 ई.–इस संग्रह में अग्रज कविवर लोचनप्रसाद पाण्डेय की कविताएँ भी थीं) के रहस्य-काव्य ने पूर्ववर्ती प्रसाद एवं परवर्ती निराला, पन्त, महादेवी, रामकुमार वर्मा इत्यादि को प्रभावित किया। लोचनप्रसाद पाण्डेय, मुररलीधर पाण्डेय एवं मुकुटधर पाण्डेय को बन्धुत्रयी चिन्तामणि-भूषण-मतिराम एवं आलोचक गणेशबिहारी-श्यामबिहारी-शुकदेवबिहारी (मिश्रबन्धु) का स्मरण कराती है। ऋग्वेद के वैज्ञानिक-देवत्रय ऋभुगण एवं तिलक-युग के शहीद चाफेकर-बन्धुत्रय का स्मरण भी आता है। छाया युगचेतना एवं रहस्य उसकी अनेक में से एक प्रवृत्ति मानी जाती है। उनके युवाकाल में ही विक्षिप्त हो जाने के कारण मध्यप्रदेश में ही कार्यरत डॉ. रामरतन भटनागर इत्यादि ने इन्हें दिवंगत घोषित कर दिया—भला हो 'दिवंगत हिन्दीसेवी' के यायावर एवं अध्यवसायी प्रस्तोता स्व. क्षेमचन्द्र 'सुमन' का जिन्होंने उन्हें 'पुनरुज्जीवित' किया तथा वे अति दीर्घायु प्राप्त कर दिवंगत हुए! मुकुटधर पाण्डेय की विक्षिप्तता हिन्दी-महाभारत के एक अनुवादक मणिदेव, निराला, राहुल, मुक्तिबोध की विक्षिप्तता से विलक्षण सिद्ध हुई, क्योंकि वे ठीक मुकुटधर पाण्डेय एकविश्ववादी-एकमानववादी चिन्तक भी थे। उनका विशद चिन्तन, रहस्यवाद, प्रकृतिचित्रण अनूठा है। स्वच्छन्दतावादी कवि आनन्दीप्रसाद[2] श्रीवास्तव ने प्रकृति के सहज जीवन-साहचर्य के सुन्दर वर्णन किए हैं जो अपनी अनलंकृति में ही प्रभावी लगते हैं तथा स्वच्छन्दतावाद के एक अग्रदूत रामनरेश त्रिपाठी के प्रकृति-वर्णन का स्मरण कराते हैं; किन्तु मुकुटधर पाण्डेय का प्रकृति-वर्णन रहस्य-गर्भित है। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं लोचनप्रसाद पाण्डेय के प्रभाव के कारण मुकुटधर पाण्डेय का अभिव्यक्ति-पक्ष दुरूह नहीं होने पाया। उन्होंने उच्चतम भावों को सरलतम भाषा में व्यक्त किया है, जैसाकि कोई प्रमुख स्वच्छन्दतावादी कवि नहीं कर सका।

'छायावाद' शब्द 1922 ई. में व्यंग्य के साथ सुनाई पड़ा। उससे बहुत पहले ही (1919-20 ई. के बीच) मुकुटधर पाण्डेय उसका समारम्भ कर चुके थे। 1920 ई. की 'मर्यादा' में उनकी 'छायावाद' पर लेखमाला उनको छायावाद का प्रथम प्रतिष्ठापक सिद्ध करती है। यदि वे विक्षिप्त न हो जाते तो उनका प्रसाद या निराला या पन्त का स्तर प्राप्त करना असम्भव न था। उनकी बहुमुखी काव्य प्रतिभा के कुछ निदर्शन प्रस्तुत हैं :

---

[1] प्रसाद के एक कवितासंग्रह का नाम भी 'कानन-कुसुम' है।

[2] स्व. आनन्दीप्रसाद माथुर जाने-माने स्वातन्त्र्य-सेनानी एवं लेखक थे।

1. खींच रहा था हल आतप में बूढ़ा बैल एक सत्रास,
उसे देखकर विकल बहुत हो पूछा मैंने जाकर पास—
''बूढ़े बैल! खेत में नाहक क्यों दिन भर तुम मरते हो,
क्यों ना चरागाह में चलकर मौज मजे से करते हो?''
सुनकर मेरी बात बैल ने कहा दुःख से भरकर आह—
''इस अनाथ असहाय कृषक का होगा फिर कैसे निर्वाह?''

2. हुआ प्रकाश तमोमय जग में मिला मुझे तू तत्क्षण जग में,
दंपति के मधुमय विलास में, शिशु के स्वप्नोत्पन्न हास में,
वन्य कुसुम के शुचि सुवास में था तव क्रीड़ास्थान!

3. मेरे जीवन की लघु तरणी, आँखों के पानी में तर जा!
मेरे उर का छिपा ख़ज़ाना अहंकार का भाव पुराना,
बना आज तू मुझे दिवाना तप्त श्वेत बूँदों में ढर जा!

4. जब संध्या को हट जाएगी भीड़ महान्, जब जाकर मैं तुम्हें सुनाऊँगा निज गान,
शून्य कक्ष में अथवा कोने में ही एक, बैठ तुम्हारा करूँ वहाँ नीरव अभिषेक।

वियोगीहरि

सुप्रसिद्ध गाँधीवादी, हरिजन सेवक संघ एवं अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पदों को शोभित करनेवाले हरिजनसेवी एवं हिन्दी-सेवी, 'वीर-सतसई' के कवि, 'भावना', 'अन्तर्नाद' एवं 'श्रद्धाकण' (गाँधी-सम्बद्ध) के गद्यगीतकार, 'प्रबुद्ध यामुन' के नाट्यकार, 'कैसे-कैसे भ्रम' के निबन्धकार, 'मेरा जीवनप्रवाह' के आत्मकथाकार, 'व्रजमाधुरीसार' के सम्पादक, 'विनयपत्रिका' के टीकाकार तथा बालसाहित्यकार श्री हरिप्रसाद प्रसाद[1] द्विवेदी 'वियोगीहरि' (1895-1988 ई.)[2] का महापुरुष-रूप उनके साहित्यकार-रूप से कहीं अधिक माननीय था। उनका साहित्य अनेक विधाओं में बिखरकर अतीतगामी हो सकता है, कालातीत आदर्शवाद के कारण उपदेशपूर्ण एवं नीरस लग सकता है, किन्तु उसकी प्रेरणा स्वस्थ-स्वच्छ ही रहेगी। पूँजीपति घनश्यामदास बिड़ला को 'एक पावन चरित' (जीवनी) माननेवाले वियोगीहरि की गाँधी पर अन्धभक्ति स्वाभाविक थी जिसने उनकी विश्लेषण-शक्ति को चर ही डाला क्योंकि गाँधी का व्यक्तित्व काव्यवहनक्षम न था, जैसाकि उन पर रचित, पन्त एवं सोहनलाल द्विवेदी की दो कविताओं के अतिरिक्त, स्फीत-रचनाराशि का 'व्यर्थ' होना ही प्रमाणित करता है। गाँधी जैसे सामयिक नेता पर स्थायी महत्त्व का उत्कृष्ट सृजनात्मक साहित्य नहीं रचा जा सकता। अतः उन पर एक दूसरे गाँधीवादी श्री यशपाल जैन के ये शब्द साधार नहीं हैं, ''हरिजी उच्चकोटि के लेखक थे। उच्चकोटि के कवि थे। उच्चकोटि के निबन्धलेखक थे।''[3] हाँ, वे रामकाव्य-कृष्णकाव्य के टीकाकार-संकलनकार के रूपों में अवश्य स्मरणीय हैं। मिश्रबन्धु ने ठीक लिखा है कि ''....विचार कुछ-कुछ प्राचीन हैं।''....वीर-सतसई में नए भाव नहीं हैं।'' आ. शुक्ल ने उनके साहित्य पर चुभते हुए विचार व्यक्त किए हैं जो ठीक हैं, ''श्री वियोगीहरि व्रजभूमि, व्रजभाषा और व्रजपति के अनन्य उपासक हैं। ऐसे प्रेमी रसिक जीव इस रूखे ज़माने में कम दिखाई पड़ते हैं। इन्होंने अधिकतर पुराने कृष्णभक्त कवियों की पद्धति पर बहुत-से रसीले तथा भक्तिभावपूर्ण पदों की रचना की है जिन्हें सुनकर आजकल के रसिक भक्त भी 'बलिहारी है!' बिना कहे नहीं रह सकते। इनकी इस प्रकार की रचनाएँ 'प्रेमशतक', 'प्रेमपथिक'[4], 'प्रेमांजलि' आदि में मिलेंगी। छतरपुर से प्रयाग आने पर राजनीतिक आन्दोलनों की भी कुछ हवा इन्हें लगी थी और इन्होंने 'चरखे की गूँज', 'चरखास्तोत्र', 'असहयोग वीणा' ऐसी कुछ रचनाएँ भी की थीं, पर उनमें इनकी स्थायी मनोवृत्ति न थी। यह अवश्य है कि देश के लिए त्याग करने वाले वीरों के प्रति इनके मन में अपार श्रद्धा है। वियोगीहरि जी ने

---

[1] हरप्रसाद? 'विनोद' में यही लिखा है। मैंने अन्यत्र भी यही देखा था। किन्तु प्रायः हरिप्रसाद लिखा मिलता है जो 'वियोगीहरि' के अनुरूप भी है।

[2] 'विनोद' में 'लगभग' की अटकल के साथ जन्मसंवत् 1950 (1893 ई.) लिखा है।

[3] मासिक 'जीवन साहित्य' (सं. यशपाल जैन), जून, 1988, पृष्ठ 208

[4] प्रसाद कृत कल्पनाधृत साधारण खंडकाव्य 'प्रेमपथिक' प्रसिद्ध है, यह नहीं।

'वीर-सतसई' नामक एक बड़ा काव्य दोहों में लिखा है, जिसमें भारत के प्रसिद्ध वीरों की प्रशस्तियाँ हैं।'' व्रज एवं खड़ीबोली के काव्योदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. पावस ही में धनुष अब, नदी तीर ही तीर। रोदन ही में लाल दृग, नवरस ही में वीर।।
जोरि नावँ सँग 'सिंह' पद करत सिंह बदनाम। ह्वैहौ कैसे सिंह तुम करि सृंगाल के काम।
या तेरी तरवार में नहिं कायर अब आब। दिल हू तेरो बुझि गयो वामें नेक न ताब।।

2. मात नहीं तेरा तात नहीं औ भ्रात नहीं कोई सगा यहाँ,
जाग मुसाफ़िर[1], ग़ाफिल क्यों रे! धन-दौलत में पगा यहाँ।
बँधा है आशा की डोरी से, फिकर का मारा घूम रहा,
जाग मुसाफ़िर, काल बली तेरे सीस पै कैसा नाच रहा।
काम, क्रोध, मद, लोभ लुटेरे ज्ञान ख़ज़ाना लूट रहे,
जाग मुसाफ़िर, सुमिर प्रभू को, प्राण तेंर अब छूट रहे।
जन्म दुःख औ जरा दुःख है, मरण दुःख[2], फिर चौरासी,
जाग मुसाफ़िर, सुमिर प्रभू को जो सत, चित, आनंद रासी।[3]

सुदर्शन[4]

'हार की जीत' जैसी महान् तथा 'कवि की स्त्री', 'अँधेरी दुनिया' जैसी श्रेष्ठ कहानियों के रचयिता सुदर्शन (पं. बदरीनाथ) का जन्म 1896 ई. में हुआ था। बालमुकुन्द गुप्त एवं प्रेमचन्द के सदृश वे उर्दू से हिन्दी में आए। जिन पंजाबियों ने हिन्दी-साहित्य को सम्पन्न किया है उनमें सुदर्शन का स्थान पर्याप्त उच्च है। अन्य पंजाबी कहानीकारों में साम्यवादी यशपाल, हरफ़नमौला उपेन्द्रनाथ 'अश्क़', और महीपसिंह उल्लेखनीय हैं। उन्होंने जीवन में बड़े संघर्ष किए; उनके पुत्र कुलभूषण के अनुसार कुली का काम तक किया। वे आर्यसमाजी थे। 'तीर्थयात्रा', 'पनघट', 'अँगूठी का मुकदमा', 'नगीने' इत्यादि अनेक कहानीसंग्रहों के अतिरिक्त, सुदर्शन ने 'ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट' शीर्षक सुन्दर प्रहसन भी लिखा। 'अंजना' शीर्षक नाटक एवं 'चन्द्रगुप्त' शीर्षक एकांकी में वे विशेष सफल नहीं हो पाए, क्योंकि पुराण एवं इतिहास उनके क्षेत्र न थे। यद्यपि उन्होंने 'भागवती' शीर्षक उपन्यास तथा अनेक बालसाहित्यग्रन्थ भी लिखे, तथापि वे मुख्यतः कहानीकार ही थे। वे चलचित्र-जगत्[5] में भी गए। सुदर्शन को पंजाब के हिन्दी-साहित्यकारों, उर्दू से आए हिन्दी-साहित्यकारों, कहानीकारों, उपन्यासकारों, नाट्यकारों, प्रहसनकारों, एकांकीकारों, बालसाहित्यकारों तथा चलचित्र-पटकथाकारों में बहुविध महत्त्व प्राप्त है।

सुदर्शन पर प्रेमचन्द का बहुत प्रभाव पड़ा है। 'हार की जीत' का आदर्शवाद, उसकी भाषा-शैली, सारा-कुछ प्रेमचन्द का स्मरण कराता है, यद्यपि कहानी मौलिक है। कथानक की रोचकता, संवादों की जीवन्तता, नाटकीयता, प्रभाव, प्रेरणा इत्यादि तत्त्वों की दृष्टि

---

[1] स्वामी सत्यदेव परिव्राजक कृत प्रसिद्ध 'उठ जाग मुसाफिर भोर भई' गीत से प्रेरित, जो गाँधी को प्रिय था।

[2] बुद्ध का प्रभाव। बुद्ध दुःखवादी थे। पर वे नास्तिक थे—न आत्मा मानते थे, न परमात्मा।

[3] स्व. आचार्य तुलसी (तेरापन्थी जैनों के युगप्रधान) के भजन भी इसी प्रकार के हैं।

[4] सुदर्शनसिंह 'चक्र' एवं सुदर्शन 'चक्र' का स्मरण आता है। सुदर्शनसिंह 'चक्र' ने प्रख्यात मासिक 'कल्याण' में धार्मिक विषयों पर बुहत लिखा था। सुदर्शन 'चक्र' कट्टर साम्यवादी कवि हैं। कवि एवं बालसाहित्यकार चक्रधर 'नलिन' एवं हास्यकवि अशोक 'चक्रधर' का स्मरण भी आ जाता है।

[5] सम्प्रति चलचित्र-जगत् घटिया-मनोरंजन का प्रतीक माना जाता है किन्तु इसका समारम्भ भारतीय चलचित्र के उन पुराण-पुरुष ढुंडिराज गोविन्द फाल्के (दादा साहब फाल्के जिनके नाम पर मुम्बई में प्रसिद्ध मार्ग है तथा दिल्ली में भारत का सर्वश्रेष्ठ चलचित्र-पुरस्कार प्रदान किया जाता है—जन्म 30 अप्रैल, 1870, त्रिम्बक, नासिक, निधन 16 फरवरी, 1933, काशी) ने किया था, जिनके 'हरिश्चन्द्र' (भारत का प्रथम मूक-चलचित्र, 1912 ई.), 'भस्मासुर-मोहिनी', 'सावित्री', 'लंकादहन' (अन्तिम—1917 ई.) जैसे तेइस चलचित्र (अवाक्—'मूवीज़' सवाक् या 'टॉकीज़' नहीं क्योंकि इसका आरम्भ 1931 ई. में 'आलमआरा' के साथ हुआ) मूल्यों पर आधृत थे। प्रेमचन्द, सुदर्शन, भगवतीचरण वर्मा, पं. मुखराम शर्मा, कमलेश्वर इत्यादि से अच्छे कथानक प्रस्तुत किए। प्रदीप, नरेन्द्र शर्मा, गोपालसिंह नेपाली, भवानीप्रसाद मिश्र, भरत व्यास, नीरज इत्यादि ने अच्छे गीत लिखे। किन्तु चलचित्र-जगत् का रंग-ढंग आरम्भ से ही नाम-दाम-काम में बँध गया लगता है क्योंकि दादा साहब फाल्के 1919 ई. से ही काशीवास करने लगे थे तथा प्रेमचन्द अपनी काशी में लौट आए थे। वृन्दावन लाल वर्मा का मन तो आते ही उचट गया था।

से 'हार की जीत' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में एक है। सुदर्शन ने वस्तुप्रधान कहानियाँ तो लिखी ही हैं, चरितप्रधान कहानियों में भी सफलता प्राप्त की है। उन्होंने शैली-प्रयोग में भी विविधता का प्रयोग किया है। यह सत्य है कि 'प्रस्थान' के अभाव एवं अधिकांश कहानियों के साधारण होने के कारण सुदर्शन प्रेमचन्द और प्रसाद, कौशिक और जैनेन्द्र, यशपाल और उग्र प्रभृति के स्तर के कहानीकार नहीं हैं, किन्तु प्रवाह, औत्सुक्य एवं शिल्प की सम्पन्नता में वे अज्ञेय और निर्मल वर्मा प्रभृति व्यक्तिवादी एवं राजेन्द्र यादव और कमलेश्वर प्रभृति साम्यवादी कहानीकारों से कम भी नहीं हैं। अधिकांश कहानियाँ तो प्रेमचन्द और प्रसाद तक की साधारण ही हैं। हिन्दी-कहानी के इतिहास में सुदर्शन को एक निश्चित स्थान प्राप्त है। उनकी कहानियाँ यशपाल और कमलेश्वर प्रभृति साम्यवादी कहानीकारों की कहानियों के बोझीलेपन से मुक्त हैं। वे न भद्दे हैं, न बोरू। उनमें प्रेमचन्द का प्रवाह और उनकी रोचकता दोनों विद्यमान हैं। वैसे तो उन्होंने 'टाइप' भी उठाया है, तथापि अधिकतर उनका 'कैनवास' व्यापक समाज है। वे गंगाप्रसाद मिश्र का हृदयविदारक समाज-चित्रण नहीं कर पाते, किन्तु रोचक अधिक हैं। कथानकभीरुता उनमें कहीं नहीं है, किन्तु चरित्रचित्रण में भी वे असफल नहीं है। जहाँ कहीं वे नाटकीयता का प्रयोग करते हैं वहाँ पाठक का मन मोह लेते हैं। उनका युग शिल्पविपन्न तो न था, किन्तु शिल्प पर कहानी को वरीयता अवश्य प्रदान करता था। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ सबको आकर्षक लगती हैं, 'विशेषज्ञों' मात्र को नहीं।

'कैरव'

'आगे बढ़ो', 'पश्चाताप' (उपन्यास) इत्यादि के प्रणेता ग्राम सनौर, जनपद गोड्डा (बिहार) निवासी कवि बुद्धिनाथ 'कैरव' (18 नवम्बर, 1896—30 अक्टूबर, 1970) की 1910-20 ई. की तथा अन्य रचनाओं से वे परवर्ती स्वच्छन्दतावादी युग के अग्रदूतों में एक माने जा सकते हैं। ''स्वच्छन्दतावादी युग की कविता आदर्शवादी युग की कविता का सहज एवं प्रसन्न विकास है''—मेरे इस पुराने सूत्र के एक प्रमाण 'कैरव' भी हैं। वैसे, स्वयं मैथिलीशरण एवं उनके अनुज सियारामशरण हों या लोचनप्रसाद पाण्डेय एवं उनके अनुज मुकुटधर पाण्डेय या श्रीधर पाठक एवं रामनरेश या मुंशी अजमेरी या गोपालशरण सिंह, सबकी कविता पूर्णतः या अंशतः यह सिद्ध करती है कि स्वच्छन्दतावादी कविता प्रशान्त एवं विकासमान कविता थी तथा उसे प्रतिक्रिया का प्रतिफलन या प्रस्फोट बताना उसकी अस्मिता का अपमान करना है। 'कैरव' ने रहस्य एवं दर्शन से लेकर देश एवं खादी तक अनेक विषयों पर लिखा है। उनकी भाषा में सफ़ाई भी है, रवानी भी। उदाहरण प्रस्तुत है :

कामना

बिहँस उठें चुंबन से कलियाँ, ऐसा सुखद समीर बनूँ, विश्व-वाटिका को नहलाऊँ, जीवनदायक नीर बनूँ।
सो न बनूँ तो पृथिवी[1] रज वा विस्तृत नभ का तीर बनूँ, कुछ न सही तो ज्वलित आग की प्रबल लपट बेपीर बनूँ।
किसी भाँति इस बंधन से हो करके पार वहाँ जाऊँ, जीवन के संवरण-बहाने चिर-जीवन को मैं पाऊँ।

तब और अब

'नवीन' ने 'पराजय-गीत' अहिंसक असहयोग-आन्दोलन की विफलता पर लिखा, ऐसा प्रसिद्ध है; 'अज्ञेय' ने 'पराजय-गान' हिंस्र क्रान्ति की विफलता पर लिखा, जिसके वे स्वयं एक अंग थे; 'कैरव' की 'तब और अब' (6 जनवरी, 1941 को हज़ारीबाग़ जेल में लिखित) कविता इसी शृंखला की एक कड़ी है जिसके 20 में से 4 छन्द प्रस्तुत हैं जिनकी निष्ठा सर्वथा सराहनीय है। ('स्वातन्त्र्य-संग्राम का पराजय-पक्ष' महानिबन्ध अथवा लघुप्रबन्ध का अच्छा विषय है क्योंकि रामप्रसाद 'बिस्मिल' इत्यादि ने भी पराजय-गान गाए हैं) :

वह भी था दिन जब स्वदेश हित उर में निश्छल प्यार उठा था
सोये जीवन के सागर में सहसा चंचल ज्वार उठा था।
बदला था रँग आसमान का समाँ बँधा था वह तूफ़ानी
युग-युग के कुचले यौवन पर चढ़ा जोश का जब था पानी।

---

[1] प्रचलित 'पृथ्वी' के स्थान परर शुद्ध 'पृथिवी' लिखा है। राजा पृथु से सम्बद्ध 'पृथिवी' ही ठीक है।

झोंका प्रबल उठा था जिसमें सबने अपना होश सँभाला बीहड़ पथ पर हँस चलने का जगा एक उन्माद निराला।
नयी-नयी मस्ती थी, पथ में कभी न आती थी हैरानी देख हमारे पागलपन को हँसती थी दुनियाँ की बानी।
अब न यातना और कष्ट को सहने का उल्लास बचा है किसी भाँति संघर्ष मिटे बस यही एक विश्वास बचा है।
थके हुए आधे ही पथ पर अपनी हिम्मत हार चुके हैं। आज शहादत का वह बाना तन से सभी उतार चुके हैं।
अभी विजय है दूर हमारी सेना पर तैयार नहीं है पाँव मिलाकर आगे बढ़ना हमको अब स्वीकार नहीं है।
ऐसी दशा देख सेनापति हीन मृत्यु का रास रचावे। रक्षक हो भगवान वही अब आकर हमको आज बचावे।

'झा' शब्द का अर्थ है, उपाध्याय या अध्यापक। उप = निकट + अध्ययन कि जाए जिसके वह व्यक्ति। उपाध्याय से उपज्झाओ, उपज्झाओ से उपज्झा, उपज्झा से झा। बंगाल के चट्टोपाध्याय (चटर्जी), बंद्योपाध्याय (बनर्जी), मुखोपाध्याय (मुखर्जी), गंगोपाध्याय (गांगुली) इत्यादि, बिहार के झा तथा उत्तरप्रदेश से असम और नेपाल तक के उपाध्याय सब तत्त्वतः एक हैं। 'कैरवजी' अध्यापक, समाजसेवक, स्वातन्त्र्यसेनानी[1], नेता प्रभृति अनेक रूपों में पर्याप्त सफल रहे। 'खादीलहरी', 'उत्सर्ग', 'हीरा', 'अछूत' तथा 'लवणलीला' (नाटक) से 'साहित्य-साधना की पृष्ठभूमि' तक विविध विधाओं में वे तपोज्वल ही दीखते हैं।

किशोरीदास वाजपेयी

'हिन्दी-शब्दानुशासन', 'व्रजभाषा का व्याकरण' एवं 'अच्छी हिन्दी' के शीर्षस्थ व्याकरणाचार्य (हिन्दी के पाणिनि), 'आचार्य द्विवेदी और उनके साथी-संगी' एवं 'साहित्य-जीवन के अनुभव और संस्मरण' के स्मरणीय संस्मरणकार, 'सुभाषचन्द्र बोस' के जाने-माने जीवनीकार, 'साहित्य-मीमांसा', 'साहित्य-निर्माण', 'रस और अलंकार' एवं 'काव्य और काव्यशास्त्र' के स्तरीय काव्यशास्त्री, 'भारतीय भाषाविज्ञान' के मौलिक भाषावैज्ञानिक, 'संस्कृति के पाँच अध्याय'[2] के गहन संस्कृति-चिन्तक, व्रजभाषा और खड़ीबोली के कवि आ. किशोरीदास वाजपेयी (1898-1985 ई.)[3] की मिश्रबन्धु के अतिरिक्त सारे साहित्येतिहासकारों एवं साहित्यकोशकारों ने उपेक्षा की है। आश्चर्य तो यह है कि यह उपेक्षा विकास-ह्रास के विचित्र क्रम से हुई है: मिश्रबन्धु के 'विनोद' में सादर-सोदाहरण उल्लेख, तो शुक्ल के 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में ''कंप्लीट ब्लैक-ऑउट''; डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में जन्म-मृत्यु-उल्लेखहीन 13 पंक्तीय ग्रन्थ-नामावली, तो डॉ. नगेन्द्र इत्यादि द्वारा सम्पादित 'भारतीय साहित्य कोश' में केवल 8 पंक्तीय लीपापोती! दूसरी ओर, एक सम्मान-समारोह में वे उठकर खड़े तो हुए किन्तु मंच पर नहीं चढ़े तो प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई[4] स्वयं उतरकर नीचे आए तथा डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' ने 'आचार्य किशोरीदास वाजपेयी : व्यक्तित्व और कृतित्व' तथा आ. विश्वनाथप्रसाद मिश्र एवं डॉ. विष्णुदत्त 'राकेश' ने 'आचार्य किशोरीदास वाजपेयी और हिन्दी-शब्दशास्त्र' सम्पादित किया है। किशोरीदास वाजपेयी गद्य के निराला थे। जैसे गाँधी को ''हिन्दी में कोई रवीन्द्र नहीं'' कहने पर निराला ने ललकारा और झुकाया था, वैसे ही सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या को ''हिन्दी व्याकरणहीन भाषा है'' कहने पर वाजपेयी ने। उन पर ''बाजपेयी बाज सम'' कथन पूरी तरह लागू होता है। [काफ़ी-कुछ नन्ददुलारे वाजपेयी पर भी सम्पादकाचार्य अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी एवं नेता-कवि अटलबिहारी वाजपेयी (क़ैदी कविराय) में 'वह बात' कहाँ]!

---

1. विश्व में स्वाधीन होकर विचरते हैं जब सभी मुँह दिखाऊँ मैं भला क्या दासता का दाग़ लेकर।
बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तथा मणिबेन पटेल से सुभाषचन्द्र बोस (बसु) तक बहुतों में परतन्त्रता में विवाह करके परतन्त्र-सन्तति उत्पन्न न करने के प्रण भी किए थे, जिनमें नवीन ने स्वतन्त्र भारत में ''वृद्धस्य तरुणी विषम्'' को चरितार्थ किया, मणिबेन ने ''ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया'' गौरव प्राप्त किया, किन्तु सुभाष प्रणनिर्वाह न कर सके तथा पोलैण्ड में ''देखहु काम प्रताप बड़ाई'' के निदर्शन बन गए। गाँधी का ''पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा'' का प्रण भी भंग हो गया। राम (द्विर्नाभिमाषते) या देवव्रत (भीष्म) होना बहुत ही अधिक कठिन होता है। 'कैरव' जी ने कोई प्रण नहीं किया, कवेल ग्लानि व्यक्त की।
2. दिनकर के नेहरूवादी (या 'डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया' की तर्ज़ पर) 'संस्कृति के चार अध्याय' के जवाब में! दिनकर ने उन्हें 'साहित्य का लोहिया' कहा था!
3. बृहत् सूक्ति कोश (1985 ई., सं. डॉ. श्यामसुन्दर वर्मा एवं मधु वर्मा) खण्ड 3 में मृत्युवर्ष 1981 लिखा है, जो ग़लत है।
4. मोरारजीभाई रणछोड़भाई देसाई। एक इतिहास-पुरुष। सच्चे भारतरत्नों में एक।

आ. किशोरीदास वाजपेयी का जन्म कानपुर जनपद में मंधना क़स्बे के निकट ग्रैंड ट्रंक रोड (शाही सड़क) पर स्थित रामनगर नामक ग्राम में हुआ था (बालसाहित्यकार डॉ. राष्ट्रबन्धु भी रामनगर में जन्मे), किन्तु वे कनखल[1] (हरिद्वार या हरद्वार[2]) के ही माने जाएँगे जहाँ उनके निधन पर लगभग सारी जनता ही शवयात्रा में सम्मिलित होने को उमड़ पड़ी थी। वे आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी को अपना गुरु मानते थे, जिनसे सम्बद्ध उनका संस्मरण-ग्रन्थ सर्वथा अमूल्य है—वैसे भी, वार्ता हो या लेखन, वे आ. द्विवेदी का उल्लेख प्रायशः किया करते थे।

आ. किशोरीदास वाजपेयी की भाषा न कठिन है, न कृत्रिम (जैसी कि उन जैसे धुरन्धर व्याकरणाचार्य की हो सकती थी) और शैली भी साफ़-सपाट है। वे लोग बात कहते हैं। यदि उनका अगाध पांडित्य व्याकरण, भाषाविज्ञान, काव्यशास्त्र एवं संस्कृति पर रचित ग्रन्थों में विवृत हुआ है, तो स्वस्थ-स्वच्छ व्यक्तित्व संस्मरणों एवं जीवनी में। काव्य में वे कानपुर जनपद (तिकवाँपुर) में ही जन्मे वीररस-सम्राट् भूषण के सदृश वीररस को ही रसराज मानते हैं। काव्यशास्त्र-ग्रन्थ में वे उदाहरण अपने ही देते हैं। वे साहित्य में उच्चादर्श के प्रतिपादक थे। मिश्रबन्धु के शब्दों में, ''वे स्वतन्त्र प्रकृति के सुयोग्य सज्जन एवं सच्चे साहित्यसेवी सखा हैं।'' 'विनोद' से ही व्रजभाषा एवं खड़ीबोली के दो काव्योदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. सुन रे कपूर! मदचूर! इक सीख मेरी, एतो अभिमान करि नीच! नसि जाइगो।
रूप में न रंग में, बिलोकि घिन होय मन, कोढ़िया सफ़ेद तू अछूत बनि जाइगो।।
क्षुद्र कीट मारिबे में शक्ति है प्रसिद्ध तेरी, नेकु तौ पसीज, सींक लाए जरि जाइगो।
और की चलावै कौन, मैं ही जो न संग होऊँ, पल में न जानै कौन देस उड़ि जाइगो।।[3]

2. जहाँ न हित उपदेश शुचि, सो कैसा साहित्य।
हो प्रकाश से रहित तो कौन कहे आदित्य।।[4]

महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति'

केवल सत्रह वर्ष के जीवन में 'प्रह्लाद' (खंडकाव्य) एवं 'प्रेमांजलि' जैसे कई काव्यपंथ ही नहीं प्रत्युत 'बिहार का इतिहास' (अपरिसमाप्त) रचनेवाले महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति' (1903-20 ई.[5], असरगंज, बिहार) हिन्दी के चैटर्टन[6] हैं। राष्ट्रभक्ति एवं राष्ट्रभाषाभक्ति से ओतप्रोत उनकी कविता नितान्त प्रणम्य है। सचमुच, वे वाणी की 'विभूति'[7] थे! मैट्रिक में सर्वोत्तम परीक्षाफल प्राप्त करने से दो सप्ताह पूर्व ही वे चल बसे! ऐसा लगता है, उन्होंने आवश्यकता से बहुत अधिक कार्य किया। उन्होंने जीवन को बेहद तेज़ बहाया, जिससे वह चुक गया। वीरबाला नामक एक ऐसी ही बाल-कवयित्री भी हुई हैं, जिस पर नई दिल्ली के त्रैमासिक 'श्रेय' (सं. डॉ. मोहनलाल श्रीवास्तव जो भारतीय साहित्यकार संघ के संयोजक के रूप में अनेक विशाल आयोजनों के कारण बने) ने 'वीरबाला-विशेषांक' निकाला था। किन्तु विभूति का व्यक्तित्व-कृतित्व विशेष उल्लेखनीय है। उदाहरण देखें :

1. स्वदेश
हे हे प्रियतम स्वदेश!
लोकविदित वंद्य-देश!
वीर देश, आदि सभ्य, विश्व-ज्ञानदाता!
महिमा तव अति अपार,
पावें कविगण न पार,

---

[1] कालिदास ने 'मेघदूतम्' में कनखल का उल्लेख किया है। पुराणों में भी है।

[2] वदरीनाथ या बदरीनारायण (विष्णु या हरि) के पथ पर होने के कारण हरिद्वार, केदारनाथ (शिव या हर) के पथ पर होने के कारण हरद्वार तथा गंगोत्री के पथ पर होने के कारण गंगाद्वार (महाभारत में)। ''अयोध्या मथुरा माया....'' सप्तपुरियों में मायापुर भी हरिद्वार में ही है। कनखल भी।

[3] अन्योक्ति।

[4] आ. द्विवेदी, राष्ट्रकवि गुप्त एवं कविवर 'पूर्ण' का प्रभाव।

[5] समनामी महान् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी औपचारिकतः ठीक इसी अवधि में 'सरस्वती' के नवयुग-निर्माता सम्पादक रहे (वस्तुतः 1903-18 ई.)

[6] अंग्रेज़ी रोमैंटिक कविता का अग्रदूत चैटर्टन अठारह वर्ष जिया था।

[7] हिन्दीप्रेमी सांसद विभूति मिश्र का स्मरण आता है, जो बिहार के ही थे।

सृष्टि-द्वार, सुषमा-घर, आरत-जन-त्राता!
स्वामि! यह 'विभूति' दास
रहते तुम क्यों उदास?
व्यर्थ, त्रास, निर्भय हो स्वर्गलोक-भ्राता!

2. जीवनोद्देश्य

यह दुर्लभ नर-देह व्यर्थ में हमें न खोना,
मर्त्यलोक में बीज अमरता का है बोना।
सुख में हँसता नहीं, न है दुख में कुछ रोना,
रहे हमारे साथ सदा वह श्याम सलोना।
अपने हित करना नहीं हमको कुछ अब रोष है,
करना सुखी स्वदेश को जीवन का उद्देश्य है।
जैसे हो प्रण प्राण-संग निर्वाह करेंगे,
कभी विघ्न-भय की न तनिक परवाह करेंगे।
नर को पूछे कौन, काल से भी न डरेंगे,
जनमे जिसके लिए उसी के लिए मरेंगे।
भूले-भटकों के लिए यह 'विभूति' संदेश है,
करना सुखी स्वदेश को जीवन का उद्देश्य है।

3. जैसे हो भरना हमें निज भाषा भंडार।
एकमात्र बस है यही देशोन्नति का द्वार।।

4. जाता हूँ मैं स्वर्ग को देकर यह संदेश।
गाकर मेरे गीत को करना सुखी स्वदेश।।

❒

स्वच्छंदतावादी युग
(1920-40 ई.)

स्वच्छंदतावादी कविता	वादयुक्त स्वच्छन्द कविता	गद्यगीत	कहानी	रेखचित्र	नाटक	निबन्ध	उपन्यास	आलोचना
प्रसाद निराला पन्त महादेवी इत्यादि।	माखनलाल चतुर्वेदी बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' सुभद्राकुमारी चौहान इत्यादि।	राय कृष्णदास चतुरसेन शास्त्री माखनलाल चतुर्वेदी वियोगीहरि इत्यादि।	प्रसाद राय कृष्णदास चंडीप्रसाद 'हृदयेश' वाचस्पति पाठक इत्यादि	महोदवी कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' इत्यादि।	प्रसाद	रघुवीर सिंह	'चित्रलेखा'-कार भगवतीचरण वर्मा	नन्ददुलारे वाजपेयी (बौद्धिक-प्रस्थान) शान्तिप्रिय द्विवेदी नगेन्द्र इत्यादि।
प्रवृत्तियाँः कल्पनाप्रवणता प्रतीकवाद रहस्यवाद, नव्य प्रकृति-संवेदन भव्य नारी-संवेदन राष्ट्रकाव्य-सृजन ललित खड़ीबोली अपूर्व शिल्प नव्य-विशद छन्दविधान, अतुकान्त कविता, छन्दमुक्त कविता।	प्रवृत्तियाँः ख़ालिस मस्ती राष्ट्रकाव्य-प्राधान्य सरला भाषा सहज शैली।	प्रवृत्तियाँः गहन आस्था समर्पण-वृत्ति तन्मयता ललित भाषा प्रशस्य प्रवाह।	प्रवृत्तियाँः भावप्रवणता अन्तर्द्वन्द्व-चित्रण काव्यात्मक भाषा।	प्रवृत्तियाँः भावप्रवणता विशद संवेदन ललित भाषा।	प्रवृत्तियाँः रसवाद एवं स्वच्छन्दतावाद का समन्वय, प्राच्य-पाश्चात्य नाट्य शैलियों का समन्वय, भावुकता, राष्ट्रवाद, काव्यात्मक भाषा।	प्रवृत्तियाँः कल्पनाप्रवणता अतिभावुकता काव्यात्मक भाषा।	प्रवृत्तियाँः कल्पनाप्रवणता रोमानी आदर्श ललित भाषा।	प्रवृत्तियाँः स्वच्छन्दतावाद एवं अभिव्यंजनावाद का विवेचन, मनोविश्लेषणवाद प्रभाववाद तर्करहित प्रशस्ति, प्रायः ललित भाषा-शैली।

आकलन : एक महान् काव्यप्रधान युग, यद्यपि अन्य विधाओं में भी उल्लेख्य सृजन हुआ।
व्रजभाषा, अवधी प्रभृति विभाषाओं में भी स्मरणीय सृजन हुआ।

स्वच्छन्दतावादी युग

(1920-40 ई.)

प्रस्तावना

कवि प्रकृत्या स्वच्छन्द होता है (निरंकुशाः कवयः)। अतएव, स्वच्छन्दता काव्य की एक सहज प्रवृत्ति है। प्रत्येक श्रेष्ठ कवि में स्वच्छन्दता के बिन्दु प्राप्त हो जाते हैं। कालिदास रवीन्द्र से बड़े स्वच्छन्दतावादी भी हैं, शेक्सपियर कीट्स से बड़े स्वच्छन्दतावादी भी हैं। हिन्दी-कविता में विद्यापति पहले स्वच्छन्दतावादी हैं। दिनकर[1] ने हिन्दी-स्वच्छन्दतावाद के मूल में घनआनन्द को प्रतिष्ठित किया है किन्तु आलम उनसे भी पहले हुए थे। स्वयं मुकुटधर पांडेय ने छायावादी कविता के मूल में भारतेन्दु को प्रतिष्ठित किया है। भारतेन्दु, जगमोहनसिंह इत्यादि स्वच्छन्दतावादी भी थे। मूलतः भेदवादी एवं प्रकृत्या स्वच्छन्दतावाद-विरोधी आ. शुक्ल तक 'छायावाद' (स्वच्छन्दतावाद) के मूल में श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी एवं मुकुटधर पांडेय के नाम लेते हैं, मैथिलीशरण गुप्त तक का उल्लेख कर देते हैं; किन्तु साथ ही अपने पाश्चात्य साहित्य के ज्ञान को विवृत करते हुए पश्चिम, विशेषतः फ्रांस के रहस्यवादियों का विवेचन करना भी नहीं भूलते, जबकि तथ्य यह है कि हिन्दी-स्वच्छन्दतावाद या छायावाद मूलतः अस्मितापूर्ण है, यद्यपि उस पर रवीन्द्र का प्रभाव अवश्य पड़ा है, जिन्होंने 'संध्यागीत' में ''सब कुछ मेरा धुवाँ-धुवाँ-सा छाया-छाया-सा होता है'' लिखा था। आ. क्षेमचन्द्र 'सुमन'[2] ने 'छायावाद' के मूल में स्व. मुकुटधर पांडेय को प्रतिष्ठित किया है। वास्तव में, स्वच्छन्दतावादी कविता विद्यापति, सूर, आलम, घनआनन्द, द्विजदेव, भारतेन्दु, जगमोहनसिंह, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी इत्यादि में अंश-रूपों से होती हुई प्रसाद, निराला, पन्त तथा मुकुटधर पांडेय, रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा इत्यादि में ऐसे रूप में व्यक्त हुई, जिसमें प्राच्य-पाश्चात्य प्रभावों का सहज समावेश भी दृग्गत होता है; तथा जिसके रहस्यवादी सृजन-भाग का उद्गम उपनिषद्, विद्यापति, कबीर, नानक, सूर, देव इत्यादि से संपृक्त है, यद्यपि इसमें भी प्राच्य-पाश्चात्य प्रभावों का समावेश हुआ है। छायावाद-रहस्यवाद को एक मानने का आग्रह ग़लत था, जिसे स्वयं प्रसाद ने स्वीकार किया है। मुकुटधर पांडेय भी दोनों में अन्तर मानते हैं।[3] डॉ. गुलाबराय एवं डॉ. नगेन्द्र इत्यादि ने, सम्भवतः प्रसाद एवं मुकुटधर पांडेय की प्रेरणा से ही, छायावाद एवं रहस्यवाद को एक नहीं माना। महादेवी छायावाद-रहस्यवाद की एकता के बिन्दु पर विचलित नहीं हुई। किन्तु सम्प्रति प्रायः सभी छायावाद-रहस्यवाद को अभिन्न नहीं मानते। कविता में जब छाया या प्रतीक का यथासम्भव-अधिकतम समावेश किया गया तब वह छायावादी कही गई। जहाँ छाया या प्रतीक आत्मा-परमात्मा से संपृक्त हुए वहाँ कविता रहस्यवादी हो गई। किन्तु छाया या प्रतीक का लोक अत्यन्त व्यापक रहा, आत्मा-परमात्मा से भिन्न आयामों तक प्रसरित हुआ। छायावाद एक व्यापक सृजनलोक का सूचक है, रहस्यवाद उसके एक प्रमुख अंग का। न तो सारी कविता छाया या प्रतीक में बद्ध हो सकती है, न रहस्य से संपृक्त, अतः छायावाद-युग या छायावाद-रहस्यवाद-युग नाम संकीर्ण है; स्वच्छन्दतावादी युग नाम व्यापक है, जिसमें छायावाद-रहस्यवाद दोनों ही समाहित हो जाते हैं तथा अन्य आयाम भी दूर नहीं रहते। छायावाद के 'प्रस्थान'-आलोचक एवं मूर्द्धन्य विवेचक आ. नन्ददुलारे वाजपेयी[4] ने इसीलिए स्वच्छन्दतावाद शब्द का व्यापक प्रयोग किया है।

---

[1] 'चक्रवाल' की स्फीत भूमिका, 'पन्त, प्रसाद मैथिलीशरण' ग्रन्थ।

[2] 'दिवंगत हिन्दी-सेवी'।

[3] 'हिन्दी में छायावाद' : ''मेरी समझ में नई शैली के भाव नहीं, भावों की छाया पाई जाती थी जिन्हें पढ़कर हृदयंगम करने में पाठकों को कठिनाई होती थी। छायावादिता से ही मैंने 'छायावाद' शब्द बनाया था, पर यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि 'मिस्टिसिज़्म के लिए 'छायावाद' का प्रयोग बंगला में नहीं किया जाता था। कदाचित् अब भी नहीं किया जाता। 'छायावाद' से अभिप्राय की विषयवस्तु से कहीं अधिक अभिव्यक्ति की प्रणाली से था।'' (1920 ई. में 'श्रीशारदा' में प्रकाशित 'हिन्दी में छायावाद' लेखमाला, जो आ. क्षेमचन्द्र 'सुमन' की भूमिका के साथ पुस्तक-रूप में उपलब्ध है। देखें 'एक सुमन बगिया महकाता' (सं. स्व. आनन्दीप्रसाद माथुर) में डॉ. कार्तिकेय शुक्ल की 'इतिहासकार सुमनजी' निबन्ध)।

[4] नया साहित्यः नए आयाम।

छायावाद नहीं प्रत्युत स्वच्छन्दतावाद

स्वच्छन्दतावाद के प्रधान तत्त्व हैं कल्पना, प्रेम, सौन्दर्य, शौर्य, रहस्य एवं एक तलस्पर्शी निराशा-भाव जो 'इस पार' से असन्तुष्ट होकर 'उस पार' की स्पृहा करता है तथा इस कारण से उस पर पलायनवाद का आरोप तक लगाया जाता है। 'द रोमैंटिक इमैजिनेशन' शीर्षक प्रख्यात ग्रन्थ में सर मॉरिस बॉवरा ने कल्पना को स्वच्छन्दतावाद (रोमैन्टिसिज़्म[1]) का आधार-भूत तत्त्व स्वीकार किया है। आदर्शवादी युग के रामनरेश त्रिपाठी इत्यादि ने कल्पना पर आधृत 'पथिक', 'स्वप्न' जैसे खंडकाव्य तक रचे थे, किन्तु इस कल्पना का आधार पृथिवी थी, राष्ट्रवाद था, सेवावाद था, कर्मवाद था। वर्ड्स्वर्थ, शेली (शेले), कीट्स, पो, हाइने, पुश्किन प्रभृति पाश्चात्य कवियों की प्रेरणा से रवीन्द्र ने कल्पना का एक वैश्विक रूप विकसित किया। 1913 ई. में 'गीतांजलि' (अंग्रेज़ी) पर नोबेल-प्राइज़ मिलने से रवीन्द्र को विश्व-ख्याति प्राप्त हुई और वे भारतीय साहित्य पर छा गए। आदर्शवादी युग के कवियों में मैथिलीशरण ('भारत-भारती'), रामनरेश त्रिपाठी ('पथिक' इत्यादि में) प्रभृति तक पर रवीन्द्र का प्रभाव पड़ा, यद्यपि वे युगसम्राट् आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पृथिवीवाद से विशेष संपृक्त रहे। प्रसाद, निराला, पन्त, मुकुटधर पांडेय, महादेवी इत्यादि पर रवीन्द्र का प्रभाव कहीं अधिक पड़ा। रवीन्द्र का 'गुरुदेव' रूप रहस्य से ओतप्रोत हो चुका था। अतः उत्साह में आकर सारी प्रतीकवादी या छायावादी कविता रहस्यवादी कही गई। 'छायावाद' शब्द के व्यवस्थित प्रचार का श्रेय स्व. मुकुटधर पांडेय[2] को प्रदान किया जाना चाहिए। किन्तु 'उस पार' की कृत्रिम ललक, 'इस पार' से ऊब, उच्छ्वास, पीड़ा इत्यादि की वेदनाएँ व्यंग्य की आखेट भी बनीं। व्यंग्यकारों ने रहस्य एवं 'उस पार' इत्यादि को घोर-लौकिकता की 'छाया' के व्यंग्य के रूप में अभिहित किया। स्वयं रवीन्द्र पर भीषण व्यंग्य किए गए थे, जबकि वे शान्ति निकेतन में योगी के परिधान एवं जटा-श्मश्रु में रहते थे तथा उनके द्वारा 'महात्मा' (''एष देवो विश्वकर्मा महात्मा'' के महर्षि श्वेताश्वतर-प्रणीत श्वेताश्वतर-उपनिषद् के सूत्र को उद्धृत करते हुए) कहे जाने पर गाँधी उन्हें 'गुरुदेव' कह चुके थे! यह दो बड़ों का परस्पर आदान-प्रदान का मामला था! फिर, परम-रसिक प्रसाद, मदिरा-विजया इत्यादि में आत्म-विस्मृत निराला, नरम-नरम काम-रूप पन्त, पति को त्यागकर एकाकी जीवन बिताती महादेवी, भाँग छान कर लखनवी कुर्ता टाँचे और हथेली में फूलों का गजरा लिपटाए भगवतीचरण वर्मा, परम-स्वस्थ एवं परम-सौन्दर्योपासक रामकुमार वर्मा 'कुमार' इत्यादि की युवा टोली पर व्यंग्य कैसे न होते? छायावादियों की कोमल प्रकृति में नारी-मांसलता का 'रहस्य' एवं 'मानवीकरण'[3] भी आक्रमण का आखेट कैसे न बनता?

1. उच्छ्वासों की खटोलिया पर सोती है मधुपीड़ा मूक।
आलिंगन की दुःखदायिनी घड़ियों में लगती है कूक।
अरी वेदने! आली, आ जा कर दे अब दिल के दो टूक।
मैं न रहूँगी, कौन लिखेगा, टूटी हृत्तंत्री की हूक।...
मधुपीड़ा हो या मधुमूर्च्छा, स्पन्दन हो या हो अविपाक।
हृत्तंत्री का 'रप्चर' हो या 'फेन्सी' हो या हो अभिशाप।
हिचकी हो, हों उच्छ्वासें, नीरवता हो, फ़ालिज हो।
क्यों न एक छायाछोरों[4] का अलग मेडिकल कालिज हो। —जगन्नारायण 'पूर्ण'[5]

2. इसलिए चलो अब पाठक! उस नग्न नृत्यशाला में।
जिसमें अनंत के आशिक़ हों झूम रहे हाला में।
अपनी अदृश्य माशूक़ा पर मूक वेदना वाले।
नीरव गानों की तानें लेते हों जहाँ निराले। —ज्वालाराम नागर[6]

---

[1] सम्प्रति 'इज़्म' को 'इज़म' कहने का फ़ैशन है किन्तु जब 'इसट' (कॉम्युनिसट' इत्यादि) नहीं प्रचलित तब 'इज़म' का क्या तुक?

[2] सुदीर्घ 85 वर्ष की आयु में नवम्बर, 1989 में दिवंगत हुए।

[3] एक पाश्चात्य अलंकार (पर्सोनिफ़िकेशन)।

[4] छोरों = लौंडों, बच्चों। लाला भगवानदीन 'दीन' छायावाद को 'छोकरावाद' या छोरावाद कहते थे।

[5] राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' समोपनामी थे। सरदार पूर्णसिंह का ध्यान भी आता है।

[6] रहस्यवाद और हिन्दी-कविता (गुलाबराय एवं शम्भुनाथ पांडेय), पृष्ठ 224-25। निराला पर विशेष व्यंग्य।

3. प्रकृति के शुद्ध रूप देखने को आँखें नहीं, जिन्हें वे ही भीतरी रहस्य समझाते हैं।
झूठे-झूठे भावों के आरोप से आच्छन्न उसे करके पाखंड-कला अपनी दिखाते हैं।
अपने कलेवर की मैली औ कुचैली वृत्ति छोप के निराली छटा उसकी छिपाते हैं।
अश्रु, श्वास, ज्वर, ज्वाला, नीरव-रुदन नित्य देख अपना ही तंत्री तार वे बजाते हैं।

—रामचन्द्र शुक्ल[1]

4. ओ सौन्दर्य-उपासक! तुमने सुन्दर का स्वरूप क्या जाना?
मधुर, मंजु, सुकुमार, मृदुल ही को क्या तुमने सुन्दर माना?
क्यों देते हो चिर-सुंदर को इतने छोटे सीमा-बंधन?
कठिन, कराल, ज्वलंत, प्रखर भी हैं सौन्दर्य-प्रकेत चिरंतन!
कल-कल, टल-मल, सर-सर, मर्मर यही नहीं सुन्दर की वाणी,
इन्द्र-वज्रध्वनि भी है उसकी गहन-गभीर गिरा कल्याणी।

—बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'[2]

निस्संदेह, इन आलोचनाओं का नितान्त आंशिक महत्त्व ही है, क्योंकि छायावादी कविता निरी काम-गोपनजन्य रहस्यवादिता की उद्‌भूति मात्र नहीं है, क्योंकि प्रसाद ने सामान्यतः तथा निराला-पन्त ने विशेषतः प्रकृति के 'शुद्ध' रूप के अनेकानेक उत्कृष्ट वर्णन भी किए हैं, 'राम की शक्तिपूजा' तथा 'परिवर्तन' इत्यादि अनेकानेक कविताओं में प्रकृति के 'इन्द्रवज्रध्वनि'-वर्णन भी हुए हैं। किन्तु उच्छ्‌वास, मूर्च्छना, हत्तंत्री, मधुपीड़ा, शीतला ज्वाला, नयनों के बाल, मूक वेदना, स्पन्दन, नीरवता, 'उस पार' इत्यादि की शब्दावली प्रसाद, निराला, पन्त इत्यादि में आवश्यकता से अधिक गतिशील अवश्य रही थी और महादेवी की 'पीड़ा का चसका' तो शुक्ल तक ठीक ही लिख गए हैं।

वस्तु सत्य है, छाया नहीं। काया सत्य है, छाया नहीं। ब्रह्मसत्य है, माया नहीं। छाया क्षणिक है, माया आभास है। अतः छायावाद नामकरण दार्शनिक दृष्टि से स्थूल है, जो अत्यन्त सीमित अनुभूति-लोक का व्यंजक होने के कारण भी वरेण्य नहीं। 'छायावाद' शब्द प्रचलित है, सम्भवतः रहेगा भी। किन्तु यह शब्द भ्रामक एवं संकीर्ण है, जो प्रसाद, निराला, पन्त जैसे महाकवियों के विराट् सृजन के साथ अन्याय भी करता है, युग-काव्य को दुर्बोध भी सिद्ध करता है। स्वच्छन्दतावाद (रोमैन्टिसिज़्म) जैसा वैश्विक शब्द ही प्रसाद, निराला, पन्त जैसे विश्वस्तरीय कवियों एवं युग-काव्य को सम्यक् रूप से विवृत कर सकता है।

स्वच्छन्दतावादी कविता आदर्शवादी कविता का विकास है

आदर्शवाद का स्वच्छन्दतावाद में विकसित होना स्वाभाविक है, क्योंकि दोनों के दृष्टिकोण में नैतिकता की प्रधानता एवं स्वच्छन्द चिन्तन की प्रधानता मात्र का अन्तर होता है। अपनी सहज अन्तर्विरोधात्मक शैली में ही सही, आ. शुक्ल ने 'छायावाद' के अग्रदूतों में पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पांडेय और यहाँ तक कि मैथिलीशरण गुप्त तक को प्रतिष्ठित कर, तथा मुकुटधर पांडेय ने भारतेन्दु को प्रतिष्ठित कर, तथा दिनकर ने घनआनन्द का उल्लेख कर, यह स्पष्ट कर दिया है कि तत्त्वतः 'छायावाद' न तो आकस्मिक् है, न प्रतिक्रिया-प्रसूत। आ. शुक्ल के स्थूलता या इतिवृत्तात्मकता के प्रति सूक्ष्मता की प्रतिक्रिया शब्दों का उन्हीं के विवेचन से मेल न खाना अपने-आप में खंडन है। उनके 'इतिवृत्तात्मक' एवं 'शुष्क' जैसे शब्दों का काट वे स्वयं कर देते हैं; अतः इनको रटना ''मूढ़ परप्रत्ययनेय बुद्धिः'' को भी पीछे ठेलना होगा। सुधीन्द्र, विनयमोहन शर्मा, श्रीकृष्णलाल, नामवर सिंह इत्यादि भी स्वीकार करते हैं कि 'छायावादी' कविता 'द्विवेदीयुग' की कविता से विकसित हुई थी। अतः डॉ. नगेन्द्र का आ. शुक्ल के स्थूलता या इतिवृत्तात्मकता के प्रति सूक्ष्मता की प्रतिक्रिया का स्थूलता के प्रति सूक्ष्मता का विद्रोह रूपान्तर भी वस्तुपरक नहीं है एवं जनवादिता को स्थूलता मानना एवं उसके प्रतिपादन को लौह-अनुशासन बताना मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रत्नाकर की युग-बृहत्त्रयी के साथ ही नहीं प्रत्युत श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पांडेय की युग-लघुत्रयी के साथ भी अन्याय करता है, लोचनप्रसाद

---

1. कवि-भारती (सं. पन्त, बालकृष्ण राव, नगेन्द्र), पृ. 142
2. कवि-भारती, पृ. 287

पांडेय, सनेही एवं गोपालशरणसिंह की ललितत्रयी की उपेक्षा भी करता है। दार्शनिक दृष्टि से द्वैतपरक होने के कारण यह निराधार भी है। स्वच्छन्दतावादी कविता आदर्शवादी युग की कविता का सहज एवं प्रसन्न विकास है, प्रतिक्रिया का प्रतिफलन नहीं, स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं। हरिऔध की भाषा पन्त की भाषा में विकसित हुई, मैथिलीशरण की प्रबन्धपटुता प्रसाद की प्रबन्धगरिमा में विकसित हुई, रत्नाकर की उदात्त कला निराला की उदात्त कला में विकसित हुई। सनेही एवं गोपालशरणसिंह का रहस्य महादेवी के रहस्य में विकसित हुआ। लोचनप्रसाद पांडेय, रामनरेश त्रिपाठी एवं मुकुटधर पांडेय का प्रकृति-संवेदन प्रसाद, निराला एवं पन्त के प्रकृति-संवेदन में विकसित हुआ। मैथिलीशरण का नारी-संवेदन प्रसाद के नारी-संवेदन में विकसित हुआ। स्वयं प्रसाद आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के निकट आना चाहते थे जैसा कि 'प्रसाद को पत्र' (सं. रत्नशंकर प्रसाद) से स्पष्ट है, निराला सदैव आचार्य के भक्त रहे तथा उन्होंने भारतेन्दु एवं उन्हें ही नव्यता का प्रथम वाहक माना है जैसाकि 'परिमल' की भूमिका से स्पष्ट है (इधर भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी से लेकर आ. पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी तक जिन लोगों को खड़ीबोली की प्राण-प्रतिष्ठा का श्रेय मिला है, भाषा के मार्जन में जिन लोगों ने अपने शरीर के तमाम रक्तबिन्दु सुखा दिए हैं, साहित्य के साथ-साथ राष्ट्र-साहित्य की भी कविता का उन्हीं लोगों ने प्रथम शृंगार किया है), पन्त ने आ. पर कविता लिखी है, महादेवी ने आ. के राष्ट्रभाषा-निर्माण की तुलना गाँधी के राष्ट्र-निर्माण से की है।

अंग्रेजी-कविता में भी मिल्टन इत्यादि की प्यूरिटन-कविता के बाद वर्ड्स्वर्थ इत्यादि की स्वच्छन्दतावादी कविता विकसित हुई थी। संस्कृत में वाल्मीकि, व्यास, अश्वघोष इत्यादि की आदर्शवादी कविता के बाद कालिदास इत्यादि की स्वच्छन्दतावादी कविता विकसित हुई थी। विकासवाद पत्थर की लकीर नहीं है, किन्तु कहीं-कहीं वह एकदम ठीक लागू हो जाता है—आदर्शवादी कविता के अनन्तर स्वच्छन्दतावादी कविता का विकास स्वाभाविक भी है! अब समय आ गया है जब हम अन्तर्विरोधपूर्ण तरंगवादी स्थापनाओं एवं उनकी भड़कीली नक़लों से मुक्त होकर, 'छायावाद' के अभिधान से ऊपर उठकर, वस्तुपरक ऐतिहासिक निकष पर स्वच्छन्दतावादी कविता का आकलन करें।

स्वच्छन्दतावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ऐतिहासिक दृष्टि से 1920 ई. से भारत में स्वच्छन्दतावादी युग का आरम्भ होता है। तिलक के निधन के उपरान्त गाँधी भारत पर छा गए। वैसे तो 1913 ई. में नोबेल-प्राइज़ पाने के साथ अपने युग में भारत के मूर्द्धन्य स्वच्छन्दतावादी कवि-कलाकार-चिन्तक रवीन्द्र का प्रभाव बढ़ने लगा था किन्तु महत्तर मानव तिलक का युग 1900-20 ई. प्रत्येक दृष्टि से तिलक का युग ही रहा। तिलक समग्रतः बलिदानी थे। तिलक ने स्पष्ट स्वातन्त्र्य-शंखनाद किया था। रवीन्द्र ग़दर-पार्टी के प्रति कठोर बनने पर विवश हुए, गाँधी चौरीचौरा हत्याकांड पर असहयोग आन्दोलन समाप्त कर विवादास्पद बन गए। तिलक और गाँधी के प्रति गौरांग-दृष्टिकोण की भिन्नता से भी तथ्य स्पष्ट हो जाता है। तिलक एकराष्ट्रवादी थे, रवीन्द्र ''हिन्दू-बौद्ध-सिख-जैन-पारसिक-मुसलमान-क्रिस्तानी'' के भेद के गायक। गाँधी ने खिलाफ़त-आन्दोलन में कूदकर ग़लती की थी। तिलक ने 1916 ई. को लखनऊ कांग्रेस में मुस्लिम लीग के जिन्ना वगैरह द्वारा इच्छित पृथक्-मताधिकार को सिद्धान्ततः स्वीकार कर एक बड़ी ग़लती की थी। किन्तु गाँधी ने खिलाफ़त आन्दोलन में सम्मिलित होने, अत्यन्त सफल होते असहयोग आन्दोलन को बिना किसी लाभ के वापस लेने, सुभाष का विरोध करने, पटेल पर नेहरू को वरीयता प्रदान करते रहने, विभाजन स्वीकार करने इत्यादि की कई ग़लतियाँ कीं। कॉम्युनिस्टो ने गाँधी को साम्राज्यवाद का कुत्ता कहा था , तो इतिहासकार 'रॉबर्ट्स ने पैग़म्बर (प्रॉफेट) और जॉर्ज ऑर्वेल ने 'अपना आदमी' (अॅवर मैन) जिनकी 'रेफ़्लेक्शंस ऑव गाँधी' कृति, क्रान्ति का वातावरण ठंडा कर, 'अहिंसा' पर ज़ोर देते, ब्रिटिश राज्य की सहायता का संकेत करती है। रवीन्द्र एवं गाँधी के अनेकतावाद से इन दोनों को वैश्विक ख्याति-लाभ हुआ, किन्तु भारत की एकता की क्षति हुई। नेहरू एवं उनके परवर्ती प्रधानमन्त्रियों ने रवीन्द्र एवं गाँधी के भेदवाद को तूल देकर ग़लतियों की संख्या बढ़ाई। जब तक भारत भेदभाव की माला जपेगा तब तक यहाँ न एकता स्थापित होगी, न समता।

रवीन्द्र 'बंगाल के शेली'[1] थे। स्पष्टतः स्वच्छन्दतावादी। शेली युवा थे, युवा मरे। 'द रिवोल्ट ऑफ़ इस्लाम' उनके अधकचरे एवं भ्रामक चिन्तंन का प्रतीक है। उन्हें मोहम्मदी इतिहास के भेदभाव और उसकी हिंसा का ज्ञान न था। उन्हें तैमूर लंग जैसा नृशंस

---

[1] नया फ़ैशन 'शेले' बोलता है!

युद्धोन्मादी गरिमामय प्रतीत होता था—सम्भवतः हत्या के कारण उन्हीं जैसी आयु पानेवाले, उन्हीं जैसे सर्वविध-कामुक पूर्ववर्ती क्रिस्टोफर मॉर्लो के नाटक 'टेमरलेन' ('तैमूर लंग'[1] का पाश्चात्य उच्चारण) से अभिभूत हो गए थे। ''सबकी स्तुति अर्थात् सबके अनुयायियों की श्रद्धा लूटने'' के यत्न से सत्य के विवेचन का पथ रुद्ध हो गया, वस्तुवाद को आघात लगा, लोगों में अपने धर्म या मज़हब की उचित आलोचना सुनने की शक्ति का लोप हो गया, साम्प्रदायिकता में भयावह वृद्धि हुई।

गाँधी स्वच्छन्दतावादी चिन्तक थे। उनकी 'सत्य के प्रयोग' शीर्षक आत्मकथा पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद के पितामह रूसो के 'कॉंफ़ेशंस' से प्रभावित है। उनका ग्राम स्वावलम्बनवाद प्लूटो, शरीरश्रमवाद रूसो, रस्किन, टॉलस्टॉय इत्यादि स्वच्छन्दतावादियों या उनसे ईषत्-प्रभावित आदर्शवादियों के विचारों से अभिभूत है। उनका ग्रामवाद रूसो के प्रकृतिवाद का अनुवाद-सा है। उनका 'स्वावलम्बी ग्राम' या 'ग्राम-स्वराज' सर्वथा स्वच्छन्दतावादी है—यथार्थवाद से कोसों दूर, अव्यावहारिक। गाँधी स्वप्नद्रष्टा थे, जागृतिस्रष्टा नहीं। द्रष्टा तिलक ''गाँधी भारत को कहाँ ले जाएगा?'' की अशान्ति के साथ मरे, जैसाकि उस समय उपस्थित आ. चतुरसेन शास्त्री (जो प्रसिद्ध वैद्य भी थे—गुरुदत्त के सदृश) ने आत्मकथा में स्पष्टतः लिखा है। एनी बीसेंट ने असहयोग आन्दोलन से भावी अराजकतावाद का बिन्दु उठाया था, रवीन्द्र ने नग्न देश में विदेशी वस्त्रों की होली पर दुःख व्यक्त किया था। आसफ़ अली के 'मेमाइर्स' में ऐसे सत्य दर्ज हैं ! ग्रन्थ अनमोल है। उनके भेदभाव से खिन्न महामना मदनमोहन मालवीय (जिनके वे पैर छूते थे, 'सत्य के प्रयोग' में 'भारतभूषण' लिखते थे, 'सर्वश्रेष्ठ' मानते थे), लाला लाजपतराय, डॉ. केशव बलीराम हेडगेवार, भाई परमानन्द मानवेन्द्रनाथ राय, नारायण भास्कर खरे इत्यादि को कांग्रेस त्यागनी पड़ी। बिड़ला, बजाज, शिवप्रसाद गुप्त इत्यादि से पैसे लेकर गाँधी ने पूँजीवाद को भविष्यघाती प्रश्रय दिया। सुभाष के साथ उनका व्यवहार नितान्त विवादास्पद रहा, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि यत्किंचित् कालान्तर में सुभाष की हिटलर, मुसालिनी और तोजो से साँठगाँठ न दूरदर्शितापूर्ण थी, न उच्चसिद्धान्तवादी तथा विकट राष्ट्रीय एवं वैश्विक परिस्थितियों के बीच पोलैण्ड की एक सुन्दरी से विवाह (और वह भी परतन्त्र भारत में विवाह एवं सन्तानोत्पत्ति न करने के प्रण के बावजूद) भी उनकी गौरववृद्धि नहीं करेगा। नेहरू तक ने गाँधी के लिए 'ओह, वह विस्मयकारी वृद्ध पाखंडी' (ओह, दैट ऑव्फुल ओल्ड हिपोक्रीट) कहा था, और वह भी कैनाडा के प्रधानमन्त्री लेस्टर पीअर्सन से, जिन्होंने 'मेमॉइर्स' में इसे लिपिबद्ध किया। निस्सन्देह, गाँधी 1920-48 ई. के बीच भारत के सर्वाधिक प्रभावशाली एवं सर्वाधिक शक्तिशाली राजनैतिक नेता थे, जिन्होंने मालवीय, लाजपतराय, हेडगेवार, जिन्ना इत्यादि को कांग्रेस-त्याग के लिए विवश किया, मानवेन्द्रनाथ राय, नारायण भास्कर खरे, सुभाष इत्यादि को पद-त्याग के लिए विवश किया, 1946 ई. तक कांग्रेस के 'डिक्टेटर'[2] बने रहे। उनकी स्वदेशी भावना (जो पहले से प्रतिपादित की जा रही थी), उनके असहयोग आन्दोलन (1920-22) ई. सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930-32 ई.), भारत छोड़ो आन्दोलन (1942 ई.) इत्यादि का व्यापक प्रभाव पड़ा। इनका ऐतिहासिक महत्त्व है। उनका सत्याग्रह विश्व की निरीह एक दुर्बल जनता को रामबाण के रूप में प्राप्त हुआ। कैनेथ कौंडा, मार्टिन लूथर किंग इत्यादि नीग्रो नेता उनसे बाद तक प्रभावित होते रहे। वे एक चतुर राजनीतिज्ञ थे। जीवन भर दरिद्रनारायण की चर्चा करनेवाले गाँधी को मरना पड़ा था बिड़ला भवन (नई दिल्ली) में! उन पर वस्तुपरक विचार अपेक्षित हैं। ''मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी'' का विराट् जनोद्गार भी चिन्तन-प्रेरित करता है। उनकी लँगोटी निराशाजनक थी, बात तब बनती जब कोटि-कोटि दरिद्रजन उचित वस्त्र धारण करते। लँगोटी घोर-प्रतिक्रियावाद की प्रतीक है। 1920-40 ई. के गाँधी 1942-48 ई. के गाँधी से पर्याप्त भिन्न थे। हिन्दी-कविता का स्वच्छन्दतावादी युग स्वच्छन्दतावादी गाँधी से पर्याप्त प्रभावित हुआ, इसमें सन्देह नहीं। वैसे, उनके व्यक्तित्व एवं प्रभाव को दूर रखकर यदि उनके विचारों पर केन्द्रित रहा जाए तो वे एक प्रखर स्वच्छन्दतावादी चिन्तक सिद्ध होते हैं। उनके स्वच्छन्दतावादी तेवर राष्ट्र के स्वच्छन्दतावादी तेवर बन गए, जिससे यथार्थ की क्षति हुई।

---

[1] समरकन्द में द्वितीय विश्वयुद्ध-काल में इसकी क़ब्र खोदकर देखा गया था—वह सचमुच लंगड़ा था। जर्मन-महाकवि गेटे, अंग्रेजी-उपन्यासकार सर वाल्टर स्कॉट, अंग्रेज़ी के स्वच्छन्दतावादी महाकवि बायरन भी लँगड़े थे। राणा साँगा के तो हाथ, पैर, आँख एक-एक ही थे—शरीर पर अस्सी घावों के निशान अलग।

[2] रजनी पाम दत्त के अनुसार, यदि गाँधी को अवसर मिलता तो वे 'सबसे ख़राब तानाशाह' (वर्स्ट डिक्टेटर) सिद्ध होते। विभिन्न आन्दोलनों में गाँधी स्वयं को 'डिक्टेटर' कहलाना ही पसन्द करते थे। नारायण भास्कर खरे को उन्होंने लिखा था, ''यदि तानाशाह होता तो तुम्हारा सर धड़ पर न होता।'' 1937, 38, 39, 47 और हत्या के कुछ ही दिनों पूर्व 1948 ई. में उनका नाम शान्ति के नोबेल प्राइज़ हेतु उठाया गया किन्तु 'महात्मा' और 'राजनीतिज्ञ' के अन्तर्विरोध के कारण छोड़ दिया गया। 'डिक्टेटर'-शिप नेहरू, इन्दिरा, संजय, राजीव, सोनिया तक प्रसरित है। अक्टूबर, 2005 में सोनिया के सख़्त सवालों पर अरुणाचल प्रदेश के मुख्यमन्त्री गेगाँग अपाँग रो पड़े। कांग्रेस एक नेतावादी गाँधी से ही बनी। अब तक है।

कल्पना

मुझे ऐसा लगता है कि मूलतः रोमैन्टिसिज़्म शब्द एक लम्बे समय (ईसा-पूर्व 100 से 400 ई.) तक विश्व की प्रथम शक्ति इटली के शाश्वत-नगर रोम पर आधृत रोमन लोगों से सम्बद्ध है, जो अपने प्रेम एवं पराक्रम (लव एंड वार) के लिए तो प्रख्यात थे ही, दार्शनिकता एवं निराशावाद (आत्महत्या तक—'रोमन वे' का अर्थ ही आत्महत्या बन गया) के लिए भी उल्लेख्य हैं। महान् जूलियस सीज़र (जिससे संपृक्त सीज़र, कैसर, ज़ार इत्यादि गौरव-प्रतीकों का प्रयोग रोमन, जर्मन एवं रूसी सम्राटों ने किया, जिसका प्रभाव सेमाइटों पर भी पड़ा) एक दुर्दान्त योद्धा, एक कुशल संस्मरणकार-तात्कालिकीकार, एक गम्भीर चिन्तक एवं एक अपूर्व कामुक था (जिसके परम विरोधी सिसेरो ने उसे "सारी पत्नियों का पति एवं सारे पतियों की पत्नी" कहा था) जूलियस सीज़र (100-44 ईसा पूर्व) रोमैन्टिसिज़्म या स्वच्छन्दतावाद का आदि-प्रेरक है। वह लोकतान्त्रिक नेता से सम्राट् बना तथा इसी कारण से अपने ब्रूटस, कैसिअस इत्यादि मित्रों द्वारा ही मारा गया, जिन्हें उसके भतीजे ऑक्टेबियन ने आत्महत्या के लिए विवश किया। ऑक्टेविअन ने ऑगस्टस सीज़र के रूप में विश्व-इतिहास के एक सर्वश्रेष्ठ सम्राट् का गौरव प्राप्त किया। जुलाई एवं ऑगस्ट (अगस्त) महीने जूलियस एवं ऑगस्टस सीज़रों के अजर-अमर स्मारक हैं। दोनों 31-31 दिनों के हैं। रोमन कोरे योद्धा न थे, संवेदनशील मनुष्य भी थे। वे अपनी एशिया-अफ्रीका-यूरोप महाद्वीपत्रय के अनेक क्षेत्रों तक प्रसरित विभिन्न प्रजाओं में लोकप्रिय थे। उन्होंने संसार की सभ्यता-संस्कृति के निर्माण में भारी योगदान दिया। वे कल्पनाशील थे। अतः विश्व-कल्पना पर प्रभाव डाल गए। परवर्ती प्रेम-शौर्य कथाओं को रोमैंस कहा गया। कविता में स्वच्छन्दतावाद को रोमैन्टिसिज़्म माना गया। रोम, रोमन, रोमैंटिक, रोमांस, रोमैन्टिसिज़्म इत्यादि उनके ही स्मारक हैं जिनके अर्थों में परिवर्तन होता रहा है। अठारहवीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति ने पश्चिम के विचारकों एवं कवियों को मानव को यन्त्र बनाने की जड़ीभूत उन्नति के विरोध के लिए प्रेरित किया, प्राकृतिक जीवन की गरिमा विवृत की, शारीरिक श्रम एवं पराक्रम का महत्त्व प्रतिपादित किया। प्रकृति, उन्मुक्त प्रेम, नारी-संवेदन, शारीरिक श्रम-महिमा इत्यादि की प्रधानता वाला यह चिन्तन स्वच्छन्दतावाद कहलाया। जीन जैक्वीस रूसो (1712-78 ई.)[1] पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद के पितामह माने जाते हैं। वे प्रकृतिवादी-कल्पनावादी दार्शनिक थे, जिन्होंने यान्त्रिक सभ्यता से मुक्ति का आह्वान किया। वे फ्रांस की महान् क्रान्ति (1789 ई.) के जनक माने जाते हैं। दूसरे समसामयिक दार्शनिक फ्रैंकोइस द वोल्तेअर (वाल्टेयर—1694-1778 ई.)[2] बौद्धिक-सुधारवादी थे। रूसो ने उपन्यास एवं वॉल्टेयर ने नाटक के माध्यमों से भी मानव की स्वतन्त्रता एवं मानव के अधिकारों का आह्वान किया। वॉल्टेयर को भी फ्रांस की क्रान्ति का एक जनक माना जाता है। वैसे, दोनों दो छोर हैं किन्तु क्रान्ति-प्रेरणा में सहायक बने!

कृत्रिम अथवा यन्त्रीकृत जीवन के विरोध तथा मानव-स्वाधीनता, मानव-समता, नारी-संवेदन, प्रकृति-प्रेम, सौन्दर्य-प्रेम के अनुरोध की प्रेरणा का सारे विश्व पर भारी प्रभाव पड़ा। इंग्लैण्ड में ब्लेक, कॉलरिज, वर्डस्वर्थ, शेली (शेले), कीट्स, बायरन इत्यादि समर्थ कवियों एवं चिन्तकों ('द स्टोरी ऑफ़ फिलॉसॉफी' में विल ड्यूराँ ने कॉलरिज एवं 'हिस्ट्री ऑफ़ वेस्टर्न फिलॉसॉफी' में बर्ट्राण्ड रसेल ने बायरन को दार्शनिकों के रूपों में अध्यायबद्ध किया है) पर स्वच्छन्दतावादी दर्शन का प्रभाव सर्वाधिक पड़ा। यद्यपि स्वच्छन्दतावादी कविता अमेरिका, रूस, फ्रांस, जर्मनी इत्यादि में भी रची गई तथापि इंग्लैण्ड की समता नहीं। इंग्लैण्ड सम्पन्नतम एवं बलवत्तम था। वहाँ के संवेदनशील कवि ने औद्योगिक आँधी में प्रकृति के पतन, प्रकृति के पतन में मानवता के ह्रास, उपनिवेशों के शोषण के पाप इत्यादि को सबसे अधिक समझा तथा प्रकृतिवाद, प्राचीनतावाद, स्वातन्त्र्यवाद इत्यादि का मंडन किया। इन्हीं प्रवृत्तियों से फ्रांस की क्रान्ति के पुत्र नैपोलियन बोनापार्ट (1769-1821 ई.) का उद्भव एवं उत्कर्ष हुआ, जो वैश्विक स्वच्छन्दतावाद के नायक बन गए। किन्तु विकट औद्योगिक विकास एवं नैपोलियन के ह्रास के कारण स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन प्रायः 1820 ई. तक आते-आते छीज गया। स्वच्छन्दतावाद के आदि-नायक जूलियस सीज़र लोकतन्त्र के रथ पर चढ़कर आए और राजतन्त्र के सिंहासन पर जा बैठे और मारे गए। स्वच्छन्दतावाद के नायक नैपोलिअन क्रान्ति के रथ पर चढ़कर आए और कान्ति के सिंहासन पर जा बैठे और परास्त हुए। भारतीय स्वच्छन्दतावाद के नायक गाँधी त्याग-तप के वन से निकलकर बिड़ला-बजाज के महलों में घुस गए, अंग्रेज़ों के बनाए महानता-लोक ण्र रीझ गए और मारे गए। स्पष्ट है, स्वच्छन्दतावाद आकर्षक तो है किन्तु व्यावहारिक नहीं। हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी कविता का इतिहास भी 1920-40 ई. के बीस वर्षों में सिमटकर रह गया। कारण? स्वच्छन्दतावाद कल्पना पर बेहद रीझता है और कल्पना आकर्षक तो होती है किन्तु व्यावहारिक नहीं।

---

1. हिस्ट्री ऑफ़ द वर्ल्ड (एलिस मैजेनिस एवं जॉन कॉनराड एप्पेल), पृष्ठ 291
2. वही।

सुधारवादी युग (1850-1900) के बालकृष्ण भट्ट 'कल्पना-शक्ति' निबन्ध में कल्पना को 'यावत् मिथ्या और दरोग़ की क़िबलेग़ाह...पिशाचिनी'' बताते हैं (किन्तु अन्तर्विरोध यह है कि उसे 'शक्ति' या प्रतिभा भी मानते हैं)। आदर्शवादी युग (1900-20 ई.) के प्राण आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी 'कविता क्या है?' निबन्ध में ''आकाशकुसुमों के गुलदस्ते'' का समर्थन नहीं करते। किन्तु स्वच्छन्दतावादी युग (1920-40 ई.) के प्रसाद, निराला, पन्त इत्यादि कल्पना पर बेहद रीझते हैं। प्रसाद (कामायनी) एवं पन्त (लोकायतन) तो कल्पनाजन्य आदर्शलोक (यूटोपिया) के स्रष्टा ही हैं, निराला एवं महादेवी इत्यादि ने भी 'उस पार' में बहुत रुचि दिखाई है। नैपोलियन कहता है, ''कल्पना विश्व पर शासन करती है।'' गाँधी का रामराज्य भी कल्पना ही है। प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि भी इस प्रत्यक्ष संसार से खिन्न हैं, वे पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादियों के 'एल डोरेडो' या 'बियाँड' के सदृश कल्पना के लोक में (उस पार) जाने के इच्छुक हैं :

ले चल वहाँ भुलावा देकर, मेरे नाविक[1]! धीरे-धीरे
जिस निर्जन में सागर-लहरी अंबर के कानों में गहरी–
निश्छल प्रेमकथा कहती हो, तज कोलाहल[2] की अवनी रे
(प्रसाद : लहर)

हमें जाना है जग के पार जहाँ नयनों से नयन मिले
ज्योति के रूप सहस्र खिले। सदा ही बहती नवरस धार–
वहीं जाना इस जग के पार।
(निराला : परिमल)

यहाँ सुख सरसों, शोक सुमेरु, अरे, जग है जग का कंकाल।
वृथा रे, यह अरण्य चीत्कार, शांति-सुख है उस पार।
(पन्त : पल्लव)

आकर जब अज्ञात देश से जाने कैसी मृंदु झंकार,
गा जाती है करुण स्वरों में कितना पागल है संसार।
(महादेवी : 'कवि-भारती' से उद्धृत)

निस्सन्देह, 'उस पार' दर्शनलोक का प्रतीक है, प्रेमलोक का प्रतीक है, कोरा पलायनवादी उद्गार न होकर व्यापक मानवीय स्पृहा का प्रतीक भी है, किन्तु है तो काल्पनिक ही। व्यापक मानवता इस लोक में ही स्वर्ग चाहती है; तभी तो स्वयं पन्त ने 'युगान्त' की घोषणा की तथा 'उत्तरा', 'अमिता' इत्यादि में भूमि के वर्गीकरण के गान गाए! प्रसाद का कल्पना-लोक कामायनी में मनु या मन के लिए सारे सुख, भोग, कान्ति, पराग, अप्सराएँ इत्यादि का प्रावधान करता है। 'उस पार' या कैलास इत्यादि के मूल में 'प्रवासी के गीत' की भूमिका में कवि नरेन्द्र शर्मा ने अभाव के दर्शन किए हैं, ''यह स्वाभाविक है कि जब व्यक्ति को अपनी प्रवृत्तियों के साधन बाहर समाज में नहीं मिलते, तब वह जैसे बाहर ठोकर खाकर अपने लिए अपने ही भीतर कामनाजन्य भावनाओं और कल्पनाओं का एक संसार बना लेता है।'' डॉ. नगेन्द्र ने छायावादी कविता की अतिस्तुति के साथ उसमें कुंठा का अस्तित्व स्वीकार किया है। नरेन्द्र एवं नगेन्द्र दोनों फ्रायड के 'मनोविश्लेषण' (साइको-एनालिसिस) एवं स्वप्न-व्याख्या (इंटरप्रेटेशन ऑफ ड्रीम्स) से प्रभावित हैं।

---

1. कथा छिलो एक तरीते केवल तुम आमि जाब अकारणे भेसे केवल भेसे,
त्रिभुवने जानबेना केउ आमरा तीर्थग्रामी, कोथा जेते छि कौन देशे से कौन देशे।
कूलहारा से समुद्र माझ खाने, शोनाब गान एकला तोमार काने,
देउएर मतन भाषा बाँधनहारा, आमार सेइ रगिनी शुनूबे नीरव हेशे। (रवीन्द्र)

2. ''तुमुल कोलाहल कलह में
मैं हृदय की बात, रे मन! (प्रसाद : कामायनी)

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने कल्पना की रंगीन सृष्टि की, जिसका विरोध आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी, आ. रामचन्द्र शुक्ल, श्री इलाचन्द्र जोशी[1], डॉ. प्रभाकर माचवे[2], मुक्तिबोध[3] इत्यादि ने किया। डॉ. देवराज[4] ने छायावादी कविता में रीतिकाल के पुनरागमन के दर्शन किए। किन्तु यह सारा विरोध व्यर्थ गया। क्यों? कल्पना एक शाश्वत सत्य है। स्वर्ग-राज्य, मोहम्मद की जन्नत, मार्क्स का अव्यावहारिक राज्यरहित सम समाज, अरविन्द का आदर्शवादी स्वर्ग-भूमीकरण, गाँधी का स्वप्निल रामराज्य, सब कल्पनाएँ हैं; किन्तु इनसे बड़े सत्य मानवता के पास नहीं।

नव्यता

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सर्वांगीण नव्यता का आह्वान किया। वे काव्य में नूतन वर्ण्य, नूतन अनुभूतियाँ, नूतन अभिव्यक्तियाँ लाए। उनका प्रकृति-संवेदन नव्य था, उनका नारी-संवेदन नव्य था, उनका रहस्यवाद नव्य था, उनका राष्ट्रवादी स्वर नव्य था—और उनका प्रतीकवाद (छायावाद) तो नव्य था ही! आ. शुक्ल का छायावाद को शैली मात्र कहना एक विराट् एवं नव्य अनुभूति—लोक का अपमान करना है। यह अपमान कालातीत हो चुका है। इसे किसी ने नहीं माना। एक ओर आ. शुक्ल छायावाद की विदेशमूलक पृष्ठभूमि का निरूपण करते हैं, दूसरी ओर उसे शैली मात्र बताते हैं—यह उनकी अन्तर्विरोध से आच्छादित प्रतिभा का एक अन्य अकाट्य बिन्दु है। देश-विदेश के अनेकानेक छन्द, अतुकान्त छन्द, मुक्त छन्द इत्यादि ने अभिव्यक्ति-लोक को नूतनता प्रदान की। विश्व में शतशः नवीन कुछ नहीं, विश्व में शतशः प्राचीन कुछ नहीं। विश्व के आदिग्रन्थ ऋग्वेद के द्रष्टा ऋषि 'प्राचीनों' की चर्चा करते हैं। पश्चिम के आदिकवि होमर के इलिअड एवं ओडिसी में 'प्राचीनों' का बारम्बार उल्लेख है। स्वच्छन्दतावाद की नव्यता का उद्गम भी उपनिषद्, कालिदास, वर्ड्स्वर्थ, शेली (शेले), कीट्स, टेनीसन, इलिअॅट (एलिअॅट), रवीन्द्र तथा श्रीधर पाठक, लोचनप्रसाद पांडेय, सनेही, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पांडेय इत्यादि आदर्शवादी युग के कवियों में प्राप्त है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि नव्यता की दृष्टि से स्वच्छन्दतावादी युग विशिष्ट था :

प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे कभी न बासी फूल;
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र आह उत्सुक है उनकी भूल।
पुरातनता का यह निर्मोक सहन करती न प्रकृति पल एक;
नित्य नूतनता का आनंद किए है परिवर्तन में टेक।
(प्रसाद : कामायनी—श्रद्धा सर्ग, 46-47)

नव गति, नव लय, ताल, छंद नव, नवल कंठ, नव जलद मंद्र रव,
नव नभ के नव विहग-वृंद को नव पर नव स्वर दे। (निराला : गीतिका)

द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र! हे स्रस्त-ध्वस्त! हे शुष्क-शीर्ण!
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत, तुम वीतराग जड़ पुराचीन!!....
कंकाल जाल जग में फैले फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली!
प्राणों के मर्मर में मुखरित जीवन की मांसल हरियाली!
मंजरित विश्व में यौवन के जग कर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय स्वर मदिरा से भर दे फिर नव युग की प्याली!
(पन्त-पतझर)

---

[1] मधुर कोमलकान्त पदावली के माध्यम से ये सब आत्मघाती और क्षयरोग के कीटाणुओं की तरह विनाशकारी तरल गरलमय भाव हिन्दी-जगत् की जनता के मर्मस्थल पर 'इंजेक्ट' किए जाते रहे। फल यह हुआ कि धीरे-धीरे एक क्षयरोगग्रस्त सुबृहत् कवि-समाज उस घातक अफ़ीम के रस से मदविभोर हो उठा और चारों ओर से एक अस्वास्थ्यकर मीठी और झूठी वेदना की बाढ़ ने समस्त साहित्य-संसार को अप्लुत कर लिया। (इलाचन्द्र जोशी : 'विवेचन', पृष्ठ 41-42)

[2] छायावाद के लिए मृगी या 'हिस्टीरिया' ('हिस्टीरिआ' ठीक होगा) शब्द का प्रयोग (द्रष्टव्य है, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी कृत 'आधुनिक साहित्य', पृष्ठ 78)।

[3] प्रसाद के लिए "बूर्ज्वाजी का अन्तिम मुमूर्ष कवि" (कामायनी : एक पुनर्मूल्यांकन)।

[4] उपन्यास-साहित्य के मूर्द्धन्य विद्वान् डॉ. देवराज उपाध्याय से भिन्न। विद्वान् आलोचक। उपन्यासकार। कवि भी।

प्रतीकवाद

छाया या प्रतीक को वरीयता देने के कारण ही छायावादी कविता, छायावादी युग इत्यादि नामकरण हुए हैं। किन्तु प्रतीकवादी कविता अत्यन्त अल्प ही हो सकती है क्योंकि सर्वत्र प्रतीक थोपे जाने पर वह कृत्रिम हो जाएगी। महाकाव्य में चरित्रों का प्रतीक-विधान स्थापित अथवा आरोपित करना अपेक्षाकृत सरल है—कामायनी में स्थापित एवं पदमावत में आरोपित प्रतीक-विधान से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। प्रतीक-विधान संसार-साहित्य को भारत की महान् देन है। आदिग्रन्थ ऋग्वेद में इन्द्र इन्द्रिय-अधिष्ठाता एवं सुख (वर्षा) के प्रतीक हैं, अग्नि ऊर्जा के, सोम रस या भावतारल्य के, मरुत् गति-प्रगति के, रुद्र ध्वंस के (जिसके बिना निर्माण सम्भव नहीं), नदी एवं वन जीवन-प्रवाह एवं जीवन-प्रसाधन के, गौ एवं अश्व चेतन-सम्पदा के। अरविन्द ने ऋग्वेद इत्यादि वेदों में प्रतीक-विधान का विवेचन किया है। रवीन्द्र ने तो अभिज्ञान-शाकुन्तलम् एवं वासुदेवशरण अग्रवाल ने मेघदूतम् में प्रतीक-प्रतिपादन किया है। अद्वैतवाद मानव-जाति का सर्वश्रेष्ठ दर्शन है, जो जीव, जगत् एवं परमात्मा में मूलभूत एकता का प्रतिपादन करता है, जो विज्ञान-सम्मत भी है, क्योंकि जड़ कहे जानेवाले पदार्थों में भी प्रच्छन्न चेतना विद्यमान है। मानव-इतिहास के एक अन्यतम वनस्पतिशास्त्रवेत्ता आ. जगदीशचन्द्र वसु (सर जे.सी. बोस) ने तरु-संवेदन (द ट्री रिस्पॉन्स) सिद्ध किया था। अद्वैतवाद ने ही प्लेटो को विश्वात्मा एवं सूफ़ियों को इश्क़हक़ीकी प्रदान किया है। अंग्रेज़ी के मूर्द्धन्य स्वच्छन्दतावादी कवि, प्रकृति के कवि वर्ड्स्वर्थ पर अद्वैतवाद छाया हुआ है, अन्य स्वच्छन्दतावादी कवि कीट्स, सौन्दर्य के कवि कीट्स पर सूफ़ियाना इश्क़हक़ीकी छाया हुआ है जो अद्वैतमूलक है। अद्वैतवाद शत-शत प्रतीकों का निलय है। रवीन्द्र ने थोड़े-से पाश्चात्य ईसाई अन्दाज़ के साथ अद्वैतवाद, वस्तुतः कबीर के माध्यम से प्राप्त अद्वैतवाद, को प्रतीकवाद में ढालकर अपने छायालोक अथवा रहस्यलोक का निर्माण किया और नन्हीं-सी 'गीतांजलि' में 103 छोटे-छोटे गीतों को अंग्रेज़ी में अनूदित कर साहित्य का नोबेल-प्राइज़ (1913 ई.) पा लिया (यह पुरस्कार यूरोप की भाषा में सृजन पर ही प्राप्त होता था—इधर नामनिहाल रियायत दी गई है किन्तु सामी या पाश्चात्य या व्यक्तिवादी दृष्टिकोण को वरीयता अब भी स्थिर है)। प्रतीक या छाया के दर्शन दो रूपों में होते हैं :

1. चरित्रों में प्रतीकारोपण के माध्यम से जैसे 'कामायनी' (श्रद्धा) में मनु मन के, श्रद्धा भावपक्ष की और इड़ा बुद्धिपक्ष की प्रतीक हैं तथा प्रतीक या छाया के चरम उत्कर्ष के कारण शान्तिप्रिय द्विवेदी ने कामायनी को छायावाद का उपनिषद् कहा है।

2. आत्मा-परमात्मा के ऐक्य या सम्बन्ध के माध्यम से, जिसके लिए रहस्यवाद शब्द का प्रयोग अधिक समीचीन है तथा जिसके दर्शन सामान्यतः प्रसाद, निराला, पन्त एवं विशेषतः महादेवी में किए जाते हैं।

'छायावाद' नामकरण का श्रेय स्व. पं. मुकुटधर पांडेय को प्रदान किया जा सकता है, जिन्होंने 1920 ई. में 'श्रीशारदा' में लेखमाला निकाली (भले ही विचारधारा का स्तर आरम्भिक हो)। किन्तु इसे लोकप्रिय करनेवाले जगन्नारायण 'पूर्ण', ज्वालाराम नागर इत्यादि वे व्यंग्यकार थे जिन्होंने शब्द को शून्यता का प्रतीक समझा। 'छायावादी सज्जा', 'छायावादी नज़ाक़त', 'छायावादी नफ़ासत', 'छायावादी केश' (पन्त के कारण विशेष लोकप्रिय, निराला के कारण उल्लेखनीय—छोटे निराला जानकीवल्लभ शास्त्री आज भी परम्परा का भार ढो रहे हैं, सम्पूर्णानन्द जैसे प्रखर बुद्धिजीवी तक रखाते थे, इलाचन्द्र जोशी जैसे घोर छायावाद-विरोधी तक "जादू वह जो सर पर चढ़कर बोले" की मूक-घोषणा किया करते थे, उन दिनों के डॉ. नगेन्द्र भी अपनी कविता में ही नहीं अपितु व्यक्तित्व में भी पन्त-प्रभाव से ऊभचूभ थे, फणीश्वरनाथ 'रेणु' का 'मैला आँचल' शीर्षक ही पन्त के "धूल भरा मैला-सा आँचल" से अनुप्राणित नहीं है अपितु शीर्ष भी थाः ये केश फ़ैशन में आ गए थे) इत्यादि के व्यंग्य 1950-55 ई. तक प्रचलित रहे। किन्तु व्यंग्य तो बुद्धू, देवानांप्रिय, हज़रत, ख़लीफ़ा, उस्ताद, गुरु इत्यादि के भी प्रचलित हैं। व्यंग्य जीवन का रामरस है। इससे सन्देह नहीं कि पन्त की 1918-24 ई. मध्य रचित कविताओं, विशेषतः 'पल्लव' के साथ छायावाद को व्यापक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। 'पल्लव' का 'प्रवेश' छायावाद का घोषणापत्र माना गया। निस्सन्देह, छाया या प्रतीक का प्रयोग इसमें हुआ किन्तु यह तो विराट् स्वच्छन्दतावादी विचारधारा-भावधारा का एक शिल्पप्रधान तत्त्व मात्र था। इसे रूपक या अन्योक्ति कहना उचति न होगा क्योंकि यह कोरा अलंकरण न था प्रत्युत अनुभूति से संपृक्त विशद तत्त्व था, किन्तु इस पर समूचे युग का नामकरण उचित नहीं, सारी कविता का ही नहीं प्रत्युत गद्य-साहित्य का भी परिचायक बनाना उचित नहीं! प्रसाद के 'आँसू', उनकी 'लहर', निराला का 'परिमल', पन्त का 'पल्लव' इत्यादि यत्र-तत्र सुन्दर प्रतीकों से सज्जित हैं :

1. पतझड़ था झाड़ खड़े थे सूखी-सी फुलवारी में
किसलय नव-कुसुम विछाकर तुम आए इस क्यारी में

2. झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नीरद-माला
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला। (प्रसादः आँसू)

3. उठ री लघु लघु लोल लहर! करुण की नव[1] अँगराई-सी
मलयानिल की परछाईं-सी इस सूखे तट पर छिटक छहर। (प्रसादः लहर)[2]

4. जग को ज्योतिर्मय कर दो! प्रिय कोमल-पद-गामिनि[3]! मंद उतर
जीवन्मृत तरु-तृण-गुल्मों की पृथ्वी पर हँस-हँस निज पथ आलोकित कर,
नूतन[4] जीवन भर दो!–जग को ज्योतिर्मय कर दो!
(निरालाः 'परिमल' में 'प्रार्थना')

5. अपने ही सुख से चिर चंचल हम खिल खिल पड़ती हैं प्रतिपल,
जीवन के फेनिल मोती को ले ले चल करतल में टलमल!
सुन मधुर मरुत मुरली की ध्वनि गृह-पुलिन नाँघ, सुख से विह्वल,
हम हुलस नृत्य करतीं हिल-हिल खस खस पड़ता उर से अंचल!
चिर जन्म-मरण को हँस-हँस कर हम आलिंगन करतीं पल पल,
फिर फिर असीम से उठ-उठ कर फिर फिर उसमें ही हो ओझल!
(पन्त : 'लहरों का गीत')

प्रतीक या छाया का समावेश कुछेक कविताओं में ही सम्भव है। अनेक कविताओं में शब्द-प्रतीक के भी भव्य प्रयोग दृग्गत होते हैं–आ. शुक्ल के शब्दों में, ''...सुख, आनन्द, प्रफुल्लता, यौवनकाल इत्यादि के स्थान पर उनके द्योतक उषा, प्रभात, मधुकाल; प्रिया के स्थान पर मुकुल; प्रेमी के स्थान पर मधुप; श्वेत या शुभ्र के स्थान पर स्वर्ण; विषाद या अवसाद के स्थान पर अन्धकार, अँधेरी रात या सन्ध्या की छाया, पतझड़; मानसिक आकुलता या क्षोभ के स्थान पर झंझा, तूफ़ान; भाव-तरंग के लिए झंकार; भावप्रवाह के लिए संगीत या मुरली का स्वर इत्यादि।'' प्रसाद के ''मधु राका मुसक्याती थी'' (चैत्र-पूर्णिमा की सन्ध्या थी, अर्थात् चैत्र-पूर्णिमा मुस्कुराई भर थी–खिलखिलाकर हँसी न थी अर्थात् निशीथ[5] नहीं हुआ था), पन्त के ''चाँदनी का स्वभाव में बास, विचारों में बच्चों की साँस'' (स्वभाव शीतलोज्ज्वल, विचार सरल-तरल) जैसे मनोहारी प्रतीक विश्वस्तरीय हैं। निस्सन्देह, प्रतीकवाद या छायावाद का सुकुमार अनुभूतिलोक एवं तद्वद् मनोहारी शिल्प-वैभव जैसा पन्त के काव्य में विवृत होता है वैसा प्रसाद एवं निराला के काव्यों में भी नहीं–महादेवी की तो बात ही क्या, क्योंकि उनका अनुभूतिलोक संकीर्ण है एवं अभिव्यक्तिलोक अपेक्षाकृत कलाशिल्प-विपन्न (महादेवी अनुभूति के आयामों एवं अभिव्यक्ति की कला में प्रसाद, निराला एवं पन्त के निकट भी नहीं पहुँच पातीं)! सीमितः इसीलिए कि आरम्भ में पन्त, प्रसाद, निराला का कवि-क्रम चलता था। प्रतीक या छाया के नियोजन में निराला, पन्त एवं प्रसाद की समता नहीं कर पाते, यद्यपि उनके काव्यामाम स्फीततर हैं एवं वे नव्यता के महत्तर वाहक-नायक सिद्ध हुए हैं। प्रतीक या छाया के नियोजन में कामायनी-रहित प्रसाद पन्त के समकक्ष नहीं लगते। किन्तु प्रतीक या छाया तो केवल एक बिन्दु है और वह भी शिल्पप्रधान। विशद स्वच्छन्दतावादी लोक में प्रसाद, निराला और पन्त का क्रम ही समीचीन होगा। प्रसाद-निराला-पन्त की बृहत्त्रयी में विराट् जीवन-बोध की दृष्टि से निराला अन्यतम हैं, दर्शनपुष्ट काव्य-गरिमा की दृष्टि से प्रसाद अग्रगण्य हैं, मार्मिक शिल्प में पन्त अप्रतिम हैं। प्रायः एकस्तरीय यह बृहत्त्रयी हिन्दी के लिए गर्व-योग्य है।

---

[1] 'नव' शब्द का सार्थक प्रयोग। नव्यता स्वच्छन्दतावादी कविता की एक पहचान है।

[2] ''लहर का आकार-प्रकार, उसका बाह्य रूप कवि का प्रकृत विषय नहीं है, आनन्द की वह लहर ही कवि का एकमात्र तथ्य है जो मनुष्य के मानस-समुद्र में उठा करती है और उसके जीवन को सरस, शीतल और स्निग्ध बनाती है।'' (डॉ. कन्हैयालाल सहलः 'आलोचना के पथ पर')

[3] कविता। सरस्वती।

[4] निराला नूतनना के सर्वायामी वाहक एवं नायक थे।

[5] पूर्णिमा निशीथे जबे दके दिशि परिपूरन हाँसी (रवीन्द्र)।

अद्वैत का सरस-गान रहस्यवाद

मैं कौन हूँ—क्या शरीर मात्र हूँ या कुछ सूक्ष्म भी? क्या मरने पर 'मैं' समाप्त हो जाऊँगा? क्या इस लोक से परे अन्य लोक भी हैं? क्या जड़ जगत् एवं चेतनस्थ प्राण का नियन्त्रक कोई सूक्ष्म तत्त्व भी है? क्या उस तत्त्व से मेरा कोई सम्बन्ध है? सम्बन्ध है तो कैसा? इन प्रश्नों का उत्तर या उद्‌गार ही रहस्यवाद है। सूक्ष्म धर्म, स्थूल मज़हब, सूक्ष्म दर्शन, स्थूल फलसफा, काव्य, कलाएँ अनादि काल से इन प्रश्नों के उत्तर या इनसे संपृक्त उद्‌गार व्यक्त करती रही हैं। रहस्यवाद उदात्त-आशावाद का उद्‌गार है—मैं क्षुद्र-नश्वर शरीर मात्र नहीं प्रत्युत विराट्-शाश्वत आत्मा हूँ, मैं मर कर भी अमर हूँ, मैं रोग-जरा-व्यथा मात्र नहीं प्रत्युत लीला हूँ। मानवता को इससे अपार लाभ हुआ है। कोई अन्य वाद इस पर प्रभाव नहीं डाल सका। भारत रहस्यवाद की आदिभूमि है। ऋग्वेद के ऋषि शुनःशेप उषा से ललित रहस्य-प्रश्न करते हैं (हे कथनप्रिय उषा! तुम्हार आलिंगन करनेवाला पुरुष कौन-सा है?)

कस्त उषः! कथप्रिये! भुज मर्तोअमर्त्ये?
कं नक्षसे विभावरि??

ऋषिका वाक् 'अहं रुद्रः', 'अहं आदित्य', 'अहं मित्रावरुणोभा', 'अहं राष्ट्री' इत्यादि के उद्‌गार व्यक्त करती हैं।

क्वासि? कस्मै देवाय? की टेर चिरन्तन है; रहस्यवाद चिरन्तन है। रहस्यवाद न उतना विलक्षण है न विरूप, जितना कठोर पूर्वाग्रह से ग्रस्त आ. शुक्ल मानते हैं। सरहपा इत्यादि सिद्धों, गोरख इत्यादि नाथों (हठयोगियों या कनफटा योगियों), खुसरो इत्यादि सूफ़ियों, विद्यापति इत्यादि गीतकारों, कबीर इत्यादि सन्तों, जायसी इत्यादि प्रेमाख्यानकारों में तो रहस्य के इस या उस रूप में दर्शन होते ही हैं, सूर इत्यादि कृष्णकाव्यकारों, तुलसी इत्यादि रामकाव्यकारों, देव इत्यादि शास्त्रीयकाव्यकारों में भी वह दुर्लभ नहीं है। स्वच्छन्दतावादी कविता में रहस्यवादी सृजन अंग्रेजी (वर्ड्स्वर्थ इत्यादि), बांग्ला (रवीन्द्र इत्यादि) प्रभृति मे भी प्राप्त है। प्रसाद, निराला पन्त, महादेवी इत्यादि ने मनोहारी रहस्यकाव्य-रचना की है :

वह विराट् था हेम घोलता नया रंग भरने को आज;
"कौन?" हुआ यह प्रश्न अचानक और कुतूहल का था राज।....
हे अनन्त रमणीय! कौन तुम? यह मैं कैसे कह सकता?
कैसे हो? क्या हो? इसका तो भार विचार न सह सकता।
(प्रसाद : कामायनी—आशा सर्ग)

मधु राका मुसक्याती थी पहले देखा जब तुमको
परिचित से जाने कब के तुम लगे उसी क्षण हमको।
(प्रसाद : आँसू)

तुम हो कौन और मैं क्या हूँ? इसमें क्या है धरा, सुनो।
मानस जलधि रहे चिर चुंबित—मेरे क्षितिज! उदार बनो
(प्रसाद : लहर)

अंधकार पर इतना प्यार, क्या जाने यह बालक का अविचार
बुद्ध का या कि साम्य-व्यवहार! तुम्हारा करता है गतिरोध
पिता का कोई दूत अबोध—किसी पत्थर से टकराते हो;
फिरकर जरा ठहर जाते हो; उसे जब लेते हो पहचान—
(निराला : परिमल—'प्रपात के प्रति')

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार चकित रहता शिशु-सा नादान
विश्व के पलकों पर सुकुमार विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने नक्षत्रों से कौन निमंत्रण देता मुझको मौन!....
देख वसुधा का यौवन-भार गूँज उठता है जब मधुमास,

विधुर उर के से मृदु उद्गार कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,[1]
न जाने सौरभ के मिस कौन सँदेशा मुझे भेजता मौन!
(पन्त : पल्लव—'मौन-निमन्त्रण')

एक छवि के असंख्य उडगन, एक ही सब में स्पंदन;
एक छवि के विभात में लीन, एक विधि के अधीन!....
एक ही तो असीम उल्लास विश्व में पाता विविधाभास;
तरल जलनिधि में हरित विलास, शान्त अंबर में नील विकास;

वही उर-उर में प्रेमोच्छ्वास काव्य में रस, कुसुमों में वास;
अचल तारक पलकों में हास लोल लहरों में लास!
वही प्रजा का सत्य स्वरूप हृदय में बनता प्रणय अपार;
लोचनों में लावण्य अनूप, लोकसेवा में शिव अविकार;....
(पन्त : पल्लव—'परिवर्तन')

मूक प्रणय से, मधुर व्यथा से, स्वप्नलोक के से आह्वान,
वे आए चुपचाप सुनाने तब मधुमय मुरली की तान!
(महादेवी : नीहार)

जब असीम से हो जाएगा मेरी लघु सीमा का मेल,
देखोगे तुम देव! अमरता खेलेगी मिटने का खेल!
(महादेवी : नीहार)

मधुर मधुर मेरे दीपक! जल।
युग-युग, प्रति दिन, प्रति क्षण, प्रति पल
प्रियतम का पथ आलोकित कर!....
(महादेवी : दीपशिखा)

रहस्यवाद के निम्नलिखित रूप हैं :

1. विशुद्ध साधनात्मक-रहस्यवाद, जो वैदिक ऋषि शुनःशेप, वैदिक ऋषिका वाक् इत्यादि तथा याज्ञवल्क्य, उद्दालक, श्वेताश्वतर इत्यादि औपनिषदिक महर्षियों के बृददारण्यक, छान्दोग्य, श्वेताश्वतर उपनिषदों में प्राप्त होता है—साधनात्मक-रहस्यवाद का सार-संक्षेप ईशावास्योपनिषद् में देखा जा सकता है।

2. अहंप्रेरित-साधनात्मक-रहस्यवाद, जो कबीर, नानक इत्यादि में प्राप्त होता है, जिसका उद्गम उपनिषद् में है।

3. मधुर-रहस्यवाद, जो भारतीय अद्वैतवाद की प्रेरणा से मंसूर, राबिया इत्यादि अरबी, रूमी इत्यादि फ़ारसी सूफ़ी फ़क़ीर-शायरों में प्राप्त होता है, जायसी इत्यादि हिन्दी के सूफ़ी प्रेमाख्यानकारों में प्राप्त होता है।

4. लीलामूलक-रहस्यवाद, जो भागवत, गीतगोविन्दम् इत्यादि से होता विद्यापति, सूर, हरिदास, हित हरिवंश, देव इत्यादि में प्राप्त होता है (जिसके दार्शनिक निम्बार्क, वल्लभ, चैतन्य इत्यादि हैं)।

5. काल्पनिक-रहस्यवाद, जो साधनात्मक, अहंलिप्त-साधनात्मक, मधुर एवं लीलामूलक सभी रहस्यवाद-रूपों से भी संपृक्त है एवं पाश्चात्य प्रभाव से भी, जो रवीन्द्र, प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि में प्राप्त होता है।

स्वच्छन्दतावादी रहस्य-कवियों में प्रसाद एवं पन्त बौद्धिक एवं तर्कसंगत होने के कारण विशेष प्रभावी हैं। 'आँसू' आत्मपरक-विरहकाव्य है किन्तु उसके रहस्य-बिन्दु सर्वथा मनोहारी हैं। 'लहर' के रहस्योद्गार प्रायः स्वकीय प्रेम में बद्ध हैं किन्तु यत्र-तत्र उनका परा-संपृक्त रूप अतीव प्रभावी है। 'कामायनी' का रहस्यवाद प्रौढ़ एवं गहन है। पन्त रहस्यवादी नहीं रहे किन्तु उन्होंने

---

[1] महान् सूक्ष्मोपमा।

'मौन-निमन्त्रण' एवं 'परिवर्तन' में बौद्धिक एवं तर्कसंगत रहस्यवाद का सुन्दर निरूपण किया है। निराला 'प्रपात के प्रति', 'तुम और मैं', 'कौन तम के पार?—रे, कह!' इत्यादि कविताओं में त्रिगुणातीत रहस्यमय के निगूढ़ गान गाते हैं। महादेवी का रहस्यवाद रवीन्द्र, प्रसाद, निराला एवं पन्त से बहुत प्रभावित है तथा प्रायः सर्वत्र आत्मपरक-विरहपीड़ाकाव्य में ही विवृत हुआ है।

स्वच्छन्दतावादी रहस्यकाव्य का हिन्दी-साहित्य में उच्च स्थान है। कबीर, नानक और जायसी के बाद प्रसाद, निराला और पन्त ही हमारे अग्रगण्य रहस्यवादी कवि हैं, चूँकि मीराँ (मीरा) का रहस्यवाद स्पष्टतः भक्तिमूलक है अतः महादेवी हमारी सर्वोत्कृष्ट रहस्यवादी कवयित्री हैं क्योंकि ताज बेग़म मीराँ-वत् भक्तिप्रधान हैं तथा सुभद्रा की रहस्य में रुचि न थी।

अपूर्व प्रकृतिचित्रण

बौद्धिककाल के सन्धियुग में द्विजदेव ने पारम्परिक प्रकृतिचित्रण में नव्यता लाने का यत्न किया, सुधारवादी युग में जगमोहनसिंह ने विशुद्ध प्रकृतिचित्रण में रुचि दिखलाई, किन्तु वस्तुतः स्वतन्त्र एवं उत्कृष्ट प्रकृतिचित्रण आदर्शवादी युग में ही दृग्गत हुआ है जिसमें श्रीधर पाठक, लोचनप्रसाद पांडेय एवं रामनरेश त्रिपाठी ने अपूर्व प्रकृतिकाव्य की सृष्टि की, जिसका चरम उत्कर्ष स्वच्छन्दतावादी युग में प्रसाद, निराला एवं पन्त के द्वारा हुआ। हरिऔध ने प्रकृति का स्फीत चित्रण किया है। हिन्दी का प्रकृतिकाव्य अतीव सम्पन्न है, जिसका कारण तुलसी, सूर, जायसी, केशव, आलम, पद्माकर, द्विजदेव, भारतेन्दु, जगमोहनसिंह, श्रीधर पाठक, हरिऔध, रत्नाकर, लोचनप्रसद पांडेय, रामनरेश त्रिपाठी, प्रसाद निराला, पन्त, अज्ञेय इत्यादि का विविधदिशागत स्फीत सृजन है। निस्सन्देह, बौद्धिककालीन प्रकृतिकाव्य अभूतपूर्वतः सम्पन्नतर है, जिसके प्रधान कवि श्रीधर पाठक, लोचनप्रसाद पांडेय एवं पन्त हैं। पन्त हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रकृति-कवि हैं, जिन्हें निराला ने 'प्रकृति का सुकुमार कवि' कहा है, किन्तु जिनके आयाम पर्याप्त स्फीत हैं।

प्रकृति जीवन से सर्वत्र एवं आद्यन्त संपृक्त रही है, अतः प्राचीन एवं मध्य कालों के कवियों को पृथक् रूप से प्रकृति-काव्य रचने की आवश्यकता का अनुभव ही नहीं हुआ। वाल्मीकि, कालिदास, माघ इत्यादि वर्ड्स्वर्थ, रवीन्द्र, पन्त इत्यादि से भी श्रेष्ठतर प्रकृति-कवि हैं, किन्तु इन्हें पृथक् एवं स्वतन्त्र प्रकृतिचित्रण का ध्यान ही नहीं आया जो ठीक भी था, क्योंकि प्रकृति इनके साथ-साथ चलती थी, इनकी साँस-साँस में रमती थी, अतः इन्हें किसी कृत्रिमता की अनुभूति ही नहीं हो सकती थी। आधुनिक विश्व की यन्त्रांधता ने दार्शनिकों, कलाकारों एवं कवियों की ही नहीं प्रत्युत वैज्ञानिकों, राजनीतिजीवियों एवं प्रशासकों तक की आँखें खोलीं और उन्होंने देखा कि प्रकृति का विनाश हो रहा है, जो जीवन का विनाश तक कर सकता है, क्योंकि प्रकृति एवं जीवन अन्योन्याश्रित हैं। औद्योगिक क्रान्ति (18वीं सदी) के साथ विश्व के आधुनिककाल का आरम्भ हुआ। यन्त्रांधता के आरम्भ में ही भविष्यद्रष्टा रूसो (1712-78 ई.) ने मानव को कृत्रिमजीवनवाद से सचेत करते हुए प्रकृतिवाद का प्रतिपादन किया तथा वे स्वच्छन्दतावाद के पितामह का गौरव प्राप्त करके अमर हो गए। औद्योगिक क्रान्ति के नेता एवं विश्व की प्रमुख पूँजीवादी साम्राज्यवादी शक्ति ग्रेट ब्रिटेन के ब्लेक, कॉलरिज, वर्ड्स्वर्थ प्रभृति चिन्तक-कवियों ने रूसो के दर्शन को भावनाओं से सजाया। कालान्तर में, इमर्सन और थोरो, हाइने, रस्किन, टॉलस्टॉय इत्यादि ने सहजजीवनवाद अथवा मानवश्रमवाद का जो प्रतिपादन किया वह स्वच्छन्दतावादी चिन्ता का ही विकास था। रवीन्द्र, गाँधी, पूर्णसिंह[1], प्रसाद[2] इत्यादि ने इसका भरपूर प्रतिपादन किया है। विकास की प्रतीक चिमनियाँ सर्वनाश का काला ज़हर उगल रही हैं। प्राणिमात्र ख़तरे में है। सम्प्रति वैज्ञानिक यह बता रहे हैं कि एक कार प्रति किलोमीटर कितनी प्राणवायु[3] पीती है (पेट्रोल या अन्य तत्त्व तो उसको स्फुरित करते हैं, वास्तविक गति तो प्राणवायु ही प्रदान करती है)—वह प्राणवायु जो प्राणियों का अधिकार है, वाहन लूट रहे हैं! प्रत्येक प्रक्षेपास्त्र, यान, शक्तिचालित वाहन मानवों, पशुओं, पक्षियों, तृणगुल्मों, वृक्षों, वनों, नदियों, पर्वतों इत्यादि से प्राणशक्ति लूट रहा है। सम्प्रति वैज्ञानिक यह बता रहे हैं कि एक सघन सुतरु कितने लाख रुपयों का प्राणवायुदान करता है, कितना प्रदूषण-उन्मूलन करता है। सम्प्रति वैज्ञानिक यह बता रहे हैं कि पशु, पक्षी कितने मानवजीवनोपयोगी हैं। भस्मासुरावतार-राजनीतिजीवी[4] तक इन विषयों पर थोथे भाषण पिलाते रहते हैं (भले ही वननाशी ठेकेदार और घूसख़ोर आरक्षीदल उन्हीं की थैली के चट्टे-बट्टे हों)! मैं अपनी कविता 'पेट' उद्धृत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा :

---

[1] अपने महान् निबन्ध 'मज़दूरी और प्रेम' में।

[2] 'एक घूँट', 'कामना' एवं 'कामायनी' में।

[3] ऑक्सीजन।

[4] मैं 'राजनीतिज्ञ' शब्द का प्रयोग नहीं कर रहा क्योंकि सम्प्रति भारत में 'राज' ही शेष है, 'नीति' नहीं; अतः 'नीतिज्ञ' नहीं।

मैंने देखा :

एक पेट साधारण-सा
लेकिन वह बढ़ने लगा, बढ़ता गया, बढ़ता गया
उसकी टक्कर से पेड़ चरमराने लगे
उसी में समाने लगे
वन-के-वन बिलाने लगे
और वह बढ़ता रहा, बढ़ता गया, बढ़ता गया
सारी नदियों को पीता
झीलों को कर रीता
पर्वतों को पीसता
फाँक-फाँक हींसता
और वह बढ़ता रहा, बढ़ता गया, बढ़ता गया
बढ़ता
बढ़ता
बढ़ता
आसमान से जा लगा, उस पर चोट करने लगा
जिससे आसमान का स्फीत वक्ष फट गया
स्फीत वक्ष फट गया
स्फीत वक्ष फट गया
और
जलते-उबलते लोहू की अनवरत वर्षा
होने लगी
होने लगी
होने लगी।

आज ओज़ोन (अन्तरिक्ष में सूर्य-किरणों का नियन्त्रक प्राणक्षेत्र या जीवन-परत) तक ख़तरे के संकेत कर रही हैं किन्तु पूँजीवादी को इस सबसे क्या लेना-देना! उनको अपने क्षणिक गौरव एवं ऐश्वर्य, भोग एवं विलास से सरोकार है, भावी मानवता से लेना एक न देना दो! आह,

कहाँ गया मेरा आकाश?
तूने लूटा मुझे विकास!

इनके बिना सोचे-विचारे, बिना दूरंदेशी दिखाए, बिना भविष्य की चिन्ता किए विकास-रोग ने गाँव को मटियामेट कर दिया, शहर को जड़ बना दिया :

मत मेटो गाँव! गाँव भाव की छाँव,
शहर तो भाव-सहर[1], घात औ दाँव।

मानव ही नहीं प्रत्युत सारे प्राणियों के नाश का प्रकृति-विरुद्ध केवल पूँजीपतियों और उनके टुकड़ों पर पलनेवाले राजनीतिजीवियों ने 'विकास' के नाम पर खेला तथा दीन-हीन मूढ़बुद्धि जनता को रोज़ी की रोटी के दो टुकड़े देकर बहला लिया। तुर्रा 'प्रकृति पर विजय' का रहा! यद्यपि स्वच्छन्दतावादी युग (1920-40 ई.) में स्थिति इतनी विषम न थी, तथापि द्रष्टा महाकवि प्रसाद ने 'प्रकृति पर विजय' के मूढ़-राग का प्रत्याख्यान किया :

प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब थे भूले मद में;
भोले थे, हाँ तिरते केवल बस विलासिता के नद में।

---

[1] सहरा = रेगिस्तान, मरुभूमि। संसार के सबसे बड़े मरुस्थल का नाम ही सहरा है, जिसे अंग्रेज़ी ने 'सहारा' बना डाला है।

सौन्दर्य प्रकृति की भी प्रकृति है, सौन्दर्य प्रकृति का सार है; सौन्दर्य एवं प्रकृति में द्वैत नहीं है। फिर भी, किशोर पन्त प्रकृति को सौन्दर्य पर वरीयता प्रदानकर अपने भावी–'प्रकृति के कवि' होने की पूर्व-घोषणा करते हैं :

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को!

प्रकृति ईश्वर का व्यक्त रूप है। यदि कोई मुझसे अव्यक्त माने जानेवाले ईश्वर और व्यक्त प्रकृति में एक का चयन करने को कहे तो, इस द्वैत (पश्य देवस्य काव्यं। न ममार न जीर्यति।।) को स्थूल समझते हुए भी, मैं प्रकृति को वरीयता प्रदान करूँगा–मैं सातवें आसमान के अल्लाह से पहले लदे-बदे सजे-बजे नीम के पेड़ को पूजूँगा जो मुझे स्वस्थ-स्वच्छ प्राणवायु प्रदान करता है, जो पर्यावरण-परिष्कारक है, कलरव का उदार दानी है, और पत्ती, शाखा-प्रशाखा, छाल, लकड़ी इत्यादि के स्थूल उपहार तो देता है; भाड़ में जाएँ कल्पित दिव्य-तत्त्व एवं व्यक्ति, मैं अपनी प्रत्यक्ष पूतकारी गंगा को पहले मस्तक झुकाता हूँ (जिसके जल में कीड़े नहीं पड़ते)!

स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रकृति-दर्शन को विवृत करनेवाले प्रसाद एवं पन्त (सृजन-क्रम से पन्त एवं प्रसाद) रूसो एवं टॉल्स्टॉय, ब्लेक एवं वर्ड्स्वर्थ के भारतीय उत्तराधिकारी हैं। निराला ने प्रकृतिचित्रण तो किया है, किन्तु प्रकृति-दर्शन नहीं प्रस्तुत किया। महोदवी का स्तर प्रसाद, निराला एवं पन्त का नहीं है तथा प्रकृतिचित्रण एवं प्रकृतिदर्शन पर उनका सृजन महत्त्वपूर्ण नहीं हो पाया। युग के अन्य कवियों माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा'नवीन', 'सुभद्राकुमारी चौहान, राजकुमार वर्मा 'कुमार'[1], भगवतीचरण वर्मा, जनार्दनप्रसाद 'द्विज', मोहनलाल महतो 'वियोगी' इत्यादि प्रकृति पर कुछ विशेष नहीं रच सके।

स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति के भव्य आलम्बनात्मक, उद्दीपनात्मक एवं रहस्यात्मक चित्रण किए हैं जो विश्वस्तरीय हैं– प्रसाद ने तो वैज्ञानिक-प्रकृतिचित्रण की नई दिशा के संकेत-से भी दिए हैं। युग के कारण इन कवियों ने उपदेशात्मक एवं अलंकृत प्रकृतिचित्रण नहीं किए।

आज का विकट उपभोक्तावाद अठारहवीं सदी (ई.) की औद्योगिक क्रान्ति का उत्तराधिकारी है और उत्तर-आधुनिकतावाद इसी सदी के पूर्व में प्रकृतिवाद और उपप्रकृतिवाद अधिक आवश्यकताओं और ऐश्वर्य पर आधृत है। उत्तर आधुनिकता कंक्रीट वन से दूर सहज वन या द्वीप पर है।

आलम्बनात्मक प्रकृतिचित्रण की दृष्टि से प्रसाद, निराला एवं पन्त को श्रीधर पाठक, लोचनप्रसाद पांडेय एवं रामनरेश त्रिपाठी की परम्परा का सुयोग्य विकासक कहा जा सकता है। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

हे सागर संगम अरुण नील! अतलांत महागंभीर जलधि–
तजकर अपनी यह नियत अवधि लहरों के भीषण हासों में,
आकर खारे उच्छ्वासों में, युग-युग को मधुर कामना के–
बंधन को देता जहाँ ढील।... (प्रसाद : लहर)

हा-हा-कार हुआ क्रंदनमय कठिन कुलिश होते थे चूर;
हुए दिंगत वधिर, भीषण रव बार बार होता था क्रूर।....
दिग्दाहों से धूम उठे, या जलधर उठे क्षितिज तट के!
सघन गगन में भीम प्रकंपन, झंझा के लगते झटके।....
(प्रसाद : कामायनी)

सिंधु के अश्रु!
धरा के खिन्न दिवस के दाह!
विदाई के अनिमेष नयन!
मौन उर में चिह्नित कर चाह

---

[1] कालान्तर में 'कुमार' उपनाम हटा दिया।

छोड़ अपना परिचित संसार—
सुरभि का कारागार
चले जाते हो सेवा-पथ पर
तरु के सुमन!
सफ़ल करके
मरीचिमाली का चारु चयन।
(निराला : बादल-राग)

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी—स्नेह-स्वप्न-मग्न—
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जूही की कली,
दृग बँद किए, शिथिल, —पत्रांक में,
वासंती[1] निशा थी....
(निराला : जूही की कली)

शांत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल!
अपलक अनंत, नीरव भूतल!
सैकत-शय्या पर दुग्ध-धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल
लेटी है श्रांत, क्लांत, निश्चल!
तापस-बाला गंगा निर्मल, शशि मुख से दीपिक मृदु करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर, लहराता तार-तरल सुंदर,
चंचल अंचल-सा नीलांबर।
साड़ी की सिकुड़न-सी जिस पर, शशि की रेशमी विभा से भर;
सिमटी है वर्तुल, मृदुल लहर।
(पन्त : नौका-विहार)

सर् सर् मर् मर्
रेशम के से स्वर भर,
घने नीम दल
लंबे, पतले, चंचल,
श्वसन-स्पर्श से
हिल हिल उठते प्रति पल!
(पन्त : झंझा में नीम)

प्राणिरहित प्रकृति भयावह है, निरुद्‌देश्य संसृति है। चन्द्रमा में भी एक शुष्क मरुसौन्दर्य विद्यमान है—किन्तु वह किस काम का? मंगल में कभी जीवन रहा होगा? पर उपयोग क्या? कविता के लिए, कला के लिए प्रकृति जीवन-सापेक्ष है, जीवन-निरपेक्ष नहीं। यही ठोस और उचित कारण है कि प्रकृति-कविता में सर्वश्रेष्ठ भारत में अधिकतर प्रकृति-कविता उद्‌दीपनात्मक ही हुई है। स्वच्छन्दतावादी कवियों ने भी प्रचुर परिमाण में उद्‌दीपनात्मक प्रकृतिचित्रण किया है :

धवल मनोहर चंद्र बिम्ब से अंकित सुंदर स्वच्छ निशीथ;
जिसमें शीतल पवन गा रहा पुलकित हो पावन उद्‌गीथ।
नीचे दूर दूर विस्तृत था उर्मिल[2] सागर व्यथित अधीर;

---

1. जूही वसन्त में नहीं खिलती। काल-दोष।
2. 'ऊर्मिल' ठीक होता।

अंतरिक्ष में व्यस्त उसी सा रहा चंद्रिका निधि गंभीर।
मधुमय वसंत जीवन वन के, बह अंतरिक्ष की लहरों में;
कब आए थे तुम चुपके से रजनी के पिछले पहरों में!
क्या तुम्हें देखकर आते यों, मतवाली कोयल बोली थी!
उस नीरवता में अलसाई कलियों ने आँखें खोली थीं!
जब लीला से तुम सीख रहे कोरक कोने में लुक रहना!
तब शिथिल सुरभि से धरणी में बिछलन न हुई थी? सच कहना।
(प्रसाद : कामायनी)

ऐ निर्बन्ध!–
अंध-तम-अगम-अनर्गल-बादल!
ऐ स्वच्छंद!–
मंद-चंचल-समीर-रथ पर उच्छृंखल!
ऐ उद्दाम!
अपार कामनाओं के प्राण!
वाधारजित विराट्!
ऐ विप्लव के प्लावन!
सावन-घोर गगन के
ऐ सम्राट्!
ऐ अटूट पर छूट टूट पड़नेवाले–उन्माद!
विश्व-विभव को लूट-टूट लड़नेवाले–अपवाद!....
भय के मायामय आँगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर!
(निराला : बादल-राग)

....रश्मि-चमत्कृत स्वर्णालंकृत नवल प्रभात,
पुलकाकुल अलि-मुकुल-विपुल हिलते तरु-पात,
हरित ज्योति-जल-भरित सरित, सर, प्रखर प्रपात,
वह सर्वत्र व्याप्त जीवन से अलक विचुंबित सुखकर बात,
जगमग जग में पग पग एक निरंजन आशीर्वाद,
जहाँ नहीं कोई भय-बाधा, कोई वाद-विवाद,
बढ़ जाता
प्रति-श्वास-शब्द-गति से उस ओर,
जहाँ हाय, केवल श्रम, केवल श्रम,
केवल श्रम, कर्म कठोर–
(निराला : विस्मृत भोर)

देखता हूँ जब उपवन पियालों में फूलों के
प्रिये! भर भर अपना यौवन पिलाता है मधुकर को;
नवोढ़ा बाल-लहर अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुक कर सरकती है सत्वर;
अकेली आकुलता सी प्राण! कहीं तब करती मृदु आघात,
सिहर उठता कृश गात, ठहर जाते हैं पग अज्ञात!
(पन्त : आँसू से)

चिर अविचल वह तारक अमंद!
जानता नहीं वह छंद-बंध!
वह रे अनंत का मुक्त मीन, अपने असंग सुख में विलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर-नवीन।
निष्कंप शिखा-सा वह निरुपम, भेदता जगत-जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र, वह सम!
गुंजित अलि-सा निर्जन अपार, मधुमय लगता घन अंधकार
हलका एकाकी व्यथा-भार!
जगमग-जगमग नभ का आँगन लद गया कुंद कलियों से घन,
वह आत्म और यह जग-दर्शन!
(पन्त : एक तारा)

निशा को धो देता राकेश चाँदनी में जब पलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास बता दो मधुमदिरा का मोल,
झटक जाता था पागल वात धूलि में तुहिन-कणों के हार,
सिखाने जीवन का संगीत तभी तुम आए थे इस पार।
(महादेवी : नीहार)

यद्यपि अनुसन्धान स्वच्छन्दतावादी प्रकृतिचित्रण में अलंकृत-प्रकृतिचित्रण एवं उपदेशात्मक-प्रकृतिचित्रण तक के अनेक निदर्शन प्राप्त कर सकता है, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि इसमें आलम्बनात्मक-प्रकृतिचित्रण एवं उद्दीपनात्मक-प्रकृतिचित्रण ही अधिक हुआ तथा इन दो के अनन्तर रहस्यात्मक प्रकृतिचित्रण को स्थान प्राप्त होगा। जहाँ तक वैज्ञानिक-प्रकृतिचित्रण[1] का सम्बन्ध है, केवल प्रसाद ने 'कामायनी' के चिन्ता सर्ग में थोड़ी-सी रुचि दिखलाई है। उद्दीपनात्मक-प्रकृतिचित्रण इतना सार्वभौम एवं इतना स्वाभाविक है कि आलम्बनात्मक-प्रकृतिचित्रण एवं रहस्यात्मक-प्रकृतिचित्रण भी उसके प्रभाव से शतशः मुक्त नहीं हो पाते—जीवन ही प्रकृति का ग्राहक एवं नायक है, जीवन ही रहस्य का आधार एवं आगार है; कोई प्रकृतिचित्रण उससे शतशः असंपृक्त नहीं रह सकता और रहे भी क्यों? फिर भी, अध्ययन की स्फीति एवं सुविधा के लिए वर्गीकरण का महत्त्व निर्विवाद है। स्वच्छन्दतावादी कवियों के अपूर्व रमणीय एवं उत्कृष्ट रहस्यात्मक-प्रकृतिचित्रण के कतिपय निदर्शन प्रस्तुत हैं :

अणुओं को है विश्राम कहाँ यह कृति मय वेग भरा कितना;
अविराम नाचता कंपन है, उल्लास सजीव हुआ कितना!
इस नृत्य-शिथिल निश्वासों की, कितनी है मोहमयी माया,
जिनसे समीर छनता छनता बनता है प्राणों की छाया।....
मैं देख रहा हूँ जो कुछ भी,
वह सब क्या छाया उलझन है?
सुंदरता के इस पर्दे में
क्या अन्य धरा कोई धन है? (प्रसाद : कामायनी)
किस अनंत का नीला अंचल हिला-हिला कर
आती हो तुम सजी मंडलाकार?
एक रागिनी में अपना स्वर मिला-मिला कर
गाती हो ये कैसे गीत उदार?
सोच रहा है हरा क्षीण अंबर-कटि में शैवाल,
गातीं आप, आप देतीं सुकुमार करों से ताल।

---

[1] न्यायाधीश-कवि रामचन्द्र शुक्ल ने 'अवंतिका' एवं 'अरुणिमा' संग्रहों में गहन गम्भीर वैज्ञानिक-प्रकृतिचित्रण किया है। इन नई कविताओं का सृजनकाल 1985-90 ई. है।

चंचल चरण बढ़ाती हो,
किससे मिलने जाती हो?
(निराला : तरंगों के प्रति)

प्रथम रश्मि का आना रंगिणि! तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ हे बाल-विहंगिनि! पाया तूने यह गाना?
सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में पंखों के सुख में छिपकर,
झूम रहे थे धूम द्वार पर प्रहरी से जुगुनू नाना;
शशि किरणों से उतर-उतर कर भू पर कामरूप नभचर
नवल-नवल कलियों का मृदु मुख सिखा रहे थे मुसकाना;
स्नेहहीन तारों के दीपक श्वास-शून्य थे तरु के पात
विचर रहे थे स्वप्न-अवनि में, तम ने था मंडल ताना;
कूक उठी सहसा तरुवासिनि गा तू स्वागत का गाना,
किसने तुझको अंतर्यामिनि! बतलाया उसका आना?
(पन्त : प्रथम रश्मि)

वह तारक-माला उनकी, चल विद्युत् के कंकण मेरे हों!
झरते नित लोचन मेरे हों! ले ले तरल रजत औ कंचन,
निशि-दिन ने लीपा जो आँगन, वह सुषमामय नभ उनका,
पल पल मिटते नव घन मेरे हों! झरते नित लोचन मेरे हों!

पद्मराग-कलियों में विकसित, नीलम के अलियों से मुखरित,
चिर सुरभित नंदन उनका, यह अश्रु-भार-नत तृण मेरे हों!
झरते नित लोचन मेरे हों! (महादेवी : नीरजा)

प्रसाद का रहस्यात्मक-प्रकृतिचित्रण सहज है, निराला का दर्शनगम्य, पन्त का तात्कालिक एवं ’च.5ग्महादेवी का कृत्रिम। स्पष्टतः, प्रर का रहस्यात्मक-प्रकृतिचित्रण साधारणीकरण की दृष्टि से प्रशस्य है, निराला का बोझिल, पन्त का प्रसन्न एवं महादेवी का अवसादपूर्ण-सा। महादेवी कृत्रिम जीवन जीती रहीं—अभिजातवाद में आरोपित-निर्धनसंवेदनवाद, विवाहवाद में द्वन्द्वात्मक-एकलवाद, नेतृसम्पर्कवाद में कथित-निस्संगतावाद; अतः उनकी कविता कृत्रिम एवं अवसादपूर्ण हो गई है। रहस्यात्मक-प्रकृतिचित्रण का विशद रूप प्रसाद, निराला एवं पन्त के सृजन में ही दृग्गत होता है।

अखिल भारतीय स्तर पर रवीन्द्र का रहस्य काल्पनिक होने के कारण आकर्षक तो है किन्तु गहनतर नहीं, अरविन्द का रहस्यवाद साधनापुष्ट-अध्ययनमूलक होने के कारण गहनतर तो है किन्तु आकर्षक नहीं। रवीन्द्र एवं अरविन्द ने अंग्रेज़ी में काव्यसृजन एवं गद्यग्रन्थरचना के कारण सारे विश्व को प्रभावित किया। प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि भी उनसे प्रभावित हुए। महादेवी पर यह प्रभाव बहुत अधिक है, जबकि प्रसाद-निराला-पन्त की बृहत्त्रयी में अस्मिता के प्रभावी दर्शन यत्र-तत्र-सर्वत्र होते हैं।

गहन नारी-संवेदन

बीसवीं सदी की हिन्दी-कविता की सबसे बड़ी विशेषता है सर्वायामी नारी-संवेदन, जिसके पुरोधा थे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जिन्होंने आयु होते हुए भी दूसरा विवाह नहीं किया अर्थात् निस्सन्तान मरने तक की चिन्ता न की तथा निवास के सामने स्वर्गता पत्नी की मूर्ति प्रतिष्ठित की और वह भी सरस्वती एवं लक्ष्मी के मध्य में जिसके लिए उनके ग्राम दौलतपुर (जनपद रायबरेली) के लोगों ने उनका परिहास[1] तक किया, किन्तु जिनका प्रभाव अपरिसीम सिद्ध हुआ। उनके पट्ट शिष्य मैथिलीशरण के लक्ष्मण ऊर्मिला से

---

[1] "नैतिकता के आतंक से ग्रस्त, नीरस और अक्खड़" नारी-चरित्रों के विरोधी तथा "जीवन की तरल रसिकता" के समर्थक डॉ. नगेन्द्र ने 1960 ई. में मुझसे इस मूर्ति की चर्चा परिहास के साथ ही की थी!

अपने लिए 'दास' शब्द का प्रयोग करते हैं (कालिदास के शिव पार्वती से ''तवास्मि दासः'' तथा तुलसीदास के राम का सीता-सन्दर्भ में ''बैठि विलंब लौ कंटक काढ़े'' का स्मरण आता है) :

दास बनने का बहाना किसलिए? क्या मुझे दासी कहाना इसलिए?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो, और देवी ही मुझे रक्खो, अहो!
(साकेत, प्रथम सर्ग)

कालान्तर में, राष्ट्रकवि ने बुद्ध के पलायन पर 'यशोधरा' से ''चोरी-चोरी गए'' शब्दों का प्रणम्य प्रयोग ही नहीं कराया प्रत्युत शुद्धोदन से गम्भीर घोषणा भी कराई, ''गोपा बिना गौतम भी ग्राह्य नहीं मुझको।''

आचार्य के शिष्यतत्त्व के इच्छुक प्रसाद एवं निराला तथा उन पर श्रद्धालु पन्त एवं महादेवी का नारी-संवेदन विकास के गहन पथ पर गतिशील रहा। यद्यपि कल्पनाप्रियता, प्रकृतिप्रेम, रहस्यभावना एवं भाषा-प्रांजलता की दृष्टियों से भी स्वच्छन्दतावादी कविता आदर्शवादी कविता का सहज एवं प्रसन्न विकास है तथा वस्तुपरक अध्येता को प्रतीत भी होती है, तथापि नारी-संवेदन की दृष्टि से यह बिन्दु सर्वाधिक स्पष्ट हो जाता है। आदर्शवादी युग के प्रियप्रवास की सहज-सेवामयी राधा ही स्वच्छन्दतावादी युग की कामायनी की सहजसमर्पणमयी श्रद्धा का रूप धारण करती हैं!

प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि ने नारी के नैसर्गिक- समर्पणमय रूप का चित्रण किया है, अज्ञेय की कृत्रिम नारी (विशेषतः 'नदी के द्वीप' की रेखा) का नहीं (इसीलिए राधा, ऊर्मिला, श्रद्धा की कोटि-कोटि नर-नारी आज भी जानते-मानते हैं किन्तु रेखा को केवल शोध-छात्र)—और अज्ञेय ने भी 'रोज़' (कहानी) में रोज़ की नारी का मार्मिक चित्रण किया था! स्वातन्त्र्योत्तर कविता में भी दिनकर की 'उर्वशी', धर्मवीर 'भारती' की 'कनुप्रिया' (राधा) इत्यादि में सहज नारी के ही दर्शन होते हैं। विश्व-नारी एक अखंड है। टुच्चे सत्ता-कीट नेताओं ने मतलोभ में नर-नारी-द्वन्द्व को भी वैसे ही उभारा है जैसे समाजखंडनकारी जातिवाद को, अमानवतावादी बहुसंख्यक-अल्पसंख्यक-घृणावाद को। किन्तु वागर्थविवसंपृक्त-श्रद्धाविश्वासरूप नर-नारी के अर्द्धनारीश्वर-प्रतीक को ये राष्ट्र को तोड़नेवाले अपराधी तक तोड़ नहीं पाए। संसार के संयुक्त राज्य, अतीतगत सोवियत संघ, ग्रेट ब्रिटेन, फ्रांस, जापान, इस्राइल जैसे सभ्य एवं विकसित देशों के नेताओं ने सीमांतक नीचता के प्रतीक नर-नारी-द्वन्द्व, एकधर्मखंडनवाद इत्यादि का घिनौना प्रयोग नहीं किया। कहीं अल्पसंख्यक शासनाध्यक्ष या नारी-शासनाध्यक्ष या पदादि का शोशा नहीं छोड़ा गया क्योंकि वहाँ सच्ची धर्मनिरपेक्षता एवं सच्चा नारी-जागरण हुआ है जो जीवन के सहज-पथ पर गतिशील है, कृत्रिम कलह-पथ की सृष्टि का अनाचार नहीं कर रहा। प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि का नारी-संवेदन सहज है, कृत्रिम नहीं। वह स्वस्थ भी है, स्वच्छ भी। दिनकर (उर्वशी), धर्मवीर 'भारती' (कनुप्रिया—'अन्धा युग' के निजान्धता-रोग से मुक्त रूप में), अमृतलाल नागर ('बूँद और समुद्र'—विशेषतः वनकन्या के बहस-भरे व्यक्तित्व में) भी प्रायः सहज-नारीसंवेदन के पथ पर ही चले हैं।

प्रसाद की नारी स्वच्छन्दतावादी-आदर्श से ऊभ-चूभ है किन्तु है सहज-नारी ही। निराला का विराट् नारी-संवेदन शक्ति-दर्शन (राम की शक्तिपूजा) से 'बहू' तक तो प्रसरित है ही, बेटी (सरोज-स्मृति) से 'विधवा' तक भी जाता है। निस्सन्देह, निराला का नारी-संवेदन प्रसाद एवं पन्त के नारी-संवेदन से अधिक यथार्थपूर्ण एवं व्यापक है। पन्त का नारी-संवेदन सैद्धान्तिकता से व्यावहारिकता तक का स्पर्श करता है। महादेवी का नारी-संवेदन पृथक् रूप से प्राप्त नहीं हो पाता (यह उनके 'अतीत के चलचित्र', 'शृंखला की कड़ियाँ इत्यादि गद्य-ग्रन्थों में व्यक्त हुआ है) किन्तु उनके 'देव' के प्रति उद्‌गारों में उनका नारी-रूप छिपा नहीं रह सकता। बानगियाँ पेश हैं :

मैं जभी तोलने का करती उपचार स्वयं तुल जाती हूँ,
भुज-लता फँसा कर नर तरु से झूले सी झोंके खाती हूँ।
इस अर्पण में कुछ और नहीं केवल उत्सर्ग छलकता है,
मैं दे दूँ और न फिर कुछ लूँ इतना ही सरल झलकता है।
क्या कहती हो ठहरो नारी! संकल्प अश्रु जल से अपने,
तुम दान कर चुकीं पहले ही जीवन के सोने से सपने।
नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास-रजतनग[1] पगतल में,
पीयूष-स्रोत सी बहा करो जीवन के सुंदर समतल में।
(प्रसाद : कामायनी)

---

[1] कैलास।

मनु! तुम श्रद्धा को गए भूल
उस पूर्ण आत्मविश्वासमयी को उड़ा दिया था समझ तूल...
तुम भूल गए पुरुषत्व-मोह में कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है संबंध बनी अधिकार और अधिकारी की
....हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त,
फूटी स्मिति सीता-ध्यानलीन राम के अधर,
फिर विश्व-विजय भावना हृदय में आई भर,
देखते राम उड़ रहे शलभ ज्यों रजनीचर,
ताटका, सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय, दूषण, खर,
(निराला : राम की शक्तिपूजा)

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी,
वह दीपशिखा-सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल तांडव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की विधवा है।
(निराला : विधवा)

तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगास्नान;
तुम्हारी वाणी में कल्याणि, त्रिवेणी की लहरों का गान!....
तुम्हारी आँखों में कर वास प्रेम ने पाया था आकार!
(पन्त : आँसू की बालिका)

क्या अमरों का लोक मिलेगा तेरी करुणा का उपहार?
रहने दो हे देव! अरे यह मिटने का मेरा अधिकार!
—महादेवी

चिंता क्या है हे निर्मम! बुझ जाए दीपक मेरा;
हो जाएगा तेरा ही पीड़ा का राज्य अँधेरा!!
—महादेवी

नारी की जीवन-ज्वाला में तप कर पुरुष कुन्दन बनता है। सृष्टि के कारण नारी संसार में ईश्वर का स्पष्टतः व्यक्त रूप है। उसके जीवन की चरम सार्थकता है पावन-दाम्पत्यजन्य मातृत्व। मातृत्व की पीड़ा ही नारी का परम आनन्द है। समर्पण दौर्बल्य नहीं, नैर्द्वन्द्व है। नारी भौतिक उन्नति करे, सेवा-लाभ प्राप्त करे, उच्च पदों पर आसीन हो, पुरुषाधीन न हो—यह सब वरेण्य है। किन्तु वह परिणय-वंचित रहे, सन्ततिविहीन रहे—यह उसका दुर्भाग्य है। किलकता शिशु नारी का सर्वोपरि धन है। नारी का प्रिया-रूप प्रेय है, उसका माता-रूप श्रेय है। नारी का प्रेय-श्रेय अन्योन्य है। जीवन के गहरे पारखी प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी इत्यादि इस चरम सत्य को जानते भी थे, मानते भी थे। अमर कथाकार प्रेमचन्द भी इस गहन सत्य से अनभिज्ञ न थे, जैसाकि 'गोदान' के मेहता एवं मालती के संवाद एवं चरित्र स्पष्ट करते हैं। नारी समर्पणमयी है, किन्तु पुरुष भी समर्पणमय हो सकता है, जैसाकि आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी थे, हरिऔध थे, निराला थे, पन्त थे। तभी तो आदर्शवादी युग एवं स्वच्छन्दतावादी युग में अजर-अमर नारी-संवेदन साहित्य का शृंगार बन सका।

राष्ट्रवाद, स्वातन्त्र्य-प्रेम एवं दलित-संवेदन

''उपसर्प मातरंभूमिम्'', ''वयं राष्ट्रे जागृयाम्'' एवं ''अहं राष्ट्री'' के वैदिक स्वरों से ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'' के स्वतन्त्र एवं ''धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे'' के पौराणिक उद्घोषों तक प्रसरित प्राचीन भारतीय राष्ट्रकाव्य भारत को राष्ट्रवाद का प्रथम उद्गाता प्रमाणित करता है। अथर्ववेद का भूमि-सूक्त विश्व-साहित्य में देशप्रेम एवं राष्ट्रवाद का प्रथम काव्य है, जिसके प्रणेता

महर्षि अथर्वा मानवजाति के प्रथम देशभक्त ऋषि एवं प्रथम राष्ट्रकवि हैं। ''माता भूमिः पुत्राऽहं पृथिव्याः'' के गायक अथर्वा की परम्परा पुराणों, कालिदास, तुलसीदास, भारतेन्दु, मैथिलीशरण इत्यादि तक प्रसरित है। गुण एवं परिमाण में जितना देशभक्ति-काव्य भारत में रचा गया है उतना विश्व के किसी अन्य देश में नहीं, जिसका कारण भारत की सर्वविध अद्वितीयता है।

आधुनिक भारतीय राष्ट्रवाद-शंखनादकर्ताओं के आदिपुरुष ऐतिहासिक 'वन्देमातरम्' के प्रणेता वंकिमचन्द्र चटर्जी (बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय) थे, जिनके अनुयायियों में रवीन्द्र, इक़बाल, भारती, मैथिलीशराण इत्यादि प्रमुख हैं (इनमें इक़बाल कालान्तर में साम्प्रदायिक हो गए थे)। आधुनिक हिन्दी का राष्ट्रकाव्य भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी इत्यादि के द्वारा प्रेरित-सृजित है तथा भारत की ही नहीं अपितु विश्व की कविता में बेजोड़ है। स्वर्णातीतवाद, वर्तमानव्यथावाद एवं नवनिर्माणवाद हिन्दी-राष्ट्रकाव्य के प्रधान तत्त्व हैं। स्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रसाद एवं निराला ने हिन्दी-राष्ट्रकाव्य को सम्पन्न किया है, पन्त की देन इस दिशा में विशिष्ट नहीं है तथा महादेवी की नगण्यवत् है। राष्ट्र एवं उसके दैन्य-दारिद्र्य पर क्रियात्मक एवं तलस्पर्शी दृष्टि की क्रमशः अल्पता एवं अभाव के कारण भी पन्त एवं महादेवी की कविता प्रसाद एवं निराला की कविता के युगबोध एवं युगविवृति की समता नहीं कर पाती। पन्त ने कालान्तर में युगबोध-विवृति पर ध्यान दिया किन्तु उनका संवेदन प्रयत्नज होने के कारण तलस्पर्शी न बन पाया। महादेवी का संकीर्ण कवि-व्यक्तित्व अपने दुखड़े रोने के बाद मूर्च्छित एवं म्रियमाण हो गया। महादेवी की कविता में राष्ट्र की परतन्त्रता, दरिद्रता, उसके शोषण, प्रपीड़न इत्यादि को प्रायः कोई स्थान नहीं प्राप्त हो सका। उनकी अस्मिता भी करुणा में बद्ध रही। प्रसाद, निराला और पन्त जैसे विराट् कवियों के साथ महादेवी के संकीर्ण कवि का नाम रखना सर्वथा अयुक्तियुक्त है। निस्सन्देह, माखनलाल, नवीन, दिनकर एवं अज्ञेय महादेवी के स्तर के कवि हैं।

प्रसाद की कविता में राष्ट्रवाद अथवा देशप्रेम का स्तर अतीव प्रभावी है, निराला की कविता में राष्ट्रवाद अथवा देशप्रेम का स्वर अतीव व्यापक है (जो इतिहास को ही नहीं टटोलता रहता—''दलित भारत की विधवा' एवं 'भिक्षुक पर भी दृष्टिपात करता है तथा नेतानगर ''इलाहाबाद के पथ पर'' पत्थर तोड़ती मजूरिन को भी भरपूर संवेदना प्रदान करता है), पन्त की कविता में राष्ट्रवाद अथवा देशप्रेम का स्वर परवर्ती एवं प्रयत्नज है, महादेवी की कविता में राष्ट्रवाद अथवा देशप्रेम का स्वर एकाध प्रभावहीन गीतों तक सीमित है (इस दृष्टि से उन्हें एकदम छोड़ना भी उचित होगा)। प्रसाद का राष्ट्रकाव्य उनके इतिहास-पंडित होने के कारण अतीतरस से ओतप्रोत है, निराला का राष्ट्रकाव्य उनके जुझारू व्यक्तित्व के कारण ललकार-भरा है, पन्त का राष्ट्रकाव्य अनुभूतिपुष्ट न होने के कारण स्थूल-युगबोधमूलक है :

हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार,
उषा ने हँस अभिनंदन किया और पहनाया हीरक-हार।
जगे हम, लगे जगाने विश्व, लोक में फैला फिर आलोक,
व्योम-तम-पुंज हुआ तब नष्ट, अखिल संसृति हो उठी अशोक।...
यवन[1] को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि,
मिला था स्वर्ण-भूमि[2] को रत्न, शील को सिंहल[3] की भी सृष्टि।
किसी का हमने छीना नहीं, प्रकृति का रहा पालना यहीं,
हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आए थे नहीं।...
जिएं तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे, यह हर्ष,
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष!
(प्रसाद : स्कन्दगुप्त)

अरुण यह मधुमय देश हमारा,
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्म विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर,
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल कुंकुम सारा।

---

1. सेल्यूकस।
2. सुवर्णद्वीप (सुमात्रा)।
3. सिंहल (सिंहद्वीप या लंका)।

लघु सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे,
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल बनते जहाँ भरे करुणाजल,
लहरें टकरातीं अनंत की पाकर जहाँ निकारा।
हेम कुंभ ले उषा सबेरे भरती ढुलकाती सुख मेरे
मदिर ऊँधते रहते जब जग कर रजनी भर तारा[1]।

(प्रसाद : चन्द्रगुप्त)

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती—
''अमर्त्य वीरपुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य-पंथ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो।''
असंख्य कीर्तिरश्मियाँ विकीर्ण दिव्य दाह-सी,
सपूत मातृभूमि के— रुको न शूर साहसी!
अराति सैन्य-सिंधु में सुवाड़वाग्नि-से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो, बढ़े चलो![2]

(प्रसाद : चन्द्रगुप्त)

उथल-पुथल कर हृदय—
मचा हलचल—
चल रे चल,—
मेरे पागल बादल!....
ऐ निर्बन्ध!—
अंध-तम-अगम-अनर्गल-बादल!....
ऐ विप्लव के प्लावन!
सावन-घोर गगन के
ऐ सम्राट्!....
भव के मायामय आँगन पर
गरजो विप्लव के नव जलधर!....
विप्लव-रव से छोटे ही हैं शोभा पाते।
अट्टालिका नहीं है?
आतंक-भवन,
सदा पंक पर ही होता
जन-विप्लव-प्लावन,
क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से
सदा छलकता नीर,

---

[1] तुक के कारण।

[2] विश्व-साहित्य के इस महान् प्रयाण-गीत की एकान्त-उपेक्षा हिन्दीभाषाभाषियों के प्रभावहीन होने की सूचक है। ब्रिटिश-युवराज के स्वागत में रचा गया चारणगान 'जन गण मन' राष्ट्रगान है और इस उज्ज्वल-प्रयाणगीन को सेनाओं, आरक्षीदलों सुरक्षाबलों में कोई स्थान नहीं है! हाँ, इसकी प्रेरणा से प्रदीप ने ''आज हिमालय की चोटी से फिर हमने ललकारा है'' चलचित्र-गीत लिखकर करोड़ों लोगों को प्रेरित-उद्वेलित अवश्य किया था (यह 'ललकार' नीरज को बहुत प्रिय है)।

रोग-शोक में भी हँसता है
शैशव का सुकुमार शरीर।...
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर!
चूस लिया है उसका सार,
हाड़-मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार!

(निराला : बादल-राग)[1]

भारत-माता ग्रामवासिनी—
खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला-सा आँचल[2]
गंगा-यमुना का आँसू-जल
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी।...

(पन्त : ग्राम्या)

यह तो मानव-लोक नहीं रे! यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम, सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित।
मानव दुर्गति की गाथा से ओतप्रोत, मर्मान्तक
सदियों के अत्याचारों की सूची यह रोमांचक।...
रूढ़ि रीतियों के प्रचलित पथ, जाति-पाँति के बंधन,
नियत कर्म हैं, नियत कर्मफल, जीवन चक्र सनातन।
(पन्त : ग्राम्या)

महान् अभिव्यक्ति-पक्ष

अनेकानेक देशी-विदेशी छन्दों एवं मुक्तछन्दों में रूपायित तुकान्त-अतुकान्त कविता के अभिव्यक्ति-आयाम जितने स्फीत स्वच्छन्दतावादी युग में हुए उतने न कभी पहले हुए थे और न बाद में ही हुए। प्रसाद, निराला, पन्त इत्यादि ने पारम्परिक छन्दों की उपेक्षा भी नहीं की, नए-नए बांग्ला, अंग्रेज़ी, उर्दू इत्यादि के छन्दों को अपनाने में झिझक भी नहीं की। पन्त ने अनुभूति के अनुरूप अभिव्यक्ति के डगों के छोटे-बड़े होने के प्रयोग भी किए। प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी ने ही नहीं प्रत्युत वादमुक्त-स्वच्छन्दतावादी माखनलाल, नवीन, सुभद्रा, बच्चन इत्यादि ने भी गीतों में अनेकानेक प्रयोग किए। स्वच्छन्दतावादी युग का गीत समग्र बौद्धिककाल का सम्पन्नतम गीत है।

स्वच्छन्दतावादी युग की संस्कृतनिष्ठ काव्यभाषा मधुरकोमलकान्त भी है, यथासन्दर्भ उग्रपखर भी। प्रसाद ने कामायनी के चिन्ता एवं इड़ा सर्गों में बड़ी सशक्त भाषा का प्रयोग किया है। निराला की 'राम की शक्तिपूजा' की सशक्त भाषा समूची खड़ीबोली में अन्यतम है; उन्होंने 'तुलसीदास', 'बादल-राग', 'तुम और मैं' इत्यादि में भी अतीव प्राणवान भाषा प्रदर्शित की है। पन्त ने 'परिवर्तन' में यथास्थान प्रबल भाषा-सामर्थ्य का परिचय दिया है। यदि इन तीन महाकवियों के भाषा-सामर्थ्य की समता महादेवी, माखनलाल, नवीन, सुभद्रा, बच्चन इत्यादि कवि नहीं करते तो यह स्वाभाविक भी है क्योंकि वे उक्त बृहत्त्रयी के समकक्ष स्रष्टा-द्रष्टा नहीं हैं।

अभिव्यक्तिगत-प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से समग्र बौद्धिककाल के सर्वश्रेष्ठ कवि निराला हैं, जिन्होंने तथाकथित छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद का युगपत् नेतृत्व किया; वे मुक्तछन्द के प्रवर्तक तो थे ही, नवगीत के प्रवर्तक भी थे; और, अकविता के

---

1. 'बादल-राग' निराला का विप्लव-गान है जिसमें उनका स्वातन्त्र्य-प्रेम ही नहीं अपितु दलित-संवेदन भी विवृत हुआ है।
2. फणीश्वरनाथ 'रेणु' को 'मैला आँचल' शीर्षक इस पंक्ति से ही मिला था।

दावेदार श्री जगदीश चतुर्वेदी[1] एवं अगीत के दावेदार डॉ. रंगनाथ मिश्र 'सत्य' चाहें तो उन्हें अपना पूर्वज मान सकते हैं। प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से अज्ञेय निराला के सामने बौने लगते हैं, क्योंकि इनमें आयातित-सज्जा[2] की अति हिन्दी में बेमेल लगने लगती है, पहले बिम्ब एवं तदनन्तर विश्लेषण[3] की एकल शैली विविधता की सूचना नहीं दे पाती, मौलिकता का स्तर सन्तोषजनक नहीं है—वैसे भी, कवि अज्ञेय महाकवि निराला की समता नहीं कर सकते (कृति में, संस्कृति में, अन्य दिशा में)। निराला ने कविता को मुक्त-संगीत से भी सम्पन्न किया है। वैदिक-कविता के उदाहरण देकर उन्होंने 'परिमल' की भूमिका में अपने मुक्तछन्दों को रबड़-छन्द, केचुआ-छन्द इत्यादि कहनेवालों को बड़ा सतर्क उत्तर दिया था। निराला ने कविता को संगीत का लग्गू-भग्गू नहीं माना, संगीत को कविता का अनुवर्ती बनाया। वे संगीत में निष्णात् होने के कारण ही ऐसा कर सके। निराला का निराला-संगीत उन्हें सरलतापूर्वक हिन्दी का इलिअॅट (एलिअॅट) सिद्ध करता है—निस्सन्देह, वे एज़्रा पॉउंड एवं टॉमस स्टर्न इलिअॅट (एलिअॅट) के स्तर के विश्वकवि हैं। प्रयोगवादियों से बहुत पहले ही उन्होंने 'परिमल' में नए-नए प्रयोग किए, प्रगतिवादियों से बहुत पहले ही उन्होंने 'विधवा', 'भिक्षुक', 'बादल-राग', 'वन-बेला', 'वह तोड़ती पत्थर' इत्यादि में दीनदलित-संवेदन एवं विप्लव के गान गाए। स्वच्छन्दतावादी कविता का नेतृत्व पन्त ने किया था; प्रसाद एवं निराला प्रायः पन्त के साथ-साथ थे। किन्तु प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के जनक के रूपों में निराला केवलमात्र निराला ही हैं!

स्वच्छन्दतावादी कविता का अलंकरण अतीव मनोहारी है जिसमें मालोपमा एवं रूपक जैसे भारतीय तथा मानवीकरण एवं वर्ण्यध्वनि जैसे पाश्चात्य नाटकों का भव्य समाहार दृष्टिगोचर होता है। अनुप्रास के नाना अपूर्व प्रयोग स्वच्छन्दतावादी कविता का प्रशस्य शृंगार करते हैं।

स्वच्छन्दतावादी कविता का अभिव्यक्ति-पक्ष इतना अधिक विलक्षण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को इसे शैली मात्र समझने का भ्रम हो गया था (यह भ्रम अब साहित्य के अध्येता को ठीक ही कालातीत प्रतीत होता है क्योंकि नव्य-भ्व्य कल्पनावाद, प्रतीकवाद, रहस्यवाद, प्रकृतिसंवेदनावाद, नारीसंवेदनवाद, राष्ट्रवाद प्रभृति तत्वों के अवयवों से पुष्ट स्वच्छन्दतावाद एक अमर विग्रह था तथा शैली उसके उद्गार की भंगिमा मात्र थी)। किसी महान् कविता को शैली मात्र घोषित करना किसी महान् प्राणी को शरीर मात्र घोषित करने के सदृश व्यर्थ है। आ. शुक्ल कविता में लक्षणा-व्यंजना के अभिव्यक्ति-बिन्दुओं पर आवश्यकता से बहुत अधिक अटकते थे। इसके परिणामस्वरूप वे देव से अन्याय कर गए हैं तो घनआनन्द से अतिन्याय (घनआनन्द अनुभूति या अभिव्यक्ति की दृष्टि से देव के समकक्ष कवि नहीं हैं), प्रसाद एवं निराला से अन्याय कर गए हैं तो पन्त से अतिन्याय (प्रायः समस्तरीय होते हुए भी क्रम प्रसाद-निराला-पन्त का ही ठीक है); और, महादेवी के साथ तो उनकी आलोचना अत्याचार ही करती है।

तथाकथित छायावाद के अभिव्यक्ति-पक्ष पर आ. रामचन्द्र शुक्ल, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, अवध उपाध्याय, डॉ. नगेन्द्र इत्यादि पर्याप्त अथवा प्रासंगिक प्रकाश डाल चुके हैं; अतः साहित्येतिहास में उसका समीचीन पिष्टपेषण नहीं। साहित्येतिहास में अभिव्यक्ति-पक्ष के संकेत पर्याप्त हैं, उसका स्फीत निरूपण विषय-बद्ध ग्रन्थों में ही समीचीन है।

स्वच्छन्दतावादी कविता : वस्तुवादी मूल्यांकन

स्वच्छन्दतावादी कविता पर प्रहार एवं प्रशस्ति के दर्शन अधिक होते हैं, वस्तुवादी मूल्यांकन के नगण्यवत्। आधुनिक हिन्दी-आचार्यों की बृहत्त्रयी (महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल) में से द्विवेदीजी के प्रहार समग्रतः कालातीत हो चुके हैं, श्यामसुन्दरदास जी का संक्षिप्त विवेचन साधारणीयकरण के बिन्दुमात्र की दृष्टि से मननीय है, शुक्लजी के पाश्चात्य-प्रभाव-निरूपण का आंशिक महत्त्व है किन्तु शैली मात्र घोषित करना उपेक्षणीय—उनका काव्यशिल्प-निरूपण छात्रों के हेतु अतीव मूल्यवान है। शान्तिप्रिय द्विवेदी की छायावाद-प्रशस्ति यत्र-तत्र ही विचारणीय है। स्वच्छन्दतावाद के गहन आलोचक आ. नन्ददुलारे वाजपेयी के प्रस्थान-कार्य का ऐतिहासिक महत्त्व है, किन्तु वे आदर्शवादी युग के प्रति पूर्वाग्रहस्त होने के कारण तारतम्य का निर्वाह नहीं कर पाए। डॉ. नगेन्द्र की स्तुति में आलोचना दब गई है। 1300-1600 ई. की तीन शताब्दियों तक प्रत्यक्षतः प्रसरित एवं 1600-2000 ई. की अगली चार शताब्दियों तक अपूर्वतः प्रभावी पुनरुत्थानकाव्य (संकीर्ण दृष्टि में भक्तिकाव्य) पर 1920-40 ई. की दो दशाब्दियों

---

[1] पत्रकार स्व. जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी से भिन्न केरल में ऊँट की सवारी का करतब दिखानेवाले! पूज्य पुरातत्त्ववेत्ता जगदीशचन्द्र चतुर्वेदी का स्मरण आता है।

[2] इम्पोर्टेड कॉस्मेटिक्स।

[3] 'कितनी नावों में कितनी बार', 'नदी के द्वीप' (कविता, जिस पर पाश्चात्य-व्यक्तिवादी उपन्यास 'नदी के द्वीप' नामित है) इत्यादि में प्रयुक्त।

में ही चुक जानेवाले एवं 1940-90 ई. की अगली पाँच दशाब्दियों तक प्रहारों के आखेट स्वच्छन्दतावादी-काव्य (संकीर्ण दृष्टि में छायावादी-काव्य) को वरीयता प्रदान करना वस्तुवाद से अन्याय करना मात्र ही हो सकता है। वैसे, डॉ. नगेन्द्र प्रताप साहित्यालंकर जैसे 'छायावाद' के कोरे-प्रशंसकों से भिन्न उच्चस्तरीय आलोचक हैं जिन्होंने छायावादी-कविता की प्रवृत्तियों का प्रशस्य निरूपण भी किया है। स्व. इलाचन्द्र जोशी, स्व. डॉ. देवराज, स्व. डॉ. प्रभाकर माचवे[1] इत्यादि व्यक्तिवादियों तथा डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. नामवर सिंह, मुक्तिबोध इत्यादि साम्यवादयों की छायावाद-आलोचना अपनी वादबद्ध-संकीर्णता एवं एकांगिता के कारण विशेष मननीय नहीं रह पाई।

स्वच्छन्दतावादी कविता की सबसे बड़ी कमी उसका व्यापक एवं सहज जीवन से दूर होना अथवा कल्पना-लोक में अपेक्षाकृत अधिक रमना है, जिसके परिणामस्वरूप उसमें व्यापक जन-जीवन के सुख-दुःख, हास-परिहास, अशन-व्यसन, तीज-त्योहार, जन्म-विवाह, बीमारी-बेरोज़गारी, क्रन्दन-हाहाकार इत्यादि का अभाव-सा ('सा' का कारण निराला है) आ गया है। स्वच्छन्दतावादी-कविता कल्पनाप्रवण कविता है, व्यावहारिक कविता नहीं, और, इसीलिए वह जन-जीवन के अन्तरतम तक प्रवेश नहीं कर पाई। तुलसी की कविता में समग्र जीवन की जैसी व्याप्ति है, सूर की कविता में जीवन की जो सहज विवृति है, केशव की कविता में जो नानाआयामिता है, वह प्रसाद, निराला, पन्त की कविता में नहीं। इस त्रयी ने जीवन का ऊहापोह किया अवश्य है किन्तु वह ऊपरी है। मीराँ (मीरा) की कविता में जो संघर्ष है, संसार भर से जूझने का बल है, जीवन की जो ज्वाला है, वह महादेवी की कविता में नहीं। ऐसा नहीं है कि स्वच्छन्दतावादी-कविता में जीवनवाद है ही नहीं। है अवश्य, किन्तु वह ऊपर से लादा गया है, सीधे जीवन से निःसृत नहीं। प्रसाद ने मनु (मन) को इड़ा (बुद्धि) से मुक्त तथा श्रद्धा (भावना) से संयुक्त रहने पर ही 'आनन्द' का विधान किया है, किन्तु उनका यह सारा विधान नितान्त बौद्धिक है जो अपना खंडन स्वयं कर देता है, भले ही वह बौद्धिककाल के अनुरूप हो। जितना बौद्धिक व्यायाम 'कामायनी', 'आँसू', 'अनामिका', 'परिमल', 'पल्लव', 'गुंजन', 'नीरजा', 'दीपशिखा' इत्यादि को आत्मसात् करने में करना पड़ता है उतना न 'प्रियप्रवास', 'वैदेहीवनवास', 'साकेत', 'यशोधरा' इत्यादि में, न 'कुरुक्षेत्र', 'उर्वशी', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'आँगन के पार द्वार' में, न 'निशा-निमन्त्रण' में, न 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में। स्वच्छन्दतावादी कविता का अनुभूतिलोक विशिष्ट-अनुभूतिलोक है, जनानुभूतिलोक नहीं और उसका अभिव्यक्तिलोक तो अतिविशिष्ट ही बनकर रह गया है जिसका व्यापक जनजीवन से सम्बन्ध ही नहीं प्रतीत होता। यह सत्य है कि प्रसाद, निराला, पन्त एवं महादेवी की भारतीय संस्कृति में अटूट आस्था के कारण स्वच्छन्दतावादी कविता में मुक्तिबोध इत्यादि साम्यवादियों एवं अज्ञेय इत्यादि व्यक्तिवादियों की कविताओं में व्याप्त परकीयता हावी नहीं हो पाई, जिसके कारण उसे जनादर भी मिला है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वह ''सब कहुँ हित होई' की कसौटी पर बहुत खरी नहीं उतरती। स्थूल-वर्गीकरण की पाश्चात्य प्रणाली की दृष्टि से, स्वच्छन्दतावादी कविता 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के निकटतर है, 'कला जीवन के लिए' सिद्धान्त से कुछ दूर (उतनी नहीं जितनी पूर्वाग्रहग्रस्त तत्त्व घोषित करते हैं)। वैसे जनवाद या लोकमंगलवाद के प्रति प्रसाद ने 'कंकाल' एवं 'तितली' उपन्यासों तथा 'मधुआ', 'बेड़ी', 'चूड़ीवाली' इत्यादि कहानियों और महादेवी ने 'रामा', 'लछमा', 'भक्तिन' इत्यादि संस्मरणात्मक-रेखाचित्रों में पर्याप्त रुचि प्रदर्शित की है; पन्त ने 'युगवाणी' एवं 'ग्राम्या' में स्पष्टः जनवादी कविता रची है; और, 'विधवा', 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' इत्यादि के कवि एवं 'चतुर चमार', 'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा' इत्यादि के उपन्यासकार निराला तो आरम्भ से ही गम्भीर जनवादी रहे हैं; अतः स्वच्छन्दतावादियों पर जनवादी-विरोधी या जनवाद-पराङ्मुख होने का आरोप लगाना निराधार होगा।

आचार्य श्यामसुन्दरदास ने स्वच्छन्दतावादी (छायावादी) कविता के सन्दर्भ में साधारणीकरण की समस्या का संकेत किया है। मेरी समझ में सर्वत्र कवि की अनुभूति का साधारणीकरण सम्भव नहीं, क्योंकि अनेक परस्पर-विरोधी मानसिक घात-प्रतिघातों की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रतिक्रियाओं की उद्भूति को कई बार कवि स्वयं संश्लेषित नहीं कर पाता। कई बार घृणा की भीषण प्रतिक्रिया प्रेम बनकर उभर पड़ती है। कई बार घोर कामुकता की प्रतिक्रिया प्रखर देशभक्ति का रूप ग्रहण कर लेती है। अतः कवि की अनुभूति के साधारणीकरण को अलम् माननेवाले डॉ. नगेन्द्र इत्यादि की इस पारम्परिक उपपत्ति को सार्वभौम समझना विवादास्पद है। कविता सदैव लिखी नहीं जाती, कई बार तीव्र मानसिकता उसे लिखाती भी है। अतः सारी कविता जनवादी नहीं हो सकती। किन्तु कवि जो स्पष्टतः सम्प्रेषित करना चाहता है उसका साधारणीकरण न हो तो रचना पर प्रश्नचिह्न अवश्य लग सकता है; और, ऐसा प्रश्नचिह्न स्वच्छन्दतावादी कविता पर लगाया गया है।

स्वच्छन्दतावादी कविता भारतीय कविता है। प्रसाद एवं निराला प्रायः शतशः भारतीय कवि हैं जिनकी कविता में परकीय तत्त्व रवीन्द्र से भी बहुत कम है। पन्त पर परकीय प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक पड़ा है किन्तु उनका ''भारतीय ही नहीं बल्कि मैं हूँ ग्रामीण हृदय

---

[1] माचवे जी कभी साम्यवाद से प्रभावित रहे हों तो उसका सामग्रिक महत्त्व नहीं।

के भीतर'' उद्‌गार उपेक्षणीय नहीं है। महादेवी पर परकीय प्रभाव अत्यल्प है। किन्तु पहली बार हिन्दी-कविता पर परकीय प्रभाव स्वच्छन्दतावादी युग में ही दृग्गत हुआ, इसमें सन्देह नहीं। भारतेन्दु इत्यादि का राष्ट्रवाद पाश्चात्य राष्ट्रवाद से परोक्षतः प्रेरित था, किन्तु प्रत्यक्षतः वह भारतीय था। मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि का उद्‌गार तो भारतेन्दु से भी अधिक भारतीय था, क्योंकि इनके समय तक राष्ट्रीय अस्मिता बलवत्तर हो चुकी थी। किन्तु स्वच्छन्दतावादी कविता के अनुभूति-पक्ष पर आंशिक एवं अभिव्यक्ति-पक्ष पर स्फीत पाश्चात्य प्रभाव एक स्पष्ट तथ्य है। प्रसाद, निराला इत्यादि समर्थ कवि थे, जिनकी अस्मिता असन्दिग्ध थी। किन्तु परवर्ती युग में परकीय प्रभाव-ग्रहण की वृत्ति बढ़ती ही चली गई। परिणाम यह हुआ कि अधिकांश स्वच्छन्दतावादी कविता भारतीय जनमानस के तल का स्पर्श न कर पाई तथा परवर्ती व्यक्तिवादी (अज्ञेय इत्यादि की) एवं साम्यवादी (मुक्तिबोध इत्यादि की) कविता केवल विश्वविद्यालयों की निधि बनकर चुक गई। सम्प्रति स्थिति यह है कि पाश्चात्य परकीयता ही नहीं प्रत्युत निकट की विदेशी ग़ज़ल (ग़ज़ाला खुद अरबी शायर था) अपने रुग्ण मै-मैख़ाना-इश्क़ के तीन पात लहरा रही है और ग़ज़ल शब्द का अर्थ तक न जाननेवाले उस पर झूम-झूम कर चंडूख़ाने के च.4ग्नज़्ज़ारे पेश व रहे हैं! कविता या उपन्यास या कहानी या अन्यविधा में मार्क्स या एंजेल्स या लेनिन या स्टालिन, या माओ के द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद या साम्यवाद, एडम स्मिथ या जॉन स्टुअर्ट मिल या हर्बर्ट स्पेन्सर या अन्य के व्यक्तिवाद, फ्रायड या एडलर या जुंग (युंग) या अन्य के मनोविश्लेषणवाद, सार्त्र या अन्य के अस्तित्ववाद इत्यादि का अनुसन्धान ही विद्वत्ता का व्यंजक बन गया है! स्वतन्त्र भारत में भारत से भारतीयता निर्वासित कर दी गई है। हिन्दी को अंग्रेज़ी की दासी बनाया जा रहा है। ग़रीब की जोरू हिन्दी पर पेट्रो-डॉलर-सम्पन्न 'पाक' उर्दू लादी जा रही है! निस्सन्देह, सांस्कृतिक दासता का जितना विषाक्त वातावरण स्वतन्त्र भारत में बना उतना पहले नहीं था। रवीन्द्र भरतीय साहित्य में परकीयता के प्रथम भावी वाहक थे जिनके कारण हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी कविता भी परकीयता के प्रभाव से बच न पाई और इसका प्रभाव दूरगामी सिद्ध हुआ। मानवतावाद का यह अर्थ नहीं कि हम अस्मिता खोकर लावारिस बन जाएँ। रवीन्द्र राष्ट्रवाद को घातक घोषित कर पश्चिम को तुष्ट कर रहे थे। ''इंडिआ, दैट इज़, भारत' घोषित करनेवाला लेई-कैंची का चमत्कार संविधान ही भारत एवं भारतीयता का अपमान करता है! जो मैकॉले इत्यादि न कर पाए था वह स्वतन्त्र भारत के नेताओं ने किया! हिन्दी साहित्य में इस विजातीयतावादी क्रिया का आरम्भ स्वच्छन्दतावादी युग में ही हुआ था। सम्भव है, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने परकीयतावाद के कारण ही स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) का विरोध किया हो! उनका स्पष्ट उद्‌गार है :

जिसको न निज गौरव तथा निज देश पर अभिमान है,
वह नर नहीं, नरपशु निरा है और मृतक समान है।

यह सत्य है कि हम बहुत पीछे हैं और पश्चिम बहुत आगे है। हमें वैज्ञानिक विकास (जिससे रक्षा का सर्वोपरि दायित्व भी संपृक्त है, कृषि की मूल-समस्या भी संपृक्त है, औद्योगिक विकास की आवश्यकता से संपृक्त है) में पश्चिम का अनुकरण करना ही पड़ेगा। किन्तु कविता, साहित्य की अन्य विधाओं, संगीत, नृत्य इत्यादि ललितकलाओं में हम संसार के सम्पन्नतम राष्ट्र हैं अतः इनकी अस्मितारक्षा हमारी अपनी अस्मिता-रक्षा की पर्याय है। लगता है, स्वच्छन्दतावादी युग परकीयतावाद के दुष्प्रभावों पर पर्याप्त विचार नहीं कर सका था।

स्वच्छन्दतावादी युग की कविता ने प्रायः दो दशकों में ही कामायनी, आँसू, परिमल, अनामिका, पल्लव, गुंजन, नीरजा, दीपशिखा जैसी ऐतिहासिक कृतियाँ प्रदान कर हिन्दी-कविता की महानता के आकाश में अनेक नूतन नक्षत्र दीप्त किए—इतने कम समय में इतना और ऐसा कृतित्व विश्व-साहित्य के इतिहास का एक उज्ज्वल अध्याय है! यह एक विलक्षण संयोग था। इसकी आकस्मिकता विस्मयाविष्टकारिणी है! किन्तु रामचरितमानस, विनयपत्रिका, कवितावली, गीतावली, सूरसागर, बीजक, पद्‌मावत इत्यादि सदाबहार कृतियों तथा इनके कृती महाकवियों के अतिरिक्त विद्यापति, मीराँ (मीरा), रहीम, रसखान, नरोत्तमदास, राठौड़राज प्रिथीराज इत्यादि अन्य अमर कवियों के पुनरुत्थानकाल के सर्वजीवनव्यापी सृजन से स्वच्छन्दतावादी सृजन की तुलना उचित न होगी। तुलसी, सूर, कबीर एवं मीराँ (मीरा) से प्रसाद, निराला, पन्त एवं महादेवी की तुलना न व्यक्तित्व की दृष्टि से उचित होगी, न कृतित्व की दृष्टि से। केशव, सेनापति, बिहारी, भूषण, मतिराम, सुखदेव, देव, घनआनन्द एवं पद्‌माकर के शास्त्रीयकाल का कृतित्व भी गुण में प्रसाद, निराला, पन्त एवं महादेवी के स्वच्छन्दतावादी युग के कृतित्व से न्यून नहीं है तथा परिमाण में तो अत्यधिक है ही। रामचन्द्रिका की विलक्षण कला को कामायनी की ललित कला से न्यून मानना अपने युग के प्रति पक्षपात से अभिभूत होना मात्र है। बिहारी-सतसई का गागर में सागर भी चिरस्मरणीय है। भूषण की ओजमयी वाणी निस्सन्देह निराला की ऊर्जस्वित् स्वर-लहरी से न्यून नहीं है। देव की गहन कविता प्रसाद या निराला या पन्त में से किसी एक की कविता से निस्सन्देह तुलनीय है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पुनरुत्थानकालीन कविता

के अनन्तर एवं शास्त्रीयकालीन कविता के साथ-साथ स्वच्छन्दतावादी कविता हिन्दी-साहित्य के इतिहास की सर्वश्रेष्ठ कविता है। संक्रान्तिकालीन कविता में केवल एक महाकवि चन्द्रवरदायी दृग्गत होते हैं जिनका पृथ्वीराजरासो रामचरितमानस के अनन्तर हिन्दी के किसी भी महाकाव्य से न्यून नहीं है। किन्तु स्वच्छन्दतावादी कविता को प्रसाद, निराला एवं पन्त के रूपों में तीन महाकवियों ने सम्पन्न किया है तथा महादेवी जैसी अमर कवयित्री की समता केवल मीराँ (मीरा) कर सकती हैं! आदर्शवादी युग के मैथिलीशरण खड़ीबोली के अग्रणी कवि हैं, रत्नाकर अपनी काव्यकला के समाहार में प्रसाद या निराला या पन्त में से किसी से न्यून नहीं है, किन्तु हरिऔध की काव्यसाधना भाषा, शैली एवं शिल्प में एकरस-एकतान न होने के कारण अभिव्यक्ति—प्रदर्शन में बिखर-सी गई है जिसका परिणाम यह है कि वे केवल प्रियप्रवास के कारण अमर हैं अतः प्रसाद या निराला या पन्त के सृजन का गुण या परिमाण उनमें नहीं सिद्ध हो पाता; इसके अतिरिक्त, आदर्शवादी युग को महादेवी जैसी श्रेष्ठ कवयित्री नहीं प्राप्त। यथार्थवादी युग में दिनकर ने स्फीत सृजन किया किन्तु वह भाषणप्रधान है, कलाविपन्न है। बच्चन ने खड़ीबोली-गीत को सहजता एवं अस्मिता से निष्पन्न किया है किन्तु उनकी कविता में गहनता का अभाव है। अज्ञेय ने अधुनातन शैली-शिल्प एवं व्यक्तिवादी चेतना से सम्पन्न कविता का सृजन किया है किन्तु उनकी मौलिकता सन्दिग्ध है तथा वे विजातीयता से पराभूत हो गए हैं। मुक्तिबोध में प्रखरता है, एक ज्वलन्त अराजकतावादी क्रान्त-स्वर है किन्तु वह परिमाण में अल्प एवं गुण में एकरस या उबाऊ है—वे गद्यप्रधान-कवि लगते हैं। दिनकर और बच्चन, अज्ञेय और मुक्तिबोध अनुभूति या अभिव्यक्ति के किसी भी निकष पर प्रसाद, निराला एवं पन्त की समता नहीं कर सकते—अधिक-से-अधिक वे महादेवी के साथ (निस्सन्देह उनकी प्रधानता में) आसीन हो सकते हैं। स्वच्छन्दतावादी-कविता वौद्धिककाल की सर्वश्रेष्ठ कविता है; समग्र हिन्दी-साहित्य के इतिहास में पुनरुत्थानकालीन सर्वजीवनायामी-सर्वरसनिष्पन्न महानतम कविता के अनन्तर तथा शास्त्रीयकालीन सरसालंकृत मनोहारी कविता के साथ-साथ उसका स्थान अन्यतम है।

स्वच्छन्दतावादी गद्य

स्वच्छन्दतावादी-युग काव्यप्रधान था, जिसमें गद्य प्रायः पूर्ववर्ती आदर्शवादी-युग की परम्परा पर ही चलते हुए विकास करता रहा, उसके परवर्ती पदक्षेप आगामी यथार्थवादी युग के उद्‌घाटन की ओर भी सचेष्ट हुए, किन्तु इसमें स्वच्छन्दतावादी-गद्य रचा अवश्य गया है। प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'अजातशत्रु', 'ध्रुवस्वामिनी', 'कामना', 'एक घूँट' इत्यादि नाटक स्वच्छन्दतावादी कृतियाँ हैं, भले ही वे क़सम खाकर रसवाद का विरोध न करती हों। प्रसाद की आकाशदीप, पुरस्कार, देवरथ, ममता, गुंडा इत्यादि श्रेष्ठतम कहानियाँ स्वच्छन्दतावादी कृतियाँ हैं, भले ही वे सतुवा बाँधकर यथार्थवाद के पीछे न पड़ी हों, क्योंकि उनकी मधुआ, बेड़ी, चूड़ीवाली इत्यादि कहानियाँ अमर यथार्थवादी कृतियाँ ही हैं। प्रसाद के स्वच्छन्दतावादी नाटकों का अनुकरण न किया जा सका, क्योंकि वे अतिभावुकता एवं अतिगीतवाद इत्यादि के कारण विशेष आधुनिक न थे। किन्तु प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी कहानियों ने साहित्य को बहुत प्रभावित किया; हिन्दी-कहानी के इतिहास में प्रसाद-स्कूल अमर है, जिसमें महान् कहानीकार प्रसाद के अतिरिक्त राय कृष्णदास, चंडीप्रसाद 'हृदयेश', विनोदशंकर व्यास, वाचस्पति पाठक इत्यादि ने अविस्मरणीय योगदान किया। 'हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी-कहानियाँ' शोध का विषय है। उपन्यास की विधा पर उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द का वर्चस्व रहा; अतः स्वच्छन्दतावादी-उपन्यास विकसित न हो सका। स्वयं स्वच्छन्दतावाद-सीमान्त प्रसाद एवं निराला के उपन्यास स्वच्छन्दतावादी-उपन्यास नहीं हैं। किन्तु जाने या अनजाने भगवतीचरण वर्मा ने 'चित्रलेखा' के रूप में हिन्दी को एकमात्र अमर स्वच्छन्दतावादी-उपन्यास प्रदान कर डाला, जिस पर विश्व-स्वच्छन्दतावाद के एक अग्रणी उपन्यासकार अनातोले फ्रांस कृत 'थाया'[1] (थायस्) का भारी प्रभाव तो पड़ा है किन्तु जो भारतीय परिवेश के कारण मौलिकवत् माना जा सकता है। व्यवसायकुशल भगवतीचरण वर्मा के इस उपन्यास पर विख्यात निर्देशक केदार शर्मा ने ऐतिहासिक 'चित्रलेखा' चलचित्र बनाया, जिसके अनुकरण में एक साधारणप्राय 'चित्रलेखा' चलचित्र भी बना। इसका अंग्रेज़ी-अनुवाद हुआ, अन्य भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुए। पहले अनातोले फ्रांस एवं थाया का उल्लेख होता था, जो परवर्ती संस्करणों में उड़ गया और 'चित्रलेखा' शत-प्रति-शत मौलिक हो गई (अज्ञेय की अनेक कविताओं के सदृश)! महानगर लखनऊ के ही महानगर में भगवतीचरण वर्मा ने अपने आवास का नाम 'चित्रलेखा' ठीक ही रखा! कालान्तर में अपनी व्यवहारकुशलता के कारण भगवतीचरण वर्मा राज्यसभा के सदस्य मनोनीत किए गए। मेरे सहकर्मी विजयकुमार मल्होत्रा (जिन्होंने सोहनलाल द्विवेदी पर शोधकार्य किया है) ने बताया था कि

---

[1] प्रेमचन्द ने इस फ्रेंच कलाकृति के अंग्रेज़ी-अनुवाद का हिन्दी-अनुवाद 'अहंकार' शीर्षक से किया है, जो एकदम वाहियात है। भूमिका से लगता है कि स्वयं प्रेमचन्द इसकी असफलता से अभिज्ञ थे। अनुवाद वित्त के आग्रह से हुआ लगता है।

1977-1980 ई. के प्रधान मन्त्री मोारजी देसाई जैनेन्द्र को मनोनीत कराना चाहते थे किन्तु चौधरी चरणसिंह ने बताया कि मैं वचन दे चुका हूँ—वह भी बहुत-अच्छा लिखता है! (उन्हें उस समय नाम याद न था किन्तु यथासमय आ गया!) भगवतीचरण वर्मा जैसे श्रेष्ठ उपन्यासकार के निधन पर यह स्थान बेकल उत्साही को दे दिया गया! भगवतीचरण वर्मा ने बेचारे योग को अपने प्यारे भोग से रौंदवा डाला—वेश्याभक्ति की यह भड़कीली गुड्डी बेहद हल्की-फुल्की होने के कारण बेहद उड़ी! चित्रलेखा आदि से अन्त तक स्वच्छन्दतावादी उपन्यास है। इसमें आदर्शवाद के भड़कीले रंगीन स्वच्छन्दतावादी-तेवर बेहद उभार लिए हैं, किन्तु यथार्थवाद को तिल भर जगह भी नहीं मिली। वर्माजी का कोई अन्य उपन्यास कथावस्तु से भाषा-शैली तक कहीं भी चित्रलेखा से नहीं मिलता-जुलता?

प्रसाद के अनन्तर महादेवी स्वच्छन्दतावादी-गद्य की श्रेष्ठतम लेखिका हैं, जिनके 'अतीत के चलचित्र', 'शृंखला की कड़ियाँ', 'पथ के साथी' इत्यादि ग्रन्थों में प्राप्त संस्मरणात्मक-रेखाचित्रों में स्वच्छन्दतावादी-आदर्श एवं स्वच्छन्दतावादी-भाषाशैली का प्रभावी उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है; साथ ही, निर्धन-संवेदन, नारी-समस्याराशि-बोध एवं मानवतावादी स्वर इन्हें यथार्थ से भी संपृक्त कर देता है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के संस्मरण एवं रेखाचित्र भी स्वच्छन्दतावादी कला-वैभव से निष्पन्न हैं। रामप्रसाद 'रावी' के गद्यगीत भी स्वच्छन्दतावादी साहित्य के रत्न हैं। राय कृष्णदास की 'साधना' सर्वतः स्वच्छन्दतावादी थी। माखनलाल चतुर्वेदी, वियोगीहरि, चतुरसेन शास्त्री, भँवरमल सिंधी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', रामप्रसाद 'रावी', दिनेशनन्दिनी डालमिया, मुक्तानन्द परमहंस इत्यादि के गद्यगीत स्वच्छन्दतावादी-गद्य के अमर स्मारक हैं। यह गद्यगीत-परम्परा राकेशनन्दिनी गुप्त (वे 'गुप्ता' लिखती हैं—दिनेशनन्दिनी की अनुजा हैं) में जीवित है।

स्वच्छन्दतावादी-नाटक, स्वच्छन्दतावादी-कहानी, स्वच्छन्दतावादी-उपन्यास, स्वच्छन्दतावादी-संस्मरण, स्वच्छन्दतावादी-रेखाचित्र एवं स्वच्छन्दतावादी-गद्यगीत में से स्वच्छन्दतावादी-कहानी, स्वच्छन्दतावादी-रेखाचित्र एवं स्वच्छन्दतावादी-गद्यगीत अग्रणी सिद्ध होते हैं। किन्तु स्व. महाराजकुमार रघुवीरसिंह के 'अवशेष' तरुणजन या तरुणबुद्धि प्रौढ़ों-वृद्धों को ही प्रिय लग सकता है (भले ही महाराजकुमार रघुवीरसिंह की चमक-दमक से विह्वल होकर आ. शुक्ल भारी प्रशस्ति कर गए हों)। श्रेष्ठतर भावात्मक निबन्धकार पूर्णसिंह[1] की अतिभावुकता जनवादमूलक होने के कारण कभी कालातीत नहीं हो सकती, किन्तु 'अवशेष' जनवादहीन होने के कारण शीघ्र ही 'यथा नाम तथा गुण' होकर रह गया। वैसे, 'अवशेष' के 'ताज', 'लाल क़िला'[2], 'फ़तेहपुर सीकरी' जैसे निबन्ध अपनी तड़क-भड़क और चमक-दमक में बेजोड़ हैं, किन्तु उनमें जीवन-तत्त्व नहीं है; और, जीवन-तत्त्व के अभाव में रचना जीवनरहित ही हो सकती है। ये निबन्ध अंग्रेज़ी के ऐसे ही निबन्धों से बेतरह प्रभावित भी हैं।

स्वच्छन्दतावादी-आलोचना भी सर्वथा उल्लेख्य है, जो शान्तिप्रिय द्विवेदी, रामनाथ 'सुमन', प्रताप साहित्यालंकार, डॉ. रामलालसिंह, डॉ. नगेन्द्र इत्यादि के ग्रन्थों में दृष्टिगोचर होती है—जिसमें तर्क या तथ्य पर भावुकता या स्वानुभूति को वरीयता प्रदान की जाती है, लच्छेदार भाषा का प्रयोग किया जाता है। डॉ. नगेन्द्र के स्फीत 'आस्था के चरण' स्वच्छन्दतावादी-आलोचना को विशेष गति प्रदान करते हैं। यह एक विलक्षण बिन्दु है कि स्वच्छन्दतावाद के 'प्रस्थान'-आलोचक एवं मूर्द्धन्य विद्वान् आ. नन्ददुलारे वाजपेयी ने स्वच्छन्दतावादी-आलोचना कभी और कहीं नहीं लिखीं। उनका विवेचन बौद्धिक है, किन्तु उखाड़-पछाड़ की बैसवाड़ी[3] लत के कारण वे प्रायः प्रभाववाद के आखेट हो जाते हैं। किन्तु ऐसे आखेट तो मिश्रबन्धु एवं आ. शुक्ल जैसे महत्तर मनीषी एवं श्रेष्ठतर आलोचक भी हुए हैं, डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. नगेन्द्र जैसे समकक्ष प्रायः आलोचक भी हुए हैं। स्वच्छन्दतावादी- आलोचना का सबसे बड़ा दोष 'छायावाद की सर्वश्रेष्ठता' का तर्कहीन-राग है, जिसने सबसे अधिक क्षति 'छायावाद' की ही की है! तर्क आलोचना का मेरुदंड है।

वादमुक्त स्वच्छन्दतावादी कवि

स्वच्छन्दतावादी कवियों का वादमुक्त समुदाय भी ऐतिहासिक महत्त्व का है। स्वच्छन्दतावादी बृहत्त्रयी प्रसाद-निराला-पन्त, स्वच्छन्दतावादी-लघुत्रयी (वर्मात्रयी) महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, भागवतीचरण वर्मा, स्वच्छन्दतावादी-अग्रदूत मुकुटधर पांडेय, स्वच्छन्दतावाद की बिहारी-त्रयी जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', मोहनलाल महतो 'वियोगी', केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' प्रतिनिधि कवि हैं। माखनलाल चतुर्वेदी वादमुक्त-स्वच्छन्दतावाद के अग्रणी कवि हैं। उनके अनुसार ''कला में 'वादों' पर मेरा कभी विश्वास नहीं रहा।

---

[1] डॉ. नामवर सिंह एवं डॉ. रामदरश मिश्र सम्भवतः राजनैतिक-अल्पसंख्यकवाद से अभिभूत होकर 'पूरनसिंह' लिखते हैं किन्तु 'सरस्वती' के साधक 'पूर्णसिंह' ही थे!

[2] आगरे का। दिल्ली का नहीं।

[3] 'वैसवारी' भी चलता है।

मैं यह भी नहीं मानता कि बारीक़-ख़याली केवल पद्य में ही लिखी जा सकती है, गद्य में नहीं।'' माखनलाल चतुर्वेदी अग्निवर्षी कवि थे, जिनकी स्वच्छन्द उमंगों एवं तरंगों में लपटें उठती थीं—जहाँ आग नहीं वहाँ जीवन कहाँ? ऋग्वेद का प्रथम मन्त्र अग्नि पर है, सामवेद का प्रथम मन्त्र अग्नि पर है, रत्नधारी अग्नि बलिदान की प्रतीक यज्ञ के पुरोहित हैं, ऋत्विज हैं, होता हैं! उनका प्रभाव बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', दिनकर इत्यादि पर पड़ा। उनकी 'क़ैदी और कोकिला' विश्वस्तरीय कविता है। उनका 'साहित्य-देवता' स्वच्छन्दतावादी-गद्य एवं गद्यगीत विधा का एक सर्वोत्तम ग्रन्थ है। उनका कृष्णार्जुन-नाटक अपनी स्वच्छन्द कल्पना में उल्लेख्य है, यद्यपि वह प्रसाद के असफल प्रेम, कुंठा एवं रिक्तादर्शवादी कल्पना के फेर में नहीं पड़ा। माखनलाल चतुर्वेदी स्वच्छन्द-राष्ट्रकवि हैं, श्रेष्ठतर-महाकवि[1] मैथिलीशरण गुप्त आदर्शप्रवण-राष्ट्रकवि हैं। माखनलाल चतुर्वेदी की अग्निवर्षा प्राण को जाज्वल्यमान् कर देती है :

1. सखे! बता दे, कैसे गाएं—अमृत मौत के दाम न हो;
जगे एशिया, हिले विश्व पर राजनीति का नाम हो।[2]

2. सफलता पाई अथवा नहीं? उन्हें क्या ज्ञात? दे चुके प्राण!
विश्व को चाहिए उच्च विचार? नहीं! केवल अपना बलिदान!

3. द्वार बलि का खोल, चल भूडोल कर दे, एक हिमगिरि एक सिर का मोल कर दे,
मसल कर अपने इरादों-सी उठा कर दो हथेली है कि पृथ्वी गोल कर दे!

इसमें सन्देह नहीं कि विराट् जीवनवाद विविध आयामों एवं गहनता की दृष्टियों से खड़ीबोली के प्रमुख कवि मैथिलीशरण, प्रसाद, निराला एवं पन्त ही हैं, किन्तु इनके अनन्तर हरिऔध के सफल महाकाव्यकार-रूप को प्रतिष्ठित करना उचित होगा। इन पंचरत्नों के बाद महादेवी, माखनलाल, दिनकर, अज्ञेय एवं मुक्तिबोध के उपपंचरत्न चिरस्मरणीय हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा ने सम्मेलन द्वारा प्रकाशित अमूल्य काव्यसंकलन 'आधुनिक काव्यसंग्रह' में माखनलाल को महादेवी से पहले रखकर कविता में ज्वलन्त-जीवनवाद को वरीयता प्रदान की थी। उनका गद्य भी अद्भुत होता था। उर्दू के मशहूर शायर फ़िराक़ गोरखपुरी के शब्दों में, ''उनके लेखों को पढ़ते समय ऐसा मालूम होता था कि आदिशक्ति शब्दों के रूप में अवतरित हो रही है या गंगा स्वर्ग से उतर रही है।'' माखनलाल का स्वच्छन्द-राष्ट्रकाव्य उन्हें बांग्ला के नज़रुल, हिन्दी के दिनकर, मलयालम् के वल्लत्तोल, गुजराती के मेघाणी और उर्दू के जोश के साथ पंक्तिबद्ध करता है। पैनेपन में वे बेजोड़ हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी के अनन्तर वादमुक्त स्वच्छन्दतावादी कवियों में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', सुभद्राकुमारी चौहान, गोपालसिंह 'नेपाली' एवं श्यामनारायण पांडेय का नाम लेना उचित होगा। इन सबने राष्ट्रकाव्य का प्रशस्य सृजन किया है। बच्चन भी स्वच्छन्दतावादी युग में ही उभरे थे किन्तु वे राष्ट्रकाव्य-रचना सम्बद्ध नहीं रहे। वस्तुतः वे यथार्थवादी युग के कवि हैं।

यह सत्य है कि मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी के मूर्द्धन्य राष्ट्रकवि हैं, किन्तु स्वच्छन्दतावादी युग में राष्ट्रकाव्य-प्रणयन आदर्शवादी युग के सदृश ही हुआ--प्रसाद एवं निराला का राष्ट्रकाव्य तो उल्लेख्य है ही; माखनलाल, नवीन, सुभद्रा एवं सोहनलाल द्विवेदी को प्रायः समग्रतः राष्ट्रकाव्यकार कहा जा सकता है! दिनकर राष्ट्रकवि भी थे।

प्रमुख साहित्यकार

गाँधी

यन्त्रातिरेक-विरोध, रामराज्य, ग्राम-स्वराज्य, सर्वधर्मसमन्वय इत्यादि के स्वच्छन्दतावादी चिन्तक मोहनदास करमचन्द गाँधी (2 अक्टूबर, 1869-30 जनवरी, 1948, जन्म सुदामापुरी का पोरबन्दर, गुजरात, हत्या दिल्ली) तिलक-परवर्ती 1920-48 ई. में भारत के सर्वोपरि नेता थे। रूसो ('कॉंफ़ेशंस' गाँधी के 'सत्य के प्रयोग' पर छाया है), रस्किन, टॉल्स्टॉय (सर्वाधिक आज्ञाकारी सेवक, लिखते थे) इत्यादि का स्वच्छन्दतावादी-श्रमवादी-सरलतावादी जीवन-दर्शन, तिलक और हरदयाल इत्यादि का 'बहिष्कार', थोरो का असहयोग और

---

[1] बी. एन. एस. डी. इंटरमीडिएट कॉलेज कानपुर के ऐतिहासिक जयन्ती समारोह में दद्दा से तुलना पर दादा इतने रुष्ट हुए थे कि मान-सामग्री ही फेंक दी थी—इस समारोह में दोनों राष्ट्रकवि उपस्थिति थे। दद्दा-समेत अनेक महानुभावों ने मनाया, तब शान्त हुए।

[2] वे कांग्रेसी थे। विधायक चुने गए पर सम्राट् इत्यादि के प्रति निष्ठा की शपथ न लेने के कारण स्वच्छन्द रहे। वे क्रान्ति को राजनीति-मुक्त रखना चाहते थे।

अवज्ञा, तिलक-पूर्व से प्रचलित 'स्वदेशी' इत्यादि का समन्वय कर गाँधी में एक व्यापक स्वच्छन्दतावादी आकर्षक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसने राष्ट्र को सम्मोहित कर लिया। उनके असहयोग और अवज्ञा के मूल के सन्दर्भ में श्री धर्मवीर कृत अंग्रेज़ी जीवनी 'हरदयाल एंड रिवोल्यूशनरी मूवमेंट ऑफ़ हिज़ टाइम्स' (1970 ई.)[1], विशेषतः तीसरा अध्याय, बहुत उपयोगी है। इस अत्यन्त उत्कृष्ट ग्रन्थ की भूमिका डॉ. आर. सी. मजूमदार ने लिखी है तथा सामग्री-सन्दर्भ में लाला हरदयाल से संपृक्त और मुद्रा-एकत्रीकरण एवं इस विद्या के विद्वान् महावीरशंकर माथुर ने भारी सहयोग दिया है। गाँधी में मौलिक कुछ भी नहीं है किन्तु उनका सब-कुछ उनका अपना बन गया है। 1920-48 ई. वस्तुतः गाँधी-युग था। गाँधी ने अपने वर्चस्व-स्थापन में अतुलनीय सफलता प्राप्त की। लाजपतराय, मालवीय, हेडगेवार इत्यादि को कांग्रेस छोड़नी पड़ी। महत्वाकांक्षी जिन्ना[2] ने साम्प्रदायिक[3] चोला पहना। एम.एन. रॉय, नारायण भास्कर खरे और सुभाषचन्द्र बोस पर भी वे भारी पड़े। गाँधी की रणनीति अपार शक्ति एवं विश्व-ख्याति के अनुरूप रही। उनसे अंग्रेज़ एवं और अन्य गौरांग प्रसन्न रहे। मुसलमानों में भी उन्होंने भारी लोकप्रियता अर्जित की। उनका राष्ट्र के राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक, दार्शनिक, साहित्यिक समग्र जीवन पर भारी प्रभाव पड़ा। तिलक एवं गाँधी बीसवीं सदी के सर्वश्रेष्ठ भारतीय नेता माने जा सकते हैं। इनमें अद्भुत पैंतरों के कारण गाँधी की अपार विश्व-ख्याति प्राप्त हुई। उन जैसा ख्याति-आखेटक समूचे इतिहास में नहीं मिलता!

हिन्दुओं की एकता, अस्पृश्यता-निवारण, नारी-जागरण, स्वदेशी इत्यादि क्षेत्रों में गाँधी की सेवाएँ महान् एवं अतुलनीय सिद्ध हुईं। हिन्दी गाँधी की सदैव कृतज्ञ रहेगी। इन्दौर के 1918 ई. (1974 वि.) एवं वहीं के 1935 ई. (1992 वि.) के साहित्य सम्मेलन के अधिवेशनों में दो बार अध्यक्ष बनकर तथा 1918 ई. के दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा एवं 1937 ई. में राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के वास्तविक संस्थापक के रूप में गाँधी ने हिन्दी के आसेतु-हिमाचल प्रचार-प्रसार हेतु ऐतिहासिक कार्य किया। भारत के स्वतन्त्र होने पर उन्होंने बी.बी.सी. हेतु सन्देश में कहा था : दुनिया से कह दो, गाँधी अंग्रेज़ी नहीं जानता! ठीक यही बात साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन (1935 ई.) में कही थी। यह सत्य है कि गाँधी ने हिन्दुस्तानी (उर्दू का दूसरा नाम जिसे ढाल बनाकर हिन्दी पर प्रहार किए जाते रहे हैं) का समर्थन किया। 'सरस्वती' सम्पादक देवीदत्त शुक्ल, आ. रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि ने इसका विरोध किया। कलान्तर में पुरुषोत्तमदास टंडन, राजेन्द्रप्रसाद, पटेल, सेठ गोविन्ददास इत्यादि ने हिन्दुस्तानी की थोपाथापी को प्रभावहीन करते हुए हिन्दी को संवैधानिक न्याय दिलवाया। विजातीयता-आच्छन्न साम्यवादी दल ने राहुल, यशपाल, रांगेय राघव को इसी सिलसिले में निकाला।

गाँधी के शत-शत लेख, सहस्रों पत्र एवं असंख्य प्रवचन मौलिक हिन्दी-निधियाँ हैं, जिन्हें 'सम्पूर्ण गाँधी-वाङ्मय' में देखा जा सकता है। गाँधी का हिन्दी-उच्चारण दुर्बल था, वे स्वरों में 'अ' को ही मात्रिक-महत्त्व देते थे (जो कालातीत हो चुका है), उनका विषय-निरूपण गम्भीर न होकर जनपरक होता था, किन्तु सम्प्रति मुद्रित ग्रन्थों में वह परिनिष्ठितप्राय रूप में प्राप्त होता है। बानगियाँ देखें :

1. कोई भी देश सच्चे अर्थों में तब तक स्वतन्त्र नहीं है जब तक वह अपनी भाषा में नहीं बोलता।
2. भाषा वही श्रेष्ठ है जिसको जनसमूह सहज में ही समझ ले।
3. यदि भारत को राष्ट्र बनना है तो चाहे कोई माने या न माने राष्ट्रभाषा तो हिन्दी ही बन सकती है।
4. राष्ट्रीय व्यवहार में हिन्दी को काम में लाना देश की एकता और उन्नति के लिए आवश्यक है।
5. विदेशी भाषा के माध्यम से शिक्षा की हिमायत करनेवाले जनता के दुश्मन हैं।
6. वही भाषा राष्ट्रीय बन सकती है जिसे अधिसंख्यक लोग जानते बोलते हैं।
7. आज की अंग्रेज़ी शिक्षा ने हमें निकम्मा एवं नक़लची बना दिया।
8. राष्ट्रभाषा की जगह एक हिन्दी ही ले सकती है, कोई दूसरी भाषा नहीं।
9. मैं ऐसी कला और साहित्य चाहता हूँ जो लाखों से बोल सके।
10. मैं यह मानता हूँ कि भारतवर्ष के उच्च शिक्षाक्रम में मातृभाषा के उपरान्त राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए भी स्थान होना चाहिए।
11. स्वदेशाभिमान को स्थिर रखने के लिए हमें हिन्दी सीखना आवश्यक है।

---

[1] लाला हरदयाल (14 अक्टूबर, 1884 से 3-4 मार्च की रात्रि, 1939, जन्म दिल्ली, निधन फिलाडेलफिआ, अमेरिका) श्यामजी कृष्ण वर्मा, भीकाजी कामा, सावरकर, राजा महेन्द्रप्रताप के स्तर के क्रान्तिकारी तो थे ही, असाधारण विद्वान् भी थे।

[2] जिन्ना सफ़ाचट सूट-टाई-बूट-धारी, मदिरा-शूकरमांसप्रेमी 'आधुनिक-व्यक्ति' थे, जिनकी पत्नी पारसी थीं (मुसलमान नहीं बनाया गया था)। नुसली वाडिया (उद्योगपति) जिन्ना के वंशज हैं। उनकी (टोपी के नाते) श्री विश्वनाथप्रताप सिंह से निकटता रही है।

[3] जिन्ना ने साम्प्रदायिक एवं भेदवादी राजनीति से उत्कर्ष किया। तब से सम्प्रदायवादी-राजनीति का प्रभाव बढ़ा।

सेवक की प्रार्थना[1]

(कहा जाता है कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने जीवन में केवल एक कविता लिखी थी। 1938 में। मननार्थ यहाँ प्रस्तुत है। यह 1984 में काशी नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में तथा 1996 में 'जनसत्ता' में छपी।)

हे नम्रता के सम्राट्
दीन भंगी की हीन कुटिया के निवासी
गंगा, यमुना और ब्रह्मपुत्र के
जलों से सिंचित
इस सुन्दर देश में
तुझे सब जगह खोजने में हमें
मदद दे
हिन्दुस्तान को जनता से
एक रूप होने को शक्ति
और उत्कंठा दे।
हे भगवन्
तू तभी मदद के लिए आता है
जब मनुष्य शून्य बनकर
तेरी शरण लेता है
हमें वरदान दे
कि सेवक और मित्र के नाते
जिस जनता की हम सेवा
करना चाहते हैं
उससे कभी अलग न पड़ जाएँ
हमें त्याग, भक्ति और नम्रता की
मूर्ति बना
ताकि इसको हम ज़्यादा समझें
औ ज़्यादा चाहें।

गाँधी के प्रति कोटि कोटि-कोटि जनता की आस्था की प्रतीक स्व. सेठ जमनालाल बजाज[2] की पत्नी स्वर्गता जानकी देवी बजाज[3] द्वारा रचित जन्कविता प्रस्तुत है[4] :

जाग उठा रस स्वतन्त्रता का!

मोहन गाँधीजी अवतारी चक्र सुदर्शनधारी, चर्खा चला-चलाकर सारी दूर हुई बेकारी।
गूँज उठा चरखे का प्यारा गुंजन मंगलकारी, घर-घर में स्वराज्य का गुणमय गौरव जन हितकारी।
खादी पहनो, खादी पहनो माता बहनों प्यारी, खादी से स्वराज्य पाना है भारत माँ बलिहारी।
बापू गाँधी वर्धा आवें खादी जब हम पहने, यह संदेश मिला जब मुझको त्याग दिये सब गहने।
वस्त्र विदेशी किये इकट्ठे घर मंदिर के सारे, ढेर लगाकर होली कर दी स्वजन हुए दुखियारे।

श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी'

बुद्धि में बृहस्पति हैं, तेज में रवि हैं।

—जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी'

'जिन आचार्य-कवियों ने बीसवीं शताब्दी में रीतिकालीन हिन्दी काव्य-परम्परा का विकसित किया है उनमें पं. श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने जीवन भर कवित्व के अन्तरंग एवं बहिरंग पक्ष को सँवारा और उसे नवीन रूप देने का प्रयास किया।

—डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक'

पं. श्यानबिहारी शर्मा 'बिहारी' व्रजभाषा-काव्य के उन समर्थ आचार्यों और कवियों में से एक हैं जिन पर व्रजभाषा-काव्यसाहित्य गर्व कर सकता है। 'बिहारी' जी में आचार्यत्व एवं कवित्व दोनों की विलक्षण प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

—डॉ. चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा

---

1. कविताश्री (सं. नलिनीकान्त, अंडाल, प. बंगाल), पृष्ठ 1, फरवरी, 1996 अंक।
2. कांग्रेस के भामाशाह। गाँधी के परम सहायक। सम्प्रति विख्यात उद्योगपति-परिवार के प्राण।
3. नई दिल्ली में जानकी देवी महाविद्यालय इन्हीं की स्मृति कराता है।
4. सुश्री मदालसा नारायण (श्रीमन्नारायण की पत्नी) द्वारा।

वीणापाणि माँ की महिमा से मुझे प्राप्त हुई आपके पदाम्बुजों की कुछ पहचान है।
गुरुवर! आपने सिखाया था मुझे जो कभी वही इस विनयावली[1] में विद्यमान है।।
आप थे विवेक, विद्या, बुद्धि, ज्ञान के निधान 'मानस' अजान कर पाता न बखान है।
आप तो सुमेरु-शृंग के समान थे महान मेरी काव्य-धारा आपका ही दिया दान है।।
—गयाप्रसाद तिवारी 'मानस'[2]

'बिहारी-बिहार'[3], 'बिहारी-विनयावली', 'साहित्य-सार', 'शृंगार-सौरभ', 'उक्ति-वैचित्र्य', 'तुलसी-स्मृति' इत्यादि के समर्थ कवि एवं आचार्य पं. श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' (1880-1971 ई.;) ''माघ शुक्ल 8, 1936 वि. को जन्म तथा 7 अक्टूबर, 1971 को निधन''—'सुकवि-विनोद' के मार्च, 1975 अंक में डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक') बौद्धिककाल के एक अत्यन्त सशक्त ब्रजभाषा-स्तम्भ थे, जिनका नाम द्विजदेव, प्रतापसाहि, भारतेन्दु, रत्नाकर, ब्रजनन्दन इत्यादि के साथ लिया जा सकता है। उनका जन्म अकबरपुर, जनपद उन्नाव में हुआ था, निधन कानपुर में। स्व. डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' जैसे विश्रुत विद्वान् एवं कवि ने मेरे 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' के सन्दर्भ में '' 'बिहारी' और 'केशव'[4] को भूल ही गए'' की शिकायत ठीक ही की थी। निस्सन्देह, 'बिहारीजी' सनेही, हितैषी एवं राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा'[5] के स्तर के कवि हैं तथा कानपुर से जुड़े हृदयनारायण पांडेय 'हृदयेश', गोपालदाज 'नीरज', देवीप्रसाद 'राही'[6], रामस्वरूप गुप्त 'सिन्दूर', सुमन राजे, वागीश शास्त्री, डॉ. उपेन्द्र, रामनाथ गुप्त, सारंग त्रिपाठी, विकास वाजपेयी, 2005 ई. में उ.प्र. हिन्दी संस्थान लखनऊ के 'शिक्षक सम्मान' से अलंकृत डॉ. प्रतीक मिश्र, वीरेश कात्यायन इत्यादि उनकी समता नहीं कर सकते। किन्तु, कुछ तो खड़ीबोली-कविता के वर्चस्व तथा कुछ आधुनिकता के प्रायः अभाव और बहुत-कुछ दल-शक्ति अथवा प्रचार-शक्ति से रहित होने के कारणों से उन्हें न्यायोचित ख्याति नहीं मिल सकी।

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने कानपुर में 'रसिक-समाज' स्थापित किया था जिसे उनके अनन्तर भी पं. रामरतन 'रत्नेश' ने प्राणवान रखा। किन्तु उसके प्रभाव के क्षीण होने पर 'बिहारी' ने 'श्री हिन्दी-साहित्य मण्डल' की स्थापना की जिससे सम्बद्ध आ. केशवदेव शास्त्री 'केशव', पं. करुणाशंकर शुक्ल 'करुणेश'[7] पं. हरनारायण गौड़ 'हरिजू', श्री रामशंकर गुप्त 'कमलेश'[8], आशुकवि देवेन्द्रनाथ शास्त्री, गयाप्रसाद तिवारी 'मानस', दिनेश पांडेय, श्रीनिधि अवस्थी, श्रीप्रकाश त्रिवेदी, गिरिजाशंकर 'शेखर' इत्यादि ने हिन्दी की उल्लेख्य सेवाएँ कीं। पं. अवधबिहारी तिवारी 'अवधेश मालवीय' भी इस मंडल में आते-जाते रहते थे। 'बिहारी' की 'सनेही'[9] से बहुत चलती थी। वे सनेही को (प्रोफेशनल) कवि मानते थे, पर यह युक्तियुक्त नहीं लगता, क्योंकि 'सनेही' हिन्दी-कविता के एक इतिहास-पुरुष हैं। उनके हितैषी[10], अनूप शर्मा, प्रणयेश, अभिराम, तरल (श्यामबिहारी शुक्ल 'तरल'), असीम दीक्षित इत्यादि शिष्यों ने भी हिन्दी-कविता को सम्पन्न किया है। 'बिहारी' की हितैषी से भी लगती थी। हितैषी ने उन पर भँड़ौवा भी लिखा था। हितैषी ने 'कान्यकुब्ज-वंशावली' के प्रस्तोता पं. मणिलाल मिश्र एवं कवि हृदयनारायण पांडेय 'हृदयेश' इत्यादि पर भी भँड़ौवे लिखे थे। निराला, उग्र इत्यादि के सदृश हितैषी लड़ाकू कवि थे, जिनका डंडा 'प्रसिद्ध' था![11]

---

1. 'मानस-विनयावली' (समर्पण-छन्द)।
2. पन्नालाल गुप्त 'मानस' अन्य कवि भी हैं।
3. शास्त्रीयकालीन महाकवि बिहारी से सम्बद्ध पं. अम्बिकादत्त व्यास कृत 'बिहारी-बिहार' (टीका) का स्मरण आता है।
4. आचार्य केशवदेव शुक्ल शास्त्री 'केशव'।
5. माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' की प्रेरणा से।
6. बालस्वरूप 'राही', सुदर्शन 'राही', 'राही' मासूम रज़ा आदि अन्य राही भी हैं।
7. भगवतीप्रसाद त्रिवेदी 'करुणेश' से भिन्न।
8. डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' का स्मरण आता है।
9. पं. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' जिनकी पत्रिका 'सुकवि' एक संस्था बन गई। वीरेश कात्यायन उनके छन्द हूबहू उन्हीं की तरह सुनाते हैं।
10. इन पट्ट शिष्य से बाद में अनबन हो गई थी। हितैषी के पितृव्य-पुत्र वीरेश कात्यायन उत्कृष्ट गीतकार हैं जिनकी रचनाएँ सांस्कृतिक दृष्टि से गम्भीर एवं मनोमुग्धकारी होती हैं।
11. एक बार हितैषी और निराला में मल्ल-युद्ध होने लगा। (हितैषी को अपने दावों पर भरोसा था और निराला को डील-डौल पर), जिसे मित्रों ने घातक नहीं होने दिया।

स्वतन्त्र भारत में हिन्दी का यह दुर्भाग्य रहा कि राजनीति एवं साहित्य दोनों की केन्द्र एक दिल्ली हो गई। दिल्ली में अनेक उच्च संस्थान, सेवाकेन्द्र, विश्वविद्यालय, दूरदर्शन, आकाशवाणी, सामचारपत्र, मासिकपत्र, साप्ताहिकपत्र इत्यादि तो पुंजीभूत हो ही गए हैं, यह प्रकाशन-व्यवसाय की भी सर्वोपरि केन्द्र बन गई है। परिणामतः यहाँ असली-नक़ली साहित्यकारों का हजूम उमड़ा पड़ रहा है, तिकड़म का ज़ोर है। यहाँ अनेक प्रसिद्ध साहित्यकार एवं कवि केवल प्रचार के बल पर ही टिके हैं, जबकि बहुत-से अल्पप्रसिद्ध और अप्रसिद्ध साहित्यकार यों ही पड़े हैं। दिल्ली से बाहर के अनेक श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ कवि एवं लेखक उपेक्षित पड़े रह जाते हैं। दिल्ली में साहित्य एवं उसकी आत्मा कविता राजनीति या पूँजी की दासता में बद्धप्राय है। कवि या लेखक की पहचान पुरस्कारों, पत्र-पत्रिकाओं, आकाशवाणी, दूरदर्शन इत्यादि के माध्यमों द्वारा की जाने लगी है अभिजातवादी आलोचक व्रजभाषा, अवधी तथा खड़ीबोली की पारम्परिक कविता को देखकर दूर से ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। यह सब दुर्भाग्यपूर्ण है। अन्यत्र ऐसा नहीं है। मैं लखनऊ के अवधी-कविरत्न शारदाप्रसाद 'भुशुंडि', सवैया-प्रेमी कविवर डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', 'राजेशदयालु 'राजेश', परमानन्द जड़िया, दयानन्द जड़िया 'अबोध', भगवतीप्रसाद त्रिवेदी 'करुणेश', आ. चक्रपाणि पांडेय, श्रीमती गीता पांडेय, डॉ. रामाश्रय 'सविता', कृष्णमुरारी 'विकल', रेवतीशरण, योगेशदयालु, गयाप्रसाद तिवारी 'मानस', रंगनाथ मिश्र 'सत्य', रामचन्द्र शुक्ल, (मूलस्थान जौनपुर, स्थायी निवास रायबरेली), रचना शर्मा जैसे पारम्परिक एवं नव्यतावादी विविधस्तरीय कवि-कवयित्रियों की रचनाओं से परिचित होकर चकित रह गया। ऐसी बहुविधि सम्पन्नता आज की दिल्ली में दुर्लभ है! पं. श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' का कवि रूप किसी भी दृष्टि से नागार्जुन के कवि-रूप से श्रेष्ठतर ही सिद्ध होगा, अन्य अनेक प्रसिद्ध कवियों की तो बात ही क्या! पं. श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' जैसे श्रेष्ठ कवियों के साथ न्याय न हुआ तो हमारा साहित्येतिहास पंगु हो जाएगा, हमारी आलोचना एकांगी हो जाएगी।

यह सत्य है कि 'बिहारी' की कविता अतिशय-पारम्परिक है, हास्यरस में यत्र-तत्र अश्लील हो गई है, अस्मिता-अभिव्यक्ति में भारतेन्दु इत्यादि से प्रभावित है। वे शास्त्रीयकालीन कवियों एवं आचार्यों के निकटतर हैं, बौद्धिककालीन कवियों एवं आचार्यों से दूर। अपनी उत्कृष्ट कविता में वे उच्च-कोटि के कवि हैं, विशेषकर उनकी शृंगारिक कविता अमूल्य छन्दों से आपूर्ण है। उनके अनेक छन्दों में प्रशस्य रहस्यानुभूति भी विवृत हुई है (वैसे, वे पारम्परिक भक्त-कवि भी थे)। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर समुचित शोध आवश्यक है। इनकी कविता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. निकसी जल लेन नवेली जबै पिय औचक कंचुकि आन कसी।
बिहँसी लखि प्यारी बिहारी कहै सुभ नाक बुलाक सों ऐसी लसी।।
चख रूपी चकोर न लै कै उड़े यह संक जो आनि हिए मैं बसी।
अधरान के पात दुरावै मनौं सुक चोंच में दाबि दुतीया ससी।

2. अँगराग सुगंध लसी दरसी घर से निकसी वा सुधाकर सी।
निसि के श्रम सारे निवारिबे को वृषभानुजा भानुजा में जा धँसी।।
सरकी सिर सारी बिहारी कहै बिकसी प्रभा प्यारी प्रभाकर सी।
कुच पै नखरेख निहारि मनौं उग्यो संभु के सीस दुतीया ससी।।

3. मेरे उर अंतर निरंतर न जानै कौन झलक झकोर झूमि झलकि झलकि जाति।
फरकि फरकि जात अंग क्यों उमंग भरे मति बजमारी कैसी ललकि ललकि जाति।।
औचक उचकि चोपि चौंकत चकाति क्यों मैं कारी है बिहारी बुद्धि बलकि बलकि जाति।।
तू तौ गुन आगरि है, नागरि! निहारे नेकु गागरि हमारी काहे छलकि छलकि जाति।

काका कालेलकर

प्रसिद गाँधीवादी विचारक एवं लेखक काका कालेलकर (1885-1981 ई., जन्मस्थान सतारा) ने मातृभाषा मराठी के अतिरिक्त गुरुभाषा गुजराती एवं राष्ट्रभाषा हिन्दी में भी मौलिक ग्रन्थरचना की तथा अपने अनेक ग्रन्थों के अनुवाद भी किए। बांग्ला और अंग्रेज़ी पर भी उनका पूरा अधिकार था। 'स्मरणयात्रा' (संस्मरण), 'धर्मोदय' (आत्मकथा), 'हिमालय-यात्रा', 'लोकमाता' (यात्रावृत्त) इत्यादि ग्रन्थ उन्हें बहुविधाकार के रूप में स्मरणीय बना देते हैं। एक उत्कृष्ट बहुभाषाविद् एवं एक मूर्द्धन्य विद्वान् के रूप में काका कालेलकर

भारतीय साहित्य की अमर विभूतियों में परिगणित किए जा सकते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि उनकी 'शक्ति'[1] विभिन्न भाषाओं एवं विभिन्न विधाओं में बिखर गई है तथा वे किसी भी भाषा एवं किसी भी विधा में कोई निर्णायक स्थान नहीं प्राप्त कर सके, तथापि विशेषतः गुजराती एवं सामान्यतः हिन्दी, मराठी, अंग्रेज़ी ग्रन्थकारों में उनको एक आदरणीय स्थान अवश्य प्राप्त है।

काका कालेलकर की हिन्दी-शैली अपनी है : सरल-संस्कृतनिष्ठ एवं जननिष्ठ। वे कोई भारी प्रभाव नहीं डाल पाते, किन्तु संस्कारों को पुष्ट करते हैं। भारत, भारतीय संस्कृति एवं भारती के प्रति उनकी निष्ठा प्रशस्य है। उनके अनुसार, ''हमारा राष्ट्रभाषा-प्रचार एक राष्ट्रीय कार्यक्रम है।'' गाँधी-अनुयायी होने के कारण सम्प्रपति कालातीत वर्धा-छाप लिपि (अिसकी, अुसकी, अूसर इत्यादि वाली: 'अ'-प्रधान) एवं राजनैतिक स्टंट हिन्दुस्तानी के समर्थन के कारण एक बार काशी के पंडितों ने उनको परास्त-सा कर दिया था।

वृन्दावनलाल वर्मा

हिन्दी के अग्रणी एवं विश्वस्तरीय ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा (9 जनवरी, 1889 ई., झाँसी) की प्रथम कृति 'गढ़ कुंडार' के प्रकाशन पर 'प्रताप' के प्रतापी सम्पादक, तेजस्वी साहित्यकार एवं अमर हुतात्मा गणेशशंकर विद्यार्थी[2] ने गुणतः उन्हें हिन्दी का स्कॉट कहा था, जिसे उन्होंने 'बिराटा की पद्मिनी', 'झाँसी की रानी', 'रामगढ़ की रानी'[3] 'अमरबेल' एवं 'मृगनयनी' इत्यादि लिखकर परिणामतः भी सत्य सिद्ध कर दिया। उनकी शुष्कता भी स्कॉट के निकट बैठती है। स्कॉट के सदृश, अनेक उपन्यासों में वर्मा का देशभक्त-रूप भी उभरता है। उन्होंने मुंशीगंज हत्याकांड (रायबरेली) में सत्यता प्रकाशित करने के कारण 'प्रताप'[4] के प्रतापी सम्पादक गणेशशंकर विद्यार्थी की वकालत की थी। यद्यपि वृन्दावनलाल वर्मा लालित्य के अभाव में बंकिम एवं विद्वत्ता के अभाव में मुंशी से पीछे लगते हैं, तथापि वस्तुवादिता एवं तथ्य-सम्प्रेषण में इन दोनों से आगे हैं। वे भावना या विचार में न बहकर सत्य का प्रणम्य चित्रण करते हैं। किशोरीलाल गोस्वामी के सदृश उन्होंने ऐतिहासिक उपन्यास रचते हुए भी ''इतिहास को दूर से ही नमस्कार'' करने की ग़लती नहीं की, प्रसाद के सदृश इतिहास को रंगीनी में नहीं भटकाया, राहुल एवं रांगेय राघव के सदृश इतिहास पर वाद नहीं थोपा, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के सदृश इतिहास को पाण्डित्यमूलक देशकाल-प्रधानता से एकांगी नहीं बनाया, चतुरसेन शास्त्री के सदृश इतिहास को उच्छृंखलता एवं अमौलिकता के अखाड़े में नहीं पटका, गुरुदत्त के सदृश इतिहास पर पूर्वाग्रह नहीं लादा, यज्ञदत्त के सदृश इतिहास की आड़ लेकर कालातीत क़िस्सागोई नहीं की। शिवकुमार मिश्र, पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' सियारामशरण प्रसाद एवं रामदरश मिश्र ने उन पर अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं। पेशे से वकील होने के कारण उन्होंने घटना को ठीक-ठीक उभारने में भारी सफलता प्राप्त की है। उर्दू के नासिख़ और अंग्रेज़ी के टेनीसन से भी बहुत भारी खुराक़ उठाने वाले, पहलवान-छाप (श्री भागवतप्रसाद मिश्र 'नियाज़' ने 'अतीत की झलकियाँ में उन्हें शब्दचित्र में बाँधा है : ''एक बलिष्ठ सुगठित शरीर और ऊँचे क़द, लम्बे कान, चौड़े मस्तक, आजानु बाहें, घनी भौहें, सधी हुई गहरी दृष्टि और सन्तुलित वाणी वाले व्यक्तित्व'') देखने में ठूँठ और एक अच्छे शिकारी होते हुए भी उन्होंने 'बिराटा की पद्मिनी' जैसी ललित कलाकृति की सृष्टि की, जिसकी कुमुद अपनी भावनाशील-गम्भीरता एवं गम्भीर-भावनाशीलता में एक महान् चरित्र बन गई है। देखने में ठूँठ प्रेमचन्द के कायाकल्प की मनोरमा का स्मरण आ जाता है! वृन्दावनलाल वर्मा की भाषा उनकी प्यारी झाँसी के अनुरूप कंकड़ीली तो है, पर ''गले की फाँसी'' नहीं! 'मृगनयनी' में महमूद बघर्रा वगैरह के प्रसंग में हास्य

---

[1] 'काव्यप्रकाश' (मम्मट) इत्यादि में। सम्प्रति 'प्रतिभा' शब्द प्रचलित है।

[2] डॉ. लल्लन मिश्र ने 'गणेशशंकर विद्यार्थी : हिन्दी निबन्ध तथा पत्रकारिता को देन' और 'गणेश जी की लेखनी' (व्यास-गणेश-प्रकरण याद आता है—'महाभारत' का सन्दर्भ भी मिलता है!) ग्रन्थ प्रस्तुत किए हैं। उन्होंने 'बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दनग्रन्थ', 'नवीन अभिनन्द-ग्रन्थ', 'पं. बनारसीदास चतुर्वेदी स्मृति-ग्रन्थ', 'पं. पद्मसिंह शर्मा स्मृति-ग्रन्थ' इत्यादि के द्वारा भी हिन्दी की प्रशस्य सेवा की है।

[3] लक्ष्मीबाई-समकालीन-समकक्ष वीरांगना अवंतीबाई (16 अगस्त, 1831, मनकेडी, जनपद सिवनी, मध्यप्रदेश) पर ऐतिहासिक उपन्यास। अवंतीबाई 1857 ई. के स्वातन्त्र्य संग्राम में शहीद हुईं। इन पर इक़बाल बहादुर देवसरे ने 'रक्तरंगा' उपन्यास एवं थम्मन सिंह 'सरस' ने 'रानी अवंतीबाई' (नाटक तथा महाकाव्य दो ग्रन्थ लिखकर) वर्माजी ने 'प्रस्थान'-कार्य को प्रशस्यतः विकसित किया है। लक्ष्मीबाई ब्राह्मण थीं, अवंतीबाई लोधी-वीरांगना थीं। लोधी या लोदी या लोध हिन्दू भी हुए हैं, मतान्तरित मुसलमान भी। मतान्ध सिकन्दर लोदी (देहान्त 1517 ई.) से कल्याण सिंह (उत्तर प्रदेश के 1991 ई. के निर्वाचन के बाद तथा 1997 ई. में पुनः मुख्यमन्त्री) तक का इतिहास साक्षी है। सांसद विधायक तो हुए ही हैं जिनमें उमा भारती प्रसिद्ध हैं। राहुल सांकृत्यायन के 'जय यौधेय' (ऐतिहासिक उपन्यास) के 'यौधेय' भी 'लोधी' या 'लोध' हो सकते हैं।

[4] स्व. डॉ. श्रीरामसिंह के 'रायबरेली : अवध किसान-आन्दोलन की यज्ञभूमि' ग्रन्थ में वर्माजी का प्रभावी उल्लेख है।

के चक्कर में तो वे बेकार ही फँस गए हैं, क्योंकि उनकी रुचि एवं क्षमता हास्य में नहीं है। कायस्थ बन्धुओं ने हिन्दी की महत्त्वपूर्ण सेवा की है जो घनआनन्द, ठाकुर (तृतीय) भिखारीदास, नवलसिंह कायस्थ, साहबदास भटनागर, भगवानदीन 'दीन', प्रेमचन्द, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, धीरेन्द्र वर्मा, बाबूराम सक्सेना, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, बच्चन, महादेवी वर्मा, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय, नीरज, रमाकान्त श्रीवास्तव, कैलाश 'कल्पित', महेन्द्र भटनागर, कुँवर बेचैन इत्यादि के सृजन से स्पष्ट है, किन्तु हिन्दी-कथा साहित्य तो इनका विशेष ऋणी है क्योंकि प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, कमलेश्वर, निर्मल वर्मा इत्यादि विधा के अग्रणी स्रष्टाओं में हैं। डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, आ. नरेन्द्रदेव, गणेशशंकर विद्यार्थी, डॉ. सम्पूर्णानन्द, जयप्रकाश नारायण, लालबहादुर शास्त्री इत्यादि सुविख्यात जननायक भी हिन्दीसेवी रहे हैं। बंगाल के विवेकानन्द, जगदीशचन्द्र बोस, रासबिहारी बोस, सुभाषचन्द्र बोस इत्यादि राष्ट्रीय महापुरुष भी किसी-न-किसी रूप में हिन्दीप्रेमी रहे हैं। कायस्थों की प्रतिभा सर्वज्ञात है और वह हिन्दी के हित में भी सक्रिय रही है। वृन्दावनलाल वर्मा ने कुछ नाटक भी लिखे हैं, जिनमें 'पूर्व की ओर' श्रेष्ठ है, जो अंडमान और निकोबार द्वीपों, वहाँ के आदिवासी जीवन एवं प्राचीन नौवहन के चित्रण के कारण विशेष महत्त्वपूर्ण हो जाता है। अंडमान हनुमान् एवं निकोबार (कथासरित्सागर के) 'नारिकेर' द्वीप प्राचीन 'इतिहास' से विपन्न नहीं हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी

तन फ़क़ीर, मन वीर का, प्राण यज्ञ की ज्वाल।
कवि अनेक पर व्यक्ति है अतुलित माखनलाल।।
—रामप्रसाद मिश्र

हिन्दी की राष्ट्रीय कविता में सर्वाधिक भावनापूर्ण एवं मार्मिक सर्जना करने वाले अग्निवर्षी कविवर माखनलाल चतुर्वेदी (4 अप्रैल, 1889—30 जनवरी[1] 1968) एक सफल नाट्यकार, एक प्रभावी कहानीकार, एक अमर गद्यगीतकार एवं महान् वक्ता भी थे। उनकी इलहामी अनुभूति इलहामी भाषा में ही व्यक्त हुई है जिसमें शब्दशिल्प, व्याकरण इत्यादि दब गए हैं—केवल भाव उभरा है और यही वरेण्य है। वे मध्य प्रदेश के बाबई नामक स्थान में रामनरेश त्रिपाठी के जन्म से लगभग एक महीने बाद जन्मे, देशभक्तिपूर्ण सृजन और तत्परिणामस्वरूप कारा-गमन का जीवन जिए, मध्यप्रदेश के ही खंडवा[2] में बसे और प्रखर एवं तेजस्वी व्यक्तित्व तथा बलिदानपूर्ण-उच्चादर्शपूर्ण कृतित्व के कारण अमर हो गए। उन्होंने 'पद्मभूषण' का अलंकार ठुकरा दिया था। उनको घर पर ही डी. लिट्. की मानद उपाधि प्रदान की गई जो ''न भूतो न भविष्यति'' कहने को उत्तेजित करती है। यह घटना राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन को प्रयाग जाकर 'भारतरत्न' का सर्वोच्च अलंकार प्रदान किए जाने का स्मरण करा देती है। प्रथम में आदर्श-प्रतिष्ठापक उपकुलपति-कवि-नेता द्वारकाप्रसाद मिश्र थे, द्वितीय में देशरत्न-राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद थे (जो स्वयं भारतरत्न हुए)। उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार भी मिला। किन्तु यह सब उनकी साधना को देखते नगण्य है। 'संस्मरण और श्रद्धांजलियाँ ग्रन्थ में दिनकर ने लिखा है : ''कवि, देशभक्त और वक्ता—इन तीन रूपों में माखनलाल जी का देश में जो सम्मान रहा है वह सम्मान बिरले साहित्यकार को नसीब होता है।'' दिनकर ने अपने ऊपर माखनलाल का प्रभाव स्वीकार किया है : ''मेरा अगर कोई गुरु हो सकता है तो वे गुरु श्री माखनलाल हैं।'' सोहनलाल द्विवेदी ने अपने ऊपर माखनलाल का प्रभाव बताया है। कानपुर के एक प्रसिद्ध कवि राजाराम शुक्ल 'एक राष्ट्रीय आत्मा' माखनलाल से बहुत प्रभावित थेः माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' थे, तो वे 'एक राष्ट्रीय आत्मा'!

श्री प्रयाग जोशी[3] ने बहुखंडीय 'माखनलाल चतुर्वेदी ग्रन्थावली' का सम्पादन कर उनकी काव्य-गरिमा का पूर्ण दर्शन तो कराया ही है, उनके उच्चस्तरीय गद्यकाररूप को भी उजागर किया है। रामाधार शर्मा ने 'माखनलाल चतुर्वेदी : एक अध्ययन' एवं ऋषि जैमिनी कौशिक बरुआ ने 'माखनलाल चतुर्वेदी' (जीवनी) ग्रन्थों में उनके साहित्य एवं जीवन पर प्रकाश डाला है। उन पर श्रीकान्त जोशी ने भी प्रशस्य कार्य किया है।

---

[1] प्रसाद के जन्म 30 जनवरी, 1890 को हुआ, गाँधी की हत्या 30 जनवरी, 1948 को हुई।

[2] महान् अभिनेता स्व. अशोककुमार एवं उनके अनुज सर्वश्रेष्ठ पार्श्वगायक स्व. किशोरकुमार खंडवा की ही विभूतियाँ हैं।

[3] रायबरेली के प्रवक्ता एवं समीक्षक डॉ. प्रयाग जोशी से भिन्न।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने माखनलाल चतुर्वेदी की कृतियों का यह विवरण दिया है : "आपकी रचनाओं को प्रकाशन की दृष्टि से इस क्रम में रख जा सकता है—कृष्णार्जुन-युद्ध (1918 ई.), हिमाकिरीटिनी (1941 ई.), साहित्य-देवता (1942 ई.)। 'युगचरण', 'समर्पण' और 'वेणु लो गूँजे धरा' उनके प्रख्यात संग्रह हैं। परवर्ती निबन्धों का एक संग्रह 'अमीर इरादे, ग़रीब इरादे' नाम से छपा है।" 'रंगों की बोली' उनका अन्य स्मरणीय सांस्कृतिक निबन्धों का संग्रह है। उनकी 'हिमतरंगिनी' भी विख्यात है।

यद्यपि कृष्णार्जुन-युद्ध नाटक अपने समय में बहुत लोकप्रिय एवं चर्चित हुआ, उनकी कहानियाँ भी आकर्षक हैं, उनके निबन्ध उनके व्यक्तित्व से संपृक्त होने के कारण महत्त्वपूर्ण हैं, 'साहित्य-देवता' में उनका गद्यगीतकार-रूप विधा की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व का है, तथापि उनकी अमरता का कारण उनकी देशभक्ति से ऊभचूभ, सूफ़ियाना अन्दाज़ से भरपूर और बलिदान के नशे में चूर जीती-जागती कविताएँ ही हैं, जिनकी तुलना में उनके श्रद्धेय कवि मैथिलीशरण की कविताएँ तक भाषण लगने लगती हैं—कोई सुनियोजन नहीं, कोई पूर्वाग्रह नहीं, कोई प्रतिबद्धता नहीं, कोई न्यस्त-स्वार्थ नहीं; बस, ख़ालिस हुब्बुलवतनी! पता नहीं क्यों, 'प्रकर' (दिल्ली) के दिसम्बर, 1990 अंक में डॉ. श्यामसुन्दर घोष ने 'माखनलाल चतुर्वेदी' में उन्हें गद्यलेखन में अधिक प्रभावी माना है? वे उच्चकोटि के गद्यकार थे : गद्यगीतों में, भावात्मक-निबन्धों में, संस्मरणों में, नाटक में। किन्तु उनका कवि-रूप उच्चतर था, प्रधान भी। माखनलाल का कवि-रूप महादेवी, दिनकर और अज्ञेय के कवि-रूपों के प्रायः समकक्ष है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने 'आधुनिक हिन्दी-काव्य' में उन्हें महादेवी से पहले रखा है। यदि महादेवी गीत-गीर्वाणी हैं तो माखनलाल अलमस्त कविताकार। यदि दिनकर विचारपूर्ण हैं, तो माखनलाल भावपूर्ण। यदि अज्ञेय-बौद्धिकरस में सिद्ध हैं, तो माखनलाल आत्मरस में। राष्ट्रीय कवि के रूप में वे अनेक कवियों से श्रेष्ठतर हैं : क्या गहरी अनुभूति में, क्या बेबाक अभिव्यक्ति में, क्या रवानी में! विधायक निवाचित हुए किन्तु ब्रिटिश-सम्राट् इत्यादि के प्रति निष्ठा की शपथ लेने से इंकार कर दिया; विधायक का पद और वह भी उन दिनों का, ठुकरा दिया—ऐसा त्याग उनके अतिरिक्त केवल श्री बालमुकुन्द वाजपेयी नामक सज्जन ने ही किया था[1] और उनकी कविता उनका ही प्रतिबिम्ब है :

1. मुझे भूलने में सुख पाती जग की काली स्याही;
मंज़िल दूर, कठिन है सौदा, मैं हूँ एक सिपाही!
2. सखे! बता दे, कैसे, गाएं, अमृत मौत के दाम न हो;
जगे एशिया[2], हिले विश्व पर राजनीति का नाम न हो
3. सफलता पाई अथवा नहीं? उन्हें क्या ज्ञात? दे चुके प्राण!
विश्व को चाहिए उच्च विचार? नहीं! केवल अपना बलिदान!
4. चाह नहीं मैं सुरबाला के गहनों में गूँथा जाऊँ,
चाह नहीं प्रेमी-माला में बिंध प्यारी को ललचाऊँ;
चाह नहीं सम्राटों के शव पर, हे हरि![3] डाला जाऊँ,
चाह नहीं देवों के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ।
मुझे तोड़ लेना वनमाली[4] उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर फूल चढ़ाने जाते जिस पर वीर अनेक।

समग्र भारतीय कवियों में माखनलाल चतुर्वेदी सर्वोपरि स्वातन्त्र्य-योद्धा थे, जिन्हें कारागार की कालकोठरी और पेट पर जुवाँ लगाकर कुएँ से मोट खींचना भी विचलित न कर सका :

---

[1] उनकी जन्म-शताब्दी पर 4 अप्रैल, 1989 को लखनऊ के रवीन्द्रालय में हुए समारोह में अध्यक्ष स्व. जगदीशचन्द्र दीक्षित (विधान परिषद् उत्तर प्रदेश के सभापति) ने अपने भाषण में इस बिन्दु पर प्रकाश डाला था। इस समारोह में मैं भी बोला था। मैंने माखनलाल चतुर्वेदी पर "अग्निपायी अग्निवर्षी किन्तु था नवनीत" एवं "वह माखनलाल था" शीर्षक दो कविताएँ भी लिखी हैं जो मेरे बड़े-से कवितासंग्रह 'सार्वभौम' में संगृहीत हैं। स्व. दीक्षित हिन्दी-लेखक भी थे।

[2] एसिआ ठीक है, किन्तु एशिया प्रचलित है।

[3] माखनलाल चतुर्वेदी राधावल्लभ सम्प्रदाय से सम्बद्ध थे। 'वनमाली' में भी ध्वनि है।

[4] हिन्दी की एक महान कविता 'क़ैदी और कोकिला' से।

हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जुवाँ,
ख़ाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कुवाँ!

सचमुच उनके पूर्वज मेवाड़ से जाकर मध्य प्रदेश में बसे थे! वे योद्धा थे—रुग्ण एवं दुर्बल शरीर में स्वस्थ एवं सबल प्राण के धनी! वे रवीन्द्र एवं इक़बाल के सदृश 'सर' न थे, ख़लिस 'असर' थे! उनकी जीवन-संघर्षगाथा की समता कोई आधुनिक कवि नहीं कर सकता।

माखनलाल चतुर्वेदी की लम्बी कविता 'क़ैदी और कोकिला' हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ लम्बी कविताओं में एक है, जो 'प्रसाद' की 'प्रलय की छाया' से अधिक सशक्त एवं प्रेरक, निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' की तुलना में कम कलात्मक होने पर भी अधिक साधारणीकरणक्षम, पन्त की 'परिवर्तन' की तुलना में संकीर्णायामी होते हुए भी अधिक मार्मिक, मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' की तुलना में कम क्रान्तिकारी होते हुए भी अधिक प्रभावी तथा अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' की तुलना में कम दर्शननिष्पन्न होने पर भी अधिक ऊर्जस्वित् है: निस्सन्देह किसी से भी तुलनीय। कीट्स कृत कविता 'ओड टु ए नाइटिंगेल' कला में अपूर्व तथा निराशा में गहन है किन्तु माखनलाल कृत 'क़ैदी और कोकिला' कला में सहज-सरल तथा आशावाद में ऊर्जक-शक्तिदायक है। इस अमर कविता में कष्ट एवं पीड़ा, व्यथा एवं विवशता, संघर्ष एवं आशावाद का अनायास हुआ समन्वय कवि के महान् जीवन का प्रतीक है। कुछ अंश प्रस्तुत हैं :

क्या गाती हो? क्यों रुक-रुक जाती हो? कोकिल! बोलो तो,
किसका है, क्या सन्देशा लाती हो? कोकिल! बोलो तो।
ऊँची काली दीवारों के घेरे में, डाकू, चोरों, बटमारों के डेरे में।
जीने को देते नहीं पेट भर खाना, मरने भी देते नहीं, तड़प रह जाना।
तुझे मिली हरियाली डाली, मुझे नसीब कोठरी काली।
    तेरा नभ भर में संचार, मेरा दस फुट का संसार।
    तेरे गीतों में उठती वाह, रोना भी है मुझे गुनाह!....

माखनलाल चतुर्वेदी पर अधिक ऊहापोह अपेक्षित है। एक साथ ही योद्धा, फ़क़ीर और कवि होने के कारण उन्होंने कभी लॉबीबाज़ी नहीं की। पता नहीं, साम्यवादी आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं उनके युग (आई.ए.एस. परीक्षा में सबका बहिष्कार), प्रसाद (इन्हें पाठ्यक्रमों से नहीं उखाड़ पाए) इत्यादि के साथ माखनलाल पर क्यों रुष्ट हैं (लखनऊ विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम से ब्लैक-आउट कर रखा है)—जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी की तो चर्चा ही बेकार है जिसका प्रथम दीक्षान्त भाषण अभिनेता बलराज साहनी[1] ने दिया था)! साम्यवादी भाई यह भूल जाते हैं कि महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी इत्यादि महापुरुष- साहित्यकार थे जो जनजीवन में घुल-मिल गए हैं।

महान् वक्ता और तेजस्वी व्यक्ति

माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ वक्ता थे। जिस तीव्र अनुभूति एवं प्रखर अभिव्यक्ति से उनके भाषण सम्पन्न होते थे उससे किसी के नहीं। महादेवी उत्कृष्ट वक्ता थीं किन्तु विद्वान् पहले—जहाँ वैदुष्य प्रधान हो वहाँ वक्तृत्व गौण हो ही जाता है। नवीन, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी एवं दिनकर भी उत्कृष्ट वक्ता थे किन्तु जिस अडिग विश्वास एवं अप्रतिहत शक्ति से माखनलाल बोलते थे उसकी मिसाल नहीं। ''शैली स्वयं मनुष्य है'' (''स्टाइल इज़ द मैन हिमूसेल्फ़''—बफ़न) : माखनलाल वही बोलते थे जो जीते थे, अतः उनकी समता वही कर सकता है जो उन जैसा निस्संग, तेजस्वी, महान् जीवन जिया हो! उनकी समलैंगिकता पर एक बार गाँधी ने पूछा, ''तुम पर क्या सुनता रहता हूँ?'' माखनलाल ने उत्तर दिया, ''बापू, आपके कान बड़े मीठे हैं; लोगों को उन्हें चबाने में मज़ा आता है और आपको उनके चबवाने का चाव है!'' यह बात तब की है जब खंडित भारत के साथ गाँधी भी खंडित नहीं हुए थे! स्वयं गाँधी पर कॉलिंस और लापीअर ने 'फ्रीडम' ऐट् मिड्नाइट' में नेहरू-सन्दर्भी ऐसा ही आरोप लगाया है। अतः उक्त प्रश्न व्यर्थ था। फिराक़ गोरखपुरी को 'भारत की विशिष्ट प्रतिभा' 'स्पॉइण्ड जीनअस ऑफ़ इंडिआ' कहना भी व्यर्थ था।

---

[1] बलराज साहनी साम्यवादी माने जाते थे। (अनुज कथाकार भीष्म साहनी की तरह)।

आ. नरेन्द्रदेव

भारत में भारतीय समाजवाद के एक विद्वान् वाहक, समाजवाद को संस्कृति से जोड़नेवाले, विख्यात शिक्षाविद् (काशी विद्यापीठ के आचार्य, लखनऊ एवं काशी विश्वविद्यालयों के उपकुलपति), 'बौद्ध धर्म दर्शन' (जिस पर 1856 ई. का साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला) शीर्षक स्वविषयक उत्तम ग्रन्थ के प्रणेता, 'अभिधर्म कोश' (चार भाग) के मनीषी प्रस्तोता एवं 'राष्ट्रीयता और समाजवाद' के स्मरणीय ग्रन्थकार आ. नरेन्द्रदेव का मूलनाम अविनाशीलाल था जिसे महान् निबन्धकार माधवप्रसाद मिश्र ने बदला–(31 अक्टूबर[1], 1889—19 फरवरी, 1956, सीतापुर[2]) को हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्थान अवश्य मिलना चाहिए क्योंकि वे हिन्दी-लेखक भी थे, हिन्दीप्रेमी भी। 17 मार्च, 1990 को भोंडसी हरियाणा) में उन पर आयोजित विराट् समारोह में राजीव गाँधी ने रहस्योद्घाटन किया कि उनका नामकरण आ. नरेन्द्रदेव ने किया था। आ. नरेन्द्रदेव नेहरू के घनिष्ठ मित्रों में थे ही। प्रधानमन्त्री चन्द्रशेखर की आचार्य के प्रति अगाध श्रद्धा रही है, क्योंकि वे गुरु थे। दिल्ली, कानपुर, भोपाल, फ़ैज़ाबाद, सीतापुर इत्यादि में उनके नाम पर महाविद्यालय हैं। मूर्ति, पुस्तकालय, मार्ग इत्यादि के रूपों में अनेक नगरों में उनकी स्मृति सुरक्षित है। 19 फरवरी, 1990 को दिल्ली में भी उनकी मूर्ति स्थापित की गई।

आ. नरेन्द्रदेव संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी भाषाओं के धुरन्धर विद्वान् थे तथा इन सबमें धाराप्रवाह भाषण दे सकते थे। इस दृष्टि से वे महामना मदनमोहन मालवीय एवं डॉ. सम्पूर्णानन्द का स्मरण कराते थे। अहमदनगर दुर्ग कारावास में नेहरू के सहवन्दी-रूप में उन्होंने 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' को परामर्श-लाभान्वित किया था, जयप्रकाश एवं लोहिया प्रभृति के तो वे समादृत सहयोगी ही थे। उदार एवं विनम्र मानव होते हुए भी, आ. नरेन्द्रदेव अनुशासन के मामले में कठोर एवं कर्तव्यनिष्ठ भी थे, जिन्होंने लोहिया तक को प्रजा सोशलिस्ट पार्टी से निकाल दिया था! वे एक प्रखर देशभक्त, अग्रगण्य स्वातन्त्र्य-सेनानी एवं सफल प्रशासक थे।

आ. नरेन्द्रदेव संस्कृत-साहित्य के विद्वान् भी थे, उसकी शैक्षिक उपयोगिता के प्रतिपादक भी। उनके एतद्विषयक भाषण स्मरणीय एवं महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि उनकी शैली अतिशय-वस्तुपरक, शुष्क एवं दुरूह है, तथापि उनकी विद्वत्ता लाभदायक, प्रेरक एवं प्रभावी है। वे पालि एवं प्राकृत के पंडित भी थे। खद्दर की गाँधी-टोपी, कुर्ता, पाजामा और चप्पल की बेहद सादा पोशाक, दमा[3] दुर्बल तन, काला रंग, रूप-सौन्दर्यरहित आकार-प्रकार में भी उनका तप श्रद्धा उत्पन्न करता था। उपकुलपति के रूप में जैसी श्रद्धा आ. नरेन्द्रदेव को मिली वैसी सर आशुतोष मुखर्जी, सर गंगानाथ झा, सर राधाकृष्णन्, डॉ. अमरनाथ झा इत्यादि तक को नहीं मिल पाई।

आ. नरेन्द्र देव के अमर हिन्दी-ग्रन्थद्वय 'बौद्ध धर्म दर्शन' एवं 'राष्ट्रीयता और समाजवाद' उन्हें एक प्रगाढ़ विद्वान् एवं मौलिक चिन्तक सिद्ध करते हैं। शुष्कता के बावजूद प्रभावी, इन ग्रन्थों में प्रस्तुति अधिक है, प्रतिपादन अल्प। आ. नरेन्द्रदेव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में शक्ति-तत्त्व का अभाव है और उसी कारण वे लोहिया से पिछड़ जाते हैं। उनके कृतित्व में अस्मिता का अभाव भी खटकता है।

सम्पूर्णानन्द

विशुद्ध हिन्दी-सेवी राजनीतिज्ञों[4] में सम्पूर्णानन्द (1890-1969 ई.) दर्शन-सम्बन्धी ग्रन्थकार एवं कवि के रूपों में असाधारण गौरव के अधिकारी हैं। उनका जन्म पवित्र काशी धाम के एक विद्याप्रेमी कायस्थ परिवार में हुआ। वे हास्यव्यंग्यकार अन्नपूर्णानन्द एवं फुटकल

---

[1] कहीं-कहीं 30 अक्टूबर लिखा मिलता है।

[2] पैतृकस्थान फ़ैज़ाबाद था, जहाँ कृषि विश्वविद्यालय- नामकरण, मूर्ति इत्यादि ठीक ही हैं।

[3] डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, सियारामशरण गुप्त इत्यादि भी दमा के मरीज़ थे।

[4] मध्यकाल में मुंज, जज्जल, अकबर, बीरबल, टोडरमल, मानसिंह, भगवन्तराय खींची, मर्दानसिंह, विश्वनाथ सिंह इत्यादि तथा आधुनिककाल में द्विजदेव, रघुनाथसिंह, मदनमोहन मालवीय, गाँधी, राजर्षि, पुरुषोत्तमदास टंडन, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, आ. नरेन्द्रदेव, द्वारकाप्रसाद मिश्र, डॉ. सम्पूर्णानन्द, जयप्रकाश नरायण, डॉ. राममनोहर लोहिया, विश्वम्भरदयालु त्रिपाठी, शंकरदयाल सिंह, सिद्धेश्वर प्रसाद, श्रीकान्त वर्मा इत्यादि विभिन्नस्तरीय राजनीतिज्ञों के हिन्दी-कृतित्व पर शोध अपेक्षित है: 'हिन्दी के राजनीतिज्ञ कवि एवं लेखक' स्फीत ग्रन्थ होगा। 'आधुनिक सुधारकों, दार्शनिकों एवं योगियों का हिन्दी कृतित्व' भी शोध का उत्तम विषय है, क्योंकि राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, डॉ. भगवानदास, मुक्तानन्द परमहंस, रजनीश, रामकिंकर उपाध्याय, आनन्दशंकर माधवन् इत्यादि की अनेकानेक एवं अनेकदेशीय मौलिक रचनाएँ उपलब्ध हैं।

ग्रन्थकार परिपूर्णानन्द वर्मा के भाई थे। कायस्थों ने हिन्दी की महान् सेवा की है : प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य', कैलाश 'कल्पित', निर्मल वर्मा जैसे कथाकार, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद जैसे आत्मकथाकार, घनआनन्द, ठाकुर (तृतीय), रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा, बच्चन, नीरज जैसे कवि, भुवनेश्वर जगदीशचन्द्र माथुर, जैसे एकांकीकार-नाट्यकार, गणेशशंकर विद्यार्थी जैसे पत्रकार-निबन्धकार, डॉ. बाबूराम सक्सेना, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा जैसे भाषा-वैज्ञानिक, लाला भगवानदीन 'दीन' जैसे आलोचक, आ. नरेन्द्रदेव जैसे 'बौद्ध धर्म दर्शन' के अद्वितीय विद्वान्, डॉ. सम्पूर्णानन्द जैसे 'चिद्विलास'- चिन्तक हिन्दी-साहित्य के अपरिहार्य अंग हैं। हरदयाल जैसे क्रान्तिकारी, जयप्रकाश नारायण जैसे लोकनायक, लालबहादुर शास्त्री जैसे प्रधानमन्त्री, महेश जैसे योगी भी हिन्दीप्रेमी रहे हैं। बंगाल के विवेकानन्द, अरविन्द, रासबिहारी, सुभाष इत्यादि विख्यात राष्ट्रपुरुष भी कायस्थ थे। आधुनिक भारत का इतिहास कायस्थों के बिना अधूरा रह जाएगा।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. व्रजेश्वर वर्मा, डॉ. रामस्वरूप एवं डॉ. रघुवंश (संयोजक) द्वारा सम्पादित प्रसिद्ध 'हिन्दी-साहित्य कोश' भाग 2 में ज्ञानवती दरवार ने सम्पूर्णानन्द के इन ग्रन्थों का उल्लेख किया है : 'कर्मवीर गाँधी', 'महाराज छत्रसाल', 'भौतिक विज्ञान', 'ज्योति विनोद', 'भारतीय सृष्टिक्रम विचार', 'भारत के देशी राष्ट्र'[1], 'चेतसिंह और काशी का विद्रोह', 'सम्राट हर्षवर्धन', 'महादाजी सिंधिया' ('महादजी' प्रचलित है), 'चीन की राज्यक्रान्ति', 'मिस्र की स्वाधीनता', 'सम्राट् अशोक', 'अन्तर्राष्ट्रीय विधान', 'समाजवाद', 'व्यक्ति और राजा', 'आर्यों का आदिदेश', 'दर्शन और जीवन', 'ब्राह्मण सावधान', 'चिद्विलास', 'गणेश', 'भाषा की शक्ति', 'पुरुष-सूक्त', 'पृथ्वी के सप्तर्षि मंडल', 'हिन्दू-विवाह में कन्यादान का स्थान', 'व्रात्यकाण्ड', 'बुद्धिजीवी', 'अन्तरिक्ष यात्रा', 'स्फुट विचार', 'अलकनन्दा मन्दाकिनी के दो तीर्थ', 'चेतसिंह', 'देशबन्धु चित्तरंजनदास'। विषयक्रम से रहित यह ग्रन्थसूची कोरी ग्रन्थसूची है विश्लेषण-निष्पन्न नही । इसमें 'समाजवाद' दो बार आया है (मैंने केवल एक बार लिखा है) तथा चेतसिंह पर दो शीर्षक हैं। इस सूची से पता चलता है कि उनका अध्ययन कितना विराट् था! (इसमें 'गगनगुफा' शीर्षक योगप्रवण-कवितासंग्रह का उल्लेख न होना खटकता है।)

डॉ. सम्पूर्णानन्द ने वेदविद्या, धर्म, दर्शन, योग, भौतिकशास्त्र (वे विज्ञान के छात्र रहे थे), खगोलशास्त्र (ज्योतिष समेत), इतिहास, समाजशास्त्र (समाजवाद समेत) इत्यादि के अतिरिक्त अनेक स्तरीय जीवनियाँ भी लिखी हैं और वे एक कवि भी थे। उनकी विद्वत्ता विस्मयकारी थी, प्रतिभा असाधारण। वे संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी और उर्दू में धाराप्रवाह भाषण दे सकते थे तथा इस दृष्टि से महामना मदनमोहन मालवीय एवं आचार्य नरेन्द्रदेव का स्मरण कराते थे। मैंने उनके विद्वत्तापूर्ण भाषण सुने थे। उन्हें बांग्ला का भी ज्ञान था। 'समाजवाद' एवं 'चिद्विलास' पर उन्हें अपने समय का प्रतिष्ठित मंगलाप्रसाद पुरस्कार दो बार मिला—ऐसा केवल उन्हीं के साथ हुआ। बनारस को पुनः वाराणसी नामकरण से सम्पन्न करनेवाले सम्पूर्णानन्द ही थे। इस विषय पर हर चीज़ को सियासी नज़रिए से देखने वाले नेहरू से उनकी नोंक-झोंक भी हुई थी जिसमें उन्होंने नेहरू का भ्रमनिवारण किया था : 'काशी' प्राचीन राजा काश्य या काश के राज्य की सूचक है, 'वाराणसी' वरुणा एवं असी नदियों के मध्य स्थित नगर-भाग की (नेहरू ने कहा था कि 'वाराणसी' नाम से तो 'काशी' ही बेहतर रहता)।[2]

उनका वेदगत-समतानिरूपण, योगगत-बौद्धिकतानिरूपण एवं समाजवादगत-मानवतानिरूपण मौलिक पांडित्य का प्रणम्य द्योतक है। वे नवरहस्यवादी चिन्तक माने जा सकते हैं। उन्हें यह वेदमन्त्र बहुत ही प्रिय था :

यथेमा वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां च शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च।।

विशुद्ध साहित्यिक दृष्टि से सम्पूर्णानन्द की 'गगनगुफा' (कवितासंग्रह) का उल्लेख न्यायसंगत होगा, क्योंकि इसमें अद्वैतजन्य-ज्ञान एवं योग के आनन्द की अच्छी अभिव्यक्ति के दर्शन होते हैं। यद्यपि सम्पूर्णानन्द का योगकाव्य गोरखनाथ इत्यादि के हठयोग से प्रभावित है तथापि उस पर औपनिषदिक प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक पड़ा है। सम्पूर्णानन्द में कबीर, नानक इत्यादि की सहज-अनुभूति एवं अकल-कला के दर्शन नहीं होते। किन्तु प्रयत्नज अनुभूति एवं साधारणवाणी के उल्लेख्य दर्शन अवश्य हो जाते हैं :

---

1. 'राष्ट्र' शब्द का भ्रष्ट प्रयोग। सिखों को 'क़ौम' कहने का ऐसा ही प्रयोग होता रहा है।
2. मेरे मत से, भारत का अर्थ है 'भा' अर्थात् प्रभा ('प्र' उपसर्ग मात्र है) विकीर्ण करने में 'रत' देश तथा काशी का अर्थ है विश्व को प्रकाश ('प्र' उपसर्ग मात्र) प्रदान करने वाली नगरी। वैसे, भरत से भारत (भारत=सूर्य अर्थात् सूर्यवंशीय मांधाता, इक्ष्वाकु, रघु, राम, भरत इत्यादि का देश या चन्द्रवंशीय दुष्यन्त-शकुन्तला-पुत्र भरत का देश या ऋषभदेव-पुत्र भारत का देश) एवं काश या काश्य से काशी तो प्रसिद्ध है ही। संस्कृत साहित्य में ही नहीं प्रत्युत रैदास, तुलसीदास इत्यादि ने भी 'बारानसी' (वाराणसी) शब्द का प्रयोग किया है।

1. ब्रह्म अनादि अनन्त है, जीवन अनादि अनन्त। सृष्टि अनादि अनन्त है, यह मत भाषहिं सन्त।।
नहिं बंधन, नहिं मोक्ष है, नहीं पुण्य, नहिं पाप। विद्या नहिं, माया नहीं, नहिं आनँद-सन्ताप।।
अगुण-सगुण दोऊ नहीं, नहिं निर्काय-सकाय। नेति-नेति भाषै निगम, सो कैसे कहि जाय।।
2. मैं प्यासी हरि नाम की, कोई तपन बुझा दो। पीहर आए दिन गए, कोई पी से मिला दो।।
तड़पि-तड़पि ब्याकुल भई, कोई गैल बता दो ऊँची अटा मेरे कन्त की, कोई डगर लखा दो।।

प्रसाद

जयशंकर प्रसाद (30 जनवरी[1], 1890—24 जनवरी[2] 1937) आधुनिक हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कलाकार हैं क्योंकि आधुनिककाल के अद्वितीय महाकाव्य 'कामायनी' के स्रष्टा हैं, मार्मिक काव्य 'आँसू' के विरही हैं, 'बीती विभावरी जाग री' (लहर) तथा 'हे लाज-भरे सौन्दर्य' (चन्द्रगुप्त) के महान् गीतकार हैं—संक्षेप में, एक महाकवि है; 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'अजातशत्रु' जैसे उत्कृष्ट नाटकों के प्रणेता के रूप में अन्यतम नाट्यकार हैं; 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'देवरथ', 'ममता', 'बिसाती', 'मधुआ', 'गुंडा', 'बेड़ी' जैसी अमर कहानियों के एक महान् शिल्पी हैं; और उपन्यासकार तथा निबन्धकार भी हैं। बहुमुखी प्रतिभा में वे रवीन्द्र का स्मरण कराते हैं, यद्यपि गुरुदेव के जीवन के अस्सी वित्त-ख्याति-श्रद्धा से ऊभचूभ वर्ष उनके संघर्ष-प्रत्याख्यान-रुग्णता के सैंतालीस वर्षों से बहुत अधिक पड़ जाते हैं तथा गुरुदेव की कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, नाट्यकार, निबन्धकार, आत्मकथाकार, आलोचक इत्यादि में संपृक्त विस्मयकारिणी प्रतिभा चित्रकार, संगीतकार, शिक्षाविद्, दार्शनिक भी होने के कारण विश्व-इतिहास में अपना उपमान आप है। वह बात और है कि रवीन्द्र की कोई एक कृति कामायनी की समता नहीं कर सकती; 'गीतांजलि' एक सौ तीन लघुगीतों की अनूदित पुस्तिका है जिसका वैश्विक रहस्यवाद अमूल्य है किन्तु वह कोई व्यापक एवं अधिककालिक दर्शन नहीं प्रदान करती। हिन्दी-साहित्य में प्रसाद अपनी बहुमुखी प्रतिभा में अन्यतम हैं।

कवि के रूप में रत्नाकर, मैथिलीशरण, निराला एवं पन्त क्रमशः रसवैभव, वैराट्य एवं अधुनातनता के कारण प्रसाद की समता कर लेते हैं; मैथिलीशरण तो अपने वैराट्य एवं प्रभाव के कारण पन्त, महादेवी, दिनकर, सनेही इत्यादि के द्वारा खड़ीबोली के प्रमुख कवि के रूप में मान्य हुए ही हैं—किन्तु 'कामायनी' की अद्वितीयता नकारी नहीं जा सकती।

प्रसाद का जन्म भारत की आत्मा काशी में हुआ।[3] उनका वास्तविक नाम झारखंडेप्रसाद था और घर की खाँड़ेराव। उनके जन्म से ठीक अट्ठाइस दिन पूर्व 1 जनवरी को काशी में ही सम्पूर्णानन्द का जन्म हुआ था; जबकि 1890 ई. में ही 26 अक्टूबर की प्रयाग में गणेशशंकर विद्यार्थी जन्मे। माघ शुक्ल द्वादशी सं. 1946 वि. को जन्म से 57 साल घटाकर जन्मवर्ष 1889 ई. बहुत लिखा गया है, किन्तु पौष-माघ में अगला ईसवी वर्ष लग जाता है। प्रसाद का निधन भी काशी में ही हुआ। वे राजयक्ष्मा (तपेदिक) से मरे—कीट्स, भारतेन्दु, पूर्णसिंह इत्यादि के सृदश।

महाकवि

'कामायनी' प्रसाद की प्रतीक बन गई है। शान्तिप्रिय द्विवेदी ने कामायनी को 'छायावाद का उपनिषद्' कहा है, जो इस दृष्टि से उचित है कि जैसे उपनिषद् परम दर्शन-ग्रन्थ हैं, अद्वैतवाद के सुमेरु हैं, आनन्दवाद के उद्‌गम हैं, वैसे ही कामायनी महाकाव्य छायावाद का परम ग्रन्थ है, छायावाद काव्य-शिल्प को सुमेरु है, आनन्दवाद का प्रतीक है। कामायनी में जलप्लावन से मनु के बच निकलने और श्रद्धा के साथ मानवजाति के आदिपुरुष बनने, उच्छृंखल अहं से ग्रस्त होकर इड़ा के प्रति आकृष्ट एवं भ्रमित होने तथा अन्ततः

---

[1] 30 जनवरी को गाँधी की हत्या की गई, माखनलाल चतुर्वेदी दिवंगत हुए। श्री हरीचंद बंसल (कामायनी के अंग्रेज़ी- अनुवादक) 1 फरवरी मानते हैं। पंचाग के अनुसार।

[2] एकाध ग्रन्थों में 14 जनवरी पढ़ा है। एक स्थल पर 15 जनवरी लिखा देखा था। श्री बंसल देहान्त 15 नवम्बर को मानते हैं।

[3] प्रसाद हलवाई (वैश्य) थे। कवि लालचदास से डॉ. जगदीश गुप्त तक अनेक हलवाई साहित्यकार हुए हैं। 'मोदनवाल' (त्रैमासिक, रायबरेली) हलवाई के लिए प्रयुक्त विशेषण है। श्री मोहनलाल गुप्त मोदनवाल-जाति के प्रति अर्पित कवि-लेखक हैं।

श्रद्धा के साथ आनन्द (मोक्ष या कैवल्य या कैलास[1]) प्राप्त करने की कथा को मनु के मन, श्रद्धा के मन के हृदय-पक्ष या भावपक्ष तथा इड़ा के मन के बुद्धिपक्ष या विचारपक्ष के प्रतीकत्व में मन के श्रद्धा-संपृक्त होने पर सृजनात्मक एवं इड़ा-संपृक्त होने पर ध्वंसात्मक बनने तथा अन्ततः श्रद्धासंपृक्त होकर आनन्द-लक्ष्य प्राप्त करने का वर्णन तथा प्रतिपादन किया गया है, जो इस महाकाव्य को एक साथ रूपककाव्य एवं प्रतीककाव्य भी सिद्ध करता है, पुरावृत्तकाव्य भी एवं मनोविश्लेषणकाव्य भी, क्योंकि चिन्ता से आनन्द तक की मनोयात्रा प्रलयचिन्तित मनु एवं ध्वंसचिन्तित मन को साथ-साथ ले चलने में पर्याप्त सफल सिद्ध होती है। कथा का आधार परमर्षि याज्ञवल्क्य-प्रणीत 'शतपथ ब्राह्मण' एवं रूपकतत्त्व का आधार महर्षि यास्क प्रणीत निरुक्त से भी अनुप्राणित किया गया है। 'कामायनी' निस्सन्देह 'पैराडाइज़ लॉस्ट' एवं 'पैराडाइज़ रिगेंड' से तुलनीय है, क्योंकि दोनों में आदिमानव-आदिमानवी (क्रमशः मनु-श्रद्धा एवं आदम-ईव) का वृत्त वर्णित है, 'कामायनी' में मनु इड़ा के कारण पतनग्रस्त होते हैं तथा 'पैराडाइज़ लॉस्ट' में आदम (एडम) ईव के आग्रह पर ज्ञानतरु का फल खाने के कारण स्वर्गच्युत, 'कामायनी' में मनु श्रद्धा के कारण कैलास प्राप्त करते हैं तथा 'पैराडाइज़ रिगेंड' में ईसा स्वर्ग की पुनर्प्राप्ति कराते हैं।[2] मनु एवं श्रद्धा को ऋग्वेद के ऋषिद्वय मनु एवं श्रद्धा से संपृक्त करना समीचीन नहीं है, जिसके आधार पर सायण के 'भाष्य' में ऋषिका श्रद्धा के 'कामगोत्रजा' होने के उल्लेखवश आदिमानवी को कामायनी कह डाला है। मूल पांडुलिपि में प्रसाद ने महाकाव्य के शीर्षक 'कामायनी' के साथ 'श्रद्धा' शब्द का भी कोष्ठक-प्रयोग किया था, जैसाकि उनके पुत्र रत्नशंकर प्रसाद द्वारा उसकी चित्रपति के प्रकाशन से स्पष्ट है। केवल 'श्रद्धा' शीर्षक विषय के साथ न्याय करता, किन्तु सम्भवतः चारुत्व की स्पृहा से पहले उसे कोष्ठक-न्याय प्रदान किया गया तथा अन्ततः नवीनता के आग्रह ने उसकी सम्पूर्ण उपेक्षा कर दी। जैसे मैथिलीशरण ने अयोध्या के बौद्धकालीन अभिधान साकेत को रामकाव्य पर थोप दिया है, वैसे ही प्रसाद ने वैदिककालीन श्रद्धा को कामायनी के रूप में आदिकालीन श्रद्धा पर थोप दिया। निरंकुशः कवयः। 'श्रद्धा' शब्द का अर्थ है श्रत् या ऋत् या सत्य की ओर धावनशील प्रवृत्ति जो स्थूल अर्थों में सद्गुण-प्रेरिका तथा सूक्ष्म अर्थों में आध्यात्मिकता-प्रतीक है, जो जुंग (युंग) के चिन्तन में मूल मानव-वृत्ति मानी गई है तथा जिसकी व्यंजना कामायनी शब्द नहीं कर पाता है, न आध्यात्मिक दृष्टि से, न प्रतीकात्मक दृष्टि से।

कामायनी एक सुकुमार एवं लघ्वाकार (कुल 1040 छन्दों का) महाकाव्य है, जिसमें चिन्ता (80 छन्द), आशा (80 छन्द), श्रद्धा (63 छन्द), काम (67 छन्द), वासना (53 छन्द), लज्जा (47 छन्द), कर्म (128 छन्द), ईर्ष्या (71 छन्द), इड़ा (31 छन्द), स्वप्न (55 छन्द), संघर्ष (61 छन्द), निर्वेद (103 छन्द), दर्शन (44 छन्द), रहस्य (77 छन्द) एवं आनन्द (80 छन्द) शीर्षक 15 सर्ग हैं। इड़ा सर्ग में 9 तथा दर्शन सर्ग में 8 पंक्तियों के छन्दों और निर्वेद सर्ग में 22 पंक्तियों (वस्तुतः 5 छन्दों) के एक स्वतन्त्र गीत के प्रयोग विशेष उल्लेखनीय हैं, क्योंकि शेष काव्य 4 पंक्तियों वाले अनेक छन्दों में रचा गया है। प्रसाद से भली-भाँति परिचित आलोचक-प्रवर स्वर स्व. पं. कृष्णशंकर शुक्ल ने 1955 ई. में मुझे बताया था कि कामायनी की योजना एवं रचना में कुल समय लगभग पच्चीस वर्षों का लगा था[3], जो मुझे प्रात्ययिक लगता है क्योंकि 'कामना' (नाटक) 'कामायनी' (महाकाव्य) की भूमिका है तथा 'आँसू' (आत्मपरक-विरहकाव्य) का दर्शन समरसतावाद ही है—प्रसाद के एक घनिष्ठ मित्र कहानीकार श्री विनोद[4] शंकर व्यास ने 'प्रसाद और उनका साहित्य' में लिखा है कि प्रसाद ने 'आँसू' को 'कामायनी' के एक सर्ग का रूप देने पर अर्से तक विचार किया था—तथा ये सारे तथ्य 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' के लेखक आ. रामचन्द्र शुक्ल के "किसी एक विशाल भावना को रूप देने की ओर भी अन्त मे प्रसाद जी ने ध्यान दिया जिसका परिणाम है कामायनी" को निराधार सिद्ध करते हैं। 'कामायनी' एक अतिदीर्घयोजित एवं अतिसुचिन्तित महाकाव्य है।

---

[1] प्रसाद ने प्रचलित 'कैलाश' न लिखकर मूलरक्षा की है क्योंकि इसमें कैल (स्वर्ग) एवं 'लास' और 'आस' (चिद्विलास से अनुप्रास तक व्याप्त) का संकेत नहीं मिल पाता। 'श' के निराधार आकर्षण ने वसिष्ठ, कौसल्या, कैलास इत्यादि शब्दों को अशुद्ध तक बना डाला है।

[2] द्रष्टव्य है, 'प्रसाद : आलोचनात्मक सर्वेक्षण' अथवा इसके अर्द्धांश 'प्रसाद : कवि' अथवा प्रथम के ही संक्षिप्त-उपयोगी रूप 'प्रसाद और उनके प्रमुख ग्रन्थ' शीर्षक पुस्तकों का 'कवि प्रसाद और उनकी कामायनी' शीर्षक महानिबन्ध, जो 'आलोचना-सागर' में भी प्राप्त है।

[3] प्रसाद एवं कृष्णशंकर शुक्ल के सम्बन्ध कालान्तर में इतने बिगड़े कि शुक्ल ने अपनी कुतिया का नाम कामायनी रखा—वह भी तब जब श्री पद्मनारायण आचार्य कामायनी के छन्द लिखे काग़ज़ अन्दर रखकर ताबीज़ें बाँटते थे! किन्तु 8 फरवरी, 1984 को जब मैं शुक्ल के वाराणसी के टेढ़ी नीम स्थित आवास में मिला तब उन्होंने बताया, "प्रसाद बहुत ही सौम्य पुरुष थे। एक बार मैं सड़क पर चला जा रहा था। सड़क पार करके 'कृष्णशंकरजी, प्रणाम!' कहते हुए आए और बोले, 'आलोचना तो होती ही रहती है'!" प्रसाद ब्राह्मणों का बहुत आदर करते थे। दिल्ली के एक प्रसिद्ध शिक्षक स्व. पं. प्रह्लाददत्त शर्मा ने मुझे बताया था कि वे किसी भी वटु के पहुँचने पर इकन्नी देते थे (जो उस समय बहुत अच्छी 'राशि' थी); अन्य दानी पैसा या धेला या पाई देते थे।

[4] 'तितली' (उपन्यास) का समर्पण 'विनोद के लिए' की श्लिष्ट अस्पष्टता तब स्पष्ट हुई जब प्रकाशन को लेकर दोनों में मनमुटाव हुआ। कालान्तर में व्यास ने 'देशदूत' (प्रयाग) में प्रसाद पर कुछ ऐसा लिखा जो विशेष एवं वैयक्तिक था, जिसका कहानीकार विश्वम्भरनाथ जिज्जा ने प्रतिवाद किया, किन्तु जिससे सत्य को बल-संबल प्राप्त हुआ। मैंने यह सारा कुछ देखा था। 'देशदूत' के सं. ज्योतिप्रसाद 'निर्मल' प्रसिद्ध पत्रकार थे।

‘प्रियप्रवास’ की प्रायः एककथाबद्धता, ‘साकेत’ की प्रायः एकस्थानबद्धता एवं ‘कामायनी’ की लघ्वाकारिता के करण इनके महाकाव्य या एकार्थकाव्य या केवलमात्र-प्रबन्धकाव्य होने पर कुछ विवाद हुआ था, जो प्राथमिक स्तर का था। यदि रघुवंशम्, कुमारसम्भवम् एवं मेघदूतम् महाकाव्य हैं तो प्रियप्रवास, साकेत एवं कामायनी क्यों नहीं? आकार नहीं, प्रकार प्रधान होता है। मैं यहाँ तुलना नहीं कर रहा, केवल सिद्धान्त की बात कर रहा हूँ।

रूपकतत्त्व कामायनी का शिल्पगत वैशिष्ट्य तथा प्रीतकायोजन उसी का अंग है, किन्तु इस महाकाव्य का दर्शन भी नितान्त मननीय है जिसे समरसतावाद कहा जा सकता है, क्योंकि वही लक्ष्य है जहाँ मन श्रद्धा के साथ पहुँचकर आनन्द-लाभ करता हे :

> समरस थे जड़ या चेतन[1], सुंदर साकार बना था;
> चेतनता एक विलसती आनंद अखंड घना था।

यहाँ सच्चिदानन्द[2] में कैवल्य[3] की परम स्थिति का चित्रण है। प्रसाद अद्वैतवादी थे। अद्वैतवाद उपनिषद्मूलक दर्शन है, यद्यपि उसके शांकर, यौगिक प्रभृति अनेक रूप विकसित हुए हैं; तथा इस दृष्टि से वे ऋश्मीर के शैव-आनन्दवाद के अनुयायी थे। कालिदास, भवभूति प्रभृति के सदृश प्रसाद शैव महाकवि थे। काश्मीरीय शैव-दर्शन में ‘चिति’ को अपार महत्त्व प्राप्त है। हठयोगी एवं सिद्धयोगी चिति की शरीर-अवस्थिति को कुंडलिनी-शक्ति[4] कहते हैं। यह स्वतन्त्र एवं नियामिका शक्ति है, जैसाकि ‘प्रत्यभिज्ञाहृदयम्’ प्रतिपादित करता है : ‘‘चितिः स्वतंत्रा विश्वसिद्धिहेतुकः।’’ शैव एवं शाक्त दर्शन प्राचीनतर पितृ-मातृ[5]-प्रधान धर्मसाधना के प्रतीक हैं। ‘‘शक्त्याविरहितः शिवः शवः’’ प्रभृति सूत्र मातृप्रधानता के दार्शनिक उद्‌गार हैं तथा सामान्य जीवन की दृष्टि से भी समीचीन हैं। प्रसाद चिति का महत्त्व स्वीकार करते हैं :

> कर रही लीलामय आनंद महाचिति सजग हुई सी व्यक्त;
> विश्व का उन्मीलन अभिराम, उसी में सब होते अनुरक्त

काश्मीरीय शैव-दर्शन शक्तिसंपृक्त होने के कारण काम का अपार महत्त्व स्वीकार करता है। यहाँ भी वह बृहदारण्यक एवं छान्दोग्य उपनिषदों से प्रभावित है। काम पुरुषार्थ का महान् अंग है, सर्जक तत्त्व है। वेदों के अनुसार वह सर्वथा दिव्य है, उपनिषदों के अनुसार वह सृष्टि का मूल तत्त्व है, शैवागमों के अनुसार वह मंगलमय है। खजुराहो, कोणार्क, सूफ़ी-प्रेमाख्यानप्राचुर्य, रासलीला इत्यादि से काम का गौरव स्पष्ट है अन्यथा कबीर जैसे अश्लील नारी-निन्दक ‘‘कम पिछाणै राम को’’ और तुलसी जैसे यत्र-यत्र नारी-असंवेदनशील कवि ‘‘कामिहि नारि पिआरि जिमि’’ इत्यादि कैसे कहते—देव जैसे रसज्ञ ‘‘मायादेवी नायिका नायक पुरुष आप। सबै दम्पतिन्ह महँ प्रगट....।।’’ कैसे लिखते! वस्तुतः समग्र भक्ति-आन्दोलन निवृत्ति पर प्रवृत्ति को वरीयता प्रदान करता है। इसी से भक्तिरस शान्तरस से भिन्न है। भ्रमरगीत-दर्शन प्रखर जीवनवाद का प्रतीक है। किन्तु प्रसाद ने पहली बार हिन्दी-कविता को एक व्यवस्थित काम-दर्शन प्रदान किया, जिसका महत्त्व साहित्यिक भी है, दार्शनिक भी, ऐतिहासिक भी। साहित्यिक यों कि उससे काव्य में विघातक कामनिन्दा रुकी तथा दिनकर की ‘उर्वशी’ प्रकाश में आई, जो अरविन्द की दार्शनिक ‘उर्वशी’ तथा रवीन्द्र की कलात्मक ‘उर्वशी’ से भिन्न जीवन्त उर्वशी है। दार्शनिक यों कि उससे रजनीश इत्यादि चिन्तक प्रभावित हुए। ऐतिहासिक यों कि कामायनी, उर्वशी, रजनीश इत्यादि इतिहास के अंग हैं, जिनसे युग प्रभावित हुआ है। डॉ. दीनानाथ ‘शरण’[6] ने ‘नारी, तुम केवल श्रद्धा हो!’ शीर्षक उपन्यास की रचना की है।

काम-तत्त्व के पुनरुद्धारक प्रसाद ने उसे प्रेय वर्ग के ऊपर उठाकर श्रेय वर्ग में प्रतिष्ठित किया है—यही नहीं, उसे श्रेय का शृंगार घोषित किया है, जिसके तिरस्कार पर भव-धाम (संसार-रूपी विराटावास या शिवावास) असफल बन जाता है :

---

[1] ‘‘जड़ और चेतन’’ नहीं—ऐसा लिखना द्वैतमूलक होता। समरसतावादी या अद्वैतवादी के लिए जड़ और चेतन में कोई अन्तर नहीं होता।

[2] सत्-चित्-आनन्द।

[3] केवलता, एकता, अद्वैत।

[4] सर्पेन्टाइन पॉवर। पायु-उपस्थ-मध्य सर्पवत् कुंडली बनाए अधोमुखी शक्ति, जिसे आसन-प्राणायाम या गुरुप्रेरणा-गुरुकृपा से उद्‌बुद्ध कर, मूलाधार इत्यादि षट्चक्र-वेधन कराते, सुषुम्ना-मार्ग से, सहस्रार से मिलाना ही योग या कैलास या ‘शून्य महलिया’ या ‘दसअँ दुआर’ या मोक्ष या निर्वाण या कैवल्य है।

[5] मातृपूजा या देवीपूजा या कौलाचार या शक्तिसाधना को प्राचीनतम माननेवाले जनवर्ग आज भी मिलते हैं।

[6] ‘नेपाली साहित्य का इतिहास’ के प्रस्तुतकर्ता।

काम मंगल[1] से मंडित श्रेय, सर्ग इच्छा का है परिणाम[2];
तिरस्कृत कर उसको तुम, भूल, बनाते हो असफल भव[3]-धाम।

जिन्हें दर्शन का गहरा और व्यापक ज्ञान नहीं है, वे यथार्थवाद से अभिभूत होकर प्रसाद पर बेतरह टूट पड़े हैं—जैसे, मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, रमेश कुन्तल मेघ इत्यादि। इधर, भाववाद से अभिभूत नन्ददुलारे वाजपेयी, नगेन्द्र, प्रताप साहित्यालंकार इत्यादि प्रशस्ति में अधुनातनता की अवहेलना कर गए हैं। सन्तुलित आलोचना कठिन है। प्रसाद पर सन्तुलित आलोचना प्रायः नहीं मिल पाती।

'काम' स्वभावतः 'कामायनी' का आधार-सर्ग है, सर्वश्रेष्ठ सर्ग है, जिसमें काव्यकला एवं दर्शन अर्द्धनारीश्वर बन गए हैं। 'लज्जा' सर्ग अपने अनूठे बिंबालेखन एवं काव्यगौरव के कारण अमर है, जिसमें मार्कण्डेय-पुराण अथवा उसके अतिशय लोकप्रिय अंश दुर्गा-सप्तशती के ''या देवी सर्वभूतेषु लज्जा रूपेण संस्थिता'' का दर्शन भी संपृक्त है :

लाली बन सरल कपोलों में आँखों में अंजन-सी लगती,
कुंचित अलकों-सी घुँघराली मन की मरोर बनकर जगती।
चंचल किशोर सुन्दरता की मैं करती रहती रखवाली,
मैं वह हल्की-सी मसलन हूँ जो बनती कानो की लाली।

यदि 'काम' सर्ग अपने लालित्य एवं दर्शन में अद्वितीय है, यदि 'लज्जा' सर्ग अपने बिंबालेखन एवं सौन्दर्यगौरव में अद्वितीय है, तो 'इड़ा' सर्ग अपने 'उदात्त' एवं प्रवाह में। प्रसाद प्रेम और सौन्दर्य के महाकवि हैं। इस दृष्टि से वे कालिदास के उत्तराधिकारी हैं। 'काम' एवं 'लज्जा' सर्ग इस कथन के अकाट्य प्रमाण हैं। किन्तु 'इड़ा' सर्ग में वे 'उदात्त' एवं प्रवाह के एक प्रतीक-कवि मिल्टन के उत्तराधिकारी बनते लगते हैं। 'काम', 'लज्जा' एवं 'इड़ा' सर्गों में जैसी ललित एवं सहज कविता दृष्टिगोचर होती है, वैसी रवीन्द्र एवं इक़बाल में भी नहीं हो पाती।

कामायनी हिन्दी-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्यों में एक है, जिसे भारतीय एवं विश्व साहित्य के श्रेष्ठ महाकाव्यों में एक होने का गौरव भी प्राप्त है। हिन्दी में पृथ्वीराजरासो अपनी स्फीति में अद्वितीय होने पर भी न तो प्रात्ययिक है, न सुशृंखिलत, जैसाकि उसमें चन्द्र, जल्हण, मलैसिंह इत्यादि अनेक कवियों के उल्लेख से स्पष्ट है राणा प्रताप तक के वर्णन से स्पष्ट है। वैसे भी, पृथ्वीराजराससो शाहनामा (फ़िरदौसी) और राजतरंगिणी (कल्हण) का स्मरण अधिक कराता है। आ. श्यामसुन्दरदास, जो पृथ्वीराजरासो के सर्वोत्तम आलोचक हैं, इसे महाकाव्य न मानकर विशालकाय-प्रबन्धकाव्य मानते हैं। किन्तु यदि रामायण और महाभारत महाकाव्य हैं, शाहनामा महाकाव्य है, यहाँ तक कि कल्हण को 'महाकवि' कहने में राजतरंगिणी के महाकाव्य होने की प्रतीति व्यंजित होती है, तो पृथ्वीराजरासो महाकाव्य कैसे न होगा? यथास्थितिवादी दृष्टि से पृथ्वीराजरासो एक ऐतिहासिक-महाकाव्य है, एक विराट् महाकाव्य है, जिसमें शृंगार एवं वीर रसों की अमर निष्पत्ति हुई है, जबकि कामायनी एक ललित-महाकाव्य है, एक दर्शनसंपृक्त महाकाव्य है, जिसमें रूपकतत्त्व एवं प्रतीक की भव्यता विद्यमान है। पद्मावत एवं कामायनी की तुलना अपेक्षाकृत-सरल है, क्योंकि दोनों में प्रतीक-योजना विद्यमान है, दोनों में दार्शनिकता का रूप मनोहारी है जिससे रहस्यवाद की झाँकियाँ भी देखने को मिलती रहती हैं, दोनों में सौन्दर्यचित्रण का स्तर उच्च है तथा दोनों उत्कृष्ट कलाकृतियाँ हैं। रामचरितमानस अपने संस्कृति-विश्वकोशत्व, भक्ति-निरूपण, सर्वरससाफल्य, अलंकरण, दर्शन एवं प्रभाव में पृथ्वीराजरासो, पद्मावत, रामचन्द्रिका एवं कामायनी से महत्तर है। रामचन्द्रिका अपने चमत्कार, संवाद-शिल्प, छन्दवैविध्य एवं प्रभाव के कारण एक अमर महाकाव्य है, एक अमूल्य कलाकृति है। यद्यपि रामचन्द्रिका रामचरितमानस से भी भिन्न कृति है, कामायनी से भी, क्योंकि उसमें जीवन-दर्शन का स्पर्श नहीं है, तथापि विलक्षणता में वह रामचरितमानस के अनन्तर तथा पृथ्वीराजरासो, पद्मावत एवं कामायनी के साथ हिन्दी का एक श्रेष्ठतम महाकाव्य अवश्य है[4] और ऐसा न मानना काव्य की अनेकरूपता के साथ अन्याय करना होगा।

---

[1] कल्याण, विवाह।

[2] ''स अकामथत''...इत्यादि (बृहदारण्यक उपनिषद्)

[3] संसार, शिव।

[4] 'रामचन्द्रिका' अपने कलावैभव में कम्ब-रामायण से सर्वथा तुलनीय है। देव-पक्षपात के बावजूद, मिश्रबन्धु ने केशवदास को हिन्दी का मिल्टन माना है। केशवदास भारवि, कम्बन् (क़म्बर), उपेन्द्र भंज (उड़िया के 'वैदेही-विलास' जैसे विख्यात महाकाव्य के प्रणेता अलंकारवादी महाकवि) एवं मिल्टन के स्तर के कवि हैं। आ. शुक्ल की तरंगवादी निन्दा ने केशवदास से भारी अन्याय किया है।

'कामायनी' की 'मेघनादवध' (बांग्ला) से श्रेष्ठता निर्विवाद है, क्योंकि यह मौलिक है जबकि वह मिल्टन के अनुकरण में रचित तथा भारतीय कविता में अनमिल, यह नव्य-भव्य है जबकि वह पुरातनताधृत तथा पिष्टपेषित, इसमें एक विशद मानवीय जीवन-दर्शन प्राप्त होता है जबकि वह वर्णनप्रधान या इतिवृत्तात्मक मात्र है, इसमें अभिव्यक्तिगत वैविध्यसम्पन्नता विद्यमान है जबकि वह एकचाल है, यह सांस्कृतिक सृजन की द्योतक है जबकि वह आत्मपरक[1] कारणों से सांस्कृतिक ध्वंस का प्रतीक महाकाव्य है। महाकाव्यविपन्न अंग्रेज़ी-कविता में महाकवि स्पेन्सर की अपरिसमाप्त कृति 'फ़ेअरी क्वीन' अपनी प्रतीक-योजना एवं आदर्शलोक-कल्पना में कामायनी का स्मरण कराती है। किन्तु वह लक्ष्य तक नहीं पहुँच पाती। विश्व-इतिहास की अतुलनीय नेत्री महारानी एलिज़ाबेथ प्रथम (राज्यकाल 1558-1603 ई.) के प्रति अगाध श्रद्धा के कारण सारी प्रतीक-योजना एवं आदर्श-कल्पना व्यक्तिबद्ध बनकर रह गई है। 'फ़ेअरी क्वीन' एवं कामायनी दोनों श्रेष्ठ महाकाव्य हैं। किन्तु अपनी समरसता एवं व्यापकता में कामायनी सर्वथा पूर्ण है। हाँ, अपने दुर्दमनीय प्रवाह, अपनी अखंड क्रान्तदर्शिता, अपने अनूठे-ईव-चित्रण एवं अपने विश्रुत औदात्य में अंग्रेज़ी का एकमात्रण पूर्ण[2], विशद एवं श्रेष्ठतम महाकाव्य 'पैराडाइज़ लॉस्ट' सुकुमार, कलाप्रधान, अनमिल-आधुनिकता-ग्रस्त एवं लघुतर कामायनी से श्रेष्ठतर प्रतीत होता है। कामायनी रम्यतर है, 'पैराडाइज़ लॉस्ट' बलवत्तर। 'पैराडाइज़ लॉस्ट' ईसाईधर्मबद्ध है, कामायनी मानवीय। दोनों महान् ग्रन्थ हैं।

कामायनी पर आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ. फ़तहसिंह, डॉ. रामलाल सिंह, डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, डॉ. प्रेमशंकर, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित[3], गजानन माधव मुक्तिबोध इत्यादि ने नानाआयायी आलोचना-साहित्य प्रस्तुत किया है तथा श्री विश्वम्भर 'मानव', नगीनचन्द सहगल, डॉ. तारकनाथ बाली, डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना इत्यादि ने टीकाएँ लिखी हैं।

कामायनी के अनन्तर 'आँसू' को स्थान प्राप्त होता है जो वस्तुतः एक आत्मपरक-विरहकाव्य है। सतना के प्रसिद्ध गीतकार, हिन्दीसेवी एवं महाविद्यालय-हिन्दी विभागाध्यक्ष डॉ. सुमेरसिंह 'शैलेश' ने 30 अक्टूबर, 1993 को बताया कि पत्नीविरह-त्रस्त प्रसाद को मैथिलीशरण गुप्त ने पीड़ा को अमर करने का परामर्श दिया तथा 'आँसू' की सर्जना का पथ प्रशस्त करते हुए ये चार पंक्तियाँ लिख दीं :

जो घनीभूत पीड़ा थी मस्तक में स्मृति-सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर वह आज बरसने आई[4]।

वैसे इसे रहस्यकाव्य, सर्वप्रलयकाव्य, मानवमूल्यकाव्य, जीवनदर्शनकाव्य, खंडकाव्य इत्यादि-इत्यादि तक माना गया है। श्री रामनाथ लाल 'सुमन', श्री विनोदशंकर व्यास, डॉ. विनयमोहन शर्मा इत्यादि ने 'आँसू' पर बहुत अच्छा लिखा है। प्रगतिवादी कविवर शिवमंगलसिंह 'सुमन' तक आँसू को रहस्यवादी रचना मानते हैं। प्रसिद्ध साहित्यसेवी श्री कैलाश 'कल्पित' 'आँसू' को खंडकाव्य मानते हैं। श्री रत्नशंकर 'प्रसाद'[5] ने 'आँसू' की पूरी प्लास्टिक सर्जरी कर डाली है। इस सबसे छोटी-सी रचना का बड़ा-सा गौरव स्पष्ट होता है। डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने 'कामायनी-भाष्य' के साथ 'आँसू-भाष्य' भी लिखा है। वस्तुतः 'आँसू' एक आत्मपरक मुक्तककाव्य है, आत्मपरक विरहकाव्य है, जिसमें प्रेम का विशद मंगलमय रूप में वर्णन बहुत ही सफल है। 'आँसू' से अभिभूत होकर प्रो. अवध उपाध्याय जैसे गम्भीर गणिताचार्य-साहित्यसेवी ने अपने 'नवीन पिंगल' में 'आनन्द' छन्द का नाम ही बदलकर 'आँसू' छन्द कर दिया था। प्रसाद ने 'आनन्द' को 'आँसू' बना दिया! महादेवी के अनेक गीत 'आँसू' से प्रभावित हैं। सुरेन्द्र की 'एक रात' और 'अखिलेश' (श्रीकृष्णसिंह) की 'मधुपकली' जैसी अनेक कृतियाँ भी इससे प्रभावित हुई हैं। डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'शितिकंठ' कृत मुस्कान' काव्य, मौलिक होते हुए भी, 'आँसू' का पूरक-काव्य माना जा सकता है।

---

1. माइकेल मधुसूदन दत्त एक उच्छृंखल, व्यसनी एवं अपव्ययी व्यक्ति थे और इन कारणों से दुर्दशाग्रस्त भी हुए थे। बिना किसी ख़ास कारण से वे ईसाई हो गए थे जिससे उनकी माता को अपार व्यथा हुई थी। एक मनुष्य के रूप में वे ग़ालिब से भी बदतर थे। वैसे, ग़ालिब उनसे श्रेष्ठतर एवं मौलिक कवि हैं। निराला उच्छृंखलता के कारण पागल होकर भी मधुसूदन से श्रेष्ठतर मनुष्य बने रहे—साधना में, दान, सम्मान में। मधुसूदन दत्त की तुलना राहुल सांस्कृत्यायन से अवश्य हो सकती है, यद्यपि वे कवि थे, राहुल गद्यकार। मैथिलीशरण गुप्त ने 'मेघनादवध' का हिन्दी में सुन्दर अनुवाद किया है।
2. कीट्स का अपूर्ण एवं त्यक्त 'हाइपेरिअन' तो बस उल्लेख्य है। यहाँ खंडकाव्यों का उल्लेख अप्रांसगिक होगा।
3. 'प्रसाद-साहित्य की अन्तश्चेतना', 'छायावादी कवियों का सौन्दर्य-विधान', 'प्रसाद का गद्य' प्रभृति ग्रन्थों के विद्वान् लेखक।
4. जो संस्करण मैंने पढ़ा था, उसमें यह नहीं लिखा था। अब प्रसाद-पुत्र रत्नशंकर प्रसाद सम्पादित संस्करणों में लिखा बताया जाता है।
5. यद्यपि मैथिलीशरण गुप्त के पुत्र ऊर्मिलाचरण गुप्त एवं निराला के पुत्र रामकृष्ण त्रिपाठी ने भी पिता के साहित्य को उजागर करने की दिशा में अच्छा कार्य किया है तथा प्रेमचन्द के पुत्रद्वय श्रीपतराय एवं अमृतराय तो नामी-गिरामी प्रकाशक (पूँजीपति भी) हो गए थे, तथापि इस दिशा में प्रसाद के पुत्र रत्नशंकर प्रसाद अग्रणी हैं जिन्होंने पिता के सभी ग्रन्थ पृथक्-पृथक् भी सम्पादित किए हैं और 4 बृहत् खंडों में 'प्रसाद-ग्रन्थावली' भी निकाली है।

इसमें सन्देह नहीं कि ''अकामयत'' (बृहदारण्यक उपनिषद्) एवं ''आत्मरति आत्ममिथुन, आत्मक्रीड'' (छान्दोग्य उपनिषद्) इत्यादि के आधारों पर 'आँसू' की व्यथा, विरह, मिलन-स्मृति, समरसता, मंगलाशा इत्यादि में रहस्यवाद का प्रतिपादन किया जा सकता है और लगभग इन्हीं की सर्गप्रलयपरक अद्वैतमयी व्याख्या भी की जा सकती है। ''नाविक इस सूने तट पर'', ''घनीभूत पीड़ा'', ''स्मृति'' इत्यादि में समरसता, सृजन, मंगलाशा इत्यादि तक के आधारों पर 'आँसू' को 'कामायनी' का पूर्वरूप माना जा सकता है और लगभग इन्हीं आधारों पर खंडकाव्य भी। किन्तु विनोदशंकर व्यास के प्रवल साक्ष्य के अनुसार, छन्द किसी दिन एक तो किसी दिन कुछ, कभी घर तो कभी इक्के पर रचे गए थे। इससे मुक्तककाव्य पक्ष स्पष्ट होता है जी स्वयं काव्य प्रमाणित करता है। प्रसाद इसे 'कामायनी' का एक सर्ग बनाना चाहते थे। इससे रहस्यकाव्य, सर्गप्रलयकाव्य, खंडकाव्य इत्यादि न होना सिद्ध हो जाता है।

काव्यकला की दृष्टि से 'आँसू' आद्यन्त सफल है। इसका एक भी छन्द न शिथिल है, न साधारण। छाया या प्रतीक, रहस्य या अध्यात्म, व्रत या वृत्ति से हटकर देखने पर 'आँसू' कवि के जीवन से निःसृत अमरकाव्य लगता है, जिसे स्मृति ने स्फुरित किया था तथा धृति ने समरसतामय बनाया। कवि ने सूक्ष्मतम लक्षणा-व्यंजना शक्तियों से सम्पन्न इस छन्द में प्रथम मिलन का उच्चस्तरीय वर्णन किया है :

मधु राका मुसक्याती[1] थी पहले देखा जब तुमको
परिचित-से जाने कब के तुम लगे उसी क्षण हमको।

मधु (चैत्र) की राका (पूर्णिमा) अभी मुस्कराई ही थी (उजली-उजली शाम थी), खिलखिलाकर हँसी नहीं थी (अर्द्धरात्रि या ऐसा कोई समय न था), अतः समय उत्थानोन्मुख था, जब तुम्हें पहले-पहल देखा; किन्तु ऐसा लगा हम चिरपरिचित हैं! कामायनी की ''पूर्वजन्म कहूँ कि या स्पृहणीय मधुर अतीत'' (वासना सर्ग) से लेकर 'मधुमालती' (मंझन) की ''देखत ही पहिचाना तोही'' तक का स्मरण अनायास आ जाता है।

प्रतिक्रिया का वर्णन अतीव मार्मिक है :

छिप गईं कहाँ छूकर वे मलयज की मृदुल हिलोरें
क्यों घूम गई हैं आकर करुणा कटाक्ष की कोरें?

उदात्त सौन्दर्यचित्रण एवं संस्फूर्तिकारी प्रेम-निरूपण भी 'आँसू' के उच्चकोटि के काव्य होने की सूचना देते हैं :

चंचल स्नान कर आवे चंद्रिका पर्व में जैसी
उस पावन तन की शोभा आलोक मधुर थी ऐसी!

बिजली यदि काले बादलों का साथ छोड़कर पूर्णमा का आश्रय ग्रहण करे तथा सुधा में स्नान कर अपनी ऊष्मा त्याग शीतल हो जाए तब वह जैसी होगी वैसी ही उस पावन तन की शोभा थी—'रामचरितमानस' के ''जो छबि सुधापयोनिधि होई'' इत्यादि का स्मरण आ जाता है!

घन में सुन्दर बिजली-सी बिजली में चपल चमक-सी
आँखों में काली पुतली पुतली में श्याम झलक सी
प्रतिमा में सजीवता सी बस गई सुछवि आँखों में...

उसी सुछवि (जो आँखों में बसी है) को कवि आँसुओं से धो-धोकर स्वच्छतर करता है। वह अजर-अमर प्रेम का आह्वान करता है जिससे जीवन पुनः सरस हो सके :

जिसके आगे पुलकित हो जीवन है सिसकी भरता
हाँ, मृत्यु नृत्य करती है मुसक्याती खड़ी अमरता
वह मेरे प्रेम विहँसते जागो मन के मधुवन में
फिर मधुर भावनाओं का कलरव हो इस जीवन में।

---

1. 'प्रसाद' मुस्कान और 'मुस्काती' के लिए 'कामायनी' और 'आँसू' में 'मुसक्यान' और मुसक्याती' प्रयोग करते हैं, सम्भवतः ऐसा 'रत्नाकर' के प्रभाव के कारण हुआ है।

अपार व्यथा का विषपान कवि को शिव बना देता है तथा वह अपना काव्य समरसता-प्रतिपादन एवं मंगलाशा के साथ समाप्त करता है। 'आँसू' प्रसाद का मेघदूत है।[1]

'कामायनी' और 'आँसू' के अतिरिक्त प्रसाद के काव्य अपेक्षाकृत साधारण हैं, यद्यपि उनमें भी कहीं-कहीं उच्चकोटि की कविता के दर्शन हो जाते हैं, जैसे 'लहर' का 'बीती विभावरी जाग री!' अपनी संक्षिप्तता, गेयता, बिम्बधर्मिता, श्लिष्टता इत्यादि में विश्व-गीतिकाव्य में स्थान प्राप्त करने योग्य है; 'चन्द्रगुप्त' नाटक का 'लाज भरे सौन्दर्य' श्लिष्टता के अतिरिक्त ठीक इन्हीं गुणों के कारण इसी स्तर की कलाकृति है, इसी नाटक का 'अरुण यह मधुमय देश हमारा' कला की दृष्टि से इन्हीं की क्या समग्र राष्ट्रीय कविता का सर्वोत्तम गीत सिद्ध होता है; 'कानन-कुसुम' की 'तुलसीदास' शीर्षक चतुर्दशपदी अत्यन्त उत्कृष्ट है; तथापि 'अरी वरुणा की शान्त कद्दार' जैसे ललित लघुगीत ने 'प्रलय की छाया' जैसी लम्बी मुक्त-कविता तक 'लहर' जैसे प्रौढ़ कवितासंग्रह की रचनाएँ भी असाधारण नहीं हैं—'झरना', 'कानन-कुसुम', 'प्रेम-पथिक', 'महाराणा का महत्त्व', 'करुणालय' एवं 'चित्राधार' तो प्रसाद की कृतियाँ होने के कारण ही उल्लेख्य हैं।

अमर नाट्यकार

प्रसाद का नाट्यकार-रूप उच्चकोटि का है, यद्यवि वे भास, कालिदास, शेक्सपीअर, मोलिअर, इब्सन, शॉ इत्यादि के सदृश बहुआयामी नाट्यकार नहीं हैं, क्योंकि उनके नाटकों में एकरूपता बहुत अधिक है; वे भवभूति, शूद्रक, विशाखदत्त, गेटे इत्यादि के सदृश कुछ या एक ही नाटक लिखकर अमर होनेवाले नाट्यकार भी नहीं हैं; तथापि भारतेन्दु, गाल्सवर्दी द्विजेन्द्रलाल राय, लक्ष्मीनारायण मिश्र इत्यादि के सदृश एक उत्कृष्ट नाट्यकार अवश्य हैं। एकांकीकार के रूप में प्रसाद 'एक घूँट' के प्रणेता के रूप में स्मरणीय हो सकते हैं, किन्तु यह आकार-प्रकार दोनों में ही आधुनिक एकांकी नहीं है, भले ही डॉ. नगेन्द्र बिना किसी तर्क-वितर्क के ऐसा बताते हैं—यदि 'एक घूँट' आधुनिक एकांकी है तो स्वयं प्रसाद कृत 'प्रायश्चित्त' एवं 'सज्जन' तथा पूर्ववर्ती भारतेन्दु कृत 'अँधेर नगरी' एकांकी क्यों नहीं हैं?—तथा वे भुवनेश्वर प्रसाद, रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, सद्गुरुशरण अवस्थी, सेठ गोविन्ददास, जगदीशचन्द्र माथुर, उदयशंकर भट्ट, उपेन्द्रनाथ 'अश्क़', विष्णु प्रभाकर इत्यादि के सदृश विविधायामी आधुनिक एकांकीकारों में समाविष्ट नहीं होते। आधुनिक एकांकी के जनक भुवनेश्वर लक्ष्मीनारायण मिश्र, और रामकुमार वर्मा ही हैं। 'एक घूँट' वस्तुतः 'कामना' का परिशिष्ट है।

'कामना' मनोवैज्ञानिक-नाटक है जो संस्कृत के कवि कृष्ण मिश्र[2] के नाटक 'प्रबोध-चन्द्रोदय' की परम्परा में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। मुझे मुरादाबाद के जाने-माने हिन्दीसेवी पुष्पेन्द्र वर्णवाल से प्राप्त सम्प्रति अनुपलब्ध 'विज्ञान नाटक' (पंचम संस्करण, 1926 ई.—रचना भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से सुधारवादी युग की प्रतीत होती है) के अध्ययन के उपरान्त लगता है कि प्रसाद द्वारा इसका अवलोकन सम्भव है। 'विज्ञान नाटक' के प्रणेता शंकरानन्द स्वामी का उद्देश्य कलाकृति रचना न था, विज्ञानमय-आनन्दमय कोषों को जनता तक पहुँचाना था। प्रसाद का उद्देश्य कला के साथ आनन्दवाद का प्रतिपादन है। 'कामना' श्रेष्ठतर है। किन्तु शंकरानन्द स्वामी का प्रसाद पर प्रभाव सम्भव है। 'एक घूँट' सामाजिक-एकांकी है जिसकी मनोवैज्ञानिकता भी पर्याप्त मूल्यवान है, किन्तु प्रसाद वस्तुतः एवं तत्त्वतः ऐतिहासिक नाट्यकार हैं जिन्होंने प्राचीन भारत के महाभारत-काल (जनमेजय का नागयज्ञ), बुद्धकाल (अजातशत्रु), मौर्यकाल (चन्द्रगुप्त), गुप्तकाल ('स्कन्दगुप्त' एवं 'ध्रुवस्वामिनी' तथा वर्द्धनकाल (राज्यश्री) को तो अपनी स्वच्छन्दतावादी शैली में चित्रित किया ही है, कल्हण की 'राजतरंगिणी' के एक पात्र 'विशाख' पर भी रचना की है। प्राचीनतम काल से संपृक्त 'कामायनी' वस्तुतः ऐतिहासिक न होकर मनोवैज्ञानिक है, किन्तु प्राचीनतर काल (महाभारतकाल) से प्रायः[3] समग्र प्राचीनकाल उनकी नाट्यकृतियों में प्रतिबिम्बित होता लगता है। उनका ठोस इतिहास-बोध डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार, डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल जैसे प्रमुख एवं गम्भीर इतिहासकारों का स्मरण करा देता है। जैसे प्रसाद ने प्राचीनकाल पर नाटक लिखे, प्रायः वैसे ही हरिकृष्ण 'प्रेमी'

---

[1] विशेष अध्ययन के लिए द्रष्टव्य हैं, मेरे 'खड़ीबोली-कविता में विरहवर्णन' (1964 ई.) शीर्षक शोध-प्रबन्ध का सम्बद्ध प्रकरण, जो 'चार महाकवियों के विरह-काव्य', 'प्रसाद : आलोचनात्मक सर्वेक्षण', 'प्रसाद : कवि', 'प्रसाद और उनके ग्रन्थ' तथा 'आलोचना-सागर' में भी प्राप्त है।

[2] महाकवि केशवदास पूर्वज।

[3] शुंगकाल छूट गया था, जिस परर 'इरावती' उपन्यास आरम्भ किया, किन्तु वह अपूर्ण रह गया।

ने मध्यकाल पर् (रक्षाबन्धन, स्वप्नभंग इत्यादि) किन्तु गुण एवं परिमाण की उभय दृष्टियों से वे प्रसाद की समता नहीं कर पाए। वस्तुतः नाट्यकार के रूप में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं लक्ष्मीनारायण मिश्र के अतिरिक्त अन्य कोई प्रसाद से तुलना के योग्य नहीं है तथा वे गुण एवं गौरव में हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाट्यकार हैं। प्रस्थान-ग्रन्थकार डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा (प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन) तथा अनुवर्ती डॉ. जगदीशचन्द्र जोशी (प्रसाद के ऐतिहासिक नाटक), नलिनविलोचन शर्मा एवं नरेश के साथ नकेनवाद के एक स्तम्भ केसरीकुमार (प्रसाद और उनके नाटक), डॉ. गोविन्द चातक (प्रसाद के नाटकः सर्जनात्मक धरातल और भाषिक चेतना) इत्यादि ने प्रसाद के नाटकों पर अच्छा शोध एवं आलोचना-कार्य किया है। स्व. डॉ. पुरुषोत्तमदास अग्रवाल ने तो छोटी-सी 'ध्रुवस्वामिनी' पर बड़ा-सा शास्त्रीय अध्ययन कर डाला[1]।

प्रसाद के नाटकों की सर्वोपरि विशेषता रसवाद और स्वच्छन्दतावाद का समन्वय है, जिसके कारण उनके नाटक भारतीय और पाश्चात्य नाट्यकलाओं के अनूठे संगम बन गए हैं, जिनमें सरसता भी पर्याप्त है तथा जीवन-संघर्ष भी। 'प्रसाद के नाटकों में रसवाद और स्वच्छन्दतावाद का समन्वय'[2] शोध अथवा आलोचना का उत्कृष्ट विषय है। आश्चर्य है कि उन आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने 'नया साहित्यः नए प्रश्न' में डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा के 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' को समीचीन न मानते हुए उन्हें स्वच्छन्दतावादी नाटक मात्र बतलाया है, जिन्होंने 'रस', 'नाटकों में रस का प्रयोग', 'नाटकों का आरम्भ' तथा 'रंगमंच' से निष्पन्न प्रसाद कृत 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' की स्फीत भूमिका लिखी है! प्रसाद के इन दो मित्रों में इस बिन्दु पर डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा महान् मित्र से न्याय करते हैं। प्रसाद रसविरोधी नहीं थे तथा उनका स्वच्छन्दतावाद रसनिष्पन्न है। रस और स्वच्छन्दतावाद परस्पर-विरोधी नहीं हैं तथा प्रसाद इसके प्रतीक हैं।

प्राच्य एवं पाश्चात्य नाट्य-कलाओं के समन्वय के कारण प्रसाद ने नाट्य-वर्जनाओं इत्यादि पर ध्यान नहीं दिया। वे अभिनय-क्लिष्ट तो हैं ही। सुविख्यात रंगकर्मी ब.व. कारन्त के अनुसार, ''प्रसाद का हर नाटक क्लिष्ट होता है।'' स्वयं भारतीय नाटक के जनक भास ने उरुभंगम् तथा भारत के एक गौरवशाली नाट्यकार शूद्रक ने 'मृच्छकटिकम्' में पर्याप्त स्वतन्त्रता का प्रदर्शन किया है तथा भारतीय नाटक के प्रतीक-कलाकार कालिदास ने 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं' की घोषणा की है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे आदर्शवादी युगपुरुष ने स्वच्छन्दतावादी 'अजातशत्रु' को सराहा था, जबकि यह नाटक 'वर्जनाओं' की भरपूर अवहेलना करता है। अतः श्री कृष्णानन्द गुप्त, श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख', पंडित कृष्णशंकर शुक्ल प्रभृति की एतद्विषयक आलोचना केवल पारम्परिक मूल्य रखती है। प्रसाद का सुखान्त-दुखान्त-समन्वय भी उनके प्राच्यपाश्चात्य नाट्यकलाओं के समन्वय का ही एक पक्ष है, जिसके दर्शन 'स्कन्दगुप्त', 'चन्द्रगुपत', 'अजातशत्रु' एवं 'ध्रुवस्वामिनी' में होते हैं, जो प्रसाद के सर्वोत्तम नाटक हैं। सम्भव है कि समकालीन नाट्यकार जॉर्ज बर्नार्ड शॉ की ट्रेजी-कॉमेडी (यथा, 'सेंट जोन') का प्रसाद के सुखान्त-दुखान्त-समन्वय पर प्रभाव पड़ा हो।

प्रसाद के नाटकों की एक महान् विशेषता उनका अन्तर्द्वन्द्वनिष्पन्न मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण है जो प्रायः कामवाद से ऊभचूभ होने के बावजूद अतीव गम्भीर भी है और अतीव मनोहारी भी। उनके 'स्कन्दगुप्त' अपनी कुंठित चिन्तनशीलता में हैम्लेट का स्मरण कराते हैं, उनके बिम्बसार अपनी अर्द्धनिष्क्रिय दार्शनिकता में 'किंग लीअर' का, उनकी अनन्तदेवी अपनी दुर्दमनीय महत्वाकांक्षा में लेडी मैकबेथ का और उनके भटार्क अपनी अनियन्त्रित विजिगीषा में मैकबेथ का। उनके चाणक्य 'मुद्राराक्षस' के चाणक्य से कम प्रभावी नहीं हैं। उनकी ध्रुवस्वामिनी की अस्मिता उसे डेस्डीमोना की दयनीयता को बहुत ऊपर उठा देती है। प्रसाद के व्यास (जनमेजय का नागयज्ञ), बुद्ध (अजातशत्रु), मल्लिका (अजातशत्रु), दांड्यायन (चन्द्रगुप्त), दिवाकरमित्र (राज्यश्री), सन्तोष (कामना) प्रभृति मात्र भारतीय संस्कृति को उसकी नानाआयामिता के गौरव के साथ विवृत करने में पूर्णतः सफल सिद्ध होते हैं। कामायनी, स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त, अजातशत्रु, ध्रुवस्वामिनी, जनमेजय का नागयज्ञ, कामना तथा 'रस', 'नाटकों में रस का प्रयोग', 'नाटकों का आरम्भ' प्रभृति निबन्धों में प्रसाद ने विराट् भारतीय संस्कृति के अनेक पक्षों का जैसा महान् चित्रण किया है वैसा तुलसीदास और मैथिलीशरण को छोड़कर कोई अन्य कलाकार नहीं कर सका। देवसेना, मालविका, कोमा प्रभृति प्रसादत्व की मूर्तियाँ महान् कलाकार की सर्जनशक्ति की प्रतीक हैं। चरित्र-वैविध्य में प्रसाद विश्वस्तर के महान् कलाकार सिद्ध होते हैं।

---

1. 'ध्रुवस्वामिनी' का शास्त्रीय अध्ययन।
2. 'कामायनी में रसवाद और स्वच्छन्दतावाद का समन्वय' भी ऐसा ही विषय है।

प्रसाद की ललित स्वच्छन्दतावादी भाषा हिन्दी-नाटक की अमर निधि है, जो रचनागत प्राचीनकाल को बिम्बित करने में सहायक सिद्ध होती है। संस्कृत भारत की आत्मा एवं संस्कृति की रसना है। यदि उर्दू हिन्दी की एक सगी बहन या उसकी एक शैली है, तो संस्कृत हिन्दी की जननी या प्रेरणा की स्रोत है। संस्कृतरहित भारत की कल्पना तक कठिन है।

प्रसाद के 'विशाख', 'अजातशत्रु' एवं 'स्कन्दगुप्त' में गीतों की भरमार खटकती है, यद्यपि 'चन्द्रगुप्त' एवं 'ध्रुवस्वामिनी' में गीत-प्रयोग सन्तुलित एवं श्रेष्ठ है। श्री ब.व. कारन्त के अनुसार, ''प्रसाद नाटकों में संगीत के प्रति सजग हैं।'' 'विशाख' एवं 'चन्द्रगुप्त' में तो परिशिष्ट में उन्होंने संगीत-निर्देश भी दिलाए हैं। प्रसाद के नाटक शॉ के नाटक नहीं, शेक्सपीअर के नाटक हैं। वे कवि-नाट्यकार हैं, केवल नाट्यकार नहीं। निस्सन्देह, वे आधुनिक की अपेक्षा मध्य काल के निकटतर हैं, किन्तु जहाँ तक कलात्मक मूल्यों का सम्बन्ध है, उच्चकोटि के नाट्यकार हैं।

प्रसाद के नाटकों पर अनभिनेयता का आरोप किसी विशुद्ध हिन्दी-रंगमंच के अभाव[1] के कारण अनुचित था और उनके सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुकने के कारण कालातीत कहा जा सकता है।

मुझे प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों में सबसे बड़ा दोष अनैतिहासिकता के आनुपातिक दृष्टि से अधिक परिमाण का प्रतीत होता है। उनका स्कन्दगुप्त ऐतिहासिक स्कन्दगुप्त नहीं है, उनका पर्वतेश्वर (पर्वतक या पौरव या पूरु या फूर[2] या पोरस[3]) ऐतिहासिक पुरु नहीं है, उनकी मल्लिका ऐतिहासिक मल्लिका नहीं है, उनका रामगुप्त ऐतिहासिक रामगुप्त नहीं है तथा उनके देवसेना, मालविका, कोमा, भटार्क, विकटघोष, मिहिरदेव, प्रेमानन्द इत्यादि कल्पित पात्र आवश्यकता से अधिक महत्त्व प्राप्त कर गए हैं। उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी के सदृश नाट्यकार प्रसाद ने ''इतिहास को दूर से ही नमस्कार'' तो नहीं किया, उपन्यासकार चतुरसेन शास्त्री के सदृश नाट्यकार प्रसाद ने इतिहास को कल्पना में तिरोहित भी नहीं किया, किन्तु उन जैसे महान् एवं बीसवीं सदी के प्रबुद्ध कलाकार से ऐतिहासिक पात्रों के साथ जैसा न्याय अपेक्षित हो सकता है वैसा वे नहीं कर पाए। वे महान् कलाकार थे जो ज़माने की चकपकाहट से ऊपर उठकर लिखता है तथा युग से होता चिर में समाहित हो जाता है। यह ठीक है कि जागरूक आधुनिक कलाकार मानव का चित्रण करता है, केवल राम या केवल रावण का नहीं, केवल बुद्ध या केवल देवदत्त का नहीं, और इस प्रशस्य चित्रण-साधना में वह जर्जर अतीत की दुर्बल व्यक्तिपूजा या संकीर्ण साम्प्रदायिकता का उच्छेद करता है, किन्तु प्रख्यात चरित्रों के ज्ञान वृत्त में मनमाना परिवर्तन उचित नहीं माना जा सकता और ऐसे चरित्रों को आत्मपरक प्रवृत्ति द्वारा आच्छन्न करना तो विगर्हणीय ही है। कलाकार 'कल्पना का अधिकार'[4] रखता है, किन्तु कल्पना का अतिचार वरेण्य नहीं।

प्रसाद के नाटक (एकमात्र अपवाद 'ध्रुवस्वामिनी' के अतिरिक्त) अतिरेक-नाटक लगते हैं, क्योंकि पात्रातिरेक तो सर्वव्यापी है ही, कहीं हृदयपरिवर्तन का अतिरेक मिल जाता है (जैसे 'अजातशत्रु' में), कहीं आत्महत्याओं का (जैसे 'स्कन्दगुप्त' में), कहीं गीतों का (जैसे 'अजातशत्रु' एवं 'विशाल' में), कहीं नायक की प्रेमिकाओं का (जैसे 'चन्द्रगुप्त' में), तो एक उदाहरण हास्य के अतिरेक ('विशाख' में मुख्यतः महाविंगल एवं प्रसंगतः सत्यशील के माध्यमों से) का भी मिल जाता है (जो अद्‌भुत-सा प्रतीत होता है, क्योंकि प्रसाद की प्रकृति हास्य की न थी, यद्यपि मात्र परम्परापालनार्थ उन्होंने 'स्कन्दगुप्त' में मुद्‌गल एवं धातुसेन, 'अजातशत्रु' में वसंतक, 'ध्रुवस्वामिनी' में बौनों-कुबड़ों-हिजड़ों, 'राज्यश्री' में मधुकर, 'जनमेजय का नागयज्ञ' में तुर एवं काश्यप, 'चन्द्रगुप्त' में पर्वतेश्वर, 'कामना' में विनोद, 'एक घूँट' में चंदुला एवं झाड़ूवाला का आवश्यक अथवा अनावश्यक प्रयोग किया अवश्य है)।

प्रसाद के नाटकों में गुण भी बड़े हैं, दोष भी। किन्तु प्राचीन इतिहास का उद्धार, भारतीय संस्कृति का निरूपण, स्वच्छन्दतावादी कल्पना, रसवाद और स्वच्छन्दतावाद का समन्वय, अन्तर्द्वन्द्वसम्पन्न चरित्रचित्रण एवं ललित भाषा के कारणों से वे एक उच्चकोटि के नाट्यकार हैं। उनका सर्वश्रेष्ठ नाटक 'स्कन्दगुप्त' स्वच्छन्दतावादी नाट्यकला का विश्वस्तरीय निदर्शन माना जा सकता है, जबकि स्फीत 'चन्द्रगुप्त' विशाखदत्त कृत 'मुद्राराक्षस' एवं मेकिआवेली कृत 'प्रिंस' के स्तर का विश्वस्तरीय राजनैतिक नाटक बन पड़ा है। आदर्शवाद के अतिरेक ने 'अजातशत्रु', 'राज्यश्री' इत्यादि को क्षति पहुँचाई है, किन्तु इसमें भी प्रेरणा का तत्त्व विद्यमान है। गुणदृष्टि से प्रसाद शेक्सपीअर का स्मरण करा देते हैं और यह एक महान् उपलब्धि है।

---

1. आज (2005 ई.) तक कोई व्यवस्थित साहित्यिक रंगमंच नहीं है, व्यावसायिक और लेखक-प्रेरित और दलगत मंचनों की बात और है। ब्रिटिश ड्रामा लीग यहाँ कहाँ? यहाँ से तो बंगाल, असम, महाराष्ट्र इत्यादि में नाटक अधिक लोकप्रिय है। क्रमशः पारसी थिएटर एवं सिनेमा हिन्दी-नाटक को चरते आ रहे हैं।
2. ईरानी-उच्चारण। शाहनामा में भी प्राप्त। पुरु-वंशज (कौरव-पांडव-कुलगत) का पूरु नाम ही शुद्ध है, जो फ़ारसी में फूर हो गया है।
3. यूनानी-उच्चारण, जो पूरु-मूलक ही है, तथा पाश्चात्य वर्चस्व के कारण विशेष प्रचलित है।
4. कामायनी के 'आमुख' में स्वयं प्रसाद।

महान् कहानीकार

कवि एवं नाट्यकार के अनन्तर, प्रसाद कहानीकार, तब उपन्यासकार, अन्ततः निबन्धकार हैं। निस्सन्देह, वे एक महान् कवि, एक महान् नाट्यकार, एक महान् कहानीकार, एक जागरूक उपन्यासकार एवं एक विद्वान् निबन्धकार हैं। महत्त्व की दृष्टि से क्रमशः 'आकाशदीप', 'आँधी', 'इन्द्रजाल', 'प्रतिध्वनि' एवं 'छाया' शीर्षक संग्रहों में क्रमशः 19, 11, 14, 15, एवं 11 अर्थात् कुल 70 कहानियाँ प्राप्त होती हैं। प्रसाद का बृहत्तम कहानीसंग्रह 'आकाशदीप' उनकी प्रकृत स्वच्छन्दतावादी कला का भी आकाशदीप है, जिसमें उनकी सर्वश्रेष्ठ कहानी, हिन्दी की एक सर्वश्रेष्ठ कहानी तथा विश्व की एक सर्वश्रेष्ठ कहानी 'आकाशदीप' तो ज्योतिर्मय है ही, 'ममता', 'कला', 'देवदासी' एवं 'बिसाती' शीर्षक अन्य अमर कहानियाँ भी प्राप्त होती हैं। 'ममता' एक अतीव अतीतरसनिष्पन्न मार्मिक कहानी है, जिसमें स्थूल इतिहास की मानवमूल्यविहीन सत्ताप्रधानता व्यंजित है। 'कला' एक उच्चकोटि की प्रतीकात्मक कहानी है। 'देवदासी' में नारी का रूढ़िगत शोषण एवं उसकी दयनीयता का मार्मिक चित्रण प्राप्त होता है। 'बिसाती' असफल प्रेम की समर्पणभावना की सफल विवृति है। 'आँधी' प्रसाद का एक चिरस्मरणीय कहानीसंग्रह है, जिसमें 'पुरस्कार' शीर्षक विश्वस्तरीय महान् कहानी के अतिरिक्त 'मधुआ' शीर्षक मार्मिक यथार्थवादी कलाकृति (जिसे प्रसाद का 'काबुलीवाला' कहा जा सकता है किन्तु जो रवीन्द्र की प्रसिद्ध कृति से अधिक कसी कृति है)[1] तथा 'बेड़ी' शीर्षक कहानी में हृदयविदारक दारिद्र्य-वैवश्य-चित्र के दर्शन होते हैं। 'इन्द्रजाल' प्रसाद का प्रौढ़ एवं गहन कहानीसंग्रह है, जिसमें गुलेरी कृत 'उसने कहा था' के सर्वथा समकक्ष किन्तु शतशः मौलिक 'गुंडा', बौद्धधर्म के हाहाकारपूर्ण, अप्राकृतिक दमन का ज्वलन्त प्रत्याख्यान 'देवरथ' एवं मानवीय प्रवृत्तियों की चिरंतनता का चिरचित्र 'चित्रमन्दिर' (जिसमें प्रागैतिहासिक काल एवं अधुनातन काल संपृक्त हैं तथा रहेंगे) कहानियाँ गौरवशाली रूप प्रदान करती हैं। 'प्रतिध्वनि' एवं 'छाया' प्रसाद की आरम्भिक एवं सामान्यतर कहानियों के वे संग्रह हैं जिनके छायावाद के अनुरूप शीर्षक बाद में कल्पित किए गए। 'छाया' संग्रह की 'ग्राम' कहानी प्रसाद की पहली कहानी के रूप में प्रसिद्ध होने के कारण ऐतिहासिक महत्त्व अवश्य रखती है, जो 1912 ई. में तब लिखी गई थी जब गुलेरी की 'उसने कहा था' लिखे जाने में तीन वर्ष की देरी थी और प्रेमचन्द उर्दू-कहानीकार थे। 'उसने कहा था' जून, 1915 एवं 'पंच-परमेश्वर'[2] जून, 1916 में छपी थी। 'ग्रम' 1900 ई. के आसपास छपी माधवप्रसाद मिश्र एवं माधवराव सप्रे की घटनावत् कहानियों के निकटतर है। साधारणतर होने पर भी प्रसाद की प्रथम कहानी और वह भी 1912 ई. में रची गई कहानी के रूपों में 'ग्राम' को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है।

प्रसाद की सत्तर कहानियों में आयामों की व्यापकता विस्मयकारी है। गिरिजाकुमार माथुर का यह कथन सत्य है कि वे 'लगातार प्रयोगधर्मी' रहे। प्रेमचन्द हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कहानीकार हैं जिन्होंने प्रसाद से अधिक कहानियाँ लिखी हैं, किन्तु आयामों की व्यापकता में वे भी प्रसाद की समता नहीं कर सकते। अन्य कोई कहानीकार गुणदृष्टि से प्रसाद की समता नहीं कर पाता।

'प्रसाद की स्वच्छन्दतावादी कहानियाँ', 'प्रसाद की यथार्थवादी कहानियाँ' 'प्रसाद की प्रतीकात्मक कहानियाँ', 'प्रसाद की कहानी-शैलियाँ' इत्यादि शोध ग्रन्थ, लघुशोधग्रन्थ, स्वतन्त्रग्रन्थ इत्यादि के अच्छे विषय हैं। स्वयं मैंने डॉ. रामावतार शर्मा के पी-एच. डी. शोधप्रबन्ध 'प्रसाद का कथा-साहित्य' का निर्देशन करने के उपरान्त 'प्रसाद के कथा-साहित्य में ऐतिहासिक आयाम' का परा-शोध निर्देशन किया है। प्रसाद की कहानियों के व्यापक आयामों में नाना धर्मों के पाखंड एवं विकार पूर्वग्रहरहित रूपों में चित्रित मिलते हैं। 'देवदासी' (हिन्दूधर्म), 'सालवती' (जैनधर्म), 'देवरथ' (बौद्धधर्म) और 'स्वर्ग के खंडहर में' (मोहम्मदीयत) जैसी कहानियाँ धर्मों में प्रविष्ट अधार्मिकता का प्रशान्त चित्रण करती हैं। 'कंकाल' उपन्यास में ईसाइयत की विकृतियाँ चित्रित हैं।

ऐतिहासिक आयामों की विराटता में प्रसाद की कहानियाँ विस्मयाविष्ट कर लेती हैं। सुदूर प्रागैतिहासिक काल (चित्र-मन्दिर) से निकटतर ब्रिटिशकाल (गुंडा) तक प्रसरित इतिहास सिद्ध कर देता है कि प्रसाद समग्र भारतीय इतिहास के प्रकांड पंडित थे। 'सालवती' में प्राचीन जैन-इतिहास की वैशाली के आसपास के दृश्य दृग्गत होते हैं, तो 'पुरस्कार' में श्रावस्ती के हिन्दू-इतिहास के अन्तिम अध्यायों के। 'देवरथ' में बौद्धधर्म की विकृति दृग्गत होती है, तो 'स्वर्ग के खंडहर में' में मोहम्मदीयत की। 'चित्र-मन्दिर' में आदिम पार्वत्य इतिहास चित्रित मिलता है, तो 'जहाँनारा' में मध्यवर्ती मुग़ल-काल और 'गुलाम' में उत्तर-मुग़लकाल। 'गुंडा' में आरम्भिक

---

[1] भगवतीप्रसाद वाजपेयी की कहानी 'मिठाईवाला' को 'हिन्दी की काबुलीवाला' कहा जा सकता है।

[2] प्रेमचन्द ने 'पंचों में परमेश्वर' कहानी अनगढ़ भाषा में लिखी थी, जिसका शीर्षक कसा और सुन्दर 'पंच-परमेश्वर' करते हुए महान् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने परिष्कृत भाषा में लिखी कहानी के रूप में अमर कर दिया।

ब्रिटिशकाल बिम्बित है, तो 'शरणागत' में 'कम्पनी बहादुर' के शासन का अन्तिम काल। कहीं पूर्व-मौर्यकाल चित्रित मिलता है ('सिकन्दर की शपथ' में), तो कहीं परवर्ती मौर्यकाल ('अशोक' में), कहीं महमूद-परवर्ती तुर्क-इतिहास ('दासी' में) चित्रित मिलता है, तो कहीं राजपूत-इतिहास ('चित्तौर[1] का उद्धार' में)। आयामों की विस्मयकारी विराटता के बावजूद प्रसाद ने देशकाल-चित्रण में अनूठी सफलता प्रदर्शित की है। प्रसाद का पात्रवैविध्य भी विस्मयकारी है। चाहे हिन्दू-जलदस्यु बुद्धगुप्त हो या प्रेमी 'गुंडा' नन्हकूसिंह, चाहे उत्साही अरुण हो या निराश बिसाती, चाहे कुंठा में पिसी 'नूरी' हो या सेवापथ पा जानेवाली 'चूड़ीवाली', चाहे अन्तर्द्वन्द्व से साश्रु चम्पा हो या वैधव्यप्रशान्त 'ममता', चाहे विकृतकाम क़ादिर हो या सफलकाम बलराज, चाहे अपने पेट के लिए बेटे के पैरों में 'बेड़ी' डालने वाला बूढ़ा भिखारी हो या स्वाभिमान से परिचित युवा 'भिखारिन', सबका चित्रण वे संवेदनपूर्वक करते हैं।

असफल प्रेम प्रसाद की कहानियों का प्रधान वर्ण्य है। उनके नाटक भी असफल प्रेम से ऊभचूभ हैं। आख़िर वे 'मुझको न मिला रे कभी प्यार' के गीतकार थे। मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण, जो 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'देवरथ' प्रभृति अन्तर्द्वन्द्व-चित्रण की महान् कहानियों में पराकाष्ठा करता है, उनकी कहानी-कला को उनके युग से बहुत आगे प्रतिष्ठित कर देता है। कुल मिलाकर प्रसाद 'कला कला के लिए' सिद्धान्त के निकटतर हो सकते हैं, किन्तु वे 'कला जीवन के लिए' सिद्धान्त से दूरतर भी नहीं हैं, जैसा कि 'मधुआ', 'चूड़ीवाली, 'बेड़ी' इत्यादि कहानियाँ प्रमाणित करती हैं।

प्रेमचन्द और प्रसाद हिन्दी के महान् कहानीकार हैं; वे दोनों एक-दूसरे के पूरक भी हैं। प्रेमचन्द में गद्य की छटा है, प्रसाद में काव्य की। प्रेमचन्द में 'वस्तु' अधिक है, प्रसाद में 'रस'। प्रेमचन्द सारा-का-सारा कह डालते हैं, प्रसाद बहुत कुछ पाठक पर छोड़ देते हैं। प्रेमचन्द प्रायः 'वाह' के कलाकार हैं, प्रसाद समग्रतः 'आह' के। प्रेमचन्द का सामाजिक पाट बहुत बड़ा है, प्रसाद की मानसिक गहराई अतल है। दोनों महान् कहानीकारों पर हिन्दी को गर्व है, क्योंकि दोनों ही मोपासां, चेखॅव, ओ' हेनरी, रवीन्द्र इत्यादि की समता करने में सर्वथा सक्षम हैं।

उल्लेखनीय उपन्यासकार

प्रसाद ने 'कंकाल' एवं 'तितली' शीर्षक सामाजिक तथा 'इरावती' (अपरिसमाप्त) शीर्षक ऐतिहासिक या कुल सवा-दो उपन्यास भी लिखे हैं। 'कंकाल' की रचना 1920 ई. के आसपास हुई, तितली की 1933 ई. के तथा 'इरावती' तो उनके 1937 ई. में हुए देहान्त के समय तक लेखन-प्रक्रिया में थी ही। विनोदशंकर व्यास के अनुसार, प्रसाद लगभग दस उपन्यास लिखने की योजना बना रहे थे, जो उनके असामयिक अवसान ने अवसित कर दी।

'कंकाल' का शीर्षक अन्त की नाटकीयता में बद्ध होने के कारण न व्यापक है, न तलस्पर्शी। 'तितली' का शीर्षक भी विवादापद है, क्योंकि उपन्यास की पात्र-बहुलता एवं उसका संघटन किसी एक की वरीयता के बहुत अनुकूलन नहीं है। 'इरावती' का शीर्षक तो पुण्यमित्र होना चाहिए था, क्योंकि देर से दृग्गत होने पर भी भावी शुंग वंश का यह महान् संस्थापक गुलीवर[1] लगता है तथा शेष लिलीपुटवासी; और यदि शीर्षक नारी पर ही रखना था तो वह कालिन्दी ठीक होता क्योंकि उसकी अस्मिता एवं सक्रियता दोनों ही अतीव प्रभावी हैं। प्रसादं के नायक-नायिका प्रायः निवृत्तिवादी या पलायनवादी या प्रतिक्रिया-चालित होते हैं, जैसे मनु या स्कन्दगुप्त, देवसेन या कोमा, इरावती या ममता। प्रसाद के समग्र साहित्य का अंगीरस शान्त ही हो सकता है। किन्तु इरावती की अपरिसमाप्तता के कारण इस कृति पर कोई निर्णय करना उचित न होगा।

प्रसाद का उपन्यासकार-रूप क्रियाचालित न होकर प्रतिक्रियाचालित प्रतीत होता हैं। 'कंकाल' का सृजन यह सिद्ध करने के लिए किया गया लगता है कि वे कोरे स्वच्छन्दतावादी नहीं हैं, इसलिए इस यथार्थप्रधान उपन्यास में हिन्दू धर्म एवं ईसाई मजहब पर निर्मम प्रहार दृग्गत होते हैं। प्रेमचन्द, जो प्रायः अपनी स्वाभाविक चुलबुलाहट के कारण प्रसाद के ऐतिहासिक कृतित्व पर ''गड़े मुर्दे उखाड़ने'' का व्यंग्य किया करते थे (यद्यपि उन्होंने स्वयं अनेक ऐतिहासिक कहानियाँ लिखी हैं), 'कंकाल' देखकर बाग़-बाग़ हो गए थे–उनका पत्र एतद्विषयक 'ऐतिहासिक' प्रमाण है। 'तितली' का कृतित्व उसी प्रतिक्रिया का प्रतिफलन है जो पन्त ने इन शब्दों में व्यक्त किया है :

> भारतीय ही नहीं बल्कि हूँ मैं ग्रामीण हृदय के भीतर!

---

1. अतिकोमलतावादी होने के कारण प्रसाद ने चित्तौड़ को 'चित्तौर,' पीछाला को 'पेशोला', बाह्य को 'वाह्य' इत्यादि बना डाला है!

संस्कृति, कला एवं साहित्य के एक अप्रतिम सेवक एवं प्रसाद के एक घनिष्ठ मित्र (जिन्हें 'चन्द्रगुप्त' नाटक समर्पित है) पद्मविभूषण राय कृष्णदास ने लिखा था कि 1933 ई. के आसपास राय साहब की भारी ज़मींदारी का कोई व्यवस्थापक प्रसाद को मिल जाता तो वे बहुत प्रश्न करते अर्थात् ढेरों जानकारी बटोरने का यत्न करते।

'इरावती' शुंग-वंश की उपेक्षा के परिहारार्थ लिखी गई कृति है। गौरांग इतिहासकारों ने बौद्धधर्म के ईसाई मजहब पर प्रभाव के कारण बुद्ध, अशोक, कनिष्क, हर्ष इत्यादि की गुड्डी बहुत दूर तक उड़ाई-चढ़ाई। अहिंसा उनके पूँजीवादी एवं साम्राज्यवादी निहित-स्वार्थ के सर्वथा अनुरूप था। राम, कृष्ण, पुष्यमित्र, विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय, विक्रमादित्य इत्यादि की उपेक्षा इसी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति की उद्भूति थी।

प्रतिक्रिया में शक्ति तो होती है किन्तु सहजता नहीं। अतः प्रसाद के उपन्यासों, विशेषतः 'कंकाल' एवं 'इरावती', में शक्ति तो है किन्तु सहजता नहीं। 'कंकाल' में हिन्दूधर्म की शल्यक्रिया है, ईसाई मज़हब की आलोचना वस्तुपरक है। रचना नाटकीयता से ऊभचूभ होने के कारण प्रात्ययिकता के तत्त्व से विपन्न हो गई है। तारा (जो गुलेनार से होते हुए यमुना बनी) आकस्मिकता की राशि मात्र प्रतीत होती है, मंगलदेव और गाला का प्रकरण बैताल-पच्चीसी या सिंहासन-बत्तीसी से लिया गया लगता है, विजयचन्द्र का अवसान दुखान्तता के आग्रह का परिमाण। सफल उपन्यास वह है जिसमें औपन्यासिकता का अभाव हो। सफलप्राय उपन्यास वह है जिसके औपन्यासिकता की अल्पता हो। किन्तु धार्मिक पाखण्ड एवं मजहबी जुनून पर प्रशस्य प्रहार के कारण यथार्थ एवं प्रगति की दृष्टियों से इस कृति को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है। प्रेमचन्द तक अपने किसी उपन्यास में धार्मिक पाखण्ड एवं मजहबी जुनून पर ऐसा प्रहार नहीं कर सके। 'तितली' में प्रसाद पर ग्रामसुधार की धुन सवार है। जिस त्वरा से तितली, मधुबल, शैला, इन्द्रदेव इत्यादि सर्वांगीण ग्रामसुधार में सफल होते हैं, वह आश्चर्यजनक है। यदि प्रसाद ने 'तितली' की प्रति गाँधी को भेजी होती अथवा गाँधी के इसे पढ़ा होता, तो वे गद्‌गद हुए बिना न रहते! अन्त की ओर तो आकस्मिक् घटनाओं का ताँता-सा लग जाता है। किन्तु इस सारे ताबड़तोड़वाद के बीच राजो का मनोवैज्ञानिक चित्रण कलात्मक उत्कर्ष का एक सूचक-तत्त्व बन गया है। निस्सन्देह, 'तितली' ग्रामसुधारवाद की दृष्टि से एक उल्लेखनीय उपन्यास है। 'इरावती' में अहिंसारोग अथवा बौद्धधर्मोन्माद का प्रभावी चित्रांकन हुआ है। पुष्यमित्र ने अस्वाभाविक निवृत्ति एवं विघातक अहिंसा का उच्छेद करके स्वाभाविक प्रवृत्ति एवं लाभप्रद पराक्रम को प्रतिष्ठा प्रदान की। यदि पुष्यमित्र न हुए होते तो जिसे सम्प्रति हिन्दूधर्म कहते हैं उसका लोप तक सम्भव था क्योंकि उनके कारण ही यह महान्, प्राचीनतम एवं सनातन धर्म पुनः प्रभावी हो सका था। गुप्त सम्राटों ने हिन्दूधर्म की महान् सेवा की किन्तु उनके समय की परिस्थितियाँ उतनी विषम न थीं जितनी पुष्यमित्र के समय की। शंकराचार्य ने हिन्दूधर्म की महान् प्रतिष्ठा की किन्तु उनके समय तक बौद्ध धर्म वज्रयान-सहजयान की विकृतियों से आच्छन्न हो चुका था तथा उसे वह राजनैतिक वर्चस्व भी प्राप्त न था जो भारत में बौद्ध धर्म की उन्नति का एकमात्र कारण रहा है। भारत में बौद्धधर्म बुद्ध, आनन्द, सारिपुत्र, मौद्‌गल्यायन, अश्वघोष, नागार्जुन, वसुवंधु, सरहपा, धर्मानन्द, राहुल इत्यादि के कारण नहीं प्रत्युत बिम्बसार, पद्मावती, अशोक, कनिष्क, हर्ष, नेहरू, अम्बेडकर इत्यादि के कारण ही जीवित रहा है। जिस धर्म में न ईश्वर हो न आत्मा, वह मानव को कैसे परितुष्ट कर सकेगा? ''सर्वं अनात्मम्'' और पुनर्जन्म में संगति कहाँ और कैसी? बुद्ध एक उच्चस्तरीय सुधारक एवं अद्वितीय मानवमूल्य प्रतिष्ठापक विश्वपुरुष हैं, जिन्होंने सुकरात, ईसा, गाँधी इत्यादि आदर्शवादी महापुरुषों को प्रभावित किया है। किन्तु उनका धर्म एवं दर्शन न ठोस है, न व्यावहारिक। 'इरावती' में प्रसाद ने पुष्यमित्र के चरित्र के साथ प्रशस्य न्याय किया है। इससे उक्त तथ्य उजागर हो सकते हैं।

प्रसाद का जो स्थान कविता, नाटक एवं कहानी विधाओं में है, वह उपन्यास एवं निबन्ध की विधाओं में नहीं। निस्सन्देह, उन्होंने 'कंकाल' जैसा प्रखर एवं 'तितली' जैसा ग्रामसुधारवादी उपन्यास रचकर एक उल्लेखनीय सामाजिक उपन्यासकार तथा इरावती रचकर एक उल्लेखनीय ऐतिहासिक उपन्यासकार का गौरव प्राप्त किया है, किन्तु वे प्रेमचन्द, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल नागर इत्यादि के सदृश न तो प्रतिनिधि सामाजिक उपन्यासकार हैं और न जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी इत्यादि के सदृश प्रतिनिधि मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार और न वृन्दावनलाल वर्मा के सदृश प्रतिनिधि ऐतिहासिक उपन्यासकार और न फणीश्वरनाथ 'रेणु' इत्यादि के सदृश प्रतिनिधि आंचलिक उपन्यासकार। प्रसाद का उपन्यासकार रूप वैसे ही प्रासंगिक मात्र

---

1. जोनाथन स्विफ़्ट कृत व्यंग्योपन्यास 'गुलीवर्स ट्रैवेल्स' में वह अतीव विशालकाय तथा लिलीपुट के वासी अतीव लघुकाय दिखाए गए हैं। कहते हैं, स्विफ़्ट का उद्देश्य फ्रांस पर व्यंग्य था। गुलीवर अंग्रेज़-प्रतीक है, लिलीपुटवासी-फ्रेंच-प्रतीक। इसीलिए, रचना बहुत सराही गई।

जैसे निराला का उपन्यासकार रूप, पन्त एवं अज्ञेय के आलोचक-रूप, महादेवी एवं जैनेन्द्र के निबन्धकार-रूप तथा मोहन 'राकेश' एवं धर्मवीर 'भारती' के उपन्यासकार-रूप।

विद्वान् निबन्धकार

प्रसाद एक अतीव अध्ययन सम्पन्न एवं सततविकसनशील साहित्यकार थे। उनका भारतीय काव्यशास्त्र, विशेषतः नाट्यशास्त्र, का अध्ययन अत्यन्त गम्भीर था। वे प्राचीन भारतीय इतिहास के तलस्पर्शी अध्येता थे। उनका मध्यकालीन भारत के इतिहास का ज्ञान भी विशद था। भारतीय संस्कृति के प्रति उनमें अगाध आस्था थी। शैव होने के कारण वे कामसंपृक्त प्रकृति के जीवन्त विश्लेषक थे। वैश्य[1] होने के कारण वे जीवन के अनुभव से भी विपन्न न थे। वैश्यों ने भारत को श्रवणकुमार[2], लाजपतराय, गाँधी, लोहिया जैसे महापुरुष प्रदान किए हैं। भारतरत्न डॉ. भगवानदास[3] (दार्शनिक) वैश्य थे। गुप्त एवं वर्द्धन राजवंश वैश्यों के थे। मध्यकालीन भारत के एक अप्रतिम हिन्दू-नेता, जो सफल होते-होते रह गए, वीर हेमू विक्रमादित्य वैश्य-जातिरत्न ही थे। हरियाणा के इतिहास का यह सर्वश्रेष्ठ नायक एवं शहीद भारत की एक महान् विभूति था! हिन्दी-साहित्य का आधुनिककाल वैश्य-गौरव भारतेन्दु हरिशचन्द्र, श्रीनिवासदास, राधाकृष्णदास, रत्नाकर, ब्रजरत्नदास, मैथिलीशरण, प्रसाद, गुलाबराय, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. मोतीचन्द्र, डॉ. माताप्रसाद गुप्त इत्यादि का ऋणी है। भारतेन्दु, रत्नाकर, मैथिलीशरण एवं प्रसाद हिन्दी-साहित्य की प्रथम पंक्ति में समासीन होने योग्य हैं। बिड़ला, सिंहानिया, बजाज, गोयनका, सोमानी, पोद्दार, टाँटिया, सहरिया, खेतान इत्यादि वैश्य-घराने भारत के आर्थिक विकास में अग्रणी रहे हैं। वैश्यों की ईर्ष्यामूलक या हीनतामूलक आलोचना की रूढ़ि प्रतिक्रियावादी एवं निराधार है। शोषण सारे व्यापारी करते हैं, सारे व्यापारी-वर्ग करते हैं।

'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' शीर्षक ग्रन्थ प्रसाद की विद्वत्ता का स्मारक है, जो उन्हें एक उल्लेखनीय विचारात्मक-निबन्धकार का गौरव भी प्रदान करता है। आश्चर्य तो यह है कि प्रसाद ने अपने निबन्ध अनौपचारिक शैली एवं ख़ालिस गद्य-भाषा में लिखे हैं, जो उनके महान् कवि, अमर नाट्यकार, उच्चकोटि कहानीकार एवं सफल उपन्यासकार होने का संकेत कहीं नहीं करते। आदि से अन्त तक यही लगता है कि कोई गम्भीर विद्वान् औपचारिक निबन्ध लिख रहा है, विचारात्मक-निबन्ध लिख रहा है। प्रसाद के निबन्ध विचार-बोझिल हैं, ललित्यपूर्ण नहीं। वे नीरस हैं, प्रांजल नहीं। किन्तु उनका विषय-निरूपण एवं पांडित्य उच्चकोटि का है।

'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में क्रमशः 'काव्य और कला', 'रहस्यवाद', 'रस', 'नाटकों में रस का प्रयोग', 'नाटकों का आरम्भ', 'रंगमंच', 'आरम्भिक पाठ्यकाव्य' एवं 'यथार्थवाद और छायावाद' शीर्षक आठ मौलिक एवं गम्भीर विचारात्मक-निबन्ध प्राप्त होते हैं, जिनसे प्रसाद का रसशास्त्र एवं नाट्यशास्त्र का विद्वान्-रूप उजागर होता है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से ये निबन्ध सर्वथा अमूल्य हैं तथा श्यामसुन्दरदास, रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, नगेन्द्र इत्यादि के एतद्विषयक निबन्धों से किसी भी प्रकार न्यून नहीं लगते। यह सत्य है कि प्रसाद शैवागमवाद एवं आनन्दवाद वैष्णवता एवं भक्ति के निरूपण में संकीर्ण एवं असमर्थ सिद्ध होता है तथा रामचन्द्र शुक्ल के उल्लेखहीन विरोध में प्रतिक्रिया का आक्रोश प्रधान तत्त्व बन गया है, किन्तु ऐसा कुछ निबन्धों में ही हुआ है। कुल मिलाकर ग्रन्थ अतीव मूल्यवान है। जैसे थोड़ा लिखकर भी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कहानीकारों की पंक्ति में आ गए और पूर्णसिंह निबन्धकारों की, वैसे ही प्रसाद थोड़ा लिखकर भी निबन्धकारों की पंक्ति में आ गए हैं।

'काव्य और कला' एक उत्कृष्ट विश्लेषणात्मक निबन्ध है जिसमें भारतीय और पाश्चात्य विचारधाराओं के मूल आध्यात्मिकताप्रधान और भौतिकताप्रधान दृष्टिकोणों को स्पष्ट करते हुए काव्य को कला से भिन्न उच्चतर स्तर प्रदान किया गया है, जो 'रसो वै सः' और 'कविर्मनीषी परिभूस्वयंभू' प्रभृति औपनिषदिक निष्पत्तियों के अनुरूप है, 'काव्यानन्द ब्रह्मानन्दसहोदर है' की मीमांसा की दिशा में एक उपलब्धि है। रामचन्द्र शुक्ल ने अपने महान् निबन्ध 'कविता क्या है?'[1] में ऐसी ही उपपत्ति की है। काव्य आनन्दमूलक है, कला विज्ञानमूलक। विज्ञान आवश्यकतामूलक है, साधन है। काव्य सहज है, साध्य है। विज्ञानमय कोष महत्तर है, किन्तु आनन्दमय कोष महत्तम है। पश्चिम में पहले यूनानी बहुदेववाद का बोलबाला रहा, बाद में स्थूल व्यक्तिपरक एकेश्वरवाद का। इन दोनों में सर्ववाद

---

1. हलवाई। जाति मीठी, पर धन्धा 'सुँघनी' (तम्बाकु) का; वे 'सुँघनीसाहु' थे!
2. पिता वैश्य, माता शूद्र (वाल्मीकि-रामायण)।
3. वे भगवानूदास लिखते थे। संस्कृतज्ञ थे।
4. चिन्तामणि (भाग एक)।

(अद्वैतवाद) की सूक्ष्म आनन्दमूलक गहनता नहीं प्राप्त होती। यही कारण था कि प्लेटो जैसे महान् दार्शनिक भी कविता का सम्यक् मूल्यांकन नहीं कर सके और उस संगीत का लग्गू-भग्गू समझने की मूल कर गए। उनके शिष्य अरस्तू कला के सृजनतत्व से अभिनज्ञ न होते हुए भी अनुकरण-सिद्धान्त से बहुत दूर नहीं जा सके। परवर्ती हेगेल (हीगेल) इत्यादि दार्शनिकों ने स्थूल से सूक्ष्म और सूक्ष्म से सूक्ष्मतर पर आधृत कला-विवेचन करते हुए स्थापत्य या शिल्प, मूर्ति, चित्र और संगीत पर साहित्य को वरीयता प्रदान की है[1] और एक प्रकार से प्लेटो और अरस्तू के आरम्भिक और अपूर्ण कला-चिन्तन को प्रौढ़ता और पूर्णता प्रदान की है, जो स्तुत्य है। किन्तु भारत का अप्रतिम आनन्द-दर्शन साहित्य और उसकी आत्मा कविता को जैसा गौरव प्रदान करता है वैसा वे भी नहीं कर सके, जिसका कारण पश्चिम में गहनतम सर्ववादी आध्यात्मिकता का अभाव है।

'काव्य और कला' एक उच्चकोटि का निबन्ध है, यद्यपि सम्प्रति कला आभ्यंतर सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के रूप में गृहीत है; अतएव उसके सूक्ष्मतम एवं उच्चतम रूप को काव्य मानने में आपत्ति का कोई विशेष कारण दृष्टिगोचर नहीं होता, क्योंकि सर्ववाद भेददृष्टि-विरोधी है, संगीत तो साहित्य के निकटतर है ही; और महान् कलाभवन (जगन्नाथ पुरी, कोणार्क, खजुराहो के मन्दिर या ताज, ऐतमादुद्दौला का मक़बरा, बुलन्द-दरवाजा इत्यादि) एवं महान् मूर्ति-गौरव भी तन्मयता की विभूति प्रदान कर सकते हैं, महान् भित्तिचित्र या तैल-चित्र या अन्य चित्र भी तत्वतः रंगात्मक-प्राणकाव्य ही हैं; तथापि प्रसाद का विश्लेषण मूल्यवान है।

इस निबन्ध में कतिपय त्रुटियाँ भी प्राप्त होती हैं। 'ईरानी ख़लीफ़ाओं' का प्रयोग निराधार है क्योंकि मध्य एवं आधुनिक कालों के ख़लीफ़ा क्रमशः अरब एवं तुर्क थे। यह समझना भी ग़लत है कि अरबों ने पश्चिम को कोई मूलभूत दर्शन या कला प्रदान की थी क्योंकि मोहम्मदीयत का धर्म, दर्शन तथा गणित स्वयं क्रमशः यहूदी मजहब, यूनान तथा भारत से प्राप्त तत्त्व हैं। अबर-मस्तिष्क ने मौलिकता का परिचय कभी नहीं दिया अरब का अर्थ गाँव या गँवार होता है। मोहम्मदीयत का शिल्प भी पश्चिम तथा भारत से प्राप्त किया गया है। मोहम्मदीयत (मजहब), मोहम्मदीयत के दर्शन, मोहम्मदीयत के विज्ञान, मोहम्मदीयत की कविता, मोहम्मदीयत के शिल्प इत्यादि में मौलिक कुछ भी नहीं है (चिकित्सा-पद्धति या यूनानी हिकमत, फल्सका या यूनानी फिलॉसॉफी, सूफ़ी (वस्तुतः श्वेत से सपेत या सफ़ेद या साफ में मूलभूत) या यूनानी सोफिया, गणित या हिन्दसा इत्यादि शब्द स्वयं इतिहास या सत्य को निर्विवाद सिद्ध कर देते हैं) किन्तु मुसलमानों ने अपने आघातों से पश्चिम को झकझोरा अवश्य था, जिससे पोपलीला की पीनक में लहरें लेते पाश्चात्यों को आत्मपरियच एवं जागरण दोनों प्राप्त हुए थे। पाश्चात्य पुनरुत्थान एवं पुनर्सुधार जैसे शब्दों में 'पुनः' की स्थिति स्वयमेव सत्य का उद्‌घाटन कर देती है। स्वयं भारत में ऐसा ही हुआ। अरब, तुर्क, पठान, मुग़ल इत्यादि के आक्रमणों एवं वर्चस्वों ने राजपूत, मराठा, सिख इत्यादि वर्गों को वीर-जातियों में परिणत किया। भारत में भी पुनरुत्थान एवं पुनर्सुधार हुआ। पाश्चात्य आक्रान्ताओं की राजनैतिक एवं सांस्कृतिक झकझोर ने भी भारतीयों की निद्रा एवं तंद्रा तोड़ी जिससे पुनरुत्थान एवं पुनर्सुधार बलवत्तर हुआ।

प्रसाद की यह स्थापना भी समीचीन नहीं कि "भारतीय साहित्य में पुरुष का विरह विरल है और विरहिणी का ही अधिक वर्णन है" क्योंकि अदिग्रन्थ ऋग्वेद में पुरूरवा ही उर्वशी के आसन्न-विरह में विह्वल-विकल प्राप्त होते हैं, वाल्मीकि-रामायण में राम का विरह बहुत ही तीव्र एवं स्फीत है, कालिदास कृत रघुवंशम् में अज-विलाप, मेघदूत में यक्ष-विरहसन्देश, भवभूति कृत उत्तर-रामचरितम् में राम-विरहव्यथा, कम्ब-रामायण में राम-विरहव्यथा, तुलसीदास कृत रामचरितमानस में राम-विरहव्यथा इत्यादि इसके विपरीत हैं।

प्रसाद ने पश्चिम की जिस 'अविच्छिन्न सांस्कृतिक एकता' की चर्चा की है, वह एकदम निराधार है। पश्चिम का प्राचीन धर्म बलिप्रधान और बहुदेववादी था, सुखोल्लसप्रधान था[2], जिसे परवर्ती ईसाई मजहब ने चर डाला। ईसाई मजहब का 'एक व्यक्तिगत 'ईश्वर' पर तर्कहीन एवं अखंड विश्वास सर्वथा विदेशी था। आज का पाश्चात्य व्यक्ति भाषादृष्टि से मनुज[3] (मैन या मनु की सन्तान) है तथा आस्थादृष्टि से आदमी (आदम की औलाद)। वह बेचारा एक साथ ही मनु की सन्तान भी है, आदम की भी! इस दृष्टि से भारतीय मनुज अधिक भाग्यशाली है।

दूसरे निबन्ध 'रहस्यवाद' में प्रसाद ने वेद, उपनिषद् तथा आगम ग्रन्थों से अनेकानेक उद्धरण देते हुए "काव्य में आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति की मुख्य धारा रहस्यवाद है" स्थापना की है। इस निबन्ध की प्रतिपादन-शैली अतीव प्रशान्त तथा गम्भीर है,

---

[1] द्रष्टव्य है, आचार्य श्यामसुन्दरदास के प्रस्थान-ग्रन्थ 'साहित्यालोचन' में 'कला' प्रकरण।

[2] द्रष्टव्य हैं मेरे 'विश्वकवि होमर और उनके काव्य' एवं 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' ग्रन्थ।

[3] मनु + ज = मनु से जन्म लेनेवाला।

जो लेखक की गहन विद्वत्ता की स्पष्ट सूचना देती है। भारतीय संस्कृति और इतिहास पर पाश्चात्य ज्ञानाभास ऊँटपटाँग और सतही स्थापनाएँ करता रहा है, जिसे अनेक भारतवासियों ने 'यथा राजा तथा प्रजा' की दासमनोवृत्ति और हीनताग्रन्थि से प्रभावित होकर तोतारटंत शैली में ज्यों-का-त्यों लपक लिया है। सौभाग्यवश सर प्रफुल्लचन्द्र राय, रमेशचन्द्र दत्त, डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, डॉ. रमेशचन्द्र मजूमदार, डॉ. काशीप्रसाद जायसवाल, पण्डित रघुनन्दन शर्मा, मिश्रबन्धु, आचार्य रामदेव, श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, डॉ. भगवान्दास, डॉ. सम्पूर्णानन्द, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, आचार्य चतुरसेन शास्त्री[1], श्री पुरुषोत्तम नागेश ओक इत्यादि ऐसे विद्वान् भी होते आए हैं जिन्होंने हीनतापाश को काटने का यत्न किया है। इतिहास एवं साहित्य की दिशाओं में प्रसाद ऐसे ही विद्वान् हैं। उन्होंने वेदों, ब्राह्मणों, आगमों, रामायण, महाभारत एवं पुराणों में इतिहास की तात्त्विक अनुसंधान-दृष्टि का प्रभावी परिचय दिया है। उनकी यह मान्यता कि सर्ववाद अथवा अद्वैतवाद वेदमूलक है, सर्वथा युक्तियुक्त है।

मेरे मत से, ऋग्वेद की प्रकृति-प्रतीक उपादनों की पूजा तथा पुरुषसूक्त[2] की एकात्मक सामाजिक विराटता इत्यादि से यह स्पष्ट हो जाता है कि ''एकं सद् विप्रा बहुधा वदिन्त'', 'एकं सन्तं बहुधा कल्पन्ति', ''एको विश्वस्य भुवनस्य राजा' जैसे सूत्र ही औपनिषदिक अद्वैतवाद के उद्गम हैं। उपनिषद् वेद के ही दर्शनकांड हैं, जिनका अद्वैतवाद मानव-जाति के दर्शन की सर्वोपरि उपलिब्धि है। प्रकृति, प्राण एवं परमात्मा की मूल अनन्यता के दर्शन से बड़ा दर्शन सम्भव नहीं है। उपनिषद् की आत्मा ही बौद्धों का शून्य है, जैनों का कैवल्य, सुकरात[3] की आत्मा, प्लेटो[4] का विश्वात्मा, ईसा का आत्मराज्य, जो सिन्ध से अरब और कश्मीर से ईरान तथा तुर्किस्तान पहुँचा। अद्वैतवाद ही सूफी कविता के रूपों में विकसित हुआ।[5] शॉपेनहॉएर, रामचन्द्र शुक्ल, चन्द्रबली पांडेय इत्यादि ने सूफ़ी दर्शन पर अद्वैतवाद का प्रभाव ठीक ही स्वीकार किया है। आधुनिक पाश्चात्य रहस्यवाद पर भारतीय प्रभाव ऐसा ऐतिहासिक सत्य है, जिसे झुठलाया नहीं जा सकता। वर्ड्स्वर्थ का 'विश्वात्मा', शेली (शेले) का 'बौद्धिक सौन्दर्य', इमर्सन का 'ब्रह्म', सब उपनिषदमूलक हैं। इलियॅट (एलियट), पर्ल बक, फ़ॉस्टर इत्यादि पर प्रभूत भारतीय प्रभाव एक सर्वविज्ञात तथ्य है।[6] मेरे विचार से, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रहस्यवाद पर जो प्रहार किए हैं, वे निराधार हैं, क्योंकि ऋग्वेद के शुनःशेप के ''कं नक्षसे विभावरि?'' तथा वाक् (ऋषिका) के ''अहं राष्ट्री'', उपनिषद् के ''क्वासि?'' तथा आत्मरति आत्ममिथुन आत्मक्रीड''[7] से ही रहस्यवाद का उद्भव हुआ है, स्वयं ईसा पर भारतीय प्रभाव इतना अधिक है कि बेनेडिक्टस मॉंटेक्रोसा उन्हें अद्वैतवादी मानते हैं[8] और इस कारण से आधुनिक रहस्यवाद पर पाश्चात्य प्रभाव की चर्चा सूक्ष्म एवं तात्विक न होकर स्थूल एवं प्रासंगिक रह जाती है। विद्यापति के ''अनुखन माधव माधव सुमरइत सुंदरि भेलि मधाई'' तथा ''जनम अवधि हम रूप निहारल तबहुँ न तिरपित भेल'', सूर के ''मोहन माँग्यो अपनो रूप'', तुलसी के ''कामिहि नारि पिआरि जिमि'' देव के ''माया देवी नायिका नायक पुरुष आप'' इत्यादि-इत्यादि के रूपों में स्वयं हिन्दी-कविता आदि से अद्यावधि रहस्यवाद से निष्पन्न है। प्रसाद ने 'रहस्यवाद' निबन्ध में आचार्य शुक्ल के रहस्यवाद-विरोध का प्रत्यख्यान किया है, यद्यपि नामोल्लेख नहीं किया। शुक्ल रहस्यवाद में मधुर के अतिविरोधी हैं, प्रसाद अतिसमर्थक। अतः दोनों के रहस्यवाद पर विचार अतिवादी हो गए हैं, जिन्हें प्रकारांतर से एक-दूसरे का पूरक कहा जा सकता है। वैसे रहस्यवाद पर प्रसाद के विचार शुक्ल के विचार से अपेक्षाकृत अधिक वस्तुपरक भी हैं, अपेक्षाकृत अधिक गम्भीर भी।

प्रसाद की ''पिछले काल में भारत के दार्शनिक अनात्मवादी ही भक्तिवादी बने और बुद्धिवाद का विकास भक्ति के रूप में हुआ'' स्थापना नितान्त विवादस्पद है, क्योंकि भक्ति काम का ही उदात्त रूप है और काम सहज एवं सर्वोपरि प्रवत्ति है, जो अगले या पिछले कालों से बद्ध नहीं की जा सकती है। मेरे मत से, ऋग्वेद का दर्शन 'देवसान्निध्यवाद'[9] है, जिसके इन्द्र, अग्नि, मरुत् इत्यादि

---

1. भारत में इस्लाम।
2. द्रष्टा ऋषि नारायण।
3. ''नौ दाइसेल्फ़'' याज्ञवाल्क्य के 'आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः (बृहदारण्यक उपनिषद्) का अनुवाद है।
4. विल ड्यूराँ कृत 'स्टोरी ऑफ़ फिलॉसॉफी' के अनुसार प्लेटो भारत आए थे।
5. ''द किंग्डम ऑफ़ गॉड इज़ अंटू यू'' (स्वर्ग का राज्य तुझमें ही है) उद्दालक के ''तत्त्वमसि'' (छांदोग्य उपनिषद्) का अनुवाद है।
6. द्रष्टव्य है, मेरा ग्रन्थ 'भारत की एकता'।
7. छांदोग्य।
8. द्रष्टव्य है, मेरा ग्रन्थ 'हिन्दुइज़म (द फ़ेथ ऑफ़ द फ़्यूचर')।
9. द्रष्टव्य हैं, मेरे 'हिन्दू धर्म', 'हिन्दू केवल एक शब्द नहीं प्रतीक है' एवं 'हिन्दुइज़म (द फ़ेथ ऑफ़ द फ़्यूचर)' जिसका संशोधित-प्रवर्द्धित रूप 'हिन्दूधर्मः फ़ेथ ऑफ़ फ्रीडम एंड वे ऑफ़ लाइफ़' रूप में भी प्रकाशित हुआ।

देवताओं के रूप, वाहन कार्य, इत्यादि ही सगुणवाद-साकारवाद के उद्‌गम हैं तथा उपनिषद् में भक्ति का स्पष्ट उल्लेख प्राप्त है। बुद्धि और भाव का जो द्वैत प्रसाद प्रतिपादित करते हैं, वह निराधार एवं स्थूल है। फिर, भक्ति-आन्दोलन भावप्रधान रहा है, जैसा कि 'रामचरितमानस', 'विनयपत्रिका', 'सूरसागर' इत्यादि महत्तमभक्ति-काव्यों से ही स्पष्ट हो जाता है। प्रसाद, सम्पूर्णानन्द इत्यादि ने भक्ति का जो विरोध किया है वह न साधार है, न मनोवैज्ञानिक! भक्ति एक चिरंतन मानवीय प्रवृत्ति है जो किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक काल एवं प्रत्येक धर्म, यहाँ तक कि भयवादी-नरकवादी व्यक्तिबद्ध ग्रन्थ मजहबों में भी, स्वभावतः प्राप्त होती है। डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र, डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' इत्यादि विद्वानों ने 'तुलसी-दर्शन', 'भक्ति का विकास' इत्यादि ग्रन्थों में भक्ति की प्राचीनता का जो सोदाहरण निरूपण किया है, वह समीचीन है।[1]

'रस' शीर्षक निबन्ध में प्रसाद ने भारतीय काव्यशास्त्र के इतिहास की विहंगम समीक्षा करते हुए अलंकार, रीति, वक्रोक्ति एवं ध्वनि पर रस को वरीयता प्रदान की है क्योंकि वह अनुभूतिमूलक है, अद्वैतदर्शनपरक है, आनन्दमूलक है, जबकि अन्य अभिव्यक्तिमूलक हैं। प्रसाद ने क्षेमेन्द्र के 'औचित्य' पर प्रकाश नहीं डाला। उनकी आनन्दवर्द्धन की ध्वनि की व्याख्या विवादास्पद हो सकती है क्योंकि संस्कृत का यह महान् आचार्य तत्त्वतः रस का ही पुनर्प्रतिष्ठापक था, जैसा कि अभिनवगुप्त की अमर व्याख्या भी स्पष्ट करती है, किन्तु उनकी यह स्थापना कि रस सिद्धान्त अन्य सिद्धान्तों पर वरीयता प्राप्त कर गया, एकदम ठीक है। रस-संप्रदाय अद्वैत-दर्शन का साहित्यिक प्रतिफलन है, जो अन्तपरक होने के कारण तत्त्वतः शाश्वत एवं अप्रतिम है, जबकि अलंकार इत्यादि वाह्यपरक होने के कारण सर्वतः परिवर्तनीय एवं गौण हैं। वाह्यतः अनेक रस आभ्यन्तरतः एक आनन्द में निष्पन्न हैं। प्राच्य हो या पाश्चात्य, प्राचीन हो या अर्वाचीन, वादबद्ध हो या वादमुक्त, किसी भी साहित्यिक कृति को रस-निकष पर परीक्षित किया जा सकता है। रससंख्या एक अध्ययन-सुविधापरक वाह्य-तत्त्व है, क्योंकि सारतः रस एक (आस्वादजन्य आनन्द) है। अधुनातन कविता में जो बौद्धिक-रस[2] प्राप्त होता है, वह भी सृजन की आभ्यन्तर भंगिमाओं के आनन्द से संपृक्त है। बुद्धि आनन्द के लक्ष्य की प्राप्ति का एक महान् विराम है। तभी तो तैत्तिरीयोपनिषद् विज्ञानमय के अनन्तर आनन्दमय कोष का प्रतिपादन करता है। अतएव, प्रसाद की विवेकवादी भगवत-धर्म पर आनन्दवादी शैवागय के अनुकरण इत्यादि की उपपत्ति सर्वथा विवादास्पद है। निबन्ध के आरम्भ में, "नाटकों को ही सबसे पहले काव्य कहा गया" तथा "नाट्योपयोगी काव्यों में आत्मा की अनुभूति रस के रूप में प्रतिष्ठित हुई" उपपत्तियाँ भी विवादास्पद हैं, यद्यपि उन्हें भारतीय काव्यशास्त्र के जनक एवं विश्व के एक सर्वश्रेष्ठ आचार्य भरत तथा उनके अजर-अमर 'नाट्यशास्त्र' का अवलम्ब प्राप्त है। रस-सिद्धान्त क्रिया है, अन्य सिद्धान्त प्रतिक्रियात्मक हैं। रस-सिद्धान्त मूल है, अन्य सिद्धान्त शाखाएँ हैं। वस्तुतः एवं तत्त्वतः अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि, औचित्य और उदात्त रस में समाहित किए जा सकते हैं। बिम्ब रस का शरीर है। भामह, रुद्रट, दण्डी हों या वामान या कुंतक या आनन्दवर्द्धन या अभिनवगुप्त या क्षेमेन्द्र या विदेशी लाँजाइनर (लाँगिनुस), सबको भरत मुनि के विराट् दर्पण में बिम्बित पाया जा सकता है।

'नाटकों में रस का प्रयोग 'निबन्ध में प्रसाद ने साधरणीकरण पर गम्भीर शैवागम-परक विचार प्रकट किए हैं, जो अद्वैतवाद के अनुरूप हैं, क्योंकि अद्वैतवाद समग्र आनन्दवादी विचारों का अदिस्रोत है। इस सम्बन्ध में "जिस तरह आत्मा की और इदं की भिन्नता मिटाने में अद्वैतवाद का प्रयोग है, उसी प्रकार एक ही प्रत्यगात्मा के भाववैचित्र्यों का—जे नर्तक आत्मा के अभिनय मात्र हैं—अभेद या साधारणीकरण भी रस में है" विचार विषय की जटिलताओं को बहुत ही प्रभावी ढंग से स्पष्ट कर देता है। इस निबन्ध की सर्वोपरि उपपत्ति है, "रस-विवेचना में संवित् का साधरणीकरण त्रिवृत् है। कवि, नट और सामाजिक में वह अभेद भाव से एकरस हो जाता है।" ब्रह्म, जीव और जगत् का त्रैत आभ्यंतरतः अद्वैतमूलक है। कवि, नट और सामाजिक का बाह्य साधारणीकरण के अभेद में लीन हो जाता है। इस सन्दर्भ में, प्रसाद ने रामचन्द्र शुक्ल के 'साधारणीकरण और व्यक्तिवैचित्र्यवाद' निबन्ध की उपपत्तियों का खंडन किया है, विशेषतः "एक निम्न कोटि की रसानुभूत" का, जो सचमुच निराधार और भ्रामक है। रसानुभूति की कोटियाँ निर्धारित करना रस के मूल अद्वैत की अवेहलना करना है। जब रसाभास विद्यमान है तब निम्नकोटि की रसानुभूति का प्रतिपादन व्यर्थ है। आचार्य शुक्ल की साधारणीकरण-व्याख्या दार्शनिक स्तर पर स्थूल एवं भ्रामक है। इधर, डॉ. नगेन्द्र ने कवि की

---

1. मैंने 'विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य' ('विश्वकवि तुलसी और उनके प्रमुख काव्य' के आंशिक रूप में भी—'आलोचना-सागर' में भी समाविष्ट) में भक्ति की वैदिकता एवं औपनिषदिकता पर सुविस्तृत प्रकाश डाला है। मेरे 'तुलसी-साहित्य के सर्वोत्तम अंश' में भी यथास्थान एतद्विषयक निरूपण प्राप्त है।
2. द्रष्टव्य है, मेरे 'बौद्धिकरस' (1964 ई.) कविता-संग्रह एवं 'काव्य में बौद्धिकरस और आलोचना में वस्तुवाद' (1984 ई.) शीर्षक ग्रन्थद्वय।

अनुभूति के साधारणीकरण का जो प्रतिपादन किया है, वह एकांगी है तथा अद्वैत के साथ वैसा न्याय नहीं कर पाता जैसा प्रसाद का अभेद-प्रतिपादन (कवि की अनुभूति नितान्त प्रातिभ एवं नितान्त वैयक्तिक हो सकती है जिसका साधारणीकरण प्रमाता या पाठक या श्रोता स्वस्थिति के अनुरूप ही कर सकता है—नगेन्द्र ने श्यामसुन्दरदास के अनुकरण में जो कहा है वह बहुत तथ्यपरक नहीं है)। साधारणीकरण पर जैसा गहन चिन्तन प्रसाद ने किया है वैसा शुक्ल एवं नगेन्द्र भी नहीं कर सके। इसका कारण प्रसाद का भारतीय दर्शन का अधिक गम्भीर ज्ञान है।

इस अमूल्य निबन्ध में प्रसाद ने प्लेटो की ''अभिनेता की चरित्रहीनता आदि दोष नित्यसिद्ध'' होने की अनुकरण-सिद्धान्त में बद्धमूल मान्यता का खंडन किया है, क्योंकि ''आत्मा के अभिनय को, वासना और भाव को अभेद आनन्द के स्वरूप में ग्रहण'' करने का दर्शन ही सत्य के साथ न्याय करता है, ''सामाजिक इतिहास में, साहित्य-सृष्टि के द्वारा, मानवीय वासनाओं को संशोधित करने वाला पश्चिम का सिद्धान्त'' भी, जो वस्तुतः अरस्तू के विरेचन-सिद्धान्त में बद्धमूल है, दुःखमूलक है, जबकि भारतीय रस-सिद्धान्त आनन्दमूलक है। ''सब प्रकार के भाव एक-दूसरे के पूरक बनकर, चरित्र और वैचित्र्य के आधार पर रूपक बनाकर, रस की सृष्टि करते हैं। रसवाद की यही पूर्णता है।''

रसवाद के प्रतिपादन और मण्डन में प्रसाद आचार्य शुक्ल और डॉ. नगेन्द्र के समकक्ष हैं। यद्यपि उनका 'रस-मीमांसा'[1] और 'रस-सिद्धान्त' जैसा कोई ग्रन्थ विद्यमान नहीं है तथापि वे हिन्दी-रसवाद के एक आचार्य माने जा सकते हैं। अतएव, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा उनके स्वच्छन्दतावाद से रसवाद को पृथक् करने वाला प्रतिपादन स्पष्टतः निराधार है! इस दृष्टि से डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' युक्तियुक्त है।

पाँचवें निबन्ध 'नाटकों का आरम्भ' का आरम्भ प्रसाद ने शुक्ल की ''साहित्यिक इतिहास के अनुक्रम में पहले गद्य, तब गीतिकाव्य और इसके पीछे महाकाव्य आते हैं'' स्थापना के खण्डन से किया है, जो ठीक भी है, क्योंकि विश्व-वाङ्मय का आदिग्रन्थ ऋग्वेद छन्दात्मक ही नहीं प्रत्युत भावात्मक भी है। इष्टिका-अंकित सुमेरिअन काव्य 'गिल्गमेश' अपर प्रमाण है। पश्चिम को कोशों की अनुकृति पूर्व के ग्रन्थों की उपेक्षा से प्रशस्य नहीं हो सकती। ऋग्वेद उदात्त प्रकृतिकाव्य है।[2] इस खण्डन के अनन्तर, प्रसाद ने वाल्मीकि-रामायण के ''बहुनाटकसँघैश्च संयुक्ता सर्वतः पुरीम्'' के आधार पर भारतीय नाटक की प्राचीनता प्रमाणित है और इसी सन्दर्भ में महाभारत उल्लिखित 'रम्भामिसार' के अभिनय को उल्लिखित किया है। भरत के 'नाट्यशास्त्र' में 'अमृतमंथन' और 'त्रिपुरदाह' नाटकों का उल्लेख प्राप्त होता है तथा पतंजलि कृत पाणिनि की 'अष्टाध्यायी' के 'महाभाष्य' में 'कंसबध' और 'बलिबन्ध' का। ये सारे नाटक अनुपलब्ध हैं। सम्भवतः अन्य प्राचीन साहित्य के सदृश ये नाटक भी नटों को कंटस्थ रहे होंगे। कालिदास ने भास, सौमिल्ल, कविपुत्र प्रभृति नाट्यकारों का उल्लेख किया है, जिनमें से अब तक केवल भास के नाटक मिल पाए हैं। नाट्यबीज वैदिक संवादों में प्राप्त होते हैं। एक छोटे-से अभिनय का उल्लेख 'सोमयोग' के अवसर पर आता है जिसमें यजमान, सोमविक्रेता एवं अध्वर्यु तीन पात्र होते हैं। प्रसाद ने इसका सविस्तार-सोदाहरण उल्लेख किया है। बौद्धकाल में नाटक के प्रणयन को सिद्ध करने के लिए उन्होंने 'विनय पिटक' के 'चुल्लबग्ग' का एक उद्धरण दिया है। भारत में अभिनय के मूल में कठपुतिलयों[3] से सम्बन्धित स्थापना का खंडन करते हुए उन्होंने सूत्रधार शब्द की तलस्पर्शी व्याख्या की है। अभिनवगुप्त कृत 'अभिनव-भारती' के चतुर्थ अध्याय में प्रयुक्त 'रागकाव्य' संप्रति गीतिनाट्य कहे जाते हैं, प्रसाद की यह स्थापना समीचीन प्रतीत होती है। अन्ततोगत्वा, प्रसाद का निष्कर्ष है, ''अति प्राचीन काल में नृत्य, अभिनय से सम्पूर्ण नाटक और गीतिनाट्य भारत में प्रचलित थे। वैदिक, बौद्ध तथा रामायण और महाभारत काल में नाटकों का प्रयोग भारत में प्रचलित था।''

भारतीय नाटक के यूनान से निर्यातित किए जाने की चर्चा का उल्लेख तक न करना प्रसाद की गम्भीर रुचि का परिचायक है। जो पाश्चात्य अंहमन्यता ऋग्वेद को 'सुमेरिआ का अभिलेख' (सुमेरिअन डॉकुमेन्ट) कह सकती है, राम को मिस्त्र के रामसीस का अनुकरण बता सकती है, भक्ति को ईसाइयत से प्रेरित घोषित कर सकती है, वह नाटक को यूनान से आयातित न घोषित करती तो आश्चर्य होता! सुमेरिआ में वैदिक सभ्यता का एक भी प्रमाण कभी नहीं मिला, रामसीस-कथा में रामकथा की अतिप्राचीनता (हनुमान्

---

1. आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा प्रस्तुत एवं संपादित।
2. द्रष्टव्य है, मेरा 'साहित्यिक निबन्ध : नए आयाम' ग्रन्थ का 'ऋग्वेद में काव्यतत्त्व' निबन्ध, जिसमें मैंने ''ऋग्वेद प्रकृति का महाकाव्य है'' की स्थापना की है।
3. दारुनारी (दारुनर भी)।

के कन्धों पर बैठकर राम का युद्ध, युद्ध का मल्लयुद्ध-स्तर या गदायुद्ध-स्तर या अधिक-से-अधिक धनुर्बाण-युद्ध) एवं उच्चादर्श नहीं दृग्गत होते, ईसाइयत में भारतीय भक्ति की नाट्य-नृत्य-संगीत-सम्पन्नता कहीं नहीं मिल सकती—पर श्रेष्ठताग्रन्थि तो खोली जा सकती है, हीनताग्रन्थि को प्रभाव-गद्गद तो किया जा सकता है! शॉपेनहॉएर, वर्ड्स्वर्थ, शेली (शेले), इमर्सन, थोरो, मैक्समुलर, येट्स, इलियॅट (एलियॅट), एहरेम्बर्ग, स्मेकल इत्यादि के कृतित्व भारतीय महत्त्व के साक्षी हैं। भारतीय नाटक की भारतमूलकता उसके विशिष्ट सुखान्त-दर्शन से ही स्पष्ट है, जिसका उद्गम औपनिषदिक आनन्दवाद में है। डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल ने भी 'भारतेन्दु की नाट्यकला' ग्रन्थ में नाटक की भारतमूलकता का प्रभावी प्रतिपादन किया है।

प्रसाद का 'रगमंच' शीर्षक निबन्ध बहुत ही उपयोगी है, जिसमें उनके सूक्ष्मतम पर्यालोचन एवं प्रभावी वर्णनसामर्थ्य के भव्य दर्शन होते हैं। 'रंगमंच' को 'रस', 'नाटकों में रस का प्रयोग', तथा 'नाटकों का आरम्भ' निबन्धों की शृंखला की कड़ी कहा जा सकता है। वस्तुतः प्रसाद के अमर निबन्ध-संग्रह के आठ निबन्धों में चार 'काव्य और कला', 'रहस्यवाद', 'आरम्भिक पाठ्यकाव्य' एवं 'यथार्थवाद और छायावाद' कविता से संबद्ध हैं तथा शेष चार नाटक से। 'रंगमंच' में प्रसाद ने प्राचीन भारतीय नाटक का गौरवशाली एवं मनोविमुग्धकारी वर्णन-विवेचन किया है, जिससे उनकी एतद्विषयक गहन विद्वत्ता स्पष्ट होती है। मेरे मत से, नाटक समस्त ललित कलाओं का समुच्चय-रूप है। रंगशाला-निर्माण में वास्तु, शोभाउपकरणादि में मूर्ति, भित्तिसज्जा एवं जवनिका[1] रचना में चित्र, अनुरंजन-उपक्रम में नृत्य एवं संगीत, अभिनय में बिम्बालेखन तथा संवादों में साहित्य की व्याप्ति के कारण ही ''काव्येषु नाटकं रम्यम्'' एक सार्थक स्थापना बन गई है। प्रसाद ने नाटक की भारतमूलकता एवं रंगमंच के विवेचन द्वारा हिन्दी-साहित्य को उपकृत भी किया है, चमत्कृत भी। यदि प्रसाद केवल 'रंगमंच' निबन्ध लिखते तो भी हिन्दी-साहित्य उनका कृतज्ञ रहता।

'रंगमंच' में प्रसाद ने 'नाटक रंगमंच के लिए' सिद्धान्त का प्रत्याख्यान करते हुए 'नाटक के लिए रंगमंच' सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है, जो सर्वथा उचित है क्योंकि इसी प्रकार नाटक का सृजनात्मक गौरव स्थिर एवं गतिशील रह सकता है। भाषा की सरलता का नेता-छाप प्रतिपादन भी प्रसाद को इष्ट नहीं, क्योंकि स्रष्टा-साहित्यकार जनोच्चारण का नेतृत्व करते हैं, जनोच्चारण के नेतृत्व में नहीं चलते। जनता की सेवा उसका पिछलग्गू बनकर नहीं की जा सकती। यदि संप्रति खड़ीबोली-कविता के आचार्य एवं हिन्दी के मानक उच्चारण के जन्मदाता महावीप्रसाद द्विवेदी विश्व-साहित्य की एक विभूति हैं, तुलसीवत् पूज्य हैं, तो नेतृत्व के कारण, पिछलग्गूपन के कारण नहीं। प्रसाद के नाटक राधेश्याम कथावाचक, नारायणप्रसाद 'बेताब', तुलसीवत् 'शैदा', आगा हश्र कश्मीरी, 'चन्द्रमणि' इत्यादि के नाटक नहीं हैं। प्रसाद कलाकृति को भाषाओं का अजायबघर बनाने के विरोधी थे। संसार को किसी महान् भाषा में नानाभाषी पात्रों को नानाभाषी रूपों में नहीं प्रस्तुत किया जाता। प्रसाद के नाटक विशुद्ध साहित्यिक नाटक हैं, जिनमें जीवन की जटिलताओं को चित्रित किया गया है, जिनमें भाषा की अस्मिता को प्रतिष्ठा प्रदान की गई है। प्रसाद के अनन्तर हिन्दी साहित्य में बहुमुखी प्रतिभा के प्रतीक अज्ञेय ने 'भाषायी अस्मिता' का प्रतिपादन कर उस महत्तर कलाकार का अनुसरण किया है। मोहन 'राकेश' इत्यादि की भाषा यह सिद्ध करती है कि उसका स्तरीय रूप लोकप्रियता[2] का व्यवधान नहीं है।

'काव्य और कला', 'रहस्यवाद', 'रस', 'नाटकों में रस का प्रयोग', 'नाटकों का आरम्भ' एवं 'रंगमंच' शीर्षक छह उच्चकोटि के विचारात्मक निबन्धों के अनन्तर, 'आरम्भिक पाठ्यकाव्य' एवं यथार्थवाद और छायावाद' शीर्षक अन्तिम दो सामान्य कोटि के विचारात्मक निबन्ध, विचारात्मक निबन्ध न लगकर, रामचन्द्र शुक्ल प्रभृति आलोचकों को बिना नामाल्लेख के दिए गए उत्तर मात्र प्रतीत होते हैं। 'आरम्भिक पाठ्यकाव्य' के शीर्षक में पारम्परिक श्रव्यकाव्य के स्थान पर पाठ्यकाव्य का प्रयोग मुद्रणविकास एवं मननकाव्य इत्यादि के साथ न्याय करने के बावजूद ''रूढ़ि योगात् बलीयसी'' से बलवत्तर सिद्ध नहीं हो पाता। यह निबन्ध रामचन्द्र शुक्ल की नाटकों पर महाकाव्य को वरीयता प्रदान करने की प्रतिक्रिया के आक्रोश में लिखा गया है।

महाकाव्य साहित्य का समेरु है। महाकाव्य नाटक पिता है, उपन्यास का पितामह, अन्य विद्याओं का पूर्वज। रामायण, महाभारत, इलिॲड, ओडिसी, ऐनीड (ऐनियड), 'शाहनामा' और 'रामचरितमानस' प्रभृति विश्व-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य अपने गौरव एवं अपनी प्रेरणा द्वारा इन तथ्यों को सरलतापूर्वक स्पष्ट कर देते हैं।

---

1. मूल शब्द 'जवनिका' है, 'यवनिका' नहीं। 'जवनिका' का अर्थ घड़घड़ाहट के साथ गिरना है। द्रष्टव्य हैं, 'यशोधरा' (मैथिलीशरण गुप्त) का गीत ''निशि की अँधेरी जवनिके!'' एवं भारतेन्दु की नाट्यकला' (डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल) ग्रन्थ में एतद्विषयक प्रकरण और यवनिका यदि चीनांशुक के सदृश भी हो तो नाटक का आयात कैसे सिद्ध हो सकता है?
2. 'रामायण' एवं 'महाभारत' धारावाहिकों की सांस्कृतनिष्ठ हिन्दी सर्वाधिक लोकप्रिय सिद्ध हुई है।

प्रसाद की यह स्थापना, कि नाटक महाकाव्य से पूर्व रचा गया, शत-प्रतिशत निराधार एवं भ्रामक है। साहित्य की आत्मा कविता का अन्य विधा-पूर्ववर्ती होना विश्व के आदिग्रन्थ ऋग्वेद[1] से ही सिद्ध है, जो छन्दबद्ध भी है तथा गेय भी, जो प्रकृति में परमतत्त्व एवं चरमसत्त्व के साक्षात्कार का एकमात्र महाकाव्य कहा जा सकता है, जो प्रतीक-प्रावधान में संसार का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है, जो आद्यांत रहस्यनिष्पन्न है और जिसके स्तर का ग्रन्थ दुर्लभ है।[2] इसके अतिरिक्त भी, काव्य में रामायण की प्रथमता सहस्राब्दियों से गृहीत एवं मान्य तथ्य है। रामायण एवं महाभारत अधिकांश भारतीय नाटकों के उपजीव्य रहे हैं। वैश्विक दृष्टि से, गिल्गमेश महाकाव्य साढ़े चार-हज़ार साल पुराना है, इलिअड दो हज़ार-नौ सौ साल पुराना है, जब कि नाटक ढाई-हज़ार साल पुराना ही है। लगभग ढाई-हज़ार साल पहले उपलब्ध साहित्य के आधार पर भारतीय नाटक के जनक भास एवं पाश्चात्य नाटक के जनक एस्काइलस ने जो नाटक रचे थे, उनका आधार भी महाभारत एवं इलिअड महाकाव्य ही थे।

रामायण एवं महाभारत के सन्दर्भ में 'काल्पनिक' एवं 'आदर्शवादी' शब्दों का प्रयोग साहित्यिक चापल्य का सूचक है। वाल्मीकि एवं व्यास के सन्दर्भ में ''इन लोगों ने काव्य न्याय की प्रतिष्ठा के साथ काल्पनिक अपराधों की भी सृष्टि की, केवल आदर्श को उज्ज्वल, विवेक-बुद्धि को महत्त्वपूर्ण बनाने के लिए'' लिखकर प्रसाद ने यह स्पष्ट कर दिया है कि उन्होंने रामायण एवं महाभारत का आद्यांत अनुशीलन नहीं कर पाया, क्योंकि ये दोनों महाकाव्य प्रक्षिप्त अंशों से बहुत-कुछ आच्छन्न होते हुए भी पर्याप्त यथार्थ-सम्पन्न हैं। कैकेयी, मंथरा, कालनेमि एवं अश्वत्थामा, शकुनि, कणिक प्रभृति चरित्रों का यथार्थ-चित्रण सीमांतक रूप से प्रभावी है। ''सूतो वा सूतपुत्रोवा यो वा को वा भवाम्यहम्'' का महान् कर्णोद्गार 'महाभारत' का नहीं अपितु 'वेणीसंहार' (भट्ट नारायण कृत नाटक) का है। इस स्थूल त्रुटि से भी स्पष्ट हो जाता है कि प्रसाद रामायण-महाभारत के निरर्थक अवमूल्यन-आयास में नाहक ही उलझ पड़े थे।

हिन्दी के भक्तिकाव्य के सन्दर्भ में ''नाट्य रसों का साधारणीकरण उनमें नहीं रहा'' लिख मारना शुद्ध निरंकुशता है, क्योंकि इसकी लोकप्रियता सर्वोपरि है तथा रामलीला-रासलीला इत्यादि नाट्य-रूप इसी पर आधृत रहे हैं।'' अवध वाली धरा में 'मिथ्या आदर्शवाद' स्थापना आचार्य शुक्ल के भक्ति-संस्तवन का विरोध मात्र है, जिसने प्रसाद के स्तर के साथ न्याय नहीं किया।

अन्तिम निबन्ध 'यथार्थवाद और छायावाद' ज़ल्दबाज़ी में लिखी गई है एक असफल रचना है, किन्तु इसकी कई 'चीज़ें' दमदार ज़रूर हैं, जिनमें ''श्री हरिश्चन्द्र[3] का आरम्भ किया हुआ यथार्थवाद'', ''वाह्य वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया'' एवं ''मूल में यह रहस्यवाद भी नहीं है'' सर्वथा उल्लेख हैं सूक्ष्म अद्वैतदृष्टि बाह्य एवं आभ्यंतर को अन्योन्य एवं अभिन्न मानेगी, किन्तु स्थूल अध्ययन में ये शब्द विशेष गृहीत हो गए हैं, जिसका कारण आचार्य शुक्ल का आदर्शवादी युग (द्विवेदी-युग) एवं स्वच्छन्दतावादी युग (छायावाद-युग) का अन्तर-प्रतिपादन है। शुक्ल की स्थूल-सूक्ष्म-चर्चा ही, इस या उस रूप में, प्रसाद, नन्ददुलारे एवं नगेन्द्र को अभिभूत किए रही है।

प्रसाद का निबन्धकार-रूप, उनके महान् कवि-रूप, नाट्यकार-रूप एवं कहानीकार-रूप से भिन्न, उनके उपन्यासकार-रूप के सदृश प्रासंगिक मात्र है, किन्तु इससे विद्वत्ता उजागर हुई है तथा इसके उनके कवि-रूप एवं नाट्यकार रूप को समझने में भरपूर सहायता मिलती है। उनके इस रूप पर सम्यक् प्रकाश भी नहीं पड़ा; अतः उनके इस रूप पर विस्तृत समीक्षा समीचीन है।[4]

आकलन

प्रसाद का कवि-रूप हिन्दी में तुलसी एवं सूर के अनन्तर किसी भी कवि से तुलनीय है। आधुनिक भारत के कवियों में वे रवीन्द्र इक़बाल, मैथिलीशरण, भारती, वल्लत्तोल इत्यादि से सर्वथा तुलनीय हैं। उनका नाट्यकार-रूप हिन्दी में प्रथम है।

उनका कहानीकार-रूप हिन्दी में प्रेमचन्द के अनन्तर अन्यतम है। उनका उपन्यासकार-रूप प्रासंगिक है, किन्तु इससे उनकी सामाजिक एवं ऐतिहासिक जागरूकता पर प्रकाश पड़ता है। उनका निबन्धकार-रूप प्रासंगिक **है** किन्तु इससे उनकी विद्वत्ता एवं

---

[1] ऋक् = छन्दबद्ध मन्त्र + वेद = ज्ञान। छन्दबद्ध मन्त्रों में व्यक्त ज्ञान = ऋग्वेद।

[2] द्रष्टव्य है, मेरे 'साहित्यिक निबन्धः नए आयाम' ग्रन्थ का 'ऋग्वेद में काव्यतत्त्व' निबन्ध।

[3] पता नहीं, प्रसाद को 'भारतेन्दु' लिखने में परहेज़ क्यों था?

[4] द्रष्टव्य है मेरे 'प्रसादः आलोचनात्मक सर्वेक्षण', 'प्रसादः गद्यकार', 'प्रसाद और उनके प्रमुख ग्रन्थ' तथा 'आलोचना-सागर' में प्राप्त 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' शीर्षक आलोचनात्मक निबन्ध।

चिन्तन-शक्ति पर प्रकाश पड़ता है। बहुमुखी प्रतिभा में प्रसाद का स्थान हिन्दी-साहित्य में अन्यतम तथा भारतीय साहित्य में रवीन्द्र के अनन्तर सर्वोच्च है। वे इलिअॅट (एलिअॅट) के स्तर की विश्व-प्रतिभा थे।

अलेक्सेई वारान्निकोव

दस वर्षों तक घोर परिश्रम करके मूलवत् छन्दरचना के साथ रूसी भाषा में 'रामचरितमानस' का अनुवाद (समापन 6 सितम्बर, 1943, प्रकाशन विज्ञान आकदमी सेविएट यूनिअॅन द्वारा 1948 ई. में) करने वाले महान् एवं विश्वविख्यात भाषाविद् अलेक्सेई वारान्निकोव[1] (1890-1942 ई., जन्म जोलोतोनीश, यूक्रेनिआ में, निधन कोमोरोव में) ने भारतीय संस्कृति, छन्दःशास्त्र एवं रामकाव्य का अगाध अध्ययन किया था। अपने प्रचण्ड एवं भयावह नेतृत्व के बावजूद अमर साम्यवादी नेता एवं नायक स्तालिन ने उन्हें अपनी महान् साधना हेतु भीषणतम द्वितीय विश्व युद्ध-काल में सुरक्षित स्थान, व्यवस्था एवं सुविधाएँ प्रदान की थीं। 7 अक्टूबर, 1990 को मानस संगम कानपुर (अध्यक्ष विख्यात पं. रामकिंकर उपाध्याय) ने मोती झील स्थित विख्यात-उद्यान में इनकी मूर्ति स्थापित कराई है। यात्किंचित् संकीर्ण कांग्रेस नेता हुए भी अखण्ड हिन्दी-प्रेमी एवं तुलसीभक्त बद्रीनारायण तिवारी की इस प्रसिद्ध संस्था ने इटैलिअन विद्वान् डॉ. एल. पी. टेसीटरी (तेस्सीतोरी) की मूर्ति भी स्थापित कराई थी। भारत-इटली-सम्बन्ध सोनिया गाँधी के कारण भी गहरे हुए हैं।[2] इस पुनीत एवं रम्य स्थल पर रामकथा से सम्बद्ध अनेक मूर्तियाँ भी विद्यमान हैं, राजर्षि टण्डन, राष्ट्रकवि गुप्त इत्यादि की भी। यह एक हिन्दी-तीर्थ है।[3]

सोविएट यूनिअॅन की हाल्मिक जाति सम्भवतः वाल्मीकि से सम्पृक्त है, क्योंकि उसमें रामकथा का व्यापक प्रसार दृष्टिगोचर होता है। जिवानी मिखाइलोव ने इसे संगीत से सँवारा है, नानातिया गुसेवा ने इसे बालनाटकीय आलेख का रूप दिया है जिसकी संगीत-रचना एम.ए. बालसन्यान एवं नृत्य योजना एल.एन. ग्रिकुरोवाको ने की है। इस सब के प्रेरक ईसा और ज़ैलसिंह के सदृश साधारण बढ़ई परिवार में जन्में अलेक्सेई वारान्निकोव थे, जिनके अनुवाद की दस लाख प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक गई थीं, जिनकी प्रेरणा से उनके आत्मज प्रौत्र वारन्निकोव हिन्दी-विद्वान् हुए, रूस में चेलीशेव जैसे अनेक हिन्दी-विद्वान् हुए, चेकोस्लोवाकिआ के स्मेकल हिन्दी के मौलिक कवि एवं स्वराष्ट्र में हिन्दी के दूत बने, तथा जिनकी समाधि पर देवनागरी-लिपि में तुलसी का यह दोहा अंकित है :

भलो भलाइहि पै लहइ, लहइ निचाइहि नीच।
सुधा सराहिय अमरताँ, गरल सराहिय मीच।।

रूस (रूक्ष), अलेक्सेई (अलक्ष्य या ईश्वर), वरान्निकोव या वारान्निकोव (अंतर्भूत 'वर'), प्यौत्र (पुत्र या पौत्र) जैसे शत-शत शब्द, 'देवर' जैसे ज्यों-के-त्यों प्रयोग, हाल्मिक (वाल्मीकि से संपृक्त) जाति, साइबेरिआ (शबर-देश) के हिन्दू-बौद्ध-अवशेष इत्यादि भारत-रूस के प्राचीन सम्बन्ध की सूचना देते हैं। ग्रोमीको, गोर्बाचोव इत्यादि गीता उद्धृत करते रहे हैं। 'वोल्गा से गंगा' (राहुल सांकृत्यायन) विवादास्पद ग्रन्थ हो सकता है, किन्तु भारत-रूस-सम्बन्ध निर्विवाद-सा है।

ब्रजरत्नदास

भारतेन्दु के दौहित्र[4] ब्रजरत्नदास[5] (1890 ई., काशी) ने इतिहासग्रन्थों के अनुवादों, जीवनियों, ग्रन्थ-संपादन एवं आलोचना की दिशाओं में स्मरणीय कार्य किया था। 'मसाहिरुल्उमरा' (प्रायः 300 हिन्दू-वीरों के वृत्त), 'जहाँगीरनामा' (तुजुकेजहाँगीरी), 'बुन्देलखंड का इतिहास', 'फ्रेंच-जाति का इतिहास' इत्यादि ज्ञानवर्द्धक ग्रन्थों के अनुवाद या उनकी प्रस्तुति के अतिरिक्त, ब्रजरत्नदास ने 'खुसरो

---

1. बरान्निकोव' भी लिखा मिलता है जिसे ठीक नहीं कहा जा सकता।
2. भौगोलिक दृष्टि से इटली यूरोप का भारत तथा भारत एशिया की इटली-भूगोल में प्रश्न पूछा जाता है।
3. उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ में राजर्षि टण्डन, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त एवं प्रेमचन्द की मूर्तियाँ देखकर हर्ष होता है, किन्तु व्यापकत्व एवं वातावरण वैसा विशद एवं पावन नहीं है जैसा तुलसी-उद्यान का। अन्दर आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के चित्र का अभाव तो विगर्हणीय है ही। उनकी तो मूर्ति होनी चाहिए थी क्योंकि वे टण्डन के श्रद्धेय, गुप्त के गुरु एवं प्रेमचन्द के प्रेरक थे!
4. ''भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र जी की एकमात्र पुत्री विद्यावती इनकी माता थी।''—'विनोद; (मिश्रबन्धु)
5. ''हिन्दी के उत्कृष्ट लेखक।''—'हिन्दी साहित्य का इतिहास' (शुक्ल)

की हिन्दी-कविता', 'भ्रमरगीत' (वस्तुतः नन्ददास कृत 'भँवरगीत'), 'भाषा-भूषण' (जसवन्तसिंह), 'सुजान-चरित्र' (सूदन), 'रामस्वयंवर' (विश्वनाथसिंह), 'प्रेमसागर' (लल्लूजी 'लाल') इत्यादि का संपादन भी किया। प्रख्यात 'तुलसी-ग्रन्थावली' के संपादकत्रय में रामचन्द्र शुक्ल एवं भगवानदीन[1] के साथ व्रजरत्नदास भी सम्मिलित हैं।

खड़बोली के सम्बन्ध में व्रजरत्नदास के विचार तर्कसंगत नहीं हैं, क्योंकि वह खुसरो से बहुत पहले भी प्रचलित थी जैसाकि हेमचन्द्र के उद्धरणों तथा खुसरो के समकालीन ज्ञानेश्वर, उमाबाई, मुक्ताबाई, नामदेव इत्यादि की वाणी से स्पष्ट है तथा खड़बोली हिन्दी की पर्यायवाची न होकर उसकी एक विभाषा मात्र है। मंझन को हिन्दू मानना भी ग़लत है जिसका कारण मंझन की अपेक्षाकृत अधिक उदारता तथा 'मधुमालती' के आरम्भिक अंशों का उस समय तक दुर्लभ होना भी था। इस दुर्लभता के कारण ही आ. शुक्ल को मंझन को जायसी का पूर्ववर्ती मानने का भ्रम हुआ था।

व्रजरत्नदास ने भारतेन्दु एवं उनके पिता गोपालचन्द्र 'गिरिधरदास' पर प्रात्ययिक प्रकाश डालकर भी हिन्दी की स्मरणीय सेवा की है। वे फ़ारसी, उर्दू, अंग्रेज़ी इत्यादि कई भाषाओं के जानकार थे।

बदरीनाथ भट्ट

'दुर्गावती' एवं 'चन्द्रगुप्त' शीर्षक ऐतिहासिक तथा 'कुरुवनदहन' शीर्षक पौराणिक नाटकों के स्मरणी रचयिता[2], 'चुंगी की उम्मीदवारी', 'लबड़धोंधों', 'विवाह-विज्ञापन', 'मिस अमेरिकन' प्रभृति प्रहसनों के प्रभावी प्रणेता, 'टटोलूराम टलास्त्री'[3], एवं 'सभा की सभ्यता' जैसे सशक्त हास्यनिबन्धों के लेखक, आ. शुक्ल के अनुसार मैथिलीशरण गुप्त एवं मुकुटधर पाण्डेय के साथ-साथ छायावाद के एक अग्रदूत कवि पं. बदरीनाथ भट्ट (1891-1932 ई.) का जन्म आगरे में हुआ था। उनके पिता पं. रामेश्वर भट्ट संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान थे, जिनकी रामचरितमानस एवं विनयपत्रिका की टीकाएँ भी अत्यन्त प्रसिद्ध थीं। बदरीनाथ भट्ट लखनऊ विश्वविद्यालय में हिन्दी-प्राध्यापक थे।

सुधारवादी युग में भारतेन्दु (नारी पात्र बनने के कारण अचानक आए चाचा ने रंगमंच पर ही दौड़ाया[4]), प्रतापनारायण मिश्र (पिता से मूँछ मुड़ाने की आज्ञा प्राप्त करने की कठिनाई ओढ़ी), प्रेमघन (विराट् कांग्रेस-अधिवेशन में 'भारत-सौभाग्य' का मंचन कराया) इत्यादि के तप-त्याग के कारण नाटक जनजीवन का धन बनने लगा था किन्तु इसे व्यावसायिक पारसी थिएटर ने चौपट कर दिया। पारसी थिएटर से नाटक का उद्धार करने वाले बदरीनाथ भट्ट ही थे, जिनके 'कुरुवनदहन' (1912 ई.) में 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास' के लेखक डॉ. श्री कृष्णलाल के अनुसार ''नवीन नाट्यकला के अंकुर'' विद्यमान थे 1912 ई. में ही प्रकाशित प्रसाद के गीतिनाट्य 'करुणालय' से 'कुरुवनदहन' श्रेष्ठतर है। पं. बदीरनाथ भट्ट ऐतिहासिक महत्त्व के नाट्यकार हैं—प्रसाद के श्रेष्ठ नाटकों से कुछ पूर्व श्रेष्ठ नाटक रचने वाले। अपने प्रहसनों एवं हास्यनिबन्धों के कारण वे एक उच्चकोटि के व्यंग्यकार सिद्ध होते हैं। उन्होंने कविता का सृजन अधिक नहीं किन्तु जो किया है उसे सूक्ष्म व्यंजनाओं के कारण शुक्ल ने ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान किया है।

यह सत्य है कि पं. बदरीनाथ भट्ट के कृतित्व में परिष्कृति कम ही है[5], भोंड़े कालदोष भी विद्यमान हैं, भाषा का रूप भी साधारण-सा है, तथापि वे आदर्शवादी युग से स्वच्छन्दतावादी युग तक प्रसरित एक स्मरणीय साहित्यकार के रूप में स्थान प्राप्त करने के अधिकारी हैं, क्योंकि उनके सृजन में भविष्य को द्योतित करने की क्षमता विद्यमान है। उनके शास्त्रीयकालीन भाषा की लकीर का फ़क़ीर बनने के विरोध संबद्ध निबन्ध को आ. द्विवेदी ने 'सरस्वती' के कोष का रत्न बनाया, उनके 'दे रहा दीपक जल कर फूल' गीत को आ. शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' का अंग तथा उनके नाटकों, प्रहसनों एवं हास्यनिबन्धों को जनता ने पर्याप्त आदर दिया।

---

[1] लाला भगवानदीन 'दीन'। एक महात्मा भगवानदीन भी हुए हैं जो हिन्दी लेखक भी थे।

[2] उन्होंने 'वेनचरित' एवं 'तुलसीदास' शीर्षक दो अन्य शिथिल नाटक भी लिखे।

[3] यह हास्यनिबन्ध 'दुलारे-दोहावली' के ब्रजभाषा-कवि एवं गंगा पुस्तकमाला कार्यालय लखनऊ के प्रकाशक स्व. पं. दुलारेलाल भार्गव पर लिखा गया था तथा बहुत ही सजीव है।

[4] सुना है, चाचा जूता लिए पीछे और भारतेन्दु नारी-वेशादि में आगे सरपट भाग रहे थे!

[5] गोंडा के जी. पी. श्रीवास्तव (गंगाप्रसाद श्रीवास्तव) का स्मरण आ जाता है।

चतुरसेन शास्त्री

'हृदय की परख' (1917 ई.) से 'खग्रास' (1960 ई.) तक लगभग तीन दर्ज़न उपन्यास, 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' एवं 'दे खुदा की राह पर' इत्यादि लगभग साढ़े-चार सौ कहानियाँ, 'अन्तस्तल' (1921 ई.) प्रभृति चार गद्यगीत-संग्रह, 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास', 'भारत में इस्लाम', 'धर्म के नाम पर', 'आरोग्यशास्त्र' इत्यादि शताधिक एवं विविधविषयक ग्रन्थों के प्रणेता चतुरसेन शास्त्री (1891-1960 ई.[1]—चान्दोख[2], निकट अनूपशहर, ज़िला बुलन्दशहर, उ. प्र., निधन दिल्ली) उपन्यासकार, कहानीकार एवं गद्यगीतकार के रूपों में हिन्दी-साहित्येतिहास के अंग बन चुके हैं। 'वयं रक्षामः' एवं 'वैशाली की नगर-वधू' उनके विख्यात ऐतिहासिक उपन्यास हैं, जबकि 'अमर सिंह राठौर' एवं 'उत्सर्ग' असफल ऐतिहासिक नाटक (आ. शुक्ल के शब्दों में ''कथावस्तु को अपने अनुकूल गढ़ने की निपुणता अवश्य दिखाई है, पर अधिक ठोंकपीट के कारण कहीं-कहीं ऐतिहासिकता और कहीं-कहीं घटनाओं की महत्ता भी झड़ गई है''—अधिकांश उपन्यासों और कहानियों पर यही बात लागू होती है)।

चतुरसेन शास्त्री की ऐतिहासिक रचनाएँ किशोरीलाल गोस्वामी की ऐतिहासिक रचनाओं के सदृश प्रात्ययिक नहीं लगतीं, जो उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता है। उन्होंने इतिहास पढ़ा कम और गढ़ा अधिक है। उनकी मौलिकता भी सर्वाधिक विवादास्पद है। मुझे प्रसिद्ध उपन्यास 'धर्मपुत्र' पर रवीन्द्र के अतिप्रसिद्ध 'गोरा' की छाप स्पष्टतः दीखती है, 'जय सोमनाथ' पर मुन्शी[3] के 'सोमनाथ' की और-तो-और, 'दुखवा मैं कासे कहूँ मोरी सजनी' तक एक बांग्ला-कहानी की छाया है! उनका 'हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास' आयुर्वेद-हिन्दीग्रन्थों की दृष्टि से विशेष उल्लेख्य है। उनकी 'आत्मकथा' में नेताओं, साहित्यकारों इत्यादि पर अच्छा और खरा प्रकाश पड़ा है।

चतुरसेन शास्त्री उपन्यासकार के रूप में सदा स्मरण किए जाते रहेंगे क्योंकि प्रागैतिहासिक-ऐतिहासिक-सामाजिक के स्फीत त्रित् में वे (कल्पना के अतिरेक, मौलिकता की अल्पता एवं अश्लीलता के स्पर्श के बावजूद) विलक्षण अवश्य हैं। उनके उत्तराधिकारियों ने उनके नाम पर दनादन नए उपन्यास निकालकर स्व. क्षेमचन्द्र 'सुमन' जैसों को सन्देह में डाल दिया था।

राय कृष्णदास

'साधना' (1991 ई.), 'प्रवाल' (1929 ई.) एवं 'छायापथ' के (रवीन्द्र-प्रेरित किन्तु मौलिक) शीर्षस्थ हिन्दी-गद्यगीतकार, 'अन्तःपुर का आरम्भ' एवं 'प्रसन्नता' इत्यादि के (प्रसाद-प्रेरित किन्तु मौलिक) उत्कृष्ट भावात्मक-कहानीकार, 'सागर और मेघ' एवं 'लोहा और कोयला' के शीर्षस्थ हिन्दी-संवादकार, 'भारतीय चित्रकला' (1939 ई.) एवं 'भारतीय मूर्तिकला' (1939 ई.) के मर्मी कलाविद्, भारतीय कला भवन (संप्रति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिसर स्थित) के संस्थापक पुरातत्ववेत्ता पद्मविभूषण राय कृष्णदास (1892-1985 ई)[4] 'नेही' उपनाम से 'व्रजरज' के व्रजभाषा-कवि भी हैं। उनकी बहुमुखी प्रतिभा एवं विद्वत्ता चिरस्मरणीय है। 'इक्कीस कहानियाँ' में भी वे विधा-आलोचक एवं संकलनकर्त्ता के रूप में अद्वितीय हैं क्योंकि डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. श्रीकृष्णलाल, डॉ. राजकुमार, डॉ. महेश दिवाकर, डॉ. रामाश्रम सविता इत्यादि के प्रबन्ध, संकलन एवं ग्रन्थ 'प्रस्थान' से 'पांडित्य' तक कहीं भी समतुल्य नहीं लगते। वे मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, आ. केशवप्रसाद मिश्र इत्यादि के घनिष्ठ मित्र के रूप में भी याद किए जाते रहेंगे। प्रसाद ने 'चन्द्रगुप्त' नाटक उन्हें समर्पित किया है।

राय कृष्णदास अतुलनीय संवाद-शिल्पी हैं। उनकी कहानियों का प्राणतत्व भी संवाद ही है। संवाद की विधा के स्वतन्त्र सृजन में तो वे अग्रणी हैं ही। उनकी भाषा स्तरीय एवं प्रांजल होते हुए भी सहज एवं सरल है। गहन भावुकता उनके कृतित्व की आत्मा है। यद्यपि किसी एक व्यापक विधा में उनका निर्णायक सृजन उपलब्ध नहीं है, तथापि अपनी विविधता की बहुरंगी सम्पन्नता में वे

---

[1] 'विनोद' में मिश्रबन्धु ने जन्म वर्ष 1945 ई. 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में डॉ. रवीन्द्र 'भ्रमर' ने 1891 ई. (जो ठीक लगता है)।

[2] 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 (डॉ. धीरेन्द्र वर्मा) एवं 'भारतीय साहित्य कोश' (डॉ. नगेन्द्र) में जन्मस्थान अनूपशहर लिखा है; 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' (क्षेमचन्द्र 'सुमन') में चांदोख (जो ठीक है)।

[3] महान् गुजराती उपन्यासकार एवं साहित्येतिहासकार कन्हैयालाल मणिकलाल मुन्शी (जो समसामयिक थे)।

[4] मिश्रबन्धु 'विनोद' में जन्मसम्वत् '1948 के लगभग' (1891 ई.) एवं रचनाकाल 'सं. 1970 के लगभग' (1913 ई.) दिया है। दोनों ही सं. ग़लत लगते हैं।

ऐतिहासिक महत्त्व के उच्चस्तरीय साहित्यकार अवश्य हैं। 'भारतीय कलाविद्' (1993 ई.) में विख्यात पुरातत्ववेत्ता जगदीशचन्द्र चतुर्वेदी ने कनिंघम, ग्रॉउस, हैवेल, आनन्द के. कुमारस्वामी, सी. शिवराममूर्ति, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ. मोतीचन्द्र एवं डॉ. भगवतशरण उपाध्याय के साथ उन्हें एक कलाविद् या पुरातत्त्ववेत्ता के रूप में ठीक ही प्रतिष्ठित किया है।

गुरुभक्तसिंह 'भक्त'

'नूरजहाँ' के प्रसिद्ध महाकाव्यकार गुरुभक्तसिंह 'भक्त' (1893-1983 ई., जन्म ज़मानियाँ, ज़िला ग़ाज़ीपुर, निवास बलिया) ने 'विक्रमादित्य' (चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य) शीर्षक अन्य महाकाव्य भी रचा है। 'सरस सुमन', 'कुसुम-कुंज', 'वनश्री' इत्यादि कवितासंग्रहों में वे प्रकृति के एक सरस कवि के रूप में प्रकट होते हैं। उन्होंने 'नूरजहाँ' का अंग्रेज़ी-अनुवाद भी किया था जो प्रकाशित नहीं हो सका। उनकी खड़ीबोली सरल और सुगम है। वे बदरीनाथ भट्ट प्रभृति के सदृश आदर्शवादी-स्वच्छन्दतावादी युगों को जोड़नेवाली शृंखला की एक कड़ी माने जा सकते हैं।

नूरजहाँ[1] जैसी छलछद्ममयी भिखारी जैसे परिवार से उभरी महारानी और सलीम या जहाँगीर जैसे घोर शराबी-क़वाबी-अनाचारी बादशाह को धीरललित नायिका और नायक के रूपों में चित्रित कर 'भक्त' जी ने वस्तुवाद पर सदियों के शासकों के प्रति श्रद्धावाद को वरीयता प्रदान की है। ऐसा अतीतशासकगत श्रद्धावाद असंख्य साहित्यकारों की कृतियों में देखा जा सकता है। प्रायः 1000 ई. से ही मुस्लिम-वर्चस्व में रहे पंजाबी भाइयों में यह श्रद्धावाद विशेष रूप से दृग्गत होता है। वे सामान्यतः किसी भी मुसलमान और विशेषतः पठान की चर्चा करते ही गलदश्रु भावुकता के मानवीकरण बन जाते हैं। 'भक्त' जी नूरजहाँ-भक्त के रूप में साहित्य को प्रभावित न कर सके, क्योंकि कोरी कथा या कोरी कल्पना ठोस प्रभाव नहीं उत्पन्न कर पाती। वैसे, 'धर्मनिरपेक्षता' से लबालब होने के कारण साम्यवादी 'विद्वानों' एवं 'विदुषियों' ने इसे पाठ्यक्रमों में चस्पाँ कर रखा है। यदि चाँदबीवी पर काव्य लिखा जाए तो वीररस की दृष्टि से प्रभावी हो सकता है, यदि जहाँनारा पर काव्य लिखा जाए तो करुणरस की दृष्टि से प्रभावी हो सकता है, क्योंकि नूरजहाँ, मुमताज़ महल, रौशनारा, ज़ीनत महल हों या हज़रत महल, वीरता या करुणा के मानवीय मूल्यों से वस्तुतः रहित थीं। वैसे, केशवदास जैसे महाकवि ने 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' लिखी थी किन्तु उसमें बादशाह नहीं अपितु भाग्य एवं पुरुषार्थ के प्रतीकों का प्राधान्य है। उस्मान के शाहेवक्त़ के रूप में जहाँगीर का उल्लेख किया है किन्तु वह संक्षिप्ततर एवं मसनवी (ईरानी प्रबन्धकाव्य) की रूढ़ि के पालनार्थ मात्र किया गय है। 'भक्त' जी के ही दम का जलूसा है कि जहाँगीर धीरललित नायक है और नूरजहाँ धीरललित नायिका, जिनकी आरम्भिक कबूतरबाज़ी की ये दो चालू सतरें बहुत मशहूर हैं :

> एक कबूतर देख हाथ में पूछा, ''अपर कहाँ है?''
> उसने कहा, ''अपर कैसा? वह उड़ गया सपर है!''

'भक्त' का प्रकृतिचित्रण अच्छा है किन्तु जगमोहनसिंह, लोचनप्रसाद पांडेय, रामनरेश त्रिपाठी, सुमित्रानन्दन पन्त इत्यादि की आधुनिककालीन उच्च प्रकृतिचित्रण-परम्परा में प्रतिष्ठित होने की क्षमता नहीं रखता। वैसे, उनकी कविता साधारणतः अच्छी है :

> इसे रुलाया, उसे हँसाया, कहीं वृक्ष को दिया धकेल,
> इसे हिलाया, उसे सुलाया, क्या अद्‌भूत है तेरा खेल!
> नवल नायिका-सी रसभीनी नौका जो मदमाती है,
> छाती फूली हुई पाल की भड़क हर्ष से जाती है।
> सलिल वीचि पर मौज उड़ाती इतराती लहरी ऊपर,
> कर पतवारों से पानी में इधर-उधर से छप-छप कर।

---

[1] वास्तविक नाम मेहरुन्निसा। जहाँगीर ने नूरजहाँ की पदवी दी। इसका बाप मिर्ज़ा ग़यास बेग़ ऐतमादुद्दौला कहलाया जिसकी शानदार समाधि नूरजहाँ ने आगरे में (यमुना-पार) बनवाई। आसिफ़ ख़ाँ (आसफ़ खाँ) इसका भाई था जिसकी बेटी अर्जुन्दबानो मुमताज महल कहलाई। इसका एक भाई जैन खाँ बीरबल की वीरगति का एक कारण था और इसी के कारण गंग को जहाँगीर ने हाथी के पैर तले कुचलवाया। मरते समय भी गंग ने ''कबहुँ न जनखा रन चढ़े'' (ज़ैन ख़ाँ और जनखा मिलते-जुलते शब्द हैं ही) का करारा व्यंग्य किया था।

हरिभाऊ उपाध्याय

'जीवन का सदुव्यय', 'बापू के आश्रम में', 'स्वतन्त्रता की ओर', 'सर्वोदय की बुनियाद', 'पुण्य स्मरण', 'हिंसा का मुकाबला कैसे करें?', 'हमारा कर्त्तव्य और युगधर्म' इत्यादि के सुविख्यात गाँधीवादी लेखक 'विश्व की विभूतियाँ', 'श्रेयार्थी जमनालाल बजाज' इत्यादि के जीवनीकार 'प्रियदर्शी अशोक' के प्रस्तोता, 'सत्य के प्रयोग' (गाँधी), 'मेरी कहानी' (नेहरू) एवं 'कांग्रेस का इतिहास' (डॉ. भोजराज पट्टाभि सीतारमैया)[1] इत्यादि के सफल अनुवादक हरिभाऊ उपाध्याय (1893[2]-1972 ई. भौंरासा[3], जनपद उज्जैन) 'दूर्वादल' के कवि भी हैं। 'औदुम्बर', 'सरस्वती', 'प्रभा', 'हिन्दी-नवजीवन', 'मालव-मयूर' एवं 'त्यागभूमि' के पत्रकार के रूप में भी वे स्मरणीय हैं। 'औदुम्बर' की अमूल्य लेखमालाओं के कारण 1915 ई. में वे महान् आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पर्क में आए। आचार्य का यह शिष्य कुछ समय उनके ग्राम दौलतपुर (रायबरेली) में भी रहा, जहाँ के बुजुर्गों को अब तक यह याद है। वे सस्ता साहित्य मंडल, नयी दिल्ली से भी संबद्ध रहे। स्वातन्त्र्य-सेनानी भी थे। राजनीति में भी आए तथा स्वतन्त्र भारत में, राज्यों के पुनर्गठन से पूर्व, अजमेर राज्य के मुख्यमन्त्री भी रहे। (जिसके कारण विक्षिप्त निराला ने, मिलने आने पर, 'भगा' दिया थाः राजनीति में क्यों गए?)

गाँधीवादी विचारकों एवं लेखकों में हरिभाऊ उपाध्याय, किशोरीलाल घनश्याम मश्रूवाला, श्रीमन्नारायण अग्रवाल (जिनकी पत्नी मदालसा नारायण कवयित्री एवं लेखिका हैं), यशपाल जैन इत्यादि स्मरणीय हैं, जबकि प्रेमचन्द, प्रसाद जैनेन्द्र, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, यज्ञदत्त शर्मा जैसे अनेकानेक उपन्यासकारों तथा सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी जैसे अनेक कवियों पर गाँधी का प्रभाव स्पष्ट है ही। गाँधी पर रत्नाकार, मैथिलीशरण, पन्त, महादेवी, बच्चन, दिनकर, गोपालशरणसिंह, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य', विद्याधर महाजन, नरेश मेहता, रघुवीरशरण 'मित्र', गुलाब खंडेलवाल इत्यादि कवियों की रचना-राशि तो विपुल है ही। गाँधी का व्यक्तित्व ऐतिहासिक महत्त्व में बुद्ध, महावीर, सुकरात और ईसा की समता करता है, भले ही इन सब का एकांगी जीवन-दर्शन व्यावहारिक न हो तथा किसी पर भी रामायण, रघुवंशम्, उत्तररामचिरितम्, कम्ब-रामायण, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, साकेत जैसा जीवन्त कृतित्व उपलब्ध न होता हो। फिर, गद्य-साहित्य को यदि शीघ्र ही भुला दिया गया तो क्या आश्चर्य?

सहृदय एवं विनम्र हरिभाऊ उपाध्याय की कविता के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कहाँ से लाऊँ चोखे फूल?
भौरों ने जूठे कर डाले, रहे न तव अनुकूल।।
तेरे भक्त फूल चुन लाते पाते मंगल-मूल।
पर मैं जब-जब जाता हूँ काँटे ले आता भूल।।[4]
काँटों का यह बाग़ लगाया, काँटों के ये फूल।
अर्पण हैं तेरे चरणों में तीखे़-तीखे़ शूल।।
कहाँ से लाऊँ चोखे फूल?

2. ज्ञानखानि का रत्न हूँ और न काव्यकला-गुंबद।
मैं तो कोरा क्षर-सिंधु के जल का हलका-सा बुद्बुद।।
अश्रु नहीं तो व्यथा-कथा को जग के उर में लिख जाऊँ।
मुक्ताफल हूँ नहीं, स्वर्ग-सुंदरियों में आदर पाऊँ।।
मैं तो खारे जल का बुद्बुद रीता आता-जाता हूँ।
ख़ाली जग में आकर क्षण-क्षण सूने में लय पाता हूँ।।

---

[1] अंग्रेज़ी ने जब गंधी को गाँधी कर दिया तब सीतारामय्य को सीतारा मैया कैसे न करती?

[2] चैत्र कृष्ण सप्तमी सं. 1949 वि. (हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 में ज्ञानवती दरबार—'विनोद' में सं. 1955 ग़लत लगता है तथा 'विश्व सूक्ति कोश', संपादक डॉ. श्यामबहादुर वर्मा एवं मधु वर्मा ने 1993 ई. ठीक लिखा है)।

[3] हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 में भौंरोसा छपा है।

[4] फूल भौंरों के जूठे होते हैं, काँटे अनूठे। फूल मुर्झा जाते हैं, काँटे नहीं। फूल मसले भी जाते हैं, काँटे नहीं।

शिवपूजन सहाय

बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन एवं बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के प्राण तथा 'शिक्षा', 'लक्ष्मी', 'मनोरंजन', 'पाटलिपुत्र', 'मारवाड़ी सुधार', 'मतवाला', 'आदर्श', 'उपन्यास-तरंग', 'समन्वय', 'मौजी', 'माधुरी', 'गंगा', 'जागरण' (काशी का पाक्षिक)[1], 'बालक', 'साहित्य (बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन की शोधपत्रिका) प्रभृति पत्र-पत्रिकाओं से किसी-न-किसी रूप[2] से जुड़े महान् हिन्दीसेवी आचार्य शिवपूजन सहाय (1893-1963 ई., उनवाँस[3], तब उपांचल बक्सर, जनपद शाहाबाद, बिहार) हमारे पूज्य साहित्यपुरुषों में सम्मिलित हैं। उनका आचार्यत्व तो इस अमर तथ्य से ही निर्विवाद हो जाता है कि प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि' एवं 'गोदान' तथा प्रसाद ने 'कामायनी' का अवलोकन-संशोधन कराया था! 'देहाती दुनिया' उपन्यास, 'विभूति' कहानीसंग्रह, 'बिहार का विहार' (भौगोलिक-ऐतिहासिक परिचय-ग्रन्थ), 'दो घड़ी' (हास्य-व्यंग्य) इत्यादि महत्त्वपूर्ण पुस्तकों के कारण भी उनका नाम लिया जा सकता है। उन्होंने 'ग्रामसुधार', 'अन्नपूर्णा के मन्दिर में' जैसी ग्रामोत्थान, 'माँ के सपूत' जैसी बालसाहित्यगत 'अर्जुन' और 'भीष्म' जैसी परिचयात्मक पुस्तकें भी लिखीं। 'राजेन्द्र अभिनन्दन-ग्रन्थ' के संपादक के रूप में उनका उल्लेख होता चलेगा। मिश्रबन्धु ने उन्हें ''उच्च श्रेणी के गद्यकार'' के रूप में समादृत किया है। आ. शुक्ल ने, सम्भवतः व्यक्तिगत कारणों से, उनका उल्लेख करना उचित नहीं समझा। किन्तु इससे उनके 'शिव' एवं 'सहाय' रूपों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तथा उनका 'पूजन' सभी अध्येता लगातार करते रहे!

यद्यपि आ. शिवपूजन सहाय का महान् जीवन विशृंखल संपादनों के कारण साहित्य-सर्जन में कोई निर्णायक कार्य नहीं कर सका, तथापि संपादक, विशेषतः 'साहित्य' के संपादक, तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् के प्राण के रूपों में उनकी हिन्दीसेवा इतनी प्रशस्य हैं कि वे प्रणम्य वर्ग में समाहित हैं। शिवपूजन सहाय बिहार के महावीरप्रसाद द्विवेदी कहे जा सकते हैं। घनआनन्द, साहसबदास भटनागर, नवलसिंह कायस्थ, महादेवी, बच्चन, नीरज इत्यादि ने कविता, प्रेमचन्द, वृंदावनलाल वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य', निर्मल वर्मा, कमलेश्वर इत्यादि ने कथा, डॉ. रामकुमार वर्मा ने विविध विधाओं, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. बाबूराम सक्सेना इत्यादि ने भाषाविज्ञान, लाला सीताराम बी. ए. 'भूप' इत्यादि ने अनुवाद, मुन्शी देवीप्रसाद इत्यादि ने शोध, लाला भगवान 'दीन' इत्यादि ने आलोचना, शिवनन्दन सहाय ने जीवनी, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ने 'आत्मकथा', रामचन्द्र वर्मा ने कोश, आ. शिवपूजन सहाय ने संपादन की दिशाओं में ऐसी पावन हिन्दीसेवी की है कि 'कायस्थों की हिन्दीसेवा' शोध का विषय बन गया है।

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी

'शतदल' के भावुक कवि, 'पंचपात्र', 'पद्य-वन', 'कुछ' तथा 'और कुछ' के सफल निबन्धकार, 'यात्री' के चिन्तक यात्रावृत्ताकार, 'हिन्दी साहित्य विमर्श', 'विश्व साहित्य', 'हिन्दी कहानी साहित्य' तथा 'हिन्दी उपन्यास साहित्य' के समर्थ आलोचक, ऐतिहासिक 'सरस्वती' के आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अनन्तर तथा उन्हीं के द्वारा अनेक आवेदकों में सादर मनोनीत संपादक पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी (1894-1971 ई.) की बहुमुखी प्रतिभा का सम्मान सर्वथा उचित है। द्विवेदी जी से प्रभावित होते हुए भी उनकी कविता मुक्त-स्वच्छन्दतावादी वर्ग की है, निबन्ध-रचना अधिक आधुनिक तथा आलोचना अधिक वस्तुपरक अर्थात् महान् आचार्य से प्रभावित होते हुए भी वे कहीं भी आतंकित नहीं हैं। उन्होंने स्वछन्दतावादी कविता के प्रति उदार-नीति अपनाई है, जब कि आचार्य की कठोर रही है।

बख़्शी जी ने हिन्दी-आलोचना को वैश्विक आयामों से परिचित कराया। कायस्थ होते हुए भी वे प्रेमचन्द के पूर्वाग्रहग्रस्त ब्राह्मण-निन्दावाद के विरोधी थे, जैसाकि उनकी अनुपस्थिति में पं. देवीदत्त शुक्ल द्वारा 'पंडित मोटेराम शास्त्री' कहानी के 'सरस्वती' में प्रकाशित किए जाने पर उनके विरोध से स्पष्ट है जिसका उल्लेख स्वयं शुक्ल जी ने 'संपादक के पचीस वर्ष' में किया है। इस ग्रन्थ में बख़्शी जी पर अमूल्य सामग्री प्राप्त होती है। उन्होंने शुक्ल जी से बताया कि वे ब्राह्मणों का आदर करते हैं तथा कहानी वैसे भी रद्दी है। डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल भी कायस्थ थे किन्तु उन्होंने स्वयं मुझे बताया था कि ब्राह्मणों का भरपूर आदर करते हैं। राष्ट्रपति

---

1. आज के प्रख्यात दैनिक 'जागरण' (कानपुर, लखनऊ, दिल्ली इत्यादि अनेक नगरों से) से भिन्न साहित्यिक पत्रिका।
2. लेखक या संपादकमंडल-सदस्य या संपादक।
3. 'विनोद' में 'उनघास' छपा है जो ग़लत है। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में 'उनवास' छपा है जो लगभग ठीक है।

डॉ. राजेन्द्रप्रसाद एवं प्रधानमन्त्री लालबहादुर शास्त्री भी ब्राह्मणों का आदर करने वाले कायस्थों में थे। यदि प्रेमचन्द ने संस्कृत एवं भारतीय संस्कृति का अध्ययन किया होता तो वे भी 'पंडित मोटेराम शास्त्री' जैसी घटिया कहानियाँ लिखकर अपनी महान् प्रतिभा के साथ अन्याय न करते, क्योंकि ब्राह्मणनिन्दा भी शूद्रनिन्दा के सदृश जातिवाद ही व्यक्त करती है। साहित्यिक निष्ठा का वह काल सचमुच प्रणम्य था जब ब्राह्मण देवीदत्त शुक्ल 'पं. मोटेराम शास्त्री' जैसी कहानी छापते थे और बख़्शी उसका विरोध करते थे!

अवधेश मालवीय

गेगासों[1], जनपद रायबरेली में 1895 ई. में जन्मे कवि स्व. अवधबिहारी तिवारी 'अवधेश मालवीय' ने ब्रजभाषा एवं खड़ीवोली दोनों में ही अच्छी कविताएँ लिखी हैं। 1912 ई. के आसपास कानपुर आए और अध्यापन-कार्य में लग गए। यहाँ आचार्य 'बिहारी' से परिचय हुआ और 1923 ई. में 'श्री हिन्दी साहित्य मण्डल' की स्थापना में सहयोग दिया। वे मण्डल के सभापति भी बने। पारम्परिक होते हुए भी उनकी कविताएँ बासी नहीं लगतीं। वचनेश के सदृश अवधेश भी छायावाद के विरोधी थे। उनकी कविता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. संतत सुपास होत, बिघन बिनास होत, अबिलंब नास होत सकल कलेस को।
बुद्धि को बिकास होत, प्रतिभा प्रकास होत, ऋद्धि-सिद्धि-बास होत, संकट न लेस को।।
'अवधेश' अद्‌भूत अभूत युक्ति भास होत, ह्रास अबिचार, तेज होत दिवसेन को।
बिबिध बिलास होत, सत्रु को न त्रास होत, बंदन करत गौरीनंदन गनेस को।।

2. सूखि जात जान पेखि प्रखर कृपान सान, दीसै अंसुमान की सी किरन प्रतीची में।
काटि-काटि ढेर रुंड मुंड के लगाए लाल, फूले से पलास भास होत हैं बगीची में।।
'अवधेश' प्रबल प्रताप को बिलोकि तेज, आवत न कोऊ सूर सत्रु को नगीची में।
घोर धुंधकार में प्रहार यों लखात मानो, थिरकि रही है बिज्जु बादर दरीची में।।

3. चौगुनो चकत्त की चमू को देखि बाढ़ो चाव चालो चंद्रहास लै चलाकी चार फाल में।
काल के समान हाल हालत मचाई जाय 'अवधेश' मेदनी रँगी है रंग लाल में।।
रुंड मुंड शुंड झुंड झुंड छितराने फिरे धीरज रह्यो न कहूँ काहू महिपाल में।
संका भाई साह के, अतंका भो दुनी के बीच देखि कै कमाल ये सिवा की करवाल में।।

4. कुछ तो हृदतंत्रिका के कस तार, अनन्त की ओर को तानते हैं।
कुछ मूक व्यथा की कथा कहानी ही, कवित्व का मर्म बखानते हैं।।
'अवधेश' उछालना प्यालियों का, कविता कवि कोई प्रमानते हैं।
पर डाल दे जान में जान नई, हम तो कविता उसे मानते हैं।।

दुलारेलाल भार्गव

नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ के संस्थापक, उर्दू-फारसी के 4000 से अधिक ग्रन्थों के प्रकाशक, उस समय के करोड़पति नवलकिशोर, सी.आर.ई. के वंश-गौरव, 'माधुरी' एवं 'सुधा' के संपादक, गंगा-पुस्तकमाला[2] कार्यालय के संस्थापक, हिन्दी के प्रथम कवि-साहित्यकार-प्रकाशक स्व. दुलारेलाल भार्गव (जन्म 1895 ई. लखनऊ) ने 208 दोहों (कुछ सोरठों समेत) के संग्रह 'दुलारे-दोहावली' (जिस पर 1935 ई. का देव पुरस्कार[3] प्राप्त हुआ) के कारण आधुनिक ब्रजभाषा कवियों में एक स्थान प्राप्त कर लिया है।

---

[1] है गर्गाश्रम या गेगासों, भगीरथि के कल कूल पै पावन।
रायबरेली जिला कहिए, 'अवधेश' वहीं मम जन्म सुहावन।।

[2] प्रथम पत्नी (केवल तीन मास का दाम्पत्य) गंगादेवी पर नामित। दूसरी पत्नी सावित्री जो सावित्री दुलारेलाल के नाम से प्रसिद्ध हुई।

[3] ओरछा-नरेशों की 'देव' पदवी के कारण। महाराज वीरसिंह देव ने प्रमाणपत्र पर 9.2.1935 को हस्ताक्षर कर प्रथम देव-पुरस्कार से सम्मानित किया।

निस्सन्देह दुलारेलाल भार्गव रत्नाकर या भारतेन्दु के स्तर के मौलिक एवं स्फीत ब्रजभाषा-कवि नहीं हैं। काव्य-प्रतिभा में वे श्रीधर पाठक, रामनाथ 'जोतिसी' श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', केशवदेव शुक्ल 'केशव', 'ब्रजनन्दन' प्रभृति निसर्गजात श्रेष्ठ कवियों की समता भी नहीं कर सकते। 'दुलारे-दोहावली' अत्यन्त अलंकृत रचना है जिसमें शृंगार एवं भक्ति की प्रमुखता है; किन्तु कविता कृत्रिम भी है, क्लिष्ट भी। इसमें सन्देह नहीं कि दुलारेलाल भार्गव एक श्रेष्ठ अलंकारवादी-कवि हैं, भले ही सहज-कवि न हों। लखनऊ के ही राजेशदयालु 'राजेश' केवल 'दोहा-हज़ारा' में सहज-कवि के रूप में अधिक प्रभावी लगते हैं। दुलारेलाल भार्गव पर संस्कृत के अमरुक एवं हिन्दी के बिहारी का भारी प्रभाव पड़ा है। 'दुलारे-दोहावली' की प्रभावी भूमिका में लोकनाथ द्विवेदी 'सिलाकारी' ने रचना पर प्रशस्तिपरक प्रकाश डाला है, जिस पर 28.7.34 तिथि अंकित है। भारी पच्चीकारी से सजे कुछ उदाहरण मननीय हैं :

श्रीराधा-बाधाहरिन नेह अगाधा-साथ। निहचल नैन निकुंज में नचो निरंतर नाथ।।
दमकति दरपन दरप दरि दीपसिखा दुति देह। वह दृढ़ इकदिसि दिपत यह मृदु दस दिसनि स-नेह।।
कढ़ि सर ते द्रुत दै गई दृगनि देह दुति-चौंध बरसत बादर-बीच जनु गई बीजुरी कौंध।।
हृदय कूप, मन रहँट, सुधि माल माल रस राग। बिरह बृषम, बरहा नयन, क्यों न सिचै तन बाग़।।
देस देस लाग्यो चढ़न इत जौबन नरनाह। पदन चपलई उत लई जनु दृग दुरग पताह।।
बस न हमारौ बस करहु बस न लेहु प्रिय लाज। बसन देह ब्रज मैं हमैं बसन देहु ब्रजराज।।
लंक लचाइ नवाइ दृग पग उँचाइ भरि चाइ। सिर धरि गागरि मगन मग नागरि नाचति जाइ।।
मंद मंद मुख कंद कौ मंद हँसत मुख चंद। नसत छंद छलछंद तक जगत जगत आनंद।।

'बेढब'[1] बनारसी'

वंदे रुपया आना पाई,
जिसके बल पर लंठों तक ने डी. लिट्. की डिगरी पाई!

'बेढब की बहक' एवं 'काव्य-कमल' के हास्य-कवि, 'बनारसी एक्का', 'गाँधी का भूत' एवं 'टनाटन' के हास्यकथाकार तथा 'अभिनेता' के हास्यनाट्यकार प्राचार्य कृष्णदेवप्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी' (1895-1965 ई.–वाराणसी; एकाध जगह निधन 9/3/1968 दिया है) की बहुमुखी प्रतिभा का आधुनिक हिन्दी-साहित्येतिहास में विशेष उल्लेख आवश्यक है, क्योंकि जी. पी. श्रीवास्तव, बदरीनाथ भट्ट, अन्नपूर्णानन्द[2], हृषिकेश चतुर्वेदी (22/12/1907-24/9/1970), रामानुजलाल श्रीवास्तव 'ऊँट'[3], हरिशंकर परसाई इत्यादि प्रमुखतः गद्यहास्यकार हैं तथा कान्तानाथ पांडेय 'चोंच'[4] (विकास करके 'राजहंस'), गोपालप्रसाद व्यास, काका हाथरसी, निर्भय हाथरसी, डॉ. अशोक 'चक्रधर', ओमप्रकाश 'आदित्य', गोविन्द व्यास, सुरेन्द्र शर्मा इत्यादि प्रमुखतः पद्यहास्यकार (अवधी के पढ़ीस, वंशीधर शुक्ल रमई काका इत्यादि इस दृष्टि से भी विशिष्ट हैं किन्तु खड़ीबोली-वर्चस्व के कारण दुर्भाग्यवश वे 'क्षेत्रीय' समझे जाते हैं), जबकि वेढब का गद्य-पद्य पर समान अधिकार रहा है। बढेब ने कविता में नेताओं, साहित्य-'डाक्टरों', विद्वानों इत्यादि पर चुभते व्यंग्य किए हैं तथा कहानियों में गोरों की अच्छी ख़बर तो ली है (लपटंट पिगसन की डायरी), मध्यवर्गीय व्यक्तियों के जीवन-द्वन्द्व एवं उनकी जीवनगत-द्विधा का भी अच्छा चित्रण किया है। बेढव की हास्यकथाओं में अन्नपूर्णानन्द की गम्भीरता नहीं मिलती, किन्तु वे रोचक अवश्य हैं। हास्यकविताओं में वे विशेष सफल हैं क्योंकि उन्होंने उस कवि सम्मेलनी झपाटे से नहीं लिखा जिससे काका हाथरसी इत्यादि लिखते रहे हैं। अधिकांश हास्यकवि, हास्यकथाकार, व्यंग्यकार या हास्यलेखकार पेशेवर रहे हैं, किन्तु बेढब पर यह बात नहीं लागू होती। उनको हास्यरसावतार जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी की परम्परा में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। इस दृष्टि से स्व. शारदाप्रसाद 'भुशुंडि' एवं डॉ. स्वामीनाथ पांडेय का स्मरण भी उचित होगा, यद्यपि प्रथम कवि एवं द्वितीय गद्यकार मात्र हैं।

---

1. कानपुर के 'प्रताप' में बेढब-विचार के बेढब अन्य सज्जन थे जिनका नाम ज्ञात नहीं-इन्हें 'बेढब' कानपुरी' कह सकता हूँ।
2. 'मेरी हज़ामत', 'मगन रहु चोला' एवं 'महाकवि चच्चा' इत्यादि के हास्यकथाकार।
3. जिनका 'जज़्बाते-ऊँट' कवितासंग्रह एवं 'हम इश्क़ के बन्दे हैं' कहानीसंग्रह सर्वथा उल्लेखनीय हास्यकृतियाँ हैं।
4. 'चोंच-चालीसा', 'महाकवि साँड़', 'छेड़छाड़' इत्यादि के हास्यकवि।

'लली'

पचखंडीय 'जागृति' की कवयित्री तोरनदेवी शुक्ल 'लली' (1896 ई., उन्नाव, मूलस्थान हमीरगाँव, जनपद रायबरेली) की कविता महादेवी की रंगत वाले रहस्यवाद से ऊभचूभ होते हुए भी यत्र-तत्र आत्मपरक भी है। पुत्र हरिहरनाथ शुक्ल 'सरोज' के अकाल-अवसान ने ललस का सृजन रुद्ध कर दिया था। उनकी मर्मस्पर्शी कविता के उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कैसे पकड़ूँ लेखनी, क्या मैं लाऊँ खोज।
तन तेरा जड़ हो गया, मन में बसा 'सरोज'।।

2. नवकलिका जैसी शैशव में सौरभयुत सुंदर सुकुमार,
जिसके चारों ओर भ्रमर बन, मँड़राता रहता था प्यार।
नहीं जानती थी सुंदर थी या असुंदर सारा संसार—
जब क्षण-प्रतिक्षण में होता था नित नवीन सुख का विस्तार।
उन अमूल्य अनुपम घड़ियों की बार-बार बलि जाऊँ मैं,
ठहरो ठहरो निज जीवन की सुंदर कथा सुनाऊँ मैं।

3. वे लहर कहाँ हैं सागर में जिनके सम मधुर प्रकाश करूँ!
इस वीणा में ध्वनि भी न मिली जिससे स्वरमय झंकार करूँ?
वे पत्र कहाँ, वे पुष्प कहाँ जिनसे तेरा सम्मान करूँ?
बतला दे मेरी दयामयी! कैसे तेरा आह्वान करूँ?
वह भाव कहाँ कवि की कविता में, मैं जिसकी अनुहार करूँ?
वे चरण कहाँ हैं ओजपूर्ण, जिन पर जीवन बलिहार करूँ?
हैं वे पथदर्शक वीर कहाँ, यदि दर्शन का अनुमान करूँ?
वे अटल भक्त हैं कहाँ 'लली' जिनका मैं गर्व-गुमान करूँ?

'शिलीमुख'

'सुकवि-समीक्षा', 'प्रसाद की नाट्यकला', 'आधुनिक हिन्दी-कहानी' (भूमिका) एवं 'शिलीमुखी' (संकलन) के सर्वथा स्मरणीय निस्संग आलोचक रामकृष्ण[1] शुक्ल 'शिलीमुख' (जो महाराजा कॉलेज जयपुर एवं राजस्थान विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष रहे) का आकलन करते हुए प्रो. (कालान्तर में डॉ.) विजयेन्द्र स्नातक एम.ए. शास्त्री, सिद्धान्त-शिरोमणि ने 'शिलीमुखी' (1951 ई.) के 'संपादकीय वक्तव्य' में लिखा था, ''आलोचना-सम्बन्धी प्रगति के प्रारम्भिक चार-पाँच वर्षों के भीतर ही सन् 1926-28 में[2] हमें आलोचक 'शिलीमुखी' के दर्शन होते हैं।... आलोचना-क्षेत्र में वे पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने किसी समसामयिक और जीवित लेखक पर मिथ्या औपचारिक शिष्टाचार के फेर में न पड़ कर, अपने अनुकूल और प्रतिकूल विचारों को निर्भीकतापूर्वक प्रकट किया। ...पं. रामचन्द्र शुक्ल ने आलोचना को यदि शास्त्रीय अध्ययन का पांडित्य और गांभीर्य प्रदान किया तो 'शिलीमुख' जी ने उसे विचार और अभिव्यंजना का एक स्वतन्त्र रूप, नया मार्ग और नया क्षेत्र प्रदान किया।... निसर्गतः वे अधिक मौलिक रहे।'' स्नातक जी का आकलन प्रशस्तिपूर्ण किन्तु साधार है, जबकि 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) के 'संपादक' की ''समीक्षा-शैली रामचन्द्र शुक्ल के प्रभाव-क्षेत्र में विकसित हुई जान पड़ती है'' स्थापना सर्वथा निराधार है। आ. शुक्ल की आलोचना औपचारिक है, 'शिलीमुख' की अनौपचारिक आ. शुक्ल सांसारिक स्थिति-विशेष का पूरा ध्यान रखते हैं, 'शिलीमुख' निर्द्वन्द्व होकर लिखते हैं। आ. शुक्ल की 'आचार्यत्व की लपेट' प्रसिद्ध है, 'शिलीमुख' सरल-सरस हैं। आ. शुक्ल महान् आलोचक हैं, 'शिलीमुख' उनके समकक्ष नहीं; किन्तु अपने दायरे में 'शिलीमुख' अधिक आधुनिक हैं। आ. शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में 'प्रसाद की नाट्यकला' का उल्लेख है (यद्यपि कोष्ठगत नाम नहीं—अन्यों का है)।

---

[1] 'नायिकाभेद' के साधारण कवि रामकृष्ण (जन्म 1829 ई.) एवं कवि-नाट्यकार-उपन्यासकार-व्यंग्यकार तथा 'भारत-जीवन' (1883 ई.) के संस्थापक, भारत जीवन प्रेस के प्रकाशक स्वनामधन्य हिन्दीसेवी एवं हिन्दी-साहित्यकार रामकृष्ण वर्मा 'बलवीर' (1859-1906 ई., वाराणसी) का स्मरण आता है। रामकृष्ण वर्मा के 'ठगवृत्तांतमाला' (4 भाग) एवं 'पुलीसवृत्तांतमाला' अनूठे ग्रन्थ हैं।

[2] काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 1924 ई. में हिन्दी एम.ए. कक्षाएँ आरम्भ होने पर पाश्चात्य प्रणाली की आलोचना का विकास हुआ।

उनका यह वाक्य पठनीय है, ''इधर पं. रामकृष्ण शुक्ल[1] में अपनी 'सुकवि-समीक्षा' में कबीर, सूर, जायसी, तुलसी, मीरा, केशव, बिहारी, भूषण, भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद पर अच्छे समीक्षात्मक निबन्ध लिखे हैं।'' 'शिलीमुख' के 'हिन्दी का वर्तमान साहित्य और प्रेमचन्द', 'प्रेमचन्द की कला', 'प्रेमचन्दजी का कौशल', 'प्रेमचन्द की समाज-भावना और उनका आदर्शवाद और उपदेशक-वृत्ति' एवं 'विश्वास' (कहानी) निबन्धों ने प्रेमचन्द पर तथा 'प्रसाद की नाट्यकला' ग्रन्थ में प्रसाद को प्रभावित किया था। प्रेमचन्द (1880-1936 ई.) एवं प्रसाद (1890-1937 ई.) के 'प्रस्थान' आलोचक के रूप में रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' चिरस्मरणीय हैं। उनकी ये आलोचनाएँ आज भी उत्कृष्ट लगती हैं, कल भी लगेंगी। उनका सियारामशरण गुप्त कृत 'गुंजन' कवितासंग्रह पर स्तरीय आलोचनात्मक-निबन्ध भी स्मरणीय है। 'शिलीमुख' बहुत दूर तक वस्तुवादी आलोचक थे। उनकी आलोचना किसी वाद या पूर्वाग्रह से मुक्त है। उनका 'समालोचकनामा' अपनी अनौपचारिकता एवं व्यंग्यशक्ति के कारण एक उच्चस्तरीय ललित-निबन्ध भी माना जा सकता है। निस्सन्देह, 'शिलीमुख' हिन्दी के एक श्रेष्ठ आलोचक थे।

अमर[2]नाथ झा

अंग्रेज़ी के अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के विद्वान् एवं लेखक होते हुए भी प्रखर हिन्दी-प्रेमी एवं हिन्दी-ग्रन्थकार, अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तीसवें (अबोहर) अधिवेशन (1998 वि. अर्थात् 1941 ई.) के अध्यक्ष, काशी नागरी-प्रचारिणी सभा के अध्यक्ष पद को भी सुशोभित करने वाले डॉ. अमरनाथ झा (25-2-1897, देहान्त 1957 ई.) का स्मरण हिन्दी सदैव करती रहेगी। वे 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' के प्रधान सम्पादक थे। संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेज़ी के ग्रन्थकार डॉ. झा उर्दू के भी पंडित थे। उपकुलपति एवं लोकसेवा आयोग उत्तर प्रदेश के अध्यक्ष जैसे उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हुए डॉ. झा एक असाधारण विद्वान् एवं वक्ता थे। उनके पिता स्वनामधन्य महामहोपाध्याय डॉ. सर गंगानाथ झा भी विश्वस्तरीय शिक्षाविद् एवं मनीषी थे तथा अनुज डॉ. आदित्यनाथ झा आई. सी. एस. की प्रोन्नत परीक्षा का कीर्तिमान-स्थापक। हिन्दी में 'विचारधारा'[3] (1954 ई.) उनकी उल्लेखनीय पुस्तक है। उनके 'हिन्दी साहित्य संग्रह' (1920 ई.) एवं 'पद्मपराग[4] (1935 ई.) भी स्मरणीय हैं। इनका विख्यात झा (उपाध्याय = उपज्झाओ-उपज्झा-झा अर्थात् प्राध्यापक या विद्वान्) परिवार हिन्दी-प्रेमी के कारण स्मरणीय रहेगा।

डॉ. अमरनाथ झा का व्यक्तित्व भव्य एवं विशाल था तथा वे सुन्दरियों के आकर्षण के एक अप्रतिम केन्द्र भी रहे। अनेक प्रतिष्ठित इलाहाबादी परिवारों से उनकी निकटतम सम्बन्ध की चर्चाएँ आज तक चलती रहती हैं। व्यक्तित्व एवं प्रतिभा के विलक्षण संयोग ने उन्हें नाना संयोग से संपृक्त किया था!

निराला

स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) के एक सशक्त वाहक-उन्नायक एवं उसकी बृहत्त्रयी (प्रसाद-निराला-पन्त) के एक अमर महाकवि, यथार्थवाद के समाजपरक-रूप (प्रगतिवाद) के समुद्घाटक एवं व्यक्तिपरक-रूप (प्रयोगवाद) के शैली-शिल्प के आदि-जन्मदाता, 'राम की शक्तिपूजा' जैसी विश्वस्तरीय महाकविता के प्रणेता, 'तुलसीदास' जैसे प्रखर-प्रोज्जवल खंडकाव्य के प्रस्तोता और 'सरोज-स्मृति' जैसो चिरस्मरणीय आत्मपरक करुण-कविता के मार्मिक स्रष्टा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' (1897[5]-1961 ई.) संसार-साहित्यकोष के

---

1. उपनाम नहीं दिया? पसन्द न आया होगा!
2. संस्कृत में अमरकोश के प्रणेता अमरसिंह एवं 'काव्य-कल्पलता वृत्ति' के आ. अमर (जिनका केशवदास पर भारी प्रभाव पड़ा है—केशव पर 'अलंकार शेखर' के प्रणेता आ. केशव मिश्र का भी प्रभूत प्रभाव दृग्गत होता है), सिखों के तृतीय गुरु अमर (जिनकी वाणी गुरुग्रन्थसाहब में प्राप्त है), 'भगतीपद' (1803 ई.) प्रस्तोता अमरदास, प्रसिद्ध कवि अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' इत्यादि का स्मरण आता है।
3. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने भी 'विचारधारा' प्रवाहित की थी। दोनों विचारधाराएँ विशेष प्रवाहित नहीं हो पाईं।
4. आ. पद्मसिंह शर्मा का निबन्धसंग्रह भी 'पद्मपराग' ही है।
5. माघ शुक्ल 11, संवत् 1953 विक्रमी पर 57 वर्ष घटाकर ईसवी सन् निकालना वैसे ही ग़लत होगा जैसे प्रसाद के माघ शुक्ल 12, सं. 1946 वि. के सन्दर्भ में। अतः 1896 ई. वैसे ही ग़लत है जैसे प्रसाद के सन्दर्भ में उनके 1889 ई.। उनके पुत्र रामकृष्ण त्रिपाठी 1896 ई. मानते हैं, पर यह ठीक नहीं लगता। गढ़ाकोला की मूर्ति का 1955 वि. में 1896 ग़लत अंकित है। निराला का जन्म फरवरी, 1897 में महिषादल राज्य (बंगाल) तथा निधन 15 अक्टूबर, 1961 को प्रयाग में हुआ था। ऐसा लगता है कि उनकी स्मरणशक्ति ठीक न थी तथा विक्षिप्तता के बीज आरम्भ से ही विद्यमान थे जिनमें पिता की भयावह प्रतारणा ने भीषण वृद्धि की। आ. महावीर प्रसाद द्विवेदी से 1899 ई., रामनरेश त्रिपाठी से भी 1899 ई., मिश्रबन्धु से भी 1899 ई. बताने के कारणत्रय-डॉ. रामविलास शर्मा ने जन्मतिथि 21 फरवरी, 1899 मानी है। किन्तु महिषादल स्कूल में दर्ज 1897 ई. ही जन्मवर्ष लगता है। तिथित्रुटि के अनेक निदर्शन 'निराला की साहित्य-साधना' खंड 3 में दिए हैं। स्वयं मुझसे निराला ने बताया था कि वे कानपुर के रहने वाले हैं। वसन्त पंचमी को उनकी जयन्ती भी काल्पनिक है, यद्यपि निराला ऐसा चाहते थे।

जाज्वलयमान् रत्न हैं। यद्यपि उन्होंने सम्भवतः आर्थिक कारणों से 'लिली', 'चतुरी चमार', सुकुल की बीबी', 'सखी' शीर्षक कहानीसंग्रह तथा 'अप्सरा', 'अलका', 'प्रभावती', 'निरुपमा', 'कुल्ली भाट', 'बिल्लेसुर बकरिहा' शीर्षक उपन्यास तथा 'प्रबन्ध-पद्म' शीर्षक निबन्ध-संग्रह भी लिखे हैं, जिनमें 'बिल्लेसुर बकरिहा' अपने सजीव ग्राम-चित्रण एवं 'अपने' कान्यकुब्ज-समाज पर तीखे व्यंग्य के कारण अत्यन्त रोचक है तथा 'प्रभावती' रोमांस और रोमांच से ऊभचूभ जयचन्द्रकालीन ऐतिहासिकता के कारण विलक्षण, तथापि वे पन्त के सदृश प्रमुखतः कवि ही थे, प्रसाद एवं अज्ञेय के सदृश बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न कलाकार नहीं, महादेवी के सदृश कवि के अतिरिक्त सफल अन्यविधाकर (रेखाचित्रकार) नहीं। किन्तु निराला का विश्वकवि-रूप विराट् एवं सशक्त, मौलिक एवं युगान्तरकारी है। वस्तुपरक कविता एवं आत्मपरक कविता की सृष्टि में एकरस सफलता, 'प्रस्थान'-गरिमा एवं प्रभाव-प्रेरणा में निराला ने स्वछन्तावाद (छायावाद) तथा यथार्थवाद के उभय रूपों (समाजपरक या प्रगतिवादी तथा व्यक्तिपरक या प्रयोगवादी) को इतना अधिक प्रभावित किया है कि पन्त, रामविलास शर्मा, गिरिजाकुमार माथुर इत्यादि ने उनकी एकरस काव्य-स्तुति की है, नन्ददुलारे वाजपेयी (हिन्दी-साहित्य : बीसवीं शताब्दी), रामविलास शर्मा ('निराला' एवं 'निराला की साहित्य-साधना'), बच्चनसिंह (क्रान्तिकारी कवि निराला), बुद्धसेन 'नीहार' (विश्वकवि निराला), रामअवध शास्त्री (निराला व्यक्ति और कवि) इत्यादि ने आलोचना-प्रतिष्ठा और 'महाप्राण', 'कालजयी', 'निराला' जैसे प्रभावी काव्य एवं 'संगम' विशेषांक इत्यादि उनके विलक्षण व्यक्तित्व के स्मारक हैं। डॉ. एन. चन्द्रशेखरन् नायर के अनुसार निराला पर 150 शोधकार्य हो चुके हैं। यद्यपि संयोगात् उनका जन्म महिषादल राज्य (बंगाल) एवं देहान्त प्रयाग में हुआ था तथापि वे मूलनिवासी गढ़कोला (ज़िला उन्नाव, उत्तर प्रदेश) के थे, जहाँ उनका छोटा-सा स्मारक भी बना है और निराला डिग्री कॉलेज भी है। डलमऊ (रायबरेली में उनकी ससुराल थी, जहाँ उनका स्मारक बना है, उनकी मूर्ति लगी है)। डलमऊ और रायबरेली, लखनऊ और कानपुर में निराला के अनेक सुहृद्जन मुझे शत-शत तथ्य बता चुके हैं। कानपुर, रायबरेली, लखनऊ भोपाल इत्यादि में निराला नगर विद्यमान हैं। सुदूर नागपुर में उनके नाम पर विद्यालय विद्यमान है। 'निराला' जैसे समानोपनामी उनके प्रभाव की सूचना देते हैं। उनकी 'वीणावादिनि', वर दो!' शीर्षक कविता समग्र हिन्दी-क्षेत्र की प्रख्यात वन्दना बन गई है। यथासमय यह बाहर भी गाई जाती है। 1997 ई. में उनका जन्मशताब्दी-वर्ष सारे देश में बड़े जोर-शोर से मनाया गया। निराला के व्यक्तित्व की लोकप्रियता भी शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से अप्रतिम सिद्ध हुई है। निराला की 'बादल-राग', 'विधवा'[1], 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर', 'कुकरमुत्ता' जैसी कविताएँ मुक्तिबोध, नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन', महेन्द्र भटनागर इत्यादि साम्यवादी कवियों तथा रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, नामवर सिंह, मैनेजर पांडेय इत्यादि साम्यवादी आलोचकों को संस्फुरित करती रही हैं। उनका इन कविताओं एवं यत्र-तत्र सर्वत्र व्यक्त दीनदलित-संवदेन तथा इतिहास-बोध दिनकर को प्रभावित करता रहा है, उनके मुक्त छन्द ने अज्ञेय को प्रेरित किया है। इससे सिद्ध होता है कि निराला जीवन के विराट् द्रष्टा थे, जिनमें कवि एवं आलोचक इत्यादि आश्रय प्राप्त कर सकते थे। खड़ीबोली—कविता में मैथिलीशरण एवं प्रसाद अग्रणी हैं, किन्तु प्रभाव एवं प्रेरणा में निराला को ही अप्रतिम मानना पड़ता है।

विलक्षण व्यक्तित्व

निराला का कृतित्व महान् है, क्योंकि खड़ीबोली-कविता में वे मैथिलीशरण एवं प्रसाद के अनन्तर अन्यतम हैं, किन्तु उनका व्यक्तित्व तो अद्वितीय ही है। वे असाधारण आकार-प्रकार के स्वामी थे : पाँच फुट साढ़े-ग्यारह इंच का काफी ऊँचा डील-डौल, बड़ी-बड़ी आँखें, प्रभावशाली स्वर! बाईस वर्ष की आयु में छाती उनतालीस इंच की थी। उनके व्यक्तित्व की तुलना में आधुनिक भारत का कोई साहित्यकार नहीं आ पाता। जो विदेशी उनसे मिलने जाते, वे चकित रह जाते थे। एक महिला ने कहा था, "यदि यह पश्चिम में होते तो केवल 'मॉडेल' के रूप में लाखों पाते रहते!" निराला एक जीता-जागाता अपोलो, निराला एक जीता-जागता हरक्युलिस। मैंने 1959 ई. में उनके दर्शन के अनन्तर जो संस्मरण लिखा था उसमें उनको 'हिन्दी का हरक्युलिस' कहा था तथा हर्ष है कि इस विशेषण का प्रयोग अन्यत्र भी किया गया है। किन्तु माता, पिता, पुत्री, पत्नी की एक के बाद एक ताबड़तोड़-मृत्युओं ने उनके मस्तिष्क को क्षत-विक्षत कर दिया था। शैशव में पिता की भयानक मार ने उनकी मस्तिष्क-क्षति अवश्य की होगी या फिर उनके असामान्य रूप से उच्छृंखल होने के कारण ही पिता को विवश होना पड़ता रहा होगा? वे सर्वमांसभक्षी, शराबी, भँगेड़ी और बदचलन तो थे ही। गढ़ाकोला से भगाए

---

[1] पण्डित रामनाथ ज्योतिषी (जोतिसी) कृत 'विधवा-बत्तीसी' कविता पूर्ववर्ती, मार्मिक एवं व्यावहारिक होते हुए भी निराला की 'विधवा' की समता नहीं कर पाती : न कला-गौरव में, न कसावट में, न भाषा-शक्ति में। 'हिन्दी-कविता में विधवा' लघुप्रबन्ध में अच्छा विषय है।

गए। ससुराल (डलमऊ, ज़िला रायबरेली) में जा टिकते तथा फ़िज़ूल-ख़र्ची करते (जैसा कि स्वयं उनके आत्मकथात्मक उपन्यास 'कुल्ली भाट' से भी स्पष्ट होता है)। कालान्तर में भी वे अन्धाधुन्ध भाँग या शराब पीते, म्लेच्छ-भोजनालयों में घुसकर गोमांस इत्यादि का भक्षण करते, रंडियों के कोठों पर धड़ल्ले से चले जाते।[1] उनके पुत्र (रामकृष्ण त्रिपाठी भव्य व्यक्तित्व के संगीत-शिक्षक मई, 1999 में दिवंगत) तक को अलग रहना पड़ा क्योंकि बहू डरती थी! सुमित्राकुमारी सिन्हा से सम्बन्धों की चर्चा लखनऊ-उन्नाव वासी आज भी करते हैं। मुझे यह डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र एवं श्री गंगारत्न पांडेय से ज्ञात हुआ। स्व. शिवशंकर मिश्र ने निराला के सुमित्राकुमारी सिन्हा से कठोर और अपमानजनक व्यवहार का वृत्त सुनाया था। प्रेम की भूख ने निराला का अन्तर विशृंखल कर दिया था। वे अपनी पत्नी मनोहरादेवी को बहुत चाहते थे (जैसाकि 'गीतिका' के समर्पण से भी स्पष्ट होता है)। मनोहरादेवी के रामचरितमानस के नियमित पाठ की प्रेरणा से ही उन्होंने हिन्दी सीखी (क्योंकि महिषादल के जन्म एवं शैशव-यापन के कारण बांग्ला ही मातृभाषा बन गई थी) तथा 'तुलसीदास' जैसा सशक्त सांस्कृतिक काव्य रचा। यदि वे जीवित रहतीं तो सम्भव था कि निराला विक्षिप्त[2] न होते, भले ही असामान्य बने रहते। निराला ग़ालिब की तरह शराबी, व्यभिचारी इत्यादि तो थे पर कर्ज़ख़ोर, जुआरी और सज़ायाफ़्ता नहीं। वे ग़ालिब की तरह कोरे ऐयाश भी न थे क्योंकि उनका जीवन परोपकारों से भरा था। उनकी कविता दीन-दलितों के प्रति संवेदन से सराबोर है। वे ग़ालिब की तरह नामनिहाल बादशाह बहादुरशाह 'जफ़र' की चापलूसी (पाँव धोकर पीने तक की दूरी तक जाने वाली घटिया चापलूसी) तथा अंग्रेज़ों से पेंशन के लिए याचना-पर-याचना करने वाले ओछे अवसरवादी भी न थे। पागल होने पर भी वे झुके नहीं थे। कांट एवं नीत्शे जैसे दार्शनिक विक्षिप्त हुए, क्रिस्टॉफर स्मार्ट एवं एज़्रा पॉउंड जैसे कवि विक्षिप्त हुए, राहुल सांकृत्यायन एवं मुक्तिबोध विक्षिप्त हुएः प्रतिभा में विक्षिप्तता का एक अंश विद्यमान रहता है! किन्तु निराला एक लम्बे अर्से तक विक्षिप्त रहे जिसका कारण सम्भवतः उनका अपारशक्ति-सम्पन्न शरीर था जो विक्षिप्तता तक से जूझता ही नहीं रहा अपितु 'अर्चना', 'आराधना', 'गीतगुंज' की भक्तिकाव्य-सृष्टि एवं नवरहस्यवादी-सृष्टि भी करता रहा। उनके विक्षिप्त होने तथा अवसरवादियों की स्वार्थवृत्ति पर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त (जिनका वे बेहद आदर करते थे—पहुँचते ही घड़ा उठाकर संगम से गंगाजल लाने दौड़ पड़ते थे) बहुत व्यथित हुए थे :

> आज कहीं नरसिंह निराला हो जाता हतचेत न हाय,
> तो क्या स्वार्थ साध पाते तुम उसे बनाकर बूढ़ी गाय!
> भलेमानुसो, दया करो अब उसको अपमानित न करो;
> ईश्वर को क्या उत्तर दोगे करके तुम ऐसा अन्याय?

उनके पागलन का व्यंग्य एवं परिहास भी कम नहीं हुए (जिनमें एक भगवतीचरण वर्मा कृत प्रसिद्ध उपन्यास 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के 'पागल जी' के रूप में देखा जा सकता है—इसकी 'करुणदेवी' महादेवी हैं)।

दुर्दमनीय अहं किन्तु सहज अद्वय भी

अहं प्रतिभा का प्राण है। अहं का सशक्त एवं उदात्त रूप ही याज्ञवल्क्य के 'अहं ब्रह्मास्मि', उद्दालक के 'तत्त्वमसि', राम के 'द्विर्नाभिभाषते', कृष्ण के 'योगक्षेम वहाम्यहम्', सिद्धार्थ के 'बोध', वर्द्धमान के 'जिन'-रूप, ईसा के ईश्वरपुत्रत्व, मोहम्मद के रसूल-रूप, कबीर के 'ज्यों-की-त्यों धरि दीन्हीं चदरिया', तुलसी के 'खल परिहास होय हित मोरा' इत्यादि से होता हुआ निराला के पैसे में दस

---

[1] कर्वी (बाँदा) के प्रवासकाल में उन पर चोरी का आरोप लगाकर फँसाया (थाना-वंदी) तक गया, जिससे रायबहादुर श्रीनारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर' ने बचाया था। मुझे ये प्रख्यात हास्यकवि शारदाप्रसाद 'भुशुंडि' ने बताया। 'श्रीवर' (स्व. पद्मभूषण श्रीनारायण चतुर्वेदी) के पास क़ाग़ज़ात मौजूद थे। इस विशाल इतिहास के परिशिष्ट किन्तु वस्तुतः स्वतन्त्र-ग्रन्थरूप में प्रकाशित मेरे 'दोसौ अस्सी साहित्यकार' में 'भुशुंडि' जी का 'अछूता संस्मरण' (पृष्ठ 71-74) इस दृष्टि से एक अभिलेख माना जा सकता है। फ्रांस के लेखक ज्याँ जेने चोर थे किन्तु उन पर लिखे ग्रन्थ में सार्त्र ने उन्हें सन्त कहा है। पतरस (पीटर) जैसे सन्त झूठे थे, पॉल छली-कपटी, यह बाइबिल (न्यू टेस्टामेन्ट) से ही स्पष्ट है! लखनऊ-प्रवास में मारपीट के किस्से आज तक प्रचलित है। मॉर्लो के सदृश, निराला साहित्य-साँड़ अवश्य थे।

[2] गंगाप्रसाद पांडेय (महाप्राण निराला) एवं क्षेमचन्द्र 'सुमन' (दिवंगत हिन्दीसेवी) ने विक्षिप्तता का तात्कालिक कारण अर्द्धशती-पूर्ति पर आ. नन्ददुलारे वाजपेयी इत्यादि द्वारा अभिनन्दन-समारोह तथा अर्द्धशत-सहस्त्र रुपए की थैली भेंट करने के वचन तथा भव्य समारोह करके भी छूँछी थैली भेंट करने की घटना को माना है। निराला ने 50000 रुपए के अनुरूप योजनाएँ बना डाली थीं जो थैली प्राप्त करते समय तक फलती-फूलती रहीं किन्तु घर पर आकर थैली खोलते ही खेदपत्र को देखकर तहस-नहस हो गईं! आज तो थैलियों और पुरस्कारों के धंधों में यह फंदा ज़्यादा बड़ा हो चुका है।

राष्ट्रीय गीत रचकर 'गदर्भ-मर्दन स्वर' गाने वाले कवियों के परिहास तथा 'अभी न होगा मेरा अन्त' के विश्वास इत्यादि तक प्रसरित है। उन्होंने गाँधी के 'हिन्दी में कोई रवीन्द्र नहीं' की ऐसी आलोचना की कि वे हक्के-बक्के रह गए। उन्होंने नेहरू का दिल्ली-आमन्त्रण ठुकराकर हिन्दी की अस्मिता की रक्षा की। हाँ, राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद अवश्य उनके घर जाकर मिले थे। उनके चरितनायक तुलसी का उल्लेख आईने-अकबरी में नहीं, उनका स्वर आकाशवाणी के पास नहीं : क्या महानता है! निराला को कोई सरकारी पुरस्कार नहीं मिलाः क्या गरिमा है! निराला एक ऐसा महान् साधक था जो सिद्ध होकर अमर बना! उसके महान् व्यक्तित्व की भंगिमाएँ कबीर एवं भारतेन्दु का स्मरण कराती हैं। गोल्डस्मिथ की तरह उसने जो पाया आँख मूँदकर लुटा दिया : कभी मुन्शी नवजादिकलाल की विधवा को, कभी सड़क के किनारे पड़े ठिठुरते भिक्षुक को (तभी तो उसकी 'विधवा' एवं 'भिक्षुक' जैसी कविताएँ इतनी जानदार हैं)। निराला सच्चा अद्वैतवादी था : प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक अतिथि के लिए आदर एवं प्रेम बरसाने वाला।[1] उसने बड़बोलों और पाखंडियों को कभी बख़्शा नहीं, उसने मनुष्य का सदैव आदर किया। निराला अपने जीवनकाल में ही पुराण बन गया था!

सशक्त आत्मपरक काव्य

निराला पौरुष का कवि है। उसकी कविता शक्ति से ऊभचूभ है। वह द्रष्टा था। उसकी 'बादल-राग', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'जागो फिर एक बार', 'यमुना के प्रति' प्रभृति राष्ट्रीय कविताएँ उन राष्ट्रीय कविताओं से भिन्न हैं जो सामयिक नेताओं से अभिभूत होकर लिखी गई तथा व्यर्थ गईं 'बापू' (सियारामशरण गुप्त) हो या 'गाँधीचरितमानस' (विद्याधर महाजन), 'जगदालोक' (गोपालशरण सिंह) हो या 'गाँधी-पारायण' (अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य'), गाँधी पर रचित सारे खंडकाव्य एवं महाकाव्य तक उपेक्षित पड़े हैं क्योंकि गाँधी के व्यक्तित्व में महाकाव्य-नायक बनने का दम-ख़म नहीं है। मैथिलीशरण, पन्त, सोहनलाल द्विवेदी की गाँधी पर रचित अच्छी कविताएँ तक विभाजित भारत के हिंस्र इतिहास को नहीं भा सकीं। निराला ने ऐसी रचनाओं पर गहरा व्यंग्य किया था और वह कितना सत्य सिद्ध हुआ! जिन जवाहरलाल नेहरू को पन्त ने 'उपचेतन-वीर' कहा, अनेक कवियों ने कविताओं से महाकाव्य तक रचे, उनकी आलोचना 'इंडिया विन्स फ्रीडम' (दो भाग), 'गिल्टी मेन ऑफ़ इंडिआज़ पार्टीशन', 'फ्रीडम ऐट मिड्नाइट', 'माई डेज़ विद नेहरू', 'मॉउंटबैटेन' इत्यादि ग्रन्थों में प्रात्ययिक रूप से विद्यमान हैं। कश्मीर-समस्या, तिब्बत-समस्या इत्यादि भी उनसे जुड़ी हैं। निराला उनके पिता मोतीलाल नेहरू एवं उनके साम्यवादी रूप से बहुत पहले ही परिचित था (जितने विशाल महाप्राण के नेत्र थे उतनी ही दूरगामी उनकी दृष्टि थी) :

....लक्षपति का भी यदि कुमार होता मैं, शिक्षा पाता अरब-समुद्र-पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पंडित एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल-चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार, चुनती जनता राष्ट्रपति[2] उन्हें ही सुनिर्धार,
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ-मर्दन-स्वर,
(अनामिका : वन वेला)

जिनसे रूस[3] के भाव, मैं कह जाता अस्थिर, समझते विचक्षण ही जब वे छपते फिर-फिर,
फिर पिता संग जनता की सेवा का व्रत मैं लेता अभंग
करता प्रचार मंच पर खड़ा हो, साम्यवाद इतना उदार!

'वन मेला' कविता मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू एवं 'उदार' साम्यवाद पर गहरे व्यंग्य के कारण सर्वथा अमूल्य एवं स्मरणीय है। यशपाल, राहुल, नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन' इत्यादि के अन्धरूसवाद में सत्य का ऐसा गहरा रूप कहाँ मिल सकता है? और निष्ठा की शक्ति का चमत्कार यह है कि हिन्दी का श्रेष्ठ साम्यवादी आलोचक (जो कवि भी है) डॉ. रामविलास शर्मा निराला का भक्त

---

[1] जब 1959 ई. में मैं निराला से मिला तब एक युवा प्राध्यापक मात्र था। दारागंज की उस संकरी गली में घुसा ही था कि देखा कमरे से चबूतरे पर निकलकर एक भूधराकर 'जटा-श्मश्रुधारी' महामानव आ खड़ा हुआ है! उन्होंने चरण-स्पर्श से रोका, 'चर्मरोग हो गया है!' मैंने कहा, 'किन्तु मैं तो ये चरण छूने ही आया हूँ : प्रयाग की तीर्थराजयात्रा कैसे पूर्ण होगी?' छू लेने दिया और तत्काल एक भारी लोटे में पानी ले आए, "हाथ धो लो!" सबके प्रति अकृत्रिम प्रेमादर के दर्शन 1964 ई. में मैथिलीशरण से दिल्ली में मिलने पर भी हुए; वे तब तक आसन-स्थित नहीं हुए जब तक मैं बैठा नहीं! जब 'घट' 'पूर्ण' होता है तब छलकता नहीं और 'अध-जल गगरी छलकत जात'!

[2] कांग्रेस-अध्यक्ष।

[3] जवाहरलाल नेहरू 1928 ई. में रूए गए और लौटते ही एक पुस्तक लिखी जो 'रूस की सैर' के रूप में हिन्दी में भी निकली।

है, हिन्दी में साम्यवादी साहित्य का श्रेष्ठ प्रकाशन राजकमल प्रकाशन (नयी दिल्ली) स्फीत 'निराला-ग्रन्थावली' प्रकाशित करता है! भारी अखाड़िए और चेले-चाँटियों के बीच शक्ति के पुंज रामचन्द्र शुक्ल पर प्रहार का साहस देखिए :

जब से एफ.ए. में फेल हुआ हमारे कॉलेज का बचुवा!
नाक दबाकर संपुट साधे, महादेव जी को आराधे,
भंग छानकर रोज़ रात को खाता मालपुआ।
वाल्मीकि को बाबा माने, नाना व्यासदेव को जाने,
चाचा महिषासुर को, दुर्गा जी को सगी बुआ।
हिंदी का लिक्खाड़ बड़ा वह, जब देखो तब अड़ा पड़ा वह,
छायावाद-रहस्यवाद के भावों का बटुआ।[1]
धीरे-धीरे रगड़-रगड़ कर, श्री गणेश से झगड़-झगड़ कर,
नत्थाराम बन गया है अब पहले का नथुआ।
हमारे कॉलेज को बचुआ।

निराला की निष्ठा की शक्ति की 'ध्वनि'[2] सदा गूँजती रहेगीः

अभी न होगा मेरा अंत।
अभी-अभी ही तो आया है
मेरे मन में मृदुल वसंत—
अभी न होगा मेरा अंत
हरे-हरे ये पात,
डालियाँ, कलियाँ कोमल गात।
मैं ही अपना स्वप्न-मृदुल-कर
फेरूँगा निदिंत कलियों पर
जगा एक प्रत्यूष मनोहर।
पुष्प-पुष्प से तन्द्रालस लालसा खींच लूँगा मैं,
अपने नवजीवन का अमृत सहर्ष सींच दूँगा मैं,
द्वार दिखा दूँगा फिर उनको
हैं मेरे वे जहाँ अनन्त—
अभी न होगा मेरा अंत।[3]...

स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) एक लहर थी जो कुछ तो प्रकृति, नारी, ईश्वर प्रभृति के प्रति प्राच्य-पाश्चात्य नवबौद्धिकता के विकास तथा कुछ रवीन्द्र की कबीर की आत्मा को विद्यापति के संगीत से सजाकर नवप्रस्तुति द्वारा पश्चिम को अत्यधिक प्रभावित कर नोबेल-प्राइज़ प्राप्त करने की सफलता के कारण साहित्य-भूमि पर अपूर्व शोभा के साथ गतिशील हो चली। निस्सन्देह इस धारा के भगीरथ पन्त थे, जिनका 'पल्लव' नव्यता एवं भव्यता का प्रथम अमर एवं व्यवस्थित स्मारक है, जिसका 'प्रवेश' स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) का घोषणापत्र माना जा सकता है, किन्तु जिसका जाना-अनजाना अवतरण 'जूही की कली' जैसी कविताओं द्वारा निराला एवं 'खोलो द्वार' जैसी ('झरना' की) कविताओं द्वारा प्रसाद भी कह रहे थे; अतः इसका कोई एक उद्घाटनकर्त्ता घोषित करना कठिन है, यद्यपि आरम्भ में 'पन्त, प्रसाद, निराला' का क्रम चलता था जो कालान्तर में 'कामायनी' के इन्द्रजाल के कारण 'प्रसाद, पन्त, निराला' हुआ तथा संप्रति 'प्रसाद, निराला, पन्त' है (महाकाव्य-गरिमामंडित प्रसाद, नव्यता-मौलिकता-गरिमामंडित निराला एवं कला-शिल्प-गरिमामंडित

---

[1] मैं "छायावाद-रहस्यवाद का दबा रहा टेंटुआ" लिखता।

[2] 'परिमल' की एक अमर कविता।

[3] अब-'कभी न होगा मेरा अंत' पाठ होना चाहिए!

पन्त की त्रिमूर्ति का यह क्रम वरिष्ठता-तोषक भी है)। निराला की पन्त के प्रति ईर्ष्या विश्रुत है, यद्यपि 'कवियों में सौम्य सन्त' (पन्त) ने उनके सारे अत्याचार शान्ति एवं शालीनता से सहे—यही नहीं, उन पर 'निराला' शीर्षक कविता तक लिखी! 'जूही की कली' का सृजन 1916 ई. में हुआ बताया जाताढ्है, यद्यपि कतिपय स्रोत इस तिथि को आरोपित मानते हैं तथा कविता को परवर्ती। फिर भी, निराला का स्वयं को नयी कविता का अग्रदूत घोषित करना अहं का विस्फोट मात्र नहीं है (क्योंकि वे प्रसाद एवं पन्त के साथ-साथ वसन्त के अग्रदूत अवश्य थे) :

मैं जीर्ण-साज बहुत छिद्र आज, तुम सुदल सुरंग सुवास सुमन[1],
मैं हूँ केवल पदतल-आसन, तुम सहज विराजे महाराज।
ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि मैं ही[2] वसंत का अग्रदूत....[3]

बौद्धिककाल की समग्र कविता में निराला की आत्मपरक कविता अद्वितीय है, जिसका कारण उनका संघर्ष के हलाहल के सततपान से पुष्ट शिव-रूप है। तुलसी के बाद जीवन-संघर्ष की जितनी ज्वालाओं में निराला जला उतनी में कोई अन्य कवि नहीं। समग्र हिन्दी-साहित्य में सर्वश्रेष्ठ आत्मपरक कविता तुलसी ने रची है जो सामान्यतः रामचरितमानस एवं विशेषतः कवितावली में उपलब्ध होती है, कतिपय अन्य ग्रन्थों में भी जिसके बिन्दु प्राप्त हो जाते हैं, तथा जो तुलसी को आत्मपरक कविता का भी एक विश्व-सीमांत सिद्ध करती है; किन्तु निराला की, विशेषतः 'अनामिका' तथा सामान्यतः 'परिमल', 'अपरा', 'कुकुरमुत्ता', 'आराधना' इत्यादि में प्राप्त आत्मपरक कविता उनको उनके एक नायक (तुलसीदास) के पीछे खड़ा कर सकने की शक्ति रखती है और यह उपलब्धि वस्तुतः महान् है। प्रसाद, पन्त, बच्चन, अज्ञेय इत्यादि की भी आत्मपरक कविताएँ उपलब्ध हैं किन्तु उनमें निराला की व्याप्ति, शक्ति एवं प्रभावान्विति के दर्शन नहीं हो पाते क्योंकि इनके जीवन निराला की-सी विकट ज्वाला में तप कर बारहबानी सोना बनने से वंचित रहे। निराला के जीवन की ज़्वाला तुलसी, सूर, मीराँ तथा कबीर का स्मरण कराती है। प्रतिभा न जन्मजात है, न प्रयत्नजात—वह संघर्षजात है :

प्रतिभा-संघर्ष की दासी, अभाव की
पत्नी, विवशता की
प्रेमिका; वरती है होमर-से, सूर-से
मिल्टन-से अंधों को;
गेटे-से, बायरन-से, स्कॉट-से लँगड़ों को;
पोप-से बौनों, गोल्डस्मिथ-से कुरूपों को;
वाल्मीकि-से डाकू,
व्यास-सदृश मछुए की पुत्री के अनुचित-पुत्र,
कालिदास के से कामुक,
तुलसी-से अनाथ-भिक्षुक,
कबीर-से फ़ाकामस्त,
शेक्सपीयर-से हिरन-चोर,
ग़ालिब-से शराबी-जुँवारी-ऐयाश-सज़ायाफ़्ता,
निराला के से पागल,
पंत, अज्ञेय से विख्यात नपुंसक
उसके कृपापात्र हैं।
जो नहीं कुंठाग्रस्त
जो नहीं यौनत्रस्त
जो नहीं अलमस्त
जो नहीं जला हुआ
जो नहीं छला हुआ
जो नहीं गला हुआ
जो न कहीं खपा हुआ
सोने-सा तपा हुआ
पागल, अधपागल, विकट
कायर, पाखंडी, नट
वह नहीं प्रतिभाशाली;
सामान्यता और प्रतिभा
धरती और आकाश।....[4]

यद्यपि 'मित्र के प्रति', 'वन-वेला', 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' (अनामिका) तथा 'प्रिया के प्रति' 'ध्वनि', 'अधिवास' (परिमल) इत्यादि में निराला की अनमोल आत्मपरक कविता के प्रभावी दर्शन होते हैं तथापि इस दृष्टि से 'सरोज-स्मृति' (अनामिका) उनकी सर्वश्रेष्ठ कविता है जिसका गहन करुणा, मार्मिक अन्तर्व्यथा, निश्छल कुंठा-विवृति एवं सहज अभिव्यक्ति विश्व-साहित्य की एक निधि

---

1. 'पल्लव' की ओर संकेत। सुक्दल/अच्छा दल (समर्थकों को)। निराला ने 'पन्त और 'पल्लव' पुस्तक लिखकर पन्त को चौरकार्य में निपुण सिद्ध किया था।
2. 'भी' ठीक होगा।
3. हिन्दी के सुमनों के प्रति' (अनामिका)।
4. (मेरी) 'प्रतिभा' ('बौद्धिकरस' संग्रह : 1964 ई.) का यत्किंचित् परिवर्तित आरम्भिक अंश।

है। 'सरोज-स्मृति' आधुनिककला की करुणरस की सर्वश्रेष्ठ कविता तो है ही, सर्वश्रेष्ठ आत्मपरक कविता भी है। सरोज की वधू-शोभा के वर्णन से वे नहीं कतराए। उन्होंने सौभाग्य-शय्या स्वयं बनाई-सजाई-सँवारी थी जिसका वर्णन 'महाप्राण निराला और स्वतन्त्रता-संग्राम के अमर सेनानी रामेश्वरप्रसाद' (पृष्ठ 23) में उपलब्ध है। पत्नी मनोहरादेवी के देहान्त के बाद, निराला ने सरोज और उसके अनुज रामकृष्ण त्रिपाठी को माता-पिता दोनों का वात्सल्य प्रदान किया था। राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास' एवं 'सरोज-स्मृति' निराला की सर्वश्रेष्ठ कविताएँ हैं तथा इस स्तर की तीन लम्बी कविताएँ किसी हिन्दी-कवि ने नहीं लिख पाई-लम्बी कविताओं के 'प्रतीक' स्रष्टा ('चाँद का मुँह टेढ़ा है' के कवि) मुक्तिबोध भी नहीं, क्योंकि उनकी अनुभूति सुचिंतित-सुनियोजित-संकीर्ण है तथा अभिव्यक्ति शुष्क-एकवत्-गद्यात्मक (वैसे, वे निराला के स्तर के कवि भी नहीं हैं; अधिक-से-अधिक छोटे-निराला हैं : क्रान्तदर्शिता में, प्रखरता में, उन्माद में)। 'सरोज-स्मृति' से स्पष्ट हो जाता है कि हिमालय-वत् विराट् निराला कितना हिमावृत एवं कितना द्रवणशील था। डॉ. पवनकुमार के शब्दों में, ''सरोज-स्मृति के प्रणेता निराला ने हिन्दी को सर्वश्रेष्ठ शोकगीत दिया है।''[1] अंग्रेज़ी में एलेजी और फ़ारसी तथा उर्दू में मर्सिया की हर कसौटी पर 'सरोज-स्मृति' एक महान् कविता है। यह वर्णनात्मक कविता यत्र-तत्र अस्पष्ट[2] होने पर भी साधारणीकरण-सक्षम पाठक नेत्रों को उतने ही अश्रुओं की मुक्तामाला से विलासित कर सकती है जितने से इसका अजर-अमर स्रष्टा हुआ था! पुत्री सरोज की नानाआयामी स्मृति, उसकी विवाह-समस्या, उसकी वधू-शोभा, उसकी रुग्णता, अपनी निरुपाय अर्थकृच्छता इत्यादि का मार्मिक वर्णन कविता को निराला की आत्मकथा बना देता है :

जाना तो अर्थागमोपाय पर रहा सदा संकुचित-काय
लख कर अनर्थ आर्थिक पथ पर हारता रहा मैं स्वयं समर।....
क्षीण का छीना न कभी अन्न, मैं लख न सका वे दृग विपन्न....
सोचा है नत हो बार-बार—''यह हिन्दी का स्नेहोपहार,
यह नहीं हार मेरी, भास्वर यह रत्नहार-लोकोत्तर वर!''

नव्यता का सर्वश्रेष्ठ वाहक

निराला नवयुग-प्रतीक महाकवि हैं। स्वच्छन्दतावादी (छायावाद) हो या यथार्थवाद का समाजपरक-रूप (प्रगतिवाद) तथा व्यक्तिपरक-रूप (प्रयोगवाद), सबके इतिहास-पुरुष के रूप में जाज्वल्यमान्! वे नवगीत के भी अग्रदूत थे। विराट् जीवन के सहज कवि थे। 'परिमल' वह महान् काव्य-संकलन है जो नव्यता के इतिहास-पथ पर मील का पत्थर है :

जग ज्योतिर्मय कर दो!
प्रिय कोमल-पद-गामिनि! मंद उतर
जीवन्मृत तरु-तृण-गुल्मों की पृथ्वी पर
हँस-हँस निज पथ आलोकित कर,
नूतन जीवन भर दो!
जग को ज्योतिर्मय कर दो।[3]

नव्यता का कवि निराला, ज्योति का कवि निराला अपनी गहन सांस्कृतिकता एवं अद्वय-साधना में आद्यंत एकरस रहा, जैसा कि 'गीतिका' की विख्यात एवं लोकप्रिय प्रार्थना से भी स्पष्ट है।

आदि (परिमल) हो या मध्य (गीतिका) या अन्त (गीतागुंज), निराला सर्वत्र जनसंवेदन का, समता का, प्रगति का, ज्योति का कवि है :

माँ! अपने आलोक निखारो,
नर को नरस्त्रास से वारो।
(अर्चना)

---

1. 'सानुबन्ध', जून, 1987, पृष्ठ 13 एवं 'युगकवि निराला' (सं. डॉ. रजनीकान्त लहरी) में ''कवि निराला और 'सरोज-स्मृति' '' लेख।
2. अस्पष्टता निराला की अनेक कविताओं का प्रधान दोष है जिसका कारण उसकी अस्पष्ट मास्तिष्किक स्थिति को ही माना जा सकता है।
3. 'प्रार्थना' (परिमल)

निराला की नव्यता, प्रगतिशीलता, क्रान्तदर्शिता की भारत की महान् संस्कृति से पूर्ण मैत्री है। वे वेद, शास्त्र, पुराण, राम, हनुमान्, तुलसीदास, सब के साथ के आरोहण करते हैं, कटे कनकौवे की तरह अकेले-अकेले अवरोहण नहीं करते। ईश्वर, आत्मा इत्यादि का विरोध अब कालातीत हो चुका है। प्रगति की आरम्भिक प्रदर्शनमूलक चकपकाहट में साहित्यकार धर्म पर जो प्रहार कर गए हैं वे कालातीत एवं व्यर्थपरिणामी सिद्ध हो चुके हैं।

प्रस्तुत हैं निराला की वे (पूर्ण एवं आंशिक) प्रसिद्ध कविताएँ जिन्होंने स्वच्छन्दतावाद (छायावाद), रहस्यवाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के उद्‌घाटन के इतिहास में अमरता प्राप्त की है तथा जिनकी बिम्बधर्मिता, उदात्तविभूति, कलात्मकता एवं संगीतसम्पन्नता अप्रतिम है :

1. जूही की कली[1]

विजन-वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग-भरी—स्नेह-स्वप्न-मग्न—
अमल-कोमल-तनु तरुणी-जूही की कली,
दृग वंद किए, शिथिल-पत्रांक में,
वासंती निशा थी;
विरह-विधुर-प्रिया-संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।...

2. तुम और मैं

तुम तुंग-हिमालय-शृंग
और मैं चंचल-गति सुर-सरिता;
तुम विमल हृदय उच्छ्वास
और मैं कांत-कामिनी-कविता।
तुम प्रेम और मैं शांति,
तुम सुरापान-घन-अंधकार,
मैं हूँ मतवाली भ्रांति।
तुम दिनकर के खर किरण-जाल,
मैं सरसिज की मुसकान;
तुम वर्षों के बीत वियोग,
मैं हूँ पिछली पहचान।...
तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरंजिनी भाषा
तुम नंदन-वन-घन-विटप
और मैं सुख-शीतल-तल शाखा।[2]

---

[1] जब किसी ने शंका प्रकट की कि जूही वसंत में नहीं खिलती तब निराला ने कहा कि उनका शैशव बंगाल में बीता था जहाँ सदा-सर्वदा वसंत रहता है! वसन्त में जन्मदिवस भी कल्पित है। निरालेपन के दो प्रमाण!

[2] एक बार मेरी आचार्य शुक्ल के (विद्रोही) शिष्य स्वर्गीय पंडित कृष्णशंकर शुक्ल से 'तुम और मैं' कविता की चर्चा चल रही थी तो उन्होंने 'प्रभुजी, तुम इंजन हम डिब्बा' व्यंग्य-पंक्ति सुनाई। यह सत्य है कि आत्मा-परमात्मा का ऐसा सम्बन्ध-निरूपण कबीर, रैदास, नानक इत्यादि संतो तथा जायसी, मंझन, नूरमोहम्मद इत्यादि सूफ़ियों ने पर्याप्तरूपेण किया है तथापि इसकी अद्वयता चिरंतन है जिसे निराला ने सर्वाधिक व्यापक रूप प्रदान किया है।

3. अधिवास

....मैंने 'मैं'–शैली अपनाई,
देखा दुखी एक निज भाई,
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे
झट उमड़ वेदना आई;
उसके निकट निकट गया मैं धाय,
लगाया उसे गले से हाय!....

4. विधवा

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी,
वह दीपशिखा-सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल-तांडव की स्मृतिरेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन–
दलित भारत की विधवा है।....

5. भिक्षुक

वह आता–
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट, पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को–भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का फैलाता–
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएं से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दयादृष्टि पाने की ओर बढ़ाए।
भूख से सूख ओंठ जब जाते
दाता-भाग्यविधाता से क्या पाते?–
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।[1]

निराला की गहन एवं मौलिक क्रान्तदर्शिता न राहुल, यशपाल, नागार्जुन, शिवमंगल सिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, रामदरश मिश्र इत्यादि की क्रान्तदर्शिता के सदृश आयातित है और न पन्त, दिनकर, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' इत्यादि की क्रान्तदर्शिता के सदृश बौद्धिक; वह अंतरात्मा के अतल से निःसृत अद्वैत की पावन गीतिका है; इसीलिए, वह अधिक प्रभावी

---

[1] चीन ने 1948 ई. में क्रान्ति की, भारत ने 1947 ई. में स्वतन्त्रता प्राप्त की। चीन में 1949 ई. में भिखारी नामक प्राचीन दासता एवं शोषण के युगों का एक भी प्रतीक नहीं रह गया था, भारत में 'समाजवाद' के कोटि-कोटि उद्घोषों के बावजूद 1997 ई. में उनकी संख्या कम-से-कम नब्बे लाख होगी और वे कांग्रेस-शासित राज्यों में भी दृष्टिगोचर होते हैं, कम्युनिस्ट-शासित राज्यों में भी, अन्य राज्यों में भी। एक-एक भिखारी शासकों के शाही गालों पर पड़ने वाला एक-एक करारा थप्पड़ है!

है, अधिक प्रेरक है। निराला ने नव्य-संवेदन की गंगा बहाई थी, बहती गंगा में हाथ नहीं धोए थे। उन्होंने भोग-भोगकर लिखा था, सोच-सोचकर नहीं। हिन्दी के समग्र आधुनिक साहित्यकारों में निराला सर्वश्रेष्ठ क्रान्तदर्शी हैं, प्रगतिशील हैं, संवेदनशील हैं।

नवरहस्यवाद

निराला अद्वैतवादी थे। अद्वैतवाद रहस्यवाद का मेरुदंड है, जिसने प्लेटो, ईसा, मंसूर इत्यादि सूफ़ियों, मध्यकालीन ईसाई-रहस्यवादियों, सभी को प्रभावित किया है। स्वच्छन्दतावाद के लिए प्रयुक्त छायावाद अभिधान में 'छाया' शब्द को 'रहस्य' का पर्यायवाची मानने का मुकुटधर पांडेय, रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा इत्यादि का आग्रह स्वयं मुकुटधर पांडेय, प्रसाद, डॉ. गुलाबराय, डॉ. नगेन्द्र इत्यादि के द्वारा खंडित किया जा चुका है क्योंकि 'छाया' से प्रयोजन 'प्रतीक' का था, जिसके व्यापकतर आयामों के एक पक्ष के रूप में 'रहस्य' भी समाहित हो सकता था। छाया या प्रतीक को अधिकाधिक महत्त्व प्रदान करने के कारण छायावाद शब्द का प्रचलन हुआ, किन्तु सारी या अधिकतर कविता प्रयत्नपूर्वक प्रतीकसंपृक्त रूप में नहीं रची जा सकती; अतः अनुभूति की व्यापकता से निष्पन्न स्वच्छन्दतावाद शब्द अधिक समीचीन है जिसका बांग्ला इत्यादि देशी तथा अंग्रेज़ी इत्यादि विदेशी कविताओं में भी अच्छा इतिहास प्राप्त होता है। स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) की बृहत्त्रयी के एक स्तम्भ के रूप में निराला ने भी कुछ रहस्यवादी कविताएँ रची थीं, जिनमें 'तुम और मैं' इत्यादि स्पष्ट हैं, 'प्रताप के प्रति' इत्यादि प्रतीक या छाया से संपृक्त :

प्रताप के प्रति

अचल के चंचल क्षुद्र प्रपात! मचलते हुए निकल आते हो;
उज्ज्वल! घन-वन-अंधकार के साथ खेलते हो क्यों? क्या पाते हो?
अंधकार पर इतना प्यार, क्या जाने यह बालक का अविचार
बुद्ध का या कि साम्य-व्यवहार! तुम्हारा करता है गतिरोध
पिता का कोई दूत अबोध— किसी पत्थर से टकराते हो
फिरकर ज़रा ठहर जाते हो; उसे जब लेते हो पहचान—
समझ जाते हो उस जड़ का सारा अज्ञान, फूट पड़ती है ओठों पर तब मृदु मुस्कान;
बस अज्ञान की ओर इशारा करके चल देते हो, भर जाते हो उसके अन्तर में तुम अपनी तान।[1]

'तुम और मैं' में स्पष्ट एवं 'प्रताप के प्रति' में प्रतीकात्मक रहस्यवाद पारम्परिक माना जा सकता है। 'अधिवास' में गतिशून्य समाधिजन्य आनन्द या कैवल्य पर शोषित-प्रपीड़ित 'भाई' को गले लगाने की वरीयता में नव्यता विद्यमान है किन्तु वह रवीन्द्र की 'गीतांजलि' में भी प्राप्त हो जाती है। अतः इसे भी रहस्यवाद से दूर करना कठिन है। किन्तु 'गीतिका' के प्रख्यात 'कौन तम के पार?—(रे, कह)' शीर्षक गीत में तम-प्रकाश, पाप-पुण्य, उच्च-निम्न प्रभृति के द्वैत से ऊपर उठने की व्यापकता में नवरहस्यवाद के दर्शन किए जा सकते हैं। रहस्यवाद विविध आध्यात्मिक सम्बन्धों की विवृति को कहते हैं, नवरहस्यवाद इस कोरी विवृति में तर्क के समन्वय पर सिद्ध होता है (अतः दोनों में यत्किचित् अन्तर अवश्य है)। निराला की कविताओं के प्रख्यात संकलन 'राग-विराग' के सम्पादक डॉ. रामविलास शर्मा के शब्दों में, ''ब्रह्म और माया वाले सिद्धान्त के प्रति निराला के मन में संशय हुआ पहले से था।[2] इस संशय की श्रेष्ठ अभिव्यक्ति उनकी 'अधिवास' कविता में है। 'कौन तम के पार?—(रे, कह)'—इस तरह के गीतों में सच्चिदानन्द ब्रह्म का पक्ष छोड़कर अन्धकार, शून्य अथवा प्रकृति को एकमात्र सत्य मानकर निराला उससे संसार और मनुष्य का सम्बन्ध जोड़ते हैं।'' यह आत्मपरक (वस्तु-विरोधी) कथन निराधार है क्योंकि निराला इस गीत में ब्रह्म की सर्वपक्षीय व्याप्ति मंडन करते हैं, न कि सच्चिदानन्द ब्रह्म का पक्ष छोड़ते हैं, दूसरे, 'अराधना', 'अर्चना', 'गीतकुंज' इत्यादि जीवन-संध्या की कृतियाँ निराला को रहस्यवादी, नवरहस्यवादी ही नहीं प्रत्युत भक्त, संत तक सिद्ध करती हैं।

---

[1] परिमल।
[2] 'तुम और मैं' एवं 'प्रताप के प्रति' इत्यादि कविताओं में ऐसा नहीं लगता। स्थापना भ्रामक तो है ही, निराधार भी है।

'कौन तम के पार?—(रे कह)' शीर्षक गहन नवरहस्यवादी गीत में निराला ने कर्मवाद-नियतिवाद इत्यादि की आड़ में श्रेष्ठ-नेष्ठ, उच्च-निम्न, धनी-निर्धन के औचित्य के प्रतिपादक शोषकों को ललकारा है, सच्चिदानन्द ब्रह्म को नहीं, क्योंकि वह समग्र परिसीमाओं से ऊपर है। याज्ञवल्क्य को 'रे' शब्द बहुत प्रिय था। कबीर को भी 'रे' शब्द पसन्द था। इस गीत में निराला के द्वारा 'रे' का प्रयोग ऋषि या संत की शैली का स्मरण कराता है :

कौन तम के पार?—(रे कह)
अखिल-पल के स्रोत, जल-जग गगन घन घन धार—(रे कह)
गंध-व्याकुल-कूल-उर-सर, लहर-कच कर कमल-मुख पर,
हर्ष अलि हर स्पर्श-शर, सर, गूँज बारम्बार!—(रे कह)
निशा प्रिय डर शयन सुख धन सार या कि असार?—(रे कह)

तम के पान कौन? प्रकाश! हे अखिल समय के उत्स! जगजीवन-स्वरूप अथवा आकाश के सघन घनसमूह के रसधार-रूप! बता, तम के पार कौन है? उर-सर के कूल गन्ध से व्याकुल हैं, मुख-कमल पर लहर-केश शोभा विकीर्ण कर रहे हैं, अलि-हर्ष स्पर्श-रूपी (काम)—शर से विजित कर रहा है तथा उसके गुंजार से सर गुंजित है। (छाया या प्रतीक से अभिप्राय है कि भावना-विकल हृदय प्रेम-स्पर्श एवं प्रेम-लीला करता है, प्रेम-वार्ता करता है। कोई इसे वासना तम कह सकता है किन्तु इसकी प्रतिक्रिया प्रकाशकर है, पावन है—इसी से जीवन गुंजरित है)। (सूर्यादि के) उदय से तम विदीर्ण होता है, जागृति आती है; किन्तु अस्त से सुखमय पलकें झँपती, तन कल (चैन) पाता है, रात्रि में प्रिय-उर-शयन का सुख-धन मिलता है। अस्त सार है या असार? (उदय-अस्त दोनों ही सारमय हैं।) जैसे शीतल जल बरसता है वैसे ही आतप भी। (आतप न बरसे तो शीतल जल भी नहीं बरस सकता।) इसी प्रकार, कलुष से भावनामय कोमल कार्य भी संपादित होते हैं। अशिव उपलाकार है, किन्तु वह द्रवित हो जल बनता है तथा मंगल का विधान करता है।[1]

भक्ति एवं प्रपत्ति

जीवन-संध्या में निराला ने 'आराधना' भी की है, 'अर्चना' भी और इसमें उनकी भक्ति एवं प्रपत्ति के 'गीतागुंज' उन्हें तुलसी का उत्तराधिकारी सिद्ध करते हैं। उनकी भक्ति-प्रपत्ति गंगा, कृष्ण, राम, शिव, शक्ति, सभी तक प्रसारित है। 'निराला का भक्तिकाव्य' शोध का सुन्दर विषय है। यह पिष्टपेषणजन्य नहीं है चर्वितचर्वणजन्य नहीं है। इसमें भाव की मौलिकता भी विद्यमान है, कला की भी। वैसे तो निराला का प्रायः सारा काव्य संगीत से विलक्षणतः सम्पन्न है और प्रख्यात संगीत-मर्मज्ञ रंगकर्मी श्री ब.व. कारंत ने ठीक ही कहा है "निराला की लयात्मकता 'अद्भुत' है," लेकिन 'गीतिका', 'आराधना' एवं 'अर्चना' की संगीतात्मकता विशिष्ट है, इसमें सन्देह नहीं। निराला का भक्तिकाव्य उनको एक महान् गीतकार सिद्ध करने में सहायक होता है ('परिमल' के गीतों के साथ, 'गीतिका' की गीतों के साथ)। निराला के भक्तिकाव्य में औपनिषदिक रहस्यवाद भी संपृक्त है। इसमें उनके पूर्ववर्ती काव्य, विशेषतः रहस्यकाव्य, की जटिलता के दर्शन भी कम ही होते हैं। स्थान-स्थान पर यमक-सौन्दर्य मन को प्रभावित करता है। यह निराला-काव्य का एक चिरस्मरणीय अंग है, जिस पर समुचित प्रकाश डाला जाना चाहिए :

1. पतित पावनी, गंगे! निर्मल-जल-कल-रंगे!
2. श्याम-श्यामा के युगल पद कोकनद मन के विनिर्मद।
हृदय के चंदन सुखाशय, नयन के वंदन निरामय,
निश्शरण के निर्गमन के गगन-छाया-तल सदाश्रय,
3. काम के छवि-धाम शमन प्रशमन राम!
सिन्धुरा के सीस सिन्दूर, जगदीश,
मानव सहित-कीश, सीता-सती, नाम।.... **(अर्चना)**

---

[1] गीत अत्यन्त दुरूह है। अतः व्याख्या कर दी है। इसकी ठीक व्याख्या देखने-सुनने में न आई थी। निराला दुरूहता की दृष्टि से हिन्दी के ब्रॉउनिंग हैं और यह गीत उनकी दुरूहतम दृष्टि है! आ. शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में जो व्याख्या की है, वह अस्पष्ट भी है, अपूर्ण भी। डॉ. रामविलास शर्मा तो इस गीत की वामन-विभूति के बलि मात्र लगते हैं।

4. अशरण-शरण राम, काम के छवि-धाम।
ऋषि-मुनि-मनोहंस, रवि-वंश-अवतंस
कर्मरत निश्शंस, पूरो मनस्काम।
जानकी-मनोरम, नायक सुचारुतम,
प्राण के समुद्यम, धर्मधारण श्याम।

राम की शक्ति पूजा

रामकाव्य में निराला को एक सुनिश्चित स्थान प्राप्त है : 'परिमल' के 'पंचवटी-प्रसंग' के कारण, 'अनामिका' की 'राम की शक्तिपूजा' के कारण, 'अराधना', 'गीतगुंज' एवं अर्चना की सुस्पष्ट भक्तिगीतिकाओं के कारण। निस्सन्देह, खड़ीबोली कविता में मैथिलीशरण रामकाव्य के प्रतिनिधि एवं प्रकृष्ट कवि हैं, किन्तु हरिऔध (वैदेही-वनवास), प्रसाद ('कानन-कुसुम' संग्रह की 'चित्रकूट' कविता), पंत ('लोकायतन' में अनेक स्थल एवं 'पुरुषोत्तम राम') के एतद्विषयक सृजन भी महत्त्वपूर्ण हैं। गुणगत दृष्टि से निराला खड़ीबोली-रामकाव्य में मैथिलीशरण के अनन्तर अन्यतम हैं। 'तुलसीदास' शीर्षक गहन शतछन्दीय सांस्कृतिक खंडकाव्य भी अतीव गौरवशाली रचना है तथापि अपने दुर्दमनीय प्रवाह, अपने अतुलनीय उदात्ततत्त्व एवं अपने तलस्पर्शी नारी-संवेदन के कारण 'राम की शक्तिपूजा' निराला की प्रतीक-सृष्टि बन गई है। 'राम की शक्तिपूजा' एवं 'तुलसीदास' महान् रचनाएँ हैं, जिनके अनन्तर करुण आत्मकथात्मक-महाकविता 'सरोज-स्मृति' का स्मरण किया जा सकता है। व्यक्तिगत रूप से, मैं 'राम की शक्तिपूजा', में, राम द्वारा कमल के स्थान पर नेत्र की बलि-प्रस्तुति को, बाममार्गी शाक्त-बलिप्रथा की निराधार कल्पना होने के कारण, वरेण्य नहीं मानता और राम जैसे महान् योद्धा, महानतर मानव और महानतम नायक के लिए यह शोभनीय भी नहीं है, निराधार और अनैतिहासिक तो है ही; किन्तु व्यापक मान्यता की अवहेलना वस्तुपरक न होगी। यथार्थ, ऐतिहासिकता तथा संस्कृति दृष्टि से 'तुलसीदास' महानतर कविता है। निराला ने 'बादल-राग', 'तुम और मैं', 'विधवा' इत्यादि अन्य श्रेष्ठ कविताएँ भी रची हैं।

देवीपुराण एवं कृत्तिवास-रामायण से प्रेरित 'राम की शक्तिपूजा' अपने वर्ग की 'परिवर्तन' (पन्त), 'कैदी और कोकिल' (माखनलाल चतुर्वेदी), 'प्रलय की छाया' (प्रसाद), 'असाध्य वीणा' (अज्ञेय), 'अँधेरे में' (मुक्तिबोध) प्रभृति महाकविताओं में समाविष्ट है। स्वच्छन्दतावादी कवियों में जिस कवि में सर्वाधिक महाकाव्य-प्रणयन-सामर्थ्य विद्यमान था वह निराला ही थे, भले ही वे अपनी असामान्य मस्तिष्किक स्थिति के कारण कोई 'कामायनी' या कोई 'लोकायतन' न प्रस्तुत कर पाए हों क्योंकि इसके लिए सुदीर्घकालिक सुनियोजन एवं लेखन अपरिहार्य होता है। अपने सारे गुणों के साथ भी कामायनी एक सुकुमार एवं लघ्वाकार महाकाव्य ही है : कुमारसम्भवम् के वर्ग का, रामचरितमानस के वर्ग का नहीं!

''जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी।'' एवं ''कलपभेद हरिचरित सोहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए।।'' के अनुरूप तुलसी की 'रामायन सतकोटि आपारा'' अत्युक्ति अतीव सार्थक है। उड़िया-रामायण में राम जगन्नाथपुरी की तीर्थयात्रा करते हैं और इसी प्रकार बांग्ला-रामायण में उन्हें चरम-सफलता[1] शक्ति-पूजा के अनन्तर प्राप्त होती है। 'रामचरितमानस' में राम लंका पर चढ़ाई से पहले शिव की प्रतिष्ठा करते हैं, रामायण में चरम सफलता से पूर्व अगस्त्य-परामर्शित आदित्य-हृदयम् कवच का पाठ[2]। निराला ने बांग्ला-कथा से प्रेरणा ली है।

महान् सफलता के लिए आस्था अपरिहार्य प्राय होती है। महान् सफलता आस्था को सुदृढ़ भी करती है। 'राम की शक्तिपूजा' में यह शाश्वत एवं मनोवैज्ञानिक सत्य विवृत हुआ है। नारी-संवेदन की दृष्टि से भी 'राम की शक्तिपूजा' एक महान् कविता है। शक्ति-दर्शन वस्तुतः नारी-महिमा-दर्शन है। जहाँ पुरुष का पौरुष निरुपाय हो जाता है, वहाँ नारी की शक्ति प्रेरकतत्व बन सकती है। यही शक्तिदर्शन का सार है जिसे निराला ने सफलतापूर्वक चित्रित किया है। 'राम की शक्तिपूजा' ने रामचरितमानस-जैसे विश्वस्तरीय एवं रामचन्द्रिका-जैसे राष्ट्रस्तरीय महाकाव्यों द्वारा अतीव सम्पन्न हिन्दी-रामकाव्य में एक नूतन (शक्तिदर्शन-सम्पन्न) आयाम का उद्घाटन किया है। निराला ने यह महान् कार्य बिना किसी सांस्कृतिक विपर्यय के निष्पन्न किया है—धर्मवीर भारती (अन्धा युग), नरेश

---

[1] रावणवध।

[2] वैसे, 1936 ई. में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में प्रगतिशील लेखक संघ का लखनऊ में प्रथम अधिवेशन भी हुआ तथा प्रेमचन्द का देहावसान भी। 1936 ई. 'प्रेमचन्द-वर्ष' था!

मेहता (संशय की एक रात), बालकृष्ण मिश्र (जलसमाधि से पूर्व) इत्यादि यदि उनसे प्रेरणा लेते तो लाभ में रहते। कविता संस्कृति की रसना है। नव्यता का अर्थ केवल ध्वंस नहीं है। यह भी एक विलक्षण संयोग है कि 'राम की शक्तिपूजा' का सृजन उस महान् साहित्यवर्ष 1936 ई. में किया गया जिसमें प्रसाद की सर्वश्रेष्ठ काव्यकृति 'कामायनी' एवं प्रेमचन्द की प्रायः सर्वमान्य औपन्यासिक कृति 'गोदान' का प्रकाशन हुआ था। खड़ीबोली का श्रेष्ठ महाकाव्य, खड़ीबोली की श्रेष्ठ महाकविता एवं हिन्दी का एक श्रेष्ठ उपन्यास 1936 ई. सं. संपृक्त हैं। निराला 1924 ई. में विवेकानन्द की 'नाचुक ताहाते श्यामा' का 'नाचे उस पर श्यामा' अनुवाद कर चुके थे, जो 'राम की शक्तिपूजा' से सम्पन्न 'अनामिका' में ही दृष्टिगोचर होता है। बंगाल में जन्म, मांस-मत्स्य-मदिरा की शाक्त-रुचि इत्यादि कुछ अन्य तत्त्व हैं, जिन्हें 'राम की शक्तिपूजा' की पृष्ठभूमि में संकेतित किया जा सकता है।

निराला कविता में नारी-संवेदन एवं नारी-मंडन के महान् कलाकार हैं। 'सरोज-स्मृति', 'विधवा', 'वह तोड़ती पत्थर' इत्यादि कविताओं में नारी-संवेदन विविध भाव-भंगिमाओं में बिम्बित हुआ है। 'राम की शक्तिपूजा' में नारी-मंडन शक्तिव्यंजक है, तो इस कविता के स्तर की ही दूसरी अमर रचना 'तुलसीदास' भी भारती (रत्नावली-प्रतीक) के माध्यम से उद्‌बोधन-व्यंजक। 'तुलसीदास' अपने अतुलनीय प्रतीक-विधान, असाधारण, उदात्त, महत् बिम्बालेखन एवं गहन नारी-दर्शन के कारण हिन्दी-साहित्य का श्रेष्ठ खंडकाव्य बन गया है। 'तुलसीदास' की भाषा का अदम्य प्रवाह और सुरम्य ओज 'राम की शक्तिपूजा' की कोटि का ही है।

'राम की शक्तिपूजा' का समारंभ उस दिवसीय महासमर के अनिर्णीत अन्त के साथ होता है जिसमें रामबाण रावण को हत न कर पाए और इससे राम विस्मय एवं निराशा का स्वाभाविक अनुभव करने लगे। हनुमान् के अतिरिक्त अन्य सब वीर भी निराशाभिभूत दीखे। कविता के आरम्भ में निराला ने अद्वितीय समास-शैली में जो ओज-गुण-सम्पन्नं सृजन किया है, वह विश्व-साहित्य का शृंगार कहा जा सकता है, जिसमें वे दाँते एवं मिल्टन के 'उदात्त' की स्पर्द्धा में पूर्णतः सक्षम सिद्ध होते हैं। निराशा को विराट् प्रकृति-बिम्ब से निष्पन्न करने में वातावरण-चित्रण-सम्राट् निराला अप्रतिम प्रमाणित होते हैं :

> है अमानिशा; उगलता गगन घन अंधकार; खो रहा दिशा का ज्ञान; स्तब्ध हैं पवन चार,
> अप्रतिहत गरज रहा पीछे अम्बुधि विशाल, भूधर ज्यों ध्यान-मग्न; केवल जलती मशाल।

विराट् अलंकरण, विराट् बिम्बालेखन, विराट् उदात्त : निराला की विराटता के अनुरूप! 'हैम्लेट' के अजर-अमर 'प्रेत-दृश्य' के सर्वथा समकक्ष! और इसकी पृष्ठभूमि तदनुरूप :

> आज का तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर-वेग-प्रखर, शत-शैल-संवरणशील, नील-नभ गर्जित-स्वर,
> प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह-भेद कौशल-समूह, राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह, —क्रुद्ध-कपि-विषम-हूह
> विच्छुरित-वह्नि राजीवनयन-हत-लक्ष्य-बाण, लोहित-लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान,
> राघव लाघव रावण-वारण-गत-युग्म-प्रहर, उद्धत लंकापति मर्दित-कपि-दल-बल-विस्तार,
> अनिमेष-राम-विश्वजिद्‌दिव्य-शर-भंग-भाव, विद्धांग-बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि, खर-रुधिर-स्राव,
> रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल-बल, मूर्च्छित-सुग्रीवांगद्-भीषण[1] गवाक्ष-गय-नल,
> वाहित-सौमित्रि-भल्लपति[2] अगणित-मल्ल-रोध,

बाण और दण्डी का स्मरण आता है, तुलसी (विनयपत्रिका के कुछ स्तोत्र एवं कवितावली-गत हनुमानबाहुक के कुछ छन्द) एवं भूषण का स्मरण आता है।

किन्तु ऐसी भयावह एवं भीषण परिस्थिति में भी राम के पक्ष को महावीर हनुमान् का एकाकी सम्बल प्राप्त होता है :

> गर्जित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध-हनुमत-केवल-प्रबोध
> उद्‌गीरित-वह्नि-भीम-पर्वत-कपि चतुः प्रहर,
> जानकी-भीरु-उर-आशाभर-रावण-सम्वरा

इसके अनन्तर निराला ने हतोत्साहित राम और उनकी सेना के शिविर-प्रत्यागमन का उच्चतमस्तरीय चित्रण किया है। असामान्य वातावरण-चित्रण के इस असामान्य वर्णन-निदर्शन, में भी निराला, मिल्टन के सदृश, जाने या अनजाने, शैतान (सेटन) के पक्षधर नहीं बनते, प्रत्युत उपमा—मेरे मत से विराटोपमा—और बिम्ब को उदात्त से संपृक्त कर राम का एक गम्भीर चित्र ही उरेहते हैं :

---

1. विभीषण।
2. जाम्बवान् (जामवंत)।

रघुनायक आगे, अवनी पर नवनीत-चरण, श्लथ धनु-गुण है, कटिबंध स्रस्त तूणीर-धरण,
दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नौशान्धकार....

राम की निराशा एवं आकांक्षा के चित्र में निराला, 'मेघनादवध' के 'छोटे मिल्टन' माइकेल मधुसूदन दत्त के सदृश, लेखनी की नोक से हिमालय का वक्षवेध नहीं करते क्योंकि वे राजकीय ऐश्वर्य से प्रेरित धर्मपरिवर्तनजन्य कुण्ठा के क्रोड़ न थे। विषम परिस्थिति में भाव-सन्धि की कमनीय कला का परिचय देते हुए निराला राम की निराशा में आशा के प्रवेश-सा, तिमिराच्छन्न-व्योम में तड़िज्ज्योति-सा, वह सीता-स्मरण चित्रित करते हैं, जिसमें स्मरण-अलंकार को अलंकृत किया गया है, मनोहारी बिम्वालेखन किया गया है, ''शक्त्या विरहितः शिवः शिवः'' का दर्शन व्यंजित किया गया हैः

....हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त, फूटी स्मिति सीता-ध्यान-लीन राम के अधर,
फिर विश्वविजय-भावना हृदय में आई भर, वे आए याद दिव्य शर अगणित मंत्र-पूत,
फड़का पर नभ को उड़े सकल ज्यों देवदूत, देखते राम, जल रहे शलभ-ज्यों रजनीचर,
ताटका[1], सुबाहु, विराध, शिरस्त्रय[2], दूषण, खर,

किन्तु सम्प्रति स्वयं शक्ति रावण को अंकस्थ-रक्षित कर रही है! इस स्थल पर उदात्त का चिरस्मरणीय प्रयोग प्राप्त होता है :

फिर देखी भीमा मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किए हुए सम्मुख समग्र नभ को....

और सेवारत हनुमान् ने राम के नेत्रों से निपातित दो अश्रुबिन्दु उनके ''युग 'अस्तिनास्ति' के एकरूप, गुणगण अनिंद्य'' चरणारविन्दों पर 'नभ में तारादल' के सदृश झलकते देखे! प्रतिक्रिया अप्रतिवार्य थी :

'ये अश्रु राम के' आते ही मन में विचार उद्वेल हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार,
हो श्वसित पवन-उनचास, पिता-पक्ष से तुमुल एकत्र वक्ष पर बहा वाष्प को उड़ा अतुल,
शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़ जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़,
तोड़ता बंध-प्रतिबंध धरा, हो स्फीत-वक्ष दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष,
शत-वायु-वेग-बल, डुबा अतल में देश-भाव जलराशि विपुल मथ मिला अनिल में महाराव
वज्रांग तेजघन बना पवन को, महाकाश पहुँचा एकदशरुद्र[3] क्षुब्ध कर अट्टहास।

इस कठिनतम एव सर्वध्वांतकारी स्थिति में शिव शक्ति को सचेत करते हैं शृंगार के संयोग-वियोग उभयपक्ष-अपरिचित, चिर-ब्रह्मचर्य-रत, महावीर, रामार्चन के मूर्तिमान अक्षर-शरीर एकादशरुद्र हनुमान् से संघर्ष में तुम्हारी 'विषम हार' होगी; अतएव विद्या का आश्रय लेकर इन प्रचंड-विक्रम का प्रबोध ही वरेण्य है। इसके फलस्वरूप, सहसा आकाश में 'अंजना-रूप' (शक्ति की एक भंगिमा) का उदय हुआ। माता ने समझाया कि शैशव की अबोधता में तुम्हारा सूर्य को उदरस्थ कर लेना, औद्धत्य होते हुए भी, धृतिगम्य है, किन्तु अब शिवावास आकाश में यह तुमुलमय अनर्थ मेरे लिए लज्जाकर ही प्रतीत होता है : क्या तुम्हें राम ने ऐसा करने की आज्ञा दी है? इस पर हनुमान् संकुचित हो गए, आकाश से अवतरण कर पुनः राम की चरणसेवा में व्यस्त हो गए।

विभीषण ने राम का विषण्णानन देखकर, अपने लंकाधिपति अभिषिक्त किए जाने का प्रणमय सन्दर्भ उभारते हुए, उनके अपरिसीम शौर्य को संस्फुरित करना चाहा, किन्तु राम ने उत्तर दिया कि विजय सम्भव नहीं क्योंकि शक्ति अन्याय-प्रतीक रावण की रक्षा करने को सन्नद्ध है। इस स्थल पर निराला ने राम के स्वप्रत्ययपूर्ण वीरत्व किन्तु देवी की रावण-रक्षा का अतीव प्रभावी वर्णन किया है। इस पर वयोवृद्ध मनीक्षी जाम्बवान् ने राम से कहा कि जब शक्ति अधर्मरत रावण पर कृपा कर सकती है तब धर्मरत राम पर कैसे न करेगी? अतः आप भी शक्तिपूजा करें! राम ने शक्ति का ध्यान किया। तदनन्तर, उन्होंने मित्रों की समग्र प्रकृति में व्याप्त शक्ति का रूपक-दर्शन कराया और हनुमान् को कम-से-कम एक सौ-आठ इन्दीवर लाने का आदेश दिया जिसने अगले दिन ही पावन पुरश्चरण आरम्भ हो जाए। यथासमय शक्तिपूजा-समारम्भ हुआ। हठयोग एवं सिद्धयोग में मूलाधार-स्थित अधोमुखी चित्-शक्ति या

---

[1] प्रचलित 'ताड़का' का प्रयोग ग़लत है।

[2] त्रिशिरा।

[3] हनुमान्।

कुण्डलिनी-शक्ति[1] को योगक्रिया द्वारा ऊर्ध्वमुखी करने, उसके क्रमशः षट्चक्रों का भेदन करने तथा सहस्रार तक पहुँचने का सर्वोपरि महत्त्व है, जिसे सरहपा इत्यादि बौद्ध (सहजयानी) योगियों, गोरखनाथ इत्यादि शैव हठयोगियों, कबीर इत्यादि निर्गुणप्रधान सन्तों, जायसी इत्यादि मुसलमान सूफ़ियों से लेकर सम्पूर्णानन्द[2] इत्यादि समाजवादियों, मुक्तानन्द परमहंस इत्यादि उदार सिद्धयोगियों इत्यादि तक ने प्रतिपादित किया है—निराला ने 'राम की शक्ति पूजा' में हठयोग-सिद्धयोग-परक कुण्डलिनी-शक्ति का समावेश कर हिन्दी की योगकाव्य-परम्परा को भी सम्पन्न किया है। 'हिन्दी का योगपरक काव्य' शोध का एक उत्कृष्ट विषय है। पुरश्चरण के आठवें दिन जब योगस्थ राम सहस्रार-सिद्धि के नितान्त समीप पहुँच गए तब परीक्षार्थ स्वयं दुर्गा छिपकर आईं और अन्तिम पूजा-इन्दीवर उठा ले गईं। मीलित-लोचन ध्यानस्थ राम ने यथासमय पूजा-इन्दीवर उठाना चाहा तो वह मिला—उनका मन चंचल हो उठा; नेत्र खोले तो इन्दीवर अविद्यमान! आसन-त्याग असिद्धिपरक होता। वे बहुत दुखी हुए। सहसा उन्हें माता कौसल्या[3] के द्वारा 'राजीव-नयन' कहा जाना याद आया और वे दक्षिण-लोचन को पूजा-इन्दीवर बनाने के लिए उद्यत हो गए :

> जिस क्षण बँध गया बेधने को दृग दृढ़ निश्चय, काँपा ब्रह्माण्ड, हुआ देवी का त्वरित उदय—
> ''साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन धन्य राम!'' कह लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।

इस स्थल पर निराला ने, बंगीय पद्धति पर, दुर्गा का सर्वोपरिता-सम्पन्न उत्कृष्ट वर्णन किया है। कविता का मांगलिक सुखान्त रूप इन शब्दों के साथ हुआ है :

> ''होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम! नवीन!''
> कह महाशक्ति राम के वदन में हुई लीन।

'राम की शक्तिपूजा' नारी-गौरवमंडन, उदात्त, बिम्बालेखन, रस, अलंकरण, नव्यता, भाषा-वैभव, छन्दप्रवाह प्रभृति प्रायः सभी दृष्टियों से एक श्रेष्ठ कविता है। वस्तुतः एवं तत्वतः पन्त की महाकविता 'परिवर्तन' के अतिरिक्त अन्य कोई महाकविता इसके साथ न्यायसंगत रूप से तुलनीय नहीं है। किन्तु एक प्रश्न उठता है : ''क्या इस कविता में कोई व्यावहारिक एवं उपादेय जीवन-दर्शन विवृत हो पाया है?'' एक अन्य प्रश्न उठ सकता है : ''क्या यह रूढ़िवादी एवं प्रतिक्रियावादी सृष्टि नहीं है? अथवा, क्या नेत्रबलि-सन्दर्भ वरेण्य है?'' किन्तु, ऐसे प्रश्न तो 'डिवाइन कॉमेडी', 'पैराडाइज़ लॉस्ट' प्रभृति पाश्चात्य तथा 'पदमावत' एवं 'कामायनी' प्रभृति भारतीय महाकाव्यों पर भी किए जा सकते हैं। महाकविता का नारी-गौरवमंडन एवं उसकी कला निस्सन्देह उसे विश्व-स्तर प्रदान करती है।

आकलन

अपने बहुआयामी नव्यता-नेतृत्व, अपने सांस्कृतिक गौरव एवं अपने 'राम की शक्तिपूजा'—''तुलसीदास'—'सरोज-स्मृति' के महान् सृजन के कारण निराला आधुनिक विश्व के श्रेष्ठ कवियों की पंक्ति में स्थान प्राप्त करने का अधिकार रखते हैं। वे इलिअट (एलिअट) एवं रवीन्द्र, मैथिलीशरण एवं प्रसाद के स्तर के महाकवि हैं, यद्यपि उनकी प्रतिभा मैथिलीशरण के सदृश कवि-प्रतिभा ही थी, इलियट, रवीन्द्र एवं प्रसाद की प्रतिभा के सदृश वस्तुतः बहुमुखी प्रतिभा नहीं। मैथिलीशरण एवं पन्त जैसे महाकवियों से लेकर गिरिजाकुमार माथुर एवं देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' जैसे कवियों तथा नन्ददुलारे वाजपेयी एवं रामविलास शर्मा जैसे मूर्द्धन्य आलोचकों से लेकर प्रकाशचन्द्र गुप्त एवं बुद्धसेन 'नीहार' जैसे लेखकों तक ने उन पर जो काव्य-सृष्टि एवं आलोचना-लेखन किया है, वह उनके गौरव के सर्वथा अनुरूप है। निराला एक गौरवशाली महाकवि ही नहीं थे, एक निष्ठावान महापुरुष भी थे—कबीर, तुलसी, भारतेन्दु प्रभृति के सच्चे उत्तराधिकारी! और अन्त अपनी लिखी एक कविता के साथ :

वह पागल था

वह पागल था—
हाँ, वह पागल थाः
उसके हृदय में ज्वालामुखी का उद्‌गार

---

[1] सर्पेन्टाइन पावॅर।

[2] गगनगुफा (कविता-संग्रह)।

[3] प्रचलित प्रयोग 'कौशल्या' ग़लत है।

उसके मस्तिष्क में शत-शत उठते ज्वार
उसके दाहिने हाथ में असंख्य भूचाल
उसके नेत्र-हुताशन शोषण-काल विकराल
प्राण विग्रह-बल था
हाँ, वह पागल था!
वह चाहता था नवगति, नवलय, नवताल
वह चाहता, हो सुखी मानवता बेहाल
उसका संवेदन विधवा, भिक्षुक को अर्पित था
पत्थर तोड़ती विवशा पर टिका हुआ चित था
दर्द से बेकल था
हाँ, वह पागल था!
तन से, मन से, जीवन से निराला था—
शेष के अशेष फूत्कारों ने पाला था
अपना सलीब ढोते-ढोते मुसकाता था
पीड़ा से बेहद विकल होता तो गाता था
झंझा में अविकल था
हाँ, वह पागल था!

'ऊँट'

'उनींदी रातें' (कवितासंग्रह 1954 ई.), 'जज़्बाते ऊँट' (हास्यकाव्य 1956 ई.) के कवि एवं 'हम इश्क़ के बन्दे हैं' (1960 ई.) के कहानीकार रामानुजलाल श्रीवास्तव 'ऊँट' (1897 ई. सिहोरा, जबलपुर—निवास जबलपुर) को हिन्दी के हास्य-साहित्य में एक स्थान अवश्य प्राप्त होना चाहिए। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार, ''हिन्दी में हल्का-फुल्का गद्य, मनोरंजन-साहित्य एवं हास्य-विनोद के लेखक के रूप में आपने विशेष योगदान दिया है। जिस समय विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक' का हास्यप्रधान साहित्य 'माधुरी' में प्रकाशित हो रहा था और टटोलूराम जी टालस्त्री तथा दुबे जी की चिट्ठी आदि स्तम्भों में शर्मा जी हिन्दी का नया हास्य-शिल्प प्रस्तुत कर रहे थे, उस समय अकबर इलाहाबादी, अज़ीम बेग़ चुग़ताई और इसी प्रकार के अन्य हास्यरस के लेखकों का गम्भीर प्रभाव हमें रामानुजलाल श्रीवास्तव की कृतियों में मिलता है। हास्य से अधिक हमें उस समय की मानसिक चेतना की झलक मिलती है, जो विनोदप्रियता, व्यंग्य और हास्य में व्याप्त प्रवृत्तियों से बिल्कुल पृथक् थी।''

रामानुजलाल श्रीवास्तव का जीवन संघर्षों से भरा रहा है किन्तु वे कभी निराश नहीं हुए। उनकी हँसी एक गहरा दर्द छिपाए चलती है। उनका कविता में आत्मपरक रंग काफ़ी गहरा है। अतिवृद्धावस्था, वधिरता, नेत्रशक्ति-क्षीणता एवं राजयक्ष्मा (टी.बी. या ट्यूबरकुलोसिस) के बावजूद उनकी जीवन्तता[1] सर्वथा विलक्षण ही मानी जाएगी :

1. दिन भर उरझै रार मचाये साँझ परे रे रे रिरियाये
चुपै पियाये से दो घूँट क्यों सखी लालन ना सखी ऊँट!

2. दिल तो बेचा था कमसिनों को जनाब जानो ईमाँ गए आया जो शवाब
अब नहीं बेचने को काफ़ी कुछ इसलिए बेचने लगा हूँ किताब।

3. हँसत हँसावत जायँगें हम साहित्यिक भाँड़।
किसे आँख दिखला रही ओ री टी.बी. राँड़।

---

[1] दृष्टव्य है, त्रैमासिक 'कोमा' (कानपुर—सं. डॉ. रणधीर श्रीवास्तव) के जुलाई-सितम्बर, 1990 अंक में रामनारायण उपाध्याय का लेख 'हिन्दी के दधीचि रामानुजलाल श्रीवास्तव'।

4. योग्यता तो जानी-मानी है—तुक से तुक
मिलाई तो तुकबंदी, गप्प के गप्प भिड़ाई
तो गल्प। इससे आगे भैंस बराबर।

केशवदेव शुक्ल 'केशव'

'स्वराज्य-तरंगिणी' महाकाव्य, 'परशुराम-गरिमा' प्रभृति व्रजभाषा-काव्यों तथा 'नवोपहार काव्यम्', 'स्तुति-कुसुमांजलि'[1] प्रभृति संस्कृत-काव्यों के यशस्वी कवि स्व. आचार्य केशवदेव शुक्ल 'केशव' (जन्म 1897 ई., ग्राम गाऊपुर, पत्रालय महेरा, जनपद कानपुर[2]) की श्रेष्ठतम कृति 'शिवाबाजि-बावनी' व्रजभाषा-वीरकाव्य की एक चिरस्मरणीय रचना है। इस अलंकृत वीर-काव्य के कारण वे अभिनव-भूषण बन गए हैं। 'हिन्दी का अश्व-काव्य' शोध-निबन्ध का विषय है, क्योंकि जगनिक, तुलसी, श्यामनारायण पाण्डेय आदि ने इसमें योगदान दिया है तथा 'केशव' इसके विशिष्ट कवि हैं। 'केशव' वीर रस के एक श्रेष्ठ कवि हैं। वैसे उन्होंने शृंगार रस के सुन्दर सवैये भी रचे हैं। उनका कवि-व्यक्तित्व 'बिहारी' एवं 'ब्रजनन्दन' के स्तर का है। पारम्परिकता में नवराष्ट्रीयता का समावेश उनकी एक विशिष्ट उपलब्धि है। वे उच्चकोटि के अत्यलंकृत घनाक्षीरकार हैं। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. तंग ही के कसत मलेच्छ कुल तंग होत पौरुष निहारि हारि मानत फनीसी है।
जाके सुम्भ भारन सों भुम्मि धसकी सी अरु कमठ कठोर पीठि अति मसकी सी है।।
'केशौ' कवि होता ही सवार छूटो तीर सम चकित सुरेश औ दिनेश गति मीसी है।
सातौ रतनाकर लौं, बारहौं दिवाकर लौं, छोनी औ क्षपाकर लौं रेन्वै रेनु दीसी है।।
2. राजत अजब नीक बासु के दुकानन मैं थानन मैं गजब सुरंग सरसायो है।
'कैशो' कवि कहत कितेक मल मल डारे ऐसी मार कीन जाको हद्द दरसायो है।।
गहि गज तानि कै चलावत है अंबर पै अरथ अनेकन करत हरषायो है।
छायो है अतंक आजु घोर समरांगन मैं, बाजि सिवराज को बजाज बनि आयो है[3]।।
3. जगमग जागति जवाहिर जटित जीन, प्रखर रव-लीन मुख मुखरत आवै है।
खुर पुट फटित मही ते रेनु रासि मिस जुगल महीप मद डरबरत आवै है।।
'कैसौ' कबि' कहत बहत कोटि बाहु बल, सबद सिवा को सुनि हिकरत आवै है।
झिकरत आवै चहुँ ओरन खवासन कौं, मंद मंद मंदुरा ते निकरत आवै है।।
4. फहरत आवै जुग चौंर किसवार पुच्छ, कलँगी कलित छत्र छाजत फिकरतैं।
सुंदर सुखद मुख मंजुल रवलीन धुनि, छहरत आवै चहुँ ओरन झिकरतैं।।
दोनौं ओर केते बागवान बिंड़िआये तबौं थामे नं थमत दृष्टि हींसत हिकरतैं।
'केसौ कबि' आज सिवराज बाजि बैरिन के अस्त बल कीन्हें अस्तबल तैं निकरतैं।। (शिवाबाजिबावनी)

ज्योतिषचन्द्र घोष

'सिकन्दर और पुरु[4] (अपरिसमाप्त खंडकाव्य) के प्रणेता, 'सरस्वती' में प्रकाशित अनेक कविताओं के रचयिता, चंपानगर (भागलपुर) से 'सुरभि' के विकीर्णकर्ता ज्योतिषचन्द्र घोष (1897-1927 ई., रूपसा, जनपद भागलपुर) ने स्वच्छन्दतावादी युग में

---

[1] जगद्धर भट्ट कृत शिवार्पित संस्कृत की ही 'स्तुति-कुसुमांजलि' तो विख्यात है ही।

[2] 'काव्य-कलश', पृष्ठ 78, प्रकाशक श्री हिन्दी साहित्य मण्डल, कानपुर।

[3] बाजि-बजाज रूपक, जिसका श्लेष-चमत्कार महाकवि केशव का स्मरण कराता है।

[4] पूरु अधिक ठीक होता क्योंकि यह चन्द्र-वंश (जिसमें कृष्ण और पांडव हुए) के अन्तिम प्रतापी नरेश थे तथा शाहनामा में फूर नाम भी यह सिद्ध करता है (फ़ारसी में प का फ होता रहता है जैसे सप्ताह का हफ़्ता)। यूनानियों द्वारा पोरस कहना भी पुरु या फूर के ही अनुरूप है। पूरु, पुरु, पौरव, पर्वतक, पर्वतेश्वर (भारी आकार-प्रकार के कारण), फूर, पोरस इत्यादि अनेक नाम ऐतिहासिक महत्त्व के सूचक हैं। पूरु नाम चन्द्र-वंशी ययाति के पुत्र पूरु का वंशज होना सूचित करता है।

आदर्शवादी युग के अनुरूप रचनाएँ कीं। उन पर मैथिलीशरण गुप्त का प्रभाव पड़ा। उनकी 'आकांक्षा' राष्ट्रवाद से परिपुष्ट रही। आज भी उनकी कविता ताज़ा लगती है :

आकांक्षा

मोहन! पुनः आनंदमय श्रुति-मधुर मुरली-तान हो, जीवन-समर में शांतिमय फिर पुण्य गीता-गान हो।
म्रियमाण भारत को नवल स्वर्गीय जीवन-दान हो, करुणा-सुधा के पान से जग का परम कल्याण हो।
दारिद्र्य-दानव मनुज-शोणित से यहाँ है पल रहा, सबको कुचलता चक्र दुख-दारिद्र्य का चल रहा।
घर-घर कलह के रूप में फल फूट का है फल रहा, औ द्वेष-दावानल मनोवन में भयंकर जल रहा।
ये दूर हों, इनका प्रभो! अब शीघ्र ही संहार हो, सद्भाव से सुरभित सुखद यह स्वर्ण का संसार हो।
मानव-हृदय औदार्य औ उत्साह का आगार हो, निःस्वार्थ पावन प्रेम का सर्वत्र ही संचार हो।
गोपाल! अपनी प्रिय धरा पर सदय शीघ्र पसीजिए, केशव! करुण क्रंदन श्रवण कर कुछ कृपा अब कीजिए।
माधव! मलय-मारुत समुन्नति का बहा फिर दीजिए, हे राधिकारंजन! स्वजन को शरण में रख लीजिए।

कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय

राजा राममोहन राय[1], केशवचन्द्र सेन[2], शारदाचरण मित्र[3], नवीनचन्द्र राय[4], इत्यादि से चिन्तामणि घोष[5], क्षितीन्द्रमोहन मित्र[6], श्यामाप्रसाद मुखर्जी[7] इत्यादि विविध प्रकार के बंगाली महानुभावों ने हिन्दी का समर्थन किया है तथा लल्लूजी 'लाल', सदल मिश्र, युगलकिशोर शुक्ल, बालमुकुन्द, बनारसीदास चतुर्वेदी, ललिताप्रसाद सुकुल, झाबरमल्ल शर्मा, विष्णुकान्त शास्त्री, प्रभाकर माचवे, इत्यादि ने कलकत्ता में रहकर हिन्दी की प्रभूत सेवा की है। शान्ति निकेतन के क्षितिमोहन सेन, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, रामसिंह तोमर, देवकीनन्दन श्रीवास्तव 'नन्दन' भी स्मरणीय हैं। निराला का जन्म बंगाल में हुआ था। बंगाली-प्रतिभा के सीमान्त तथा सर्वश्रेष्ठ बंगाली रवीन्द्र ने 'वन हंड्रेड पोएम्स ऑफ़ कबीर' के अनुवादक के रूप में स्थायी महत्त्व प्राप्त किया है। रवीन्द्र ने हिन्दी के विद्यापति के शरीर में हिन्दी के कबीर की आत्मा को अवतरित किया। वे सूर पर कविता लिख गए हैं। वे तुलसी के प्रशसंक थे। विवेकानन्द ने सूर के 'प्रभुजी मेरे औगुन चित न धरो' पद का अंग्रेज़ी-अनुवाद किया है। क्रान्त मन्मथनाथ गुप्त एवं शान्त प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय इत्यादि भी हिन्दी-संपृक्त हैं। हिन्दी-बांग्ला-सम्बन्ध सिद्धों और विद्यापति से संपुष्ट हैं तथा सतत-विकसनशील रहे हैं। कालीबाड़ी, छपरा (बिहार) के कार्तिकेयचरण मुखोपाध्याय (1897 ई.) परम हिन्दीप्रेमी थे। उन्हें हिन्दीनिन्दा सहन न थी। 'भारतमित्र' के सहसंपादक का कार्य करने के उपरांत, उन्होंने अनेक ग्रन्थों के अनुवाद किए, 'मणिपुर का इतिहास' लिखा, 'मुस्तफ़ा कमाल पाशा' शीर्षक जीवनी लिखी तथा 'सती सुभद्रा', 'शकुन्तला' जैसी पुस्तकें लिखीं। वे कवि भी थे। उन्होंने प्रकृति से संबद्ध अच्छी कविताएँ लिखी हैं। एक प्रस्तुत है :

बिजली

निराधार इस नील गगन में क्यों बिजली! तू विहँस रही है,
अँधियारी इस अमा-निशा में इतराती क्यों थिरक रही है?

---

[1] हिन्दी-ग्रन्थकार एवं पत्रकार। महान् राष्ट्र-निर्माता। सुधारवाद में दयानन्द, तिलक, गाँधी प्रभृति के प्रेरक। अद्वैतवाद में रामकृष्ण परमहंस, रवीन्द्र, विवेकानन्द प्रभृति के प्रेरक।

[2] दयानन्द को संस्कृत के स्थान पर राष्ट्रभाषा हिन्दी की ओर प्रेरित करने वाले।

[3] देवनागरी के आरम्भिक प्रचारक!

[4] पंजाब में हिन्दी का प्रचार एवं उन्नयन करने वाले, हिन्दी-लेखक भी।

[5] इंडियन प्रेस इलाहाबाद (प्रकाशक एवं 'सरस्वती' के प्रवर्तक) के संस्थापक।

[6] 'माया' (इलाहाबाद) इत्यादि के संस्थापक।

[7] भारतीय जनसंघ (सम्प्रति भारतीय जनता पार्टी) के संस्थापक।

मृगतृष्णा-सी, मरीचिका-सी प्रवंचना क्या सिखा रही है,
श्रांत पथिक की नयन-भ्रांति को पथ दिखला क्या भगा रही है?
या जलधर के व्रज हृदय का परिचय जग को जना रही है,
गर्वोन्मत्त जनों के क्या हृत्तल को डरा रही है?
श्रीमानों की श्री की क्या तू चंचलता को बता रही है,
या विरहिन की सुप्त व्यथा को रह-रह करके जगा रही है?

नवीन[1]

आदर्शवादी एवं स्वच्छन्दतावादी युगों के एक सेतु राष्ट्रकवि बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' (8 दिसम्बर, 1897-29 अप्रैल, 1960 ई.) स्वातन्त्र्य योद्धा, हिन्दी-वीर, जुझारू पत्रकार, सांसद एवं उच्चकोटि के वक्ता थे। उनके संग्रह 'कुंकुम' (1936 ई.) का ''कवि कुछ ऐसी तान सुना दो'', ''मेरे जननायक की वाणी'', ''आज खड्ग की धार कुंठिता'' प्रभृति विख्यात कविताओं का खड़ीबोली-सृजन उन्हें मैथिलीशरण, माखनलाल, सुभद्रा, सोहनलाल एवं दिनकर की पंक्ति में एक राष्ट्रकवि के रूप में प्रतिष्ठित करता है, तो अतिस्फीत षष्ठसर्गीय (619 पृष्ठीय) प्रबन्धकाव्य 'उर्मिला' (1958 ई.)[2] के पंचम सर्ग (शेष खड़ीबोली में है) के 704 दोहों का ब्रजभाषा-सृजन बिहारी, मतिराम, दुलारेलाल भार्गव, राजेश इत्यादि के साथ खड़ा करता है; 'रश्मि-रेखा' (1951 ई.) में वे प्रणयी प्रसाद का स्मरण कराते हैं' 'अपलक' एवं 'क्वासि' में रहस्यवादी महादेवी का। उनके शत-शत असंगृहीत गीतों एवं कविताओं में अनेक स्तरीय हैं। उनके सृजन में बिखराव है, अव्यवस्था है, स्वच्छन्ता की अधिकता है, जिससे एक विराट् समन्वित-प्रभाव निष्पन्न नहीं हो पाता। वे कहीं भी 'प्रस्थान' नहीं द्योतित करते। किन्तु कुल मिलाकर उनका सृजन गुण-परिमाण-मूल्यों में उन्हें एक उच्चकोटि का कवि सिद्ध करता है। वे दिनकर से कम प्रेरक किन्तु अधिक ललित हैं। वे बच्चन से कम लोकप्रिय किन्तु अधिक गम्भीर हैं। स्व. डॉ. देवीशंकर अवस्थी (दुर्घटना में आकस्मिक् मृत्यु 11 जनवरी, 1966 को दिल्ली में) के शब्दों में, ''वस्तुतः हिन्दी में हालावाद के आदि-प्रवर्तक 'नवीन' ही हैं तथा भगवतीचरण वर्मा एवं 'बच्चन' ने स्वयं इस बात को स्वीकार किया है।'' (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 1 जुलाई, 1960, पृष्ठ 35)।[3] नवीन का गद्यकार-रूप भी सर्वथा स्मरणीय है। डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे ने ''बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' रचनावली'' (5 खण्ड) का सम्पादन कर प्रशस्य साहित्यसेवा की है; उन्होंने ''बालकृष्ण शर्मा 'नवीन': व्यक्ति एवं काव्य'' शीर्षक शोधग्रन्थ भी लिखा है।

मैं 'उर्मिला' को नवीन की श्रेष्ठतम कृति मानता हूँ जिसका संस्कृति-आकलन एवं विरह-दर्शन उच्चकोटि का है, भले ही प्रबन्ध-निर्वाह न के बराबर हो। खेद है कि इस स्फीत काव्य का सर्वांगीण अध्ययन एवं विशद आकलन नहीं हो सका। मैथिलीशरण को समर्पित 'उर्मिला' पर 'साकेत' (1932 ई.) का कोई बाह्य प्रभाव दृग्गत नहीं होता। इस उत्कृष्ट काव्य का आरम्भ 1922 ई. में हुआ, समापन 1934 ई. में (यद्यपि सृजन में कुल सवा या साढ़े-चार महीने ही लगे), भूमिका 1957 ई. में लिखी गई, प्रकाशन 1958 ई. में हुआ। नवीन को भी प्रेरणा उस 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदसीनता' शीर्षक आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी कृत अमर भावात्मक-निबन्ध से प्राप्त हुई होगी जिससे मैथिलीशरण को प्राप्त हुई थी (मैथिलीशरण 'साकेत' का सभारम्भ प्रायः 1918 ई. में ही कर चुके थे—मित्र नवीन से चर्चा हुई होगी अतः समर्पण उन्हीं को किया है) : यदि मैथिलीशरण आचार्य के पट्ट शिष्य थे तो नवीन आचार्य के शिष्य गणेशशंकर विद्यार्थी के शिष्य थे! आचार्य का कानपुर से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा, नवीन का भी (परेड का नवीन मार्केट एवं वहाँ आवक्षमूर्ति विद्यमान है)। 'उर्मिला' नवीन को एकसाथ समर्थ खड़ीबोली-कवि भी प्रमाणित करती है, सफल ब्रजभाषा-कवि भी।

---

[1] केदारनाथ त्रिवेदी 'नवीन', केदारनाथ मिश्र 'नवीन', गंगाप्रसाद वाजपेयी 'नवीन', मनीराम द्विवेदी 'नवीन' (1905-85 ई.—अवधी-कवि) इत्यादि के कारण 'नवीन-शिरमौर'!

[2] डॉ. देवीशंकर अवस्थी ने प्रकाशन-वर्ष 1950 ई. लिखा है ('हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2, पृष्ठ 380), किन्तु गणतन्त्र दिवस 1957 को नवीन ने भूमिका लिखी थी तथा प्रकाशन 1958 ई. में हुआ था। मैंने काव्य प्रकाशन के समय पढ़ा था तथा 'खड़ीबोली-कविता में विरह-वर्णन' (रचना 1958 ई. प्रकाशन 1964 ई.) में आलोचना लिखी थी।

[3] 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 (सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि), पृष्ठ 381।

नवीन का जन्म आज के मध्य प्रदेश में स्थिति तत्कालीन ग्वालियर राज्य के भयाना ग्राम में हुआ, जीवन कानपुर में बीता (जहाँ के सांसद भी रहे), देहान्त दिल्ली में। 29 अप्रैल, 1960 को उनके अवसान पर राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, उपराष्ट्रपति राधाकृष्णन्, प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू[1] इत्यादि शीर्षस्थ नेता तक पुष्पांजलि अर्पित करने आए थे–मृत्यु से ठीक तीन दिन पूर्व 26 अप्रैल, 1960 को वे 'पद्मभूषण' से अलंकृत किए गए थे। उनके प्रायः आकस्मिक् निधन पर राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने यह मार्मिक कविता लिखी थी :

कहाँ आज वह मित्र हमारा चिर नवीन जिसकी रसधारा
आप्लावित करती थी हम को? उससे श्रद्धांजलि की आशा
करती थी मेरी अभिलाषा–अनहोनी ही प्रिय है यम को।

सुभाषचन्द्र बोस, मणिबेन पटेल, चन्द्रशेखर 'आज़ाद' इत्यादि के सदृश नवीन ने भी परतन्त्र भारत में विवाह करके परतन्त्र संतति न उत्पन्न करने का प्रण किया था। इनमें केवल सुभाष ने पौलेण्ड में प्रणभंग किया[2] (उनकी पत्नी एवं पुत्री कभी-कभी भारत आती रहीं)। नरनाहर आज़ाद तो इस स्वरचित एकमात्र द्विपंक्तीय कविता का पालन 1931 ई. में ही कर चुके थे :

दुश्मन की गोलियों का हम सामना करेंगे,
आज़ाद ही जिए है, आज़ाद ही मरेंगे।

बेन ने प्राण का पालन भी किया, स्वतन्त्रता के अनन्तर भी अविवाहित रहीं। नवीन ने प्रण का पालन किया। नवीन जैसे बलिष्ठ (सुभाष बलिष्ठ न थे) एवं सुन्दर (आज़ाद सुन्दर न थे) व्यक्ति के लिए यह प्रण अत्यन्त कठिन तप ही था–विशेषकर तब जबकि वे रसिक भी थे (जिस पर 'गुरुनां गुरुः' आचार्य ने व्यंग्य भी किया था)! भारत के स्वतन्त्र होते समय वे पूरे पचास के भी न थे। अतः पहले से ही पीछे पड़े लोग अधिक सचेष्ट हुए। किन्तु वे टालते रहे :

अब तक इतनी यों ही काटी, अब क्या सीखें नव-परिपाटी;
कौन बनाए आज घरौंदा हाथों चुन-चुन कंकड़-माटी?
(हम अनिकेतन हम अनिकेतन)[3]

गाँधी की मृत्यु के बाद अस्थिकलश-प्रकरणों में हिन्दी के दो कवियों की जानें गईं (संयोगात् दोनों राष्ट्रकवि थे) : वस्तुतः सुभद्रा की, तत्त्वतः नवीन की। संगम के निकट भारी भीड़ में फँसी अतिविकल एवं मूर्च्छितप्राय सुन्दरी तरुणी की बलिष्ठ भुजाओं से खींचकर वाहन में बैठाना उनका काल बन गया था। होम करत हाथ जरत! नवीन ने सरला को जीवन दिया, सरला ने नवीन का जीवन लिया :

''यह शूलयुक्त यह अहि-आलिंगित जीवन!''

नवीन ''वृद्धस्य तरुणीं विषम्'' भूल गए थे; परिणाम ''सर ला! सर ला! सरल बोली'' (यह कविता-पंक्ति मुझे स्व. डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' ने सुनाई थी–कानपुर के ही नवीन-मित्र विद्वान् एवं कवि थे) हुआ।

नवीन कविता का सबसे बड़ा गुण उनकी भावविह्वलता है। उनकी कविताएँ तो भावविह्वलता से ओतप्रोत हैं ही, 'उर्मिला' (जिसे मैं भाव-प्रबन्ध कहूँगा) भी भावविह्वलता से ही ऊभचूभ है (जिसे प्रबन्ध की परम्परावादी कसौटी पर कसने-परखने की अयोग्यता के एकाध निदर्शन मिल सकते हैं)। उनकी अपनी अलमस्त कबीरी-भाषा के छिद्रान्वेषण करने वाले 'शैली ही मनुष्य है'' का सूत्र भूल गए हैं। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल पुथल मच जाए;
एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए!
प्राणों के लाले पड़ जाएं, त्राहि त्राहि रव नभ में छाए;

---

[1] नवीन नेहरू को 'जवाहर भाई' कहते थे (मैंने कानपुर की एक सभा में सुना भी था)। नेहरू की हिन्दी-अरुचि के कारण टण्डन, गोविन्ददास, नवीन, बनारसीदास चतुर्वेदी, दिनकर इत्यादि मन्त्री न बन सके, किन्तु सम्बन्ध तो बने ही रहे। वे उर्दूदास एवं अंग्रेज़ी भक्त थे तथा शिक्षामन्त्री प्रायः मुसलमान को बनाते थे, जिससे हिन्दी की प्रगति रुद्ध रहे।

[2] सुभाष की हिटलर, तोजो जैसे हिंस्र आक्रान्ताओं से साठ-गाँठ भी गम्भीर एवं वस्तुपरक अध्येता या विचारक को कभी प्रशस्य नहीं लग सकती। सुभाष-पूजा बहुत साधार नहीं है।

[3] 'हम अनीकेतन हम अनीकेतन' अधिक सत्य होता!

बरसे आग जलद जल जाए, भस्मसात् भूधर हो जाए—
नाश और सत्यनाशों की धूल उड़ उठे दाएं-बाएं![1]
2. अनिल अनल जल थल में गूँजी मेरे जननायक की वाणी!....
मेरा पूरब, मेरा पश्छिम, मेरा दक्खिन, मेरा उत्तर;
मेरी गंगा, मेरी यमुना, मेरे सरवर, मेरे भूधर।...
3. आज खड्ग की धार कुंठिता, है खाली तूणीर हुआ,
विजय पताका झुकी हुई है, लक्ष्य-भ्रष्ट यह तीर हुआ;
मुझे न छेड़ो इतिहासों के पन्नों! मैं गत धीर हुआ![2]
4. करुण कहानी हिय-अरुझानी, छानी मानी नहीं रही,
अकुलाती आँखड़ियों से वह पानी पानी बनी बही।
कहाँ श्रवण की तृप्ति, औ कहाँ अभिव्यक्ति हिय भावों की?
यहाँ मौन भाषा ने दे दी साक्षी गहरे घावों की।
5. तुम क्या जानो देवि, तुम्हारी हाँ हाँ में कितना बल है,
तुम क्या जानो कि इस तुम्हारी स्वीकृति में कितनी कल है?

नवीन का 'भारतवर्ष हमारा है' गीत अत्यन्त लोकप्रिय रहा है तथा विशद अनुभूति एवं अस्मितसम्पन्न अभिव्यक्ति के कारण भी चिरस्मरणीय एवं सम्मानयीय है :

भारत वर्ष हमारा है यह हिन्दुस्तान हमारा है।

कोटि-कोटि कंठों से निकली आज यही स्वर-धारा है।
भारत वर्ष हमारा है यह हिन्दुस्तान हमारा है।।
जिस दिन सबसे पहले[3] जागे नव सिरजन के स्वप्न घने,
जिस दिन देश-काल के दो-दो विस्तृत विमल वितान तने,
जिस क्षण नभ में तारे छिटके जिस दिन सूरज चाँद बने,
तब से यह देश हमारा यह अभियान हमारा है।
भारत वर्ष हमारा है यह हिन्दुस्तान हमारा है।
है आसन्नभूत अति उज्ज्वल है अतीत गौरवशाली,
औ छिटकी है वर्तमान पर बलि के शोणित की लाली,
नव उषा-सी विजय हमारी विहँस रही है मतवाली,
हम मानव को मुक्त करेंगे, यही विधान हमारा है।
भारत वर्ष हमारा है यह हिन्दुस्तान हमारा है।।

राष्ट्रकवि के रूप में जाने जानेवाला राधावल्लभ दीक्षित 'वल्लभ' (इटावा) का वह गीत भी बहुत प्रसिद्ध हुआ जिसकी आरम्भिक पंक्तियाँ थीं :

---

[1] दिनकर की 'मेरे नगपति मेरे विशाल', 'नाचो हे नाचो नटवर' 'विपथगा' इत्यादि सशक्त कविताओं पर नवीन के प्रलयवाद का प्रभाव अवश्य पड़ा है। उनसे प्रेरित उदयशंकर भट्ट इत्यादि ने भी ऐसा सृजन किया है। उद्गम भारतेन्दु में है।

[2] 'पराजय-गीत' सफलता की पराकाष्ठा पर पहुँचे असहयोग आन्दोलन को अचानक वापस लेने पर लिखा गया था (यद्यपि कहीं-कहीं इस सत्य का भक्तिभावमूलक विरोध भी किया गया है—ठीक वैसे ही जैसे रवीन्द्र के 'जन-गण-मन' शीर्षक अपनी इबारत से ही ज़ाहिर और ब्रिटिश-युवराज के स्वागत में गाए गए चारणगीत के विषय में)। गाँधी पर स्व. श्री ब्रह्मदत्त भारती रचित 'गाँधी एण्ड अन्मास्क्ड (वाज़ गाँधी ए ट्रेटर?)' जैसे ग्रन्थ भी रचे गए हैं। (रवीन्द्र तो ख़ैर 'सर' थे ही!)

[3] प्रसाद (हमारी जन्मभूमि थी यहीं, कहीं से हम आए थे नहीं) के सदृश नवीन भी, विजातीयतावादियों के विरुद्ध, भारत को आर्यों का आदिदेश मानते थे।

"जब रण करने को निकलेंगे स्वतन्त्रता के दीवाने
धरा धँसेगी प्रलय मचेगी व्योम लगेगा थर्राने।।"

इन्हीं वल्लभ जी की सशक्त लेखनी से फूटे स्वर हैं, जिन्होंने ब्रिटिश शासनकाल में स्वतन्त्रता के दीवानों में राष्ट्रीयता का मन्त्र फूँका था। वल्लभ जी ने भारत की आज़ादी से पूर्व तथा उसके पश्चात् भी राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत रचनाओं की भागीरथी प्रवाहित की। उनकी कविता में रणभूमि के लिए जाता हुआ एक त्यागी देशभक्त अपनी जीवनसंगिनी से विदा लेता कहता है :

"प्रिये, विदा दे मुक्त करो अब मुझको इस भुजबन्धन से
मेरा हृदय फटा जाता है, मातृभूमि के क्रन्दन से।
तुम्हीं कहो जब युद्ध छिड़ा हो, चारों ओर देश भर में
तब युवकों को शोभा देता क्या बैठे रहना घर में?
पीना है यह प्याला मुझको रस न सही विषधार सही
मुझे किसी को कंठ लगाना तुम न सही तलवार सही।
सुनो बज रही है रणभेरी कोलाहल ध्वनि छाई है
जीवित रहे मिलेंगे तो फिर अथवा यही विदाई है।"

खेद है कि 'बल्लभ' जी को न्याय नहीं प्राप्त हुआ। वे नवीन के सदृश स्फीत कवि न थे, किन्तु एक प्रणम्य राष्ट्रकवि अवश्य थे।

'बिस्मिल'

अगर फिर जन्म लूँ आकर तो हो भारत में ही आना
मुझे हो प्रेम हिंदी से, पढ़ूँ हिंदी, लिखूँ हिंदी
चलन हिंदी चलूँ, हिंदी पहनना-ओढ़ना-खाना
रहे मेरे भवन में रोशनी हिंदी चिरागों की
कि जिसकी लौ पे जलकर ख़ाक़ हो 'बिस्मिल' सा परवाना।

बीसवीं सदी (ई.) में उत्तर प्रदेश के आदि-क्रान्तिकारी काकोरी ट्रेन डकैती के नेता (जिसके एक सदस्य शहीद-सम्राट् चन्द्रशेखर 'आज़ाद'[1] थे तथा एक अन्य साम्यवादी लेखक स्व. मन्मथनाथ गुप्त), 4 अप्रैल, 1927 को शहीद होने वाले जन्म से ठाकुर किन्तु कर्म से पं. (क्रान्तिकारियों के गुरु के नाते भी) रामप्रसाद 'बिस्मिल'[2] उर्दू के शायर तो थे ही, हिन्दी-साहित्यकार भी थे, जिनकी फाँसी पर चढ़ने से ठीक दो दिन पूर्व लिखी 'आत्मकथा' (जिसे पत्रकाररत्न स्व. बनारसीदास चतुर्वेदी ने सम्पादित-प्रकाशित[3] कराया था) क्रान्ति का दहकता हुआ अभिलेख है तथा हिन्दी में है। बिस्मिल की यह कविता भगतसिंह, राजगुरु, सुखदेव आदि क्रान्तिकारी बड़े जोश के साथ गाया करते थे :

सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है
देखना है ज़ोर कितना बाजू-ए-कातिल में है।
रहबरे- राहे - मुहब्बत रह न जाना राह में
लज़्ज़ते सहरा ज़वर्दी दूरि-ए-मंजिल में है।
वक्त़ आने पे बता देंगे तुझे ऐ आसमाँ
हम अभी से क्या बताएं क्या हमारे दिल में है।

---

[1] 'आज़ाद' ने केवल दो काव्य-पंक्तियाँ लिखीं या कही थीं, किन्तु जीवन में उनका निर्वाह करने के कारण उनका महत्त्व अपार है :

दुश्मन की गोलियों का हम सामना करेंगे।
आज़ाद ही जिए हैं, आज़ाद ही मरेंगे।

[2] अशफ़ाकुल्ला, रोशनसिंह एवं राजेन्द्रनाथ लाहिड़ी भी 'बिस्मिल' हुए!

[3] आत्माराम एंड संस दिल्ली द्वारा प्रकाशित।

अब न अमले वलवले हैं और न अरमानों की भीड़
एक मिट जाने की हसरत अब दिले-बिस्मिल में है।
आज़मक़त्ल में ये क़ातिल कर रहा है बार-बार
क्या तमन्ना-ए-शहादत भी किसी के दिल में है।
ऐ शहीदे-मुल्को-मिल्लत तेरे ज़ज़्बों पे निसार
तेरी कुर्बानी का चर्चा ग़ैर की महफ़िल में है।

बिस्मिल की छोटी-सी आत्मकथा हिन्दी आत्मकथा-साहित्य की एक अजर-अमर निधि है जिसकी समता डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की विशाल एवं बच्चन की बहुखंडीय स्फीत आत्मकथाओं से की जा सकती है। प्रो. बलराज मधोक कृत 'जिन्दगी का सफ़र' भी आत्मकथा-साहित्य की एक उल्लेखनीय उपलब्धि है। 'बिस्मिल' हिन्दी शब्द का अर्थ अमीर खुसरो की 'हिन्दवी' और डॉ. सर मोहम्मद इकबाल के 'हिन्दी' (हिन्दी हैं हमवतन है हिन्दोस्ताँ हमारा[1]) प्रभृति को मिलाकर विराट् रूप में लेते थे, किन्तु उसमें हिन्दी भाषा भी समविष्ट है। श्री मदनलाल वर्मा 'क्रान्त' (लाल बहादुर शास्त्री पर 'ललिता के आँसू' खंडकाव्य के प्रणेता) ने 'बिस्मिल' की राशि-राशि हिन्दी-उर्दू-कविता ढूँढ़ निकाली है। उनका शोधकार्य अनेक वर्षों से चल रहा है।

पढ़ीस

मुल्ला दाऊद, कुत्बन, जायसी, मंझन, उस्मान, नूरमोहम्मद इत्यादि सूफ़ी प्रेमाख्यानकारों की अवधी बौद्धिककाल में भी विपन्न नहीं रही। सुधारवादी युग में पं. प्रतापनारायण मिश्र ने 'गैया माता', 'बुढ़ापा' इत्यादि कविताएँ बैसवाड़ी (बैसवारी) अवधी में लिखीं। आदर्शवादी युग में स्वयं आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरगौ नरक ठेकाना नाहिं' शीर्षक प्रसिद्ध व्यंग्य-कविता में बालमुकुन्द गुप्त पर आल्हा-शैली का प्रहार बैसवाड़ी (बैसवारी) अवधी में ही किया। स्वच्छन्दतावादी युग में श्री द्वारकाप्रसाद[2] मिश्र ने 'कृष्णायन' शीर्षक स्फीत महाकाव्य की रचना संस्कृतनिष्ठ अवधी में की जो रामचरितमानस, पदमावत एवं मधुमालती के अनन्तर अवधी-कविता की सर्वोत्तम उपलब्धि है, आधुनिक अवधी की अन्यतम रचना है। यथार्थवादी युग में बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस', वंशीधर शुक्ल, गुरुप्रसाद सिंह, 'मृगेश' चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका', दयाशंकर दीक्षित 'देहाती', तोरनदेवी शुक्ल 'लली', ब्रजकिशोर पाण्डेय 'ब्रजनन्दन', शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन', लक्ष्मणप्रसाद 'मित्र', त्रिलोचन शास्त्री, विश्वनाथ पाठक, चतुर्भुज शर्मा, अनूप शर्मा, शारदाप्रसाद 'भुशुंडि', त्रिभुवन नाथ शर्मा 'मधु', बद्रीप्रसाद 'पाल', लिखीस, रामगुलाम वैश्य, सुमित्राकुमारी सिन्हा, सुरेन्द्रकुमार दीक्षित, शिवबालक शुक्ल, रमाकान्त श्रीवास्तव, देवीदयाल शुक्ल 'प्रणयेश', केदारनाथ त्रिवेदी 'नवीन', गिरजादयाल 'गिरीश', शिवसिंह 'सरोज', आधुनिक रहीम, आधुनिक बैताल, आधुनिक सूरदास, माधवीलता शुक्ल, द्वारिकाप्रसाद यादव, 'युदचन्द', डॉ. कृपाशंकर मिश्र 'निर्द्वन्द्व'[3] विनीत विक्रम बौद्ध (रामखेलावन पांडेय), सत्यधर शुक्ल, डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र 'मधुप', डॉ. रामबहादुर मिश्र, अल्हड़ गोंडवी, सूर्यप्रसाद द्विवेदी, 'काका बैसवारी' इत्यादि शत-शत कवियों ने अवधी कविता रची है। सुनील जोगी ने स्वातन्त्र्योत्तर अवधी-कविता का मूल्यांकन विषय पर शोधकार्य किया है।

---

1. कानपुर के मुन्शी दयानारायण निगम सम्पादित 'ज़माना' में इक़बाल का 'सारे जहाँ से अच्छा' तराना 1904 ई. में छपा था। यह बेहद लोकप्रिय हुआ। किन्तु इक़बाल कालान्तर में घोर सांप्रदायिक एवं पाकिस्तान के गॉड-फ़ादर बने।
2. 'पंडित प्रतापनारायण मिश्र के अतिरिक्त भारतेन्दु युग में अवधी के माध्यम से काव्यरचना करने वालों में अन्य अनेक कवि हुए परन्तु उनकी रचनाएँ अभी तक प्रकाश में नहीं आईं। इन कवियों की संख्या सौ से किसी प्रकार भी कम न होगी। इनमें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं, शुकदेव मिश्र (डौंड़ियाखेरा), सर्वेश शुक्ल (विगहपुर), शिवसिंह सेंगर (काँथा), जगन्नाथ अवस्थी (सुमेरपुर), भवन कवि (बेंती), बादेराम (डलमऊ), भवानीप्रसाद पाठक 'भावन' (मौरावाँ), मिहीलाल 'मिलिन्द' (डलमऊ), गिरिधारी (सातनपुर), शम्भूनाथ मिश्र (खजुरगाँव), चिरंजीव, महानन्द वाजपेयी, पंचम (डलमऊ), गंगादयालु द्विवेदी (निरागर), गुणाकार त्रिपाठी (काँथा), कालीचरण वाजपेयी (विगहपुर), मूनूकवि (असोथर), सुन्दर कवि (असनी), शिवलाल दुबे (डौंडियाखेरा), धीरदास, प्राणनाथ, खुशाल, बेनीमाधव, ईश्वरीप्रसाद, वंशीधर, कालीदीन, मनीराम, जानकीप्रसाद, शिवराम, दुलारे, दयाल, छत्रपति सिंह मौन, ज्वालाराय, परमेश, रघुराजसिंह, विश्वनाथ, मिहीलाल, हरिप्रसाद, माधो, माधव, कन्हैयाबख्श, आनन्दीदीन, जगन्नाथ, परमात्मादीन, बच्चूलाल, सुखराम, शिवरतन मिश्र, कामताप्रसाद आदि।''—''अवधी और उसका साहित्य'' —डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित
3. वे 'द्वारिका' नहीं लिखते थे। यही नहीं, 'द्वारका' का आग्रह करते थे।
4. इनका यथार्थवादी या जनवादी 'चमरौधा' कवितासंग्रह सर्वथा उल्लेखनीय है।

अधुनातन अवधी-कविता (जिसमें हास्य-व्यंग्य की प्रधानता रही है) के प्रथम उत्कृष्ट कवि बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' (1898-1942 ई., जन्मग्राम अम्बरपुर, जनपद सीतापुर, निधनस्थान लखनऊ) ने लोकप्रियता के उस आयाम का उद्घाटन किया, जिसे कविवर वंशीधर शुक्ल, चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' एवं शारदाप्रसाद 'भुशुंडि' ने पर्याप्त विकसित किया। डॉ. त्रिलोकनारायण दीक्षित के शब्दों में ''स्वर्गीय पंडित बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' वर्तमान अवधी के युगप्रवर्तक कवि थे। द्विवेदी-युग के अवसानकाल से ही उन्होंने अवधी भाषा के माध्यम से काव्यरचना प्रारम्भ कर दी थी और इस प्रकार हम उन्हें अवधी के नव-विकास का सर्वप्रथम वैतालिक कह सकते हैं। पंडित प्रतापनारायण मिश्र के अनन्तर अवधी-काव्य के क्षेत्र में प्रतिभा, काव्यशक्ति और भाषा की दृष्टि से 'पढ़ीस' जी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कवि सिद्ध होते हैं।''

किसान, गृहवधू, नववधू, खेत, खलिहान इत्यादि पढ़ीस जी के प्रिय विषय रहे किन्तु उन्होंने विलायती-छाप आधे-अधूरे भारतीयों एवं कान्यकुब्ज ब्राह्मणों के पाखंड इत्यादि का भी सुन्दर वर्णन किया है। 'चरवाहु', 'घसियारिन' जैसी कविताएँ उनके दीन-दलित-संवेदन की प्रतीक हैं। उनकी भाषा सीतापुरी अवधी है। डॉ. रामविलास शर्मा के अनुसार ''दीक्षित जी को अवधी के शब्दमाधुर्य की वैसी ही परख थी जैसी किसी महान् कवि की हो सकती है। उनकी रचना 'तुलसीदास' का एक-एक शब्द मधुर है, सम्पूर्ण कविता मानो 'रामचरितमानस' में डूबकर निखर उठी है। प्रकृति-वर्णन में वह ताज़गी है जो अवध की घनी अमराइयों में पपीहे और कोयल की बोली में होती है और जो पिंजरे में बन्द मैना की बोली में सुलभ नहीं होती। उनकी कविताओं में वही आनन्द है जो खेत-खलिहानों में घूमने वालों को खुली हवा लगने से प्राप्त होता है। बर्न्स की तरह 'पढ़ीस' जी ने भी प्रतिदिन की घटनाओं पर कविताएँ लिखी हैं।'' पढ़ीस का 'चकल्लस' (1933 ई.) अब तक प्रसिद्ध है। पढ़ीस एक आदर्श जनकवि हैं। उनके व्यंग्य बहुत ही चुभते हुए हैं। उदाहरण–

1. बलिहार भयन हम उइ ब्यरिया तुम याक विलाइति पास किह्यउ।
अभिलाखइ खुद खूब पूरि गई, जब याक बिलाइति पास किह्यउ,
बजरा का बिरवा तुम भूल्यउ, का आइ कर्याला तुम पूँछ्यउ।
छगरी का भेंड़ी कइस कह्यउ, जब याक विलाइत पास किह्यउ,
बिल्लाय मेहरिया बिलखि-बिलखि, साथ की बँदरिया निरखि-निरखि।
यह गरे म हड्डी तुम बाँध्यउ, जब याक बिलाइति पास किह्यउ[1]
हम चितई तुमका भुलुह-भुलुह, मलिकिनी निहार्यूँ भुकुरि-भुकुरि,
तुम मुँहि माँ सिरकुटु दाबि चल्यउ, जब याक बिलाइति पास किह्यउ।

2. मरजाद पूरि बोसउ बिसुआ, हम कनउजिया बाँभन आहिन,
दुलहिनी तीनि, लरिका त्यारह, सब भिच्छा भवन ति पेटु भरइँ।
घर माँ मूस डंडइ प्यालइँ, हम कनउजिया बाँभन आहिन,
बिटिया बइठी बत्तिस की, पोती बर्स अठारह की झलकी।
मरजाद का झंडा झूलि रहा, हम कनउजिया बाँभन आहिन।

निस्सन्देह, पढ़ीस अधुनातन हास्य-व्यंग्य-प्रधान अवधी-कविता के प्रवर्तक थे, जिनका जनवादी स्वर नितान्त प्रगतिशील था, जिनका प्रभाव वंशीधर शुक्ल, रमई काका, भुशुंडि, मृगेश इत्यादि उत्कृष्ट कवियों तक पर पड़ा। उनकी ठेठ सीतापुरी-अवधी का अपना रूप है, रस है। किन्तु उनकी अनुभूति का लोक व्यापकतर नहीं है (जैसा कि मृगेश का है), उनकी भाषा सार्वभौम-अवधी नहीं है (जैसी रमई काका, भुशुंडि इत्यादि की है), उनकी कविता में तुक का अभाव परिचय-व्यवधान सा लगता है, क्योंकि अवधी-कविता दाऊद के समय से ही तुकान्त रही है तथा उनके अतिरिक्त सारे अधुनातन कवियों ने भी उनका सम्मान किया है। पढ़ीस का महत्त्व 'अथ' का है, 'पथ' का है; और वे इतिहास-पुरुष के रूप में ही विशेष समादृत रहेंगे।

---

1. यहाँ दासतामूलक-हीनभावमूलक पाश्चात्य गौरांग स्त्रियों से विवाह करने वाले स्वराष्ट्रनारी-अपमानकर्त्ता धिक्कारपात्र पुरुषों की अच्छी ख़बर ली गई है।

गोविन्दबल्लभ पन्त[1]

'वरमाला' (1924 ई.), 'राजमुकुट' (1935 ई.), 'अंगूर की बेटी' (1935 ई.), 'अन्तःपुर का छिद्र' (1940 ई.), 'ययाति' (1947 ई.) इत्यादि नाटकों, 'विषकन्या' (1951 ई.) शीर्षक एकांकी-संग्रह, 'कंजूस की खोपड़ी' (1923 ई.) एवं 'एक्शा नंबर वन' (1923 ई.) शीर्षक प्रहसन तथा 'आरती' (1991 ई.) शीर्षक उल्लेख्य कविता-संग्रह के प्रणेता गोविन्दबल्लभ पन्त (1898 ई[2] रानी खेत) 'मदारी' (1935 ई.) शीर्षक एक उत्कृष्ट आंचलिक उपन्यास के कलाकार भी हैं (उनके अन्य उपन्यास बेदम हैं)[3]। वैसे, उनके 'लिली' (1919 ई.), 'संध्या-प्रदीप' कहानी-संग्रहों का उल्लेख भी 'विनोद' तक में मिलता है। किन्तु पन्त जी मुख्यतः नाट्यकार हैं। यद्यपि मिश्रबन्धु ने उनकी कविताओं को 'भावपूर्ण' माना है तथापि 'बड़ी धूम' वरमाला की ही लिखी है। आ. शुक्ल के शब्दों में ''पं. गोविन्दबल्लभ पन्त भी अच्छे नाटककार हैं। उनका 'वरमाला' नाटक, जो मार्कण्डेय पुराण की एक कथा लेकर निर्मित है, बड़ी निपुणता से लिखा गया है। मेवाड़ की पन्ना नामक धाय के अलौकिक त्याग का ऐतिहासिक वृत्त लेकर 'राजमुकुट' की रचना हुई है। 'अंगूर की बेटी' (जो फ़ारसी शब्द का अनुवाद) मद्य के दुष्परिणाम दिखानेवाला सामाजिक नाटक है।'' कल्पना के अतिरेक एवं वैविध्य के प्रदर्शन के बावजूद गोविन्दबल्लभ पन्त एक ऐतिहासिक नाटक तो लिखा ही है; प्रहसन एवं एकांकी पर भी हाथ आज़माया है। गोविन्दबल्लभ पन्त की रहस्यवादी कविता भी अच्छी है जो उन्हें स्वच्छन्दतावाद के एक अग्रदूत के रूप में प्रस्तुत करती है :

1. ''सावधान हो पद रखता हूँ फिर भी तव कोमल काया, बार-बार है दलित हो रही क्यों ऐसे चलती छाया?''
''रवि की किरणें तुली हुई हैं करने को मेरा अवसान, तेरे चरणाश्रय में मुझको जीवन मिलता पथिक सुजान!''
(छाया)

2. सुरसरि-हिय में छलक रहे मेरे ही आँसू की धार, नव-वसंत की वर-सुषमा में बिखरा है मेरा श्रृंगार।
बही जा रही मलयानिल में मेरी ही चंचल विश्वास, इस प्रफुल्ल शतदल में विकसित है मेरा ही हास-विलास।।
नील-गगन की सघन घटा में छिपा हुआ है मेरा चंद, बालक के पावन मुख में है प्रतिबिंबित मेरा आनंद।
कोयल के इस कलित कंठ में प्रतिध्वनित है मेरा गान, इस असीम की सीमा में परिमित है मेरा ही अवसान।।
(मैं)

बलदेवप्रसाद मिश्र

डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र[4] (1898 ई.) 'साकेत-सन्त' (1946 ई.) के महाकाव्यकार एवं 'तुलसी-दर्शन' के 'प्रस्थान'-शोधकार के रूप में ही विख्यात हैं, किन्तु महान् मिश्रबन्धु ने अपने अमर 'विनोद' में (रचनाकाल के कारण उक्त ग्रन्थद्वय के अनुल्लेख के बावजूद) इनके 35 ग्रन्थों का उल्लेख किया है, जिनमें 'बालचरित' (खड़ीबोली-महाकाव्य), 'मन्मथ-मंथन' (खंडकाव्य), 'श्रृंगार-शतक'

---

[1] विख्यात राजनीतिज्ञ भारतरत्न पं. गोविन्दबल्लभ पन्त (10 सितम्बर 1887–7 मार्च, 1961 : जन्मस्थान खूँट नामक ग्राम, अल्मोड़ा जनपद; मृत्युस्थान दिल्ली) से स्पष्टतः भिन्न। दोनों ही 'बल्लभ' लिखते हैं किन्तु हिन्दी-साहित्य प्रायः 'वल्लभ'- मानता है।

[2] संयोगात् 1898 ई. में प्रसिद्ध नाट्यकार माधव शुक्ल ने 'सीय-स्वयंवर' लिखा था। माधव शुक्ल का 'महाभारत पूर्वार्द्ध' नाटक (1916 ई.) बहुत लोकप्रिय हुआ था। 'भामाशाह की राजभक्ति' इनका अन्य लोकप्रिय नाटक था। गोविन्द शास्त्री दुगबेकर (1881-1961 ई.) के 'सुभद्राहरण' एवं 'हर हर महादेव' नाटक भी बहुत लोकप्रिय हुए थे। आदर्शवादी युग में माधव शुक्ल (प्रयाग) एवं दुगबेकर (काशी) ने नाटक की बड़ी सेवा की।

[3] 'हर्ष', 'बाबर', 'नूरजहाँ' जैसे ऐतिहासिक-उपन्यास गोविन्दबल्लभ पन्त को ऐतिहासिक-उपन्यासकार के रूप में स्मरणीय अवश्य बनाते हैं। 'छह छायावादी', 'मोटर रोड', 'मधुरा', 'मृगतृष्णा' एवं 'कनककमल' अन्य उपन्यास हैं।

[4] इस नाम के चार साहित्यकार हुए हैं: 1. औरंगज़ेब (राज्यकाल 1658-1707 ई.) के समय 'अजमतिखाँ-यशवर्णन' के कवि बलदेव मिश्र। 2. मुरादाबाद के प्रसिद्ध विद्वान्, 'सीता-वनवास' के नाट्यकार एवं रामचरितमानस, विनयपत्रिका, बिहारी-सतसई इत्यादि के टीकाकार पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र के अनुज बलदेवप्रसाद मिश्र (देहान्त 1947 ई.) जिन्होंने 'प्रभात-मिलन' 'नन्द-विदा', 'मीराबाई' इत्यादि सुन्दर नाटक, 'लल्ला बाबू' प्रहसन तथा अन्य विविधविषयक ग्रन्थ लिखें। 3. काशी में जन्मे तथा लखनऊ में दिवंगत हुए बलदेवप्रसाद मिश्र (1913-56 ई.) जिनके 'उलूकतन्त्र' में हास्यपरक एवं 'शवसाधना' में विविधविषयक स्तरीय कहानियाँ संगृहीत हैं। 4. डॉ. बलदेव प्रसाद मिश्र। वैसे, एक काशी-निवासी बलदेवप्रसाद (1912 ई.) भी हुए हैं, जिन्होंने फुटकल लेख और कहानियाँ लिखी हैं और सोनबरसा (बलिया) में जन्मे काशीवासी डॉ. बलदेव उपाध्याय (1899 ई.) तो 'भारतीय दर्शन', 'बौद्धदर्शन-मीमांसा', 'श्रीशंकराचार्य' इत्यादि ग्रन्थों के प्रख्यात प्रणेता हैं ही। कृष्ण बलदेव वैद (कहानीकार) का नाम तो भिन्न ही है।

(ब्रजभाषा-काव्य) तो विशेष महत्त्वपूर्ण हैं ही, 'श्रीकृष्ण', 'वीरवर कर्ण', 'स्वामी राम', 'सती सुकन्या', 'दुर्बला नारी' जैसे नाटक तथा 'विमलादेवी' शीर्षक उपन्यास भी उपेक्षणीय नहीं है। खेद है कि इन प्रतिभाशाली ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली कवि तथा उत्कृष्ट नाट्यकार का आ. शुक्ल के 'इतिहास' में उल्लेख तक नहीं है, जबकि केवल नाट्यकार बलदेवप्रसाद मिश्र का है। स्व. मिश्र जी एम. ए., एलएल. बी., डी. लिट्. तो थे ही, अच्छे-ख़ासे नेता भी थे। अपने समग्र समनामियों में डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र एक साथ ही कवि, नाट्यकार एवं तुलसी-पंडित होने के कारण सर्वाधिक उल्लेखनीय हैं। हिन्दी-आलोचना एवं हिन्दी-कोश इनके साथ न्याय नहीं कर सके। म. प्र. के साहित्यकारों में भी वे स्मरणीय हैं।

यह सत्य है कि 'साकेत-सन्त' की सृजन-प्रेरणा 'साकेत' में निहित है किन्तु विशेषतः भरत[1]-मांडवी एवं प्रसंगतः शत्रुघ्न-श्रुतिकीर्ति चरितों एवं चरित्रों को उजागर करने वाला यह महाकाव्य मौलिक भी है, मार्मिक भी। नवविचार-व्यामोही नेता-वर्गीय लेखक-सम्पादक डॉ. विद्यानिवास मिश्र इत्यादि बहुकार्यव्यस्त 'विद्वान्' कभी राम पर भरत को वरीयता देकर तो कभी राम पर सीता को वरीयता देकर विषय तथा स्वयं के साथ जो व्यर्थपरिणामी वृद्धताचापल्जनक अन्याय कर रहे हैं (राम क्रिया हैं, सीता-भरत-लक्ष्मणादि प्रतिक्रिया—यहाँ प्रतिक्रिया क्रिया की समता तक नहीं कर सकती; वरीयता तो दूर रही), उसके प्रेरक महत्तर डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र ही हैं (यद्यपि उनमें सांस्कृतिक छिछोरापन कहीं नहीं है)। भारत-माण्डवी[2], सुमित्रा[3], शत्रुघ्न-श्रुतिकीर्ति[4] इत्यादि पर काव्यादि लिखने वालों को मिश्रजी से प्रेरणा अवश्य मिली है। इधर, शोध-दिशा में 'तुलसी-दर्शन' ने सोरों-सामग्री के प्रख्यात कल्पनाकर्ता एवं 'द फिलॉसॉफी ऑफ़ तुलसीदास'[5] के विद्वान् लेखक स्व. डॉ. रामदत्त भारद्वाज एवं (पीएच.डी. में डॉ. सुधीन्द्र कृत 'हिन्दी-कविता में युगान्तर' एवं स्व. डॉ. श्रीकृष्णलाल कृत 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास 1900-1925' शीर्षक ग्रन्थों से प्रेरणा लेते हुए 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग' जैसा उत्कृष्ट शोधप्रबन्ध लिखने वाले) अध्यवसायी विद्वान् डॉ. उदयभानुसिंह को 'तुलसी-दर्शन-मीमांसा' (डी.लिट्.-शोधप्रबन्ध) प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी, जिससे विषय का प्रशस्य विकास हो सका। इससे पूर्व, डॉ. श्रीकृष्णलाल 'मानस-दर्शन' लिख चुके थे,[6] किन्तु डॉ. उदयभानुसिंह की 'तुलसी-दर्शन-मीमांसा' अधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी ग्रन्थ है। 'डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र ग्रन्थावली' तथा डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्रः आलोचनात्मक सर्वेक्षण' जैसे स्फीत ग्रन्थ ही राजनादगाँव के इस सन्त के साथ न्याय कर सकते हैं।

उदयशंकर भट्ट

'तक्षशिला' (1931 ई.), 'राका' (1935 ई.), 'मानसी' (1935 ई.), 'विसर्जन' (1936 ई.), 'युगदीप' (1939 ई.), 'अमृत और विष' (1939 ई.), 'यथार्थ और कल्पना' (1950 ई.) इत्यादि के सफल, स्वातन्त्र्यप्रेमी एवं सांस्कृतिक कवि, 'विक्रमादित्य' (1930 ई.), 'दाहर अथवा सिंघ-पतन' (1932 ई.), 'मुक्तिपथ' (1938 ई.), 'शक-विजय' (1953 ई.) इत्यादि के ऐतिहासिक नाट्यकार, 'अम्बा' (1933 ई.), 'सागर-विजय' (1934 ई.) इत्यादि के पौराणिक नाट्यकार, 'मत्स्यगंधा' (1934 ई.), 'विश्वामित्र' (1935 ई.), 'राधा' (1936 ई.) इत्यादि गीतिनाट्यों के बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न स्फीत नाट्यकार तथा 'स्त्री का हृदय', 'आदिम युग' (1947 ई.), 'पर्दे के पीछे' (1950 ई.), 'समस्या का अन्त' (1952 ई.), 'आज का आदमी' (1960 ई.), के नाना आयामी एकांकीकार स्व. उदयशंकर भट्ट (1898 ई.)[7] स्वच्छन्दतावादी-यथार्थवादी-संधियुग के एक प्रतीक कवि एवं हिन्दी के श्रेष्ठतम नाट्यकारों एवं श्रेष्ठतम एकांकीकारों में परिगणित होने के अधिकारी हैं। उन्होंने अनेक उपन्यास रचे हैं तथा 'उपमा का इतिहास' भी लिखा है तथा गुमान मिश्र कृत 'कृष्ण-चन्द्रिका' का संपादन भी किया है। उनका जन्म महाकवि देव[8] एवं विद्वान्-निबन्धकार गुलाबराय के जन्मस्थान इटावा में हुआ; भट्टजी के शिष्य

---

1. मॉरीशस के संस्कृत संगम के निदेशक राजेन्द्र 'अरुण' ने 15 सुन्दर लेखों से सम्पन्न 'प्रेम पियासे नैन' ग्रन्थ लिखकर भरत-साहित्य में वृद्धि की है।
2. 'कौशलेन्दु भरत' (शीर्षक-नाम ही अशुद्ध) में परमानन्द जड़िया एवं 'मांडवी महाशया' में ओउमप्रेमी।
3. डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक' ने 'सुमित्रा' लिखा है।
4. डॉ. त्रिभुवन शर्मा 'मधु' ने 'श्री शत्रुहन' काव्य लिखा है।
5. डॉ. सर एस. राधाकृष्णन ने इस ग्रन्थ की प्रशंसा की थी।
6. डॉ. श्रीकृष्णलाल को डॉ. उदयभानुसिंह का पीएच.डी. एवं डी.लिट्. दोनों का शोधप्रेरक माना जा सकता है।
7. मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में जन्मसम्वत् 1954 ई. दिया है। जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव (जिनका विवरण उत्तम है) ने 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में 1918 ई. दिया है जो ग़लत है (लगता है, मुद्रण-त्रुटि है)।
8. देव का जन्मस्थान कुसमरा (मैनपुरी) भी माना जाता है।

रेडियो-नाट्यकार पद्मश्री चिरंजीत के अनुसार, उनका सम्बन्ध बुलन्दशहर जनपद से था (जिससे महाकवि सेनापति, चतुरसेन शास्त्री, जगदीशचन्द्र माथुर, नरेन्द्र शर्मा इत्यादि भी संबद्ध हैं)। कार्यक्षेत्र पंजाब एवं दिल्ली रहा। संस्कृति एवं प्रगति, आदर्श एवं यथार्थ, लालित्य एवं बौद्धिकता का भव्य समन्वय उदयशंकर भट्ट के नाटकों की विशेषता है। ऐसी विशेषता अन्यत्र कम ही दृग्गत होती है। आ. शुक्ल ने लगभग ठीक[1] लिखा हैः ''ऐतिहासिक नाटक-रचना में जो स्थान 'प्रसाद' और 'प्रेमी' का है, पौराणिक नाटक-रचना में वही स्थान भट्टजी का है।'' और भट्ट का अधिकांश साहित्य शुक्ल के बाद लिखित-प्रकाशित है! वस्तुतः भारतेन्दु, प्रसाद और लक्ष्मीनारायण मिश्र की नाट्यकार-बृहत्त्रयी के अनन्तर तथा 'प्रेमी' के साथ-साथ भट्ट हिन्दी के शीर्षस्थ नाट्यकार हैं तथा रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर, जगदीशचन्द्र माथुर एवं उपेन्द्रनाथ 'अश्क़' के साथ-साथ शीर्षस्थ एकांकीकार।

'राष्ट्रीय आत्मा'

'अनोखी आँखें' एवं 'जीवन' के यशस्वी प्रणेता तथा शत-शत मानवीय, राष्ट्रीय एवं विविध कविताओं के स्मरणीय कवि राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा' (1898-11 फरवरी, 1962, परसूपुरवा[2], जनपद फ़र्रुख़ाबाद, कार्यक्षेत्र कानपुर[3]) जीवन एवं काव्यसर्जन दोनों में अध्यापक थे। 41 वर्षों तक डी.ए.वी. हाई स्कूल कानुपर में हिन्दी-अध्यापक रहने के अनन्तर उन्होंने 1961 ई. में अवकाश ग्रहण किया था। उनका व्यक्तित्व, स्वर, व्यवहार, सभी कुछ मधुर था। कानपुर के साहित्यकारों में सनेही, हितैषी, गणेशशंकर विद्यार्थी प्रभृति वरिष्ठों एवं डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम', डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, रामभजन त्रिपाठी सारंग' प्रभृति कनिष्ठों से उनके अच्छे सम्बन्ध रहे। डॉ. भगीरथ मिश्र प्रभृति शिष्यों एवं डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल प्रभृति प्रशंसकों के दृष्टिकोण उनके प्रति सदैव एकरस श्रद्धा से ओतप्रोत रहे। माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' से प्रभावित होकर वे 'राष्ट्रीय आत्मा' बने तथा जीवन भर राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा की सेवा करते रहे। कानपुर राष्ट्रीय कविता की दृष्टि से अतीव सम्पन्न रहा हैः प्रतापनारायण मिश्र, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', महावीरप्रसाद द्विवेदी, सनेही, हितैषी, नवीन, पार्षद, छैलबिहारी दीक्षित 'कंटक', राष्ट्रीय आत्मा, रामनाथ गुप्त इत्यादि प्रमाण हैं। पास के फ़तेहपुर जनपद के कृष्णपाल सिंह गौतम जैसे राष्ट्रकाव्यकारों पर भी कानपुरी रंगत देखी जा सकती है। 'हिन्दी का राष्ट्रकाव्य और कानपुर' शोध का विषय है। सन्तान न होने के कारण उन्होंने श्री अशोककुमार त्रिपाठी को पालित-पुत्र बनाया, जो वास्तविक-पुत्र से भी अधिक निष्ठावान् सिद्ध हुए। पत्नी श्रीमती सरस्वती देवी एवं स्व. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल (12 जनवरी, 1991 को दिवंगत), सारंग जी, अशोक जी प्रभृति के कारण उनकी पावन स्मृति के साथ अन्याय नहीं होने पाया (जैसाकि भारत में प्रायः होता रहता है)।

'राष्ट्रीय आत्मा' का 'जानकी-जीवन' महाकाव्य अप्रकाशित है। इस सांस्कृतिक महाकाव्य का दर्शन प्रकृति-पुरुष के संपृक्त-रूप से सृजन एवं पोषण का निरूपण है जिसका विशद चित्रण रामकाव्य को सम्पन्न करते हुए प्राप्त होता हैः

मधुर मिलन मोद प्रकृति-पुरुष का जो, साधन भरण परिपोषण सृजन का।
मंजु आचरण यजमान का पुरोहित का, अग्नि अखिलेश मुख पूजन भजन का।।
कर्षण सुरों का, सुविधान रस-वर्षण का, योग जड़-संगम स्वजन का।
संस्कृति का दर्पण समाज का समर्पण सा, दर्शन-प्रदर्शन-निदर्शन यजन का।।

प्रकाशित 'अनोखी आँखें' बाल्य, यौवन, प्रौढ़ता एवं वृद्धता के कालों में आँखों की विविध दशाओं का विलक्षण एवं अपूर्व चित्रण करने वाला 1111 दोहों-सोरठों (4 दोहे और 1 सोरठा के क्रम में) का सफल काव्य है। आँखों की अकथ-कथा पर 889 दोहों और 222 सोरठों का विश्व का स्फीत काव्य रचकर भी कवि का मन हार स्वीकार करता है :

इधर-उधर फिर-फिर थका, बैठ रहा मन मार।
लोचन चंचलता निरख मान गया मन हार।।

---

1. 'लगभग' इसलिए कि भट्टजी ने ऐतिहासिक नाटक भी रचे हैं।
2. ननिहाल। मूलतः मंधना (कानपुर) के पास पचोर के निवासी थे। जन्म तिथि कार्तिक कृष्ण 14, 1955 वि.।
3. जहाँ उन्होंने पत्नी के नाम पर सरस्वती पुस्तकालय स्थापित किया था। राजाराम सरस्वती विद्यालय जवाहरनगर भी है। महाकवि राष्ट्रीय आत्मा स्मारक समिति (जो पुरस्कार आयोजित करती है) उनको जीवन्त बनाए है। प्रतिवर्ष स्मारिका निकलती है।

संसार-साहित्य में आँखों पर असंख्य छन्द, गीत, शेर, ग़ज़ल इत्यादि रचे गए किन्तु 'अनोखी आँखें' तो तत्त्वतः आँखों का महाकाव्य ही है, जिसकी कोई तुलना नहीं। आँखों पर कहीं बौद्धिक, कहीं नैतिक कहीं भावात्मक सर्जन के अनेक निदर्शन कवि को आँखों का श्रेष्ठतम कवि सिद्ध करते हैं :

1. आँखें यो करतीं प्रकट मानव-मनोविकार। जैसे वाणी व्यक्ति के व्यंजित मनोविचार।।
सुयश अयश दें सृजन या करें हास-परिहास। मेरी आँखों में पढें आँखों का इतिहास।।
2. भंग न मर्यादा करें, स्ववश रहें सब अंग। लगे जन्म से गुप्तचर लोचन साथी संग।।
3. पल-पल में खुल-खुल समुद चपल अधर पट खोल। सृजन सुन सकें तो सुने नयन रहे कुछ बोल।।
मंजु प्रभा-सी मुख-प्रभा, उषा-सदृश मुसकान। देख दिवा तन द्युति खिले नयन सरोज समान।।
खंजन, अलि, मृग, मीन सब जहाँ एक ही रूप। मदन विधाता की रची लोचन सृष्टि अनूप।।

प्रत्येक आयु में नेत्रों का विशद निरूपण 'अनोखी आँखों' को जीवन-काव्य का रूप देता है। अवगुंठन के कारण की भव्य कल्पना एवं रहस्यात्मक लोचन-चित्रण के मनोहारी निदर्शन श्रेष्ठतम काव्य का दर्शन कराते हैं :

1. लग न जाय हृदयेश के इनकी गहरी चोट। चंचल नयनांचल खुले अंचल की ओट।।
2. मेरे तेरे बीच में पलक पटल की आड़ सारा अंतर मिट गया, देखा आँखें फाड़।।
मेरी असफल दृष्टि व्याकुल करती है मुझे। अब तक तेरी सृष्टि देखी अब देखूँ तुझे।।

'राष्ट्रीय आत्मा' के 'जीवन' नामक काव्य की प्रशंसा आ. रामचन्द्र शुक्ल ने की थी: ''जीवन किसी अज्ञात उद्‌गम से प्रकट होकर अनेक रूप-संघातों और व्यापार-चक्रों के बीच से होता हुआ, नाना दशाओं का कटु और मधुर अनुभव करता हुआ, विभिन्न क्षेत्रों के बीच सफलता या विफलता का समृतिचिह्न छोड़ता हुआ चला चलता है। इस सब की सुन्दर झाँकी इस पुस्तक में मिलती है। इस असम धरातल पर जीवन-प्रवाह का लक्ष्य है फैले हुए सन्ताप का शमन और सरसता का संचार।''[1]

'राष्ट्रीय आत्मा' सरल अनुभूति के सरल कवि हैं, क्लिष्ट विचारों-भावों में भड़कीले कलाकार नहीं। उनका सुनियोजित शब्द-चयन आदर्शवादी युग के शिक्षक का है, स्वच्छन्दतावादी युग के 'उस पार' वाले भावुक का नहीं, यथार्थवादी युग के जले-भुने गद्यजन्मा जड़िया का नहीं। सनेही ने 'राष्ट्रीय आत्मा' की भाषा को 'गणित की भाषा' कहा था, जिसकी व्याख्या डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' ने की हैः ''...जिसमें शादी को सायास चुन-चुन कर रखा जाय। सनेही जी स्वाभाविक एवं प्रवाहमयी भाषा को महत्त्व देते रहे हैं।...पं. राजाराम जी...भाषा के परिमार्जित प्रयोग पर अधिक ध्यान देते थे।'' भाषा की दृष्टि से 'राष्ट्रीय आत्मा' आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के निकटतर हैं; उनकी भाषा 'एक भारतीय आत्मा' (माखनलाल चतुर्वेदी) एवं समवासी 'नवीन' (बालकृष्ण शर्मा) की स्वच्छन्द-भाषा नहीं है। उनका मूल स्वर भी आदर्शवादी युग का है।

आँखों के अन्यतम कवि, 'जानकी-जीवन' के महाकाव्यकार, 'जीवन' के व्याख्याता-कवि एवं राष्ट्रीय कवि के रूपों में राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा' हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक निश्चित स्थान के अधिकारी हैं। भूषण, मतिराम, प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि से लेकर सनेही, हितैषी, नवीन तक के कविनगर कानपुर के एक कविरत्न के रूप में भी वे सदैव सम्मान प्राप्त करते रहने का अधिकार रखते हैं। वैसे, कानपुर की विख्यात विद्वत्त्रयी डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम', पं. कृष्णशंकर शुक्ल एवं प्रो. सिद्धिनाथ मिश्र की रही है। इस समय भी डॉ. सेवक वात्स्यायन विद्यमान हैं। ''राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्माः ग्रन्थावली'' एवं ''राजाराम शुक्ल 'राष्ट्रीय आत्मा': व्यक्तित्व और कृतित्व'' का प्रकाशन होने पर ही उनकी प्रतिभा का समुचित परिचय सम्भव हो सकेगा।

मोहनलाल महतो 'वियोगी'

'निर्माल्य (1926 ई.) एवं 'कल्पना' (1935 ई.) के स्वच्छन्दतावादी-रहस्यवादी कवि एवं 'रेखा' (1929 ई.) के भावुक कहानीकार मोहनलाल महतो 'वियोगी' (1899-1990 ई.—उपारिडीह, गया) हिन्दी-साहित्य के इतिहास में अपने पृथ्वीराज पर रचित त्रयोदशसर्गीय महाकाव्य 'आर्यावर्त' (1946 ई.) के कारण अमर रहेंगे। जयचन्द्र के चरित्र का उद्धार इस ऐतिहासिक महाकाव्य का एक प्रेरक बिन्दु

---

[1] 'अनोखी आँखें', पृष्ठ 'द' डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल उद्धृत 3-11-1940 को लिखे गए पत्र से। पूरा पत्र 'जीवन' में व्यक्त विविध आयामों की गम्भीर समीक्षा ही है।

है। पृथ्वीराजरासो (चन्द्र), परमालरासो (आल्हखंडः जगनिक), पृथ्वीराज की आँखें (रामकुमार वर्मा—नाटक) एवं 'आर्यावर्त' के आधार पर 'हिन्दी-साहित्य में पृथ्वीराज-चित्रण 'शीर्षक शोधग्रन्थ लिखा जाना चाहिए। वियोगी का 'आदमख़ोर' उपन्यास, 'कवि' कहानी तथा 'उस पार' आत्मकथा भी प्रसिद्ध हैं। जहाँ अपनी कविताओं में वियोगी एक गम्भीर रहस्यवादी हैं, वहीं कहानियों में चुटीले व्यंग्यकार। 'आर्यावर्त' में वे राष्ट्रीयकवि के रूप में प्रकट होते हैं।

वियोगी ने ब्रजभाषा में भी वैसी ही सफल काव्य-सृष्टि की है जैसी खड़ीबोली में। मिश्रबन्धु एवं शुक्ल दोनों सर्वोच्च साहित्येतिहासकारों ने उनका उल्लेख किया है। 'विनोद' में प्रशंसा के साथ दो उद्धरण भी दिए हैं :

1. चंद तथा प्रतिभा हरिचंद की, दै अपनी खर ज्योति उज्यारी।
भावुक भाव के हाथन सो सब भाँति सँभारि-सँभारि सँवारी।।
देख रहे अनिमेख अनेक सुभाखन के परसिद्ध पुजारी।
भारत-भानु के भाल की भव्य है बिन्दी प्रभामयी हिन्दी हमारी।।

2. जो अव्यक्त सिन्धु कल्लोलित है वसुधा में आठो याम,
मैं हूँ वही, भिन्न होने पर भी मेरा हुआ दूसरा नाम।
है विभिन्नता नाम मात्र की, मुझमें-उसमें भेद नहीं,
जलगत रवि की छाया का क्या और नाम है सुना कहीं?

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

हिन्दी के प्रथम श्रेणी के उपन्यासकारों एवं कहानीकारों में स्वर्गीय भगवतीप्रसाद वाजपेयी (जन्म 1899 ई.) को भी स्थान प्राप्त है जिनके 'प्रेमपथ', 'त्यागमयी', 'पतिता की साधना', 'दो बहनें', 'मनुष्य और देवता', 'विश्वास का बल', 'अधिकार का प्रश्न' तथा सबसे बढ़कर, 'राजपथ' इत्यादि उपन्यासों एवं 'मधुपर्क' 'हिलोर', 'मेरे सपने, 'उपहार', 'उतार-चढ़ाव', 'अंगारे' तथा 'बाती की लौ' जैसे कहानी-संग्रहों में बीसवीं सदी को भारतीय जीवन के यथार्थपरक से लेकर आदर्शपरक तक अनेक रूपों का प्रभावी चित्रण प्राप्त होता है। एक स्फीत कहानीकार होते हुए भी वाजपेयी मुख्यतः उपन्यासकार थे (इस दृष्टि से अज्ञेय का स्मरण कराने वाले), यद्यपि 'मिठाईवाला' जैसी मार्मिक कहानी के कलाकार के रूप में वे सदा याद किए जाते रहेंगे (जो हिन्दी की 'काबुलीवाला' है)। उपन्यासकार वाजपेयी का जन्म भूषण, मतिराम, चिन्तामणि, युगल किशोर शुक्ल[1], प्रतापनारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', गयाप्रसाद शुक्ल 'सेनही', विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, गणेशंकर विद्यार्थी, जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी', बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', मुन्शीराम शर्मा 'सोम' इत्यादि के जन्मस्थान या कर्मस्थान या वासस्थान के रूपों में विश्रुत कानपुर जनपद के ग्राम मंगलपुर (तहसील डेरापुर) में हुआ था। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने उन्हें प्रेमचन्द के बाद हिन्दी का अग्रणी उपन्यासकार माना है। डॉ. नगेन्द्र ने 'हिन्दी-उपन्यास' ('विचार और अनुभूति' तथा परिवर्ती वृहद्-संकलन 'आस्था के चरण' का एक उत्कृष्ट निबन्ध) में उन्हें एक क्रान्तिकारी साम्यवादी (शोलोख़व को आदर्श माननेवाला) उपन्यासकार के रूप में पेश किया है, किन्तु 'राजपथ' एवं अधिकार का प्रश्न' प्रभृति उत्कृष्ट उपन्यासों में वें गाँधीवादी प्रतीत होते हैं। स्वर्गीय भगवतीचरण वर्मा के निस्संगतावादी उपन्यास 'टेढ़े-मेढ़े-रास्ते' का साम्यवादी उत्तर स्वर्गीय रांगेय राघव ने 'सीधे-सादे रास्ते' के रूप में दिया तथा गाँधीवाद का उत्तर भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने 'राजपथ' के रूप में। 'टेढ़े-मेढ़े' एवं 'राजपथ' निस्सन्देह श्रेष्ठ उपन्यास हैं। विचार-व्यामोह की प्रेमचन्दीय-दुर्बलता के बावजूद, भगवतीप्रसाद वाजपेयी के उपन्यास स्वस्थ सामाजिकता एवं सुपुष्ट सांस्कृतिकता के कारण महत्त्वपूर्ण हैं। आदर्श-यथार्थ-समन्वयशील प्रेमचन्द-परम्परा के उपन्यासकारों में भगतवीप्रसाद वाजपेयी एवं अमृतलाल नागर अग्रणी हैं, क्योंकि प्रतापनारायण श्रीवास्तव, यज्ञदत्त शर्मा इत्यादि अन्य उपन्यासकार कथाप्रधान मात्र होने के कारण इनकी समता नहीं कर पाते।

---

[1] हिन्दी-पत्रकारिता के प्रणम्य आदि-पुरुष। 'उदन्त मार्तण्ड' (1826 ई.) एवं 'सामदण्ड मार्तण्ड' (1850 ई.) का ऐतिहासिक प्रकाशन-संपादन इत्यादि किया।

अनूप शर्मा

खड़ीबोली-महाकाव्यद्वय 'सिद्धार्थ' (1937 ई.) एवं 'वर्द्धमान' (1951 ई.)[1] तथा ब्रजभाषा-महाकाव्य 'फेरि मिलिबो' (1938)[2] के महाकाव्यकार, 'सुनाल'[3] खंडकाव्यकार और 'समुनांजलि'[4] के मुक्तककार कविवर स्व. अनूप शर्मा (1900[5]-60 ई., जन्मस्थान नबीनगर, जनपद सीतापुर) की मूल प्रकृति ब्रजभाषा-काव्यरचना की थी, जिसकी झलकियाँ उनकी खड़ीबोली-काव्यरचना में भी मिलती रहती हैं। 'सिद्धार्थ' एवं 'वर्द्धमान' में संस्कृत-वर्णवृत्तों की अतुकान्त कविता के कारण अनूप शर्मा को द्वितीय-हरिऔध कहा जा सकता है। 'सिद्धार्थ एवं 'सुनाल' के कारण बौद्धकाव्य और 'वर्द्धमान' एवं 'सिद्धिशिला' के कारण जैनकाव्य में अनूप शर्मा हिन्दी के प्रतिनिधि कवि माने जा सकते हैं। 'फेरि मिलिबो' में उन्होंने कृष्णकाव्य में रुक्मिणी एवं राधा तथा नारद एवं कुरुक्षेत्र इत्यादि को संपृक्त कर नव्य प्रयोग किए हैं। वे एक उत्कृष्ट घनाक्षरीकार भी हैं। बौद्धकाव्य, जैनकाव्य एवं कृष्णकाव्य के अनेक खड़ीबोली-कवि (जिसमें धर्मवीर भारती एवं जगदीश गुप्त भी समाविष्ट हैं) उनसे प्रभावित हुए हैं। 'सुमनांजलि' की कविताओं में उन्होंने ज्ञान-विज्ञान एवं धर्म-दर्शन के नए क्षितिजों का उद्घाटन किया है। आचार्य शुक्ल ने उनकी 'जीवन-मरण' कविता में ''इतिहास की विविध भूमियों के चित्र'' उरेहने तथा 'विराट् भ्रमण' में ''आकाशचारी रथ पर बैठ....विराट् का दर्शन'' करने की 'कल्पना'-शक्ति की प्रशंसा ठीक ही की है। मिश्रबन्धु के अनुसार, उन्होंने ''वीरकाव्य अच्छा रचा है।'' फिर भी, 'कविता-कौमुदी' (रामनरेश त्रिपाठी), 'विनोद' (मिश्रबन्धु), 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (रामचन्द्र शुक्ल), 'हिन्दी-सेवी संसार' (प्रेमनारायण टण्डन), 'हिन्दी के महाकाव्य और महाकाव्यकार' (रामचरण महेन्द्र), 'बीसवीं सदी के महाकाव्य' (प्रतिपाल सिंह) इत्यादि में उनकी उच्चस्तरीय प्रतिभा का सम्यक् आकलन नहीं प्राप्त हो पाता है। 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2—सं. डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि) में श्रीपाल सिंह 'क्षेम' का विवरण अच्छा है, किन्तु उद्धरणों के अभाव में पाठक अपना आकलन नहीं कर पाता ('कोश की सीमाएँ होती ही हैं)। 'क्षेम' के शब्दों में, ''छायावादी स्फुट रचनाओं के आत्मनिष्ठ युग में भी वस्तुप्रधान प्रबन्ध-शैली के विस्तारकों में इनका नाम अनुपेक्षणीय है।'' अनूप शर्मा पर उनके गुरु सनेही को बड़ा गर्व था...''दो-दो महाकाव्य रचे हैं!'' खड़ीबोली-कविता में ब्रजभाषापन तथा माधुर्य की अल्पता के कारणों से अनूप शर्मा ठीक-ठीक खप नहीं पाएँ, किन्तु स्फीति तथा नव्यता के कारण वे एक स्मरणीय कवि अवश्य हैं। उनकी ब्रजभाषा-कविता उत्कृष्ट तथा नव्यतानिष्ठ है, जिसका सम्यक् आकलन अपेक्षित है। वस्तुतः ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली के द्वित्व ने उनकी बड़ी क्षति की है—न तो वे हरिऔध के साथ चल सके, न रत्नाकर के। उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. धावनैं क्यों न पठावती द्वार थकी मग जोय बड़ी-बड़ी आँखैं।
क्यौं न पियै अभिनन्दन काज पिरोवती मोतिन की लड़ी आँखैं।।
क्यों न सँवारती रही मकरंद अरी अरविन्द की पंखड़ी आँखैं।
ढारती क्यों न कपोलन पै वै बड़े-बड़े बूँद बड़ी-बड़ी आँखैं।।

2. नाम रतनाकर यथारथ पर्‌यो है यातें चौदहौ रतन धारे सोहतै रहत है।
तरल तरंगनि उमंगनि के संगनि सों विश्वमोहिनी को मन मोहतै रहत है।।
निखिल नदी नद को निपुत निदान एकै बोहित के बृंदनि बिपोहतै रहत है।
ऐहो कुंभजात! एतो बारिध बढ़्यो तौ कहा रावरी कृपा की कोर जोहतै रहत है।।

---

1. जैनधर्म-सन्दर्भी 'सिद्धिशिला' भी रची जो अप्रकाशित है।
2. इस 75 अध्यायों की स्फीत एवं ललित कृति पर देव-पुरस्कार मिला।
3. कुणाल पर। मैथिलीशरण ने 'कुणाल-गीत' एवं सोहनलाल द्विवेदी ने 'कुणाल' रचा है।।
4. कविता (घनाक्षरी) छन्द में सृजन-सामर्थ्य की सूचक कृति।
5. कविता-कौमुदी (भाग 2), मिश्रबन्धु विनोद (भाग 4) सं. 1957 वि.। इसी (1900 ई.) वर्ष 'निर्वासिता' इत्यादि के उपन्यासकार एवं फणीश्वरनाथ 'रेणु' के प्रेरक 'कैवर्त-कौमुदी' के सम्पादक अनूपलाल मण्डल (समौली, पूर्णिया, बिहार) का जन्म हुआ। महाकवि पन्त का जन्म-वर्ष भी यही था। साहित्येतर क्षेत्र में विजयलक्ष्मी पंडित भी इसी वर्ष पैदा हुईं। किन्तु 'बृहत् विश्व सूक्ति कोश (सं. डॉ. श्यामबहादुर वर्मा एवं मधु वर्मा) खण्ड 3 ई. लिखा है (मृत्युवर्ष 1960 ई. ही)।

3. पीछे दृष्टिगोचर था गोल चक्र पूषण का घूमता[1] हुआ जो नील संपुटी में चलता।
मानो जलयान के वितल पृष्ठभाग मध्य आता चला फेन पीत पिंड सा उबलता।।
उबल रहे थे धूमकेतु धुरियों में तीव्र यान हेतु ताड़ित नभचक्र था उछलता।।
मारुत का, मन का प्रसंग पड़ा पीछे जब आगे चला बाजियूथ आतप उगलता।।

पन्त

''आप खड़बोली में बड़ी ही चमत्कारपूर्ण रचना करते हैं। छायावादी हैं। इनके उपर्युक्त चारों ग्रन्थ[2] हमारे देखे हुए हैं। 'पल्लव' बहुत उच्चकोटि की बाल्यरचना[3] है। इनकी रचना हिन्दी के प्राचीन प्रसिद्ध कवियों के साहित्य के समकक्ष रखी जा सकती है। भावों का अनूठापन तथा उनकी सबलता इनके मुख्य गुण हैं। हम पन्त जी को वर्तमान कवियों में अति आदरणीय दृष्टि से देखते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य का आपने अच्छा निरीक्षण किया है। कोमलता इनका शलाघ्य गुण है।'' —मिश्रबन्धु (विनोद)

''....चित्रमयी भाषा के उपयुक्त रमणीय कल्पना का जगह-जगह पर बहुत ही प्रचुर आभास[4] मिलता है।....उनकी....एक बड़ी विशेषता है प्रकृति के सुन्दर रूपों की आह्लादमयी अनुभूति।....सौन्दर्य का आह्लाद उनकी कल्पना को उत्तेजित करके ऐसे अप्रस्तुत रूपों की योजना में प्रवृत्त करता है जिनमें प्रस्तुत रूपों की सौन्दर्यनुभूति के प्रसार के लिए अनेक मार्ग से खुल जाते हैं।....मूर्तिमती लाक्षणिकता ....पल्लव में जाकर अपनी हद को पहुँची है।....रहस्यभावना अधिकतर स्वाभाविक पथ पर पाई जाती है।....समाजवाद के प्रति भी रुचि दिखलाई है, गाँधीवाद के प्रति भी।....छायावाद और रहस्यवाद से निकलकर स्वाभाविक स्वच्छन्दता की ओर बढ़ते देख सन्तोष होता है।'' —रामचन्द्र शुक्ल (हिन्दी-साहित्य का इतिहास)

स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) की बृहत्त्रयी के अमर कवि, यथार्थवाद के समाजपरक (प्रगतिवाद) एवं व्यक्तिपरक (प्रयोगवाद) दोनों ही पक्षों के एक अग्रदूत एवं हिन्दी के प्रमुख नवरहस्यवादी स्रष्टा सुमित्रानन्दन पन्त (1900-77 ई.)[5] का जन्म उन्हीं के अनुरूप विश्व के एक सर्वश्रेष्ठ सौन्दर्यस्थल कौसानी (जनपद अल्मोड़ा) में हुआ। पिता गंगादत्त ने पुत्र का नाम गोसाईंदत्त रखा किन्तु एक अतिथि के सुमित्रानन्दन नाम से प्रभावित होकर वह सुमित्रानन्दन बन गया! रामसहाय[6] द्विवेदी ने अपने पुत्र का नाम महावीरसहाय रखा था जिसे एक अध्यापक ने महावीरप्रसाद बना दिया। मुन्शी अजायबराय ने अपने पुत्र का नाम धनपतराय रखा (चाचा इत्यादि उसे प्यार से नवाबराय कहकर पुकारते थे) किन्तु पराधीनता-काल की लेखन-विवशता ने उसे प्रेमचन्द बना दिया। रामचरण गुप्त ने अपने पुत्र का नाम मैथिलीशरण बना दिया। पता नहीं झारखंडेप्रसाद (जिन्हें घरवाले 'खाँडेराव' कहकर पुकारते थे) जयशंकर प्रसाद कैसे बन गए थे! किन्तु गोसाईंदत्त स्वयं ही बने। पन्त महाराष्ट्र के प्रसिद्ध ब्राह्मण हैं। मोरो पन्त मराठी के प्रसिद्ध कवि हैं। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के पिता का नाम भी मोरो पन्त ताम्बे था। अतीतगत तीर्थयात्रा-सन्दर्भों में कूर्मांचल के राजाओं की प्रार्थना पर महाराष्ट्र के कतिपय ब्राह्मण-दल वहाँ बस गए थे। उन्हीं से काँग्रेसी नेता एवं शासक गोविन्दबल्लभ पन्त, नाट्यकार गोविन्दबल्लभ पन्त, महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त जैसे अमर व्यक्ति विकसित हुए। साम्यवादी नेता पूरनचन्द जोशी, उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी,

---

[1] सूर्य नहीं, उसके ग्रह घूमते हैं।

[2] वीणा, पल्लव, गुंजन, ज्योत्स्ना (काव्यनाटक)।

[3] 'काव्यरचना' ठीक लगता। कवि कवि होता है, बालक या युवा या वृद्ध नहीं। चैटर्टन (18), कीट्स (25), शेले या शेली (30) से भारेतन्दु (35), प्रतापनारायण मिश्र (38), प्रसाद (47) जैसे अनेक उदाहरण विद्यमान हैं। ''न धर्मवृद्धेषु वयः समीक्ष्यते (कालिदास) एवं गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न लिङ्गम् न च वयः'' (भवभूति) ही सत्य है। विश्व का निर्माण सिकन्दर (32), ईसा (32 +), शंकरचार्य (32) जैसां ने भी किया है!

[4] 'बहुत हीं प्रचुर' बहुत ही शिथिल एवं पुरुक्तिदोषयुक्त प्रयोग है तथा 'आभास' 'रमणीय कल्पना' के साथ न्याय नहीं करता। 'आ. शुक्ल का भाषिक अनाचार्यत्व' निबन्ध का विषय है क्योंकि ऐसे स्थल अनेक हैं। फिर भी, उनकी भाषा मिश्रबन्धु से श्रेष्ठतर (मिश्रबन्धु को भाषा शिथिल, अव्यवस्थित एवं शब्दव्ययपूर्ण है।)

[5] पन्त का जन्म कौसानी जैसे विश्व के एक श्रेष्ठतम सौन्दर्यस्थल में हुआ, देहान्त दिल्ली में—परिश्रमी कोशकार डॉ. श्यामबहादुर वर्मा से ज्ञात हुआ कि दिल्ली के भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान से शव ले जाते समय ऐसी परिस्थिति आई कि कार की डिक्की में डाल दिया गया! वर्मा जी नगेन्द्र को दोषी मानते हैं।

[6] निराला के पिता का नाम भी रामसहाय (त्रिपाठी) था।

भाषाविद् हेमचन्द्र जोशी, प्रख्यात उपन्यासकार शिवानी, कवि-आलोचक डॉ. जीवनप्रकाश जोशी, कथाकार-पत्रकार हिमांशु जोशी जैसे प्रसिद्ध व्यक्ति भी महाराष्ट्र-मूल के ही हैं। उपन्यासकार बल्लभ डोभाल प्रभृति हिन्दीसेवी प्रतिभा-उर्वर पर्वतांचल (उत्तरखंड) के ही हैं। पन्त मातृहीन बालक बुद्ध, मोहम्मद इत्यादि के सदृश अन्तर्मुख हो जाते हैं। पन्त भी हुए। प्रकृति से उनका नाता जुड़ा और वे 1913 ई. में ही प्रकृति के सुकुमार कवि बन गए :

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को!

तज कर तरल अंगों को
इन्द्रधनुष के रंगों को
तेरे भ्रू भंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन?
भूल अभी से इस जग को!

कोयल का वह कोमल बोल
मधुकर की वीणा अनमोल
कह, तब तेरे ही प्रिय स्वर से कैसे भर लूँ, सजनि! श्रवन?
भूल अभी से इस जग को!

उषा-सस्मित किसलय दल
सुधा-रश्मि से उतरा जल
ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहला दूँ जीवन?
भूल अभी इस जग को!

(मोह)

पन्त की सरल-सहज एवं स्वच्छ-स्वस्थ कविता ने मिश्रबन्धु (विशेषतः रावराजा रायबहादुर साहित्य-वाचस्पति डॉ. श्यामबिहारी मिश्र) को प्रभावित किया। उन्होंने पल्लव पर उस समय का सर्वश्रेष्ठ मंगलाप्रसाद पुरस्कार दिलाने का यत्न किया "हम सोच भी नहीं सकते थे कि पच्चीस वर्ष का लड़का भी महाकवि हो सकता है।" एक कवि-सम्मेलन में कविसम्राट् अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने अपने गले की माला पन्त के गले में डाल दी थी! राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्रप्रसाद द्वारा प्रयाग जाकर राजर्षि पुरुषोत्तसदास टंडन को 'भारतरत्न' द्वारा अलंकृत किए जाने के उपरान्त एतद्विषयक वार्ता में राजर्षि ने कहा था कि यद्यपि मुझे सर्वोच्च अलंकार प्राप्त हुआ है तथापि 'पद्मभूषण' से अलंकृत पन्त तब भी पढ़े जाएँगे जब मेरी स्मृति अतीतगत हो चुकी होगी। पन्त ने यह अलंकरण सरकार की हिन्दी-नीति के विरोध में वापस कर दिया था, जिसक प्रशस्य अनुकरण महादेवी इत्यादि अनेक साहित्यकारों ने किया। (किन्तु दिनकर ने नहीं क्योंकि उनकी कन्यासंख्या सात थी और वे भूमिहार-ब्राह्मण थे जिनमें दहेज कान्यकुब्ज-ब्राह्मणों जैसा ही भयानक चलता है)। इलाहाबाद संग्रहालय का विशद पन्त-कक्ष उनकी महिमा का ऐसा संस्थान है जैसा किसी अन्य हिन्दी-कवि का नहीं है! कौसानी में भी संग्रालय-सा विद्यमान है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) विरोधी आलोचक तक ने अपने 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में उन्हें बीस पृष्ठ 'प्रदान' किए हैं, जबकि प्रसाद को पन्द्रह, निराला को पाँच एवं महादेवी को एक (क्योंकि पन्त की 'लाक्षणिकता' उन्हें 'भा' गई थी तथा पन्त की स्पष्ट प्रतीक-पद्धति एवं सरल रहस्यवादिता उनकी 'रुचि' के अनुरूप थी)! इस दृष्टि से आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी सर्वाधिक असफल सिद्ध हुए—प्रसाद, निराला, पन्त तीनों ही उनका वरदहस्त चाहते थे किन्तु वे कृपण निकले तथा बुहत्त्रयी उनके प्रति सदा श्रद्धानिष्पन्न ही रही जैसाकि 'प्रसाद को पत्र', 'परिमल' की भूमिका (व्यावहारिक जीवन से सहज जीवन तक भी), 'आचार्य द्विवेदी के प्रति' कविता इत्यादि से निर्विवादतः स्पष्ट है।[1] किन्तु 'सरस्वती' के आचार्य-परवर्ती सम्पादक

---

[1] महादेवी की भी आचार्य के प्रति अप्रतिहत श्रद्धा रही है; उनके अनुसार राष्ट्र के लिए जैसी सेवा गाँधी ने की, राष्ट्रभाषा के लिए वैसी ही सेवा आचार्य द्विवेदी ने।

पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी ने उनकी प्रतिभा को परखने में कोई भूल नहीं की। प्रसाद का जन्म 1890 ई.[1] में हुआ था, निराला का 1897 ई.[2] में, पन्त का 1900 ई. में; किन्तु ख्याति में पन्त अग्रणी रहे तथा अपनी उन कविताओं के आधार पर, जिनके संग्रह 'उच्छ्वास' (1920 ई.), 'ग्रन्थि' (1920 ई.) एवं 'वीणा' (1927 ई.) के रूपों में प्रकाशित हुए, छायावाद के वाहक एवं नायक मान लिए गए तथा अपने जीवन के सर्वश्रेष्ठ सृजनसंग्रह 'पल्लव' (1928 ई.) के प्रकाशन के साथ ही पन्त, प्रसाद, निराला की त्रयी साहित्य पर छा ही गई। रामचन्द्र शुक्ल कृत 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में भी 'पन्त, प्रसाद निराला' का क्रम ही दीखता है। 'पल्लव' के 'प्रवेश' को 'छायावाद का घोषणापत्र' माना गया। प्रसाद एक गम्भीर व्यक्ति थे। वे 1937 ई. में दिवंगत भी हो गए। किन्तु असामान्य निराला को पन्त-प्रतिष्ठा बहुत अखरती रही जो 'अनामिका' की 'हिन्दी के सुमनों में प्रति' कविता से लेकर 'पन्त और पल्लव' आलोचना-ग्रन्थ तक अभिलेख-रूप में सुरक्षित है। निराला अवसर-अनवसर पन्त-विगर्हणा करने से कभी न चूकते थे। एक बार तो वे धड़धड़ाते हुए पन्त के आवास पर पहुँचे तथा अनेक भद्रजन की उपस्थिति में पुसंत्व-प्रदर्शन की ललकार के साथ तुरन्त धुर नंग हो गए (क्योंकि पन्त, अज्ञेय के सदृश पुंसत्वविपन्न थे)![3] कालान्तर में 'कामायनी' की धाक कुछ ऐसी बँधी कि क्रम 'प्रसाद पन्त, निराला' का हो गया। तदनन्तर, निराला के प्रायः सभी प्रगतिवादियों एवं अधिकांश प्रयोगवादियों द्वारा अपनाए जाने के कारणों से यह 'प्रसाद, निराला, पन्त' का हो गया। संयोगात् समय-क्रम भी 'प्रसाद, निराला, पन्त' के ही अनुरूप पड़ता है!

स्फीत कवि

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य कोश' के पन्त-सम्बन्धी विवरण डॉ. रामरतन भटनागर ने रचनाओं को ये नाम दिए हैं: 'उच्छ्वास' (1920 ई.), 'ग्रन्थि' (1920 ई.), 'वीणा' (1927 ई.), 'पल्लव' (1928 ई.), 'गुंजन' (1932 ई.), 'युगान्त' (1936 ई.), 'युगवाणी' (1939 ई.), 'ग्राम्या' (1940 ई.), 'स्वर्णकिरण' (1947 ई.), 'स्वर्णधूलि' (1947 ई.), 'युगपथ' (1948 ई.), 'उत्तरा' (1949 ई.), 'रजतशिखर' (रूपक 1951 ई.), 'शिल्पी' (रूपक 1951 ई.), 'अमिता' (1955 ई.),[4] 'वाणी' (1957 ई.), 'सौवर्ण' (1957 ई.), 'कला और बूढ़ा चाँद'[5] (1959 ई.), नाटक—'ज्योत्सना' (1934 ई.), कहानी—'पाँच कहानियाँ' (1936 ई.), समीक्षात्मक गद्य—'गद्यपथ' (1949 ई.), आत्मकथा—'साठ वर्षः एक रेखांकन' (1960 ई.), संचयन—'आधुनिक कवि' (1941 ई.), 'पल्लवनी' (1951 ई.), 'रश्मिबन्ध' (1958 ई.), 'चिदम्बरा[6] (1959 ई.), अनुवाद—'मधुज्वाल' (1938 ई.)। काव्यरचना के उत्तरकाल में कवि ने अपना महाकाव्य प्रकाशित किया है 'लोकायतन'[7] (1964 ई.)।'' वैसे तो पन्त का सृजन भी कविता, नाटक, कहानी, आलोचना एवं आत्मकथा तक प्रसरित है किन्तु वे, निराला के सदृश, केवल कवि ही हैं और इतने बड़े कवि कि हिन्दी का कोई नाट्यकार, कहानीकार, आलोचक एवं आत्मकथाकार उनसे आगे नहीं जा पाता। अतः 'पन्त की बहुमुखी प्रतिभा' शोधविषय होते हुए भी परिहार्य मानी जा सकती है।

अमर महाकवि पन्त का स्फीत कवि चार रूपों में विवृत होता है :

1. स्वछन्दतावादी (छायावादी) चेतना के एक वाहक एवं नायक—जिसने 'पल्लव' एवं 'गुंजन' शीर्षक ऐतिहासिक एवं महान् कविता-संग्रहों का प्रणयन किया। कवि पन्त एवं शिल्पी पन्त के उभय रूपों की पराकाष्ठा 'पल्लव' एवं 'गुंजन' में ही दृष्टिगोचर हो पाती है, जो उनके सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। 'पल्लव' की महाकविता 'परिवर्तन' विश्व की सर्वश्रेष्ठ महाकविताओं में है। हिन्दी की महाकविताओं में 'राम की शक्तिपूजा' एवं 'तुलसीदास' के अतिरिक्त 'परिवर्तन' की समता करने वाली कोई महाकविता दृष्टिगोचर

---

[1] 1889 ई. का प्रचलन ग़लत है।

[2] 1996 ई. का प्रचलन ग़लत है। 1899 ई. भी ग़लत है।

[3] 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' के उपन्यासकार भगवतचरण वर्मा ने कवि 'पागल' जी के रूप में निराला एवं कवयित्री 'करुणादेवी' के रूप में महादेवी पर व्यंग्य किए हैं। वर्मा पन्त के घनिष्ठ मित्र थे।

[4] यशपाल का 'अमिता' शीर्षक उपन्यास याद आता है, जो ऐतिहासिक परिवेश में रचित नेहरू-युग की शान्तिव्यामोहवादी रचना है। 'अन्धा युग' (धर्मवीर भारती), 'संशय की एक रात' (नरेश मेहता) इत्यादि ऐसी युगवन्दिनी रचनाओं की कमी नहीं!

[5] जिस पर साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

[6] जिस पर ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

[7] जिस पर सोवियत भूमि नेहरू पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

नहीं होती। 'क़ैदी और कोकिला', 'प्रलय की छाया', 'अँधेरे में' एवं 'असाध्य वीणा' की संकीर्ण एकायमिताएँ विशद 'परिवर्तन' की समता कैसे कर सकती है? दूसरे, काव्यात्मकता, कलात्मकता (शब्दशिल्प, छन्दशिल्प, छन्दवैविध्य इत्यादि) एवं दार्शनिकता के वैभव में ये सब मिलकर भी 'परिवर्तन' की तुलना के योग्य नहीं बन पातीं। 'गुंजन' की 'नौका-विहार' कविता प्रकृति-चित्रण, बिम्बालेखन, दर्शन एवं शब्दचयन में अद्वितीय है। आलोचक एवं काव्यपंडित न होते हुए भी, उपन्यासकार एवं कवि स्व. भगवतीचरण वर्मा ने इसे ठीक ही विश्व की श्रेष्ठ कविताओं में प्रतिष्ठित किया है। ऐसी महान् कविता को कुछ जड़वादियों ने 'श्रमहीन विलासिता' कहकर अपनी क्षति की है, क्योंकि पन्त जैसे महाकवि की परकीयतावादी या परधनाश्रित या पुरस्कार-भोगी या राजनीतिजीवी-छद्मसाहित्यकार कोई स्थायी क्षति नहीं कर सकते।

2. यथार्थवाद की समाजपरक चेतना के एक वाहक एवं नायक–'युगान्त', 'युगवाणी', एवं 'ग्राम्या' की क्रान्त कविताओं के रचयिता। इन कविताओं पर गाँधी के जनसंवेदन, मार्क्स के जनक्रान्ति एवं फ्रायड के मनोविश्लेषण की छाप है किन्तु जो भारत में सर्वोदय, साम्यवाद एवं अतिकामवाद के अनुकूल वातावरण के अभाव में न तो प्रभावी ही हो सकीं और न कला की दृष्टि से ही महत्त्वपूर्ण बन पाईं। इनमें पन्त का सहज कवि विवृत नहीं हो सका। इनके भाव और विचार प्रयत्न-पूर्वक ओढ़े गए हैं। किन्तु ये कविताएँ कवि की स्थूल युग-जागरूकता की उल्लेख्य प्रतीक तो हैं ही। 'युगवाणी' में 'मार्क्स के प्रति', 'युगान्तर' में 'बापू के प्रति' एवं 'ग्राम्या' में 'भारतमाता ग्रामवासिनी' (जिसकी एक पंक्ति 'धूलभरा मैला-सा आँचल' ने फणीश्वरनाथ 'रेणु' को 'दोड़ाचरितमानस' शीर्षक बांग्ला-उपन्यास पर आधृत 'मैला आँचल' का प्रख्यात शीर्षक प्रदान किया) जैसी कविताएँ प्रसिद्ध भी हैं, प्रभावी भी।

3. यथार्थवाद की व्यक्तिपरक चेतना के एक वाहक एवं नायक-'स्वर्णकिरण', 'स्वर्णधूलि' एवं 'युगपथ' की आत्मदर्शन-सम्पन्न कविताओं के प्रभावी प्रणेता। पन्त ने लम्बे अन्तराल के पश्चात् 'स्वर्णोदय'[1] जैसी जीवन-दर्शन की महान् कविता लिखी, जो उनकी 'प्रिल्यूड' मानी जा सकती है। 'अशोकवन' एवं 'लक्ष्मण' शीर्षक कविताओं में पन्त ने रामकाव्य को प्रतीकसम्पन्न-अन्तश्चेतन से सजाया है। 'हिमाद्रि' में पन्त का 'प्रकृति के कवि' विशेषण 'नौका-विहार' एवं 'बादल' प्रभृति कविताओं के अनन्तर पुनः सार्थक सिद्ध हुआ है। 'संन्यासी का गीत' विवेकानन्द के 'साँग ऑफ़ द संन्यासिन्' का अनुवाद है। विवेकानन्द की कविता निराला को भी अनुवादक बना चुकी है। 'विवेकानन्द का बांग्ला एवं अंग्रेज़ी का कवि-रूप तथा हिन्दी' एक निबन्ध का सुन्दर विषय है। संप्रति गाँधी एवं नेहरू पर रचित रचनाएँ युगप्रभावबद्ध होने के कारण प्रभावहीन लग सकती हैं किन्तु वे रचनाकाल के युगबोध की संकेतक होने के कारण उल्लेखनीय तो मानी जाएँगी। 'कवीन्द्र-रवीन्द्र के प्रति' कविता प्रभावी है। रवीन्द्र पर महादेवी इत्यादि ने कविता एवं गद्य दोनों में लिखा है। उनकी प्रशस्ति पर अनेक रचनाएँ भी उपलब्ध हैं। शुक्ल एवं निराला ने उनकी स्तुतिमुक्त आलोचना भी की है। 'हिन्दी साहित्य पर रवीन्द्र का प्रभाव' तो सामान्यतः आदर्शवादी युग एवं विशेषतः स्वछन्दतावादी युग तक प्रसरित है ही, 'हिन्दी में रवीन्द्र पर रचित साहित्य' भी शोध का अच्छा विषय है। पन्त के कवि का यह तृतीय सोपान अरविन्द के प्रभाव की सूचना देने के कारण भी स्मरणीय है। पन्त के कवि का प्रथम (स्वच्छन्दतावादी) सोपान महान् था, द्वितीय (समाजपरक--यथार्थवादी) सोपान नेतृत्वप्रधान था, तृतीय (व्यक्तिपरक-यथार्थवादी) सोपान विचारप्रधान (जिसमें सतत-अनवरत पर प्रभावाच्छन्न पन्त की अस्मिता उजागर हुई है जो निस्सन्देह प्रथम सोपान के अनन्तर विशिष्ट मानी जा सकती है) था।

4. नवरहस्यवाद के वाहक एवं नायक–'उत्तरा', 'अमिता' इत्यादि कवितासंग्रहों एवं बृहदाकार 'लोकायतन' महाकाव्य के स्वर्गभूमिकारणवादी एवं विश्ववादी महाकवि, जिन पर अरविन्द की आध्यात्मिकता का व्यापक प्रभाव तो पड़ा है किन्तु जो यथार्थ एवं मनोविज्ञान की अवेहलना कहीं नहीं करता। 'कला और बूढ़ा चाँद' नवरहस्यवाद को प्रयोगवादी शिल्प में विवृत करने के कारण स्मरणीय कविता-संग्रह बन गया है। नवरहस्यवादी पन्त विश्व-सभ्यता एवं मानव-संस्कृति के विराट् एवं अद्वितीय द्रष्टा हैं। यदि 'पल्लव' एवं 'गुंजन' स्वच्छन्दतावादी अनुभूति, दर्शन एवं काव्यशिल्प के प्रतीक हैं, यदि 'स्वर्णधूलि' एवं 'स्वर्णकिरण' विशद जीवनदर्शन की प्रतीक हैं, तो 'लोकायतन' नवरहस्यवादी विश्व-चेतना का प्रतीक है। कई अध्ययनविहीन एवं अधकचरे लोग पन्त के परवर्ती दर्शनकाव्य को महत्वहीन कह-सुनकर साहित्य के साथ भी अन्याय करते हैं तथा महाकवि के साथ भी (अपने साथ तो करती ही हैं किन्तु उसका कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि एक लाख में से एक कम एक लाख मनुष्य सदा अपने साथ अन्याय करते आ रहे हैं और सदा ही करते

---

[1] कविवर केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' के सांस्कृतिक गीतिनाट्य 'स्वर्णोदय' (1951 ई.) का स्मरण आता है, जिन्होंने 'चिरस्पर्श' एवं 'ऋतम्भरा' भी रचकर नवरहस्यवादी-नवमानवतावादी कवि के रूप में सफलता प्राप्त की है: लघु-पन्त हैं।

जाएँगे) पन्त की 'उत्तरा' औपनिषदिक दर्शन को स्वस्थ-स्वच्छ अधुनातन काव्यकला के रूप में विवृत करती है, जिसका प्रभाव दिनकर पर भी पड़ा है, अज्ञेय पर भी (जो 'उर्वशी' के समर्पण से लेकर 'असाध्य वीणा' एवं 'कितनी नावों में कितनी बार' तक प्रसरित है)। पन्त जैसे महान् छायावादी की छाया कविवर दिनकर, कविवर अज्ञेय, बहुविध-'छायोपजीवी' उपन्यासकार रेणु प्रभृति पर पड़नी स्वाभाविक है (रेणु तो केशों तक पन्तमय थे)!

यद्यपि पन्त सदा किसी-न-किसी से प्रभावित[1] होते रहने के कारण काव्यगत एकनिष्ठा एवं अस्मिता में मैथिलीशरण, प्रसाद एवं निराला से कुछ पिछड़ जाते हैं, किन्तु महादेवी के संकीर्ण सृजन की तुलना में अपने विराट् सृजन के कारण, दिनकर के भाषणात्मक सृजन की तुलना में अपने काव्यात्मक सृजन के कारण तथा अज्ञेय के पर प्रभावाच्छन्न सृजन की तुलना में अपने मौलिक सृजन के कारण वे इन तीनों से बहुत-बहुत आगे खड़े दीखते हैं। हिन्दी के दार्शनिक-कवियों में तुलसी, सूर, कबीर और प्रसाद के साथ-साथ पन्त शीर्षस्थानिक हैं। यथार्थवादी युग के सारे नवरहस्यवादी कवि (अज्ञेय, प्रयागनारायण त्रिपाठी, आनन्दशंकर माधवन्, स्वामी इत्यादि) उनसे प्रभावित हुए हैं।

पन्त का शब्दशिल्प समग्र बौद्धिककालीन काव्य में अद्वितीय है। उनकी कोमल कविता विश्वस्तरीय है। उनकी तुलना वड्सूवर्थ, शेली (शेले), रवीन्द्र, प्रसाद एवं निराला से की जा सकती है। मेरे 'विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य' (1973 ई.) के अनन्तर निराला' (डॉ. बुद्धसेन 'नाहिर') स्वाभाविक था किन्तु 'विश्वकवि पन्त' की रचना भी होनी चाहिए, क्योंकि 'लोकायतन' वस्तुतः भी विश्वकाव्य है, तत्वतः भी।

प्रकृति के कवि

पन्त सबसे पहले प्रकृति के कवि हैं, तब सौन्दर्य के, तब मानवतावाद के और मानवतावाद का विशद रूप प्रकृति एवं सौन्दर्य से बहुत दूर भी तो नहीं है (यद्यपि उसमें समता या एकता का पक्ष-प्रतिपादन भी आ जुड़ा है)! यह सत्य है कि स्वच्छन्दतावादी कवियों ने प्रकृति एवं उसके सौन्दर्य को जीवन और उसके रमणीय सौन्दर्य से संपृक्त रूप में अपेक्षाकृत अधिक देखा है किन्तु उतना नहीं जितना आचार्य शुक्ल ने ''प्रकृति का विशुद्ध रूप देखने को आँखें नहीं'' के प्रहार एवं कवि 'नवीन' ने ''ओ सौन्दर्य 'उपासक, तूने सुन्दर का स्वरूप क्या जाना?'' की ललकार में बताया है क्योंकि प्रसाद या निराला या पन्त की आँखों ने प्रकृति का शुद्ध रूप शुक्ल से बहुत-बहुत अधिक सफलतापूर्वक देखा है (विचार के चश्मे के बिना सहज दृष्टि से देखा है) एवं इनका सौन्दर्य-स्वरूप निरूपण 'नवीन' की तुलना में बहुत-बहुत उत्कृष्ट है। 'कामायनी', 'राम की शक्तिपूजा', 'परिवर्तन' इत्यादि के महान् सृजन प्रकृति के विराट् रूप को विवृत करते हैं। पन्त ने तो सौन्दर्य पर भी प्रकृति को वरीयता प्रदान की है—उन्हें प्रकृति की विशदता 'बाल-जाल', 'भ्रूभंगों', 'प्रिय स्वर' और 'आधारमृत' से विशिष्ट प्रतीत हुई है ('मोह' कविता वस्तुतः 'प्रकृति-प्रेम' है)! 'प्रथम रश्मि', 'पर्वत प्रदेश में पवास', 'बादल', 'लहरों का गीत', 'वायु के प्रति', 'एक तारा', 'नौका विहार', 'चाँदनी', 'पतझर', 'बसन्त', 'कलरव', 'चींटी', 'झंझा में नीम', 'ग्रामश्री', 'गंगा', 'नक्षत्र', 'निर्झर', 'निर्झरगान', 'हिमाद्रि' इत्यादि तो शुद्ध प्रकृतिकाव्य में अन्तर्भूत हैं ही, 'मौन-निमन्त्रण' जैसी मनोहारी रहस्यवादी कविताओं और 'परिवर्तन' जैसी महान् दार्शनिक कविता में भी प्रकृतिकाव्य की नाना छटाओं के दर्शन होते रहते हैं। 'नौकविहार', 'हिमाद्रि', 'बादल', 'एकतारा', 'नक्षत्र', 'ग्रामश्री' इत्यादि कविताएँ विश्वस्तरीय प्रकृति-काव्य की सूचना देती हैं। पन्त का प्रकृति-चित्रण मानवीकरण, चित्रवैभव, रहस्य, उदात्त, बिम्ब एवं शब्दशिल्प से सर्वविध सम्पन्न हैं तथा अपनी कलात्मक दार्शनिकता में वड्सूवर्थ का स्मरण करा देता है। पन्त आलम्बनात्मक प्रकृति-चित्रण के मूर्द्धन्य हिन्दी-कवि हैं। पन्त के आलम्बनात्मक, उद्दीपनात्मक एवं रहस्यात्मक प्रकृति-चित्रण अपने उपमान आप हैं। पन्त ने वाल्मीकि, कालिदास, वर्ड्सवर्थ प्रभृति के साथ विश्व के सर्वश्रेष्ठ 'प्रकृति के कवियों' में अपना स्थान 'आरक्षित' करा लिया है। प्रकृति पर कविता करने वाला कोई परवर्ती कवि उनके प्रभाव से अछूता नहीं रहा। कतिपय उदाहरण प्रस्तुत हैं :

---

[1] स्वच्छन्दतावादी पन्त कालिदास, वर्ड्सवर्थ, टेनीसन, रवीन्द्र इत्यादि से प्रभावित रहे; समाजपरक-यथार्थवादी पन्त गाँधी, मार्क्स, फ्रायड इत्यादि से प्रभावित रहे; व्यक्तिपरक-यथार्थवादी पन्त वर्ड्सवर्थ, रवीन्द्र, गाँधी, अरविन्द इत्यादि से प्रभावित रहे; तथा नवरहस्यवादी पन्त अरविन्द से अतिप्रभावित रहे—अरविन्द-दर्शन पन्त-प्रतिभा का 'उत्तर-नीड़' बन गया। 'हिन्दी-साहित्य पर अरविन्द का प्रभाव' शोध का विषय है। पन्त, दिनकर इत्यादि को प्रभावित करनेवाले अरविन्द के गहन अंग्रेज़ी-महाकाव्य 'सावित्री' का अनुवाद प्रसिद्ध कवयित्री विद्यावती 'कोकिल' ने किया है, विश्वविख्यात गद्यपग्रन्थ 'लाइफ डिवाइन' का 'दिव्य जीवन' शीर्षक से श्री केशवदेव आचार्य एवं श्री राधेकृष्ण गुप्त ने (पृथक्-पृथक्)।

1. प्रथम रश्मि का आना रंगिणि! तूने कैसे पहचान?
कहाँ, कहाँ हे बालविहंगिनि! पाया तूने यह गाना?
सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में पंखों के सुख में छिपकर,
झूम रहे थे, घूम द्वार पर प्रहरी से जुगनू नाना;....
किसने तुझको अन्तर्यामिनि! बतलाया उसका आना?.... (प्रथम रश्मि)

2. सुरपति के हम ही हैं अनुचर, जगत्प्राण के भी सहचर,
मेघदूत की सजल कल्पना, चातक के चिर जीवनधर;
मुग्ध शिखी के नृत्य मनोहर, सुभग स्वाति के मुक्ताकार;
विहग वर्ग के गर्भ विधायक, कृषक बालिका के जलधर।
जलाशयों में कमल दलों-सा हमें खिलाता नित दिनकर,
पर बालक-सा वायु सकल दल बिखरा देता चुन सत्वर;....
नभ में अवनि, अवनि में अम्बर, सलिल-भस्म, मारुत के फूल,
हम ही जल में थल, थल में जल, दिन के तम, पावक के तूल ।[1] **(बादल)**

3. अहे वासुकि सहस्त्र फन!
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विस्तृत वक्षस्थल पर!
शत-शत-फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अम्बर!
मृत्यु तुम्हारा दन्त, कंचुक कल्पान्तर।
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुंडल....
दिङ्मंडल! **(परिवर्तन)**

4. सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्स्ना रही विचर,
लो, पालें चढ़ीं उठा लंगर।
मृदु मंद-मंद, मंथर लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर,
तिर रही खोल पालों के पर।
निश्चल जल के शुचि दर्पण पर बिम्बित हो रजत-पुलिन-निर्भर
दुहरे ऊँचे लगते क्षण भर।....
नौका से उठती जल-हिलोर,
हिल पड़ते नभ के छोर-छोर ।[2]....
इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन[3] का उद्‌गम,
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत-हास,
शाश्वत लघु लहरों का विलास।....
(नौका-विहार)

---

[1] बादल पर देश-विदेश के अनेक कवियों ने अनेक कविताएँ रची हैं, किन्तु जो बहुरंगी कल्पना, जो सरस अलंकरण, जो अप्रतिम शब्दशिल्प पन्त के 'बादल' में प्राप्त होता है उसकी समता नहीं मिलती। निराला का 'बादल-राग' अधिक शक्तिशाली है किन्तु उसमें आलम्बनात्मक विस्तार पन्त के 'बादल' जैसा नहीं।

[2] असंगति (अलंकार) का विलक्षण प्रयोग।

[3] चेतन-अस्तित्व, जल। श्लेष!

5. चंचल पग दीप-शिखा के धर गृह, मग, वन में आया वसन्त।
सुलगा फागुन का सूनापन सौन्दर्य शिखाओं में अनन्त!
अलि के अन्तर में प्रणय-गान
लेकर आया प्रेमी वसन्त—
आकुल[1] जड़ चेतन स्नेह प्राण!
काली कोकिल सुलगा उर में
स्वरमयी वेदना का अँगार
आया वसन्त घोषित दिगंत
करती, भर पावक की पुकार!....

(बसन्त)

6. बाँसों की झुरमुट – संध्या का झुटपुट
हैं चहँक रहीं चिड़ियाँ टी—वी—टी—टुट्-टुट्![2]

(कलरव)

7. झूम झूम झुक झुक कर भीम नीम तरु निर्भर
सिहर सिहर थर् थर् थर् करता सर् सर्
चर् मर्!

(झंझा में नीम)

सौन्दर्य के सुन्दर वैतालिक

सौन्दर्य पृथ्वी का स्वर्ग से सम्बन्ध सिद्ध करता है। सौन्दर्यलोक में अलौकिकता का परिचयदाता है। सौन्दर्य कला का प्राण है, कविता प्रश्वास है। कोई प्राणी ऐसा नहीं जिसे सौन्दर्य प्रेरित या प्रभावित या आमन्त्रित न करे! कोई कवि ऐसा नहीं जिसने सौन्दर्य का दर्शन न किया हो! फिर, पन्त तो स्वयं सुन्दर थे! सुन्दरता सुन्दरता को विशेष आकृष्ट करती है। स्वच्छन्दतावादी कविता सर्वत्र सौन्दर्य से ऊभचूभ हैः वर्ड्सुवर्थ में शेली, (शेले) में, कीट्स (सौन्दर्य का कवि वार्तावह) में, बायरन में, हाइने में, पुश्किन में, रवीन्द्र में, प्रसाद में, निराला में, पन्त में! पन्त ने सौन्दर्य के अपूर्व-कलात्मक एवं शतशः मनोहारी वर्णन किए हैं :

1. सरलपन ही था उसका मन, निरालापन था आभूषन,
कान से मिले अजान नयन, सहज था सजा सजीला तन!
सुरीले, ढीले अधरों बीच अधूरा उसका लचका गान
विकच बचपन को, मन को खींच उचित बन जाता था उपमान!
गिरा हो जाती है सनयन, नयन करते नीरव भाषण;
श्रवण तक आ जाता है मन, स्वयं मन करता बात श्रवण!
अश्रुओं में रहता है हास, हास में अश्रुकणों का भास;
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास, और उच्छ्वासों में ही श्वास!

(उच्छ्वास)

2. वियोगी होगा पहिला[3] कवि, आह से उपजा होगा गान;
उमड़कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान!....
तड़ित् सा सुमुखि! तुम्हारा ध्यान प्रभा के पलक मार, उर चीर,

---

[1] एकि आकुलता भुवने, एकि चंचलता पवने,....(रवीन्द्र)

[2] महानू शब्दबिम्ब।

[3] 'पहला' चल पड़ा है, पर कवि ने 'पहिला' ही लिखा था।

अचल पलकों में मूर्ति सँवार पान करता हूँ रूप अपार;
पिघल पड़ते हैं प्राण, उबल चलती है दृगजल धार।[1]

(आँसू)

3. अहे विश्व अभिनय के नायक! अखिल सृष्टि के सूत्रधार!
उर उर की कम्पन में व्यापक! ऐ त्रिभुवन के मनोविकार!....
बाल युवतियाँ तान कान तक चल चितवन के वन्दनवार,
देव! तुम्हारा स्वागत करतीं खोल सतत उत्सुक दृग द्वार!....
ए असीम सौन्दर्य राशि में हृत्कम्पन से अंतर्धान,
विश्व कामिनी की पावन छवि मुझे दिखाओ, करुणावान!

(अनंग)[2]

4. स्नेहमयी! सुन्दरतामयि! तुम्हारे रोम रोम से, नारि!
मुझे है स्नेह अपार; तुम्हारा मृदु उर ही, सुकुमारि!
मुझे है स्वर्गागार! तुम्हारे गुण हैं मेरे गान,
मृदुल दुर्बलता, ध्यान; तुम्हारी पावनता, अभियान,
शक्ति, पूजन सम्मान अकेली सुन्दरता कल्याणि!
सकल ऐशवर्यों की सांधन।....

(नारी रूप)

पन्त की दर्शन-गहन रूप-सौन्दर्य-जीवन्तता की समता केवल प्रसाद कर सकते हैं, अन्य कोई कवि नहीं। मौलिक सृजन के अतिरिक्त, 1929 ई. में उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का मरहूम असगर गोंडवी की सहायता से किया गया 'मधुज्वाल' शीर्षक अनुवाद भी सौन्दर्य-दर्शन से संपृक्त है :

मुख छवि विलोक जो अपलक रह जायँ न, वे क्या लोचन?
विरहानल में जल-जल कर गल जाय न जो, वह क्या मन!
तुझको न भले भाता हो प्रेमी का यह पागलपन,
उर उर में दहक रहा पर तेरे प्रेमानल का कण!

'मधुज्वाल' का प्रकाशन 1938 ई. में हुआ। वे वर्ष (1935-40 ई.) बच्चन की 'मधुशाला' एवं 'मधुबाला' के वर्ष थे! अतएव, उनके मित्र महाकवि ने समर्पण उन्हें करना ही ठीक समझा। 'मधुज्वाल' का समर्पण 'मधुशाला'—'मधुबाला' के लोकप्रिय कवि को करना मित्रता के अतिरिक्त भी नितान्त युक्ति-युक्त है! पन्त ने मार्क्स जैसे चिन्तक, गाँधी जैसे नेता, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे साहित्य-निर्माता तथा रवीन्द्र, मैथिलीशरण एवं निराला जैसे कवियों पर जो कविताएँ लिखीं थीं वे प्रभवत्तर-महत्तर व्यक्तियों पर थीं, श्रद्धा-प्रतीक थीं; किन्तु बच्चन पर रचित उत्कृष्ट कविता सब प्रकार से छोटों पर स्नेहादर-प्रतीक होने के कारण कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह समर्पण बच्चन के जीवन की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि है :

---

[1] अन्तिम चतुष्पंक्ति की 'नवीन पिंगल' शीर्षक पुस्तक में स्व. प्रो. उपाध्याय ने मार्मिक व्याख्या की है। अचल पलकों में मूर्ति सँवारने में समय लगता है, अपार रूप का पान करने में भी। किन्तु प्राण के पिघलने में कोई विलम्ब नहीं होता (अतः चरण छोटा है)। पुनः दृगजलधार का उबल चलना भी देर तक चलता है। अतः छन्द की चरण-योजना सूक्ष्म भावाधृत है, प्रशस्य है।

[2] पन्त की महान् 'अनंग' कविता में शताब्दियों के पराजय एवं परतन्त्रता से त्रस्त-स्त्रस्त काल के विचार-दलदल से निकालकर कामदेवता की पुनर्प्रतिष्ठा का प्रथम प्रशस्य एवं प्रणम्य दृग्गत होता है। क्या 1913 ई. में रचित इस कविता ने 'कामायनी' (विशेषतः उसके गहन-श्रेष्ठतम 'काम' सर्ग) को प्रभावित किया है? यह प्रश्न भी उठ सकता है। 'उर्वशी' पर तो प्रसाद एवं पन्त का प्रभाव स्पष्टतः पड़ा ही है। यह कविता डॉ. भगवानदास के 'पुरुषार्थ' से पहले की है। चिन्तक (आचार्य या भगवान् या ओशो क़तई नहीं) रजनीश पर पन्त, प्रसाद, दिनकर इत्यादि का प्रभाव अवश्य पड़ा है; और डॉ. भगवानदास तो पन्त के अतिरिक्त सबके प्रेरक हैं ही। अतः इस कविता का ऐतिहासिक महत्त्व विवेच्य है।

जीवन की मर्मर छाया में गीत रच अमर गाए तुमने स्वप्न[1] रँगे मधु में मोहक स्वर
यौवन के कवि, काव्य काकली पट में स्वर्णिम सुख दुख के ध्वनि वर्णों की चल धूप छाँह पर
घुमड़ रहा था ऊपर गरज जगत संघर्षण, उमड़ रहा था नीचे जीवन वारिधि क्रंदन;
अमृत हृदय में, गरल कंठ में, मधु अधरों में, आए तुम वीणा धर कर में जन-मन मादन!....

परम-साहित्यिक महाकवि का प्रभावी-लोकप्रिय कवि पर ऐसा सृजन एक संस्फुरणकारी प्रकरण है, इसमें सन्देह नहीं और आश्चर्य यह है कि यह कविता पन्त की मार्क्स, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं निराला पर रचित कविताओं से श्रेष्ठतर है!

रहस्यवाद

पन्त का रहस्यवाद सहज, स्पष्ट एवं रमणीय है। न उनमें प्रसाद के मांसल-रहस्यवाद के विवाद का ऊहापोह करना पड़ता है, न निराला के क्लिष्ट-रहस्यवाद का विवेचन, न महादेवी के कुंठागत-रहस्यवाद का विश्लेषण। उनका रहस्यवादी सृजन अल्प भी है जो 'मौन नियन्त्रण', 'छाया', 'विसर्जन', प्रभृति कुछ कविताओं में ही अस्मिता सिद्ध करता है (अन्यथा नारी, सौन्दर्य, प्रेम, परिवर्तन, प्रकृति प्रभृति से संबद्ध कविताओं में प्रासंगिक रूप से दृग्गत होता चलता है)। आचार्य श्यामसुन्दरदास ने छायावादी कविता में साधारणीकरण की समस्या का संकेत किया था, जो साधार भी था और गम्भीर भी। किन्तु पन्त की रहस्यवादी कविता साधारणीकरण-समस्यामुक्त है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसे छायावाद-विरोधी एवं रहस्यवाद-प्रत्याख्यानकर्त्ता तक ने पन्त रहस्यवाद के प्रति 'नर्मी बरती' है (प्रसाद के प्रति व्यक्तिगत-विद्वेष एवं निराला के प्रति व्यक्तिगत-उपेक्षाभाव के कारण उनके साथ ऐसी 'नर्मी बरतना' सम्भव नहीं हो पाया)। आचार्य शुक्ल ने छायावाद को एक अभिनव अनुभूतिलोक के आलोक में नहीं देखा, वे उसे केवल-मात्र पाश्चात्य-प्रेरित शैली-रूप में देखने के पूर्वाग्रह-आखेट बन गए। यही कारण है कि वे इसके विवेचन-विश्लेषण में यूरोप और बंगाल इत्यादि में भटकते रहे, स्वयं इसका तात्त्विक विवेचन-विश्लेषण नहीं कर पाए। उनकी पन्त-समीक्षा भी अधिकांशतः शब्दचयन, लाक्षणिकता, अभिव्यक्ति-प्रांजलता इत्यादि के बाह्य एवं प्राथमिक तत्वों पर ही अटकी लगती है। वैसे, छायावाद-सन्दर्भ में आ. शुक्ल अपरिहार्य नहीं तथा रहस्यवाद-सन्दर्भ में परिहार्य भी हैं: ध्वंस के प्रतीक! शब्द-सौष्ठव तक्षणिता, लिंग-प्रयोग-विलक्षणता, मानवीकरण, नवालंकरण, छाया या प्रतीकचर्चा इत्यादि नितान्त अस्थाई बिन्दु पन्त की महान् कविता को देखते कालातीत हो चुके हैं। जीवन की विशद एवं चिरंतन अनुभूतियों के निकष पर ही उनके काव्य का परीक्षण अभीप्सित है। पन्त का रहस्यवाद किशोरसुलभ सद्यता से सम्पन्न है :

1. स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने, नक्षत्रों में कौन निमंत्रण देता मुझको मौन!
देख वसुधा का यौवन भार गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के से मृदु उद्गार कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने, सौरभ के मिस कौन संदेशा मुझे भेजता मौन।....
स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ में भोर विश्व को देती है जब बोर,
विगह कुल की कल कंठ हिलोर मिला देती भू नभ के छोर;
न जाने, अलस पलक दल कौन खोल देता तब मेरे मौन!....
न जाने कौन, अये द्युतिमान! जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान, फूँक देते छिद्रों में गान,
अहे सुख-दुख के सहचर मौन! नहीं कह सकती तुम हो कौन![2] (मौन निमन्त्रण)

---

[1] मधुपानहीन बच्चन के लिए स्वप्न है, सत्य नहीं। आश्चर्य है कि निराला से मोहन राकेश तक मधु के स्वाद से परिचित-अपरिचित अनेकानेक साहित्यकारों में से किसी ने मधु पर नहीं लिखा! अभाव भाव से अधिक प्रभावी होता है!

[2] हे अनंत रमणीय! कौन तुम? यह मैं कैसे कह सकता?
क्या हो? कैसे हो? इसका तो भार विचार न सह सकता। (प्रसाद : कामायनी)

2. कौन, कौन तुम परिहत वसना, म्लान मना, भू पतिता सी,
वातहता विच्छिन्न लता सी रतिश्रांता व्रजवनिता सी?....
—हाँ सखि! आओ, बाँह खोल हम लग कर गले, जुड़ा लें प्राण,
फिर तुम तक में, मैं प्रियतम में, हो जावें द्रुत अंतर्धान!
(छाया)[1]

नवरहस्यवाद[2]

नवअध्यात्मवाद या नवरहस्यवाद वह बौद्धिक-रहस्यवाद है जो उपनिषद्मूलक होने के कारण प्राचीनतम भी है तथा अरविन्द के भूमिस्वर्गीकरणवाद एवं जंग (युंग) के मनोविज्ञान-अध्यात्मवाद प्रभृति से विकसित होने के कारण नवीनतम भी। रहस्य चिरंतन है किन्तु नवरहस्यवाद में वह अस्मिता-सापेक्ष हो गया है, समाज-सापेक्ष हो गया है। व्यास का 'न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्' का घोष नवरहस्यवाद का बीजमन्त्र माना जा सकता है और चूँकि पराशक्तिहीन मनुष्य सामान्य प्राणी मात्र है अतः नवरहस्यवादी मनुष्य स्वभावतः दिव्य भी है। पन्त ने औपनिषदिक अद्वैतवाद एवं उसकी अरविन्द-प्रतिपादित व्याख्या, वात्स्यायन एवं उनसे प्रेरित फ्रायड के कामवाद, एडलर के अहंवाद, चिरगतिशील भारतीय अध्यात्म-चिन्तन एवं उससे प्रेरित जुंग (युंग) के अध्यात्मवाद इत्यादि को समन्वित कर हिन्दी-कविता में नवरहस्यवाद के प्रवर्तक का गौरव प्राप्त किया है, जिसका आज भी महत्त्व है किन्तु जो कल अधिकतम महत्त्वपूर्ण माना जाएगा। पन्त के 'पल्लव', 'गुंजन' इत्यादि में रहस्यवादी एवं 'उत्तरा', 'अमिता' इत्यादि में नवरहस्यवादी चेतना के प्रशस्य दर्शन होते हैं। नवरहस्यवादी के रूप में असाधारण—अज्ञेय इत्यादि कवियों के प्रेरक। यों, उनके रहस्यवाद में भी नवरहस्यवाद के बीज विद्यमान हैं। नवरहस्यवाद निवृत्तिप्रधान नहीं, प्रवृत्तिप्रधान है। वह अलौकिक पर आश्रित नहीं है, लौकिक को ही अलौकिक का गौरव प्रदान करता है। वह मोक्ष पर नहीं, जीवन पर रीझता है। वह न तो धर्मविरोधी है, न धर्मबद्ध वह अर्थ एवं काम का विरोधी नहीं है, इनका प्रावृत्तिक सम्मानक है। पन्त विश्व के श्रेष्ठतम नवरहस्यवादी कवि हैं, क्योंकि वे उसके निकष पर प्रत्येक दृष्टि से सफल सिद्ध होते हैं। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. ताक रहे हो गगन? मृत्यु नीलिका गहन गगन? निःस्पंद शून्य, निर्जन, निःस्वप्न?
देखो भू को, स्वर्गिक भू को! मानव पुण्य प्रसू को। **(पर्यालोचनः 'आधुनिक कवि')**

2. इन क्षण दृश्यों के बदलते रूपों में
समग्रता, संगति कहाँ है?
वह तो तुमसे संयुक्त रहने में है! **(कला और बूढ़ा चाँद)**

3. तुम वस्तु तमस से ढँक दोगे आदर्शों के अक्षय प्रकाश?
यांत्रिक पशुबल से रोकोगे मानव का देवोत्तर विकास!
तुम क्या घनत्व में बाँधोगे द्रव की गतिप्रियता, चंचलता,
निर्मम जड़त्व में आँकोगे जीवन की चेतन कोमलता![3] **(उत्तरा)**

4. आकाश झुक रहा धरती पर बरसा प्रकाश के उर्वर कण,
धरती उसके उर में बुनती छाया का सतरंग सम्मोहन!
हो रहा स्वर्ग से धरणी का जड़ से चेतन का रहस मिलन
भू स्वर्ग एक हो रहे शनैः सुरगण नरतन करते धारण।[4]
(उत्तरा)

---

[1] छायावाद की व्याख्या, रहस्यवाद की रमणीयता, मालोपमा की सज्जा इत्यादि के कारण 'छाया' पन्त की सर्वश्रेष्ठ कविताओं में परिगणित की जा सकती है।

[2] डॉ. पवनकुमार ने नवरहस्यवाद पर 'प्रस्थान'-ग्रन्थ प्रस्तुत किया है ('नवरहस्यवाद और नई कविता' : 1996 ई.) जो उनके शोधप्रबन्ध (स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-कविता में नवरहस्यवाद) पर आधृत है।

[3] सत्य।

[4] भूस्वर्ग।

नवमानवतावाद

पन्त आरम्भ से ही मानवतावादी रहे हैं। वस्तुतः स्वछन्दतावाद सर्वत्र मानवतावाद से अनुप्राणित रहा हैः नर-नारी, उच्च-निम्न, श्वेत-अश्वेत, विभिन्न धर्मानुयायियों के बीच एकता तथा वैश्विक स्वातन्त्र्य-प्रतिपादन वर्ड्स्वर्थ, कीट्स, शेली, (शेले), बायरन, रवीन्द्र, प्रसाद, निराला, पन्त सभी ने किया है। वड्स्वर्थ इत्यादि ने यान्त्रिकता पर मानवता को वरीयता प्रदान की, कीट्स ने ईसाई मजहब में ईसा से संबद्ध कथाओं को 'पावन प्रवंचना' (पॉयस फ्रॉड) कहा, शेली (शेले) ने स्थूल-आस्तिकता पर 'बौद्धिक सौन्दर्य' (इंटेलेक्चुअल ब्यूटी) को वरीयता प्रदान की, बायरन सुदूर यूनान की स्वतन्त्रता के लिए जूझे, रवीन्द्र ने अन्तर्राष्ट्रीयतावाद ('इंटरनेशनलइज़म' ग्रन्थ मेंः ''नेशनलइज़म इज़ ए मेनेस'' कहकर) का प्रतिपादन किया, प्रसाद ने विशद समरसतावादी दर्शन प्रस्तुत किया, निराला ने अखंड समतावाद का उद्घोष किया, पन्त ने विशदतम नवमानव का चित्रण किया।

सुन्दर हैं विहग, सुमन सुन्दर, मानव! तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल-सुषमा से तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम!
यौवन ज्वाला से वेष्ठित तन, मृदु त्वच, सौन्दर्य प्ररोह अंग
न्योछावर जिस पर निखिल प्रकृति, छाया प्रकाश के रूप रंग!....

(मानव)

पन्त का मानवतावाद देवता या दानव के छोरों पर नहीं, मानव पर रीझा हे। वह न कोरा दुःखवादी है, न कोरा सुखवादीः वह पूर्णतावादी है। उसका तप जड़ एवं प्रतिक्रियावादी नहीं प्रत्युत संवेदनवादी है। वह शवपूजावादी नहीं, जीवनपूजावादी है। उसकी जीवन्तता विलक्षण है :

1. मैं नहीं चाहता चिर-सुख, मैं नहीं चाहता चिर-दुख;
सुख-दुख की खेल मिचौनी खोले जीवन अपना मुख।
सुख दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन;
फिर घन में ओझल हो शशि, फिर शशि से ओझल हो घन।...

(सुख-दुख)

2. हाय! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन!
जब विषण्ण निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन!
संग[1]-सौध में हो शृंगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, वासविहीन रहें जीवन जन!....

(ताज)

प्रतिक्रियावाद मानवतावाद के पथ का व्यवधान है। पुरातन से नवीन असंपृक्त नहीं, किन्तु मृत-रूढ़िवाद-वहन तो गत-शावक को वक्ष से लगाए वानरी का स्मरण मात्र करा सकता है! कवि जीर्ण एवं शुष्क से मुक्ति चाहता है जिससे शुभ नवल एवं तरल का पथ-प्रशस्त हो सके। सम्प्रति संसार में सबसे पिछड़े देश वे हैं जो अतीत के शव को सर पर लादने को ही आस्था मानने से बाज़ नहीं आते। परिवर्तन का नियम मानना ही जीवन्तता है :

द्रुत झरो जग के जीर्ण पत्र! हे स्त्रस्त-ध्वस्त! हे शुष्क-शीर्ण!
हिमतापपीत, मधुवातभीत, तुम वीतराग जड़ पुराचीन!....
कंकाल जाल जग में फैले फिर नव रुधिर, पल्लव लाली!
प्राणों की मर्मर से मुखरित जीवन की मांसल हरियाली!....

(पतझर)

---

[1] पत्थर (संगमरमर, संगमूसा, संगदिल इत्यादि में प्रयुक्त) 'संगमरमर पत्थर' प्रयोग 'दरअसल में' प्रयोग की तरह मूर्खतापूर्ण है। विंध्याचल-पर्वत, नीलगिरि-हिल्स भी ऐसे ही हैं।

पन्त का मानवतावाद शेली (शेले) के धर्मविरोध की अव्यवहारिकता से भी मुक्त है और उस युवा उत्साही कवि के 'द रिवोल्ट ऑफ़ इस्लाम' के निराधार भ्रम से भी, रवीन्द्र की राष्ट्रवाद-विरोधिनी रिक्त-सैद्धान्तिकता से भी। वह प्रसाद के समरतावाद से अधिक स्पष्ट है, निराला के समतावाद से अधिक व्यवस्थित। वह सतत-विकासशील, सुचिन्तित एवं सुनियोजित होने के कारण 'एक समग्रमानवतावाद' माना जा सकता है। वैसे, पन्त शेली (शेले), रवीन्द्र, प्रसाद, निराला के स्तर के महाकवि हैंः किन्तु अधुनातन-पूर्ण-मानव की विवृति में अद्वितीय।

पन्त का रहस्यवाद विकसित होकर नवरहस्यवाद के रूप में स्फीति प्राप्त करता है, उनका मानवतावाद विकसित होकर नवमानवतावाद के रूप में स्फीति प्राप्त करता है—'पल्लव' से 'लोकायतन' तक की यात्रा विश्व-साहित्य की एक महान् यात्रा है! पन्त पर आचार्य शुक्ल की आलोचना बाह्याश्रित है, डॉ. नगेन्द्र की अपूर्ण, अन्यों की बस यों ही। 'पन्त की कविता में नवरहस्यवाद'[1], 'पन्त की कविता में नवमानवतावाद' जैसे गहन-ग्रन्थ ही उनकी प्रतिभा से पूर्ण न्याय कर सकते हैं, क्योंकि वे एक कवि-दार्शनिक थे, कोरे-कवि नहीं।

'उत्तरा' एवं 'अमिता' से होता हुआ पन्त का नवमानवतावाद 'लोकायतन' में पूर्णता प्राप्त करता है। यह बृहदाकार महाकाव्य संसार-साहित्य में विश्ववादी नवमानव की प्रतिष्ठा करने वाला प्रथम गौरव-ग्रन्थ है। यद्यपि इसका महाकाव्यत्व विशृंखल है, अनुभूतिलोक संगतिविहीन, रसतत्व अपुष्ट, तथापि राम, कृष्ण इत्यादि से लेकर मार्क्स, गाँधी इत्यादि तक की अभूतपूर्व व्याप्ति (जो 'उपनिषद्' से 'दिव्य जीवन'[2] तक को समाहित किए रहती है) में माधो गुरु के आतंक से त्रस्त ग्रामचित्रण का संग्रथन विलक्षण भी है, विचक्षण भी। लोकायतन हिन्दी का 'लाइफ डिवाइन' है! इसमें जीवन की समग्रता चित्रित है, जो न एकधर्मबद्ध है, न एकवादबद्ध, न एकव्यक्तिबद्ध और न एकवृत्तबद्ध। सम्पूर्ण-मुक्ति नवमानवतावाद की प्राणशक्ति है। सर्व-समन्वय के साथ नव्यतम-बोध नवमानवतावाद के मेरुदंड है। कामायनी एवं लोकायतन खड़ीबोली के गौरव-काव्य हैं। यह सत्य है कि काव्य-मूलों की दृष्टि से कामायनी, प्रियवास एवं साकेत खड़ीबोली के श्रेष्ठतम महाकाव्य हैं किन्तु जीवनमूल्यों की दृष्टि से लोकायतन, उर्मिला एवं उर्वशी का अपना-अपना महत्त्व स्मरणीय है। कविता में लोकायतन को एक महान् प्रयोग कहा जा सकता है। अनुक्रम-पृष्ठ पर इसकी रूपरेखा अंकित है :

द्वार सोपान

प्रथम खण्ड : बाह्य परिवेश
पूर्वस्मृति : आस्था
जीवनद्वार
संस्कृतिद्वार
मध्य बिन्दु : ज्ञान
द्वितीय खण्ड : अंतश्चैतन्य
कलाद्वार
ज्योतिद्वार
उत्तर स्वप्न : प्रीति

स्पष्ट है कि इतनी महान् स्फीति अकस्मात् नहीं उपलब्ध हुई। उसकी पृष्ठभूमि द्रष्टव्य है :

एक ही तो असीम उल्लास, विश्व में पाता विविधाभास;
तरल जलनिधि में हरित विलास, शांति अंबर में नील विकास;
वही उर उर में प्रेमोच्छ्वास, काव्य में रस, कुसुमों में वास;
अचल तारक पलकों में हास, लोल लहरों में लास!
विविध द्रव्यों में विविध प्रकार एक ही मर्म मधुर झंकार!
वही प्रज्ञा का सत्य स्वरूप हृदय में बनता प्रणय अपार;
लोचनों में लावण्य अनूप, लोकसेवा में शिव अविकार;.... **(परिवर्तन)**

---

[1] डॉ. पवनकुमार ने पथ प्रशस्त कर दिया है।

[2] अरविन्द कृत महान् ग्रन्थ 'लाइफ डिवाइन'।

पन्त की विराट् समन्वयशाली प्रतिभा का विराट् महाकाव्य 'लोकायतन' बौद्धिकरस का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य है—बौद्धिककाल की एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। अनुभूति पक्ष की तीव्रता एवं वंकिमता के अभाव में भी लोकायतन की बौद्धिकरसनिष्पत्ति-पूर्णता उसे हिन्दी-साहित्य के श्रेष्ठतम महाकाव्यों की पंक्ति में प्रतिष्ठित कर देती है। 'पल्लव' प्रभृति का रहस्यवाद तथा मानवतावाद एवं 'उत्तरा' प्रभृति का नवरहस्यवाद तथा नवमानवतावाद लोकायतन में पूर्णपरिस्फुट रूप ग्रहण करता है :

1. रागर्थादि, अमर कवि गिरे, प्रणाम,
जयति, पार्वती-परमेश्वर-प्रिय राम![1]

2. कैसे कह दूँ इड़ा लुब्ध युग मनु से श्रद्धा सँग वह करे मेरु-नग रोहण,
आत्मबोध को निष्क्रिय समरस स्थिति को जन भू पथ पर करना सक्रिय विचरण![2]

3. सीता जन भू हृदय, राम जन के बल, नर चरित्र धर, मानस पात्र अनश्वर,
प्रीति प्रणत लक्ष्मण अनंत पौरुष बल, शील मूर्ति उर्मिला विरह रस गागर![3]

आकलन

सम्प्रति वाद-प्रतिबद्धता, भारतीयता-विरोध, परकीयता-व्यामोह इत्यादि से अभिभूत आलोचना पन्त के साथ न्याय-पराङ्मुख प्रतीत होती है। प्रसादवादी और निरालावादी उन पर पिले पड़े हैं या उनकी उपेक्षा कर रहे हैं। किन्तु 'पल्लव', 'गुंजन' एवं 'लोकायतन' का महाकवि विश्वस्तरीय स्त्रष्टा भी है, द्रष्टा भी, जिसका स्तर वर्ड्सवर्थ, शेली (शेले), रवीन्द्र, प्रसाद एवं निराला का स्तर है। पन्त के शब्दशिल्प के सामने घनआनन्द तक का शब्दशिल्प खड़ा नहीं हो पाता। वैसे, घनआनन्द पन्त के स्तर के कवि भी नहीं हैं। प्रकृति के कवि के रूप में उनकी समता का कवि केवल वर्ड्स्वर्थ है। उनकी नवमानवतावादी क्रान्ति शेली (शेले) की दर्शनविपन्न तारुणिक क्रान्ति से गहनतर है। पन्त के विराट् जीवनदर्शन में ज्ञान-योग-भक्ति-कर्म के सारे रंग भले ही न निखर पाए हों (उनकी भक्तिविषयक धारणा सम्पूर्णानन्द, प्रसाद एवं बच्चन की सी वस्तुपरकताहीन या आत्मपरकतापीन भले ही न हो, किन्तु बहुत सन्तुलित भी नहीं लगती) किन्तु उनका पुरुषार्थ (धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष) का नव्यरूप निस्सन्देह अधुनातन एवं श्रेयस्कर है क्योंकि उनका धर्म धार्यगुणप्रतीक है, अर्थ लोकहितप्रतीक है, काम सृजनगुण प्रतीक है, मोक्ष जीवनदिव्यता प्रतीक है। पन्त जीवन के महान् एवं अधुनातन विश्लेषक महाकवि हैं जो संकीर्ण मजहबों, अव्यापक धर्मों, अमनोवैज्ञानिक (मार्क्सवाद प्रभृति) वादों की शृंखला से मुक्त एक मानव एवं एक विश्व की कल्पना में सक्षम सिद्ध हुए हैं। निस्सन्देह, पन्त सच्चे विश्वकवि हैं।

कौशलेन्द्र राठौर

'काकली' (1929 ई., जिसका द्वितीय संस्करण नाथूराम शर्मा 'शंकर' के सुपुत्र हरिशंकर शर्मा ने 1933 ई. में सम्पादित किया तथा 'काकली' 1930-40 ई. के बीच खूब गूँजी थी) के कवि कौशलेन्द्र राठौर (1900-28 अप्रैल, 1930) का वास्तविक नाम हाकिमसिंह था।[1] वे अत्यन्त बलिष्ठ व्यक्ति थे। बलवन्त राजपूत कॉलेज के विद्यालय-विभाग के दमनकारी प्रधानाध्यापक की हत्या के आरोप में उन्हें निष्कासित कर दिया गया था। तब वे कक्षा सात उत्तीर्ण थे। कौशलेन्द्र राठौर ने खड़ीबोली में सफल कवित्त-रचना की है और इस दृष्टि से वे सनेही एवं गोपालशरण सिंह जैसे श्रेष्ठ कवियों का स्मरण कराते हैं। उनकी कविता की प्रशंसा आ. महावीर प्रसाद

---

[1] दो पंक्तियों के लघु-आकारीय विराट्-मंगलाचरण में वाणी के साथ वाल्मीकि, कालिदास एवं तुलसीदास अर्थात् तीन स्वर्गभालकवियों को अनुस्यूत करना पन्त जैसे सांस्कृतिक महाकवि के लिए ही सम्भव है।

[2] पलानयवादी आध्यात्मिकता पर जीवनवादी आध्यात्मिकता को वरीयता। प्रसाद के 'कामायनी' में व्यक्त दर्शन का खंडन। डॉ. श्यामसिंह 'शशि' कृत महाकाव्य 'अग्निसागर' का प्रेरणास्रोत।

[3] नव-भव्य रामादि-रूपक।

[4] 'विनोद' में जन्मवर्ष 1957 वि. (1900 ई.) दिया है, मृत्यूवर्ष, 1987 वि. (1930 ई.)। 'हिन्दी साहित्य कोश 'भाग 2 में 1896 ई. दिया है जो ग़लत लगता है। बीमा क़ाग़जातों में जन्म 2-10-1902 दिया है, जबकि गाँव वालों के अनुसार यह 1899 ई. है। इन्द्र ब्रह्मचारी 1900 ई. मानते हैं। 1900 ई. ही ठीक लगता है क्योंकि वे तीस (30) वर्ष जिए, ऐसा प्रसिद्ध है।

द्विवेदी, रवीन्द्र, गोपालशरण सिंह इत्यादि ने की थी। आचार्य से मिलने वे दौलतपुर (रायबरेली) भी गए थे। उन्होंने ब्रजभाषा में सुन्दर सवैये भी लिखे थे। उनकी कविता में व्याप्त करुणा उनके करुणावसान की नेपथ्य-वाणी प्रतीत होती है—28 अप्रैल, 1930 को घर में लगी आग में कई परिवारजन और 'काकली' की समस्त प्रतियों के साथ उनका अवसान हुआ था! कौशलेन्द्र राठौर की जीवनी एक हृदयविदारक दुखांतिका[1] रही—लखनऊ के मुशायरे में उर्दू के अज़ीम शायर सौदा (मीर तक़ी 'मीर' के समकालीन-समकक्ष) सदारत कर रहे थे; अधिकतर आँखें बन्द किए चुपचाप से बैठे, कि अचानक यह शेर सुनकर आँखें भी खोलीं, दाद भी दी, अनायास और एकदम ही कमसिन शायर के ज़्यादा दिन न जीने की भविष्यवाणी भी कर डाली (संयोगात् वह शायर घर में आग लगने से न रहा):

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग़ से,
इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से!

और,

काँपता पवन अविराम पंथ चलने से है,
धरा हुआ धूल भार जग का उड़ाने से।
जलती अनल अपने में ही निरन्तर है,
गीला पड़ा अंबर है आहें टकराने से।।
'कौशलेन्द्र' जल भी बना केवल प्यास का है,
वच सका कौन जगती में दुःख पाने से।
डाल दिया मुझको कहाँ हे भगवान! हाय,
दुखिया हुआ हूँ इन दुखियों में आने से।।

कौशलेन्द्र राठौर की कविता में दुःखवाद, रहस्यवाद एवं विरहवाद की प्रधानता है। उनकी भाषा (चाहे खड़ीबोली हो या ब्रज) निखरी-सुथरी है। छन्द प्रवाहपूर्ण हैं। निस्सन्देह, वे उस फ़र्रुख़ाबाद[2] जनपद (बालूपुर ग्राम) की एक स्मरणीय साहित्यिक विभूति थे, जिसमें पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र (कंपिला) उत्पन्न हुए थे, महादेवी वर्मा (नगर) उत्पन्न हुईं। उनके दुःखवाद से 'नीरज' एवं विरहवाद से 'रंग' अवश्य प्रभावित हुए होंगे। उदाहरण प्रस्तुत हैं।

1—2 मृग के शिकारी से गुहार

शीत के कसाले सहे, पाले पर पाले सहे, आतप के काले-काले छाले से हैं तन में।
लेते रहे शीश पे घनों की वारिधारा हम, घोर दुःख पाते रहे सतत विजन में।।
'कौशलचन्द्र' आँख आँखवालों से बचाते रहे, डरते रहे सदा हवा की सन-सन में।
दूब दशनों में लिए दया के भिखारी रहे, तो भी हाय! तनिक न आई दया मन में।।
मरतें सभी हैं, हमें डर मरने का नहीं, मार कर हमको न आप कुछ पायेंगें।
होगा उपकार, भ्रम जाएगा कुरंग-कुल, फिर न कभी भी भोले-भाले पतियाएंगे।।
'कौशलेन्द्र' सोच बस इतना हमें है, जब, प्यारे मृग खोज में हमारी यहाँ आयेंगे।
सूनी विपिनस्थली विलोक दूनी होगी व्यथा, दृग भर आयेंगे, नयन भर लाएंगे।।

3.
उनपै अपनो मन बारिए ना जो सनेह की जानत रीति नहीं।
जहँ नेह नए नित लागे नए न सो है तहाँ की कछु धीति नहीं।।
छल स्वारथ को है लगाव बुरो, यह प्रेम है औ नेम की नीतिं नहीं।
उनमें हित[3] कीन्हें कहा फल है जिनके हित की परतीति नहीं।।

---

[1] 'त्रासदी' अमौलिक एवं हल्की लगती है।

[2] 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में 'एटा' ग़लत लिखा है। 'विनोद' में फर्रुख़ाबाद ठीक लिखा है।

[3] प्रेम। राधावल्लभ-संप्रदाय वाले नाम से पूर्व 'हित' लगाते हैं, जो प्रेमप्रधानता का द्योतक है (हित हरिवंश, चाचा हित वृन्दावनदास इत्यादि प्रसद्धि हैं ही।)

हर्ष का विषय है कि नरेशचन्द्र सक्सेना 'सैनिक', प्रेमचन्द सक्सेना 'प्राणधार', श्रीकृष्ण मिश्र जैसे निष्ठावान साहित्यकारों के कारण जीवन्त सरस्वती साधना परिषद् मैनपुरी ने 'कवि कौशलेन्द्र पुरस्कार' द्वारा उनकी स्मृति को गतिशील बनाने का पावन कार्य सम्पन्न किया है, जिसमें एक साहित्यकार को पुरस्कृत तथा कुछ को सम्मानित किया जाता है। परिषद् ने काकली का पुनःप्रकाशन भी किया है। 14 अप्रैल, 1990 को वरिष्ठ एवं विलक्षण साहित्यकार स्व. रामप्रसाद विद्यार्थी 'रावी' (आगरा) को पुरस्कृत किया गया तथा तीन को सम्मानित। आयोजन की अध्यक्षता प्रसिद्ध विद्वान् डॉ. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी ने की। इस सामोरह में कौशलेन्द्र राठौर के व्यक्तित्व-कृतित्व पर प्रात्ययिक प्रकाश डाला गया, 'सुरभि' (परिषद् का मुखपत्र) का उपयोगी अंक भी निकला, जिसमें इटावा-मूलक मैनपुरी के प्रख्यात कवि लाखनसिंह भदौरिया 'सौमित्र' का यह छन्द पठनीय भी है, मननीय भी :

कल-कल नादों में बहा था रस गंध छंद, वीणावादिनी के मुक्त स्वर कौशलेन्द्र थे।
खड़ीबोली बोली में ही बोले थे, अबोले बोल, वाणी वरदायनी के वर कौशलेन्द्र थे।।
दर्द का अथाह दाह उफान बना था छंद, पिछली व्यथा के निर्झर कौशलेन्द्र थे।
मुखर हुआ था दैन्य-द्वन्द्व जीवन का, मूक यातनाओं के अधर कौशलेन्द्र थे।।

द्वारकाप्रसाद[1] मिश्र

बीसवीं सदी में अवधी की एक सर्वोत्तम रचना 'कृष्णायन' के प्रसिद्ध कवि द्वाराकाप्रसाद मिश्र (1901-88 ई.) का जन्म पड़री, जिला उन्नाव में हुआ किन्तु उनका कार्यक्षेत्र मध्यप्रदेश एवं उसका एक प्रमुख नगर जबलपुर रहा। इसी पड़री में 'नचिकेता' महाकाव्य के प्रणेता कवि गंगारत्न पाण्डेय उत्पन्न हुए। उनके पिता अयोध्याप्रसाद मिश्र ने उन्हें बी.ए., एल.-एल. बी. कराया। सम्बन्धसूत्रों के आधार पर वे मध्य प्रदेश चले गए जहाँ एम. एल. ए., मन्त्री, सागर विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा मुख्यमन्त्री पदों की पैज की। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन[2] का पक्ष लेने के कारण, नेहरू का विरोध किया तथा कई वर्षों तक शून्य के विवर्त में पड़े रहे, किन्तु इन्दिरा गाँधी ने पुनः प्रतिष्ठित किया। इंडीकेट-सिंडीकेट-युद्ध में 1969 ई. एवं अनन्तर इन्दिरा के राजनैतिक गुरु रहे।[3] इनके बताए दाँव-घात बहुत प्रभावी सिद्ध हुए। द्वारकाप्रसाद मिश्र के शासनकाल में बस्तर के तरंगी सन्त-महाराज (दन्तेश्वरी[4]-भक्त) श्री प्रवीरचन्द्र भंजदेव की उन्हीं के राजप्रसाद में हत्या एक विवादस्पद घटना थी। द्वारकाप्रसाद मिश्र ने 'हिन्दुओं का स्वातन्त्र्य प्रेम' नामक ग्रन्थ भी लिखा था! इन्होंने आत्मकथा भी लिखी। किन्तु इनकी साहित्यिक ख्याति का मुख्य आधार 'कृष्णायन' ही है। 'शबरी-चरित्र' खण्डकाव्य के प्रस्तोता खड़ीबोली-कवि श्री दयाशंकर अवस्थी 'देवेश' के पिता स्व. पं. रामदेव अवस्थी 'भरतपूजन' ने भी अवधी में चौपाई-दोहा-सवैया छन्दों में 'कृष्णायन' रचा था, जो अप्रकाशित है।

'कृष्णायन' अपने अभिधान, अवधी-माध्यम, दोहा-चौपाई-छन्द एवं ''मधुप स्वभाव मोहि प्रिय लगा'' तक में रामचरितमानस से अनुप्राणित है किन्तु इसे अनुकृति नहीं कहा जा मकता, क्योंकि अनुभूति में भावुकता पर बौद्धिकता को वरीयता प्रदान की गई है तथा अभिव्यक्ति में संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया गया है। महाभारत (श्रीमद्‌भगवद्‌गीता जिसके भीष्म-पर्व का एक अंशः 25-42 अध्याय अथवा 700 श्लोक) के लोकरक्षक कृष्ण एवं भागवत के लोकरंजक कृष्ण बृहदाकार कृष्णायन में एक कर दिए गए हैं जिससे महाकाव्य भागवत के कृष्ण के रंग में रँगे और रमे हिन्दी-साहित्य के सहज रूप में खप नहीं पाया। महाकवि हरिऔध के कृष्ण हिन्दी-साहित्य के सहजरूप में खप गए हैं क्योंकि 'प्रियवास' बौद्धिकता के साथ भी भागवत के कृष्ण को ही विवृत करता है। कृष्णकाव्य के महाभारत एवं भागवत द्विविधपक्षीय सृजन की दृष्टि से मैथिलीशरण गुप्त सर्वोपरि हैं जिनके महाभारतपरक जयभारत, जयद्रथवध इत्यादि भी सफल हैं, तथा भागवतपरक द्वापर भी सफल है, क्योंकि उन्होंने दोनों कृष्णों को अपनी-अपनी अलग-अलग छवियों में चित्रित किया है। 'भारती' के 'अन्धा युग' (गीतिनाट्य) एवं 'कनुप्रिया' (खण्डकाव्य) भी हिन्दी-कृष्णकाव्य में उल्लेख्य सूर जैसे महाकवि के राधा एवं

---

1. वे 'द्वारका' ही लिखते भी थे, चाहते भी—'द्वारिका' नहीं। कोशकार चतुर्वेदी द्वाराकाप्रसाद शर्मा का ध्यान आता है।
2. पटेल के देहान्त (15 दिसम्बर, 1950) के अनन्तर, केन्द्र एवं राज्यों में पटेलवादियों का जो सफाया किया गया, उसी में टण्डन जी को भी काँग्रेस-अध्यक्ष पद से त्यागपत्र देना पड़ा था।
3. सांसद एवं कविसम्मेलनों में लोकप्रिय बालकवि बैरागी ने मिश्र पर महान् श्रद्धा व्यक्त की है।
4. महिषासुर से संग्राम-सन्दर्भ में दुर्गा का एक दाँत टूट गया था। इस कथा पर आधृत। दन्तेश्वरी देवी का बस्तर-क्षेत्र में बहुत ज़ोर है। भंजदेव की लोकप्रियता विलक्षण थी।

कृष्ण के महाभारतपरक रूपों को कोई नहीं जानता (वह है भी कलाहीन एवं नगण्यवत्)। फिर भी, अपने कृष्ण के विराट् एकीकरण एवं युगबोध के सम्यक् विवृति के कारण 'कृष्णायन' एक स्मरणीय महाकाव्य है। डॉ. ओमप्रकाश त्रिवेदी ने 'आधुनिक अवधी प्रतिनिधि कवि' ग्रन्थ में उन्हें 'शलाका-पुरुष' माना है। कवि का जनवाद एवं मानवतावाद प्रशस्य है। उनके 'कृष्णायन' से उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. हम दोउ एक नाहिं कछु भेदा। कहत सकल निगमागम बेदा।।
मृदुल भाव में ब्रज दरसावा। प्रेम विटप करि यत्न लगावा।।
भक्ति-रूप धरि तुम ब्रज आई। नीरधि नेह नयन भरि लाई।।
संसृति-उपवन रहेउ सुखाई। सींचि नेह-जाल देहु बढ़ाई।।

मुन्शीराम शर्मा 'सोम'

सूर-साहित्य के सीमान्त स्व. डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' (1901-90 ई.)[1] 'सूर-सौरभ', 'भारतीय साधना और सूर-साहित्य', ''भक्ति का विकास' (वैदिक भक्ति से आरम्भ, कबीर, जायसी, सूर एवं तुलसी की भक्ति का विवेचन-विश्लेषण तथा भक्ति की अधुनातन उपयोगिता पर प्रकाश) इत्यादि के आलोचक, 'विरहिणी' के महाकाव्यकार, 'सारस्वत' के निबन्धकार, 'सोम सुधा स्तोत्रम्' के संस्कृत-कवि (तुलसीवत्) प्रभृति रूपों में हिन्दी के एक उल्लेखनीय एवं पूजनीय साहित्यकार हैं। 'वैदिकी' एवं 'चतुर्वेद-मीमांसा' के प्रणेता को आ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ठीक ही चरणस्पर्श-योग्य एवं 'वेदमूर्ति' मानते थे। महादेवी, अज्ञेय इत्यादि ने उन्हें घर जाकर सम्मानित किया था। 'तुलसी का मानस', 'प्रसाद की कामायनी' इत्यादि उनके अन्य ग्रन्थ भी उन्हें सर्वप्रथम आलोचक के रूप में ही प्रतिष्ठित करते हैं। आगरा जनपद के एक 'भट्ट' परिवार में जन्में 'सोम' ने कानपुर में निवास किया तथा वहाँ अपार श्रद्धा प्राप्त की। उनका सूर को चन्द्रवरदायी-वंशज भट्ट मानना, सूर को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ कवि मानना, यत्र-तत्र-सर्वत्र वेद का अत्यधिक समावेश करना, यत्र-तत्र आर्यसमाजी होने के कारण सनातन मान्यताओं का प्रत्याख्यान करना इत्यादि विन्दु हो सकते हैं, किन्तु सूर को जन्मान्ध सिद्ध करना (जिसका प्रभाव आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी जैसे एक शीर्षस्थ आलोचक एवं डॉ. हरवंशलाल शर्मा जैसे एक शीर्षस्थ शोधकर्ता पर पड़ा है), वात्सल्य को रसस्तर पर विवेचित करना, भक्ति का महान् विश्लेषण करना, आत्मा-परमात्मा के विरह का अतुलनीय निरूपण करना इत्यादि उन्हें उच्चतर श्रेणी का साहित्यकार प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त हैं।

'सोम' एक महापुरुष थे, जिनका चरित्र निष्कलंक रहा। उन्होंने चन्द्रशेखर आज़ाद एवं भगतसिंह जैसे क्रान्तिकारियों को शरण देने का वीरत्वपूर्ण कार्य किया। वे डी. ए. वी. कॉलेज कानपुर में हिन्दी-विभागाध्यक्ष के रूप में अनेक प्रसिद्ध शिष्यों के विकास में सहायक हुए। उनके नाम पर पथ तथा कॉलेजों में मूर्ति-प्रतिष्ठा ऋषि-ऋण की पूर्ति की दिशा में प्रशस्य प्रभावी हैं। संततिपक्ष से दुखी तथा कठिन हृद्रोग से पीड़ित होते हुए भी, वे सदा प्रसन्न एवं सृजनरत रहे। संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेज़ी पर उनका पूरा अधिकार था। वे विश्वस्तरीय विद्वान् माने जा सकते हैं, यद्यपि उनका दृष्टिकोण अधुनातन नहीं रहा तथा प्रतिभा का पैनापन उनमें कहीं नहीं दीखता।

रामवृक्ष बेनीपुरी

यद्यपि बिहार ने डॉ. राजेन्द्र प्रसाद एवं बाबू गंगाशरण सिंह जैसे चिरादरणीय हिन्दी-सेवी, संस्थारूप-हिन्दीसेवी रामलोचनशरण[2] (1890-1971 ई.) एवं संस्थारूप हिन्दीसेवी शिवपूजन सहाय (1893-1963 ई.) से लेकर जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', मोहनलाल महतो 'वियोगी', केदारनाथ मिश्र 'प्रभात', जानकीवल्लभ शास्त्री, रामदयाल पांडेय, डॉ. रामवरण चौधरी, आनन्दशंकर माधवन्[3] जैसे कवि, रेणु जैसे उपन्यासकार, डॉ. लक्ष्मीनाराण 'सुधांशु', डॉ. कुमार विमल, डॉ. वचनदेव कुमार जैसे यशस्वी शोधकर्ता एवं डॉ. रामखेलावन पाण्डेय, डॉ. रामपूजन तिवारी, डॉ. देवेन्द्र शर्मा जैसे जाने-माने विद्वान् उत्पन्न किए हैं तथा महामहोपाध्याय पांडेय रामावतार शर्मा एवं महामहोपाध्याय डॉ. उमेश मिश्र का पाण्डित्य राष्ट्रीय स्तर का रहा है, तथापि विद्यापित एवं दिनकर के अनन्तर उसके सर्वोपरि साहित्यस्रष्टा रामवृक्ष शर्मा 'बेनीपुरी'[4] (1902-68 ई.) ही माने जाएँगे क्योंकि उनकी बहुमुखी प्रतिभा ने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी,

---

[1] प्रमाणपत्र में 1902 ई. दिया है। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में दिया गया 1901 ई. बताया था।

[2] रामचरितमानस के मैथिली एवं नेपाली अनुवादकर्त्ता के रूपों में भी चिरस्मरणीय।

[3] दाक्षिणात्य मनीषी जिन्होंने मन्दार में आश्रम बनाया है। उत्कृष्ट कवि एवं लेखक।

[4] बेनीपुर-निवासी होने के कारण।

ललित-निबन्ध, संस्मरण, रेखाचित्र, व्यंग्य, यात्रावृत्त, जीवनी, ग्रन्थ-सम्पादन एवं बालसाहित्य विद्याओं में विस्मयकारी सृजन किया है तथा पत्रकारिता की ध्वजा को भी ऊँचा रखा है। 'पतितों के देश में', 'चिता के फूल', 'क़ैदी की पत्नी', 'गेहूँ और गुलाब' इत्यादि के कथाकार ने 'अम्बपाली', 'संघमित्रा', 'तथागत', 'सिंहल-विजय' इत्यादि के नाट्यकार के रूप में भी सफलता प्राप्त की है, 'विद्यापति की पदावली' के मानक एवं शोधसमक्ष सम्पादक ने 'जयप्रकाश' के जीवनीकार के रूप में भी सफलता प्राप्त की है–और 'बीसवीं सदी के श्रीकृष्ण' जैसी सुन्दर व्यंग्य-कविता, 'बसन्त-संध्या' जैसी सुन्दर प्रकृति-कविता के उल्लेख्य कवि को तो जैसे अब लोग भूल ही गए है! अनेक रूप रंगों के अनेक पत्रों के सम्पादक से लेकर विधायक तक के जनरोवाकार्य अलग! विलक्षण सृजनशक्ति एवं विलक्षण कार्यशक्ति से द्विविध-सम्पन्न बेनीपुरी स्वभावतः एक विलक्षण साहित्यकार भी थे, एक विलक्षण मानव भी। वे सदा सर्वसहायक एवं सर्वप्रेरक भी रहे। दिनकर ने लिखा है ''नाम से दिनकर मैं था, काम से दिनकर वो थे''–यदि बेनीपुरी न होते तो दिनकर भी न होता!

बेनीपुरी की अलंकृत भाषा उनकी अपनी है। उनका साहित्य सोद्देश्य-साहित्य है। वे बुद्ध, गाँधी इत्यादि के आदर्श में सहज रूप से रँग गए थे। कांग्रेस के नेता भी थे। किन्तु वे जहाँ मन की मौज में आकर कलम उठाते थे वहाँ बहुत ही सुन्दर और रोचक सृजन कर डालते थे। उनकी कविताएँ और उनका बालसाहित्य इस कथन के दो प्रमाण हैं। यदि वे 'तथागत' लिख सकते थे तो 'बगुला-भगत' भी, यदि वे 'जयप्रकाश' लिख सकते थे तो 'सियार पाँड़े' भी यदि वे 'अम्बपाली' लिख सकते थे तो 'बिलाई मौसी' भी। उन्होंने 'विद्यापति', 'शिवाजी', 'गुरु गोविन्दसिंह' और 'बाबू लंगटसिंह' जैसे ग्रन्थ भी लिखे हैं जो उन्हें एक स्फीत जीवनीकार सिद्ध करते हैं। उनके बहुविधागत विराट् सृजन पर एक विशद सम्पादित ग्रन्थ ही सम्यक् प्रकाश डाल सकता है, क्योंकि वह किसी एक आलोचक या शोधकर्ता या लेखक के बूते का कार्य नहीं। यह भी एक विडम्बना है कि मिश्रबन्धु के 'विनोद' में वे सादर उल्लिखित हैं किन्तु शुक्ल को 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में नहीं (सम्भवतः इसलिए तोता-रंटतवादी साहित्येतिहासकारों एवं आलोचकों ने उनकी उपेक्षा की है)! हिन्दी के सौभाग्य से अब 'बेनीपुरी-ग्रन्थावली' के दो खण्ड प्रकाश में आ चुके हैं (योजना दस खण्डों की है)। उनकी कविता के दो अवतरण प्रस्तुत हैं :

> सांध्य पवन सनूसनू-सनूसनू कर सुखद बह रही। चिड़िया चहक-चहक कर चित का चैन कर रही।।
> चटक-चटक कर कली हृदय को चटकाती है। भ्रमरावलि भन-भन[1] कर मन को भटकाती है।।
> ऋतु वसन्त, संध्या समय, सुन्दर उपवन कुंज है। अपना प्यारा पास में, यही स्वर्ग सुख-पुंज है।।

(बसन्त-संध्या)

> साँवरे! पुनः तुम्हें यदि पाऊँ।
> पूरा जंटिलमैन[2] बनाकर सारी कसक मिटाऊँ।।
> कटि काछनी, केसरिया जामा, हीरा हार हटाऊँ।!
> बूट. सूट, नेक-टाई ऊपर चश्मा चेन चढ़ाऊ।।
> प्यारी वंशी छीन अधर पर चुरुट-सिगार जलाऊँ।
> कलगी-मुकुट गोपिका-मोहन फेंक, हैट पहनाऊँ।।
> लकुट तोड़, दे केन लचीला, टुमुक चाल चलवाऊँ।
> गीता के बर बैन भुलाकार, गिटमिट बोल बुलाऊँ।।
> दधि-माखन-मिश्री का भाजन यमुना में भसिआऊँ।
> लेमनेड-सोडा-ह्विस्की प्याऊँ, बिस्कुट-केक खिलाऊँ।।
> अबला गोपी जानि सताया, पर अब कहत डराऊँ।
> सबला लेडी साथ करूँ मैं, सारे छका छुड़ाऊँ।।
> रंच नहीं जैसा दे रखा वैसा आज सजाऊँ।
> टाँग पसार स्वर्ग में सोते उसका मजा चखाऊँ।।

---

[1] भनना = कहना। भन-भन कर = कह-कह कर। श्लेष।

[2] जैन्टलूमैन। भद्रपुरुष।

प्रभुदयाल मीतल

व्रज-प्रदेश, व्रजभाषा एवं व्रजभाषा-कविता के शीर्षस्थल विद्वान् तथा डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' के साथ सूर-साहित्य एवं डॉ. दीनदयाल गुप्त के साथ अष्टछाप-साहित्य के सीमान्त स्व. प्रभुदयाल मीतल (5 जून, 1902, मथुरा) 'व्रज का सांस्कृतिक इतिहास', 'व्रजस्थ वल्लभ सम्प्रदाय का इतिहास', 'सूर-सर्वस्व', 'अष्टछाप-परिचय' एवं 'व्रजभाषा साहित्य का नायिकाभेद' शीर्षक अनमोल ग्रंथों के कारण चिरस्मरणीय भी हैं, आदरणीय भी। 'व्रज की लोककथाएँ', 'व्रज की रासलीला', 'व्रज की सांस्कृतिक यात्रा', 'व्रज-साहित्य का सूक्ति-सौरभ', 'व्रजभाषा-साहित्य की ऋतु-सौन्दर्य', 'सूरदास का जीवन-वृत्त', 'सूरसागर-सेतु', 'स्वामी हरिदास', 'स्वामी हरिदास जी की वाणी', 'चैतन्य-मत और व्रज-साहित्य', 'चंदसखी के भजन और लोकगीत', 'संगीत-सम्राट् तानसेन', 'संगीताचार्य बैजू और गोपाल', 'ग्वाल कवि', 'भक्त कवयित्री गंगाबाई' इत्यादि ग्रन्थ उनके एकनिष्ठ पांडित्य के जीवन्त प्रतीक हैं। उनके लिए श्री अखिल विनय का "व्रज-संस्कृति के मूर्द्धन्य विद्वान्"[1] विशेषण भी अपर्याप्त है। निस्सन्देह, स्व. प्रभुदयाल मीतल व्रज-विश्वकोश हैं। किन्तु 'तुलसी-श्रद्धांजलि' एवं 'मानस-वार्ता' लिखकर उन्होंने आयामों की व्यापकता का परिचय भी दिया है।

साहित्य-वाचस्पति प्रभुदयाल मीतल का लेखन 'डायरशाही और जलियावाला बाग़' (1920 ई.) शीर्षक देशभक्तिपूर्ण ग्रन्थ के साथ हुआ था। 'राष्ट्रीय आन्दोलन' (1922 ई.) उनकी प्रमुख देशभक्ति का द्वितीय प्रमाण है। 'मेवाड़ की अमर ग़ाथाएँ' (1924 ई.) एवं 'राजपूती कथाएँ' (1926 ई.) इस दिशा की अन्य कृतियाँ हैं जिनका प्रकाशन क्रमशः 1936 ई. एवं 1940 ई. में हो पाया। उन्होंने 'दंडी स्वामी विरजानन्द और स्वामी दयानन्द' में सुधारवाद के प्रति सम्मान-भाव व्यक्त किया है। यद्यपि उनका विवेचन-विश्लेषण पारम्परिक है तथा उनकी शैली अधुनातन नहीं है तथापि वे वास्तविक आधुनिकता-बोध (जो मानवीयता एवं राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है) से रहित भी नहीं हैं।

कृष्णानन्द गुप्त[2]

'प्रसाद के दो नाटक' ('स्कन्दगुप्त' एवं 'चन्द्रगुप्त') के 1933 ई. में प्रकाशन के साथ कृष्णानन्द गुप्त (3 फरवरी, 1903 ई.[3] ललितपुर, निवास उन्हीं पर नामित कृष्णागर उरई) की प्रसिद्धि हुई। 'प्रसाद के दो नाटक' में कृष्णानन्द गुप्त ने 'स्कन्दगुप्त' एवं 'चन्द्रगुप्त' में व्याप्त अनैतिहासिकता एवं रोमानियत की अति की अतिरंजित आलोचना प्रस्तुत की, जो 'कामयनीः पुनर्विचार' (1952 ई.) में मुक्तिबोध की साम्यवाद-वंदिनी ध्वंसात्मक आलोचना से बेहतर होते हुए भी सन्तुलित नहीं मानी जा सकती। ऐसा लगता है कि उन दिनों मैथिलीशरण एवं प्रसाद में बहुत चलती थी अतः 'दद्दा' के मित्र एवं भक्त कृष्णानन्द गुप्त ने 'खाँड़ेराव' पर खाँड़ा चलाया था! इससे बहुत पूर्व मैथिलीशरण पर आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी की विशेष कृपा के सन्दर्भ में आचार्य-शिष्यत्वकामी प्रसाद ने कुछ लिखा था जिसका उत्तर 'दो टूक' था जैसाकि रत्नशंकर प्रसाद सम्पादित 'प्रसाद को पत्र' से स्पष्ट है (महान् आचार्य ने प्रसाद की परख न कर पाई)। किन्तु अन्ततः प्रसाद ने 'दद्दा' से सम्बन्ध सुधारे तथा उनकी पचासवीं वर्षगाँठ (1926 ई.) पर 'इन्द्रजाल' कहानी-संग्रह समर्पित किया और इसके कुछ ही महीने बाद प्रसाद के निधन पर 'दद्दा' ने 'जयशंकर कहते-कहते' शीर्षक मार्मिक शोक कविता रची। अतः 'प्रसाद के दो नाटक' को हिन्दी-साहित्येतिहास में रचनागत एवं पृष्ठभूमिगत द्विविध महत्त्व प्राप्त है।

कृष्णानन्द गुप्त ने 'अंकुर' (1929 ई.) एवं 'पुरस्कार (1939 ई.) शीर्षक कहानीसंग्रह लिखे हैं तथा 'केन' (1930 ई.) उपन्यास भी लिखा है, 'जीव की कहानी'(1941ई.), 'पदार्थ-परिचय' जैसे वैज्ञानिक-ग्रन्थ भी प्रस्तुत किए हैं, अंग्रेजी एवं बांग्ला से अनुवाद भी किए हैं, बालसाहित्य भी रचा है, किन्तु उनका स्मरण 'बुन्देली भाषा और साहित्य', 'बुन्देली कहावत-कोश', 'वृहत् हिन्दी-कहावत कोश (हिन्दुस्तानी कहावत-कोश) के प्रस्तोत्ता के रूप में ही किया जाएगा। कहावत-कोशों की दिशा में उनके प्रस्थान-कार्य का ऐतिहासिक महत्त्व है। हिन्दी-कोशकारों की प्रथम पंक्ति आ. श्यामसुन्दरदास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. रघुवीर, राहुल सांकृत्यायन, रामचन्द्र वर्मा इत्यादि की है, जिसके अनंतर सुखसंपतिराय भंडारी, डॉ. भोलानाथ तिवारी, कृष्णानंद गुप्त, मुकुंदीलाल श्रीवास्तव इत्यादि को सम्मान्य

---

1. नालंदा-दर्पण (सं. डॉ. स्वर्णकिरण), जनवरी, 1992, पृष्ठ 4
2. कृष्णानन्द व्यास (गोकुल) जिन्होंने 1843 ई. के लगभग 'रागसागरोद्भव' एवं 'रागकल्पद्रुम' ग्रन्थ संगृहीत किए जिनमें प्रयम में 205 में से अनेक अन्यत्र-अनुपलब्ध भक्तों एवं कवियों के पदों की अमूल्य विभूति प्राप्त है; यह अच्छे कवि भी थे। कृष्णानन्द पाठक (जन्म 1882 ई., माधवरामपुर, जनपद मिर्ज़ापुर) अच्छे समस्यापूर्तिकार एवं छन्दकार थे।
3. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 2, पृष्ठ 104) में स्व. देवीशंकर अवस्थी ने 1906 ई. लिखा है, जो ग़लत है।

स्थान प्राप्त है। पत्रकार, 'सम्राज्यवाद' के सुलेखक एवं कोशकार मुकुंदीलाल श्रीवास्तव ने भी बुन्देली शब्दों के साथ अपने कोश-कार्य में पर्याप्त न्याय किया था। बुन्देली की समग्र साहित्यसेवा के लिए उन्हें 1984 ई. में उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के मैथिलीशरण गुप्त नामित पुरस्कार से समादृत किया गया था। यह अच्छा संयोग था कि मैथिलीशरण गुप्त के एक मित्र एवं प्रशंसक को मैथिलीशरण गुप्त पुरस्कार प्रदान किया गया।

कृष्णानन्द गुप्त का पहला लेख 'शिवजी की गुरुभक्ति' मासिक 'विद्यार्थी' (इलाहाबाद) में 1916 ई. में प्रकाशित हुआ था—तब वे 13 वर्ष के ही थे! वे मैथिलीशरण गुप्त, वृंदावलाल वर्मा, गणेशंकर विद्यार्थी प्रभृति प्रख्यात साहित्यकारों के निकट सम्पर्क में रहे। अच्छा होता यदि उनका कोई संस्मरण-ग्रन्थ प्रकाशित हो पाता!

1942 ई. में कृष्णानन्द गुप्त ने साहित्यप्रेमी ओरछा-नरेश वीर सिंह जू देव की सहायता से टीकामगढ़ में लोकवार्ता परिषद् (फ़ोक लोर सोसाइटी) स्थापित की। वे अग्रणी लोकवार्ता-शोधकार थे, जिसके परिणामस्वरूप उनके कहावत-कोश प्रात्ययिक एवं मानक सिद्ध हुए। लोकवार्ता-संबद्ध 'मधुकर' के सम्पादक के रूप में भी अच्छी साहित्यसेवा की। वे इलाहाबाद के प्रसिद्ध साप्ताहिक 'संगम' के प्रधान सम्पादक भी रह चुके हैं।

प्रसंगतः आलोचक, कहानीकार एवं उपन्यासकार तथा मुख्यतः लोकवार्ताकार, कोशकार एवं पत्रकार कृष्णानन्द गुप्त हिन्दी में स्मरणीय रहेंगे।

भगवतीचरण वर्मा

भगवतीचरण वर्मा (1903-81, शफ़ीपुर जनपद उन्नाव) 'चित्रलेखा' के उपन्यासकार के रूप में अमर रहेंगे। वैसे, वे प्रसाद-निराला-पंत की छायावाद-बृहत्त्रयी की तुलना में महादेवी वर्मा एवं रामकुमार वर्मा के साथ छायावाद-लघुत्रयी अथवा वर्मा-त्रयी में सम्मिलित हैं, 'भैसा गाड़ी' के प्रगतिशील कवि के रूप में मान्य हैं जिसकी ये महान् पंक्तियाँ चिरस्मणीय हैं—

> कुछ दूर क्षितिज से कुछ आगे, कुल पाँच कोस दूरी पर,
> भू की छाती पर फोड़े-से कुछ उठे हुए हैं कच्चे घर;
> पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ, नारियॉं जन रही हैं गुलाम
> पैदा होना और मर जाना, बस केवल उनका एक काम।

उन्होंने 'दो बाँके', 'इन्स्टाल्मेनट' प्रभृति हास्यप्रधान कहानीसंग्रह, 'सबसे बड़ा आदमी' जैसे हास्य-एकांकी तथा अनेक विचारात्मक निबन्ध भी लिखे हैं। 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' शीर्षक आत्मकथा अपनी रोचकता एवं राजनैतिक दूरदर्शिता में विशिष्ट है। वे राज्य-सभा के सदस्य थे। सांसद के रूप में दिवंगत हुए। किन्तु उनकी ख्याति अनातोले फ्रांस की 'थाया'[1] पर आधृत 'चित्रलेखा', 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते', 'भूले-बिसरे चित्र' शीर्षक श्रेष्ठ उपन्यासों के कारण ही स्थायी रह सकती है। 'पतन', 'तीन वर्ष', 'रेखा' इत्यादि असफल उपन्यास भी उन्हें मुख्यतः उपन्यासकार सिद्ध करने में सहायक हैं। 'चित्रलेखा' में योग-भोग का गडमगड्ड तो समझ में आ सकता है, किन्तु भोग को निर्विवाद वरीयता प्रदान करने में मादक-मोदक-युवा लखनवी उपन्यासकार आत्मपरक हो गया है। (लगता है, रजनीश ने इसे पढ़ा था!) इससे कलाकृति लोकप्रिय एवं लाभप्रद सिद्ध हुई है।[2] वर्मा जी चलचित्र-जगत् में भी गए। 'चित्रलेखा' पर प्रसिद्ध फिल्में बनीं। पुणे की सैनिक कैन्टीन में सहायक प्रबन्धक के छोटे-से कार्य में रत युसुफ खान (1922 ई.) को दिलीप कुमार नाम वर्मा जी ने ही दिया था। 'टेढ़े-मेढ़े रास्ते' भगवतीचरण वर्मा का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है, जिसमें सामन्तवाद या अभिजात्यवाद, कांग्रेसवाद या गाँधीवाद, साम्यवाद या क्रान्तिवाद प्रभृति की एकांगिताएँ सामर्थ्यपूर्वक चित्रित की गई हैं, जिनसे स्फुरित होकर 'सीधे-सादे रास्ते' शीर्षक उपन्यास तथा स्तरीय उपन्यासकार भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने 'राजपथ' शीर्षक विचारोत्तेजक उपन्यास की रचना की (जो गाँधीवादपरक है।) वर्मा जी के उपन्यास अपनी रोचकता में अतुलनीय हैं। किन्तु उनमें गहराई भी है।

---

[1] प्रेमचंद ने अंग्रेजी-अनुवाद से 'अहंकार' शीर्षक असफल हिन्दी-अनुवाद भी किया है।

[2] श्री बालस्वरूप 'राही' ने 'राग-विराग' (2000 ई.) शीर्षक से 'चित्रलेखा' को सुन्दर संगीतनृत्य नाटिका (ओपेरा) के रूप में प्रस्तुत कर प्रशस्य कार्य किया है। वैसे, स्व. डॉ. रामविलास शर्मा ने निराला-सम्बन्धी संकलन का शीर्षक 'राग-विराग' रखा था।

सुभद्राकुमारी चौहान

आधुनिककाल की महादेवी के अनंतर सर्वाधिक विख्यात एवं लोकप्रियता में अद्वितीय हिन्दी-कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान (1904-अप्रैल, 1948) का जन्म पावन प्रयाग में जहाँ अनेक महापुरुष, नेता, नेत्री, निबन्धकार, कवि, नाट्यकार एवं विद्वान् या तो जन्मे या बसे। संयोगात् वे महादेवी की बालसहेली भी थीं जैसाकि महादेवी कृत 'पथ के साथी' में वर्णित है। उनका स्वभाव सरल था तथा वे कवि एवं कहानीकार, स्वातंत्र्य-वीरांगना एवं कारा-सिंहिनी, कांग्रेस-नेत्री एवं विधायिका मात्र नहीं प्रत्युत एक परिश्रमी-बालिका एवं कुशल-गृहिणी भी थीं। संयोगात् उनका असामयिक एवं अप्रत्याशित देहान्त कार-दुर्घटना में हुआ (गाँधी-अस्थिकलश के मध्यप्रदेश-प्रदर्शन के सन्दर्भ में) अन्यथा वे अधिक प्रौढ़ एवं गम्भीर साहित्य-सृजन अवश्य करतीं।

सुभद्रा की कविता में एक ओर स्वातंत्र्य-संग्राम का प्रचंड शंखनाद श्रुतिगोचर होता है तो दूसरी ओर परिवारिकता का स्नेह। 'त्रिधारा' एवं 'मुकुल शीर्षक कवितासंग्रहों तथा 'बिखरे मोती' एवं 'उन्मादिनी' कहानीसंग्रहों में सर्वत्र एक ओर संघर्ष तो दूसरी ओर सहज-नारी की विवृति दृग्गत होती है। उनकी कविताएँ ही उनकी अमरता-वल्लरी की मूल हैं क्योंकि कहानियों में कथ्य या तथ्य या कला या शिल्प की कोई विशेषता प्राप्त नहीं हो पाती। उनकी कविताएँ भी प्रायः कलारहित हैं, किन्तु अपने सशक्त सन्देश एवं पावन नारी-उद्गार के द्वित्व में अपूर्व होने के कारण सर्वथा समादरणीय हैं। ''खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी'' शीर्षक अमर कविता को आज़ादी का आल्हा कहा जा सकता है—शैली या छन्द से लेकर वीररस-निष्पत्ति तक यह एक उत्कृष्ट कविता है—

> सिंहासन हिल उठे, राजवंशों ने भृकुटी तानी थी,
> बूढ़े भारत में आई फिर से इक नई जवानी थी;
> गुमी हुई आज़ादी की कीमत सब ने पहचानी थी,
> दूर फिरंगी को करने की सबने मन में ठानी थी।....
> कानपुर के नाना[1] की मुँहबोली बहन छबीली[2] थी,
> लक्ष्मीबाई नाम, पिता की वह संतान अकेली थी;
> नाना के सँग पढ़ती थी और नाना के सँग खेली थी,
> बरछी, ढाल, कृपाण, कटारी, उसकी यही सहेली थीं।....
> जाओ, रानी! याद रखेंगे ये कृतज्ञ भारतवासी,
> तेरा यह बलिदान जगाएगा स्वतन्त्रता अविनाशी;
> होए चुप इतिहास, लगे सच्चाई को चाहे फाँसी,
> हो मदमाती विजय उड़ा दे गोलों से चाहे झाँसी।
> तेरा स्मारक तू ही होगी, तू खुद अमिट निशानी थी,
> बुंदेले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी—
> खूब लड़ी मर्दानी वह तो झाँसी वाली रानी थी!

झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई (1835-58 ई.)[3] विश्व-इतिहास की सर्वश्रेष्ठ वीरांगना है। जोन ऑफ़ आर्क में शौर्य और शहादत कहाँ? वे वंदिनी के रूप में मारी गई; लक्ष्मीबाई समरभूमि में लड़कर स्वयं मरीं। चाँदबीबी और दुर्गावती में वह संघर्ष एवं वेदना कहाँ? रामशास्त्री गोडसे के अनमोल ग्रन्थ 'माँझा प्रवास' (जिसका 'आँखों देखा ग़दर' शीर्षक हिन्दी-अनुवाद अमृतलाल नागर ने किया है) में एक प्रकरण आया है। वे नानाराव पेशवा से मिलने जा रही थीं कि मासिक स्राव हो गया और दूसरे वस्त्र के अभाव में वे बड़ी परेशान हुईं। पीठ पर गोद लिए बच्चे को बाँधे, घोड़े पर सवार, तलवार घुमाती हुई इस वीरांगना की कोई

---

[1] ब्रह्मावर्त या बिठूर के नानाराव पेशवा।

[2] लक्ष्मीबाई का बचपन का नाम।

[3] जन्म-स्थान पवित्र काशी पिता मोरो पंत ताम्बे। माता भागीरथी बाई। संस्कारी ब्राह्मण परिवार। बालविवाह झाँसी के राजा गंगाधरराव से। गोद लिया पुत्र मुकुंदराव। बलिदान-स्थल ग्वालियर के निकट (जहाँ सुभद्रा ने मूर्ति अनावरण किया था।)

सानी नहीं! सुभद्रा ने नायिका महानतम चुनी तो कविता उत्कृष्ट कैसे न होती? सुभद्रा का नायिका-समाधि-वन्दन अतीव प्रभावी हैः

इस समाधि में छिपी हुई है एक राख की ढेरी, जलकर जिसने स्वतन्त्रता की दिव्य आरती फेरी;
यह समाधि, यह चिर-समाधि है झाँसी की रानी की अंतिम लीलास्थली यही है लक्ष्मी मर्दानी की।

सुभद्रा भारतीय स्वातंत्र्य-संग्राम की सीमाओं से भली-भाँति परिचित थीं, क्योंकि वे दिनकर या सोहनलाल द्विवेदी के सदृश सुन-सुनकर नहीं प्रत्युत माखनलाल चतुर्वेदी या नवीन के सदृश देखदेख कर (वस्तुतः जूझ-जूझकर) लिखती रही हैं—

पीली सरसों ने दिया रंग, मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग— हैं वीर वेश में किन्तु कंत!
वीरों का कैसा हो वसंत?.... भूषण अथवा कवि चंद नहीं,
बिजली भर दे वह छंद नहीं, है कलम बँधी, स्वच्छंद नहीं—
फिर हमें बताए कौन हंत! वीरों का कैसा हो वसंत?....

'झाँसी की रानी' और 'वीरों का कैसा वसंत' के अतिरिक्त 'राखी की चुनौती' और 'जलियाँवाले बाग़ में वसंत' भी उनकी प्रख्यात राष्ट्रीय कविताएँ हैं।

सुभद्रा की भाषा सामान्यतः साहित्यिक तो है किन्तु उसका स्वर उच्च नहीं है। उसमें शिल्प का वैभव नहीं है। उनकी कविता अनुभूति की सरलता के कारण स्मरणीय है, अभिव्यक्ति की वंकिमता के कारण नहीं। उर्दू शब्दों का प्रयोग उन्होंने खुलकर किया है (किन्तु दिनकर के सदृश उर्दूबाज़ी के फेर में नहीं पड़ीं)—

छोटी से अधखिली कली है परिमल नहीं, पराग नहीं;
किन्तु कुटिल भौरों के चुम्बन का है उस पर दाग़ नहीं।

उनकी 'प्यारी बिटिया' से संबद्ध 'इसका रोना', 'बालिका का परिचय' जैसी पारिवारिक कविताएँ एकदम अनूठी हैं, सहज हैं, निजी हैं; पारम्परिक नहीं, प्रचलित नहीं, शास्त्रीय नहीं। वात्सलय-रस की एकमात्र सफल कवयित्री के रूप में सूर, तुलसी, हरिऔध, मैथिलीशरण की परम्परा को सुशोभित करती हैं।

जर्नादनप्रसाद झा 'द्विज'[1]

'अनुभूति' एवं 'अंतर्ध्वनि' के स्वच्छंतवादी-रहस्यवादी कवि, 'किसलय' एवं 'मृदुदल' इत्यादि के कहानीकार, 'चरित्र-रेखा' के रेखाचित्रकार एवं 'प्रेमचंद की उपन्यास-कला' के 'प्रस्थान'-आलोचक जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' (1904-64 ई.—रामपुर डीह, ज़िला भागलपुर) मुख्यतः कवि हैं, जिनका गद्य भी इसे ही प्रमाणित करता है। बिहार के स्वच्छंदतावादी कवियों में 'द्विज' अग्रणी रहे हैं। मिश्रबंधु ने उनकी कविता को ''सूक्ष्मदर्शितायुक्त एवं भावपूर्ण'' माना है, शुक्ल ने कहानीकार-रूप एवं 'प्रेमचंद की उपन्यास-कला' के आलोचक रूप का उल्लेख किया है। 'द्विज' में स्वच्छन्दतावादी भावुकता अपनी सारी आस्था एवं करुणा के साथ व्यक्त हुई है। उनकी कहानियाँ भी प्रभावी हैं। उनका 'आचार्य द्विवेदी' रेखाचित्र हिन्दी के सर्वोत्तम रेखाचित्रों में एक है। 'द्विज' बिहार के साहित्यकारों में विद्यापति, दिनकर, रामवृक्ष बेनीपुरीं प्रभृति की पंक्ति को सुशोभित करने वाली विभूति हैं (जिनका अभी तक सम्यक् आकलन नहीं हो पाया)। उदाहरण प्रस्तुत है :—

कलित किसलय-से अति सुकुमार विधुर मानस के मृदु उच्छ्वास,
नयन-जल में परिणत कर आज लिए आया हूँ तेरे पास।
भरे इनके कण-कण में तीव्र जलन के हैं आकुल संदेश,
बताएंगे जो तुझको देव! कठिन हैं कितने मेरे क्लेश।

---

[1] जनार्दन झा 'जनसीदन' (1869 ई.—वाजीतपुर, जनपद मुज्फ्फरपुर) एक स्फीत अनुवादक थे, जो 'सरस्वती' के सम्पादकीय-विभाग में भी रहे। रामेश्वर झा 'द्विजेन्द्र' (1903 ई.—भागलपुर) भी एक अच्छे प्रकीर्णकाव्यकार हुए। द्विजदेव, इत्यादि तो प्रसिद्ध हैं ही।

रही मुझमें अवशेष न आज तड़प सकने तक की भी शक्ति,
किए रहता निशि-दिन बेचैन प्रलय प्रकटा अपनी अनुरक्ति।
करूँ क्या? रुक न सकेगा और अधिक अब उमड़ा उर का ज्वार,
रोक मत, रोने दे प्राणेश! रुदन ही है मेरा आधार। **(अश्रुकण)**

प्रतापनारायण श्रीवास्तव[1]

प्रेमचंद की आदर्शवादी परम्परा के एक सशक्त उपन्यासकार स्व. प्रतापनारायण श्रीवास्तव (1904 ई. निवास कानपुर) ने 'निकुंज' (1922 ई.), 'विदा' (1928 ई.), 'विजय' (1937 ई.), 'विकास' (1939 ई.), 'बयालीस' (1948 ई.), 'विसर्जन' (1950 ई.), 'बेकसी का मज़ार' (1956 ई.), 'वेदना' (1960 ई.) एवं 'विश्वास की वेदी पर' (1960 ई.) के उल्लेख्य सृजन में सामाजिक (पाश्चात्य चकाचौंध, वैधव्य, भारतीय मूल्य) एवं ऐतिहासिक (1857 के प्रथम स्वांतन्त्र्य संग्राम, 1942 ई. की निर्णायक क्रान्ति, 1955-62 ई. में चीनी-प्रवंचना-प्रतारणा) दोनों ही दिशाओं में पर्याप्त सफल हुए हैं[2]। 'निकुंज' के अतिरिक्त, सभी उपन्यासों के शीर्षकों का 'व या 'ब' से आरम्भ होना भी एक विशेषता ही है! शुक्ल ने 'विदा', 'विकास', और 'विजय' का उल्लेख किया है।

प्रतापनारायण श्रीवास्तव यथार्थ का चित्रण करने में झिझकते नहीं, किन्तु मानव या मानवी का एकान्त-पतन उनका प्रतिपाद्य नहीं है। भारतीय समाज में विधवा-विवाह कम ही चल पाया है और इस सत्य को झुठलाना उन्होंने उचित नहीं समझा। वे बड़े मिलनसार, सज्जन एवं स्पष्टभाषी थे। 6 दिसम्बर, 1964 ई. की शाम को मोहल्ला टूटी मस्जिद (रामबाग़) कानपुर स्थित उनके घर में मैंने दर्शन किए तो तख़्त पर बैठे भाँग पीस रहे थे (आ. शुक्ल के सदृश स्वयं पीसकर खाते थे) एक गोली मुझे भी दी। बताया : "प्रेमचंद की गरीबी की बात एकदम ग़लत है। मैंने सदा उन्हें अच्छी आर्थिक स्थिति में ही पाया।" हंसराज 'रहबर' इस दिशा में मोहग्रस्त रहे क्योंकि प्रेमचंद-भक्त थे (अन्यथा 'ग़ालिब बेनक़ाब', 'गाँधी बेनक़ाब', 'नेहरू बेनक़ाब' की तरह 'प्रेमचंद बेनक़ाब' भी लिखते), किन्तु डॉ. कमलकिशोर गोयनका (प्रेमचंद विश्वकोश) इस सत्य के साक्षी हैं। और चर्चा चली तो उन्होंने प्रेमचंद की रसिकता पर भी प्रकाश डाला, "पहली पत्नी को छोड़ा तो शिवरानी से विधवा-विवाह किया, लेकिन 'कहरिया' से भी नेह चलता रहा!" रत्नाकर से भेंट के समय "तु रहु री! हौं ही लखौं...." दोहे में बिहारी के द्वारा चौथ के चन्द्रमा से सुन्दरी-मुख के सन्दर्भ की कठोर आलोचना करके उन्होंने अपनी मौलिकता से 'बिहारीरत्नाकर' के प्रस्तोता[3] तक को प्रभावित किया था। वे सफल उपन्यासकार, मौलिक कविता प्रेमी एवं सहृदय सज्जन थे।

गंगाशरण सिंह[4]

हिन्दी का अद्वितीय साहित्येतिहास 'विनोद' अपनी विपुल संपन्नता में 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' से बहुत आगे है, जैसा कि उसके इस पर प्रभाव से भी स्पष्ट है, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक इत्यादि की मान्यता से भी। 'हिन्दी साहित्य कोश', 'भारतीय साहित्य कोश' एवं 'दिवगंत हिन्दी-सेवी' इत्यादि मिलकर भी इसकी एकदृष्टि-निष्पन्नता, आलोचना एवं उद्धरण-विभूति से विपन्न मात्र प्रतीत होते हैं। इस अमर ग्रन्थ में गंगाशरण सिंह साहित्य (1904 ई.[5]—खरगपुर, पटना) के 'विचार-प्रवाह', 'पद्य-प्रवाह' एवं 'साहित्य-परिचय' ग्रन्थों के उल्लेख के साथ मिश्रबंधु की टिप्पणी है, "आपकी कविताएँ हास्य-व्यंग्य से ओतप्रोत होती हैं। आपका व्यंग्यपूर्ण गद्य-साहित्य भी उत्कृष्ट है।" गंगाशरण सिहं स्व. काका हाथरसी से अधिक साहित्यिक, बरसानेलाल चतुर्वेदी से अधिक गम्भीर और गोपालप्रसाद व्यास के अधिक व्यापक हास्य-कवि प्रतीत होते हैं। राधाकृष्ण, बेनीपुरी इत्यादि बिहार के अन्य व्यंग्यकारों ने भी हिन्दी के हास्य-साहित्य को संपन्न किया है। गंगाशरण सिंह की कविता से उद्धरण प्रस्तुत हैं :–

---

[1] 'अवध-पुष्पाञ्जजि' (लखनऊ) के सम्पादक स्व. प्रतापनारायण वर्मा (वस्तुतः श्रीवास्तव) समनामी हैं। अब न पत्रिका रही, न सम्पादक रहे!

[2] द्रष्टव्य है डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय का 'उपन्यास विधा और प्रतापनारायण श्रीवास्तव' शोध-प्रबंध।

[3] महाकवि जगन्नाथदास 'रत्नाकार', जिनकी 'बिहारी-सतसई', की टीका प्रात्ययिक एवं प्रकृष्ट मानी जाती है।

[4] बिहार के प्रख्यात हिंदीसेवी स्व. बाबू गंगाशरण सिंह (गंगा बाबू) समनामी थे।

[5] सवंत् 1961 वि.।

समालोचक

समालोचकों में बस मेरा नाम प्रथम है, मुझे नहीं भजता जो लेखक महा-अधम है।
लेखक औ कवियों का मैं हूँ भाग्यविधाता, मुझे प्रशंसा-निन्दा अनुचित करना आता।
खा चोट करारे कलम के कविवर! पड़े कराहिए, भर नज़र तड़पता देख लूँ, और मुझे क्या चाहिए?

लेखक

हूँ अरसिक-मूर्द्धन्य बला से, पर हूँ लेखक, हिन्दी-पत्रों को सुंदर लेखों का प्रेषक।
हिन्दी-हत्याकारी हूँ, व्याकरण-व्याघ्र हूँ, रस-वस कुछ न जानता हूँ, मैं तो अगाध हूँ।
श्री संपादकजी! खोलकर मुझको ख़ूब सराहिए, लेखों को मेरे छाप दें, और मुझे क्या चाहिए?

प्रकाशक[1]

अरे लेखकों! हमीं प्रकाशक कहलाते हैं, जो तुमको तुम से प्रकाश में ले आते हैं।
इतना ही उपकार हमारा है क्या कुछ कम? पुरस्कार फिर कहो माँगते हो क्यों हरदम?
ज़रा तुम्हीं सोचो, तुम्हें करना ऐसा चाहिए? हैं हम पूँजपति, हमें तो ही पैसा चाहिए!

कृष्णशंकर शुक्ल

'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास', (1934 ई.) 'केशव की काव्य-कला' (1933 ई.) तथा 'कविवर रत्नाकर' शीर्षक प्रख्यात प्रस्थान-ग्रन्थों के प्रणेता पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल (10 अक्टूबर, 1904-14 मार्च 85 ई.)[2] एक प्रखर विद्वान् एवं प्रतिभाशाली रसवादी आलोचक थे। गढ़ी निकट ऊगू[3] (उन्नाव जनपद) में जन्मे तथा काशी में स्वर्गवासी हुए पण्डित कृष्णशंकर शुक्ल का स्वभाव बहुत उग्र था, जिसके कारण उनको आचार्य शुक्ल, आचार्य श्यामसुंदरदास, डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ. नगेन्द्र इत्यादि से लेकर महाकवि प्रसाद[4] तक से कभी-न-कभी खटपट जरूर हुई, किन्तु उनका निष्कलंक चरित्र, उनकी अखण्ड तेजस्विता, उनका ख़ालिस निजीपन सभी को प्रभावित अवश्य करता है। जीवन-संध्या में उन्होंने भारतीय दर्शन का गहन अध्ययन किया था। वे रसवादी आलोचक थे, जो अधुनातन कामवाद, साम्यवाद इत्यादि से संगति न स्थापित कर सके। पता नहीं, कैसे, आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र को वे 'स्वच्छन्दतावादी समीक्षक' लग गए? वस्तुतः वे स्वच्छन्दतावाद के विरोधी थे। किन्तु उनकी आलोचना खरी और बेलाग होती थी। चाहे तुलसी हों या केशव, रत्नाकर हों या प्रसाद, शुक्ल हो या नगेन्द्र, वे सबका मौलिक आकलन करने में समर्थ थे। उनके छोटे-छोटे वाक्य, सरल-सरल शब्द, और पैने-पैने व्यंग्य बहुत प्रभावी होते थे। डॉ. श्रीकृष्णलाल, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, डॉ. बच्चनसिंह इत्यादि आधुनिक साहित्येतिहासकारों तथा डॉ. हीरालाल दीक्षित, डॉ. विजयपाल सिंह इत्यादि केशव-शोधकारों पर उनका व्यापक प्रभाव पड़ा है। अपने उपयुक्त पद न पाने, छुटभैयों के ईर्ष्या-द्वेष, असहनीय पुत्र-वियोग, पक्षाघात इत्यादि झेलते हुए

---

1. 'हिन्दी-साहित्य में प्रकाशक-चित्रण' लघु-शोध का सुंदर विषव है। बदरीनाथ भट्ट, निराला, रामप्रसाद मिश्र इत्यादि ने भी इस विषय पर लिखा है।
2. 'आचार्य पं. कृष्णशंकर शुक्ल (सं. डॉ. सूर्यनारायण शुक्ल) में 10 अक्टूबर, 1905 दिया है जो प्रमाणपत्र का हो सकता है। 1903 ई. भी मिलता है।
3. ऊगू में कांग्रेस नेता, केन्द्रीय मन्त्री इत्यादि उमाशंकर दीक्षित एवं उत्तर प्रदेश विधान परिषद् के कांग्रेसी अध्यक्ष लेखक इत्यादि जगदीशचंद्र दीक्षित का भी जन्म हुआ। 'दीक्षितों' में उन्नाव के डॉ. निशानाथ दीक्षित भी विद्वान् के रूप में विख्यात हुए।
4. उन्होंने अपनी कुतिया का नाम कामायनी रख दिया था। किन्तु 8 फरवरी, 1984 को उनके टेढ़ी नीम (काशी) स्थित आवास (ससुराल-प्राप्त) पर जब मैं मिला था तब उन्होंने प्रसाद को अत्यधिक सम्मान प्रदान करते हुए बताया था कि प्रसाद "बहुत ही सौम्य पुरुष" थे; एक बार मैं सड़क पर चला जा रहा था तो उन्होंने 'प्रणाम' कहा और पास आकर बोले, 'कृष्णशंकर जी, आलोचना तो चलती ही रहती है!" उनके और प्रसाद के सम्बन्ध पहले अच्छे थे, जो बाद में बिगड़ गए। वे कन्नी काट जाते थे, किन्तु प्रसाद एक तेजस्वी विद्वान् होने के कारण उनका आदर करते रहे। वैसे भी, प्रसाद ब्राह्मण-मात्र का आदर करते थे।

भी उन्होंने अपने भव्य व्यक्तित्व, उत्तम स्वास्थ्य एवं अजेय चरित्रबल के कारण दीर्घायु भी प्राप्त की, श्रद्धा भी। डॉ. ललित शुक्ल द्वारा सम्पादित 'आचार्य कृष्णशंकर शुक्लः सृजन और संस्मरण' ग्रन्थ में उनके एवं व्यक्तित्व पर ठीक-ठाक प्रकाश डाला गया है। 1981 में शारदादेवी ने कानपुर विश्वविद्यालय से 'शुक्लोत्तर समीक्षा-सारणी और आचार्य कृष्णशंकर शुक्ल' विषय पर शोधकार्य किया। डॉ. सूर्यनारायण शुक्ल ने आचार्य कृष्णशंकर शुक्ल साहित्यपीठ उन्नाव की स्थापना की है तथा उन पर प्रात्ययिक ग्रन्थ 'आचार्य पं. कृष्णशंकर शुक्ल' का सम्पादन भी किया है।

सोहनलाल द्विवेदी

भारतेंदु हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्राकुमारी चौहान, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', श्यामनारायण पांडेय एवं रामधारीसिंह 'दिनकर' की राष्ट्रीय-कविश्रृंखला की अन्तिम कड़ी के रूप में स्मरणीय सोहनलाल द्विवेदी (5 मार्च, 1905-1 मार्च 88 ई, जन्म[1] एवं निवास बिंदकी[2] जिला फ़तेहपुर उ.प्र.) 'भैरवी' (1941 ई.) के प्रकाशन के समय ही बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। 'वासवदत्ता' (1942 ई.), 'पूजागीत' एवं 'विषपान' (1945 ई.) इत्यादि उनके अन्य संग्रह भी लोकप्रिय हुए। उन्होंने 'कुणाल' (1942 ई.)[3] शीर्षक एक कल्पनाप्रधान-आदर्शप्रधान ऐतिहासिक खंडकाव्य भी लिखा, जिसमें अहिंसावादी पीनक में बन्द आँखें इतिहास को देख तक नहीं पाईं तथा जिस प्रसार का भारी प्रभाव भी अत्यन्त स्पष्ट है किन्तु जो भवानीप्रसाद मिश्र कृत नई शैली के खंडकाव्य 'कालजयी' की तुलना में यत्किंचित् अधिक वस्तुपरक भी है, कलात्मक भी। शोध का एक अच्छा विषय 'हिन्दी का अशोक-साहित्य' जो कहानी, नाटक, कविता, उपन्यास इत्यादि तक प्रसारित है, जिसके रचनाकारों में प्रसाद ('अशोक' कहानी तथा 'अशोक की चिन्ता' कविता), लक्ष्मीनारायण मिश्र, सोहनलाल द्विवेदी, भवानी प्रसाद मिश्र, यज्ञदत्त शर्मा इत्यादि सम्मिलित हैं। 'बालसखा' के अवैतनिक सम्पादक तथा 'बाँसुरी', 'झरना', 'बिगुल' इत्यादि के प्रणेता होने के कारण सोहनलाल द्विवेदी का बालसाहित्यकार-रूप अविस्मरणीय रहा है। उनकी अधिकांश कविताएँ बालोपयोगी ही हैं। सरल भाव, सरल भाषा, अलंकरण के कारण वे केवल सरल-कवि हैं। उन पर मैथिलीशरण एवं माखनलाल का भी प्रभाव पड़ा है, जैसाकि उन्होंने स्वयं भी स्वीकार किया है एवं रचनाओं से भी स्पष्ट है। वे गाँधी के निकट सम्पर्क में रहे। 'चल पड़े जिधर दो डग मग में' (1941 ई.), 'पूजागीत'(1945 ई.), 'जय गाँधी' (1956 ई.) इत्यादि के लेखन एवं 'गाँधी अभिनन्दन-ग्रन्थ' (1944 ई.) के सम्पादन के द्वारा उन्होंने अपने आराध्य-नायक के प्रति अतर्क्य आस्था व्यक्त की है। राजेन्द्रकुमार शर्मा, उनकी पौत्री ऊर्मिला, दिल्ली के भारतीय जनता पार्टी नेता एवं सांसद विजय मल्होत्रा इत्यादि ने उन पर शोधकार्य किए हैं तथा डॉ. राकेश गुप्त द्वारा सम्पादित 'सोहनलाल द्विवेदी ग्रन्थवाली' भी निकल चुकी है। 1969 ई. में वे 'पद्मश्री' से अलंकृत किए गए थे; इसी वर्ष 'सोहनलाल द्विवेदी अभिनन्दन-ग्रन्थ' निकला। 1 मार्च, 1988 को उनके निधन के अनंतर उनके एक शिष्य श्री मगन अवस्थी ने 'श्रद्धाकलश—राष्ट्रकवि श्री सोहनलाल द्विवेदीः एक समर्पित जीवन ग्रन्थ' प्रकाशित कराया। उन्हें जीवन में भी यथेष्ट सम्मान प्राप्त हुआ, अनन्तर भी, जिसका कारण उनकी प्रेरक कविताएँ हैं, प्रभावी कार्यक्षेत्र है। उनकी अनेक पंक्तियाँ बहुत विख्यात हैं—

1. न हाथ एक शस्त्र हो,
न साथ एक अस्त्र हो,
न अन्न-नीर-वस्त्र हो,
हटो नहीं, डटो वहीं, बढ़े चलो! बढ़े चलो!
गगन उगलता आग हो,
छिड़ा मरण का राग हो,
लहू का अपने फाग हो, अड़ो नहीं,
गड़ो नहीं, बढ़े चलो! बढ़े चलो!

---

[1] कहीं-कहीं जन्मवर्ष 1906 ई. तो एकाध स्थल पर 1903 ई. में लिखा मिलता है।

[2] वे बिंदकी में एक वकील के रूप में भी प्रसिद्ध रहे। 14 अक्टूबर, 2001 को उ.प्र. साहित्यप्रेमी साहित्यकार राज्यपाल स्व. विष्णुकान्त शास्त्री ने बिंदकी में पूर्ण-मूर्ति का अनावरण, स्मृति-पुस्तकालय वाचनालय भवन का लोकार्पण किया।

[3] कहीं-कहीं 1943 ई. लिखा मिलता है।

2. जन्मे थे यहीं राम-सीता,
गूँजी थी यहीं मधुर गीता।
यमुना का श्याम किनारा है,
यह भारतवर्ष हमारा है!

3. वंदना के इन स्वरों में एक स्वर मेरा मिला लो....
हों जहाँ बलि शीश अगणित, एक सिर मेरा मिला लो!

4. हम मातृभूमि के सैनिक हैं, आज़ादी के मतवाले हैं,
बलिदेवी पर हँस-हँस कर निज शीश चढ़ानेवाले हैं।

5. चल पड़े जिधर दो डग मग में, बढ़ चले कोटि पग उसी ओर;
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि, गड़ गए कोटि दृग उसी ओर।
हे कोटिचरण, हे कोटिबाहु, हे कोटिरूप, हे कोटिनाम;
हे एक मूर्ति, प्रतिमूर्ति कोटि, हे कोटिमूर्ति! तुमको प्रणाम।

6. पीछे झंडा फहराना ए झंडेवालों,
पहले जवाब दो मेरे चंद सवालों का!
सच कहना, कितने साथी साथ तुम्हारे हैं?
क्या आज खुशी की लहर देश में है सचमुच?....
कब तक ऐसे झूठे त्योहार मनाओगे?....

आशुकवि जगमोहननाथ अवस्थी 'मोहन'

हिन्दी-आशुकविता का इतिहास प्रायः उतना ही पुराना है जितना स्वयं हिन्दी-साहित्य। 'हिन्दी आशुकविता' ग्रन्थ में डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित ने चन्द्रवरदायी, खुसरो, विद्यापति, सूर, तुलसी, रत्नावली[1], रविदत्त, भीखमसिंह, बीरबल, तानसेन, दुरसा, गंग, राठौड़ प्रिथीराज, रहीम, केशव, राय प्रवीण, नरहरि, देवकीनंदन, आलम, शेख़, बिहारी-दंपत्ति, जान कवि कायमखानी, हरिनाथ, वृंद, जयराम पिंड्ये, घनआनन्द, पद्माकर, ठाकुर, खुमान, बाँकीदास, चंडीदान, सूर्यमल्ल मिश्रण, द्विज बलदेव (1840-1916 ई.), गंगाधर व्यास (1842-1915 ई.), भारतेन्दु (1850-85 ई.), श्रद्धाराम फिल्लौरी, मथुराप्रसाद पांडेय (1850-1921 ई.), शिवदास पांडेय (1850 ई.), प्रतापनारायण मिश्र (1856-94 ई.), अंबिकादत्त व्यास (1858-1900 ई.), नाथूराम शर्मा 'शंकर' (1859-1932 ई.), शिव कवि शुक्ल (1864 ई.), राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' (1868-1915 ई.), ग्यारसीराम (1870 ई.), मुंशी अजमेरी (1878 ई.), द्विज बच्चूराम 'बच्चू सूर'[2] (1884-1950 ई.), लक्षधर अवस्थी 'द्विजलक्ष' (1887-1944 ई.), कविराज बदरीदान कविया (1890 ई.), आशुकवि हरिनारायण 'हरि शास्त्री' (1936-70 ई.), चक्रधर अवस्थी 'द्विजचक्र' (1897 ई.), पद्मधर अवस्थी 'द्विजपद्म' (1903 ई.), जगमोहननाथ अवस्थी मोहन (1905 ई.), पुत्तूलाल अवस्थी 'लाल' (1906 ई.), कुंजबिहारी शुक्ल (1907 ई.), बाबूराम त्रिवेदी 'अखिलेश' (1908 ई.), देवेन्द्र शास्त्री (देवेन्द्रनाथ पांडेय—1912 ई.), पं. दीपनारायण व्यास (1913 ई.), गणेशंकर 'बन्धु' (1916 ई.), बाबूलाल शर्मा (1928 ई.), गोविन्द पांडेय 'आशुजी' (1930 ई.), तथा डॉ. ब्रजेन्द्र अवस्थी (1931 ई.), का विशिष्ट एवं चिरंजीलाल शर्मा (1903 ई), बाबा रामेश्वरदास (1775-1885 ई.)[3], तोफाराम, गोविन्द चतुर्वेदी, श्री 'निर्भय हाथरसी', श्री वेंकटबिहारी 'पागल' इत्यादि का प्रकीर्ण आशुकवियों के रूप में उल्लेख किया है, जिनकी संख्या और अधिक हो सकती है, किन्तु जिनमें गंग, नरहरि, अंबिकादत्त व्यास, बच्चू सूर, जगमोहननाथ अवस्थी एवं देवेन्द्रनाथ पांडेय एवं गणेशशंकर 'बंधु' को प्रमुख माना जा सकता है। यर्थावादी युग के आशुकवियों में जगमोहननाथ अवस्थी एवं देवन्द्रनाथ पांडेय प्रमुख हैं। आशुकविता एवं समस्यापूर्ति का चोली-दामन का रिश्ता रहा है। निस्सन्देह आशुकविता, समस्यापूर्ति[4], पहेली,

---

[1] अनैतिहासिक नाम। कल्पना पर आधृत। यह कल्पना बीसवीं सदी के आरम्भ में ही की गई। किन्तु बेहद लोकप्रिय है। चाशनीदार जो है!

[2] दो व्यक्ति हो सकते हैं।

[3] जीवन-काल प्रात्ययिक नहीं लगता।

[4] बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'कुंकुम' की भूमिका में समस्या-पूर्ति की कटु आलोचना की है।

मुकरी इत्यादि का गम्भीर साहित्यिक महत्त्व कभी नहीं रहा, किन्तु यह भी एक सत्य है कि ऐसी काव्सृष्टि भी बिना प्रतिभा एवं अनुभव के सम्भव नहीं है। आशुकविता, समस्यापूर्ति, पहेली, मुकरी इत्यादि को 'मनोरंजन-काव्य' कहा जा सकता है। कृष्णमुरारी 'विकल', काका बैसवारी, मिर्ज़ा हसन नासिर इत्यादि अनेक कवि समस्यापूर्ति में पर्याप्त सफल हैं।

आधुनिक आशुकविता के सबलतम स्तम्भ, 'हिन्दी आशुकविता' जैसे ग्रन्थों के प्रेरक, नेता-अभिनेता तथा नेत्री-अभिनेत्री जगत् तक लोकप्रियता, **प्रसिद्ध गीतकार रमानाथ अवस्थी के पिता,** 'स्मृति', 'कदम्ब', 'भवितव्यता', 'जीवनकण', 'प्राणदान', 'चौराहे से', 'दिविता', 'अहिंसावध', 'किसान-पच्चीसी', 'गाँधी-जयन्ती, 'जय स्वतन्त्र', 'अमर बापू', 'फाँसी के स्वर', 'रक्तरेखाएँ', 'सीमासंग्राम', 'अंतर्ध्वनि', 'पाती' इत्यादि दर्ज़नों काव्यकृतियों तथा शत-शत अन्य कविताओं के रचयिता के अतिरिक्त उपन्यासों, नाटकों, काव्यशास्त्र इत्यादि पर हाथ आज़माने वाले **स्व.** जगमोहन अवस्थी 'मोहन' (1905 ई., जनस्थान लालीपुर, जनपद फ़तेहपुर–निवास लखनऊ) किसी भी विषय पर तत्काल कविता बोलने वाले स्फीत प्रस्तोता के रूप में स्मरणीय हैं। मंजुल ने इन पर 'आशुकवि मोहन' ग्रन्थ रचा है। अनेक आचार्यों एवं कवियों ने इनकी कविता की सराहना की थी। वे भारत में घूम-घूमकर आशुकविता-दिग्विजय किया करते थे। वे 'माचिस की तीली' पर 40 मिनट भाषण कर सकते थे, 6 जून, 1950 के मुम्बई की एक रंगशाला में अभिनेत्री नर्गिस की चूड़ियों पर घन्टों आशुकविता कर सकते थे। डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित के अनुसार, ''24 नवम्बर, 1935 को आयोजित कान्यकुब्ज कालेज लखनऊ के विराट् कवि-सम्मेलन में महाप्राण निराला ने उन्हें समस्या दीः 'घाट को घोंघा'। मोहन जी ने तत्काल उसकी पूर्ति कर दी–

छंद निरर्थक ही रचि चाहत साहित सागर थाह को चोंगा।।
आखर जानता ना खर पै जग माँहि बनावत व्यास को पोंगा।।
सीखते पिंगल लाज करै अभिरै मग में जिमि खाट को खोंगा।
जीव न जीवन से लहि ज्यों पर्‍यो तो गड़ै पग 'घाट का घोंघा'।।

इस पूर्ति से प्रभावित हो सभापति श्रीनारायण चतुर्वेदी 'श्रीवर' जी ने उन्हें माल्यार्पण किया, निराला जी ने स्वयं अपने पर व्यंग्य को झेलते हुए उन्हें 'विलक्षण कवि' स्वीकार किया, सनेहीजी ने इस पूर्ति को 'सुकवि' में प्रकाशित किया और श्रोताओं ने कई पदकों की घोषणा की।''

आशुकविता, समस्यापूर्ति इत्यादि का जन-महत्त्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि यह कविता प्रायः गम्भीर कविता की समता नहीं कर सकती क्योंकि उसके लिए तात्कालिकता का विशेष महत्त्व नहीं होता तथा वह अन्तरचेतना से ही संस्फुरित होती है, बाह्य-उत्तेजन से नहीं। 'मोहन' की प्रायः सभी कविताएँ तात्कालिक-सन्दर्भो से जुड़ने पर ही चमत्कृत कर सकती हैं। 'माचिस की तीली'–कुछ पक्तियाँ प्रस्तुत हैं–

अग्निशलाका यह, अंतस् में कितने ज्वालामुखी छिपाए।
संघर्षण से जल-जल उठती, चाहे आख़िर बुझ ही जाए।।....
कभी जलाती दीपवर्तिका, सुलगाती मरघट की ज्वाला।
मंगलघट की शिखा कभी, तो कभी अँधेरे बीच उजाला।।....
वेणु-वंश की जायी जन्मी, अग्निमुखी बारूदी तीली।
यह लघु दावनल है, कालिख लगी, किन्तु कितनी किरनीली।।

एक विवाहोत्सव में प्रस्तुत आशुकविता के अंश प्रस्तुत हैं–

गुड़िया रानी घर-आँगन की बन जाती महरानी।
कालक्रम में फिर बन जाएगी दादी-नानी।....
यह भैया की राखी है, बापू की वत्सलता है।
कुल की कीर्ति-कथा है, माँ की मूर्तिमती ममता है।।....
पली नीड़ में, जो चहकी पिंजड़े में मेरी मैना।
उड़ी जा रही राजवाटिका को पंछी मृदुबैना।।....

राखी के धागों सी, पति के हाथों अर्पित थाती।
इसका 'स्नेह' अघट है, यह है कुल 'दीपक' की बाती।।

डॉ. रामकुमार वर्मा

स्वच्छन्दतावादी (छायावादी) लघुत्रयी (महादेवी, भगवतीचरण एवं रामकुमार 'वर्मा-त्रयी') के कविरत्न (जिन्होंने 'अंजलि' एवं 'चित्ररेखा' जैसे कविता-संग्रहों से 'एकलव्य'[1] एवं 'ओ अहल्या'[2] महाकाव्यों तथा 'वालिवध' खंडकाव्य तक स्फीत सृजन किया है), नाट्यकार[3] (विशेषतः एकांकीकार, जिनका 'बादल की मृत्यु' 1930 ई. में प्रकाशित हुआ, जिन्होंने 'पृथ्वीराज की आँखें' जैसे ईषत्-ऐतिहासिक[4], 'राजरानी सीता' जैसे पौराणिक, 'कलाकार का सत्य' जैसे सांस्कृतिक[5], 'रेशमी टाई' जैसे सामाजिक एकांकी रचकर विधा में एक स्थायी महत्त्व प्राप्त किया है तथा ठीक ही 'एकांकी-सम्राट्' पदवी से अलंकृत किए गए) एवं साहित्येतिहासकार (जिनका 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' प्रस्थान-ग्रन्थ तथा विवेचनप्रधान न होते हुए भी संक्रान्तिकाल या आदिकाल) एवं पुनरुत्थानकाल या भक्तिकाल पर स्फीत सामग्री एवं प्रभूत विवरण प्रदान करने के कारण मिश्रबन्धु कृत प्रधान-ग्रन्थ 'विनोद' एवं इसकी सामग्री से भरपूर लाभ उठाते हुए भी नूतन स्थापना-शक्ति से ऊभचूभ आचार्य शुक्ल कृत महान् 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के अनन्तर विधा का अन्यतम ग्रन्थ हैं पद्मभूषण डॉ. रामकुमार वर्मा (15 सितम्बर, 1905-5 अक्टूबर, 1990 ई.) की बहुमुखी प्रतिभा को हमारा महान् साहित्य सदा याद रखेगा। यद्यपि उनका जन्म मध्यप्रदेश में हुआ तथापि वे प्रयाग में 'साकेत'[6] बनाकर राम-संपृक्त नाम से न्याय करते रहे। केशवदास, बिहारी, पद्माकर जैसे महाकवियों तथा हरिराम व्यास, बोधा, ठाकुर तृतीय इत्यादि कवियों को जन्म देने वाले महान् मध्यप्रदेश ने आधुनिक हिन्दी को भी माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', 'मुक्तिबोध', भवानीप्रसाद मिश्र, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' जैसे कवि दिए हैं, जिनमें डॉ. रामकुमार वर्मा को एक प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। उन्होंने उच्च सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करते हुए भी आधुनिकता के निर्वाह में जो सफलता प्राप्त की है, वह सर्वथा स्तुत्य है। अज्ञेय इत्यादि व्यक्तिवादियों एवं मुक्तिबोध इत्यादि समाजवादियों से भिन्न, उनकी प्रतिभा वादमुक्त रहने के कारण विवादास्पद नहीं रही। वे यौवन में ही विख्यात हो गए थे जैसाकि मिश्रबन्धु कृत अमर 'विनोद' में उनके प्रभावी उल्लेख से ही स्पष्ट है—तब वे डॉ. रामकुमार वर्मा 'कुमार' थे! कालांतर में वे देव-पुरस्कार से भारतभारती-पुरस्कार तक लगातार सम्मानित होते रहे, पद्मभूषण भी हुए। निधन पर पुत्री ने अग्नि दी, जो एक स्मरणीय घटना है।

डॉ. रामकुमार वर्मा की कविता में महादेवी की दर्शननिष्पन्न-कला, दिनकर एवं मुक्तिबोध की प्रखर-शक्ति तथा अज्ञेय की नूतनता[7] के दर्शन नहीं होते। उनकी कविता में माखनलाल की ख़ालिस मस्ती तथा नवीन की सहज भावुकता नहीं प्राप्त होती। उनकी कविता ऋतु-सरल एवं बिन्दुप्रधान है। उनकी नाट्कयकला में भारतेन्दु का प्रस्थान, प्रसाद की प्रतिभा तथा लक्ष्मीनारायण मिश्र की नव्यता के दर्शन नहीं होते। उनके एकांकियों में भुवनेश्वर की पैनी नज़र तथा जगदीशचन्द्र माथुर की गहरी सूझ-बूझ नहीं मिलती। उनके 'हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' एवं 'कबीर का रहस्यवाद' में आलोचक मिश्रबन्धु-जैसे अमर अध्यवसाय, शुक्ल जैसा अमर तेजस् तथा डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी जैसा गहरा खोजीपन नहीं प्राप्त होता। वे किसी एक विधा में बहुत आगे नहीं बढ़ सके और इस दृष्टि से वे कवि-उपन्यासकार-कहानीकार-निबन्धकार सियारामशरण गुप्त का स्मरण करा सकते हैं यद्यपि वे 'नारी' (उपन्यास) जैसी

---

[1] डॉ. हरिवंश 'तरुण' कृत 'रश्मिधनु' खंडकाव्य इसी की प्रेरणा का परिणाम है।

[2] प्रभा खेतान रचित 'अहल्या' खंडकाव्य इसी के प्रेरणा का थोड़ा-सा स्थूल परिणाम है। डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र ने अहल्या पर एकांकी लिखा है।

[3] डॉ. कमल सूर्यवंशी ने 'नाटककार डॉ. रामकुमार वर्मा' प्रबन्ध लिखा है।

[4] स्थूल 'ऐतिहासिक' निकष की दृष्टि से।

[5] तुलसी-सम्बद्ध होते हुए भी ऐतिहासिक नहीं, क्योंकि इसका उद्देश्य संस्कृति के एक प्रमुख अवयव कला के समान-निस्संग महत् लक्ष्य को इंगित करना है।

[6] उनके भवन का 'नाम'। कानपुर (कान्हपुर) में स्व. पंडित अयोध्यानाथ शर्मा ने आर्यनगर में 'साकेत' बनाया था। ''तहाँ अवध जहँ राम निवास''! कई लोग कानपुर को कर्णपुर कहते हैं, किन्तु यह उचित नहीं। असत्पक्षधर कर्ण पर नगर या पुर के नाम नहीं मिलते (इस नाम के राजा इत्यादि की बात और है) इंडोनेसिआ के नेता डॉ. सुकर्ण (सुकार्नो) के महान् भाषाविद् डॉ. रघुवीर को बताया था कि उनके पिता कर्ण के भारी प्रशंसक थे किन्तु उसके असत् पक्षधर होने के कारण पुत्र का नाम 'सु' लगाकर रखा था।

[7] मौलिकता नहीं, क्योंकि अज्ञेय आयातप्रधान कवि रहे हैं। उनकी 'नवीनता' और परकीय-'प्राचीनता' पर्यायवाची हैं।

मार्मिक तथा 'काकी' (कहानी) जैसी कोई 'कलाकृति' नहीं प्रस्तुत कर पाए। किन्तु अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण वे सदा सादर स्मृत किए जाएँगे। वे नएपन की झोंक में उच्चकेपन की गोद में जा गिरने वाले 'ढाई दिन के बादशाह'-छाप साहित्यकार नहीं हैं। उनका बौद्धिक-प्रेमभीरुतावाद अतिरेक तक जा सकता है किन्तु काममर्यादावाद समाज-व्यवस्था के लिए उपयोगी है। उनका नारी-संवेदन प्रणम्य है। उनका सृजन शिवं-संपृक्त है। उपेक्षित एकलव्य एवं उपेक्षिता अहल्या के सत्कवि के रूप में वे अमर हैं। उनकी देशभक्ति प्रणम्य है। कविता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1. देश-दशा का ध्यान हृदय में होवे प्रति क्षण,
उसकी सेवा-हेतु बहें चाहे शोणित-कण;
तन-मन-धन सर्वस्व देश-हित होवे अर्पण,
सुख से संकट सहूँ, यही मुख से निकले प्रण।
भारत के शुभ नाम की माला हाथों में लसे,
हृदय-कमल में देश की सेवा-भ्रमरी आ फँसे।

2. आह! हमारे हाथों से लुट जाये जीवन-धन कैसे?
प्रेम-सुधा से सिंचित उपवन बन जावे हा! वन कैसे?
दुख-दोषों के महातिमिर में छिप जावे विधु-मन कैसे?
अपनी आँखों के ही संमुख मा का घोर पतन कैसे?

3. प्रेम करना है पापाचार, प्रेम करना है पाप-विचार
जगत के दो दिन के ओ अतिथि! प्रेम करना है पापाचार।
प्रेम के अंतराल में छिपी वासना की है भीषण ज्वाल;
उसी में जलते हैं दिन-रात प्रेम के वंदी बन विकराल।
प्रेम में है इच्छा की जीत और जीवन की भीषण हार;
न करना प्रेम, न करना प्रेम, प्रेम करना है पापाचार।

4. इन्द्र से फिर यह कहा, "देवेन्द्र! क्या न अनर्थ है,
प्रेय का मन में नहीं जब श्रेय-सम्मत अर्थ है?
यह सुना मैंने कि सुरपति भीख मेरी चाहते,
क्या प्रजापति भी दया या प्रेम मेरा थाहते?

5. वालि ने भले ही 'व्याध' कहा मुझे क्रोध से
सम्मुख समर करने की स्थिति टली है
इससे बचाया रक्तपात कपि-सेना का
जो कि वालि-सेना रूप कट जाती युद्ध में।
इसीलिए मेरी इस युक्तिपूर्ण नीति[1] से
तीन व्यक्तियों के प्राणों की सुरक्षा हो गई
मित्र सुग्रीव, सीता और भरत भाई की
प्रण मेरा था जो मैंने नीति से निभाया है।[2]

---

[1] संस्कृति-ज्ञाता, यथार्थ-सम्मानक डॉ. राजकुमार वर्मा ने 'बालिवध'–सन्दर्भ में चालू बातें नहीं की, युद्ध-नीति का प्रशस्य विवेचन किया है; जो अपराध प्रधान एवं अपराधसंबेदक युग (1981 ई. में प्रकाशन) को देखते विलक्षण लगता है।

[2] मुझे हर्ष है कि 1973 में प्रकाशित 'विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य' (विशेषतः इसके अन्तिम निबन्ध 'विश्वपुरुष भारतात्मा राम', पृष्ठ 295-96) एवं परतवीं ग्रन्थों में मेरे द्वारा दिए गए तर्क 'वालिवध' (1989 ई.) में दृग्गत होते हैं।

हृदयेश

'संकीर्तन', 'शंखनाद' (1924 ई.), 'कसक' (1934 ई.), 'सुषमा' (1942 ई.), 'मधुरिमा' (1948 ई.), 'शैवालिनी' (1961ई.), प्रभृति संग्रहों के कवि स्व. हृदयनारायण पाण्डेय 'हृदयेश' (12 नवम्बर, 1905, पाली शाहाबाद, जनपद हरदोई, निवास कानपुर) ने 'प्रेमपत्र' (1932 ई.), 'प्रेमसन्देश' (1938 ई.) एवं 'करुणा' (1938 ई.) शीर्षक खंडकाव्य तथा 'मनोव्यथा' (1925 ई) शीर्षक गद्यगीत संग्रह भी प्रस्तुत किए हैं। उनके संपादित ग्रन्थों में 'हिन्दी-उर्दू-कोश' उल्लेखनीय है। दुष्यन्तकुमार इत्यादि से पूर्व हृदयेश ने सफल ग़ज़ल लिखी थी। उन्हें अनेक उपाधियाँ, पुरस्कार इत्यादि प्राप्त हुए हैं। हृदयेश एक स्मरणीय कवि, गीतकार, खंडकाव्यकार, गद्यगीतकार एवं ग़ज़लकार हैं। हृदयेश का दावा है कि हालावाद के प्रवर्तक वे ही हैं, क्योंकि उन्होंने बच्चन से पूर्व एतद्विषयक कविता रची थी और इसे डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने भी स्वीकार किया है। वैसे, डॉ. मदान ने उनकी कविता में प्राप्त मृत्यु-बिन्दु की सराहना की है, किन्तु कुल मिलाकर उनकी प्रेमप्रधान कविता शक्तिविपन्न नहीं है। हृदयेश का बच्चन के हालावाद, नीरज के मृत्युवाद तथा दुष्यन्त की ग़ज़लगोई पर प्रभाव शोध का विषय है। वैसे, हालावाद का उद्‌गम नवीन से भी जोड़ा गया है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

1. नित्य ही संघर्षणों से काम है, वज्र हूँ कहने को जीवन नाम है।
अन्यथा निर्वाण था चरणों-तले, ज़िन्दगी मजबूरियों का नाम है।
विश्व में छिप जिस जगह युग उर मिले, स्वर्ग उस एकांत का उपनाम है।
वैसे उनसे क्या प्रयोजन था हमें स्नेह ही तो विवशता का नाम है।
लख तुम्हें वीणा हृदय की बज उठी, फिर स्तवन-हित क्यों अधर बदनाम है?
बावरे! क्रीड़ा समझ मत स्नेह को, जीत क्षण भर, हार आठो याम है।
उर हमारा, स्वत्व उस पर आपका, प्रणय-परवशता इसी का नाम है।

2. धूप सुलगाए तथा दीप जलाए रखिए,
कब वो आ जायँ, पर्यावरण बनाए रखिए।

नंददुलारे वाजपेयी

शुक्लोत्तर-आलोचना में एक उच्च स्थान आचार्य नंददुलारे वाजपेयी (1906-67 ई.) को ही प्रदान किया जा सकता है क्योंकि उन्होंने छायावाद, प्रसाद, निराला इत्यादि पर प्रस्थान ग्रन्थ लिखे हैं, जिनसे डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा इत्यादि अपने-अपने ढंग से प्रभावित हुए तथा जिनमें डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचना की भाषण-वृत्ति के स्थान पर गम्भीर वैचारिक ऊहापोह प्राप्त होता है। 'हिन्दी-साहित्यः बीसवीं शताब्दी', 'जयशंकर प्रसाद', 'कवि निराला', 'नया साहित्यः नए प्रश्न' प्रभति ग्रन्थ उन्हें आधुनिक साहित्य को गौरवशाली आलोचक का स्थान प्रदान करते हैं। छायावाद या स्वच्छन्दतावाद, अभिव्यञ्जनावाद प्रभृति पर उन्होंने विद्वत्तापूर्ण प्रकाश डाला है। उनका 'महाकवि सूरदास' एक विद्वतापूर्ण एवं प्रौढ़ ग्रन्थ है। 'प्रेमचन्द' पुस्तिका तो उन्होंने व्यर्थ ही लिखी, यद्यपि उनकी प्रेमचन्द के उपन्यासों में "परिष्कृत और गहराई का अभाव" एक विचारणीय स्थापना है। प्रेमचन्द के कायस्थवाद की प्रतिक्रिया में नंददुलारे वाजपेयी ने ब्राह्मणवाद का पक्ष लेते हुए प्रहारवादी आलोचना लिखी है। उनकी आलोचना की सबसे बड़ी दुर्बलता अहंज्वलित प्रहारवाद है, जिसके कारण हरिऔध, मैथिलीशरण, प्रेमचन्द, अज्ञेय इत्यादि पर उनके प्रहार यत्र-त्त्र तर्कहीन, आधारहीन एवं गौरवहीन हो गए हैं। प्रयोगवादियों पर उनकी आलोचना न होकर तूतू-मैंमैं मात्र रह गई है। इस दृष्टि से डॉ. रामविलास शर्मा पर उनका प्रभाव विवेच्य है। डॉ. नगेन्द्र उनकी आदर्शवादी युग (द्विवेदी-युग) की कविता की प्रत्यालोचना एवं स्वच्छन्दतावाद (छायावाद)-प्रशस्ति से अभिभूत हुए बिना रह सके। वे एवं डॉ. नगेन्द्र आचार्य शुक्ल के छायावाद-प्रत्याख्यान की प्रतिक्रिया के प्रतिफलन हैं, जबकि, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी सिद्ध-नाथ-कबीर-प्रत्याख्यान की प्रतिक्रिया के। निस्सन्देह इन तीनों आलोचकों ने आचार्य शुक्ल की निरंकुशतावादी आलोचना में अपनी-अपनी सीमाओं के अनुरूप सुधार एवं संशोधन किए हैं, भले ही क्रिया की सहजता के स्थान पर प्रतिक्रिया के कारण वस्तुवाद के साथ न्याय न कर पाए हों। तीनों ही आलोचकों के रूप में स्मरणीय महत्त्व के अधिकारी हैं।

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी स्वच्छन्दतावादी-अभिव्यंजनवादी आलोचक हैं। उनका स्वच्छन्दतावाद एवं अभिव्यंजनावाद का निरूपण विद्वत्तापूर्ण है तथा उनकी प्रसाद, निराला इत्यादि की आलोचना प्रस्थानपूर्ण है। उनकी प्रतिपादन-शैली आचार्यनुरूप गम्भीर एवं भाषा

गद्यानुरूप प्रभावी है। उनकी भाषा पर अपने गुरु आचार्य श्यामसुन्दरदास का प्रभाव विवेच्य है। उनके प्रहारवाद पर उनके एक प्राध्यापक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का परोक्ष प्रभाव अवश्य पड़ा है—उन्होंने गुरु के छायावाद-पूर्वाग्रह पर भी निष्ठापूर्ण प्रहार किए हैं।

महादेवी

अपने इस सूनेपन की मैं हूँ रानी मतवाली,
प्राणों के दीप जलाकर करती रहती दीवाली।

सचमुच महादेवी (मार्च, 1907-87) सूनेपन की कवयित्री हैं: विवाह किन्तु एकाकी जीवन—पेड़-पौधे, फूल-पत्तियाँ, पशु-पक्षी (विशेषतः बिल्ली) उनका परिवार रहा है! 'कवियों में सौम्य सन्त' पन्त के सदृश्य उन्होंने अपने सूनेपन से भरपूर लाभ उठाया है (वर्ड्सवर्थ के 'एकान्त के आनन्द'—ब्लिस ऑफ़ सॉलिच्यूड'—का स्मरण कराते हुएः सृजन सर्वोपरि आनन्द है)। जिस सूनेपन ने निराला को विक्षिप्त कर दिया था, उसे उन्होंने बखूबी झेला, शालीनता से बिताया और स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) की लघुत्रयी (वर्मात्रयीः महादेवी, रामकुमार, भगवतीचरण) की सीमा पारकर बृहद्त्रयी (प्रसाद, निराला, पंत) से संपृक्त होने का गौरव प्राप्त किया। नीहार (1930), रश्मि (1934 ई.), नीरजा (1934 ई.) सांध्यगीत (1936 ई.) एवं दीपशिखा (1942 ई.) की कवयित्री के रूप में तो वे अमर हैं ही, 'अतीत के चलचित्र (1941 ई.), 'स्मृति की रेखाएँ' (1945 ई.), 'शृंखला की कड़ियाँ' (1948 ई.), 'पथ के साथी' (1956 ई.) की रेखाचित्रकार के रूप में भी स्मरणीय हैं। वे गीतों की गरिमा तो हैं ही, गद्य की गीर्वाणी भी हैं। विश्व-कवयित्रियों में सैफो, गोदा (आंडाल), राबिया, लल्लेश्वरी, मीराँ एवं टेरीसा (टेरेसा) की पुराण-चरित्र-शृंखला की एक जगमगाती कड़ी के रूप में वे गहनता एवं पावनता से आपूर्ण गुणवत्ता के कारण एलिजाबेथ बैरेट बॉउनिंग, क्रिस्टीना रोसेटो, इमिली डिंकिंसन (अंग्रेज़ी), सुभद्रा (हिन्दी), अमृता[2] (पंजाबी) इत्यादि तक को बहुत पीछे छोड़ चुकी हैं। हिन्दी एवं अंग्रेज़ी साहित्यों के एकरसमर्मी डॉ. पवनकुमार के शब्दों में, अंग्रेजी की कोई कवयित्री महादेवी की समता नहीं कर सकती। विद्यावती 'कोकिल', विद्यावती मिश्र, चंदमुखी ओझा 'सुधा', तोरनदेवी 'लाली', सुमित्राकुमारी सिन्हा, विजयलक्ष्मी 'विभा' इत्यादि कवयित्रियों पर उनका प्रभाव शोध-प्रबन्ध का विषय है। उनके ज्ञानपीठ पुरस्कार सम्बन्धी समारोह में भारत की प्रधानमन्त्री इंदिरा गाँधी एवं ग्रेट ब्रिटेन की प्रधानमन्त्री मारगेरेट थैचर की ऐतिहासिक उपस्थिति ''न भूतो न भविष्यति'' कहने को प्रेरित करती हैः विश्व की सर्वाधिक शक्तिशाली नेत्रीद्वय द्वारा विश्व की सर्वाधिक प्रतिभाशाली कवयित्री का सम्मान!

महादेवी वर्मा का जन्म फ़र्रुख़ाबाद में एक कुलीन एवं सम्पन्न कायस्थ परिवार में हुआ, किन्तु वे 'आबाद-जिन्दाबाद' इलाहाबाद में ही हुईं। अल्पायु में व्रजभाषा तथा बाल्यकाल में मैथिलीशरण के प्रभाव से खड़ी बोली में काव्यरचना की परिणति स्वच्छन्दतावादी-युग के सृजन में प्रतिफलित हुई। महादेवी ने 'छाया' को रहस्य का पर्यायवाची माना। प्रयाग स्वच्छन्दतावाद का भी संगमस्थल रहाः निराला, पन्त, महादेवी के कारण! (संयोगात् तीनों प्रवाहित होकर ही वहाँ आ मिले क्योंकि तीनों का जन्म अन्यत्र तीन स्थानों में हुआ था!) 1907 ई. में हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, अम्बिकाप्रसाद, 'दिव्य', बच्चन, श्यामनारायण पांडेय एवं पंडित सीताराम चतुर्वेदी का भी जन्म हुआ था। अमर शहीद भगतसिंह भी 1907 ई. में ही पैदा थे हुए जो 23 मार्च, 1931 को राजगुरु और सुखदेव के साथ फाँसी पर चढ़ाए गए। 1907 ई. का वर्ष हिन्दी-सेवियों के जन्म के कारण आधुनिक हिन्दी का एक सर्वाधिक उल्लेखनीय वर्ष माना जा सकता है।

रहस्यवाद

मनुष्य क्षणभंगुर है, मनुष्य अक्षुण्ण है। जीवन अनित्य है, जीवन अमर है। जीवन की अक्षुण्णता दिव्यता है। दिव्यता प्रथमतः आभ्यंतरगत है, तदनंतर बाह्यगत। इस परासत्य का आभास प्रत्येक मनुष्य को कभी-न-कभी और कहीं-न-कहीं अवश्य होता है। असाधारण मनुष्य को इस परासत्य की अनुभूति होती है जो अनुभूति है वह अभिव्यक्त हुए बिना नहीं रह सकती। परासत्य अथवा परासंपृक्तता के उद्‌गार को रहस्यवाद कहते हैं, जो शुनःशेप, परमेष्ठी प्रजापति, ऋषिका वाक्, याज्ञवल्क्य, उद्दालक, श्वेताश्वतर, पतंजलि इत्यादि परमर्षियों में साधनात्मक रूप में विस्तृत होता है तथा गोरख, कबीर, नानक, मुक्तानंद इत्यादि में ध्यानात्मक रूप में तथा जायसी, रवीन्द्र, अरविन्द, महादेवी इत्यादि में अध्ययनात्मक रूप में। भारत ज्ञान की जन्मस्थली है। ज्ञान सिद्धान्त है। भारत योग की जन्मस्थली है। योग प्रयोगशाला है, जहाँ ज्ञान का क्रियात्मक रूप विवृत होता है।

रवीन्द्र इत्यादि के सदृश महादेवी के काव्य में रहस्यवाद के बड़े मनोहारी दर्शन होते हैं। वे संस्कृत में एम. ए. तो थीं ही, वाल्मीकि, कालिदास, भवभूति, थेरगाथा इत्यादि के अंशों का सुन्दर अनुवाद भी कर चुकी हैं, जैसा कि 'सप्तपर्णा' ग्रन्थ से स्पष्ट भी हो चुका है। रवीन्द्र प्रसाद, निराला एवं पंत इत्यादि से प्रभावित होते हुए भी नारी होने के कारण महादेवी के रहस्यवाद में समर्पण एवं निष्ठा का अपूर्व मार्दव दृग्गत होता है। भाव एवं भाषा की सम्पूर्ण संगति एवं गीतधर्मिता की सम्पूर्ण सफलता ने महादेवी की स्वछन्दतावादी (छायावादी) शैलीशिल्प से ऊभचूभ रहस्यवादी कविताओं को उच्चतर विश्वस्तर प्रदान कर दिया है—

1. निशा को धो देता राकेश

निशा को धो देता राकेश, चाँदनी में जब अलकें खोल,
कली से कहता था मधुमास बता दो मधुमदिरा का मोल,
झटक जाता था पागल वात धूलि में तुहिन-कणों से हार,
सिखाने जीवन का संगीत तभी तुम आए थे इस पार![1]

2. मैं और तू

तुम हो विधु के बिम्ब और मैं मुग्धा रश्मि अजान,
जिसे खींच लाते अस्थिर कर कौतूहल के बाण!....
तुम अनन्त जलराशि उर्मि मैं चंचल सी अवदात,
अनिल-निपीड़ित जा गिरती जो कूलों पर अज्ञात!....
तुम परिचित ऋतुराज मूक मैं मधुश्री कोमलगात,
अभिमंत्रित कर जिसे सुलाती आ तुषार का रात!....
तुम असीम विस्तार ज्योति के मैं तारक सुकुमार,
तेरी रेखा रूपहीनता है जिसमें साकार।....[2]

जीवन की अभिव्यक्ति

जीवन सर्वोपरि है। रहस्यवाद अंग है, जीवनवाद अंगी। जीवनवाद कविता का प्राण है, रहस्यवाद उसका अनेक में से एक उद्‌गार मात्र। जीवनवादी तुलसी की तुलना में रहस्यवादी कबीर नहीं ठहर पाते। जीवनवादी सूर की तुलना में रहस्यवादी जायसी नहीं ठहर पाते। जीवनवादी निराला की तुलना में रहस्यवादी महादेवी नहीं ठहर पातीं। महादेवी की कविता की सबसे बड़ी कमी है जीवनवाद का अभाव, जिसके कारण वे 1942 ई. से ही कवि के रूप में चुक गईं, गद्य की शरण लेने पर विवश हुईं, जबकि निराला एवं पंत ने जीवनवाद की अनवरत प्रेरणा से नवायामी सृजन गतिशील रखा। रामकुमार वर्मा एवं महादेवी का कम-बेस समूचे स्वच्छन्दतावाद (छायावाद) को 'प्रतीकवाद' या रहस्यवाद मानना एक विराट् काव्य चेतना को परिसीमित करने का आयास मात्र था, जो अब कालातीत हो गया है।[3] प्रसाद ने छायावाद एवं रहस्यवाद पर जो विचार 'काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध' में व्यक्त किए हैं, वे विश्लेषण के निकष पर खरे उतरे हैं तथा गुलाबराय, नगेन्द्र इत्यादि ने भी छायावाद को रहस्यवाद का पर्यायवाची नहीं माना। स्वच्छन्दतावाद या छायावाद का एक विशद अनुभूति-युग का विशद उद्‌गार था (न तो वह आ. शुक्ल द्वारा आदेशित 'शैली' मात्र था, न स्व. डॉ. देवराज द्वारा प्रतिपादित रीतिकालीन श्रृंगारिकता का पुनरागमन मात्र), रहस्यवाद उसका परागत बिन्दु।

प्रवृत्ति अंगी है, निवृत्ति अंग। प्रेय पथ है, श्रेय लक्ष्य है। दोनों अन्योन्य हैं। निराला ने 'कौन तम के पार?—(रे कह)' शीर्षक गीत में इस महान् सत्य को विवृत किया है। निराला का रहस्यवाद प्रवृत्ति को निवृतिविरोधी अथवा निवृत्ति को प्रवृत्तिविरोधी न मानने

---

[1] गीतांजलि (रवीन्द्र) एवं 'पल्लव' पंत का प्रभाव स्पष्ट है।

[2] 'तुम और मैं' (निराला) से प्रभावित।

[3] मुकुटधर पाण्डेय द्विधा में भी रहे।

के कारण अतीव परिपुष्ट है। महादेवी के रहस्यवाद में जीवन-पुष्टता का निराला-जैसा समावेश नहीं हो पाया। किन्तु वह जीवनवाद से नितान्त मुक्त तो रह नहीं सकतीं क्योंकि जीवन उत्स है, रहस्य प्रवाह की एक धारा मात्र—

1. जो तुम आ जाते एक बार!

जो तुम आ जाते एक बार!
कितनी करुणा कितने सँदेश पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार-तार अनुराग भरा उन्माद राग;
आँसू लेते वे पर पखार! हँस उठते पल में आर्द्र नयन
घुल जाता ओठों से विषाद छा जाता जीवन में वसंत
लुट जाता चिर संचित चिराग; आँखें देतीं सर्वस्व वार!

2. मुस्काता संकेत-भरा नभ

मुस्काता संकेत-भरा नभ
अलि! क्या प्रिय आनेवाले हैं?
विद्युत के चल स्वर्णपाश में बँध हँस देता रोता जलधर;
अपने मृदु मानस की ज्वाला गीतों से नहलाता सागर;
दिन निशि को, देती निशि दिन को
कनक-रजत के मधु प्याले हैं!
अलि! क्या प्रिय आने वाले हैं?....

3. विरह की घड़ियाँ हुई अलि, मधुर की यामिनी सी!

दूर के नक्षत्र लगते पुतलियों से पास प्रियतर,
शून्य नभ की मूकता में गूँजता आह्वान का स्वर,
आज है निःसीमिता
लघु प्राण की अनुगामिनी सी!
एक स्पन्दन कह रहा है अकथ युग युग की कहानी,
हो गया स्मित से मधुर इन लोचनों का क्षार पानी;
मूक प्रतिनिश्वास है
नवस्वप्न को अनुरागिनी सी!....

गीत-गीर्वाणी

महादेवी की कविता के आयाम उनके अनुसार रहस्य-केन्द्रित मात्र हैं, किन्तु मेरे अनुसार उनकी कविता में रहस्याभिव्यक्ति के साथ-साथ आत्माभिव्यक्ति के दर्शन भी अनायास ही हो जाते हैं। किसी भी स्थिति में यह निर्विवाद है कि उनकी कविता-सरिता के पाट बहुत सँकरे हैं। किन्तु गीतकार के रूप में उनकी सफलता उच्चस्तरीय है। एकरसता, आत्माभिव्यक्ति, संक्षिप्तता, गेयता, भाषा-शिल्प एवं प्रवाह में उनके गीत आदर्श हैं। महादेवी की तुलना में बच्चन, नरेन्द्र, अंचल इत्यादि तक साधारण गीतकार लगते हैं। यह सत्य है कि उनके गीतों पर रवीन्द्र एवं निराला का प्रभाव पड़ा है किन्तु यह भी सत्य है कि उनके गीत अस्मिता में सर्वथा सक्षम सिद्ध हो चुके हैं। महादेवी का सर्वश्रेष्ठ गीत 'मैं नीर भरी दुख की बदली' आत्माभिव्यक्ति, गहनता, दार्शनिकता, प्रतीकविधान, शब्दचयन, प्रवाह एवं संक्षिप्ता में विश्व के महान् गीतों में स्थान प्राप्त कर सकता है। प्रसाद के 'बीती विभावरी जाग री' एवं 'लाज भरे सौन्दर्य'

गीत अवश्य इसके समतुल्य हैं, किन्तु उनका भी कोई तृतीय गीत ऐसा नहीं है। अन्य कोई कवि ऐसा गीत नहीं लिख पाया। 'मधुर मधुर मेरे दीपक जल' भी एक महान् गीत है। इनके अनेक गीत उत्कृष्ट हैं। उदाहरण प्रस्तुत हैं—

1. मैं नीरभरी दुख की बदली!

मैं नीरभरी दुख की बदली।
स्पंदन में चिर निस्पंद बसा, क्रंदन में आहत विश्व हँसा,
नयनों में दीपक से जलते पलकों में निर्झरिणी मचली!
मेरा पग-पग संगीत भरा, श्वासों से स्वप्न पराग झरा,
नभ के नव रँग बुनते दुकूल छाया में मलय-बयार पली!
मैं क्षितिज-भृकुटि पर घिर धूमिल चिन्ता का भार बनी आविरल,
रज-क्षण पर जल-कण हो बरसी नवजीवन-अंकुर बन निकली।
पथ को न मलिन करता आना, पदचिह्न न दे आता जाना
सुधि मेरे आगम की जग में सुख को सिहरन हो अंत खिली!
विस्तृत नभ का कोई कोना, मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही उमड़ी कल थी मिट आज चली!

2. मधुर मधुर मेरे दीपक जल

मधुर मधुर मेरे दीपक जल! युग युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल
प्रियतम का पथ आलोकित कर! सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन; दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल! पुलक पुलक मेरे दीपक जल;....

स्मरणीय गद्य

हिन्दी-कविता में महादेवी का एक उच्चस्थान सर्वविज्ञात है, किन्तु वे एक विख्यात गद्यकार भी हैं तथा गरिमामय वक्ता भी थीं। 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ', शृंखला की कड़ियाँ' एवं 'पथ के साथी' रेखाचित्र विधा के चार ऐसे ग्रन्थ हैं जो उन्हें मूर्द्धन्य स्थान प्रदान करते हैं क्योंकि उनमें शब्दों के रंगों एवं रेखाओं का अंकन तो सफल है ही, कलाकार का व्यक्तित्व भी संपृक्त है। ''कवि उपन्यासकार के रूप में कितना सफल हो सकता है?''—इस प्रश्न का उत्तर है 'अज्ञेय'! ''कवि रेखाचित्रकार के रूप में कितना सफल हो सकता है?''—इस प्रश्न का उत्तर है 'महादेवी'! दोनों के गद्य में समता के कतिपय बिन्दु उपलब्ध हैं: दोनों व्यक्तिवादी हैं, दोनों का कम-से-कम गद्य-साहित्य तो अहं से ऊभचूभ है ही, दोनों ने अत्यन्त परिनिष्ठित एवं प्रांजल भाषा का प्रयोग किया है। 'रामा', 'लछमा', 'भक्तिन' इत्यादि में वे अपनी गरिमा के प्रति अत्यधिक सजग प्रतीत होती हैं। वे 'पथ के साथी' में रवीन्द्र जैसे करोड़पति तथा मैथिलीशरण एवं प्रसाद जैसे लक्षपतियों की आर्थिक स्थिति का जो चित्रण करती हैं वह वस्तुपरक नहीं रह गया है।

व्यक्तिगत रूप से मुझे 'अतीत के चलचित्र' इत्यादि संस्मरण ग्रन्थ प्रतीत होते हैं; किन्तु व्यापक मान्यता उन्हें रेखाचित्र स्वीकार करती है तथा महादेवी के संस्मरण इतने शब्दचित्रसम्पन्न हैं कि ऐसी स्वीकृति को आँख मूँदकर नकारा भी नहीं जा सकता; अतः मैंने तदनुरूप प्रस्तुति ही वस्तुपरक समझी है। आलोचक स्ववृत्ति नहीं, आलोच्यवृत्ति पर केन्द्रित रहता है। महादेवी चित्रकार भी हैं तथा उनके चित्रकार ने उनके रेखाचित्रकार को भरपूर सहयोग प्रदान किया है।

महादेवी का 'विवेचनात्मक गद्य' (1944 ई.) एवं 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध' (1962 ई.) उनके आलोचक-रूप, 'क्षणदा' (1956 ई.) उनके ललित निबन्धकार-रूप तथा सम्मेलन, साहित्य अकादमी, विधान परिषद्, अन्यान्य समारोहों के

भाषण-प्रकाशन उनके विद्वान्-वक्ता रूप के सूचक हैं। महादेवी की महादिव्यता का आधार उनकी कविता ही है। वे एक विश्वस्तरीय अमर कवयित्री के रूप में सदा-सर्वदा प्रणम्य रहेंगी, इसमें सन्देह नहीं।

रामसहाय पांडेय 'चंद्र'

रामसहाय पांडेय 'चंद्र' (1907 ई., लखनऊ) ने खड़ी बोली एवं व्रजभाषा दोनों में बड़ी ललित कविताएँ लिखीं। उनका व्रजभाषा में शृंगारी एवं खड़ी बोली में प्रकृति पर सर्जन आकर्षक है। खड़ी बोली में कोकिल पर उनकी कवित्त छन्द में निबद्ध कविता अत्यन्त सुन्दर है।[1] दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

1. स्वरों की सुधा-सिंचित माधुरी से रस प्राण में कौन-सा घोलती है।
छिपी अंतर में किस वेदना की उलझी हुई ग्रंथियाँ खोलती है।।
अथवा हुई प्रेम से बावली तू प्रति डाल में साँवली! डोलती है।
अयि प्रेयसि श्यामा! विभावरी में कह, क्यों तू कहू-कहू बोलती है।।

2. आन अमंद की दुचंद दुति होन लगी, उरज उतंगन पै कंचुकी सजै लगी।
गुरुता नितंबन मैं नित्य सरसान लगी। सरकति नीवी कटि-तट कौ तजै लगी।।
अंजन अँजीली अरसीली अँखियान पेखि, खंजन की, कंचन की अवली लजै लगी।
मंद मुसकान सों सनेह-सुधा धो 'चंद्र' बोलति नबीना मंजू बीना-सी बजै लगी।।

'मिलिन्द'[1]

'प्रताप-प्रतिज्ञा', 'समर्पण', 'गौतम-नंद' जैसे नाटकों एवं 'जीवन-संगीत', 'नवयुवक के गान', 'भूमि की अनुभूति' जैसे कवितसंग्रहों के रचयिता एवं स्वांतत्र्य-सेनानी स्व. जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द' (1907 ई.[2], जन्म मुरार छावनी, ग्वालियर)[3] पत्रकार एवं नेता भी थे। उनकी रचनाओं की प्रमुख विशिष्टता बौद्धिकतासम्पन्न देशभक्ति है जिसे तदनुकूल भाषा में व्यक्त किया गया। उनका वादमुक्त नाट्य-सामर्थ्य वादबद्ध (साम्यवादी) मोहन 'राकेश' एवं काव्य-सामर्थ्य वादबद्ध (साम्यवादी) शिवमंगलसिंह 'सुमन' के स्तर का है तथा समाहार में वे एक उत्कृष्ट साहित्यकार हैं। उनका नारीपात्ररहित दुखान्त 'प्रताप-प्रतिज्ञा' राधाकृष्णदास कृत अमर नाटक 'महाराणा प्रताप' या श्यामनारायण पांडेय कृत लोकप्रिय महाकाव्य 'हल्दीघाटी' के सदृश नाटकीयतापूर्ण या कल्पनाप्रवण न होकर द्वंद्व-विक्षोभ-पूर्ण त्रासदी है, जो मान्य संस्कारों की प्रभवत्ता के कारण दर्शक या पाठक को प्रभावित नहीं कर पाती। 'समर्पण' समस्या-नाटक है। 'गौतम-नंद' भी बौद्धिक तर्क-वितर्क से परिपूर्ण है, जिसका प्रभाव मोहन 'राकेश' के 'लहरों के राजहंस' पर सम्भव है। कवि के रूप में 'मिलिन्द' जीवनवादी थे जिसमें जनवादी अंश अनायास समाहित है, जिनका प्रभाव शिवमंगलसिंह 'सुमन' पर है। किन्तु वे साम्यवादी नहीं लगते तथा उनकी प्रेरणा अपनी माटी ही है, विदेश नहीं। 'मिलिन्द' की बौद्धिकता में रस या भाव का अनुपात दुर्वल रह गया है और यह उनको अधिक उभरने नहीं देता। फिर भी, उनका बौद्धिक-जीवनवादी साहित्य सम्यक् आकलन की अपेक्षा रखता है। उनके मन में देशोन्नति की ज्वाला जलती थी, जो प्रतिकूलता की परिस्थितियों के आगे दबी-दबी रह गई। किन्तु इससे उनका यथार्थवादी मूल्यांकन बाधित नहीं होता, साधित ही होता है। मिश्रबंधु के शब्दों में, "नवभावयुक्त[4] अच्छी रचना" करने वाले 'मिलिन्द' जी की कविता की बानगी पेश है—

---

1. 'विनोद' में पूरी अवतरित की गई है।
2. कानपुर के कवि नत्थाप्रसाद दीक्षित 'मिलिन्द' समोपनामी थे।
3. 1907 ई. में महादेवी वर्मा, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, 'मिलिन्द', बच्चन, अंबिकाप्रसाद 'दिव्य', श्यामनारायण पांडेय, सीताराम चतुर्वेदी, केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' प्रभृति अनेक स्मरणीय-आदरणीय साहित्यकार उत्पन्न हुए। यह साहित्येतिहास का एक विलक्षण वर्ष है। इसी वर्ष हिन्दी प्रेमी, हिन्दी लेखक, अमर शहीद भगतसिंह का जन्म हुआ। बीसवीं सदी (ई.) में अपने ढंग का अकेला वर्ष!
4. 'विनोद' में इनका खत्री होना लिखा है।
5. 'नवविचारयुक्त' शब्द अधिक समीचीन रहता है। वैसे, भाव एवं विचार में उतना अन्तर नहीं है जितना आ. शुक्ल, महाकवि प्रसाद, डॉ. नगेंद्र इत्यादि ने द्वैतभ्रमवश ("द्वैत रूप तम कूप" तक न जाते हुए भी) माना है।

कालकूट विष एक में, सरल एक में संजीवन,
एक नयन में मरण तुम्हारे, एक नयन है जीवन।
सृजन निखिल छंदों का करते, खेल-खेल में युगलोचन,
एक पलक में मुँदती रजनी, एक पलक में खुलता दिन।
क्रीड़ा का क्रम सृजन-विसर्जन प्रचलित है प्रतिदिन प्रतिक्षण,
कितना अस्थिर है लीलामय पलकों का उत्थान-पतन।

केदारनाथ[1] मिश्र 'प्रभात'

'कैकेयी' एवं 'कर्ण' जैसे संवदेनशील प्रबन्धकाव्यों तथा 'श्वेत नील', 'कलापिनी', 'कम्पन' एवं 'चिरस्पर्श' इत्यादि संग्रहों के उल्लेख्य कवि केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' (1907 ई.[2]—आरा) सामान्यतः 'छायावादी कवि' माने जाते हैं किन्तु वस्तुतः वे दर्शनप्रधान कवि हैं, निरे स्वच्छन्दतावादी नहीं। उनकी प्रायः सभी प्रौढ़ कृतियाँ यथार्थवादी युग में प्रकाशित हुई हैं। उनकी 'कैकेयी' के अनुकरण में श्रीकृष्ण मिश्र ने 'समरप्रिया', स्व. ओउम् प्रेमी नामक आर्यसमाजी महाशय ने 'माण्डवी महाशया', सुरेन्द्र सिंह सक्सेना 'इंदु' ने 'कैकेयी' लिखी। यद्यपि वे स्वयं मैथिलीशरण के 'साकेत' की कैकेयी से प्रभावित अवश्य हुए हैं किन्तु उनकी कैकेयी दशरथ के मोह के विरुद्ध संस्कृति एवं जीवनमूल्यों की रक्षा के लिए राम को रावण से जूझने के लिए भेजने वाली राष्ट्रमाता हैं, जिनकी नवकल्पनाप्रसूत प्रस्तुति के कारण वे साहित्य में स्मरणीय रहेंगे। 'ऋतम्भरा'[3] (1956 ई.) उनका 'यूटोपिआ'-मूलक प्रबन्धकाव्य है, जिसका नायक मानव है। उन्होंने 'स्वर्णोदय' शीर्षक गीतिनाट्य भी रचा है। वे एक सफल बालसाहित्यकार भी हैं। यह सत्य है कि उनकी उत्कृष्ट काव्यसृष्टि तक कलाविपन्न है तथा दर्शनसम्पन्न, किन्तु उसकी प्रेरणा का अपना महत्त्व है। देशभक्ति उनकी कविता की एक बड़ी विशेषता है (वे एक तपोज्ज्वल भी हैं), जिसमें वे माखनलाल चतुर्वेदी एवं नवीन से प्रभावित लगते हैं—

माँ! यद्यपि हम बालक ही हैं, कुसुम-सुकोमल और अबोध, फिर भी तेरे चरणों में बस यही हमारा है अनुरोध।
निस्संकोच हमें दे दे अपने हाथों की तीक्ष्ण कुठार, होने दे फिर दृश्य देख यह जग में भीषण हाहाकार।

23 जनवरी, 1929 को लिखी उनकी 'ज्वाला' कविता प्रस्तुत है जिसे अंग्रेज़ी हुकूमत ने ज़ब्त कर लिया था—

ज्वाला

मैं हूँ उच्छृंखल विकट क्रान्ति की ज्वाला! मैं हूँ प्रचंड मैं दुर्दमनीय विशाला!!
मैं हूँ विद्रोही की आँखों की लाली, हूँ सर्वनाश मदिरा की तीखी-प्याली!
मैं अन्यायी हित विष की तीक्ष्ण भुजाली, मैं शिव विजयिनी महाशक्ति हूँ काली!
मैं क्रोधमयी-रण-चंडी हूँ विकराली, अपनी मादकता में रहती मतवाली!
है मेरा शोणित-रंजित साज निराला! मैं हूँ उच्छृंखल विकट क्रान्ति की ज्वाला!
मैं हूँ विध्वंसक महाप्रलय की ज्वाला। अंतक अनन्त मैं हूँ भीषण विकराला!!
मैं विहारिणी हूँ विश्व-वेदना-वन की, मैं कुटिल-वासना हूँ शंकर के मन की!
मैं नाश सृष्टि का, सृष्टि नाश की नूतन, मैं मृत्यु-मरण मैं हूँ नव-जीवन यौवन!
मैं विप्लवकारी के अंतर की आशा में विभीषिका रण-तांडव रक्त-पिपासा!....

---

1. भट्ट केदार (जयचंद्र के सभा कवि), केदरनाथ पाठक (नागरी-प्रचारिणी सभा वाले), केदारनाथ अग्रवाल, केदारनाथ सिंह (दोनों साम्यवादी कवि) इत्यादि समनामी हैं।
2. 'हिन्दी साहित्य कोश 'भाग 2 में श्रीपाल सिंह 'क्षेम' ने जन्म 12 अगस्त, 1907 को लिखा है, 'विनोद' में मिश्रबंधु ने सं. 1961 (1904 ई.) जो ग़लत लगता है।
3. कवयित्री एवं गद्यगीतकार राकेशनंदिनी गुप्त (नई दिल्ली) कृत 'ऋतम्भरा' (1994 ई.) कवितासंग्रह एवं बिहार के प्राध्यापक डॉ. रामवरण चौधरी (दुमका) कृत उषा पर 'ऋतावरी' (1996 ई.) काव्य का स्मरण आता है।

भगतसिंह

सिख-पंथ ने हिन्दी को नानक, अर्जुन, तेग़बहादुर एवं गोविन्दसिंह जैसे कवि दिए हैं। भारत को एक प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह दिया है और इससे पूर्व ज्ञानी जैलसिंह राष्ट्रपति थे। जो हिन्दी प्रेमी थे। हरिऔध सिख थे, पूर्णसिंह भी। डॉ. हरिभजन सिंह[1], डॉ. महीप सिंह[2] इत्यादि हिन्दी-साहित्यकार तथा जसदेवसिंह जैसे प्रथम एवं मानक हिन्दी-सततवार्ताकार दिए। जो क्रिकेट हो या हॉकी या फुटबॉल या गणतन्त्र-दिवस या स्वतन्त्रता-दिवस या अन्य-दिवस, कोटि-कोटि श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध कर देते हैं। महान् हुतात्मा भगतसिंह (1907-23 मार्च, 1931 ई.) हिन्दू-सिख एकता के एक सर्वोपरि प्रतीक थे, क्योंकि उनका परिवार जितना सिख था उतना ही आर्यसमाजी, वे लाला लाजपतराय द्वारा संस्थापित नेशनल कॉलेज लाहौर के छात्र थे, इनके क्रान्तिगुरु अजरअमर हुतात्मा चन्द्रशेखर 'आज़ाद' (आज़ादों में सर्वश्रेष्ठ आज़ाद) हिन्दी-क्षेत्ररत्न थे, इनके एक प्रेरक-सहायक अजर-अमर हुतात्मा गणेशंकर विद्यार्थी हिन्दी-पत्रकाररत्न थे, इनके एक आश्रयदाता डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' हिन्दी के विख्यात विद्वान एवं कवि थे।

भगतसिंह हिन्दी-प्रेमी ही नहीं प्रत्युत हिन्दी-लेखक भी थे। 8 अप्रैल, 1989 को असेंबली (पुराना भवन) बम-कांड में बटुकेश्वर दत्त भगतसिंह के साथ थे (जितेंद्रनाथ सान्याल कृत 'अमर शहीद सरदार भगत सिंह तथा अन्य सभी ग्रन्थों में)। उनकी फाँसी का कारण सांडर्स-वध था (वैसे मारना स्कॉट को था।) जिसमें राजगुरु और सुखदेव साथ थे। वे सारे भारत की एक व्यावहारिक भाषा और एकमात्र देवनगरी लिपि के समर्थक थे। 'प्रताप' (कानपुर) एवं इसके प्रतापी सम्पादक गणेशंकर विद्यार्थी से उनका सक्रिय सम्पर्क था। मेरे वरिष्ठ मित्र क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने मुझे उनकी लिखी हिन्दी का एक निदर्शन चित्रपति-रूप में दिखलाकर चमत्कृत किया था क्योंकि उसमें वर्तनी की एक भी त्रुटि न थी, भाषा स्तरीय थी, हस्तलेख सुस्पष्ट था। यद्यपि बलिदान के समय उनकी आयु पच्चीस वर्ष से भी कम थी तथा इससे पूर्व पर्याप्त समय तक वे वन्दी रहे चुके थे, तथापि उनके भाषा एवं साहित्य सम्बन्धी विचार व्यापक एवं प्रशस्य थे। रायबरेली के स्वातन्त्र्य-सेनानी एवं कवि स्व. शीतलाप्रसाद दीक्षित ने उन्हें ''हिन्दी की महती सेवा करने वाले''[3] ठीक ही कहा है। भगतसिंह का 'पंजाब की भाषा और लिपि की समस्या' शीर्षक लेख उनके सुस्पष्ट राष्ट्रभाषा-प्रेम एवं उनकी राष्ट्रीय अस्मिता की ललक का कालजयी अभिलेख है। भगतसिंह के अपने शब्दों में—

1. ''कोई भी देश अपनी भाषा और साहित्य के बिना अपनी पहचान नहीं बना सकता''।

2. साहित्य ''समाज के प्राणों की चेतना'' बताता है।

3. ''यह तो निश्चित तथ्य है कि साहित्य के अभाव में कोई देश और जाति[4] उन्नति नहीं कर सकती। परन्तु साहित्य के लिए सर्वप्रथम भाषा की आवश्यकता होती है जो पंजाब में नहीं हे...इसका मुख्य कारण है हमारे प्रदेश में दुर्भायवश भाषा को धार्मिक समस्या बना डालना।''[5]

4. उर्दू के समर्थक ''सम्पूर्ण भारतीयता के महत्त्व को न समझकर अरबी लिपि एवं फ़ारसी भाषा प्रचार करना चाहते हैं। सारे भारत की भाषा और वह भी हिन्दी का महत्त्व उनकी समझ के बाहर है।''

5. ''हमारा हर क़दम, हमारा प्रत्येक कार्य इस संसार की समस्त जातियों, देशों, कौमों को एक मजबूत रूप में बाँधकर सुख बढ़ाने के विचार के साथ उठना चाहिए। इससे पूर्व हमें अपने देश में एक आदर्श को स्थापित करना होगा—सारे देश में एक भाषा, एक लिपि, एक साहित्य, एक आदर्श और एक राष्ट्र बनाना पड़ेगा। पर इन सभी की एकता से पूर्व एक भाषा का होना आवश्यक है—पंजाबी और मद्रासी एक-दूसरे का मुँह ही न ताकती रहें, बल्कि एक-दूसरे के विचार और भाव जानने का यत्न करें, पर यह पराई भाषा अंग्रेज़ी में नहीं, बल्कि हिन्दुस्तान की भाषा हिन्दी में।''

रसिकेन्द्र

प्रमुखतः 'मनहर-वीरज्योति' (1937 ई.) एवं सामान्यतः 'सती सारंधा', 'आत्मसमर्पण' (खण्डकाव्य-द्वय) इत्यादि के ध्येयनिष्ठ कवि द्वारिकाप्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' (कालपी, जनपद जालौन, उत्तरप्रदेश) ने वीररस के आयाम व्यापकतर करते हुए प्रेरक एवं

---

[1] पंजाबी-कवि। डॉ. नगेन्द्र द्वारा प्रस्तुत 'अरस्तू का काव्यशास्त्र' के पंजाबी-अनुवादक ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता पंजाबी कवि।

[2] कहानीकार एवं 'संचेतना' के संस्थापक-सम्पादक जिन्होंने गुरु गोविन्द सिंह पर शोधग्रन्थ लिखा है।

[3] 'महावाणी' (सितम्बर, 1988, प्रकाशक रायबरेली रचनात्मक संघ) के 'साहित्य-सलिला हिन्दी' लेख में। पत्रिका-सम्पादक चक्रधर 'नलिन' हैं।

[4] राष्ट्र।

[5] 'पंजाबी सूबा' से 'ख़ालिस्तान' तक यह दुर्भाग्य आज भी दृगगम्य है।

प्रभावी काव्य-सर्जना की। तत्त्वतः उन्हें आदर्शवादी युग का कवि माना जाएगा। वे छायावाद, रहस्यवाद, हालावाद इत्यादि की जीवन पराङ्मुखता के विरोधी प्रखर जीवनवादी कवि थे। मनहर घनाक्षरी छंद में रचित खड़ीबोली काव्यकृति 'मनहर-वीरज्योति' में वीररस के युद्धवीर, दयावीर, धर्मवीर, भेदों में प्रणवीर, प्रेमवीर प्रभृति अन्य भेद जोड़े गए हैं तथा प्राचीन-अर्वाचीन वीरों एवं वीरांगनाओं पर प्रभावी सर्जना की गई है। 'मनहर-वीरज्योति' की तुलना 'वीर 'सतसई' (वियोगीहरि) से की जा सकती है। उदाहरण देखें—

1. आँख खुल जाती तीसरी-सृष्टि शंकर की, दृष्टि में खलों की चकाचौंध लग जाती है।
'रसिकेन्द्र' शक्ति महाशक्ति की समाती आके, आत्मबल-विजय की तोप दग जाती है।।
रीति होती धर्म की, प्रतीति कर्मयोग पर, साथ होती जीत प्रीतिनीति पग जाती है।
भीरुता-विभावरी का विभव विनाश होता, जब जगती में वीरज्योति जग जाती है।

2. बाक़ी माया-मोह का न जिसमें रहे निशान, जोश को बढ़ानेवाला साक़ी मतवाला हो।
'रसिकेन्द्र' अंग में उमंग की तरंग बढ़े, रण-रंगी लोचनों का रंग भी निराला हो।।
काट शत्रुओं को पृथ्वी को लालिमा से पाट मस्ती की चखाती चाट करवाल बाला हो।
प्याला हो पराक्रम का हिम्मत की हाला भरा, वीर छकते हैं जब ऐसी मधुशाला हो।।[1]

रघुवीरसिंह

'बिखरे' फूल' (1933 ई.), 'सप्तदीप' (1938 ई.), 'शेष-स्मृतियाँ' (1939 ई.), 'जीवनधूलि' (1949 ई.) एवं 'जीवनकण' के भावात्मक-निबन्धकार, 'महाराणा प्रताप' के परिचयदाता, श्रीधर कृत 'जंगनामा' के सम्पादक, अपने गुरु महान् इतिहासकार सर जदुनाथ सरकार (निधन 19 मई, 1958) के प्रख्यात ग्रन्थों 'शिवाजी' एवं 'औरंगजेब' के अनुवादक, स्वचरित शोधग्रन्थ 'मालवा इन ट्रांजिशन' के 'मालवा में युगान्तर[2] के प्रस्तोता महाराजकुमार डॉ. रघुवरीसिंह (23 फरवरी, 1908-1 फरवरी, 1991, सीतामऊ, मध्यप्रदेश) ने अनेक ऐतिहासिक एवं साहित्यिक ग्रन्थों की विद्धत्तापूर्ण भूमिकाएँ भी लिखी हैं, सहयोगियों के साथ सम्पादन भी किए हैं। वे एम. ए.,एलएल.बी., डी.लिट्. थे, सांसद (राज्यसभा) थे, साहित्य सम्मेलन प्रयाग एवं उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा सम्मानित हुए थे। यद्यपि उनके अधिकांश ग्रन्थ इतिहास से सम्बन्धित हैं, तथापि साहित्य में भी उनका एक स्थान है अवश्य।

महाराजकुमार डॉ. रघुवीरसिंह का साहित्यकार-रूप 'शेष स्मृतियाँ' शीर्षक भावनात्मक-निम्बन्धसंग्रह के प्रणेता के रूप में स्मरणीय है, जिसकी भूमिका आ. रामचंद्र शुक्ल ने लिखी थी। आचार्य ने 'शेष स्मृतियाँ' की अच्छी प्रशंसा की थी। 'शेष स्मृतियाँ' के 'ताज', 'लाल किला'[3], 'फतेहपुर सीकरी' प्रभृति भावात्मक निबन्धों में आवेग-शैली के प्रभावी दर्शन होते हैं। किन्तु मुग़ल बादशाहों (अकबर, शाहजहाँ वगैरह) के अतीव उदात्त रूप की कल्पना एवं प्रायः युग-निरपेक्ष स्थापत्य-प्रशस्ति की अति ने रघुवीरसिंह के निबन्धों को तत्त्वतः वस्तुपरक नहीं रहने दिया। समय की शक्ति एवं परिवर्तन की विडम्बनाओं पर शेक्सपीअर के सॉनेट्स, गोल्डस्मिथ के 'सिटी नाइट पीस' (नगर की नैश शान्ति—नगर लन्दन) भावात्मक-निबन्ध, टेनीसन के उद्गारों, रवीन्द्र की कहानी 'खूदित पाषान' (क्षुधित पाषाण), पंत की महाकविता 'परिवर्तन' इत्यादि से प्रेरित अतिभावुकता में जनवादिता के लिए न्यायसंगत जगह न होने के कारण रघुवीरसिंह के निबन्ध जीवन के सत्य से वंचित-से रह गए हैं। उनकी तुलना सरदार पूर्णसिंह से हो सकती है—दोनों अतिभावुक, दोनों अतिविस्तारवादी, दोनों भाषा-शिल्पी; किन्तु पूर्णसिंह जन-श्रम-गौरव के प्रतिष्ठापक हैं और रघुवीरसिंह वस्तुतः बादशाही जश्नोजलाल के फ़साना-नवीस (हालाँकि कहीं-कहीं जनक्लेश एवं जनाक्रोश की चर्चा भी की है)। अतः समय की कसौटी पर पूर्णसिंह अधिक खरे उतरते हैं। पूर्णसिंह की इलहामी भाषा कृत्रिम नहीं लगती, जबकि रघुवीरसिंह की कम-से-कम कहीं-कहीं तो लगने ही लगती है। बाबर ने जिस स्थान पर साँगा पर निर्णायक विजय प्राप्त की, वह फ़तहपुर हुआ किया गया; वहाँ

---

[1] बच्चन की 'मधुशाला', 'मधुबाला' प्रभृति की प्रतिक्रिया में रचित।

[2] साहित्य सम्मेलन के मंगलाप्रसाद पुरस्कार (1945 ई.) से सम्मानित ग्रन्थ।

[3] आगरे का (दिल्ली का नहीं)।

अल्लाह का शुक्रिया अदा किया जो शुक्री से सीकरी हो गया। ऐसे ही, लाल क़िला और ताज के मूल भी एकदम साफ़-सपाट नहीं हैं, भले ही पुरुषोत्तम नागेश ओक (पी. एन. ओक) अति कर गए हों। रघुवीरसिंह ने इस ओर ध्यान तक नहीं दिया। फिर भी, 'शेष स्मृतियाँ', के निबन्ध पठनीय हैं, पाठकों को भावविभोर कर देते हैं तथा स्वच्छन्दतावादी गद्य-शैली के उल्लेख्य निदर्शन हैं।

हरिकृष्ण 'प्रेमी'[1]

'रक्षाबन्धन' (1938 ई.–कर्मवीर-हुमायूँ कथा) एवं 'स्वप्नभंग' (1940 ई.–दारा-पतनकथा) के हिन्दू-मुस्लिम-एकतामूलक तथा 'शिवसाधना'[2] (1937 ई.), 'प्रतिशोध' (1937 ई.–छत्रसाल पर) एवं 'आहुति' (1940 ई.–हम्मीर पर) के देशभक्तिमूलक नाट्यकार स्व. हरिकृष्ण 'प्रेमी' (1908 ई., ग्वालियर) ने 'स्वर्णविहान' (1930 ई.) इत्यादि गीतिनाट्य तथा 'मन्दिर' (1942 ई.) एवं 'बादलों के पार' (1952 ई.) शीर्षक एकांकीसंग्रह भी लिखे हैं। 'आँखों में' (1930 ई.), 'जादूगरनी'[3] (1932 ई.–'माया' इत्यादि पर), 'अनन्त के पथ पर' (1952 ई.) एवं 'अग्निगान' के कवि के रूप में भी वे सफल हुए हैं। आ. शुक्ल ने प्रसाद के साथ उन्हें 'प्रतिभाशाली नाट्यकार' घोषित करते हुए "रसविधान एवं शीलवैचित्र्य दोनों का सामंजस्य" रखनेवाला माना है। ठीक ऐसे ही दोनों को ही ऐतिहासिक नाट्यकार होने के बावजूद "आधुनिक आदर्शों और भावनाओं के आभास" देनेवाला भी कहा है जिसको 'अभिनव-रूप' देते हुए 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में विश्वनाथ मिश्र ने ठीक ही लिखा है, "मध्यकालीन इतिहास के कथा-प्रसंगों को लेकर उन्होंने हमें राष्ट्रीय जागरण, धर्मनिरपेक्षता तथा विश्वबन्धुत्व के महान् सन्देश दिए हैं।"

यद्यपि प्रेमी के नाटकों में 'प्रस्थान' एवं प्रतिभा का आभाव-सा है, प्रचलित गाँधी-छाप या नेहरू-मार्का व्यर्थादर्शवाद के मंडन के कारण सत्य का गहरा साक्षात्कार नहीं हो पाता, तथापि उनमें मध्यकालीन इतिहास को समसामयिक सन्दर्भों से संपृक्त कर इस रूप में प्रस्तुत किया गया है कि वे पाठक या दर्शक को अच्छी प्रेरणाएँ दे सकते हैं। उनकी भाषा सरल है तथा अभिनेता प्रशस्य।

उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश'

'मुचकुंद-चरित्र' के खण्डकाव्य तथा व्रजभाषा एवं खड़ीबोली में उत्कृष्ट मुक्तक कविताएँ रचने के कारण प्रसिद्ध कवि उमाशंकर वाजपेयी 'उमेश'[4] की प्रशंसा मिश्रबन्धु ने की है और आचार्य शुक्ल ने भी। इनका जन्म 1908 ई. लखनऊ में हुआ था। इन्होंने भक्ति, प्रकृति (विशेषतः 'हिमालय के प्रति') तथा शिशु-सम्बन्धी सुन्दर काव्य-सृष्टि की है। सम्भवतः इनका 'शिशु' पंत जी के 'शिशु' से प्रभावित है।[5] इनकी प्रेरक 'हिमालय के प्रति' व्रजभाषा–कविता की 'दिनकर' की प्रेरित 'हिमालय के प्रति' प्रसिद्ध खड़ीबोली-कविता से तुलना हो सकती है। 'दिनकर' जी का जन्म भी 1908 ई. में ही हुआ था। उमेश जी एक उच्चस्तरीय घनाक्षरीकार हैं। दो घनाक्षरी-उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1. उठु उठु त्यागु आजु स्थिरता हिमचल! तू मेरी हाँक सुनि क्यों न ऊपर उछरतो।
मौन बनि बैठ्यो, तोहि लाजहु न आवै मूढ़। कैसे निज गौरव को हाय! तू बिसरतो।।
सुकवि 'उमेश' बोलि लेतो क्यों न बँधुन को क्यों न बढ़ि बैरिन पै ब्रजपात करतो।
देखि देखि दीनन की दारुन दशा को आजु कुटिल कुचालिन पै टूटि क्यों न परतो।।
('हिमालय के प्रति' से)

---

[1] 'प्रेमी' कई हुए हैं–नाथूराम 'प्रेमी', विश्वंभरनाथ 'प्रेमी' उत्तमचंद जैन 'प्रेमी' इत्यादि किन्तु हरिकृष्ण 'प्रेमी' प्रेमियों से अन्यतम हैं।

[2] आ. शुक्ल द्वारा प्रशंसित।

[3] मिश्रबन्धु द्वारा उल्लिखित (उन्हें खड़ीबोली का कवि माना है)।

[4] उमेशचंद्रदेव मिश्र (1904-51 ई.) 'विश्वकवि रवीन्द्रनाथ', 'वंचिता', 'प्रतिरोध' एवं 'अतीत के बिखरे पत्र' के स्मरणीय प्रस्तोता थे। स्वर्गीय महामहोपध्याय डॉ. उमेश मिश्र (जन्म 1897 ई.) संस्कृत, हिन्दी एवं अंग्रेज़ी के चिरस्मरणीय ग्रन्थकार थे। सूरदास, नन्ददास एवं सेनापति के स्मरणीय पाठालोचक उमाशंकर शुक्ल (1909-80 ई.) भी याद आते हैं। उमाशंकर मिश्र 'उमेश' उल्लेख्य कवि हैं। उमाशंकर शुक्ल 'उमेश' (1936 ई.) कवि एवं ग्रन्थ-सम्पादक हैं। गाजियाबाद के हिन्दीसेवी एवं पत्रकार उमाशंकर मिश्र भी स्मरणीय हिन्दीसेवी हैं।

[5] पंत जी 'शिशु' कविता की रचना में वर्ड्स्वर्थ से प्रभावित हैं।

2. कौन निज नाम रूप गुण से अजान तुम इस अवनी के अनमोल आभरण से?
देवदूत से हो कहो कौन द्युतिमान तुम मोती-से सरस सुचि मेघ वारि कण से?
वारिधि में वीचि के प्रथम लास से हो तुम कौन लघु जीवन के एक स्वर्ण क्षण से?
उतरे न जाने तुम जाने किस लोक से हो शिशु! तुम कौन नव राशि की किरण से?

'प्राणेश'

डॉ. दीनानाथ 'शरण' के द्वारा स्मृत ''छायावाद युग के विस्मृत कवि पं. खेदहरण शक्ति शास्त्री 'प्राणेश'[1]'' (1909-4 अप्रैल, 1974, गया) ने प्रेम एवं प्रकृति पर अच्छी रचनाएँ की थीं। उनके प्रकृति-चित्रण में रहस्य के स्वर विद्यमान हैं। पाँच वर्ष की आयु में पिता नन्हकूलाल मिश्र के देहान्त के कारण उन्हें जीवन में संघर्ष करने पड़े होंगे। उनके गुरु हरदेव मिश्र थे। डॉ. दीनानाथ 'शरण' ने उनके 'नारी' एवं 'कर्णवध' खंडकाव्य, 'पारिजात' एवं 'मंदार' कविता-संग्रहों, 'वनफूल' गद्यकाव्य, 'कुदम्ब' कहानी-संग्रह, 'पानी के बुलबुले' संस्मरण इत्यादि कई ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिससे ऐसा लगता है कि उनकी प्रतिभा बहुमुखी है।

प्राणेश की कविता कला की दृष्टि से साधारण लगती है, परन्तु उसमें भावुकता एवं संवदेनशील विद्यमान हैं। उन पर निराला एवं पंत का प्रभाव भी दृग्गत होता है। 'निर्झर' कविता निराला एवं पंत का स्मरण करा सकती है (डॉ. दीनानाथ 'शरण' ने ही ''छायावाद युग के अन्य प्रख्यात कवि स्व. आरसीप्रसाद सिंह द्वारा लिखित 'जीवन क्या है निर्झर है' का स्मरण'' किया है)—

किस ओर बहे जाते निर्झर?
उर में अनंत आशाएँ भर किस ओर बहे जाते निर्झर?
गिरते, पड़ते, बढ़ते, चढ़ते[2] ऊँचे, नीचे, बढ़ते, चढ़ते[3]
लड़ते, भिड़ते जाते ही तुम टेढ़े-मेढ़े पथ को गढ़ते!

श्रीराम शर्मा

युग निर्माण योजना मथुरा एवं शान्ति कुंज हरिद्वार[4] के संस्थापक, वेदों के व्याख्याता, गायत्री[5] के प्रचारक-प्रसारक, सर्वमानवसमता एवं नरनारीसमता के उद्घोषक, ऋषिकल्प पुण्यश्लोक श्रीराम शर्मा आचार्य (1909-90 ई., आँवलखेड़ा, जनपद आगरा) बीसवीं सदी के एक महान् गुरु एवं धर्मोपदेशक थे। उनकी मानवता, भारत, भारतीयता एवं भारती के प्रति की गई सेवाएँ चिरस्मरणीय हैं। श्रीराम शर्मा आचार्य अपने युग के रामकृष्ण परमहंस थे।[6] पांडुरंग शास्त्री, आसाराम बाबू, मुरारी बापू की समाजसेवा के सदृश, उन्होंने भी सेवाकार्य किए। चमत्कारवादियों से भिन्न, उन्होंने स्वाभाविक धर्मविवेचन के द्वारा मानव को उदात्त बनाने के यत्न किए। वे न विदेश गए, न अखबारी सुर्खियों के पीछे भागे। उनकी सरल-सहज साधना ने लाखों लोगों को प्रभावित किया। 'चिन्ता रूपी चिता में जलकर अपनी क्षमताएँ नष्ट न करें' (पुस्तिका) के उपदेशक आचार्य जी महान् कर्मठतावादी एवं आशावादी थे। व्यापक भारतीय जनजीवन पर उनका प्रभाव अनेक विश्वविख्यात दार्शनिकों एवं योगियों से कहीं अधिक पड़ा।

---

[1] साप्ताहिक 'क्रान्तिस्वर' (फ़तेहपुर, सं. डॉ. तोताराम गुप्त 'विरही'), 29-4-1991, पृष्ठ 3-4।

[2] निर्झर का 'चढ़ना' युक्तियुक्त नहीं है।

[3] निरर्थक पुनरुक्ति।

[4] बदरीनाथ या बदरीनारायण (विष्णु या हरि) के कारण हरिद्वार। केदारनाथ (शिव या हर) के कारण हरिद्वार। प्रकृत्या गंगाद्वार (महाभारत)। पुराणों की माया, कालिदास का कनखल यहीं हैं।

[5] उपेन्द्र जी महाराज (खड़ेसर, निकट कठारा, जनपद कानपुर) अन्य गायत्री-भक्त हैं।

[6] ईसा, जैलसिंह इत्यादि के सदृश बढ़ई थे। मूसा, डिमॉस्थिनीज इत्यादि के सदृश हँकलाते थे। आरम्भ में नक़ली उपाधियाँ ('साहित्य-भूषण' इत्यादि) बेचते थे। निर्धन थे। ऐसा मुझसे उनके पुराने मित्र स्व. आ. क्षेमचंद्र 'सुमन' ने बतलाया, जिनके पास उनके अनेक पत्र थे। किन्तु इससे उनकी अद्भुत क्षमता भी सिद्ध होती है, जिसका 'सुमन' जी भी लोहा मानते थे। 'शिकार' के प्रसिद्ध लेखक श्रीराम शर्मा एवं कहानीकार श्रीराम शर्मा समनामी हैं।

चारों वेदों एवं एक सौ-आठ प्राचीन परवर्ती उपनिषदों की पाठ-समेत सरल टीका ही श्रीराम शर्मा आचार्य को चिरस्मरणीय रख सकती है। सातवलेकर, रामगोविन्द त्रिवेदी एवं श्रीराम शर्मा आचार्य के कारण हिन्दी-भाषियों को वेद सुलभ हो सके हैं। दयानन्द, जयदेव वेदालंकार, मुंशीराम शर्मा 'सोम' इत्यादि की वेद-व्याख्या, वेद-टीका, वेद-मीमांसा आर्यसमाजी विद्वत्ता की दृष्टि से प्रशस्य तो है, किन्तु वह वस्तुवाद की दृष्टि से निर्विवाद नहीं है। श्रीराम शर्मा आचार्य भी सातवलेकर एवं रामगोविन्द त्रिवेदी के सदृश विशुद्ध वस्तुवादी नहीं हैं, किन्तु वे नितान्त पूर्वाग्रहवादी भी नहीं हैं। उन्होंने गीता की भी विशद व्याख्या की है।

श्रीराम शर्मा आचार्य ने विलक्षण या आरोपित जीवन-यापन, विशिष्ट वेशभूषा इत्यादि के बिना ही महर्षि की गरिमा प्राप्त की। वे महान् संगठनकर्त्ता थे। उन्होंने स्वातन्त्र्य-संग्राम में भाग लिया, यातनाएँ झेलीं, देशसेवा की। उन्हें अनेक नेताओं, मन्त्रियों, प्रधानमन्त्रियों का सम्मान मिला। किन्तु उन्होंने असाधारणता का प्राचीन या मध्यकालीन या आधुनिक पाखण्ड कभी नहीं ओढ़ा। वे बाबा आनन्दमूर्ति (आनन्द-मार्ग के आचार्य), बाबा गुरबचन सिंह (निरंकारी), बाबा तुलसीदास (जय गुरुदेव) इत्यादि के सदृश कभी भी विवादास्पद नहीं हुए। राजनीति से ताक-झाँक न करने के कारण उनको अगाध श्रद्धा प्राप्त हुई—गाँधी तक राजनीति के कारण विवादास्पद हैं (काजर की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय एक लीक काजर की लाहिहै पै लाहिहै)! हिन्दी-साहित्य में वे 'मत्त' के रूप में आए और कविता वे सदैव रचते रहे। उनकी कविता प्रेरक भी है, प्रभावी भी, जो आदर्शवादी युग की आत्मा से पुष्ट है। 'अखण्ड ज्योति' पत्रिका के द्वारा उन्होंने अध्यात्मवादी साहित्य का उन्नयन किया, पत्रिका का सूत्र रहा—

सुधा-बीज बोने से पहिले[1] काल कूट पीना होगा,
पहिन मृत्यु का मुकुट विश्वहित मानव को ज़ीना होगा।

उनकी कविता देशप्रेम, साहस, शौर्य, निर्धन-संवेदन, दलित-संवेदन की प्रेरक कविता है—

1. कोई भी हो तेरा दुश्मन निश्चय मिट जाएगा,
त्रिंस कोटि हुंकारों से नभमण्डल फट जाएगा।

2. अन्धकार, कुछ सूझ न पड़ता, होता है हिमपात,
जग की सारी शक्ति लगाए बैठी तेरी घात।
इन्द्र-वज्र गिरता है ऊपर, लेता सिन्धु उफान,
मेरु उड़े जाते हैं, ऐसा आता है तूफान।
नष्ट-भ्रष्ट करने आते हैं प्रलय-मेघ घनघोर,
पर तेरा तो पथ निश्चित है बढ़ता जा उस ओर।
देख-देख इन बाधाओं को पथिक! न घबरा जाना,
सब-कुछ करना सहन किन्तु मत पीछे पैर हटाना।

किसान

3. छाती तोड़ महान् परिश्रम तेरे का परिणाम
झपट हड़पता रहता है यह क्रूर विश्व अविराम।
तू भूखा, नंगा, रोगी रहता व्याकुल, बेचैन,
पर वह ही-ही हँसता है लख तेरे गीले नैन।...

कविता में ओज एवं शोषित-संवेदन, स्वतन्त्र्य-प्रेम एवं क्रान्तदर्शिता में श्रीराम शर्मा 'मत्त' दूसरे-नवीन थे। नवीन उनका आदर करते थे। आरम्भ में वे आगरा जनपद के विख्यात नेता हिन्दी प्रेमी श्रीकृष्णदत्त पालीवाल के सम्पर्क में आए थे। हरिशंकर शर्मा इत्यादि साहित्यकारों के भी निकट रहे। किन्तु स्वतन्त्रता के 'मत्त' क्रमशः आध्यात्मिकता के 'आचार्य' बनते गए: सा विद्या या विमुक्तये

---

[1] पन्त ने भी 'पहिले' का प्रयोग ही किया जिसे फ़ैशनेबूल लोगों ने ज़बरदस्ती 'पहला' बना दिया है—
वियागी होगा पहिला कवि आह से उपजा होगा गान,
उमड़ कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।

बमकाण्डी अरविन्द योगी बने, क्रान्त साम्यवादी मानवेन्द्र नाथ राय वेदान्ती, श्रमिक नेता कॉमरेड श्रीपाद अमृत डाँगे उपनिषद्-प्रेमी, 'मत्त' आचार्य! वे ससीम से असीम हो गए; 'मेरा परिचय' की बानगियाँ देखिए—

मैं एक किन्तु संकल्प किया तो ''एकोऽहम् बहु स्याम'' हुआ,
मैंने विस्तार किया अपना ब्रह्माण्ड उसी का नाम हुआ।
ये चाँद और सूरज मेरी आँखों में उगनेवाले हैं।
है एक आँख में स्नेह और दूजी में प्रखर उजाले हैं।''

'मुक्त'

'पतझड़', 'पाप-पुण्य', 'संन्यासी', 'लालिमा', 'धारा', 'जेलयात्रा', 'दो दिन की दुनिया' इत्यादि के कवि एवं लेखक तथा 'विद्यार्थी', 'बिजली' एवं 'आरती' के सम्पादक स्व. प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' (1909 ई., निमेज, जनपद शाहाबाद) ने कवि एवं पत्रकार के रूपों में हिन्दी की अच्छी सेवा की है। उनकी रचनाएँ 'आज', 'सैनिक', 'मतवाला', 'चाँद' इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थीं। उनसे अनेक कवियों-कवयित्रियों तथा लेखक-लेखिकाओं को प्रेरणा प्राप्त हुई। उदाहरण देखें—

मुक्त

त्याग जिसने सारा ऐश्वर्य, दुःख को ही है अपना लिया,
हटाकर पात्र सुधा से भरा, गरल का जिसने प्याला पिया।
हृदय में जिसके भरी अपार वेदना दलितों के प्रति, आह,
बिताना जीवन समझा श्रेय साथ लेकर जिसने गुमराह।
देख दुखियों का दुःख-समुद्र, तैरने को जो हुआ तयार,
छलकता रहा आयु में सदा पीड़ितों के प्रति जिसका प्यार।
छोड़कर मोह, प्राण में स्वयं निछावर किया विश्व के लिए,
झुका जो कभी किसी से नहीं, स्वत्व पर मरे स्वत्व पर जिए।
गुफा में, वन में फिरता रहे सदा भयहीन और स्वच्छन्द,
प्रकृति का सारा सुखमय साज भोग निर्लेप करे सानंद।
कभी मन में मत आवे क्रोध, द्वेष से हो न कभी संयुक्त,
विश्व-उन्नायक, जग-शिरमौर, वही है रत्न, जगत का 'मुक्त'[1]।

आरसीप्रसाद सिंह[2]

बिहार के हिन्दी-कवियों में आरसीप्रसाद सिंह (19 अगस्त-नवम्बर, 1996, एरौत, जनपद समस्तीपुर) को एक निश्चित स्थान प्राप्त है, क्योंकि उन्होंने स्वच्छन्दतावादी, राष्ट्रवादी, जनसंवेदनावादी, सभी प्रकार के कृतित्व में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है तथा गीत, मुक्तकविता एवं प्रबन्धकाव्य की दिशाओं में उनका स्फीत सर्जन गुणवत्ता में विपन्न नहीं है। वे बाल साहित्यकार के रूप में भी स्मरणीय हैं। उन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं तथा समीक्षा की विधा को भी अछूता नहीं छोड़ा। उनकी वादमुक्त स्वच्छन्दतावादिता (छायावादिता) 'कलापी' 1938 ई. के समय से ही लोकप्रिय हो गई थी। भारतीय संस्कृति के प्रति उनका अनुराग अटल रहा है। उनकी राष्ट्रीय कविताएँ भी पठनीय हैं। स्वतन्त्र भारत की पाखंडपूर्ण एवं आत्मघाती धर्मनिरपेक्षता का उन्होंने परिहास किया है। मार्दव की न्यूनता के बावजूद,

---

[1] मोती, जीवन्मुक्त, कवि-उपनाम।

[2] ठाकुरप्रसादसिंह (70 वर्ष की आयु में 26 अक्टूबर, 1993 को लखनऊ में देहान्त) का ध्यान आ जाता है, यद्यपि वे 'प्रशासक' अपेक्षाकृत अधिक रहे, 'कवि' अपेक्षाकृत न्यून।

उनकी कविताएँ प्रभावी हैं। उनका 'कुँअरसिंह' काव्य बहुत प्रसिद्ध है (जिसकी रचना 1857 ई. के प्रथम स्वातन्त्र्य-संग्राम के अमर योद्धा पर हुई है)।

उद्धरण प्रस्तुत हैं—

1.
यह जीवन क्या है? निर्झर, मस्ती ही इसका पानी है।
सुख-दुख के दोनों तीरों पर चल रहा राह मनमानी है।।
चलना है, केवल चलना है, जीवन चलता ही रहता है।
मर जाना है रुक जाना ही, निर्झर यह झड़ कर कहता है।
''नन्द वंश का मूल सहित उच्छेद न जब तक कर दूँगा,
मैं विश्राम न लूँगा तब तक, शिखा नहीं मैं बाँधूँगा।''
जय हो उस चाणक्य-नीति की, चन्द्रगुप्त की जय हो।
जिनके भुजदण्डों की छाया में भारत निर्भय हो।
जहाँ कृष्ण-अर्जुन-सा होता चन्द्रगुप्त-चाणक्य मिलन,
वहाँ राज्य श्री विजय, अभ्युदय, एक अखण्ड राष्ट्र तन-मन।

('चाणक्य-शिखा' से)

2.
हिन्दू घटा, बँटा भारत, यह तथ्य किसे है ज्ञात नहीं?
फिर भी जो चुपचाप भ्रांति को पाल रहे अनजान बने,
क्या कहिये उनको? बेचारे हैं परिवार-नियोजन में
दिन दूने चौगुने रात हैं रक्त-बीज सन्तान जने।

('युद्ध अवश्यंभावी है' से)

भुवनेश्वर मिश्र 'माधव'[1]

मीराँ (मीरा) के सहृदय आलोचक, 'रामभक्ति-साहित्य में मधुरोपासना' के मर्मी शोधकर्ता एवं रहस्यवादी कवि के रूपों में भुवेनश्वर मिश्र 'माधव' (1911 ई.—मिसरौली, ज़िला शाहाबाद, बिहार) हिन्दी की एक स्मरणीय विभूति हैं। 'धूप-दीप', 'पूजा के फूल' इत्यादि से लेकर 'मीरा की प्रेम-साधना', 'सन्त-साहित्य', 'श्री अरविन्द-चरितामृत' एवं 'द फिलॉसॉफी ऑफ़ वल्लभाचार्य' तक सर्वत्र सन्त-संपृक्त ही हैं। कवि के रूप में उनकी भाषा स्वच्छन्दतावादी है, किन्तु शैली भक्तिवादी। उनका शुक्ल-प्रशंसित आलोचक-रूप 'इतिहास'-सिद्ध हैः ''मीरा की प्रेम-साधना' भावात्मक है जिसमें 'माधव' जी मीरा के भावों का स्वरूप पहचान कर उन भावों में आप भी मग्न होते दिखाई पड़ते हैं।''

'माधव' की सरस साहित्य-साधना में भावातिरेक स्वाभाविक है। व्यक्तिगत रूप से मैं भावातिरेकवादी नहीं हूँ क्योंकि महानतम साहित्य भाव-विचार-अद्वयरूप होता है, किन्तु आलोचना में अपने-आप को थोपना स्वयं ही भावातिरेक (मनोवैज्ञानिक दृष्टि से हीनता-ग्रन्थि का उद्‌गार मात्र) है, अतः सर्वत्र एवं अकारण कोरा प्रत्याख्यान नहीं कर सकता। कविता का एक सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है—

बनी रहे हिय मधुर वेदना, रहें अश्रु-निर्झर,
व्याकुल प्राण सदा तेरे दर्शन हित बने रहें नटवर!
सदा खोजता जाऊँ मैं पर तू अनंत में मिलता जा,
आकुल आँखों से ओझल हो झिलमिल-सा तू खिलता जा।

---

[1] 'विनोद' में मिश्रबन्धु, 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' में शुक्ल एवं 'हिन्दी साहित्य कोष' भाग 2 में डॉ. हरदेव बाहरी ने नाम भुवनेश्वनाथ लिखा है जो ठीक है। किन्तु भुवनेश्वर मिश्र 'माधव' प्रचलित है। एक अन्य भुवनेश्वर मिश्र (जन्म 1867 ई.-दरभंगा-निवासी) कृत 'घराऊ घटना' की मिश्रबन्धु ने बहुत प्रशंसा की है। उन्होंने वकील होते हुए भी अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थ रचे थे। दरभंगा के ब्राह्मण राजवंश से संबद्ध भुवनेश्वर सिंह 'भुवन' (1906 ई.) ने खड़ीबोली में अच्छी कविता लिखी है।

यों छककर जब खोज-ढूँढ़ से करने लगे कूच जब प्राण,
बिना प्रयास भाव-वैभव से गूँज उठे हृत्तंत्री-तान।
रिमझिम बजती पाँय पैंजनी, मुरली मधुर बजाते नाथ!
आ हिय-आँगन लगो नाचने, हम भी नचें तुम्हारे साथ।

'कमलेश'[1]

आ. श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी' एवं कविवर जगदंबाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' के शिष्य स्व. रामशंकर गुप्त 'कमलेश' (1912 ई., कानपुर) आ. 'बिहारी' के श्री हिन्दी-साहित्य मंडल से नहीं प्रत्युत मधुमय काव्य-प्रणेता मंडल से जुड़े। 'कमलेश' खड़ीबोली के अग्रणी सवैयाकारों से परिगणित हैं। उन्होंने व्रजभाषा में भी लिखा है। वे एक उत्कृष्ट कवि हैं, जिन्होंने पारंपरिक कविता को मौलिकता से सजाया है। वे प्रकाश के कवि हैं किन्तु अन्धकार की अवमानना नहीं करते क्योंकि वही प्रकाश को प्रकाश बनाता है। 'किरणावलि', 'किरणमाला', 'किरणमयी' इत्यादि संग्रहों के अतिरिक्त, 'कमलेश' ने 'अशोक' शीर्षक काव्य भी रचा है जिसकी प्रेरणा भवानीप्रसाद मिश्र एवं विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद' के अशोककाव्यों पर सम्भव है। इनके कुछ छन्द देखें–

1. सुन्दरता की सराहना की सदा, कामना हर्ष की, हास की की है।
याचना की है कभी यदि तो नए यौवन की, नवोल्लास की की है।।
मेरे कवित्व में जीवन क्यों न हो, पहचान पूर्ण विकास की की है।
सत्य को स्नेहाभिनंदन है किया, वंदना मैंने प्रकाश की की है।।

2. कठिनाइयाँ कार्य में दीं तो हमें कृतकार्यता का फल भी तो दिया।
भवसिंधु में छोड़ा तो नाथ! हमें निज नाम का संबल भी तो दिया।।
नहीं दोष तुम्हारा प्रभो! तुमने हमें प्यास दी तो जल भी तो दिया।
दिए संकटों के दल तो हमें संकट झेलने का बल भी तो दिया।।

मेरे प्रकाश

3. मैं भव के भय से छिपूँगा कहाँ, मेरा व्यवस्थित घेरा न छीनो।
मैं मुख ढाँप के रो सकूँगा कहाँ, मेरा सुरक्षित डेरा न छीनो।।
लूट मचाओ न यों उर-देश में, हर्ष का साधन मेरा न छीनो।
मेरी पिपासा अतृप्त सी है अभी, मेरे प्रकाश! अँधेरा न छीनो।।

बालकृष्ण राव

'कौमुदी' (1931 ई.), 'आभास' (1934 ई.), 'कवि और छवि' (1947 ई.), 'रात बीती' (1954 ई.) एवं 'हमारी राह' (1957 ई.) के कवि, 'विक्रान्त सैम्सन' जॉन मिल्टन के अंग्रेजी-महाकाव्य 'सैम्सन एगोनिस्टीज' का काव्यानुवाद-1965 ई. के सफल-अनुवादक, 'कवि-भारती' (1953 ई.) के एक सम्पादक[2], 'कादम्बिनी' (इलाहाबाद) के सम्पादक (1960-61) बालकृष्णराव, आई. सी. एस.[3] (27 दिसम्बर, 1913-75, इलाहाबाद) ने आकाशवाणी के महानिदेशक,[4] इलाहाबाद के नगर प्रमुख, गोरखपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति जैसे उच्च पदों को भी प्रतिष्ठित किया था। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी एवं यथार्थवादी (प्रयोगवाद शाखा) या व्यक्तिवाद-प्रधान

---

[1] सुविख्यात डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' (21/1/1915-5/2/1974) तो थे किन्तु कविता से हट-से गए थे। अन्य 'कमलेश' भी हैं।

[2] सम्पादकत्रयः सुमित्रानंदन पंत, बालकृष्ण राव, नगेन्द्र।

[3] इंडियन सिविल सर्विस, जो अब इंडिअन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस (आई. ए. एस.) कहलाती है। तब अब से बढ़कर दबदबा था।

[4] नाट्यकार-एकांकीकार जगदीशचन्द्र माथुर का स्मरण आता है। यदि आई. सी. एस. हिन्दीसेवियों में जगदीशचन्द्र माथुर, बालकृष्ण राव इत्यादि स्मरणीय हैं तो आई. ए. एस. हिन्दीसेवियों में श्रीलाल शुक्ल, विनोदचंद्र पांडेय 'विनोद', भगवतीशरण मिश्र, देवेश दयालु इत्यादि। 'हिन्दीसेवी प्रशासक', 'हिन्दीसेवी वकील' इत्यादि ग्रन्थ भी प्रकाश में आने चाहिए। 'हिन्दी सेवी नेता' भी–मेरा 'हिन्दीसेवी नेता, दर्शनिक, योगी' ग्रन्थ (1992 ई.) विद्यमान है ही। सामग्री इसी 'इतिहास' की है।

शाखा) युगों में तदनुरूप उत्कृष्ट काव्यसर्जना की तथा अनेक विद्वत्तापूर्ण लेख भी लिखे। मूलतः तमिल-भाषी होते हुए भी सदैव हिन्दीप्रमी रहे। आज 2005 ई. तमिलनाडु के हिन्दी-साहित्यकारों में 'कविताश्री' के सम्पादक नलिनीकान्त अनेक नाम गिनाते हैं; डॉ. बालशौरि रेड्डी, डॉ आर. शौरिराजन, डॉ. एम. शेषण, डॉ. सुब्रह्मणियम् विष्णु प्रिया, डॉ. एम. गोविन्दराजन, डॉ. पी. के. बाल सुब्रह्मणियम, डॉ. एम. सुन्दरम्, डॉ. वाई. एस. एस. एन. मूर्ति, डॉ. श्रीधरन्, डॉ. मधु धवन, डॉ. विद्या शर्मा, डॉ. कमला विश्वनाथन्, डॉ. जयलक्ष्मी सुब्रह्मणियम्। चेन्नै के जवाहरलाल 'मधुकर' भी उत्कट हिन्दी सेवी हैं। अतीत में कोदूरि धीरंग्यचार्य, श्रीमती कमलरत्नम् के कार्य विशिष्ट रहे हैं। किन्तु बालकृष्ण राव की हिन्दीसेवा गुण, परिमाण एवं स्फीति में अप्रतिम रही। वे विख्यात उदारतावादी नेता एवं ऐतिहासिक समाचारपत्र 'लीडर' के प्राण सर सी. बी. वाई. चिन्तामणि के सुपुत्र थे। इन्होंने आई. सी. एस. परीक्षा में सर्वोच्च स्थान प्राप्त किया तथा इसे ठुकरा भी दिया[1]। वे अनेक संस्थाओं से जुड़े। उनकी हिन्दी-सेवाएँ सदैव आदर के साथ याद की जाएँगी। उनकी कविता भी अच्छी हुई है। यदि वे मदिरा-मुक्त होते तो अधिक ख्याति प्राप्त कर सकते थे। उदाहरण देखें–

तुम्हारी वह मधुमय मुस्कान, बनाया जिसने मुझको भ्रांत;
वही फिर कर सकती है आज कष्टदायी विरहानल शांत।
तुम्हारी आशा के अनुरूप प्राणधन! होवे शुभ संयोग;
उसी स्वर्णिमय सुख-प्राप्ति-निमित्त किया करते वियोग का योग।

नयी कविता में भी उन्होंने अच्छी रचनाएँ की हैं। एक अधूरा पर लम्बा उदाहरण प्रस्तुत है–

नदी का रास्ता[2]

नदी को रास्ता किसने दिखाया?
सिखाया था उसे किसने
कि अपनी भावना के वेग को
उन्मुक्त बहने दे?
कि वह अपने लिये
खुद खोज लेगी
सिन्धु की गम्भीरता
स्वच्छन्द बह कर?
इसे हम पूछते आये युगों से
और सुनते भी युगों से आ रहे उत्तर नदी काः
'मुझे कोई अभी आया नहीं था राह दिखलाने;
'बनाया मार्ग मैंने आप ही अपना;
'ढकेला था शिलाओं को;
'गिरी निर्भीकता से मैं कई ऊँचे प्रपातों से;
'वनों में; कन्दराओं में
'भटकती, भूलती मैं
'फूलती उत्साह से प्रत्येक बाधा-विघ्न को
'ठोकर लगाकर, ठेलकर,
'बढ़ती गई आगे निरंतर
'एक तट को दूसरे से दूरतर करती;

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश, भाग 2 में रवीन्द्र 'भ्रमर' का विवरण।
[2] अज्ञेय का 'नदी का द्वीप', तत्त्वतः व्यक्तिवादपरक होते हुए भी कुछ भिन्न है।

'बढ़ी सम्पन्नता से
'और अपने दूर तक फैले हुए साम्राज्य के अनुरूप
'गति को मन्द कर,
'पहुँची जहाँ सागर खड़ा था
'फेन की माला लिये
'मेरी प्रतीक्षा में।
'यही इतिवृत्त मेरा,
'मार्ग मैंने आप ही अपना बनाया था।'....

सुमित्राकुमारी सिन्हा

सुमित्राकुमारी सिन्हा (जन्म विजयादशमी 1914 ई.) के पिता महेशचरण सिन्हा (लखनऊ) वैज्ञानिक एवं हिन्दी में विद्वान् विज्ञान-विषयक लेखक थे, एक मौसिया उपन्यास-सम्राट प्रेमचंद थे तो दूसरे विद्वान् विज्ञान-लेखक एवं प्रख्यात राजनीतिज्ञ सम्पूर्णानन्द। निराला से उनके बेहद निकट सम्बन्ध रहे। उनके पुत्र अजित कुमार ठीक-ठिकाने के प्रयोगवादी कवि एवं जोशीले आलोचक तथा पुत्री कीर्ति चौधरी अज्ञेय की सप्तक-परम्परा (प्रयोगवादी-खेमा) में समाहित कवयित्री हैं, पुत्रवधु स्नेहमयी चौधरी भी कवयित्री हैं। यद्यपि सुमित्रा ने कहानी, बाल-साहित्य, गीतिनाटक इत्यादि में भी हाथ आज़माया है तथापि प्रकृत्या हैं वे कवयित्री ही। 'विहाग', 'आशापर्व', 'पंथिनी', 'आँगन के फूल', 'बोलों के देवता' जैसे कवितासंग्रह उन्हें एक सफल कवयित्री सिद्ध करते हैं। निस्सन्देह, उनका कवि-व्यक्तित्व पुत्र-पुत्री एवं पुत्रवधू के व्यक्तित्वों से श्रेष्ठतर है। उनकी कविता में विद्यावती मिश्र की तरल भावुकता एवं विद्यावती 'कोकिला' की विशद रहस्यदर्शिता के स्थान पर सजग अस्मिता के दर्शन होते हैं। उदाहरण प्रस्तुत हैं–

1.
मैं हर मन्दिर के पट पर अर्घ्य चढ़ाती हूँ,
भगवान एक पर मेरा है!
मन्दिर मन्दिर में भेद न कुछ मैं पाती
है सिद्धि जहाँ साधना वहीं पर आती
मन की गरिमा जिसके आगे झुक जाती
वाणी वर का अभिषेक वहीं कर पाती
मैं हर पूजन-अर्चन पर शीश झुकाती हूँ,
अभिमान एक पर मेरा है!

2.
निशा-नीड़ तज के भले ही विवश से
कहीं भी रहो मुक्त पंछी दिवस के,
क्षितिज की परिधि तक पहुँचकर कहीं तुम
न फिर लौट पड़ना अगर याद आई,
तुम्हें दी विदाई।

नगेन्द्र

आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. नगेन्द्र (जन्म 1915 ई.) की त्रयी को बहुत प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है, यद्यपि भारतेन्दु, महावीर द्विवेदी एवं निराला पर श्रेष्ठ ग्रन्थ लिखते हुए डॉ. रामविलास शर्मा का स्वतन्त्र मार्क्सवाद आलोचक-रूप भी उभरकर सामने आ चुका है। नगेन्द्र ने दिल्ली विश्वविद्यालय में अति-अपेक्षित हिन्दी को पूर्ण-प्रतिष्ठित करने में वैसा ही प्रणम्य कार्य किया जैसा आचार्य श्यामसुन्दरदास ने काशी विश्वविद्यालय में किया था। नगेन्द्र ने हिन्दी-आलोचना को फ़्रायड के कामवाद पर आधृत

मनोविज्ञानवाद से संपृक्त किया किन्तु प्रौढ़ता के साथ रसवाद पर स्थिर हुए। तत्त्वतः रसवाद नितान्त मनोवैज्ञानिक है जैसाकि डॉ. राकेश गुप्त ने अपने हिन्दी-अंग्रेज़ी-ग्रन्थों द्वारा सिद्ध भी किया है। नगेन्द्र रसवादी-मनोविज्ञानवादी आलोचक हैं। अपनी छायावादबद्धता के कारण वे एक संकीर्ण आलोचक सिद्ध होते हैं; मिश्रबन्धु एवं शुक्ल के सदृश स्फीत आलोचक नहीं। उन्होंने, 'विनोद', 'नवरत्न', 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' 'जायसी-ग्रन्थवली की भूमिका' जैसा 'प्रस्थान' या 'प्रस्थानवत्' ग्रन्थ नहीं रचा। उनके आराध्य छायावाद, विशेषतः प्रसाद एवं कामायनी, के क्षेत्र में भी प्रस्थानग्रन्थकार को गौरव नन्ददुलारे वाजपेयी को प्राप्त है। वैसे भी, नंददुलारे-हज़ारीप्रसाद-नगेन्द्र प्रभाव-प्रस्थान-प्रेरणा के त्रित में महावीरप्रसाद-श्यामसुन्दरदास-शुक्ल की बृहत्त्रयी की तुलना में लघुत्रयी ही हैं। किन्तु, 'विचार और अनुभूति', 'विचार और विवेचन', 'विचार और विश्लेषण', 'आधुनिक हिन्दी-कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ, 'कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ', जैसे ग्रन्थों में नगेन्द्र ने छायावाद, कामायनी, शुक्ल, शेखरः एक जीवनी, त्यागपत्र, हिन्दी-उपन्यास, गोदान, उर्वशी, बच्चन इत्यादि पर उच्चकोटि की आलोचना लिखी है, जो कहीं-कहीं विश्व-स्तर का स्पर्श करती दीखती है। नगेन्द्र की भाषा सृजनात्मक विभूति से निष्पन्न है। हिन्दी-आलोचकों में उनकी-सी स्तरीय एवं प्रांजल भाषा कोई नहीं लिख पाया। काव्यशास्त्र-क्षेत्र में भी उनकी देन स्मरणीय है। 'रस-सिद्धान्त', 'रीतिकाव्य की भूमिका', 'देव और उनकी कविता' उनके अन्य श्रेष्ठ ग्रन्थ हैं। साधारणीकरण डॉ. नगेन्द्र का कार्य उन्हें आ. श्यामसुन्दरदास, आ. रामचन्द्रशुक्ल, डॉ. गुलाबराय, डॉ, राममूर्ति त्रिपाठी प्रभृति विद्वानों के साथ प्रतिष्ठित करता है। 'आस्था के चरण' में उनके कृतित्व का स्फीत चयन प्राप्त होता है। 'अर्द्धकथा' बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्धकथानक' का स्मरण करानेवाली गद्य-आत्मकथा है, किन्तु बनारसीदास जैन का 'अर्द्ध' जीवन-सूचक है जबकि नगेन्द्र का प्रवृत्ति-सूचक (उनके जीवन में कम-से-कम आधा ऐसा है जिसको लिख सकना किसी 'उग्र' के ही बूते की बात है)।

प्रायः असंख्य ग्रन्थों के सम्पादक डॉ. नगेन्द्र का 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' नाना-लेखकों द्वारा सामग्री-संकलन का समाहार मात्र है, 'भारतीय साहित्य कोश' विशृंखला किन्तु सूचनासंपन्न स्फीत-ग्रन्थ, 'भारतीय साहित्य का समेकित इतिहास' एक विलक्षण एवं प्रशस्य प्रयास जिसमें भारत की प्रमुख भाषाओं के साहित्यों का एकसाथ विवेचन किया गया है जो अनेक भारतीय भाषाओं में लिखे एक-एक भारतीय साहित्य के वैराट्य के साथ न्याय करता है। पन्त एवं बालकृष्ण राव के साथ सम्पादित 'कवि-भारती' आधुनिक हिन्दी की खड़ीबोली कविता का अच्छा संकलन है। निस्सन्देह, डॉ. नगेन्द्र एक चिरस्मरणीय सम्पादक हैं।

दिनेशनंदिनी डालमिया

'शबनम', 'शारदीया', 'दुपहरिया के फूल', 'वंशी रव', 'स्पन्द' इत्यादि की उल्लेख गद्यगीतकार तथा 'उर-बाती', 'मनुहार', 'सारंग', 'परिछाया' इत्यादि की कवयित्री दिनेशनंदिनी डालमिया (26 फरवरी, 1916, उदयपुर) को अतिरिक ख्याति मिली 'मुझे माफ़ करें' की उपन्यासकार के रूप में जिसमें उन्होंने अपने पति स्वर्गीय सेठ रामकृष्ण डालमिया (1893-1978 ई.) के बहुतपत्नीपूर्ण विलक्षण जीवन की ओर संकेत किया है। भारत के रॉक्फ़ेलर की वे सम्भवतः अकेली पत्नी थीं, जो विवाह से पहले दिनेशनंदिनी चोरडिया के रूप में लिखती थीं, इनकी अनुजा राकेशनंदिनी गुप्त भी कवयित्री एवं गद्यगीतकार हैं परिवार-सम्बद्ध इला डालमिया अज्ञेय की अन्तिम (तृतीय) पत्नी के रूप में जानी जाती हैं। 'मुझे माफ़ करें' नारी के साहस एवं धैर्य का अभिलेख है जिसकी तुलना धर्मवीर भारती की परित्यक्ता पत्नी कान्ता भारती (संप्रति कान्ता पन्त) के 'रेत की मछली' से की जा सकती है। कितना अच्छा होता यदि प्रेमचन्द की प्रथम पत्नी तथा मोहन राकेश एवं अज्ञेय की पूर्वपत्नियाँ भी कुछ लिखतीं! तब पुरुषों के स्वच्छोचार पर प्रामाणिक वृत्तों का साहित्य बलवत्तर होता। श्रीमती डालमिया का 'प्रिय! कब अवगुंठन खोलोगे?' शीर्षक गीत बहुत सुन्दर है–

नैनों में निद्रा लहराती
प्रणय-शिखा अंचल फहराती,
वाणी वीणा में छिप जाती
क्या न अरे, मुझसे बोलोगे?
प्रिय, कब अवगुंठन खोलोगे?
सखियों ने शृंगार कराया,
श्वेत पुष्प पर्यंक सजाया

रजत-थाल दीपक रखवाया,
प्रेम-सुधा पी कब डोलोगे?
प्रिय, कब अवगुंठन खालोगे?
बीत रहीं उजियाली रातें
मधुर मलय भोली-सी बातें
अभिलाषा ऊर्मिल संघातें
निशिगंधा पर कब सो लोगे?
प्रिय, कब अवगुंठन खोलोगे?
अर्घ्य लिए मैं खड़ी हुई हूँ
स्वपन अनागत अड़ी हुई हूँ
अब चिन्तन में पड़ी हुई हूँ
कब सुहाग कुंकुम घोलोगे?
प्रिय, कब अवगुंठन खोलोगे?

जानकीवल्लभ शास्त्री

'काकली' (1935 ई.) के संस्कृत-कवि एवं 'राधा' महाकाव्य (1970 ई.) के स्मरणीय हिन्दी-कवि आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री (1916 ई.—मैगरा, ज़िला गया, निवास मुज़फ़्फ़रपुर, बिहार) ने 'रूप-अरूप' (1936 ई.) से 'पाषाणी' (1958 ई.) तक की स्वच्छन्दतावाद से यथार्थवाद तक की व्यापक काव्ययात्रा तो की ही है, 'स्मृति के वातायन' (1968 ई.) के महत्त्वपूर्ण संस्मरणकार एवं 'महाकवि निराला' (1963 ई.) के आलोचक के रूप में भी प्रतिष्ठा प्राप्त की है। वैसे, वे कहानीकार भी हं। व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों में वे निराला से बहुत अधिक प्रभावित हुए हैं। उन्हें आकार-प्रकार (बड़े-बड़े बाल इत्यादि) से आवास-प्रवास (मुज़फ़्फ़रपुर में निराला-निकेतन,[1] प्रवास में निराला-अन्दाज़) तक दूसरा निराला कहा जा सकता है।[2] एक बार उनकी पत्रिका में ही उनके चित्र को देखकर डॉ. रामदरश मिश्र ने मुझसे कहा था, "सब निराला ही बनना चाहते हैं।" किन्तु शास्त्री जी सचमुच एक अलग निराला ही हैं। उनकी कविता में दर्शन अनुभव एवं अनुभव दर्शन बन गया है तथा संगीत के सुरम्य प्रयोग भी मनोहारी हुए हैं। आदर्श की अवहेलना न करते हुए भी यथार्थ की प्रतिष्ठा करने वाले कवि के रूप में भी वे स्मरण-योग्य हैं। 'वियोगी', 'द्विज', 'प्रभात', 'नेपाली', आरसीप्रसाद सिंह, ठाकुरप्रसादसिंह, रामदयाल पांडेय, आनन्दशंकर माधवन्, डॉ. रामवरण चौधरी इत्यादि गण्यमान्य बिहारी कवियों में जानकीवल्लभ शास्त्री को एक सुनिश्चित स्थान प्राप्त है। संस्कृत के विद्वान् होते हुए भी उनकी हिन्दी सर्वत्र सहज एवं सरल है। मोहनलाल केडिया हिन्दी साहित्य न्यास ने 1992 ई. का साधना-पुरस्कार (एक लाख-ग्यारह हज़ार रुपए, प्रशस्तिपत्र, अंगवस्त्रम्) इनको प्रदान कर प्रशस्य कार्य किया है। उ. प्र. हिन्दी संस्थान (लखनऊ) ने भारतभारती, पुरस्कार प्रदान किया है, जो उचित है। उन्होंने उपन्यास-रचना भी की है। पुरस्कार साहित्यकारों का लाभ तो करते ही हैं! इनकी कोरी निन्दा उचित नहीं उनकी कविता 'पूर्णता' की कविता है—

मेरी शिथिल मंद-गति ही क्यों, गिरि, वन, सिन्धुधार भी देखो।....
आँखों का खारा जल ही क्यों, उर का मधुर प्यार भी देखो।....
ऊपर सूनी डाली ही क्यों, नीचे हरसिंगार भी देखो।....
सोने का सपना ही क्यों, तुम अपना कंठ-हार भी देखो।

जानकीबल्लभ शास्त्री को कुत्तों, बिल्लियों, गायों इत्यादि के प्रति ऋषि स्मरणकारी अद्वय-भाव प्राप्त है। वे इनकी समाधियाँ बनवाते हैं। बछड़ों को भरपेट दूध पिलवाते हैं। पत्नी को 'बड़े भाई' कहते हैं। उनके व्यक्तित्व की विलक्षणता अप्रतिम है।[3]

---

1. डॉ. मुचकुंद शर्मा (हुसैनगंज, पटना) ने तो अपने मुहल्ले का नाम ही निरालानगर रख दिया है। वे भी कवि हैं। विद्वान् भी।
2. जानकीवल्लभ शास्त्री के अनेक भक्त हैं। बाराबंकी को स्व. त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' एवं मोहन (फ़रीदाबाद, हरियाणा) के शास्त्री बलदेवराज 'शान्त' (जिन्होंने अपने 'वन्दना के बोल' उन्हें समर्पित किए हैं) इनमें से विशेष उल्लेखनीय हैं।
3. द्रष्टव्य 'निराला पत्रिका' त्रयमासिक (उन्नाव) के अप्रैल-जून, 2002 अंक में 'तपोवन में देवदूत के साथ चार दिन' (डॉ. कमलाशंकर अवस्थी), पृष्ठ 26-30।

यथार्थवादी युग
(1940 ई. से)

- समाजपरक-यथार्थवादी साहित्य
  - वादबद्ध (प्रगतिवादी)
    - डॉ. रामविलास शर्मा, राहुल, यशपाल, नागार्जुन, मुक्तिबोध, मोहन 'राकेश', कमलेश्वर इत्यादि।
    - प्रवृत्तियाँ: द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद, वर्गसंघर्ष, रूसवाद, भारतीयता-विरोध इत्यादि।
  - वादमुक्त (प्रगतिशील)
    - दिनकर, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल नागर, रामदयाल पाण्डेय इत्यादि।
    - प्रवृत्तियाँ: शोषण-विरोध, समतावाद, राष्ट्रवाद, मानवतावाद इत्यादि।
- व्यक्तिपरक-यथार्थवादी साहित्य
  - वादबद्ध (पश्चिमवादी)
    - अज्ञेय, धर्मवीर 'भारती', निर्मल वर्मा इत्यादि।
    - प्रवृत्तियाँ: व्यक्तिवाद, कुण्ठावाद इत्यादि
  - वादमुक्त (भारतवादी)
    - बच्चन, लक्ष्मीनारायण मिश्र, भवानीप्रसाद मिश्र, विष्णु प्रभाकर, लक्ष्मीनारायण लाल इत्यादि।
    - प्रवृत्तियाँ: व्यक्ति-विकास, गाँधीवाद, राष्ट्रवाद इत्यादि।
- (पारम्परिक) यथार्थवादी नव-साहित्य
  - नवरहस्यवादपरक
    - पंत, अज्ञेय, डॉ. भगवान्‌दास, डॉ. सम्पूर्णानन्द, स्वामी मुक्तानन्द परमहंस, आनन्दशंकर माधवन्, आ. रजनीश इत्यादि।
    - प्रवृत्तियाँ: मनोवैज्ञानिक-अध्यात्मवाद, मानवतावाद इत्यादि।
  - रामपरक
    - पंत, नवीन, रामकुमार वर्मा, नरेश मेहता इत्यादि।
    - प्रवृत्तियाँ: मनोवैज्ञानिक-चित्रणवाद, मानवतावाद इत्यादि।
  - कृष्णपरक
    - दिनकर, धर्मवीर 'भारती', जानकीवल्लभ शास्त्री इत्यादि।
    - प्रवृत्तियाँ: मानवतावाद, शान्तिवाद, आस्थावाद इत्यादि
  - शिवपरक
    - दुष्यन्तकुमार, 'भारतीनन्दन', सुधाकर शर्मा 'सुधाकर' इत्यादि।
    - प्रवृत्तियाँ: सुधारवाद, अध्यात्मवाद इत्यादि।
  - बुद्धपरक
    - लक्ष्मीनारायण मिश्र, मोहन 'राकेश', भवानीप्रसाद मिश्र, विनित विक्रम बौद्ध, जगदीश गुप्त, विनोद चन्द्र पाण्डेय 'विनोद' इत्यादि।
    - प्रवृत्तियाँ: अहिंसावाद, शान्तिवाद इत्यादि।
  - विविध
    - शत शत कवि, उपन्यासकार, नाट्यकार इत्यादि।
    - प्रवृत्तियाँ: वर्णनवाद, राष्ट्रवाद इत्यादि।

---

1. मनोहारी ब्रजभाषा-काव्य—श्यामविहारी शर्मा 'विहारी', वचनेश, 'ब्रजनन्दन', केशवदेव शुक्ल 'केशव', 'रशीद', 'सेवकेन्द्र', 'राजेश', गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, प्रकाश द्विवेदी इत्यादि द्वारा प्रणीत।
2. स्तरीय एवं प्रगतिशील अवधी-काव्य—पढ़ीस, वंशीधर शुक्ल, 'मृगेश', 'भुशुंडि', रमई काका, विनीत विक्रम बौद्ध (रामखेलावन वर्मा), श्यामसुन्दर मिश्र 'मधुप', 'काका बैसवारी, सत्यधर शुक्ल, डॉ. रामबहादुर मिश्र इत्यादि द्वारा प्रणीत। परमानन्द जड़िया, महेश अवस्थी, दूधनाथ शर्मा 'श्रीश' इत्यादि अपेक्षाकृत-पारम्परिक हैं।
3. भोजपुरी, कुमाऊँनी, बघेली, राजस्थानी, बुंदेलखण्डी, मैथिली, अंगिका इत्यादि विभाषाओं (उपभाषाओं) में उत्कृष्ट सृजन।

यथार्थवादी युग

प्रस्तावना

स्वच्छन्दतावादी कविता अतिशय कल्पनाप्रवण एवं शिल्पसम्पन्न थी। स्पष्ट है कि वह नितान्त सहज कविता न थी। ऐसी कविता अधिक समय तक नहीं चल सकती—सुन्दर स्वप्न के दो क्षण होते हैं, स्वच्छन्दतावादी कविता के दो दशक हो गए! दूसरे, स्वच्छन्दतावादी कविता के वादबद्ध कवि (प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी) प्रकृत जीवनकाव्य कम ही रचते थे: गाँधी ने असहयोग आन्दोलन (1920-22 ई.) उस समय वापस लिया[1] जब गोरी सरकार उखड़ती-सी लग रही थी, यह उनका स्वेच्छाचारपूर्ण व्यक्तिगत निर्णय था जिस पर कांग्रेसी नेता बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तक ने करुणा-कलित 'पराजय-गीत' गाया; सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1930 ई. से) एवं 1935 ई. के प्रशासनिक सुधार एवं परिवर्तन ऐतिहासिक महत्त्व के थे; 1931 ई. में द्वितीय विश्व-युद्ध का आरम्भ आज तक के विश्व की सबसे बड़ी घटना थी; किन्तु स्वच्छन्दतावादी कवियों पर इस सब का कोई प्रभाव नहीं पड़ा! कठोर आलोचक कह सकते हैं कि स्वच्छन्दतावादी कविता विश्व-पराङ्मुख थी, जीवन-निरपेक्ष थी। सुमित्रानन्दन पन्त ने ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार ('पल्लव' के प्रकाशन एवं उसके 'प्रवेश' के छायावाद का 'घोषणापत्र' होने) पर स्वच्छन्दतावाद का नेतृत्व किया था; उन्होंने ही 'युगान्त' के द्वारा स्वच्छन्दतावाद के विगत होने की घोषणा की। उनके शब्द हैं, ''छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसका पास, भविष्य के लिए उपयोगी, नवीन आदर्शों का प्रकाशन, नवीन भावना का सौन्दर्य-बोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। वह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था।.... एक ओर वह निगूढ़, रहस्यात्मक, भावप्रधान (सब्जेक्टिव) और वैयक्तिक हो गया, दूसरी ओर केवल टेकनीक और आवरण मात्र रह गया।''.

असहयोग आन्दोलन की कुंठा के कारण दुर्बल राष्ट्र में सविनय अवज्ञा आन्दोलन सर्वतः सफल कैसे होता? अतः अंग्रेज़ ''एक वर्ष के अन्दर स्वराज्य'' (गाँधी) के खोखले वायदों से क्षुब्ध जनता को थोड़े-बहुत सुधारों से बहलाते हुए अपने पूँजीवादमूलक-साम्राज्यवाद के रथ पर गतिशील रहे। गाँधी ने 1931 ई. में चन्द्रशेखर आज़ाद और भगतसिंह इत्यादि की शहादत पर जो हिचकिचाहट दिखाई उसके कारण उनके विरोध का वातावरण भी बना। वे पंजाब जाने योग्य तक न रहे। ''मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी'' कहावत इन्हीं दिनों चल रही थी। वास्तव में गाँधी स्वतन्त्रता-प्राप्ति की स्थिति में सारा श्रेय स्वयं लेना चाहते थे। जब उन्होंने देखा कि परिस्थिति हाथ से निकल रही है, लेने के देने पड़े रहें हैं, तब अपने जीवन का तीसरा ऐतिहासिक आन्दोलन छेड़ा—असहयोग आन्दोलन, सविनय अवज्ञा आन्दोलन एवं 'भारत-छोड़ो आन्दोलन' (9 अगस्त, 1942) में से अन्तिम तक आते-आते जनता एकदिशाहीन हो चुकी थी अतः इसमें उसने अहिंसा को तिलांजलि दे दी और जयप्रकाश नारायण, राममनोहर लोहिया, अरुणा आसफ़ अली इत्यादि के नायकत्व को स्वीकार करते हुए वे गोरों के दाँत खट्टे करने में सफल रहे। 1942 ई. के आसपास ही बंगाल का वह भयानक अकाल पड़ा जिसमें पैंतीस लाख लोग अकाल-कालकवलित हुए। 1942 ई. का आन्दोलन विशुद्ध जनआन्दोलन था जो एक ओर गोरे शासकों के पैशचिक अत्याचारों से जूझा, दूसरी ओर कांग्रेस की ढुलमुल नीति (दिनकर जैसे कांग्रेसी तक ने 'ओ द्विधाग्रस्त शार्दूल बोल' कविता में गाँधी के सन्दर्भ में 'क्लीबधर्म' शब्द का प्रयोग किया) से, तीसरी ओर पहले विदेशी कुशासन से क्रुद्ध किन्तु सेविएट यूनिअॅन के अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस इत्यादि मित्रराष्ट्रों से मिलने पर पानी-पानी हुए, परकीयता-प्रेरित साम्यवादियों से। 1942 ई. से चल रहे विराट् जन-आन्दोलन, 1945 ई. के नौसेनिक-विद्रोह, 1945 ई. में द्वितीय विश्व युद्ध समाप्त होने के अनन्तर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की आज़ाद हिन्द फौज के सैनिकों पर चलाए गए मुकद्दमे में शत-प्रतिशत भारतीय सैन्याधिकारियों की उनके प्रति हार्दिक सहानुभूति (जिसके परिणामस्वरूप उन्हें छोड़ना पड़ा) इत्यादि ने अंग्रेज़ों के हौंसले पस्त कर दिए। सर्वाधिक निर्णायक तत्त्व सिद्ध हुआ द्वितीय विश्व-युद्ध (1939-45 ई.), जिसने ब्रिटेन को अमेरिका एवं सोविएट यूनिअॅन से बहुत कम शक्तिशाली बना डाला। यदि ब्रिटेन अड़ियल रुख अपनाता तो भारत में वही होता जो चीन में हुआ—जब अमेरिका जैसी विश्व की दो में एक महाशक्ति के सम्पूर्ण सहयोग के बावजूद, जनरलिसिमो

---

[1] असहयोग आन्दोलन की परकाष्ठा पर उसे अचानक वापस लेने से राष्ट्र का वह पतन सम्भव हो सका जिसका परिणाम विभाजन निकला—यदि तब गाँधी लाभ उठाते तो विभाजन का प्रश्न ही न उठता! लिओनॉर्ड मॉसूले ने 'लास्ट डेज़ ऑफ़ ब्रिटिश रूल इंडिया' ग्रन्थ में 1999 ई. तक गुप्त रखे जाने वाले समझौते का उल्लेख किया है। प्रसिद्ध उपन्यासकार-कहानीकार ('चारुचित्रा', 'शुभ', 'युगबोध' जैसे उपन्यासों एवं 'सितारे अँधेरे के', 'टुकड़े ज़िन्दगी के' जैसे कहानीसंग्रह के प्रणेता) श्री कैलाश ने 'स्वराज जिन्दाबाद' (उपन्यास) में इसका संकेत किया है। किन्तु यह आज (2005) तक प्रकाश में नहीं आया।

च्यांग काई शेक (जो अपने समय में विश्व के 'पाँच बड़ों' में से एक थे—आज भी चीन, अमेरिका, रूस सोविएट यूनिअॅन के विघटन के बाद), ब्रिटेन और फ्रांस के साथ पाँच बड़ों में एक रूप में संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद् का निषेधाधिकार (वीटो) सम्पन्न स्थायी सदस्य है, के नेतृत्व के बावजूद, सोविएट यूनिअॅन के सीमा-सामीप्य के कारण चीन साम्यवादी हो गया तब अपेक्षाकृत निर्बल एवं अशक्त-नेतृत्वरहित भारत को उसी सीमा-सामीप्य के कारण ही (या भी) साम्यवादी होने से कौन बचाता? प्रधानमन्त्री एटली ने ब्रिटिश संसद में सुस्पष्ट घोषणा की कि अब हम महाशक्ति नहीं रहे! अंग्रेजों ने भारत को द्वितीय विश्व-युद्ध की प्रतिक्रिया के कारण निर्बल हो जाने तथा इतिहास-चक्र को पूँजीवादी-साम्राज्यवादी दिशा के विपरीत घूम जाने के कारण छोड़ा। दूसरा कारण इस देश की भयावह अशान्ति थी। नेतृत्व अंग्रेज़-संस्थापित तथा राजाओं, पूँजीपतियों, वकीलों वगैरह द्वारा संचालित कांग्रेस के हाथ से निकलकर जनता में बिखर चुका था। सर्वत्र हिंसा की आशंका थी—मतान्ध विदेशी आक्रान्ता सालार मसऊद ग़ाज़ी का वध करने वाले, कालिंजर में पठान शेरशाह का वध करने वाले, छत्रसाल के द्वारा आततायी औरंगजेब को हिला देने वाले, 1857 ई. में विदेशी गोरों से भयानक संघर्ष करने वाले, 1942 ई. में उन्हीं से विकटतम लोहा लेने वाले आज के उत्तर प्रदेश ने पथ प्रशस्त कर दिया था! नौसैनिक-विद्रोह ने भावी सर्वसैनिक विद्रोह की सम्भावना की चेतावनी दे दी थी। अंग्रेज़ जान गया कि अब यहाँ से बोरिया-बिस्तर बाँधकर गोल होने का समय आ गया है। ऐसे विषम समय में उसने विक्टोरिया के वंशज रीअर-एडमिरल वाइकॉउंट लॉर्ड लुई मॉउन्टबैटेन ऑफ़ बर्मा को लाट[1] (गॉवर्नर-जेनरल ऐंड वाइसरॉय) बनाकर भेजा। यह व्यक्ति भारत को टुकड़े-टुकड़े करने के लिए भेजा था जो अपने उद्देश्य में सफल रहा। लॉर्ड, लेडी एड्वीना[2] एवं बेटी पॉमीला से नेहरू बेहद प्रभावित हुए। परिणाम यह हुआ कि मॉउंटबैटेन की 15 अगस्त[3] (1945 ई.) को जापान नौसैनिक-विजय का दिवस भारत का स्वतन्त्रता-दिवस बनाया गया, बाइस-प्रतिशत मुसलमानों को भारत का तीस-प्रतिशत भाग दिया, विभाजन के पक्ष में मतदान करने वालों को भारत में बनाए रखा गया जबकि पाकिस्तान से हिन्दू-सिख खदेड़ बाहर किए गए, लाहौर से मुसलमान भाग रहे थे कि यह भारत में जा रहा है किन्तु वह पाकिस्तान की झोली में डाल दिया गया, चटगाँव का बौद्धबहुत क्षेत्र पाकिस्तान को प्रदान किया गया, कश्मीर का 78000 वर्ग-किलोमीटर क्षेत्र आक्रान्ता पाकिस्तान के क़दमों पर डाल दिया गया (जिसकी निन्दा तत्कालीन कश्मीरी-सेनानायक बिग्रेडियर घनसारासिंह ने की है, देशभक्त प्रो. बलराज मधोक ने की है, कूटनीतिज्ञ-पत्नी विदुषी स्व. डॉ. कमलारत्नम् ने की है)! यही नहीं, गाँधी ने अनशन करके पाकिस्तान को पचपन करोड़ रुपए दिलाए (जबकि पाकिस्तान से भारत को तीन अरब रुपए मिलने थे जो कभी नहीं मिले)। नेहरू के शान्ति-अभियान में प्रतिवर्ष करोड़ों-करोड़ों रुपए सर्फ़ हुए। जो राष्ट्र फलाफल न देखकर अन्ध-व्यक्ति पूजा करता है, वह उन्नत एवं बलवान नहीं हो पाता; भारत इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। खेद है कि साहित्यकारों ने भी इस दिशा में प्रतिक्रियावादी होने का परिचय मात्र दिया है। यशपाल ने 'गाँधीवाद की शव-परीक्षा' लिखी, किन्तु उन्हीं का 'झूठा-सच' एकपक्षीय-सा रह गया। डॉ. लोहिया ने नेहरू पर 'पच्चीस हज़ार रुपए प्रतिदिन' तो लिखा, किन्तु गाँधी नाम की माला भी जपते रहे। स्व. किशन पटनायक ने 'विकल्पहीन नहीं है दुनिया' में गाँधी की कामुकता पर प्रकाश तो डाला, किन्तु भक्ति-भावना में आँच नहीं आने दी। उपन्यासकार गुरुदत्त ने गाँधी, नेहरू इत्यादि कीढकलई तो खोली है, किन्तु उसका आधार साम्प्रदायिक माना जाता है। अधिकांश साहित्यकारों ने गाँधी-नेहरू की स्तुति कर भारी लाभ उठाए। खेद है कि इनमें पन्त, बच्चन, दिनकर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र जैसे स्तरीय साहित्यकार भी सम्मिलित हैं। ऐसा भी लिखा जाना चाहिए—

लाशों के पहाड़ पर महापुरुष

अहिंसा की टेर, लाशों के ढेर
दस लाख शव, महानता नव
दस लाख लाशों को एक-पर-एक रख, बेहद ऊँचाई लख

---

1. लॉर्ड से बना शब्द।
2. 'माई डेज़ विद नेहरू' (मथाई), 'इंडियन विंस फ़्रीडम' (मौलाना आज़ाद), 'दि गिल्टी मेन ऑफ़ इंडिआज़ पार्टीशन' (लोहिया), 'मॉउन्टबैटेन' (स्पीगूलर) इत्यादि।
3. 1947 ई. से पूर्व, 15 अगस्त को भारतीय इतिहास की कोई महान् घटना न घटी थी। यह स्वतन्त्रता-दिवस वस्तुतः मॉउन्टबैटेन-दिवस है। इससे तो 9 अगस्त ठीक रहता।

उन पर चढ़ता गया, महिमा में बढ़ता गया
सारे विश्व ने देखा, महानता का लेखाः
यह नव-नैपोलिअॅन, पर इसका मौलिक फ़न!
पूजा संसार ने, भारत की हार ने
नोटों पर 'महात्मा'—क्यों न हो तुम घना?
सिक्कों पर मुस्कान—सुल्तानी पहचान?
टिकट पर आकार—क्यों न हो अनाचार?

—रामप्रसाद मिश्र

सितम्बर, 1947 में कुछ ज़िज्ञासु युवक इतिहासकार डॉ. ईश्वरीप्रसाद (1888-1986 ई.) के पास गए और पूछा कि स्वतन्त्रता के विषय में उनके क्या विचार हैं? उनका उत्तर था कि स्वतन्त्रता के नाम पर भारत में पिंडारी राज्य स्थापित किया जा रहा है और यह बात चालीस साल बाद एकदम स्पष्ट हो जाएगी! जिज्ञासुओं में एक ने इतिहासकार के उद्‌गार ठीक चालीस साल बाद ही प्रकाशित किए। अंग्रेज़ों ने भारत का शासन उस कांग्रेस को सौंपा जो स्वयं अंग्रेज़ द्वारा संस्थापित थी, पूँजीपतियों-वकीलों-ज़मीदारों वगैरह की संस्था थी, अंग्रेजी की भक्त थी—जिसने तिलक पर जूता चलाया था, सुभाष पर जूता चलाया था और उन्हें देश से बाहर भागने के लिए विवश किया था, जिसकी भेदवादी नीति के कारण मालवीय, लाजपतराय, भाई परमानन्द, डॉ. हेडगेवार, मानवेन्द्रनाथ राय, खरे इत्यादि को हटने पर विवश होना पड़ा था तथा समाजवाद के मुखौटे के कारण नरेन्द्रदेव, जयप्रकाश, लोहिया, अच्युत पटवर्द्धन इत्यादि को। गाँधी की 'डिक्टेटर' (प्रत्येक आन्दोलन साक्षी है) बनने की हसरत के कारण जिन्ना वगैरह पहले ही कांग्रेस से अलग हो चुके थे। कांग्रेस ने राष्ट्र की राजनीति को इतना हासमय कर दिया है कि विरोधी भी उसी के नाज़-नक्श पर चलने के लिए मजबूर हो गए लगते हैं। भ्रष्टाचार युगधर्म बन गया है जिसे नागनाथ भी बढ़ावा दे रहे हैं, साँपनाथ भी (शासनदल भी, विरोधी दल भी)। कोई पार्टी गंगाजल नहीं।

लोकतन्त्र की असफलता की कहानी 1947 ई. से ही शुरू हो गई थी। धर्मनिरपेक्षता के नाम पर सांप्रदायिकता और आरक्षण के नाम पर जातिवाद को लगातार बढ़ावा दिया गया। नेपाल-नरेश त्रिभुवन भारत के हिन्दूराष्ट्र-हिन्दूराज्य होने पर विलय को प्रस्तुत थे, किन्तु नेहरू जानते थे कि उनकी गद्दी बन्धक बनाकर रखे गए मुसलमानों तथा ईसाइयों के बिना सुरक्षित नहीं रह सकेगी अतः नट गएः धर्मनिरपेक्षता को सांप्रदायिकता का रूप नेहरू ने ही प्रदान किया था। आज धर्मनिरपेक्षता राजनीति का कुष्ठ बन गई है। जनता को पूँजीवाद-पोषक समाजवाद के मायाजाल में फँसाया गया। लोकतन्त्र की असफलता तो इसी से सिद्ध है कि जनसंख्या में से प्रायः पचास प्रतिशत मतदाता होते हैं जिनमें से प्रायः पचास प्रतिशत ही मतदान करते हैं (जनता जानती है कि उसे पिसना है—''कोउ नृप होइ हमैं का हानी'' का मन्थरा-कथन आज सार्वभौम-कथन बन गया है—नागनाथ या कांग्रेस आए अथवा साँपनाथ या कोई-सा विरोधी-दल!), जिनमें से प्रायः आधे से कम कांग्रेस को मत देते रहे हैं (शेष मत असंख्य अवसरवादी विरोधी दलों में बँटकर नष्ट हो जाते रहे हैं)। धर्मनिरपेक्षता की असफलता इसी से स्पष्ट है कि आए दिन दंगे होते हैं, कश्मीर-घाटी में 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के उद्‌घोष के साथ 15 अगस्त को भारत के स्वतन्त्रता-दिवस पर काला-दिवस (जिसमें बन्द या हड़ताल रहती है) मनाया जाता है और वहाँ 1947 ई. के 10 प्रतिशत से 1991 ई. में 1 प्रतिशत हिन्दू रह गए थे और अब शेष भी खदेड़े जा चुके हैं। वहाँ मन्दिर-विध्वंस एक साधारण बात है। कश्मीर-समस्या पर प्रो. बलराज मधोक, श्री जगमोहन, श्री भगतराम जैस्सल इत्यादि ने वस्तुपरक अंग्रेज़ी-ग्रन्थ लिखे हैं। नागालैण्ड में ''नागालैण्ड फ़ॉर क्राइस्ट'' का नारा बेहद लोकप्रिय है। नितान्त अल्प जनसंख्या एवं भारी केन्द्र-दत्त व्यय के बावजूद नागालैण्ड-मिज़ोरम-मेघालय (वस्तुतः असम के तीन जनपद) तीन ईसाई-राज्य बना दिए गए हैं, अरुणाचल प्रदेश के बौद्ध-राज्य की भी ठीक यही स्थिति है। इन चार राज्यों में कोई अनुमतिपत्र के बिना घुस तक नहीं सकता। कश्मीर में कोई भारतीय भूमि इत्यादि नहीं खरीद सकता। समाजवाद के नारे का खोखलापन तो इसी से सिद्ध है कि प्रायः आधी जनता निर्धनता-रेखा से भी नीचे बिलबिला रही है, शेष में आधी से अधिक निर्धत है! भारत में संसार के सर्वाधिक दरिद्र, क्षुधाग्रस्त, अर्द्धक्षुधाग्रस्त, कुपोषणग्रस्त, आवासरहित, अन्धे, कुष्ठरोगी, क्षयरोगी, मलेरिया रोगी, एड्स रोगी निवास करते हैं। भारत में संसार के सर्वाधिक भिखारी निवास करते हैं। भारत में संसार की सर्वाधिक वेश्याएँ निवास करती हैं। और, हमारे भारतद्रोही तथाकथित 'नेता' अफ्रीका-कोष, विश्व-पर्यावरण कोष पाकिस्तान इत्यादि में डालकर झोंकते रहते हैं। भारत का नेतृत्व देशद्रोही सिद्ध हो चुका है।

धर्मनिरपेक्षता के विविध पक्षों पर साम्यवादी यशपाल, कृष्णचन्दर, भीष्म साहनी इत्यादि उपन्यासकारों ने लिखा है, यज्ञदत्त जैसे कांग्रेसी उपन्यासकारों ने लिखा है, गुरुदत्त जैसे हिन्दूवादी उपन्यासकारों ने लिखा है, किन्तु गहनतम राजनैतिक षड्यन्त्रों का पर्दाफ़ाश कोई नहीं कर सका। कहानीकारों में कैलाश[1] कल्पित ने अच्छा लिखा है, किन्तु परत-दर-परत सच्चाई वे भी नहीं खोल पाए। गाँधी इत्यादि पर गुरुदत्त, बलराज मधोक, विद्यानन्द 'विदेह' इत्यादि ने प्रहार किए हैं तथा स्व. ब्रह्मदत्त भारती ने तो 'गाँधी एंड गाँधीइज़म अन्मास्क्ड (वाज़ गाँधी ए ट्रेटर?)' तक लिख डाला है। मैंने वादमुक्त वस्तुपरक 'कच्चा चिट्ठा' लिखा है।

पिछले लगभग साठ वर्ष द्वितीय विश्व युद्ध (जिस पर सियारामशरण, 'वियोगी', दिनकर इत्यादि ने लिखा है), बंगाल के अकाल (जिस पर बच्चन इत्यादि कवियों तथा अमृतलाल नागर, रांगेय राघव, रामचन्द्र तिवारी इत्यादि गद्यकारों ने पर्याप्त लिखा है—'बंगाल का अकाल और हिन्दी-साहित्य' आज भी शोध का अच्छा विषय है), भारत-विभाजन (जिस पर गुरुदत्त, यशपाल, यज्ञदत्त, भीष्म साहनी, देवेन्द्र सत्यार्थी, बलराज मधोक इत्यादि ने लिखा है तथा डॉ. अम्बेडकर कृत 'थॉट्स ऑन पाकिस्तान' एवं डॉ. राजेन्द्रप्रसाद कृत 'खंडित भारत' या 'इंडिआ डिवाइडेड' तो बौद्धिक-क्लासिक्स हैं ही—'भारत-विभाजन और हिन्दी-साहित्य' आज भी शोध का गम्भीर विषय है), देशी-शोषण, लोकतन्त्र-नाटक, धर्मनिरपेक्षता-पांखड, समाजवादी-हथकंडे इत्यादि (जिन पर नागार्जुन, श्रीलाल शुक्ल, 'धूमिल' इत्यादि ने अच्छा लिखा है) के वर्ष रहे हैं। ''साहित्य समाज का दर्पण है'' के निकष पर 1940-2000 का खरा साहित्य तो नहीं मिलता क्योंकि प्रशासनदत्त लाभों का परिहार सरल नहीं, प्रशासनभयमुक्ति कठिन है, साहित्यकार राजनैतिक दलों के पिछलेगुवे बनकर देशी-विदेशी लाभों के दास बन गए हैं; किन्तु कुछ-न-कुछ लिखा अवश्य गया है जिसमें थोड़ा-सा ठीक-ठाक भी है।

यथार्थवाद के अनुरूप परिस्थितियाँ

द्वितीय विश्व-युद्ध (1939-45) की अपार एवं अभूतपूर्व प्रलय-लीला से बढ़कर यथार्थोद्दीपन की सामग्री कहाँ मिल सकती थी? गाँधी ने बहुमत द्वारा नियमानुसार 'राष्ट्रपति' (कांग्रेस-अध्यक्ष) पद पर निर्वाचित सुभाष को ''डॉ. पट्टाभि[2] की हार मेरी हार है'' कहते हुए पदत्याग के लिए विवश किया। यह अधिकार-लिप्सा के कठोर यथार्थ की ही सामग्री थी। कालान्तर में गाँधी[3] के उत्तराधिकारी नेहरू ने राजर्षि टंडन को ठीक इसी पद्धति पर पदत्याग हेतु विवश किया था! नेहरू आधा-दर्जन बार कांग्रेस-अध्यक्ष रहे, इंदिरा एवं राजीव प्रायः आजीवन-अध्यक्ष बने, अब सोनिया गाँधी है। किसी को यह भी ध्यान नहीं रहा कि तिलक, लालबहादुर शास्त्री, मोरारजी देसाई जैसे शीर्षस्थ नेता कभी कांग्रेस-अध्यक्ष नहीं बने; गोखले, गाँधी, पटेल जैसे शीर्षस्थ नेता केवल एक-एक बार कांग्रेस-अध्यक्ष बने। गाँधी के ''एक वर्ष में स्वराज्य'' का 'सत्य' प्रकट हो चुका था। 1942 ई. के प्रचण्ड स्वातन्त्र्य-संग्राम में अहिंसा के धज्जे उड़ गए। 1942 ई. का भयानक आन्दोलन यथार्थ को ही उत्तेजित कर सकता था। 1942-43 ई. का बंगाल का हृदयविदारक अकाल, 1946-47 ई. के पाशविक सांप्रदायिक दंगे, 1947 ई. में भारत का विभाजन, 1948 ई. में गाँधी की नृशंस हत्या इत्यादि से केवल यथार्थ को ही स्फुरण प्राप्त हो सकता था। रवीन्द्र के स्वच्छन्दतावादी-अन्तर्राष्ट्रीयतावाद के पुर्ज़े-पुर्ज़े उखड़ चुके थे, गाँधी का स्वच्छन्दतावादी रामराज्य रावरणराज्य से भी बदतर सिद्ध हो चुका था (रावणराज्य में सीता अशोकवन में रखी गई थीं जबकि भारत-पाक दोनों ने नारी पर अमानवीय अत्याचारों के 'कीर्तिमान' स्थापित किए), 1947 ई. के कश्मीर पर पाक-आक्रमण में भारत की 78000 वर्ग किलोमीटर भूमि आक्रान्ता को भेंट कर दी गई, चीन ने पहले 28000 वर्ग-भूमि किलोमीटर भूमि पर अधिकार किया और बाद में 1962 ई. का घोर अपमानजनक आक्रमण, देश संयुक्त राज्य अमेरिका के 'पी एल-480' सड़े-गले अन्न के बल पर दुर्बल साँसों का भार ढोने पर विवश था—इतने पर भी विश्वनेता-व्यामोही देश-विदेश में होने वाले सम्मेलनों में कमी नहीं आई। इन स्थितियों में यथार्थ एवं केवल यथार्थ में संपृक्त साहित्य ही लिखा जा सकता था। लालबहादुर शास्त्री ने 1965 ई. के भारत-पाक युद्ध में विजय प्राप्त कर कायरता का दौर ख़त्म किया (उनकी नई दिल्ली स्थित-लाल क़िले के दीवाने-ख़ास के ठीक उस ओर—समाधि का नाम विजय-घाट कितना सार्थक है!'), 'जय जवान जय किसान' का सर्वश्रेष्ठ नारा देकर राष्ट्र सैनिकबल-सम्पन्न एवं कृषि-आत्मनिर्भर बनने का पथ प्रशस्त किया।

---

[1] शुद्ध 'कैलास' है (कौसल्या, वसिष्ठ एसिआ इत्यादि के सदृश) किन्तु प्रचलित 'कैलाश' (कौशल्या, वशिष्ठ या विशिष्ट, एशिया इत्यादि के सदृश)।

[2] डॉ. भोजराज पट्टाभि सीतारामय्य (अंग्रेज़ों की कृपा से सीतारामैया) जिन्होंने प्रख्यात कांग्रेस का इतिहास 'हिस्ट्री ऑफ़ द इंडियन नेशनल कांग्रेस' (अंग्रेज़ी) लिखा।

[3] गन्धी (सुगन्धित पदार्थ-विक्रेता) को अंग्रेज़ी ने गाँधी बना डाला! (''गाँधी! गन्ध गुलाब की, गाहक कौन?'' —बिहारी)

शास्त्री गौरवशाली यथार्थवादी थे। 1971 ई. में पाकिस्तान की ऐतिहासिक पराजय एवं तत्परिणामस्वरूप बांग्ला देश का निर्माण, सिक्किम का भारत में विलय एवं खाद्यान्न-आत्मनिर्भरता की तीन महानतर सफलताओं ने इंदिरा गाँधी को विश्व-इतिहास का एक अभिन्न अंग बना दिया। इंदिरा घोर-यथार्थवादी थीं—यदि वे केवल-यथार्थवादी होतीं तो भ्रष्टाचार और आतंकवाद का विकट दौर न चलता! आपातकाल की तानाशाही (1975-66 ई.) सिख-संहार, करगिल युद्ध, गोधरा में हिन्दू संहार तथा प्रतिक्रिया स्वरूप गुजरात में मुस्लिम-संहार इत्यादि यथार्थ के भयानक सूचक हैं। आज राष्ट्र का अर्थतन्त्र काले-धन द्वारा चालित है, निष्ठावान व्यक्ति ढूँढ़े नहीं मिलते और जो मिलते हैं उन्हें दिल्ली की राजधानी-भाषा में 'लल्लू'[1] कहा जाता है! विदेशों में अरबों डॉलर! यथार्थ के लिए इस-सब से बचना सम्भव कहाँ?

आक्रोश का उद्‌गार

गाँधी तथा नेहरू की स्वच्छन्दतावादी अहिंसा-कल्पना एवं रामराज्य तथा पंचशील एवं समाजवाद इत्यादि के धज्जे उड़ने से राष्ट्र का आक्रोश यथार्थवादी युग का सर्वोपरि उद्‌गार बन गया। शान्ति-रोग एवं शोषण-प्रपीड़न-दारिद्र्य इत्यादि ने अंकुठित एवं कुंठित दोनों प्रकार के आक्रोशों को व्यक्त किया। साहित्य की समग्र विधाओं पर यह आक्रोश छाया मिलता है। कहीं यह सृजनात्मक है, कही ध्वंसात्मक; किन्तु सर्वत्र यथार्थसम्पन्न। कहीं इसे वादबद्ध-साम्यवादी चित्रित करता है तो कहीं वादमुक्त-समतावादी, कहीं वादबद्ध-व्यक्तिवादी तो कहीं वादमुक्त-व्यक्तिवादी, कहीं शुद्ध-भारतवादी—राष्ट्र की शोषण-प्रपीड़न से पराजय का विरोध सब को एक करता है! राष्ट्र की भयावह दरिद्रता, नेताओ का कपट, उनकी सत्तालिप्सा, असह्य भ्रष्टाचार, क्रान्तिकारी की असफलता इत्यादि के विरुद्ध आक्रोश यथार्थवादी युग के साहित्य-शरीर का मेरुदंड है।

पन्त 'युगान्तर' की घोषणा कर चुके थे; उन्होंने 'युगवाणी', 'युगपथ' एवं 'ग्राम्या' की गति दी। 'विधवा', 'भिक्षुक' एवं 'वह तोड़ती पत्थर' के निराला ने 'जूही की कली' को विसराकर 'कुकुरमुत्ता', में रुचि ली। दिनकर ने 'रसवन्ती' से मुँह मोड़कर 'हुंकार' की। बच्चन 'मधुशाला' से निकलकर 'बंगाल का काल' देखने लगे। ’च.1ग नरेन्द्र में गुलाबी-गुलशन की जगह 'पलाशवन' में शरण ली। अंचल ने कल्पतरु पर नहीं 'करील' पर ध्यान दिया। भगवतीचरण वर्मा ने आकाश-विहारी यान पर नहीं बीहड़ गाँव के कच्चे रास्ते पर रेंगती 'भैंसागाड़ी' की यात्रा की। और एक नया काव्य-युग प्रकाश में आ गया, जिसे मुक्तिबोध, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, रांगेय राघव, शिवमंगलसिंह 'सुमन', शमशेर, त्रिलोचन, रामदरश मिश्र, महेन्द्र भटनागर, धूमिल इत्यादि ने आकाश का रूप दे डाला। आक्रोश, व्यथा एवं कुंठा के शत-शत जनवादी स्वरों ने कविता के आनन को नूतन क्रान्ति-ज्योति से जाज्वल्यमान् कर दिया। यदि आक्रोश शक्ति प्रदान करता है, तथा व्यथा भी व्यर्थ नहीं जाती, कुंठा भी गतिशील करती है। पचास वर्ष से अधिक समय का बहुरंगा इतिहास देखिए:

1. श्वानों को मिलता दूध, भूखे बालक अकुलाते हैं,
मॉं की छाती से चिपक, ठिठुर जाड़े की रात बिताते हैं।
(दिनकर)

2. कुछ दूर क्षितिज से कुछ आगे, कुल पाँच कोस[2] की दूरी पर,
भू की छाती पर फोड़े-से कुछ उठे हुए हैं कच्चे घर;
पशु बनकर नर पिस रहे जहाँ, नारियाँ जन रही हैं गुलाम,
पैदा होना और मर जाना बस केवल उनका एक काम।
(भगवतीचरण वर्मा)

3. चोटों पर चोटें जो धन की खाकर कभी नहीं तड़की है,
उस हड्डी पर-उस पसली पर श्रमजीवी की उस छाती पर....
(केदरनाथ अग्रवाल)

---

[1] मूर्ख। बुद्ध। दिल्ली में 'सीधा-सादा' अपमानजनक है, 'देवी' व्यंग्यात्मक। यहाँ 'तेज़' एवं 'मैडेम' का जोर है। तभी तो दिल्ली में यथार्थवादी बाढ़ पर हैं।

[2] एक कोस प्रायः तीन किलोमीटर का होता है। संस्कृत में 'कोश'।

4. घुन खाए शहतीरों पर की बारहखड़ी विधाता बाँचे,
फटी भीत[1] है, छत चूती है, आले पर बिस्तुइया नाचे,
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट में पाँच तमाचे,
इसी तरह से दुखरन[2] मास्टर गढ़ता है आदम के साँचे।
(नागार्जुन)

5. ना, निरापद कोई नहीं है ठीक आदमक़द कोई नहीं है।
न तुम, न मैं, न वे न वे, न मैं, न तुम।
(भवानीप्रसाद मिश्र)

6. हम सब के दामन पर दाग़ हम सब की आत्मा में झूठ
हम सब के माथे पर शर्म हम सब के हाथों में टूटी तलवारों की मूठ।
(धर्मवीर भारती)

7. प्रौढ़ सभी कामुक हैं जवान सब अराजक हैं
बुद्धिजन अपाहिज हैं मुँह बाए हुए भावक हैं
हम क्या करें तर्क और मूढ़ता के क्रम से कैसे छूटें!
(गिरिजाकुमार माथुर)

8. बद्ध!
हत् वह शक्ति किए थी जो लड़ मरने को सन्नद्ध।
(अज्ञेय)

9. वृणाहत पैर को दे कर भयानक नाचता हूँ,
शून्य मन की टीन छत पर गर्म।
हर पल चीखता हूँ, शोर करता हूँ,
कि वैसी चीख़ती कविता बनाने में लजाता हूँ।
(मुक्तिबोध)

क्रान्ति और शान्ति

712 ई. में मोहम्मद बिन-क़ासिम द्वारा सिन्ध के पतन, 1001-03 ई. में महमूद ग़ज़नवी के 17 आक्रमणों, 1992 ई. में मुइज़्ज़ुद्दीन साम या शहाबुद्दीन ग़ोरी या मोहम्मद ग़ोरी द्वारा दिल्ली पर आधिपत्य से गुलाम-वंश, खिल्जी-वंश, तुग़लक-वंश, सैयद-वंश, लोदी-वंश, मुग़ल-वंश, सूरी-वंश पुनः मुग़ल-वंश, अंग्रेज़ों के विदेशी तथा स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद अर्द्धविदेशी (ईषत्-मुग़ल एवं ईषत् गौरांग प्रभावों से सराबोर होने के कारण) अत्याचारों, अनाचारों एवं कुशासनों से त्रस्त-ध्वस्त भारतीय समाज क्रान्ति के योग्य नहीं रह गया। वैसे, अभाव में भाव के मनोविज्ञान से अभिभूत यहाँ की जनता को उल्लू बनाने वाले नेता क्रान्ति की चर्चा दिन में दस बार करने से बाज़ नहीं आते। हर घटना को क्रान्ति कहना क्रान्ति शब्द का अपमान करना है। क्रान्ति आमूल-चूल राजनैतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन करती है—''क्रान्ति नहीं है हैट की जगह टोपी आना''[3]:

क्रान्ति है प्रचंड अंत
राष्ट्र की दुर्वह बुढ़ापा का
क्रान्ति है भीषण हत्या
शोषण, रूढ़ि, व्यक्तिपूजा आदि-आदि रोगों की
क्रान्ति जीवन की तरुणाई को कहते

---

[1] दीवार।

[2] दुःखहरण या दुहरन। नाम।

[3] मृत्युंजय जयप्रकाश (1977 ई. रामप्रसाद मिश्र) की 'क्रान्ति' कविता से।

क्रान्ति मानवता की जवानी का नाम है
जहाँ नहीं यथासमय क्रांति वहाँ मृत्यु है।
भारत! तू दरिद्र है, क्रांति की कृपा से रहित
दीर्घ दासता से, रूढ़ि, व्यक्तिपूजा से
क्रांति की पहचान तक को तू भूल गया!
राजनैतिक सत्ता के परिवर्तन मात्र को
क्रांति कहनेवाला बस प्रवंचक है, नीच है।
क्रांति परिवर्तन कराती नहीं, करती है
क्रांति रिक्त तन-मन भराती नहीं, भरती है
क्रांति प्रार्थना न करती
प्रार्थना करानेवालों के सर कतरती है
क्रांति में 'महानता' की मूर्खता मरती है!
क्रांति अधिकार है, किसी का दान नहीं
क्रांति राष्ट्र करते हैं, कोई 'महान्' नहीं
क्रांति हलाहल है, मादक मधुपान नहीं
भारत! क्या तुझमें है क्रांति का प्रकाश कहीं?[1]...

क्रान्ति का वातावरण तिलक, अरविन्द, रामप्रसाद 'बिस्मिल', अशफ़ाक़, चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, सुभाष इत्यादि बना सकते थे, जिसे अंग्रेज़ों ने गोखले, बनर्जी[2], गाँधी, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, जिन्ना इत्यादि को बढ़ावा देकर ठंडा कर दिया। आह, नेता! :

नेता! बाहर से गीता, अंदर से लोलिटाः
महत्त्वाकांक्षा का दास
अपने उत्कर्ष को राष्ट्रोत्कर्ष बना
छलता संसार को,
लूटता भोले-भोले मनुजों के प्यार को—
बात-बात पर दुहाई मानव की, महानता की,
विश्व-कल्याण की;
बहुत सफल अभिनेता![3]

स्वतन्त्रताप्राप्ति के बाद जनता को शान्ति की अफ़ीम घोल-घोल कर पिलाई जाती रही जिससे झूम-झूम कर वह पिलाने वालों के क़दम चूमती रहे :

क्षमा सोहती उस भुजंग को जिसके पास गरल हो ;
उसको क्या जो दंतहीन, विषहीन, विनीत, सरल हो!
(दिनकर)

स्वतन्त्र भारत के पन्द्रह वर्षों में जितने पुलित-पुलिस-गोलीकांड ने गोरों के शासन में एक सौ-पचास वर्षों में न हुए थे! फिर भी, शान्ति के राग अलापने में कमी नहीं आई। जनता भ्रमित रही। दूसरा हथकंडा समाजवाद का था जो शान्तिपूर्ण तरीकों से लाया जाना था—इससे नेता, भूतपूर्व राज-महाराजा, धन्ना-सेठ, अभिनेता, तस्कर इत्यादि समाजवादी बनकर जनता को शान्तिपूर्वक लूट सकें :

---

[1] 'देश, दिल्ली और अहम्' (1965 ई., रामप्रसाद मिश्र) की 'क्रान्ति' कविता से।

[2] सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी। महान् वक्ता। ईसाई। नरम दल के नेता। भलाभाई देसाई, अमृत कौर, जे. सी. कुमारप्पा, धीरूभाई देसाई, रॉबर्ट उर्फ़ राजीव गाँधी, सोनिया गाँधी, विदेशी 'भारतरत्न' मरहूम टेरेसा, मार्गेरेट अल्वा, अन्य के. आर. नारायणन् इत्यादि प्रसिद्ध हुए।

[3] द्र. 'वौद्धिकरस' (1964 ई, रामप्रसाद मिश्र) की 'शान्ति' कविता।

पापी कौन? मनुज से उसका न्याय चुरानेवाला?
या कि न्याय खोजते विघ्न का शीश उड़ानेवाला?
(दिनकर)

शान्ति का हथकंडा भारत के अनेक लोगों को तो लूटता रहा, किन्तु वह स्वयं भी बुरी तरह पिटा और लुटा। 1962 ई. के चीनी आक्रमण ने स्वयं नेहरू को ''मूर्ख के स्वर्ग में रहने'' की चर्चा के लिए विवश किया, प्रख्यात गाँधीवादी (गाँधी के सचिव, कांग्रेस के महामन्त्री एवं 'राष्ट्रपति' या कांग्रेस-अध्यक्ष रह चुके) कृपालानी के द्वारा पंचशील को 'पंचमौर्ख्य' (द फ़ाइव नाँसेंसेज़) घोषित कराया।

नेताओं के स्वार्थमूलक-शोषणमूलक शान्ति-राग के बावजूद निष्ठावान कवियों ने क्रान्ति के स्वरूप, क्रान्ति के आगमन की सम्भावना, क्रान्ति की आशा इत्यादि पर मननपूर्ण उद्गार अवश्य प्रकट किए हैं :

चढ़ कर जुनून सी चलती हूँ मृत्युंजय वीर कुमारों पर,
आतंक फैल जाता कानूनी पार्लमेंट, सरकारों पर,
नीरो[1] के जाते प्राण सूख मेरे कठोर हुंकारों पर,
कर अट्टहास इठलाती हूँ ज़ारों[2] के हाहाकारों पर;
झंझा सी पकड़ झकोर हिला देती दंभी के सिंहासन
झन् झन् झन् झन् झन् झनन् झनन्! (दिनकर[3])
उठो इस एकांत से।
दामन छुड़ाओ
इस महज़ शान्ति से।
चलो उतरकर नीचे की सड़क पर
जहाँ जीवन सिमटकर बह रहा है
साहस की दिशा में। (भवानीप्रसाद मिश्र)

आत्मा के चक्के पर चढ़ाया जा रहा
संकल्प-शक्ति के लोहे का मज़बूत
ज्वलंत टायर!!
अब युग बदला है वाक़ई
कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गई। (मुक्तिबोध)

नेताओं को यह पक्की तरह से पता रहा है कि यदि हिन्दू-मुसलमान-सिख-ईसाई इत्यादि एक हो गए और यदि यह कठिन है, खासकर हिन्दू-मुसलमान का एक होना, तो यदि सवर्ण-हरिजन-गिरिजन-हिन्दूमात्र ही एक हो गए, तो सचमुच क्रान्ति हो जाएगी, जिसमें उनकी घोर-पूँजीवादी जीवन-प्रणाली और अंग्रेज़ियत की जगह घोर-समतावादी जीवन-प्रणाली और भारतीयता विकसित होने लगेगी। अतः बहुविध अल्पसंख्यकवाद, घृणास्पद जातिवाद, आरक्षणवाद इत्यादि के हथकंडों से फूट को बराबर बढ़ावा दिया गया है तथा जनता का ध्यान बँटाने, उसे एक नक़ली गुरूर के जाम-पर-जाम पिलाने, दुनिया में अच्छे निजी सम्बन्ध बढ़ाने के लिए गुटनिरपेक्ष-आन्दोलन का हथकंडा भी दिखाया जाता रहा; सरकारी प्रचार के लिए दूरदर्शन, आभासवादी, समाचारपत्र इत्यादि के अपार साधनों के दुरुपयोग एक ऐसा तथ्य है जिसे अन्धा भी देख सकता है, बहरा भी सुन सकता है– ''बहिरो सुनै....अन्धे को सब कुछ दरसाई'' यहाँ सत्य सिद्ध

---

1. महान् रोमन साम्राज्य का एक घोर अत्याचारी सम्राट्। अंततः मारा गया।
2. रूसी सम्राट 'ज़ार' कहे जाते थे। ज़ार निकोलस द्वितीय 1917 ई. की क्रान्ति में मारे गए।
3. कांग्रेसी होकर तथा कांग्रेस से अपार लाभ उठाकर भी दिनकर ने आत्मा नहीं बेची थी—1942 ई. के गाँधी को 'ओ द्विधाग्रस्त शार्दूल! बोल' कविता में 'क्लीयधर्म' से सपृंक्त करने वाले वीर-कवि ने दो दशाब्दियों बाद नेहरू को 'परशुराम की प्रतीक्षा' में 'क्लीवधर्म' से ही संपृक्त किया! कवि सबसे बड़ा इतिहासकार होता है।

होता है! जरूरत थी झोपड़ों की, बनाए गए अभ्रभवन! जरूरत थी टट्टियों की, बनाए गए स्टेडियम! जरूरत थी राष्ट्रीय चरित्र के निर्माण की जिस तरह से कमज़ोर किया गया है और किया गया अन्ध राष्ट्रीयकरण जो रूस, चीन, पोलैंड, रोमानिआ, हंगरी, पूर्व-जर्मनी, चोकोस्लोवाकिआ (अब 'चेक' एवं 'स्वलोवाक' दो गणराज्य), चीन इत्यादि तक में विफल सिद्ध हो चुका हैः राष्ट्रीय चरित्र के अभाव में राष्ट्रीयकरण ने भारत की अर्थव्यवस्था की कमर ही तोड़ डाली! गाँवों की उपेक्षा से गाँव प्रतिभारहित हो गए क्योंकि थोड़ी क्षमता वाले ग्रामीण तक शहरों की ओर भागने पर विविश हुए और नगर नरक बन गए (तंग बस्तियाँ, रोग, वेश्यावृत्ति, भिक्षावृत्ति, अपराध इत्यादि के समाहार)—महानगर महानरक बन गए (जनता के लिए ही, क्योंकि नेता, अभिनेता, तस्कर, व्यापारी, अधिकारी इत्यादि पहले स्वर्ग में रहते थे, अब अपवर्ग में रहते हैं)!

दिनकर ने विश्वयुद्ध के मध्य रचित 'कुरुक्षेत्र' काव्य में युद्ध की अपरिहार्य उपयोगिता एवं शान्ति के आकलन पर अत्यन्त गम्भीर विचार किए हैं; वे शान्ति—रोगी नहीं बने—और युद्ध-रोगी तो अब कोई-कोई नरपिशाच-नेता ही हो सकता है क्योंकि विज्ञान ने युद्ध को भयानकतम रूप प्रदान कर दिया है। 'कुरुक्षेत्र' युद्धदर्शन का सन्तुलित महाकाव्य है। सियारामशरण गुप्त एवं मोहनलाल महतो 'वियोगी' ने युद्ध का बिन्दु विवेचित किया है। उधर, शान्ति-रोग के प्रवाह में बहकर, धमंवीर भारती ने 'अन्धा युग' लिख मारा जिसमें युधिष्ठिर के अतिरिक्त सब बौने ही बना डाले गए—

थे भीम बुद्धि से मंद, हृदय से अभिमानी,
अर्जुन थे असमय वृद्ध, नकुल थे अज्ञानी...

लगता है, कोई सी. आई. ए. एजेन्ट या क्रिश्चियन मिशनरी या पाक-पिछलगुवा लिख रहा है! परप्रत्यनेयबुद्धि के अनेक धनियों में 'अन्धा युग' की बेहद तारीफ़ की और इसके अभिनय की धूम मची! यशपाल ने भी 'अमिता' शीर्षक शान्तिरोगवादी कल्पना-आधृत ऐतिहासिक उपन्यास लिख डाला जो फ़्लॉप रहा क्योंकि यशपाल किसी लोकप्रिय साप्ताहिक के सम्पादक थे! लगे हाथ छोटे-भारती नरेश मेहता ने भी 'संशय की एक रात' में राम पर गाँधी को लाद डाला! कवि-सम्मेलनी कवि शान्ति की पीनक में बेहद झूमे, जिनके प्रतिनिधि नीरज ने "अगर तीसरा युद्ध छिड़ा तो..." की बड़ी भड़कीली रागिनी छेड़ डाली—उनकी कविताएँ स्वयं 'शान्तिदूत' नेहरू सुन चुके थे। नीरज यह भूल गए कि तीसरा विश्व-युद्ध न छिड़ने का कारण रहा है संयुक्त राज्य और सोवियत यूनियन दोनों महाशक्तियों की अजेयता! नैपोलियन ने कहा था, "यदि तुम शान्ति चाहते हो तो अपना बारूद सूखा रखो!" एंड्रोपोव ने कहा था, "जब तक संसार को सोवियत यूनियन की अजेयता पर विश्वास है तब तक संसार में शान्ति रहेगी!" शान्त-रोग में भारत 1962 ई. में दयनीय रूप में पिटा, शक्ति-योग में भारत ने 1971 ई. में गौरवशाली रूप में पीटा। 1971 ई. से तब तक शान्ति है।

सत्ता का केन्द्र लन्दन से उठकर नई दिल्ली में आ गया, हैट की जगह टोपी आ गई, शासन भारत में जन्मे लोग करने लगे। यत्र-तत्र के स्वर भी उठे और जब तक वे सत्ता-व्यवधान न बने, सहन किए गए। 1977 ई. में लोकतन्त्र की प्रथम विजय हुई। क्रान्ति तो नहीं हुई किन्तु क्रान्ति-जैसा कुछ-कुछ दिखाई अवश्य पड़ा है और कवि आशान्वित-अनुभूति कर सका—

ताल को कँपा दिया कंकड़ से बालक ने,
ताल को कँपा दिया, ताल को नहीं
अनंत काल को कँपा दिया।

(केदारनाथ अग्रवाल)

स्वतन्त्र भारत का आलोचना-साहित्य

हिन्दी-आलोचना का वास्तविक उद्भव आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा 'सरस्वती' में पुस्तक-समीक्षा के समारम्भ के साथ हुआ तथा मिश्रबन्धु, आ. पद्मसिंह शर्मा, कृष्णबिहारी मिश्र, लाला भगवानदीन 'दीन', डॉ. श्यामसुन्दरदास, आ. रामचन्द्र शुक्ल इत्यादि ने इसे आदर्शवादी युग अथवा द्विवेदी-युग में इस विधा का व्यापक उत्कर्ष किया। अगले स्वच्छन्दतावादी युग अथवा छायावादी युग में आ. नन्ददुलारे वाजपेयी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, डॉ. नगेन्द्र इत्यादि ने स्वच्छन्दतावादी तथा कृष्णशंकर शुक्ल, सत्येन्द्र, गिरिजादत्त शुक्ल 'गिरीश', रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' इत्यादि ने पारंपरिक (शास्त्रवादी) आलोचना का स्फीत उन्नयन किया। स्वातन्त्र्य-पूर्व आलोचना के शीर्ष-पुरुष हैं—

1. मिश्रबन्धु (गणेशबिहारी-श्यामबिहारी-शुकदेवबिहारी बन्धुत्रय) जो परम्परावादी-अलंकारवादी थे तथा जिन्होंने अपने अमर एवं स्फीत ग्रन्थ 'विनोद' द्वारा साहित्येहितहास-रचना तथा 'नवरत्न' द्वारा कवि आलोचना (तुलनात्मक आलोचना समेत) का पथ प्रशस्त किया। इनकी प्रतिपादनशैली शिथिल एवं भाषा युगानुरूप न थी। किन्तु ये 'प्रस्थान' आलोचक तो थे ही, महान् आलोचक भी थे, जिनका प्रभाव स्थायी महत्त्व का है।

2. रामचन्द्र शुक्ल जो शास्त्रवादी-लोकमंगलवादी थे तथा जिन्होंने 'हिन्दी-शब्दसागर' की भूमिका तथा मिश्रबन्धु की सामग्री का भरपूर तथा प्रातिभ-प्रयोग करते हुए अमर 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' रचा तथा तुलसी और सूर पर क्रमशः उच्चस्तरीय और अच्छी आलोचना लिखी तथा जायसी के प्रतिष्ठापक आलोचक के रूप में भी अमर हुए। इनकी प्रतिपादन-शैली विलक्षण एवं भाषा अतीव सशक्त है, यद्यपि वस्तुवाद के दर्शन नहीं होतेः हम कहते हैं इसलिए ठीक क्योंकि हम कहते हैं!

3. नन्ददुलारे वाजपेयी जो स्वच्छन्दतावादी-अभिव्यंजनावादी थे तथा जिन्होंने शुक्ल के स्वच्छन्दतावाद अथवा छायावाद के प्रत्याख्यान को धराशायी करते हुए छायावाद, प्रसाद एवं निराला की 'प्रस्थान'-प्रतिष्ठा की। इनका क्षेत्र प्रायः बीसवीं सदी का साहित्य ही रहा है और इसमें भी आदर्शवादी युग (द्विवेदी-युग) तथा यथार्थवादी युग (उनके जीवनकाल में प्रगति-प्रयोग-युग) की प्रहारमूलक प्रभाववादी आलोचना शतशः प्रभावहीन सिद्ध हुई।

यद्यपि डॉ. नगेन्द्र ने आलोचना लिखना स्वतन्त्रता-प्राप्ति से पूर्व ही आरम्भ कर दिया था, तथापि उनका विशेष प्रभाव स्वातन्त्र्योत्तर काल में ही पड़ा। यही बात डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. रामविलास शर्मा के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। इन आलोचकों में डॉ. रामविलास शर्मा को मार्क्सवादी आलोचना को प्रतिष्ठापित करने के कारण 'प्रस्थान'-गौरव प्राप्त है, जबकि डॉ. नगेन्द्र ने आ. नन्ददुलारे वाजपेयी की छायावादी-आलोचना को अपने ढंग से विकसित किया तथा डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल ने साथ-संप्रदाय एवं कबीर इत्यादि पर प्रहारों तथा जायसी की 'भक्ति'-संपृक्त प्रतिष्ठा की त्रुटि इत्यादि का परिहार कर विद्धत्तापूर्ण आलोचना में नए आयाम जोड़े। 'प्रस्थान' के अभाव के बावजूद रसवादी-मनोविज्ञानवादी नगेन्द्र एवं मानवतावादी-समन्वयवादी डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी-आलोचना के दो स्मरणीय स्तम्भ हैं। मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा 'प्रस्थान' एवं अनवरत अध्यवसाय के कारणों से इनके स्तर का स्पर्श कर लेते हैं।

साम्यवादी साहित्येतिहास एवं आलोचना में वर्गसंघर्ष अथवा शोषण-विखंडन, अपनी सुविधा के अनुरूप यथार्थवादी रचना-प्रणाली, भारतीयता-उच्छेद प्रभृति मूल विन्दु रहे। निस्सन्देह, शोषित एवं प्रपीड़ित के प्रति सहानुभूति, शोषण के विरुद्ध प्रहार, प्रपीड़क का प्रत्याख्यान इत्यादि सर्वथा प्रशस्य तत्त्व हैं तथा प्रगतिवादी आन्दोलन ने साहित्य में जनवाद के उन्नयन की दिशा में प्रशस्य कार्य भी किए, किन्तु विजातीयतावाद ने साम्यवादी साहित्यकारों को सामान्यतः तथा आलोचकों को विशेषतः बड़ी क्षति पहुँचाई। विश्वविद्यालयों और साहित्य अकादमी (राहित्य टकादमी) तथा मीडिया (मैडिआ) के बाहर उन्हें अधिक सफलता नहीं मिली। और भारतेन्दु आ. द्विवेदी (डॉ. हज़ारीप्रसाद नहीं अपितु इनके शब्दों में 'अवतारी पुरुष' महावीरप्रसाद द्विवेदी), मैथिलीशरण या माखनलाल, प्रसाद या निराला, पन्त या महादेवी, प्रेमचन्द या आ. शुक्ल के स्तर का एक भी व्यक्ति स्वयं में न पाकर उन्होंने भारतेन्दु, प्रेमचन्द और निराला के इर्द-गिर्द भाँवरें भरीं (जिनमें से कोई साम्यवादी न था—निराला ने तो 'वन-बेला' कविता में साम्यवाद का मज़ाक भी उड़ाया है तथा 'शिवाजी को पत्र' में मुस्लिम-भेदनीति का प्रत्याख्यान भी किया है)। साम्यवादी आलोचना ने केवल मात्र डेढ़ आलोचक प्रदान कर पाएः एक रामविलास शर्मा (वह भी तब जब आ. द्विवेदी को ठीक-से पढ़ा-समझा तथा प्राचीन भारतीय वाङ्मय का अनुशीलन किया—मानवेन्द्रनाथ राय और श्रीपाद अमृत डांगे को भी अंततः उपनिषद् की शरण लेनी पड़ी थी) और आधे नामवर सिंह (जिन्होंने कोई 'प्रस्थान'—कार्य नहीं किया पर कुछ ग्रन्थ प्रस्तुत किए हैं) क्योंकि प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदानसिंह चौहान, मैनेजर पाण्डेय इत्यादि की आलोचना प्रभावहीन ही सिद्ध हो पाई हैः और-तो-और राहुल सांकृत्यायन जैसे महापंडित तक अपनी आलोचना में तनिक भी प्रभावी नहीं हैं। वादमुक्त प्रगतिशील आलोचना में दिनकर के अतिरिक्त कोई उल्लेख-योग्य तक नहीं हो सका।

भारत के स्वतन्त्र होते ही संयुक्त राज्य (सी. आई. ए. एवं क्रिश्चअन मिशनरीज़ के भुजद्वय के साथ) एवं तत्कालीन सोवियत यूनियन (के. जी. वी. एवं इंडियन कॉम्युनिस्ट्स के भुजद्वय के साथ) ने भारत को अच्छा शिकारग़ाह समझते हुए इनका घेराव कर लिया तथा परम ख्याति-आखटेक नेहरू ने जेनस-मुखी शोभा के साथ दोनों का अवसरों के अनुरूप स्वागत किया (यद्यपि मुख्य स्थान कॉम्युनिज़म को ही प्रदान किया क्योंकि 'समता' शब्द सदैव स्वयं को सर्वोच्च बनाने का प्रधान अस्त्र रहा है जिसका प्रयोग राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, मार्क्स जैसे सर्वोच्च व्यक्तियों तक ने किया है; गाँधी, लेनिन इत्यादि बड़े नेताओं ने तो किया ही है)। रूस और

पूर्वीय यूरोप (बाद में चीन भी) से आर्थिक एवं यात्रा के अतिरिक्त प्रचार-प्रसार का भारी लाभ राहुल ('वोल्गा से गंगा में' आर्यों को रूस से आया बतानेवाले), यशपाल ('गाँधीवाद की शव-परीक्षा' वाले), शिवमंगलसिंह 'सुमन' ('रूस चलो भाई रूस चलो' के द्वितीय महायुद्ध-काल के निष्ठावान गायक) इत्यादि उठा रहे थे। ऐसे में अज्ञेय (पहले क्रान्तिकारी और साम्यवादी), धर्मवीर भारती, नरेश मेहता इत्यादि ने धनी पश्चिम के व्यक्तिवादी दर्शन को ओढ़ा तथा वाल्ट व्हिट्मैन, एज्रा पॉउण्ड, टॉमस स्टर्न एलिअट इत्यादि के सहारे साहित्य के मैदान में प्रयोगवाद का विदेशी घोड़ा दौड़ा दिया और ज्ञानपीठ (ज्ञान की ओर पीठ ने उसे बढ़िया अमेरिकी घास और बिलायती चना खिला-खिला कर मोटा करने का प्रण किया)। बस, 'नए प्रयोगों', 'स्वछन्द' अभिव्यक्ति-शैलियों, उच्छृंखल 'उद्‌गारों' ('भूण', 'कैक्टस', 'प्रोमेथिअस उर्फ़ प्रमथ्यु' इत्यादि के 'प्रतीकों' के साथ) से 'कविता' की नदी में प्लावन आ गया! मार्क्स ने धर्म को अफ़ीम कहा था और एंजेल्स, लेनिन, स्टालिन, माओ, हो ची मिन्ह, फीडेल कैस्ट्रो इत्यादि बड़े (भारत में कोई नहीं) साम्यवादियों ने धर्म, ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग इत्यादि के विरुद्ध जिहाद बोल दिया, जिसका श्रद्धाभिभूत भारतीय साम्यवादियों ने अतर्क्य अनुकरण किया। प्रयोगवादी खेमे ने पश्चिम की कृपा को ध्यान में रखते अपने को इन झमेलों से पृथक् रखा और भारत तथा भारतीयता का प्रभसंतुष्टकारी विखंडन मात्र ध्येय बनाया। अज्ञेय ने साहित्य को भारतमूलकता से उच्छिन्न करने का यत्न किया, धर्मवीर भारती ने 'अन्धा युग' (अन्धे को अँधेरे में बड़ी दूर की सूझी) की स्थापना की।

नरेश मेहता ने वाल्मीकि-रामायण के प्रक्षिप्त अंश (उत्तरकाण्ड) में 'संशय' की एक रात' का अँधेरा टटोला, तो डॉ. जगदीश गुप्त ने उसी से 'शम्बूक-वध' का चयन कर डाला; कर्ण, दुर्योधन, शूर्पणखा, शम्बूक इत्यादि के प्रति सम्वेदन मरीचिका-सागर में कविगण इत्यादि गोते लगाने और डूबने लगे तथा सीता-त्याग के प्रक्षेप की आड़ में राम पर प्रहार होने लगे।

शुद्ध या खाटी के कॉम्युनिस्टों का साहित्य की प्रत्येक विधा में स्फीत योगदान कोई भी वस्तुपरक अध्येता नहीं नकार सकता। आलोचना में भी उनकी देन व्यापक है, भले ही महान् हो। वादमुक्त (प्रगतिशील—वादबद्ध या प्रगतिवादी से भिन्न किन्तु समतावादी शोषणविरोधी) साहित्यकारों का समग्रदाय भी पर्याप्त रहा; आलोचना में भी। व्यक्तिवादियों की आलोचना पश्चिम से अभिभूत तो रही ही, कोई ठिकाने का आलोचक भी उत्पन्न न कर पाई; यद्यपि प्रत्येक प्रयोगवादी आलोचक भी थे (अज्ञेय, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, शमशेरबहादुर सिंह और प्रगतिवाद की आत्मा को प्रयोगवाद के शरीर में व्यक्त करने वाले मुक्तिबोध इत्यादि प्रमाण हैं), तथापि कुछेक प्रयोगवादी आलोचक भी, हुए हैं (नलिनविलोचन शर्मा, देवीशंकर अवस्थी, अजितकुमार इत्यादि); किन्तु कोई भी आलोचक के रूप में स्थापित न हो सका। अज्ञेय का व्यक्तिवादी चिन्तन मननीय है (माननीय भले ही न हो) किन्तु उसमें मौलिकता का अभाव है (उनकी कविता के सदृश ही) उन पर ढेरों शोधकर्त्ता व्यर्थ गए, भले ही शोधकर्त्ताओं को उपाधियाँ मिल गई हों। बात यह है कि भारतीय चिन्तन में आत्मवाद तो है, किन्तु व्यक्तिवाद नहीं; और अद्वैतवाद की तुलना में समाजवाद और व्यक्तिवाद (स्वतन्त्र भारत में इन्हें चटक-मटक देने के लिए प्रगतिवाद और प्रयोगवाद कहा गया) दर्शनाभास मात्र लगते हैं (प्रभावी राजनैतिक सिद्धान्त भले ही हों):

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।

हिन्दी के प्रधान आलोचकों में मिश्रबन्धु, शुक्ल, नन्ददुलारे वाजपेयी और हज़ारीप्रसाद द्विवेदी भारतीय संस्कृति एवं दर्शन से भली भाँति परिचित थे, नगेन्द्र पहले पश्चिमी लकालकी के फेर में पड़े जरूर पर बाद में सम्हल गए, यही बात रामविलास शर्मा पर लागू हुई (जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै):

कितनी चिड़िया उड़े अकास।
दाना है धरती के पास।।

प्रगतिवादी एवं प्रगतिशील तथा प्रयोगवादी एवं प्रयोगशील साहित्याकारों (आलोचकों समेत) के अतिरिक्त भारतवादी एवं भारतशील भी काम नहीं हुए, यद्यपि विदेशी धनों, यात्रा लाभों, सरकारी प्रचारतन्त्रों, मगरमच्छी प्रेम इत्यादि से लाभ उठाकर स्वयं को परकीयतावाद में न ढाल पाने के कारणों से उनकी लकलक-दगदग 'शोभा' नहीं बगर-पसर पाई। डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, डॉ. मोहन अवस्थी, डॉ. हरिशचन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास शर्मा, डॉ. बैजनाथ सिंहल इत्यादि ने शोधदिशाओं में ही नहीं प्रत्युत आलोचना के क्षेत्र में भी अच्छा कार्य किया है।

आलोचक का कार्य योगी का कार्य हैः ''वृत्तिसारूप्यमितरत्र'' नहीं अपितु ''तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्'' का। किसी या किन्हीं देशी या विदेशी वाद या वादों में बँधने के कारण हिन्दी-आलोचकों में कोई आलोचक-योगी नहीं हुआ। आलोचक का कार्य न दल का

प्रचार है न वाद का मंडन न स्वयं का प्रवर्तन; उसका दायित्व है, आलोच्य के सत्य का उद्घाटन जिसमें न कोई अपना होता है न पराया। तभी तो आलोचक बहुत ही कम होते हैं।

यथार्थवाद के विभिन्न रूप

रवीन्द्र के स्वच्छन्दतावादी-अन्तर्राष्ट्रीयवाद, गाँधी क स्वच्छन्दतावादी-सत्यअहिंसावाद, नेहरू के स्वच्छन्दतावादी-विश्वशान्तिवाद की क्रमिक असफलता ने जनता को यथार्थवादी बनने पर विवश-सा कर दिया। पश्चिम में टॉमस स्टर्न इलिअॅट (एलिअॅट) इत्यादि ने युद्धचिन्तन किया, यहाँ दिनकर इत्यादि ने ('वेस्टलैंड' एवं 'कुरुक्षेत्र' वस्तुतः ही नहीं अपितु तत्त्वतः भी युद्धकाव्य हैं); वहाँ एज़्रा पॉउंड, इलिअॅट (एलिअॅट) इत्यादि ने प्रयोगवादी काव्य का विकास किया, यहाँ अज्ञेय, मुक्तिबोध इत्यादि ने; वहाँ रशिअन (रूसी), ऑस्ट्रो-हंगेरिअन (ऑस्ट्रिआई) एवं प्रशिअन (जर्मन) सम्राटों का पतन हुआ, यहाँ हैदराबाद के निज़ाम, जम्मू-कश्मीर के महाराजा, जयपुर के महाराजा इत्यादि का राज्य गया; वहाँ (सृजनात्मक) शान्तिवाद का समारम्भ हुआ, यहाँ (सत्तारक्षक) शांतिवाद का हुआ! असल पश्चिम से चलता है, नक़ल भारत में पनपाता है। स्वच्छन्दतावादी युग में वह आंशिक सत्य था (क्योंकि प्रसाद, निराला इत्यादि शतशः भारतवासी थे), यथार्थवादी युग में यह पूर्ण सत्य बन गया।

पश्चिम में यथार्थवाद के दो प्रमुख रूप दृग्गत होते हैं–1. समाजपरक-यथार्थ जो समाज को व्यक्ति पर कठोर वरीयता प्रदान करता है तथा समाजवाद (या साम्यवाद) के रूप में जाना-पहचाना जाता है, 2. व्यक्तिपरक-यथार्थ जो व्यक्ति को समाज पर सन्तुलित वरीयता प्रदान करता है तथा व्यक्तिवाद के रूप में जाना-पहचाना जाता है। पश्चिम में पहले व्यक्तिवादी दर्शन पूँजीवादी-साम्राज्यवादी उन्नति की पराकाष्ठा के युग में उद्भूत एवं विकसित हुआ था, जिसे अर्थशास्त्री एडम स्मिथ, वैज्ञानिक डार्विन, राजनीतिशास्त्री मिल, दार्शनिक नीत्शे, मनोविज्ञानवेत्ता फ़्रायड, एडलर, जंग (युंग) इत्यादि, राजनीतिज्ञ ग्लैडस्टोन, डिज़राइली, विल्सन, रूज़वेल्ट, चर्चिल इत्यादि ने व्यापक जीवन-प्रणाली का स्वरूप प्रदान किया तथा जो आज भी अपने समयानुसार परिवर्तित रूप में विश्व पर सर्वाधिक प्रभाव डाल रहा है–संप्रति संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, कैनेडा, इटली, जापान इत्यादि समुन्नत राष्ट्र इसी से संपृक्त हैं। समाजवादी दर्शन व्यक्तिवादी दर्शन की प्रतिक्रिया में उद्भूत हुआ, जिसे मार्क्स, एंजेल्स, लेनिन, स्टालिन, माओ, हो ची मिन्ह, कैस्ट्रो, जूलियस नैरेरे इत्यादि दार्शनिकों, अर्थशास्त्रियों, क्रान्तिकारियों, राजनीतिज्ञों एवं नेताओं ने समुन्नत किया–बर्ट्राण्ड रसेल जैसे अधुनातन दार्शनिक, स्पेण्डर जैसे अधुनातन उपन्यासकार इससे संपृक्त रहे।

हिन्दी साहित्य में साम्यवादी (प्रगतिवादी) चेतना कुछ पहले आई। साम्यवादियों ने सोवियत यूनियन की प्रेरणा से 1936 ई. में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ का प्रथम अधिवेशन किया तथा इसे प्रेमचन्द की अध्यक्षता में सम्पन्न कराया (किन्तु साम्यवाद के प्रति संवेदनशील होते हुए भी वादमुक्त-प्रगतिप्रेमी प्रेमचन्द ने कहा था कि प्रगतिशील-साहित्य का अभिधान ही निराधार है, क्योंकि साहित्य की सहज गति ही प्रगतिपूर्ण होती है)। प्रेमचन्द 8 अक्टूबर, 1936 का दिवगंत हो गए। कुछ ही बाद, पन्त ने 'युगान्त', 'युगवाणी', 'ग्राम्या', इत्यादि के द्वारा इसका नेतृत्व किया; किन्तु विदेश-प्रेरित राजनीति की जकड़ से बचकर वे छिटक गए। उन पर गालियों की बौछार ने स्पष्ट कर दिया कि प्रगतिवाद मार्क्सवाद-लेनिनवाद का ही दूसरा नाम है, जिसमें मित्र (समर्थक) एवं शत्रु (विरोधी) दो पक्ष ही सम्भव हैं (क्योंकि तटस्थ को शत्रु ही माना जाता है)! लेनिन की यह स्पष्ट धारणा थी। हिन्दी-आलोचना पर प्रगतिवादी रंगत प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदानसिंह चौहान इत्यादि लाए। परिमाणतः डॉ. रामविलास शर्मा, राहुल सांकृत्यायन, रांगेय राघव, यशपाल, नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन', अश्क़ तथा परवर्ती मुक्तिबोध, मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, कमलेश्वर, श्रीलाल शुक्ल, कृष्णा सोबती, नामवर सिंह, स्व. जगदीश गुप्त[1], विश्वम्भरनाथ उपाध्याय इत्यादि विविध प्रकार के प्रगतिवादी या साम्यवादी खुलकर मैदान में उतरे तथा इन्होंने प्रेमचन्द, निराला, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि को अपने दायरे में ले लिया। उधर, स्वस्थ-जनवादी चेतना को खुले दिल और खुले दिमाग़ से अपनाने वाले पन्त, दिनकर, रेणु, रामदयाल पांडेय, आनन्दशंकर माधवन्, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, यज्ञदत्त शर्मा, कैलाश कल्पित इत्यादि वादमुक्त प्रगतिशील-सहित्यकार भी अपने ढंग से सृजन करते रहे। इस प्रकार, वादबद्ध-प्रगतिवादी एवं वादमुक्त-प्रगतिशील दो साहित्यकार-वर्ग स्पष्टतः दृग्गत होते हैं। इनमें से वादमुक्त-प्रगतिशील साहित्यकारों ने समाजवाद को उदार एवं भारतवादी दृष्टिकोण से अपनाया। दिनकर, रेणु, भवानीप्रसाद मिश्र इत्यादि समाजवादी जयप्रकाश नारायण से प्रभावित हुए; ओंकार शरद, रघुवीर सहाय, लक्ष्मीकान्त वर्मा, कैलाश कल्पित इत्यादि क्रान्तिकारी समाजवादी लोहिया से।

---

[1] लोहियावादी, गाँधीवाद, संघवादी भी बने रहे–बेहद लचीले लगे!

साम्यवादी या प्रगतिवादी चेतना के लगभग साथ-साथ ही व्यक्तिवादी (प्रयोगवादी) चेतना का उदय हुआ, जिसका वादबद्ध रूप अज्ञेय, धर्मवीर भारती इत्यादि की कविता में विवृत हुआ वादमुक्त रूप परवर्ती बच्चन इत्यादि की कविता में। वैसे, प्रयोगवाद का काव्य-शिल्प साम्यवादी मुक्तिबोध इत्यादि, गाँधीवादी-जयप्रकाशवादी भवानीप्रसाद मिश्र इत्यादि, लोहियावादी रघुवीर सहाय इत्यादि ने तो अपनाया ही पंत, दिनकर, बच्चन इत्यादि पुराने कवियों ने भी इसे गले लगाने में आनाकानी नहीं की (जो इसके प्रभाव का प्रबल प्रमाण है।) उपन्यासकारों में अज्ञेय, धर्मवीर भारती, डॉ. देवराज, हिमांशु जोशी इत्यादि वादबद्ध-व्यक्तिवादी कहे जा सकते हैं, कहानीकारों में निर्मल वर्मा प्रतिनिधि वादबद्ध-व्यक्तिवादी माने जा सकते हैं। अन्य विधाओं पर व्यक्तिवाद विशेष प्रभाव न डाल सका।

वारबद्ध-प्रगतिवादी रूसवादी-चीनवादी हो गया, वादयुक्त-प्रगतिशील भारतवादी बना रहा—स्वभावतः उसी का प्रभाव अधिक व्यापक सिद्ध हुआ। वादबद्ध-प्रयोगवादी अमेरिकावादी-पश्चिमवादी हो गया, वादमुक्त-प्रयोगगवादी भारतवादी बना रहा—किन्तु भारत की स्थिति के व्यक्तिवाद के विशेष अनुरूप होने के कारण वह व्यापक जनजीवन पर कोई विशेष प्रभाव न डाल सका, केवल बौद्धिक-स्फुरण देकर चुक गया। निस्सन्देह प्रगतिवाद ने हिन्दी-साहित्य को महान् जनवादी चेतना से बलवतर किया, प्रयोगवाद ने हिन्दी-साहित्य को नूतन व्यक्तिवादी चेतना से परिचित कराया। हिन्दी की मूल प्रकृत प्रगतिवाद के ही अनुरूप रही है—कवीर, सूर, तुलसी, भारतेन्दु, महावीरप्रसाद द्विवेदी, निराला इत्यादि सहज-प्रगतिवादी अर्थात् जनवादी साहित्य-स्रष्टा रहे हैं। किन्तु प्रयोगवाद भी पृष्ठभूमि-विहीन नहीं है—केशवदास, घनआनन्द, श्रीधर पाठक इत्यादि ने नव्य-भव्य प्रयोगशील व्यक्तिवादी सृजन किया था।

देशी-विदेशी प्रचार-साधनों, सुविधाओं एवं सम्पन्नताओं से लैस प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद तो अत्यधिक चर्चित हुए (भारत में विशेष ख्याति उसी की होती है जिसे 'अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता' प्राप्त हो—भारत है ही क्या जो भारतवादी पूजा जाए! रवीन्द्र को भारी सम्मान मिला किन्तु प्रसाद को उतना नहीं क्योंकि रवीन्द्र नोबेल-प्राइज पाकर विश्वकवि हो गए थे, गाँधी को भारी सम्मान मिला किन्तु तिलक को नहीं, नेहरू को भारी सम्मान मिला किन्तु पटेल को नहीं, राधाकृष्णन् को भारी सम्मान मिला किन्तु भगवानूदास को नहीं) किन्तु नवरहस्यवाद की चर्चा तक नहीं हुई, यद्यपि इसने पन्त, अज्ञेय इत्यादि पर भारी प्रभाव डाला तथा डॉ. भगवानूदास, डॉ. सम्पूर्णानन्द, स्वामी मुक्तानन्द परमहंस, रजनीश इत्यादि ने इस दिशा में उत्कृष्ट एवं मौलिक ग्रन्थ-रचना की। यह नवरहस्यवाद मनोवैज्ञानिक होने के कारण यथार्थवादी है तथा मध्यकालीन अतर्क्यास्था अथवा अन्धास्था से भिन्न है, समता का पोषक है, मानवतावादी है। इसने कोटि-कोटि भारतवासियों को तो प्रभावित किया ही है, लक्ष-लक्ष विदेशियों को भी अभिभूत किया है। इसने संसार में भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। आत्मा-परमात्मा यथार्थ-शरीर के लोचन हैं, कल्पित तत्त्व नहीं। इनके बिना मानव 'देख' नहीं पाता। रूस, चीन इत्यादि अब देख रहे हैं!

मेरे मत से, वस्तुवाद के आधार पर, यथार्थवादी युग के साहित्य को तीन विशद वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—

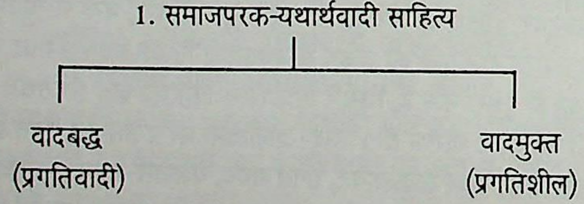

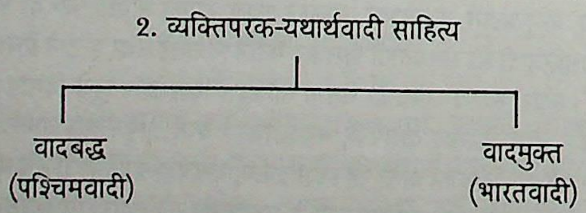

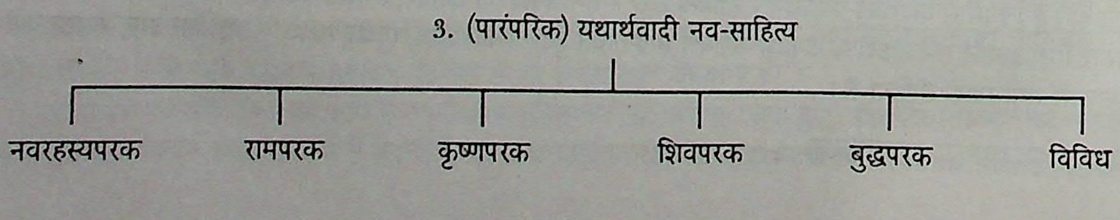

समाजपरक-यथार्थवादी साहित्य

कार्ल मार्क्स (1818-83 ई.) जर्मनी का यहूदी था जिसका परिवार भयावह ईसाई-साम्प्रदायिकता के कारण उसके बाल्यकाल में ईसाई हो गया था। जर्मनी ने आधुनिक यूरोप के बौद्धिक निर्माण में सबसे अधिक भाग लिया है। लूथर, कांट, गेटे, हेगेल (हीगेल), नीत्शे, मार्क्स, एंजेल्स, आइंस्टाइन आदि आधुनिक पश्चिम के ऐसे निर्माता हैं जो संख्या में किसी भी दूसरे देश को पीछे छोड़ देते हैं। जर्मनी बहुत दूर तक आधुनिककाल का यूनान रहा है। मार्क्स जर्मनी की महान् परम्परा की एक सर्वाधिक प्रभावशाली विभूति है, जिसने मानव-जाति को जगाया है। इतिहास एक पथ पर चला जा रहा था, मार्क्स ने उसे पकड़कर दूसरी ओर लगा दिया। कांट और हेगेल का आदर्शवाद, शॉपेनहॉएर का निराशावाद, डार्विन का विकासवाद अध्ययन को गतिशील कर सका है, किन्तु मार्क्स के द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद[1] ने इतिहास को गतिशील किया है। वह वैज्ञानिक साम्यवाद का जनक है। मार्क्स बीसवीं सदी की राशि-राशि क्रान्तियों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष पिता है। साम्यवादी संसार में मार्क्स पैग़म्बर है एवं प्रजातांत्रिक-समाजवाद के समर्थकों को भी मार्क्स कहीं-न-कहीं अवश्य प्रभावित करता है। उसके प्रचंड चिन्तन ने पूँजीवाद में भी श्रम की गरिमा का समाजवादी जीवन-रस घोल दिया है। मानव-जाति के इतिहास में कलम का एक सबसे प्रभावशाली चमत्कार मार्क्स ने किया है। उसने अपने जीवन में सक्रिय विद्रोह की दिशा में काफी-कुछ काम किया था, किन्तु उस काम का विशेष मूल्य नहीं है। विशेष मूल्य उसकी सैद्धान्तिक दृष्टि का है, जिसके निर्माण में उसके अभिन्न, अन्योन्याश्रित एवं अतुलनीय मित्र एंजेल्स साधना का भी योग था। मार्क्स और एंजेल्स शरीर और छाया की भाँति एक थे। मार्क्स मनीषा था, एंजेल्स श्रम। मार्क्स साध्य था, एंजेल्स साधन। मार्क्स और एंजेल्स की मित्रता का सत्य कल्पना से भी अधिक विस्मयकारी है।

मार्क्स ने हेगेल के आदर्शवादी विरोधी तत्वों के संघर्ष के विपरीत यथार्थवादी द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद का चिन्तन विकसित किया। भौतिक-पदार्थ एवं मानव-समाज एक चिन्तन, पराशक्ति-रहित एवं आत्म-रहित विकास-क्रम के परिणाम हैं। इतिहास में राजा-सामंतों तथा पूँजीपतियों के शोषणमय प्रभुत्व के अनन्तर सर्वहारा-वर्ग का अभ्युदय अवश्यंभावी है। जिस प्रकार मार्क्स ने विकास के संघर्ष-सिद्धान्त के प्रतिपादन में हेगेल इत्यादि से प्रभावग्रहण किया, उसी प्रकार डार्विन इत्यादि से भी। किन्तु जहाँ हेगेल में पराशक्ति का विरोध नहीं है, वहाँ मार्क्स में है। अतएव, मार्क्स हेगेल से भिन्न है। डार्विन का विकासवाद साम्राज्यवादी ब्रिटेन की चिन्तना से विकसित हुआ था, जो मूलतः एवं स्पष्टतः व्यक्तिवाद में आबद्ध था। मार्क्स व्यक्ति में नहीं, समाज में, समाज में भी सर्वहारा वर्ग में विश्वास रखता था। अतएव, मार्क्स डार्विन से भिन्न है। मार्क्स ने प्रथम अवसर पर संसार को एक विशिष्ट पारशक्ति-रहित एवं आत्मशक्ति-शून्य वैज्ञानिक द्वन्द्वात्मक-भौतिकवादी दृष्टि प्रदान की। ईसाई-यूरोप में मार्क्स बौद्धमत के अधिक निकट था। यदि बुद्ध उन्नीसवीं शताब्दी में उत्पन्न होते तो उसका नाम मार्क्स होता। यदि मार्क्स ढाई-हजार साल पहले पैदा होता तो उसका नाम बुद्ध होता! किन्तु बुद्ध और मार्क्स में दूरी है। बुद्ध अहिंसा एवं करुणा में विश्वास रखते हैं, मार्क्स का विश्वास केवल क्रान्ति में है, यद्यपि वह सर्वत्र रक्तरंजित क्रान्ति का प्रतिपादन नहीं करता। 'महान् रूसी विश्वकोश'[2] में मार्क्स-सम्बन्धी विवरण (जो पुस्तिका के रूप में प्रकाशित हो चुका है) स्पष्ट कर देता है कि मार्क्स की धारण थी कि संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटेन में सर्वहारा-वर्ग का प्रभुत्व बिना क्रान्ति के ही स्थापित हो जाएगा। उक्त ग्रन्थ यह भी स्पष्ट करता है कि मार्क्स रूस में क्रान्ति की सर्वप्रथम सफलता में विश्वास रखता था।

मार्क्स विचार के क्षेत्र में कोई नितान्त आकस्मिक् उद्भूति न था। 1964 ई. में लैंकाशायर के बुनकर हार्ग्रीव्ज़ ने स्पिनिंग-जेनी यन्त्र के साथ पश्चिम की औद्योगिक क्रान्ति को वैज्ञानिकता से जोड़ा। औद्योगिक क्रान्ति पश्चिम के जीवन पर आकाश के सदृश छा गई। उपनिवेशों से मुफ़्त का सा कच्चा माल (लूट का माल) लाना, उसे देशी नर-नारी-बालक-बालिका-श्रमशक्ति के बल पर चमाचम करना किन्तु श्रमिकों को डंडे के बल पर कौड़ी-कौड़ी के लिए तरसाना, पुनः वही माल सामान्यतः देश-विदेश किन्तु विशेषतः उपनिवेशों में ही सोने की दर पर वेचना (दोबारा लूटना)—ब्रिटेन, फ्रांस, हॉलैण्ड (नीदरलैण्ड्स), बेल्जियम इत्यादि दुनिया के धन्ना-सेठ बन बैठे। देशी शोषण एवं उपनिवेशों की विदेशी लूट को आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक औचित्य से संपुष्ट करने के उद्देश्य से सर्वविध-चिन्तन-दधि का नवनीत 'व्यक्तिवाद' निकाला गया, जिसके अनुसार समाज सदा साधारण व्यक्तियों का समूह होता है जो केवल विशिष्ट योग्यता से निष्पन्न व्यक्तियों के बल पर ही आगे बढ़ता है, अतः व्यक्ति के विकास का पथ प्रशस्त करना ही उत्कर्ष का मूल तत्त्व है, अर्थात् व्यक्ति के उत्कर्ष-पथ पर समाज व्यवधान न खड़े कर सके, ऐसी व्यवस्था ही सर्वोत्तम व्यवस्था है। इसमें

---

1. डायलेक्टिकल मेटेरिअलिज़म।
2. द ग्रेट रशियन एन्साइक्लोपीडी।

सन्देह नहीं कि इस चिन्तन में स्वाभाविकता एवं मनोवैज्ञानिकता दोनों विद्यमान हैं। किन्तु इसकी आड़ में ऐसा विकट शोषण किया गया कि 1775 ई. में अमेरिका की गोरी या अभिजात क्रान्ति हुई तथा यह विशाल स्वर्णदेश ब्रिटेन के साम्राज्य से मुक्त हो गया, 1789 ई. में फ्रांस की क्रान्ति हुई जिसने वहाँ राजतन्त्र का ही सफ़ाया कर दिया। किन्तु अठाहरवीं शताब्दी की क्रान्तियाँ वैयक्तिक स्तर के उत्थान में ही मूलभूत थीं। उनमें मानवीय समता एवं स्वतन्त्रता का सैद्धान्तिक शंखनाद तो था किन्तु समग्र जन-जीवन की ओर पूर्णतः उन्मुख क्रियात्मक दर्शन न था। वात ऐसी न थी कि सारा यूरोप श्रमिकों एवं कृषकों की दयनीयता जानता न रहा हो।

ब्रिटेन के रॉबर्ट ओवेन जैसे पूँजीपति श्रमिकों के साथ आदर्श सम्बन्ध रखने की चेष्टा जीवन भर करते रहे। 1827 ई. में 'समाजवादी' शब्द का प्रथम प्रयोग ओवेन के समर्थकों के लिए ही हुआ था। सारा पश्चिम एक जनपरक क्रान्ति के लिए विकल था। मार्क्स विश्व की जनवादी क्रान्ति का तीव्र उद्गार था। उसने निर्मम होकर आदर्शवादी व्यक्तिपरक दर्शन का खंडन किया, अतिवादी-क्रान्तिदर्शियों की भर्त्सना की, एक बौद्धिक एवं सन्तुलित जनपरक क्रान्ति-दर्शन प्रस्तुत किया, जिसका परिणाम मानव-जाति के इतिहास में 1917 ई. की सर्वश्रेष्ठ सोवियत क्रान्ति थी, एशिया के इतिहास की 1948 ई. की अप्रतिम चीनी क्रान्ति है, अनेक अतीत-सम्बद्ध क्रान्तियाँ हैं, अनेक भविष्य-सम्बद्ध क्रान्तियाँ हो सकती हैं। साम्यवाद की विफलता का कारण दलगत-तानाशाही है, मार्क्स नहीं। मार्क्स कालातीत नहीं हो सकता।

मार्क्स ने सिद्धान्त प्रस्तुत किए थे, लेनिन ने उन्हें व्यवहार प्रदान किया। मार्क्स में सैद्धान्तिक कट्टरता थी, लेनिन ने उसे व्यावहारिक लचीलापन दिया। मार्क्स विश्ववादी था, लेनिन ने क्रान्ति को राष्ट्रवादी रूप प्रदान किया। मार्क्स शुष्क वर्गसंघर्षमूलक साहित्य का प्रेमी था, लेनिन अपनी पत्नी क्रुप्सकाया से सामन्ती विलासिता के प्रतीक एवं निराशावादी पुश्किन के प्रति स्नेह छिपा न सकता था। वह आदर्शवादी टॉल्स्टॉय का आदर करता था। मार्क्स अतिबौद्धिक था, अतिशुष्क था। स्यात् इसीलिए वह स्वयं कहता था, "धन्यवाद ईश्वर को कि मार्क्स मार्क्सवादी नहीं है!" व्यक्ति-मार्क्स एवं चिंतक में अन्तर था। लेनिन ने वैज्ञानिक समाजवादी चिन्तन को द्वितीय सोपान प्रदान किया। किन्तु 1924 ई. में उसके दिवंगत होने पर स्टालिन ने क्रूरता एवं व्यक्तिपूजा का अवलम्बन ग्रहण किया। स्टालिन एक महान् पुरुष था। सोवियत यूनियन एवं विश्व-साम्यवाद का प्रधान निर्माता स्टालिन ही था। लेनिन सोवियत यूनियन का पिता था, स्टालिन निर्माता। किन्तु स्टालिन की क्रूरता एवं भावुकताविहीन दृष्टि ने धर्म, दर्शन, कविता, संक्षेप में, सारे जीवन को अपने आसपास ऐसी लौह-शृंखलाओं में जकड़ लिया कि स्वयं उसका दल ही 1953 ई. में उसका देहान्त के अनन्तर ख्रुश्चेव के नेतृत्व में स्टालिन-विरोधी बन बैठा। लेनिन के शरीर के साथ रखे स्टालिन के शरीर तक को हटवाकर दफ़न करा दिया गया (ब्रिटेन के इतिहास में क्रॉम्वेल के शरीर को क़ब्र से निकलवाकर फाँसी देने की घटना याद आती है)।[1] मार्क्स की कमी थी कि अपने चिन्तन में उसने भावुकता का किंचिन्मात्र सम्मान नहीं किया। लेनिन ने भावुकता का सम्मान किया, किन्तु उसके समय की परिस्थितियाँ इस दिशा में बहुत आगे न बढ़ सकती थीं। चीन के महान् नेता माओ त्से-तुंग कवि थे, हनुमान्-भक्त थे (जैसा कि 'महाकविराज' प्रभृति कविताओं से निर्विवादतः स्पष्ट है—वे अपने निजी कक्ष में हनुमान् का चित्र टाँगते थे) किन्तु देश-काल की परिस्थितियों के कारण उन्हें कठोर एवं शुष्क क्रान्ति का नेतृत्व करना पड़ा, जिसमें अब समयानुसार लचीलापन आ रहा है। ख्रुश्चेव ने समाजवाद को, मार्क्स और लेनिन के अनन्तर, तृतीय सोपान प्रदान किया, जिसमें धर्म, दर्शन, साहित्य के स्वातन्त्र्य को भी यत्किंचित् स्थान प्राप्त था। ख्रुश्चेव ने येसेनिन और मायकाव्यस्की प्रभृति अनेक साहित्यकारों की आत्मघात, ट्रॉट्स्की, बुखारिन प्रर्भृति अनेक नेताओं की हत्या, यहूदियों के साथ नृशंस व्यवहार (इस्राइल के अधिकांश यहूदी रूस से भागकर आए), हज इत्यादि से वंचित मुसलमानों की कुंठा, चर्च के भावुक जीवन से रहित श्रद्धालुओं की वेदनाएँ अनुभव की थीं। उसने टीटो आदि को भ्रातृत्व की दासता के प्रति विद्रोह करते भी देखा था, हंगेरी, चेकोस्लोवाकिया इत्यादि से घटनाचक्र देखे थे। फलतः उसने समाजवाद को ऐसा सोपान प्रदान करने की कोशिश की, जो समय की दृष्टि से आवश्यक हो गया था। उदार-साम्यवाद ही जीवित रह सकता है। अपदस्थ हो जाने पर भी, इतिहास में ख्रुश्चेव का नाम रहेगा। मार्क्स वैज्ञानिक समाजवाद का प्रथम सोपान हैः चिन्तन एवं दृष्टि की सैद्धान्तिक कठोरता से युक्त। लेनिन वैज्ञानिक समाजवाद का द्वितीय सोपान है; व्यावहारिकता एवं सीमित-भावुकता से युक्त। ख्रुश्चेव वैज्ञानिक समाजवाद का तृतीय सोपान हैः मनोवैज्ञानिक उदारता से युक्त। गोर्बाचोव वैज्ञानिक समाजवाद को व्यक्तिवाद के ग्रहणीय तत्वों से संपृक्त कर उसे लोकतन्त्रीय व्यवस्था में परिणत करने

---

[1] पितृहंता मालवा-सुल्तान नसीरुद्दीन की क़ब्र पर शेरशाह सूरी ने एक लात जमाई थी, किन्तु जहाँगीर ने उसकी ठठरी निकलवाकर जलवा दी थी (यद्यपि स्वयं पितृद्रोही था) इतिहास में ऐसी विक्षिप्तताएँ अनेक मिलेंगी।

का यत्न कर रहे थे, क्योंकि उन्हें पूर्व-जर्मनी, हंगरी, चेकास्लोवाकिया, पोलैण्ड, रोमानिया इत्यादि के घटनाचक्र ठीक ही प्रभावित कर सके थे—वे अपने समय के ख़ुश्चेव थे। गोर्बाचोव वैज्ञानिक समाजवाद का चतुर्थ सोपान हैंः व्यक्तिवाद से समझौता करने, लोकतान्त्रिक प्रक्रिया को अपनाने के साहस से सम्पन्न। इस प्रकार, मार्क्स-लेनिन ख़ुश्चेव-गोर्बाचोव वैज्ञानिक समाजवाद के उद्‌भव विकास के चार सोपान हैं। यूरोप में साम्यवाद के पतन एवं सेवियत यूनियन के बाद भी इन ऐतिहासिक महापुरुषों के नाम अमर रहेंगे। कठोर साम्यवाद 1917 ई. की सोवियत क्रान्ति के साथ उठा और 1919 ई. तक समाप्त हो गया। वस्तुतः साम्यवादी देशों (रूस, चीन, पोलैंड, रोमानिया, चेकोस्लोवाकिया इत्यादि) की वन्दिनी जनता का आक्रोश सीमा पर आता देखकर ही इनके नेता उदार बने—साम्यवादी उदारता इतिहास में एक विवशता के रूप में भी स्वीकृत की जाएगी। तानाशाही एवं परकीयता के विरुद्ध प्रथम विद्रोही युगोस्लाविया ने किया, द्वितीय हंगरी ने, तृतीय चेकोस्लोवाकिया ने। स्वयं रूस में स्टालिन की बेटी स्वेटलाना, वैज्ञानिक सखारेव इत्यादि ने स्वातन्त्र्य का शंखनाद किया। अतः उदारता के अतिरिक्त कोई अन्य रास्ता भी न था। रोमानिया निदर्शन है।

ईश्वर और धर्म के प्रति जिहाद बोल देने मात्र से समाजवाद नहीं आ सकता। इस जिहाद से साम्यवाद के आने में बाधा पड़ सकती है, विशेषकर भारत जैसे देश में जहाँ अशिक्षा और रूढ़ि का साम्राज्य है। भगवान् करे, संसार नास्तिक हो जाए! किन्तु नास्तिकता न सबके वश की है, न मनोवैज्ञानिक। आस्तिकता मनोवैज्ञानिक है। वह मानव की अनन्त कल्पना के निकट है। नास्तिकता अमनोवैज्ञानिक है। वह मनुष्य का कल्पना-लोक असीम कर देती है। मार्क्स के सबसे बड़े दोष उसके कल्पनाशील न होने तथा चिन्तन को स्व में जकड़ लेने से सम्बन्धित हैं। उन दोषों को समझना है। इसका यह अर्थ नहीं कि नेहरू की तरह नारा लगा दिया जाए कि मार्क्सवाद कालातीत हो गया है! नेहरू स्वयं को समाजवादी और मार्क्स को कालातीत कह गए, लोहिया समाजवादी और मार्क्स के आलोचक थे। नेहरू 1964 ई. में मरे, लोहिया 1967 ई. में। किन्तु 9 जनवरी, 1998 को पोलैंड के पूर्व-साम्यवादी राष्ट्रपति अलेक्सांदेर क्वास्नीस्की का नई दिल्ली में मार्क्स को कालातीत घोषित करना विलक्षण लग सकता है। मेरे मत से, मार्क्स का दर्शन शोषण के अन्त का दर्शन है, समता का दर्शन है; वह अपने मूल में चिरन्तन है। यह सत्य है कि मार्क्स की भारत के विषय में जानकारी नगण्य थी, जैसाकि उसके यह कहने से स्पष्ट है कि भारत में कभी कोई स्वर्ण-काल नहीं आया था। किन्तु उसने ब्रिटेन द्वारा भारत के आर्थिक शोषण, 1957 ई. में दमन इत्यादि के प्रति सहानुभूति अवश्य दिखलाई है। भारत आँख मूँदकर मार्क्स या लेनिन या स्टालिन या माओ को नहीं अपना सकता, क्योंकि प्रथम तीन भारत के प्रति यथेष्ट संवेदनशील न थे तथा चतुर्थ ने 1962 ई. में भारत का घोर अपमान किया था। प्रखर मनीषी, समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया ने मार्क्स के गौरांगवादी चिन्तन की संकीर्णता का जो मौलिक विवेचन किया है, वह माननीय है। चीन का तिब्बत के साथ व्यवहार विश्व-इतिहास की एक अमानवीय घटना है[1]।

भारत-जैसे महान् सांस्कृतिक राष्ट्र को उपनिषद् एवं गीता (जिसका उल्लेख ग्रोमीको ने 'मेमॉइर्स' में सादर किया है और गोर्बाचोव जिसे गौरवपूर्वक उद्धृत करते हैं—ध्वस्त जर्मनी के हिटलर ने एक नन्हीं-सी बालिका से पूछा कि भीषण बमबारी में तुम डर नहीं रहीं तो उत्तर मिला, "डरूँ क्यों? देखते नहीं, मेरे हाथ में गीता है!") से ही प्रेरणा प्राप्त हो सकती है; राम, कृष्ण, व्यास, शंकराचार्य एवं तुलसीदास ही उसे प्रेरित कर सकते हैं। जिन साम्यवादियों ने इस सत्य को स्वीकार किया, वे ही यहाँ आदर पा सके।

हिन्दी में भारत-विरोधी राहुल, यशपाल, रांगेय राघव इत्यादि शीघ्र ही कालातीत हो गए, जबकि भारत-प्रशंसक रामविलास शर्मा, नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन' इत्यादि अपनी-अपनी क्षमताओं के अनुरूप जम सके। जिन भारतीय समाजवादियों ने मार्क्स का अन्धानुकरण नहीं किया, वे अधिक प्रभावी सिद्ध हुए—भारत में जयप्रकाश, लोहिया एवं नरेन्द्रदेव के स्तर का कोई साम्यवादी नहीं हुआ (वस्तुतः भारत में कोई अखिल-भारतीय महत्त्व का साम्यवादी हुआ ही नहीं)।

वादबद्ध-समाजपरक साहित्य (प्रगतिवादी साहित्य)

हिन्दी साहित्य में मार्क्सवाद का प्रभाव यथार्थवादी-युग में ही दृग्गत हुआ, क्योंकि सन्धि-युग पम्परा-प्रधान था (इतिहास में पूर्ववर्ती भी), सुधारवादी-युग परम्परा से नव्यता को संपृक्त करने वाला और प्रायः पूर्ववत्, आदर्शवादी-युग राष्ट्रवाद मात्र से संस्फुरित तथा

---

[1] तिब्बत बुलेटिन (धर्मशाला, हिमाचल प्रदेश), जून-जुलाई, 1989, पृष्ठ 20 (चीन ने 1959 ई. में दलाई लामा के भारत पलायन के बाद चालीस वर्षों में दस-लाख तिब्बतियों को मौत के घाट उतारा—केवल 5-6-7 मार्च, 1989 को 30 से 60 तक हत्याएँ की। साठ-लाख तिब्बतियों को पछत्तर-लाख हान-चीनियों के नीचे दबा दिया गया है। अमानवीय यातनाओं के बावजूद शान्तिप्रिय तिब्बती स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं।)

स्वच्छन्दतावादी-युग की सन्तुलित अस्मिता का दर्शन इसके अनुरूप न था। यथार्थवादी-युग में भी मार्क्सवादी प्रभाव के वादबद्ध एवं वादमुक्त दो रूप दृग्गत होते हैं, जिनमें विशेष प्रभावी पन्त, निराला, दिनकर इत्यादि वादमुक्त ही रहे। वादबद्ध मार्क्सवादियों में रामविलास शर्मा, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदानसिंह चौहान, नामवर सिंह, विश्वंभरनाथ उपाध्याय, शिवप्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, शिवकुमार सेवक वात्स्यायन, प्रेमशंकर इत्यादि आलोचकों में रामविलास शर्मा की अप्रतिमता का कारण यह है कि उन्होंने संस्कृति की अवहेलना नहीं की, तुलसी पर श्रद्धा बनाए रखी, भारतेन्दु का प्रभावी आकलन किया, आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के प्रति अपने ग़लत-सलत विचार सुधारे, निराला के प्रति अप्रतिहत निष्ठा का परिचय दिया, जिसके परिणामस्वरूप दल के परकीयता-प्रेरित तत्वों ने उनकी उपेक्षा तक की। किन्तु हिन्दी की मार्क्सवादी आलोचना ने विधा को प्रणम्य जनवादिता एवं प्रशस्य आधुनिकता से सम्पन्न किया है। कविता की विधा में वादबद्ध मार्क्सवादी कवियों में मुक्तिबोध, नागार्जुन, धूमिल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, जगदीश गुप्त, केदानाथ सिंह, रामदरश मिश्र, (कवि) राहुल इत्यादि में असाधारणता केवल मुक्तिबोध प्राप्त कर पाए, जिनकी कविता पर उनके भारतवादी संस्कार भी छाए मिलते हैं जिसके परिणामस्वरूप कट्टर रूसवादी-चीनवादी उन्हें 'बूर्ज्वा' तक कह मारते हैं—वैसे, कवियों में एक भी जड़-मार्क्सवादी नहीं हुआ! मार्क्सवाद की अमनोवैज्ञानिकता एवं शुष्कता गद्य के ही अनुकूल है। मार्क्सवाद विश्व को कोई महाकवि नहीं प्रदान कर सका—स्वयं माओ एवं हो ची मिन्ह जैसे महान् नेता तक साधारण कवि रह गए! कारण? कविता थोपे-थापे विचारों की भोंपू नहीं बन सकती! उपन्यास के क्षेत्र में वादबद्ध मार्क्सवादियों ने स्फीत एवं उत्कृष्ट सृजन किया है, क्योंकि इस विधा के लिए यह वाद अनुकूल है—मानवता (विशेषतः भारतीय-मानवता) आज भी शोषित, प्रपीड़ित एवं संत्रस्त है तथा समता के राग के बेहद अलापे जाने के बावजूद विषमता में अनवरत वृद्धि ही हुई है—तथा रूसी-उपन्यास ने गोर्की, शोलोख़व, एहरेम्बर्ग़ जैसे उपन्यासकार भी देखे हैं (टॉल्स्टॉय एवं डॉस्टॉएव्स्की संसार के शीर्षस्थ उपन्यासकार थे हीः अपने समग्र में रूसी-उपन्यास विश्व में सर्वश्रेष्ठ है)। यशपाल, राहुल, अश्क़, रांगेय राघव, श्रीलाल शुक्ल, शिवप्रसाद सिंह, भीष्म साहनी, रामदरश मिश्र, कृष्णा सोबती, विश्वंभरनाथ उपाध्याय इत्यादि असंख्य मार्क्सवादी उपन्यासकारों में उच्चस्तर केवल यशपाल प्राप्त कर सके और वे भी रोम-रोम से भारत-विगर्हणा, भारतीयता-विगर्हणा, हिन्दू-विगर्हणा, उत्तर प्रदेश-विगर्हणा इत्यादि के कारण स्वयं श्रद्धास्पद न बन सके। मुझे वादबद्ध मार्क्सवादी कहानीकारों की संख्या का ज्ञान नहीं, क्योंकि यह विधा भी भारत की दरिद्रता एवं दयनीयता के कारण तो उनके अनुकूल है ही, महान् रूसी कहानी (जिसे चेख़व[1] जैसे एक विधा-सीमान्त ने भी सम्पन्न किया है) भी उनको प्रेरित करती है। चन्द्रकिरण सौनरेक्सा, यशपाल, राहुल, अश्क़, मोहन राकेश, मन्नू भंडारी, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, रामदरश मिश्र, मार्कण्डेय, श्यामसुन्दर घोष, अमृतराय, राजकमल चौधरी, विवेकी राय, कृष्णा सोबती, शानी, काशीनाथ सिंह इत्यादि तो प्रमुख कहानीकार मात्र हैं, जिनमें प्रस्थानिक उच्चस्तर केवल चन्द्रकिरण सौनरेक्सा एवं यशपाल को प्राप्त हो सका है। डॉ. नामवर सिंह ने नयी कहानी पर प्रशस्य प्रकाश डाला है जो उनके आलोचक-व्यक्तित्व का परम्-धन है। कहानी पर श्यामसुन्दरदास, प्रेमचन्द, राय कृष्णदास, डॉ. श्री कृष्णलाल, डॉ. परमलाल गुप्त, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. काशीनाथ सिंह, डॉ. रामश्रय सविता, डॉ. महेश दिवाकर (विधा के सर्वाधिक स्फीत शोधकर्त्ता किन्तु आलोचना-शक्ति में अधिकांशवत् विपन्न) इत्यादि ने पर्याप्त एवं प्रशस्य बहुकोणीय प्रकाश डाले हैं। नाटक की विधा में उच्चस्तर केवल मोहन राकेश पा सके हैं, किन्तु एकांकी की विधा में भुवनेश्वर, अश्क़ इत्यादि ने स्मरणीय सफलता प्राप्त की है तथा 'नए' साम्यवादी विष्णु प्रभाकर मूलतः गाँधीवादी भी उल्लेखनीय हैं।

वादबद्ध मार्क्सवादी या प्रगतिवादी साहित्य की प्रमुख प्रवृत्ति शोषण, प्रपीड़न, विषमता इत्यादि का यथार्थ चित्रण है, जो प्रशस्य है। किन्तु वादबद्ध-मार्क्सवादी या प्रगतिवादी साहित्यकार भारत-निन्दा, भारतीयता-निन्दा, आर्य-निन्दा, हिन्दू-निन्दा, मुस्लिम-वरीयता इत्यादि की रूढ़ियों का पालन करने के कारण वास्तविक प्रगतिशीलता से दूर जा पड़ते हैं। यह सत्य है कि मार्क्स को भारत से वितृष्णा थी, लेनिन भारत-प्रशंसक न थे, स्टालिन गाँधी-नेहरू इत्यादि को पाखंडी-प्रतिक्रियावादी समझते थे, माओ ने भारत को अपमानित एवं परास्त किया, किन्तु ये स्वयं अपने राष्ट्रों के अनन्य प्रेमी थे। अतः इनके अनुकरण में राष्ट्रघात स्वयं इनका सच्चा अनुकरण भी नहीं हो सकता। यशपाल (झूठा-सच) विभाजन का दोष हिन्दुओं के सिर मढ़ते हैं (छोटे-यशपाल भीष्म साहनी ने 'तमस्' का वरण किया है) जो वस्तुपरक इतिहास के अनुरूप नहीं है। राहुल आर्यों को रूस से आया (वोल्गा से गंगा) सिद्ध करते हैं जो साधार नहीं है तथा हिन्दू धर्म में उन्हें कभी कोई ख़ूबी नहीं दीखी। रांगेय राघव आर्यों को बर्बर एवं नृशंस सिद्ध करते हैं (मुर्दों का टीला) जो

---

[1] प्रेमचन्द चेख़व को विश्व का सर्वश्रेष्ठ कहानीकार मानते थे। विश्व मोपासाँ को मान सकता है। दोनों महान् कलाकार थे।

(युद्ध मात्र के वर्बर एवं नृशस होने के कारण) पूर्वाग्रहग्रस्त एवं एकांगी है तथा (स्वयं उनके दाक्षिणात्य होने के कारण) उन्हें द्रविड़-पृथकतावादी रामास्वामी नायकर के संकीर्णतावाद का आखेट प्रमाणित करता है।[1] अधुतनातन तमिलनाडु की आर्य-संस्कृत-हिन्दी-घृणावादी संकीर्ण-द्रविड़ राजनीति के आचार्य अन्नादोरै सी. आई. ए. से प्रेरित हुए थे, यह तथ्य टी. एन. शेषन् जैसे समादृत व्यक्ति ने उद्घाटित किया था। (यद्यपि जीवनीकार को उनकी जीवनी के प्रकाशित ह़ोने से पूर्व ही हिंसा के डर से यह अंश हटाने पर विवश होना पड़ा)। वहाँ घृणावाद सत्ता का कल्पतरु बन गया। यशपाल, राहुल, रांगेय राघव, भीष्म साहनी, नामवर सिंह, इत्यादि की मुस्लिमपरस्ती भी वस्तुपरक नहीं है और इसने साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया है। साम्प्रदायिकता ज़हर है—वह मुसलमान के हाथ पर आबेहयात कैसे बन जाएगी? रूस, चीन, अलबानि, बुलगारिया, युगोस्लाविया इत्यादि साम्यवादी देशों में शरीयत का कोई महत्त्व नहीं था तथा बहुविवाह पर रोक है, हज नगण्य है, कहीं-कही राष्ट्रीय नामकरण के नियम तक प्रचलित हैं। संसार भर में (अनेक मुस्लिम देशों में भी) एकपत्नीवाद मुसलमानों पर भी लागू है। मुस्लिम देशों में कई (पाकिस्तान और बांग्लादेश समेत) परिवार-नियोजन चला रहे हैं। सिंगापुर इत्यादि में मुसलमान भी शवदाह करते हैं। राजेन्द्र यादव इत्यादि रामविरोधी हैं किन्तु क्या उनमें हिम्मत है कि मोहम्मद के नितान्त विवादास्पद जीवन पर दो शब्द भी कह सकें?

वादबद्ध-मार्क्सवादियों या प्रगतिवादियों का यथार्थ-चित्रण भारत-विरोध, भारतीयता-विरोध, मुस्लिम-साम्प्रदायिकता से आच्छन्न होने इत्यादि के कारण वस्तुपरक, मानवतावादी एवं स्वस्थ नहीं रह सका। किन्तु यथार्थ-चित्रण स्वयं में प्रशस्य तो है ही। प्रगतिवादियों का शोषण-विरोध नितान्त आदरास्पद है, किन्तु यह उनसे पूर्व प्रेमचन्द, निराला इत्यादि भी कर चुके हैं, समसामयिक पन्त, दिनकर इत्यादि ने भी किया है; अतः इसके एकाधिकार का दावा निराधार होगा। इसमें सन्देह नहीं कि शोषण-विरोध को साहित्य-धर्म बनाकर वादबद्ध-मार्क्सवादियों या प्रगतिवादियों ने एक महान् कार्य सम्पादित किया है। किन्तु वर्ग-संघर्ष भारत में सम्भव नहीं लगता क्योंकि यहाँ प्रत्येक वर्ग अपने-अपने स्थान पर शोषक बन चुका है या बनाया जा चुका है, प्रत्येक वर्ग के प्रमुख व्यक्ति अनुचित धन-संचय में लिप्त हैं, जबकि वर्ग-संघर्ष के लिए शोषक एवं दो स्पष्ट वर्गों का होना अपरिहार्य है। राष्ट्रीयकरण पर बेहद ज़ोर देकर नेहरू एवं साम्यवादियों ने शंखों रुपए की राष्ट्रक्षति की—बिना राष्ट्रीयकरण सफल नहीं हो सकता और भारत के सारे नेता राष्ट्रीय चरित्र के खंडन में ही लिप्त रहे हैं (सवर्ण जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ, अनूसूचित जनजातियाँ), पिछड़ी जातियाँ इत्यादि के द्वारा हिन्दुओं को खंडित किया गया, हिन्दू-मुस्लिम साम्प्रदायिकता को बढ़ावा दिया गया, हिन्दू-सिख विभेद उत्पन्न करने का घृणित कार्य किया गया)! अधिकांश नेता भ्रष्ट रहे। बीसवीं सदी के अनेक भारतीय नेताओं को इतिहास देशद्रोही तक सिद्ध कर सकता है। शत-शत न्यस्त-स्वार्थ बनाने वाले राष्ट्रीय एकता का राग अलापते रहे हैं। वैसे भी, राष्ट्रीयकरण रामबाण नहीं है। रूस, चीन इत्यादि तक इसमें ढील दे रहे हैं। जड़ता मृत्यु है, गति जीवन।

वादमुक्त-समाजपरक साहित्य (प्रगतिशील साहित्य)

कवि प्रकृत्या क्रान्तदर्शी होता है। साहित्य की वादबद्धता अस्मिता-विपन्न होने के कारण सर्वोच्च-स्तर की सूचना नहीं दे पाती। प्रकृति ही प्रगतिशील है, जैसाकि प्रेमचन्द ने अखिल भारतीय प्रगतिशील संघ के प्रथम (लखनऊ) अधिवेशन में स्पष्ट कहा था; यही नहीं, उन्होंने सम्भवतः आयोजकों के परकीयता-प्रेरित न्यस्त-स्वार्थ को सूँघते हुए संस्था के नाम से संपृक्त 'प्रगतिशील' शब्द की, इसी आधार पर, निस्सारता पर भी प्रकाश डाला था। 'रामचरितमानस' के अनुवाद पर महान् रूसी भाषाविद् एवं विद्वान् वारान्निकोव ने दस वर्ष खपाए थे (1948 ई. में संपृक्त इस अनुवाद की साधना के मध्य द्वितीय विश्व-युद्ध आन पड़ा जिसकी सर्वाधिक विनाश-लीला रूस में हुई—तो स्टालिन की सरकार ने शान्त क्षेत्र में सम्पूर्ण रक्षा की व्यवस्था के साथ विद्वान् को अश्रुतपूर्व सुविधाएँ प्रदान कीं जिससे अनुवाद-साधना अप्रतिहत चलती रहे) और इसकी दस लाख प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक गई थीं! फिर, तुलसी को तो अनेकानेक साम्यवादी साहित्यकार, ए. जी. वारान्निकोव, उनके पुत्र पी. वारान्निकोव, चेलीशेव, स्मेकल इत्यादि ही नहीं प्रत्युत रामविलास शर्मा, शिवमंगल सिंह 'सुमन', रामदरश मिश्र इत्यादि भी सराहते हैं—अगाध जनवादी विद्वान् स्व. सिद्धिनाथ मिश्र तो उनके अनन्य भक्त थे! जिन मैथिलीशरण[2] को उखाड़ने के लिए अनेक साम्यवादी सर के बल खड़े हैं उन्हें चेलीशेव ने 'प्रगतिशील' घोषित और आगरा ने 'डॉ. रांगेय राघव मार्ग' द्वारा सम्मानित किया!

---

[1] फिर भी, दक्षिण ने उन्हें नहीं पूछा (सम्भवतः उनके ब्राह्मण होने के कारण)

[2] 'किसान' का कवि प्रगतिशील नहीं तो और क्या?

किया था! जीवन से सच्चे प्रगतिशील एवं 'सम्पत्तिशास्त्र' के प्रगतिशील चिन्तक आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी को पाकिस्तानियों ने सम्भवतः 'अयोध्या-विलाप' और विशेषतः राष्ट्रवाद-उन्नायक होने के कारणों से 'साम्प्रदायिक' घोषित किया तो भारत के साम्यवादी महान् निर्माता के पीछे पड़ गए। पश्चिमी बंगाल की साम्यवादी सरकार दुर्गा-पूजा को बड़े उत्साह से मनाती है और रवीन्द्र-पूजा में सबके कान काटती है। केरल की साम्यवादी सरकार राजा बलि से सम्बद्ध ओणम् को धूमधाम से मनाती है तथा मुख्यमन्त्री ई. के. नयनार ने जून, 1997 में पोप जॉन पॉल से दर्शनाज्ञा प्राप्त कर गीता का अंग्रेजी अनुवाद भेंट किया। फिर, कोटि-कोटि जन-वंदित राम एवं तुलसी की अवेहलना का क्या तुक-तरन्नुम? राम ग़रीबों के भगवान् हैं, तुलसी ग़रीबों के कवि। राम एवं तुलसी की अवेहलना ग़रीबों की अवेहलना है, जनवाद पर आघात है, प्रर्गति का विपर्यय है। जिन निराला को साम्यवादी पूजते हैं और ठीक पूजते हैं वे रामभक्त थे, तुलसीभक्त भी! जिन डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी पर साम्यवादी पुष्प-वर्षा करते नहीं थकते वे जीवन-संध्या में 'विनयपत्रिका' पढ़कर शयन करते थे। जिन मुक्तिबोध को अनेक साम्यवादी सराहते हैं (उत्साह के अतिरिक्त में 'महाकवि' तक कह डालते हैं) वे राम-कृष्ण का जप करते मरे थे! और-तो-और, जिन प्रेमचन्द को साम्यवादी-रा़जनीति अपने साथ लपेटने में जुटी है वे भी साम्यवादी न थे—वे गोदान के मेहता हैं!

साहित्य मुक्त है! कविता साहित्य की आत्मा है अतः वह परम मुक्त है। इसमें सन्देह नहीं कि शोषण-विरोध, समता-प्रतिपादन एवं मानवतावाद पर जैसा उत्कृष्ट एवं क्रान्त सृजन निराला, पन्त, दिनकर, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, उमाशंकर मिश्र 'उमेश' (झिंगुराः संविधान की छाया में), रोहिणीप्रसाद मिश्र ('सूखती नदी' संग्रह) इत्यादि कवियों की वादमुक्त समाजपरक कविता में प्राप्त होता है, वैसा मुक्तिबोध, नागार्जुन, शिवमंगलासिंह, 'सुमन', धूमिल, शमशेर, जगदीश गुप्त इत्यादि कवियों की वादबद्ध समाजपरक कविता में नहीं। क्रान्ति को दल की वन्दिनी बनाना क्रान्ति की हत्या करना है।

उपन्यास की विधा में भी वादमुक्त-समाजपरक उपन्यासकार ही बाज़ी मार ले गए—वृन्दावनलाल वर्मा (जो आदर्शवादी-युग में जाने गए, स्वच्छन्दतावादी-युग में पहचाने गए, यथार्थवादी युग में माने गए), भगवतीचरण वर्मा (जिनके अधिकांश एवं श्रेष्ठ उपन्यास यथार्थवादी-युग में ही प्रकाशित हुए), भगवतीप्रसाद वाजपेयी, अमृतलाल नागर जैसे शीर्षस्थ उपन्यासकारों की समता वादबद्ध-समाजपरक उपन्यासकारों में केवल यशपाल कर सकते हैं। अन्य वादमुक्त-समाजपरक उपन्यासकारों में रेणु जयप्रकाशवादी हैं; गुरुदत्त, रामकुमार मिश्र 'भ्रमर', प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि हिन्दुत्ववादी, यज्ञदत्त गाँधीवादी, ओंकार 'शरद', कैलाश कल्पित इत्यादि लोहियावादी जबकि शिवानी, शैलेश मटियानी, राजेन्द्र अवस्थी, गिरिराजकिशोर, हिमांशु श्रीवास्तव, हिमांशु जोशी, प्रणवकुमार मुखोपाध्याय इत्यादि ने स्वतन्त्र रूप से सुसंस्कृत आंचलिक अथवा समस्याप्रधान उत्कृष्ट उपन्यास-सृष्टि की है।

सांस्कृतिक उपन्यास

हिन्दी-उपन्यास का सभारम्भ 1870 ई. में पंडित गौरीदत्त कृत 'देवरानी-जेठानी की कहानी' के साथ हुआ। उनके समसामयिक उपन्यासकारों में श्रद्धाराम फिल्लौरी (शुक्ल जी ग़लती से 'फुल्लौरी' लिख गए), श्रीनिवास (शुक्ल जी का इन्हें प्रथम उपन्यासकार मानना ग़लत है), बालकृष्ण भट्ट, जगमोहन सिंह इत्यादि ने प्रायः सामाजिक उपन्यास लिखे जो स्वभावतः नितान्त प्राथमिक स्तर के थे। दूसरे दौर में देवकीनन्दन खत्री ने तिलिस्मी-ऐगारी तथा गोपालराम गहमरी ने जासूसी उपन्यास रचे और किशोरीलाल गोस्वामी ने सामाजिक, ऐतिहासिक, पौराणिक उपन्यासों की विशाल रचना की। किशोरीलाल गोस्वामी प्रेमचन्द के पूर्ववर्ती उपन्यासकारों में प्रमुख हैं (नगेन्द्र जी के 'हिन्दी-उपन्यासों' शीर्षक उत्कृष्ट निबन्ध में उनका अभाव सर्वथा दोषपूर्ण है)। किन्तु अतिमांसलता, हिन्दूवाद तथा "इतिहास को दूर से ही नमस्कार" की प्रवृत्तियों ने उनकी क्षति की। ऐसी क्षति परवर्ती चतुरसेन शास्त्री, गुरुदत्त इत्यादि की भी हुई। जहाँ तक ऐतिहासिक उपन्यासकारों का सम्बन्ध है, वृन्दालाल वर्मा वस्तुपरक, नारी-सेवक (उनके मृगनयनी, झाँसी की रानी, रामगढ़ की रानी, विराटा की पद्मिनी उपन्यास नायिका प्रधान एवं उत्कृष्ट हैं) और सहज-स्रष्टा होने के कारण श्रेष्ठतम है। इधर, लगभग पचास वर्षों में पौराणिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक उपन्यासों की व्यापक रचनाएँ या प्रस्तुतियाँ हुई हैं। कुछ में सम्बद्ध युग के साथ-साथ न्याय का यत्न किया गया है (जैसे हज़ारीप्रसाद द्विवेदी कृत श्रेष्ठतम्-वर्गीय 'बाणभट्ट की आत्मकथा' में, यद्यपि इसमें चरित्रचित्रण का पक्ष विशेष सशक्त नहीं है।), कुछ में वस्तुपरकता का ध्यान नहीं रखा गया (जैसे चतुरसेन शास्त्री कृत 'वैशाली की नगरवधू' इत्यादि में), कुछ में युग-चिर की संगति बैठाई गई है (जैसे नरेन्द्र कोहली के 'युद्ध' इत्यादि में)।

मनु शर्मा, युगेश्वर, नरेन्द्र कोहली इत्यादि ने महाभारत, रामायण या उभय पर बहुत अधिक कृतियाँ प्रस्तुत कर जनता में इस अमर एवं चिरप्रभावी-चिरप्रेरक कृतियों एवं इनके अजर-अमर चरित्रों की ओर ध्यान आकृष्ट कर राष्ट्र एवं साहित्य की सेवा तो की है, सामान्य जनता को स्वस्थ मनोरंजन तो प्रदान किया है, किन्तु ये किशोरीलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, गुरुदत्त इत्यादि के अनुगामी माने जाएँगे, वृन्दावनलाल वर्मा, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, किसी सीमा तक अमृतलाल नागर ('मानस का हंस', खंजन नयन') इत्यादि के नहीं। रामायण काल, महाभारत काल का व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन, उसकी वैदिक पार्श्वभूमि-पृष्ठभूमि, खानदान, वस्त्रपरिधान, अस्त्रशस्त्र, भवननिर्माण, वस्तुपरक युद्ध अथवा द्वद्ध इत्यादि का, स्वयं इन महाकाव्यों के प्रक्षेपों की परख के साथ उनका परिहार करने, वैश्विक इतिहास से संगति बैठाते बिन्दु-प्रति-बिन्दु चित्रण कोई नहीं कर पाया। स्वभावतः में रचनाकार तो हैं, किन्तु कलाकार नहीं। इनकी कोई एक कृति युगविवृत्ति एवं चरित्रचित्रण में इकबाल बहादुर देवसरे के 'बाबा कहि-कहि जाहि' के समकक्ष नहीं। स्फीत लेखन के बावजूद, इनमें से किसी की तुलना भारत के ऐतिहासिक-पौराणिक उपन्यासकारों में शीर्षस्थ कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी (गुजरती) से नहीं हो सकती (यद्यपि मुंशी में देशभक्ति वस्तुपरकता में आड़े आ गई है—मानव की सीमाएँ स्पष्ट है : महान् टॉलस्टॉय कृत महान् 'युद्ध और शान्ति' तक शतशः वस्तुपरक नहीं है)।

भगवतीशरण मिश्र ने पौराणिक, ऐतिहासिक एवं भावात्मक, कई प्रकार के उपन्यास लिखे हैं। सम्बद्ध कृति के युग का व्यापक चित्रण तो वे सभी नहीं कर सके, किन्तु सम्बद्ध चरित्र के चरित्र एवं व्यक्तित्व का निरूपण बहुत धैर्य से किया है। किशोरीलाल गोस्वामी, चतुरसेन शास्त्री, गुरुदत्त की रंगीनी हो या अमृतलाल नागर (निस्सन्देह हिन्दी में प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी के साथ अग्रणी उपन्यासकार) तक की कल्पनाप्रवण विस्तारवादी धुन से वे बचकर चले हैं। वे एक मुक्त एवं सजग रचनाकार हैं। उनके सारे पौराणिक एवं ऐतिहासिक उपन्यास सांस्कृतिक उपन्यास हैं। उनकी राष्ट्र एवं राष्ट्रमाया-सेवा प्रशस्य है।

निस्सन्देह, यथार्थवाद के मूल बिन्दु कल्पना अथवा उसके अतिरेक से बचते हुए जीवन का यथासम्भव हूबहू अंकन, आदर्श अथवा स्वच्छन्दता से सत्य की यशाशक्य रक्षा, शोषण-प्रपीड़न के विविध रूपों का चित्रण दीन-दलित-सम्वेदन, यत्र-तत्र यथारुचि क्रान्ति का आह्वान, जनजीवन के निकटतर भाषा-शैली, कृति को शिल्पप्रधान अथवा अतिनाटकीय अथवा अतिवैयक्तिक न बनने देना है, जो कमोबेश सारे यथार्थवादी उपन्यासकारों में विद्यमान हैं। कहानीकारों पर यही बात लागू होती है। यथार्थपरक कहानियों की रचना प्राथमिक आदर्शवादी युग में ही आरम्भ हो गई थी, जैसाकि मास्टर भगवानदास की 'प्लेग की चुड़ैल' और कौशिक की 'ताई' इत्यादि से स्पष्ट है। प्रेमचन्द 1930 ई. के आसपास तक आते-जाते आदर्शवाद से हट-से गए थे, यद्यपि संस्कारवश उपन्यासों में स्वच्छन्दतावादी अथवा गाँधीवादी सुधारवाद से मुक्त न हो पाए थे जैसाकि ग़बन के आश्रमवाद, कर्मभूमि के ग्रामसेवावाद एवं गोदान तक के निष्काम सेवावाद (मालती के माध्यम से) तथा दीनसम्वेदनवाद (मेहता के माध्यम से) से सिद्ध होता है, किन्तु उनकी 'कफ़न' 'बूढ़ी काकी', 'पूस की रात' जैसे कहानियाँ घोर यथार्थपरक हैं। स्वच्छन्दतावादी प्रसाद के 'मधुआ', 'चूड़ीवाली', 'बेड़ी' इत्यादि कहानियाँ यथार्थपरक हैं। अतः यथार्थपरक कहानी को पृष्ठभूमि प्राप्त थी। हाँ, वादों के रंग में वह यथार्थवादी युग में ही रँगी।

वादमुक्त-समाजपरक कहानीकारों में रेणु, कैलाश कल्पित, शिवानी, कमलादेवी चौधरी, शैलेश मटियानी, राजेन्द्र अवस्थी, प्रणवकुमार मुखोपाध्याय इत्यादि प्रमुख हैं। स्त्री-कहानीकारों में बिजलीरानी चौधरी, सत्यवती मल्लिक, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, नमिता सिंह, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, चित्रा मुद्‌गल, नासिरा शर्मा इत्यादि भी प्रायः वाद के फेर में नहीं पड़ीं तथा व्यक्तिपरक-समाजपरक संयुक्त-कहानियाँ लिखने में पर्याप्त सफल हुई हैं।

वादमुक्त-समाजपरक नाट्यकारों एवं एकांकीकारों ने साहित्य की प्रशस्य सेवा की है। सेठ गोविन्ददास, रामकुमार वर्मा, उदयशंकर भट्ट, विष्णु प्रभाकर, विनोद रस्तोगी अपने ऐतिहासिक, अर्द्धएतिहासिक, सामाजिक, समस्याप्रधान प्रभृति नाटकों एवं एकांकियों में विकसनशील मानवता की स्वतन्त्र प्रस्तुति में अच्छी सफलता प्राप्त की है।

वादमुक्त-समाजपरक आलोचकों में आ. परशुराम चतुर्वेदी, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, डॉ. विजयेन्द्र स्नातक इत्यादि अग्रणी रहे, जिन्होंने भारतीय संस्कृति की गरिमा से संपृक्त विशद मानवतावादी आलोचना के द्वारा साहित्य को सम्पन्न किया।

वादमुक्त-समाजपरक निबन्धकारों में डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम', डॉ. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. कुबेरनाथ राय इत्यादि अग्रणी रहे। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने बालमुकुन्द गुप्त, माधवप्रसाद मिश्र एवं गुलाबराय के निबन्धों को गार्डिनर के निबन्धों

के शैली-चमत्कार से संपृक्त कर अपने 'ललित-निबन्ध' का विकास किया, जिसका अनुकरण विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय इत्यादि ने किया।

व्यक्तिपरक-यथार्थवादी साहित्य

व्यक्तिवाद एक सहज दर्शन है समाजवाद प्रतिक्रिया-प्रसूत दर्शन है। किन्तु क्रिया-प्रतिक्रिया की अन्योन्यता स्पष्ट है। व्यक्तिवाद अति का स्पर्श पर समाजघाती हो जाता है। तब समाज-हित में उसका अपरिहार्य ही नहीं प्रत्युत आवश्यक भी है। मार्क्स इत्यादि ने व्यक्तिवाद की अति की प्रतिक्रिया का दर्शन समाजवाद के रूप में प्रस्तुत किया। इतिहास में समाजवाद के अनेक रूप प्राप्त हैं : 1. चीन का अपेक्षाकृत-कठोर साम्यवाद जो स्टालिनवाद को मार्क्सवाद-लेनिनवाद का विरोधी नहीं मानता, 2. रूस इत्यादि का अपेक्षाकृत-उदार साम्यवाद जो स्टालिनवाद-विरोधी था तथा खुश्चेववाद से प्रेरित होकर गोर्बाचोववाद का रूप ग्रहण कर रहा था जिसमें व्यक्तिवाद के समाज-स्फुरक बिन्दुओं को भी समादृत किया जा रहा है, 3. पोलैंड इत्यादि का लोकतन्त्रोन्मुख-साम्यवाद जिसमें पश्चिम-समर्थक (निर्वाचक में अपार अमेरिकी आर्थिक सहायता प्राप्त करने वाले) दल 'सॉलिडेरिटी' (सघनेकता) का एक नेता प्रधानमन्त्री मन्त्री पद तक प्राप्त कर चुका या 4. ब्रिटेन, इस्राइल इत्यादि का लोकतान्त्रिक-समाजवाद जिसमें मार्क्स एवं डार्विन, एंजेल्स एवं एडम स्मिथ, लेनिन एवं हर्बर्ट-स्पेंसर, स्टालिन एवं मिल, माओ एवं मैकार्थी[1], हो ची मिन्ह एवं वैलेसा का द्वैत मिटता-सा लगता है (निस्सन्देह यह राजनैतिक अद्वैतवाद ही मानवता का भविष्य उज्ज्वलतर कर सकता है), और 5. भारत का पांखडप्रेरित लोकतान्त्रिक समाजवाद जिसके नेता विदेशी अधिकोषों में अरबों डॉलर या पौंड या रूबल या फ्रैंक या मार्क या येन या रियाल या दीनार जमा करते थे और जमा करते हैं, रक्षा-सौदों तक में उत्कोच-ग्रहण का देशद्रोह करते हैं, राजाओं-महाराजाओं एवं पूँजीपतियों-व्यापारियों से लदा-फँदा मन्त्रिमण्डल बनाते हैं, कुख्यात तस्कारों और कर-चोर कालाधनवादी अभिनेता-अभिनेत्रियों से साँठगाँठ रखते हैं, अपने पर करोड़ों रुपए प्रतिमास नष्ट करते हैं, अपनी रक्षा के निर्लज्ज वैभव में अपार धननाश कराते हैं, दूसरों पर लाखों रुपए प्रतिमास नष्ट कराते हैं, बेहद दरिद्र देश पर बेहद महँगी सरकार थोपते हैं, राजनीतिक भ्रष्टाचार के कारण निर्वाचन को एक महँगा तमाशा बनाकर जनता की छाती पर मूँग दलते हैं—जहाँ शासक नागनाथ हैं तो विरोधी साँपनाथ'!

स्पष्ट है कि साम्यवाद अपनी 1917 ई. की रूसी क्रान्ति से 1948 ई. चीनी क्रान्ति तक जितना प्रभावी रहा उतना परवर्ती दशाब्दियों में नहीं रह सका। स्टालिन का स्टील ठंडा पड़ा, माओ का ताव ढीला पड़ा। लौहानुशासन के कारण प्रबुद्ध वर्ग पश्चिमी देशों की ओर भागा। अनेक साहित्यकारों एवं वैज्ञानिकों ने भारी यातनाओं के बीच भी भारी विरोध किया। 'डॉ. ज़िवागो'[2] एक प्रतीक बन गया। जिसका प्रणेता उपन्यासकार बोरिस पास्टरनाक (पैस्टरेनक) 1958 ई. में नोबेल पुरस्कार प्राप्त करने के बावजूद ग्रहण करने जाने से वंचित किया गया, सखारेव[3] स्वातन्त्र्य-योद्धा हो गया, बर्लिन की दीवार (चीन की दीवार का आधुनिक संस्करण) व्यर्थ गई! इतिहास ने व्यक्तिवाद की सहजता को समाजवाद की कृत्रिमता पर वरीयता प्रदान की है, किन्तु ऐसा तभी सम्भव हो पाया है जब व्यक्तिवाद ने अपनी रक्षा के लिए पर्याप्त उदारता का वरण किया, अर्थात् समाजवाद ने व्यक्तिवाद को प्रभावित किया। इस स्थिति में, समाजवाद का व्यक्तिवाद से प्रभावित होना स्वाभाविक है।

व्यक्ति की स्वतन्त्रता अथवा व्यक्ति के व्यवधान-रहित विकास का दर्शन एक महान् दर्शन है। पश्चिम में इसका अतिपरक निरूपण पूँजीवाद-साम्राज्यवाद-संपृक्त हो गया था, जिसके प्रतीक वैज्ञानिक डार्विन, अर्थशास्त्री एडम स्मिथ, दार्शनिक हर्बर्ट स्पेन्सर, राजनीतिशास्त्रवेत्ता मिल इत्यादि ब्रिटिश महानुभाव थे, क्योंकि ब्रिटेन सोलहवीं शताब्दी में अजेय 'अर्माडा' (स्पेन) का जेता बनकर विश्व की प्रमुख पूँजीवादी शक्ति बन गया था तथा परवर्ती शताब्दियों में पूँजीवाद के अपत्य साम्राज्यवाद का शीर्ष-राष्ट्र भी वही बना, जो स्वाभाविक ही था। भारत अतीत में ब्रिटेन का राजनैतिक-उपनिवेश था, सम्प्रति भाषिक-उपनिवेश है। अतः यहाँ व्यक्तिवाद का अच्छा जोर रहा है। अंग्रेज़-स्थापित एवं अंग्रेज़ी-संचालित कांग्रेस का दर्शन व्यक्तिवादी ही रहा है, जिसे भारत के स्वतन्त्र होने पर समाजवादी मुखौटे से सजा दिया गया—कथनी को करनी से एकदम अलग कर दिया! इस स्थिति में विशुद्ध-पश्चिमवादी या अमिश्रित-व्यक्तिवादी तत्त्व अपने अस्तित्व के प्रति सजग हुए। उनको अमेरिकावाद या पश्चिमवाद पर अधिक आश्रित देखकर भारतीयतावादी भी चौकन्ने

---

[1] अमेरिका के प्रचंड साम्यवाद-शत्रु जिनके कारण उग्रतम साम्यवाद-शत्रुभाव को मैकार्थीइज़्म कहा गया था।

[2] 'झिवागो' भी। उपन्यास, जिस पर नोबेल-प्राइज़ (जो एक राजनैतिक पुरस्कार भी है—गौरांग वर्चस्वी तो है ही) मिला।

[3] नोबेल-प्राइज़ विजेता वैज्ञानिक।

हुए। फलतः वादबद्ध-व्यक्तिपरक यथार्थवादी साहित्य एवं वादमुक्त-व्यक्तिपरक यथार्थवादी साहित्य के ठीक वैसे ही दो भेद यहाँ भी दृग्गत हुए जैसे वादबद्ध-समाजपरक यथार्थवादी साहित्य एवं वादमुक्त-समाजपरक यथार्थवादी साहित्य के ठीक इसी समय दृग्गत हो रहे थे। जहाँ तक आदर्शवाद एवं स्वच्छन्दतावाद से मुक्त यथार्थवाद को वरीयता प्रदान करने का प्रश्न है, समाजपरक-साहित्य एवं व्यक्तिपरक-साहित्य एक हैं। किन्तु यथार्थवाद के समाजवादी एवं व्यक्तिवादी दर्शन-द्वय के अपनाने में दोनों में अन्तर है। दोनों में ही वादबद्ध एवं वादमुक्त साहित्य रचे गए। जैसे समाजपरक-यथार्थवादियों में वादबद्ध तत्त्व रूसवादी-चीनवादी तथा वादमुक्त तत्त्व भारतवादी कहे जा सकते हैं, वैसे ही व्यक्तिपरक-यथार्थवादियों के वादबद्ध तत्त्व पश्चिमवादी-अमेरिकावादी तथा वादमुक्त तत्त्व भारतवादी कहे जा सकते हैं। दोनों में ही भारतवादी बहुसंख्यक रहे क्योंकि भारत एक प्राचीन एवं महान् राष्ट्र ही नहीं है—इसकी बेहद गहरी जड़ें भी अपनी हैं। जैसे झख मारकर अनेक रूसवादी-चीनवादी भारतवादी भी बनने पर विवश हुए, वैसे ही अनेक पश्चिमवादी—अमेरिकावादी भी। यदि कोई कहे कि परकीयता-आच्छन्न 'इंडिया, दैट इज़, भारत'[1] की राजनीति के प्रभाव के कारण स्वतन्त्र भारत का साहित्य परकीयता से प्रभावित तो हुआ, क्योंकि "यथा राजा तथा प्रजा" एक सनातन सत्य है, "राजा कालस्य कारणम्" है, किन्तु साहित्यकारों की बहुसंख्या ने उसके भारतवादी स्वरूप को मिटने नहीं दिया, तो असंगत न होगा।

वादबद्ध-व्यक्तिपरक साहित्य

आत्मपरक कविता की दृष्टि से हिन्दी-कविता संसार की किसी कविता स न्यून नहीं है। विद्यापति, कबीर, तुलसी, केशव, सेनापति, सुखदेव, पद्माकर, भारतेन्दु, निराला, बच्चन, दिनकर इत्यादि ने पृथुल एवं प्रभावी आत्मपरक कविता की सर्जना की है। किन्तु आत्मपरक एवं व्यक्तिपरक कविता में अन्तर है—आत्मपरक कविता में कवि के अपने जीवन का सम्बद्ध अंश विवृत होता है, व्यक्तिपरक कविता में वह कोरा कवि न होकर विराट् मानव का एक प्रतीक भी होता है जो स्वकीय अस्मिता मात्र की विवृति नहीं करता प्रत्युत विराट् मानव की अस्मिता भी करता है। कविता में कवि के निजी जीवन की किसी मार्मिक घटना की अभिव्यक्ति यथार्थवादी युग एवं स्वच्छन्दतावादी युग के एक सेतु-कवि बच्चन के 'निशा-निमन्त्रण', 'एकान्त संगीत', 'आकुल अन्तर' एवं 'व्याकुल विश्व' संग्रहों में प्राप्त होती है, किन्तु वह आत्मपरक कविता (सब्जेक्टिव पोएट्री) है, व्यक्तिपरक कविता (इंडिविजु अलिस्टिक पोएट्री) नहीं। (वैसे, बच्चन वादमुक्त-व्यक्तिपरक कविता के प्रमुख कवि हैं।)

व्यक्ति की स्वकीय इयत्ता अथवा व्यक्ति की समाज-यन्त्र के एक पुर्ज़े के रूप में नहीं अपितु एक स्वतन्त्र एकक[2]—रूप में संरक्षा के उद्गार की, दार्शनिक पृष्ठभूमि में निहित, व्यक्तिपरक कविता के वाहक एवं नायक अज्ञेय थे। निस्सन्देह, व्यक्तिवादी कविता के वाहक, नायक एवं अन्यतम कवि के रूप में अज्ञेय हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्मरणीय रहें। वे मौलिक चिन्तक न थे, उनकी कविता मौलिकता की दृष्टि से असाधारण नहीं है किन्तु उन्होंने एक विराट् जीवन-दर्शन को हिन्दी कविता में पहले-पहल समाविष्ट किया, जिसका ऐतिहासिक महत्त्व है। अपने उपन्यासों में भी वे घोर व्यक्तिवादी हैंः कहानियों में भी। उनके निबन्ध, चाहे वे विचारात्मक हों या आलोचात्मक, प्रभावी नहीं क्योंकि वे कवि एवं कलाकार थे। अज्ञेय केवल नूतन व्यक्तिवादी अनुभूति ही नहीं लाए, नूतन प्रयोगवादी अभिव्यक्ति भी लाए, जो पश्चिम में वाल्ट ह्विट्मैन, एज़्रा पॉउंड एवं टॉमस स्टर्न इलिअॅट (एजिअॅट) के कारण बीसवीं सदी के प्रारम्भिक दो दशकों में ही प्रख्यात हो चुकी थी, निराला को उनकी अस्मिता के ऊभचूभ रूप में प्रभावित कर चुकी थी, किन्तु अज्ञेय ने उसे अपने अभिनव-शैली-शिल्प एवं अलंकरण में सर्वथा नए रूप में प्रस्तुत किया, जिसका प्रभाव पन्त-जैसे महत्तर कवि एवं दिनकर, बच्चन प्रभृति वरिष्ठ समानस्तरीय कवियों तक पर पड़ा, जिसका अनुकरण शत-शत अन्य कवियों ने किया, अन्य भारतीय भाषाओं के कवियों ने भी किया। अज्ञेय हिन्दी के ही नहीं वरन् भारत के श्रेष्ठ प्रयोगवादी कवि हैं।

बीसवीं सदी की हिन्दी-कविता के भाव-विचार तथा भाषा-शैली पर सर्वाधिक प्रभाव कार्य आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं महाप्राण निराला का पड़ा। आचार्य का प्रभाव व्यक्तित्वजन्य रहा, महाप्राण का कृतित्वजन्य। आचार्य ने राष्ट्रकाव्य एवं रामकाव्य का पथ प्रशस्त किया, महाप्राण ने दलितकाव्य एवं मुक्तकाव्य का। आचार्य ने व्रज-खड़ी बोलियों का द्वैत मिटाया; यही नहीं, गद्य-पद्य के वाक्यविन्यास की एकता का प्रतिपादन कर राष्ट्रभाषा एवं उसके साहित्य को अधुनातन एवं अखंड रूप प्रदान किया। महाप्राण ने

---

[1] अन्धपश्चिमवाद नेहरू के हठ के कारण संविधान में "भारत, दैट इज़, इंडिया" न लिखा जा सका! सांसद हरि विष्णु कामठ के यत्न व्यर्थ गए।

[2] एकांशी। यूनिट।

परवर्ती प्रगतिवादी एवं प्रयोगवादी कविता का पथ प्रशस्त किया। आचार्य पर वर्ड्स्वर्थ के गद्य-मद्य वाक्यैक्य एवं मराठी की गद्यात्मकता का प्रभाव था, निराला पर वाल्ट ह्विट्मैन एवं इलिअॅट (एलिअॅट) का; किन्तु दोनों के व्यक्तित्व इतने महान् थे कि हिन्दी की अस्तिमता पर कोई आघात न लग सका। अज्ञेय का व्यक्तित्व आचार्य या महाप्राण की तुलना में नगण्य तो नहीं कहा जा सकता क्योंकि उन्होंने अपने समय के शत-शत कवियों को, शैली-शिल्प में विशेषतः एवं व्यक्तिवादी अनुभूति में सामान्यतः प्रभावित अवश्य किया, किन्तु उसमें वह गुरुता न थी, वह राष्ट्रवाद न था, जो कोटि-कोटि जनता को प्रभावित करता है। अज्ञेय की कविता का गद्य-समीप्य आचार्य की परोक्ष प्रेरणा का ही प्रतिफलन है, अज्ञेय का मुक्तकाव्य एवं उनकी नव्यप्रयोगधार्मिता निराला की प्रत्यक्ष प्रेरणा का भी ('ही' नहीं क्योंकि वे इलिअॅट या एलिअॅट से अधिक प्रभावित रहे) प्रतिफलन है।

बीसवीं सदी की हिन्दी-कविता का प्रथम चरण (आदर्शवादी युग) परकीयता से अस्मिताप्रधान रूप में ही प्रभावित हो सका था, द्वितीय चरण (स्वच्छन्दतावादी युग) पश्चिम एवं बंगाल के शेली (शेले) रवीन्द्र से अस्मिता के साथ-साथ प्रभावित हुआ, किन्तु तृतीय चरण (यथार्थवादी युग) पश्चिम से अत्यधिक प्रभावित हुआ। समाजपरक-यथार्थवाद के वादबद्ध रूप से संपृक्त साहित्यकार साम्यवाद (समाजवाद) से तो प्रभावित रहे ही, रूस से अभिभूत भी हो गए; वादमुक्त रूप से संपृक्त साहित्यकार भी परकीय क्रान्तिचेतना से अनुप्राणित रहे (यद्यपि उन्होंने रूसवाद पर भारतवाद को वरीयता प्रदान की)। व्यक्तिपरक-यथार्थवाद के वादबद्ध रूप से संपृक्त साहित्यकार पश्चिम के व्यक्तिवादी दर्शन से तो अनुप्राणित रहे ही (जिसकी संहिता चार्ल्स डार्विन, एडम स्मिथ, हर्बर्ट स्पेन्सर, जॉन स्टुअर्ट मिल इत्यादि ने प्रस्तुत की तथा जिसका उद्‌गम औद्योगिक क्रान्ति थी), इलिअॅट (एलिअॅट) के प्रयोगवाद (एक्स्पेरिमेन्टलिज़म) से अभिभूत भी हो गए—उनके अन्य प्रेरक तत्त्व फ़्रायड के मनोविज्ञानवाद (मनोविश्लेषणवादी), एडलर के अहंवाद, जुंग (युंग) के नवअध्यात्मवाद (नवरहस्यवाद) एवं सार्त्र के अस्तित्ववाद थे।

प्रयोगवाद

प्रयोगवाद का तात्त्विक अर्थ है, निज-प्रयोग पर आधृत रचना का सिद्धान्त अर्थात् स्वानुभूतिव्यंजक कृतित्व का प्रतिपादन करने वाला दर्शन। 'एक्सपीरिएंस' का अर्थ है अनुभव। यदि इसे अनुवभवाद या अनुभूतिवाद या अस्मितावाद कहा जाता तो अधिक उपयुक्त होता, क्योंकि प्रयोगवाद से कच्चेपन की ध्वनि निकल सकती है, उस पर ''अपनी-अपनी ढपली पर अपना-अपना राग'' का व्यंग्य किया जा सकता है, जैसाकि इसके कठोर आलोचक आ. नन्दुलारे वाजपेयी, प्रो. सिद्धिनाथ मिश्र इत्यादि ने किया भी था। अनुभववाद या अनुभूतिवाद या अस्मितावाद (जिसे हम लोग प्रयोगवाद के अक्षम अभिधान में ग्रहण करते हैं) व्यक्तिवाद का कलात्मक-काव्यात्मक उद्‌गार है, जिसका एक-एक तेवर कवि की एक-एक मानसिक भंगिमा का प्रतीक होता है। कविता का नियामक कवि स्वानुभूति को स्वकीयता-पूर्वक (जैसा चाहे वैसा) विवृत करे; परम्परा या रूढ़ि या रचनानुशासन की कोई अपेक्षा नहीं—वह कविता को अनुभूति-अनुगामी नव्याकार में, नवालंकरण में, नवसंगीत (यदि हो तो) में प्रस्तुत करे; यह एक गम्भीर दर्शन है, जिसे गहन विद्वत्ता के अभाव में ठीक-ठीक प्रस्तुत न किया जा सका। प्रयोगवाद शब्द (छायावाद शब्द के सदृश) संकीर्ण एवं अक्षम सिद्ध होता है। स्वयं अज्ञेय लिखते हैं, ''प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नही रहे हैं। न प्रयोग अपने-आप में इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी कोई वाद नहीं है, कविता भी अपने-आप में इष्ट या साध्य नहीं है। अतः प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है, जितना हमें कवितावादी कहना।'' यह कथन अपने-आप में लचर है। इसमें पन्त के 'पल्लव' के 'प्रवेश' का आत्मबल नहीं है। प्रयोगवाद को कोई मनीषी आलोचक नहीं प्राप्त हो सका; इसी कारण यह वाद न टिक सका, न समुचित प्रतिष्ठा पा सका। 'चक्रवाल' की भूमिका में दिनकर ने प्रयोगवाद पर सर्वोत्तम प्रकाश डाला है (जबकि वे प्रयोगवादी न थे) किन्तु वे भी इसका दर्शन-पक्ष उजागर नहीं कर पाए।

यद्यपि प्रयोगवाद का वास्तविक उद्‌घाटन निराला कर चुके थे, तथापि इसका व्यवस्थित समारम्भ 1943 ई. में अज्ञेय ने 'तार सप्तक' के साथ किया, जिसमें गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा एवं अज्ञेय के परिचय तथा कविताएँ हैं। निस्सन्देह, ये कवि विभिन्न प्रकार की विचारधाराओं के थे, जैसाकि स्वयं अज्ञेय ने स्वीकार किया है, ''उनके तो एकत्र होने का कारण ही यही है है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं है, अभी राही हैं—राही भी नहीं, राहों के अन्वेषी''। अज्ञेय के इस कथन ने एक गहन काव्य-दर्शन को भ्रमों के आवर्त में डुबा दिया। इसमें निराला के 'परिमल' की भूमिका का तर्क नहीं है, औचित्य नहीं है, (पन्त के 'पल्लव' के प्रवेश से तुलना का प्रश्न

ही नहीं)। 1951 ई. में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' में भवानीप्रसाद मिश्र, शकुन्त[1] माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेरबहादुरसिंह, नरेश[2] मेहता, रघुवीर सहाय एवं भारती का समावेश था। 1959 ई. में 'तीसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ जिसके कवि थे प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्सयायन, केदारनाथ सिंह, कुँवरनारायण, विजयदेवनारायण साही एवं सर्वेश्वरदयाल सक्सेना। रूढ़िपालनार्थ 1971 ई. में 'चौथा सप्तक' प्रकाश में आया जिसमें अवधेश कुमार, राजकुमार कुम्भज, स्वदेश 'भारती', नन्दकिशोर आचार्य, सुमन राजे, श्रीराम वर्मा एवं राजेन्द्रकिशोर लाए गए। सप्तकपरम्परा (1943-79 ई.) के चार दशकों का हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक निश्चित महत्त्व है, जिसके अज्ञेय, मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद मिश्र, धर्मवीर 'भारती' एवं प्रयागनारायण त्रिपाठी की अनेक कविताएँ बहुत दिनों तक याद की जाएँगी। प्रयोगवादी कवियों में दलवादी-जुगाड़ूपन से दूर होने के कारण प्रयागनारायण त्रिपाठी की बहुत उपेक्षा हुई है, जिनकी कई कविताएँ उच्चस्तरीय अस्मितावाद एवं गहनतर नवरहस्यवाद से निष्पन्न हैं। अज्ञेय का आरम्भिक उत्साही-कवियशःप्रार्थी-रूप अनवरत साधना से परिपुष्ट विश्व-स्तरीय कवि-रूप तक पहुँचा और वे प्रयोगवाद के प्रतीक बन गए। अकविता (जगदीश चतुर्वेदी), अगीत (डॉ. रंगनाथ मिश्र 'सत्य'), विचार-कविता (डॉ. बलदेव 'वंशी'), अनागत-कविता (डॉ. अजय 'प्रसून') इत्यादि के उद्गम भी अज्ञेय ही सिद्ध होते हैं।

मनोविश्लेषणवाद, दादावाद, अत्यथार्थवाद

अधुनातन विश्व के निर्माता तीन यहूदी है—मार्क्स[3], फ़ायड, आइंस्टाइन। मार्क्स ने ईश्वर एवं आत्मा, धर्म एवं गजहब, आस्था एवं अनुराग से मुक्त विकास की द्वन्द्वात्मकता पर आधृत भौतिकवादी दर्शन (द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद) प्रदान कर मानव की समता का पथ प्रशस्त किया; वह वैज्ञानिक-समाजवाद (साम्यवाद) का जनक माना जाता है। फ़ायड ने दिव्यजन्मवाद-रहित मानव-जीवन की प्रमुख प्रवृत्ति काम की अनेक ग्रंथियाँ खोलकर जगत् को एक नव्य एवं यथार्थपरक काम-दर्शन प्रदान किया; वह आधुनिक-मनोविज्ञान का जनक माना जाता है। आइंस्टाइन ने लम्बाई-चौड़ाई-गहराई (लेंग्थ-ब्रेड्थ-डेप्थ) के त्रि-आयामों में 'समय' का चतुर्थ-आयाम जोड़ा, समय संहित गति में सापेक्षता सिद्ध की, शून्य में प्रकाश की गति प्रतिपादित की, पारम्परिक भौतिकी, गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त, भूगोल, खगोल इत्यादि में आमूलचूल परिवर्तन किए; वह अणु-युग का जनक एवं इतिहास का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक माना गया। द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद, कामवाद एवं सापेक्षतावाद ने मानव एवं मानवता को बदलकर रख दिया।

फ़ायड ने काम (सेक्स) को जीवन का प्रधान तत्त्व घोषित किया। उसके अनुसार लिबिडो या कामवृत्ति ही मानव की मूल प्रवृत्ति है। प्राचीन यूनानी ओएडिपुस (एडपस) कथा (जिसमें एडिपस पिता की हत्या तथा माता से पत्नी-सम्बन्ध स्थापित करता है) के आधार पर एडिपस-कॉम्लेक्स (मातृरति-ग्रन्थि) का प्रतिपादन करते हुए उसने आरम्भ से ही काम-वासनाओं के दमन से उत्पन्न क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं का स्फीत निरूपण किया तथा सामाजिक विधि-निषेध के कु-सु-परिणामों पर आधृत कला एवं साहित्य की व्याख्या की। फ़ायड ने चेतन, अर्द्धचेतन एवं अचेतन मस्तिष्कों की गहन अवधारणा की तथा 'इन्टरप्रेटेशन ऑफ़ ड्रीम्स' (स्वप्न-व्याख्या) नामक महान् ग्रन्थ में भी कामवाद को ही पुष्ट किया। फ़ायड विएना का एक मानसिक-चिकित्सक था। उसने देखा कि विक्षिप्तता (आंशिक, ईषत् या अन्य) का प्रधान कारण कामवृत्ति-दमन है। अतः उसने 'साइको-एनालिसिस' (मनोविश्लेषण) नामक विश्वविख्यात ग्रन्थ रचा, जिससे काम-चिन्तन में अति हो गई है। फिर भी, संसार पर उसकी अमिट छाप पड़ी। उसके कामवाद की प्रतिक्रिया में एडलर का अहंवाद एवं जुंग (युंग) का नव-अध्यात्मवाद (मॉर्डन मैन इन सर्च ऑफ़ ए सोल) जैसी महान् चिन्तन-सारणियाँ विकसित हुईं, कला एवं साहित्य में 1915-20 ई. का घोर परम्परा-विरोधी आन्दोलन डाडाइज़्म (दादावाद) उठ खड़ा हुआ जिसका उद्देश्य रूढ़ चिन्तन को झटका देना या हिला देना था ('डाडा' शब्द का अर्थ रुचि-अश्व या 'हॉबी-हॉर्स' है—देखें 'द कॉन्साइज ऑक्सफ़र्ड डिक्शनरी' का पृष्ठ 255), सुररीअलिज़्म (अत्यथार्थवाद या अतियथार्थवाद) का विकास हुआ जिसमें उपचेतन-मस्तिष्क एवं स्वप्न को विवृत करने वाली कलाकृतियों या साहित्यरचनाओं का प्रतिपादन किया गया क्योंकि चेतन-मस्तिष्क

---

[1] शकुन्तला। गिरिजाकुमार माथुर की पत्नी।

[2] नरेशकुमार मेहता।

[3] इसका परिवार ईसाई-मतांधता (अथवा, "स्वधर्म निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः" से च्युत होने) के कारण इसके बचपन में ईसाई बनने पर विवश हुआ था। यहूदी होने के कारण मार्क्स, फ़ायड एवं आइंस्टाइन तीनों को यातनाएँ मिलीं। तीनों को जन्मभूमि-त्याग करना पड़ा।

एवं जागृतदशा के उद्गार अथवा कृतित्व का यथार्थ मर्यादा-शृंखलित एवं कृत्रिम होता या हो सकता है—अमिश्रित-अकृत्रिम यथार्थ उपचेतन-मस्तिष्क एवं उसकी रंगशाला स्वप्न में ही विवृत होता है। (जी. ई. लेमात्रे कृत 'फ़्रॉम क्यूबिज़्म[1] टु सुररीअलिज़्म' एवं हर्बर्ट रीड कृत 'सुररीअलिज़्म' ग्रन्थ इस विषय में अत्यन्त प्रसिद्ध हुए)।

यथार्थवादी युग से पहले भी फ़्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव हिन्दी-साहित्य पर पड़ने लगा था। प्रसाद का कामवाद भारतीय है, उस पर तथा 'उर्वशी' के कवि दिनकर पर फ़्रायड के कामवाद का प्रभाव नकारा नहीं जा सकता, भले ही वह फ़्रायड के अतिवादी चिन्तन की प्रतिक्रिया में भारत के एक महानू दार्शनिक डॉ. भगवानूदास[2] के कामाध्यात्म[3] ('पुरुषार्थ' ग्रन्थ का प्राणतत्व) से विशेष प्रभावित हुए हों। उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी पर फ़्रायड के मनोविश्लेषणवाद (तत्त्वतः कामवाद) का भारी प्रभाव पड़ा, जिसे 'संन्यासी', 'प्रेत और छाया', 'पर्दे की रानी', 'लज्जा' इत्यादि में देखा जा सकता है। मनोविश्लेषणवाद (तत्त्वतः कामवाद) ने जैनेन्द्र एवं अज्ञेय के कथा-साहित्य पर भी प्रभाव डाला। जैनेन्द्र पर गाँधीवाद के सार आत्मपीड़न द्वारा हृदयपरिवर्तन का भारी प्रभाव 'परख' में फ़्रायड के मनोविश्लेषणवाद के सार लिबिडो को दबे-दबे रूप में प्रस्तुत कर पाता है, किन्तु 'सुखदा', 'विवर्त' एवं उनके प्रसिद्ध उपन्यास 'त्यागपत्र' (वस्तुतः उपन्यासिका जिसका अज्ञेय ने 'द रेजिग्नेशन' शीर्षक अंग्रेज़ी-अनुवाद किया) में इसकी निगूढ़ भंगिमाओं के मार्मिक दर्शन होते हैं। जैनेन्द्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी डॉ. देवराज इत्यादि तक मनोविश्लेषणवाद का प्रत्यक्ष प्रभाव हिन्दी-उपन्यास पर स्पष्टतः दृग्गत होता है। उपन्यास के साथ-साथ कहानी पर भी मनोविश्लेषणवाद ने गहरा प्रभाव डाला। जैनेन्द्र, अज्ञेय, निर्मल वर्मा जैसे युग के कतिपय शीर्षस्थ कहानीकारों में इसके दर्शन किए जा सकते हैं। मोहन 'राकेश' के नाटक 'आधे-अधूरे' पर मनोविश्लेषणवाद, दादावाद एवं अत्यथार्थवाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। आलोचना की विधा में डॉ. नगेन्द्र एवं डॉ. देवराज मनोविश्लेषणवाद से विशेष प्रभावित हुए, यद्यपि डॉ. नगेन्द्र की मूल रुचि स्वच्छन्दतावादी रही। यद्यपि यशपाल, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' इत्यादि में दादावाद एवं अत्यथार्थवाद की खोज की जा सकती है, तथापि इन वादों से प्रभावित हिन्दी में कोई विशेष तात्त्विक साहित्य-सर्जना दृग्गत नहीं होती।

फ़्रायड के शिष्य-मित्र एडलर के अहं को मानव की मूल प्रवृत्ति माना, काम को नहीं। उन्होंने हीनभाव की व्याख्या की। उनका चिन्तन गहन है, किन्तु हिन्दी-साहित्य पर उसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। कवि-अज्ञेय जो आरम्भ में फ़्रायड से बहुत प्रभावित थे तथा उपन्यासकार-अज्ञेय जो फ़्रायड से आद्यंत प्रभावित रहे, एडलर से भी थोड़ा-बहुत प्रभावित हुए, किन्तु उन पर भारी प्रभाव जंग (युंग) के नव-अध्यात्मवाद का पड़ा जिसके अनुसार पराशक्ति-अनुभूति एवं तत्प्रसूत प्रभाव मानव की मूल प्रवृत्ति है, आरोपित भार नहीं। जुंग (युंग) के मानव के अर्न्मुख (इन्ट्रॉवर्ट) एवं 'बहिमुर्ख' (एक्स्ट्रॉवर्ट) भेद बहुत प्रभावी हुए।

अस्तित्ववाद

शॉपेनहॉएर के निराशावाद की क्रिया-प्रतिक्रिया में जर्मनी के ही हसरेल, हेडेगर इत्यादि ने अस्तित्ववाद का प्रतिपादन किया जिसका अभिप्राय है कि जीवन, बस एक विवश अस्तित्व है—मूलतः निरर्थक, जिसमें व्यक्ति को अन्य तत्वों के स्थान पर अपने अस्तित्व को वरीयता प्रदान करनी चाहिए तथा निरर्थक एवं ससीम जीवन के सार्थक एवं असीम क्षण महत्त्वपूर्ण मानने चाहिए। अस्तित्ववाद को क्षणवाद भी कहा जा सकता है। मृत्यु-भीरु अस्तित्ववाद पर शॉपेनहॉएर के प्रत्यक्ष प्रभाव के साथ बुद्ध का परोक्ष प्रभाव भी अन्वेषित किया जा सकता है। अस्तित्ववादी दर्शन को व्यापकता प्रदान करने वाले डेनमार्क के चिन्तक कीर्कगार्ड (1813-55 ई.) आस्तिकता-विरोधी न थे, किन्तु अस्तित्ववाद को विश्वव्यापी महत्त्व प्रदान करने वाले फ्रांस के नास्तिक सार्त्र ने इसे बीसवीं सदी का एक उल्लेख्य दर्शन बना दिया, जिनका 'ह्वाट् इज़ लिटरेचर' ग्रन्थ विषय का गौरव-ग्रन्थ माना जाता है। जैसे फ्रांस के ही महानू दार्शनिक वॉल्टेयर ने अपने दर्शन को नाटकों द्वारा भी विवृत किया था (रूसो ने उपन्यास-विशेषतः 'एमिल'—द्वारा भी) वैसे ही सार्त्र ने अपने अस्तित्ववाद को नाटकों द्वारा भी विवृत किया। अंग्रेज़ी-शीर्षकों में उनके नाटकों 'इन कैमेरा', 'द फ़्लाईज़', 'रेस्पेक्टेबूल प्रॉस्टिट्यूट', लसिफ़र ऐंड

---

1. कला (विशेषतः चित्रकला) की ज्यामितीय त्रिपरिमाण-विशिष्ट घनाकृति प्रस्तुति का प्रतिपादन करने वाला सिद्धान्त। क्यूब का अर्थ त्रिपरिणाम-विशिष्ट घनाकृति है। एतदाकारी कृतियाँ क्यूबिस्ट-आर्ट से सम्बद्ध हुईं।
2. वे 'भगवानूदास' लिखते थे।
3. वे 'कामाऽध्यात्म' लिखते थे।

द लॉर्ड', 'कीन', 'इन द मैश' के लिए डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि' शब्दों का प्रयोग किया है।[1] 1964 ई. में नोवेल-प्राइज ठुकराने वाले एकमात्र साहित्यकार जीन-पॉल सार्त्र अपना दर्शन जिए भी थे। वे एक महान् साहित्यकार थे। 'अस्तित्ववाद और आधुनिक हिन्दी साहित्य' ग्रन्थ लिखकर डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने विषय पर अच्छी सामग्री संकलित की है।

तत्वतः अस्तित्ववाद का दार्शनिक सिद्धान्त व्यक्ति के अस्तित्व को स्वतन्त्र एवं अपने विकास के लिए स्वयं उत्तरदायी प्रतिपादित करता है। वैयक्तिक अस्मिता को प्रदान करने के कारण अस्तित्ववाद व्यक्तिवाद से संपृक्त एक दार्शनिक चिन्तन है, जिस पर एडलर के अहंवाद का परोक्ष प्रभाव अवश्य पड़ा है। मैं अस्तित्ववाद को इस क्षणिका में बाँधूगाः

मैं हूँ
मेरा अपना व्यक्तित्व है
मेरे अपने क्षण हैं जिन्हें मैं जीता हूँ
अस्मिता-सापेक्ष, अन्यतत्त्व-निरपेक्ष हो—
अपने विकास का उत्तरदायी मैं ही हूँ!

हिन्दी-साहित्य पर अस्तित्ववाद का यत्किंचित् प्रभाव ही पड़ सका, क्योंकि भारत के बार्हस्पत्य, जैन एवं बौद्ध दर्शन इससे थोड़ा-बहुत मिलते-जुलते हैं; दूसरे, भारत ब्रिटेन-परोपजीवी रहा है जहाँ अस्तित्वाद का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। अज्ञेय की अनेक कविताओं एवं 'नदी के द्वीप' उपन्यास पर अस्तित्ववाद का प्रभाव भी देखा जा सकता है। 'अकविता' वाले जगदीश चतुर्वेदी[2] भी अस्तित्ववाद से प्रभावित हुए। उर्दू के साहिर लुधियानवी जैसे शायर, साम्यवादी होते हुए भी, यत्र-तत्र अस्तित्ववाद से प्रभावित हुए हैं।

वादमुक्त-व्यक्तिपरक साहित्य

भारत पर ब्रिटिश-शासन ने गहरा आन्तरिक प्रभाव डाला था, क्योंकि गौरांग-विदेशी, तुर्क-पठान-मुग़ल-विदेशियों से बहुत अधिक सभ्य, बहुत अधिक विकसित एवं बहुत अधिक शक्तिशाली थे तथा उन्होंने देश को उद्योग, शिक्षा, साहित्य इत्यादि की दिशाओं में गतिशील होने में सहायता प्रदान की, भारत को विश्व तथा विश्व को भारत से परिचित कराया। दूसरे, द्वितीय विश्व-युद्ध के साथ-साथ अमेरिका[3] संसार की सबसे बड़ी सैनिक शक्ति के रूप में सर्वमान्य हो गया—सबसे बड़ी आर्थिक शक्ति तो वह था ही। अतः अमेरिकन, ब्रिटेन, फ्रांस, पश्चिम-जर्मनी (अब पूर्व-जर्मनी के मिलने से पुनः एकीकृत 'जर्मनी' मात्र), जापान, इटली (ये तीनों प्राणवान देश युद्ध की विभीषिका से उबरते ही विशाल आर्थिक शक्तियों के रूप में उभर आए—पहले की सैनिक शक्ति ने आर्थिक शक्ति का रूपान्तर कर लिया,) कैनेडा, ऑस्ट्रलिया इत्यादि विकसित देशों का जीवन-दर्शन व्यक्तिवाद भारत में प्रभावहीन कैसे रह सकता था? साम्यवादी देशों में बुद्धिजीवियों के साथ अत्याचार, वहाँ की लौह-प्राचीरों को पारकर पश्चिम की ओर मची भगदड़ इत्यादि नें अनेक कट्टर समाजवादियों तक में वितृष्णा की सृष्टि की औंर वे व्यक्तिवाद की ओर मुड़ गए। स्वयं अज्ञेय (जो चन्द्रशेखर 'आज़ाद' की समाजवादी क्रान्ति-सेना के स्वातन्त्र्य-योद्धा भी थे तथा कारा की कठोर यातनाएँ झेल चुके थे) कट्टर समाजवादी से कट्टर व्यक्तिवादी बने। वे एक वादबद्धता से दूसरी वादबद्धता में रूपांतरित हो गए। सप्तक-परम्परा के अन्य समाजवादी (साम्यवादी) कवियों में अनेक (गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, नेमिचन्द्र जैन इत्यादि) पहली समाजवादी रुचि से मुक्त होकर परवर्ती व्यक्तिवादी रुचि से संपृक्त हुए। शकुन्त माथुर, नरेश मेहता, प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी इत्यादि सप्तक-परम्परा के अनेक कवि वादमुक्त-व्यक्तिवादी कहे जा सकते हैं। अजित कुमार, स्नेहमयी चौधरी इत्यादि भी इसी वर्ग में समाविष्ट हैं। सफल गीतकार सुमेरसिंह 'शैलेश' भी वादमुक्त-व्यक्तिवाद के निकट प्रतीत होते हैं।

---

[1] हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृष्ठ 73।

[2] पत्रकार स्व. जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी से भिन्न।

[3] द्वितीय विश्व युद्ध (1939-45 ई.) के निर्णयक अवसर पर पश्चिम (हिटलर और मुसोलिनी के विरुद्ध) के सर्वोच्च सेनापति जेनरल आइज़नहॉवर थे, पूर्व (तोजो के विरुद्ध) के जेनरल मैकार्थर। दोनों अमेरिकन! आइज़नहॉवर राष्ट्रपति बने, मैकार्थर ने 'केवल सैनिक' रहना पसन्द किया अन्यथा जापान से पदच्युत किए जाने के बाद लौटने पर न्यूयॉर्क में इतिहास का सर्वश्रेष्ठ स्वागत-सम्मान को देखते सरलतापूर्वक बन सकते थे। उन्हें पदच्युत करने वाले राष्ट्रपति टूमैन थे।

वादमुक्त-व्यक्तिपरक कवियों में सहजोच्च स्थान बच्चन का है, जो स्वच्छन्दतावाद-व्योम की संध्या के कवि-तारक थे तथा यथार्थवादी युग के एक प्रमुख कवि-प्रकाशपुंज बने। यदि दिनकर वादमुक्त-समाजपरक कविता के दिनकर हैं, तो बच्चन वादमुक्त-व्यक्तिपरक कविता के निशाकर! कविसम्मेलन को लोकप्रिय बनाने में बच्चन का योगदान चिरस्मरणीय है। कवि सम्मेलनी कवियों में बलबीरसिंह 'रंग', शिशुपालसिंह 'शिशु', रमानाथ अवस्थी, सोम ठाकुर, वीरेन्द्र मिश्र इत्यादि को इसी वर्ग में रखा जा सकता है। नीरज अवश्य नेहरूवादी होने के कारण इस वर्ग से दूर पड़ जाते हैं। सप्तक-परम्परा के अनेक कवि समाजवाद (साम्यवाद) से व्यक्तिवाद की ओर आए। किन्तु बच्चन का सहज वादमुक्त-व्यक्तिपरक रूप एकरस-एकरूप रहा है।

विद्यावती मिश्र, चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा', दिनेशनंदिनी डालमिया, विजयलक्ष्मी 'विभा', सुभद्रा खुराना, मधुरिमा सिंह इत्यादि अधिकांश कवयित्रियों का सृजन भी वादमुक्त-व्यक्तिपरक साहित्य में समाहित किया जा सकता है! विशेषतः विद्यावती 'कोकिल', माधवीलता शुक्ल इत्यादि ने अध्यात्म एवं भक्ति पर सृजन किया है।

व्रजभाषा के श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', 'ब्रजनन्दन', 'सेवकेन्द्र', 'अवधेश', केशवदेव शुक्ल 'केशव', 'राजेश, अनूप शर्मा, दुलारेलाल भार्गव, गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, प्रकाश द्विवेदी इत्यादि श्रेष्ठ कवि तथा अवधी के 'पढ़ीस', वंशीधर शुक्ल, 'मृगेश', 'भशुंडि', 'रमई काका', विनीत विक्रम बौद्ध, डॉ. महेश अवस्थी इत्यादि कवि सर्वतः प्रगतिशील होने पर भी वादमुक्त ही रहे हैं।

उपन्यासकारों में साहित्येतर 'लोकप्रिय' उपन्यास लिखने वाले कुशवाहा 'कान्त', प्यारेलाल 'अवारा', गुलशन नन्दा, वैद्य हरिचरण, रानू, प्रेम वाजपेयी, मनोज, समीर इत्यादि की पलटन भी वादमुक्त-व्यक्तिपरक साहित्य में ही खपाई जाएगी। इन को क्या पड़ी थी जो वादों के विवाद में नाहक़ ही सर खपाते?

नाटक एवं एकांकी की विधाओं में जगदीशचन्द्र माथुर अग्रणी वादमुक्त-व्यक्तिपरक कलाकार माने जा सकते हैं। लक्ष्मीनारायण लाल भी इसी वर्ग में आएँगे। कहानी की विद्या में महीपसिंह साम्प्रदायिक वादमुक्त-व्यक्तिपरक कला के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। अन्य विधाओं में एतद्विषयक शोध अपेक्षित है।

वास्तव में यथार्थ युग का अतिचर्चित साहित्य वादबद्ध ही रहा, चाहे वह वादबद्ध-समाजपरक हो या वादबद्ध-व्यक्तिपरक, क्योंकि उसे देशी-विदेशी अवलम्ब (पद, प्रचार-सुविधाएँ, यात्राएँ, अलंकार ऐश्वर्य) प्राप्त हुआ। फिर भी, वादमुक्त-साहित्य, चाहे वह वादमुक्त-समाजपरक हो या वादमुक्त-व्यक्तिपरक, अपनी अस्मिता बनाए रह सका तथा उसने दिनकर, बच्चन, जगदीशचन्द्र माथुर, लक्ष्मीनारायण लाल जैसे अग्रणी कवि एवं उल्लेखनीय साहित्यकार प्राप्त किए, जिससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय मनीषा का एक बृहदंश वादबन्धनमुक्त रहना चाहता है।

(पारम्परिक) यथार्थवादी नव-साहित्य

जुंग (युंग) द्वारा फ्रायड के कामवाद एवं एडलर के अहंवाद के स्थान पर आधुनिक मानव द्वारा 'आत्मा' की खोज पर आधृत जिस अध्यात्मवाद का प्रतिपादन किया गया, उसे नव-रहस्यवाद कहना समीचीन होगा। फ्रायड के शिष्य-मित्र एवं एडलर के मित्र का अध्यात्मवाद-प्रतिपादन भारत-प्रेरित था क्योंकि ईसाइयत (मूसाइयत और मोहम्मदीयत के सदृश) नवरहस्यवाद के उपयुक्त नहीं है। इस नव-अध्यात्मवाद या नवरहस्यवाद का परिणाम अधुनातन परा[1] मनोविज्ञान है, जो वैश्विक तांत्रिकता[2] एवं विभिन्न अन्धविश्वासों को चिकित्सा एवं मानस-चिकित्सा में उपयोगी स्वीकार कर रहा है।

नेहरू ने 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' (भारत की खोज) के 'लाइफ़्स-फिलॉसॉफी (जीवन-दर्शन) प्रकरण में अद्वैतवाद (शांकर मात्र नहीं—व्यापक) में रुचि दिखलाई है, एक पराशक्ति में आस्था व्यक्त की है; वृद्धावस्था में उन्होंने साढ़ेचार-लाख मन्त्र जपे थे (ऐसा गुलज़ारीलाल नन्दा ने कहा)। साम्यवादी मानवेन्द्रनाथ राय एवं श्रीपाद अमृत डाँगे को जीवन-संध्या में मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद से नहीं, अद्वैतवाद (उपनिषद्-मूलक) से शान्ति मिली थी। समाजवादी जयप्रकाश ने अन्ततः गीता की शरण ली थी। नास्तिक लोहिया ने चित्रकूट में रामायण[3]-मेला आरम्भ किया था, जो सम्प्रति एक विशाल सांस्कृतिक पर्व बन गया है। कारण? आस्था मनोवैज्ञानिक है, अनास्था

---

1. उपनिषद् की 'परा'—विद्या का स्मरण अनायास ही आ जाता है! ऋग्वेद का 'सन्त' ही ईसाइयत का 'सेंट' है। बाइबिल 'जिनेसिस' (जनन या सृष्टिः जल से) से ही ऋग्वेदमूलक है।
2. तन्त्रशास्त्र विश्व को भारत की देन है, जिसका मूल अथर्ववेद में है। मन्त्र मनन से त्राण करता है, तन्त्र (क्रियाओं के द्वारा) तन या फैलकर, यन्त्र इस-उस प्रसाधंन-विशेष से।
3. रामचरितमानस।

कृत्रिम या आरोपित या प्रतिक्रियात्मक। 'नास्तिक' शब्द का 'न' स्पष्ट घोषित करता है कि वह किसी स्वीकृत या घोषित तत्त्व को नकारता है! नास्तिकता नकारात्मक है, आस्तिकता सकारात्मक। 'एथीइस्ट' शब्द का 'ए' नकारात्मक (उपसर्ग) मात्र है (जिसका उद्गम संस्कृत के 'अ' में है) तथा जिसका अभिप्राय ठीक वही है जो 'नास्तिक' का। रूस के नेता गोर्बाचोव द्वारा गीता उद्धृत करना स्पष्ट करता है कि आस्था साम्यवादिता से बलवत्तर है। स्व. ग्रोमीको भी गीता-प्रेमी थे।

आस्था-अनास्था का विवाद सर्वप्रथम भारतवर्ष में हुआ जो स्वाभाविक था क्योंकि ''वेदोऽखिलोधर्ममूलम्'' (मनु) एवं ऋग्वेद ''मानव-जाति के पुस्तकालय का प्रथम ग्रन्थ'' (मैक्स मुलर) सर्वस्वीकृत तथ्य हैं—यहाँ बार्हस्पत्य (चार्वाक), जैन एवं बौद्ध मत वेदविरोधी होने के कारण नास्तिक मत माने गए तथा इनके आस्तिक वेदमत (विशेषतः औपनिषदिक अद्वैतवाद) से परास्त होने का तथ्य आस्था की विजय का द्योतक है। विश्व के एक सर्वश्रेष्ठ (वस्तुतः अद्वितीय) दार्शनिक शंकराचार्य (788-820 ई.) ने अद्वैतवाद को सर्वजेता दर्शन बनाया तथा संस्कृत को भारतीय भाषाओं का मेरुदंड। रामानन्द, कबीर, रैदास, नानक इत्यादि ने अद्वैतवाद को भक्ति के विभिन्न रंगों में रँगा। रामप्रसाद, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, रवीन्द्र, नारायण गुरु, राधाकृष्णन्, भगवानूदास इत्यादि ने उसे सुधारवाद-ऐक्यवाद लेकर विश्ववाद या अन्तर्राष्ट्रीयतावाद या मानवतावाद तक से संपृक्त किया, जो सर्वथा साधार था। यदि तिलक, गाँधी इत्यादि ने उसे कर्म से जोड़ा, तो अरविन्द, मुक्तानन्द इत्यादि ने योग से, रमण महर्षि, चिन्मयानन्द इत्यादि ने ज्ञान से, भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुवाद, मुरारी बापू, आसाराम बापू इत्यादि ने भक्ति से तथा भारतीय अध्यात्मवाद सारे सभ्य विकसित विश्व पद छा गया।

नव-अध्यात्मवाद या नव-रहस्यवाद धर्म या मजहब या वाद या दल से ऊपर की वस्तु है। यह सृष्टि के समग्र तत्वों में एकता के विशद दर्शन की शीतल छाया के तले व्यक्ति की अस्मिता को गरिमा प्रदान करता है। एक ओर वह विश्व को एक ज्योतिर्मान् अलौकिकता से संपृक्त कर गौरवमय बनाता है, दूसरी ओर व्यक्ति को विराट् से संपृक्त कर महिमाशाली।

नवरहस्यवादपरक साहित्य

हिन्दी-कविता में नव-रहस्यवाद के वाहक एवं नायक पन्त हैं। पन्त ने 'उत्तरा' की भूमिका में नव-रहस्यवाद की भूमिका प्रस्तुत की तथा 'उत्तरा', 'स्वर्ण-किरण', 'अमिता'[1], 'लोकायतन' इत्यादि में एतद्विषयक सर्वोपरि सृजन प्रस्तुत किया। स्वच्छन्दतावाद (छायावाद), रहस्यवाद, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद से जुड़े पन्त नव-रहस्यवाद से भी जुड़कर एक 'अतिकवि' (सुपर-पोएट) बन गए। नवरहस्यवाद शंकरचार्य को मार्क्स से जोड़ता है, कबीर को फ्रायड से, तुलसी को जुंग (युंग) से! सम्पूर्णानन्द कृत काव्यकृति 'गगनगुफा', मुक्तानन्द परमहंस कृत गद्यगीतसंग्रह 'मुक्तेश्वरी', मेरी 'ध्यान के गान' (कविता संग्रह) एवं 'दृष्टि' (बाइस-सर्गीय एकमानववादी महाकाव्य) इत्यादि नवरहस्यवादी कृतियाँ ही हैं। आनन्दशंकर माधवन्, भानुशंकर मेहता, प्रकाश द्विवेदी, किशोरीशरण शर्मा ('कम्पन' एवं 'माँ') जैसे मुक्त-सहज कवियों की वाणी में भी नवरहस्यवादी स्वर सुनाई पड़ जाते हैं। डॉ. देवकीनन्दन श्रीवास्तव 'नदन' कृत 'प्रसीद में परमे' नवरहस्यवादी कृति है। राम 'कृपाल' (आर. के. निगम) कृत कवितासंग्रह नदियों की ध्वनि ही सागर-ध्वनि है। (दिसम्बर, 2004) नवरहस्यवाद की स्मरणीय कृति है, जिसका शीर्षक ही 'इस पार' को 'उस पार' पर वरीयता प्रदान करता है।

गुण एवं परिमाण, गद्य एवं लोकप्रियता एवं प्रभाव, सभी दृष्टियों से नवरहस्यवादी सृजन को ऐतिहासिक महत्त्व प्रदान किया जाना सर्वथा न्यायसंगत है। नवरहस्य परक-यथार्थवादी साहित्य ईश्वर, आत्मा, आस्था इत्यादि की सहज मानवीय विवृति में सर्वतः प्रगतिशील भी है। इसने पारम्परिक अद्वैतपरक साहित्य, रामपरक साहित्य एवं कृष्णपरक साहित्य को अधुनातन आयाम प्रदान किए हैं। डॉ. पवनकुमार ने 'नवरहस्यवाद और नई कविता' (1996 ई.) शीर्षक मानक एवं उत्कृष्ट शोधग्रन्थ द्वारा एक नए आयाम का स्मरणीय उद्घाटन किया है।

भारताधृत-दार्शनिक[2] भारतरत्न डॉ. भगवानूदास[3] ('पुरुषार्थ' इत्यादि), डॉ. संपूर्णानन्द (चिद्विलास इत्यादि), स्वामी मुक्तानन्द परमहंस ('चित्शक्तिविलास' इत्यादि), आचार्य रजनीश ('ईशावास्य उपनिषद्' इत्यादि) ने अपने साहित्य-संस्पर्श से पुलकित मौलिक हिन्दी-ग्रन्थों द्वारा हिन्दी-साहित्येतिहास में स्थान प्राप्त किया है। इनके ग्रन्थों ने हिन्दी के वैश्विक गौरव में वृद्धि की है। डॉ. भगवानूदास के कामाध्यात्म[4] ने प्रसाद (कामायनी), दिनकर (उर्वशी), रजनीश (संभोग से समाधि[5]) इत्यादि को प्रभावित किया है। कामाध्यात्म अद्वैत

---

1. यशपाल का उपन्यास भी 'अमिता' है।
2. पश्चिमाधृत-दार्शनिक सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् से भिन्न।
3. वे 'भगवान्‌दास' लिखते थे।
4. वे 'कामाऽध्यात्म' लिखते थे।
5. शीर्षक बाज़ारू विषय गम्भीर।

का मधुर-रसरूप है। डॉ. सम्पूर्णानन्द का 'चिद्विलास' तो स्पष्टतः अद्वैतलास है ही; 'गगनगुफा' का हठयोगगान भी तत्त्वतः वही है। स्वामी मुक्तानन्द परमहंस का सिद्धयोग 'चित्शक्तिविलास' ही है; उनके 'मुक्तेश्वरी' के गद्यगीत अछैतगीत ही हैं जो उन्हें राय कृष्णदास, भँवरमल सिन्धी, चतुरसेन शास्त्री, वियोगीहरि, माखनलाल चतुर्वेदी, रामप्रसाद 'रावी', दिनेशनंदिनी डालमिया, राकेशनंदिनी गुप्त इत्यादि गद्यगीतकारों के साथ प्रतिष्ठित करते हैं; यही नहीं, उनकी साधनापूत गहनता अप्रतिम भी लग सकती है। मैंने भी 'ध्यान के गान' गाए जो उन्हें बहुत भाए थे। मैंने दैनंदिनी-शैली पर 'योग के अद्भूत अनुभव' भी प्रस्तुत किए। रजनीश का व्यक्तित्व विवादास्पद है (व्यक्तित्व तो कृष्ण, मूसा एवं मोहम्मद के भी विवादास्पद हैं) किन्तु उनका अतिस्फीत कृतित्व अद्वैत-संगीत से ओतप्रोत है। अंग्रेज़ी-ग्रन्थकार अरविन्द के भूमि के स्वर्गीकरण अथवा स्वर्ग के भूमीकरण ('द लाइफ़ डिवाइन'—'दिव्य जीवन') ने पन्त को बहुत प्रभावित किया ('उतरा', 'स्वर्णधूलि', 'अमिता', 'लोकायतन' इत्यादि पन्त को विश्व का सर्वश्रेष्ठ नवरहस्यवादी-कवि प्रमाणित करते हैं); स्व. विद्यावती 'कोकिल' इत्यादि भी उससे प्रभावित हैं। भुवनेश्वर मिश्र 'माधव' ने 'श्री अरविन्द-चरितामृत' लिखा है। कहीं-कहीं साधारण परिचय-ग्रन्थ भी मिल जाते हैं। रहस्यवाद विज्ञान-विरोधी न होने तथा मनोविज्ञान-सम्मत होने पर नवरहस्यवाद कहा जाता है। यह यथार्थसम्पन्न भी है। अड़गड़ानन्द कृत 'यथार्थ-गीता' एक प्रमाण है।

'असाध्य वीणा', 'आँगन के पार द्वार', 'कितनी नावों में कितनी बार' जैसी अनेक प्रौढ़तर कविताओं में अज्ञेय नवरहस्यवाद के वैतालिक के रूप में प्रकट होते हैं। 'सप्तक कवियों' में प्रयागनारायण त्रिपाठी गहनतर नवरहस्यवादी कवि हैं। कहीं-कहीं धर्मवीर 'भारती', नरेश मेहता इत्यादि में भी नवरहस्यवादी स्वर सुनाई दे जाते हैं। डॉ. पवनकुमार ने नवरहस्यवाद और नई कविता द्वारा 'प्रस्थान' कार्य कर दिया है तथापि 'पन्त की कविता में नवरहस्यवाद', 'अज्ञेय की कविता में नवरहस्यवाद', 'सप्तक-कवियों की कविता में नवरहस्यवाद', 'अधुनातन कविता में नव-रहस्यवाद' इत्यादि पर स्वतन्त्र शोधग्रन्थ अपेक्षित हैं।

उत्तर-आधुनिकता

सभ्यता-रोग के प्रतीक अभ्रभवनों को नष्ट कर शान्त-एकान्त प्राचीन जीवन-पद्धति को अपनाने की स्पृहा के प्रतीकत्व में उत्तर-आधुनिकता का चिन्तन साहित्य की अधुनातन प्रवृत्ति है, जिसका उद्गम, रूसो इत्यादि के दर्शन, रोमांटिक कवियों (विशेषतः वर्ड्स्वर्थ एवं शेले) के सर्जन, रस्किन, टॉल्स्टॉय इत्यादि के क्षम-संवर्द्ध इमर्सन थोरो के स्वावलम्बन प्रभृति में प्राप्त है। यह युगविरोध की अति का दर्शन है जो पर्यावरणवादी एवं प्रकृतिप्रेमी कवियों को बहुत आकृष्ट कर रहा है। किन्तु किसी सृजन का अभाव है। प्रो. लल्लनप्रसाद कृत कविता-संग्रह हैं 'नीम', 'पीपल', 'बरगद के शहर' (2005 ई.) को उत्तर आधुनिकता से संपृक्त किया जा सकता है।

रामपरक साहित्य

यथार्थवादी युग में रामकाव्य का स्फीत सृजन हुआ। सतना (म. प्र.) के प्रसिद्ध विद्वान् तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के निकट-सम्बन्धी डॉ. परमलाल गुप्त ने 'रामकथा से संबद्ध हिन्दी-नाटक' लेख में विश्वनाथसिंह (1789-1854 ई.) के 'आनन्द-रघुनन्दन', आग़ा हश्र कश्मीरी, नारायणप्रसाद 'बेताब', राधेश्याम कथावाचक के 'सीता-वनवास', 'रामायण', 'वाल्मीकि', श्रवणकुमार' इत्यादि के अतिरिक्त जिन नाटकों का उल्लेख किया है उनमें से अधिकांश यथार्थवादी युग में रचे गए हैंः शीतलाप्रसाद त्रिपाठी—'जानकी-मंगल' (1976 ई.), देवकीनन्दन त्रिपाठी—'सीता-हरण' (1889 ई.), बालकृष्ण भट्ट—'सीतावनवास' (1890 ई.), माधव शुक्ल—'सीय-स्वयंवर' (1916 ई.), दुर्गाप्रसाद गुप्त—'गौतम-अहल्या' (1921 ई.), मैथिलीशरण गुप्त—'लीला' (काव्य-नाटक), निराला—'पंचवटी-प्रसंग' काव्य-नाटक (1930 ई.), चतुरसेन शास्त्री—'मेघनाद' (1939 ई.) एवं 'श्रीराम' (1940 ई.), रामवृक्ष बेनीपुरी—'सीता की ना' (1959 ई.), नरेश मेहता—'संशय की एक रात' काव्य-नाटक (1960 ई.), स्वर्णकिरण-'विभीषण' (1969 ई.) एवं 'सुनयना' (1972 ई), जगदीशचन्द्र माथुर[1]—'दशरथ-नन्दन' (1974 ई.), भारतभूषण अग्रवाल-'सेतुबन्धन' (1955 ई.) एवं 'अग्निलोक' (1976 ई.), जगदीश गुप्त—'शम्बूक' काव्य-नाटक (1977 ई.), लक्ष्मीनारायण लाल—'राम की लड़ाई' (1979 ई.), नरेन्द्र कोहली—'शम्बूक की हत्या' (1975 ई.), सरयूप्रसाद मिश्र—'नारद मोह' (1977 ई.), चन्द्रशेखर—'शिवधनुष' काव्य-नाटक (1989 ई.), कुसुमकुमार—'रावणलीला' (1983 ई.),

---

[1] इन्होंने 'रघुकुलरीति' नाटक भी लिखा है।

पारसनाथ गोवर्द्धन–'दमित आस्थाएँ' (1985 ई.), कुमार प्रशान्त–'जटायु' (1987 ई.)। इस युग में रामकाव्य सन्धि-युग एवं सुधारवादी युग के रामकाव्य-सृजन से परिमाण में भी श्रेष्ठतर रहा, गुण में भी, यद्यपि आदर्शवादी युग के मैथिलीशरण गुप्त (मुख्यतः साकेत, पंचवटी तथा प्रसंगतः यशोधरा, द्वापर इत्यादि) की समता करने वाला कोई रामकाव्यकार प्रकाश में नहीं आया एवं स्वच्छन्दतावादी युग के निराला ('राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास'[1]) के सृजन की गरिमा के दर्शन नहीं हुए। निराला ने यथार्थवादी युग में राम की भी 'आराधना' एवं 'अर्चना' की, पन्त ने यथार्थवादी युग में 'लोकायतन' में राम की वन्दना की तथा 'पुरुषोत्तम राम' की रचना। यह एक विलक्षण संयोग है कि खड़ी बोली के मैथिलीशरण, हरिऔध, प्रसाद[2], निराला, पन्त जैसे सारे शीर्षस्थ कवियों ने रामकाव्य की रचना की है।[3]

यथार्थवादी युग के रामकाव्य में दलित-सम्वेदन एवं नारी-सम्वेदन प्रमुख प्रवृत्तियाँ रहीं।

यथार्थवादी युग में रामकाव्य की एक उत्कृष्ट कृति डॉ. रामकुमार वर्मा कृत 'ओ अहल्या!' है, जिसमें राम के उपेक्षित नारी को पावन करने का सम्वेदन विवृत हुआ है। यह काव्य खड़ी बोली के गौरव-ग्रन्थों में परिगणित होने योग्य है। अहल्या पर डॉ. शिवबालक शुक्ल, प्रभा खेतना, डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र इत्यादि ने भी लिखा है। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के 'कवियों को उर्मिला-विषयक उदासीनता' की प्रेरणा से आदर्शवादी युग एक[4] प्रतीक-काव्य 'साकेत' रच गया। आचार्य एवं राष्ट्रकवि की उपेक्षिताओं के आदर की प्रेरणा एक अमर परम्परा बन गई है जिसके परिणाम हैं, डॉ. रामकुमार वर्मा कृत 'ओ अहल्या!' तथा अन्य कवियों-कवयित्रियों के अहल्या-काव्य, नवीन की 'ऊर्म्मिला', केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' कृत 'कैकेयी', श्री कृष्ण मिश्र कृत 'समरप्रिया' (कैकेयी), दयानन्द जड़िया 'अबोध' कृत 'वीरांगना कैकेयी', सुरेन्द्रसिंह सक्सेना 'इन्दु' कृत 'कैकेयी', डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र कृत 'सुमित्रा', शिवसिंह 'सरोज' कृत 'लक्ष्मण'। 'साकेत' की प्रेरणा से बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'साकेत'-सन्त' रचा था। स्वतन्त्र भारत काव्य की जिस परम्परा श्रीगणेश बलदेवप्रसाद मिश्र ने 'साकेत-सन्त' के द्वारा किया था, उसे परमानन्द जड़िया ने 'कोशलेन्दु भरत' एवं सरोज गौरिहर ने 'मांडवी एक विस्मृता', ओउमप्रेमी ने मांडवी महाशया' द्वारा गतिशील किया है। स्व. त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' ने 'श्री शत्रुहन' काव्य रचा है। डॉ. सूर्यनारायण शुक्ल ने 'सती सुलोचना' एवं 'तटिता रामेश्वरी' की रचनाएँ की हैं। सुधाकर शर्मा 'सुधाकर' कृत स्फीत महाकाव्य 'जाम्बवान्', जगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल' कृत काव्य 'प्रकृति-पुरुष', बह्मदेव त्रिपाठी 'ब्रह्मा' कृत काव्य 'रामश्वमेध', भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' कृत 'जय गीधराज', राज गोस्वामी कृत 'जटायु', गणेशदत्त सारस्वत कृत 'विभीषण', डॉ. देवकीनन्दन श्रीवास्तव 'नन्दन कृत' 'चित्रकूट के पथ पर', त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री कृत 'चित्रकूट', जगदीशनारायण त्रिपाठी कृत 'चित्रकूट', डॉ. विश्वनाथ याज्ञिक कृत 'राम-दोहावली' इत्यादि अनेक ग्रन्थ जैनों के तेरापन्थी आचार्य (स्व.) तुलसी कृत 'अग्नि-परीक्षा', चक्रधर 'नलिन' कृत 'अग्निशिखा' प्रतापनारायण, मिश्र कृत 'श्रीराघवगीत' सोहनलाल 'रामरंग' कृत अतिस्फीत द्विखंडीय 'उत्तर-साकेत', रमनलाल अग्रवाल 'रम्मन' कृत अतिलघु 'मेरा लक्ष्मण' इत्यादि में भी रामकाव्य की यथासम्भव यथार्थपरक नवरहस्यात्मक विवृति के दर्शन होते हैं। 'अब किसे वनवास दोगे' (डॉ. शैलेश ज़ैदी), 'हुलसी के तुलसी' (दीन मोहम्मद 'दीन') इत्यादि ग्रन्थ रामकाव्य-स्फीति के द्योतक हैं। प्रयोगवादी कवियों में गिरिजाकुमार माथुर ('धूप के धान' में) ने प्रभावी रामकाव्य रचा है। मैंने युगेश्वर की अनेक गद्य-रचनाएँ, स्फीति मौलिक एवं यथार्थवादी महाकाव्य 'पुरुषोत्तम' (2003 ई.) रचा है; वचनेश के 'पुरुषोत्तम', तुलसीराम शर्मा के 'पुरुषोत्तम', पन्त के 'पुरुषोत्तम राम' के विषय में सुना है। चाँदमल अग्रवाल (कैकेयी), उदयशंकर भट्ट (अन्तर्मन्थन), लक्ष्मीलाल धूलिया (सुलोचना), प्रीतम बगरेचा (शूर्पणखा) इत्यादि भी उल्लेखनीय हैं। नरेश मेहता कृत 'संशय की एक रात' में धर्मवीर भारती के 'अन्धायुग' की प्रेरणा से राम को अधुनातन मनोवैज्ञानिक चश्मे से देखने का आयास किया गया है, तो डॉ. जगदीश गुप्त कृत 'शम्बूक', रामखलावन वर्मा (विनीत विक्रम बौद्ध) कृत 'शम्बूकवध' एवं बालकृष्ण मिश्र कृत 'जलसमाधि से पूर्व' में कदाचित् उसी की प्रेरणा में प्रखरता का समावेश भी दृग्गत होता है। रामकाव्य में परवर्ती प्रक्षेपों (सीतात्याग एवं शम्बूकवध) पर बहुत लिखा गया है, जो अधिकतर महत्त्वहीन ही हो सकता था और है। हरिऔध तक 'वैदेही-वनवास' के चक्कर में बेक़ार ही पड़े। अवधी में स्फुट-रामकाव्य के अतिरिक्त अवधी-समार्पित डॉ. महेश अवस्थी ने 'जन-साधारण की प्रशस्य

---

[1] जो राम तुलसी के तो तुलसी पर रचित काव्य तत्त्वतः रामकाव्य ही है।

[2] 'कानन-कुसुम' में।

[3] आश्चर्य है कि रामधारीसिंह 'दिनकर' ने दिनकर-वंशी सिंह राम एवं उनकी धारी (सेना) पर नहीं लिखा!

[4] 'प्रथम' का गौरव 'प्रियप्रवास' को प्राप्त है।

रचना की है। वशीर अहमद 'मयूख' एवं मिर्ज़ा हसन नासिर ने 'शूर्णणखा' एवं 'देख रहा मैं राम को' लिखकर रामकाव्य की सेवा की है। इफ़्तिख़ार अहमद खाँ राणा, यासमीन सुल्ताना नक़वी, आसिया ख़ातून इत्यादि ने रामकाव्य रचा है। यथार्थवादी युग में प्रकाशित रामकाव्यों में 'ओ अहल्या', 'उर्मिम्ला' एवं 'संशय की एक रात' प्रमुख हैं।

गद्य में रामकिंकर उपाध्याय के राशि-राशि प्रवचन-संग्रह विशेष समादृत हैं। नरेन्द्र कोहली कृत 'युद्ध' इत्यादि उपन्यास, राधेश्याम शर्मा 'अमर' कृत 'मानवता-आदर्श श्री राम' राम-साहित्य के उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। उमाकान्त मालवीय कृत 'राघवराग', सुरेशव्रत राय कृत 'नमामि रामम्', पं. प्रेमनाथ द्विवेदी कृत 'भरत सरिस को राम सनेही' जैसे निबन्धसंग्रह भी उल्लेख्य हैं। रामानन्द सागर के प्रख्यात एवं अतिशय-लोकप्रिय दूरदर्शन-धारावाहिक 'रामायण' एवं 'उत्तर-रामायण' ने विश्व भर में राम एवं रामकथा के प्रचार-प्रसार का प्रशस्य कार्य किया; इनके द्वारा स्तरीय हिन्दी[1] को भी लाभ पहुँचा। प्रसिद्ध मानस-संगम कानपुर ने इनका सम्मान ठीक ही किया। रामानन्दसागर के 'रामायण' एवं बी. आर. चोपड़ा के 'महाभारत' दूरदर्शन धारावाहिकों द्वारा यह स्पष्ट हो गया कि समग्र भारत की कोटि-कोटि जनता संस्कृतनिष्ठ हिन्दी समझती है, उसका सम्मान करती है। मुझे, 'रामायण' एवं 'महाभारत' धारावाहिकों में प्राचीनता का ध्यान न रखना बांरबार खटका है (न उस समय के पथ, भवन, रथ, वेश, भूषण और न जीवन) शैली—रामायणकाल एवं महाभारतकाल साकार न हो पाए), किन्तु वस्तुगत दृष्टि से इन धारावाहिकों ने राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा की प्रणम्य सेवा की है। 'व्यंग्यचरित्रकारों की दृष्टि में तुलसी-साहित्य' (मानस संगम कानपुर) एक प्रशस्य अधुनातन प्रयोग है। संप्रति रामसाहित्य किसी-न-किसी (कैसेट्स, कॉमिक्स, पार्श्वगायकों की स्वर-लहरियों, इस, उस) रूप में अपार लोकप्रियता प्राप्त कर रहा है क्योंकि वह शाश्वत जीवन-प्रेरणा का अक्षय कोष है। श्री शंभुनाथ के 'रामकथा के नए आयाम' एव डॉ. रामलखन सचान के 'मानस और विज्ञान' ग्रन्थ अधुनातनता के प्रतीक हैं। बद्रीनारायण तिवारी संपादित 'तुलसी एक केन्द्रबिन्दुः शोधकर्त्ता शत-शत' विश्वकवि की महिमा उजागर करता है। 'तुलसी-स्तवन' (सं. ललितमोहन अवस्थी) जैसे सांस्कृतिक प्रयास भी उल्लेख्य हैं।

कृष्णपरक साहित्य

यथार्थवादी युग में कृष्णपरक साहित्य का स्तरीय सृजन हुआ है। यथार्थवादी युग की कविता के आकाश के 'दिनकर' ने 'कुरुक्षेत्र' एवं 'रश्मिरथी' के रूप में दो स्मरणीय काव्य रचे जिनमें क्रमशः युद्ध, शान्ति, समस्या एवं मानव-समता-समस्या अर्थात् दो समस्याएँ उठाई गई हैं। दोनों कृतियाँ उत्कृष्ट हैं। प्रयोगवादी कवि धर्मवीर 'भारती' ने 'अन्धा युग' (गीतनाट्य) एवं 'कनुप्रिया' (खंडकाव्य) में शान्ति की झोंक को उभारा है। 'अन्धा युग' नाट्यनिकष पर खरा उतरता है। 'कानुप्रिया' (राधा) में प्रेम की पावन समर्पणवृत्ति मार्मिक रूप से उजागर हुई है। जानकीवल्लभ शास्त्री कृत महाकाव्य 'राधा' अपने युग-चिर-संयोजन एवं भावुक चिन्तन में एक महत्त्वपूर्ण कृति है। डॉ. रामकुमार वर्मा कृत महाकाव्य 'एकलव्य', परमानन्द जड़िया कृत महाकाव्य 'गंगानन्दन भीष्म', विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद' कृत खंडकाव्य 'वीर सौभद्र' एवं 'चक्रव्यूह', हरनन्दन वाजपेयी 'हर्ष' कृत काव्य 'कर्ण', यथार्थवादी युग के स्फीत कृष्णकाव्यकार बैजनाथप्रसाद शुक्ल 'भव्य' के प्रकाशति 'कर्ण' एवं 'द्रौपदी' तथा प्रकाश्य 'विदुर' में प्रशस्य सृजन किया गया है। 'सौरिन्धी' महाकाव्य के प्रेणता डॉ. सूर्यनारायण शुक्ल यशस्वी कृष्णकाव्यकार भी हैं। बालकृष्ण मिश्र कृत खंडकाव्य 'धनंजय', व्रजभाषा में 'ब्रजनन्दन' कृत 'ऊधो उपचार', शंभुदयालसिंह 'सुधाकर' कृत 'प्रेमशतक', प्रकाश द्विवेदी कृत 'पारावार ब्रज कौं', व्रजनन्दनसहाय 'मोहन प्रेमयोगी' कृत 'रास-रचैया' इत्यादि कृष्णकाव्य-परम्परा की उल्लेख कृतियाँ हैं। व्रजभाषा में अब्दुर्रशीद खाँ, 'रशीद' (आधुनिक रसखान) की मुक्तक कृष्णकाव्यरचना अतीव मनोहारी है। व्रजभाषा-काव्यकला के आचार्य गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी ने मनोहरी कृष्णकाव्य (मुक्तक)-रचना की है। अवधी में डॉ. महेश अवस्थी ने 'जन-कृष्णायन' रचा है। दिनकर एवं भारती ने कृष्णकाव्य को सनातन युद्ध-शान्ति-समस्या से जोड़कर उसे अधुनातन रूप प्रदान किया है। दिनकर का युद्ध-शान्ति-चित्रण गम्भीर एवं चिरमहत्त्वनिष्पन्न है, भारती का भावातिरेकजन्य एवं रचनायुगीन। डॉ. सुधेश ने 'निर्वासन' खण्डकाव्य (2005 ई.) में कथा के इस बिन्दु का नई शैली में, बौद्धिकता से न्याय करता, चित्रण किया है। मेरा स्फीत 'कल्पना' (15 सर्ग) काव्य महाभारत के प्रकृत विषय का यथार्थवादी एवं मनोवैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत करता है। अन्य कवियों ने भी वर्णनात्मकता के साथ युग अथवा नवरहस्य का ध्यान रखा है।

---

[1] भले ही अल्पशिक्षित-अल्पसंस्कृत अभिनेता-अभिनेत्री इत्यादि यत्र-तत्र उच्चारण की भोंड़ी भूलें करते रहे हों।

स्वतन्त्र भारत में नेताओं के पाखंड से प्रभावित जनमानस की अपराधवृत्ति अधिकतः निष्क्रिय एवं न्यूनतः सक्रिय रूपों में विशेष स्फुरित हो गई है; अतः असत् अथवा अपराध के पक्षधरों (रावण, शूर्पणखा, कर्ण, दुर्योधन इत्यादि) के प्रति सहानुभूति का उभार प्रायः दृग्गत-श्रुतिगत होता रहता है। असत-सम्वेदन राष्ट्र के स्वास्थ्य का सूचक नहीं हो सकता। दिनकर ने कर्ण को अपेक्षा से कुछ अधिक उभारकर ही सन्तोष कर लिया, किन्तु भारती ने अर्जुन एवं भीम के अपमान तक की दूरी तय कर अपनी मानसिक रुग्णता का परिचय दिया। दूरदर्शन धारावाहिक 'महाभारत' में राही मासूम रज़ा द्वारा शकुनि को सातवें आसमान पर चढ़ा डाला गया है! असत्-सम्वेदन स्वतन्त्र भारत की जनता के रुग्ण मनोविज्ञान की गहन-गम्भीर सूचना देता है। रावण एवं शूर्पणखा, शकुनि एवं कर्ण इत्यादि के प्रति सम्वेदनशीलता अनेक प्रश्न उठाती है। संप्रति गाँधी के हत्यारे नाथूराम विनायक गोडसे के लाखों प्रशंसक विद्यमान हैं! संप्रति पंजाब में इन्दिरा गाँधी के हत्यारे बेअन्तसिंघ का शहीदी-दिवस मनाया जाता है। इस सब के कारण असफल नेता ही हैं।

शिवपरक साहित्य

यथार्थवादी युग में शिवपरक रचना भी उल्लेखनीय है। दिनकर, उदयशंकर भट्ट इत्यादि के क्रान्ति-काव्य में शिव के प्रलयंकर-रूप के प्रासंगिक आह्वान प्राप्त हैं। रामानन्द तिवारी 'भारतीनन्दन' ने 'पार्वती' शीर्षक पृथुल महाकाव्य रचा है, दुष्यन्तकुमार कृत नाट्यकाव्य 'एक कंठ विषपायी' में शिवकाव्य क्रान्त एवं सुधारवादी रूप में प्रस्तुत किया गया है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' कृत 'हम विषपायी जनम के' शिव का स्मरण तो कराता ही है। पं. सुधाकर शर्मा 'सुधाकर' कृत काव्य 'शिवलोक' कथानक के उषा-अनिरुद्ध से सम्बद्ध होते हुए भी शिवतत्त्व-प्रधान है। डॉ. रामगोपाल शर्मा 'दिनेश' कृत काव्य 'सारथी' कृष्णपरक नहीं है; शिवपरक माना जा सकता है। मेरी महाकविता 'तब, अब और आगे' तथा लम्बी कविता 'इल और इला' में भी शिव-निरूपण विद्यमान है। चन्द्रिकाप्रसाद सक्सेना 'कीर्ति' कृत 'पार्वती' तथा सुखनन्दन वर्मा कृत 'सती' उल्लेख्य काव्य हैं। शक्ति एवं शिव पर पृथक्-पृथक् रचनाएँ करने वाले 'कुंडवासिनी (काव्य) शिवद्वार' (गद्य) प्रभृति के कवि एवं लेखक जितेन्द्र कुमार सिंह 'संजय' एक उल्लेखनीय रचनाकार हैं। अन्य अनेक कवियों ने भी शिवकाव्य रचा है। गुजरात विश्वविद्यालय में 'स्वातन्त्र्योत्तर कविता में शिव' पर शोधकार्य भी हो चुका है। शक्ति-काव्य को शिवपरक साहित्य में समाहित किया जाए तो ब्रजनन्दनसहाय 'मोहन प्रेमयोगी' कृत महाकाव्य 'महाशक्ति' का उल्लेख अपरिहार्य है।

बुद्धपरक साहित्य

गाँधी का राजनैतिक अस्त्र अहिंसा उनके दल के प्रायः निरन्तर शासन के कारण आज तक चर्चित है, नेहरू बुद्ध के भारी प्रशंसक थे और अशोक बनने की हसरत रखते थे। अतः ''यथा राजा तथा प्रजा'' एवं ''राजा कालस्य कारणम्'' के अनुरूप बुद्ध-साहित्य (जो प्रसाद के 'अजातशत्रु' नाटक से 'लहर' संग्रह के 'अरी वरुणा की शान्त कछार' तथा 'उस दिन जब जीवन के पथ में 'शीर्षक गीतों तक प्रसरित है मैथिलीशरण की 'यशोधरा' तो हिन्दी-बुद्धसाहित्य की सर्वश्रेष्ठ कृति के रूप में अमर है ही–उन्होंने 'अनघ और 'कुणाल' भी रचा है, आ. शुक्ल ने 'बुद्धचरित' अनुवाद प्रस्तुत किया था, अनूप शर्मा ने 'सिद्धार्थ' महाकाव्य रचा था–उन्होंने 'वर्द्धमान' भी रचा था) पर बहुतों ने हाथ अज़माएः बहती निरंजना (गया) या वरुणा (सारनाथ) में हाथ धोए; लक्ष्मीनारायण मिश्र कृत 'वत्सराज' एवं 'अशोक', जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिन्द' कृत 'गौतम-नन्द', मोहन 'राकेश' कृत 'लहरों के राजहंस' इत्यादि नाटक तथा सोहनलाल द्विवेदी कृत खंडकाव्य 'कुणाल', रामशंकर गुप्त 'कमलेश' कृत काव्य 'अशोक', भवानीप्रसाद मिश्र कृत खंडकाव्य 'कालजयी' (अशोक), त्रिवेदी रामानन्द शास्त्री कृत खंडकाव्य 'मृगदाव', डॉ. जगदीश गुप्त कृत खंडकाव्य-द्वय 'गोपा-गौतम' एवं 'बोधिवृक्ष', विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद' कृत काव्य 'भगवान बुद्ध' एवं 'अशोक', विनीत विक्रम बौद्ध (रामखेलावन वमी) कृत स्फीत अवधी-महाकाव्य 'बुद्धचरित-चन्द्रोदय' इत्यादि की बाढ़ युगानुरूप ही थी (शान्ति या पंचशील के अनुसार रचित)। मैंने 'सेतु' संग्रह में 'बुद्ध के अन्तिम क्षण' शीर्षक लम्बी पर मौलिक कविता लिखी है, जो यथार्थवाद के अनुरूप है, आदर्शवाद के पिष्टपेषण की नहीं स्वच्छन्दतावाद की यूटोपिआई उड़ान की नहीं (इसीलिए चर्चित नहीं हो सकती)। बुद्ध के पलायन, आम्रपाली-प्रकरण, शूकरमार्दव-अतिखादनजन्य अवसान इत्यादि पर कुछ भी यथार्थवादी साहित्य नहीं रचा। अशोक की धार्मिक असहिष्णुता तथा वृद्धावस्था में प्रकरणों पर खामोशी! कुणाल नामक स्थान अफ़गानिस्तान में तो है, किन्तु भारत में नहीं। इधर, अमेरिका-निवासी भारतीय चिकित्सक कवि डॉ. विजयकुमार मेहता (22 मई, 1943, भीखनपुर, जनपद भागलपुर) ने 21 सर्गों के पौनेचार-सौ पृष्ठों में आम्रपाली पर 'भिक्षुणी' शीर्षक काव्य की रचना की है जो वैशाली की नगरवधू से भिन्न सेवामार्गिणी है। उन्होंने 'तथागत' शीर्षक खंडकाव्य भी रचा है जिसमें दृष्टिकोण बौद्धिक एवं युगानुरूप है। उनकी

'विज्ञान' कविता, 'डॉ. कवि के गीत' इत्यादि रचनाएँ भी सफल हैं। अप्रवासी भारतीय हिन्दी साहित्यकारों पर ग्रन्थ-रचना अपेक्षित है। इसमें डॉ. मेहता को एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त होगा। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, भवानीदयाल संन्यासी, सुरेशचन्द्र शुक्ल (नौवें) इत्यादि तो आएँगे ही। बनारसीदास चतुर्वेदी, वेदप्रकाश 'बटुक' इत्यादि का प्रासंगिक उल्लेख होगा।

विविध साहित्य

मीराँ (मीरा) पर परमेश्वर 'द्विरेफ' एवं परमानन्द जड़िया ने काव्य रचे हैं, 'द्विरेफ' जी ने प्रेमचन्द पर भी काव्य रचा है। राजेश दयालु 'राजेश' ने 'चैतन्य-चन्द्रिका' काव्य रचा है। ताराचन्द पाल 'बेकल' ने मैथिलीशरण, चन्द्रशेखर 'आज़ाद', शास्त्री, इन्दिरा एवं डॉ. श्यामसिंह 'शशि' पर काव्य प्रस्तुत किए हैं। निराला पर 'महाप्राण', 'कालजयी' एवं 'निराला' शीर्षक तीन काव्य रचे गए हैं तथा अन्य कई रचे जा रहे हैं। मैथिलीशरण कृत 'विष्णुप्रिया' (चैतन्य-पत्नी) एवं 'रत्नावली' (तथाकथित तुलसी-पत्नी) काव्य यथार्थवादी युग में ही रचे गए, जिनमें उनका उपेक्षिताओं के प्रति सम्वेदना की ऐतिहासिक परम्परा का विकास हुआ है। जगत वर्मा ने भी 'रत्नावली' (1997 ई.) रची है। भगवत दुबे ने 'दधीचि' शीर्षक स्फीत काव्य रचा है। जिसमें कथा के साथ आधुनिकता का योग यन्त्र विद्यमान है।

शहीद-सम्राट चन्द्रशेखर आज़ाद, शहीदे-आज़म भगतसिंह, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस इत्यादि पर अनेक प्रबन्धकाव्य रचे गए हैं। गाँधी, नेहरू, इन्दिरा इत्यादि पर भी काव्यरचना हुई है। कवि असंख्य हैं, विषय क्रम; एक-एक नायक या नायिका पर अनेक काव्य प्राप्त होना विस्मयकारी नहीं।

स्थानीय प्रकृति (विंध्य) पर पंडा दुर्गादत्त उपाध्याय 'दत्त' एवं पर्यावरण पर उनके शिष्य बनारसी 'दास' (पर्यावरण-कौमुदी': संस्कृत-हिन्दी-अंग्रेजी एकसाथ) ने अच्छा लिखा है। मेरे मत से, 'पर्यावरणसाहित्य' एक नवविधा के रूप में समादृत होना चाहिए। चिरंजीत, डॉ. शिवानन्द नौटियाल, बनारसी 'दास', प्रो. लल्लनप्रसाद इत्यादि ने इस दिशा में अच्छा सृजन किया है। मैंने भी अनेक कविताएँ लिखी हैं जो 'सार्वभौम' में विद्यमान हैं। लल्लनप्रसाद ने उत्तर-आधुनिकता को सन्तुलित रूप में उभारा है।

विविध सृजन की दृष्टि से गद्य में असंख्य ग्रन्थ सदैव ही रचे जाते हैं। संप्रति पुस्तकालयों में प्रकट अथवा गुप्त आदान-प्रदान से लेकर सरकारी ख़रीदों तक में लेन-देन के कारण भी शत-शत ग्रन्थ रचे जाते हैं। पुरस्कारों के कारण भी ग्रन्थ रचे जाते हैं। 'छपास' के कारण भ गी अनेकानेक ग्रन्थ प्रकाश में आते हैं। इनमें से साधारण जीवनियाँ, शिक्षापयोगी शताधिक-विषयगत ग्रन्थ, चलचित्र-क्रीड़ा-मनोरंजन-ग्रन्थ इत्यादि साहित्येतर होते हैं। भाषाविज्ञान, व्याहवहारिक-हिन्दी, औद्योगिक-हिन्दी, कतिपय-दिशागत शोधग्रन्थ भी प्रायः साहित्येतर होते हैं।

साहित्येतर-साहित्य

इसमें सन्देह नहीं कि संप्रति साहित्येतर-साहित्य साहित्य से बाज़ी मार रहा है। केवल आजीविकापरक, स्वव्यवसायपरक, चलचित्रपरक, नानाक्रीड़ापरक, नानाभाषाज्ञानपरक, सामान्यहासपरक[1], अपराधपरक इत्यादि-इत्यादि से सम्बद्ध ग्रन्थ एवं पत्र-पत्रिकाएँ ही साहित्येतर नहीं है, अधिकांश कवि-सम्मेलनी-दूरदर्शनी- आकाशवाणी कविताएँ भी साहित्येतर होती हैं जिनके प्रस्तोता व्रत नहीं वृत्ति पर आधृत लेखनायास करते हैं, अधिकांश दूरदर्शनी-आकाशवाणीयत तथा 'लोकप्रिय' कहानियाँ, नाटक, एकांकी, साक्षात्कार, परिचर्चाएँ इत्यादि में साहित्येतर होती होती हैं क्योंकि उनका उद्देश्य प्रस्तुति है, सर्जना नहीं। संप्रति साहित्य साहित्य तभी है जब वह एक-अखंड मानवता के प्रतिपादनार्थ मानव-जीवन की जटिल ग्रन्थियों को खोलने के व्रत का पालन करे, न कि प्रशासकीय भटैती करे या पूँजीपतियों की पत्र-पत्रिकाओं को मोटा करके अपना पेट भरे। बिना नव्यता एवं भव्यता के साहित्य नहीं रह सकता।

* * *

आकलन

यथार्थवादी युग की अर्द्धशताब्दी सृजन की दृष्टि से गरिमामयी एवं प्रभाव की दृष्टि से विशद रही है। प्रगतिशील कवि दिनकर, उदार-व्यक्तिवादी कवि बच्चन, साम्यवादी कवि मुक्तिबोध, घोर-व्यक्तिवादी कवि-उपन्यासकार अज्ञेय, मनोविज्ञानवादी-गाँधीवादी

---

[1] अकबर-बीरबल कल्पित-विनोद, चुटकले इत्यादि से सम्बन्धित।

उपन्यासकार-कहानीकार जैनेन्द्र, मानवतावादी आलोचक-निबन्धकार डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी साम्यवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्मा इत्यादि हिन्दी-साहित्येतिहास के अंग बन चुके हैं। उपन्यासकार अमृतलाल नागर भी हिन्दी-साहित्येतिहास की स्मरणीय विभूति हैं। यथार्थवादी युग महानों का नहीं समानों का युग रहा है; अतः इसमें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसा महान् युगप्रवर्तक, आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसा महतोमहीयान् निर्माता, प्रेमचन्द जैसा महान् उपन्यासकार एवं कहानीकार, आ. रामचन्द्र शुक्ल जैसा महान् आलोचक एवं निबन्धकार तथा मैथिलीशरण, गुप्त, प्रसाद, निराला और पन्त जैसे महान् कवि नहीं हो सके। कारण? विभाजन-पूर्व के तपोजूवल नेतृत्व की समता विभाजन-परवर्ती पदलोलुप नेतृत्व नहीं कर पाया। केवल अत्यन्त महान् नेतृत्व ही निर्माण-दीप्त एवं निर्माणरत राष्ट्र को सुविधाभोगवादिता से बचाते हुए तपोजूवल रख पाता है। इस सब को देखते हुए जो साहित्य-रचना हुई है उसे सन्तोषजनक ही कहा जाना चाहिए।

स्मरणीय साहित्यकार

गुलाबराय[1]

आधुनिक हिन्दी हिन्दी-गद्य के उन्नायकों में डॉ. गुलाबराय का महत्त्वपूर्ण स्थान है—काव्यशास्त्र, व्यावहारिक आलोचना, ललित-निबन्ध, गम्भीर निबन्ध, ज्ञान-साहित्य आदि के विकास में सम्यक् योगदान देकर, द्विवेदी-युग से लेकर नई कविता और नई आलोचना के इस अत्याधुनिक युग तक की विकासशील चेतना को आत्मसात् कर, आगे बढ़ा हुआ यह....लेखक विशेष ऐतिहासिक गौरव का अधिकारी है। **डॉ. नगेन्द्र** (हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2)

सामान्यतः 'फिर निराशा क्यों' तथा विशेषतः 'ठलुवा क्लब' एवं 'मेरी असफलताएँ' शीर्षक आत्मपरक स्पर्श से पुलकित निबन्धों में प्रतापनारायण मिश्र एवं बालमुकुन्द गुप्त की गहन व्यंग्य-परम्परा को अभिनव बौद्धिक आयाम प्रदान करने वाले गुलाबराय (1888-1963 ई.)[2] हिन्दी के प्रथम श्रेणी के निबन्धकारों में प्रतिष्ठित किए जाने योग्य हैं। 'शान्तिधर्म', 'मैत्रीधर्म', 'कर्तव्यशास्त्र' प्रभृति ग्रन्थों में उन्होंने डॉ. भगवानूदास[3] के सदृश शान्ति, अहिंसा एवं मानवतावाद पर अच्छा प्रकाश डाला। दर्शनशास्त्र के अनेक विद्वानों ने हिन्दी में मौलिक ग्रन्थ-रचना की है, जिनमें स्वयं प्रकाण्ड दार्शनिक भारतरत्न डॉ. भगवानूदास का स्थान प्रथम है; तदनन्तर आ. नरेन्द्रदेव, डॉ. सम्पूर्णानन्द, आ. रजनीश, डॉ. बलदेव उपाध्याय, डॉ. उमेश मिश्र, लाला दीवानचन्द, डॉ. देवराज इत्यादि परिगणित किए जा सकते हैं। किन्तु ये (डॉ. देवराज के अतिरिक्त) विशुद्ध साहित्यकार नहीं हैं। डॉ. गुलाबराय एवं डॉ. देवराज ऐसे विशुद्ध साहित्यकार हैं, जिन्होंने दर्शनग्रन्थ भी लिखे हैं। इस दृष्टि से आनन्दशंकर माधवन् का नाम भी उल्लेखनीय है। विशुद्ध साहित्यकार दर्शनग्रन्थकारों में डॉ. गुलाबराय अन्यतम हैं: 'तर्कशास्त्र' (तीन भाग), 'पाश्चात्य दर्शनों का इतिहास' एवं 'बौद्धधर्म' प्रभृति ग्रन्थ भी इस तथ्य को स्पष्ट करते हैं। वे दर्शनशास्त्र के एम. ए. एवं सेन्ट जॉन कॉलेज आगरा में प्राध्यापक भी थे। उन्होंने 'नवरस', 'सिद्धान्त और अध्ययन', 'काव्य के रूप', 'हिन्दी नाट्य विमर्श' प्रभृति काव्यशास्त्र-ग्रन्थ लिखकर इस दिशा के श्यामसुन्दर, रामचन्द्र शुक्ल, नगेन्द्र इत्यादि विशिष्ट तथा आ. किशोरीदास वाजपेयी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. देवेन्द्र शर्मा, डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी तथा अन्य विद्वानों के मध्य गौरवशाली स्थान भी प्राप्त किया है। डॉ. गुलाबराय, आचार्य श्यामसुन्दर के सदृश, इस स्थिति में थे कि काव्यशास्त्र की दिशा में एक ओर कन्हैयालाल पोद्दार, रामदहिन मिश्र, किशोरीदास वाजपेयी प्रभृति पारम्परिक आचार्यों तथा दूसरी ओर रामचन्द्र शुक्ल, नगेन्द्र, राममूर्ति त्रिपाठी प्रभृति प्राचीन-अर्वाचीन-समन्वयकर्त्ता विद्वानों के मध्य सेतु का कार्य निष्पन्न कर सकें। 'साहित्य-सन्देश' (आगरा) के सम्पादक के रूप भी उन्होंने साहित्य की स्मरणीय सेवा की। उनकी 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास' तक में यत्र-तत्र अस्मिता के दर्शन हो जाते हैं, जबकि अनेक बड़ों-बड़ों के बड़े-बड़े पोथों में जोड़-तोड़ के साथ भी पिष्टपेषण ही दृग्गत हो पाता है। विशदायामी साहित्येतिहास हिन्दी में रहा ही कहाँ है?

---

1. शिखर-विलास (1785 ई.) के कवि गुलाबराय भी हुए हैं। नायिकाभेद एवं अलंकार का समन्वित विवेचन करने वाले ग्रन्थ 'ललित-भूषण' (1898 ई.) के आचार्य-कवि गुलाबसिंह (बूँदी) एवं कवि गुलाबरत्न वाजपेयी (1901 ई., उन्नाव) का स्मरण भी आ जाता है। कवि गुलाबसिंह चौहान 'गुलाब' वाजपेयी जी के समकालीन-से थे।
2. जन्मस्थान इटावा, मूलस्थान जलेसर (दे. 'विनोद'), वासस्थान आगरा। भारतेन्दु, श्रीनिवासदास, राधाकृष्णदास, ब्रजरत्नदास, रत्नाकर, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, प्रसाद, माताप्रसाद गुप्त, वासुदेवशरण अग्रवाल, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, किशोरीलाल गुप्त, जगदीश गुप्त, परमलाल गुप्त इत्यादि के सदृश वैश्य-हिन्दीसेवी। भारतरत्न डॉ. भगवानूदास भी वैश्यरत्न थे। वैश्यजाति में उत्पन्न लाजपतराय, गाँधी, लोहिया इत्यादि हिन्दी से संपृक्त हैं ही।
3. वे भगवानूदास लिखते थे। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् एवं कवि भी थे।

गुलाबराय ने काव्यशास्त्र, साहित्येतिहास, दर्शन इत्यादि विभिन्न दिशाओं में स्मरणीय कार्य तो किया है किन्तु वह 'प्रस्थान' या मौलिकता या महत्ता की दृष्टि से बहुत ठोस नहीं हैः वे द्वितीय-भगवानूदास हैं, वे द्वितीय-श्यामसुन्दरदास हैं। श्यामसुन्दरदास से उनकी तुलना बख़ूबी की जा सकती हैः दोनों सन्तुलित, दोनों जीवन एवं लेखन से प्राध्यापक दोनों वस्तुपरक।

गुलाबराय आदर्शवादी युग एवं स्वच्छन्दतावादी युग तथा यथार्थवादी युग के संयोजक के रूपों में भी स्मरणीय रहेंगे। उनके निबन्धों में व्यावहारिक आदर्श, सीमित-स्वच्छन्दता एवं अप्रतिबद्ध-यथार्थ का समन्वय दृग्गत होता है। वे कहीं भी और किसी भी 'अति' से बच कर चलते हैं।

गुलाबराय का हिन्दी-साहित्येतिहास में विशिष्ट स्थान एक उच्चकोटि के हास्यव्यंग्यसम्पन्न निबन्धकार के रूप में ही है, क्योंकि 'मेरी असफलताएँ' एवं 'ठलुवा क्लब' में ही सृजनात्मक प्रतिभा के दर्शन हो पाते हैं। हास्य-व्यंग्य में गुलाबराय प्रातिभ निबन्धकारों प्रतापनारायण मिश्र एवं बालमुकुन्द गुप्त का स्मरण कराते हैं गुलाबराय हँसते-हँसते हुए भी धर्म, दर्शन, साहित्य इत्यादि का बोध करते-करते चलते हैं।

बिरला[1] ही जानता होगा कि गुलाबराय कवि भी थे[2]—मिश्रबन्धु ने 'विनोद' में उनके 'स्फुट लेख तथा कविताएँ' ग्रन्थ (?) का उल्लेख किया है! कविता में वे आदर्शवादी युग से संपृक्त लगते हैं। उनकी रचनाओं में तेजी और तुर्शी कहीं नहीं है। वे सर्वत्र तर्कपूर्ण, सरल एवं सुबोध हैः

1. सौन्दर्य की उपासना करना उचित है सही, पर क्या उसी के साथ-साथ कुरूपता घृणास्पद या निंद्य है? नहीं, सौन्दर्य का अस्तित्व ही कुरूपता के ऊपर निर्भर है। सुन्दर पदार्थ अपनी सुन्दरता पर चाहे जितना मान करे, किन्तु असुन्दर पदार्थ की स्थिति में ही वह सुन्दर कहवाता है। अन्धों में काना ही श्रेष्ठ समझा जाता है।....सत्तासागर में दोनों की स्थिति है। दोनों ही एक दूसरे में परिणत होते रहते हैं। फिर कुरूपता घृणा का विषय क्यों? रूपहीन वस्तु से तभी तक घृणा है जब तक हम अपनी आत्मा को संकुचित बनाए हुए बैठे हैं। सुन्दर वस्तु को भी हम इसी कारण सुन्दर कहते हैं कि उसमें हम अपने आदर्शों की झलक देखते हैं। आत्मा के सुविस्तृत और औदार्यपूर्ण हो जाने पर सुन्दर और असुन्दर दोनों ही समान प्रिय बन जाते हैं। कोई माता अपने पुत्र को कुरूपवान् नहीं कहती। इसका यही कारण है कि वह अपने पुत्र में अपने आपको ही देखती है। जब हम सारे संसार में अपने आपको ही देखेंगे तब हमको कुरूपवान् भी रूपवान् दिखाई देगा।

2. विकल दुखिया का जीवन-प्राण, मृदुल आभा से सजा प्रभात;
आशा के रथ पर चढ़ आया निमिष में हुआ जगत्-विख्यात।

इन्द्र विद्यावाचस्पति

अपने स्वनामधन्य पिता महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा संस्थापित गुरुकुल काँगड़ी के विकासक एवं उसे आधुनिक रूप प्रदान करने वाले शिक्षाविद्, पितृवत्[3] स्वातन्त्र्य-सेनानी, 'विजय' एवं 'वीर अर्जुन' एवं 'जनसत्ता' के यशस्वी सम्पादक प्रा. इन्द्र विद्यावाचस्पति (9 नवम्बर, 1889—23 अगस्त, 1960, जन्म नवाँशहर ज़िला जालंधर, मृत्यु दिल्ली) हिन्दी के एक उल्लेखनीय जीवनीकार एवं उपन्यासकार हैं। 'नैपोलियन बोनापार्ट की जीवनी', 'प्रिन्स बिस्मार्क का जीवन-चरित', 'गौरीबाल्डी', 'महर्षि दयानन्द

---

[1] बिड़ला (अंग्रेज़ी में बिरला) से भिन्न।

[2] मिश्रबन्धु, शुक्ल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र आदि इत्यादि आलोचकों के सदृश ही, गुलाबराय भी असफल-कवि हैं। महावीरप्रसाद द्विवेदी, रामविलास शर्मा इत्यादि आलोचक अर्द्धसफल-कवि हैं। रामकुमार वर्मा आलोचक भी थे, कवि भी; किन्तु इन दोनों रूपों से नाट्यकार-एकांकीकार के रूपों में सफलतर सिद्ध हुए।

[3] दिल्ली का घण्टाघर अब नहीं रहा किन्तु उसी के पार्श्व में टॉउन हॉल परिसर में स्वामी श्रद्धानन्द की मूर्ति खड़ी है—यहीं स्वामी जी ने साम्राज्यवादी अंग्रेज़ों की बन्दूक-संगीत-धारी पुलिस के सामने छाती खोलकर कहा था, मारो गोली! कालान्तर में एक मतान्ध मुसलमान ने स्वामी जी के शुद्धि-आन्दोलन के कारण उनकी हत्या कर दी। डॉ. भोजराज पट्टाभि सीतारमय्य (अंग्रेज़ी में बी. पट्टाभि सीतारामैया) के विख्यात ग्रन्थ 'हिस्ट्री ऑफ़ कांग्रेस (कांग्रेस का इतिहास) के अनुसार, गाँधी ने हत्यारे वशीर को 'मेरा भाई' कहा! वशीर को फाँसी दी गई थी। वैसे, गाँधी गुरुकुल काँगड़ी देखकर इतने प्रभावित हुए थे कि श्रद्धान्द के चरणों पर सिर रखकर रोने लगे थे।

का जीवन-चरित्र’[1], ‘मेरे पिता’, ‘हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति’ (डॉ. राजेन्द्रप्रसाद), ‘पं. जवाहरलाल नेहरू’ इत्यादि जीवनियों (जिनमें ‘हमारे कर्मयोगी राष्ट्रपति’ एवं ‘मेरे पिता’ संस्मरणात्मक हैं) तथा ‘शाह-आलम की आँखें’ जैसे ऐतिहासिक उपन्यासों एवं ‘जमींदार’, ‘सरला की भाभी’, ‘सरला’, ‘आत्मबलिदान’, ‘अपराधी क़ौम’ जैसे सामाजिक उपन्यासों में इन्द्र जी सर्जना नहीं करते, वर्णन करते हैं। आर्यसमाजी कवि (जैसे नाथूराम शर्मा ‘शंकर’) हों या उपन्यासकार (जैसे संघी गुरुदत्त एवं कांग्रेसी यज्ञदत्त शर्मा इत्यादि) या विद्वान् (जैसे डॉ. मुंशीराम शर्मा ‘सोम’) या कोशकार (जैसे आ. क्षेमचन्द्र ‘सुमन’) कलानिष्पन्न नहीं हैं; औन इन्द्र जी जैसे अतिस्फीत लेखक में कला का अभाव भी स्वभावतः अतिस्फीत हो गया है।

इन्द्र विद्यावाचस्पति हिन्दी के मौलिक इतिहासकारों में एक अविस्मरणीय स्थान के अधिकारी हैं। ‘सम्राट रघु’, ‘भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का उदय और अस्त’, अतिस्फीत ‘मुग़ल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण’, ‘मराठों का इतिहास’, ‘भारत के स्वाधीनता-संग्राम का इतिहास’, ‘आर्यसमाज का इतिहास’[2] प्रभृति ग्रन्थ उन्हें आ. रामदेव, श्री जयचन्द्र विद्यालंकार, श्री सत्यकेतु विद्यालंकार इत्यादि के साथ पंक्तिबद्ध करते हैं।[3] पाश्चात्य प्रणाली के इतिहासकार डॉ. राधाकृष्ण शर्मा प्रभृति से इन भारतवादी इतिहासकारों का अन्तर स्पष्ट है, भले ही इनकी अनेक स्थापनाएँ विवादास्पद हों। एच. जी. वेल्स एवं नेहरू से अभिभूत डॉ. शर्मा का ‘अशोक’ (वस्तुतः ‘विश्व का सर्वश्रेष्ठ मानव एवं शासक अशोक’—1997 ई.) उपयोगी होते हुए भी प्रशस्तिपरक लगता है। साम्यवादी इतिहासकारों की चर्चा व्यर्थ-सी है क्योंकि वे ‘इतिहास’ नहीं लिखते, वाद लिखते हैं। फिर वे हिन्दी में मौलिक लेखन करते ही कितना हैं? ‘हिन्दी के मौलिक इतिहासकार’ शीर्षक ग्रन्थ लिखा जाना चाहिए।

इन्द्र जी ने ‘उपनिषदों की भूमिका’ एवं ‘भारतीय संस्कृति का प्रवाह’ जैसे विद्वतापूर्ण ग्रन्थ तद्वत् भाषा में लिखकर अपने अगाध पाण्डित्य का प्रशस्य परिचय दिया है। ‘मैं उनका ऋणी हूँ’ शीर्षक ग्रन्थ इन्द्र जी को एक सफल संस्मरणकार सिद्ध करता है। उनका ‘आत्मचरित्र’ अप्रकाशित है।

सारे आर्यसमाजी साहित्यिक रसज्ञता की दृष्टि से ठूँठ होते हों, ऐसा कहना अतिशयोक्तिपूर्ण होगा (ठीक ऐसे ही, सारे मार्क्सवादियों को साहित्य-ठूँठ कहना भी अतिशयोक्तिपूर्ण होग ा) किन्तु यह सत्य है कि दयानन्द के प्रज्ञाचक्षु गुरु विरजानन्द पुराणों एवं रघुवंशम् इत्यादि पर शिष्यों द्वारा उपानह-प्रहार करवाते थे जिसके लिए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कठोरतम शब्दों का प्रयोग किया है। दयानन्द का बोध (शिवालिंग पर चूहा) स्थूल द्वैतमूलक हैः शिव के लिए चूहा कमतर जैसे हो सकता है? वे सर्वपिता हैं! इन्द्र जी ने ‘रघुवंश’ एवं ‘किरातार्जुनीय’ ग्रन्थों में सन्तुलन से काम लिया है।

कला के अभाव, धुवाँधार (‘अन्धाधुन्ध नहीं) विश्वकोशीय एवं अनेक सम्बद्ध-असम्बद्ध विधाओं में लेखन के कारण इन्द्र विद्यावाचस्पति साहित्येतिहास में उखड़े-से लग सकते हैं, किन्तु उनकी सेवाएँ सर्वथा स्मरणीय हैं, इसमें सन्देह नहीं। वे वन्दनीय महापुरुष भी थे।

‘ब्रजनन्दन’

ब्रजकिशोर पाण्डेय ‘ब्रजनन्दन’ (1892-1984 ई., आषाढ़ बदी एकादशी, सम्वत् 1949 वि., भनवामऊ, निवास लालगंज जनपद रायबरेली[4]) आधुनिक व्रजभाषा के एक उल्लेखनीय कवि हैं। उनका देहावसान 1 जनवरी, 1984 ई. को प्रातः सात बजे स्व. श्री त्रिभुवन शर्मा ‘मधु’ की गोद में बाराबंकी के बड़ेल नामक गाँव में हुआ था।[5] इन्होंने भक्ति, देश-प्रेम, स्वातन्त्र्य तथा सामयिक विषयों से सम्बन्धित रचनाओं के साथ-साथ आत्मपरक रचनाएँ भी सृजित की हैं जिसमें अपनी तीनों पत्नियों बिसुनदेई (विष्णु देवी) या

---

1. ‘अंगेज़ जाति क्रा इतिहास’ (1922 ई.), ‘विधवाविवाह-मीमांसा’ (1923 ई.), ‘आस्तिकवाद’, (1926 ई.), ‘अद्धैतवाद’, (1928 ई.), ‘सर्वदर्शन-सिद्धान्त संग्रह’, (1938 ई.), ‘मीमांसा-रहस्य’ (1961 ई.) को यशस्वी दर्शनग्रन्थकार गंगाप्रसाद उपाध्याय के ‘फिलॉसॉफी ऑफ दयानन्द’ एवं ‘स्पेशल रिकॉंस्ट्रक्शन बाइ बुद्ध एण्ड दयानन्द’ पठनीय ग्रन्थ हैं। ‘सनातनधर्म और आर्यसमाज’ (1951 ई.) ‘वैदिक कल्चर’ (1948 ई.) ग्रन्थ भी पठनीय हैं।
2. विद्वद्वर गंगाप्रसाद उपाध्याय के ‘आर्यसमाज’ (1924 ई.), ‘भारत में ब्रिटिश साम्राज्य’ ग्रन्थ भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।
3. गम्भीर विद्वान् गंगाशंकर मिश्र कृत ‘भारतवर्ष का इतिहास’ एवं
4. सूर सौरभ (पत्रिका) अंक माघ सम्वत् 2038 वि., पृष्ठ 25-26।
5. ‘इन्दु’ (पत्रिका) अंक जुलाई, 1984 ई., पृष्ठ 9-10।

'रेजी', मानवती या 'रेशमी' एवं चन्द्रवती का भी उल्लेख किया है। उनके नागपुर-प्रवास में जो उपपत्नी 'सत्यभामा' मिलीं', वे कहारिन थीं और प्रेमचन्द की 'कहरिया' का स्मरण कराती हैं।

ब्रजनन्दन जी की प्रकाशन-सम्बन्धी उदासीनता के कारण ही उनके विपुल साहित्य की प्रमुख रचनाएँ ('वैवाहिक विनय' 'दुखिया कृषक', 'महिपाल वैचित्र्य', 'ब्रिटिश असहयोग', 'प्रदोष-पूजा', 'सौति स्नेह', 'ऊधव-उपचार', 'वृन्दावन विरहिणी' आदि) यत्र-तत्र पुरानी पत्रिकाओं और कुछ काव्य-प्रेमियों के कंठ तक ही सीमित रह गई हैं, अधिकांशतः पुस्तकाकार प्रकाशन नहीं पा सकीं। उनके 86वें वर्ष पर प्रस्तुत स्व. श्री त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' द्वारा सम्पादित 'ब्रजनन्दन-विलास' के माध्यम से ब्रजनन्दन जी के सम्पूर्ण साहित्य की बानगियाँ प्राप्त हो जाती हैं और उनकी रचनाधार्मिता तथा प्रतिभा का परिचय मिलता है। (बैसवारा-अंचल के ही किन्तु उन्नाव जनपदान्तर्गत भदवही, निकट बेथर, में 27 जुलाई, 1903 ई. को जन्मे तथा 11 नवम्बर, 1992 को कानपुर में दिवंगत कविवर पं. देवीदत्त त्रिपाठी 'प्रचण्ड' को 'मधु' मिल जाता तो हिन्दी एक सत्कवि से विशेष परिचित हो सकती थीः मैंने 'दो सौ अस्सी साहित्यकार' में जो कुछ जुटा पाया उसके आधार पर कर्त्तव्य-पालन किया है।) उनके 'ऊधव-उपचार' के छन्द रत्नाकर जी के 'उद्धव-शतक' से तुलनीय हैं।[1] इस कृति का प्रकाशन 1983 ई. में ही हो गया था।

वे विद्वत्वंशरत्न थे, लोकप्रियता-उपयुक्त सरस जीवन जिए और खूब जिए, स्वातन्त्र्य सेनानी थे, कविता प्रभावी ढंग से सुनाते थे, मिलनसार थे, नम्र थे तथा स्यात् इन सब से बढ़कर निस्संकोच रूप से आत्मपरक कविता भी कहते थे, अतः जीवन-काल में ही कथन बन गए थे। निस्सन्देह, वे आधुनिक पारम्परिक व्रजभाषा-कवियों में सर्वथा उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने प्रशस्य जीवनवादी सृजन किया है, महान् भ्रमरगीत-परम्परा को गतिशील रखा है, प्रकृतिचित्रण में रुचि दिखलाई है, कवित-सवैया छन्दों के सृजन में विदग्धता प्रदर्शित की है। (अन्य छन्दों का प्रयोग भी किया है), अलंकरण में भी सफलता प्राप्त की है। उदाहरणस्वरूप—

1. कैसे कै निर्गुन वाको कहैं त्रिगुनी जो त्रिदेवन को उपजावत।
कैसे निरीह प्रमाने कहौ जग जो प्रगटावत औ बिनसावत।।
कैसे अलक्ष कहैं यह जीव प्रलय में जो वाही की ओर सिधावत।
कैसे अगोचर ह्वै सकै सो जो बिना रसना नहि ब्रह्म कहावत।।

2. स्याम न होते जो पन्नग तो शिव कंठ सुहावन हार न होते।
स्याम न होते जो बारिद तो रसधार बहावनहार न होते।।
स्यामता होती निसेस ये जो न सुधा सरसावनहार न होते।
स्याम न होते जो पीव 'बृजेन्द्र' तो जीव जुड़ावनहार न होते।।

3. पाते रहे दान रोज सैकड़ों गरीब द्वार, जिसके मकान में करोड़ों का खजाना था।
भगवती-भक्त, शरणागत को ढाल, शत्रु पर करवाल, प्रजापाल मरदाना था।
कहै 'ब्रजनन्दन' कराया बन्द गोबध को अवध में यद्यपि नवाबों का जमाना था।
पाया था खिताब दिल्लीपति से दिलेरजंग ऐसा महाबीर बेनीमाधौ सिंह राना था।।[2]

4. भावन जी, बेनी, गिरधारी, सुखदेव मिश्र बच्चू, जगन्नाथ, कालीदीन त्यों दुलारे की।
श्री रवाँ, प्रताप, रघुनन्दन पुराने कवि 'नूतन'[3] निराला, रूप[4], हृदयेश प्यारे की।।
भूपति, मधुकृत, सनेही, सिद्धि, चन्द्रमणि, त्यों ही 'ब्रजनन्दन' जू चातुर अखारे की।
श्री सिरस, शंकर, ब्रजेश, श्री द्विवेदी पूज्य, लालन की खानि यह भूमि बैसवारे की।।

---

[1] रायबरेली के ही कवि शंभुदयाल सिंह 'सुधाकर' कृत 'प्रेम-शतक' तो अपर उद्धव-शतक ही है। कविवर गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी ने भी भ्रमरगीत-परम्परा को गतिशील किया है (उन्होंने हनुमद्भक्ति पर भी प्रभावी सर्जना की है) प्रकाश द्विवेदी कृत 'पारावार ब्रज कौं' तो विख्यात है ही।

[2] राना बेनीमाधव पर रचित ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण छन्द।

[3] श्री शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन' (1889—20 अक्टूबर, मौरावाँ 1973 जिला उन्नाव) शक्ति एवं प्रकृति के कुशल कवि थे, जिनकी 'हिटलर-बावनी' विलक्षण एवं एकल कृति है। गौरावाँ-विद्वान् डॉ. अरुणप्रकाश अवस्थी के परिश्रम, कविवर वीरेश कात्यायन के प्रकाशन एवं सुकवि-विद्वान् डॉ. प्रतीक मिश्र के सम्पादन में 'नूतन-रचनावली' (2001 ई.) की प्रस्तुति एक तेजस्वी कवि के प्रति न्याय करता है।

[4] रूपनारायण पाण्डेय।

5. दुखिया किसानन ते खेत को छिनाय लेत देस न छुड़ावत विदेसिन के कर से।
मारि-मारि सोंटन वसूल नजराना करैं ताको भेंट करि देत हाकिम के डर से।।
अधिक लगान से किसान तो पिसान होत सोऊ आधो कर में निकास देत घर से।।
भाषै 'ब्रजनन्दन' जो ऐसे हृदयहीन भये काहे न रहैं रईस धन हेतु तरसे।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

आधुनिक विश्व में राम एवं रामकथा के एक महान् प्रसारक, गीता प्रेस गोरखपुर (जहाँ प्रेस से दूर गीता-वाटिका में उनकी मूर्ति प्रतिष्ठित है तथा समाधि भी है) के प्राण, 'कल्याण' (मासिक) के द्वारा कोटि-कोटि जनता का कल्याण करने वाले सन्त, 25000 पृष्ठ[1] प्रसरित श्रेय-साहित्य[2] के चिरस्मरणीय प्रस्तोता एवं 'पद-रत्नाकर' के भक्त-कवि हनुमानप्रसाद पोद्दार (17 दिसम्बर, 1892[3]—22 मार्च, 1971) का जन्म रतनगढ़ (राजस्थान) में हुआ किन्तु कर्मक्षेत्र गोरखपुर रहा। वे स्वातन्त्र्य-सेनानी[4] एवं समाजसेवी (गीता प्रेस सेवा दल, आर्तनारायण सेवा संघ, मूक-वधिर विद्यालय, कुष्ठ-सेवा आश्रम द्वारा गोरखपुर की जनता की) भी थे। उन्होंने 'कल्याण-कल्पतरु' शीर्षक अंग्रेज़ी-पत्रिका भी निकाली। 'कल्याण' का प्रत्येक अंक पावन पठन-पाठन का एक प्रतीक हुआ करता था और इसके विशेषांक संग्रहणीय ग्रन्थ बन गए हैं। 'कल्याण-कल्पतरु' पर भी, उसकी सीमा में यही बात लागू होती है। पोद्दारजी संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, मराठी, गुजराती, अंग्रेज़ी इत्यादि कई भाषाओं के ज्ञाता थे। सम्पादक के रूप में (अपनी सीमा में) वे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का स्मरण करा सकते हैं। (यद्यपि आचार्य के विराट् आयाम एवं गुरु-रूप दोनों की बीसवीं सदी ई. में महतोमहीयान् हैं): संयोगात् दोनों के नामर्थ एक हैं। 'सन्त श्री पोद्दारजीः रसाद्वैत दर्शन एवं साहित्य' शीर्षक ग्रन्थ (सं. डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह) उनकी साधना को उजागर करता है।

तुलसीदास पर पोद्दार जी का अध्ययन, लेखन एवं कार्य अत्यन्त स्फीत भी था, गहन भी। वैसे, वे समग्र सनातन धर्म के अगाध विद्वान् थे। निस्सन्देह, पोद्दार जी का चिन्तन एवं लेखन पारम्परिक था। वे व्यास शैली के भावुक लेखक थे। उनकी तुलना में मानसविद् पं. रामकिंकर उपाध्याय अधिक बौद्धिक हैं। फिर भी 'श्रीराधामाधव-चिन्तन' में वे रसाद्वैतवादी विचारक एवं 'पद-रत्नाकर' में भक्त-कवि के रूप में चिरस्मरणीय प्रतीत होते हैं। किन्तु ठीक यही बात साम्यवादियों एवं व्यक्तिवादियों पर उनकी-उनकी सीमाओं में लागू होती है। उनकी लेखनी से एक उत्कृष्ट निदर्शन प्रस्तुत है :

''श्रीरामचरितमानस का स्थान हिन्दी-साहित्य में ही नहीं, जगत् के साहित्य में निराला है। इसके जोड़ का, ऐसा ही सर्वांग-सुन्दर, उत्तम काव्य के लक्षणों से युक्त, साहित्य के सभी रसों का आस्वादन कराने वाला, काव्यकला की दृष्टि से भी सर्वोच्च कोटि का तथा आदर्श गार्हस्थ्य-जीवन, आदर्श राजधर्म, आदर्श परिवारिक जीवन, आदर्श भ्रातृधर्म के साथ-साथ सर्वोच्च भक्ति-ज्ञान, त्याग-वैराग्य तथा सदाचार की शिक्षा देने वाला, स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध, युवा—सबके लिए समान रूप से उपयोगी एवं सर्वोपरि सगुण रहस्य तथा प्रेम के गहन तत्त्व को अत्यन्त सरल, रोचक एवं ओजस्वी शब्दों में व्यक्त करने वाला कोई दूसरा ग्रन्थ हिन्दी भाषा में ही नहीं, कदाचित् संसार की किसी भाषाा में आज तक नहीं लिखा गया। भक्ति, ज्ञान, नीति, सदाचार का जितना प्रचार जनता में इस ग्रन्थ से हुआ है उतना कदाचित् किसी ग्रन्थ से नहीं हुआ।''

उक्त उद्धरण में उद्गार यत्र-तत्र शिथिल लग सकता है, किन्तु विचार सर्वांगीण एवं सतर्क रूप में प्राप्त होता है। दिनकर एवं राजबहादुर लमगोड़ा ने तुलसीदास को विश्व का सर्वश्रेष्ठ कवि माना है। डॉ. रामनाथ त्रिपाठी एवं श्री लल्लनप्रसाद व्यास भी ऐसा ही विचार रखते हैं। पं. अयोध्यानाथ शर्मा तुलसीदास को शेक्सपीअर से श्रेष्ठतर कवि मानते हैं। अतः पोद्दार जी के उक्त विचार केवल उनके विचार नहीं हैं। करोड़ों अन्य लोग ऐसा ही विचार रखते हैं।

---

[1] दैनिक 'राष्ट्रीय सहारा' (नई दिल्ली) में गोपाल चतुर्वेदी का लेख 'निष्काम कर्मयोगी हनुमानप्रसाद पोद्दार', 15 मार्च, 1992, पृष्ठ 7।

[2] मैं श्रेय-साहित्य, प्रेय-साहित्य, ध्येय-साहित्य एवं हेय के वर्गीकरण की कल्पना करते हुए इन्हें धर्मप्रवण-साहित्य, कलाप्रवण-साहित्य, प्रचारप्रवण साहित्य एवं कुंठाप्रवण-साहित्य के रूपों में विश्लेषित करने का पक्षधर हूँ। स्वयं न कर पाऊँ तो उपयुक्त समझने पर अन्य सज्जन करें।

[3] आश्विन कृष्णा 12, 1949 वि.।

[4] कारागार में अरविन्द योगी हुए, पोद्दाद भक्त। अरविन्द को कृष्ण दीखे, पोद्दार को विष्णु (राम एवं कृष्ण प्रभृति जिनके अवतार थे।)

पोद्दार जी एक महान् प्रकाशक थे। प्रकाशन-संस्थाओं एवं प्रकाशकों ने हिन्दी की महान् सेवा की है। संस्थानों में वेंकटेश्वर प्रेस एवं निर्णयसागर प्रेस बम्बई (अब मुम्बई), वेलवेडिअर प्रेस इलाहाबाद, नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, खड्गविलास प्रेस पटना, इंडियन प्रेस इलाहाबाद, गंगा पुस्तकमाला कार्यालय लखनऊ, भारती भण्डार प्रयाग (इलाहाबाद), साहित्य सदन चिरगाँव (झाँसी), सरस्वती प्रेस बनारस (वाराणसी), हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी, सस्ता साहित्य मण्डल नई दिल्ली इत्यादि के नाम स्मरणीय हैं, किन्तु सर्वोच्च स्थान गीता प्रेस गोरखपुर, काशी नगरी-प्रचारिणी सभा वाराणसी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर इत्यादि का है। गोपालचन्द्र डे (1876 ई. में पटना से 'बिहार-बन्धु निकाला), हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिन्तामणि घोष, दुलारेलाल भार्गव, शहीद राजपाल पुरी, कृष्णचन्द्र बेरी, (10 मार्च, 1920–2 जुलाई 2002) इत्यादि प्रकाशकों की सेवाएँ स्मरणीय हैं। कृष्णचन्द्र बेरी ने 'पुस्तक-प्रकाशनः सन्दर्भ और दृष्टि' (1997 ई.) शीर्षक अमूल्य ग्रन्थ लिखकर अपनी लेखन-क्षमता का परिचय भी दिया है। उन्होंने यूरोप के रावण हिटलर की आत्मकथा के 'मेरा जीवन-संग्राम' शीर्षक अनुवाद द्वारा भी साहित्य की सेवा की है।

राहुल सांकृत्यायन

हिन्दी-साहित्येतिहास में सिद्धों एवं नाथों का प्रभावी समावेश करने वाले विद्वान्, उपन्यासकार, कहानीकार, यात्रावृत्तकार, दर्शनग्रन्थकार एवं इतिहासकार राहुल सांकृत्यायन[1] (9 अप्रैल, 1893–14 अप्रैल, 1963, पन्दहा, आज़मगढ़ जनपद) जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में हमारे सर्वश्रेष्ठ विद्वानों में एक (वन ऑफ़ ॲवर ग्रेटेस्ट स्कॉलर्स) थे। सत्यव्रत सिन्हा के अनुसार, राहुल ने 150 से अधिक ग्रन्थ लिखे जिनमें 'सम्भवतः' 129 प्रकाशित हुए। यह सत्य है कि राहुल के अधिकांश ग्रन्थ बौद्धधर्म एवं मार्क्सवाद के प्रचार-प्रसार हेतु रचे हुए वादोद्देश्यबद्ध हैं, किन्तु उनकी बहुभाषा-बहुविषय-बहुज्ञता विस्मयकारिणी एवं विश्वस्तरीय है, इसमें सन्देह नहीं। उनका प्रातिभ सृजन भी सर्वथा उल्लेखनीय है। 'जय यौधेय' एवं 'सिंह सेनापति' उनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं, 'वोल्गा से गंगा' (वे 'महापण्डित' थे ही) कहानीसंग्रह। 'शासन-शब्द-कोश' एवं 'राष्ट्रभाषा-कोश' उन्हें कोशकारों में प्रतिष्ठित करते हैं (यद्यपि इस दिशा में महान् प्राच्यविद्याविद, भारतविद एवं भाषाविद् एवं डॉ. रघुवीर का स्थान सर्वोच्च है, भले ही राजनैतिक कारणों से प्रचार-विज्ञापन न हो पाया हो), 'तिब्बत में बौद्धधर्म' एवं 'मध्य एसिया[2] का इतिहास' (जिस पर साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला) इतिहासकारों में, 'पुरातत्व-निबन्धावली' एवं 'हिन्दी-काव्यधारा (अपभ्रंश)' हिन्दी-शोधकारों में। 'मेरी लद्दाख-यात्रा', 'तिब्बत में सवा-वर्ष', 'मेरी तिब्बत-यात्रा', 'मेरी यूरोप-यात्रा', 'रूस में पच्चीस मास', 'यात्रा के पन्ने', 'घुमक्कड़शास्त्र' इत्यादि ग्रन्थों के कारण उन्हें हिन्दी का श्रेष्ठतम यात्रावृत्तकार माना जा सकता है (यद्यपि उनके यात्रावृत्त न सरस हैं न पूर्वाग्रहमुक्त)। उन्होंने संस्मरण भी लिखे हैं। उनका 'महामानव बुद्ध' ग्रन्थ धर्मानन्द कोसम्बी के 'भगवान् बुद्ध' ग्रन्थ का स्मरण कराता है, यद्यपि दोनों में दृष्टिकोण का अन्तर शीर्षकों से ही स्पष्ट है। उनका 'हजरत मोहम्मद और इस्लाम' ग्रन्थ अवश्य मध्यकालीन श्रद्धा से बेतरह सराबोर है (और इसी कारण से वस्तुपरक नहीं रह गया)।

राहुल के समग्र साहित्य का उद्देश्य हिन्दूधर्म का एकान्तिक प्रत्याख्यान है, जिसके लिए उन्होंने ब्राह्मण-निन्दा की नानावर्गप्रिय परम्परा का अपरिहार्य एवं सुगम आश्रय ग्रहण किया है। उनका मुक्त भोजनवादी-भोगवादी जीवन जितना उच्छृंखल था, उनका साहित्य उतना ही अश्लील है। उच्छृंखलता के कारण ही घृतपात्रनाश से भयभीत हो वे पलायन के लिए विवश हुए, उसी कारण केदार से रामउदारदास बने, इसी कारण से राहुल, इसी कारण से कांग्रेसी, इसी कारण से कॉम्युनिस्ट और इसी कारण से कॉम्युनिस्ट पार्टी से निकाले गए। उन्होंने सत्तर नहीं इखत्तर घाटों का पानी पिया था! किन्तु एक चीज़ उन्हें सदा जकड़े रही और वह थी हिन्दू धर्म (विशेषतः ब्राह्मणों) के प्रति घृणा। घृणा सत्य की शत्रु है; उसे 'दिनौंधी[3]' कह सकते हैं। इसके कारण वे न गहन हो पाए, न प्रात्ययिक। उनका सरहपा इत्यादि बौद्ध सिद्धों से हिन्दी-साहित्येतिहास आरम्भ करना डॉ. हरिचन्द्र वर्मा एवं डॉ. रामनिवास शर्मा कृत उल्लेखनीय 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' स्वीकार नहीं करता क्योंकि सरहपा की सहज वाणी उपलब्ध नहीं हो पाई और जो दी गई वह तिब्बती से राहुल द्वारा अनुदित है। उनका गोरखनाथ को पीछे खींचकर विक्रम की दशम शताब्दी में ले जाना (जिससे कि वे बौद्ध सिद्धों के निकटतर

---

[1] वास्तविक नाम केदार पाण्डेय, उच्छृंखलता के कारण गृहपलायन के अनन्तर अयोध्या में भक्त रामउदारदास, अन्ततः बौद्ध राहुल (संकृत गोत्र के कारण सांकृत्यायन जो मौद्गल्यायन का स्मरण कराता है तथा जिसके अनुकरण में छोटे-राहुल आनन्द कौसल्यायन (बौद्ध), सच्चिदानन्द वात्स्यायन, सेवक वात्स्यायन, मदन वात्स्यायन इत्यादि के दर्शन हुए। कांग्रेसी, कॉम्युनिस्ट भी रहे। राहुलों (राहुदशाग्रस्त, अभागा, भयानक, विनाशकारी....) की तो झड़ी ही लग गई!

[2] 'एसिआ' अधिक ठीक होता। फिर भी, 'श' के स्थान पर 'स' का प्रयोग प्रशस्य है।

[3] 'रतौंधी' का उलटा शब्द गढ़ना पड़ा है।

माने जाएँ) आ. रामचन्द्र शुक्ल कृत ऐतिहासिक 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' स्वीकार नहीं करता, क्योंकि शोध एवं तर्क यह समय विक्रम की तेरहवीं शताब्दी घोषित करता है। उनके प्रशंसक मिश्रबन्धु तक महान् 'विनोद' में उन्हें ही उद्धृत करते हैं, उनकी मान्यताओं को नितान्त स्वकीय नहीं मानते। राहुल बुद्ध से पूर्व भारत का इतिहास स्वीकार नहीं करते! बौद्ध धर्म के प्रति अवस्तुपरक पक्षपात से भी बढ़-चढ़कर उनका साम्यवाद-पक्षपात रहाः 'वोल्गा से गंगा' ('गंगा से वोल्गा' का तो सवाल ही नहीं उठता) में उन्होंने आर्यों का आदिदेश रूस बना डाला है। 'दर्शन-दिग्दर्शन' में वे भारतीय दर्शन को ''धर्म का लग्गू-भग्गू'' मात्र मानते हैं!! राहुल सचमुच राहुल थेः स्वस्थ-पंडित न होकर अस्वस्थ-महापंडित!!

राहुल का साहित्य उनके बौद्धधर्म-पक्षपात, साम्यवाद-व्यामोह, उच्छृंखल-भोगवाद इत्यादि के कारणों से नितान्त अप्रात्ययिक, ध्वंसात्मक एवं अनुत्तरदायित्वपूर्ण हो गया है। यह सच है कि लंका के बौद्धों ने उनका सम्मान किया तथा वहाँ वे बौद्ध बन गए। (लंका में तो रावण की मूर्ति प्रतिष्ठित की गई और वह भी राष्ट्रपति प्रेमदास द्वारा!) यह सच है कि रूस में उनकी रूसी बीवी से राहुलोविच पैदा हुआ तथा मरण-पूर्व चिकित्सा हुई (यद्यपि यह उन्हें विक्षिप्त होने से रोक न सकी तथा वे भारत में अन्य पत्नी के समक्ष मरे)।[1] किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि परकीय सम्मान एवं लाभ से अभिभूत होकर सत्य को विकृत किया जाना उचित है। परिणाम यह हुआ कि भारत में उन्हें लगभग भुला दिया गया है।

श्रीनारायण चतुर्वेदी

'विश्वभारती' जैसे ज्ञानकोश के सम्पादक, 'शासक' (पश्चिम के चाणक्य मैकिआवेली के विश्वविख्यात नाटक 'प्रिन्स') के अनुवादक, 'विश्व का इतिहास' के प्रस्तोता, 'भारत में सूर्योपासना' के विद्वान्, भारतेन्दु हरिशचन्द्र एवं उनके युग पर 'आधुनिक हिन्दी का आदिकाल' के स्मरणीय ग्रन्थकार, 'मनोरंजक संस्मरण' एवं संस्मरण, 'साहित्यिक समालोचानाएँ' के आलोचक, 'चोंच एवं 'चारण' के व्यंग्यकवि एवं 'राजभवन की सिगरेटानी', 'पत्नी-धर्मपत्नी' और 'छेड़छाड़' के व्यंग्यकार[2] ('मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' से जिसकी समुचित सूचना प्राप्त हो जाती है), ऐतिहासिक 'सरस्वती'[3] के अन्तिम सम्पादक रायबहादुर ('गॉड सेव दि किंग' की तर्ज़-तरन्नुम पर रचित' ''चिरंजीव रानी व राजा हमारे'' जैसे 'लोकप्रिय' चारणगीत रचने के फलस्वरूप) से पद्मभूषण तक अलंकृत विशिष्ट-महानुभाव, अन्ततः उर्दू को द्वितीय राजभाषा बनाने के राजनैतिक निर्णय पर 14 सितम्बर, 1989 को राजनीति-दास उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का लखटकिया भारतभारती-पुरस्कार ठुकराने वाले हिन्दी-वीर श्रीनारायण चतुर्वेदी[4] (28 सितम्बर, 1893—18 अगस्त, 1990, जन्म इटावा[5], निधन लखनऊ) 'रत्नदीप' एवं 'जीवन के गीत' के कवि भी थे, जिन्होंने व्रजभाषा में भी लिखा, खड़ीबोली में भी। उनके पिता पं. द्वारकाप्रसाद[6] चतुर्वेदी (चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा) प्रसिद्ध विद्वान्, व्रजभाषा एवं खड़ीबोली के कवि एवं व्रजभाषा-कोशकार थे। चतुर्वेदी ज़ी ने प्रयाग विश्वविद्यालय से इतिहास और लन्दन विश्वविद्यालय से शिक्षा-शास्त्र में एम. ए. की उपाधियाँ प्राप्त कीं तथा अनेक उच्च पदों पर प्रतिष्ठित हुए। वे हिन्दी के अनन्य भक्तों में थे तथा निराला समेत अनेक साहित्यकारों की सहायता करते रहते थे। उन्होंने 'आधुनिक हिन्दी-साहित्य का आन्दोलन' भी लिखा है। उनका कृतित्व प्रभावशाली था, किन्तु उनके व्यक्तित्व की प्रभावशाली एवं तेजस्विता विलक्षण थी, जो उनके कृतित्व से बाज़ी मार ले जाती थी (क्योंकि उनका कृतित्व प्रायः वर्णनात्मक एवं सम्पादन-अनुवाद-प्रधान रहा)। जैनेन्द्र को 1985 ई. का

---

1. राहुल (सनेही, माखनलाल चतुर्वेदी, सोहनलाल द्विवेदी इत्यादि के सदृश) पुरुषभोगी भी थे। भदन्त आनन्द कौसल्यागन, नागार्जुन इत्यादि उन्हें बहुत प्रिय थे।
2. मैथिलीशरण जैसे महाकवि-महापुरुष को 'मैथिलीशरण' कहने के जैसे कुंण्ठामूलक एवं हीनभावग्रस्त व्यंग्य अपवाद-स्वरूप ही हैं—निस्सन्देह निन्दनीय।
3. वे अपने सम्पादनकाल को (जिसमें ऐतिहासिक पत्रिका का अवसान हुआ था) 'सरस्वती' को स्वर्णकाल मानने का सन्निपाती प्रलाप भी करते थे जिसकी कटु भर्त्सना। लट्ठमार साहित्यकार एवं पत्रकार श्रीनाथ सिंह ने की है। सनेही, हितैषी, निराला, किशोरीदास वाजपेयी, श्रीनाथ सिंह, क्षेमचन्द्र 'सुमन' इत्यादि की साहित्यिक-लट्ठबाज़ी भी स्मरणीय है, किन्तु जिसके सार्थक पक्ष भी हैं।
4. 'भइयाजी' के रूप में लोकप्रिय, 'श्रीवर' उपनाम के कवि, 'विनोद शर्मा' उपनाम के व्यंग्यकार।
5. महाकवि देव पर इटावा के साथ मैनपुरी का दावा भी विचार्य है, किन्तु डॉ. गुलाबराय, उदयशंकर भट्ट इत्यादि का जन्म इटावा में ही हुआ था। लोकप्रिय कवि गोपालदास 'नीरज', 2005 ई. में उ. प्र. हिन्दी संस्थान लखनऊ का दो-लाख-इक्यावन हज़ार रु. का भारत-भारती पुरस्कार पानेवाले साम्यवादी साहित्यकार एवं विद्वान् डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय, पूर्वांचलीय (असमिया, बांग्ला, उड़िया) रामायणों से रामचरितमानस के तुलनात्मक अध्येता डॉ. रमानाथ त्रिपाठी इत्यादि इटावा जनपद में ही जन्मे। शिशुपाल सिंह 'शिशु', लाखनसिंह भदौरिया 'सौमित्र' इत्यादि लोकप्रिय कवि भी इटावा जनपद में ही जन्मे। हिन्दी प्रेमी न्यायमूर्ति प्रेमशंकर भी, जो परम् इटावा-प्रेमी हैं।
6. 'द्वारका' के मामले में द्वारकाप्रसाद मिश्र का स्मरण कराने वाले—सम्भव है, मिश्र प्रेरित हों?

भारतभारती-पुरस्कार प्रदान किए जाने के समारोह में जब उन्हें ज्ञात हुआ कि प्रथम पक्ति में राजनीतिजीवियों तथा द्वितीय में उन जैसे साहित्यकारों के बैठने की व्यवस्था की गई है तब उन्होंने आमन्त्रण अस्वीकार कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप अन्य अनेक साहित्यकारों ने भी ऐसा ही करने का निर्णय किया। भारतभारती-पुरस्कार ठुकराने के कारण वे हिन्दी की तेजस्विता के एक प्रतीक बन गए थे। उन्होंने उर्दू की थोपाथापी के राजनैतिक स्टन्ट का भरपूर विरोध किया तथा अतिवृद्धावस्था में भी प्रदर्शनादि का नेतृत्व भी। 1989-90 ई. में श्रीनारायण चतुर्वेदी हिन्दी के सर्वाधिक सम्मानित एवं चर्चित साहित्यकार रहे। जनता ने उन्हें एक-लाख-ग्यारह हजार रुपए का 'जनता-भारतभारती पुरस्कार' देकर सम्मानित किया—कोई सरकारी साहित्य समारोह इतना भव्य एवं विशाल नहीं हुआ जितना यह था। 1990 ई. में पहले अमृतलाल नागर एवं अनन्तर श्रीनारायण चतुर्वेदी के निधन से लखनऊ का साहित्य-मंच नायक-विहीन हो गया।

अन्ततः मैं उन जुझारू एवं प्रणम्य युवा हिन्दीवीरों का नाम-काम देता हूँ, जिनके कारण हिन्दी को व्यावहारिक प्रतिष्ठा प्राप्त हुईः विभिन्न सत्याग्रहों की उपलब्धियाँ :

1984 में मुकेश जैन के संघर्ष से रुड़की विश्वविद्यालय में अभियान्त्रिकी-स्नातक (बी. ई.) की परीक्षाओं में हिन्दी माध्यम को मान्यता मिली।

1985 में अजय मलिक के संघर्ष से जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में शिक्षा-निष्णात् (एम. एड.) की परीक्षाओं में हिन्दी एवं उर्दू माध्यम को मान्यता मिली।

1986 में श्यामरुद्र पाठक के संघर्ष से भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान (आई. आई. टी.) में प्रौद्योगिकी विषय के हिन्दी में लिखे शोध-प्रबन्ध को मान्यता मिली।

1987 में पुष्पेन्द्र चौहान के संघर्ष से भारतीय विधि परिषद् (बार कॉउंसिल ऑफ़ इण्डिआ) में भारतीय भाषाओं के माध्यम से विधि-स्नातकों (एल.एल. बी.) को बिना अंग्रेज़ी परीक्षा के पंजीकरण की मान्यता मिली।

1987 में डॉ. मुनीश्वर के संघर्ष से आयुर्विज्ञान विषय के हिन्दी में लिखे शोध-प्रबन्ध को मान्यता मिली।

1988 में श्यामरुद्र पाठक व अन्यों के संघर्ष से भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों (आई. आई. टी.) की संयुक्त प्रवेश-परीक्षा (जे. ई.ई.) में भारतीय भाषाओं के माध्यम को मान्यता मिली।

1989 में विनोद कुमार गौतम के संघर्ष से अभियन्ताओं के संस्थान (इंस्टीट्यूशन ऑफ़ इंजीनियर्स इंडिया) की अभियान्त्रिकी विषयों की परीक्षाओं में भारतीय भाषाओं के माध्यम से मान्यता मिली।

1990 में डॉ. मुनीश्वर व अन्यों के द्वारा किए गए संघर्ष से केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड की 'अखिल भारतीय पूर्व आयुर्विज्ञान/दन्त चिकित्सा पाठ्यक्रम प्रवेश परीक्षा' में हिन्दी माध्यम से मान्यता मिली।

1991 में हरीश मेहरा के संघर्ष से दिल्ली विश्वविद्यालय में विधि-स्नातक (एलएल. बी.) की परीक्षाओं में हिन्दी माध्यम को मान्यता मिली।

1992 में ओमूप्रकाश के संघर्ष से अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान नई दिल्ली के एम. बी. बी. एस. पाठ्यक्रम की प्रवेश परीक्षा में हिन्दी माध्यम को मान्यता मिली।

महामना मालवीय राजर्षि टंडन, आ. श्यामसुन्दरदास, सेठ गोविन्ददास जैसे महान् तथा श्रीनारायण चतुर्वेदी जैसे स्मरणीय हिन्दीवीरों के इन सुयोग्य वंशजों को शत-शत नमन!

सेठ गोविन्ददास[1]

'हर्ष' (1935 ई.), 'शशिगुप्त' (1942 ई.), 'अशोक', 'शेरशाह' इत्यादि ऐतिहासिक, 'कर्त्तव्य' (1936 ई.), 'कर्ण' (1946 ई.) इत्यादि पौराणिक, 'विश्वप्रेम' (1917 ई.), 'प्रकाश' (1935 ई.), 'पाकिस्तान' (1946 ई.), इत्यादि सामाजिक-राजनैतिक नाटकों एवं 'सप्तरश्मि' (1940 ई.), 'एकादशी' (1942 ई.), 'चतुष्पथ' इत्यादि एकांकी-संग्रहों के स्फीत प्रणेता स्व. सेठ गोविन्ददास (1896 ई.) ने

---

[1] एक मेरठ के गोविन्ददास थे जिन्होंने 1693 ई. में 'छन्दशास्त्र' रचा, दूसरे खंगार (छतरपुर) के गोविन्ददास 'दास' (जन्म 1877 ई.) थे जिन्होंने 'पेट-चपेट' एवं 'खंगार-जाति का इतिहास' इत्यादि ग्रन्थ रचे, तीसरे गोविन्ददास व्यास तालबेहट झाँसी के (जन्म 1900 ई.) थे जिन्होंने 'शिव-शिवा-स्तवन' एवं 'सीता-निर्वासन' इत्यादि काव्य रचे। चौथे यह जबलपुर के सेठ गोविन्ददास हैं, अष्टछाप के गोविन्दस्वामी से हास्यकवि डॉ. गोविन्द व्यास तक अन्य निकट नाम तो अनेक हैं ही!

नाटक एवं एकांकी विधाओं में अनेक प्रयोग किए हैं। द्विखंडीय 'कर्त्तव्य' में राम एवं कृष्ण की विकास-गाथा की प्रस्तुति के ''कौशल'' की प्रशंसा आ. शुक्ल तक ने की है (जिनकी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में नौकरी लगने का उन्होंने विरोध किया था)। सरदार के. एम. पन्निक्कर ने सेठ गोविन्ददास की शताधिक-नाटकरचना से अभिभूत होकर उनकी तुलना शेक्सपीअर तक से कर डाली थी। सेठ पाट के नाट्यकार हैं, गहराई के कलाकार नहीं। वे वास्तविक अथवा तथाकथित महापुरुषों के पके-पकाए जीवनवृत्त लेकर उन्हें नाटक-रूप दे देने में कुशल अवश्य हैं। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक स्फीत नाट्यकार एवं एक स्फीत एकांकीकार के रूपों में उनको एक स्थान अवश्य प्राप्त है। नगेन्द्र सम्पादित 'सेठ गोविन्ददास अभिनन्दन ग्रन्थ' एवं रामचरण महेन्द्र लिखित 'सेठ गोविन्ददासः नाट्यकला तथा कृतियाँ' उनसे सम्बद्ध विशिष्ट ग्रन्थ हैं। उन्होंने उच्चस्तरीय यात्रावृत्त भी रचे हैं। काव्य एवं उपन्यास के फेर में वे नाहक ही पड़े। 1922 ई. से जीवन-पर्यन्त लगातार सांसद रहने का उनका कीर्तिमान अप्रतिम है। उन्हें 'भारतीय संसद का जनक' कहा जाता था तथा अध्यक्ष के ठीक सामने प्रथम पंक्तिगत आसन प्राप्त था—वे महा-निर्वाचनोपरान्त शपथ-ग्रहण भी कराते थे। राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन के अनन्तर, वे हिन्दी के अन्यतम नेता भी थे जिसके कारण वे मन्त्री नहीं बनाए गए क्योंकि नेहरू हिन्दी-विद्वेषी थे। वे संसद में सचेतक की अवेहलना कर हिन्दी-हितकारी मतदान करते थे। सेठ गोविन्ददास हिन्दी के एक महान् योद्धा के रूप में भी अमर रहेंगे!

धीरेन्द्र वर्मा

'हिन्दी भाषा का इतिहास' (जिसकी भूमिका क़ा पृथक् प्रकाशन 'हिन्दी भाषा और लिपि' के रूप में भी हुआ) शीर्षक चिरस्मरणीय ग्रन्थ के सुयोग्य प्रस्तोता, 'व्रजभाषा' (शोधप्रबन्ध) एवं 'व्रजभाषा-व्याकरण' के अध्यवसायी विद्वान् डॉ. धीरेन्द्र वर्मा (1897-1973 ई., जन्म बरेली, निधन प्रयाग) 1924 ई. में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी के प्रथम प्राध्यापक तथा कालान्तर में आचार्य एवं अध्यक्ष, जबलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति प्रभृति अनेक उच्च पदों पर प्रतिष्ठित रहे। भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा, कामिल बुल्के जैसे साहित्येतिहास के रत्नों को इनके आरम्भिक कालों में उन्होंने सम्यक् मार्गदर्शन से लाभान्वित किया। वे एक आदर्श गुरु थे जिनमें शिष्यों की प्रतिभा पहचानते तथा दिशा-निर्देशन करने की तलस्पर्शी क्षमता विद्यमान थी। उन्होंने हिन्दी-शोध की नानाआयामी सेवाएँ की। 'हिन्दी साहित्य कोश' (2 भाग) के प्रधान सम्पादक के रूप में भी वे स्मरणीय रहेंगे। 'विचारधारा' में उनका नितान्त-प्रासंगिक आलोचक-रूप विवृत हुआ है। वैसे, वे आलोचक न थे, भाषावैज्ञानिक एवं सम्पादक मात्र थे। भाषावैज्ञानिक सेवा के सन्दर्भ में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की श्यामसुन्दरदास से तुलना की जा सकती है।

मिश्रबन्धु[1] ने अमर 'विनोद' में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा की प्रशंसा की है; साथ ही, लिखा है, ''आपका 'हिन्दी भाषा का इतिहास' अच्छा ग्रन्थ है, परन्तु उसमें कुछ बातें छूट-सी गई हैं।'' इस ग्रन्थ में सर जॉर्ज ग्रीअर्सन, महामहोपाध्याय डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, आ. श्यामसुन्दरदास, पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध, आ. शुक्ल[2] इत्यादि के 'प्रस्थान'-लिपि-भाषा-कार्यों का समाहार प्राप्त होता है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' (दो भाग)[3] अनेक त्रुटियों एवं अव्यवस्थाओं (त्रुटियाँ सामान्यतः 'विनोद' एवं विशेषतः 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' की अन्धानुकृतिजन्य तथा अव्यवस्थाएँ साहित्यकारों के अतिरिक्त नेताओं, ग्रन्थों, पुराण-चरित्रों, प्रसिद्ध ग्रन्थ पात्रों; अन्यभाषी-साहित्यकारों प्रभृति के अनमेल खिचड़ीपन के कारण) के बावजूद एक अत्यन्त उपयोगी ग्रन्थ है, जिसका असफल अनुकरण सारी त्रुटियों एवं अव्यवस्थाओं की अतिवृद्धि के साथ डॉ. नगेन्द्र सम्पादित 'भारतीय साहित्य कोश' में भी दृग्गत होता है। 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) में डॉ. धीरेन्द्र वर्मा को डॉ. व्रजेश्वर वर्मा, डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी एवं डॉ. रघुवंश जैसे परिश्रमी विद्वानों का सम्पादन-सहयोग तथा इन टिप्पणी-प्रस्तोताओं का लेखन-सहयोग प्राप्त हुआः अर्जुनराम, आनन्दप्रकाश दीक्षित, उमाकान्त गोयल, उमाशंकर शुक्ल[4], ओमप्रकाश, सक्सेना, किशोरीलाल गुप्त, कुँवरनारायण, केशनीप्रसाद चौरसिया, कृपाशंकर पांडेय,

---

1. आ. शुक्ल डॉ. धीरेन्द्र वर्मा का 'कम्पलीट ब्लैक-ऑउट' विचित्र ही है।
2. 'बुद्धिचरित' (अनुवाद) एवं 'जायसी-ग्रन्थावली' की भूमिकाओं में व्रजभाषा एवं अवधी विभाषाओं पर प्रशस्य प्रकाश डाला गया है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने व्रज एवं डॉ. बाबूराम सक्सेना ने अवधी ('अवधी का विकास' एवं 'इवोल्यूशन ऑफ़ अवधी') पर अविस्मरणीय ग्रन्थरचना करके आचार्य की साधना को गतिशील किया है। डॉ. उदयनारायण तिवारी का शोधप्रबन्ध 'भोजपुरी भाषा का उद्गम और विकास' इस दिशा का एक अन्य मानक ग्रन्थ है। (वैसे, भोजपुरी 'विभाषा' ठीक रहता)।
3. 'भाग 1' पारिभाषिक है।
4. 'शुल्क' ग़लत छपा है। सारा ग्रन्थ मुद्रण-त्रुटियों से आपूर्ण है। डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'उमेश' (कवि एवं ग्रन्थ-सम्पादक) से भिन्न।

कृष्णदेव उपाध्याय, गंगाप्रसाद पांडेय, गोपीनाथ तिवारी, जनार्दन उपाध्याय, जगदीश गुप्त, जगदीशप्रसाद श्रीवास्तव, जयराम मिश्र, ज्ञानवती दरबार, टीकमसिंह तोमर, त्रिलोकीनारायण दीक्षित, देवनारायण द्विवेदी, देवीशंकर अवस्थी, नगेन्द्र, नवलकिशोर राय, नलिनविलोचन शर्मा, नित्यानन्द तिवारी, परशुराम चतुर्वेदी, प्रतापनारायण टंडन, प्रेमनारायण टंडन, प्रेमशंकर, बदरीनारायण श्रीवास्तव, बच्चनसिंह, बालकृष्ण राव, भगवतीप्रसाद सिंह, भगीरथ मिश्र, भोलानाथ तिवारी, माताप्रसाद गुप्त, माताबदल जायसवाल, मोहन अवस्थी, योगेन्द्रप्रताप सिंह, रमेशचन्द्र शाह, रवीन्द्र 'भ्रमर', राजेन्द्रकुमार वर्मा, रामकुमार वर्मा, राकेश गुप्त, रामचन्द्र तिवारी, रामचन्द्र वर्मा, रामसिंह तोमर, रामफेर त्रिपाठी, रामपूजन तिवारी, रामरतन भटनागर, लक्ष्मीकान्त वर्मा, लक्ष्मणसिंह विष्ट 'बटरोही', लक्ष्मीनारायण लाल, लक्ष्मीशंकर व्यास, लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, विष्णुकान्त शास्त्री, विश्वनाथ प्रसाद, विश्वनाथ मिश्र, विनयमोहन शर्मा, विजयेन्द्र स्नातक, व्रजेश्वर वर्मा, शंभुनाथ सिंह, शिवप्रसाद सिंह, शिवशेखर मिश्र, श्याम परमार, श्रीकृष्ण पन्त, श्रीराम वर्मा, श्रीशंकर शुक्ल, श्रीपालसिंह 'क्षेम', सत्यनारायण त्रिपाठी, सत्यप्रकाश मिश्र, सत्यव्रत सिन्हा, सरला शुक्ल, सुरेशकुमार, हरदेव बाहरी, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, हरिमोहन श्रीवास्तव। सम्पादक-चतुष्टय एवं उन्यासी टिप्पणीकारों के परिश्रम से निष्पन्न 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) का सामग्री-संकलन अतीव उपयोगी है, किन्तु अनुक्रमणिका का अभाव खटकता है। आ. क्षेमचन्द्र 'सुमन' द्वारा अकेलेदम सम्पादित 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' (जिसके दो खंड प्रकाशित एवं प्रशंसित हो चुके हैं) में 'विनोद', 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास', 'हिन्दी साहित्य कोश' एवं 'भारतीय साहित्य कोश' की अनेक त्रुटियों का परिहार किया गया है, किन्तु यह स्फीत कोश एक तो 1800 ई. से आरम्भ होता है, दूसरे सभी हिन्दीसेवियों को समाहित करता है, तीसरे अत्यधिक परिचय प्रधान है। किन्तु सन्दर्भ-ग्रन्थों के रूपों में इनकी उपादेयता एक स्वयंसिद्ध तथ्य है। वैदिक, पौराणिक, ऋषि, देव, दानव, नायक, नायिका, इत्यादि नाना प्रख्यात ग्रन्थों के नाना पात्रों, अन्य भारतीय भाषाओं के कतिपय साहित्यकारों इत्यादि के विचित्र मिश्रण के कारण 'हिन्दी साहित्य कोश' (भाग 2) विशृंखल हो गया है इसमें जिन हिन्दी-सेवकों एवं साहित्यकारों का विवरण प्राप्त होता है वह कहीं पर्याप्त है, कहीं पर्याप्तप्राय, कहीं अपर्याप्त, कहीं हास्यास्पद, कहीं निराशाजनक। इसमें किसी व्यवस्थित नियोजन का अभाव खटकता है।

'उग्र'[1] : यथार्थवादीयुग के एक अग्रदूत

'चाकलेट'[2], 'दिल्ली का दलाल', 'सरकार तुम्हारी आँखों में', 'चन्द हसीनों के ख़तूत', 'बुधुवा की बेटी' जैसे उग्र यौनोत्तेजक (आ. शुक्ल के शब्दों में "समाज के पाखण्डपूर्ण कुत्सित पक्षों का उद्‌घाटन और चित्रण करने वाले") उपन्यासों, 'भुनगा' (आ. शुक्ल के शब्दों में "किसी तथ्य का प्रतीक खड़ा करने वाली"), 'उनकी माँ[3] (आ. शुक्ल के शब्दों में "स्वदेशप्रेम, त्याग, साहस और जीवनोत्सर्ग का चित्र खड़ा करने वाली"), 'देशभक्त', 'जल्लाद' जैसी सशक्त एवं महान् कहानियों, 'चुम्बन,' 'चार बेचारे' (सम्पादक, अध्यापक, सुधारक, प्रचारक) जैसे नाटकों, 'अपनी ख़बर' जैसी स्पष्टोक्तिपूर्ण आत्मकथा, 'बुढ़ापा'[4] जैसे अद्वितीय निबन्धों के द्वारा अपनी चिरस्मरणीय बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देने वाला पांडेय बेचनराम शर्मा 'उग्र' (जनवरी, 1900-67 ई.) का जन्म सूफ़ी-कवि मंझन एवं तिलस्मी-उपन्यासकार देवकीनन्दन खत्री के जीवनों से जुड़े रहस्यमय चुनार (प्राचीन 'चरणाद्रि', मध्यकालीन 'चरनाद्री'—मीरजा जनपद में स्थित) में हुआ। वैसे, उग्र ने 'महात्मा ईसा' (नाटक) पर भी हाथ आज़माया पर यह अखाड़ा उनके मान का न था अतः विफल रहे। उग्र को ईसा से क्या लेना-देना? मिश्रबन्धु ने लिखा है, "उग्रजी अपने नाम को अपनी रचनाओं द्वारा सार्थक करते हैं। आपकी भाषा बहुत सबल और ओजपूर्ण है। आप यथार्थता पर अधिक ध्यान रखते हैं, जिससे इनकी रचना में अश्लीलता आ जाती है।...यदि अश्लीलता को बचा पाते, तो आप हमारे परमोत्कृष्ट गद्यलेखकों में होते। रास्ता भूले हुए समाज को आपके द्वारा नया मार्गबोध होता है।...रूढ़िवादी तथा सामन्तशाही हिन्दू-समाज की आपने अपनी कहानियों द्वारा खूब धज्जियाँ उड़ाई हैं। सच्चे लेखक हैं।" लक्ष्मीकान्त वर्मा ने उग्र को ठीक ही "क्रान्तिकारी कहानी का जन्मदाता" माना है। डॉ. रत्नाकर पांडेय ने उग्र पर शोधप्रबन्ध लिखा है। उग्र एक जुझारू कलाकार थेः तन से भी उग्र, मन से भी उग्र, जीवन से भी उग्र। 'स्वदेश' (गोरखपुर) के सम्पादक के रूप में

---

[1] कानपुर के समसामयिक पांडेय हीरालाल शर्मा 'व्यग्र' प्रेरित थे। 'व्यग्र' ने चॉकलेटी 'घिरचा' उपन्यास लिखा था।

[2] 'चाकलेट' पढ़कर गाँधी ने कहा था, "कटु चाहे जितना हो, सत्य तो है ही।" (अपनी ख़बर)

[3] विश्व-स्तर पर मैक्सिम गोर्की का 'माँ' (मदर) उपन्यास याद आता है। प्रभाव सम्भव है।

[4] प्रतापनारायण मिश्र ने भी 'बुढ़ापा' निबन्ध लिखा है। दोनों निबन्ध उच्चकोटि के हैं।

विजयादशयी 7 अक्टूबर, 1923 अंक के कारण जेल गए, स्वातन्त्र्य-सेनानी के रूप में कई बार जेल गए। उद्धत-उद्दंड व्यक्ति के रूप में जीवन भर इधर से उधर भटकते रहे, कभी प्रसाद से भिड़े तो कभी निराला से, किन्तु उनके जुझारूपन पर कभी कोई कमी नहीं आई। मरते दम तक वे भयावह रूप से उद्दंड एवं उच्छृंखल ही रहे। यौवन में यौन-रोग भी हुआ था। गुंडई में उग्र की समता कोई साहित्यकार न कर सका ।[1] साहित्य में 'जनवादी' अश्लीलता एवं अपशब्दों के समावेश में वे यशपाल इत्यादि के प्रेरक तथा कमलेश्वर इत्यादि के जनक थे।

उग्र का उपन्यासकार-रूप ठीकठाक, नाट्यकार-रूप साधारण तथा निबन्धकार-रूप नाममात्र का है, किन्तु आत्मकथा-रूप स्मरणीय तथा कहानी-रूप महान् है। अपनी थोड़ी-सी कहानियों के बल पर ही वे हिन्दी के प्रथम श्रेणी के कहानीकारों में स्थान प्राप्त करने का अधिकार रखते हैं। डॉ. पवनकुमार को 'उसकी माँ' से अधिक ऊँची हिन्दी-कहानी नहीं मिली। मेरी समझ में, 'उसकी माँ' का तेजोज्ज्वल एवं मार्मिक बल बलिदान गुलेरी की 'उसने कहा था' की तुलना में अधिक विशद भी है, अधिक सार्थक भी। मुझे 'जल्लाद' कहानी में चित्रित वज्रकठोर-वात्सल्य प्रसाद के 'मधुआ' से बलवत्तर भी लगा, प्रभवत्तर भी (यद्यपि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से दोनों समान रूप से महान् कहानियाँ हैं)। उग्र केवल कहानीकार के रूप में गुलेरी से कमलेश्वर तक अनेक उत्कृष्ट कहानीकारों से भी निस्सन्देह श्रेष्ठतर हैं। प्रेमचन्द और प्रसाद जैसे महान् कहानीकारों एवं कौशिक और जैनेन्द्र जैसे स्फीत कहानीकारों के अनन्तर कोई कहानीकार (सुदर्शन, यशपाल, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, निर्मल वर्मा इत्यादि समेत) उग्र से आगे जाता नहीं दीखता। उनका कठोर यथार्थ 'वाद' के वन्धन से मुक्त है; सच्चा है। उनकी फड़कती भाषा हो या गम्भीर भाषा—दोनों अपनी मिसाल आप हैं। उनका तेजस्वितापूर्ण चरित्र का चित्रण हो या सहज चरित्र का चित्रण—दोनों नितान्त मौलिक हैं। वे जन्मजात कलाकार थे। (जिन्हें अब तक समुचित न्याय नहीं मिल सका—चुनार में स्मारक बनना चाहिए।)

नबीबख़्श 'फलक'

रहीम और रसखान की परम्परा देशद्रोही नेताओं के घृणास्पद-सांप्रदायिक एवं निंद्यतम-जातिवाद के चुनावी हथकंडों के बावजूद गतिशील रही है—अब्दुल रशीद खाँ (आधुनिक रसखान), उर्दू-रामायण के अनुवादक डॉ. अब्दुल कलाम बदरुद्दीन 'बदर', डॉ. यासमीन सुल्ताना नक़वी, डॉ. निजामुद्दीन, डॉ. सैयद महफ़ूज़ हसन रिज़वी 'पुंडरीक', बशीर अहमद 'मयूख', मिर्ज़ा हसन नासिर (आधुनिक रहीम), दीनमोहम्मद 'दीन', डॉ. रफ़ीक़ अहमद 'रससिन्धु', मजीद अहमद, अज़ीज़ हसन सिद्दीकी 'सुदामा', इफ़्तिख़ार अहमद ख़ाँ, 'राना', जैसे नाम इस कथन के अकाट्य प्रमाण हैं। राष्ट्र एवं राष्ट्रभाषा के इतिहासों की विविध दृष्टियों से रफी अहमद किदवई, मोहम्मद अली करीम छागला (चागला), न्यायमूर्ति हिदायतुल्ला, मुख़्तार अब्बास नक़वी, सिकन्दर बख़्त, आरिफ़ बेग़, इस्मत चुग़ताई, सफ़दर हाशमी इत्यादि के नाम भी याद आते हैं। आधुनिक रामकाव्यकारों में नबीबख़्श 'फलक' (कविताकाल 1925-55 ई., निवास दतिया, म. प्र.) भी स्मरणीय हैं जिनके प्रशंसकों में माखनलाल चतुर्वेदी, जयचन्द्र विद्यालंकार जैसे प्रख्यात कवि, लेखक, इतिहासकार सम्मिलित हैं।[2] 'फलक' ने रामकथा के स्वरुचिप्रभावी बिन्दुओं पर अच्छी काव्यरचना की है। रामवनगमन का विश्व-साहित्य में अतुलनीय प्रकरण उन्हें विशेष प्रिय है। समस्यापूर्ति भी करते थे। सरस्वती, गणेश, शिव, हनुमान, तुलसी, मानस इत्यादि की स्तुति में सुन्दर छन्द रचे हैं। भक्तिकाव्य की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। भाषा व्रज है, प्रमुख छन्द कवित्त-सवैया। अलंकरण में रुचि है। उद्धरण देखें :

1. आरत के बंधु हैं सम्हारत अधीननि कौं, निज शरणागत पै दया दरशात हैं।
बैरी, प्रिय, दोषी, धनहीन कौं न भेद रखैं, परम दयाल जगजाहिर दिखात हैं।।
'फलक' विभीषण कौं, निषाद से अनेकनि कौं नेक न अभीष्ट पद देत सकुचात हैं।
रामजू! तिहारे ऐसे चरन-सरोज भजि नभ में न तारे जेते तेते तरि जात हैं।।[3]

---

1. अंग्रेज़ी के एक महान् नाट्यकार क्रिस्टोफर मॉर्लो नामी गुंडे थे जिनकी हत्या की गई थी, रूसी के श्रेष्ठ कवि पुश्किन और लेरमेन्टोव रसिकता के द्वन्द्वों में मारे गए, हिन्दी के साहियेतर-उपन्यास के एक स्तम्भ (गुलशन नन्दा इत्यादि के तात्विक जनक) कुशवाहा कान्त भी रसिकता के कारण ही मारे गए।
2. द्रष्टव्य है, 'रामकथा और मुस्लिम साहित्यकार' ग्रन्थ।
3. पद्माकर का प्रभाव।

2. कटि जात कोटिन अकट औ अकाट वृक्ष, टरि जात लक्ष तो कुलक्ष लक्ष लटि जात।
छटि जात तरल चिताय के समस्त ताप, पाप छोड़-छोड़ के समुख मोड़ हटि जात।।
सटि जात सर्वदा सकाम कामना के काम, फलक सुकवि धाम आनँद सौं पटि जात।
छूट जात आस भव मोद रासि अटि जात, रसना रसीली जो पै सीताराम रटि जात।।

डॉ. रघुवीर

प्रथम श्रेणी के विश्व-स्तरीय विद्वान्, भाषाविद् एवं संस्कृतिवेत्ता डॉ. रघुवीर (1902-63 ई., जन्मस्थान रावलपिण्डी जो विभाजन के कारण पाकिस्तान में चली गई, कार दुर्घटनाजन्य निधनस्थान कानपुर देहात जनपद में महाराजपुर के पास) 'बृहत् पारिभाषिक अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश' के कारण हिन्दी-साहित्येतिहास में अमर हैं। बृहत्तर-भारत[1] के सन्दर्भ में उनके अनुसन्धान एवं अंग्रेज़ी-ग्रन्थ मानवता के धन हैं। नई दिल्ली के हौज ख़ास क्षेत्र में स्थित उनका भारतीय संस्कृति का अन्तर्राष्ट्रीय संस्थान एक गौरवशाली संस्था है। वे भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष एवं इससे पूर्व कांग्रेसी-सांसद के रूप में स्मरणीय हैं। नई दिल्ली का रघुवीर नगर उनसे संपृक्त है। कानुपर के निधन क्षेत्र में रघुवीर और उनके नाम पर विद्यालय हैं। किन्तु यह सब बहुत कम है। नेहरू से मतभेद के कारण महान् हिन्दीसेवी डॉ. रघुवीर कांग्रेस से हटकर त्याग का परिचय दिया था। वे सांस्कृतनिष्ठ हिन्दी के अनन्य प्रतिपादक थे इस बिन्दु पर आचार्य रघुवीर झुकने वाले न थे। मुझे गर्व है कि मैंने इस महान् विद्वान् और हिन्दी-प्रेमी के साथ कई बार राष्ट्रभाषा के समर्थन में भाषण दिए थे, जिन्हें उन्होंने बहुत पसन्द किया था। पंजाबियों ने हिन्दी की महान् सेवाएँ की हैः गुरुग्रन्थसाहब तत्त्वतः हिन्दी-ग्रन्थ है, तेग़बहादुर और गोविन्दसिंह विशुद्ध व्रजभाषा-कवि हैं, श्रद्धाराम फिल्लौरी और भीमसेन शर्मा अमर हिन्दीसेवी हैं, राजर्षि टंडन और डॉ. रघुवीर, आ. श्यामसुन्दरदास और सुदर्शन, यशपाल और अश्क़, अज्ञेय, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती इत्यादि की संख्या पर्याप्त अधिक है। इनमें डॉ. रघुवीर का एक बहुत ऊँचा स्थान सुरक्षित है।

आ. रघुवीर के पुत्र डॉ. लोकेशचन्द्र भी विद्वान् भाषाविद् एवं सांसद सिद्ध हुए जिन्होंने पिता द्वारा संस्थापित अन्तरर्राष्ट्रीय महत्त्व के संस्थान का समुचित संचालन किया। किन्तु उनमें पिता की 'मिशनरी ज़ील' का अभाव रहा। हिन्दी की रक्षा के लिए डॉ. लोकेशचन्द्र कुछ नहीं कर सके।

इलाचन्द्र जोशी

हिन्दी-उपन्यासकारों का प्रधान वर्ग सामाजिकता के विराट् आयामों को लेकर चला जिसमें प्रेमचन्द, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, यशपाल, अमृतलाल नागर इत्यादि प्रमुख हैं; दूसरा ऐतिहासिकता से संपृक्त होकर चला जिसमें वृन्दावनलाल वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' इत्यादि प्रमुख हैं; तीसरा मनोविज्ञान पर आधृत होकर चला जिसमें स्व. इलाचन्द्र जोशी (जन्म 1903 ई.)[2], जैनेन्द्र, अज्ञेय, डॉ. देवराज इत्यादि प्रमुख हैं। जोशी का जन्म अल्मोड़ा में हुआ। भाषाविद् डॉ. हेमचन्द्र जोशी इनके भाई थे। उत्तरांचल में पन्त जैसे महाकवि एवं गोविन्दबल्लभ पन्त (नेता गोविन्दबल्लभ पन्त से भिन्न) जैसा नाट्यकार भी उत्पन्न हुआ। यदि कोई विशुद्ध सामाजिक उपन्यासों के प्रणयन का समारंभ प्रेमचन्द से माने तो विशेष अत्युक्ति न होगी किन्तु व्यक्तिप्रधान उपन्यासों के प्रणयन का समारंभ इलाचन्द्र जोशी से हुआ, यह निर्विवाद है। जोशी को 'अ'-त्रयी (अन्तर्जीवन-अन्तर्दृष्टि-अन्तर्द्वन्द्व) से निष्पन्न उपन्यासों में 'संन्यासी', 'प्रेत की छाया', 'मुक्तिपथ', 'लज्जा' इत्यादि प्रमुख हैं। किन्तु उन्होंने इसके साथ-साथ सामाजिकता का समावेश करते हुए 'जहाज़ का पंछी' शीर्षक उत्कृष्ट उपन्यास भी लिखा है। उन्होंने कहानी पर भी हाथ आज़माया क्योंकि हिन्दी में अमृतलाल नागर, यज्ञदत्त शर्मा जैसे उपन्यासकार थोड़े ही हैं जिन्होंने कहानियों पर ध्यान नहीं दिया। 'धूपरेखा', 'आहुति', 'खंडहर की आत्माएँ' इत्यादि उनके प्रसिद्ध कहानीसंग्रह हैं। वे बांग्ला एवं उसके उपन्यासकार शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय से बहुत प्रभावित थे, जिन पर 'शरदःव्यक्ति और साहित्यकार' पुस्तक भी लिखी है (जिसने विष्णु प्रभाकर को शरद की 'आवारा मसीहा' शीर्षक प्रसिद्ध जीवनी लिखने की प्रेरणा दी); इस दिशा में उनकी 'रवीन्द्रनाथ' पुस्तक भी उल्लेख्य है। 'साहित्य-सर्जना',

---

[1] लंका, बर्मा (अब 'मियाँमार' या 'म्याँमाँ'), वियतनाम, लाओस, कम्बोडिया, मलेसिआ, इण्डोनेशिया, सिंगापुर इत्यादि तक प्रसरित सांस्कृतिक-भारत।

[2] कहीं-कहीं 1902 ई. लिखा मिलता है।

'साहित्य-चिन्तन', 'विश्लेषण' इत्यादि उनके अन्य आलोचना-ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए। उन्होंने बाल-साहित्य एवं अनुवाद की दिशाओं में भी थोड़ा-थोड़ा कार्य किया। किन्तु वस्तुतः वे एक श्रेष्ठ उपन्यासकार थे जिन्होंने मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास-रचना में 'प्रस्थान'-कार्य किया तथा उनके अनुवर्तियों में जैनेन्द्र एवं अज्ञेय जैसे श्रेष्ठ उपन्यासकार समाविष्ट हुए। हिन्दी साहित्य के इतिहास में इलाचन्द्र जोशी को एक निश्चित स्थान प्राप्त है। उनकी रुग्णावस्था में प्रधानमन्त्री स्वर्गता इन्दिरा गाँधी मिलने गई थीं।

इलाचन्द्र जोशी हिन्दी-उपन्यासकारों में सबसे बड़े विद्वान् कहे जा सकते हैं क्योंकि अज्ञेय का विश्व-साहित्य-ग्रहण गहन न था तथा अन्य कोई उपन्यासकार विद्वान् होने का दावा नहीं कर सकता। जोशी के पाश्चात्य साहित्य के गहन अनुशीलन का द्योतक उनका 'जीवन का महान् विश्लेषक विराटवादी कवि गेटे' स्मरणीय है। वे फ़्रायड के पंडित थे।

जोशी एक सफल सम्पादक थे, जिसका सर्वोपरि निदर्शन 'संगम' (प्रयाग) था। वे कुछ समय तक 'धर्मयुग' के सम्पादक भी रहे। 'संगम' का प्रत्येक अंक स्मरणीय एवं उत्कृष्ट होता था तथा उसका 'निराला-विशेषांक' तो मनोहारी ही था।

इलाचन्द्र जोशी की ख्याति एक प्रमुख उपन्यासकार के रूप में ही है। किन्तु वे कुशल कवि भी थे।

यशपाल

हिन्दी के अग्रणी उपन्यासकारों एवं कहानीकारों में यशपाल (1903-76 ई., मूलस्थान काँगड़ा, जन्मस्थान फ़िरोजपुर, निवास एवं निधन स्थान लखनऊ) को एक उच्चस्थान प्राप्त है। अपने विशिष्टता में प्रेमचन्द के बाद किसी से कम नहीं। हिन्दी के साम्यवादी कथाकारों में यशपाल अग्रणी हैं, क्योंकि गुण और परिमाण की किसी भी दृष्टि से राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन, रांगेय राघव, मोहन 'राकेश', राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, मन्नू भंडारी, भीष्म साहनी, कृष्ण सोबती, रामदरश मिश्र, कमलेश्वर इत्यादि उनके निकट नहीं पहुँच पाते। उनकी भाषा रूखी-सूखी है। यद्यपि उनके 'दादा कामरेड', 'पार्टी कामरेड' इत्यादि उपन्यास वर्ग संघर्षवादी कृतियों के रूप में उल्लेखनीय हैं तथा उन्होंने 'दिव्या' और 'अमिता' शीर्षक ऐतिहासिक लगने वाले उपन्यास भी लिखे हैं, उनके जीवनायाम संकीर्ण नहीं तथापि उनकी ख्याति का आधार भारत के विभाजन का स्फीत महाकाव्योपन्यास 'झूठा-सच' है, जो हिन्दू-निन्दा एवं मुस्लिम-प्रशस्ति मात्र को धर्मनिरपेक्षता मानने की तरंग (यह अनैतिकहासिक साम्यवाद-रूढ़ि अन्य साम्यवादी उपन्यासकारों में भी दृग्गत होती है—भीष्म साहनी के 'तमस्' पर भारी बावेला 1988 ई. का एक बड़ा कांड भी बन गया था), अश्लीलता के प्रति जन्मजात मोह, जटिल उत्तर प्रदेश-आलोचना (लखनऊ में बसने पर भी), संकीर्ण मनोवृत्ति इत्यादि के कारण 'महान्' बनते-बनते रह गए। अश्लीलता, अपशब्द एवं अस्वच्छता उनके अपने प्रगतिवाद के त्रिकोण हैं। यदि 'ज्ञानदान' जैसी कहानियों में वे यंग दिखते हैं, तो 'परदा' जैसी कहानियों में मार्मिक सोद्देश्यता से सम्पन्न, 'मूर्ख क्रोध' जैसी कहानियों में उपयोगी मनोविज्ञान से संपृक्त। आत्मकथात्मक 'लोहे की दीवार के दोनों ओर' में वे रूसवादी होने के कारण नितान्त एकपक्षीय लगते हैं, 'सिंहावलोकन' में अपनी प्रवृत्ति को मनोविज्ञान की आड़ में छिपाने के कारण नितान्त अप्रात्ययिक, किन्तु 'गाँधीवाद की शव-परीक्षा' में एक साहसनिष्पन्न विवेचक। वे न श्रद्धेय हैं; न हेय; बस एक प्रभावी कथाकार हैं।

लक्ष्मीनारायण मिश्र

'सिन्दूर की होली', 'राक्षस का मन्दिर', 'मुक्ति का रहस्य', 'संन्यासी' एवं 'राजयोग' जैसी उत्कृष्ट कृतियों में हिन्दी-समस्यानाटक के जन्मदाता, 'दशाश्वमेध', 'नारद की वाणी', 'वत्सराज', 'अशोक', 'गरुड़ध्वज', 'जगद्गुरु' जैसी महत्त्वपूर्ण कृतियों में प्रसाद के अनन्तर सर्वोपरि ऐतिहासिक नाट्यकार, 'प्रलय के पंख पर', 'अशोक वन', 'भगवान् मनु तथा अन्य एकांकी' जैसी अप्रतिम सांस्कृतिक कृतियों में (जैसाकि प्रसिद्ध नाट्यकार एवं एकांकीकार उपेन्द्रनाथ 'अश्क़' ने साधिकार रूप से कहा है) आधुनिक एकांकी के एक जन्मदाता तथा 'अन्तर्जगत्' (संग्रह) के कवि[1] लक्ष्मीनारायण मिश्र (1903-87 ई., बस्ती ग्राम, जनपद आज़मगढ़, निवास प्रयाग, निधन काशी) भारतेन्दु एवं प्रसाद के साथ-साथ हिन्दी के अन्यतम नाट्यकार हैं—भारतेन्दु, प्रसाद एवं लक्ष्मीनारायण मिश्र में हिन्दी-नाटक की बृहत्त्रयी के दर्शन न होते हैं। गुण एवं परिमाण, सांस्कृतिकता एवं ऐतिहासिकता, आदर्श एवं यथार्थ का जैसा विलक्षण समन्वय मिश्र के नाटकों में प्राप्त होता है वैसा किसी नाट्यकार ने नाटकों में नहीं। भारतेन्दु की अप्रतिहत देशभक्ति एवं प्रसाद की गहन सांस्कृतिकता के सशक्त उत्तराधिकारी केवलमात्र मिश्र ही हैं। सुयोग्य नाट्यकार (संयोगात् समोपनामी भी)

---

[1] 'सेनापति कर्ण' महाकाव्य भी रचा है (जो पूर्ण नहीं हो पाया?)।

स्व. डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल के शब्दों में ''हिन्दी में समस्या-नाटकों के आप निश्चय ही प्रथम अधिष्ठाता हैं।....नाट्यकार मिश्रजी की शक्ति इनकी मौलिक विचारधारा है, वह चाहे ऐतिहासिक स्तर पर हो, चाहे पौराणिक अथवा सामाजिक स्तर पर। साथ ही चरित्रप्रतिष्ठा और उसके भीतर से 'ब्राह्मणत्व' का अनुपम आलोक और भारतीय संस्कृति का उदार स्वर्णिम चित्र इनके नाट्य साहित्य की सबसे बड़ी देन है।'' बहुत पहले आ. शुक्ल ने लिखा था, ''पात्रों के भाषण भी न अब बहुत लम्बे होते हैं न लम्बे वाक्यवाले। ये बातें सेठ गोविन्ददास जी तथा पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र के नाटकों में पाई जाएँगी।....पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अपने नाटकों के द्वारा स्त्रियों की स्थिति आदि कुछ सामाजिक प्रश्न या 'समस्याएँ' तो सामने रखी हो हैं, योरप[1] में प्रवर्तित 'यथातथ्यवाद' का वह खरा रूप भी दिखाने का प्रयत्न किया है जिसमें झूठी भावुकता और मार्मिकता से पीछा छुड़ाकर नर-प्रकृति अपने वास्तविक रूप में सामने लाई जाती है। ....नाटक का जो नया स्वरूप लक्ष्मीनारायण जी योरप[2] से लाए हैं उसमें काव्यत्व का अवयव भरसक नहीं आने पाया है। उनके नाटकों में न चित्रमय और भावुकता से लदे भाषण हैं, न गीत या कविताएँ। खरी-खरी बात करने का जोश कहीं-कहीं अवश्य है। इस प्रणाली पर उन्होंने कई नाटक लिखे हैं, जैसे, 'मुक्ति का रहस्य', 'सिन्दूर की होली', 'राक्षस का मन्दिर', 'आधी रात'।'' मिश्र के नाटकों के गद्य में कवित्व एवं भावुकता की अल्पता नहीं है। शुक्ल ने लिखा है कि मिश्र नाटक 'योरप' से लाए हैं—तो क्या शुक्ल आलोचना 'योरप' से नहीं लाए थे? प्रश्न लाने का नहीं, भारतीयता का है, अस्मिता का है, और उसमें मिश्र भी अद्वितीय हैं, शुक्ल भी। अतः पाश्चात्य नव्यता एवं भारतीय भव्यता को मार्मिक नारी-सम्वेदन से संपृक्त रूप में एकाकार करने वाला भारतेन्दु एवं प्रसाद के साथ-साथ हिन्दी का यह अन्यतम नाट्यकार भयावह रूप से अन्यायग्रस्त रहा।

मिश्र के सर्वथा उल्लेख्य देशभक्त एवं रहस्यवादी कवि-रूप की तो एकान्त उपेक्षा ही हुई है, जिसके दो उद्धरण प्रस्तुत हैंः

1. सुरसरि के आँगन में मेरे आँगन के उन वीरों की
अंकित-सी है कीर्तिकथा जिनके दिग्विजयी तीरों की—
काँप उठा था विश्व याद कर : वैभव के जल से सींचे,
कितने राजमुकुट लोटे थे मेरे चरणों के नीचे।
किन्तु आज वह सब सपना, वे बीत गई सुंदर घड़ियाँ,
तुम सोते ही रहे, लुट गईं मेरी मणियों की लड़ियाँ,
पर अब भी हैं शेष चिह्न उस बीते गौरव के दिन के;
जाग पड़ो, तोड़ो ये कड़ियाँ जैसे हों सूखे तिनके![3]
देखो, कितने हाथ बढ़ाता दिनमणि तुम्हें जगाने को,
फूँको राख, विश्व डगमग हो, मैं चल पड़ूँ सजाने को!
कब तक अलख जगाऊँ मैं बैठे-बैठे यों मन मारे?
मेरे चन्द्रगुप्त! अब जागो—यह देखो, वैरी हारे!

2. विचलित हो मन तनिक जहाँ मम मानव-करुणा मग से—
ऊपर से आकाश विलग हो निकले वसुधा पग से
मानस-वृत्ति-निचय निर्मम, मन से जब निकले गाने—
हों बहिरंग प्रकृति में बिखरी अंतर्जग की तानें।

रामसिंहासन सहाय 'मधुर'

लोकनायक जयप्रकाश नारायण एवं भारत के एक पहले अवसरवादी प्रधानमन्त्री चन्द्रशेखर, प्रखर स्वातन्त्र्य सेनानी चित्तू पाँडे, आचार्य-द्वय हज़ारीप्रसाद द्विवेदी एवं परशुराम चतुर्वेदी, स्व. आ. कुलदीपनारायण राय 'भड़प[4] की बलमयी भूमि बलिया जनपद के कवि

---

[1] यूरोप।

[2] शुक्ल ज़ी की आलोचना समेत साहित्य का बहुत-कुछ यूरोप से ही आया है। संविधान भी!

[3] दिनकर की 'हिमालय के प्रति' कविता पर प्रभाव।

[4] कुलदीपनारायण राय झड़प (6 अगस्त, 1911, लिलकर, जनपद बलिया) ने 'विभूति-सतसई' से 'गोस्वामी तुलसीदासः जीवनवृत्त एवं व्यक्तित्व' तक कई विधाओं में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। प्रकाश्य 'भोजपुरी कोश एवं 'भोजपुरी प्रदेश की संत-परम्परा' भी उल्लेख्य हैं।

एवं बालसाहित्यकार रामसिंहासन सहाय 'मधुर' (24 नवम्बर, 1903—8 जून, 1990, सागरपाली, जनपद बलिया) विश्वभरनाथ शर्मा 'कौशिक', वृन्दावनलाल वर्मा, कृष्णबिहारी मिश्र, परशुराम चतुर्वेदी, भगवतीचरण वर्मा, बालकृष्ण मिश्र, श्रीकृष्ण मिश्र, चक्रधर 'नलिन' इत्यादि के सदृश वकील थे। 'मधुरलहरी', 'मधुबिन्दु', 'बच्चों के गीत', 'बच्चों के मधुर गीत', 'सुबाहु-वध', 'पुष्पक-यात्रा' इत्यादि उनके ग्रन्थ सरल एवं प्रेरक हैं। वे मुख्यतः बालसाहित्यकार थे। 1985 ई. में विद्वान् बालसाहित्यकार डॉ. शोभनाथ लाल के सम्पादक में ''राष्ट्रभारती के गायक श्रीरामसिंहासन सहाय 'मधुर' ''ग्रन्थ उनकी साहित्यसेवा का अच्छा स्मारक है। उदाहरण देखें—

1. ऊपर अम्बर रोता है, नीचे धरती अकुलानी,
यह मुकुट बेच दो राजा, यह महल बेच दो रानी!
वह रामराज्य तुम भूल गए, सो गए डाल गलबहियाँ,
नाहक यौवन बीता है, झुलनी की छहियाँ छहियाँ।
यह धरती धँस जाएगी, है दो दिन की मेहमानी;
इतिहासों के पन्नों पर उड़ते हैं राजा-रानी
(मधुबिन्दुः राजाओं से)

2. हीरा चमके, मोती चमके, चमके चाँदी-सोना,
सबसे चम-चम, सबसे सुंदर, मेरा श्याम सलोना।
(बच्चों के मधुर गीतः पृष्ठ 12)

वासुदेवशरण अग्रवाल

'पाणिनिकालीन भारत' (इण्डिया ऐज़ नोन टु पाणिनि) जैसे मौलिक एवं विश्वस्तरीय शोधग्रन्थ के प्रणेता तथा 'मेघदूतः एक अध्ययन', 'हर्ष चरितः एक सांस्कृतिक अध्ययन' एवं 'कादम्बरी का सांस्कृतिक अध्ययन' शीर्षक उच्चस्तरीय ग्रन्थों के प्रस्तोता 'पदमावत' के चिरस्मरणीय टीकाकार, संस्कृत के एक चूड़ान्त विद्वान्, हिन्दी-अंग्रेज़ी के स्फीत ग्रन्थकार, अखिल भारतीय व्रज साहित्य मण्डल के प्रेरक, प्रख्यात पुरातत्त्वविद् (मथुरा संग्रहालय के वास्तविक विस्तारक, लखनऊ संग्रहालय के वास्तविक निर्माता, दिल्ली संग्रहालय के स्मरणीय विकासक) डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल (7 अगस्त, 1904—27 जुलाई[1] 1966, जन्म स्थान खेड़ा, जनपद ग़ाज़ियाबाद, निधनस्थान काशी) महामहोपाध्याय डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, डॉ. रघुवीर प्रभृति सर्वोच्च हिन्दी-सेवी विद्वानों की पंक्ति में प्रतिष्ठित हैं। विशद 'भारत-सावित्री' के कारण वे आधुनिक-व्यास कहे जा सकते हैं। ''वेदा मे परमं चक्षुः वेदा मे परमं बलम्'' के एक प्रतीक के रूप में 'वेद-विद्या' के प्रस्तोता ('वैदिक लेक्चर्स', 'स्पार्क्स फ़्राम द वेदिक फ़ायर', 'विजन इन लाँग डार्कनेस' प्रभृति के अंग्रेज़ी-ग्रन्थकार) के कारण वे वेदमूर्ति सातवलेकर, वेद-व्याख्याता अरविन्द एवं वेद-मनीषी डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' का स्मरण कराने वाले ऋषि माने जा सकते हैं—उनसे हुई एकमात्र भेंट पर महान् वेदविद् मधुसूदन ओझा ने कहा था, ''आपका जीवन तो वेदविद्या के लिए हुआ है।'' 'उपनिषद्-नवनीत', 'गीता-नवनीत', 'शिव-महादेव', 'पृथ्वीपुत्र' प्रभृति सांस्कृतिक-ग्रन्थ उन्हें भारतीय संस्कृति का एक शीर्षस्थ व्याख्याता सिद्ध करते हैं। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय संस्कृति के एक अद्वितीय प्रस्तोता, एक विद्वान् निबन्धकार तथा एक मूर्द्धन्य टीकाकार के रूप में अमर रहेंगे।

डॉ. अग्रवाल एक साथ बोल-बोल कर कई ग्रन्थ लिखवा सकते थे[2], वे अतिलेखनजन्य-श्रांति का परिहार दस-पन्द्रह मिनट प्राणायाम के द्वारा कर सकते थे[3], उनके लेखनस्थल पर एक 'सुमिरनी' रखी रहती थी जो उन्हें विकट अध्यवसाय से विश्रांति प्रदान करती थी—निस्सन्देह वे विलक्षण मेधावी एवं तपस्वी ग्रन्थकार थे! डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम', 'अष्टछाप-परिचय' एवं 'व्रज का सांस्कृतिक इतिहास' के परम-पण्डित लेखक श्री प्रभुदयाल मीतल (दोनों ग्रन्थों के भूमिका-लेखक डॉ. अग्रवाल ही हैं) प्रभृत्ति विद्वान् तक उनकी अगाध विद्वत्ता एवं अप्रतिहत साधना के प्रशंसक रहे हैं।

---

[1] 26-27 जुलाई की रात्रि।

[2] दे. 'ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण' (सं. कृष्णवल्लभ द्विवेदी) में राय कृष्णदास का लेख।

[3] वही, डॉ. मंगलनाथ सिंह का लेखा।

अपने वेद-निरूपण में डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल न तो अविनाशाचन्द्र दास के सदृश अतिभारतवादी हैं और न राधाकृष्णन् के सदृश अतिपश्चिमवादी; वे पूर्व–पश्चिम के स्वस्थ-स्वच्छ संयोजक हैं। अपनी वेद-व्याख्या में डॉ. अग्रवाल न सातवलेकर के सदृश सायणाधृत हैं, न डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' के सदृश दयानन्दाधृत; वे वेद का ऐतिहासिक निरूपण भी करते हैं, प्रतीक-विवेचन भी। आर्यों के आदिदेश पर वे मौन रहते हैं–न अपने गुरु राधाकुमुद मुखर्जी, प्रसाद इत्यादि के सदृश भारतवादी ही हैं और न सर विलिअम जोन्स, मैक्स मुलर इत्यादि के सदृश मध्यएसिआवादी, न दयानन्द के सदृश तिब्बतवादी, न तिलक के सदृश उत्तरीध्रुववादी, न साम्यवादाभिभूत राहुल के सदृश रूसवादी या वोल्गावादी। कालिदास का समय वे विक्रमादित्य (राज्यारोहण 57 ईसा-पूर्व) वाला नहीं अपितु गुप्तकाल वाला मानते हैं। वे राहुल, भगवत्शरण उपाध्याय इत्यादि साम्यवादी विद्वानों के सदृश पुराण को इतिहास से नितान्त भिन्न नहीं मानते तथा आर्य-समाजियों के विपरीत वेद-पुराण की विरोधहीन विकास-परम्परा का अनुमोदन करते हैं। उनकी अगाध एवं अस्मितानिष्पन्न विद्वत्ता की समता प्रकीर्णपांडित्यबद्ध एवं पश्चिमाभिभूत राहुल, भगवत्शरण उपाध्याय इत्यादि नहीं कर पाते।

यह सत्य है कि दोनों विषयों पर पचासों ग्रन्थ तथा हज़ारों शोधलेख लिखने के कारण डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल किसी एक या कुछ क्षेत्रों में जमकर कार्य नहीं कर सके, जिसके परिणामस्वरूप उनके समग्र-पांडित्य को जानना विद्वानों तक के लिए कठिन हो गया है, किन्तु उनकी असाधारण विद्वत्ता का लोहा उनके किसी एक क्षेत्र का कार्य भी अनायास ही मनवा लेता है। प्रतिभा के सर्वश्रेष्ठ पारखी आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 16 मई, 1928 के पत्र में ही उनके पांडित्य हो परखकर 'पण्डितप्रवर' विशेषण के साथ 'प्रणाम' एवं 'धन्योऽसि' शब्दों का प्रयोग किया था![1] 'ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण' ग्रन्थ के 'कुछ-पत्र' प्रकरण में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के पत्र हिन्दी-साहित्येतिहास के लिए अनमोल हैं क्योंकि जहाँ एक ओर वे डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के पांडित्य के सर्वोपरि प्रमाणपत्र हैं, वहीं दूसरी ओर महान् आचार्य के विनम्र, समतावादी, स्वावलम्बी-स्वाभिमानी व्यक्तित्व तथा पत्नी-पुत्र-पुत्री-हीन जीवन में अयोग्य-चरित्रहीन-दूरसम्बद्ध भागिनेय के कारण उत्पन्न अन्तर्व्यथा को व्यक्त करते हैं। 28 मई, 1928 के पत्र में आचार्य के ये शब्द माननीय हैं: "आप उच्चात्मा और ज्ञानी हैं। आपको प्रणाम किया तो उचित ही हुआ। आत्मा को जाति, वर्ण, वय का सम्पर्क है नहीं, यह आप खुद ही जानते हैं।" 23 दिसम्बर, 1932 के ऐतिहासिक महत्त्व के पत्र में आचार्य की सामयिक उद्विग्नता पठनीय है: "मेरा दिमाग ठीक नहीं। आँखें भी कम काम देती हैं। सोचने-विचारने की शक्ति अब मुझमें नहीं। मेरी कौटुंबिक दशा दयनीय है। परमात्मा से मेरी शुभ-चिन्तना कीजिए।" इस पर डॉ. अग्रवाल ने अपनी कल्पना पर आर्थिक सहायता की व्यवस्था करनी चाही तो सदा के त्यागी (राजा-महाराजाओं से लेकर धनी-मानियों तक के अनेक प्रस्तावों को अस्वीकार करने वाले) आचार्य ने जो औपचारिक उत्तर दिया वह चिरस्मरणीय है–पूरे-का-पूरा अवतरित है :

भाई वासुदेव,

यह क्या लिख मारा! ज़रा भी याद नहीं मैंने अपने पत्र में क्या लिखा था जो आपको ऐसा ख्याल हुआ। अगर मैंने कौटुंबिक दुरवस्था का ज़िक्र किया है तो उसका कारण अर्थकृच्छता नहीं, कलह है। मेरा भानजा अनपढ़ रह गया; वह आवारा भी है। वही कष्ट मुझे खलता है। काफी पेंशन मुझे मिलती है। 52 बीघे का काश्तकार हूँ। अन्न-वस्त्र की कमी नहीं। जो कुछ पास था अधिकांश काशी-विश्वविद्यालय और ना. प्र. सभा को दे दिया। अब भी कुछ-न-कुछ दान दिया ही करता हूँ। जिसे-जिसे थैली की बात लिखी हो फिर लिखिए। कहीं उसकी चर्चा न हो। उससे मुझे कष्ट होगा। यह सब कुछ है, पर आपकी कृपा का जो अनुभव मुझे अब हुआ है, वह कभी भूलने का नहीं। बहुत-बहुत धन्यवाद।

इसकी पहुँच लिखिए।

22-12-32

म. प्र. द्विवेदी
दौलतपुर ग्रामात्
22-12-32

---

[1] 'माधुरी' में अद्वैतवाद पर निबन्ध पढ़कर।

साञ्जलिपुटं निवेदनम्

(1) सम्प्राप्य पत्रं तव वासुदेव मया प्रमोदो नितरामवाप्तः।
वदान्य सम्मान्य महानुभाव कृतज्ञतां मे विपुलां गृहाण।।

(2) धन्योऽस्मियत्त्वं मयि सानुरागः क्रीतोऽस्मि ते कामनयैव सौम्य।
नेच्छामि नूनं नकुली गृहीतुं। ममापराधं भगवन क्षमस्व।।

(3) त्वं दानपात्रं बुधवन्दनीयं साहित्यरत्नं किमपि प्रशस्यम्।
अन्यं जनं प्राप्य समादरेण मनोऽभिलाषं सफली कुरुष्व।।
संस्कृतानभिज्ञस्य परीक्षणभयभीतस्य द्विवेदिनो महावीरप्रसादस्य

वंशीधर शुक्ल

हम हरी डार के पत्ता हन पतझारन ते घबराई का,
ई चलाचली की दुनिया माँ झंझा ते मुहुँ लुकुवाई का।
धरती बीजन की खानि, बीज दइ जोगवइ जलम जोगाधिन ते,
तिल तिल पर लाखन जमा जमँइ क्रम ते मउके ते साखिन ते।
अइसेहे बहुत दिन बादि कहूँ अभिलाख पूरि भइ अकसमात,
दाता जलधर पानी दीन्हिनि हम निकरेन भुँइ ते विलबिलात।
जब दाना ते बिरवा हुइ गेन तउ खाले पाउँ लचाई का,
हम हरी घास के पत्ता हन पतझारन ते घबराई का।

वर्तमान अवधी के विख्यात कवि वंशीधर शुक्ल (1905[1]-80 ई., जन्म ग्राम मन्योरा, जनपद लखीमपुर) ने नवीन अवधी-कविता को कला प्रदान की तथा उसे देशप्रेम, हिन्दीप्रेम इत्यादि के व्यापक आयामों तक प्रसरित किया। इसके साथ ही, उन्होंने अवधी-व्यंग्यकाव्य को भी समुन्नत किया। खेद है कि उनकी स्फीत रचना-राशि (450 पहेलियाँ, 100 लोककथाएँ, 500 लोकगीत, 4500 अवधी शब्दसंग्रह इत्यादि) प्रकाशित नहीं हो सकी। वे स्वातन्त्र्य-सेनानी एवं स्वातन्त्र्य भारत में विधायक भी रहे। उन्होंने अंग्रेज़ी की गुलाम कांग्रेसी सरकार की हिन्दीघाती नीति के विरोध में आकाशवाणी लखनऊ से पदत्याग का समुज्ज्वल उदाहरण भी प्रस्तुत किया—वे हिन्दीवीर भी थे (पद्मभूषण का अलंकार ठुकराने वाले महाकवि पन्त, कवयित्री महादेवी वर्मा, कवि माखनलाल चतुर्वेदी इत्यादि के सदृश, एक लाख रुपए का भारतभारती पुरस्कार ठुकरानेवाले साहित्य प्रेमी स्व. श्रीनारायण चतुर्वेदी के सदृश)। वे एक तेजस्वी व्यक्ति थे। उनके पुत्र सत्यधर शुक्ल अवधी एवं खड़ीबोली के अच्छे कवि हैं। उनकी अवधी-कविता अनुभूति में अपेक्षाकृत परिष्कृत एवं अभिव्यक्ति में अपेक्षाकृत परिनिष्ठित होने के कारण पढ़ीस एवं रमई काका की कविता के सदृश सरल नहीं हैं, किन्तु उसका साहित्यिक मूल्य कहीं अधिक है। उनकी अपेक्षाकृत संस्कृतनिष्ठ अवधी सार्वभौम हिन्दी के निकटतम लगती है, भले ही उसमें ठेठपन कम हो। पढ़ीस ने स्वयं कहा था, ''भइया, अवधी माँ कविता तौ तुम ही करत हौ। सुरुवात हम जरूर कीन, लेकिन वह बात कहाँ है जौनि तुम्हरी रचना मइहाँ है।'' यहाँ 'वह बात' स्पष्ट नहीं है, किन्तु उसका अभिप्राय साहित्यिकता से है, इसमें सन्देह नहीं।

'कृष्णायन' के महाकाव्यकार द्वारकाप्रसाद मिश्र अवधी कवि हैं, किन्तु उनकी भाषा अतिशय संस्कृतनिष्ठ है जिसमें अवधी का मौलिक रूप दृग्गत नहीं हो पाता।

वंशीधर शुक्ल की कविता में कृषक-जीवन की विवृति अत्यन्त प्रशस्य रूप में हुई है। वे कृषक-जीवन के एक प्रतिनिधि कवि हैं :

---

[1] बसंत-पंचमी, 1961 वि.। इसमें 57 वर्ष घटाकर 1904 ई. लिखना ग़लत है। माघ शुक्ल 5 से पूर्व ही ईसवी बदल जाती है। प्रसाद को 1889 ई. एवं निराला को 1896 ई. में जन्मा लिखनेवाले भी यही ग़लती करते हैं—प्रसाद 1890 ई. एवं निराला 1897 ई. में जन्में थे। वंशीधर शुक्ल का जन्म 1905 ई. में हुआ था।

दुपहरिया माँ चारि पनेथी, बड़की लोटिया पानी। कबौ चबेना मट्ठा सरबत, ऐसेहि गै जिन्दगानी।।
पेंड़ा-गट्टा मेले-ठेले, बेढ़ई, बरा, फुलौरी। तिथि परबी या भए-बियाहे पूरी पुवा कचौरी।।
चना-चबेना, बहुरी, मुरकी, तिलचौरी, गुड़धनिया। सबै रितुन का यहै कलेवा, यह किसान की दुनिया।।

उनके स्वरों में प्रगतिशील क्रान्ति-आह्वान के दर्शन भी होते हैं। अवधी के प्रायः सारे कवि जनकवि हैं, प्रगतिशील कवि हैं। जागृति के स्वर सुनिए :

अब लै बाँक, साफ कर भेरुवा, सूधा कर दे बाँस। मुफ्तखोर बेकार न पनपै, रहै जुल्म ना त्रास।।
आगे बढ़ै किसान मेहनती, जो कमाय सो खाय। कोई चुसावै, चूसि न पावै, कोई न मरै मोटाय।।
सबरे पात बराबरि करु, ई कल्पबिछै बिरवा के। जागु रे सैनिक स्वतंत्रता के।।

उमादत्त सारस्वत 'दत्त'

'मन्दोदरी' के खंडकाव्यकार एवं 'किरण' के उल्लेखनीय कवि, 'मस्तराम का चिट्ठा', 'मस्तराम का सोंटा', 'भैया केंचुलबदल', 'लट्ठराम की जय' इत्यादि के सफल व्यंग्यकार तथा 'भाई-बहन' के आदर्शवादी कहानीकार उमादत्त सारस्वत 'दत्त' (5 अगस्त 1005-95, बिसवाँ, जनपद सीतापुर, उ. प्र.) ने साहित्य की अच्छी सेवा की है। वे सनेही-स्कूल के एक जाने-माने कवि रहे हैं। उनका सृजन आदर्शवादी युग से प्रेरित है। उनके पुत्र डॉ. गणेशदत्त सारस्वत भी कवि एवं लेखक हैं। उदाहरण प्रस्तुत है :

1. भंग भरती है आह देख के अनंत गुण, चाह की रही न चाह, बात है न बस की।
लस्सी कहवा में या सुधा में वह स्वाद कहाँ, मदिरा बिचारी है पिटारी अपजस की।।
बोलेगी चिलम किस मुँह से बताओ जब, लगती है सभी के मुँह जड़ अनरस की।
अकथ अफ़ीम की कहानी लंतरानी नहीं, पानी भरती है यहाँ नानी सोमरस की।।

2. आधुनिक सफल कविसम्मेलन का यह दृश्य भी देखिए। श्री 'टोंट' जी गिच्च-गिच्च कर बोले, ''अब कविरत्न श्री 'भगोड़े' जी साहित्य-भूषण अपनी कविता पढ़ेंगे।'' भगोड़े जी ने केवल ''कामिनी नवेली होने षोडश बरस वारी'' ही पढ़ा था कि किसी तरफ़ से एक जूता आकर तड़ाक–से मुँह पर लगा। श्री 'भगोड़े' जी भागने ही वाले थे कि एक नई रोशनी के सज्जन ने आपकी गर्दन आ पकड़ी। बोले, ''क्यों हज़रत! ऐसी ही अश्लील कविताओं के बल पर हिन्दी को राष्ट्रभाषा के पद पर पहुँचाएँगे?'' श्री 'भगोड़े' जी को भी कुछ गर्मी आ गई। उन्होंने कुछ न पाया तो हज़रत का कान कसकर पकड़ लिया। जैसे दो साँड़ों की लड़ाई होती है उसी प्रकार दोनों सज्जन भिड़ गए। इधर मौक़ा पाकर श्री 'कटहल' जी ने अपनी चुराई हुई कविता का प्रथम चरण–''बाद मुद्दत के फँसा आज पुराना चंडूल''--भी न पूरा पढ़ा था कि श्री 'टोंट' जी ने आपकी चुटया पकड़कर कह दिया, ''क्यों बे बदतमीज़, बिना सभापति की आज्ञा ही पढ़ना शुरू कर दिया?'' 'कटहल' जी का जब कोई और ज़ोर न चला तो उन्होंने 'टोंट' जी की लम्बी नाक दोनों हाथों से पकड़ ली।

दर्शकों ने देखा कि एक ओर दो साँड़ लड़ रहे हैं तो दूसरी तरफ़ दो भेड़ें टक्कर ले रही हैं।

मनीराम द्विवेदी 'नवीन'

सनेही-स्कूल के कवित्त–सवैया-प्रधान कवियों में 'नवीन बीन', 'नवीन गुलछर्रा', 'नवीन चिनगारी', 'नवीन रणभेरी', 'नवीन कीर्तन प्रथम', 'नवीन कीर्तन-पीयूष, 'नवीन कीर्तिन-कुंज', नवीन भक्तिसरोवर', 'नवीन शिव-विनय', 'नवीन पंचामृत' इत्यादि के खड़ीबोली एवं व्रजभाषा कवि मनीराम द्विवेदी 'नवीन' (1905-84 ई., नैकामऊ, जनपद उन्नाव) समाजकाव्य, राष्ट्रकाव्य एवं भक्तिकाव्य के त्रित् में एक उल्लेखनीय कवि हैं। बैसवाड़ा साहित्यिक, सांस्कृतिक परिषद्, भगवन्तनगर, उन्नाव (उ. प्र.) ने डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'उमेश' के सम्पादन में ''कविर्मनीषी पं. मनीराम द्विवेदी 'नवीन' अभिनन्दन-ग्रन्थ'' (1985 ई.) निकालकर उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्त्व पर अच्छा प्रकाश डाला है। जनकवि 'नवीन' एवं राष्ट्रकवि 'नवीन' (प्रख्यात बालकृष्ण शर्मा) प्रायः

समसामयिक रहे। जनकवि 'नवीन' की अकल-कला अपने समाजसुधारवाद, राष्ट्रवाद एवं भक्तिवाद के कारण प्रभावी है। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. एक ओर प्रकृति नटी का नृत्य होता नित एक ओर संसृति संभार है जवानी में।
एक ओर प्रेम का प्रवाह उमड़ाया हुआ एक ओर प्राणों का निसार है जवानी में।।
एक ओर कंटक बिछे हैं एक ओर पुष्प दोनों का विचित्र उपहार है जवानी में।
देखना सम्हालना जवानी को जवानो! खूब जीवन की सारी जीत हार है जवानी में।।

2. रोक नहीं सकता कवि भावना दीन हो या पराधीन ही होगा।
आ पड़ने से रहस्य में झूठ या सत्य यकीन ही होगा।।
हों अभिमानी करें कहीं द्वेष पर भावुक भाव में लीन ही होगा।
जो उद्‌गार हों मानस के कुछ भाव नवीन नवीन ही होगा।।

जैनेन्द्र

प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों में नव्यता, गुण एवं परिभाषा की प्रायः सभी दृष्टियों से जैनेन्द्र (1905-88 ई., जन्म कौड़ियागंज, जिला अलीगढ़, मृत्यु दिल्ली) अग्रणी हैं। सृजन के कारण वे अज्ञेय से श्रेष्ठतर उपन्यासकार हैं। कहानीकार जैनेन्द्र भी बहुत आगे हैं। हाँ, अपनी बहुमुखी प्रतिभा के सूचक कवि-उपन्यासकार-कहानीकार के त्रित् में अज्ञेय जैनेन्द्र से श्रेष्ठतर साहित्यकार हैं। विचारक या आलोचक दोनों में से कोई नहीं है, यद्यपि दोनों से सृजनात्मक प्रतिभा के खूँटते ही इन दिशाओं में बड़ी लपक-झपक की है। जैनेन्द्र हिन्दी-उपन्यासकारों में नारी-सम्वेदन के सर्वश्रेष्ठ स्रष्टा हैं। 'परख', 'सुखदा', 'सुनीता', 'विवर्त' और 'त्यागपत्र' उपन्यासों का नारीपीड़ा-सर्जक कलाकार हिन्दी का शरद माना जा सकता है। फ्रायड के कामवाद को गाँधी के आत्मपीड़ावाद से संपृक्त कर जैनेन्द्र ने शरीर के सुख और मन के संयम को द्वन्द्वात्मक वंकिमता के साथ चित्रित किया है। सियारामशरण गुप्त के 'गोद', 'अन्तिम आकांक्षा', और सबसे बढ़कर 'नारी' जेनैन्द्र की कलाकृतियों के समकक्ष हैं, किन्तु उनका परिमाण ऐसा नहीं कि दोनों की तुलना की जा सके। 'अनामस्वामी', 'मुक्तिबोध', 'जयवर्द्धन' इत्यादि परवर्ती उपन्यासों में प्रौढ़ एवं चिन्तनशील जैनेन्द्र वैसे ही विवृत होते हैं जैसे 'अमिता', 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' एवं 'लोकायतन' में महत्तर पन्त। यद्यपि जैनेन्द्र के 'युद्ध' जैसे निबन्ध एवं 'मैथिलीशरण गुप्त' जैसे संस्मरण सफल कृतित्व के सूचक हैं तथापि वे तत्त्वतः उपन्यासकार एवं कहानीकार ही हैं। छोटे-छोटे शब्दों एवं सरल-सरल वाक्यों की जैनेन्द्र-भाषा अस्मिता की दृष्टि से अपूर्व हैं, यद्यपि उसमें प्रांजल शब्दों एवं गहन वाक्यों की अज्ञेय-भाषा जैसा कलात्मक गौरव नहीं दृष्टिगत होता।

कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'

हिन्दी-रिपोर्ताज़ के जनक, हिन्दी-लघुकथा के जनक, उत्कृष्ट जीवनीकार, स्तरीय संस्मरणकार, प्रभावी भेंटवार्ताकार एवं उल्लेखनीय भावात्मक-निबन्धकार श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' (जन्मतिथि 29 मई, 1906—9 मई, 1995, जन्मस्थान देवबन्द, कर्मक्षेत्र सहारनपुर) की बहुमुखी प्रतिभा हिन्दी-साहित्य के इतिहास में स्मरण-योग्य है। उनका विशद मानवतावाद एवं अटल निष्ठावाद, दलित-सम्वेदन, नारी-सम्वेदन शोषण-विगर्हण से संपृक्त होकर उन्हें एक महापुरुष का गौरव भी प्रदान करता है। उनकी भावुकता उनके गद्य को भी काव्य का रूप प्रदान कर देती है। 'माटी हो गई सोना', 'जिन्दगी लहलहाई', 'आकाश के तारे धरती के फूल' इत्यादि कृतियाँ भावात्मक गद्य-शैली की उत्कृष्ट कृतियाँ हैं। अत्यधिक लिखने के कारण उनकी अनेक कृतियाँ साहित्य एवं पत्रकारिता की खिचड़ी बन गई हैं. उनमें अनेक तथ्यात्मक त्रुटियाँ रह गई हैं। उनकी नेहरूवंश-अन्धभक्ति, लालबहादुर शास्त्री एवं जयप्रकाश नारायण प्रभृति के साथ अन्याय करने के कारण, भदेसपन एवं चारणवाद की ज़द में जा गिरी है। किन्तु अपने मानवतावाद, शोषण-विगर्हण एवं अपनी अप्रतिम अभिव्यक्ति में वे एक श्रेष्ठ साहित्यकार हैं, इसमें सन्देह नहीं।

'प्रभाकर' जी की प्रतिभा बहुविधाविशृंखल हो गई है। वे भावात्मक-निबन्धकार हैं किन्तु पूर्णसिंह या माधवप्रसाद मिश्र नहीं, वे रेखाचित्रकार हैं किन्तु महादेवी नहीं, वे जीवनीकार हैं किन्तु बनारसीदास चतुर्वेदी नहीं, वे भेंटवार्ताकार हैं किन्तु डॉ. पद्मसिंह शर्मा

'कमलेश' नहीं, वे संस्मरणकार हैं किन्तु डॉ. राजेन्द्रप्रसाद ('बापू के क़दमों में' ग्रन्थ के कारणः खेद है कि इस महान् ग्रन्थ की बड़ी उपेक्षा हुई) नहीं; किन्तु अपने समाहार में वे एक अनूठे साहित्यकार अवश्य हैं। डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी के सम्पादन में निकला ''कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर': व्यक्ति और साहित्य'' ग्रन्थ अपने शीर्षक के साथ न्याय करता है।

विश्वनाथप्रसाद मिश्र

'केशवदास-ग्रन्थावली', 'भूषण-ग्रन्थावली', 'भिखारीदास-ग्रन्थावली', धनआनन्द-ग्रन्थावली 'पद्माकर-ग्रन्थावली' इत्यादि के अन्यतम ग्रन्थावलीकार एवं 'हिन्दी साहित्य का अतीत' (दो खंड) के ईषत-साहित्येतिहासकार स्व. आचार्य दिश्वनाथप्रसाद मिश्र (1906 ई., निवास काशी) प्रतिभाशाली आलोचक या प्रस्थाग्रन्थकार न होते हुए भी शास्त्रीयकाल की कविता के धुरंधर विद्वान् के रूप में चिरस्मरणीय हैं। 'घन आनन्द-कवित्त' (व्रजनाथ की पुरानी प्रस्तुति) के कुशल सम्पादन के लिए भी उन्हें याद किया जाता रहेगा। शास्त्रीयकाल (जिसे मिश्रबन्धु ने विशद 'अलंकृतकाल' कहा था, आ. शुक्ल ने 'रीतिकाल') को शृंगारकाल कहने के कारण भी उनकी स्मृति स्थायी हो गई है।

बच्चन

यथार्थवादी युग (1940 ई. से) के कवियों में डॉ. हरिवंशराय बच्चन (27 नवम्बर, 1907, प्रयाग—18 जनवरी, 2003 मुंबई) का एक विशिष्ट स्थान है। जिस प्रकार यथार्थ के समाजपरक पक्ष का वादमुक्त रूप दिनकर में, यथार्थ के समाजपरक पक्ष का वादवद्ध रूप मुक्तिबोध में तथा यथार्थ के व्यक्तिपरक पक्ष का वादबद्ध रूप अज्ञेय में शीर्षस्थ गौरव प्राप्त करता है, उसी प्रकार यथार्थ के व्यक्तिपरक पक्ष का वादमुक्त रूप बच्चन में। बौद्धिककाल (1800 ई. से) के स्वच्छन्दतावादी युग (1920-40 ई.) के अनन्तर यथार्थवादी युग में दिनकर एवं बच्चन तथा मुक्तिबोध एवं अज्ञेय प्रमुख कवि हुए हैं। दोनों युग्म प्रतीपता-व्यंजक हैं। किन्तु दोनों ने ही हिन्दी-कविता के आयामों को प्रशस्य रूप से स्फीत किया है।

बच्चन का जन्म पावन तीर्थराज प्रयाग (इलाहबाद) में हुआ। जहाँ भारत में एकता एवं समता के परम गुरु रामानन्द, निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट, महामना मदनमोहन मालवीय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू, अगर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी, कवयित्री सुभद्राकुमारी चौहान, प्रधानमन्त्री इन्दिरा गाँधी, भारत के सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी ध्यानचन्द (हॉकी के जादूगर), भारत के सर्वश्रेष्ठ अभिनेता अमिताभ बच्चन इत्यादि का जन्म हुआ तथा मोतीलाल नेहरू, डॉ. सर गंगानाथ झा, डॉ. अमरनाथ झा, निराला, पन्त, महादेवी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, उपेन्द्रनाथ 'अश्क' इत्यादि ने निवास किया; जहाँ से अकबर इलाहबादी, फ़िराक़ गोरखपुरी जैसे शायर भी संपृक्त रहे। हिन्दी साहित्य में भिखारीदास, घनआनन्द, लाला भगवानदीन 'दीन', प्रेमचन्द, वुन्दावनलाल वर्मा, रामकुमार वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, महादेवी वर्मा, धीरेन्द्र वर्मा, अम्बिकाप्रसाद दिव्य, बच्चन, बाबूराम सक्सेना, नीरज, कैलाश कल्पित, महेन्द्र भटनागर, निर्मल वर्मा, कमलेश्वर इत्यादि कायस्थों ने महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किए हैं।

हिन्दी साहित्य में बच्चन 'मधुशाला', 'मधुबाला', 'मधुकलश' इत्यादि के हालावादी कवि के रूप में आए और लोकप्रियता की दृष्टि से छा गए। (प्रभाव का यह हाल रहा कि लगभग साठ साल बाद 1994 ई. तक मुरादाबाद के ईश्वरचन्द्र गुप्त 'ईश' जैसे प्रौढ़ कवि ने अपना मौलिक काव्य 'चा का प्याला' प्रस्तुत किया, जिसमें चाय के सार्वभौम प्रभाव को गम्भीर व्यंग्य एवं विकल राष्ट्रवादी व्यथा के साथ व्यक्त किया गया है—निस्सन्देह 'चा का प्याला' मधुशाला-प्रभावित काव्यों में अन्यतम है।) उनकी प्रथम पत्नी श्यामा के असामयिक अवसान ने उन्हें 'निशा-निमन्त्रण', 'आकुल-अन्तर', 'व्याकुल विश्व' एवं 'एकान्त संगीत' इत्यादि के गम्भीर कवि का गौरव प्रदान कर दिया। मृत्यु जीवन का चरम दर्शन है। मृत्यु जीवन का परम काव्य है। पत्नियों के अवसानों ने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं हरिऔध को महानता की प्रेरणा प्रदान की थी, जिसके परिणाम काव्य में अभूतपूर्व एवं अप्रतिम नारी-सम्वेदन (दौलतपुर में प्रतिमा-स्थापन[1], साहित्य में 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' इत्यादि) एवं 'प्रियप्रवास' के रूपों में व्यक्त हुए थे। 1987 ई. श्री शत्रुघ्नलाल शुक्ल ने नवम्बर, 1986 में दिवगंत हुई पत्नी के विरह में 'अन्तर्वेदना' के रूप एक नन्हाँ-सा 'निशा-निमन्त्रण' प्रस्तुत

---

1. आचार्य के एक शिष्य स्व. डॉ. केदारनाथ अवस्थी (जो साहित्यकार नहीं थे) ने पत्नी-वियोग पर 'शचीप्रिया' ग्रन्थ लिखा। ये भी निस्सन्तान रहे। आचार्य-ग्रामपार्श्वी यह रायबरेली के चिकित्सक थे।

किया था (कुछ अन्तराल में वे दुर्घटना में चल बसे) तथा 1990 ई. में श्री रमाकान्त श्रीवास्तव ने 'व्यथा कथा शोकाकुल मन की' प्रस्तुत की। पत्नी-चिरविरह पर डॉ. मुचकुन्द शर्मा का पंद्रहसर्गीय काव्य 'शकुन्तला' सर्वथा विलक्षण है। बच्चन अपने उत्कृष्ट सृजन के लिए श्यामा के ऋणी हैं, क्योंकि मुक्त वैयक्तिक चेतना के कवि होने के कारण उनके 'मधुशाला', 'मधुबाला' इत्यादि काव्य 'ऊपरी' हैं तथा 'बंगाल का काल', 'सूत की माला' इत्यादि 'स्थूल' जबकि 'निशा-निमन्त्रण', 'आकुल अन्तर' इत्यादि सहज एवं गहन। 'बुद्ध और नाचघर', 'दो चट्टानें', 'कटती प्रतिमाओं की आवाज़' इत्यादि काव्यों में बच्चन की यथार्थचेतना ने युग को उजागर किया है। एक उत्कृष्ट गीतकार होते हुए भी बच्चन ने नई कविता की उल्लेखनीय सर्जना की है। उन्होंने शैक्सपिअर के मैकबेथ जैसे गहन नाटक का सुन्दर अनुवाद भी किया है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेज़ी एम. एस. एवं केम्ब्रिज विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. बच्चन की हिन्दी-सेवा अंग्रेज़ी के ही विद्वान् एवं प्राध्यापक डॉ. रामविलास शर्मा का स्मरण कराए बिना नहीं रहती। अंग्रेज़ी के विद्वान् एवं प्राध्यापक फ़िराक़ ने उर्दू की ऐसी ही सेवा की है। बच्चन में गद्य-लेखन की क्षमता भी है जो पन्त पर रचित 'कवियों में सौम्य सन्त' में उल्लेख्य रूप में दृग्गत होती है। पन्त पर 'पथ के साथी' में महादेवी, 'पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण' में दिनकर तथा बच्चन ने 'कवियों में सौम्य सन्त' लिखकर उन्हें कवियों का प्रिय महाकवि सिद्ध कर दिया है। आलोचकों ने तो खैर उन पर लिखा ही है। बच्चन हिन्दी के एक अमर आत्मकथाकार हैं। 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर', एवं 'दशद्वार से सोपान तक' शीर्षक चार खंडों में विभक्त उनकी अतिस्फीत आत्मकथा साहित्य की एक निधि है।

व्यक्तिवाद का सहज रूप

बच्चन हिन्दी-साहित्य में व्यक्तिवाद के सहज रूप को कला की भव्यता प्रदान करने वाले प्रथम श्रेष्ठ कवि हैं। कविता में व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति विद्यापति, कबीर, तुलसी, सुखदेव, भारतेन्दु, प्रसाद निराला, पन्त इत्यादि के द्वारा भी की गई है तथा वह उनकी महानता के कारण अजर-अमर भी है। 'सरोज-स्मृति' निराला की काव्यात्मक-आत्मकथा है। किन्तु यह सारा सृजन या तो प्रासंगिक है या सैद्धांतिक। बच्चन ने अपने सहज जीवन को व्यापकतम फलक पर उरेहा है। उन्होंने वस्तुपरक नहीं, आत्मपरक गान गाए हैं। 'प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर' से लेकर ''मैं सुख पर, सुखमा पर रीझा'' तक अनेकानेक गीतों में उन्होंने अपने-आप को ईमानदारी के साथ गाया है। सहज मानवीय एकता की सूचक मधुशाला को उन्होंने हिंसा एवं शत्रुता बढ़ाने वाले मन्दिरों-मस्जिदों इत्यादि पर वरीयता प्रदान की है। सहज को 'वासनामय' मानने के पाखण्ड पर प्रहार करने वाला ''कह रहा जग वासनामय हो रहा उद्गार मेरा'' शीर्षक उनका गीत अनुभूति की तीव्रता का एक प्रतीक माना जा सकता है। स्वयं मदपायी न होते हुए भी उन्होंने गाया :

बनी रहें अंगूर लताएं जिनसे मिलती है हाला, बनी रहे वह मिट्टी जिससे बनता है मधु का प्याला,
बनी रहे मधुर पिपासा तृप्त न जो होना जाने, बने रहें वह पीने वाले, बनी रहे यह मधुशाला।

'निशा-निमन्त्रण', आकुल अन्तर', 'व्याकुल विश्व', 'एकानत संगीत' प्रभृति अपने श्रेष्ठतम काव्यों में भी बच्चन ने आश्रय स्वयं को ही रखा है।

सरल-जीवनवाद

बच्चन एक सरल एवं व्यापक जीवनवादी कवि हैं। वे नर-नारी की रमणेच्छा की नैसर्गिकता को व्यापक रूप में गाते हैं:

कौन मिलनातुर नहीं है?
आक्षितिज फैली हुई मिट्टी
निरंतर पूछती है,
कब कटेगा, बोल, तेरी
चेतना का शाप,
और तू हो लीन मुझमें फिर बनेगा शांत?

यहाँ मिलन पर ही शान्त, मुक्त एवं पूर्ण बनने का जो प्रतीकायोजन है, वह दर्शनविपन्न नहीं है और उसे कोरा विलासवाद नहीं कहा जा सकता, शेली (शेले) के ''नथिंग इन दिस वर्ल्ड इज़ सिंगल'' का छाया-प्रस्तार नहीं कहा जा सकता। मिलन जीवन का

सर्वाधिक स्थूल सत्य भी है, सर्वाधिक सूक्ष्म सत्य भी, जिसकी स्थूलता तर्करहित रूप से जीवनव्यापी है किन्तु जिसकी सूक्ष्मता ऋग्वेद, उपनिषद् (विशेषतः बृहदारण्यक), शैवागम, वज्रयान-सहजयान, फ्रायड, डॉ. भगवानूदास (विशेषतः 'पुरुषार्थ' में), कामायनी, उर्वशी, रजनीश इत्यादि तक प्रसरित है। रहस्यवाद एवं भक्तिवाद मिलनेच्छा के ही विशद रूप हैं। अतिवृद्ध दार्शनिक लॉर्ड बर्ट्राण्ड रसेल ने रूप की चिरपिपासा के सत्य को विवृत करने में कोई झिझक नहीं की। यह निष्ठा है। बच्चन ने जीवन के सुख की उपेक्षा के नहीं अपितु अपेक्षा के गीत गाए हैं। उनकी कविता में 'बुढ़भस' कहीं नहीं दीखता। वे यौवन के प्रति संवदेनशील हैं :

युवती और युवक मदमाते
उत्सव आज मनाते आते
लिए नयन में स्वप्न, वचन में हर्ष, हृदय में अभिलाषाएं।
आओ, हम पथ से हट जाएं।
इनकी इन मधुमय घड़ियों में,
हास-लास की फुलझड़ियों में,
हम न अमंगल शब्द निकालें, हम न अमंगल अश्रु बहाएं।
आओ, हम पथ से हट जाएं।
यदि इनका सुख सपना टूटे
काल इन्हें भी हम सा लूटे
धैर्य बँधाएं इनके उर को हम पथिकों की करुण कथाएं।
आओ, हम पथ से हट जाएँ।

यह सही है कि बच्चन का जीवनवाद 'उर्वशी' एवं 'रसवंती' के कवि दिनकर के जीवनवाद के सदृश प्रौढ़ एवं गहन नहीं है, क्योंकि कहीं-कहीं लगता है कि कोई रसिया बतिया रहा है :

मैं सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नहीं है।
जिसने कलियों के अधरों में रस रक्खा, पहले शरमाए,
जिसने अलियों के पंखों में प्यास भरी, वह सिर लटकाए,
आँख करे वह नीची जिसने यौवन का उन्माद उतारा
मैं सुख पर, सुखमा पर रीझा, इसकी मुझको लाज नहीं है।

जब उनके हालावाद, मिलनवाद इत्यादि पर जीवन की विभीषिका के कारण पलायनवाद से ऊभ-चूभ होने का आरोप लगाया गया तब वे विचलित हुए थे क्योंकि संघर्षवाद महत्त्वपूर्ण होते हुए भी जीवनवाद का पर्यावाची नहीं हो सकता :

अरे है वह शरणस्थल कहाँ?
जीवन एक समर है सचमुच,
पर इसके अतिरिक्त बहुत कुछ,
योद्धा भी खोजा करता है
कुछ पल को वह ठौर
युद्ध की प्रतिध्वनि नहीं जहाँ।
अरे है वह शरणस्थल कहाँ?....

"अरे है वह शरणस्थल कहाँ?" का प्रश्न अपने उत्तर के लिए प्रेम, नियति, ईश्वर तक जा सकता है। निस्सन्देह यह एक अत्यन्त उत्कृष्ट गीत है।

नारी-संवेदन

बच्चन का नारी-संवेदन आदर्शवादी-युग के उदार-परम्परावादी एवं स्वच्छन्दतावादी-युग के कल्पित-उदात्ततावादी नारी-संवेदन से भिन्न नैसर्गिक-यथार्थवादी नारी-संवेदन है। वह दिनकर के दार्शनिक-यथार्थवादी नारी-संवेदन से भी भिन्न है। किन्तु वह उथला या

सतही नहीं है। उसके नैसर्गिक-यथार्थवादी में नैसर्गिकता एवं यथार्थता की गहराई साधारण नहीं है। नारी-दर्शन आदर्श या उदात्त या शास्त्र ('बृहदारण्यक उपनिषद्' से साइको-एनालिसिस' तक) में ही नहीं, सहज गीत में भी विवृत हो सकता है—बच्चन ने इसे सिद्ध कर दिया है :

जगत घट को विष से कर पूर्ण किया जिन हाथों ने तैयार,
लगाया उनके मुख पर नारि, तुम्हारे अधरों का मधुसार,
नहीं तो कब का देता तोड़ पुरुष विषघट यह ठोकर मार,
इसी मधु का लेने को स्वाद हलाहल पी जाता संसार!
हलाहल और अमिय मद एक : एक रस के ही तीनों नाम,
कहीं पर लगता है रतनार, कहीं पर श्वेत, कहीं पर श्याम;
हमारे पीने में कुछ भेद कि कोई पड़ता झुक-झुक झूम,
किसी का घुटता तन-मन-प्राण, अमर पद लेता कोई चूम![1]

विरह के अमर कवि

बच्चन हिन्दी के अमर विरहकाव्यकारों की जायसी, सूर, मीराँ (मीरा), घनआनन्द, हरिऔध, मैथिलीशरण एवं महादेवी की पंक्ति में प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाले कवि माने जा सकते हैं।[2] यद्यपि अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व में वे इनके समकक्ष नहीं हैं, तथापि 'निशा-निमन्त्रण', 'आकुल-अन्तर', 'व्याकुल विश्व' एवं 'एकान्त संगीत' के स्रष्टा के रूप में विरह-वैतालिक अवश्य हैं। उनके जीवन के सामान्य वर्षों में उनकी शिक्षा-दीक्षा, भाषा-शैली इत्यादि की दृष्टियों से सामान्य पत्नी श्यामा अपनी नैसर्गिक प्रेरणा में कितनी महान् थीं, इस प्रश्न के उत्तर-रूप बच्चन के विरहकाव्य में ताजमहल से अधिक ऊँचाई के दर्शन होते हैं और उसकी नींव तो पाताल से भी अधिक गहराई तक जाती है। वर्षों तक कवि को जीवन[3] नीरस लगता रहा और संसार[4] असार। उसने सारी सृष्टि में विकलता के सफल दर्शन किए हैं :

लहर सागर का नहीं शृंगार उसकी विकलता है;
अनिल अंबर का नहीं खिलवार, उसकी विकलता है;
विविध रूपों में हुआ साकार रंगों से सुरंजित,
मृत्तिका का यह नहीं संसार, उसकी विकलता है।
गंध कलिका का नहीं उद्गार, उसकी विकलता है;
फूल मधुवन का नहीं गलहार, उसकी विकलता है;⋯

स्वाभाविक भाषा

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी को व्याकरणसम्मत किन्तु सहज तथा परिनिष्ठित किन्तु अक्लिष्ट भाषा का मानक रूप प्रदान किया था, जिसे अपनाकर आदर्शवादी युग के मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि कवि स्तर-रक्षा के साथ भी लोकप्रिय एवं लोकप्रेरक सिद्ध हुए। स्वच्छन्दतावादी युग में भाषा अतिशय ललित एवं अतिशय कलात्मक तो हो गई किन्तु जनजीवन से दूर जा पड़ी। दिनकर एवं बच्चन ने भाषा को पुनः जनता से जोड़ा।

---

1. अक्रमत्व दोष वाले इस छन्द का प्रेरक क्रमालंकारयुक्त महान् दोहा द्रष्टव्य है :

   अमीय हलाहल मद भरे सेत स्याम रतनार।
   जियत मरत झुकि-झुकि परत जेहि चितवत यक बार।। रसलीन (गुलाम नबी)

2. द्रष्टव्य है मेरा प्रबन्ध 'खड़ीबोली-कविता में विरह-वर्णन' अथवा उसके 'चार महाकवियों का विरहकाव्य' एवं 'आधुनिक विरहकाव्य' शीर्षक पुनर्प्रकाशित अध्याय।
3. जीवन का एक अर्थ जल या रस भी होता है।
4. संसार-सम्यक् सार। मैं संसरणशील नहीं मानता।

आकलन

यद्यपि बच्चन पर डॉ. जीवनप्रकाश जोशी ने अनेक ग्रन्थ प्रस्तुत कर परिचायक का प्रशस्य परिश्रम किया है, बाँके बिहारी भटनागर ने ग्रन्थ-सम्पादन तथा नीरज ने पत्रिका-सम्पादन ('लय' का बच्चन-अंक) किया है, तथापि वस्तुपरक आलोचना नहीं प्राप्त होती।[1] डॉ. नगेन्द्र ने उन पर मूल्यवान आलोचना लिखी है किन्तु वह संक्षिप्त एवं अपर्याप्त है। बच्चन की कविता की सबसे बड़ी कमी उसका स्फीत आकार तथा संकीर्ण प्रकार है। उनकी श्रेष्ठ कविता बीस पृष्ठों से अधिक नहीं है। यहाँ आकर ये दिनकर से पिछड़ जाते हैं; वैसे भी उनकी कोई कृति 'कुरुक्षेत्र' या 'उर्वशी' की समता नहीं कर पाती। हाँ, अपनी स्फीत आत्मकथा के कारण वे दिनकर से श्रेष्ठतर गद्यकार अवश्य बन गए हैं। बच्चन की कविता की दूसरी कमी किसी विशिष्ट प्रेरणा का अभाव है, क्योंकि उनकी कविता में शक्ति कम है—कोई एक अपील बच्चन कहीं नहीं कर पाते। बात यह है कि कोई अपील तभी की जा सकती है, और इससे ज्यादा अहम बात यह है कि वह असरदार तभी हो सकती है, जब कवि किसी व्यापक[2] व्यथा से विह्वल होकर गाए या गाने के लिए मजबूर हो जाए। ऐसी अपील ही ताक़तवर होती है जो कवि को ताक़तवर बनाए बिना नहीं रहती। दिनकर में वह अपील है; मुक्तिबोध में भी (संकीर्ण ही सही) वह अपील है। बच्चन में वह अपील नहीं है, अज्ञेय में वह अपील नहीं है। किन्तु दोनों कवि अपने दुःख और सुख ईमानदारी से कह डालते हैं और ईमानदारी का अपना महत्त्व अवश्य है। निस्सन्देह, स्वच्छन्दतावादोत्तर कवियों में दिनकर और बच्चन तथा अज्ञेय और मुक्तिबोध प्रमुख हैं।

श्यामनारायण पांडेय

खड़ीबोली के भूषण कविवर श्यामनारायण पांडेय (1907-89 ई.)[3] के 17-सर्गीय 'हल्दीघाटी'[4] काव्य ने कोटि-कोटि किशोरों एवं बालकों पर स्थायी प्रभाव डालकर राष्ट्रभाषा एवं राष्ट्र की युगपत् सेवा की है। 'जौहार' उनकी अन्य प्रख्यात कृति है। 'त्रेता के दो वीर' (लक्ष्मण एवं मेघनाद), 'परशुराम', 'जय हनुमान', 'शिवाजी' प्रभृति उनकी अन्य प्रमुख रचनाएँ भी वीर रस की ही हैं। श्यामनारायण पांडेय भी एक सफल राष्ट्रकवि हैं, यद्यपि उन्होंने राष्ट्रप्रेमी को प्राचीन एवं मध्यकालीन कथानकों के माध्यम से व्यक्त किया है। समसामयिकता से संपृक्त विचार-वैभव के कारण दिनकर उनसे आगे हैं, ऐसे ही भावपक्ष के वैभव के कारण नवीन एवं माखनलाल भी। किन्तु वे इसी वर्ग के कवि हैं, इसमें सन्देह नहीं। उनका रस वीर है, गुण प्रसाद। उनकी भाषा सरल, सरस एवं प्रवाहपूर्ण है। उनके छन्द गतिभंग-यतिभंग-दोषरहित हैं। कविसम्मेलनों में भी वे छा जाया करते थे। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. यज्ञ अनल सा धधक रहा था वह स्वतंत्र अधिकारी,
रोम रोम से निकल रही थी चमक-चमक चिनगारी।
अपना सब-कुछ लुटा दिया जननी-पद नेह लगाकर,
कलित कीर्ति फैला दी है निद्रित मेवाड़ जगाकर।
भरा हुआ था उर प्रताप का गौरव की चाहों से,
फूँक दिया अपना शरीर उस दुखिया की आहों से।

2. चेत करो अब चेत करो—चेतक[5] की टाप सुनाई दी,
भागो, भागो, भाग चलो—भाले की नोक दिखाई दी!

---

[1] डॉ. के. जी. कदम का शोधग्रन्थ 'कवि श्री बच्चन : व्यक्ति और दर्शन' (1988 ई.) में बच्चन की सर्वांगीण समीक्षा प्राप्त होती है, यद्यपि है यह विवरण प्रधान ही। डॉ. दीनानाथ 'शरण' ने 'लोकप्रिय बच्चन' (1967 ई.) का सम्पादन किया था, किन्तु वह लोकप्रिय नहीं हो पाया।

[2] केवल अपनी नहीं, सामाजिक या राष्ट्रीय या वैश्विक।

[3] जन्मस्थान डुमराँव (तब ज़िला आज़मगढ़) जहाँ 1846 ई. के आसपास कवि ठग मिश्र (जानकीप्रसाद के पुत्र) हुए थे।

[4] मेवाड़ क्षेत्र में, नाथद्वारा तीर्थ के पास, हल्दीघाटी का नाम वहाँ की अतुलनीय माटी (सोने के चूरे में हीरे के कण) के कारण पड़ा है। यहाँ चेतक की समाधि भी है। एक उत्स भी।

[5] 'चेतक' यानी प्रताप के अमर अश्व का स्मारक है। उदयपुर में 'चेतक' छविग्रह भी है। हल्दीघाटी में चेतक की समाधि है।

3. रण बीच चौकड़ी भर-भर कर चेतक बन गया निराला था
राणा प्रताप के घोड़े से पड़ गया हवा का पाला था।
अब यहाँ रहा, अब यहाँ नहीं, अब वहाँ रहा, अब वहाँ नहीं,
थी जगह न कोई जहाँ नहीं, किसी अरि-मस्तक पर कहाँ नहीं!

कविवर श्यामनारायण पांडेय की ख्याति एवं लोकप्रियता का आधार 'हल्दीघाटी' महाकाव्य ही रहा है। उनसे पूर्व राधाकृष्णदास, प्रसाद इत्यादि प्रताप पर लिख चुके थे किन्तु वे प्रताप के प्रतीक-कवि बन गए। इस महाकाव्य ने अनेक कवियों को प्रभावित किया है। मुसलमान भाई भी प्रभावित हुए हैं, जिनमें अमीर हुसैन ग़ाज़ी ('शान घाटी', 'शिवम्', 'पांडव-पराजय', 'आशीर्वाद' प्रबन्धकाव्यों तथा 'इब्राहीम लोदी के राज्य का पतन' 'आसमानी आग', 'रत्नों की राख' उपन्यासों के आदरणीय प्रणेता) विशेष उल्लेखनीय हैं। ग़ाज़ी ने प्रथम कवितासंग्रह 'हमारी राहें' (1975 ई.) श्यामनारायण पांडेय को ही समर्पित किया था। श्री छोटेलाल पांडेय (ग्राम पतौरा, जनपद सतना) ने 'महाराणा का शौर्य' खण्डकाव्य में वास्तविक इतिहास को वरीयता प्रदान की है। 'हिन्दी का प्रताप-साहित्य' राधाकृष्णदास, प्रसाद, गणेशशंकर विद्यार्थी, श्यामनारायण पांडेय, हिमाँशु, अमीर हुसैन ग़ाज़ी, छोटेलाल पांडेय, अनेक मुक्तककारों, गीतकारों इत्यादि द्वारा पर्याप्त समृद्ध किया जा चुका है जिसमें प्रताप के समय तथा परवर्ती राजस्थानी (मेवाड़ी) सृजन जोड़कर एक सशक्त शोधप्रबन्ध भी स्वतन्त्र-ग्रन्थ लिखा जा सकता है। किन्तु उनकी अन्य कृतियाँ, विशेषतः 'जौहर' भी उच्चस्तरीय हैं। उत्तर प्रदेश के भूषण महाराष्ट्र के शिवाजी के सर्वोपरि कवि हैं। उत्तर प्रदेश के श्यामनारायण पांडेय राजस्थान के प्रताप के सर्वोपरि कवि हैं—क्यों न उत्तर प्रदेश को भारत का हृदय कहा जाए।

हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

'बाणभट्ट की आत्मकथा' प्रभृति के उपन्यासकार, 'अशोक के फूल' प्रभृति के निबन्धकार एवं 'नाथ-सम्प्रदाय', 'कबीर', 'हिन्दी-साहित्य' प्रभृति के आलोचक डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी (1907-79 ई.) मूलतः एक संस्कृत विद्वान् थे, जैसा कि उनकी प्रत्येक कृति से स्पष्ट होता है। 1907 ई. में हिन्दी के तीन प्रख्यात साहित्यकार उत्पन्न हुएः महादेवी वर्मा, हरिवंशराय बच्चन एवं हज़ारीप्रसाद द्विवेदी। डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का जन्म बलिया[1] जिले के आरत दुबे का छपरा नामक ग्राम में हुआ। इस ज़िले ने चित्तू पाँड़े जैसे 1942 ई. के स्वातन्त्र्य योद्धा, जयप्रकाश नारायण और चन्द्रशेखर जैसे राजनैतिक नेता तथा परशुराम चतुर्वेदी जैसे साहित्य-मनीषी उत्पन्न किए। वस्तुतः हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ज्योतिषाचार्य थे किन्तु बनारसीदास चतुर्वेदी की सहायता से विश्व भारती (शान्ति निकेतन) में प्राध्यापक के रूप में साहित्य में रमे, खपे और रस गए। कवीन्द्र रवीन्द्र, आचार्य क्षितिमोहन सेन, आचार्य नरेन्द्रदेव, डॉ. राजेन्द्रप्रसाद इत्यादि नेताओं से गहरा सम्पर्क रहा। वे चतुर्वेदी जी को गुरु मानते थे। स्फीत बहुखण्डीय 'हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली' उनके साम्यवादी शिष्यों की भावना की प्रशस्य सूचक है।

उपन्यास, निबन्ध एवं आलोचना की विधाओं में हज़ारीप्रसाद की देन उत्कृष्ट एवं स्मरणीय है। यद्यपि किसी भी विधा में वे महान् सृजन नहीं कर सके, तथापि प्रत्येक विधा में उनका स्थान सुनिश्चित है। 'बाणभट्ट की आत्मकथा' उनका ऐतिहासिक उपन्यास है, जिसमें देशकालचित्रण अत्यन्त उच्चकोटि का है किन्तु चरित्रचित्रण विशिष्टिताविहीन रह गया है। 'चारुचन्द्रलेख', 'पुनर्नवा' एवं अनामदास का पोथा' उनके अन्य उल्लेखनीय उपन्यास हैं। 'शान्तिदूत' (गाँधी), भगवतीशरण मिश्र ने उनका प्रभाव स्वीकार किया है। मिश्र जी 'प्रथम पुरुष' (शिवाजी) 'पुरुषोत्तम' (कृष्ण), 'पवनपुत्र' (हनुमान्), 'पीताम्बर' (मीराँ), 'काके लागूँ पाँव एवं 'गोविन्द गाथा' (गुरुगोविन्दसिंह) शान्तिदूत (गांधी) सद्यःप्रकाशित 'पावक' एवं 'अग्निपुरुष' (वल्लभाचार्य) जैसे पौराणिक ऐतिहासिक उपन्यासों के प्रणेता हैं। उनके उपन्यास मानव-चरित्र की जटिलताएँ एवं वंकिमताएँ विवृत नहीं कर पाते। उनके 'कल्पलता', 'विचार-प्रवाह', प्रभृति संग्रहों के निबन्ध साधारण हैं किन्तु 'अशोक के फूल' संग्रह में वे एक ऐसे श्रेष्ठ समन्वयवादी-मानवतावादी निबन्धकार के रूप में प्रकट होते हैं जिसने रवीन्द्र, गाँधी इत्यादि के विशद जीवनदर्शन को शब्दित करने में पर्याप्त सफलता प्राप्त की है। उनके 'अशोक के फूल', 'आम फिर बौरा गए', 'गतिशील चिन्तन' जैसे ललित-निबन्ध उन्हें विधा-प्रस्थानकार का सा-गौरव प्रदान करते हैं, जिसका स्वयं डॉ. विद्यानिवास मिश्र डॉ. कुबेरनाथ राय प्रभृति ललितनिबन्धकारों ने अनुकरण किया है। निबन्ध की सृजनात्मकता स्रष्टा के

---

[1] उ. प्र. एक बलिया बिहार में भी है।

व्यक्तित्व की प्रभावी अभिव्यक्ति में निहित रहती है, और इस दृष्टि से उनके निबन्ध अल्पप्रभावी हैं। उनके 'सूर-साहित्य', 'हिन्दी-साहित्य की भूमिका' 'हिन्दी-साहित्य' प्रभृति आलोचना-ग्रन्थ प्राथमिक स्तर के हैं, किन्तु 'नाथ-सम्प्रदाय', 'कबीर', और 'हिन्दी-साहित्य का आदिकाल' शोध एवं सामग्री की दृष्टियों से मूल्यावन हैं। आलोचक के रूप में वे नन्ददुलारे वाजपेयी और नगेन्द्र के सदृश, शुक्लोपजीवी ही हैं। शुक्ल के सिद्ध-नाथ-कबीर-प्रत्याख्यान की प्रतिक्रिया के प्रतिफलन होने के कारण वे इन दिशाओं में विवेचन-विश्लेषण के स्थान पर भाषण-संस्तवन को वरीयता प्रदान कर बैठते हैं।

अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य'[1]

उपन्यासकार, कवि, नाट्यकार एवं चित्रकार श्री अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' (1907-86 ई.) बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न साहित्यकार थे। उन्हें 'बुन्देलखंड का गौरव' ठीक ही कहा जाता है क्योंकि 'काला भौंरा', 'खजुराहो[2] की अतिरूपा', 'जूठी पातर', 'सती का पत्थर' इत्यादि उपन्यासों, 'द वोमैन आफ़ खजुराहो' शीर्षक अंग्रेज़ी-कान्यग्रन्थ तथा 'बुन्देलखंड-चित्रावली' एवं 'खजुराहो-चित्रावली' में उन्होंने बुन्देलखंड के इतिहास, कला और संस्कृति को बहुआयामी अभिव्यक्ति प्रदान की है। 'काला भौंरा', 'सती का पत्थर', 'असीम की सीमा' इत्यादि उपन्यासों में दिव्य जी ने राजकीय सौतियाडाह, विमातृबन्धु-संघर्ष और इस सब में पिसते राजाओं के बड़े सजीव चित्रण किए हैं। 'गाँधी-पारायण[3], (महाकाव्य), 'अन्तर्जगत् (खण्डकाव्य) तथा 'पश्यन्ती', 'अनन्य', 'मानसी' इत्यादि के कवि के रूप में वे मानवमूल्यों के प्रतिष्ठापक सिद्ध होते हैं। उन्होंने सौन्दर्य एवं प्रकृति के सुन्दर चित्रण किए हैं। 'तीन पग', 'लंकेश्वर', निर्वाणपथ' इत्यादि नाटकों में उन्होंने चिर से युग जोड़ने के शिल्प का अच्छा परिचय दिया है। वे विद्वान् प्राचार्य भी थे तथा शिक्षक-दिवस (5 सितम्बर) की सभा की अध्यक्षता करते हुए अपने निवासस्थान अजयगढ़ (पन्ना, म. प्र.) में दिवंगत हुए थे। उनकी सन्तानों में 'बूँद बूँद मन' की कवयित्री विजयलक्ष्मी 'विभा' एवं परिचर्चाकार श्री जगदीश 'किंजल्क' ने साहित्य की अच्छी सेवा की है।

प्रतिभा में पैनेपन एवं रचनाओं में अधुनातनता के अभाव के बावजूद, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' का [illegible] एवं मूल्यपरक सृजन ऐतिहासिक गौरव प्राप्त करने के योग्य है।

मुक्तानन्द

सिद्धयोग के महान् प्रचारक-प्रसारक एवं हिन्दी में अध्यात्सिक विषयों के एक महान् लेखक स्वामी मुक्तानन्द परमहंस (1908-82 ई.) निस्सन्देह विश्व की एक पावनतम विभूति थे जिनके विशद नवरहस्यवादी चिन्तन ने विश्व के विविध धर्मानुयायियों एवं मज़हबपरस्तों की एकता की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। कुंडलिनी-योग का इतना बड़ा आचार्य बीसवीं सदी में दूसरा नहीं हुआ। अरविन्द अंग्रेज़ी के प्रखर विद्वान् एवं महान् ग्रन्थकार पहले हैं, योगी एवं सिद्ध बाद में। मुक्तानन्द पहले भी योगी और सिद्ध हैं, बाद में भी। अरविन्द बुद्धि को स्फुरित करते हैं, मुक्तानन्द ध्यान को। कर्णाटक में उत्पन्न एवं महाराष्ट्र (गणेशपुरी, थांणे क्षेत्र) में अवस्थित मुक्तानन्द की मातृभाषा कन्नड़ एवं व्यवहारभाषा मराठी थी किन्तु उन्होंने अपने चित्शक्तिविलास, परमार्थप्रकाश, भगवान् नित्यानन्द (गुरु-जीविनी),

---

[1] डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी का कालिदास कालदास बताना (कालिदास की लालित्य-योजना), पुष्य या पुण्ड को पुष्पदन्त समझना (हिन्दी साहित्य), पृथ्वीराजरासो के शुक-शुकी सम्वाद वाले प्रकरणों को ही भूल मानना ('हिन्दी साहित्य' का आदिकाल') इत्यादि सतही कल्पना पर आधृत बिन्दु उनके विश्वस्तरीय विद्वानों की पंक्ति में प्रतिष्ठित नहीं होने देते। उन पर कोई मानक ग्रन्थ नहीं आ सका।

[2] 'दिव्य' जी यहाँ 'खजुराहा' लिखते हैं, किन्तु सर्वत्र खजुराहो के विरोधी नहीं।

[3] 'बापू' 'गाँधीचरितमानस', 'जगदालोक' जैसे काव्यों एवं महाकाव्यों के सदृश 'गाँधी-पारायण' लिखना भी बेक़ार गया। गाँधी के अंग्रेज़ों द्वारा चढ़ाए गए और खिलाफत आन्दोलन की घोर सांप्रदायिकता द्वारा बढ़ाए गए अवसरवादी व्यक्तित्व में महाकाव्य-नायक बनने का सामर्थ्य कहाँ? "मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी" लोकाक्ति मात्र एक विराट् सत्य है और वही लोकप्रिय हो सका। नेहरू, इन्दिरा, इत्यादि पर भी काव्य एवं महाकाव्य रचे गए जो निराधार चाटुकारिता के कारण जन्म के साथ ही मर गए। श्री रुद्रनाथ पांडेय 'रुद्र' लिखित 'महारणंजय' अवश्य एक उल्लेख महाकाव्य है, जिसके नायक लालबहादुर शास्त्री हैं। नायक-गरिमा के बिना महाकाव्य असफल ही रह सकता है तथा यह गरिमा सरकारी प्रचार नहीं स्थापित कर सकता अन्यथा नेहरू, इन्दिरा, संजय, राजीव, सोनिया इत्यादि भीषण निन्दा के पात्र न होते। ईसा की बीसवीं सदी में लिखे गए अधिकांश महाकाव्य नाहक़ ही लिखे गए। मैंने तो कवियों को 'लोकमान्य', "लौहपुरुष", 'विरोध' जैसे खंडकाव्यों का ही परामर्श दिया है; 'समुद्रगुप्त' जैसे महाकाव्य-नायक तक पर खंडकाव्य रचने को ही कहा। 'अपाला' तो खंडकाव्य या उपन्यासिका का विषय है ही। हर्ष है कि ऐसे कुछ काव्य एवं उपन्यास प्रकाशित भी हुए हैं।

मुक्तेश्वरी (गद्यगीत), लल्लेश्वरी (कश्मीर की सन्त-कवयित्री एवं कश्मीरी-कविता की जननी लल्लेश्वरी या लल्ल के सृजन का गद्यगीत-अनुवाद) प्रभृति ग्रन्थ हिन्दी में रचे तथा देश-विदेश में प्रवचन भी हिन्दी में ही किए। मुक्तानन्द के ग्रन्थों में योग कला बन गया है और गद्य कविता। उनके ग्रन्थ साहित्य की निधियाँ भी हैं, प्रेरणा के स्रोत भी। उनके चरणों में रविशंकर जैसे विश्वविख्यात संगीतकार (वादक), नगेन्द्रसिंह जैसे विश्वविख्यात न्यायविद्, पृथ्वीराज कपूर जैसे भारतविख्यात अभिनेता, नर्गिस जैसी भारतविख्यात अभिनेत्री, दिनकर जैसे प्रख्यात हिन्दी-कवि, यशपाल जैन एवं श्रीपति लाल दास जैसे हिन्दी-पत्रकार, यहाँ तक कि बच्चन जैसे ''प्रार्थना मत कर मत कर मत कर'' का आह्वान करने वाले लोकप्रिय कवि तक, सभी शान्ति प्राप्त करते थे। देश-विदेश के असंख्य नर-नारी (हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, पारसी, यहूदी, अमेरिकी-आदिवासी, भारतीय-आदिवासी, हब्शी इत्यादि।) उनकी कृपा से आत्मासाक्षात्कार का आनन्द प्राप्त करते थे। 'स्वामी मुक्तानन्द' शीर्षक बृहत् एवं सुन्दर ग्रन्थ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर सम्यक् प्रकाश तो डालता ही है, सिद्धयोग का स्तरीय विवेचन भी प्रस्तुत करता है। कवि रामनगीनासिंह 'विकल' ने उन पर 'अर्चना' एवं 'गुरुदेव-गाथा' शीर्षक ग्रन्थ लिखे हैं। उन पर 'परम सन्त की पावन पुण्य कहानी' शीर्षक काव्य भी प्रकाशित हुआ है। दर्शनशास्त्र के विद्वान् डॉ. लल्लनप्रसाद सिंह के अनुसार, मुक्तानन्द जैसे महात्मा और ऋषि ही 'एक विश्व और विश्वमानव' के अभ्युदय का पथ प्रशस्त करते हैं। मेरी समझ में, योग का अर्थ ही टोटल हैः योगी टोटलिस्ट होता है जो जीव, जगत् एवं जगन्नियंता में 'एक' का दर्शन करता भी है, कराता भी है। स्वामी मुक्तानन्द परमहंस का सन्देश है : 'हे मेरे आत्मीय जनो, आप महामानव बनो।...मानव के अन्दर एक ऐसी दिव्य शक्ति है जो ऋषियों में, ईसा में, मूसा में, गोपियों में, कृष्ण में, राम में भी थी। उस शक्ति को प्रकट करके एक बार देख लिया, तो सब जगह स्वर्ग-ही-स्वर्ग है। इसीलिए पहले आपको खोजो, आपको ढूँढ़ो, आपको ध्याओ, आपको पूजो। आपको जब आप मिलेगा, तब सारा संसार आपका ही बनेगा।''

स्वामी मुक्तानन्द परमहंस का सिद्धयोग हठयोग अथवा कुंडलिनीयोग से मिलता-जुलता है, जिसमें पायु-उपस्थ-मध्य सुप्त अधोमुखी कुंडलिनी को तप द्वारा जागृत कर मूलाधार इत्यादि चक्रों का सुषुम्नामार्ग द्वारा वेधन कराते सहस्रार चक्र तक पहुँचाना परमानन्दविधायिनी सिद्धि है, यही कुंडलिनी-सहस्रार-योग शक्ति-शिव-योग है, जीवात्मा-परमात्मा-योग है—किन्तु सिद्धयोग में जटिल एवं क्लिष्ट साधना पर सिद्ध-योगी गुरु की कृपा अथवा शक्तिपात को वरीयता प्रदान की गई है।[1] महान् योगी होते हुए भी मुक्तानन्द ने भक्ति का महत्त्व प्रतिपादित किया है। वे 'हरे राम' जैसे कीर्तनों का नेतृत्व भी करते थे। महान् भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद आधुनिक विश्व में चैतन्य महाप्रभु के नृत्य-गायन-सम्पन्न शरीरोर्जापूर्ण एवं मानसोल्लाससंपृक्त 'हरे राम हरे कृष्ण' आन्दोलन के प्रचारक-प्रसारक के रूप में अमर हैं। वे गौड़ीय सम्प्रदाय के भक्ति-आचार्य थे। किन्तु मुक्तानन्द ने योगी होकर भी भक्ति का महत्त्व आँका; वे न तो सम्पूर्णानन्द एवं प्रसाद के सदृश भक्ति-विगर्हणा के द्वैताभास से ग्रस्त थे, न बच्चन के सदृश प्रार्थना-निषेध की अमनोवैज्ञानिक-अव्यावहारिक अहंभ्रान्ति से ग्रस्त। उनका जीवन-सन्देश पावन भी है, पूर्ण भी (भले ही यत्र-तत्र अन्धविश्वासपूर्ण चमत्कारवाद का आभास कराता हो—किन्तु यह दोष तो राम, कृष्ण, मूसा, ईसा, मोहम्मद, नानक सभी के अनुयायियों ने ओढ़ रखा है)।

देवेन्द्र सत्यार्थी

'धरती गाती है', 'धीरे बहो गंगा', 'बेला फूले आधी रात' एवं 'चित्रों की लोरियाँ' के सरस-गहन लोकगीत-विवेचक-विश्लेषक, 'चट्टान से पूछ लो', 'चाय का रंग', 'सड़क नहीं बन्दूक', 'घूँघट में गोरी जले' इत्यादि के कहानीकार, 'बन्दनवार' के कवि, 'एक युग एक प्रतीक', 'रेखाएँ बोल उठीं', 'क्या गोरी क्या साँवरी' एवं 'कला के हस्ताक्षर' के रेखाचित्रकार एवं निबन्धकार, 'रथ के पहिए', 'कठपुतली', 'ब्रह्मपुत्र', 'कथा कहो उर्वशी', 'तेरी क़सम सतलुज', 'घोड़ा बादशाह', इत्यादि के उपन्यासकार तथा 'चाँद सूरज के बीरन' 'नीलयक्षिणी एवं सफ़रनामा' के आत्मकथाकार स्व. देवन्द्र सत्यार्थी (28 मई, 1908, भदौड़, जनपद संगरूर, पंजाब, आरम्भिक नाम युधिष्ठर, तदनन्तर देव इन्दर वत्ता, निवास दिल्ली) पंजाबी एवं उर्दू के भी बहुविधाकार साहित्य-स्रष्टा थे। उन्होंनें 'मीट माई पीपूल' (लोकसाहित्य) शीर्षक अंग्रेज़ी-ग्रन्थ भी लिखा है तथा हिन्दी से पंजाबी, उड़िया से पंजाबी, बांग्ला से पंजाबी में ग्रन्थानुवाद भी किए हैं। वे अथक यायावर, व्यापक हिन्दी-क्षेत्र तथा राष्ट्र के अनेकानेक भागों से लेकर लंका, पाकिस्तान इत्यादि तक के लोकसाहित्य के

---

1. मैंने 'ध्यान के गान' (कविता) एवं 'योग के अद्भूत अनुभव' (दैनंदिनी) ग्रन्थों में पूज्य मुक्तानन्द जी एवं उनकी साधना-पद्धति पर पर्याप्त प्रकाश डाला है तथा 'संस्मरण, श्रुतिसंस्मरण और जनसंस्मरण' ग्रन्थ में उनसे हुए सत्संग का वर्णन किया है।

मर्मी विवेचक-विश्लेषक, अधुनातन कहानीकार ('अकहानीकार' भी) अधुनातन उपन्यासकार एवं प्रसंगतः कवि भी हैं। रवीन्द्र, गाँधी, इक़बाल इत्यादि से लेकर प्रसाद, रामचन्द्र शुक्ल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि तक से जुड़े देवेन्द्र सत्यार्थी अपने यायावरी लोकसाहित्यमय जीवन एवं जटाश्मश्रुधारी विलक्षण व्यक्तित्व के कारण पुराण-पुरुष प्रतीक होते हैं। मन्टो, साहिर, पोट्टेकाट्ट इत्यादि ने उन पर लिखा है। मैं 'नीलयक्षिणी' को देवेन्द्र सत्यार्थी की प्रतिनिधि रचना एवं श्रेष्ठतम कलाकृति मानता हूँ, क्योंकि इसमें उनके लोकभारती रूप, अकहानीकार-रूप, अउपन्यासकार-रूप एवं अकवि-रूप का अभूतपूर्व समाहार दृष्टिगोचर होता है। डॉ. मोहनलाल श्रीवास्तव के अनुसार 'आत्मकथात्मक-उपन्यास' तथा श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन (जिन्हें यह पठनीय एवं संग्रहणीय सचित्र कृति समर्पित है—एक 'पद्मश्री' की कृति दूसरे 'पद्मश्री' को) के अनुसार 'भानमती का कुनबा' होते हुए भी 'नीलयक्षिणी' विशृंखल प्रतिभा की एक असाधारण स्मारिका है। (दोनों उद्धरणों में शब्द मेरे हैं।)

देवेन्द्र सत्यार्थी का सीमातीत चिन्तन और उनकी धरती-आसमान के कुलाबे मिलाने वाली शैली दुरूह एवं जटिल है, किन्तु वह ''शैली स्वयं मनुष्य है''[1] (बफ़न) की दृष्टि से एक असाधारण उपलब्धि भी है। उनका सार सृजनात्मक साहित्य तत्त्वतः उनकी आत्मकथा है तथा सारा विवेचनात्मक साहित्य आत्मकथात्मक। अपने सारे साहित्य में केवल वे प्रमुख हैं। और वे व्यक्तिवादी नहीं हैं! उनके विशद एवं मौलिक मानवतावाद में एकविश्ववाद साकार होता है। वे अदब के फ़कीर हैं। उन पर 'देवन्द्र सत्यार्थीः तीन पीढ़ियों का सफ़र' (सं. प्रकाश मनु, स. स. संजीव ठाकुर) ग्रन्थ पठनीय तो है पर पर्याप्त नहीं।

दिनकर

यथार्थवादी युग (1940 ई.) के प्रमुख कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' (23 सितम्बर[2] 1908—24 अप्रैल, 1974, जन्मस्थान सिमरिया[3], ज़िला बेगूसराय, बिहार) को अपने जीवन-काल में ही अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई थी। 1956 ई. में 'सस्कृति के चार अध्याय' शीर्षक पाश्चात्य पद्धति के ग्रन्थ पर साहित्य अकादमी पुरस्कार, 1959 ई. में पद्मभूषण का अलंकार, 1973 ई. में 'उर्वशी' पर ज्ञानपीठ पुरस्कार, निधन पर राजकीय सम्मान इत्यादि उनके प्रभाव के निदर्शन हैं। बौद्धिककाल (1800 ई. से) के सुधारवादी युग (1850-1900 ई.) में गद्य की प्रधानता रही, यद्यपि भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन प्रभृति ने अच्छी कविता भी लिखी है। आदर्शवादी युग हिन्दी-गद्य का स्वर्ण-युग था, यद्यपि युगप्रतीक मैथिलीशरण एवं हरिऔध और युगमुक्त रत्नाकर ने महान् काव्य-सृजन किया। स्वच्छन्दतावादी युग काव्य-प्रधान था, जिसमें प्रसाद, निराला एवं पन्त जैसे महाकवियों ने खड़ीबोली-कविता को विश्व-स्तर प्रदान किया तथा महादेवी ने भी उत्कृष्ट सृजन किया। यथार्थवादी युग में काव्य एवं गद्य दोनों का ही समान विकास हुआ। इस युग की कविता को सर्वाधिक सम्पन्न करने वाले कवि दिनकर, बच्चन, अज्ञेय एवं मुक्तिबोध हैं, जिनमें गुण एवं परिमाण, प्रभाव एवं परिणाम की प्रायः सारी ही दृष्टियों से दिनकर का स्थान सर्वोपरि है। दिनकर के वीरकाव्य-प्रणयन (परशुराम, भीष्म, कर्ण इत्यादि पर) का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव रामखेलावन वर्मा (धर्मान्तरण के बाद विनीत विक्रम बौद्ध) कृत 'चन्द्रगुप्त मौर्य', आरसीप्रसाद सिंह कृत काव्य 'वीरवर कुँवरसिंह' (जिन पर हरेन्द्रनारायण, चन्द्रशेखर मिश्र, सर्वदेव तिवारी 'राकेश' इत्यादि ने भी काव्य-रचना की है), जियालाल आर्य कृत काव्य 'विरसा' (स्वातन्त्र्य-योद्धा विरसा मुंडा), स्वर्णकिरण कृत काव्य 'भीष्म' इत्यादि पर पड़ा है। अनेक महाकाव्यों एवं काव्यों के यशस्वी प्रणेता महाकवि रामदयाल पाण्डेय कृत काव्य 'अशोक' में शान्ति का पक्ष प्रस्तुत किया गया है। बिहार ने विद्यापति के अनन्तर दिनकर के रूप में अपना दूसरा महाकवि प्रदान किया है। संयोगात् दिनकर का उदय गंगा-पावन सिमरिया में हुआ जिसे छोटी-काशी कहा जा सकता है, जहाँ प्राणत्याग-हेतु विद्यापति उत्सुक थे, यद्यपि वाजितपुर आते-आते ही चल बसे!

दिनकर यथार्थवादी युग की समाजपरक काव्यधारा वादमुक्त कवि हैं, जबकि मुक्तिबोध इसी धारा के वादबद्ध कवि हैं। मुक्तिबोध की कविता में समाजवादी या साम्यवादी क्रान्ति का बहुत सशक्त एवं शिल्पसम्पन्न आह्वान प्राप्त होता है। उनकी कविता भयानक रूप से शक्तिमयी हैः लगता है, कोई क्षत-विक्षत युवक जीर्ण-शीर्ण परिधान धारण किए हाथ में मुंडारा लिए यत्र-तत्र-सर्वत्र आग लगाते हुए दौड़ा चला जा रहा है और पुलिस सीटियाँ बजाते तथा चिल्लाते हुए उसका विकट पीछा कर रही है! मुक्तिबोध मार्क्स से भी

---

1. कहीं-कहीं जन्मतिथि 30 सितम्बर लिखी मिलती है।
2. सिमरिया प्रसिद्ध बरौनी के निकट है।
3. मैंने स्वयं उनके हिन्दी-भाषण में यह सुना था।

अधिक मार्क्सवादी एवं लेनिन से भी अधिक लेनिनवादी थे—आज जब मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद अपने जन्मों एवं प्रभावों के दोनों क्षेत्रों में ही धर्म के प्रति अमनोवैज्ञानिक पूर्वाग्रह एवं व्यक्ति के प्रति अप्राकृतिक उपेक्षा-भाव के कारणों से कालातीत हो चुके हैं तब मुक्तिबोध की प्रासंगिकता भी प्रश्नचिह्नित हो गई है। मुक्तिबोध समाजगत सृजनात्मक प्रतिभा के प्रतीक नहीं है—वे ध्वंसात्मक क्रान्तिकारी हैं। मार्क्स एवं लेनिन तक ध्वंसात्मक क्रान्तिकारिता अथवा अव्यावहारिक ध्वंसवादिता के विरोधी थे। मुक्तिबोध को क्रान्तिनिष्ठा में अपार शक्ति विद्यमान है। वे शोषण, प्रपीड़न, पाखंड इत्यादि पर विक्षिप्त होकर भीषण प्रहार करते हैं। जीवन के अन्तिम अवसर पर वे विक्षिप्त हो भी गए थे। साम्यवादी राहुल प्रभृति भी विक्षिप्त हुए—साधारण स्तर पर युवा कवि गोरख पांडे ने आत्महत्या की। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी-कविता एवं गद्य साहित्य का साम्यवाद स्वस्थ एवं सबल नहीं रहा। दिनकर किसी वाद के फेर में नहीं पड़े। उनकी क्रान्तिकारिता सुविचारित है, जिसे सशक्त सांस्कृतिक पृष्ठभूमि भी प्राप्त है, जिसका ध्वंसवाद भी सृजनात्मकताविहीन नहीं है :

कह दे शंकर से आज करें वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार,
सारे भारत में गूँज उठे हर-हर-बम का फिर महोच्चार।
ले अँगड़ाई, उठ, हिले धरा, कर निज विराट् स्वर में निनाद;
तू शैलराट् हुंकार भरे, फट जाय कुहा, भागे प्रमाद!

(हिमालय के प्रति)

चढ़ कर जुनून-सी चलती हूँ मृत्युंजय वीर कुमारों पर,
आतंक फैल जाता कानूनी पार्लमेन्ट, सरकारों पर;
नीरो के जाते प्राण सूख मेरे कठोर हुंकारों पर,
कर अट्टहास इठलाती हूँ ज़ारों के हाहाकारों पर;
झंझा-सी पकड़, झकोर, हिला देती दंभी के सिंहासन।
झन्-झन्-झन्-झन्-झन्-झनन्-झनन्

(विपथगा)

दिनकर का क्रान्तिवाद संस्कृतिपुष्ट होने के कारण विशेष संवेद्य है। भारतीय साम्यवादियों ने अपनी संस्कृति पर ही प्रहार कर अपनी भयावह क्षति की है, अपने पैरों पर ही कुल्हाड़ी मारी है। वे भूल गए कि मार्क्स कहा करता था, ''धन्यवाद ईश्वर को कि मार्क्स मार्क्सवादी नहीं हैं''! वे भूल गए कि लेनिन स्वच्छन्दतावादी कवि पुश्किन (जो एक सुन्दरी के लिए द्वन्द्वयुद्ध में मरा) का प्रेमी एवं आदर्शवादी उपन्यासकार टॉल्स्टॉय (जो कॉउंट या सामन्त था तथा इतना अहंवादी कि मरणासन्न डॉस्टाएव्स्की को कई घंटे अपना माहात्म्य समझाता रहा) का सम्मानकर्त्ता थां (क्योंकि टॉल्स्टॉय की आदर्शवादी कृतियाँ सर्वहारा-क्रान्ति में सहायक थीं)। वे भूल गए कि महान् रूसी भाषविद् एवं रामचरितमानस के अमर अनुवादक ए. जी. वारान्निकोव तुलसी के प्रेमी थे (जिन्हें द्वितीय विश्व-युद्ध के अनुवाद-काल में सोवियत सरकार ने भारी सुविधाएँ एवं संरक्षा प्रदान की थी) तथा उनके पुत्र पी. वारान्निकोव ने तुलसी को 'विश्वकवि' ही नहीं प्रत्युत 'जनकवि' भी माना है।[1] वे यह तक भूल गए कि रूसी भाषाविद् एवं हिन्दी-विद्वान् चेलीशेव मैथिलीशरण गुप्त को प्रगतिशील कवि मानते हैं। वे यह भी भूल गए कि माओ त्से-तुंग हनुमान् के भक्त थे तथा उन्होंने 'महाकपिराज' जैसी अनेक कविताएँ लिखी हैं। कोई साम्यवादी साहित्यकार जन-जीवन में वैसा प्रवेश नहीं पा सका जैसा विद्यापति, कबीर, नानक, सूर, मीराँ (मीरा), तुलसी, रहीम, रसखान, मैथिलीशरण, प्रेमचन्द, निराला, दिनकर, क्योंकि उनकी जड़ें भारत में नहीं रहीं, वे भारतीय जीवन का परिहास करते रहे हैं, वे भारतीय संस्कृति की निन्दा करते रहे हैं तथा उनका जीवन-यापन किसी भी दृष्टि से जनवादी नहीं रहा—वे बूर्ज्वा-जीवन जीकर सर्वहारा का खोखला नारा लगाते रहे हैं। भारतीय साम्यवादी पहले ब्रिटिश-विरोधी रहे, फिर स्टालिन के मित्र राष्ट्रों के साथ मिलकर हिटलर, मुसोलिनी और तोजो के विरुद्ध लड़ने पर ब्रिटिश-भक्त बनकर 1942 ई. के स्वातन्त्र्य संग्राम से विरत रहे तथा गाँधी को गालियाँ देने में अंग्रेज़ों के कान काटते रहे, मुस्लिम-तुष्टीकरण की दौड़ में कांग्रेस को पीछे ढकेलते पाकिस्तान का समर्थन करते रहे, स्वतन्त्र भारत में पंचमांगी मुस्लिम लीग से मिलकर केरल में सत्ता का स्वाद लेते रहे, कभी पूँजीवादी कांग्रेस तो कभी जातिवादी जनता दल का समर्थन करते रहे!

---

[1] मैंने इन कविताओं के हिन्दी-अनुवाद देखे हैं।

दिनकर एक अस्मितासम्पन्न कवि थे। उन्होंने क्रान्ति की प्रेरणा हिमालय, शंकर, ('हिमालय के प्रति' में विशेष तथा अन्यत्र सामान्यतः), भीष्म (कुरुक्षेत्र), कर्ण (रश्मिरथी), परशुराम (परशुराम की प्रतीक्षा) इत्यादि सभी महान् तत्वों से ग्रहण की तथा क्रान्तिकवि एवं राष्ट्रकवि का गौरव प्राप्त किया। अतः दिनकर का क्रान्तिकाव्य मुक्तिबोध के क्रान्तिकाव्य से अधिक प्रभावी एवं अधिक व्यवस्थित है, भले ही मुक्तिबोध का क्रान्तिकाव्य अधिक नव्य एवं अधिक शिल्पसम्पन्न हो। क्रान्ति चाँद का मुँह टेढ़ा किए बिना भी हो सकती है। मुक्तिबोध के नेब्यूला[1] एवं ओरॉंगउटॉंग[2] जैसे प्रतीक पिछड़ी और अशिक्षित भारतीय जनता के पल्ले नहीं पड़ सकते। आकाशवाणी-अधिकारी रहे एक मुक्तिबोध-शोधकर्त्ता से मैंने उन दिनों ओरॉंगऊटॉंग का अभिप्राय पूछा जिन दिनों 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' पढ़ रहा था। उत्तर मिला, ''यह एक प्रतीक है!'' यह 'रहस्य' मुझे ज्ञात था अन्यथा पूछता ही क्यों? मैं समझता था कि मुक्तिबोध पर ही शोध करने वाले यह महानुभाव प्रतीक स्पष्ट कर देगें। अतः फिर पूछा ''प्रतीक तो है ही, पर किसका?'' वे मुसकराए और रहस्यगर्भित स्वर में बोले, ''बहुत गम्भीर प्रतीक है!'' अब मैं उन्हें क्या कष्ट देता? मुक्तिबोध एक सशक्त कवि हैं, किन्तु उनकी कविता न अनुभूति की दृष्टि से जनवादी है, न अभिव्यक्ति की दृष्टि से। वह केवल क्रान्ति-मनोरंजिनी बूर्ज्वा-बुद्धि को आकृष्ट करके चुक जाती है। दूसरे, मुक्तिबोध की कविता के आयाम संकीर्ण हैं, दिनकर के स्फीत। दिनकर क्रान्ति के कवि भी हैं, कान्ति के भी। केवल क्रान्ति में चुक जाना जीवनकाव्य नहीं, क्योंकि क्रान्ति जीवन का एक लघु साधन मात्र है। गुण, परिमाण एवं प्रभाव की किसी भी दृष्टि से दिनकर मुक्तिबोध से श्रेष्ठतर कवि सिद्ध होते हैं।

कवि दिनकर : दो रूप

दिनकर के कवि के दो रूप हैंः एक सहज-ओजस्वी दिनकर जो 'रेणुका', 'हुंकार', 'रश्मिरथी', 'कुरुक्षेत्र' एवं 'परशुराम की प्रतीक्षा' का क्रान्त-कवि है तथा दो सुकुमार-कोमल दिनकर जो 'रसवंती' एवं 'उर्वशी' का कवि है। प्रथम में वह मैथिलीशरण, माखनलाल एवं नवीन से प्रभावित प्रेरक एवं प्राणवान कवि है, द्वितीय में प्रसाद एवं पन्त से प्रभावित काम की प्रतिष्ठा को गतिशील करने एवं भाषा-शैली में नूतन मार्दव लानेवाला कवि है। दिनकर के कृतित्व का एक तृतीय पक्ष भी हैः विद्वान् का, जिसके स्मारक 'संस्कृति के चार अध्याय', 'मिट्टी की ओर' एवं 'पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण' प्रभृति ग्रन्थ हैं। प्रस्तुत रेखाएँ दिनकर को स्पष्ट करती हैं :

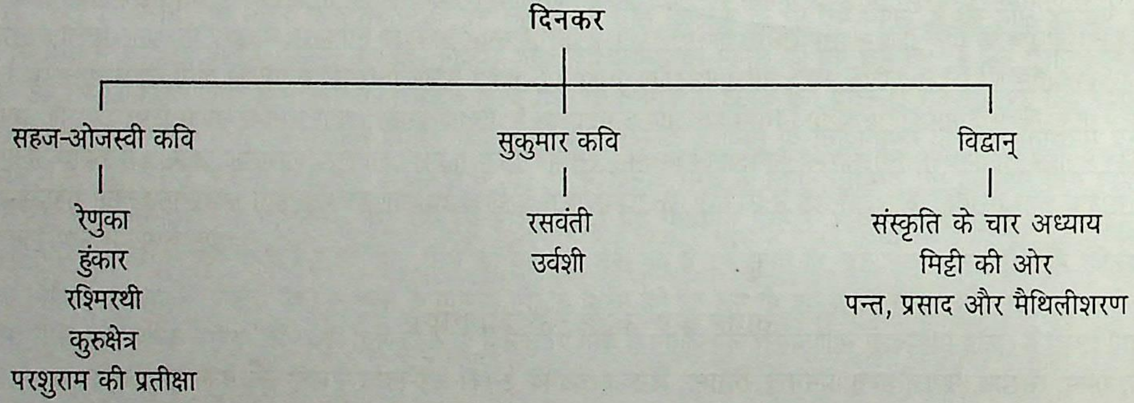

दिनकर के गद्य-ग्रन्थ उनके एक सजग एवं जागरूक इतिहास-प्रेमी, संस्कृति-व्याख्याता एवं आलोचक होने की सूचना देते हुए भी कोई गहन विवेचन या सूक्ष्म विश्लेषण नहीं कर पाते। 'संस्कृति के चार अध्याय' एक नेता की कृति लगती है, विद्वान् की नहीं; अधिक-से-अधिक हिन्दी की 'डिस्कवरी ऑफ़ इंडिया'! भूमिका भी नेहरू की है! दिनकर की कांग्रेस-कॉम्युनिस्ट-मार्का मुस्लिम प्रस्तुति वस्तुपरक नहीं है। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला जैसे ब्राह्मण-कन्या बलात्कारी एवं अत्याचारी कुख्यात व्यक्ति को 'मेरा प्यारा सीराज़ कहाँ?' की भावुकता में लपेटना तथा अवध के नवाब वाजिदअली शाह जैसे शताधिक नारीभोक्ता कामुक एवं व्यसनग्रस्त व्यक्ति का

---

[1] घन, धूलि या वाष्प की क्रिया-प्रतिक्रिया के कारण उजला या अँधेरा क्षेत्र; दूरवर्ती ग्रहों एवं तारकों के घनों पर पड़नेवाले प्रभाव के कारण उजला क्षेत्र।

[2] विशाल, प्रलंबबाहु बोर्निओ एवं सुमात्रा वानर, जिसे मलेसिया में मानुष ही कहा जाता है।

संवेदनशील उल्लेख सर्वथा अनैतिहासिक है, क्योंकि दोनों के पतनों पर जनता प्रसन्न हुई थी, जिसका प्रमाण बंकिम, शिवसिंह इत्यादि का प्रभूत साहित्य है। बहादुरशाह ज़फ़र के पतन पर दिल्ली की जनता ने विजयी सेना पर पुष्प-वर्षा की थी! राजनैतिक उत्थान-पतन ठोस कारणों से होते हैं, उमंगों एवं तरंगों के बल पर नहीं। अंग्रेज़ों की भारत में सफलता का कारण कोटि-कोटि हिन्दू-जनता का मुस्लिम मतांधता, विलासिता एवं अत्याचार के प्रति घृणा-भाव तथा मुसलमानों के किसी भी कीमत पर मराठा या हिन्दू-राज्य की स्थापना का विरोध था, जिसके लिए वे (वली नामक फ़क़ीर के माध्यम से) विदेशी अब्दाली तक को आक्रमण के लिए आमन्त्रित करने की पंचमांगति भी कर चुके थे। केरल के मालाबार क्षेत्र में हिन्दुओं का भयंकर नरसंहारकर्त्ता, एक दिन में पचास हज़ार हिन्दुओं का बलात् धर्मांतरणकारी, ब्राह्मणों को स्त्रस्त-ध्वस्त कर गोमांस खिलाने वाले नरपशु टीपू सुल्तान ने अफ़गानिस्तान के शाह को एक ऐसे ही कार्य के लिए लिखा था (बाद में फ्रांसीसियों से साँठ-गाँठ की थी, नैपोलिअन बोनापार्ट से लिखत-पढ़त की थी)। आलोचक-रूप में दिनकर आदर्शवादी युग (द्विवेदी-युग) एवं मैथिलीशरण की समीक्षा में सन्तुलित भी हैं, वस्तुपरक भी।

'समाधेनी' ऋग्वेद की उन ऋचाओं को कहा जाता है जो यज्ञाग्नि प्रज्जवलित करते समय पढ़ी जाती थीं—दिनकर के इस कवितासंग्रह का नाम 1942 ई. के बीच रची गई कविताओं को राष्ट्र की विषम परिस्थितियों से संपृक्त करने में सक्षम है। दिनकर कृत 'बापू' चार खंडों में विभक्त महाकविता है जो गाँधी की 1946-47 ई. की नोआखाली-यात्रा से महायात्रा तक के आयाम विवृत करती है। सियारामशरण कृत 'बापू' काव्य, पन्त कृत 'बापू' कविता, सोहनलाल द्विवेदी कृत 'बापू' कविता, गोपालशरणसिंह कृत 'जगदालोक' प्रबन्धकाव्य, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' कृत 'गाँधी-पारायण' महाकाव्य, नरेश मेहता कृत 'प्रार्थना-पुरुष' खंडकाव्य इत्यादि की परम्परा में दिनकर कृत 'बापू' को भी स्थान प्राप्त होना चाहिए। इस दिशा में 'गाँधीचरितमानस' शीर्षक विद्याधर महाजन कृत अवधी को भी विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए। गाँधी पर रचित सारे प्रबन्धकाव्यों का स्तर यह स्पष्ट करता है कि वे महाकाव्य-नायक या खंडकाव्य-नायक नहीं बन सकते। गाँधी पर सर्वोत्तम सृजन क्रमशः पन्त एवं सोहनलाल की कविताओं के रूपों में प्राप्त होता है, जो यह स्पष्ट करता है कि उनका छोटा-सा-तन-मन छोटी रचना में ही फ़ब सकता है।

क्रान्तिकारी कवि

दिनकर में क्रान्तिकारिता एवं व्यावहारिकता का अद्भुत समन्वय था (पंचम जॉर्ज का जयगान गाने वाले मैथिलीशरण से भी अधिक, क्योंकि वे तक 1942 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम में जेल गए थे, ब्रिटिश-युवराज हेतु 'जय गण मन' चारणगान-गायक रवीन्द्र से भी अधिक क्योंकि उन्होंने जलियाँवाला-हत्याकांड पर 'सर' की पदवी वापस कर दी थी, प्रेमचन्द तक से भी कुछ अधिक क्योंकि उन तक ने सरकारी नौकरी छोड़ दी थी), जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश-काल में वे जेल से बचे रहे जबकि अन्य राष्ट्रकवि (गुप्त, माखनलाल, नवीन, सुभद्रा, सोहनलाल इत्यादि) जेल गए थे। भूतपूर्व केन्द्रीय मन्त्री, सांसद, प्रशासक-नेता एवं 'हिन्दुस्तान'-सम्पादक पत्रकार स्व. श्री चन्दूलाल चन्द्राकर ने मुझे बताया था कि दिनकर की ब्रिटिश-राज्यभक्ति निन्दनीय स्तर तक उतरी थी। कांग्रेस सरकार की हिन्दी-घातिनी नीति के विरोध में पद्मभूषण ठुकरानेवाले पन्त, महादेवी, जैनेन्द्र इत्यादि से वे भिन्न ही बने रहे (क्योंकि सात-सात बेटियाँ थीं और भूमिहारों में दहेज की स्थिति भयावह है)। कांग्रेसी होने के कारण वे गाँधी-भक्त थे। राजेन्द्र प्रसाद के वे भारी प्रशंसक थे। नेहरू के वे मित्र थे। 'संस्कृति के चार अध्याय' की भूमिका में नेहरू ने उनके लिए 'मेरे मित्र' शब्दों का प्रयोग किया है। बिहार-राजनीति में उनकी अच्छी पैठ थी। भूमिहार नेताओं से उनकी घनिष्ठता थी। किन्तु कहीं-कहीं उनका सहज क्रान्तिकारी विद्रोह कर ही गया है; 1940 ई. के आसपास की राष्ट्रदशा पर गाँधी की अहिंसा का कठोर प्रत्याख्यान (जिसमें 'क्लीबधर्म' जैसे कठोर शब्द का प्रयोग अतीव प्रशस्य है—जब कृष्ण ने अर्जुन जैसे महाकाव्य-नायक के लिए ''क्लैब्यं मा स्म गमः'' का प्रयोग किया है तब दिनकर का युग-नेता गाँधी के लिए 'क्वलीबधर्म' का प्रयोग अनुचित कैसे हो सकता है!) दिनकर के उपनाम को सर्वथा सार्थक सिद्ध करता हैः

जब रहे सकल प्राचीर काँप तब तू भीतर क्या सोच रहा
है क्लीबधर्म का पृष्ठ खोल? ओ द्विधाग्रस्त शार्दूल[1], बोल!

---

[1] गाँधी के लिए 'शार्दूल' शब्दा का प्रयोग बुद्ध के लिए 'शाक्यसिंह' तथा ईसा के लिए 'क्राइस्ट द टाइगर' (टी. एस. एलिअट) जैसे प्रयोगों के सदृश 'सज्जात्मक' मात्र है।

गाँधी के असहयोग आन्दोलन के वापस लेने पर राष्ट्र ने आक्रोश व्यक्त किया था। उनका सविनय अवज्ञा आन्दोलन भी व्यर्थ गया। फलतः 1942 ई. के 'भारत छोड़ों आन्दोलन' में राष्ट्र ने हिंसा का सहारा लिया जो ''शठे शाठ्यं समाचरेत्'' की चिरन्तन नीति के अनुरूप थी। दिनकर का गाँधी पर क्लीबधर्मिता का आरोप इतिहाससम्मत है।

इसी प्रकार 'पंचशील' की पीनक में चीन द्वारा एकतरफ़ा परास्त किए गए नेहरू के लिए भी, व्यक्तिगत मैत्री को बालाए-ताक करते हुए, दिनकर ने 'क्लीबधर्म' शब्द का ही प्रयोग किया है; उनकी 'परशुराम की प्रतीक्षा' एक चिरस्मरणीय ऐतिहासिक कविता है :

यह उत्तेजित साकार, क्रुद्ध भारत है, यह और नहीं कोई, विशुद्ध भारत है।
पापों पर मनकर प्रलय-बाण छूटेगा, यह क्लीबधर्म पर बाज़-सदृश टूटेगा।

दिनकर-साहित्य की विदुषी स्व. डॉ. सावित्री सिन्हा ने उन पर 'युगचारण दिनकर' लिखकर उनकी सर्वव्यापी युगबद्धता का संकेत किया, तथापि वे युगद्रष्टा भी थे, जो 'ओ द्विधाग्रस्त शार्दूल बोल' एवं 'परशुराम[1] की प्रतीक्षा' जैसी कविताओ से लेकर 'रश्मिरथी' एवं 'कुरुक्षेत्र' जैसे प्रबन्धकाव्यों तक स्पष्टतः विवृत होता है। डॉ. सावित्री सिन्हा ने 'दिनकर' शीर्षक उपयोगी ग्रन्थ भी सम्पादित किया। डॉ. यतीन्द्र तिवारी ने 'दिनकर की भाषा' पर शोधकार्य किया है। दिनकर पर उनके जीवनकाल में ही अनेक शोधकार्य हो चुके थे, जिनकी परम्परा अप्रतिहत रही है।

रश्मिरथी

दिनकर मानव-समता की प्राप्ति हेतु क्रान्ति के अग्रणी आवाहक थे। 'रश्मिरथी' में कर्ण के माध्यम से उन्होंने जाति-प्रथा की व्यापक एवं सतर्क विगर्हणा की है, विवाह-पूर्व की संतति के त्याग का प्रखर एवं हृदयद्रावक प्रत्याख्यान किया है। 'वेणीसंहार' नाटक में भट्ट नारायण ने जो आह्वान किया था, 'रश्मिरथी' में दिनकर ने उसे पराकाष्ठा प्रदान की है :

सूतो वा सूतपुत्रो वा यो वा को वा भवाम्यहम्!
दैवायत्तं कुले जन्म मदायत्तं तु पौरुषम्।।

'रश्मिरथी' का आकार-प्रकार महाकाव्य का है, जिसमें महाभारत के दुर्योधनपक्षीय होने के कारण धीरोद्धत प्रतीत हो सकनेवाले महारथी एवं महादानी कर्ण को धीरोदात्त नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया है, परशुराम के महान् चरित्र पर हिन्दी-साहित्य में पहली बार सम्यक् प्रकाश डाला गया है (तुलसीदास एवं केशवदास ने तो वस्तुतः परशुराम के साथ अन्याय ही किया है) तथा काव्य के इतिवृत्तात्मक रूप की संरक्षा की गई है। आचार्य कुंतक (कुंतल) ने वक्रोक्तिजीवितम् में प्रकरणवक्रता या प्रख्यात कथानक में मौलिकता का जो उचित प्रतिपादन किया है, उसकी दृष्टि से रश्मिरथी पर्याप्त सफल है। वर्णनभीरुता के युग में दिनकर ने रश्मिरथी में आकर्षक वर्णन किए हैं और यह एक उल्लेख उपलब्धि है। काव्य का प्रतिपाद्य थोपी-थापी जन्मगत महानता का खंडन एवं कर्मजात महानता का मंडन है, जो जाति-प्रथा के उन्मूलन के अधुनातन उद्देश्य की पूर्ति में भी सहायक सिद्ध होता है :

तेजस्वी सम्मान खोजते नहीं गोत्र बतला के,
पाते हैं जग में प्रशस्ति अपना करतब दिखला के।
हीन मूल की ओर देख जग ग़लत कहे या ठीक,
वीर खींचकर ही रहते हैं इतिहासों में लीक।

कुन्ती का अन्तर्द्वन्द्व-चित्रण रश्मिरथी की एक महान् उपलब्धि है।

काव्य की भाषा में उर्दू का अत्यधिक समावेश तथा पद-पद पर प्राचीन-मध्यकालीन-आर्वाचीन महापुरुषों के भाषाणात्मक उल्लेख भोंड़े लगते हैं। नवीन ने कहा था, ''कर्ण ऐसी भाषा नहीं बोल सकते थे''! (नवीन एवं दिनकर दोनों सांसद थे—नवीन उन दिनों अंग्रेज़ी बोलने के चस्के के शिकार हो गए थे जिस पर कई लोग चुटकी लेते थे कि नई-नवेली बीवी ने लिखा-सिखाया होगा; उक्त कथन भी अंग्रेज़ी में था।) दिनकर को शर्मद शहीद या गाँधी इत्यादि की चर्चा स्वतन्त्र कविताओं में करने से किसने रोका था कि वह इन्हें कर्ण की छाती का पीपल बनाएँ?

---

[1] चाणक्य (कौटिल्य) ने महान् 'अर्थशास्त्री' में परशुराम को आदर्श राजा माना है। परशुराम विश्व में प्रथम शोषक-राजतन्त्र के विरोधी क्रान्तिकारी भी थे, शासक भी।

मैं 'रश्मिरथी' को महाकाव्य मानता हूँ क्योंकि नायक एवं वर्ण्य तदनुरूप हैं। कांडसंख्या सात होने पर भी रामायण एवं रामचरितमानस विश्व के दो शीर्ष-महाकाव्य हैं क्योंकि उनके वर्णनायाम अतिस्फीत हैं, जो सर्गसंख्या-रूढ़ि को महत्त्वहीन कर देते हैं। रश्मिरथी के सात सर्गों पर भी, अपनी सीमा में, यही बात लागू होती है। वैसे डॉ. विजयेन्द्र स्नातक ने रश्मिरथी को खंडकाव्य माना है। किन्तु काव्य के आकार-प्रकार को देखते ऐसा युक्तियुक्त नहीं लगता। कर्ण पर लक्ष्मीनारायण मिश्र, जगन्नाथप्रसाद शुक्ल, 'भव्य', डॉ. शिवकुमार मिश्र से भिन्न शिवकुमार मिश्र आई. ओ. एफ. (14 सर्गीय 'राधेय') इत्यादि ने उत्कृष्ट काव्य-रचना की है, किन्तु कर्ण-काव्यकारों में दिनकर का प्रकाश सर्वाधिक है।

कुरुक्षेत्र

दिनकर के प्रमुख काव्य 'कुरुक्षेत्र' एवं 'उर्वशी' हैं। सहज-ओजमय दिनकरत्व एवं शाश्वत अत्याचार-विरोध-दर्शन के कारण मुझे 'कुरुक्षेत्र' दिनकर का सर्वश्रेष्ठ काव्य प्रतीत होता है। स्वयं दिनकर कुरुक्षेत्र को अपना सर्वश्रेष्ठ काव्य मानते थे। कुरुक्षेत्र की पृष्ठभूमि 'हिमालय के प्रति', 'विपथगा', 'व्यालविजय' इत्यादि तक प्रसरित है। यह रेणुका, हुंकार एवं रश्मिरथी का विकास है। इसकी पार्श्वभूमि 'परशुराम की प्रतीक्षा' में दृग्गम्य है। उर्वशी की पृष्ठभूमि 'गीत अगीत कौन सुन्दर है', 'परदेसी' प्रभृति कुछ कविताओं मात्र से संपृक्त है। यह 'रसवन्ती' का विकास है। इसका पार्श्वभूमि भी दृग्गत नहीं होती। किन्तु उर्वशी को ज्ञानपीठ पुरस्कार तथा पाठ्यक्रमों के कारण सर्वाधिक ख्याति प्राप्त हुई है। कुरुक्षेत्र क्रान्ति का काव्य है, उर्वशी कान्ति का गीतिनाट्य। क्रान्ति एवं कान्ति में सर्वसाधारण के द्वारा कान्ति को वरीयता प्रदान करना स्वाभाविक है। कुरुक्षेत्र विचार-बोझिल है, उर्वशी ललित। सौन्दर्यशास्त्र पर शोधकार डॉ. कुमार विमल के आत्मपरक शब्दों में, ''विषय-प्रतिपादन, कलात्मक ऊँचाई और गाम्भीर्य, इन सभी दृष्टियों से उर्वशी एक महाकाव्य है और कुरुक्षेत्र से अवश्य आगे है।'' किन्तु कुरुक्षेत्र में युद्ध की अपरिहार्यता के विषय का बहुत ही व्यापक, सतर्क एवं सशक्त प्रतिपादन प्राप्त होता है तथा विचार-गांभीर्य में भी वह अधिक उपयोगी काव्य है, भले ही भावपक्ष एवं कलापक्ष में उर्वशी आगे निकल जाती हो। विचार की नव्यता एवं जीवनगत उपादेयता में कुरुक्षेत्र को समता उर्वशी के बूते से बाहर है। अतः गम्भीर विद्वान् एवं जीवन के गहरे पारखी डॉ. लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' का कथन अधिक तर्कसंगत एवं गम्भीर है, ''दिनकर जी उन थोड़े-से कवियों में से हैं जिनका काव्य शताब्दियों तक जीवित रहेगा किन्तु काल के प्रांगण में अधिक दूर तक उन्हें उर्वशी ले जाएगी या कुरुक्षेत्र ले जाएगा, यह निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।''

कुरुक्षेत्र श्मशान-शान्ति का काव्य नहीं, जीवन्त-क्रान्ति का काव्य है। 1944 ई. के आसपास जब द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-45 ई.) की मानव-जाति के समग्र इतिहास की व्यापकतम, भयानकतम, नाशकतम विभीषिका का प्रलय-तांडव हो रहा था, तब कवि को महाभारत से चिन्तन की प्रेरणा सर्वथा साधार रूप में प्राप्त हुई थी। युद्ध की निन्दा एक फ़ैशन है, जिसका खोखलापन इसी से ज़ाहिर है कि प्रत्येक शान्तिवादी नेता सर्वाधिक व्यय युद्ध-सन्दर्भ या सुरक्षा के लिए करता है। हक़ीक़त लफ़्फ़ाज़ी से ज्यादा ताक़तवर भी होती है, असरदार भी। पंचशील के तमाशे ने भारत की भयावह क्षति की। मानव सदा युद्ध की पुण्यवेदी पर सर्वस्व चढ़ाता आया है और इसी से युद्ध का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है :

पापी कौन? मनुज से उसका न्याय चुरानेवाला?
या कि न्याय खोजते विघ्न का शीश उड़ानेवाला?

नैपोलिऑन ने कहा था, यदि शान्ति चाहते हो तो बारूद सूखा रखो। आज अमेरिका सर्वश्रेष्ठ है तो युद्धबल पर। जापान या कुवैत धनी होने पर भी वैसे महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। क्यों? जापान पर अमेरिका का वर्चस्व है, कुवैत को इराक़ ने रौंद डाला। महत्त्व शक्ति-सापेक्ष है। कल ब्रिटेन और फ्रांस सर्वश्रेष्ठ थे तो युद्धबल पर। परसों मोहम्मदीयत की तूती बोलती थी तो युद्धबल पर। राष्ट्रपति जॉन्सन ने कहा था, हम शान्ति चाहते हैं और शान्ति चाहने की क्षमता रखते हैं। राष्ट्रपति आंद्रोपोव ने कहा था, जब तक विश्व को सोविअॅट यूनिअॅन की अजेयता में विश्वास है तब तक विश्व में शान्ति रहेगी। शक्तिशाली चीन की दुनिया में धाक है। धनी होने पर भी अरब-देश शक्तिशाली इस्राइल से थर्राते हैं। दुर्बल होने पर युद्ध की निन्दा करना उपहासास्पद है। भारत का करुण इतिहास इसे प्रमाणित कर चुका है। शान्ति चेम्बरलेन या पोताँ नहीं, स्टालिन या ट्रूमैन स्थापित करते हैं। दिनकर ने इस परम सत्य को शब्दित किया है:

शांति शोभती उस भजुंग को जिसके पास गरल हो;
उसको क्या जो दशनहीन, विषहीन, विनीत, सरल हो।[1]

कुरुक्षेत्र निवृत्ति पर प्रवृत्ति का विजयकाव्य है, जो रामचरितमानस के सात्त्विक-शक्तिवाद की परम्परा को विकसित करता है:

धर्मराज! अत्मरत्व खोजना कायता है मन की;
है सच्चा मनुजत्व ग्रंथियाँ सुलझाना जीवन की।

यदि अपनी कोमलता में ‘मेघदूतम्’ महाकाव्य हो सकता है, तो अपनी कठोरता में कुरुक्षेत्र भी। कुरुक्षेत्र विश्व-साहित्य में युद्ध-दर्शन का सर्वोपरि अभिलेख है। इसकी प्रौढ़ता के समक्ष शान्ति की पीनक में परम-योद्धा भीम एवं परम-नायक अर्जुन की अवमानना करनेवाला चटकमटकदार गीतिनाट्य ‘अन्धा युग’ एक मंचीय उपलब्धि मात्र लगता है, यशपाल के ‘अमिता’ जैसे उपन्यास जन्म से पूर्व ही मृत पुस्तक मात्र! दिनकर भीष्म के प्रधान कवि हैं। उनसे पूर्व, रत्नाकर ने भीष्म के पराक्रम पर कुछ खास उत्तम छन्द रचे थे, भारतरत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने ‘भीष्म पितामह’ शीर्षक उत्कृष्ट निबन्ध लिखा था, उनके बाद परमानन्द जड़िया ने ‘गंगानन्दन भीष्म’ शीर्षक वर्णनात्मक काव्य लिखा है। सबलसिंह चौहान के महाभारत एवं मैथिलीशरण गुप्त के ‘जयभारत’ महाकाव्यों में भीष्म का चित्रण भी है। हिन्दी-काव्य में भीष्म-गंगा के अनेक घाट हैं, जिनमें सबसे ऊँचा और सबसे पुख़्ता सिमरिया घाट ही है!

उर्वशी

दिनकर का स्वप्न था कि वे ‘‘पन्त के सपनों को मैथिलीशरण की सफ़ाई से इस प्रकार लिख सकें कि न तो पन्त के सपने घायल हों और न मैथिलीशरण के मार्ग पर मिहिका छाने पाए।’’ मैथिलीशरण एवं माखनलाल उनके आदिप्रेरक थे। जब मैथिलीशरण और उनमें मतभेद हुए तब भी वे स्वयं को ‘डिपुटी राष्ट्रकवि’ ही मानते रहे। ‘पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण’ में उन्होंने कनिष्ठ-वरिष्ठ-वरिष्ठतम के क्रम से दद्दा को ही वर्चस्व प्रदान किया है, जो उनके विशद साहित्यानुशीलन एवं वस्तुसम्मान का द्योतक है। उधर, पन्त के प्रति उनके मन में सदा आदरसंपृक्त-प्रेम रहा था। यद्यपि उर्वशी का ऊर्जस्वित् काम-दर्शन कामायनी के सुकुमार काम-दर्शन के विकास है तथा दिनकर इस कृति में प्रसाद से पर्याप्त प्रभावित हैं, तथापि परवर्ती पन्त के नवरहस्यवाद का प्रभाव भी इस कृति पर अवश्य पड़ा है। दार्शनिक भारतरत्न डॉ. भगवानूदास के ग्रन्थ ‘पुरुषार्थ’ का ‘कामाऽध्यात्म’, जो उनके अन्य हिन्दी-ग्रन्थों में भी यथावसर विवृत हुआ है, प्रसाद का भी प्रेरक था, दिनकर का भी; और विकृति के साथ, रजनीश का भी।

पाँच अंकों का गीतिनाट्य उर्वशी कामाध्यात्म का महाकाव्य है। निस्सन्देह, कामायनी में भी काम को प्रेय से उठाकर श्रेय[2] से संपृक्त किया गया है और प्रसाद हिन्दी-साहित्य में काम-तत्त्व वास्तविक प्रतिष्ठापक महाकवि थे, फिर भी उसके आयाम अर्थ, धर्म एवं मोक्ष तक प्रसरित है, जबकि उर्वशी केवल काम में निबद्ध है। निस्सन्देह, कामायनी पुरुषार्थ-दर्शन, रूपकतत्व, कला एवं प्रतीक की प्रत्येक दृष्टि से उर्वशी से श्रेष्ठतर है। भाषा की दृष्टि से, रश्मिरथी एवं कुरुक्षेत्र की आलोचना से लाभ उठाते हुए, दिनकर उर्वशी में सजग एवं गहन है—वस्तुतः दिनकर केवल उर्वशी में उन्नत काव्यभाषा का प्रयोग कर पाए हैं। दिनकर कलाकार या शिल्पी नहीं हैं, केवल कवि हैं, किन्तु उर्वशी में उनकी एकरस शैली भी प्रवाहपूर्ण अवश्य है। उर्वशी के बीज ऋग्वेद (10/8/95/14 एवं 17) एवं सुमन कालिदास कृत विक्रमोर्वशीयम् में विद्यमान हैं, जिनकी सुरभि रवीन्द्र के गीतिकाव्य ‘उर्वशी (पतिता)’ एवं अरविन्द के खंडकाव्य ‘उर्वशी’ से होती हुई दिनकर के गीतिनाट्य ‘उर्वशी’ तक प्रसरित है। अरविन्द की उर्वशी जीवन-ज्योति के रूप में चित्रित की गई है जिसके चले जाने पर पुरूरवा निःश्रेयस् के अन्वेषण में हिमालय के वनों में चले जाते हैं। दिनकर की उर्वशी में भी अप्सरा के लुप्त हो जाने पर पुरूरवा अपने पुत्र आयु को राजमुकुट धारण कराके चले जाते हैं। रचना सुखान्त-दुखान्त-समन्वित है तथा प्रसाद के ‘स्कन्दगुप्त’ (नाटक) का स्मरण कराती है, जॉर्ज बरनॉर्ड शॉ की ट्रैजी-कॉमेडी (‘सेंट जोन’ इत्यादि) का स्मरण कराती है। अरविन्द

---

1. ‘‘रिपु पर कृपा परम कदराई’’ के सशक्त उद्घोषक तुलसीदास को दिनकर विश्व का सर्वश्रेष्ठ कवि मानते थे। मानस चतुःशती समारोह (1974 ई.) पर दिल्ली में भाषण करते हुए उन्होंने तर्क देते हुए तुलसीदास को कालिदास, शेक्सपीअॅर इत्यादि से श्रेष्ठतर सिद्ध किया था।

2. काम मंगल से मंडित श्रेय, सर्ग अच्छा का है परिणाम;
तिरस्कृत कर इसको तुम, भूल, बनाते ही असफल भव धाम!

कृत अंग्रेज़ी महाकाव्य 'सावित्री' में सावित्री ब्रह्मांडीय-नारी (कॉस्मिक वोमैन) की प्रतीक हैं तथा सत्यवान् ब्रह्मांडीय-नर (कॉस्मिक मैन) के प्रतीक हैं और इस प्रतीक-योजना का दिनकर की उर्वशी पर प्रभाव दृग्गत होता है, क्योंकि उनकी उर्वशी सनातन-नारी की प्रतीक है तथा पुरूरवा सनातन-नर का। पुरूरवा शब्द का अर्थ है, वह योद्धा जो शत्रु के 'पुर' को अपने उरु-बलमय युद्ध 'रव' से जीत ले। उर्वशी का अर्थ है, जो 'उरु' शक्ति की 'वशी'-भूत हो अर्थात् विजयश्री। उरु (जाँघ) बल की प्रतीक है (मल्लताल ठोंककर बलप्रदर्शन करते हैं) जो पुरूरवा (पुर+उरु+रवा) एवं उर्वशी (उरु+वशी) दोनों को प्रतीकसम्पन्न करती है। विजयश्री से रहित योद्धा निराश एवं व्यर्थ हो जाता है। वैदिक प्रतीक-योजना में कथा पुरूरवा के ब्राह्मण-विद्वेषजन्य पतन की संकेतक भी है। पुरूरवा के पौत्र नहुष का भी पतन हुआ था। नहुष-पुत्र ययाति ने नीति-परिवर्तन करते हुए शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी से विवाह कर ब्राह्मणों से सम्बन्ध सुधारे तथा चन्द्र-वंश के वास्तविक प्रतिष्ठापक बन सके, क्योंकि इनके पुत्र यदु एवं पूरु[1] यादवों (कृष्ण इत्यादि) एवं पौरवों (कौरव-पांडव) के सीधे पूर्वज थे। कालिदास, रवीन्द्र, अरविन्द, दिनकर इत्यादि में से किसी ने पुरूरवा के ऐतिहासिक व्यक्तित्व पर ध्यान नहीं दिया।

'उर्वशी' काम की सूक्ष्म एवं निराकार झंकृतियों का काव्य है, काम के आध्यात्मिक मूल्यों का प्रतिपादक काव्य है, नर एवं नारी की पारस्परिक दिव्यता का काव्य है:

1. तुम अनंत सौंदर्य,[2] एक तन में बस जाने पर भी,
निखिल सृष्टि में फैल चतुर्दिक् कैसे व्याप रही हो?
तुम अनंत कल्पना, अंक चाहे जिस भांति भरूँ मैं!
एक किरण तब भी बाहों से बाहर रह जाती है!

2. मन की असीमता में निबद्ध नक्षत्र, पिंड, ग्रह, दिशाकाश,
तन में रसस्विनी की धारा, मिट्टी की मृदु, सोंधी सुवास;
मानव मानव ही नहीं, अमृतनन्दन यह लेख अमर भी है,
यह एक साथ जल-अनल, मृति-महदम्बर, क्षर-अक्षर भी है

'उर्वशी' में आयामगत संकीर्णता पद-पद पर खटकती है। एक ही बात घुमा-फिरा कर बार-बार कही गई है। काव्य का आकार पचास पृष्ठों के तत्य-कथ्य को तिगुने से भी अधिक में कहता है। किन्तु उर्वशी का कामाध्यात्म गम्भीर भी है, व्यावहारिक भी। यह काव्य ऋग्वेद, मनुस्मृति, कामशास्त्र, साइको-एनालिसिस, सावित्री, कामायनी इत्यादि सब से प्रेरणा लेकर भी अपने ऊर्जास्वित् समन्वय एवं बलवत्तम जीवन्तता में नितान्त मौलिक है। कालिदास की 'विक्रमोर्वशीयम्', रवीन्द्र की 'उर्वशी' तथा अरविन्द की 'उर्वशी' से दिनकर की 'उर्वशी' अस्मिता एवं प्राणवत्ता में भिन्न है। किन्तु जीवनायाम-संकीर्णता, विषयगत एकांगिता एवं पुनरुक्ति-प्राचुर्य के कारणों से इसे खड़ीबोली-कविता में कामायनी, प्रियप्रवास, साकेत, अनामिका एवं पल्लव के अनन्तर ही प्रतिष्ठित कराना उचित होगा। डॉ. नगेन्द्र के विचार ध्यान देने योग्य हैं, "उर्वशी में मूल विचार तथा उसको प्रतिफलित करनेवाले वस्तुविधान में अन्विति नहीं है: विचार का अन्वय-भंग कला-रूप की अन्विति को भी भंग कर देता है। यथार्थ की दृष्टि से यदि कवि द्वन्द्व को ही अन्तिम सत्य मान लेता और पुरूरवा के संन्यास में ही इस प्रणयकथा का विसर्जन कर देता तब भी कला-रूप की पूर्णता बनी रहती है। किन्तु उसके यथार्थवादी संस्कार समाधान के लिए आकुल और विफल प्रयास करते हैं। इसमें एक ओर जहाँ उर्वशी की सुन्दर कला-प्रतिमा में पूर्ण होते-होते दरार पड़ जाती है, वहाँ दूसरी ओर सहृदय पाठक की साहिति भी बिखरने लगती है। इसीलिए, सामयिक हिन्दी-काव्य की यह श्रेष्ठ उपलब्धि अंश रूप में अपेक्षाकृत अधिक समृद्ध एवं प्रबल होने पर भी समग्र रूप में कामायनी की श्रेणी में आती है, और न प्रियप्रवास तथा साकेत की श्रेणी में।"

---

[1] पांडव-वंशज उदयन एवं सिकन्दर महान् से लोहा लेनेवाले पूरु (फ़ारसी में फूर तथा यूनानी में पोरस) तक प्रसरित। पूरु या फूर या पोरस विराट् आकार के कारण पर्वतक या पर्वतेश्वर भी कहे गए। इस महान् योद्धा का उल्लेख यूनानी-इतिहासग्रन्थों, शाहनामा, मुद्राराक्षस, चन्द्रगुप्त (प्रसाद) इत्यादि में प्राप्त होता है—विदेशियों में महान् किन्तु देशियों में कामुक!

[2] ए थिंग ऑफ ब्यूटी इज़ ए जॉय फ़ॉर एवर! (कीट्स)

आकलन

मेरे मत से दिनकर के व्यक्तित्व[1] एवं कृतित्व का सम्यक् प्रतिनिधित्व कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, परशुराम की प्रतीक्षा, हुंकार एवं रेणुका कृतियाँ करती हैं, न कि उर्वशी एवं रसवन्ती। एक क्रान्तिकारी कवि के रूप में दिनकर बांग्ला के नज़रुल इस्लाम, उर्दू के जोश मलीहाबादी के समकक्ष हैं, एक राष्ट्रकवि के रूप में मैथिलीशरण-सहायक एवं माखनलाल-समकक्ष। जोश मलीहाबादी ने ठीक ही उनको नज़रुल के समकक्ष रखा है (यद्यपि दोनों में से कोई 'जर्रा' नहीं है—पता नहीं, किस मानसिक ग्रन्थि से प्रेरित होकर यह शब्द लिखा?):

हिंद में लाजवाब हैं दोनों शायरे-इंकलाब हैं दोनों;
देखने में अगर्चे ज़र्रे हैं, वाक़ई आफ़ताब[2] हैं दोनों।

माताप्रसाद गुप्त[3]

तुलसी के मानक शोधकर्त्ता एवं विद्वान् (स्थायी महत्त्व के ग्रन्थ 'तुलसीदास' के प्रणेता) तथा 'रामचरितमानस', 'जायसी-ग्रन्थावली', 'वीसलदेवरास', 'पृथ्वीराजरासउ', 'मधुमालती', 'चांदायन' इत्यादि के उपयोगी पाठ-प्रस्तोता स्व. डॉ. माताप्रसाद गुप्त (1909 ई.—मुंगरा बादशाहपुर जिला जौनपुर) प्रथम श्रेणी के विश्वस्तरीय विद्वान् थे, जिन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, जयपुर विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष एवं हिन्दी-विद्यापीठ आगरा में निदेशक के रूपों में भी हिन्दी-शोधकार्य को उन्नत रूप प्रदान किया। नव्यता-व्यामोह में पृथ्वीरासो को 'पृथ्वीराजरासउ', वीसलदेवरासो को 'वीसलदेवरास', चन्दायन को 'चांदायन' कहने के खुरपेंच के बावजूद उनके विद्वतापूर्ण सम्पादन एवं शोध-सामर्थ्य का लोहा सभी सुधीजन मानते रहेंगे। यद्यपि वे आलोचक न थे (जिसमें विवेचन-विश्लेषण-संश्लेषण की प्रतिभा भी अपेक्षित रहती है) तथापि 'तुलसीदास' में इस दिशा में भी थोड़ा-बहुत सफल हुए हैं। राजापुर को तुलसीदास का जन्मस्थान सिद्ध करने वाले विद्वानों में वे अग्रणी हैं। सोरों-सामग्री का रमरसरा कविवर सीताराम बी. ए. 'भूप' एवं कविवर पं. रामनरेश त्रिपाठी ने छेड़ा था। डॉ. रामदत्त भारद्वाज सोरों-सामग्री के आचार्य सिद्ध हुए। किन्तु डॉ. माताप्रसाद गुप्त की राजापुर-सामग्री प्रात्ययिक है। मैंने राजापुर की तुलसी-प्रतिमा, अयोध्याकाण्ड इत्यादि के विवादास्पद किन्तु छत्रसाल-पुत्र हिन्दूपतिसिंह (हिन्दूपति) के प्रात्ययिक दानपत्र इत्यादि के अध्ययन के व्यक्तिगत आधार पर इसी को जन्म-स्थान मानना ठीक समझा है। वैज्ञानिक शोध में जिस तथ्यपरक एवं वस्तुपरक, भावहीन एवं अस्मितारहित अध्यवसाय की अपेक्षा होती है, वह डॉ. माताप्रसाद गुप्त में खूब मिलता है।

कामिल बुल्के

अधुनातन अनुसन्धान से सम्पन्न 'रामकथा : उत्पत्ति और विकास', इसी का शोधपूर्ण विकास 'रामकथा और तुलसीदास' (27-28 मार्च, 1976 को हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद में दिए गए तीन भाषणों का संग्रह), मानक एवं समादृत 'अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश', प्रात्ययिक 'सुसमाचार' (विशाल बाइबिल के ईसाई-अंश 'न्यू टेस्टामेन्ट' का अनुवाद—बुल्के ईसाई-मिशनरी'[4] थे) एवं 'नीलपंक्षी' (महान् नाट्यकार मातरलिंक या मेटरलिंक के 'ब्लू बर्ड' का अनुवाद) के प्रस्तोता विद्वद्वर फ़ादर डॉ. कामिल बुल्के (1 सितम्बर, 1909, रेम्स चैपेल[5] बेल्जिअम—1984 ई.[6], भारत) पाश्चात्य विद्वानों एवं लेखकों में सबसे बड़े हिन्दी प्रेमी एवं हिन्दी-लेखक थे, क्योंकि महत्तर विद्वान् एवं भाषाविद् ग्रीअर्सन ने अंग्रेज़ी में लिखा था, महत्तर विद्वान् एवं भाषाविद् ए. वारान्निकोव ने रूसी में तथा कार्पेन्टर, रॉवलिंसन, एट्किंस इत्यादि का मौलिक लेखन एवं अनुवाद अंग्रेज़ी में हुआ, टेसीटरी बुल्के के स्तर के विद्वान् न हो पाए और काल-कवलित

---

1. "गोरा-चिट्टा रंग, लम्बाई पाँच फुट ग्यारह इंच, भारी-भरकम शरीर, बड़ी-बड़ी आँखें, ललकार-भारी बुलन्द आवाज़, तेज़ चाल और क्षिप्र बुद्धि।" स्व. मन्मथनाथ गुप्त?
2. दिनकर का तो अर्थ ही आफ़ताब है।
3. 'तथागत' खंडकाव्य तथा बालसाहित्य के प्रणेता बलभद्रप्रसाद गुप्त 'रसिक' इनके पुत्र थे।
4. रामचरितमानस का अंग्रेज़ी-अनुवाद (द रामायना ऑफ़ तुलसीदास) करने वाले एट्किन्स भी ईसाई-मिशनरी थे। किन्तु दोनों टेरेसा के सदृश कट्टर न थे तथा हिन्दुओं मात्र को ईसाई के धन्धे से भी अलग-से थे।
5. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 2) 'रेम्सकैपल' या तो ग़लत है या मुद्रणत्रृटि। संयोगात् 'रेम्स' चैपेल (राम्स चैपेल) का अर्थ 'राम का मन्दिर है, जिसमें जन्मे बुल्के रामसंपृक्त-तुलसीभक्त कैसे न होते!
6. हिन्दी साहित्य कोश (भाग 2) तथा 'महान् तुलसीदासभक्त फादर कामिल बुल्के' (त्रैमासिक 'कोमा', कानपुर, शरद-अंक 1990 ई., डॉ. चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा का लेख) में मृत्यु-तिथि नहीं दी। कोश का विवरण तो अत्यल्प-अपर्याप्त ही है। डॉ. शर्मा का लेख अच्छा है।

हो गए, स्मेकल का कृतित्व अभी विकास-पथ पर अग्रसर है, चेलीशेव एवं पी. वारान्निकोव की विद्धत्ता व्याख्यात्मक है, अन्य अनेक नाम प्रासंसिक से हैं। डॉ. कामिल बुल्के विशुद्ध हिन्दी के समर्थक थे तथा प्राध्यापन एवं भाषण तक में अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग न करते थे। वे हिन्दी में खप गए थे।

विश्वकर्मा[1]—परीक्षा में उच्च परिणाम के बावजूद बुल्के 1923 ई. में ईसाई-प्रचारक बन गए। जब भारत आना हुआ तब एट्किन्स के सदृश तुलसी के जादू में आए। डॉ. चन्द्रिकाप्रसाद शर्मा लिखते हैं: ''जब इलाहाबाद विश्वविद्यालय में एम.ए. में प्रवेश लेने गए तो अध्यक्ष डॉ. धीरेन्द्र वर्मा हिचकिचाए कि एक विदेशी और हिन्दी में एम.ए.! उन्होंने विनयपत्रिका के दो पद इन्हें अर्थ लिखने को दिए। अर्थ पढ़कर डॉ. वर्मा गदगद हो गए और बोले—'आप मेरे लिए और हिन्दी के लिए गौरव होंगे'।'' बात सत्य सिद्ध हुई। सुनी हुई एक घटना याद आती है—कहानीकार एवं 'संचेतना'-सम्पादक (अवसर के अनुरूप कॉम्युनिस्ट से अकाली भी) डॉ. महीपसिंह डी. ए. वी. कॉलेज कानपुर की हिन्दी एम. ए. कक्षा में प्रसिद्ध एवं मनीषी आलोचक तथा प्राध्यापक स्व. पं. कृष्णशंकर शुक्ल को दीखे तो उन्होंने बताया कि सरदारजी, यह हिन्दी एम. ए. की कक्षा है; महीपसिंह ने विनम्र उत्तर दिया कि मैं इसी कक्षा का छात्र हूँ। डॉ. कामिल बुल्के राँची के सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज में हिन्दी एवं संस्कृत विभाग के अध्यक्ष के रूप में सफल-समादृत हुए। 1974 ई. में उन्हें पद्मभूषण से अलंकृत किया गया। उनके कुछ उद्गार प्रस्तुत हैं :

1. मैं रामभक्त नहीं, तुलसीभक्त हूँ। तुलसी ने वाल्मीकि के सशक्त राम को शील-सौन्दर्य-सम्पन्न किया।'[2] मैं मानता हूँ, तुलसी ने असंख्य लोगों को नैतिक बल दिया है, जीने की अद्भुत कला सिखाई है।

2. रामचरितमानस के पात्र नैतिक आदर्श के जीते-जागते उदाहरण हैं।

3. कुछ लोग रामचरितमान की नारी-निन्दा विषयक उक्तियों का अनोखा अर्थ लगाकर तुलसी को निर्दोष सिद्ध करने का यत्न करते हैं। वास्तव में रामचरितमानस की कटुक्तियाँ तुलसी की अपनी न होकर संस्कृत-नीतिकाव्य की अनुवाद हैं। यथा, ''ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। सकल ताड़ना के अधिकारी।।'' ''दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः। ताडित मार्दवं यान्ति नैते सत्कार-भाजनः।।'' (गर्ग-संहिता)। यदि तुलसी को दोष देना है तो समस्त भारतीय परम्परा को दोषी ठहराना चाहिए और समस्त विश्व को क्योंकि दुनिया भर के साहित्य में मातृजाति विषयक निन्दात्मक उक्तियाँ पाई जाती हैं।

4. वाल्मीकि द्वारा रामायण की सृष्टि भारतीय ललित-साहित्य की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। डॉ. द्वायकास ने जावा के किसी गाँव के एक मुस्लिम शिक्षक को 'मलयन रामायण' पढ़ते देखा और पूछा ''आप रामायण क्यों पढ़ते हैं''? उत्तर मिला ''मैं और अच्छा पुरुष बनने के लिए रामायण पढ़ता हूँ।''

डॉ. बुल्के ने मानस की पाँच विशेषताओं की सराहना की है:

1. नैतिकता और भक्तिमार्ग का अन्योन्याश्रय
2. भक्ति की अनिवार्यता और सर्वश्रेष्ठता
3. भक्ति-राजमार्ग
4. परहित, और
5. भक्ति की मौलिकता।[3]

निस्सन्देह उनका यह आकलन प्रशस्य है।

सेवकेन्द्र[4]

रत्नाकर-परवर्ती ब्रजभाषा-काव्य को सम्पन्न करने वाले रामनाथ 'जोतिसी', अनूप शर्मा, 'ब्रजनन्दन', आ. श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', आ. केशवदेव शुक्ल 'केशव', 'राजेश', गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, प्रकाश द्विवेदी जैसे प्रमुख कवियों में स्व. आ. सेवकेन्द्र त्रिपाठी (19 नवम्बर, 1909, झाँसी) को एक निश्चित स्थान प्राप्त है। 'सनेही' ने तो उन्हें ''वर्तमान ब्रजभाषा के कवियों में सर्वश्रेष्ठ'' तक

---

[1] एंजिनीयर। इंजीनिअर।

[2] यह विचार आंशिक सत्य मात्र है कि वाल्मीकि के राम केवल सशक्त हैं, शीलवान एवं सुन्दर नहीं। बुल्के का विनयपत्रिका में बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेन्ट) के दाऊद (किंग डैविड) की भजन-संहिता प्राप्त करना भी आत्मपरक है, वस्तुपरक नहीं। गोरे संस्कारजन्य ग्रन्थियों से बच नहीं पाते।

[3] 'तुलसी की मौलिकता' शोध का उत्तम विषय है, क्योंकि मौलिकता केवल भक्ति में ही नहीं, किसी-न-किसी रूप में सर्वत्र और सब ग्रन्थों में उपलब्ध है।

[4] राम सेवक त्रिपाठी 'सेवकेन्द्र'।

कह डाला था, जो रत्नाकार एवं जोतिसी के कारण वस्तुपरक न होने पर भी उनके महत्त्व का सशक्त संकेतक अवश्य है। 'मीरा' (वस्तुतः 'मीरा-मानस') की प्रशंसा करते हुए श्रीनारायण चतुर्वेदी ने लिखा था, ''यशः शरीर को जीवित रखने के लिए यही एक कविता पर्याप्त है।'' मीराँ पर पुराने कवियों के अतिरिक्त, सेवकेन्द्र के अतिरिक्त, परमेश्वर 'द्विरेफ' तथा परमानन्द जड़िया ने काव्य और 'शिशु' ने उत्तम कविता लिखी है। 'मीराँ पर रचित काव्य' स्वयं शोध का विषय बन चुका है। सेवकेन्द्र की कविता के प्रशंसकों में पद्मविभूषण[1] राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त, वृन्दावनलाल वर्मा, 'सनेही' ('त्रिशूल' भी), हरिशंकर शर्मा, रामकुमार वर्मा, हृषिकेश चतुर्वेदी, श्रीनारायण चतुर्वेदी, नगेन्द्र, दिनकर, शिवमंगलसिंह 'सुमन' जैसे गण्य-मान्य साहित्यकार समाविष्ट हैं। वे सदैव लोकप्रिय रहे। 'मीरा-मानस', 'विकास-वीणा', 'श्रद्धा-सुमन', 'शान्ति के सपूत', 'ताज की आवाज़', 'बुन्देल-विभूति', 'साधना के स्वर' प्रभृति उनकी अधिकतर कृतियाँ प्रकाशित न हो सकीं। किन्तु लघु 'छत्रसाल-बावनी' एवं विशिष्ट प्रतिनिधि-रचना 'व्रज-वर्तिका' से भी उनकी प्रतिभा का आकलन किया जा सकता है। वे 'ब्रजनन्दन', 'बिहारी' एवं 'केशव' के स्तर के अधुनातन व्रजभाषा-कवि हैं। किन्तु उनका राष्ट्रकवि-रूप सर्वथा विशिष्ट है।

सेवकेन्द्र की कविता का वास्तविक नायक बुन्देलखंड है जिसकी प्रकृति, बेतवा एवं जिसके प्रायः सारे वीर-योद्धा उनकी उत्तम कविता का गौरव बढ़ाते हैं। गद्य में वृन्दावनलाल वर्मा एवं अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' तथा काव्य में सेवकेन्द्र बुन्देलखंड-गौरव के यशस्वी शब्दकार हैं। उन्होंने कृष्णकाव्य के विविध पक्षों पर भी सुन्दर काव्य-रचना की है। उनकी यमुना; सूर, तुलसी, मीराँ इत्यादि पर रचित कविताएँ उत्कृष्ट हैं। उन्होंने सनेही पर भी अच्छे छन्द रचे हैं। स्वतन्त्रता-दिवस (15 अगस्त), गाँधी, नेहरू, शास्त्री इत्यादि पर सामयिक कविताएँ साधारण होने पर भी राष्ट्रीय चेतना की द्योतक हैं। यद्यपि उनके प्रिय छन्द व्रजभाषा के प्रतीक-छन्दद्वय घनाक्षरी (कवित्त) एवं सवैया ही हैं, तथापि उन्होंने छप्पय, अमृतध्वनि इत्यादि अन्य छन्दों पर भी अधिकार की सूचना दी है। उनकी कविता अलंकृत तो है, किन्तु कृत्रिम नहीं। उदाहरण देखें :

1. चीख्यौ सदा फल जो प्रभु-प्रेम कौ सो सबकौं तुलसी ने चिखायौ!
दीख्यौ स्वरूप जो ध्यान धरैं, प्रति अक्षर मैं तुलसी ने दिखायौ।।
लीख्यौ चरित्र सुपावन जो, कवि वृंदन पै तुलसी ने लिखायौ।
सीख्यौ मनोहर मंजुल मंत्र, स्वई सबकौं तुलसी ने सिखायौ।। (तुलसी-सप्तक)

2. खल दल दिल्लिय दल दलन छत्रसाल[2] रणमस्त।
सेवकेन्द्र कर खग्ग गहि लस्तत्तुरकिय पस्त।।
लस्तत्तुरकिय पस्तत्तमकि सुहस्तत्तुर गति।
हद्दद्दीह गरद्दद्दाबि मरद्दद्दुरमति।।
रच्छ्छछितिकर स्वच्छछ्छेम निकच्छछ्छलबल।
चक्ख्खलोल सुलखख्खेत न रक्ख्खखल-दल।।
साहस शक्ति समेट भारतीचंद[3] भूप-सम।
मधुकरशाह समान भक्ति कौ गह्यौ कार्यक्रम।।
न्याय पंथ नृप वीरसिंह सौ पावन पाल्यौ।
सत्चरित्र हरदौल तुल्य नित सत्पथ चाल्यौ।।
धर्म-अंध अवरंग कौ उन्मद मद मर्दन कियौ।
छत्रशाल छितिपाल सो अमर सुयश जग में जियौ।।

---

[1] 'व्रजवर्तिका' की प्रस्तावना में क्रान्तिकारी एवं प्राध्यापक डॉ. भगवानदास माहौर 'पद्मभूषण' लिख गए हैं। त्रुटि के कारण हिन्दी के केवल गुप्तजी, राय कृष्णदास एवं पं. झाबरमल्ल शर्मा का पद्म-विभूषण होना है। भारतरत्न कोई हिन्दी-साहित्यकार नहीं हुआ। टंडन जी देशभक्त एवं भगवानूदास दार्शनिक होने के कारण भारतरत्न बनाए गए; वह बात और है कि दोनों हिन्दी से संपृक्त रहे थे।

[2] प्रचलित 'छत्रसाल' 'छत्रशाल' में अप्रयुक्तत्व दोष है। छत्रसाल बुन्देला को कौन 'सम्पूर्ण' देशभक्त नहीं जानता? जो न जाने वह आधा-अधूरा या फिर देशद्रोही!

[3] कालिंजर-नरेश भारतीचन्द्र ने शेरशाह सूरी का वध किया। ऐसा लोकश्रुत है तथा मिश्रबन्धु-समर्थित भी। किन्तु मुस्लिम-इतिहासकारों ने बारूदख़ाने में आग से मरने का कल्पित कारण लिखा है, जो प्रचलित है।

3. अवरंग अनीति कौ भारत भूमि पै माच्यौ जबै महा भूधर धाँधौ।
धुव धर्म धस्यौ, खस्यौ देवलपुंज, लस्यौ प्रभु प्रेम न नेह सौं नाँधौ।।
तब काढ़ि कृपान बली छत्रसाल ने शत्रुन कौ कर्यौ सोनित साँधौ।
कवि पूषण भूषण के सुखपाल लगाय दियौ सुखपाल कै काँधौ।।

4. अंधा धुंध देखि धर्म अंधताई औराँग की, दोऊ दोऊ दिसि तें भए हैं हिंदुवान ढाल।
शाह[1] के सपूत मजबूत पूत चंपत[2] के, विक्रम अकूत दोऊ लैकें कढ़े करवाल।।
काँपि गए सारे मन-सूबेदार सूबेदार, दोउन ने चातुरी सौं ऐसी चली वक्र चाल।
दोऊ बरबंड भुजदंड मारतंड तेज, दक्खिन शिवाजी वीर उत्तर में छत्रसाल।।[3]

5. हिन्दू औ मुसलमान जानै मानै एक भाव, स्वामी प्राननाथ जू कौ सेवक विसाल भौ।
न्याय नीति प्रीति रीति रच्छक प्रत्यच्छ भौ, आक्रमणकारी शत्रु कौ कराल काल भौ।।
सेवकेन्द्र सुजस विमंडित नछत्रपति, छत्रपति शिखा कौ सधैया स्वर ताल भौ।
मंडन बुँदेल भू घमंडित छतीस अंक, छिति पै छितीस महाबली छत्रशाल भौ।।

(छत्रशाल)

'मृगेश': प्रयोगधर्मी अवधी-कविरत्न

'परिजात' के प्रयोगधर्मी अवधी-महाकाव्यकार[4] तथा 'ज़मींदारी युग का किसान', 'होली', 'भूलि गएन, 'कब तक निबही?[5]' 'तुम करौ कबितई बन्द', इत्यादि अनेकानेक प्रभावी अवधी-कविताओं के यशस्वी रचयिता कविवर गुरुप्रसाद सिंह 'मृगेश' (12 जनवरी, 1910—10 अप्रैल, 1984, जन्मस्थान बुढ़वल, ज़िला बाराबंकी, उ. प्र.) आधुनिक अवधी-कविता के एक चिरस्मरणीय स्तम्भ हैं। उन्होंने शास्त्रीयकालीन परिपाटी पर व्रजभाषा में भी काव्यसृजन किया है, खड़ीबोली में भी परशुराम-कर्ण प्रकरण पर 'दया-दण्ड' शीर्षक खण्डकाव्य समेत अच्छी काव्यरचना की है, किन्तु साहित्य में उनका स्थान अवधी के एक यशस्वी कवि के रूप में ही सुरक्षित रहेगा।

अतुलनीय भारतीय संस्कृति में वृक्ष भी देवता है। अश्वत्थ, वट इत्यादि दुग्धधारी वृक्ष तो अकाट्य पूजन के सनातन पात्र रहे ही हैं। ऋग्वेद में वन देवता है और वनपुत्र इस दृष्टि से भी पूज्य हैं। बोधिवृक्ष के कारण 'स हि धम्मो सनन्तनो' (बौद्धधर्म) में भी वृक्ष पूज्य है (जो बौद्धधर्म पर वैदिक प्रभाव तक भी सूचक है)। गुरुप्रसाद सिंह 'मृगेश' की अचूक कवि-प्रतिभा ने 'पारिजात' (वृक्ष) को पंचदशसर्गीय (वे 'सर्ग' के स्थान पर अपने वृत्त एवं व्रत को अनुरूप 'स्तम्भ' शब्द का प्रयोग करते हैं जो उचित है) महाकाव्य का नायक बनाकर विश्व के काव्य में एक अनूठा प्रयोग किया है। अपने नायक का परिचय उन्होंने 'यथार्थता' शीर्षक भूमिका में स्वयं दिया है, ''विशाल पुरातन वृक्ष पारिजात उत्तर-प्रदेश की घाघरा नदी के दक्षिण तट पर स्थित बाराबंकी जपनद के बदोसराय कस्बे के पूर्व दो किलोमीटर और प्रसिद्ध तीर्थ कोटवाधाम के पश्चिम चार किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। वृक्ष के चारों ओर कंटीली झाड़ियों का वन बालू के भूड़ हैं (जिनमें अब बहुत-कुछ सुधार कर दिया गया है)। इसके ठीक उत्तर एक मील की दूरी पर किन्तूर ग्राम (पुराना कुन्तीपुर) और कुन्तेश्वर महादेव का मठ है।...यह विश्व का एकांकी वृक्ष (जैसा कि अब तक की खोजों से ज्ञात हुआ है) बालुका निर्मित भूड़ों पर स्थित है जिसका तना हाथी गर्दन जैसी सिलवटों वाला चमकदार रुपहले रंग का है। यह तना 25 मीटर गोलाकार माप का है। इसकी ऊँचाई वृक्ष-वर्ग में पृथक् सी है। पतियाँ त्रिफाके आकार की हैं। वृक्ष की एक शाखा तने से सम्बन्धित उत्तर-पूर्व में भू लुंठित है, परन्तु सूखी नहीं है (जिसका भी अपना अलग इतिहास है)। इस महामहीरुह में चैत्र के बाद बसन्ती रंग के कटोरीनुमा पुष्प आने लगते हैं जो वर्षा के मध्य तक अपना प्रस्फुरण क्रम बनाए रहते हैं। इन सुमनों की सरस सुरभि परम् मनोमुग्धकारी और अवर्ण्य है। गन्ध में विशेष गुण यह है कि दूर से ही इसका अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त हो पाता है, हाथ में लेकर

---

[1] साहजी भोंसले शिवाजी के पिता थे। 'शाह' में अप्रयुक्तत्व दोष।

[2] चंपतराय छत्रसाल के पिता थे।

[3] यहाँ 'छत्रशाल' नहीं—''रूढ़ि योगत् बलीयसी।''

[4] 'चहलारी-नरेश' काव्य भी रचा है जो आंचलिक इतिहास की प्रशस्य कृति है।

[5] 'कइसे सपरी?' शीर्षक अत्यधिक लोकप्रिय भोजपुरी-रचना इससे प्रभावित हो सकती है।

सूँघने पर कोई गन्ध नहीं मिलती।'' इस महान् वृक्ष का 'पारिजात' नाम सर्वथा उपयुक्त है। 'पारिजात' समुद्र-मंथन के चतुदर्श-रत्नों में एक है तथा इन्द्र के नन्दनवन में अवस्थित है। अतः भूतल का यह 'पारिजात' पौराणिक महत्त्व से निष्पन्न है। निकटस्थ कुन्तीपुर के कारण यह पांडवों से भी जुड़ा है। इस विलक्षण वृक्ष पर शत्-शत्'कल्पनाएँ एवं अनेक लोककथाएँ सृजनशील भारतीय मनीषा के सर्वथा अनुरूप हैं। 'मृगेश' जी की महान् प्रतिभा वस्तुतः प्रशस्य एवं तत्वतः प्रणम्य है कि वे पुराण-पाँडवकथा-लोककथा का समाहार करके अपनी विचक्षण कल्पनाशक्ति के बल पर वृक्ष को नायक पद पर प्रतिष्ठित करने का विश्व-गौरव[1] प्राप्त कर सके हैं। 'पारिजात' में चौपाई, ग़ज़ल, रुबाई, कवित्त, सवैया, द्रुतविलाम्बित, शिखरिणी इत्यादि मात्रिक एवं वर्णिक छन्दों तथा कहरा, आल्हा, रसिया, विदेसिया इत्यादि लयात्मक लोकछन्दों की विविधता अतिरेक पर जा पड़ी है, जिससे छन्दविधान में 'रामचन्द्रिका' से भी अधिक कृत्रिमता का आभास होता रहता है तथा 'प्रियप्रवास' का नानाछन्दविधान तक सहज लगने लगता है। मृगेश की संस्कृतनिष्ठ अवधी जनता की अवधी नहीं है, यद्यपि उनकी संस्कृतनिष्ठ अवधी में भी अवधी की रंगत द्वाराकाप्रसाद मिश्र कृत संस्कृतनिष्ठ-अवधी-महाकाव्य 'कृष्णायन' एवं विद्याधर महाजन कृत संस्कृतनिष्ठ-अवधी-महाकाव्य 'गाँधीचरितमानस' (1954 ई.) की तुलना में कहीं अधिक है। नानारसनिष्पत्ति की दृष्टि से भी 'पारिजात' विशिष्ट नहीं बन सका। अतः इसकी तुलना खड़ीबोली की 'कामायनी' (प्रसाद), 'प्रियप्रवास', (हरिऔध), 'साकेत' (मैथिलीशरण गुप्त), 'उर्वशी' (दिनकर) इत्यादि से नहीं की जा सकती, व्रजभाषा के 'गंगावतरण' (रत्नाकर), 'श्रीरामचन्द्रोदय' (रामनाथ 'जोतिसी') इत्यादि से भी नहीं जा सकती। किन्तु अपनी विशिष्ट प्रयोगधर्मिता एवं असाधारण कल्पनाशक्ति के कारण 'पारिजात' बौद्धिककाल की एक चिरस्मरणीय कृति है, इसमें सन्देह नहीं। 'मृगेश' अवधी के अज्ञेय हैं। अज्ञेय एवं मुक्तिबोध के अतिरिक्त वे किसी भी प्रयोगवादी से श्रेष्ठतर कवि हैं।

आधुनिक अवधी-कविता हास्य-व्यंग्य से अत्यधिक संपृक्त रही है, जैसाकि पढ़ीस, वंशीधर शुक्ल, रमई काका, भुशुंडि, काका बैसवारी इत्यादि की लोकप्रियता से स्पष्ट है। मृगेश की अवधी-कविता इससे भिन्न है। उन्होंने आधुनिक अवधी-कविता को नूतन एवं गम्भीर आयाम प्रदान किए हैं (हास्य-व्यंग्य जिसका एक अंग अवश्य है)। राजवंशमूलक असाधारण व्यक्तित्व के बावजूद उनका दलित-सम्वेदन अतीव मार्मिक है, जो उन्हें वंशीधर शुक्ल का सक्षम उत्तराधिकारी सिद्ध करता है। अपने 'समग्र' में वे एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कवि हैं। अधिकांश अकादमी पुरस्कार विजेता उनकी तुलना में बौने लगते हैं। उनकी अवधी-कविता के उद्धरण प्रस्तुत हैंः

जानी खेतु बैसुवा गोपाल वाला तालु जानी हालु जानी भैंसिन का जानी याक रागिनी।
हर कै कुलाह जानी आँकर[2] और स्याह[3] जानी लाला[4] कै निगाह जानी पलकै रहैं तनी।।
गरमी औ जाड़ु जानी बरखा कै बाढ़ जानी ठाकुर कै मरु जानी नारि कै कहा-सुनी।
देब न जवाब जानी सैंति माँ कमाब जानी सुख से खाब जानी औरु कछू का जानी।।

(ज़मींदारी युग का किसान)

वैसे पेरि-पेरि सरसों माँ फूल फूलै लागि धीरे-धीरे वैसिनि बयार फिर धावै लागि।
बौरे लागि आम बगिया माँ भौंर दौरे लागि बैठि बिरवा पै कूक कोयलिया सुनावै लागि।।
ठौरेठौर गाँव माँ मँजीरा ढोल़ बाजै लागि लरिका संझैने से धमारि फागु गावै लागि।
भावै लागि छाही, घाम गरमी सतावै लागि आपुइ आपु गुइयाँ![5] सुधि बालम कै आवै लागि।।

(बसन्त में विरहिणी का भाव)

लाख बनै करता धरता धरता कोइ, कौतुक कृत्य करैया है औरुइ।
बारि दिया धरै कोटिन जाहिर, जीवन ज्योति जगैया है औरुइ।।
दाँव चहै कतन्यो करौ नाव, कुघाट से घाट लगैया है औरुइ।
भूल बिना भ्रम भूलि सकेलि कै, अम्बर बेलि बढ़ैया है औरुइ।।

---

1. 'गिनीज बुक ऑफ़ वर्ल्ड रेकॉडर्स' की चर्चा स्थूल एवं सामान्य लगती है। गिनीज़ बुक का शोशा वालमनोरंजनकारी मात्र है।
2. गहरा।
3. उथला।
4. पटवारी (जो प्रायः कायस्थ होते थे तथा कायस्थ लाला कहे जाते रहे हैं)। लाल भगवानदीन 'दीन' में सटीक।
5. सखी, सजनी, आली, भट्ट, वीर इत्यादि का अवधी-रूप।

राममनोहर लोहिया

आ. नरेन्द्रदेव, अच्युत पटवर्द्धन, श्रीधर महादेव जोशी, यूसुफ़ मेहरअली, जयप्रकाशनारायण प्रभृति के साथ-साथ भारत में समाजवाद[1] के एक ऐतिहासिक वाहक एवं उन्नायक डॉ. राममनोहर लोहिया (23 मार्च, 1910–12 अक्टूबर, 1967, अकबरपुर, जनपद फ़ैज़ाबाद, निधन नई दिल्ली) हिन्दी के प्रखर एवं तेजस्वी समर्थक थे। संसद में वे तथा उनके दल के महान् सांसद मधु लिमए, प्रसिद्ध श्रमिक नेता जॉर्ज फ़र्नाण्डीज़, कालान्तर में भारतीय राजनीति के आकाश के धूमकेतु राजनारायण, कृषक नेता रामसेवक यादव एवं मनीराम बागड़ी इत्यादि सदैव हिन्दी में बोलते थे। उनके शिष्य एवं सचिव प्रो. वासुदेवसिंह उत्तर प्रदेश के विख्यात हिन्दी-योद्धा सिद्ध हुए थे, जिन्होंने भाषा की आड़ में साम्प्रदायिकता को प्रोत्साहन देने वाली उर्दू की थोपाथापी का भारी विरोध किया था। लोहिया भारत में केवल हिन्दी में ही भाषण देते थे, जिसके लिए भाषाई-घृणावाद के प्रतीक तमिलनाडु के मद्रास (अब 'मूलतावादी' चैन्नै या चेन्नई) महानगर में उन पर ईंट-पत्थर तक फेके गए थे, उन्हें घायल तक किया गया था—दासवृत्ति की भयावह विडम्बना कि राष्ट्रभाषा में भाषण देने पर लोहिया-जैसे प्रखर देशभक्त, स्वातन्त्र्य-सेनानी एवं नेता को राष्ट्र के ही एक भाग के लोग मार डालना चाहते थे। तमिलनाडु के मस्तक पर कलंक का टीका लग गया! वीर पाण्ड्य कट्टरबोम्मन की आत्मा कराह उठी! लोहिया मार्क्सवाद के अन्ध-समर्थक न थे। राजनारायण के अनुसार, वे मार्क्सवाद एवं गाँधीवाद के समन्वित रूप के विकासक थे। वस्तुतः लोहिया जड़तामूलक साम्यवाद के घृणा-सिद्धान्त के विरोधी थे, इतिहास में केवल विकासवाद के स्थान पर कालचक्रवाद के प्रतिपादक थे, मार्क्स द्वारा भारत में कभी स्वर्ण-युग के न होते अर्थात् गौरांगश्रेष्ठतावाद के प्रतिपादन के आलोचक थे। उनकी दूरदृष्टि 1900-2000 ई. (आगे भी) में पश्चिम में साम्यवाद के क्षरण के कारण उन्हें मसीहा सिद्ध करती है। नास्तिक होते हुए भी लोहिया ने चित्रकूट में प्रसिद्ध रामायण-मेला लगवाया था! वे राम की अद्वितीयता के प्रतिपादक थे—राम-जैसा व्यक्ति न इतिहास में मिलता है, न कल्पना में। वे रामचरितमानस के प्रेमी थे। सम्प्रति यह मेला एक राष्ट्रीय उत्सव बन गया है! 'तुलसी का सात्त्विकरस', 'सूर का मधुररस' एवं 'कबीर का कोरा-रस' उनकी गहरी साहित्यिक पकड़ का सूचक है। महादेवी को 'गद्य का राजकुमार' कहना भी याद आता है। प्रयाग में लोहिया की मूर्ति का अनावरण महादेवी ने ही किया था। सुभद्रा द्वारा झाँसी की रानी की मूर्ति का अनावरण याद आता है। लोहिया की मूर्तियाँ लखनऊ, कानपुर, वाराणसी इत्यादि में भी लगी हैं। दिल्ली में लोहिया अस्पताल है, वाराणसी, गाज़ियाबाद, ग्वालियर इत्यादि में लोहिया नगर। विश्वनाथप्रताप सिंह और मुलायमसिंह यादव जैसे नेता लोहियावादी होने का दावा करते हैं। विवादास्पद मण्डल-आयोग के विन्ध्येश्वरी प्रसाद मंडल भी उनसे प्रभावित थे। ''भारतीय नारी का आदर्श सीता नहीं, द्रौपदी' की स्थापना जुझारू दर्शन का आदर करता है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र (जिन्होंने लोहिया को हिन्दी का एक श्रेष्ठ निबन्धकार माना है), स्व. श्री रघुवीर सहाय, श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा, श्री ओंकार 'शरद', श्री कैलाश 'कल्पित', डॉ. विजयशंकर मिश्र (दिल्ली), डॉ. राजकुमार (जबलपुर विश्वविद्यालय) इत्यादि साहित्यकार लोहिया से प्रभावित रहे हैं। ज्ञानपीठ पुरस्कार विजेता, साहित्य अकादमी अध्यक्ष असमिया उपन्यासकार श्री वीरेन्द्रनाथ[2] भट्टाचार्य तथा डिब्रूगढ़ विश्वविद्यालय के असमिया-विभाग के अध्यक्ष, प्रसिद्ध असमिया-साहित्यकार डॉ. महेन्द्र बोड़ा इत्यादि भी लोहिया से प्रभावित हुए थे। मुझे गर्व है कि मैं उनसे मिला, उनके साथ भाषण दिए (उन्होंने 1967 ई. में मेरे एक भाषण से सहमति[3] व्यक्त की), मुझे राजनीति में आने को कहा[4]—'प्रतिपक्ष' (नई दिल्ली) में प्रकाशित मेरा 'यादें लोहिया की' (1988 ई.) मेरे 'संस्मरण, श्रुतिसंस्मरण और जनसंस्मरण' ग्रन्थ में भी विद्यमान है।

1942 ई. की अगस्त क्रान्ति एक महान् नायक लोहिया का गोआ के स्वतन्त्र्य संग्राम में भी अविस्मरणीय योगदान रहा—उन्होंने नेपाल के जन-आन्दोलन को भी भरपूर समर्थन दिया। नेहरू की जीवनयापन, उनके प्रशासन, उनके समाजवाद, उनकी हिन्दी-नीति इत्यादि पर प्रहार करने वाले लोहिया ही थे। उन्होंने वीर-पूजा की सामन्ती परिपाटी का सदैव विरोध किया। वे आनुवंशिक-राजनीति के प्रचण्ड आलोचक थे। वे सचमुच लोहिया थे!

---

[1] मानवेन्द्रनाथ राय, पूर्णचन्द्र जोशी, श्रीपाद अमृत डांगे, ई. एम. ए. नम्बूदिरीपाद, राजेश्वर राव, ज्योति वसु इत्यादि के कई छापों के रूस व चीन से प्रेरित साम्यवाद से भिन्न, मार्क्सवाद की समीक्षा के साथ, लोकतन्त्र का प्रतिपादक समाजवाद—ग्रेट ब्रिटेन की लेबर पार्टी के समाजवाद के निकट।

[2] वे वीरेन्द्रनाथ लिखते है। 'रवीन्द्रनाथ' की तरह। बांग्ला, असमिया इत्यादि में 'व' प्रायः नहीं चलता।

[3] लोहिया मेरे हिन्दी के राजभाषा-रूप में अनुज्ज्वल भविष्य के विचार से सहमत थे और प्रो. बलराज मधोक असहमत। मैं ही ठीक निकला।

[4] मुझे राजनीति से सदैव डर लगता रहा है।

जर्मनी के हम्बोल्ट विश्वविद्यालय (जहाँ उन पर मार्ग का नामकरण किया गया है) से डी. एस. सी. (अर्थशास्त्र) लोहिया एक असाधारण मनीषी नेता थे। वे अंग्रेज़ी, जर्मन, हिन्दी, संस्कृत इत्यादि कई भाषाएँ जानते थे। उन्होंने अंग्रेज़ी में भी अनेक ग्रन्थ लिखे। उनके 'फ्रैग्मेन्ट्स ऑफ़ ए वर्ल्ड माइंड', 'मार्क्स, गाँधी एण्ड सोशलिज़्म', 'फॉरेन पॉलिसी', 'द गिल्टी मेन ऑफ इंडियाज़ पार्टीशन' इत्यादि अंग्रेज़ी-ग्रन्थों को अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई है। वे एक उत्कृष्ट हिन्दी-लेखक थे, जिनके 'इतिहास-चक्र', 'समाजवादी चिन्तन', 'नया समाज-नया मन', 'भारत-विभाजन के अपराधी', 'हिन्दू और मुसलमान', 'जाति-प्रथा', 'धर्म पर एक दृष्टि' इत्यादि ग्रन्थ आज तक प्रसिद्ध हैं। वे ग़ज़नवी, गोरी और बाबर को विदेशी आक्रान्ता न मानने वाले सांप्रदायिक तत्वों के विरोधी थे। वे सच्चे धर्मनिरपेक्ष थे।

लोहिया पर इन्दुमती केलकर कृत 'लोहियाः सिद्धान्त और कर्म' एवं डैरिस वाफ़र्ड कृत 'लोहिया एंड अमेरिकन मीट' ग्रन्थ पठनीय हैं।

आज भी हिन्दी को उसका संवैधानिक अधिकार नहीं प्राप्त हुआ। उसको पीछे ढकेलने का वीटो सबको प्राप्त है। पंचमांगी एवं पृथक्तावादी उस पर प्रहार करने को स्वच्छन्द हैं। संसद, कार्यपालिका, न्यायपालिका, शिक्षा, सूचनापट्टों, निमन्त्रणपत्रों, सर्वत्र दासता-प्रतीक अंग्रेज़ी का बोलबाला है, दबदबा है। जुझारू हिन्दी-क्षेत्र उपेक्षित पड़ा है। ऐसे में लोहिया की याद कैसे न आए?

नागार्जुन

'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ' प्रभृति यथार्थवादी उपन्यासों के प्रणेता, 'युगधारा', 'सतरंगे पंखों वाली' प्रभृति काव्यसंग्रहों तथा 'भूमिजा' खंडकाव्य के अपेक्षाकृत-उदार कवि नागार्जुन (वैद्यनाथ मिश्र) का जन्म 1910 ई. में तरौनी (जनपद दरभंगा, बिहार) में हुआ था। देहान्त ख्वाजा सराय दरभंगा में 5 नवम्बर, 1998 को हुआ। 'बलचनमा' शीर्षक आंचलिक रचना के उपन्यासकार के रूप में विख्यात हुए। वस्तुतः उनके अधिकांश उपन्यास आंचलिक हैं। एक आंचलिक उपन्यासकार के रूप में नागार्जुन फणीश्वरनाथ 'रेणु' से पीछे नहीं हैं। यह भी नहीं भुलाया जा सकता कि ('मैला आँचल' की मौलिकता विवादास्पद है)। नागार्जुन के उपन्यासों में अन्धविश्वास, मूढ़ता, बहुविध शोषण-प्रतीपड़न इत्यादि का मार्मिक चित्रण प्राप्त होता है। हिन्दी के साम्यवादी उपन्यासकारों में यशपाल के अनन्तर उनका स्थान सर्वोपरि है क्योंकि राहुल का क्षेत्र इतिहास था और रांगेय राघव, राजेन्द्र यादव, मन्नू भंडारी, रामदरश मिश्र, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती इत्यादि उनके स्तर का सशक्त एवं वस्तुनिष्ठ चित्रण नहीं कर सके।

कवि नागार्जुन साम्यवादी के रूप में केवल स्थूल 'युगधारा' में बहते हुए चले गए, अपने व्यंग्यों में यत्र-तत्र भदेसपन की लपेट में आने से न बच पाए। किन्तु उन्होंने 'सतरंगे पंखों वाली' कल्पनाएँ भी की और उन्हें जनजीवन से जोड़ा भी जिससे वे एक उल्लेख्य कवि भी बन गए। साम्यवादी कवियों में मुक्तिबोध के अनन्तर तथा शिवमंगलसिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, केदारनाथसिंह इत्यादि के साथ-साथ उनका भी एक स्थान है। सारे अतीत को सामन्ती या बूर्ज्वा घोषित करने की सड़ी हुई रुढ़ि का त्यागकर नागार्जुन ने कालिदास का अनुभूतिपूर्ण साक्षात्कार किया, प्रकृति पर मार्मिक दृष्टिपात किया, कोसल, अहल्या इत्यादि को शुद्ध लिखा तथा प्रचार के बल पर ही नहीं प्रत्युत अपने बल पर भी कवि सम्मान पा लिया। उन्हें अनेक पुरस्कार एवं सम्मान प्राप्त हुए। दिल्ली में जहाँ वे रहे वहाँ बाबा नागार्जुन नगर नामकरण हुआ है; यह स्थान सआदतपुर (सादतपुर) से संपृक्त है।

एक प्रभावी निदर्शन प्रस्तुत हैः

> जो नहीं हो सके पूर्णकाम मैं उनको करता हूँ प्रणाम।
> कुछ कुंठित औ कुछ लक्ष्य-भ्रष्ट जिनके अभिमंत्रित तीर हुए
> रण की समाप्ति के पहले ही जो वीर रिक्त तूणीर हुए
> उनको प्रणाम।
> जो छोटी-सी नैया लेकर उतरे करने को उदधि पार
> मन की मन में ही रही स्वयं हो गये उसी में निराकार,
> उनको प्रणाम।

भुवनेश्वर : एकांकी-मूर्ति

'कारवाँ' (1936 ई.) संग्रह तथा 'मृत्यु', 'हम अकेले नहीं है', 'सवा-आठ बजे', 'ऊसर', 'रोशनी और आग', 'कठपुतलियाँ', 'फोटोग्राफर के सामने', 'ताँबे के कीड़े', 'सींकों की गाड़ी' तथा—सबसे बढ़कर 'स्ट्राइक' के प्रणेता स्व. भुवनेश्वर प्रसाद (1910 ई.—शाहजहाँपुर) आधुनिक हिन्दी-एकांकी के एक वास्तविक जन्मदाता भी हैं, सर्वश्रेष्ठ एकांकीकार भी। उनके 'शैतान', 'खामोशी', 'सिकन्दर', 'लाटरी' जैसे एकांकी भी विशिष्ट संवाद-कला से सम्पन्न हैं। निस्सन्देह, एकांकी के अनेक रूप भारत में प्राचीन काल से ही प्रचलित चले आ रहे थे तथा भारतेन्दु कृत 'अन्धेर नगरी' इत्यादि एवं प्रसाद कृत 'एक घूँट' एकांकी ही हैं, डॉ. रामकुमार वर्मा का 'बादल की मृत्यु' भी स्मरणीय है, किन्तु 1907 ई. से पश्चिम में जन्मी इस विधा का सर्वाधिक सशक्त प्रयोग भुवनेश्वर ने ही किया है—वैसे, सुदर्शन, रामकुमार वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र इत्यादि भी हिन्दी-एकांकी के जन्मदाताओं में हैं किन्तु जिस वंकिम कला एवं भेदक अधुनातनता का वैभव भुवनेश्वर ने प्रदर्शित किया है वह अद्वितीय है। उन्होंने प्राचीन यूनानी से आधुनिक अंग्रेज़ी तक के अनेक प्रयोग अपने एकांकी में उतारे, जिनका अनुकरण मोहन राकेश, धर्मवीर भारती, विष्णु प्रभाकर इत्यादि तक़ ने किया हैः भयावह दृश्यांकन में, परिवार की टूटन एवं ढहते जीवन-मूल्यों के चित्रण में।

भुवनेश्वर हिन्दी के अकेले शुद्ध-एकांकीकार हैं क्योंकि अन्य एकांकीकारों ने अन्य विधाओं में भी सृजन किया है तथा लगे हाथ एकांकी भी लिख डाले हैं जबकि यह एकांकी में ही रमे और रसे। यों, उन्होंने 'मौसी', 'सूर्यपूजा', 'भेड़िए', 'लड़ाई', 'एक रात' जैसी कहानियाँ तथा 'कहीं—कभी', 'जन्म एक बच्चे का', 'यदि ऐसा होता तो' जैसी कविताएँ भी लिखी हैं, किन्तु इनमें न प्रस्थान के दर्शन होते हैं न प्रभावी मौलिकता के; और वे बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न साहित्यकार न थे। उनकी कविता कोई प्रभाव छोड़ सकने में असमर्थ है। यह सत्य है कि इनके मस्तिष्क पर फ्रायड का आतंक व्याप्त था, इनका जीवन विभिन्न कटुताओं का पुंज था (वे गिट्ठे और कमज़ोर थे, बला के शराबी थे, तुनकमिज़ाज थे, झागड़ालू थे)[1], इनकी जीवन-प्रतिक्रियाएँ तीव्र एवं तीक्ष्ण थीं; किन्तु यह भी सत्य है कि इन्हीं कारणों से उनके एकांकी जलते-दहकते, फूत्कार करते, हाहाकार मचाते कला-स्फुलिंग बन गए हैं। भुवनेश्वर विश्वस्तरीय महान् एकांकीकार हैं। अभी तक उनका सम्यक् आकलन नहीं हो सका।

'अश्क़'

'लक्ष्मी का स्वागत', 'सूखी डाली', 'चरवाहे', 'तौलिए' इत्यादि एकांकी[2], 'अंजो दीदी', 'क़ैद' इत्यादि नाटकों, 'गिरती दीवारें' इत्यादि उपन्यासों, 'अंकुर', 'डाची', 'पिंजरा', 'मेमने', 'काले साहब' जैसी कहानियों, 'चाँदनी रात और अजगर', 'बरगद की बेटी' इत्यादि कविताओं के लेखक उपेन्द्रनाथ 'अश्क़' (1910—19 दिसम्बर, 1996 ई.—जन्म जालंधर के एक ब्राह्मण-परिवार में, किन्तु निवास एवं निधन प्रयाग में) एक सफल हरफ़नमौला साहित्यकार हैं, यद्यपि साहित्य के इतिहास में वे प्रमुखतः एक सफल एकांकीकार ही माने जाएँगे। भले ही वे स्वयं "मैं तो कवि हूँ" कहें तथा डॉ. श्यामसुन्दर घोष इसे मान भी लें। ('पीली चोंचवाली चिड़िया के नाम': 'प्रकर' दिसम्बर, 1990 अंक)। वे आधुनिक हिन्दी-एकांकी के जन्मदाताओं में भी समाविष्ट हैं। वैसे, नाट्यकार-रूप में भी वे पर्याप्त सफल हैं। नाटक-एकांकी अन्योन्य-से हैं भी।[3] प्रेमचन्द इत्यादि के सदृश अश्क़ उर्दू से हिन्दी में आए। बहुतों के उर्दू से हिन्दी में जाने का एक कारण हिन्दी का स्फीत भाषा होना तो है ही, प्रमुख कारण मुस्लिम साम्प्रदायिकता है जो हिन्दू-अदीब को तभी इज़्जत देती है जब वह अन्ध-मुस्लिमपरस्ती कुबूल कर ले। पन्त इत्यादि के सदृश अश्क़ राजयक्ष्मा से जूझ कर विजयी होने वाले कलाकार हैं। व्यक्तित्व एवं कृतित्व दोनों में एकरस, सरल एवं सहज अश्क़ प्रगतिशील तो हैं किन्तु वादबद्ध नहीं। वे जीवन में यथार्थ एवं आदर्श का समन्वय चाहते हैं। उनकी रचनाएँ अपने प्रभाव में प्रशान्त हैं। उनके श्रेष्ठतर रचनाकार न होकर भी धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, कुँवरनारायण, विष्णु प्रभाकर, कुबेरनाथ राय, जगदीश गुप्त, शिवमंगलसिंह 'सुमन', केदारनाथसिंह प्रभृति बड़े-बड़े पुरस्कार पा गए जिससे उनकी व्यथा स्वाभाविक थी। मैंने अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 28 सितम्बर, 1993 के आयोजन में व्यथा-कुंठा-उद्गार स्वयं सुने थे।

---

[1] लखनऊ के हिन्दीप्रेमी एवं लेखक स्व शिवशंकर मिश्र उनके सम्पर्क में आए थे, जिन्होंने मुझे अनेक वृत्त बताए। 'भुवनेश्वरः चुनी हुई रचनाएँ' (1992 ई.) के सम्पादक स्व. रमेश बक्षी ने भी दुर्बलताएँ दिखलाई हैं।

[2] 'प्रतिनिधि एकांकी' के सफल सम्पादक भी।

[3] 'नाटककार अश्क़' ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह

एक महाविद्यालय एवं अनेक विश्वविद्यालयों में हिन्दी-विभागाध्यक्ष पद को सुशोभित करनेवाले डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह (28 अक्टूबर, 1910—12 अक्टूबर, 1997, सीतापुर जनपद में, निवास लखनऊ, देहान्त अमेरिका में) 'रामदूत'[1], महाकाव्य, 'शम्बूक' खंडकाव्य इत्यादि के कवि 'आचार्य चाणक्य', 'कविकुलगुरु', 'जनकवि जगनिक' एवं 'तुलसीदास' के नाट्यकार तथा 'हिन्दी-नाट्यसाहित्य का समीक्षात्मक इतिहास', 'नाट्यकार भारतेन्दु और उनका युग', 'नाट्यकार प्रसाद और उनका युग' एवं 'समसामयिक हिन्दी नाट्य-साहित्य' के विशिष्ट नाटक—आलोचक के रूप में स्मरणीय हैं। नाटक एवं नाट्यकारों पर भारतेन्दु, प्रसाद, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा, डॉ. अमरनाथ अग्रवाल, डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल, डॉ. जयनाथ 'नलिन', डॉ. जगदीशचन्द्र जोशी, डॉ. गोविन्द 'चातक' इत्यादि ने प्रभूत एवं प्रशस्य कार्य निष्पन्न किए हैं, किन्तु अपनी स्फीति में डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह निस्सन्देह विशिष्ट हैं। 'प्रस्थान' के अभाव एवं पारंपरिकता के अतिरेक के बावजूद कुँवर साहब स्मरणीय कवि हैं। संस्कृत, पालि, अपभ्रंश, हिन्दी, बांग्ला, मराठी, गुजराती, उर्दू तथा अंग्रेज़ी का ज्ञान उन्हें बहुभाषाविद् सिद्ध करता है। वे पारम्परिक वैष्णव कवि एवं पुरातनतावादी-आदर्शवादी मानव हैं, यद्यपि व्यवहारकुशल भी। अमेरिका की 'अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति' के संस्थापक के रूप में भी वे समादरणीय हैं। नए कवियों एवं लेखकों को प्रोत्साहन देने में वे कभी-कभी डॉ. रामकुमार वर्मा, बच्चन एवं अमृतलाल नागर का स्मरण कराते थे, यद्यपि उतने सहृदय एवं प्रतिभाशाली नहीं थे।

'रामदूत' महाकाव्य डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह की प्रमुख कृति है। निराला के स्नेहभाजन रहे हैं अतः उन पर महाप्राण का महाप्रभाव अवश्य पड़ा है। यह महाकाव्य शब्द-सौष्ठव की दृष्टि से विशिष्ट है। इनमें अनुरक्ति, भक्ति एवं शक्ति के त्रित् का संगम महावीर हनुमान् के गौरव के अनुरूप है। हिन्दी के हनुमान्-काव्य में तुलसी के अनन्तर तथा हृदयराम के साथ-साथ उनका स्थान अन्यतम माना जा सकता है क्योंकि महाकवि केशवदास और मैथिलीशरण ने इस दिशा में विशेष ध्यान नहीं दिया तथा भगवन्तराय खींची, काली कवि, श्यामनारायण पाण्डेय, संतुमार टंडन 'रसिक', इत्यादि का कृतित्व वैसा स्फीत नहीं है।

कुँवर साहब ने 'शम्पा' (कवितासंग्रह), मेघमाली' (गीतासंग्रह) इत्यादि अन्य काव्यकृतियाँ भी रची थीं। 'सामवेद का काव्यानुवाद' (टिप्पणी-सहित), 'यजुर्वेद का काव्यानुवाद' (टिप्पणी-सहित), 'अर्थववेद की टिप्पणी' (अनुवाद) भी उनकी काव्य-क्षमता के सूचक हैं।

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ ने 1991 ई. का अपना शीर्ष सम्मान 'भारतभारती पुरस्कार' प्रदान कर डॉ. कुँवर चन्द्रप्रकाशसिंह की आस्थामयी प्रतिभा एवं उनके संस्कृतिनिष्ठ अध्यवसाय के साथ न्याय ही किया।

शमशेरबहादुर सिंह

'कुछ कविताएँ' एवं 'कुछ और कविताएँ' के कवि शमशेबहादुर सिंह (13 जनवरी, 1911—12 मई, 1993) पर अंग्रेज़ी कविता में नव्यता के सशक्त वाहक एवं महान् प्रयोगवादी कवि टॉमस स्टर्न इलिअट (एलियट) के काव्य-गुरु एज़्रा पॉउण्ड का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। साम्यवाद की ओर रुझान के बावजूद के ठूँठ नहीं हुए। प्रयोगवाद की ओर रुझान के बावजूद वे बाज़ीग़र नहीं बने। शिल्प पर ध्यान होते हुए भी वे रसविरोधी नहीं कहे जा सकते—हाँ, उर्दूबाज़ी और ग़ज़लबाज़ी के फेर में वे बेक़ार ही पड़े। 'दूसरा सप्तक' (1951 ई., सं. अज्ञेय) के चौथे कवि शमशेर रोमानियत से भी मुक्त नहीं है क्योंकि निराला के जनवाद एवं पन्त के शिल्पवाद ने भी उन पर भरपूर प्रभाव डाला है। वे जाट थे, अतः उनकी रोमानियत में भी बला की मज़बूती भरी पड़ी है :

कहाँ किया मैंने प्रेम
अभी।
जब करूँगा प्रेम

---

[1] 'सकंटमोचन' महाकाव्य भी प्रकाशित हुआ है। अधुनातन हनुमत्-साहित्य में डॉ. भगवतीशरण मिश्र कृत माहातम्य-आख्यानपरक गाथा 'पवनपुत्र', कविवर श्री विश्वंभरनाथ पांडेय (1 जुलाई, 1991, जाजूपुर, जनपद बस्ती) कृत 'श्री हनुमानचरितमानस', डॉ. जयशंकर त्रिपाठी, दयाकृष्ण विजयवर्गीय, सुदर्शनसिंह एवं प्रकाश द्विवेदी कृत समनामी 'आंजनेय' काव्यचतुष्टय, राजेन्द्र शर्मा कृत 'पवनतनय', डॉ. सन्तकुमार कृत 'शक्तिपुत्र' इत्यादि भी सर्वथा उपल्लेख्य हैं। 'अधुनातन हनुमत्-साहित्य'. शोध का विषय है। प्रभुदत्त ब्रह्मचारी, व्रजरत्नदास, रामदास चौहान, गणेशदत्त शर्मा 'द्वन्द्व', सुदर्शनसिंह 'चक्र' इत्यादि के गद्यग्रन्थों पर पृथक् शोधग्रन्थ लिखा जा सकता है।

पिघल उठेंगे
युगों के भूधर, उफ़न उठेंगे
सात सागर।....
सरल से भी गूढ़, गूढ़तर
तत्त्व निकलेंगे
अमित विषमय
जब मथेगा प्रेम सागर
हृदय।....
तब बनोगी एक
गहन मायामय
प्राप्त सुख
तुम बनोगी तब
प्राप्त जय।

'झड़प'

भोजपुरी-कविता एवं भोजपुरी-गद्य के एक प्रख्यात आचार्य, व्रजभाषा-कवि, खड़ीबोली-कवि तथा 'विकास-खंड', 'जाति-खंड', 'इतिहास-खंड' एवं 'संस्कृत खंड' के चार खंडों में विभक्त 'विकास की एक धारा' (वस्तुतः 'विकास की शत धाराएँ') के यशस्वी लेखक कुलदीपनारायण राय 'झड़प' (जन्म 6 अगस्त, 1911 तदनुसार श्रावण शुक्ल 12, सं. 1968 वि., निधन 4 दिसम्बर, 1993, लिलकर, जनपद बलिया) ने 'विभूति-सतसई' लिखकर व्रजभाषा की सतसई-परम्परा में अभिनव नीतिपरक-समाजपरक-सृजन जोड़ा है, 'दीपदान' एवं 'अरघ' संग्रहों तथा 'वीरता के मान' खंडकाव्य के द्वारा भोजपुरी-कविता को गीतों, पदों, छन्दों इत्यादि से सजाया है, 'बात-क-बात' निबन्धसंग्रह से भोजपुरी-गद्य की भी सेवा की है। उनका साहित्य भोजपुरी-समाज का दर्पण है। 'रचनात्मक निबन्ध' (भाग 1), 'गोस्वामी तुलसीदासः भूमिका', 'गोस्वामी तुलीसदासः जीवन और व्यक्तित्व' इत्यादि उनके अन्य चर्चित ग्रन्थ हैं; जबकि 'प्रमुख भारतीय सन्त और सम्प्रदाय', 'भारतीय संस्कृति और उसका विश्वजनीय प्रभाव', 'ब्राह्मण-इतिहास' (5 खंड), 'भोजपुरी प्रदेश का इतिहास', 'बलिया का इतिहास' इत्यादि ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। उनकी खड़ीबोली कविता भी अप्रकाशित है। 'झड़प' जी खड़ीबोली-कविता मौलिकता या नव्यता की दृष्टि से उल्लेखनीय नहीं है। किन्तु उनकी भोजपुरी-कविता एवं भोजपुरी-गद्य दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। भोजपुरी का लोककाव्य एवं लोककथा-साहित्य पर्याप्त सम्पन्न है। स्वामी विमलानन्द सरस्वती ने 'बौद्धायन' महाकाव्य एवं कहानी-प्रवर्तन द्वारा आधुनिक भोजपुरी-साहित्य को प्रशस्यतः सम्पन्न किया है, अविनाशचन्द्र विद्यार्थी ने 'कौशिकायन' एवं 'सुदिन' द्वारा मोती बी. ए. (1 अगस्त, 1919, बरंजी, जनपद देवरिया) ने चलचित्र-गीतरचना में व्यापक (विशेषतः 1946-52 ई. में) सफलता प्राप्त की। 'चित्रकूट-महिमा' 'कविता में डॉ. योगेशचन्द्र दुबे (7-3-1960) ने तुलसी और मैथिलीशरण के प्रियस्थल को अस्मितासम्पन्न रूप से 'भोजपुरी-बयार' में चित्रित किया है। कृष्णानन्द 'कृष्ण' भोजपुरी के अन्य विख्यात रचनाकार हैं। अनेक कवि एवं लेखक भोजपुरी को सम्पन्न कर रहे हैं

'झड़प' जी की भोजपुरी-कविता में प्रकृति के सुन्दर वर्णन मनोहारी हैं। उनके वर्षा-वर्णन उत्कृष्ट हैं। वीररस में भी उन्हें सफलता मिली है। उनके भोजपुर-गद्य में व्यंग्य अच्छा लगता है। उद्धरण प्रस्तुत हैः

अइसन पड़ेला झड़ी, बूँदन के लागल लड़ी, झोर झझकोर चारु ओर ते ओन्हात बा।।
पानी के धार बहल, जगती के दाह दहल, छाप ढहल गरमी के, धरती सोन्हात बा।।
'टर्र-टर्र' घोर शोर, गड़हिन में चारू ओर, हड़-हड़ हिंडोरत हर पानी में जोतात बा।।
साही बा छिटल जात, घास चिखुरल जात, छिपिर-छिपिर पानी में धनहर सोहात बा।।
बदरा ओनहि-ओनहि जल बरिसे। छहर-छहर झर, घहर घन, कढ़त बने ना घर से।।

हहर-हहर जलधार नार नद, लहरत लहर-लहर से। घमघमात नभ, थहर-थहर तरु, उछल-उछल निर्झर से।।
चंचल पवन चलित नभमंडल, आखंडल आकार से। बरसि जात फिरि-फिरि नभ घेरत धूम-धुंध ना दरसे।।
तड़कत तड़तड़ात तड़ित-द्युति, चमकत चामीकर से। थरथर कदली, चलदल चंचल, भभरात तरुवर से।।
बहुत हहास बतास थम्हत ना, झरत पात पतझर से। बदश ओनहि-ओनहि जल बरसे।। (अरघ)
धू-धू करि उठलि आगि। हवा तेज भइल जागि।। बाँस फटत फटफटात। कोरई बा चरचरात।।
आगि बढ़ल हरहरात। कोट ढहल भरभरात।। टूटि परत जरत ओरि। रोड़न के बरत छोड़ि।।
असफुलिंग लाख-लाख। धुआँ धूरि उड़त राख।। धुआँ भरल ना लखाइ। केने के निकसि जाइ।।
लपट झपट बा कराल। जीभ की पसारि काल।। लीले चाहत जहान। बढ़ल जात बे प्रमान।।
हाथी लगत पहाड़ अस, सूँड़ कि अजगर नाग। पाँव कि लोहिया खंभ हः, कठिन गुहा भय लाग।।
देखत बा जे दृश्य ई, मानत मने गलानि। मन-मन सभे मसोसत अनय अधिक अनुमानि।।
(वीरता के मान)

अब जनलीं! दामाद दसवाँ ग्रहः! आ ऊहो राहु केतु भा प्लूटो नियर उलटा बहे वाला! क्रूर अइसन कि सदा पुँजवत रहे के इच्छुक। कतनो पूजा दीं सन्तुष्ट होखे के हाल न जाने।....दमाद का फरमाइस का मारे ससुर जी के नकदम हो रहल बा। उनका गृहस्थी के जरि-पलई लुंज-पुंज हो रहल बा, प्रतिष्ठा के नाव मँझधार में डूबे चहता बा, बाकी दामाद जी का ओसे का मतलब? ससुर जी तन-बिन जासु, उजरि-पजरि के पार लागि जासु भा उफरिपरसु—उनका त दहेज चाहीं। दसवाँ ग्रह के मनावें किंकियात ससुर जी का व्याकुल हृदय के मर्मपीड़ा सुनीं—एतना दहेज हम बेटी के दिहली मुखबों ना बोलेला दमाद!

अज्ञेय

यथार्थवादी युग की व्यक्तिपरक शाखा के नायक एवं उन्नायक स्वर्गीय सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' (7 मार्च, 1911-87 ई.) की बहुमुखी प्रतिभा प्रसाद का स्मरण कराती है। नाम सच्चिदानन्द पिता हीरानन्द शास्त्री, गोत्र वत्स, पंजाबी (मर्डात), ब्राह्मण, उपनाम प्रेमचन्द या जैनेन्द्र का दिया हुआ। वे क्रान्तिकारी एवं स्वातन्त्र्य-सेनानी थे (वन्दी भी रहे)। साहित्य वाचस्पति, डॉ. लिट्., साहित्य अकादमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार, भारत-भारती पुरस्कार (मरणोपरान्त) तथा अंग्रेज़ी कवि के रूप में नोबेल-पुरस्कार तक के लिए संस्तुत (यदि 'लॉबी' तगड़ी होती तो पा सकते थे। यह पुरस्कार टॉल्स्टॉय, टॉमस हार्डी जैसे दिग्गज-साहित्यकारों को नहीं मिला और कई छोटों-मोटों को मिल गया। रवीन्द्र को यीट्स या येट्स इत्यादि का समर्थन प्राप्त था)। इत्यादि से अलंकृत अज्ञेय बहुत प्रभावी व्यक्ति थे। उनका आरम्भिक भ्रूणवाद, परवर्ती मुक्तभोगवाद, नितान्त विवादस्पद सन्ततिशून्य बहुपत्नीवाद तथा उनकी आद्यंत प्रश्नचिह्नित मौलिकता प्रभृति बिन्दु दबे रह गए तथा वे केन्द्र तथा राज्यों की सरकारों से देश-विदेश के विभिन्न साहित्यकारों तक का सम्मान पाने में समर्थ हुए।

प्रयोगवाद के वाहक एवं नायक

यथार्थवादी युग की एक सर्वप्रमुख घटना 1943 ई. में अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' का प्रकाशन है, जिसके कवि हैं, गजानन माधव मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, (24 मार्च 2005 निधन) भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरिजाकुमार माथुर, रामविलास शर्मा और स्वयं अज्ञेय, जिनमें अज्ञेय एवं मुक्तिबोध प्रमुख सिद्ध हुए। आरम्भ में अज्ञेय क्रान्तिकारी थे और प्रायः साम्यवाद में विश्वास रखते थे, अतः 'तार सप्तक' के कवि अनुभूति-पक्ष में साम्यवादी क्रान्ति और अभिव्यक्ति पक्ष में वाल्ट हिट्मैन, एज़्रा पॉउंड एवं टॉमस स्टर्न इलिअॅट (एलिअॅट) की व्यक्तिवादी नवप्रयोग-निष्पन्नता का परस्परविरोधी (इलिअॅट घोर व्यक्तिवादी थे, जैसा कि कालान्तर में अज्ञेय हुए) शंखनाद करते हुए आए। धीरे-धीरे मुक्तिबोध साम्यवादी तथा अज्ञेय व्यक्तिवादी होते गए किन्तु प्रयोगवाद शैलीशिल्प की नव्यता के कारण सबको जोड़े रहा। 1951 ई. में 'दूसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ, जिसके कवि हैं भवानीप्रसाद मिश्र, शकुंत माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेरबहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती। नरेश मेहता धर्मवीर भारती के 'अन्धायुग' की नक़ल (किन्तु 'अन्धी' नहीं) पर 'संशय की एक रात' (खण्डकाव्य) में थोड़ा-बहुत सफल हुए; फिर भी, 'असल' बात न आ पाई!

1959 ई. में 'तीसरा सप्तक प्रकाशित किया गया, जिसके कवि हैं प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथसिंह, कुँवरनारायण, विजयदेवनारायण साही और सर्वेश्वरदयाल सक्सेना। 1979 ई. में प्रकाशित 'चौथा सप्तक' के कवि हैं अवधेश कुमार, राजकुमार कुम्भज, स्वदेश भारती, नन्दकिशोर आचार्य, सुमन राजे, श्रीराम वर्मा और राजेन्द्र किशोर अज्ञेय को 'कवि-उत्पादक मर्यादित' ('पोएट्स प्रोडक्शन लिमिटेड': एक खास 'नई नस्ल' में बद्ध होने के कारण) तो कहा जा सकता है किन्तु यह स्पष्ट है कि ठोंक-पीट कर या डुगडुगी बजाकर किसी को कवि नहीं बनाया जा सकता।

अज्ञेय के प्रयोगवाद ने हिन्दी को ही नहीं प्रत्युत सारी भारतीय भाषाओं को प्रभावित किया, क्योंकि इसमें व्यापक आयामों में पहली बार कवि को वरीयता प्राप्त हुई (वह किसी बहाने से नहीं, किसी माध्यम से नहीं, किसी आड़ से नहीं प्रत्युत साफ-सपाट, सीधे-साधे पाठक या श्रोता या समाज के ठीक आमने-सामने खड़ा होकर अपनी बात कह सका) तथा सहस्त्राब्दियों के रूढ़ छन्द बन्ध एवं अप्रस्तुत-विधान इत्यादि का स्थान नव्यता ने ले लिया। निसन्देह, प्रयोगवाद के भी अग्रदूत निराला थे जिन्होंने केवल अपने बल-बूते पर समाज को ठहरकर अपनी बात सुनाने के लिए विवश किया था, छन्दबन्धन को तोड़ा था, नए अप्रस्तुत प्रस्तुत किए थे, किन्तु निराला के सृजन का एक अंश ही ऐसा था अर्थात् वे परम्परा एवं नव्यता के सेतु पहले थे, केवलमात्र नव्यता के प्रतीक तदनन्तर। अपने परवर्ती सृजन (अर्चना, आराधना, गीतागुंज) में वे पारम्परिक भक्त के रूप में प्रकट होते हैं। अज्ञेय आद्यंत नव्यतावादी दृग्गत होते हैं, भले ही परवर्ती सृजन में 'जहाज़' के पंछी' के सदृश उन्हें भी नवरहस्यवादी बनना ही पड़ा। दूसरे, निराला अपनी आत्मपरकता में भी व्यक्तिवादी नहीं हैं। अतः व्यक्तिवादी-चेतना के पाश्चात्य-प्रेरित स्वरों के प्रतिनिधि अज्ञेय ही सिद्ध होते हैं, जिनका अनुसरण धर्मवीर भारती से राजेन्द्रकिशोर तक अनेक कवियों ने किया है।

स्फीत प्रभाव के कारण अज्ञेय की तुलना इलिअॅट (एलिअॅट) से की गई है। तुलना के कुछ बिन्दु निकाले भी जा सकते हैं (दोनों कवि की घोर व्यक्तिवादी हैं, दोनों अनुभूति-पक्ष एवं अभिव्यक्ति-पक्ष में नव्यता के वाहक एवं नायक रहे, दोनों ने प्राचीन मूल्यों का प्रत्याख्यान नहीं किया) किन्तु दोनों में अन्तर भी बहुत है (इलिअॅट प्रेरक हैं तथा अज्ञेय प्रेरित, इलिअॅट का पूर्व-पश्चिम चिन्तन-समन्वय विराट् एवं गम्भीर है तथा अज्ञेय का आरम्भिक सृजन इस दृष्टि से हल्का है—बाद में अवश्य वे इस दृष्टि से सफल हुए हैं) और कुल मिलाकर इलिअॅट अज्ञेय से श्रेष्ठतर कवि भी सिद्ध होते हैं, विचारक भी (क्यों कि आलोचक के रूप में इलिअॅट महत्त्वपूर्ण हैं, जबकि अज्ञेय प्रासंगिक) हाँ, नाट्यकार इलिअॅट की तुलना में उपन्यासकार अज्ञेय खड़े हो सकते हैं। वैश्विक प्रभाव तो गौरांगों का एकाधिकार है ही क्योंकि वे ही आज भी विश्व के वास्तविक स्वामी हैं ('वीर भोग्या वसुन्धराः' 'माइट इज़ राइट') किन्तु कभी-कभी श्यामांग भी इस दिशा में सफल हो जाते हैं, जैसे कि गाँधी ने असहयोग एवं सविनय अवज्ञा से लेकर सेवा-भाव एवं आश्रम-स्थापन इत्यादि के कारण अफ़्रीका के काले कौण्डा एवं टूटू से लेकर अमेरिका के काले मार्टिन लूथर किंग और यूरोप के गोरे रोमा रोलाँ, टेरेसा इत्यादि को प्रभावित किया। अज्ञेय का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह रहा है कि आरम्भ में वे बलात् आरोपित नवीनता की डुगडुगी पीटते आए ('धैर्यधन गदहा' या "मैं ही हूँ वह पदाक्रान्त रिरियाता कुत्ता" या भ्रूण 'कामनारत नारी') और अनेक कवि-तमाशबीनों से बुरी तरह घिर गए। शायद आरम्भ में उन्हें अपने कवि-रूप पर विश्वास नहीं था अन्यथा वे नवीनता की नौटंकी न करते। किन्तु जब उसकी नौटंकी सशक्त बैसवारी लट्ठबाज़ नन्ददुलारे वाजपेयी इत्यादि की ललकारों और सशंक अवसरलाभी नगेन्द्र इत्यादि की फुसफुसाहट झेल गई क्योंकि तमाशबीन काफ़ी हो गए थे, तब उन्हें लगा कि 'शक्ति' (प्रतिभा) की न्यूनता के बावजूद 'निपुणता' एवं 'अभ्यास' के बल पर एक प्रसिद्ध कवि बन सकते हैं। तदनुसार उन्होंने मौलिक-अनूदित अंग्रेज़ी, अमेरिकी, चीनी, जापानी और पाकिस्तानी कविता का अध्ययन किया तथा कहीं प्रेरित, कहीं अनूदित, कहीं ज्यों की त्यों[1] की स्फीत प्रस्तुति ने उन्हें एक स्फीत कवि के रूप में स्फीत प्रतिष्ठा प्रदान की, जो उस स्फीत अध्यवसाय को देखते ठीक भी थी। स्वतन्त्र भारत में प्रत्येक पाश्चात्य वस्तु आदरणीय है, प्रत्येक भारतीय वस्तु विगर्हणीय। ब्लेड हो या शर्बत, टेलीविज़न हो या 'जीन्स', कम्प्यूटर हो या लिपिस्टिक, यह हो या वह पश्चिम का सब कुछ गुणवत्तामय है, भारत का सब कुछ तुच्छनासूचक। ऐसी "आगे बढ़ी हुई" स्थिति में अज्ञेय की कविता को

---

[1] स्व. प्रो. सिद्धिनाथ मिश्र ने आई. आई. टी. कानपुर के एक आयोजन में अनेक उद्धरण देकर उन्हें निरूत्तर कर दिया। स्व. डॉ. जगदीश कुमार की 'नई कविताः बिलायती सन्दर्भ' पुस्तक के उद्धरण तो लिखित रूप में भी उपलब्ध हैं जिनका वे कोई उत्तर नहीं दे पाए थे। प्रो. आदित्यप्रताप सिंह ने अपने विद्वत्तापूर्ण निबन्धसंग्रह 'सूरज आवाज देता है' (1996 ई.) के 'कालजयी चीनी कवि बाईजुई (772-846 ई.) की मूलतः 'सुरबहार' तथा प्रकटतः जापानी कवि ओकाकुरा की 'टेमिग द हार्प' कविताओं का 'असाध्यवीणा' पर भारी प्रभाव सोदाहरण प्रस्तुत किया है ("अज्ञेय अपनी प्रसिद्ध 'असाध्य वीणा' नामक कविता को कुछ हेरफेर के साथ प्रस्तुत करते हैं।")।

प्रतिष्ठा न मिलती तो आश्चर्य ही होता! यद्यपि वे धोती-कुर्ता पहनते थे तथा बाद में ‘हिन्दू’ होने पर गर्व भी करने लगे थे, नवरहस्यवादी हो गए थे तथा उनके क्रान्तिकारी देशभक्त, स्फीत कवि, अखिल भारतीय कवि-नेता, सफल उपन्यासकार अंग्रेज़ी-कवि प्रभृति का समाहार बहुत उच्च है, तथापि जिस परकीयता से लाभ बौने उठा सके हैं उसी से उन्होंने भी (कम-से-कम आरम्भ के दो साहित्यिक दशकों में) अवश्य उठाया था। जब उन्हें लगा कि विजातीयता केवल तात्कालिक लाभप्रधान हो सकती है तब उन्होंने स्वजातीयता अपनाई, जिसके कारण साहित्य की श्रीवृद्धि तो हुई ही, उनको गौरव भी मिला (स्व. डॉ. विद्यानिवास मिश्र ‘अज्ञेय’ शीर्षक पुस्तक के सम्पादन में इस बिन्दु पर प्रशस्य प्रकाश डालता है जिसके कारण उनकी ‘परिचय’ शीर्षक भूमिका महत्त्वपूर्ण हो गई है)। प्रौढ़तर अज्ञेय भारत, भारतीयता, हिन्दूधर्म, साधारणीकरण इत्यादि के प्रतिपादक बन गए थेः ‘‘पुनि जहाज पर’’ आ गए थे! यह भी स्मरणीय है कि वे मैथिलीशरण को गुरु मानते थे, उनका चरण-स्पर्श करते थे।

स्फीत कवि

भग्नदूत, चिन्ता, इत्यलम्, इन्द्रधनु रौंदे हुए ये, अपने-अपने अजनबी[1], एक बूँद सहसा उछली, हरी घास पर क्षर भर, बावरा अहेरी, अरी ओ करुणा प्रभामय, आँगन के पार द्वार (साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित) सुनहले शैवाल, कितनी नावों में कितनी बार (ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित), क्योंकि मैं उसे जानता हूँ, सागर-मुद्रा, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ, महावृक्ष के नीचेः स्फीत सृजन, जिसमें क्रान्तिकारी की निराशा, एकान्तपरक आत्मबोध, क्षणवादी प्रकृति, नवरहस्यवाद इत्यादि का अप्रतिम विस्तार विस्मयकारी भी है, विशृंखलता-व्यंजक भी।[2] पन्त ने अज्ञेय के कृतित्व को आदि से अन्त तक लगातार प्रभावित किया है। ‘इत्यलम्’ और ‘हरी घास पर क्षण भर’ की कविताएँ स्नेह से प्रकृति तक पन्त-प्रभाव से ओतप्रोत हैं, यद्यपि उनकी आत्मपरक निराशा अलग पहचान भी बताती है। पन्त प्रकृति के प्रतिनिधि कवि हैं, अज्ञेय भी प्रकृति के उत्कृष्ट कवि हैं। देश-विदेश के विविधतापूर्ण प्राकृतिक सौन्दर्य का जैसा व्यापक चित्रांकन अज्ञेय ने किया है, वैसा संसार के कम कवि ही कर पाए हैं। उनकी अन्तमुर्खी वृत्ति प्रकृति में लय के शतशः अनुरूप थी। इसी के कारण उनका अमूल्य समय दूरदर्शन, आकाशवाणी, कविसम्मेलन, गोष्ठी इत्यादि में नष्ट नहीं हुआ। वास्तव में वे एक स्रष्टा-कलाकार थे जो अपना मूल्य पहचानता है तथा अपने जीवन (समय) को मूढ़प्रदर्शनों में बर्बाद नहीं करता। जो स्रष्टा-कलाकार नहीं होते, वे ही इन सड़े-गले टकावादी माध्यमों के दरवाज़ों पर खीसें निपोरते दीखते हैं—इसके अतिरिक्त और कुछ कर ही क्या सकते हैं? एकान्त में जीवन[3] का पूरा प्याला पिया था। पन्त का प्रभाव अज्ञेय का ‘आँगन के पार द्वार’ तथा ‘कितनी नावों में कितनी बार’ प्रभृति संग्रहों की नवरहस्यवादी कविताओं पर भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है, यद्यपि अपनी विशिष्टता अस्मिता के साथ (बौद्धिक-व्यक्तिवाद के साथ)। अज्ञेय की मानक परिनिष्ठित भाषा (जो उन्हें ग्रथार्थवादी युग के सारे व्यक्तिपरक एवं समाजपरक कवियों में विशिष्टता से गौरवान्वित करती है) पर भी पन्त की गहरी छाप आदि से अन्त तक लगातार पड़ी है। ‘पन्त और अज्ञेय’ स्तरीय शोधग्रन्थ या आलोचना-ग्रन्थ का विषय है। किन्तु यह अज्ञेय की एक महान् उपलब्धि है कि उनकी प्रयोगवादी नव्यता से पन्त-जैसे प्रेरक-महाकवि, दिनकर-जैसे लोक विख्यात अग्रज कवि एवं बच्चन जैसे लोकप्रिय अग्रज-कवि तक प्रभावित अवश्य हुए थे, जिसकी गवाही ‘कला और बूढ़ा चाँद’, ‘चक्रवाल’ (भूमिका) एवं ‘दो चट्टाने’ इत्यादि ग्रन्थ देते हैं।

मेरे विचार से अज्ञेय बौद्धिक-जीवनवादी कवि हैं। ‘शेखरः एक जीवनी’ के उपन्यासकार अज्ञेय डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में ‘‘नास्तिक-बुद्धिवादी’’ हो सकते हैं, किन्तु ‘हरी घास पर क्षण भर’ (विशेषतः ‘नदी के द्वीप’ कविताः ‘नदी के द्वीप’ उपन्यास के आरम्भ में भी प्रस्तुत, ‘पूर्वा’ संग्रह में भी समादृत) से लेकर ‘आँगन के पार द्वार’ (विशषतः ‘असाध्य-वीणा’ महाकविता) एवं ‘कितनी नावों में कितनी बार’ (विशेषतः ‘कितनी नावों में कितनी बार’ कविता) तक के कवि अज्ञेय बौद्धिक-जीवनवादी ही सिद्ध होते हैं क्योंकि बौद्धिक-जीवनवाद में आस्था अस्मिता पर आघृत होती है, अस्मिता आस्था पर नहीं; और इसे इन कविताओं के

---

1. ‘टू ईच हिज़ स्ट्रेंजर’ रूप में अनूदित अंग्रेज़ी-संकलन भी। ‘प्रिज़न डेज एंड अदर वर्सेज’ भी। हिन्दी-कवियों में अज्ञेय एकमात्र सफल अंग्रेज़ी-कवि भी सिद्ध हुए—ऐसे जो नोबेल-प्राइज़ के लिए भी विचार्य तक माने गए।
2. ‘‘पूर्वा’ (पन्त कृत ‘उत्तरा’ की अनुकृति में) की कविताएँ ‘इत्यलम्’ एवं ‘हरी घास पर क्षण भर’ का युगपत् संग्रह मात्र हैं।
3. आयुष्य, जल, रस।

नवरहस्यवाद में स्पष्टतः देखा जा सकता है। अज्ञेय की कविता का रस बौद्धिकरस है, जिसमें व्यक्ति की महत्ता को प्रकृति की विराटता एवं पराशक्ति की असीमता से संपृक्त जीवनवाद विवृत किया गया है :

1. हम नदी के पार द्वीप हैं।
हम नहीं कहते कि हमको छोड़कर स्रोतस्विनी बह जाय।
वह हमें आकार देती है।
हमारे कोण, गालियाँ, अंतरीय, उभार, सैकत-कूल
सब गोलाइयाँ उसकी गढ़ी हैं।....
किन्तु हम हैं द्वीप। हम धारा नहीं हैं।....

2. ओ विशाल तरु!
शत-सहस्त्र पल्लवन-पतझरों ने जिसका नित रूप सँवारा,
कितनी बरसातों, कितने खद्योतों ने आरती उतारी,
दिन भौंरे कर गए गुंजरित,
रात में झिल्ली ने
अनथक मंगल-गान सुनाए,
साँझ-सेवेरे अनगिन
अनचीन्हे खग-कुल की मोद-भरी क्रीड़ा-काकलि
डाली-डाली को कँपा गई
ओ दीर्घकाय! ।...
सहसा वीणा झनझना उठी
संगीतकार की आँखों में ठंडी पिघली ज्वाला-सी झलक गई—
रोमांच एक बिजली-सा सबके तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत स्वयंभू
जिस में सोता है अखंड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय।
डूब गए सब एक साथ।....
श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में—
वीणा के माध्यम से अपने को मैं ने
सब कुछ को सौंप दिया था—
सुना आप ने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब कुछ की तथता थी—
महाशून्य वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सब में गाता है।....

3. आँगन के पार
द्वार खुले

द्वार के पार आँगन।
भवन के ओर-छोर
सभी मिले–
उन्हीं में कहीं खो गया भवन।

5. कितनी दूरियों से कितनी बार
कितनी डगमग नावों में बैठ कर
मैं तुम्हारी ओर आया हूँ
ओ मेरी छोटी-सी ज्योति!
कभी कुहासे में तुम्हें न देखता भी
पर कुहासे की ही छोटी-सी रुपहली झलमल में
पहचानता हुआ तुम्हारा ही प्रभामण्डल।....

बौद्धिक-जीवनवादी कवि अज्ञेय के काव्य के प्रमुख बिन्दु हैं अस्मिता-और-अस्मिता (व्यक्तिवाद में भी विशिष्ट), विश्व-प्रकृति, नवरहस्यवाद और सार्थक-ध्वनिमयी भाषा (जिसमें एक मनोहारी सिम्फोनी विद्यमान है)। सामान्यतः अपने प्रकृतिचित्रण एवं विशेषतः अपने नवरहस्यांकन में अज्ञेय की कविताएँ 'उदात्त' से ओतप्रोत रहती हैं। उनकी श्रेष्ठ कविताओं में पहले वर्ण्य का बिम्ब उभरा मिलता है, तदनंतर उसकी व्याख्या की गई होती है। 'असाध्य-वीणा' (आँगन के पार द्वार) उनकी सर्वश्रेष्ठ कविता है। जैसे-जैसे व प्रौढ़ता का आलोक (श्वेत केश प्रतीक हैं) पाते गए वैसे-ही-वैसे आरम्भगत दुर्दमनीयता से दुर्बल अहं शालीनता से सबल अहं में परिणत होता गया, जिसने उन्हें वैश्विक ख्याति भी दी, राष्ट्रीय सम्मान भी दिया, भाषायी गौरव भी दिया :

धुंध से ढँकी हुई
कितनी गहरी वापिका है तुम्हारी
कितनी लघु अंजली हमारी!

गौरवशाली उपन्यासकार

यद्यपि अज्ञेय ने उपन्यास लिखे हैं तथापि उनको एतद्‌विषयक ख्याति एवं गरिमा का आधार महाकाव्योपन्यास 'शेखरः एक जीवनी' है जिसका अनाहत व्यक्तिवादी जीवन-दर्शन, तेजस्वी आत्मपरक चरित्र-चित्रण, अभिनव संवेदन-लोक एवं मनोवैज्ञानिक मानवाकल़न विश्वस्तरीय है। उपन्यास की विधा में अज्ञेय और आलोचना की विधा में नगेन्द्र ने मानक भाषा का आदर्श प्रस्तुत किया है। अज्ञेय केवल अनुभूति-पक्ष में गहन-गम्भीर कलाकार नहीं हैं, अभिव्यक्ति-पक्ष में भी वैसे ही हैं। 'शेखरः एक जीवनी' बुद्धिवादी साहित्य क़ी एक महान् औपन्यासिक सृष्टि है। अज्ञेय की सर्वश्रेष्ठ कृति 'शेखरः एक जीवनी' ही है, 'कितनी नावों में कितनी बार', 'आँगन के पार द्वार' नहीं, 'नदी के द्वीप' नहीं। नगेन्द्र ने उसमें आस्था के अभाव का संकेत किया है, इसे कमी माना है, किन्तु वस्तुतः यही उसकी शक्ति हैः यह अनिवार्य नहीं कि प्रत्येक मनुष्य सदा-सर्वदा परमात्मा की लाठी के सहारे ही डगरता रहे! कपिल, कणाद्, बुद्ध, महावीर, मार्क्स, लेनिन इत्यादि नास्तिक थे। नास्तिकता सहज नहीं, आरोपित है। नास्तिकता मनोवैज्ञानिक नहीं, कृत्रिम है। किन्तु उसका भी अपना एक रंग है, (मैं तो कहूँगा) रस भी है। फिर, अज्ञेय तो कुल मिलाकर नास्तिक हैं ही नहीं।

'नदी के द्वीप' का निस्संग-कामवाद न व्यावहारिक है, न उदात्त, न उपादेय; वह नवमानव की एक विकृति का सशक्त प्रतीक अवश्य है, व्यक्तिवाद की पराकाष्ठा का एक चिन्तन-बिन्दु अवश्य है, जिसने उपन्यास को एक सशक्त कृति बना दिया है।

यद्यपि 'परख', 'सुनीता', 'विवर्त', 'त्यागपत्र'[1] इत्यादि से 'अनामस्वामी', 'मुक्तिबोध' इत्यादि तक के स्फीत उपन्यासकार जैनेन्द्र[2] उपन्यास की विधा में अज्ञेय से व्यापक कलाकार हैं, तथापि उनका कोई एक उपन्यास 'शेखरः एक जीवनी' की समता नहीं कर सकता। वृन्दावनलाल वर्मा का क्षेत्र पृथक् है। वे ऐतिहासिक उपन्यासकारों में अग्रणी हैं। किन्तु उनका कलाकार-स्तर अज्ञेय के कलाकार-स्तर

---

[1] छोटे-छोटे वाक्य, छोटे-छोटे शब्द, छोटे-छोटे सूत्र ('सूक्त' नहीं।) गाँधी और जैनेन्द्र दोनों ही क़द में भी छोटे थे!

[2] अज्ञेय ने 'रेजिग्नेशन' के रूप में अनुवाद किया है।

की समता नहीं कर पाता। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार-त्रयी में जैनेन्द्र एवं अज्ञेय के अनन्तर इलाचन्द्र जोशी का नाम लिया जाता है किन्तु उनकी कला दो की सी विकसनशील नहीं रही। अज्ञेय की तुलना में यशपाल[1] एक किस्सागो मात्र लगते हैं, कलाकार नहीं; भगवतीचरण वर्मा एक रोचक-उपन्यासकार मात्र लगते हैं, गहन-शिल्पी नहीं; भगवतीप्रसाद वाजपेयी एक उपदेशक—उपन्यासकार मात्र लगते हैं, प्रातिभ-स्रष्टा नहीं, अमृतलाल नागर एक प्रयत्नज-उपन्यासकार मात्र लगते हैं, सहज-जीवनद्रष्टा नहीं; अन्य असंख्य उपन्यासकारों को यहाँ आसानी से छोड़ा जा सकता है। उपन्यासकार अज्ञेय का सम्यक् मूल्यांकन होना अभी शेष ही है, क्योंकि आलोचना उनके कवि में ही उलझी रही है, यद्यपि उनके कवि-रूप पर भी उच्चस्तरीय ग्रन्थ उपलब्ध नहीं। 'शेखर : एक जीवनी' पर आलोचक नगेन्द्र ने स्तरीय आलोचनात्मक निबन्ध लिखा है।

विविध सृजन

अज्ञेय प्रमुखतः कवि एवं उपन्यासकार (कोई चाहे तो 'उपन्यासकार एवं कवि' कह सकता है जिसका विरोध करना कठिन पड़ेगा) हैं। यद्यपि उन्होंने ढेर-सारी कहानियाँ भी लिखी हैं, अनेक निबन्ध भी, कुछ आलोचना-सामग्री भी, थोड़ा-बहुत यात्रावृत भी, नाटक पर भी हाथ आज़माया, तथापि इनका कोई विशेष मूल्य सिद्ध नहीं हो पाता। वैसे, हिन्दी के कहानीकारों में उनका भी एक नाम लिया अवश्य जाएगा क्योंकि 'चिन्ता', 'विपथगा', 'परम्परा', 'कोठारी की बात' इत्यादि संग्रह शिल्प की वंकिमता एवं चिन्तन की तीव्रता से निष्पन्न हैं। 'पठार का धीरज', 'शत्रु', 'मेजर चौधरी की वापसी', 'रोज़' इत्यादि कहानियाँ कहीं प्रतीक, कहीं द्वन्द्व, कहीं विचार तो कहीं यथार्थ की शक्ति के साथ चित्रित करती हैं। उनके 'भाषा और समकालीन समाज', 'श्रव्य कविता से दृश्य कविता तक', 'भाषा और अस्मिता', 'आख्यापन में काल की समस्या', 'समाज में लेखक की भूमिका', 'साहित्य में समय-बोध', 'काव्य में संप्रेषण की समस्याएँ' प्रभृति निबन्ध प्राविधिक अधिक हैं, साहित्यिक कम, जिनका महत्त्व उनके व्यक्तित्व पर आधृत है, न कि वस्तु पर। 'लिखि कागद कोरे' शीर्षक विचारात्मक निबन्धसंग्रह और 'पश्यंती' एवं 'अन्तरा' शीर्षक टिप्पणी-संग्रह का महत्त्व अज्ञेय के कारण है, अज्ञेय का महत्त्व इनके कारण नहीं। 'त्रिशंकु' एवं 'हिन्दी साहित्यः एक आधुनिक परिदृश्य' ने उन्हें आलोचक नहीं बना पाया क्योंकि आलोचक की वस्तुवादी दृष्टि, अपरिसीम अध्ययन, चिन्तन, विश्लेषण एवं आकलन की साधना-प्रक्रिया इतनी सरल नहीं कि प्रत्येक कवि या उपन्यासकारों या यह एक या वह आलोचक बन बैठे। 'अरे यायावर रहेगा याद' ग्रन्थ उन्हें यात्रावृत्तकारों की सूची में स्थान भर दिला सकता है, न कि स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, श्री शिवप्रसाद गुप्त, राहुल सांकृत्यायन, सेठ गोविन्ददास, डॉ. रघुवीर, यशपाल जैन इत्यादि प्रतिनिधि-यात्रावृतकारों का स्थान। 'उत्तर प्रियदर्शी' नाटक तो उन्होंने व्यर्थ ही लिखा और अभिनीत कराया। किन्तु ये सारी रचनाएँ उनकी बहुमुखी प्रतिभा की सूचक तो हैं ही। आलोचक एवं विद्वान् वे न थे (और प्रतिभाशाली कलाकार के लिए आलोचक एवं विद्वान् होना न अपरिहार्य है, न आवश्यक—वैसे, व्यास या श्रीहर्ष, तुलसी या प्रसाद, कॉलरिज का इलिअॅट, खुसरो या फ़िराक़ की तरह वे हों भी तो कोई हर्ज नहीं) जैसाकि श्रीधर पाठक को महावीरप्रसाद द्विवेदी पर युगप्रवर्तक-वरीयता प्रदान करके उन्होंने स्वयं सिद्ध कर दिया है। इतिहास, साहित्य (विशेषतः सहित्यसेतिहास) का उनका अध्ययन बहुत साधारण था, जैसाकि उनका आलोचना-साहित्य सिद्ध करता है। वे कलाकार थे, विद्वान् नहीं। कलाकार विद्वानों का प्रेरक होता है। अतः विद्वान् का चोला उन्होंने नाहक ही पहन डाला था।

डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या' में इस बहुमुखी प्रतिभा के धनी कलाकार के सृजन पर प्रकाश डाला है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने 'अज्ञेय' (संकलन की भूमिका) में उनके उपन्यास एवं काव्य की समीक्षा की है। ढेरों 'प्रचलित' शोध एवं अन्य ग्रन्थ भी मिलते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल

'युग की गंगा' (1947 ई.) 'आग का आईना' (1970 ई.) तथा 'हे मेरी तुम' (1989 ई.) तक कई रंगों की कृतियाँ रचने वाले साम्यवादी कवि स्व. केदारनाथ अग्रवाल (1911 ई.—बाँदा) 'फूल नहीं रंग बोलते हैं (1965 ई.) में सर्वाधिक सफल हुए हैं। तत्वतः

---

[1] क्रान्तिकारी रूप में भी यशपाल क्रान्तिकारी अज्ञेय की समता नहीं कर सकते। यशपाल को चन्द्रशेखर 'आज़ाद' गोली से उड़ाने-उड़वाने तक के लिए तैयार हो गए थे।

वे ग्राम्य प्रकृति, ग्राम्य सुन्दरी एवं ग्राम्य संगीत के ललित कवि हैं। उनकी सर्वहारा-कविताएँ शुष्क एवं शिथिल हैं। श्रेष्ठतर कवि मुक्तिबोध की सर्वहारा कविताएँ गद्यात्मक होने पर भी उबलती-दहकती तो हैं; इनकी वैसी भी नहीं है। थोपे-थापे विषयों पर उत्कृष्ट एवं मौलिक कविता नहीं लिखी जा सकती। किन्तु केदारनाथ अग्रवाल ने प्रकृति और प्रेम पर कुछ अच्छी कविताएँ लिखी हैं :

1. पेड़ नहीं,
पृथ्वी के वंशज हैं,
फूल लिए
फल लिए
मानव के अग्रज हैं।

2. यहीं कहूँगा—
क्षण-प्रतिक्षण मैं यही कहूँगा :
जीत लिया सबको फूलों ने,
सबके सिर पर फूल चढ़े हैं।

3. ऐसे जैसे किरन
ओस के मोती छू ले
तुम मुझको
चितवन से छू लो
मैं जीवित हो जाऊँ!
ऐसे जैसे स्वप्न
लजीला पलकें छू ले
तुम मुझको चुम्बन से छू लो
मैं रसमय हो जाऊँ।

रावी

'पूजा (1937 ई.) एवं 'शुभ्रा' (1941 ई.) के सफल गद्यगीतकार तथा 'रावी की परवर्ती लघुकथाएँ' के प्रभावी लघुकथाकार स्व. श्री रामप्रसाद विद्यार्थी 'रावी' का जन्म 16 दिसम्बर, 1911 को कुलपहाड़ कस्बे (ज़िला हमीरपुर, उ. प्र.) में हुआ। पास के फतेहपुर एवं कानपुर में शिक्षा प्राप्त कर वे आगरे में जम गए, जहाँ नया नगर बसाया। यद्यपि उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी एवं निबन्ध (विचारात्मक) की विधाओं में हाथ आज़माया है, तथापि साहित्येतिहास में वे गद्यगीतकार एवं लघुकथाकार के रूपों में ही याद किए जाएँगे। उनके गद्यगीत एवं लघुकथाएँ दोनों ही प्रशान्त मानवतावाद से परिपूर्ण हैं, यद्यपि उनमें भाव की सरलता कम है। 'वीरभद्र के पत्र' में उनका समाज-चिन्तन विवृत हुआ है। पार्टीबाज़ी, तिकड़मबाज़ी, प्रचारवाद इत्यादि के इस आपाधापी से भरे नवपिंडारीयुग में भी वे शान्त एवं शालीन साहित्य-साधना में रसे रहे। आगरे से 'नए विज्ञापन' नामक लघु-मासिकपत्र भी निकालते रहे जो वस्तुतः विलक्षण रहा। उनका देहान्त सितम्बर, 1994 में हुआ।

1987 ई. में उनके जन्मदिवस के सन्दर्भ में 'विश्व हिन्दी सेवा' (मुक्त किन्तु अनाहत शृंखला-पत्रिका) के निःस्पृह सम्पादक अखिल विनय (मुम्बई) एवं 'क्रान्तिस्वर' के सम्पादक, साहित्यसेवक एवं कवि तोताराम गुप्त 'विरही' (फ़तेहपुर, उ. प्र.) ने रावी का लगातार अनेक अंकों तक प्रसरित सम्मान करके प्रशस्य कार्य किया। मासिक 'तारिका' (अम्बाला) ने भी इस दिशा में योगदान किया। सरस्वती साधना परिषद् मैनपुरी ने 14 अप्रैल, 1990 को उन्हें पुरस्कृत-सम्मानित किया। रावी का शाश्वत जीवनवादी दर्शन (जिसमें पुनर्जन्म की विकासवादी व्याख्या विद्यमान है) विलक्षण प्रगतिशील से संपृक्त है। वे रूसो के सरल प्राकृतिक जीवन को भारतीय दर्शन से मिलाकर 'नयानगर' (कैलास, आगरा) के संस्थापक बन चुके हैं। अपने 'उच्चतर काम विज्ञान के सूत्र' ग्रन्थ में रावी ने उच्चतम वैश्विक काम-दर्शन की विवृति की है। वे स्वस्थ-स्वच्छ मुक्त काम के प्रतिपादक हैं। उनकी यूटोपिया नयानगर में साकार होती है, जो जटिल एवं अव्यावहारिक

होने पर भी नितान्त विचारोत्तेजक है। स्वतन्त्र साहित्य की वास्तविक सेवा लघु एवं अल्पज्ञात पत्र-पत्रिकाओं द्वारा सम्पादित की जा रही है, क्योंकि विशाल तथा 'लोकप्रिय' पत्रिकाएँ ''सागर में वर्षा और मरु में सूखा'' सिद्धान्त पर चलती रही हैं।

विष्णु प्रभाकर

'नव प्रभात' 'डॉक्टर' इत्यादि नाटकों एवं 'प्रकाश और परछाइयाँ' इत्यादि एकांकी-संग्रहों के प्रणेता विष्णु प्रभाकर (21 जून, 1912 ई.—मीरनपुर, ज़िला मुजफ़्फ़रनगर, उ. प्र.) हिन्दी के नाट्यकारों एवं एकांकीकारों में गण्य भी हैं, मान्य भी। वैसे, उन्होंने 'ढलती रात' एवं स्वप्नमयी' शीर्षक उपन्यास, 'आदि और अन्त' एवं 'संघर्ष के बाद' इत्यादि कहानी-संग्रह, 'जाने-अनजाने' शीर्षक रेखाचित्र-संस्मरण-संग्रह तथा 'आवारा मसीहा' शीर्षक प्रसिद्ध बांग्ला-उपन्यासकार शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय की जीवनी भी लिखी है, जिस पर साहित्य अकादमी (नई दिल्ली) पुरस्कार मिला। वे शरद से प्रभावित रहे हैं। उन्हें 51000 रु. का मूर्तिदेवी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है, 51000 रु. का ही हिन्दी अकादमी दिल्ली (राज्य) का शलाका सम्मान भी। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक में वे 'बहुत ज़ोर' पर रहे। फलतः प्रभात प्रकाशन दिल्ली ने 'विष्णु प्रभाकरः सम्पूर्ण नाटक' (बहुखंडीय) भी निकाला है, जो सचमुच 'विराट' है। वह बात और कि कुछ रचनाएँ कई बार आ गई हैं। विष्णु प्रभाकर मूलतः गाँधीवादी साहित्यकार हैं। फिर भी, उन्हें न कोरा आदर्शवाद प्रिय है, न कोरा यथार्थवाद; और वे दोनों में समन्वय स्थापित करते चलते हैं। 'टूटते परिवेश' एवं 'सत्ता के आरपार' जैसे नाटक तथा 'संस्कार और भावना' जैसे एकांकी उनकी प्रतिनिधि रचनाएँ हैं। उनके बहुचर्चित एवं पाठ्यक्रम-प्रस्तावित नाटक 'डाक्टर' में सामान्य पति-पत्नी में पति के उत्कर्ष के कारण परित्यक्ता पत्नी की चुनौती से उत्कर्ष की प्रेरणा तथा पूर्व-पति की वर्तमान पत्नी के इलाज में प्रतिशोध एवं कर्त्तव्य के द्वन्द्व चित्रित हैं, किन्तु पुररुक्तियाँ अखरने लगती हैं, सूक्तियाँ प्रयत्नज लगने लगती हैं तथा आदि से अन्त तक फिल्मी-टॅच पसरा दीखता है। 'टूटते परिवेश' में परिवार की टूटन चित्रित है पर वह भी ज़बर्दस्ती फैलाई गई लगती है। रंगमंच पर वे बेहद ध्यान देते हैं। यद्यपि उनके नाट्यसाहित्य में मोहन राकेश की सी तड़क-भड़कदार नवीनता नहीं दृग्गत होती तथापि वे राजनीति के पाखंड से परिवार की टूटन और पीढ़ियों की टकराहट तक का अच्छा चित्रण करते हैं। खेद है कि हमारे नाट्यसाहित्य में ग्राम को नकारा गया है, किन्तु विष्णु प्रभाकर नाटकों की नागर भावना लक्ष्मीनारायण लाल जैसी लपकझपकदार न होकर गम्भीर है। लाल के 'मिस्टर अभिमन्यु' या 'कॉफीहॉउस में इंतज़ार' इत्यादि में थोपाथापी कोई गहरा प्रभाव नहीं डाल पाती। विष्णु प्रभाकर में मोहन राकेश की प्रतिभा का पैनापन नहीं है। किन्तु लक्ष्मीनारायण लाल की तुलना में वे अधिक सहज भी हैं, शालीन भी। अत्यन्त साधारण स्थिति से एक अपेक्षाकृत श्रेष्ठ नाट्यकार बनने वाले पुरुषार्थी नाट्यकार-एकांकीकार विष्णु प्रभाकर का मनुष्यष्व अहंमुक्त है, यह भी एक उल्लेख्य बिन्दु है। साधारणतः व्यक्ति वृद्ध होने पर दर्शन या भक्ति इत्यादि की ओर झुकता है किन्तु विष्णु प्रभाकर 130 नाटक, एकांकी-संग्रह, उपन्यास, कहानी-संग्रह, जीवनी, यात्रावृत्त इत्यादि विधाओं के ग्रन्थ लिखने के बाद कांग्रेसी एवं आर्य समाजी से पूर्ण नास्तिक एवं साम्यवादी जैसे हुए।

रामविलास शर्मा

हिन्दी-आलोचकों में स्व. डॉ. रामविलास शर्मा (जन्म 1912 ई.) को एक सुनिश्चित स्थान प्राप्त हैः वे प्रतिनिधि मार्क्सवादी आलोचक हैं क्योंकि प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदानसिंह चौहान, नामवर सिंह इत्यादि उनकी तुलना में नहीं खड़े हो पाते। वैसे तो रामविलास शर्मा ने कविताएँ भी लिखी हैं तथा वे सप्तक-कवियों में नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे इत्यादि की कविताओं से श्रेष्ठतर भी हैं, फिर भी वे हैं आलोचक ही। मार्क्सवादी-आलोचना का आधार द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद एवं तत्प्रतिपादित वर्ग-संघर्ष है, जिसमें ईश्वर, आत्मा, पुनर्जन्म, परलोक, अहिंसा, हृदयपरिवर्तन इत्यादि को कोई महत्त्व नहीं प्राप्त। एक ठोस यथार्थवादी चेतना के प्रसार, शोषण-प्रपीड़न-विगर्हण एवं नूतन संवेदनायामों की प्रतिष्ठा की दृष्टि से मार्क्सवादी कवियों (नागार्जुन, शिवमंगलसिंह 'सुमन', केदारनाथ अग्रवाल, सुदामाप्रसाद 'धूमिल', केदारनाथ सिंह इत्यादि), मार्क्सवादी उपन्यासकारों (यशपाल, राहुल, नागार्जुन, रांगेय राघव, कृष्णा सोबती इत्यादि), मार्क्सवादी कहानीकारों (मोहन राकेश, राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर इत्यादि) ने हिन्दी-साहित्य की महत्त्वपूर्ण सेवा की है, एक विराट् जनचेतना जागृत की है जिससे शत्-शत् कवि, उपन्यासकार, कहानीकार इत्यादि प्रभावित हुए हैं, किन्तु इन सब में अपनी अनवरत साधना, एकध्येयता एवं रचनाविभूति में रामविलास शर्मा का स्थान सर्वश्रेष्ठ है। लट्ठमार शैली में कहीं-कहीं वे अनियन्त्रित अवश्य हो गए हैं, जिससे प्रभाव

को आघात लगा है भारतेन्दु और निराला के मानक आलोचक रूप में रामविलास शर्मा को सदा याद किया जाता रहेगा—वैसे, उन्होंने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पर भी अच्छा ग्रन्थ रचा है। भारतेन्दु एवं निराला सच्चे जनवादी साहित्कार भी थे, महापुरुष भी, जिन्हें रामविलास शर्मा का संवेदन अनायास प्राप्त हो गया है, जिन्हें उनकी ग्राह्यता ठीक से पहचान सकी है। 'राग-विराग' शीर्षक संकलन में उन्होंने निराला के विराट् कवि के बड़े परिश्रम के साथ खोला है। रामविलास शर्मा का विवेचन शिथिल होता है, विश्लेषण पक्षपातपूर्ण और आकलन मनमाना। उनकी भाषा अत्यन्त सामान्य स्तर की है। मनीषी पाठक को वे विशेष प्रभावित नहीं कर पाते। किन्तु उनके पावन जनवाद एवं विराट् अध्यवसाय उन्हें रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दरदास, नन्ददुलारे वाजपेयी, हज़ारीप्रसाद द्विवेद्वी एवं नगेन्द्र की पंक्ति में खड़ा करने का सामर्थ्य रखते हैं, इसमें सन्देह नहीं। रामविलास शर्मा ने स्वतन्त्रता-संग्राम में साम्यवादियों के योगदान पर स्फीत ग्रन्थ रचना की है, जो शुद्ध राजनैतिक है। वैसे, उनके साहित्यिक कृतित्व पर भी राजनीति का रंग छाया-छाया लगता है किन्तु इससे बिचकना पाखण्ड है क्योंकि राजनीति सदा जीवन पर छाई ही रही है तथा धर्म और इतिहास तो उसके लग्गू-भग्गू रहे ही हैं, साहित्य और दर्शन तक उसके प्रभाव से नहीं बच सके—आज का विज्ञान और आज की यांत्रिकी भी उसकी गुलामी कर रहे हैं।

नरेन्द्र शर्मा

स्वच्छन्दतावादी युग (1920-40 ई.) के अवसान एवं यथार्थवादी युग के आगमन की सूचना देने वाले कवियों में पन्त, दिनकर, बच्चन एवं अज्ञेय के अनन्तर जो अनेकानेक कवि हुए उनमें नरेन्द्र शर्मा (22 फरवरी, 1913-89 जहाँगीरपुर, ज़िला बुलन्दशहर, उ. प्र.) विशेष गण्य हैं, जिनके 'प्रभात फेरी' (1938 ई.), 'प्रवासी के गीत' (1939), 'पलाशवन' (1940 ई.) प्रभृति संग्रहों को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है। 'शूल-फूल', 'कर्ण-फूल', 'मिट्टी के फूल', 'कामिनी', 'हंसमाला', 'रक्तचन्दन', 'अग्निशस्य', 'कदलीवन', 'द्रौपदी', 'प्यासा निर्झर', 'सुवर्णा', 'सुवीरा' रचनाएँ भी स्मरणीय हैं। चलचित्र की रंगीनी में भरपूर रमकर भी (रजतपट-गीतकार होकर भी) उन्होंने प्रदीप, गोपालसिंह नेपाली, भरत व्यास इत्यादि के सदृश हिन्दी के स्तर का ध्यान रखा,जैसाकि भगवतीचरण वर्मा के अनातोले फ्रांस कृत 'थाया' के छायानुवाद 'चित्रलेखा' (उपन्यास) के द्वितीय छायांकन के लता मंगेशकर द्वारा गाए गए 'ज्योति कलश छलके' जैसे सुन्दर एवं प्रेरक गीतों से स्पष्ट है। उनकी वादमुक्त प्रगतिशील चेतना ने यथार्थवादी युग के समाजपरक सृजन को पर्याप्त स्फुरित किया तथा नरेन्द्र एवं अंचल का युग्म विख्यात हो गया। 'प्रवासी के गीत' अत्यन्त मार्मिक हैं क्योंकि वे राग की छाया के तले लिखे गए हैं :

तुम्हें याद है क्या उस दिन की नए कोट के बटन-होल में
हँसकर प्रिये, लगा दी थी जब वह गुलाब की लाल कली।
फिर कुछ शरमा कर साहस कर बोली थीं तुम, इसको यों ही
खेल समझ कर फेंक न देना है यह प्रेम भेंट पहली।
कुसुम कली वह कब की सूखी फटा ट्वीड का नया कोट भी
किन्तु बसी है सुरभि हृदय में जो उस कलिका से निकली।

भवानीप्रसाद मिश्र

प्रयोगवादी कहे जाने वाले कवियों में अज्ञेय और मुक्तिबोध के अनन्तर भवानीप्रसाद मिश्र (29 मार्च, 1913-20 फरवरी 85) को सर्वाधिक सम्मान और ख्याति प्राप्त हुई। वे स्वातन्त्र्य-सेनानी एवं गाँधीवादी के रूपों में भी स्मरणीय हैं। 'दूसरा सप्तक' (1951 ई.) के एक यशस्वी कवि के रूप में वे विशेष प्रसिद्ध हुए। उनकी 'गीतफरोश' कविता कवि-वैवश्य का तत्त्वतः हाहाकारमय किन्तु वस्तुतः निरीह अभिलेख है। 'बुनी हुई रस्सी' संग्रह पर उन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार (1972 ई.) प्राप्त हुआ, 'परिवर्तन जिए' पर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान (1977) का, अशोक पर रचित 'कालजयी'[1] खण्डकाव्य आदर्शातिरेक के कारण न इतिहास के साथ न्याय कर पाया है, न कला के साथ। 'चकित है दुःख', अँधेरी कविताएँ', 'गाँधी पंचशती', 'खुशबू के शिलालेख', 'व्यक्तिगत', 'त्रिकाल-संध्या' 'सम्प्रति' इत्यादि उनके संग्रह युगबोध को व्यक्त करने में पर्याप्त सफल हैं किन्तु इस दृष्टि से 'चकित है दुःख' अधिक प्रभावी है।

---

[1] एक 'कालाजयी' खंडकाव्य श्री दिवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने निराला पर लिखा है तथा एक अन्य 'कालाजयी' कविता-संग्रह मुनि श्री विनयकुमार 'आलोक' ने रचा है।

भवानीप्रसाद मिश्र की छोटे-छोटे वाक्यों, सरल-सरल शब्दों वाली भाषा प्रभावी एवं अस्मितामयी हैः वे कविता के जैनेन्द्र लगते हैं (वैसे भी, जैनेन्द्र एवं भवानीप्रसाद मिश्र गाँधीवादी रहे हैं)। उनका युगबोध अज्ञेय के सदृश व्यक्तिवाद आच्छन्न एवं मुक्तिबोध के सदृश समाजवाद-आच्छन्न न होकर प्रशान्त एवं परिपक्व है। वे धर्मवीर भारती के सदृश सांस्कृतिक विपर्यय के आखेट भी नहीं हुए। उन पर डॉ. हरिमोहन ने 'कालजयी कविः भवानीप्रसाद मिश्र' (1986 ई.) शीर्षक ग्रन्थ लिखा है तथा डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी ने ग्रन्थ-सम्पादन किया है। यांत्रिक जीवन की घुटन का उन्होंने बड़ी गहराई से उरेहा है। उनके व्यंग्य मूल्यवान हैं। उदारहण प्रस्तुत हैं :

1. आँखें उठाओ
देखो आकाश नीला है,
हल्के लाल बादल हैं,
चाँद गहरा पीला है,
अच्छी शाम है,
हवा रुकी है
पंछी गा रहे हैं
मगर
इस सब से क्या होगा
मुझे चेटियार साहब बुला रहे हैं।

2\.

शब्दों के महल

शब्दों के महल, जब पहले पहल
मैंने बनाये, तब वे मेरे बहुत काम आये।
मैंने उनका बड़ा सिंगार किया और कभी कभी तो
अपने से भी ज़्यादा उन्हें प्यार किया।
पहले पहल, शब्दों के महल, मेरे काम भी बहुत आये
जब कभी सख़्त पड़ी धूप, या हवा बही तेज़ या
नाराज़ हो गया अंगरेज़ मैंने उनकी ओट ली।
और सख्त धूप, तेज हवा, नाराज अंगरेज़ पे चोट की।

3\.

गीत फ़रोश

जी हाँ, हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ, मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ।
मैं किसम-किसम के गीत बेचता हूँ
जी, माल देखिये, दाम बताऊँगा; बेकाम नहीं है, काम बताऊँगा
कुछ गीत लिखे हैं, मस्ती में मैंने, कुछ गीत लिखे हैं, पस्ती में मैंने
यह गीत सख़्त सर-दर्द भुलायेगा; यह गीत पिया को पास बुलायेगा
जी, पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको; पर बाद-बाद में अक्ल लगी मुझको
जी, लोगों ने तो बेच दिये ईमान; जी, आप न हों सुनकर ज़्यादा हैरान
मैं सोच-समझकर आखिर, अपने गीत बेचता हूँ
जी हाँ हुज़ूर, मैं गीत बेचता हूँ; मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ

यह गीत भुवाली की है, हवा हुजूर, यह गीत तपेदिक की है, दवा हुजूर
जी, और गीत भी हैं दिखलाता हूँ, जी सुनना चाहें आप तो ग़ाता हूँ
जी, छंद और बेछंद पसन्द करें, जी, अमर गीत और ये जो तुरत मरें,
ज़ी बुरा मानने की इसमें क्या बात, मैं ले आता हूँ कलम और दावात
इनमें से भाये नहीं, नये लिख दूँ, जी, नये चाहिये नहीं, गये लिख दूँ।
मैं नये पुराने सभी तरह के गीत बेचता हूँ, जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ।
जी, गीत जनम का लिखूँ मरण का लिखूँ जी,
गीत जीत का लिखूँ शरण का लिखूँ
यह गीत रेशमी है, यह खादी का, यह गीत पित्त का है, यह वादी का
कुछ और डिज़ाइन भी हैं, यह इल्मी, यह लीजे चलती चीज़ नयी फ़िल्मी
यह सोच-सोचकर मर जाने का गीत, यह है दुकान से घर जाने का गीत
जी, नहीं दिल्लगी की इसमें क्या बात, मैं लिखता ही तो रहता हूँ दिन-रात
जी, तरह-तरह के बन जाते हैं गीत, जो, रूठ-रूठकर मन जाते हैं गीत
जी, बहुत ढेर लग गया हटाता हूँ, ग्राहक की मर्जी, अच्छा जाता हूँ
जी, भीतर जाकर पूछ आइये आप, हैं गीत बेचना वैसे बिल्कुल पाप
क्या करूँ मगर लाचार, हारकर गीत बेचता हूँ
जी, हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ मैं तरह-तरह के गीत बेचता हूँ
मैं किसिम-किसिम के गीत बेचता हूँ।

गोपालसिंह नेपाली[1]

‘उमंग’, ‘पंछी’, ‘रागिनी’, ‘नीलिमा’, ‘पंचमी’, ‘सावन’, ‘कल्पना’, ‘आँचल, ‘नवीन’, ‘रिमझिम’, ‘हिमालय ने पुकारा’ एवं ‘हमारी राष्ट्रवाणी’ के सरल-तरल प्रकृति-प्रेमी लोकप्रिय गीतकार गोपालसिंह नेपाली (1913[2]-63 ई., बेतिया, चंपारन) तरुणानुभूतियों के आकर्षण स्रष्टा थे। उन्हें एक नन्हाँ-मुन्ना पन्त कहा जा सकता है। प्रेम, प्रकृति, राष्ट्रप्रेम एवं राष्ट्रभाषा-प्रेम उनके प्रभावी एवं उत्कृष्ट गीतों के प्रमुख वर्ण्य हैं। ‘आधुनिक हिन्दी-साहित्य का इतिहास’ के प्रस्थान-ग्रन्थकार पं. कृष्णशंकर शुक्ल से लेकर ‘हिन्दी साहित्य कोश’ (भाग 2) में श्रीपालसिंह ‘क्षेम’ तक सभी ने नेपाली के गीतों की सराहना की है, जो यत्र-तत्र गति-यति-भंग के बावजूद सचमुच सराहनीय हैं। चलचित्र-गीतकार के रूप में उन्होंने जिस तलस्पर्शी सांस्कृतिकता का परिचय दिया है वह रामचन्द्र द्विवेदी ‘प्रदीप’ एवं भरत व्यास के अतिरिक्त कोई नहीं दे पाया, क्योंकि नरेन्द्र शर्मा के इक्के-दुक्के सिने-गीत ही चल पाए, भवानीप्रसाद मिश्र रजत-जगत तें जम नहीं पाए, नीरज उूर्दबाज़ी के फेर में पड़ गए—शेष-सब या तो उर्दू के रहे या व्यावसायिक। ‘सन्त तुलसीदास’ में उनके गीत साहित्यिक महत्त्व से सम्पन्न हैं। उनकी अनेक पंक्तियाँ लोकोक्तिवत् गहन हैं। सहित्येतिहास की दृष्टि से भी वे एक उल्लेख्य गीतकार हैं। एक उदाहरण देखें :

यह मेरा हिन्दुस्तान है

हर गली अमन में गुलशन है, रण में रण का मैदान है।
दिल चुरा रही धरती है, तो मुस्कुरा रहा आसमान है।
यह मेरा हिन्दुस्तान है।

---

1. स्व. आलोचक कृष्णशंकर शुक्ल उन्हें ‘नेपाली कवि’ कहा करते थे। नेपाल एवं भारत ‘दो तन एक प्राण’ हैं। नेपाली या गोरखाली (अन्तर बताने वाले भी हैं पर वह गम्भीर नहीं) एवं हिन्दी बहुत निकट हैं। डॉ. सूर्यनाथ गोप कृत ‘नेपाल में हिन्दी-साहित्य’ ग्रन्थ पठनीय है।
2. जन्मवर्ष 1911 ई. भी लिखा मिलता है।

हिन्दू मुस्लिम, क्रिस्तान है, लेकिन पहले इन्सान है।
हैं सिक्ख यहीं, पारसी यहीं—जो हैं मिल्लत की शान हैं।
हैं रंग रँगीले लोग, तिरंगा सबका एक निशान है।
यह मेरा हिन्दुस्तान है।
मस्जिद की छाँव नमाज है, मन्दिर की छाँव समाज है।
अपना रिवाज़, अपना मिज़ाज-यह सबके लिए स्वराज है।
है चाँद ईद का आँखों में दिल में रोज़ा रमज़ान है।
यह मेरा हिन्दुस्तान है।
दुनियाँ मैं सब अच्छे धरम, सबको प्यारी अपनी शरम।
कुछ और मगर जिसके ख़ातिर-हिन्दुस्तानी लेता है जनम,
इन्सान जनम लेता रोता, हँसकर होता बलिदान है।
यह मेरा हिन्दुस्तान है।
सुनहरी सुबह नेपाल की, रुपहली शाम बंगाल की,
कर दे फीका रँग चुनरी का दोपहरी नैनीताल की,
क्या करम धरम की बात जहाँ पत्थर में भी भगवान हैं।
यह मेरा हिन्दुस्तान है।
हैं धन्य यहाँ की नारियाँ जौहर की ये चिनगारियाँ,
जो करे शरम, आँखे पुरनम पर फूँक चलें फुलवारियाँ
इस ओर दिये हैं आँचल में, उस ओर तना तूफ़ान है।
यह मेरा हिन्दुस्तान है।…

आनन्दशंकर माधवन्

'दीपाराधना', 'वर्षा', 'जाह्नवी', 'प्रसून-पन्थ', 'प्रथम याम', 'उषा', 'आरती', 'कवि' जैसी भावनाप्रवण कृतियों से लेकर 'भारतीय संस्कृति के बुनियादी सिद्धान्त', 'उपनिषदसार', 'गीतासार', 'सुकरात', 'प्लेटो', 'अरस्तू', 'खलील जिब्रान', 'मानवीयम्', 'परम दर्शन', 'प्रसव वेदना' (दो खण्ड) जैसी विचारप्रवण कृतियों तक चालीस से ऊपर ग्रन्थों के कवि, उपन्यासकार, निबन्धकार, जीवनीकार एवं विचारक आनन्दशंकर माधवन् (1914 ई.) दक्षिणात्य[1] हिन्दी-साहित्यकारों में अग्रणी हैं। तेलुगू-भाषी तथा बांग्ला-नामधारी कवि तथा विद्वान् डॉ. वसन्त चक्रवर्ती (16 सितम्बर, 1931, निवास हैदराबाद) तक उनके अनन्तर ही आ पाते हैं क्योंकि उन पर प्रसाद छाए रहते हैं, जबकि ये मौलिक हैं (यद्यपि 'पीड़ा', 'शृंगनाद', 'अपूर्व पूर्व', 'जिजीविषा', 'अनादि गाथा' के कवि, 'पुलकेशिन्' के नाट्यकार एवं प्रसाद की दार्शनिक चेतना' के शोधकार के रूपों में प्रशस्यतः स्मरणीय हैं)। 'हिन्दी-आन्दोलन' पुस्तक उनके ज्वलंत हिन्दी-प्रेम की द्योतक है। 'आनन्दशंकर माधवन् और उनका साहित्य' ग्रन्थ उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालता है। प्राचीन अंग राज्य के बाझा क्षेत्र में मन्दर विद्यापीठ उनकी साधनास्थली रही जहाँ वे 'शिवधाम' (कैलास) बनाकर रहते हैं। वहाँ माधवन् साहित्य परिषद् स्थापित है। सदानन्द 'सार्वभौम' ने 'माधवन् साहित्य परिषद' पुस्तिका में संस्था के उद्देश्य पर अच्छा प्रकाश डाला है। माधवन् ने पुराण-प्रसिद्ध मन्दार-क्षेत्र को नई तीर्थता प्रदान की है। पुराण-प्रसिद्ध मंदार पर्वत, मन्दिर, सरोवर इत्यादि की महिमा एवं शोभा का सम्मान करते हुए 2005 ई. में बिहार सरकार ने उसे अ (प्रथम) श्रेणी का पर्यटन-स्थल घोषित किया है।

---

[1] माधवन् केरल के हैं, जहाँ के डॉ. एन. चन्द्रशेखरन नायर (27 जून, 1924) में 'केरल के हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास' लिखा है, 'केरल की हिन्दी-कविताएँ' प्रस्तुत की हैं। डॉ. पी. वी. विजयन्, डॉ. जे. रामचन्द्रन् नायर, डॉ. पी. के. वेणु, श्री शिवराम अय्यर, डा. एम. गणेश अय्यर, डॉ. चन्द्रन् तिरुमला, श्रीमती टी. एस. पोन्नम्मा, डॉ. एन. रवीन्द्रनाथ, डॉ. बालकृष्ण चेट्टियार, पं. नारायण देव, श्री. पी. नारायण प्रभृति हिन्दी के उल्लेख्य विद्वान् एवं कवि हैं।

1990 ई. माधवन् के व्यक्तित्व-कृतित्व की दृष्टि से विशेष-वर्ष है जिसमें प्रकाशित 'महाभारत'[1] पर आधृत 'गंगा' एवं विशेष भूमिका से सम्पन्न 'आदि भागीरथी' प्रतीक-काव्य का उनके कृतित्व में विशिष्ट स्थान है। गंगा के नव्य कवियों में माधवन् मौलिक एवं विशिष्ट हैं। उनके भगीरथ एवं गंगा शाश्वत प्रतीक हैं।

अपने गद्य में माधवन् हिन्दी के खलील जिब्रान हैः वहीं विश्वबन्धुत्व, वही पैग़म्बराना अन्दाज़, वही ख़ालिस मस्ती, वही सूत्रबद्धता (जो अपनी व्याख्या में सरदार पूर्णसिंह का स्मरण कराती हैं–किन्तु इन्हें कोई भाषा-परिष्कारक महावीर आचार्य नहीं मिला) अपनी कविता में माधवन् एक दार्शनिक-कवि हैं–गहन अद्वैतवादी, प्रसन्न आनन्दवादी (नाम ही आनन्द है)। हिन्दी के अधुनातन नवरहस्यवादी कवियों में माधवन् एवं भानुशंकर मेहता विशेष उल्लेखनीय हैं। 'आदि भागीरथी' से कविता एवं गद्य के उदहारण प्रस्तुत हैं :

1. एक समय था जब कहीं कुछ भी नहीं था
महाशून्य की स्थिति थी सर्वत्र
एक रहस्यभरा अन्धकार
और गम्भीर नीरवता थी तमाम
यह हालत रही युगों तक, कल्पों तक
तब कहीं कुछ होने लगा
जैसे किसी की दीर्घकालिक निद्रा
धीरे-धीरे टूट रही हो
जैसे कोई जाग रहे हों
और तब
एक अति मधुर विलक्षण नाद सुनाई देने लगा
वही आदि नाद था
वही प्रणव था
वही षड्ज स्वर था
महा भाव और महा रस का भी वही मूल स्रोत था

2. मैं कवित्व-साधना करता, हूँ, हर दुखियारा मेरा देवता है।[2]

3. मैं शुभ्रतम ब्राह्मणत्व को सजग, सक्रिय और प्रबुद्ध कर दूँगा, शुभ्रतम क्षतित्रयत्व को भी, शुभ्रतम वैश्वत्व को भी और शूद्रत्व को भी प्रत्येक मानव में कूटस्थ रूप में विद्यमान हैं क्योंकि यह अगर न हुआ तो मनुष्य बुद्धत्व को समझ न सकेगा, निर्वाणपन्थ को पहचान न सकेगा।[3]

4. रामायण, महाभारत, आदि की कहानियों ने ही भारत को कन्या-कुमारी से कश्मीर तक एक सूत्र में बाँधे रखा, न कि राजनैतिक चेतना ने।

5. जिस देश की अपनी एक सशक्त, सर्वव्याप्त राष्ट्रभाषा तक नहीं उसे एक सशक्त राष्ट्र कैसे कहा जा सकेगा?

6. फ्रांस के राजख़ज़ाने में धन का अभाव पड़ गया तो अधिकारियों ने आदेश दिया राजमहल में जितने घोड़े हैं उन्हें बिक्री करके धन प्राप्त किया जाए। इस पर वालटायर ने, जो उस समय एक युवक था, चार पंक्तियों की एक कविता

---

[1] भारतरत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्टन के सदृश, माधवन् व्यास को संसार का सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार मानते हैं, जो ठीक भी है। मैंने 'विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य' में यही माना है।

[2] "आपकी....पंक्ति ने मुझमें अमृत ही भर दिया, नसों में बिजली ही दौड़ा दी। देश के उन कोटि-कोटि दुखियारों की ओर से उस एक पंक्ति के लिए में आपका अभिनन्दन करना चाहता हूँ।" (कर्पूरी ठाकुर)

[3] जगजीवनराम ने कहा था, मैं शिक्षित होने के कारण ब्राह्मण, रक्षा मन्त्री होने का कारण क्षत्रिय, खाद्य मन्त्री के कारण वैश्य और जन्म से शूद्र हूँ। भारतीय संस्कृति के गहन ज्ञान के कारण जगजीवनराम संकीर्ण एवं घृणाप्रसारक जातिवाद के फेर में नहीं पड़े। भेदवादी-जातिवादी रैदास या तिलक या गाँधी नहीं बन सकता–राम या कृष्ण या व्यास तो बेहद दूर हो जाते हैं।

लिख दी। कविता यों थीः राजमहल में बहुत गधे ही पल रहे हैं, उन्हें भी बिक्री कर दिया जाए....। इस पर अधिकारी लोग इतने अधिक क्षुब्ध हो गए कि वालटायर को गिरफ्तार करके जेल भेज दिया और महीनों उन्हें जेल में रहना पड़ा। यही है कविता की ताक़त!

7. सफलता भी आखिर क्या है? क्या सूर्यदेव सफल है? क्या गंगा सफल है? क्या पेड़-पौधे सफल हैं? ''मेरे सभी श्रम व्यर्थ चले गए'' कहते हुए सूर्यदेव फिर प्रकट होता है रोज़ाना सुबह-सुबह। वह न थकता है, न निराश ही होता है।....किसी भी ऋषि की ताकत उसकी सिद्धियाँ नहीं, उसकी सतत-विकासोन्मुख साधनशीलता है। साहित्यकार को भी इस दृष्टि को अपनाना होगा। तभी वह कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकेगा। साहित्यकार को यह सोचना चाहिए कि उसकी प्रत्येक पुस्तक एक बेहतर पुस्तक लिखने की तैयारी और प्रशिक्षण मात्र है। मेरा भी सार इतना ही है। मेरी सभी पुस्तकें व्यर्थ चली गईं, काम की नहीं रहीं, यही समझते हुए मैं फिर लिखने लग जाता हूँ।

आचार्य तुलसी

स्व. आ. तुलसी (1914–23 जून, 1997, लाडनूँ, जनपद नागौर, राजस्थान) जैन धर्म के श्वेताम्बर सम्प्रदाय के दो सौ वर्ष पुराने तेरापन्थी सम्प्रदाय के युगप्रधान, व्यापक अणुव्रत-आन्दोलन के प्रवर्तक एवं अनुशास्ता, मानवतावाद के प्रभावी प्रचारक प्रभृत्ति रूपों में विश्व विख्यात थे। लाडनूँ की विख्यात जैन विश्व भारती उनका ही प्रसाद है, जिसमें डॉ. नथमल सटिया, पं. अमृतलाल जैन जैसे दिग्गज विद्वानों एवं डॉ. रंजना गुप्ता (संप्रति पटना-कार्यरत), डॉ. पवनकुमार (संप्रति-एन.डी.डी.बी. कार्यरत), आनन्दप्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश' जैसे साहित्यकारों ने कार्य किया है। अणुव्रत वह सूक्ष्मतम व्रत है जो भौतिक एवं आध्यात्मिक जीवन में संगति उत्पन्न करता है; कोरा भैतिक तप हो या कोरी आध्यात्मिक साधना, अपने-अपने एकांत रूप में दोनों ही सूक्ष्मतम व्रत नहीं हैं क्योंकि एकांगिता में सूक्ष्मता सम्भव नहीं। अहिंसा, सत्य, अपरिग्रह इत्यादि जैनधर्म के तत्वों को आ. तुलसी ने वैश्विक मानवतावाद से संपृक्त किया है। अणुव्रत केवल वैयक्तिक नहीं, वह सामाजिक भी है। उन्होंने अपने सम्प्रदाय में व्यापक समाज-सुधार किए। वे एक प्रेरक कवि हैं, स्फीत लेखक हैं, प्रभावी वक्ता थे। उनकी कविता जन-कविता है। उनके ग्रन्थ भाषण-संकलन भी हैं (रजनीश, रामकिंकर उपाध्याय इत्यादि के राशि-राशि ग्रन्थों के सदृश)। किन्तु उन्होंने सुचिन्तित एवं व्यवस्थित ग्रन्थ भी रचे हैं (मुक्तानन्द परमहंस, आनन्दशंकर माधवन् इत्यादि के सदृश)। उनकी आध्यात्मिक कविताएँ आनन्दशंकर माधवन इत्यादि की आध्यात्मिक कविताओं के सदृश आधुनिक नहीं हैं। वे माधवीलता शुक्ल, स्वरूपकुमारी बख़्शी इत्यादि की आध्यात्मिक कविताओं के सदृश ललित भी नहीं हैं। उनका उद्देश्य साधारण अथवा लक्ष-लक्ष जनता का चरित्रोत्थान है। निस्सन्देह, अधुनातन हिन्दी के श्रीराम शर्मा आचार्य प्रभृति उपदेशकाव्यकारों में उनका नाम भी लिया जाने योग्य है। स्वयंभू, पुष्पदन्त, देवसेन, हेमचन्द्र, मेरुतुंग, बनारसीदास, देवकीनन्दन खत्री, जैनेन्द्र, लक्ष्मीचन्द्र जैन, यशपाल जैन, आ. रजनीश, आ. विद्यासागर, मुनि नथमल (युवाचार्य महाप्रज्ञ), कु. शान्ता जैन, मुनि प्रशान्तकुमार, मुनि लोकप्रकाश 'लोकेश' इत्यादि हिन्दी के जैन साहित्यकारों में आ. तुलसी को स्वयंभू, हेमचन्द्र, देवसेन आ. विद्यासागर प्रभृति के साथ उच्च स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। नाथूराम 'प्रेमी', विनयकुमार जैन, धन्यकुमार जैन इत्यादि की हिन्दीसेवा भी स्मरणीय हैं। 'हिन्दी के जैन-साहित्यकार' शोध का श्रेष्ठ विषय है। वे ग्रन्थकार हैं, कलाकार नहीं। किन्तु उनके ग्रन्थों में साहित्य का हित तत्त्व प्रचुर गुण-परिमाण में प्राप्त है। उनका महापुरुषत्व तो विशिष्ट है ही।

आचार्य तुलसी ने 'धर्म-सहिष्णुता', 'नवनिर्माण की पुकार', 'नैतिकता के चरण', 'पथ और पाथेय', 'विश्व-शान्ति और उसका मार्ग', 'सर्वधर्मसद्भाव', 'अणुव्रत के आलोक में', 'प्रेक्षा-अनुप्रेक्षा', 'मुखड़ा क्या देखे दर्पण में', 'क्या धर्म बुद्धिगम्य है?', 'अतीत का विसर्जनः अनागत का स्वागत', 'लघुता से प्रभुता मिले' जैसे सर्वोपयोगी ग्रन्थ प्रस्तुत कर मानवता की सेवा की है, क्योंकि वे कोरे परम्परावादी न होकर जीवनविकासवादी हैं, प्रखर आशावादी हैं। उन्होंने छुआछूत, जात-पाँत, दहेज इत्यादि का विरोधकर सच्ची प्रगतिशीलता का परिचय दिया है। 'अग्निपरीक्षा' (खण्डकाव्य), 'अणुव्रतगीत', 'पानी में मीन पियासी', प्रभृति के प्रभावी कवि के रूप में भी वे उल्लेख्य हैं। उन्होंने 'कालूयशोविलास', 'चन्दन की चुटकी भली', 'जागरण', 'डालिम-चरित्र', 'मगन-चरित्र', 'माँ वदना', 'श्रद्धेय के प्रति' जैसे राजस्थानी-ग्रन्थ एवं 'जैनसिद्धान्तदीपिका', 'मनोनुशासनम्' जैसे संस्कृत-ग्रन्थ भी रचकर विविध माध्यमों पर अधिकार का परिचय दिया है। आ. तुलसी (श्वेताम्बर) की आ. विद्यासागर (दिगम्बर) से तुलना की जा सकती है क्योंकि दोनी धार्मिक महापुरुष

भी हैं, हिन्दी-ग्रन्थकार भी; संस्कृतग्रन्थकार भी; किन्तु आ. विद्यासागर 'मूक माटी' में महाकवि हैं तथा संस्कृत के अलंकृत-कवि भी जबकि आ. तुलसी प्रायः सर्वत्र धर्मपुरुष मात्र हैं।

आ. तुलसी पर युवाचार्य महाप्रज्ञ कृत 'धर्मचक्र का प्रवर्तन', उन्हीं के पूर्वनाम मुनि नथमल कृत 'आचार्य श्री तुलसीः जीवन पर एक दृष्टि', सीताराम शर्मा कृत 'आचार्य श्री तुलसीः जैसा मैंने समझा', मुनि श्रीचन्द 'कमल' कृत 'बढ़ते चरण' जैसे ग्रन्थ विद्यमान हैं: साध्वीप्रमुखा कनकप्रभा, मुनि सुखलाल, मुनि सुमेरमल, मुनि गुलाबचन्द इत्यादि ने प्रभूत लेखन किया है। 'आचार्य तुलसी अभिनन्दन-ग्रन्थ' भी निकला है। समणी कुसुमप्रज्ञा ने आचार्य तुलसी की सूक्तियों को पाँच स्फीत खण्डों (प्रति खण्ड प्रायः 450 पृष्ठ) के 'एक बूँदः एक सागर' शीर्षक महाग्रन्थ में संकलित कर एक अत्यन्त अध्यवसायपूर्ण एवं प्रशस्य-कार्य सम्पन्न किया है। लगभग 200 ग्रन्थों का अवगाहन कर 4000 शीर्षकों में 30,000 सूक्तियों का संकलन समणी कुसुमप्रज्ञा के अप्रतिम अध्यवसाय एवं प्रशस्य समर्पणभाव का द्योतक है।

यद्यपि आ. तुलसी का जीवन-दर्शन 'मूक-माटी' के महाकाव्यकार आ. विद्यासागर के सदृश संकीर्ण-साम्प्रदायिक नहीं है, तथापि, 'अग्निपरीक्षा',[1] में सीता का चित्रण नितान्त विवादास्पद है। जिसके लिए उनका भीषण विरोध किया गया। अन्यत्र राम को महावीर, बुद्ध और ईसा के बाद में रखना ऐतिहासिक एवं व्यावहारिक दृष्टियों से अखर सकता है। किन्तु कुल मिलाकर, वे मानवतावादी ही लगते हैं क्योंकि अनेक बौद्धों, जैनों, सिखों इत्यादि में हिन्दुओं के प्रति वैसा ही हीनभावमूलक-विद्वेष एक मनोवैज्ञानिक सत्य बन चुका है जैसा यहूदियों के प्रति ईसाइयों और मुसलमानों में है। हिन्दूधर्म एक धैर्यशाली पिता के सदृश इसे सहन कर लेता है। भारत भारतपुत्र पाकिस्तान (पापिस्तान) एवं भारतीपौत्र बांग्लादेश (कांग्लादेश) को ठीक इसी प्रकार सहन करता है। विवशता भी है! युवाचार्य महाप्रज्ञ ने 'धर्मचक्र का प्रवर्तन' ग्रन्थ में उनके बोधगया-संग्रहालय की शिव-वक्ष पर बुद्ध-चरण वाली मूर्ति के मूल दृष्टिकोण के प्रत्याख्यान का उल्लेख किया है! पारम्परिक जैन-साम्प्रदायिकता (वस्तुतः हिन्दूधर्म-विरोध) का आ. विद्यासागर जैसा रूप आ. तुलसी में नहीं प्राप्त होता। साम्प्रदायिक संकीर्णता से कोई धर्म मुक्त नहीं; और जहाँ तक मजहबों का सम्बन्ध है, उनकी संकीर्णता जगजाहिर है ही। बोधगयामन्दिर परिसर से शिव-लिंग हटाने के प्रस्ताव का जयप्रकाश नारायण ने विरोध किया था। मैंने जगन्नाथ पुरी के विराट् मन्दिर-परिसर के एक मन्दिर की भित्तिमूर्तियों में एक ऐसी मूर्ति देखी थी जिसमें विष्णु द्वारा गणेश को पदोच्छलित करता दिखाया गया है।

आ. तुलसी ने जीवन के प्रायः प्रत्येक पक्ष पर अपने ढंग से प्रकाश डाला है। उनकी दृष्टि अत्यन्त विशाल है। उनका जीवन-विश्लेषण एवं जीवन-संश्लेषण विराटवादी है। उन पर विशेषतः महावीर एवं सामान्यतः बुद्ध, कबीर, गाँधी इत्यादि का प्रभाव स्पष्टतः दृग्गत होता है, जो उनके महान् सन्तरूप के सर्वथा अनुरूप है, क्योंकि सच्चा सन्त मुक्त रूप से समग्र ग्राह्य का स्वागत करता है—भेदवादी सच्चा सन्त नहीं हो सकता।

उनके शताधिक ग्रन्थों से गद्य-पद्य की कुछ बानगियाँ पेश हैं:

1. रहणो अपणै आप में भाई ज्यूँ जंगल रो कैर।
   ना कोई स्यूँ मित्रता ना कोई स्यूँ वैर।।
2. अगर हम मजबूत हैं तो हमें कोई पछाड़ नहीं सकता
   और अक्षम हैं तो कोई बचा नहीं सकता।
3. अक्षमता अभिशाप है।
4. दुनिया में जितनी अच्छाइयाँ हैं वे सब पुरुषार्थ के द्वारा प्राप्त हो सकती हैं।
5. अच्छाइयाँ एक वर्ष में जितनी फैलती हैं, बुराइयाँ एक सप्ताह में उतनी फैल जाती हैं।
6. मेरे अभिमत में अछूत अगर कोई है तो आदमी के भीतर का गुस्सा और झूठा अहं है।
7. किसी को हीन अछूत मानना पाप है। यदि धर्म के मंच पर इस पाप को पोषण देते रहे तो छुटकारा कहाँ होगा?
8. संयम प्रधान समाज अजेय होता है, उसे कोई परास्त नहीं कर सकता।

---

[1] 'अग्निपरीक्षा और अन्य कविताएँ' (विनोद शर्मा) का राम-सीता से कोई सम्बन्ध नहीं; वह बीसवीं सदी की बल्गारिआई कविता पर अनूदित-सम्पादित ग्रन्थ है।

9. अज्ञान नहीं मिटा तो साहित्य किस काम का!
10. अणुअस्त्र बुरे नहीं हैं, भयंकर भी नहीं हैं। भयंकरता मनुष्य में है।
11. अणुवम डर से जन्मा है और डर को जन्म देता है।
12. अणुवम मिटा सकता है किन्तु जोड़ नहीं सकता।
13. लिए देश के तन-मन जीवन सब कुछ भेंट चढ़ाएंगे।
    इसकी सफल सुरक्षा करके संगर में डट जाएंगे।।[1]
14. बच्चे-बच्चे में जगें देशभक्ति के भाव।
    सहज रूप वीरत्व का है यह प्रादुर्भाव।।
15. उठो उठो हे देशवासियों! अब कर्तव्य निभाना है।
    मातृभूमि की रक्षा करने हम सबको जुट जाना है।।
    जिस अवनी में पले-पुसे हम, दाना खाया, नीर पिया।
    सब कुछ देकर जिसने हमसे अब तक कुछ भी नहीं लिया।।
    जन्मभूमि के उस ऋण को अब हमें सहर्ष चुकाना है।।
16. धर्म व्यापक है, मजहब सीमित है। धर्म सार्वभौम तत्त्व है, मजहब देश, काल और परिस्थितियों से अनुबन्धित है।
17. जब धर्म मजहबों में अटक गया तब से वह गतिहीन हो गया।
18. जो घृणा और शोषण करता है वह धार्मिक नहीं हो सकता।
19. ध्वंस और निर्माण—ये दो विरोधी दिशाएँ हैं, फिर भी सापेक्ष हैं।
20. जहाँ कुछ टूटता है वहाँ कुछ नया निष्पन्न भी होता है। बीज टूटता है, अपने अस्तित्व को समाप्त करता है, तब अंकुर निकलता है।

विद्यावती 'कोकिल'

'अंकुरिता', 'माँ, 'सुहागिन', 'पुनर्मिलन', 'आरती', प्रभृति कविता-संग्रहों, 'फ्रेम बिना तस्वीर' शीर्षक नाटक तथा योगी अरविन्द कृत विश्रुत अंग्रेजी-महाकाव्य 'सावित्री' की अनुवादिका विद्यावती 'कोकिल' (जन्म 16 जुलाई, 1914-1990 ई., जन्मस्थान हसनपुर, ज़िला मुरादाबाद, उ. प्र.) की कविता में रहस्यवादी स्वर प्रधान रहे हैं। अरविन्द आश्रम पांडिचेर (पाँडिशेरी) का दीर्घकालीन निवास उनकी अभिरुचि के अनुकूल ही रहा है। उनकी कविता में उनके जीवन की विवृति भी शक्ति से ऊभचूभ है। यदि विद्यावती मिश्र अधिक मार्मिक हैं, तो विद्यावती 'कोकिल' अधिक शक्तिसम्पन्न। दोनों पर ही महादेवी का प्रभाव पड़ा है। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

> तेरे इंगित ही अब मेरे बने कर्म की धारा,
> तेरी इच्छा ही पग-गति का मेरी बनी इशारा,
> अब मेरे बन्धन-बन्धन की ग्रन्थि खुल गई है!
> मुझको मेरी मुक्ति मिल गई है!
> अंतरतम के तल से यथा किसी ने मुझे गुहारा,
> वस्तु-वस्तु में देख लिया वह मैंने रूप तुम्हारा,
> मुझको 'मेरा कर्म, ज्ञान औ' भक्ति मिल गई है!
> मुझको मेरी मुक्ति मिल गई है!....

---

[1] जैन-साहित्य में चन्द्रगुप्त मौर्य को जैन-धर्मान्तरित बताया गया है। कलिंग-योद्धा खारेवल महान जैन थे, जिन्होंने अशोक के उत्तराधिकारियों को हराया था। महमूद गज़नबी के भांजे विदेशी आक्रान्ता सालार मसऊद ग़ाज़ी को परास्त कर उसका वध करने वाले राजा सुहद्देव या सुहलदेव या सुहेलदेव (बहराइच) भी जैन थे।

'अमिट प्रेम' की लहर निरन्तर बहती छिन-छिन है,
मैं न जानती, मैं हूँ तुम हो, या जग-जीवन है,
जीवन स्रोत खुल गए, सारी मुक्ति मिल गई है,
मुझको मेरी मुक्ति मिल गई है।

मेरा तेरा सखि अंग अंग डूबा तुम भी डूबो हे,
देश और देशांतर डूबो, डूबो जन-जन हे,
आओ देखो यहाँ तुम्हारी तृप्ति मिल गई है,
मुझको मेरी मुक्ति मिल गई है!

कमलारत्नम् (हीरा-कोयला)

'वहाँ सूरज नहीं चमकता' (1964), 'हिमालय तथा अन्य कविताएँ', 'अक्षरगीत' इत्यादि की कवयित्री और 'कालिदास और नारी-समस्याएँ', 'भारतीय साहित्य', 'लाओस में रामकथा', 'इंडोनेसिया की वायाङ् परम्परा' इत्यादि की विदुषी श्रीमती कमलारत्नम् (3 अक्टूबर, 1914-1991) का अखंड हिन्दी-प्रेम राष्ट्रभाषा की व्यापकता का एक रत्न कहा जा सकता है। अखिल भारतीय कालिदास परिषद् एवं संस्कृत नाट्यमंच के द्वारा उन्होंने विश्व की प्राचीनतम एवं महानतम भाषा संस्कृत की भी प्रशस्य सेवा की। संस्कृत, हिन्दी, मराठी, गुजराती, तेलुगू, उर्दू इत्यादि भारतीय तथा अंग्रेज़ी, फ्रेंच, जर्मन, रशियन, स्पेनिश[1], जैपनीज, इंडोनेसिअन इत्यादि विदेशी भाषाओं[2] की अध्येता कमलारत्नम् विश्वमानवी कही जा सकती थीं। वे केवल परिनिष्ठित हिन्दी लिखती ही नहीं, बोलती भी थीं। उनका भरा-पूरा तन भरा-पूरा मन भरा-पूरा साहित्य ही लिखता था, जिसमें जीवन को भरा-पूरा बनाने का सन्देश रहता था। वे विद्यावती 'कोकिल', सुमित्राकुमारी सिन्हा, विजयलक्ष्मी 'विभा' इत्यादि के सदृश प्रकृत्या गीतकार नहीं थीं, प्रायः नई कविता ही लिखती थीं। यद्यपि उनकी कविता मानवती आर्या, विद्यावती डोभाल, रंजना देवी इत्यादि की कविता के सदृश एकदम साफ़-सपाट नहीं होती, तथापि उसमें शकुन्त माथुर, कीर्ति चौधरी, सुमन राजे इत्यादि के सदृश तेज़ी-तुर्शी भी नहीं दीखती—उनकी माध्यम-प्रतिपदा परम्परा एवं प्रगति में अन्योन्य स्थापित करती है:

1. मेरे पास हीरे की चमक भी है
और कोयले की कालिमा भी
मेरे पास सुख की दमक भी है
और तम की तमिस्रा भी।

2. दिन का स्वामी सूरज मर गया
कहाँ हुआ अंधकार?
यहाँ प्रकाश फैला है;
कहीं कोई मरता है;
एक गोलार्ध में छिप कर दिन
दूसरे में उदय होता है।

गोपालप्रसाद व्यास

सूर सूर तुलसी ससी, उडुगन केशवदास।
पंत-निराला बल्ब हैं, लालटेन हैं व्यास।।

---

[1] उनकी स्पेनिश-कविताओं का संग्रह भी निकला था।

[2] साप्ताहिक 'क्रान्तिस्वर' (फ़तेहपुर) के 9 अक्टूबर, 1989 अंक में अखिल विनय का लेख 'हिन्दी-सेवी कमलारत्नम्' पृष्ठ 3-4

हास्यकवि एवं हास्यपत्रकार[1] गोपालप्रसाद व्यास (13 फरवरी, 1915–28 मई, 2005, पारासोली, जनपद मथुरा, निवास एवं निधन दिल्ली) का बिड़ला-परिवार, नेतागण इत्यादि से घनिष्ठ एवं फलप्रद सम्बन्ध रहा। दैनिक 'हिन्दुस्तान' (नई दिल्ली) में 'नारद जी खबर लाए हैं' हास्यस्तम्भ के कारण वे खूब पढ़े गए। कविसम्मेलनों में चटपटे 'पत्नीवाद' के कारण जमते थे। अपने-अपने ज़मानों में महान् छायावाद (स्वच्छन्दतावाद) एवं रहस्यवाद तथा सामान्य हालावाद (बच्चन), मृत्युवाद (नीरज), पत्नीवाद (व्यास) इत्यादि की चर्चा चलती थी। व्यास की 'सलवार चली सलवार चली' हास्यकविता हल्की होने कारण खूब उड़ी। 'आराम करो' में "आराम शब्द में राम छिपा जो भवबन्धन को खोता है" का हास्यतर्क पर्याप्त समादृत हुआ। व्रजमंडल के पंडित होने के कारण सेठों में अच्छे पुजे। सरकार ने 'पद्मश्री' से अलंकृत किया।

वे हास्यमूर्ति ही हैं, इसमें सन्देह नहीं। उन्होंने कुछ प्रेरक पारम्परिक वीरतापूर्ण कविता भी लिखी है, जो किसी नवीनता के अभाव में भी अच्छी लगती है। उनके पुत्र डॉ. गोविन्द व्यास भी हास्यकवि के रूप में कविसम्मेलनों में खूब जमते हैं तथा श्री सुरेन्द्र शर्मा, ओमप्रकाश 'आदित्य', डॉ. अशोक 'चक्रधर', डॉ. सरोजनी 'प्रीतम' इत्यादि के वर्ग में प्रतिष्ठित हैं (काका हाथरसी, शैल चतुर्वेदी, रामरिख 'मनहर' इत्यादि वरिष्ठ हैं)।

व्यास जी ने ध्यानाकर्षण-हेतु ब्रजभाषा के पृथक् महत्त्व का आन्दोलन भी छेड़ा था। किन्तु उत्तर प्रदेश न राजस्थान है, न बिहार, जहाँ राजस्थानी और मैथिली की चोंचलेबाज़ी चल निकली थी। हवा का रुख़ अनुकूल न पाकर वे पीछे हट गए थे।

श्री गोपालप्रसाद व्यास को "पौरुष के पुंजीभूत ज्वाल" कहा जा सकता है—वे प्रेस-कम्पोज़ीटर से 'पद्मश्री' बने जो निस्सन्देह उपलब्धि है, पारासोली जनपद मथुरा में जन्म और गुलमोहर पार्क नई दिल्ली में (जहाँ भवन भूमि के मँहगे होने से करोड़ों तक उछल चुका है) में निवास एक स्मरणीय पुररुषार्थ-कथा माना जा सकता है। विशाल पुरुषोत्तम हिन्दी भवन उन्हें अमर बनाता है। रामायणी रामगुलाम द्विवेदी और कवि धूमिल पल्लेदार थे, सुदर्शन और डॉ. भोलानाथ तिवारी (भाषाविज्ञान वाले) ने कुलीग़ीरी की थी, विष्णु प्रभाकर ने चपरसीगीरी की थी—ऐसे व्यक्ति साहित्येतिहास को प्रकाशित करते हैं। हिन्दी-सीमान्त तुलसी ने भीख माँगी थी, कबीर ने कपड़े बुने थे, रैदास ने चमड़ा 'कमाया' था, नामदेव ने कपड़े सिले थे; इनके जीवन हिन्दी की शक्ति के अक्षय स्रोत हैं।

'हास्यसागर' (1996 ई.) में गोपालप्रसाद व्यास की प्रायः सारी प्रतिनिधि रचनाएँ उपलब्ध हैं।

'रमई काका'

आधुनिक अवधी-कविता को विशद जनकाव्य का रूप देते हुए कोटि-कोटि जनता तक पहुँचाने वाले तथा पढ़ीस एवं वंशीधर शुक्ल के योग्य उत्तराधिकारी, 'भिनसार', 'बौछार', 'फुहार', 'गुलछर्रा' इत्यादि संग्रहों के यशस्वी कवि स्व. चन्द्रभूषण त्रिवेदी 'रमई काका' (जन्म 1915 ई.) की ख्याति अब तक स्थिर है। अतः 'पिंगला के राम' खण्डकाव्य एवं 'जय महाशक्ति' काव्य भी रचे हैं। इनके पुत्र अरुण त्रिवेदी एक गम्भीर खड़ीबोली-कवि हैं। उनका जन्म रावतपुर, जनपद उन्नाव में हुआ था। 1942 ई. से आकाशवाणी लखनऊ के 'पंचायतघर' कार्यक्रम के विशेष कलाकार तथा यथा समय संचालक के रूपों में उन्होंने नाटक, प्रहसन, गीत, कविता, वार्ता इत्यादि विधाओं में स्फीत रचना-राशि प्रस्तुत की है। 'लखनऊ माँ चारि धोखा' (हम कहा बड़ा धोखा होइगा), 'बर खोज', 'बुढ़क का बियाहु' इत्यादि हास्य-व्यंग्य कविताओं से लेकर 'खरिहान', 'पिंजरे का पंछी', 'धरती हमारि धरती हमारि' इत्यादि गम्भीर कविताओं तक उन्हें एकरस सफलता प्राप्त हुई है। उनकी 'बौछवर' पढ़ीस के 'चकल्लस' के सदृश लोकप्रिय हुई। उनके अनुकरण में काका हाथरसी, काका बैसवारी, बाबा कानुपरी, काका बिहारी इत्यादि ने हास्योपनाम रखे। उनका कृषक-सम्वेदन, स्वातन्त्र्यप्रेम, देशप्रेम इत्यादि उन्हें एक उत्कृष्ट प्रगतिशील कवि सिद्ध करते हैं। उसकी प्रभावान्विति प्रशस्य है। वे एक प्रखर-प्रगतिशील कवि हैं, अवधी के अन्य सहज प्रगतिशील कवियों से अधिक सजग एवं जागरूक हैं। उदहारण देखिए :

---

1. विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, बेढव बनारसी, बेढव (कानपुर के 'प्रताप' वाले—अज्ञात), गोपालप्रसाद व्यास, 'ऊँट', के. पी. सक्सेना, शरद जोशी इत्यादि पर 'हिन्दी के हास्यपत्रकार' जैसा शोधप्रबन्ध लिखा जा सकता है। रोचक विषय है।
2. अनेक अशुद्धियों से भरी 'अवधी और उसका साहित्य' (डॉ. त्रिलोकीनारायण दीक्षित) पुस्तिका में जन्म-सम्वत् 2009 ('विक्रमी' शब्द नहीं लिखा) दिया है जो वास्तव में ग़लत हैं। पुस्तिका में सूचनाएँ तो हैं किन्तु प्रस्तुति निराशाजनक है। रमई काका की निधन-तिथि या वर्ष 1982 ई. में प्रकाशित 'आधुनिक अवधी काव्य' (सं. डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित एवं स्व. पं. त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु') में भी नहीं दी गई, यद्यपि इसकी प्रस्तुति बेहतर है।

हिरदय की कोमल पँखुरित माँ जो भँवरा असि ना गूँजि सकै।
उसरील बाट हरियर न करै, टपकत नैना ना पोंछि सकै।।
जहिका सुनतै खन बन्धन की बेड़ी झनझन ना झनझनाय।
उन पाँवन माँ पौरुख न भरै जो अपने पथ पर डगमगाय।।
अँधियारु न दुरवै सविता बनि अइसी कविता ते कौनु लाभु?
('अइसी कविता ते कौनु लाभु?' से)

सुधरिहैं कब धौं गाँव हमार।
लच्छिमी गई गाँव की रूठि, दलिद्दुरु या घर घर माँ साँपि[1]
उदासी छायी चारिव अलँग[2], दुखियई गै जीवन माँ व्यापि।।
बिभउ सब ढीहा टीकुर बना रहे है खंडहर आँस बहाय।
गलिन माँ बहै अपावन कीच, रोगु जहँ लीन्हेसि जरै जमाय।।
मड़इयन टुटहिल[3] टटवा लागि, भरा है क्वानन माँ अँधियारु।
मसन का जहाँ अकंटक राजि, मकरिया ताने आपन जारु।।
कन्हैया कौ गइया तुरधिली नाँदियाँ संकर का दुबरान।
देश के अनदाता हैं दुखी, बँधे हैं पँसुरिन बीच परान।।
लागि गै लत्तन गृह लच्छिमी, उघारे हैं धरती के लाल।
सलूका फाट पेउदहा[4] पहिरि अधमुखे ख्यालैं बाल गोपाल।।
सुधरिहैं कब धौ गाँव हमार।
('सुधरिहैं कब धौं गाँव हमार' से)

'अंचल'

स्वच्छन्दतावादी-यथार्थवादी युगद्वय के संयोजक कवियों में स्व. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' (1915 ई.—किशनपुर, ज़िला फतेहपुर[5] उ. प्र.) को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है। सर्वाधिक प्रभादी 'मधूलिका' (1938 ई.) एवं प्रसिद्ध 'अपराजिता' (1939 ई.) का ईषत्-स्वच्छन्दतावादी कवि, 'करील' (1942 ई.) एवं 'लाल चूनर (1942 ई.) का प्रयत्नज-प्रगतिवादी कवि बन तो गया, किन्तु 'वर्षान्त के बादल' (1954 ई.) में अपने सहज मांसलतावादी कवि के रूप में पुनः प्रकट हुआ। 'इन आवाजों को ठहरा लो' (1977 ई.) शीर्षक उनका दसवाँ काव्यसंग्रह उनकी प्रतिभा का प्रौढ़ एवं विशिष्ट प्रतिनिधि है। अंचल पर प्रसाद का विशेष एवं पन्त का सामान्य प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो जाता है। यद्यपि अंचल ने कहानी एवं आलोचना पर भी हाथ आज़माया है तथापि वे वस्तुतः कवि ही हैं तथा उनका सहज मांसलतावादी कवि-रूप अपनी मोहक पिपासा एवं मादक विकलता में अतीव प्रभावी है। एक प्रकृष्ट गीतकार के रूप में वे स्मरणीय रहेंगे :

1. मेरा वश चलता मैं बन जाता कौमार्य तुम्हारा।
ओठों पर निर्माल्य अछूता बनकर मैं छा जाता,
आँखों की सुर्मई गुलाबी चितवन में खो जाता।[6]

---

1. प्रविष्ट हो गया।
2. ओर।
3. जीर्ण-शीर्ण।
4. पैबन्द लगा।
5. हिन्दी साहित्य कोश भाग 2, पृष्ठ 528 (कई लोग उन्हें उन्नाव जनपद का 'कहते' हैं)। डॉ. शकुन्तला चौधरी कृत ग्रन्थ "कविर्मनीषी रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' का काव्य-प्रदेय" उन पर उल्लेख्य ग्रन्थ है। ग्रन्थावलियों के अप्रतिम प्रकाशक हिन्दी प्रचारक संस्थान वाराणसी ने डॉ. देवीप्रसाद कुँवर द्वारा सम्पादित 'अंचल सम्रग' के द्वारा उनकी प्रतिभा को स्थायी विग्रह प्रदान किया है।
6. कवि भारती (सं. सुमित्रानन्दन पन्त, बालकृष्ण राव, नगेन्द्र), पृष्ठ 597।

2\.

यह फागुन की रात और मैं विकल पड़ा मन मारे!
मेरे गीत बन गए रोदन, हँसी व्यथा का पानी,
तुमसे बिछुड़ बन गया मैं अपनी ही करुण कहानी।
मेरे बुझे हृदय पर चौमुख याद तुम्हारी आती,
मन के मुँदे धुँधलके में जो सिर धुनती, मँडराती।
तड़प सिसकता है अधजला, अधमरा ज्यों परवाना,
शेष जिसे अब बुझी शमा पर है केवल मँडराना।....[1]

रामदयाल पांडेय

प्रयोगात्मक महाकाव्य 'लोकायतन'[2] (1992 ई.) के व्यष्टि, परिवार, समाज, जात्युपजाति, सम्प्रदाय, संघर्ष, सामंजस्य, शासन, लोकशक्ति एवं उत्तरायण पर प्रशस्य आशावादी चिन्तन तथा अन्य प्रयोगात्मक महाकाव्य 'युगान्तर' (1991 ई.) के मानव-समाज को नायक बनाते हुए जिज्ञासा, ज्योतिष्प्रयास, व्रीड़ा, प्रगति, चित्रपथ, संगरपथ, शान्तियात्रा, संस्कृति-सौरभ एवं समन्वय-पथ पर प्रणम्य मानवतावादी चिन्तन के लिए चिरस्मरणीय महाकवि रामदयाल पांडेय (6 अगस्त, 1915, 2002 ई. शाहपुर पट्टी, जनपद भोजपुर, बिहार, निवास पटना) ने 'शक्तिमयी' (1990 ई.) शीर्षक अभूतपूर्व एवं सर्वांगीण नारीसम्वेदनकाव्य तथा 'राष्ट्रव्यंजना' (1991 ई.) शीर्षक अभूतपूर्व एवं बहुआयामी राष्ट्रकाव्य की रचना भी की है। मानवतावादी-राष्ट्रवादी प्रगतिशील कविताओं का संग्रह 'गणदेवता'[3] एवं प्रबंधकाव्य 'अशोक'[4] उनकी अन्य प्रकाशित कृतियाँ हैं। क्या भाषा-गौरव, क्या गति-यति-भंगरहित अभिव्यक्ति, क्या सांस्कृतिक गरिमा, क्या स्वस्थ-स्वच्छ मानवतावाद, सभी उन्हें महाकवि घोषित करते हैं। मेरे विचार से, स्वातन्त्र्य-सेनानी होते हुए भी वृत्ति अस्वीकार करने वाले राष्ट्रयोद्धा एवं अखंड सततदानमय हिन्दी-सेवी होने के कारण बिहार के टंडन के रूपों में उनका व्यक्तित्व कृतित्व से भी महात्तर एवं पूज्य है। उनका आदर्शवादी कृतित्व उनके महान् व्यक्तित्व की देन है, उनका व्यक्तित्व उनके कृतित्व की देन नहीं। उनकी तपोज्वल अनुभूति एवं अभिव्यक्ति आदर्शवादी युग (1900-20 ई.) की है, किन्तु वे अधुनातन समस्याओं (जातिवादी-घृणाप्रसार, साम्प्रदायिकता के नए राजनैतिक विकार, भ्रष्टाचार, नारीदहन इत्यादि) के प्रति पूर्णतः सजग हैं। श्री बैजनाथ गुप्त 'बृजेन्द्र' ने नारी पर 2000 गीत रचे हैं किन्तु वे अप्रकाशित हैं। 'बृजेन्द्र' जी रघुवंशम, कुमारसम्भवम् एवं ऋतुसंहारम् के अनुवादक के रूप में भी स्मरणीय हैं। उमर ख़ैयाम की रुबाइयों को उन्होंने सवैयों में उतारा है। वे नारीसम्वेदन में पांडेय जी का स्मरण कराते हैं। उन्होंने भाषा के नए बाँकपन और शैली की जटिल भंगिमाओं पर ध्यान नहीं दिया, सर्वत्र-यतिभंग की चिन्ता भी नहीं की, किन्तु मानवता के लिए प्रतिमानों और राष्ट्र की नई समस्याओं पर व्यथा व्यक्त की है, नवमानवता की परिकल्पना की है। रवीन्द्र ने महाकाव्य-रचना के युग की समाप्ति की जो घोषणा की थी वह आत्मपरक थी क्योंकि वे महाकाव्यकार न थे और बांग्ला की प्रकृति महाकाव्य के अनुकूल नहीं है।[5] उनकी स्थापना हिन्दी पर लागू नहीं होती, जिसमें इस समय सर्वाधिक महाकाव्य रचे जा रहे हैं—खड़ीबोली, अवधी, ब्रजभाषा, भोजपुरी इत्यादि अनेकानेक विभाषाओं में। हिन्दी में पृथ्वीराजरासो, पदमावत, रामचरितमानस, रामचन्द्रिका, गंगावतरण, प्रियप्रवास, साकेत, जयभारत, कामायनी, लोकायतन, कृष्णायन, पारिजात[6] (मृगेश), ऊर्म्मिला (नवीन), कुरुक्षेत्र, उर्वशी, विरहिणी (मुन्शीराम शर्मा 'सोम'), बुद्धचरित-चंद्रोदय[7], चन्द्रगुप्त मौर्य[8] (विनीत विक्रम बौद्ध पूर्वनाम रामखेलावन वर्मा), वीर अर्जुन[9] (परमानन्द जड़िया), नचिकेता (गंगारत्न पांडेय) इत्यादि

---

[1] वही ('यह फागुन की रात' कविता से)।

[2] पन्त के स्फीत महाकाव्य 'लोकायतन' के आयाम वैश्विक एवं अध्यात्म-मनोविज्ञान-समन्वित है।

[3] बांग्ला के अमर उपन्यासकार ताराशंकर वंद्योपाध्याय के ज्ञानपीठ पुरस्कार सम्मानित 'गणदेवता' का स्मरण आता है।

[4] भवानीप्रसाद मिश्र कृत 'कालजयी' एवं विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद कृत 'अशोक' जैसे अन्य काव्य, नाटक इत्यादि भी हैं, जो 'हिन्दी-साहित्य में अशोक' को शोध का विषय बनाते हैं। अशोक साहित्य प्रसाद ('लहर' में कविताएँ), लक्ष्मीनारायण मिश्र (नाटक), सोहनलाल द्विवेदी (कुणाल), भवानीप्रसाद मिश्र, रामदयाल पांडेय, यज्ञदत्त शर्मा (उपन्यास), विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद' इत्यादि द्वारा सम्पन्न किया गया है।

[5] टुटुरूँ-टूँ एक महाकाव्य 'मेघनादवध' (माइकेल मधुसूदन दत्त) है और वह भी मिल्टन के 'पैराडाइज़ लॉस्ट' की नकल में रचा गया है—अपसंस्कृतिवादी तो है ही! बांग्ला की प्रेरणा-देवी महान् अंग्रेज़ी क प्रकृति भी महाकाव्य की नहीं है।

[6] विश्व के एकमात्र वृक्ष 'पारिजात' (बाराबंकी जनपद) पर रचा गया विलक्षण अवधी काव्य।

[7] विशाल अवधी काव्य।

[8] स्फीत खड़ीबोली काव्य।

[9] अवधी-काव्य।

महाकाव्यों की गुणपरिमाण-गरिमा विश्वसाहित्य में अतुलनीय है। हिन्दी के महाकाव्यकारों में मानव एवं समाज को नायक बनाने के नव्य-भव्य प्रयोग के कारण रामदयाल पांडेय को एक विशिष्ट स्थान प्रदान किया जाना चाहिए। वे मानवकवि हैं, वे राष्ट्रकवि हैं। उनके नायक मानव, समाज एवं भारत हैं। उनकी तपोज्ज्वल कविता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. मातृशक्ति तो देवशक्ति है; तुम देवी हो चिर प्रतिष्ठिता;
करे उपेक्षा यदि मानव तो—कहाँ रहेगी मनुज-अस्मिता?....
स्वर्ग कल्पना-रूप-उर्वशी; देवि! तुम्हीं नल की दमयंती;
कालिदास की शकुंतला तुम; तुम्हीं भरत-जननी बलवंती।
महावीर की माँ त्रिशला तुम; बुद्धदेव की जननी माया;
राहुल-माता यशोधरा तुम; कालपृष्ठ पर यश चिर छाया। ('शक्तिमयी' से)

2. प्राण के जयगान से मैं रुदन को हरने चला हूँ;
कंठ की कुंठा मिटा बैकुंठ मैं रचने चला हूँ
मैं चला आकाश में अधिवास निज नूतन बनाने;
श्वास के विश्वास से आकाश को ऊपर उठाने;
मैं चला हूँ लोक के आलोक का गौरव जगाने;
चन्द्र-तारों के नयन में स्वप्न भूतल के सजाने।
मर्त्य के अमरत्व को प्रतिमूर्त मैं करने चला हूँ;
काल के विकराल मुख में मैं अमृत भरने चला हूँ[1]

3. है कहाँ दिवाकर की समता? समता है कहाँ सुधाकर की!
क्या अन्य जीव हैं कर सकते समता नारी की या नर की?

4. यह सरल[2] कहाँ तक जा पहुँचा? कार्यालय में, न्यायालय में;
जो मान्य विश्वबंधुत्व-उत्स उस तुंग विश्वविद्यालय में।

5. सुख-दुख-निरपेक्ष मनुजता है; जनगण सत्कर्मोन्नायक हों;
शुभ ध्येय-बिन्दु हो, कवि अवश्य लोकोदय-पथ के गायक हों।

इधर (1995 ई. में) रामदयाल पांडेय के 'युवा-ज्योति' (1992 ई.), 'मन्वन्तर', 'अग्निपंथी', 'नवोदय', (तीनों 1993 ई.) काव्य देखने का अवसर मिला। 'अग्निपंथी' के 'उपोद्घात' में 'अमृत' (प्रबन्धकाव्य), 'कर्मोपनिषद्' (प्रबन्धकविता) एवं 'विप्लव' (प्रबन्ध कविता) के प्रकाशनापेक्षी होने की सूचना भी दी है। गृहबद्ध होने से उनकी सर्जना सर्वथा मुक्त हो गई है। वे जमकर और डटकर लिख रहे हैं। उनकी अकल-कला के यहाँ अनुभूति का टोटा नहीं। उन्होंने युवा, नारी, प्रगति, बिहार, भारत, मानवता, सब पर खूब लिखा है। मानवतावाद एवं तदनुकूल राष्ट्रवाद उनकी अनुभूति की आत्मा है तथा प्रगति हृदयगति।

पांडेय जी का 'मन्वन्तर' न तो पुरातन है और न व्यक्तिविशेष-केन्द्रित; वह नवयुग एवं नवविकास का द्योतक है।' अग्निपंथी' 1857 ई. के अमर स्वातन्त्र्य-योद्धा बिहार-गौरव कुँवरसिंह एवं योद्धा अमरसिंह[3] का वीरवृत्त विवृत करता है। 'नवोदय' में बालक-बालिकाओं की जीवन-निर्माण के सभी (शिक्षा, स्वास्थ्य, चरित्र, मानव-मूल्य, देशप्रेम इत्यादि) का निरूपण है। 'युवाज्योति' में युवक-युवतियों हेतु उद्बोधन है जो राष्ट्र-जागृति के इतिहास की पृष्ठभूमि से भी सम्पन्न है। आशावादी एवं आस्थावादी कवि का युवाशक्ति पर पूर्ण प्रत्यय है। उसने युवावर्ग का सचेत भी किया है, राष्ट्र-जीवंतता हेतु सन्देश भी दिया है।

हिन्दी के व्यापक-सर्जक सच्चे राष्ट्रकवियों में परिगणित किए जाने योग्य हैं। तत्वतः वे नवराष्ट्रकवि हैं, क्योंकि उन्होंने राष्ट्र के प्रत्येक वर्ग का ध्यान रखा है तथा उनका वास्तविक नायक केवल एक है—भारत (मानवतावादी अमर भारत)!

---

[1] अरविन्द के 'स्वर्ग का भूमिकरण' (जो पन्त कृत 'उत्तरा', 'अमिता', 'लोकायतन' इत्यादि में निरूपति है) यहाँ प्रभावी रूप से विवृत है। वैसे, यह भारतीय अस्मिता का शाश्वत स्वर है, जिससे अरविन्द प्रेरित हुए थे।

[2] जातिवाद। बिहार में जातिवाद का ज़हर सबसे ज़्यादा भयानक रूप में फैला है।

[3] जोधपुर के मध्यकालीन योद्धा अमरसिंह राठौर से भिन्न, बिहार-विभूति।

नलिनविलोचन शर्मा

'साहित्य का इतिहास-दर्शन' (1960 ई.) के विद्वान् किन्तु तरंगवादी लेखक के रूप में स्मरणीय तथा नकेनवाद (नलिनविलोचन-केसरी-नरेश की प्रयोगवाद-समर्थक त्रयी पर नामित नव्यतासमर्थनवाद) से संपृक्त कतिपयवर्षीयचर्चा के केन्द्र पुरुष नलिनविलोचन शर्मा (18 फरवरी, 1916—12 सितम्बर, 1960, पटना) ने 'सदल मिश्र ग्रन्थावली' का प्रशस्य सम्पादन भी किया है। वाल्ट ह्विट्मैन, एज़्रा पॉउण्ड और टॉमस स्टर्न एलिअॅट (इलिअॅट) की प्रेरणा से निराला ने 1920 ई. के इधर-उधर छन्दमुक्त-कविता का प्रतिपादन किया। अज्ञेय ने 'तार-सप्तक' (1943 ई.) द्वारा प्रयोगवाद को पाश्चात्य व्यक्तिवाद से संपृक्त करना चाहा। किन्तु इसके कई कवि साम्यवादी भी थे (दर्शन से साम्यवादी, अभिव्यक्ति से व्यक्तिवादी)। नकेनवाद (प्रपद्यवाद) ने राजनैतिक प्रतिबद्धता का अपरिहार्य न मानते हुए, प्रयोग के साधन भी माना, साध्य भी। 'लोककथा-कोष', 'लोकसाहित्य-आकर' एवं 'लोकगाथा-परिचय' के सम्पादक के रूप में भी उन्होंने उपयोगी कार्य किया था। 'साहित्य' एवं 'कविता' के पत्रपत्रिका-सम्पादक के रूप में भी वे पर्याप्त सफल रहे। वस्तुतः वे एक सफल सम्पादक के रूप में अधिक स्मरणीय रहेंगे। 'दृष्टिकोण' (1947 ई.) और 'नकेन का प्रपद्य' (1956 ई.) में वे आलोचक और कवि तथा 'विष के दाँत' (1951 ई.) और 'सत्रह-असंगृहीतपूर्व कहानीसंग्रह' में कहानीकार के रूपों में दृग्गत होते हैं, किन्तु इन दिशाओं में किसी विशेष उपलब्धि के दर्शन नहीं होते।

नलिनविलोचन शर्मा महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा जैसे धुरंधर संस्कृत-पंडित के सुयोग्य पुत्र थे तथा उनका आकार-प्रकार विराट् था। उनका संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेज़ी इत्यादि देशी-विदेशी साहित्यों का अध्ययन पर्याप्त स्फीत था। इन सब के अभिभूत हो विद्वद्वर डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, नाट्यकार-एकांकीकार जगदीशचन्द्र माथुर, कहानीकार राधाकृष्ण प्रसाद, डॉ. कुमार विमल, केसरी नरेश, इत्यादि ने उनकी बड़ी तारीफ़ की है, जिसका वस्तुपरक आलोचनात्मक मूल्य न हो, किन्तु यह तथ्य अवश्य उजागर होता है कि वे एक प्रभावी व्यक्ति भी थे, साहित्यकार भी।

आलोचक के रूप में नलिनविलोचन शर्मा नव्यता के सतर्क स्वागतकर्त्ता के रूप में मननीय हैं, माननीय भी। समय को देखते उनके ये शब्द मूल्यवान थे और हैं: "हिन्दी-कविता को अपने में वयस्क-बुद्धि लाना होगा और तभी वह युग की मेधा को अपने प्रति खींच सकती है। उसे अपने पुराने हृदय-रोग से छुटकारा पाना होगा।" "बौद्धिककाल की यथार्थवादी कविता के व्यक्ति प्रधान आन्दोलन (जिसे प्रयोगवादी आन्दोलन कहा गया) के विवेचकों में वे शीर्षस्थान के अधिकारी हैं। डॉ. देवीशंकर अवस्थी, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, शमशेर इत्यादि अन्य अभिदान हैं। हृदयवाद या भाववाद या श्रद्धावाद की पुरानी डफली पीटने वालों पर उनके प्रहार सर्वाधिक सशक्त भी हैं, सर्वाधिक तर्कपूर्ण भी। किन्तु साहित्येतिहास-मीमांसा में वे शुक्ल एवं हज़ारीप्रसाद की स्तुति से ऊपर नहीं उठ सके तथा मिश्रबन्धु-विनोद के प्रति उनका पूर्वाग्रह सतही है। उनका नकेनवाद अत्यन्त शीघ्र ही विस्मृत हो गया—'नकेन' बन गया। उसमें देशी-विदेशी प्रयोगवाद की सामूहिक विशालता से भिन्न कोई नया तत्त्व या कोई नया बिन्दु न था। उसे जगदीश चतुर्वेदी की अकविता के सदृश जन्म से पूर्व मरना ही था!

हिमांशु'[1]

'सत्यसिन्धु हरिशचन्द्र', 'अखण्ड मेवाड़' इत्यादि के नाट्यकार, 'स्वराज्य एवं 'कलिंग-विजय' के एकांकीकार', 'कृष्णजन्मरहस्य', 'सुलोचन सती', 'कर्मवीर प्रताप' इत्यादि कवि, 'बिखरी चिनगारियाँ' के उर्दू-शायर शंभुरत्न मिश्र[2] 'हिमांशु' (28 मार्च, 1916-1993 अमेठी,[3] जनपद लखनऊ, निवास बाबूगंज, उन्नाव) के पिता सूर्यबली मिश्र शायर थे तथा अग्रज चन्द्रशेखर मिश्र 'चंडूल' प्रसिद्ध हास्यकवि हैं। 'हिमांशु' को सनेही-परम्परा का एक सफल खड़ीबोली-छन्दकार माना जा सकता है, जिनकी कविता सनातन

---

1. उपनाम है जो हिमांशु जोशी, हिमांशु श्रीवास्तव के नामों का स्मरण कराता है।
2. मेरे पितामह शंभुरत्न मिश्र 'शंभु' छाप से कवित्त कहते थे, पर व्यवस्थित कवि न थे। पिंगलाचार्य कविराज सुखदेव मिश्र के एक शिष्य शम्भुरत्न मिश्र प्रख्यात आचार्य-कवि थे। 'शंभुरत्न' नामक अन्य कवि भी हुए हैं।
3. प्रसिद्ध अमेठी (जनपद सुल्तानपुर) से स्पष्टतः भिन्न। आम्रबहुलता-व्यंजक नाम (आम अम्ल से रसराज का अतः नीम-जैसी एकरस-महानता से वंचित रह गया—उसे निंबई (उन्नाव), नींबी (रायबरेली), टेढ़ी नीम (वाराणसी), नीम का थाना, निम्बाहेड़ा (राजस्थान), नीमच (मध्य प्रदेश) इत्यादि-जैसा व्यापक सम्मान नहीं मिला। किन्तु 'रसराज' बनने पर अमेठी (सुल्तानपुर), अमेठी (लखनऊ), कहीं-कहीं अमरौली-अमरौला का रुतबा तो मिला ही है! (महाराष्ट्र की अमरावती इन्द्र की राजधानी की सूचक है, आम्र या आम की नहीं।)

मानव-मूल्यों, निष्कलंक राष्ट्रीयता एवं विशद आस्था से निष्पन्न है। उनका खड़ीबोली-खंडकाव्य 'कर्मवीर प्रताप' (सं. डॉ. रामनरेश) उन्हें राधाकृष्णदास, श्यामनारायण पाण्डेय प्रभृति नाट्यकारों एवं कवियों तथा गणेशशंकर विद्यार्थी प्रभृति निबन्धकारों की पंक्ति में प्रतिष्ठित कर देता है, क्योंकि इसका एक-एक छन्द ओजपूर्ण है तथा कृतित्व विशद धर्मनिरपेक्षता से भी सम्पन्न है। उन्नाव के प्रसिद्ध विद्वान् स्व. डॉ. निशानाथ दीक्षित ने इस कृति को ''वीरकाव्य-परम्परा की एक विशिष्ट उपलब्धि'' ठीक ही कहा था। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. देशभक्ति, शक्ति, शूरता की दे अखंड ज्योति जन-मन-मानस में साहस प्रखर दो।
शैलराट् थाती हर छाती में सँजो दो और प्रीति का परम पुण्य पारावार भर दो।।
तत्त्व पुरुषत्व का हो मात्र अमरत्व एक, जन-जन जीवन को मोक्ष की लहर दो।
देवि! हर माटी में चढ़ा दो हल्दी का रंग, हर नर-काया को प्रताप-तुल्य कर दो।।

2. सिंह सा दहाड़ उठा, हिल सा पहाड़ उठा, नभ ललकार उठा शोणित-निलय हो।
जागा जागरण प्रण रण जन-जन बीच, जीवन मरण से अशंकित अभय हो।।
जागे देश भक्त वीर, तोप, तरकस, तीर, क्षीर रणवीर का तरंगित प्रलय हो।
कालिका किलक उठी, करने तिलक उठी, बोल पड़ी ''प्रणवीर! जय हो, विजय हो!!''

शिवमंगलसिंह 'सुमन'

'हिल्लोल', 'जीवनगान', 'प्रलयसृजन', 'विश्वास बढ़ता ही गया', 'पर आँखें नहीं भरीं', 'विध्न-हिमाचल', 'मिट्टी की बारात' इत्यादि के प्रसिद्ध कवि शिवमंगलसिंह 'सुमन' (14 अगस्त, 1916 ई. झगरपुर, ज़िला उन्नाव–26 नवम्बर, 2002, उज्जैन) जनवादी या साम्यवादी कवि होते हुए भी विशाल की विशद प्रकृति, राष्ट्र की गरिमामयी संस्कृति एवं स्नेह के स्पर्श से भी पुलकित हुए हैं। जन्म तिथि 5 अगस्त, 1915 भी पढ़ी है। उनकी कविता 'हिल्लोल' में छायावादी रंगत दीखती है, पर 'जीवनगान' में प्रगतिवाद की घुसपैठ साफ़ दिखाई देती है। तब से प्रगति-ही-प्रगति! निस्सन्देह, वे रूसीवादी रहे हैं जैसाकि 'रूस चलो' इत्यादि से तो स्पष्ट है। किन्तु वे भारतवादी भी हैं जैसाकि 'आज देश की मिट्टी बोल उठी है', ''मेरा देश जल रहा है कोई न नहीं बुझाने वाला' इत्यादि से तो स्पष्ट है ही, उनके तुलसी-सम्बन्धी स्वस्थ दृष्टिकोण से लेकर निराला एवं प्रेमचन्द पर कविताओं से भी स्पष्ट होता है। साम्यवादी कवियों में शिवमंगलसिंह 'सुमन' को एक उल्लेखनीय स्थान प्राप्त है। यद्यपि उनकी कविता में मुक्तिबोध की सुदीर्घतामयी प्रचंड शक्ति नहीं है तथापि वे नागार्जुन से अधिक शालीन हैं, रामदरश मिश्र इत्यादि से अधिक प्रांजल हैं। उनका श्रमिक-जागरण शिव की शिवता से भी अभिज्ञ है। उनका जनाह्वान राष्ट्रीयता से अनभिज्ञ नहीं है। उन्होंने गद्य में, 'गीतिकाव्य का उद्भव-विकास और हिन्दी-साहित्य में उसकी परम्परा' शीर्षक डी. लिट्. शोधप्रबन्ध के अतिरिक्त, 'महादेवी की काव्य-साधना' भी लिखी है। कुछ कविताओं से कलात्मक उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. लजाओ मत, इसी से भक्त के भगवान पलते हैं,
इसी के आसरे दिन-रात सूरज-चाँद चलते हैं,
सितारे टिमटिमाते और झरने फूट पड़ते हैं
न इसके आदि में है योग अथवा अन्त में बाकी,
तुम्हारे स्नेह की दो बूँद जीने को बहुत काफ़ी।

2. हर-हर-बम
हर-हर-बम
जाग्रत अवंतिका में
द्वार-द्वार अनुष्ठान।
शिवता में शक्ति
सदा रहती है अंतर्धान

उसका ही सतत शोध
करते सब आँख मूँद
अपना-अपना विधान।
3. उठो, उठो मेरे शिव!
ताण्डव नृत्य करो
कुहराम मचा दो
कंकालों की अस्थि नींव पर खड़े
विश्व साम्राज्यवाद की
आज ईंट-से-ईंट बजा दो।

अमृतलाल नागर

देशी-विदेशी उपन्यासों एवं कहानियों के स्फीत अनुवादक, डेढ़ दर्ज़न देशी-विदेशी पुरस्कारों से सम्मानित, 'पद्मभूषण' अलंकृत, चलचित्र एवं रंगमंच से भी सम्बन्धित स्व. अमृतलाल नागर (17 अगस्त, 1916—23 फरवरी, 1990, जन्म ननिहाल आगरा में, निधन पैतृक-वासस्थान लखनऊ में) हिन्दी साहित्य के इतिहास में 'बूँद और समुद्र' एवं 'अमृत और विष' के सामाजिक-उपन्यासकार तथा 'मानस का हंस' एवं 'खंजन नयन' के ऐतिहासिक-उपन्यासकार के रूपों में चिरस्मरणीय रहेंगे। यह सत्य है कि उनके सामाजिक उपन्यासों में कहीं-कहीं वैचारिक वाद-विवाद अति की सीमा पर पड़ा है तथा उनके ऐतिहासिक-उपन्यासों में कल्पना की रंगत भी अति से बच नहीं पाई, किन्तु इसमें भी सन्देह नहीं है कि वे उबाऊ नहीं हैं, रोचक हैं, विचारोत्तेजन करते हुए भी मानव-चरित्र की मूल प्रवृत्तियों का सूक्ष्म चित्रण करते हैं, मानवीय एकता (उनकी ब्राह्मणी भंगी से प्रेम कर सकती है, उनके तुलसीदास वेश्या से प्रभावित हो सकते हैं) की बेबाक प्रतिष्ठा करते हैं (जिसके लिए उनका प्रत्याख्यान भी किया गया—खासकर उनके अपने लखनऊ में ही) तथा अपने समग्र में एक विश्व-स्तरीय उपन्यासकार हैं। नागर जी शिल्प पर नहीं रीझते, क्योंकि उनके यहाँ चित्रण की अपार सम्पदा भरी पड़ी है। यद्यपि उन्होंने ऐतिहासिक-उपन्यास भी लिखे हैं तथापि 'वस्तु' की वैसी प्रात्ययिकता नहीं ला पाए जैसी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक-उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा। उनके सामाजिक-उपन्यास अधिक सफल हैं और वे प्रेमचन्द एवं यशपाल के युगपत् उत्तराधिकारी सिद्ध होते है—विशद सामाजिकताओं में वे प्रेमचन्द की परम्परा को विकसित करते हैं, प्रगतिवादी दृष्टिकोण विवृत करने में वे यशपाल की परम्परा को सशक्त करते हैं। पुत्र शरद नागर ने विराट् 'अमृतलाल नागर रचनावली' (बारह खंड) का सम्पादन किया है, जिसमें छायानूदित रचनाओं (जैसे 'सुहाग के नूपुर') को भी लपेट लिया गया है (ग़नीमत कि 'आँखों देखा गदर' नहीं खपाया गया!)।[1] इधर प्रकाशकों में भारीभरकम ग्रन्थावली या रचनावली प्रकाशन में होड़ लगी है जो अच्छी है। निराला, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी इत्यादि की बहुखंडीय तथा भारतेन्दु, देवकीनन्दन खत्री इत्यादि की 'समग्र' ग्रन्थावलियाँ स्वागतयोग्य हैं।

---

[1] 'अमृतलाल नागर रचनावली' का महत्त्व (और सीमाएँ भी!) आँकने के लिए सभी बारह खंडों का विवरण जान लेना जरूरी होगा। पहले खंड में 'एकदा नैमिषरण्ये' और 'सुहाग के नूपुर' (उपन्यास), दूसरे में 'बूँद और समुद्र' (उपन्यास) और 'राहों का बिखराव' (सहयोगी प्रयोगशील उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश' के लिए लिखा गया उपन्यास अंश), तीसरे में 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' (उपन्यास) चौथे में 'अमृत और विष' और 'सात घूँघट वाला मुखड़ा' (उपन्यास), पाँचवें में 'नाच्यों बहुत गोपाल' और 'महाकाल' (बाद में 'भूख' नाम से प्रकाशितः उपन्यास), छठे में 'गदर के फूल' (अवध के गाँवों से एकत्र की गई 1857 सम्बन्धी सामग्री) और 'बिखरे तिनके' व 'अग्निगर्भा' (उपन्यास), सातवें में 'एक दिल हज़ार अफ़साने' (सम्पूर्ण कहानियाँ) तथा 'पाँचवाँ दस्ता', आठवें में सम्पूर्ण नाटक, 'सेठ बांकेमल' और 'नवाबी मसनद' (उपन्यास), नवें में 'करवट' (उपन्यास) और 'टुकड़े-टुकड़े दास्तान' (आत्मकथा), दसवें में 'साहित्य और संस्कृति' (निबन्ध) और 'चकल्लस' (हास्य-व्यंग्य), ग्याहरवें में 'पीढ़ियाँ' (उपन्यास) तथा 'ये कोठेवालियाँ' (वेश्याओं के जीवन का सामाजिक सर्वेक्षण), बारहवें में 'जिनके साथ जिया' (संमरण), 'शतरंज के मोहरे' तथा 'चैतन्य महाप्रभु' (उपन्यास) इस तरह इन 12 खंडों में नागर जी के सभी 17 प्रकाशित उपन्यास, सम्पूर्ण कहानियाँ, सम्पूर्ण नाटक, व्यंग्य, निबन्ध, संस्मरण, आत्मकथा, रिपोर्ताज हैं। पहले खंड में डॉ. रामविलास शर्मा की लगभग 40 पृष्ठ लम्बी भूमिका भी है, जिसमें एक साहित्यकार के रूप में नागर जी के कृतित्व और विचारलोक का गम्भीर समीक्षापरक विवेचन किया गया है। इसका सम्पादन उनके पुत्र शरद नागर ने किया है। (जनसत्ता 29 मार्च, 1992)

जन्म से ही राष्ट्रीय एकता के प्रतीकः उत्तर-दक्षिण के साहित्य-सेतु

नागर जी मूलतः गुजराती-ब्राह्मण थे। वे उत्तर प्रदेशी के रूप में जन्मे, जिए, मरे। वे ठेठ-लखनऊवा थे। लखनऊ को उन्होंने अनेकानेक ग्रन्थों में चित्रित किया है। 'नागर' प्राचीन नाग-जाति से संपृक्त है, जिनका किसी समय विराट् भारत में भारी बोलबाला था—अनंतनाग, बेरीनाग, नागौर, नागदा, नागपुर इत्यादि से नागप्रदेश (नागालैण्ड) तक इस तथ्य के साक्षी हैं (भले ही आज परिवर्तित धार्मिक एवं राजनैतिक कारणों से नागालैण्ड के अनेक तत्त्व प्रतिवाद करें) 'नाँगल एवं 'नागला' अनेक क्षेत्रों में मिल जाएँगे। 'नगर' शब्द नग् या पर्वत पर या उसके निकट के सूचक हैं। नागर जाति से भी नाग, नागर, नगाइच, नागपाल, नाग चौधरी इत्यादि जाति से भी विभिन्न जातियाँ प्राचीन नाग जाति को जीवन्त किए हैं। कई लोग तक्षशिला (टैक्सिला, पाकिस्तान) को नागमूलक मानते हैं, क्योंकि 'तक्ष' नाग-गौरव का प्रतीक-अभिधान रहा है, किन्तु वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड में इस नगर के प्रतिष्ठापक-संस्थापक तक्ष रामानुज भरत के पुत्र बताए गए हैं। नाग, किन्नर, यक्ष, गन्धर्व इत्यादि जातियों का आर्यों में समाहार हमारी सभ्यता-संस्कृति की व्यापकता का प्रतीक है। नागरजी अपनी नागमूलता से पूर्णतः अभिज्ञ थे तथा नागर-सम्मेलनों में अन्य बन्धुओं को भी इस तथ्य से अनभिज्ञ न रहने देते थे। उनकी प्राचीन इतिहास में गहरी रुचि थी। उनका घर प्राचीन निधियों से सम्पन्न रहा। जब लखनऊ में प्राचीन लक्ष्मण-टीले की खुदाई हुई तब वे बराबर दौड़-धूप करते रहे, तथ्य एवं वस्तु संकलन करते रहे। लखनऊ के पुरातात्त्विक उत्खननों ने यह सिद्ध कर दिया कि यह नगर (प्राचीन लक्ष्मणावती या लक्ष्मणपुर) ईसा-पूर्व 7वीं सदी तक में विद्यमान था। खेद है राजनैतिक दबावों के कारण यह उत्खनन-कार्य रोक दिया गया! (लखनऊ की 'धर्मनिरपेक्ष' उर्फ़ 'नवाबी-रंगत' पर आँच नहीं आने दी गई।) यह भी विचित्र संयोग है कि अयोध्या के उत्खनन-कार्य में भी नगर का ईसा-पूर्व 7वीं से 8वीं सदी तक विद्यमान होना प्रमाणित हो चुका है। शृंगवेरपुर या सिंगरौर के उत्खनन भी ईसा पूर्व 700 के इर्द-गिर्द ही सिद्ध करते हैं। नागर जी का आवास भी कम-से-कम 200 वर्ष पुराना है (यद्यपि वे किराएदार थे)। आर्य-नाग-समन्वय के जीवन्त प्रतीक अमृतलाल नागर ने तमिलनाडु के प्राचीन महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' पर आधृत 'सुहाग के नुपूर' प्रस्तुत किया। महाराष्ट्र के विष्णु शास्त्री गोड़से कृत 'माझा प्रवास' शीर्षक 1857 के ग्रन्थ का 'आँखों देखा ग़दर' दिखलाया! उनके उपन्यासों के दक्षिण की भाषाओं में अनुवाद उन्हें उत्तर-दक्षिण का एक साहित्य-सेतु सिद्ध करते हैं।

सहृदय एवं संवेदनशील मनुष्य

प्रेमचन्द, वृंदावनलाल वर्मा, जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा प्रभृति के साथ हिन्दी के एक श्रेष्ठतम उपन्यासकार होते हुए भी, अमृतलाल नागर की सहृदयता एवं संवदेनशीलता में कभी कोई अन्तर नहीं आया। साधारण कवियों, उपन्यासकारों, कहानीकारों, पाठकों इत्यादि से भी वे आत्मयीता के साथ घुलने-मिलते रहे उन्होंने पचासों ग्रन्थों की अनुशंसाएँ लिखीं, जिनका संकलन किया जाए तो उनके अध्ययन की स्फीति भी हृदयंगम की जा सके तथा सहृदयता-संवेदनशीलता भी स्पष्ट हो सके। अध्ययन की विराटता में हिन्दी का कोई उपन्यासकार अमृतलाल नागर की समता नहीं कर सकता, भले ही प्रेमचन्द एवं जैनेन्द्र श्रेष्ठतर स्रष्टा हों, वृन्दावनलाल वर्मा अधिक वस्तुपरक हों, अज्ञेय गहनतर हों। उनकी अद्वितीय लोकप्रियता का एक बहुत बड़ा कारण उनका सहृदय एवं संवेदनशील मनुष्य होना भी रहा।

सुपुष्ट सांस्कृतिक आधार

यद्यपि अमृतलाल नागर जनवादी आन्दोलन से संपृक्त रहे तथापि उन्होंने भारतीय संस्कृति की अवेहलना नहीं की। साहित्य संस्कृति का उद्‌गार है। अपनी संस्कृति से विच्छिन्न साहित्य पंख-कटे पंछी की तरह लुंज-पुंज रह जाता है। प्रेमचन्द, जैनेन्द्र, वृन्दावनलाल वर्मा, भवगतीचरण वर्मा, भगवतीप्रसाद वाजपेयी जैसे शीर्षस्थ उपन्यासकारों ने नव्यता के स्वागत के साथ प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों का भी सम्मान किया है। अमृतलाल नागर के उपन्यासों में भारतीय संस्कृति की व्यापकता, विशदता एवं भव्यता के अच्छे दर्शन होते हैं। उनका सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'बूँद और समुद्र' इसका प्रमाण है।

क्षेमचन्द्र 'सुमन'

'दिवंगत हिन्दी-सेवी' की ऐतिहासिक प्रस्तुति के कारण पद्मश्री आ. क्षेमचन्द्र 'सुमन' (16 सितम्बर, 1916—23 अक्टूबर, 1993, जन्म बाबूगढ़ ज़िला ग़ाजियाबाद निवास एवं निधन दिल्ली) हिन्दी-साहित्येतिहास के एक अंग तथा श्री रामनाथ लाल 'सुमन' एवं डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन' के साथ समग्र 'सुमनों' में सर्वाधिक विकसित-सुरभित 'सुमन' बन गए हैं।[1] वे एक स्फीत त्वरितग्रन्थकार एवं सम्पादक के रूप में भी उल्लेखनीय हैं, यद्यपि उनका स्थायी महत्त्व 'दिवगंत हिन्दी-सेवी' के कारण ही सिद्ध हो पाता है। वे आलोचक अल्प हैं, शोधकर्ता अधिक। किन्तु उनका शोध आलोचनात्मक मूल्यों से निष्पन्न है। दूसरों का माल 'जीमने' वालों की उन्होंने अच्छी ख़बर ली है (फिर चाहे वे आ. शुक्ल हों या आ. चतुरसेन शास्त्री—गुलेरी की 'उसने कहा था' पर पश्चिम की एक प्रथम विश्वयुद्ध कहानी की छाया का आरोप उनके अध्यवसाय का सूचक है)! उन्होंने 1800 ई. से अब तक हिन्दीसेवियों (जिनमें प्रायः समग्र देशी एवं विदेशी कवि, लेखक, नानाग्रन्थकार, पत्रकार, प्राध्यापक, नेता, सभी समाविष्ट हैं) का विराट् एवं विशद विश्वकोश प्रस्तुत कर प्रशस्य एवं प्रणम्य सेवा की है। 1800 ई. से आधुनिककाल का समारंभ-संकेत, पंडित गौरीदत्त को हिन्दी का प्रथम उपन्यासकार एवं बाबा गंगादास को 'आधुनिक-खड़ीबोली का प्रथम कवि सिद्ध करना, मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' एवं आ. शुक्ल कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' तथा डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' एवं डॉ. नगेन्द्र इत्यादि द्वारा सम्पादित 'भारतीय साहित्य कोश' प्रभृति ग्रन्थों की अनेक त्रुटियों का निराकरण निस्सन्देह असाधारण कार्य है।[2] उनके 'शोध और सन्दर्भ' एवं 'हिन्दी साहित्य को आर्य-समाज की देन' ग्रन्थ भी सर्वथा उल्लेखनीय हैं। उनकी प्रेरणा से श्री आनन्दीप्रसाद माथुर, डॉ. जगन्नाथ शर्मा, डॉ. नित्यकिशोर शर्मा, डॉ. ब्रजपाल सिंह 'सन्त', डॉ. इन्द्र सेंगर, डॉ. मोहन सिंह गहरवार इत्यादि लेखकों एवं शोधकर्ताओं ने पर्याप्त एवं प्रशस्य कार्य किए हैं।

'सुमन' जी की 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' की अतिस्फीत दशखण्डीय योजना तो सर्वथा अभूतपूर्व थी, जैसा कि उसकी अनुक्रमणिका से ही स्पष्ट है; किन्तु प्रकाशित दो खंड भी सर्वथा अमूल्य हैं। उनके सम्पादित ग्रन्थ 'आधुनिक हिन्दी-कवयित्रियों के प्रेमगीत' में 173 कवयित्रियों का समावेश भी उल्लेखनीय है।

'सुमन' जी एक प्रख्यात स्वातन्त्र्य सेनानी के रूप में भी प्रणम्य थे। जवाहरलाल नेहरू, इन्दिरा गाँधी, जैलसिंह जैसे नेताओं से उनके अच्छे सम्बन्ध रहे। वे एक आदर्शवादी एवं देशप्रेमी कवि भी थे। अनवरत यात्री, अथक पत्रसंस्कृति-उपासक, बेहद मिलनसार, नितान्त सहृदय 'सुमन' जी का मानव-रूप भी अद्वितीय था। वे हिन्दी-संस्कृति के एक उज्ज्वल प्रतीक थे।

गंगाप्रसाद[3] मिश्र

'सरोद की गत', 'नया खून', 'आदर्श और यथार्थ', 'नई राहें', 'काँटों का ताज', 'बाहों के घेरे', 'दूध-पूत' (उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के प्रेमचन्द पुरस्कार से सम्मानित) तथा 'मेरी प्रिय कहानियाँ' के चिरस्मरणीय कहानीकार गंगप्रसाद मिश्र (28 जनवरी, 1917, खंडवा, निवास लखनऊ) ने 'विराग', 'महिमा', संघर्षों के बीच, 'तस्वीरें और साए', 'सोनार वाणी के पार', 'जहर चाँद का' (पुरस्कृत) तथा 'मुस्कान है कहाँ?' शीर्षक उपन्यास भी लिखे हैं, बालसाहित्य तथा प्रौढ़साहित्य में भी रुचि दिखलाई है; फिर भी वे, मुख्यतः कहानीकार ही माने जाते हैं जिन्होंने लगभग 250 कहानियाँ लिखी हैं। उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने उन्हें 'साहित्य-भूषण' प्रदान कर उचित कार्य किया है। गंगाप्रसाद मिश्र ने 1934 ई. में कहानी लिखना आरम्भ किया था और उन्होंने अनवरत रूप से कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें समाज के विविधपक्षीय यथार्थ को, उजागर किया गया है। यद्यपि वे साम्यवादी खेमे के माने जाते हैं, तथापि तत्त्वतः किसी वाद के वंदी न बनकर उन्होंने यथार्थ को प्रेमचन्दवत् सोद्देश्य यथार्थ के रूप में ही उभारा है, जीवन की जटिलताओं को निष्ठापूर्वक प्रस्तुत किया है।

---

1. शिवमंगल सिंह 'सुमन', डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन', श्यामसुन्दर 'सुमन', शिवसिंह 'सुमन', सत्य 'सुमन' देव 'सुमन' कृष्णप्रताप सिंह 'सुमन', हीरालाल 'सुमन' इत्यादि 'सुमनों से भी हिन्दी-कानन की बहुरंगी छटा में वृद्धि हुई है—और सुमन, राजे की तो अपनी विशिष्ट रंगत है ही (वैसे, शान्तिकुमारी 'सुमन' भी है)।
2. श्री आनंदीप्रसाद माथुर स्वातन्त्र्य-सेनानी एवं लेखक उभयरूपों में आदरणीय थे। इनके 'आज़ादी के दीवाने', 'मुक्तिसंघर्ष', समर्पित व्यक्तित्व' जैसे प्रेरक ग्रन्थ निस्सन्देह पठनीय हैं। उन्होंने 'हीरालाल दीक्षित अभिनन्दन ग्रन्थ' सम्पादित किया है। गाँधी से गुलज़ारीलाल नंदा तक अनेक इतिहासपुरुषों के सम्पर्क में आए श्री माथुर ने अनेक जीवनियाँ भी लिखी हैं। क्षेमचन्द्र 'सुमन' पर उन्होंने 'एक सुमन बगिया महकाता' एवं 'दिवंगत हिन्दीसेवीः एक मूल्यांकन' ग्रन्थद्वय सम्पादित किए हैं।
3. गंगाप्रसाद पांडय, गंगाप्रसाद 'विमल' इत्यादि समनामियों का स्मरण आता है।

गंगाप्रसाद मिश्र के पिता पुत्तूलाल मिश्र काव्यप्रेमी होने के कारण खंडवा की अखंड विभूति[1] माखनलाल चतुर्वेदी के निकटवर्तियों में थे, अतः उन्हें साहित्य-सृजन की प्रेरणा बाल्यकाल से ही मिली। उन्होंने लखनऊ-प्रवासी प्रेमचन्द का सबेरे एक हाथ में दातून और दूसरे में पश्चिम का कोई आधुनातन कहानीसंग्रह[2] लिए प्रेमचन्द का अच्छा चित्रण किया है।[3] 'कान्यकुब्ज' (लखनऊ) के पचास वर्षों (1933-83 ई.) तक कुशल सम्पादन एवं काव्यसृजन के लिए चिरस्मरणीय स्व. रमाशंकर मिश्र 'श्रीपति' द्वारा प्रथम प्रकाशित कहानी 'मिलन' में आमूलचूल परिवर्तन का वर्णन करते हुए उन्होंने 'श्रीपति' के प्रति सम्मान व्यक्त किया है। उन्होंने स्वयं अपने आरम्भिक काल में छायानुवाद-छल की चर्चा की है। संप्रति (1990 ई.) स्वास्थ्य-शैथिल्य (सिर इत्यादि हिलता है) के बावजूद वे लखनऊ के साहित्यिक आयोजनों में सक्रिय भाग लेते हैं।

प्रेमचन्द की सोद्देश्य कहानी की रचना-परम्परा को कौशिक, सुदर्शन इत्यादि के अनन्तर गंगाप्रसाद मिश्र की कहानियों में ही विकास प्राप्त होता है। गंगाप्रसाद मिश्र की 'गंगालाभ', 'कफ़नखसोट', 'खानदानी पीलू' जैसी सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में परिगणित की जा सकती हैं तथा 'शशि', 'पुरुष', 'चर्खे के बाद' जैसी श्रेष्ठ कहानियाँ हिन्दी की श्रेष्ठ कहानियों में। 'गंगालाभ' में श्मशान के नरपिशाच पंडितों, महापात्रों, टालवालों, नाइयों इत्यादि की हिन्दुत्व का अपमान करने वाली नीचतापूर्ण लूट, अधजले शव को गंगा में फेंककर अधजली लकड़ियों की रोंगटे खड़े करने वाली कमाई इत्यादि भयावह यथार्थ-चित्रण में प्रेमचन्द की 'कफन', 'बूढ़ी काकी' तथा कमलेश्वर की 'इतने अच्छे दिन' जैसी कहानियों से तुलनीय हैं। 'कफनखसोट' का आरम्भगत कटु यथार्थ गहन मानवीय संवेदन से ऊभचूभ अन्त में अभिभूतकारी है। उग्र के 'जल्लाद' की याद आ जाती है। 'खानदानी पीलू' ने मरहूम सरोद-वादक उस्ताद सखावत हुसैन खाँ एवं स्वर्गीय साहित्य-महारथी डॉ. रामकुमार वर्मा को रुला दिया था। इसमें एक निष्ठावान और गम्भीर कलावंत की विवशता का मार्मिक अंकन हुआ है जो शुद्ध यथार्थ के निकष पर एकदम खरा और टकसाली उतरता है—प्रेमचन्द की 'रामलीला' याद आती है (यद्यपि इसकी समता नहीं कर सकती)। 'चर्खे के बाद' का शोषण एवं दुखांत रूप मार्मिक तो है किन्तु 'हड़ताल' की ईप्सित-चिन्तना[4] ने उसकी सहजता को संगत नहीं रहने दिया। 'शशि' की करुण कहानी कहानी से अधिक संस्मरण बनकर प्रात्ययिकता को झकझोर देती है—अपेक्षाकृत साधारण कहानी 'बाँहों के घेरेः गर्दन की मजबूरियाँ' नेहा के अवसान में 'शशि' से प्रेरित लगती है। 'पुरुष के पूर्वप्रिया एवं पत्नी को निष्ठापूर्वक-संवेदनपूर्वक परितुष्ट करने का अविस्मरणीय चित्रण प्राप्त होता है। 'राम-रहीम' सांप्रदायिक-सौमनस्य का प्रभावी अभिलेख है। गंगाप्रसाद मिश्र प्रथम श्रेणी के कहानीकार हैं—कमलेश्वर के स्तर की प्रतिबद्धता, साहित्य को किसी धड़े से न जड़ने तथा प्रशासनिक शिक्षा-सेवा के स्थानान्तरणों इत्यादि में व्यस्त-स्रस्त रहने के कारणों से उनका यथासमय यथेष्ट आकलन नहीं हो सका।

जगदीशचन्द्र माथुर

'कोणार्क' के नाट्यकार', भोर का तारा' के एकांकीकार तथा 'परम्पराशील नाट्य' (रामलीला, रासलीला इत्यादि लोकनाट्य) के नाट्याचार्य स्व. जगदीशचन्द्र माथुर (1917 ई. खुर्जा, बुलन्दशहर, उ. प्र.) मूलतः स्वच्छन्दतावादी सर्जक थे। यद्यपि 'रीढ़ की हड्डी' एकांकी में उन्होंने हास्य-व्यंग्य की प्रभावी सृष्टि की है तथापि उनकी मूल रुचि गहन-गम्भीर थी। अंग्रेजी के एम. ए. तथा आई. सी. एस.[5] उच्चाधिकारी होने के कारण उनकी प्रस्तुति साधार एवं सूक्ष्म होती है जैसा कि 'कोणार्क' से स्पष्ट है जिसके पीछे गहरा

---

1. वैसे, अमर अभिनेता स्व. अशोक कुमार एवं उनके अनुज स्व. अनूपकुमार एवं उनके अनुज विलक्षण कलाकार एवं अमर पार्श्वगायक किशोरकुमार ने भी खंडवा को महान् गौरव प्रदान किया है। किशोरकुमार को खंडवा से इतना प्रेम था कि वे स्वयं 'खंडवावाला' कहते थे। उनकी इच्छा के अनुसार उनकी अंत्येष्टि खंडवा में की गई।
2. अंग्रेज़ में मूल अथवा अन्य पाश्चात्य भाषाओं की अनूदित कहानियों का।
3. प्रेमचन्द की 305 कहानियों में कम-से-कम 50 पर बांग्ला, रूसी, फ्रेंच, अंग्रेज़ी इत्यादि की कहानियों का प्रभाव शोध का विषय है। किन्तु महान् कहानीकार प्रेमचन्द अपने ऊपर पड़े प्रभाव को पचाकर एकदम भारतीय कर देते थे (जैसे 'दो बैलों की कथा' में)। उपन्यासों पर भी यही बात लागू होती है (जैसे 'रंगभूमि', 'कायाकल्प' इत्यादि में)। उनकी तत्त्वतः अमौलिक रचनाएँ भी वस्तुतः मौलिक हैं।
4. विशफुल-थिंकिंग।
5. अंग्रेज़ी जमाने की 'इंडियन सिविल सर्विस' जो अब केंचुल बदलकर 'इंडियन एड्मिनिस्ट्रेटिव सर्विस' (आई.ए.एस.) के रूप में दृग्गत होती है। नागनाथ का नाम साँपनाथ हो गया है!

अनुसन्धान विद्यमान है। मंच-निर्देश से भाषा-शैली तक सर्वत्र नाट्यकार कोणार्क-काल (13वीं शताब्दी) का उत्कल (कलिंग) साकार कर देता है—भले ही 'वस्तु'-गत स्वच्छन्दतावादी कलाकार-गौरव-प्रतिष्ठापन कल्पित हो। व्यक्तिगत रूप से मैं ऐतिहासिक रचना में कल्पना के अतिरेक का विरोधी हूँ तथा यह मानता हूँ कि रचनाकार का प्रमुख दायित्व संबद्ध युग का साक्षात्कार कराना है, उस पर अपने युग को लादना नहीं, उस पर अपना विचार या भाव थोपना नहीं। किन्तु 'कोणार्क' की कलाकार की विद्रोहवृत्ति प्रभावी अवश्य है। 'भोर का तारा' जैसे एकांकी अतिभावुक होते हुए भी कवित्त्वपूर्ण हैं, इसमें सन्देह नहीं। नाट्यकार जगदीशचन्द्र माथुर अपनी कल्पना एवं अपने कवित्व के कारण लघु-प्रसाद कहे जा सकते हैं (और यह एक महान् उपलब्धि है)! प्रसिद्ध नाटक-पंडित स्व. डॉ. दशरथ ओझा ने उनके 'प्रथमत्व' को स्वीकार करते हुए (जुगलबन्दी में) विधा का विशद विवेचन किया है। माथुर इस गौरव के अधिकारी थे। डॉ. नरनारायण राय ने 'जगदीशचन्द्र माथुर की नाट्य सृष्टि' में उनके समग्र नाट्यकार-एकांकीकार रूपों तथा 'कोणार्क': रंग और संवेदन' में उनकी प्रतीक-रचना का अच्छा विवेचन किया है। माथुर हिन्दी के श्रेष्ठतम् नाट्यकारों एवं एकांकीकारों में अपना ऐतिहासिक महत्त्व स्थापित कर चुके हैं।

डॉ. देवराज[1]

'प्रणयगीत' (1939 ई.), 'जीवनरशिम' (1948 ई.), 'धरती और स्वर्ग' (1954 ई.), 'उर्वशी ने कहा था' (1960 ई.), 'इतिहास-पुरुष' (1965 ई.), 'इला[2] और अमिताभ' (1972 ई.), 'सुबह के बाद' (1975) एवं 'आहत आत्माएँ', (1978) इत्यादि के कवि, 'पथ की खोज' (1951 ई.), 'बाहर भीता' (1954 ई.—द्वितीय संस्करण), 'भीतर का घाव' (1970 ई.), 'रोड़े और पत्थर' (1955 ई.), 'अजय की डायरी' (1960 ई.), 'मैं, वे और आप' (1969 ई.) 'दोहरी आग की लपट' (1973 ई.) एवं 'दूसरा सत्र' (1978 ई.) इत्यादि के उपन्यासकार, 'संस्कृति का दार्शनिक विवेचन' (1956 ई.) के चिन्तक, एवं 'भारतीय संस्कृति': महाकाव्यों के आलोक में' (1960), 'साहित्य-चिन्ता' (1950 ई.), 'आधुनिक समीक्षा' (1954 ई.), 'प्रतिक्रियाएँ' (1966 ई.), 'छायावाद : उत्थान, पतन, पुनर्मूल्यांकन' (1975 ई.) एवं 'साहित्य समीक्षा और सांस्कृतिक-बोध' के आलोचक तथा 'फिलॉसॉफी ऑफ़ कल्चर' (1963 ई.), 'द माइंड एंड स्पिरिट ऑफ इण्डिया' (1967 ई.), 'हिन्दुइज़्म एवं द क्रिश्चिएनिटी', 'हिन्दुइज़्म एण्ड द मॉर्डन एज' (1975 ई.) इत्यादि के अंग्रेजी-ग्रन्थकार स्व. डॉ. देवराज (1917 ई.) ने सांस्कृतिक-नास्तिकता एवं उदार-व्यक्तिवाद की दृष्टि से हिन्दी साहित्य को नव्य विचार-भंगिमाओं से सम्पन्न किया है। उनका पूरा नाम देवराज नन्दकिशोर है।[3] लखनऊ विश्वविद्यालय में दर्शन के आचार्य रहे हैं।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में डॉ. देवराज का स्मरण 'अजय की डायरी' के उपन्यासकार के रूप में बहुत दिनों तक किया जाएगा, क्योंकि इनमें नर-नारी के मध्य सांस्कृतिक-अभिरुचि या बौद्धिकता की अवस्थिति का परीक्षण तो किया ही गया है नायक के अन्तर्द्वन्द्व का सफल चित्रण भी प्राप्त होता है—मैं 'नज़ाक़त-नफ़ासत' नहीं, 'मर्दागनी' को 'त्यागपत्र' (जैनेन्द्र) का केन्द्रबिन्दु मानता हूँ और इसी बिन्दु के कारण देवराज को लघु-जैनेन्द्र कह सकता हूँ। डॉ. देवराज का आलोचक-रूप 'छायावाद : उत्थान, पतन, पुनर्मूल्यांकन' के कारण कभी-कभार चर्चित होता रहेगा, किन्तु इसमें वे फ्रायड के फेर में नाहक ही पड़ गए हैं—यह भूल गए कि फ्रायड पागलों-अधपागलों-कुंठितों का चिकित्सक था जो बुढ़ापे में अपने कई निर्णयों के लिए पछताया भी था। छायावादी कविता में रीतिकालीन कविता की पुनरावृत्ति देखना विकास-प्रक्रिया की अवहेलना के साथ 'वस्तु' की उपेक्षा करना भी है। डॉ. देवराज का कवि-रूप अस्मितामूलक न होकर प्रतिक्रिया-चलित है—वे ख्यात या लोकप्रिय कवियों या ग्रन्थों की प्रतिक्रिया में लिखते हैं जिसमें मौलिकता का असली रूप नहीं खिल पाता है।

परस्पर-विरोध मानव की एक पहचान है, किन्तु डॉ. देवराज में वह अत्यधिक है। एक ओर वे साहित्य के सांस्कृतिक आधार का प्रतिपादन करते हैं, दूसरी ओर पाश्चात्य प्रभाव से ऊभचूभ लगते हैं—यहीं नहीं, अंग्रेज़ी की ठोंकाठाँकी से आतंकित करते-से लगते हैं। एक ओर वे बुद्धिवाद का प्रतिपादन करते हैं, दूसरी ओर निर्यातवादी लगते हैं। एक ओर वे मनोवैज्ञानिक-आस्था का समर्थन करने लगते हैं, दूसरी ओर आस्था-प्रतीकों (कृष्ण प्रभृति) के यथार्थ-चित्रण पर जोर डालते हैं। 'गाँधीवाणी : वेदना और बोध' में वे लगते

---

1. उपन्यास-मनीषी डॉ. देवराज उपाध्याय एवं कविसम्मेलनी हास्यकवि स्व. देवराज 'दिनेश' समनामी हैं।
2. 'बौद्धिकरस' (1964 ई.) संग्रह की महाकविता 'इल और इला' का स्मरण आ गया!
3. नन्दकिशोर देवराज भी।

ही नहीं। उनकी कविता कलाहीन तो है ही, प्रवाहहीन भी है। उनका चिन्तन बासी लगता है, वे उसमें ताज़गी नहीं भर सके। परिणाम यह होता है कि उनके कृतित्व का एक सशक्त समाहित प्रभाव निष्पन्न नहीं हो पाता। किन्तु अपने विराट् समाहार में डॉ. देवराज एक समादणीय ग्रन्थकार हैं तथा उनका युगपत् प्रभाव विवेचित होना चाहिए।

मुक्तिबोध

गजानन माधव मुक्तिबोध (1917-64 ई.) अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' (1943 ई.) के प्रथम कवि हैं। सप्तकपरम्परा में अज्ञेय के बाद उनको सर्वोपरि स्थान प्रदान किया जा सकता है। यद्यपि अज्ञेय घोर व्यक्तिवादी हैं और मुक्तिबोध घोर समाजवादी (साम्यवादी या मार्क्सवादी) तथापि प्रयोगवादी शैली-शिल्प दोनों को संपृक्त तो नहीं किन्तु संबद्ध अवश्य करता है। प्रयोगवादी कविता के इतिहास में अज्ञेय एवं मुक्तिबोध को सर्वोपरि स्थान प्राप्त है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के स्वातन्त्र्योत्तर कवियों में भी इन दो का स्थान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि दिनकर और बच्चन 1947 ई. से पूर्व ही विख्यात हो चुके थे।

मुक्तिबोध का कवितासंग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' के कारण एक स्थायी महत्त्व प्राप्त हुआ है, क्योंकि उनका आलोचना-ग्रन्थ 'कामायनी : पुनर्विचार' ध्वंसात्मक मात्र होने के कारण महत्त्वहीन है, 'उर्वशी' की ध्वंसात्मक आलोचना का भी कोई महत्त्व नहीं, क्योंकि वह सामन्तवाद-बूर्ज्वावाद, नेहरूवाद पर अत्यन्त संकीर्ण मार्क्सवादी प्रहार करती है।

'तार सप्तक' के कवि के रूप में वे थोड़ा-बहुत जाने-माने जाते थे। किन्तु उनकी प्रसिद्धि का प्रमुख कारण उनकी भयाहव रुग्णवस्था में वरिष्ठ कवियों (मैथिलीशरण, बच्चन इत्यादि) द्वारा प्रधानमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री से उच्च चिकित्सा का वह अनुरोध था जो स्वीकार कर लिया था, जैसाकि 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' के शमशेरबहादुर सिंह द्वारा लिखित 'एक विलक्षण प्रतिभा' शीर्षक परिचय के आरम्भ से ही स्पष्ट है, ''एकाएक क्यों सन्'' 64 के मध्य में गजानन माधव मुक्तिबोध विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हो उठे? क्यों धर्मयुग, ज्ञानोदय, लहर, नवभारत टाइम्स—प्रायः सभी साप्तहिक, मासिक और दैनिक उनका परिचय पाठकों को देने लगे और दिल्ली की साहित्यिक हिन्दी दुनिया में एक हलचल सी आ गई?'' आदर्शवादी मैथिलीशरण और हालावादी बच्चन इत्यादि ने नेहरूवादी शास्त्री को प्रभावित किया तथा मार्क्सवादी मुक्तिबोध को पूँजीवादी-चिकित्सा प्राप्त हो गई। वाद कितने जुड़े हुए हैं! यह सत्य है कि मुक्तिबोध का साहित्यिक महत्त्व उनके कृतित्व के कारण है किन्तु उनकी ख्याति उक्त आकस्मिक् घटना से जुड़ी हुई है। कभी-कभी संयोग ख्याति के कारण बन जाते हैं; कभी-कभी ग्रन्थ-विमोचन। संयोग ने मुक्तिबोध का साथ दिया, ग्रन्थ-विमोचन का साथ दिया, ग्रन्थ-विमोचन ने रेणु का! सरकार कवि नहीं बना सकती, किन्तु उन्हें बढ़ा सकती है।

मुक्तिबोध उपनाम नहीं जाति है। इनके किसी पूर्वज ने 'मुग्ध-बोध' या 'मुक्त बोध'[1] शीर्षक आध्यात्मिक ग्रन्थ रचा था तथा तब से यह वंशसूचक विशेषण बन गया।

'अनुभूति'-पक्ष से मार्क्सवादी और अभिव्यक्ति-पक्ष से इलिअॅटवादी होने के कारण मुक्तिबोध को प्रगतिवादियों में भी प्रचार-प्रसार मिला और प्रयोगवादियों में भी। उन्हें बिना पढ़े या समझे ही प्रशस्तियों से लाद दिया गया।

निस्सन्देह मुक्तिबोध ने इलिअॅट (एॅलिअॅट) से स्पेंडर तक बहुतों से बहुत-कुछ लिया है किन्तु वे मौलिक हैं। अज्ञेय निपुणता एवं अभ्यास के कवि हैं। मुक्तिबोध भाषणात्मक हैं, गद्यात्मक हैं, शुष्क हैं। अज्ञेय कलात्मक है, काव्यात्मक हैं, सरस हैं (वार्द्धक्य में वे रस एवं साधारणीकरण का मण्डन करने लगे थे)। अज्ञेय का जीवन-बोध मुक्तिबोध के जीवन-बोध से स्फीततर भी है, गहनतर भी। मुक्तिबोध का काव्य गरिमा में निराला एवं क्रान्तदर्शिता में दिनकर का स्मरण करा सकता है, यद्यपि महाप्राण का रस एवं संगीत उनमें नहीं है, उपराष्ट्रकवि[2] का प्रभाव एवं साधारणीकरण उनमें नहीं है। वे परिसर-कवि हैं, जन-कवि नहीं और ऐसा तब है जब वे जनवादी थे, क्रान्तिवादी थे।

---

[1] शमशेरबहादुर सिंह ''दास-बोध की तरह का, या जवाब में?'' का प्रश्न करते हैं जो उन्हीं के शब्दों में इस ग्रन्थ के ख़िल्जीकाल (1290-1320) से संबद्ध होने के कारण एक हास्यास्पद भूल बन जाता है क्योंकि दासबोध के प्रणेता समर्थ गुरु रामदास शिवाजी (1627-80 ई.) के गुरु थे। ऐसी स्थूल भूलें हिन्दी की बड़ी क्षति करती हैं। संस्कृत में 'मुग्ध' का अर्थ 'मूर्ख' होता है तथा 'मुग्ध-बोध' शीर्षक सवाल-जवाब से अलग विनम्रता-निष्पन्न है जिसके कारण उसे मुक्तिबोध का गौरव प्राप्त होगा जो उचित था।

[2] दिनकर स्वयं को 'डिपुटी राष्ट्रकवि' कहा करते थे। दिनकर और सोहनलाल द्विवेदी उपराष्ट्रकवि हैं।

क्रान्तिवाद

क्रान्तिवाद, मुक्तिबोध का प्रथम परिचायक है। इस दृष्टि से वे दिनकर के अनुज हैं, यद्यपि उनमें दिनकर की सांस्कृतिक ग्राह्यता का अभाव है क्योंकि वे स्थान-स्थान पर धर्म, देवी-देवताओं, परम्पराओं का परिहास एवं प्रत्याख्यान करते हैं। उनका क्रान्तिवाद आक्रोशमूलक है, चिन्तनमूलक नहीं। इस कारण से वे अराजकतावादी प्रतीत होने लगते हैं। लेकिन अराजकतावादियों के कठोर आलोचक थे। सोवियत संघ के निर्माता स्टालिन तक धर्म की 'वैयक्तिक' महत्ता स्वीकार करते थे। एसिआ[1] के सर्वश्रेष्ठ क्रान्तिकारी माओत्से-तुंग की वृद्धावस्था से लाभ उठाकर उनकी अभिनेत्री पत्नी ने जो अराजकतामूलक सांस्कृतिक आन्दोलन चलाया था उससे चीन की कड़ी क्षति हुई थी। अतएव, मार्क्सवाद एवं लेनिनवाद के गहन चिन्तन-धरातल पर मुक्तिबोध का त्वरितवादी अराजकतावादी क्रान्तिवादी मूल्यवान प्रतीत नहीं होता। हिन्दी के क्रान्तिवादी कवियों में वे माखनलाल, नवीन एवं दिनकर की परम्परा में एक विशिष्ट स्थान के अधिकारी हैं; यद्यपि माखनलाल राजनीतिहीन आदर्शवादी क्रान्ति चाहते हैं, नवीन अस्पष्ट परिवर्तन, दिनकर भारतीयतामूलक। मुक्तिबोध या मार्क्सवादी परिवर्ती कवियों में धूमिल के आग लगा दो का स्वर प्रधान है क्योंकि उनके यहाँ क्रान्ति की कोई साफ़ तस्वीर नहीं मिलती। धूमिल की दृष्टि युग के धुयें से धूमिल हो गई है एवं 'अनुभूतियों की अजन्ता' के क्रान्ति-गायक कैलाश 'कल्पित' आदर्शवादी हैं। किन्तु उसमें ऊर्जा अवश्य है :

चिपकाता कौन है
मकानों की पीठ पर
अहातों की भीत पर
बरगद की अजगरी डालों के फंदों पर
अँधेरे के कंधों पर
चिपकाता कौन है?
चिपकाता कौन है?
हड़ताली पोस्टर
बड़े-बड़े अक्षर
बाँके-तिरछे वर्ण और
लम्बे-चौड़े घनघोर
लाल-नीले भयंकर
हड़ताली पोस्टर!!

('चाँद का मुँह टेढ़ा है' शीर्षक कविता, 28-29 पृष्ठ)

क्रान्ति की मुसकाती आँखों—
पर, लहराती अलकों में बिंध,
आँगन की लाल कन्हेर[2] खिली।
भूखे चूल्हे के भोले अंगारों में रम,
जनपथ पर मरे शहीदों के
अंतिम शब्दों में बिलम-बिलम,
लेखक की दुर्दम कलम चली।

(जब प्रश्नचिह्न बौखला उठे, पृष्ठ 148)

एकाएक हृदय धड़ककर रुक गया, क्या हुआ!!
नगर से भयानक धुवाँ उठ रहा है,
कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गई।

---

[1] 'एशिया' (ए एस एच आइ वाइ ए) ग़लत लिखा जाता है।

[2] कनेर।

सड़कों पर मरा हुआ फैला ही सुनसान,
हवाओं में अदृश्य ज्वाला की गरमी
गरमी का आवेग।....
कहीं आग लग गई, कहीं गोली चल गई।
(अँधेरे में, पृष्ठ 264-65)

यथार्थवाद

यद्यपि डॉ. पवनकुमार ने ('नवरहस्यवाद और नई कविता') शीर्षक अपने विषय के एकमात्र गम्भीर शोधप्रबन्ध में मुक्तिबोध की कविता में नवरहस्यवाद का सतर्क विवेचन किया है और इसमें सन्देह नहीं कि ऋग्वेदी कुलकर्णी ब्राह्मण के संस्कार उन्हें कभी नकारात्मक तो कभी सकारात्मक, कभी ध्वंसात्मक तो कभी मनोवैज्ञानिक रूपों में कोरा नास्तिक नहीं रहने देते[1] जिसके परिणामस्वरूप कहीं अत्यथार्थवाद तो कहीं नवरहस्यवाद के दर्शन होते रहते हैं; तथापि उनके कृतित्व में ईश्वर इत्यादि पर व्यंग्य एवं प्रहार का कॉमरेडी-फ़ैशन प्रायशः विद्यमान मिलता हैः

....यशस्काय दिक्काल-सम्राट,
तुम कुछ नहीं हो, फिर भी हो सब कुछ!!....
ओ नट-नायक
सारे जगत् पर रोब तुम्हारा है!!
तुमसे जो इनकार करेगा
वह मार खाएगा....
(एक अरूप शून्य के प्रति, पृष्ठ 108)

खूब ऊँचा ज़ीना साँवला
उसकी अँधेरी सीढ़ियाँ....
वे एक आभ्यंतर निराले लोक की।
एक चढ़ना औ' उतरना,
पुनः चढ़ना औ' लुढ़कना,
मोच पैरों में
व छाती पर अनेकों[2] घाव।
बुरे-अच्छे-बीच के संघर्ष
से भी उग्रतर···

किन्तु मुक्तिबोध का यथार्थ द्विधाग्रस्त एवं दुर्बल है क्योंकि वे आस्तिकता की मनोवैज्ञानिक उपयोगिता का निरूपण तो करते ही हैं, यत्र-तत्र-सर्वत्र बुद्ध, ईसा, टॉल्स्टॉय, गाँधी इत्यादि के मूलतः श्रद्धास्पद सन्दर्भ भी प्रस्तुत करते चलते हैं। भारत में राम और कृष्ण, व्यास और मनु, शंकराचार्य और तुलसी 'साम्प्रदायिक' हैं, बुद्ध और महावीर, ईसा और मोहम्मद, कबीर और नानक 'धर्मनिरपेक्ष'! यहाँ का 'धर्मनिरपेक्ष'-हिन्दू, विशेषतः साम्यवादी, केवल मरते समय राम या कृष्ण या दोनों (तत्त्वतः एक) का सहारा लेता है!! कितनी दयनीयता है!!! यदि वे आस्था पर सीधा स्पष्ट, बेलाग़ और बेबाक़ प्रहार करते, महापुरुषों की बैसाखी के बिना चल पाते, तो अधिक निष्ठावान, अधिक सशक्त एवं अधिक प्रभावी होते, यद्यपि यह निर्विवाद है कि धर्म मनुष्य को एक अपरहार्य-अप्रतिवार्य आवश्यकता है तथा इस पर व्यर्थ-प्रहार के बिना भी क्रान्ति की जा सकती है।

---

[1] 'तार-सप्तक' में विशेषतः, 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में सामान्यतः। उनकी रुग्णता एवं मृत्यु उनके सच्चे व्यक्तित्व का परिचय देती है और वही उनके अभिन्न एवं घनिष्ठ मित्र प्रभाकर माचवे के शब्दों में 'बेहोशी, बीच-बीच में कष्ट से कराहते हैं जोर से एक चीख उठती है कभी...राम...राम...राम...राधे-कृष्ण''!

[2] 'अनेक' शुद्ध होता।

कुण्ठावाद

भारत के स्वतन्त्र होने पर राष्ट्र एक विराट् कुंठालोक में परिणत हो गया, क्योंकि सत्ता प्रायः ख्याति-आखेटक तथा समाजवाद-पाखंडक हाथों में केन्द्रित रही। दरिद्रनारायण की चर्चा करने वाले गाँधी को मरना बदा था नई दिल्ली के बिड़ला भवन में! मृत्यु कितनी सत्य होती है। पाकिस्तान मेरी लाश पर बनेगा किन्तु वह बना और वे नाथूराम विनायक गोडसे की गोलियों के आखेट बनने तक स्वखंडनायक का मृत-जीवन जीत रहे—इतने पर भी, आकण्ठ राजनीतिनिमग्न ही रहे! नेहरू एक ओर मार्क्स को कालातीत घोषित करते रहे और दूसरी ओर समाजवाद का राग अलापते रहे—जिससे भारत आर्थिक दोगलेपन के चंगुल में पिस गया। नेहरू विरोधामासों के पुंज थे। मुक्तिबोध में इन दोनो के दौर देखे और असंख्यों के साथ कुण्ठित हो गए।

कवि घुटन और संत्रास से भरे जीवन में कुछ करना तो दूर कुछ ठोस कह तक न पाने के कारण कुंठित हो जाता है (तथा अपनी कायरता या पाखंडवृत्ति को विवृत करने का साहस भी दिखता है):

व्रणाहत पैर को देखकर
भयानक नाचता हूँ
शून्य मन की टीन छत पर गर्म।
हर पल चीख़ता हूँ, शोर करता हूँ
कि वैसी चीख़ती कविता बनाने में लजाता हूँ।

आशावाद

किन्तु मुक्तिबोध क्रान्ति के प्रति, जीवन के प्रति, मानवजाति के प्रति आशावादी अवश्य हैं और उनकी कविता पर यह एक सर्वप्रभावी बिन्दु है :

हमारी हार का बदला चुकाने आयगा
संकल्प-धर्मा चेतना का रक्त-प्लावित स्वर,
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर
प्रकट होकर विकट हो जाएगा!! (भूल-ग़लती, पृष्ठ 3)

सहसा होता है प्रकट एक
वह शक्ति-पुरुष
जो दोनों हाथों आसमान थामता हुआ
आता अत्यन्त निकट
आतुर उत्कट
तुझको कंधे पर बिठला ले जाने किस ओर
न जाने कहाँ व कितनी दूर!!....

यहूदियों की दयनीयता एवं परतन्त्रता ने 'मसीहा' और पैग़म्बर' की जो उदात्त आशावादी कल्पना की थी, उसने ईसा और अहमद (मोहम्मद) की सृष्टि की थी, हिन्दुओं के आशावाद ने अवतारवाद के रूप में उन्हें अजर-अमर बना दिया। इसने ऋषभदेव, परशुराम, व्यास, कृष्ण, बुद्ध इत्यादि को उदात्त-दात्त रूप प्रदान किया। मार्क्स ने राज्यहित, शोषणरहित, प्रपीड़नरहित महान् समाज की आशावादी कल्पना की, जिसने ट्रॉट्स्की, लेनिन, स्टालिन, माओ, हो ची मिह्न, कास्त्रो (कैस्ट्रो) जैसे क्रान्तिकारियों को जन्म दिया तथा संसार को ही बदल दिया, नीत्शे ने अतिमानव की प्रचण्ड कल्पना की जिसने हिटलर को विकसित किया, जिसके कारण मानव को द्वितीय विश्व युद्ध का वह वरदान मिला जिसने साम्राज्यवाद को नष्ट कर डाला। अब साम्यवाद अपने जन्म एवं विकास की स्थली यूरोप तथा अन्यत्र भी चुक-सा रहा है अथवा अपनी जड़ता त्यागकर चेतन दर्शन बन रहा है। दोनों जर्मनी एक हो गए हैं। नीत्शे पागल हो गए थे। उनसे

अतिमानव-कल्पना में प्रेरित मुक्तिबोध भी पागल हो गए थे। निराला, राहुल, मुक्तिबोध इत्यादि का पागलपन बताता है कि भारत में अभी शोषणहीन, प्रपीड़नहीन, समतामूलक समाज के दर्शन नहीं होंगे! यहाँ अभी प्रेमचन्द के 'गब़न' के देवीदीन खटिक और 'गोदान' के झिंगुरीसिंह ठाकुर के नेतृ-पाखण्ड और शोषण के अनुमान ही सही सिद्ध होते रहेंगे।

आकलन

मुक्तिबोध की कविता एक हताश शक्ति की पुंजीभूत अभिव्यक्ति है। उनकी भाषा का दुर्दमनीय प्रवाह निराला का स्मरण कराता है, यद्यपि निराला का लालित्य एवं संगीत उसमें नहीं मिलता। प्रयोगवादी कवियों में किसी की भाषा में वह प्रखर प्रवाह एवं प्रचण्ड पराक्रम दृग्गत नहीं होता जो मुक्तिबोध की भाषा में। ओरांगउटांग, नेब्युला[1], स्टील, पूँछ, बरगद इत्यादि में प्रतीक तथा क्रान्ति, क्रान्तिपुरुष इत्यादि में उदात्त का उच्चस्तरीय प्रयोग उन्हें एक गौरवशाली कलाकार का रूप प्रदान करता है। अज्ञेय को छोड़कर अन्य प्रयोगवादी उनके सामने बौने लगते हैं, चाहे वे उनके सदृश मार्क्सवादी हों या उनसे भिन्न व्यक्तिवादी। बिम्बधर्मिता में उनकी कविता कहीं भी विपन्न नहीं है। नेब्युला उन्हें विशेष प्रिय है :

नभ मेरे हाथों पर आता
मैं उल्का-फूल फेंकता मधुर चन्द्रमुख पर
मेरी छाया गिरती है दूर नेब्यूला में। (एक अंतर्कथा, पृष्ठ 106)

अटूट है लेकिन नींद
आँखें?
धुँधला-सा 'नेब्युला'!! (एक अरूप शून्य के प्रति, पृष्ठ 108)

मुक्तिबोध ने नेब्युला का प्रयोग परमात्मा-परिहास के प्रकरणों में किया है। लम्बी कविताएँ लिखने में वे निराला के सदृश बहुत सफल सिद्ध होते हैं। उनकी जटिल एवं दुरूह समासानुभूति जटिल एवं दुरूह लम्बी कविताओं में ही अभिव्यक्त हो सकती है। उनके नाना आयामी एवं वैश्विक सन्दर्भ उनकी अध्ययनशीलता प्रमाणित करते हैं। 'ब्रह्मराक्षस', 'चाँद का मुँह टेढ़ा है', 'ओ काव्यात्मन् फणिधर', 'चम्बल की घाटी में', 'अँधेरे में' इत्यादि उनकी कविताएँ समूचे हिन्दी-साहित्य की निधियाँ हैं। तेंतालीस लम्बे और भरे-पूरे पृष्ठों में फैली 'अँधेरे में' उनकी सर्वक्षेष्ठ कविता मानी जाती है। प्रतीक, बिम्बालेखन, उदात्त एवं प्रवाह में अद्वितीय यह क्रान्तिकविता आधुनिक साहित्य की एक उपलब्धि है, जिसकी तुलना निराला, पन्त, माखनलाल, अज्ञेय और प्रसाद कृत क्रमशः 'राम की शक्ति पूजा', 'परिवर्तन', 'कैदी और कोकिला', 'असाध्य वीणा' और 'प्रलय की छाया' जैसी कुछेक कविताओं से ही की जा सकती है। उपनिषद् के ब्रह्म-से क्रान्तिपुरुष की परिकल्पना, शोषणशक्ति, क्रान्तिचिन्तन, ध्वंस, किन्तु अभी क्रान्तिपुरुष की ही तलाशः अभी तक 'अँधेरे में'; यह कविता ही नहीं, इतिहास भी है! 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' कविता अपने शीर्षक में ही पुरातन-अस्वीकृति एवं परम्परा-परिहास की व्यंजक हैः नवकाव्य-नवशिल्प-नवक्रान्ति-नवयुवक की प्रतीक। यह भी क्रान्तिकविता है। जैसे 'अँधेरे में' के अन्त में क्रान्तिपुरुष की 'खोज' है, वैसे ही 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' के अन्त में ''सुबह होगी कब?'' का प्रश्न। ये दोनों मुक्तिबोध की सर्वश्रेष्ठ कविताएँ हैं, जिनमें विद्रोह है, विप्लव है, विध्वंस है किन्तु परिणाम नहीं। मुक्तिबोध के कवि में विद्रोह है, विप्लव है, विध्वंस है किन्तु कोई एक सुव्यवस्थित, समग्र प्रेरक निष्पत्ति नहीं, परिणति नहीं, प्रतिफलन नहीं।

इन्दिरा गाँधी

भारत के प्रधानमन्त्रियों में सर्वाधिक हिन्दी-प्रेमी—हिन्दीहितैषी इन्दिरा गाँधी (16 नवम्बर, 1917—31 अक्टूबर, 1984, जन्म प्रयाग, हत्या दिल्ली) के कारण विभिन्न कार्यालयों में सहस्त्रों हिन्दी-अधिकारी नियुक्त हुए, आई. ए. एस. परीक्षाओं में हिन्दी विषय न लेनेवालों हेतु हिन्दी-प्रश्नपत्र अनिवार्य किया गया तथा 14 सितम्बर, 1941 को संविधान परिषद् द्वारा देवनागरी लिपि में लिखित

---

[1] प्रतिबिम्ब के कारण चमकीला (या अँधेरा) क्षेत्र, दूर के तारों के समूह के कारण उत्पन्न प्रकाशमय क्षेत्र, आच्छादित, अव्यवस्थित, घना, पंकिल इत्यादि अनेकार्थी शब्द।

हिन्दी को भारत की राजभाषा स्वीकार करने के उपलक्ष्य में प्रतिवर्ष 14 सितम्बर को मनाया जाने वाला हिन्दी-दिवस विशेष प्रचलित एवं लोकप्रिय हुआ। 14 दिसम्बर, 1949 को संविधान परिषद् ने एकमात्र अर्थात् सर्वसम्मत प्रस्ताव पारित किया था। किसी गदहा-छाप अनुवादक ने उसे एक के बहुमत से लिख मारा। एक मत या वोट से तो विदेशी (अन्तर्राष्ट्रीय) अंकों वाला प्रस्ताव पारित हुआ था; वह भी तब जब टंडन जी द्वारा व्हील-चेअर पर लाए गए सदस्य वाले दिन नहीं दूसरे दिन! अनेक नेताओं की तुलना में इन्दिरा गाँधी अपेक्षाकृत अधिक स्वस्थ-स्वच्छ हिन्दी बोलती थीं, नेहरू की तरह उर्दू-भरी नहीं। संस्कृत के प्रति उन्हें अनुराग था। "श्रम एवं जयते" का उनका संस्कृत-नारा नेहरू के "आराम हराम है" के फ़ारसी नारे से गम्भीरतर है। उनके समय 'आर्य भट्ट' एवं 'भास्कर' उपग्रह-नामकरण तथ दक्षिणी ध्रुव (अंटार्क्टिका) के 'दक्षिण-गंगोत्री' शिविर-नाम सांस्कृतिक गरिमा के प्रतीक हैं।

महादेवी वर्मा को ज्ञानपीठ पुरस्कार दिलाने के लिए उन्होंने साहू-जैन को ज्ञानमुख बनाया (1942 ई. में प्रकाशित 'दीपशिखा' के बाद महादेवी ने ज्ञानपीठ-पुरस्कार के अनुरूप कोई रचना न लिखी थी); इस अद्वितीय उत्सव में ब्रिटेन की प्रधानमन्त्री मार्गरेट थैचर की उपस्थिति ऐतिहासिक रही। ज्ञानपीठ का कोई समारोह इतना गरिमामय नहीं हो पाया!

यद्यपि आतंकवाद के उदय एवं राजनीति में भ्रष्टाचार (2005 ई. में के. जी. बी. से पैसा पाने के खुलासे तक) का वृद्धि के कारण इतिहास इन्दिरा गाँधी की आलोचना कर सकता है, तथापि बांग्लादेश की जननी एवं सिक्किम का भारत में विलय करने वाली नेत्री के रूपों में सर्वाधिक सफल प्रधानमन्त्री के रूप में अजर-अमर रहेंगी। उनको चन्द्रगुप्त मौर्य के स्तर का नेता माना जाएगा—संयोगात् उनके चाणक्य द्वाराकाप्रसाद मिश्र हिन्दी-कवि थे! उनके एक अन्य परामर्शदाता उमाशंकर दीक्षित भी हिन्दी प्रेमी रहे। इन्दिरा के समय में भारत खाद्यान्न-आत्मनिर्भर हुआ, अणुबल-सम्पन्न हुआ, अन्तरिक्ष-युग में प्रवेश किया। कोई अन्य प्रधानमन्त्री उनके तुल्य सफल नहीं हुआ।

इन्दिरा के समय अज्ञानवश या हीनभाववश या दासतासंस्कारवश हिन्दी का परिहास करनेवालों की संख्या कम हो गई, क्योंकि कार्यालयों में हिन्दी का प्रवेश हो गया और अपनी जड़ों में मजबूत हिन्दी-अधिकारी इत्यादि से पराकीयतावादी तत्त्व प्रभावित हुए। इस अत्यन्त ठोस कारण से इन्दिरा गाँधी का नाम हिन्दी साहित्य के इतिहास में आदरपूर्वक लिया जाने योग्य बन गया है।

यद्यपि विदेश मन्त्री से प्रधानमन्त्री तक के रूपों में अटलबिहारी वाजपेयी तथा प्रधानमन्त्री के रूपों में चन्द्रशेखर और पी. वी. नरसिंहराव ने विदेशों में हिन्दी-भाषण देकर राष्ट्रीय अस्मिता की दृष्टि से प्रशस्य कार्य किए हैं, हिन्दीज्ञानविहीन देवेगौड़ा (देवगौड़ा) ने 15 अगस्त, 1996 ई. को लालकिले की प्राचीर से लिखित हिन्दी-भाषण देकर राष्ट्रीय अस्मिता की रक्षा की थी, तथापि हिन्दी-हित की दृष्टि से इन्दिरा गाँधी की समता नहीं।

प्रभाकर माचवे

कविता, कहानी, उपन्यास, निबन्ध, ललितनिबन्ध[1], संस्मरण, रेखाचित्र, आलोचना से नाटक, व्यंग्य, यात्रावृत्त, रिपोर्ताज[2] (तात्कालिकी) तक प्रायः असंख्य विधाओं के विविध घाटों का पानी पीने तथा मराठी और अंग्रेज़ी से अनुवाद, अनेक पत्रिकाओं के सम्पादन की पैज करने वाले बहुभाषाविद् डॉ. प्रभाकर[3] माचवे (26 दिसम्बर, 1917—17 जून, 1991, जन्म ग्वालियर, निवास दिल्ली, निधन इन्दौर) ने प्रतिभा की न्यूनतम की पूर्ति अध्यवसाय की प्रचुरता से की तो है, किन्तु किसी भी विधा पर कोई छाप नहीं छोड़ सके।

'तारसप्तक' के एक कवि के रूप में माचवे की याद काफ़ी समय तक की जा सकती है, किन्तु उनकी कविता में किसी मौलिकता या शिल्प-वंकिमता के दर्शन नहीं होते। 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग 2 में रमेशचन्द्र शाह ने माचवे की रचनाओं का यह शाहाना[4] विवरण

---

[1] नव्यताव्यमोह की प्रतीक विधा, वर्गीकरण की प्रतीक विधा-क्या 'निबन्ध' अललित था? क्या 'दाँत' (प्रतापनारायण मिश्र) या 'सब मिट्टी हो गया' (माधवप्रसाद मिश्र) ललित नहीं है? प्रतापनारायण, माधवप्रसाद, बालमुकुंद गुप्त, चतुर्भुज औदीच्य, यशोदानन्दन अखौरी, गुलाबराय इत्यादि विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय इत्यादि के योग्यतर पूर्वज थे। बालकृष्ण भट्ट, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा इत्यादि ने भी ललितनिबन्ध रचे हैं।

[2] मिथक, कामदी, त्रासदी इत्यादि के सादृश नया पाश्चात्य प्रयोग।

[3] डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय समनाभी हैं।

[4] कहीं 'ई.' कहीं 'वैसे ही'! सृजनात्मक-व्याख्यात्मक विधाओं का गुड्डमगड्ड! स्वतन्त्र शाही शैली—क्या फ़र्क पड़ता है।

दिया हैः ''तारसप्तक के कवियो में थे। उसके बाद दो कवितासंग्रह और प्रकाशित हुए, 'अनुक्षण' (1959) और 'मेपल' (1966)। पहला निबन्धसंग्रह 'खरगोश के सींग' 1950 में छपा था, दूसरा 'बेरंग' 1955 ई.। समीक्षा-पुस्तकों का विवरण इस प्रकार हैः 'व्यक्ति और वाङ्मय' (1952), 'समीक्षा की समीक्षा' (1953), 'सन्तुलन' (1954), 'हिन्दी-निबन्ध' (1955), 'मराठी और उसका साहित्य' (1956), 'नाट्य-चर्चा' (1957) 'हिन्दी-साहित्य की कहानी'[1] (1957)। उपन्यासः 'परन्तु' (1951) 'एक तार' (1952), 'द्वाभा' (1955), 'साँचा'। एक कहानीसंग्रह भी हैः 'संगीनों का साया' जो 1943 में प्रकाशित हुआ था। इसके अलावा कुछ ग्रन्थों का सम्पादन भी किया है।'' समयसीमा के कारण इस विवरण में 'विश्वकर्मा' खंडकाव्य का उल्लेख नहीं हो पाया जिसमें कथा को नई अर्थवत्ता के साथ प्रस्तुत किया गया है तथा उनकी सर्वोत्तम रचना मानी गई है। माचवे 'सन्दर्भ-भारती' त्रैमासिक (कलकत्ता) के सम्पादक भी रहे। आकाशवाणी में भी कार्य किया। साहित्य अकादमी के सचिव भी रहे।

प्रभाकर माचवे का स्मरण ललितनिबन्धकार एवं रेखाचित्र के रूपों में ही किया जाएगा, क्योंकि अन्य विधाओं में सृजन असाधारण नहीं है। डॉ. मारुतिनन्दन पाठक ने डॉ. प्रभाकर माचवेः सौ दृष्टिकोण' ग्रन्थ सम्पादित कर आलोचना एवं संस्मरण का संगम प्रस्तुत किया है। डॉ. तालकेश्वरसिंह के अनुसार, ''संस्मरण'' तथा 'हमारे आराध्य' (बनारसीदास चतुर्वेदी), 'अतीत के चलचित्र' एवं 'स्मृति की रेखाएँ' (महादेवी वर्मा), 'माटी की मूरतें' (रामवृक्ष बेनीपुरी), 'क्या गोरी क्या साँवरी' और 'रेखाएँ बोल उठीं' (देवेन्द्र सत्यार्थी), 'जो न भूल सका' (भदंत आनन्द कौसल्यायन), 'पदचिह्न' (शान्तिप्रिय द्विवेदी) प्रभृति संस्मरण-साहित्य की परम्परा का विकास होकर भी 'डॉ. प्रभाकर मावचेः सौ दृष्टिकोण' एक अलग मानक है।'[2]

कविता का एक उदाहरण प्रस्तुत है :

कविता अब[3] भक्ति-आर्द्र आरती-प्रभाती नहीं
कविता अब अश्रु-सफल विरहिन की पाती नहीं[4]
कविता अब मुट्ठी भर लोगों की थाती नहीं[5]
कविता अब केवल मधुशाला-मधुमाती नहीं
कविता अब संगत का साज़ नहीं
कविता अब गले की सुरीली आवाज़ नहीं
कविता अब शब्दों की कल्पना या साज़ नहीं
कविता अब केवल चीख होकर नाराज़ नहीं[6]
कविता अब विषय की मुहताज़ नहीं
कविता अब स्वयम्मय है
कविता अब निर्भर[7]
अविनय[8] निस्संशय यह है।

---

1. विल ड्यूराँ की 'स्टोरी ऑफ़ फिलॉसॉफी' की तर्ज़ पर। 'ए टेल ऑफ टू सिटीज़' (चार्ल्स डिकेंस) भी याद आती है।
2. 'प्रकर' दिल्ली (अप्रैल, 1990)
3. कविता अच्छी है, किन्तु 'अब का वीरदर्य बहुत सार्थक–'तब' से 'अब' को एकदम अलग करना अदार्शनिक, अनैतिहासिक एवं अयथार्थपूर्ण है। तारुण्य में ऐसे उबाल आते हैं, जिनका मूल अहं में रहता है।
4. 'नई' नारी को जड़ बनाया जा रहा है! अश्रु निरंतन है। अश्रु चिरंतन धन है।
5. 'अब' कविता के पाठक बेहद कम हो गए हैं, प्रकाशक उससे भी कम। कविता पहले ''मुट्ठी भर लोगों की थाती'' नहीं रही, अब अवश्य बना दी गई है।
6. पंक्ति को निरर्थक तुकबन्दी ने बेहद कमजोर कर दिया है।
7. कविता कभी भयभीत नहीं रही। चन्द्र, कबीर, तुलसी, भूषण, सूदन, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, माखनलाल चतुर्वेदी, नवीन, सुभद्रा इत्यादि सर्वाधिक 'निर्भय' थे।
8. 'अविनय'–को गुण मानना विचित्र ही है!

गंगारत्न पांडेय

भौतिकता तथा आध्यात्मिक के स्वस्थ समन्वय से सम्पन्न रसात्मक तथा कलात्मक महाकाव्य 'नचिकेता'[1] के चिरस्मरणीय स्रष्टा, 'उन्मेष' में गीत से नयी कविता तक के अनेक आयामों पर मौलिक सर्जन करनेवाले कुशल रचनाकार, 'तेरे सान्निध्य में' के रहस्यवादी सॉनेटकार कविरत्न गंगारत्न पाण्डेय (27 अप्रैल, 1998 पड़री कलाँ[2], जनपद उन्नाव, निवास लखनऊ, प्रवास अमेरिका) ने 'काया-कथा'[3] शीर्षक श्रेष्ठ कहानीसंग्रह, 'तेते पाँव पसारिए जेती लाँबी सौर' शीर्षक जनसंख्या-समस्या पर आधृत उपन्यासिका[4], 'कही अनकही' शीर्षक ललित निबंध्र-संग्रह लिखकर बहुमुखी प्रतिभा का परिचय भी दिया है। 'मेवाड़-मुकुट' खंडकाव्य 'अकथ कहानी प्रेम की' एवं 'कसौटी' उपन्यासिकाएँ तथा 'नए संदर्भों में' कवितासंग्रह उनके अन्य प्रकाशित ग्रंथ हैं। उन्होंने सफल अवधी-लोकगीत भी रचे हैं। उन्होंने अनेक अंग्रेज़ी-ग्रथों के हिंदी अनुवाद भी किए हैं। 'रंग अपने-अपने' कविता-संकलन का सम्पादन[5] भी उल्लेखनीय है, क्योंकि इसमें उनकी भी चुनींदा कविताएँ तो उपलब्ध हैं।

29 जुलाई, 1989 को लखनऊ के एक साहित्यिक आयोजन में वरिष्ठ विद्वान् डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र ने श्री गंगारत्न पांडेय से परिचय कराया तो मेरे मुख से निकल ही तो पड़ा "आप तो उन्नाव के ही हो सकते हैं!" ऊँचा और मजबूत शरीर, बलिष्ठ बोल! पांडेय ने बताया : निराला जी ने भी यही कहा था!

यद्यपि गंगारत्न पांडेय ने अनेक विधाओं में रचनाएँ की हैं, तथापि गुण, परिमाण एवं प्रकृति की सभी दृष्टियों से उनका कवि-रूप ही प्रधान है तथा 'नचिकेता' में तो वे महाकवि के रूप में प्रकट हुए हैं। राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा ने ठीक ही 'नचिकेता' को अमर महाकाव्य कहा था। पांडेय जी का अनुभूति पक्ष विचारप्रधान एवं अभिव्यक्ति पक्ष गद्यात्मक हो सकता है, किन्तु 'नचिकेता' में कल्पना एवं रस का निर्वाह अत्यन्त सफल बन पड़ा है।

कठोपनिषद् में प्राप्त बीज को गंगारत्न पांडेय ने द्वादशसर्गीय 'नचिकेता' महाकाव्य का रूप प्रदान कर प्रशस्य प्रतिभा का परिचय दिया है। पाठशाला-काल में सदल मिश्र कृत नासिकेतोपाख्यान के प्रभाव का उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि बीज का अदृश्य विकास होता रहा तथा सर्जन 1974-75 ई. में आरम्भ हो सका जो 1990 ई. तक रुका रहा; काव्य 21 जून, 1991 को पूर्ण हुआ तथा फरवरी, 1992 में प्रकाशित। डॉ. राममनोहर लोहिया नचिकेता को विश्व का प्रथम सत्याग्रही मानते थे। उपनिषद् में सत्य ब्रह्मवाची है; अतः मैं 'नचिकेता' को ब्राह्मग्रही कह सकता हूँ। उसके अजर-अमर व्यक्तित्व के तीन पक्ष हैंः अद्वितीय पितृभक्त (जो ऋग्वेद के शुनःशेप, रामायण के श्रवणकुमार एवं राम, महाभारत के भीष्म प्रभृति का स्मरण कराता है), अप्रतिहत धृतिमान् (जो गुरु एवं देव यम के द्वारा आत्मरहस्य या ब्रह्मज्ञान के वरदान के अतीव आकर्षक विकल्पों का साक्षात् करके भी ज्यों-का-त्यों रहा), महत्तमवर्गीय ब्रह्मवेत्ता (जो प्रवृत्तियों के सर्वोपरि रूपों को निस्संगतापूर्वक पारकर आनन्द-रूप हो गया)। गंगारत्न पांडेय की परिपक्व विद्वत्ता, उनकी विश्व-दर्शन को भारत की सबसे बड़ी देन अद्वैतवाद की गहरी जानकारी, उनकी प्रवृत्ति-निवृत्ति में सन्तुलन स्थापित करनेवाली स्वस्थ एवं पूर्ण जीवनवादिता ने विविध-आयामी कल्पना (आचार्य कुंतक के अनुसार 'प्रकरणवक्रता') के सहयोग से 'नचिकेता' की विलक्षण सृष्टि की है, जो कामायनी-परवर्ती महाकाव्यों में एक स्थायी महत्त्व प्राप्त करने का अधिकार रखती है। कवि ने भारतीय ब्रह्मविद्या की विवृति में व्यापक सफलता प्राप्त की है—ऐसी कि डॉ. मुंशीराम शर्मा 'सोम' कृत द्वादशसर्गीय आध्यत्मिक महाकाव्य 'विरहिणी' (जो कामायनी से कलापक्ष में विपन्न होते हुए भी आध्यात्मपक्ष में सम्पन्नतर है) से तुलना सर्वथा समीचीन है। कामायनी, विरहिणी एवं नचिकेता बीसवीं सदी में हिन्दी के श्रेष्ठतम आध्यात्मिक महाकाव्य हैं। गंगारत्न पांडेय ने यमपत्नी के बालक नचिकेता को देखने पर मनोहारी स्थिति की सृष्टि कर वात्सल्यरस की जो विशद एवं स्मरणीय निष्पति की है वह उन्हें सूर, तुलसी, हरिऔध, (प्रियप्रवास) एवं मैथिलीशरण

---

[1] 'तान्वी श्यामा' के प्रबन्धकाव्यकार धनेशदत्त पांडेय (14 जुलाई, 1954, बिहार) ने 'नचिकेता' खंडकाव्य रचा है (नचिकेता पर अन्य गद्य-गद्य रचनाएँ भी हुई हैं)—इनका साम्यवादी रंगत का कहानीसंग्रह 'करमजरुआ' (1992 ई.) एवं उपन्यास 'भ्रूणहत्या' (प्रकाश्य) भी उल्लेखनीय हैं।

[2] अवधी-महाकाव्य 'कृष्णायन' के प्रणेता द्वारकाप्रसाद मिश्र भी यहीं जन्में थे।

[3] गंगारत्न पांडेय की कहानी 'काया-कंथा' सहजयान-व्रजयान के योगभोगद्वन्द्व को विदग्धतापूर्वक चित्रित करती है तथा उच्चकोटि की है—प्रसाद की महान् कहानी 'देवरथ' का स्मरण कराती है।

[4] भारत सरकार द्वारा पुरस्कृत किन्तु कलाकृति न होकर उपयोगी प्रचारवादी पुस्तिका।

[5] वे पत्रकार भी रहे हैं। स्वातन्त्र्य सेनानी, पत्रकार, कहानीकार, उपन्यासकार, ललितनिबन्धकार प्रभृति नाना रूपों से सम्पन्न उनका जीवन प्रशासनिक अधिकारी के रूप में भी उल्लेखनीय है।

(यशोधरा) की वात्सल्यरस-कवियों की परम्परा में प्रतिष्ठित करती है। यम द्वारा ब्रह्मज्ञान के विकल्प में सुखभोग एवं ऐश्वर्य से सम्पन्नतम जीवन के दृश्यों में शृंगारस की मनोहारी स्थिति प्राप्त होती है। किन्तु काव्य के अंगीरस के रूप में मुझे 'ब्रह्मरस' शब्द गढ़ना पड़ रहा है—यही ब्रह्मरस 'विरहिणी' का भी अंगीरस है। शान्तरस का स्थायीभाव निर्वेद प्रवृत्ति के साथ पूरा न्याय कर पाता तो मैं 'ब्रह्मरस' की उपपत्ति न करता! वैसे सामान्यतः रूढ़ शान्तरस को अंगीरस कहा जाए तो बहुत अनुचित न होगा क्योंकि नायक प्रवृत्ति को लुभाने वाले तत्वों से प्रभावित नहीं होता। महाकाव्य सुखान्त हैः मृत्युंजय ब्रह्मवेत्ता नचिकेता पुत्र-विरही पिता को प्राप्त होता है और यह संयोग स्वयं यमराज कराते हैं—जीवन की विजय होती है। महाकाव्य स्वर्गवादी न होकर पृथिवीवादी हैं; और वहाँ वह क़ामायनी से भिन्न होकर अधुनातन जीवनवाद को परितुष्ट करता है। 'सावित्री'(अंग्रेज़ी-महाकाव्य जिसका विद्यावती 'कोकिल' ने हिन्दी-अनुवाद किया है) से प्रभावित कवि ने अरविन्द के स्वर्ग के भूमिकरण को साकार कर दिया है।

कौन हो तुम?

कौन हो तुम?—तत्त्व या आभास केवल?
मृण्मयी छलना कि पलना चिर पुरातन प्रीति के हो?
जानते जलना-जलाना, बटुक पटु रस रीति के हो?
कौन हो तुम?—प्रश्न या विश्वास केवल?
भर रहे क्यों रंग धूमिल छिन्न पट में?
अनवरत उठतीं तरंगें चटुल चंचल काम्य कोटिक?
गहन कलरव, कूजते आशा-तृषा के चपल शुक-पिके
भर रहे हो मधु-गरल क्यों शून्य घट में?
अलख छाया निर्विकार अरूप की हो?
छिप रहे क्यों पंचभूतों के बने नश्वर निलय में?
कौन अवगुंठन गहोगे क्षीण काया के विलय में?
रूप - रंजक वर्जना क्यों रूप की हो?
गुह्यतम गुंजार मादक, वाह्य[1] मोदिल मौन हो तुम?
साथ प्रतिपल, पर सदा अज्ञात, बोलो कौन हो तुम?

('तेरे सान्निध्य में' से)

विद्यावती मिश्र

'श्रद्धा', 'ज्योति', 'प्रतीक्षा', प्रभृति कवितासंग्रहों एवं 'मुक्ति' शीर्षक गीतिनाटक की कवयित्री विद्यावती मिश्र (15 अगस्त, 1918—4, अप्रैल, 1963, जन्मस्थान गौर पुखरायाँ क्षेत्र, कानपुर जनपद, निधनस्थान लखनऊ) ने रहस्यवादी कविताएँ भी लिखी हैं (जो उन पर महादेवी के प्रभाव की द्योतक भी हैं जिन्हें उन्होंने 'ज्योति' समर्पित की है), प्रेमपरक भी, देशभक्तिपरक भी, मानवतावादी भी। वे गीतकार के रूप में पर्याप्त सफल हैं। भाषा सरल एवं प्रवाहपूर्ण है। उनके अग्रज श्री कैलाशनाथ 'प्रियदर्शी' (कानपुर) स्फीत ब्रजभाषा-महाकाव्य श्रीकृष्णचरितमानस के प्रस्तोता हैं, तो वर-भ्राता स्व. श्री शिवशंकर मिश्र (लखनऊ) 'कठोपनिषद् का पद्यानुवाद'[2] 'धम्मपदम् का हिन्दी अनुवाद', 'बहाउल्ला की वाणी' इत्यादि के जाने-माने कवि। श्री शिवशंकर मिश्र एवं उनके अग्रज लखनऊ में हिन्दी-कविता के उन्नायकों के रूप में प्रसिद्ध थे। उनके पति भी कविता-प्रेमी थे। स्व. सुमित्राकुमारी सिन्हा, शंकुतला सिरोठिया (6 जून, 2005 के प्रयाग में दिवंगत) इत्यादि कवयित्रियों से उनका निकट सम्पर्क रहा। उनकी कविता के दो उदाहरण प्रस्तुत हैं—

---

[1] वहनयोग्य। बाह्य नहीं (प्रसाद, नगेन्द्र इत्यादि ने 'बाह्य' के लिए 'वाह्य' ग़लत लिखा है।)

[2] क्षेमचन्द्र 'सुमन' के 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' तथा सत्यप्रकाश 'मिलिंद' के 'हिन्दी की महिला साहित्यकार' ग्रन्थों में यह पुस्तक विद्यावती मिश्र कृत लिखी गई है।

1. तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या?
स्वीकृति का उठता प्रश्न कि जब फल की इच्छा
होती, मन में तीव्र प्राप्ति की अभिलाषा,
पर मुझको विश्वास प्राण का यह चातक
रहा सदा से और रहेगा चिर प्यासा,
एक याचना की थी तुम्हें परखने को
तुमने वह अंगीकार नहीं की तो भी क्या?
तुमने पूजा स्वीकार नहीं की तो भी क्या?

2. आदमी पूरा नहीं बना!
उल्टी-सीधी खड़ी हो गई मिट्टी की प्रतिमा।
मिल न सकी है किन्तु मनुजता की उसको गरिमा।
राम कब उसमें रमा?
कुंभकार का सत्य नहीं हो पाया है सपना।

कंचनलता सब्बरवाल

डॉ. कंचनलता सब्बरवाल, एम. ए. (इतिहास, राजनीति, दर्शन), पी-एच. डी. शास्त्री (जन्म 28 अगस्त, 1918 को लखनऊ में, शिक्षा दिल्ली में, जीवन-यापन लखनऊ में) हिन्दी-कवयित्रियों एवं लेखिकाओं में वैदुष्य-दृष्टि से अन्यतम हैं। 'शिष्टाचार', 'नागरिकशास्त्र', 'समाजशास्त्र', 'आचारशास्त्र' प्रभृति छात्रोपयोगी ग्रंथों के प्रणयन तथा महिला विद्यालय लखनऊ की प्राचार्य के रूप में उनकी शैक्षिक सेवाएँ भी स्मरणीय हैं। 'मूक प्रश्न', 'भोली भूल', 'संकल्प', 'मूक तपस्वी', 'स्वतन्त्रता की ओर', 'भटकती आत्मा', 'त्रिवेणी', 'पुनरुद्धार' इत्यादि सिद्ध करते हैं कि वे मुख्यतः उपन्यासकार हैं, किन्तु उन्होंने 'लक्ष्मीबाई' जैसे ऐतिहासिक नाटक भी लिखे हैं तथा 'चयनिका' जैसा कहानी-संग्रह भी प्रस्तुत किया है। पत्रकारिता से संगीत एवं चित्रकला तक उनकी रुचि स्फीति की सूचना देती है। पर उनकी 'चयनिका' पर महादेवी का प्रभाव पड़ा है।

उनका कृतित्व वंकिम न होकर ऋजु है। भाषा भी साधारण है। किन्तु उनकी स्वच्छ-स्वस्थ अनुभूति सर्वत्र स्वच्छ-स्वस्थ प्रभाव ही छोड़ती है। कविता की बानगी पेश है—

मेरे प्यारे, मेरे जीवन, मेरे सर्वस, मेरे हिय-धन,
मेरे जन्म-जन्म के तप के पावन वर, मेरे प्रिय तन मन।
सब-कुछ तो हर लिया या तुम्हीं ने, अब निजत्व भी रहा कहीं क्या?
प्रियतम, तुमको भेंट करूँ क्या?....

झरनों के स्वर का मीठापन, नदियों की कल-कल ध्वनि प्यारी,
प्यारी नव-ध्वनि, नव स्वर-लहरी, पग-पग रचना तव न्यारी,
कंठ रुधित, स्वर बिखरे-से हैं, परिचित स्वर में प्राण! कहूँ क्या?
प्रियतम, तुमको भेंट करूँ क्या?....

मेरे मन में शून्य भरा है, मेरा आँचल सूना-सूना,
मेरा जग तो मेरा ही है, तेरे बिन मेरा जग जग-सूना,
प्रियतम, मैं तो हुई बावरी, निज ममत्व भी रहा कहीं क्या?
प्रियतम, तुमको भेंट करूँ क्या?....

भारतभूषण[1] अग्रवाल

'अप्रस्तुत मन्त्र' एवं 'अनुपस्थित लोग' के कवि एवं रवीन्द्र की अनेक कृतियों के अनुवादक[2] स्व. भारतभूषण अग्रवाल (1919[3]–23 जून, 1975, जन्म मथुरा में, देहान्त शिमला में) 'तार सप्तक' के एक कवि के रूप में प्रसिद्ध रहे हैं। किसी ज़माने में (अनेकानेक अन्य 'सप्तक' कवियों के सदृश) कॉम्युनिस्ट हुआ करते थे किन्तु आकाशवाणी एवं साहित्य अकादमी की सुख-सुविधा ने बदला सो बदला–स्वयं मार्क्स यदि 'न्यूयॉर्क हेराल्ड ट्रिब्यून' में नौकरी पर जाते तो कॉम्युनिस्ट न होते (वैसे भी, वे कहा करते थे: "धन्यवाद ईश्वर को कि मार्क्स मार्क्सवादी नहीं है")। भारतभूषण पर प्रसाद के प्रेम एवं पन्त की प्रकृति का जादू सर पर चढ़कर बोलता है।

उनकी चिरस्मरणीय 'प्लेटफार्म पर विदाई' एक मार्मिक एवं मौलिक कविता है–

होने सवार
ज्यों बढ़े चरण
चमका एड़ी का गौर वर्ण।[4]
कर नमस्कार
कुछ नमित वदन
जब मुड़ी हो गए रक्त कर्ण।
पल को खिड़की पर
बाँह टेक
देखा फिर कर
उफ, उभर-उभर
आये अनेक
छवि के अक्षर।
चल दी गाड़ी
थर-थर-थर-थर
खिंचता ही गया स्नेह तार
फर-फर-फर
उड़-उड़ कर बार-बार।
पल भी न लगा
सुनसान, शांत
मैं खड़ा देखता निर्निमेष
लो फिर सुलगा
यह प्राण-प्रांत
बस प्लेटफार्म की टिकट शेष।

प्रयागनारायण त्रिपाठी

'तीसरा सप्तक' (1959 ई., सं. अज्ञेय) के प्रथम कवि प्रयागनारायण त्रिपाठी (जन्म 25 अगस्त, 1919 ई.–2 नवम्बर 2005, जन्म रायपुर, जनपद रायबरेली मृत्यु कोलकाता) समूची सप्तक-परम्परा के सारे कवियों में अज्ञेय के अनन्तर सर्वोत्तम नव-रहस्यवादी हैं। अज्ञेय के नव-रहस्यवाद में वैयक्तिक-कुंठाजन्य विकृतियाँ[5] यत्र-तत्र विक्षेप भी उत्पन्न कर देती हैं किन्तु प्रयागनारायण त्रिपाठी के नव-रहस्यवाद में अविकृत गहनता एवं दार्शनिकता विद्यमान है। 'मैं', 'यह उद्वेलन', 'लक्ष्य', 'समाधिस्थ' इत्यादि कविताएँ गहन अद्वैत की गहन उद्‌भूतियाँ हैं, जिनमें नव-जीवनद्वन्द्व भी समाहित है। नवरहस्यवादी कवियों में पन्त की वैश्विक सर्वश्रेष्ठता निर्विवाद है, तदनन्तर अज्ञेय तथा तदनन्तर प्रयागनारायण त्रिपाठी का स्मरण आता है। कवितासंग्रह 'स्वर-सेतु' की 'यात्रा-चिन्तन' खड़ीबोली-कविता में दर्शन की एक महान् रचना है। उनकी भाषा नए मुहावरे की कृत्रिम कला से अभिभूत न होने के कारण सहज एवं गम्भीर है। सारे 'सप्तक'-कवियों में प्रयागनारायण त्रिपाठी को अज्ञेय, मुक्तिबोध, भवानीप्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती एवं नरेश मेहता के साथ अन्यतम माना जा सकता है, क्योंकि उनकी कविता नई तो है ही, जीवन के बाह्य एवं आभ्यंतर में संगति भी स्थापित करती है और ऐसी संगति किसी अन्य सप्तक कवि में दृष्टिगोचर नहीं होती :

---

1. गीतकार भारतभूषण का स्मरण आता है।
2. रवीन्द्र के हिन्दी-अनुवादकों में धन्यकुमार जैन को शीर्षस्थ स्थान प्राप्त है।
3. 'सुर-संकेत' के जून, 1997 अंक में 'जन्म जुलाई 1929' लिखा देखा, जो गलत है क्योंकि 'तार सप्तक' के कवि बीसवीं सदी (ई.) के द्वितीय दशक में जन्मे थे।
4. बेचारा श्याम तन क्या खाकर चमेगा! हाँ निराला (वह तोड़ती पत्थर) जैसा बड़ा पारखी 'श्याम तन' भी चमका देता है। पर यह सबके बूते की बात नहीं!
5. नपुंसकता, वंदी-जीवन की यन्त्रणा इत्यादि में मूलभूत।

मैं नहीं हूँ
यह त्रिभुज, यह चर्तुभुज, यह वृत्त
त्रिविध अथवा विविध
रेखा-पराजित
ये एक भी आकार
सुंदर, स्पष्ट
किन्तु सीमारुद्ध, स्वायामाबद्ध!
बिन्दु हूँ मैं
मात्र केन्द्राभासः वह जो
हर असीम ससीम का
हर रूप, हर आकार का विस्तार,
प्राणाधार,
फिर भी चिर-अनुरूप, अमाप,
अपनी मुक्ति में सन्नद्ध!

गिरिजाकुमार माथुर

भारतीय साहित्य अकादमी पुरस्कार एवं हिन्दी अकादमी दिल्ली के शलाका-सम्मान इत्यादि से समादृत, ऐतिहासिक 'तार-सप्तक' (1943 ई., सं. अज्ञेय) के एक यशस्वी कवि गिरिजाकुमार माथुर (1919 ई.[1]—10 जनवरी, 1994, अशोक नगर, म. प्र. निधन दिल्ली) एक प्रमुख प्रयोगवादी थे। 'दूसरा सप्तक' का दूसरा 'कवि' स्व. श्रीमती शकुन्त माथुर (1922 ई.) उनकी पत्नी थीं। उनके 'मंजीर' (1941 ई.) 'नाश और निर्माण' (1946 ई.), 'धूप के धान' (1954 ई.), 'शिलापंख चमकीले' (1961 ई.) प्रभृति संग्रहों की कविताएँ परम्परा एवं प्रगति का सन्तुलित रूप प्रदर्शित करने के कारण प्रशस्य हैं। गिरिजाकुमार माथुर की कविताएँ राम, कृष्ण, बुद्ध, वियजादशमी, गाँवों के कच्चे घर-बार इत्यादि में रमने के कारण जनजीवन से संपृक्त हैं; उनमें 'अजनबीयत' नहीं है। 'जो बँध नहीं सका' संग्रह की कविताओं में स्वतन्त्र भारत की दयनीयता पर आक्रोश एवं व्यंग्य की प्रभावी अभिव्यक्ति दृग्गत होती है। उनका गोरे रंग के प्रति ख़ास रुझान रोमानी तबीयत की सूचना देता है। उनकी तलस्पर्शी भावकुता सामान्य को भी विशिष्ट बना देती है :

आज अचानक सूनी सी संध्या में
जब मैं यों ही मैले कपड़े देख रहा था,
किसी सिल्क के कुर्ते की सिलवट में लिपटा
गिरा रेशमी चूड़ी का
छोटा सा टुकड़ा,
उन गोरी कलाइयों में जो तुम पहने थीं
रंग भरी उस मिलन-रात में।
मैं वैसा का वैसा ही
रह गया सोचता
पिछली बातें।
दूज कोर से उस टुकड़े पर
तिरने लगीं तुम्हारी सब सज्जित तस्वीरें,

---

[1] स्वयं 'तार सप्तक' में 1918 ई. भी दिया है।

सेज सुनहली,
कसे हुए बंधन में चूड़ी का झर जाना,
निकल गई सपने जैसी वे मीठी रातें,
याद दिलाने रहा
यही छोटा-सा टुकड़ा।
(चूड़ी का टुकड़ा)

रामकिंकर उपाध्याय

मानस-व्याख्याता पं. रामकिंकर उपाध्याय (1-11-1924, जबलपुर में जन्म तथा 9-8-2002 अयोध्या में देहान्त) प्रायः पचास वर्षों से राम, तुलसी एवं मानस की प्रणम्य सेवा द्वारा व्यापक जन-जीवन को शिक्षित एवं परिकृत करते आ रहे थे। मानक हिन्दी में रामकथा के निगूढ़ तत्वों को विवेचित करने वाले रामकिंकर जी का बुद्धिजीवियों एवं सम्पन्नों को प्रभावित करना इन वर्गो में पाश्चात्य शिक्षा एवं जीवन-प्रणाली के विशेष व्यामोह को देखते विस्मयकारी लगता रहा है। सामान्य कहे जानेवाले जनवर्गों पर उनका प्रभाव स्वाभाविक-सा रहा है, क्योंकि ये वर्ग श्रमपवित्र भी हैं, भारतीयता-ओतप्रोत भी। किन्तु इस प्रभाव में व्याप्त समता एवं प्रेम का सन्देश अपने स्थान पर कहीं-अधिक महत्त्वपूर्ण है। उनके प्रवचनों को यंत्रांकित कर आशुलिपि एवं टंकण के सोपानों से ग्रन्थरूप दिया जाता था और ऐसे अनेकानेक ग्रन्थ भी लोकप्रिय हैं।[1] बहुखंडीय मानस-मुक्तावली के कारण रामकिंकर उपाध्याय तुलसी-पंडितों के उच्च वर्ग में प्रतिष्ठित किए जा सकते हैं।

सम्भवतः 'कामायनी' की प्रेरणा से, पं. रामकिंकर उपाध्याय 'रामचरितमानस' का प्रतीकवादी विवेचन भी करते थे। वैसे, 'विनयपत्रिका' में इसका आधार विद्यमान है :

वपुष-ब्रह्माण्ड

वपुष-ब्रह्माण्ड, सुप्रवृत्ति[2] लंका-दुर्ग, रचित मन-दनुज-मय-रूपधारी।....
मोह-दशमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाकारिजित-काम विश्रामहारी।।....
अमित बल परम दुर्जय निशाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी।....
जीव-भवदंघ्रि-सेवक विभीषण बसत दुष्टाटवी ग्रसित चिंता।....
ज्ञान-अवधेश-गृह, गेहिनी-भक्ति शुभ, तत्र अवतार भूभार-हर्त्रा।।
कैवल्य-साधन अखिल भालु-मर्कट विपुल, ज्ञान-सुग्रीव-कृत जलधिसेतू।
प्रबल-वैराग्य-दारुण-प्रभंजन-तनय विषय-वन-भवनमिव धूमकेतू।।....
(58/3,710-11,13,15-16)

किन्तु तुलसी की व्यापक प्रवृत्ति ''सूधो मन सूधो बचन'' की है। फिर भी, रामचरितमानस की प्रतीकवादी व्याख्या करके पं. रामकिंकर उपाध्याय में विश्व के इस गौरव-ग्रन्थ के अनुशीलन दिशा में एक नया आयाम प्रवर्तित किया है, जिसके कारण वे चिरस्मरणीय माने जाने के योग्य हैं। वे रामगुलाम द्विवेदी, बच्चू सूर, जयरामदास, विजयानन्द त्रिपाठी, विन्दु जी, कपीद्र जी, मुरारीबापू प्रभृति के साथ मानस के अन्यतम व्याख्याताओं में समादरणीय तो हैं ही, विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थों के कारण विशिष्ट भी हैं। उनकी उच्चस्तरीय विश्लेषण-शैली के दो निदर्शन प्रस्तुत हैं।

1. ज्ञान के साधक में जहाँ पुरुषार्थ के सदुपयोग की वृत्ति होती है, वहाँ भक्त स्वयं में असमार्थ्य की अनुभूति के कारण कृपा का ही आश्रय ग्रहण करता है।

---

[1] रजनीश, श्रीराम शर्मा आचार्य इत्यादि के ग्रन्थ भी इसी वर्ग के हैं। गुरुदत्त इत्यादि तो इसी प्रकार उपन्यास तथा अन्य ग्रन्थ प्रस्तुत करते थे। नेताओं के भाषणसंग्रह तो इसी प्रकार के होते हैं। विस्तार एवं पुनरुक्ति के बावजूद, इस शैली को नकारा नहीं जा सकता।

[2] लंका-दुर्ग के लिए 'सु' एवं 'प्र' जैसे दो-दो उत्तम उपसर्ग समीचीन नहीं प्रतीत होते। अप्रयुक्त दोष।

2. ज्ञान, वैराग्य और योग के मार्ग में बहुधा संसार के मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया जाता है। किन्तु यह मिथ्यात्व का ज्ञान उसे बहुत दिनों तक रोके नहीं रखा जा सकता। इसलिए पौराणिक गाथाओं में अनेकों[1] ऐसे मुनियों के दृष्टान्त सामने आते हैं, जो प्रारम्भ में त्याग और वैराग्य का जीवन व्यतीत करने के बाद भौतिक सुख के लिए लालायित हो उठे हों। काकभुशुंडिजी की दृष्टि में भक्त के समक्ष ऐसी समस्या नहीं आनी चाहिए। सृष्टि के मिथ्यात्व और त्याग-वैराग्य को वह एक सीमा तक ही महत्त्व देता है। उसकी दृष्टि में ईश्वर को पाने के लिए गृहत्याग की कोई आवश्यकता नहीं है। उसका जीवन निषेध के स्थान पर विधि से संबद्ध है। उसके लिए सांसारिकता में सौन्दर्य के मिथ्यात्व की तुलना में भगवान् का नित्य सौन्दर्य विद्यमान है। इसलिए मायिक सौन्दर्य उसे अपनी चमक-दमक से ललचाने में असमर्थ है। माया के पास आकर्षण की जो वस्तुएँ हैं; भक्त के पास वे पहले से ही विद्यमान हैं। इसलिए माया उसे अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर पाती।

चंद्रकिरण सौनरेक्सा

'आदमखोर' संग्रह की प्रख्यात कहानीकार चन्द्रकिरण सौनरेक्सा (1920 ई. नौशहरा, पेशावर[2]) ने नारी-कहानीकारों में कठोर यथार्थ चित्रित करने का नेतृत्व किया, जिसके परिणामस्वरूप रूसी में उनकी कहानियों का एक पूरा संग्रह अनूदित हुआ तथा अंग्रेजी, जर्मन एवं चीनी में भी कई कहानियाँ अनूदित हुईं। हिन्दी की महिला-कहानीकारों में चन्द्रकिरण सौनरेक्सा अग्रणी हैं। यथार्थ के उद्घाटन के कारण वे मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, अमृता प्रीतम प्रभृति की अग्रजा सिद्ध होती हैं। उनके पति कान्तिचन्द्र सौनरेक्सा भी लेखक एवं पत्रकार हैं। प्रसिद्ध कहानीकार होते हुए भी, श्रीमती चन्द्रकिरण सौनरेक्सा ने सुन्दर कविताएँ भी लिखी हैं, जिनका 'प्यार सदा पागल क्यों होता?' गीत पर्याप्त प्रसिद्ध है जिसका अंश प्रस्तुत है :

> ....महासिंधु की महालहर-सी, हहराती गंगा पाकर भी
> प्यासा अपने जले हुए क्षत, खारे आँसू जल में धोता
> प्यार सदा पागल क्यों होता? तेरे इंगित पर जो मरता
> नित नव पीड़ा में मन भरता, सुख के बिखरे फूलों को तज
> दुख के काँटे स्वयं सँजोता! प्यार सदा पागल क्यों होता?....

डॉ. विश्वनाथ अय्यर

'आधुनिक हिन्दी-काव्य तथा मलयालम-काव्य', 'राष्ट्रभारती को केरल का योगदान', 'केरल के प्रथम हिन्दी-गीतकार', 'प्राचीन कवि केशवदास', 'महाकवि रवीन्द्रनाथ' जैसे उपयोगी ग्रन्थों के प्रेणता, 'उठता चाँद डूबता सूरज' एवं 'शहर सो रहा है' के ललित निबन्धकार, 'मलयालम और हिन्दी व्यावहारिक कोष' के शब्दकोश-प्रस्तोता, 'अनुवादः भाषाएँ-समस्याएँ' एवं 'अनुवाद-कला' के लेखक डॉ. एन. ई. विश्वनाथ अय्यर (30 अगस्त, 1920--जन्म पालघाट, निवास तिरुअनन्तपुरम) केरल के अग्रणी हिन्दी-विद्वान् शोध-गुरु एवं वक्ता हैं। कोचिन विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष एवं आचार्य के रूप में उन्होंने हिन्दी की बड़ी सेवा की। वे संस्कृत के विद्वान् भी हैं। केरल के वर्तमान हिन्दीसेवियों से सृजनात्मक प्रतिभा से सम्पन्न आनन्दशंकर माधवन, वैदुष्य एवं सृजनात्मकता से द्विविध-सम्पन्न डॉ. एन. चन्द्रशेखर नायर एवं अध्यवसायपूर्ण पांडित्य के धनी डॉ. विश्वनाथ अय्यर का त्रित् सर्वथा विशिष्ट है। डॉ. अय्यर एक यशस्वी बालसाहित्यकार के रूप में भी स्मरणीय हैं। उनको अनेक सम्मान एवं उनको प्राप्त अनेक उपाधियाँ सर्वथा न्यायसंगत हैं।

दूधनाथ शर्मा 'श्रीश'

'फूल-पाती' मार्मिक अवधी-कवि दूधनाथ शर्मा 'श्रीश' (15 दिसम्बर, 1920 ई., मेहरेवँ, जौनपुर) ने यद्यपि राष्ट्रकाव्य एवं देशदशाकाव्य भी रचा है तथापि वे प्रकृत्या विरह-वेदना के कवि ही हैं तथा अपने लोकगीताधृत-लोककाव्य में ही विशेष सफल हैं।

---

[1] 'अनेक' स्वयं बहुवचन है।

[2] अभिनेता दिलीप कुमार और राजकूपर भी पेशावर (प्राचीन पुरुषपुर जो विदेशी कुषाण सम्राट् कनिष्क एवं उसके वंशजों की राजधानी थी) में पैदा हुए थे।

उन्होंने ग्राम-प्रकृति के मनोहारी चित्रण किए हैं। निस्सन्देह, उनका गीतकार-रूप अवस्थी, नीरज इत्यादि के स्तर का है। दूधनाथ शर्मा 'श्रीश' एक सफल लोककवि के रूप में छोटकुन, भागीरथी, भिखारी ठाकुर की परम्परा को सम्पन्न करते हैं। कहीं-कहीं 'श्रीश' अपने माधुर्य एवं गीत-प्रवाह में मैथिल-कोकिल विद्यापति का स्मरण कराते हैं। 'फूल-पाती' के पुरस्कथन-लेखक कविवर प्रकाश द्विवेदी ने उन्हें ''लोकभाषा और लोकचेतना के भावमर्मी'' के रूप में प्रकाशित कर प्रशस्य कार्य किया है। 'श्रीश' जी की रचनाओं से यहाँ दो उदाहरण प्रस्तुत हैं।

1. सुकवा उदय भइले भोरवा की जुनिया, बहै लागी दखिनी बयार।
पिउ कहाँ पिउ कहाँ पिंहकल पपीहरा, आइल बाटै सुधिया तोहार।।
पह फटि गइलें बोललीं चिरइयाँ, रतिया के चालैं लागी पुरबी ललइया।
गगन भयल रतनार।।
कलियाँ चिटकि गइलीं महकल बगिया, भँबरा करैलें गुंजार निरमोहिया,
मउरा बँधाये ठाड़ आम अमरइया, लागै लगी अमवा सुघर सरसइया।
ओनवइ लागी अब डार।।
झूमि-झूमि झुकि चलै ला पवनवाँ, जगतै माँ रहि-रह आवेला सपनवाँ।
अँगवा करै ला जारि छार।।

फणीश्वरनाथ 'रेणु'

हिन्दी के आंचलिक-उपन्यासकारों में स्व. फणीश्वर नाथ 'रेणु' (4 मार्च, 1921) को प्रमुख स्थान प्राप्त है और वे स्वातन्त्र्योत्तर उपन्यासकारों में बहुत प्रसिद्ध हुए, जिसका कारण कई लोगों द्वारा कथित बांग्ला के सतीनाथ भादुड़ी कृत 'ढोड़ायचरित्रमानस' पर आधृत किन्तु स्वयं भादुड़ी द्वारा मौलिक घोषित उनका 'मैला आँचल' उपन्यास है, जिसमें बिहार के पूर्णिया ज़िले के मेरीगंज नामक ग्राम एवं उसके जीवन का सजीव चित्रण किया गया है। शीर्षक पन्त की 'ग्राम्या' में ''धूल भरा मैला-सा आँचल'' वाली 'भारत माता ग्रामवासिनी' (कविता) पर आधृत है। आंचलिक जीवन, भाषा, लोकगीत इत्यादि की गहरी झाँकी 'मैला आँचल' में प्राप्त होती है। प्रथम संस्करण (जिसका लोकार्पण रेणु के जयप्रकाश एवं लोहिया से बहुत अच्छे सम्बन्धों के कारण बहुत अधिक तड़क-भड़कदार था।) के बाद रेणु ने इसकी ओवरहॉलिंग भी की। आरम्भ के सुन्दर यथार्थ के बाद अन्त की ओर उपन्यासकार (प्रेमचन्द के प्रभाववश) आदर्शवादी बन जाता है, जैसा कि तहसीलदार विश्वनाथप्रसाद मल्लिक के अचानक भूदानी बनने और अन्त में बामनदास के अकेले-दम तस्करों से जा भिड़ने (जिसका परिणाम उसकी मृत्यु ही हो सकती है) से स्पष्ट है, जिसके कारण सहज-प्रभाव निष्पन्न नहीं हो पाता। पुराणों में वामन को आकाश तक बढ़ाया गया है। किन्तु रेणु ने उसे बैलगाड़ियों के नीचे चींथ डाला है। वस्तुतः आत्महत्या करा डाली है। रेणु को गाँजे की चिलम चढ़ाने का शौक़ था, जिसकी तरंग में उन्होंने बिहार के सीमा पूर्वी-पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) से सटा दी है (जो ग़लत है)—बीच में पश्चिम बंगाल की छोटी-सी पट्टी गाँजे के धुएँ में नहीं देखी (और किसी आलोचक या पाठक को भी नहीं)। डॉ. लक्ष्मीकान्त पाण्डेय ने 'रेणु' और उनका कथा-साहित्य' ग्रन्थ सम्पादित किया है। डॉ. शान्तिस्वरूप गुप्त ने 'मैला आँचल' पर भी प्रकाश डाला है। रेणु के 'मैला आँचल' के बाद आंचलिक उपन्यासों का अच्छा सृजन हुआ तथा 'राग-दरबारी' (श्रीलाल शुक्ल), 'आधा गाँव' (मरहूम[1] राही मासूम रज़ा) जैसे ग्राम्य-आंचलिक तथा 'बूँद और समुद्र' (अमृतलाल नागर) जैसे नागर-आंचलिक उपन्यास प्रकाश में आए। रेणु ने 'परतीः परिकथा' शीर्षक अन्य उपन्यास भी रचा जिसे 'मैला आँचल' की परिशिष्ट कहा जा सकता है। उन्होंने कहानियाँ भी लिखीं। जिनमें 'तीसरी क़सम' बहुत प्रसिद्ध हुई (क्योंकि उस पर एक उच्चकोटि का चलचित्र 'तीसरी क़सम' बना)। किन्तु हिन्दी-साहित्येतिहास में उनक 'मैला आँचल' के कलाकार के रूप में ही स्मरण किया जाएगा। नागार्जुन, शिवानी, शैलेश मटियानी, राजेन्द्र अवस्थी, युवा अखिलेश द्विवेदी 'अकेला' (आवे की आग) प्रभृत्ति ने आंचलिक उपन्यास रचने में अच्छी सफलता प्राप्त की है।

---

1. 'स्वर्गीय' लिखना ग़ैर-इस्लामी होगा क्योंकि इस्लाम में जन्नत क़यामत के बाद ही मिल सकती है और वह भी पैग़म्बर मोहम्मद की अल्लाह से सिफ़ारिश पर—किसी भी काफ़िर को किसी भी क़ीमत पर नहीं।

नरेश मेहता[1]

'संशय की एक रात' (राम), 'महाप्रस्थान' (पाण्डव) एवं 'प्रार्थनापुरुष' (गाँधी) के खण्डकाव्य तथा 'समय-दवेता', 'उषस्' 'किरण-धेनुएँ, 'अहं' (चार कविताएँ) के शिल्पप्रधान प्रणेता स्व. नरेश मेहता (15 फरवरी, 1922 ई.)[2] 'दूसरा सप्तक' के पाँचवें कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए, किन्तु कई सप्तक-कवियों के सदृश उसी के साथ चुके नहीं। नरेश मेहता उषा-काव्य के स्मरणीय कवि हैं। उनके कविता-संग्रह 'अरण्या' पर 1988 ई. का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्रदान किया गया। उन्हें उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान का भारत भारती पुरस्कार भी मिला। 'संशय की एक रात' धर्मवीर के 'अन्धा युग' से प्रभावित लगती है (भारती को समर्पित भी है)। नेहरू के पंचशील और गाँधी की लाभदायक सरकारी लहर में बहते-इठलाते नरेश मेहता ने युद्धपूर्व राम के अन्तर्द्वन्द्व का चित्रण कर राम पर बुद्ध, महावीर और गाँधी को थोप दिया है। 'संशय की एक रात' (रामकाव्य) 'अन्धा युग' (कृष्णकाव्य) की एक परिणति मात्र होने के कारण नरेश मेहता को लघु-'भारती' ही सिद्ध करती है। 1992 ई. का ज्ञानपीठ पुरस्कार उन्हें न मिलता तो ज्ञानमुख लोगों को आश्चर्य ही होता, क्योंकि राम पर महावीर की थोपा-थापी ज्ञानपीठ से बढ़कर कौन पसन्द करेगा? इस काव्य में राम को गाँधी का पुछल्ला बनया गया है। कालान्तर में 'संशय की एक रात' में भटकते हुए 'जलसमाधि से पूर्व' (बालकृष्ण मिश्र) की डूबाडूबी भी हो गई है। नरेश मेहता प्राकृतिचित्रण एवं प्रयोगों की मौलिकता की दृष्टि से उल्लेखनीय कवि हैं किन्तु उनका सृजन नैसर्गिक नहीं लग पाता। उन पर पाश्चात्य (विशेषतः प्राचीन यूनानी एवं शेक्सपीअरी) प्रभाव बहुत अधिक पड़ा है। कहीं यूनानी कथाएँ तो कहीं राम का दशरथ एवं जटायु की आत्माओं से संवाद (संशय की एक रात) इत्यादि में इसे स्पष्टतः देखा जा सकता है। उनकी भाषा में लालित्य का अभाव है। देखें :

1. संशय निकष है
ऋत का भी।

2. युद्ध
ऐतिहासिक फेन है किंतु
उसके बाद?

3. मानव के रक्त पर धरती आती
सीता भी नहीं चाहिए
सीता भी नहीं।

4. हे रघुकुल तिलक!
हमारा यह सुंदर दक्षिण प्रदेश
रावण या किसी अन्य का उपनिवेश हो,
यह स्वीकार नहीं किसी मूल्य पर।

5. अहं की चट्टान को यह फोड़ती
आ रही आवाज़ किसकी?....
विश्व के इस रेत वन पर
मैं खुशी का मेघ हूँ।....
आज मेरे अहं कंधों पर गगन बैठा हुआ।

---

[1] 'बुंदेल-वैभव' के रचयिता नरेश (जन्म 1830 ई.) अन्य समनामी कवि थे। एक नरेश 'नकेनवादी' (नलिनविलोचन, केदार, नेरश का त्रित्) समकालीन-से रहे।

[2] 'दूसरा सप्तक' के अनुसार 1924 ई. नई दिल्ली के दैनिक 'जनसत्ता' (23 दिसम्बर, 1988) में साहित्य अकादमी पुरस्कार संदर्भी समाचार में जन्म 15 फरवरी, 1922 को हुआ लिखा है। 23-2-1993 को आकाशवाणी में भी 1922 ई. को ही पुष्ट किया है। लगता है, कवि ने 1922 ई. का सही वर्ष चलाने का निर्णय बाद में किया। शायद 15 फरवरी, 1922 असली हो? प्रमाणपत्र की आयु एवं वास्तविक आयु में अन्तर आम बात रही है। सप्तकों के विवरण जितने अप्रात्ययिक हैं, 'जनसत्ता' के उतने ही बाज़ारी होते हैं। अतः दोनों लिख दिए। वैसे, कवियों और अभिनेताओं, कवयित्रियों और अभिनेत्रियों की आयु का विवादास्पद होना ही शोभा देता है!

अहं पर ये अश्र किसके?....
आह! मैं ऊँचा गगन,
औ' नीव की पाताल, आँसू की नदी में।

वैसे, 'संशय की एक रात' राम को निकाल देने पर लोकतन्त्र, शान्तिवाद, मानवतावाद इत्यादि की दृष्टियों से प्रशस्य कृति लग सकती है; किन्तु रामत्व पर बुद्धत्व या महावीरत्व या अशोकत्व या गाँधीत्व या नेहरूत्व या साहूजैनत्व को वरीयता प्रदान करने के कारण यह रामकाव्य की प्रकृत तेजस्विता से रहित एक फस्सड़ चेष्टा मात्र बनकर रह गई है।

हरिशंकर परसाई

'तब की बात और थी', 'भूत के पाँव पीछे', 'बेईमानी की परत', 'पगडंडियों का ज़माना', 'सदाचार की तावीज़,' 'शिकायत मुझे भी है', 'विकलांग श्रद्धा का दौर', 'ठिठुरता हुआ गणतन्त्र' प्रभृति ढेरों हास्यलेखसंग्रहों के प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई (21 अगस्त, 1922—10 अगस्त, 1995, जमानी, जनपद होशंगाबाद, मध्य प्रदेश) ने लगे हाथ 'हँसते हैं रोते हैं' एवं 'जैसे उनके दिन फिरे' शीर्षक कहानीसंग्रह तथा 'रानी नागफनी की कहानी' एवं 'तट की खोज' शीर्षक उपन्यास भी लिखे हैं। उन्हें राजनीति में आकंठ निमग्न होने के सारे लाभ मिले, किन्तु इसी के कारण एक बार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्ताओं ने उनकी जमकर पिटाई भी की थी, जो नितान्त अनुचित थी क्योंकि उनका काँग्रेसी तथा साम्यवादी प्रभाव से भी लाभ उठा सकने योग्य साहित्य संघियों को फ़ासिस्ट के अतिरिक्त और कह ही क्या सकता है? वैसे, हरिशंकर परसाई ने राजनैतिक पाखंड का व्यापक चित्रण किया है। पूँजीवाद, जातिवाद, सम्प्रदायवाद इत्यादि पर उनकी फ़ब्तियाँ आकर्षक हैं। वे अन्नपूर्णानन्द के सदृश बौद्धिक एवं शारदाप्रसाद 'भुशुंडि' के सदृश गम्भीर हास्य के नहीं प्रत्युत ज़माने के साथ चलते 'लोकप्रिय' हास्य के सर्जक हैं। लगभग उन्नीस वर्षों तक दुर्घटनाजन्य विकलांगता—वस्तुतः शय्यागत रहने—के बावजूद उन्होंने जिस रचनाधर्मिता का प्रदर्शन किया, वह डॉ. रघुवंश के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सका।

गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी

'उद्धवशतक' (ब्रजभाषा-खण्डकाव्य—उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ के श्रीधर पाठक नामित पुरस्कार से सम्मानित प्रसिद्ध कृति), 'श्री हनुमत्' (ब्रजभाषा-खण्डकाव्य), 'रामबावनी' (ब्रजभाषा-मुक्तक) एवं 'ब्रजमाधुरी' (भाग 1-2-3 जिनमें प्रथम पर श्रीधर पाठक नामित पुरस्कार प्राप्त हुआ दोबारा) के द्वारा यथार्थवादी युग में ब्रजभाषा की आलेख को जगाए रहने वाले एक उल्लेख्य कृष्णकाव्यकार एवं रामकाव्यकार स्व. गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी (28 अगस्त, 1922, मेरठ, पैतृकस्थान कमतरी, तहसील बाह, ज़िला आगरा, उत्तर प्रदेश में अनेक पदों पर प्रशासक रहे हैं, अनेक वर्ष अरविन्द आश्रम या ऑरोविल[1] पाण्डिचेरी[2] में प्रशासक रहे, निवास लखनऊ) ने उच्च (पिता रायसाहब) परिवार, उच्च प्रशासनिक पद, उच्च टेनिस खिलाड़ी, उच्च कवि-सम्मेलन इत्यादि की उच्चता के बीच भी अपनी तरल भावुकता को अप्रतिहत रखा तथा उत्कृष्ट पारम्परिक एवं अलंकृत ब्रजभाषा-काव्यरचना में सफलता प्राप्त की। वे बंगाल स्कूल ऑफ़ आर्ट्स की जलरंग शैली के चित्रकार भी थे। कविता में सनेही-स्कूल के एक प्रतिनिधि माने जा सकते हैं। सवैया छन्द के अनेक रूपों पर उनका असाधारण अधिकार है। कवित (घनाक्षरी) के भी वे राजा ही हैं।

रत्नाकर कृत उद्धवशतक में सूर की भावुकता एवं नन्ददास की बौद्धिकता का समन्वय है, किन्तु गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी कृत उद्धवशतक में भावुकता (विरहव्यथा, स्मृति, अश्रु इत्यादि) की ही प्रधानता है। ब्रजभाषा में सफल रामकाव्य रचना गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी की एक अन्य उपलब्धि है, जो उन्हें 'शबरी' के वचनेश मिश्र के साथ खड़ा करती है। 'ब्रज-माधुरी (3 भाग) में ब्रजभाषा के विभिन्न विषय-बिन्दु संगृहीत हैं। रत्नाकार, सत्यनारायण कविरत्न, रामशंकर शुक्ल 'रसाल', अनूप, ब्रजनन्दन, शम्भुदयाल सिंह 'सुधाकर', प्रकाश द्विवेदी इत्यादि ने आधुनिक ब्रजभाषा में भ्रमरगीत-परम्परा को विकसित किया है और इस परम्परा में गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी को

---

[1] ऑरोविन्दो विला या ऑरविन्दो विलेज (अरविन्द-ग्राम)।

[2] पॉण्डिशेरी (फ्रेंच उच्चारण)।

एक निश्चित स्थान प्राप्त है। उनके अनेक छन्द देव और वचनेश का स्मरण कराते हैं। ब्रजभाषा उनकी पैतृकभाषा है, जिसके प्रति उनमें अटूट-अखूट अनुराग स्वाभाविक है। उनकी ब्रजभाषा सहज है, प्रयत्नज नहीं। किन्तु कविता सरल न होकर अत्यधिक अलंकृत है। उदाहरण देखे :

1. मानी सनमानी सूर मीरा ने बखानी नेह दरद दिवानी सो न अन्य अनुमानी है।
देव, मतिराम, घनआनँद, बिहारी, सेख, आलम, रहीम, रसखान रसखानी है।।
हिंदी हिंदबासिन की साख मरजाद राखै, बेद निगमागम पुरानन प्रमानी है।
बानी की न बानी सकै बिरचि सुबानी और ब्रज रज रंजित अनूप ब्रजबानी है।।
2. चंद्र मैं निचोरि चाँदनी मैं बोरि-बोरि घोरि कुंद कलिकान की कटोरिन मैं नायौ है।
सुबरन आब दै गुलाब के अँगारन पै अजब सराबी रंग डारि डारि तायौ है।।
परम सुनीत तामैं पुट नवनीत हूँ कौ कंजन सुबास सौ मसालौ महकायौ है।
साँउरे पिया कौ जिया चोरिबे कौ राधे बड़ी विधि सौ बदन तेरौ बिधि ने बनायौ है।।
3. फूटी परै कुंजन सौ, रंच न अमात आभा, सौंधे में अन्हात बल खात मधु बात री।
मुस्कात कंज, कोक कोकी हूँ सिहात सभै, घिरे जात पंछी भौंर मँडरात री।।
नील घन बसन सुहात दामिनी सी देह, काम कामिनी क्यौं खात मात सरमात री।
स्याम संग कौन उतै जात जलजातमुखी रात हूँ मैं जासौं आजु प्रात भयो जात री।।
4. राधे दिन आधे भई स्याम राधे राधे रै, पुनि भई राधेस्याम हेरै स्याम टेरै है।
नेरे आइ धाइ धाइ छेकै आपुनाई मग, दृगनि तरेरै, कबौ हँसि मुख फेरै है।।
साम सौं सबेरे औ सबेरे कबौं साम लागि आपुनी हो पौरि दौरि नंद पौरि घेरै है।
हे हरि! कहाँ लौं कहैं हारी सी हरी सी कबौं आपुही घरी घरी सु आपुही कौ हेरै है।।[1]

शकुन्त माथुर

सप्तक-परम्परा की कवयित्रियों में 'चाँदनी चूनर' तथा 'अभी और कुछ' की प्रेणता स्व. शकुन्त माथुर (जन्म 1922 ई.—दिल्ली) अग्रणी हैं, क्योंकि उनकी कविताएँ सुस्पष्ट एवं विशिष्ट अर्थवत्ता में कीर्ति चौधरी एवं सुमन राजे की कविताओं से श्रेष्ठतर हैं। शकुन्त माथुर ने आकर्षक गीत भी लिखे हैं, नई कविताएँ भी लिखी हैं, जो प्रभावी हैं। काँच उन्हें प्रिय है और वे टूटने से घबराती नहीं, पर वह कच्चा नहीं है। शकुन्त माथुर प्रसिद्ध प्रयोगवादी कवि गिरिजाकुमार माथुर की पत्नी हैं। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. खंडों की सार्थकता

रस-भरा
शीशे का गिलास
टूट गया
हाथ से छूट गया
टूट जाने दो
छूट जाने दो
ज़िन्दगी को अब टुकड़ों में देखो।

2. काँच

तुम्हें मालूम नहीं था क्या?
काँच एक ही झटके से

---

[1] अनन्य-दशा (जिसे मैं 'प्रेमाद्वैतवाद' कहता हूँ) का यह उत्कृष्ट पारम्परिक छन्द विद्यापति, सूर, बिहारी, देव के एतद्वत छन्दों की टक्कर लेता है।

टूट जाता है
और उसकी नज़ाक़त इसी में है
कि वह टूट जाय।

‘राजेश’[1]

‘चैतन्य-चन्द्रिका’ (आदिकाण्ड, विद्याकांड, भक्तिकांड, संकीर्तनकांड, परिव्राजककांड, काशीकांड एवं नीलांचलकांड में विभक्त स्फीत खड़ीबोली-महाकाव्य) एवं ‘दोहा-हज़ारा’ (भक्तिभावखंड, प्रेमभावखंड, शृंगारखंड, भक्तिरसखंड, कलालंकृतिखंड, नीति-उपदेशखंड एवं विविध खण्ड में विभक्त ब्रजभाषा में रचित मेरी समझ में राजेश-तिरुक्कुल[2]) के स्मरणीय कवि राजेदयालु[3] ‘राजेश’ (16 जनवरी, 1923) ने ‘बरवै-हज़ारा (अवधी) भी लिखा है। ‘राजेशदोहावली’, ‘कवित-शतक’ (ब्रजभाषा) एवं ‘कवित्तवीथिका, ‘कवित-त्रिलोक’ (खड़ीबोली) इत्यादि उनकी अन्य कृतियाँ उन्हें मुख्यतः ब्रज, अवधी एवं खड़ीबोली (हिन्दी की तीनों प्रमुख साहित्यिक विभाषाओं) का समक्ष कवि सिद्ध करती हैं। इस दृष्टि से रामेश्वरप्रसाद पाण्डेय ‘रमेश शास्त्री’ (1914 ई., निवास लखनऊ) भी स्मरणीय हैं। ‘राजेश’ जी ने भक्ति एवं शृंगार के में समान सफलता प्राप्त की है। आधुनिक ब्रजभाषा-दोहाकारों में ‘राजेश’ ने दुलारेलाल भार्गव (दुलारे-दोहावली) की शृंगारप्रधानता एवं वियोगीहरि (वीर-सतसई) की वीरप्रधानता का द्विविध-उत्तराधिकार ग्रहण किया है। उनके भाई स्व. अवधेशदयालु एवं योगेशदयालु भी अच्छे कवि हैं। योगेशदयालु उच्च प्रशासक होते हुए भी प्रसिद्ध सवैयाकार रहे तथा अवधेशदयालु तुलसीदास कृत लघुकृति ‘वैराग्य संदीपिनी’ शीर्षक विशालतर टीका के लिए स्मरणीय है—यह टीका भारतीय धर्मसाधन की विशद दीपिका है। लखनऊ में मिश्रबन्धु की आलोचकत्रयी के अनन्तर दयालु-बन्धु की कवित्रयी सर्वथा उल्लेखनीय है। यत्र-तत्र श्री गिरिजादयाल ‘गिरीश’ को भी इस त्रयी से संपृक्त किया जाता है, जो ग़लत है। राजेश ‘चैतन्यचन्द्रिका’[4] अपनी वर्णनात्मक कविता के कारण अनेकानेक अधुनातन खड़ीबोली-महाकाव्यों के सदृश असाधारण नहीं लगती[5], किन्तु अपने ब्रजभाषा-दोहों में वे बहुत सफल हैं।[6] अपने समाहार में ‘राजेश’ जी एक अतिस्फीत एवं अत्युत्कृष्ट कवि हैं। वे परिणाम के कवि पहले हैं, गुण के बाद में; किन्तु उनका ‘समग्र’ उन्हें सकल कवि ही सिद्ध करता है। उनके समुचित आकलन की आवश्यकता है। पर खेद कि वे भारतवादी है। इनकी स्फीत रचना-राशि से उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. बड़ी देर में कहा गौर ने, ‘‘नींद नहीं क्या आती है?
क्या पद-सेवा में ही सारी निशा बितायी जाती है?’’
‘‘आप चाहते हैं सो जाऊँ, और आप क्या चाहेंगे?
आप जागकर बैठ चुके हैं, मुझे जागने क्यों देंगे?’’

‘‘व्यर्थ अधीर हुई जाती हो, क्या तुरन्त मैं जाऊँगा?
तुम्हें नींद आने पर थोड़ी बेला यहीं बिताऊँगा।।’’

---

[1] अन्य ‘राजेश’ भी हैं, जिनमें जीवन-तरंग के कवि रवीन्द्रकुमार ‘राजेश’ तो लखनऊ के ही हैं। ‘राजेश’ उपनाम का प्रयोग कानपुर के कवि श्री विश्वनाथ मिश्र (देहान्त 11 अगस्त, 1974) भी करते थे।

[2] तिरुवल्लुवर कृत अमरग्रन्थ जो भर्तृहरि कृत शृंगार-नीति-वैराग्य-शतकत्रय का स्मरण करानेवाला तमिल-वेद है।

[3] ब्रजभाषा कविता में ‘दयाल’ छाप भी लगाते हैं।

[4] कविवर यज्ञदत्त शर्मा (विष्णुपुर, बेगूसराय) ने 1915 ई. के आसपास ‘श्रीगौरांगचरित्रमानस’ की रचना की थी। स्व. प्रभुदत्त ब्रह्मचारी कृत ‘चैतन्य-चरितावली’ (गद्य) प्रख्यात है ही।

[5] उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ ने ‘चेतन्य-चन्द्रिका’ महाकाव्य (1988 ई.) पर तुलसी-पुरस्कार प्रदान किया।

[6] ‘राजेश’ जी ने डॉ. मोहम्मद अख़लाक़ (5 जुलाई, 1966, लखनऊ) के दोहों की सराहना की है। हिन्दी-विद्वान् डॉ. अख़लाफ ने खड़ीबोली और अवधी में दोहे और बरवै रचे हैं तथा दोनों में ही कहानियाँ भी लिखी हैं। स्व. ‘भुशुंडि’ जी की अवधी-दोहा-रचना तो विशिष्ट है ही। संप्रति दोहा-लेखन बहुत हो रहा है। स्व. काका हाथरसी, छन्दराज पारदर्शी, ए. बी. सिंह (अमरेन्द्र बहादुर सिंह), सारस्वत मोहन मनीषी, महेश ‘दिवाकर’ इत्यादि ने राशि-राशि दोहे रचे हैं। पाकिस्तान में भी यह छन्द लोकप्रिय है। सरहपा से अद्यावधि दोहा की लोकप्रियता उसे छन्द-सम्राट सिद्ध करती है। दोहा ने शेर (गज़ल, कव्वाली वगैरह समेत) को प्रभावित किया है।

''मैं अब तो सच ही अधीर हूँ, मेरा चित्त विकल वेहाल।
बड़े धीर हो आप, आप ही शयन कीजिये थोड़े काल।....''
2. नारि नागिनी नरक निकेतन, इन बातों में क्या रक्खा?
नारि न अरि है, इसीलिए तो 'नारि' नाम इसका रक्खा।।
मधुर मञ्जु मेदिनी-मण्डनी मुद-मन्दिर महती महिला।
दह न मानता इसकी महिमा, जिस मनुष्य का मन मैला।।....

तू उसको प्रमदा कहता है, क्या तू हुआ प्रमत्त नहीं?
वह भामा है तो लड़ने में क्या तू हुआ प्रवृत्त नहीं?
अब तो सोचो, समझो, देखो, नारि निरन्तर हितप्रदा।
प्रियवपु प्रियमुख प्रियकर प्रिधा प्रिधोरुप्रियंवदा।।
नारि लोक नीता सन्नीता, नीति सिखाने वाली है।
जीवन-पथ धावन की पावन रीति सिखाने वाली है।।
छोटे-बड़े पदों पर पहुँची, क्या-क्या करती कार्य अनूप।
अब लो करके दिखलाया है इस अबला ने अपना रूप।। (महती महिला-नारी)

खड़ीबोली, ब्रजभाषा एवं अवधी में साधिकार एवं सफल काव्यरचना करने वाले कवियों में 'राजेश' जी अग्रणी हैं। स्व. आशुकवि जगमोहनाथ अवस्थी, डॉ. लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश' ने भी इस दिशा में उल्लेख्य कार्य किया है। स्व. डॉ. त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' (बाराबंकी) कृत 'समस्यापूर्ति-संग्रह' (1996 ई.) एक ओर समस्या-पूर्ति की प्राचीन काव्यविधा में सफल प्रयोगों के कारण महत्त्वपूर्ण है, तो दूसरी ओर अवधी, ब्रजभाषा एवं खड़ीबोली में साधिकार एवं सफल काव्यरचना के कारण। कुछ अन्य कवियों ने त्रिविभाषा-सर्जन किया है। 'मधुरेश' ने संस्कृत में भी हाथ आज़माया है।

काज वेंकटेश्वर राव

1946 ई. में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा मद्रास की रजतजयन्ती के अवसर पर स्वयं गाँधी द्वारा सम्मानित हिन्दी सेवी काज वेंकटेश्वरराव (30 मई, 1923, गन्नवरम्, जनपद कृष्णा, आन्ध्र प्रदेश) 'अन्तस्तल' (1993 ई.) के उल्लेखनीय हिन्दी-कवि भी हैं। 'जयहिन्द-जय हिन्दी' में रमे-रसे वेंकटेश्वरराव की अनवरत हिन्दी-सेवा ''सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः'' कहने पर विवश कर देती है। उनकी अकल एवं शिल्परहित पारम्परिक कविता देशभक्ति, हिन्दीप्रेम, समाज-सुधार (विषमता, दहेज प्रभृति पर प्रहार, व्यथा) इत्यादि के कारण प्रेरक बन पड़ी है। उन्होंने मैथिलीशरण, दिनकर इत्यादि की प्रेरणा को स्वयं स्वीकार किया है। प्रसाद ने भी उन्हें प्रभावित किया है। भारतीय संस्कृति एवं उदात्त जीवनमूल्यों के प्रति उनकी अटूट आस्था श्रद्धा उत्पन्न करती है। उदाहरण देखें :

1. वह देश जो अपनी संस्कृति खोता है, बुद्धि उसकी अपने आप विकल होती है।
बुद्धि जब विकल बन जाती है, तब आचार अनाचार बन जाता है।
बुद्धि विकल हो, राज करती है, तो सहज ही, मानव जंगली बनता है।
अंतस्तल की करुण स्रवंति में स्नान करनेवाला मानव, करता अपनी ही संस्कृति के दर्शन।
2. सैकड़ों को मार कर ही सही, कराड़ों का कल्याण कार्य ही,
कर्मयोगियों का कर्तव्य होगा। जो साथ ही सत्कार्य होगा।।
3. युग युग से स्त्री ने जिसका साथ दिया, वह सत्कीर्तिसंपन्न बना, महान् बना।
जिसने उससे मुँह मोड़ लिया, वह अभागा बना, बड़ा दुखी बना।।

शिवानी

हिन्दी के नारी-उपन्यासकारों में 'कृष्णकली', 'चौदह फेरे', 'कस्तूरी मृग', 'चल खुसरो घर आपने', 'स्वयंसिद्धा', 'पाथेय', 'तिलपात्रा', 'गैंडा', 'उप प्रेती' इत्यादि की प्रणेता स्वर्गता गौरा पन्त 'शिवानी' (1923 ई., राजकोट, निवास लखनऊ) को एक विशिष्ट

स्थान प्राप्त है। उनके 'हवेली', 'मेरा भाई' इत्यादि कहानीसंग्रह, 'वातायन' शीर्षक आत्मानुभव, 'जालक', 'आमादेर शान्तिनिकेतन' जैसे संस्मरण-ग्रन्थ 'यात्रिक' शीर्षक यात्रावृत्तग्रन्थ इत्यादि लेखन की स्फीति के द्योतक हैं। शिवानी एक सुसंस्कृत नारी-उपन्यासकार हैं; जबकि मन्नू भण्डारी तेज़ और कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग इत्यादि तेज़-तर्रार (अमृता प्रीतम मुख्यतः पंजाबी की हैं किन्तु उनका हिन्दी-लेखन इसी वर्ग का है) इन्दिरा दीवान इत्यादि मध्यमप्रतिपदावर्ती। शिवानी की अक्लिष्ट संस्कृतनिष्ठ भाषा गरिमामयी है, जबकि अधिकांश अन्य नारी-उपन्यासकार (कहानीकार भी) 'नए मुहाविरे' (जिसमें उर्दबाज़ी की रंगत और अंग्रेजी शब्दबाहुल्य की ठसक अन्धे को भी दीख जाती है) पर बहुत रीझी हैं। शिवानी की उपन्यासकार-छवि विषयवस्तु से भाषा तक सर्वत्र अस्मितासम्पन्न है। पुत्री इड़ा पाण्डे ने उनकी अच्छी जीवनी लिखी है जो प्रशंसित हुई है।

शिवानी ने ग्रामीण, नागर, गृहिणी, सामाजिक प्रभृति सभी वर्गों की नारियों का पर्याप्त निस्संग एवं प्रौढ़ चित्रण किया है। उनका विभिन्नवर्गीय नरों का चित्रण भी सफल है। शिवानी यथार्थ को यथार्थ तक ही सीमित रखती हैं, उसे स्वाभाविक या कृत्रिम विभीषिका का पर्याय नहीं बनाती। वे व्यापक जीवन का सहज चित्र उरेहती हैं, 'किसी-एक' या 'किन्हीं-एक' या 'किन्हीं-कुछ' का वैचित्र्यपूर्ण अंकन नहीं करती—जैसाकि 'फ़ैशन' है। कृष्ण सोबती 'पोर्नो' के चटपटेपन के कारण दिल्ली के 'अमृती'[1], 'खुशवन्ती'[2], और 'इन्द्री'[3] वातावरण में बेहद खप जाती हैं। किन्तु शिवानी सांस्कृतिक धरातल का त्याग नहीं करतीं। फिर भी वे बहुत लोकप्रिय हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि जनता महज़ 'सेंसेशन' और 'थ्रिल' पर ही नहीं टूट गिरती, वह स्वाभाविक और शालीन कला का भी आदर करती है।

'अरुण'[4]

स्फीत राष्ट्रकाव्य 'महाभारती' (भारतीय शक्ति, सौन्दर्य और साधनाप्रधान महाकाव्य) सीता-वरीयतामय (नामविपर्ययपूर्ण) 'अरुण-रामायण', बाण भट्ट एवं उनकी अमर कृति कादम्बरी पर आधृत 'बाणम्बरी', 'कृष्णाम्बरी' तथा 'विदेह' शीर्षक प्रशंसित एवं सम्मान्य महाकाव्यों के प्रेणता कविवर पोद्दार रामावतार 'अरुण' (24 नवम्बर, 1923, पोठियागाछी, जनपद समस्तीपुर, बिहार, निवास समस्तीपुर) ने 'कालिदास', 'विद्यापति', 'सूरश्याम' जैसे अनेक प्रवन्धकाव्य भी रचे हैं तथा 'कालदर्पण', 'राष्ट्रशत्रु' एवं 'राष्ट्रसंघर्ष' (1992 ई.) जैसे कवितासंग्रह भी। उनका सृजन अत्यन्त विराट् है। वे छन्दबद्ध एवं छन्दमुक्त अथवा पारम्परिक एवं नूतन दोनों शैलियों में प्रवाहपूर्ण सर्जना करने में सर्वथा सक्षम हैं। 'भगवान बुद्ध की आत्मकथा', 'कालिदास की आत्मकथा' एवं 'गुरु गोविन्दसिंह की आत्मकथा' उन पर 'बाण भट्ट की आत्मकथा' के प्रणेता डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के प्रभाव की सूचना देती है। ग़नीतमत यह रही कि उन्होंने मनु शर्मा के सदृश 'द्रौपदी की आत्मकथा' 'कर्ण की आत्मकथा', 'कृष्ण की आत्मकथा' जैसी असंख्य रचनाएँ प्रस्तुत नहीं की।

'अरुण की महाकाव्य-संख्या पं. रामदयाल पाण्डेय, विनीत विक्रम बौद्ध (रामखेलावन वर्मा) परमानन्द जड़िया, विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद', ताराचन्द पाल 'वेकल', परमेश्वर 'द्विरेफ' 'भव्य' इत्यादि का स्मरण कराती है।

यह सत्य है कि 'अरुण' की सीमातीत स्फीति में कला के वैभव-विशेष दृग्गत नहीं होती, तथापि उनकी जीवन की व्याप्ति, सांस्कृतिक, सजग आस्था, युगनिष्ठा, छन्दविविधता, नवसर्जनात्मकता इत्यादि उन्हें एक स्मरणीय कवि सिद्ध करने के लिए पर्याप्त है। 'अरुण' के काव्य का प्राणतत्व है भारत; भारतीयता ही उनकी कला है।

'अरुण' की कविता से उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. महाध्यान-वितान में वह व्योमवसना कौन, जन्म-युवती, ज्योति-जननी विधि-विधा-सी मौन
छिटकती कुन्देन्दु-सी आनन्द-उज्ज्वल कांति, नीलिमा-निधि में निनादित शारदीया, शांति
नमस्ते हे शास्त्र-शतदल की सुवासित शक्ति, प्रणव-रव में नव प्रभा को दो अरुण अनुरक्ति
मनःक्षिति पर दृष्टिभंगी विश्व-सृष्टि-विभास, काव्यलोचन में रहस्यावृत अजस्र प्रकाश....
(महाभारती)

---

1. अमृता प्रीतम संबद्ध।
2. लिक्खाड़-पत्रकार खुशवन्तसिंघ (वे 'सिंह' नहीं हैं) जो आजीवन भोगवादी रहे।
3. साहित्य अकादमी (उर्फ़ 'राहित्य टकादमी') के सचिव (अब 'पूर्व') डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी ('चौधरी' नहीं) बला के रसिक रहे हैं।
4. श्री रमेश्वर 'अरुण', डॉ. सरनामसिंह 'अरुण', डॉ. योगेन्द्र शर्मा 'अरुण', डॉ. आत्माराम शर्मा 'अरुण' का स्मरण आता है—हिन्दी अनेक अरुणों से ज्योतिर्मय है!

2. उड़ता सुदूर जब ज्ञान-हंस, नयनों के मोती झरते हैं
कल्पना किरण जब बन जाती, प्राणों के शब्द बिखरते हैं।
लेकर अदूरवर्ती विचार, तुम करो समस्या-समाधान
उठने दो अब जन-जीवन को बनने दो भारत को महान!

(महाभारती)

त्रिलोचन शास्त्री

यथार्थवादी युग के समाजपरक-वादबद्ध कवियों में 'धरती' (1945 ई.), 'गुलाब और बुलबुल' एवं 'दिगंत' (1959 ई.) के कवि त्रिलोचन शास्त्री को साम्यवादी साहित्यकारों ने बहुत आदर प्रदान किया है। 'धरती' में स्वछन्दतावाद समाजवाद[1] को गले लगाता दीखता है—कौन बीस है, इसका निर्णय कठिन है। त्रिलोचन की कविता में वाद की जकड़ कहीं भी कड़ी नहीं है। नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल के सदृश उनका साम्यवाद चेतन है, जड़ नहीं। 'गुलाब और बुलबुल' में ग़ज़लों की रंगत रोमानियत में डूबती नहीं लगती, ज़िन्दगी की हक़ीक़त के नज़दीक खड़ी मिलती है। 'दिगंत' में कवि ने पर्याप्त आत्मपरक कविता भी रची है, जो 'सॉनेट' के कलेवर के विवृत हुई है—निस्सन्देह, इस संग्रह में कवि का वाद-प्रेरित जीवनवाद अधिक दृढ़ता से अभिव्यक्त हुआ है। 'सॉनेट' रचने में त्रिलोचन शास्त्री एवं गंगारत्न पाण्डेय को उल्लेखनीय सफलता प्राप्त हुई है।

त्रिलोचन ने गीत, ग़ज़ल और 'नयी कविता' के सृजन में एकरूप सफलता प्राप्त की है। प्रणय एवं प्रकृति के प्रति उनका रुझान रहा है, पर ज़िन्दगी के दुःख-दर्द को नज़रअन्दाज करके नहीं। उनकी भाषा-शैली अपनी है। ग्रामीण शब्दों का वे भरपूर प्रयोग करते हैं—अनेक कविताओं के शीर्षक तक ग्रामीण भाषा में हैं। धूमिल की ख़लिस-यथार्थवादिता और बेबाक-शैली अधिक असरदार है, पर त्रिलोचन में कला के तत्त्व अधिक प्रभावी लगते हैं।

एक उदाहरण प्रस्तुत है :

झापस

आठ पहर की टिपु-टिपु सड़क भीग गयी है
पेड़ों के पत्तों से बूँदें गिरती हैं टपु-टपु
हवा सरसराती है
चिड़ियाँ समेटे पंख यहाँ-वहाँ बैठी हैं
ऐसे लोग आते हैं जाते हैं
जो काम टाल नहीं सकते
किसी तरह
सुरमई है
दिन की आभा
छाया-सी सभी ओर छायी है
बादलों ने हलकी अँगड़ाई ली
एक ओर चमक ज़रा बढ़ गई
हवा नये अँखुओं से यों ही बतियाती है
उनका सिर हिलता है
फूल खिलखिलाते हैं।

---

[1] साम्यवाद या मार्क्सवाद—त्रिलोचन के सन्दर्भ में। रघुवीर सहाय के सन्दर्भ में 'लोहियावाद' लिखना अधिक सार्थक होता।

गुलाब[1] खंडेलवाल

'उषा'[2] शीर्षक कल्पनापरक पारिवारिक 'आलोककृत' शीर्षक गाँधी-सन्दर्भी काव्य के उल्लेखय् रचयिता गुलाब खंडेलवाल (21 फरवरी, 1924, नवलगढ़, राजस्थान, प्रवास गया, निवास प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश) ने 'राजराजेश्वर अशोक', 'पँखुरियाँ गुलाब की', 'सौ गुलाब खिले', 'कस्तूरी कुण्डल बसे' इत्यादि अन्य अनेकानेक कृतियाँ भी रची हैं। स्व. पद्मभूषण श्रीनारायण चतुर्वेदी ने 'गुलाब-ग्रंथावली' (तीन खण्ड) का सम्पादन किया है। उनसे संबद्ध लघुशोध एवं शोधकार्य भी हुए हैं। गुलाब जी की स्फीत रचना-राशि में छन्दबद्ध कविता, पद गीत, मुक्तिकविता, सभी के दर्शन हो जाते हैं। उनकी अनुभूति के आयाम भी व्यापक हैं। यद्यपि 'प्रस्थान' या मौलिकता, कला या शिल्प की दृष्टियों से उनकी कविता विशिष्ट नहीं लगती, तथापि विराट् अभिव्यक्तिलोक के कारण वे एक उल्लेखनीय कवि अवश्य हैं। उनका प्रकृतिकाव्य आकर्षक है। दो उदाहरण देखें :

1. हरे धान की बाँधे कलगी, बना छबीला बाँका, खेत-खेत उड़ता फिरता है राजकुमार हवा का
हरे बाँस की वंशी मधुर बजाती वह चलता था, दहनी मुट्ठी में लेकर टहनी की हरी पताका।

2. मेरी आयु के चालीसवें दिनमान!
जेठ के मध्याह्न!
अर्जुन के चढ़े गांडीव-सा,
मैं आज तेरा कर रहा स्वागत
नए संकल्प से तनकर
पड़ी हो गाँठ ज्यों शिव की सिहर जगती भवों में
नाचता जैसे कन्हैया
काल-कालिया के विषम फुफकारते फण पर।

चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा'

'वन्दना' एवं 'पराग' की प्रसिद्ध कवयित्री चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा' (23 अप्रैल, 1924, प्रयाग, पतिसंग रीवाँ) को 'आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेमगीत' के संकलनकार क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने 'कोलिलकांठी कवयित्री और साधिका' बतलाया है। निस्सन्देह, वे अपने मौलिक कृतित्वगत वंकिमता के कारण एक अग्रणी कवयित्री रही हैं। उनके जैसे सफल गीत कम कवि और कमतर कवयित्रियाँ लिख सकी हैं। उनका 'प्रीत बन जाओ।' प्रस्तुत है :

छूकर प्राणों की पीर, प्रीत बन जाओ!
जो कुछ सुलझी थी आज उसे उलझा दो
जो कुछ उलझी थी आज उसे सुलझा दो
मेरे आँसू के सावन आज सुखा दो
मैं चाह रही हूँ मुझको आज दुख दो
नयनों के नेही स्नेह-नीति बन जाओ!
छूकर प्राणों की पीर, प्रीत बन जाओ।

तुम स्नेह-स्वाति बन जीवन भर तरसाओ
मेरे चित चातक को न अधिक दरसाओ

---

[1] गुलाबसिंह 'गुलाब', गुलाबरत्न वाजपेयी 'गुलाब', डॉ. गुलाबराय इत्यादि का स्मरण होता है।

[2] डॉ. रामवरण चौधरी (दुमका) ने उषा पर 'ऋतावरी' तथा श्री दयानन्द जड़िया 'अबोध (लखनऊ) ने 'उषा! तुम कौन?' जैसे सुन्दर काव्य रचे हैं।

अधरों की यदि मुसकान चुराओ जानूँ
इतना कर दो तो धन्य भाग मैं मानूँ
तुम वर्तमान के चिर अतीत बन जाओ!
छूकर प्राणों की पीर, प्रीत बन जाओ!

मेरे सम्मुख झूठा शृंगार नहीं है
स्वप्निल आशाओं का आधार नहीं है
मेरी वीणा के बिखरे तार सजा दो
इंगित से उसको क्षण-क्षण आज बजा दो
गाकर तुम मेरे गीत, मीत बन जाओ!
छूकर प्राणों की पीर, प्रीत बन जाओ!

डॉ. एन्. चन्द्रशेखरन् नायर

'हिमालय गरज रहा है' एवं 'गौरीशंकर' के राष्ट्रवादी-संस्कृतिवादी सत्कवि, 'देवयानी', कुरुक्षेत्र जागता है' एवं 'द्विवेणी' के नाट्यकार, 'प्रोफ़ेसर और रसोइया' एवं 'सेवाश्रम' के कहानीकार, 'जी. शंकरकुरुप और सुमित्रानन्दन पन्त', 'तुलसीदास रामायण' (मलयाली अनुवाद), 'सी. वी. रमन पिल्ले और वृन्दावनलाल वर्मा', 'हिन्दी साहित्य को केरल की देन' जैसे अनमोल ग्रन्थों के प्रणेता, 'राजभाषा हिन्दी की जय हो', 'शुक्लोत्तर हिन्दी साहित्य को दक्षिण का योगदान' प्रभृति शत्-शत् मलयाली एवं हिन्दी आलोचनात्मक-निबन्धों के प्रणेता आलोचक, तुलनात्मक अध्ययन के एक विशिष्ट विद्वान्, केरल हिन्दी साहित्य अकादमी के प्राण[1], शोधकार्य के एक स्मरणीय आचार्य, केरल हिन्दी साहित्य अकादमी शोधपत्रिका' (1996 ई.) के सम्पादक डॉ. एन. चन्द्रशेखरन् नायर (27 जून, 1924, कार्यक्षेत्र तिरुअनंतपुरम्) हिन्दी के एक मौलिक बहुविधाकार साहित्यसेवी एवं उत्तर-दक्षिण के एक प्रमुख साहित्यसेतु के रूप में सर्वतः समादरणीय हैं। वे एक विख्यात चित्रकार भी हैं। केरल से दिल्ली तक उनको अनेक सम्मान ठीक ही प्राप्त हुए हैं, अनेक उपाधियाँ ठीक ही प्राप्त हुई हैं। स्व. पद्मश्री आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन' सम्पादित 'चन्द्रशेखरन् नायर अभिनन्दनग्रन्थ', डॉ. गोपाल जी भटनागर कृत शोधग्रन्थ 'दक्षिण के प्रतिनिधि हिन्दी-साहित्यकार डॉ. एन. चन्द्रशेखरन् नायर' एवं डॉ. नत्थनसिंह कृत स्वतन्त्र आलोचना-ग्रन्थ 'भारतीयता के संरक्षक साहित्यकार : डॉ. एन्. चन्द्रशेखरन् नायर' उनकी बहुआयामी प्रतिभा एवं सुदीर्घ हिन्दीसेवा पर प्रशस्य प्रकाश डालते हैं। केरल सदैव हिन्दीप्रेमी राज्य रहा है। उन्नीसवीं सदी ई. में स्वाति राजा तिरुनाल ने राधाकृष्ण-लीला पर हिन्दीकाव्य-रचना की थी। तिरुनाल को केरल में हिन्दी का प्रथम कवि कहा जाता है। संप्रति आनन्दशंकर माधवन् केरल में जन्में अग्रणी हिन्दी कवि, उपन्यासकार एवं विचारक हैं। डॉ. नायर केरल के हिन्दीसेवियों में सर्वाधिक विख्यात हैं, क्योंकि माधवन् जी बिहार के हो गए हैं। डॉ. मलिक मोहम्मद, डॉ. एन. रामन् नायर, डॉ. पी. वी. विजयन्, पी. वी. वर्गीस, प्रो. एम. के. सुकुमारन् नायर, डॉ. पी. एम. आन्टणी, के. गोपीनाथ, डॉ. मोहम्मद कुंज मेत्तर, कुन्नुकुट्टि कृष्णनूकट्टि, डॉ. जे. रामचन्द्रन् नायर, डॉ. एन्. रवीन्द्रनाथ, शंकरमंगलम्, डॉ. सेतुनाथ, प्रो. लक्ष्मी कुट्टी अम्मा, प्रो. सरला देवी, सरोजा पी. नायर, श्रीमती टी. एन. योन्नम्मा, डॉ. एस. तंगमणि अम्मा, डॉ. के. जे. हेलन, श्रीमती रेखा पी. मनोज, प्रवीणा सन्तोष प्रभृति केरल दक्षिण के राज्यों में हिन्दी-सर्जन की दृष्टि से प्रमुख राज्य बन गया है।

डॉ. नायर के समय साहित्य में प्रशस्त मानवतावाद एवं प्रशस्य राष्ट्रवाद की व्याप्ति अतीव प्रेरक एवं उपयोगी है। भारतीय संस्कृति के प्रति, भारत के महान् अतीत के प्रति, विज्ञान के विनाशवाद के प्रति उनकी चेतना स्मरणीय ही नहीं प्रत्युत आदरणीय भी है। उनकी भाषा मानक एवं संस्कृति होते हुए भी न जटिल है, न कृत्रिम। मलयालम्, सम्भवतः शंकरचार्य के प्रभाव के कारण, बहुत संस्कृतनिष्ठ भाषा है। वहाँ के मुस्लिम सांसदों की भाषा का पचास प्रतिशत संस्कृत के कारण समझ में आ जाता है। मैंने इसके व्यक्तिगत

---

1. इस संस्था के समग्र दक्षिण पं. नारायणदेव, श्री पी. जी. वासुदेव, श्री अभयदेव, डॉ. वी. गोविन्दशेणाय, श्री पी. नारायण, श्री वी. गोविन्दन् नंबीशन्, श्री आनन्दशंकर माधवन्, श्री के. एस. सोमनाथ नायर, डॉ. एन्. रामन् नायर, प्रो. पी. आर. भास्करन् नायर, श्री कवियूर शिवरामय्यर, डॉ. सरगु कृष्णमूर्ति, प्रो. जी. जे. हरिजीत जैसे मान्य साहित्य स्रष्टाओं तथा श्री कुन्नकुड़ि कृष्णन् कुट्टी, डॉ. जे. बालकृष्णन् चोट्टियार, डॉ. गणेश अय्यर, श्री के. एस. राघवन् पिल्लै, पी. वी. वर्गीस, डॉ. पी. वी. विजयन्, डॉ. एन्. ई. विश्वनाथ अय्यर, डॉ. भीमसेन 'निर्मल' जैसे विद्वानों को सम्मानित किया है।

अनुभव की चर्चा 5 दिसम्बर, 1995 को राष्ट्रपति डॉ. शंकरदयाल शर्मा से की तो उन्होंने 'तत्सम शब्दों' का संकेत किया। त्यागराज के कारण तेलुगू और उनके कर्णाटक-संगीत के प्रभाव से कन्नड़ भी संस्कृतनिष्ठ है तथा कुछ-न-कुछ समझ में आ जाती है। संस्कृतनिष्ठ तो तमिल भी थी पर आर्य-द्रविड़-भेदवादी राजनीति ने उसे संकीर्ण एवं कृत्रिम बना डाला। यद्यपि मौलिक एवं वंकिम सृजनात्मक की दृष्टि से डॉ. नायर का साहित्य असाधारण नहीं लगता, तथापि 'केरल के हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास' एवं 'हिन्दी और मलयालम के दो प्रतीकवादी कवि[1] जैसे विद्वत्तापूर्ण आलोचना-ग्रन्थों में वे बहुत सफल सिद्ध होते हैं। 'केरल की हिन्दी कविताएँ' सम्पादित करके भी उन्होंने हिन्दी की सेवा की है।

रामदरश मिश्र

नयी कविता के 'सशक्त हस्ताक्षर' डॉ. रामदरश मिश्र (जन्म 1924 ई.) उन कवियों में से एक हैं जिन्होंने प्रगतिवादी या जनवादी या साम्यवादी आवाज़ को प्रयोगवादी साज़ के साथ पेश किया। शायद इसी झोंक में वे पूर्णविराम पर 'फुलस्टॉप' को वरीयता देते हैं! 'आधुनिकता' की 'साधना' का इससे बड़ा 'प्रतीक' और क्या हो सकता है!! जब कॉमा, इनवर्टेड कॉमा, सेमोकोलन, कोलन, प्रश्नवाचक, विस्मयादिबोधक सारे चिह्न विदेशी, तब पूर्णविराम देशी या पारम्परिक क्यों!!! वे कहानीकार, उपन्यासकार एवं आलोचक भी हैं किन्तु उनका कवि-रूप ही विशेष उल्लेख्य है। आलोचना के फेर में तो वे नाहक ही पड़े। उन्होंने नवगीत भी बढ़िया रचे हैं। श्री राजेन्द्रप्रसाद सिंह सम्पादित 'नवगीत सप्तदशक' (पूर्वाद्ध) में उनकी प्रथम-प्रतिष्ठा ठीक है। एक सुशिक्षित प्राध्यापक होने के कारण भी उनकी कविता का बिंबविधान विशेष विशद बन पड़ा है। गोरखपुर जनपद से जुड़े और काशी में पढ़े डॉ. रामदरश मिश्र का साम्यवाद ठूँठ-छाप कैसे हो सकता है? दिल्ली की ठसक में रहते भी उनका जनवाद तरल है। उनकी अनुभूति में गाँव की सोंधी माटी महकती है, उनकी अभिव्यक्ति में गाँव और लोचदार शब्द एक अनूठी कला की सृष्टि कर देते हैं। उनकी कविता में शोषण-प्रपीड़न में आकंठ निमग्न स्वातन्त्र्योतर व्यवस्था के प्रति आक्रोश तो नहीं है किन्तु विरोध अवश्य है। शक्ति का अभाव उनके सृजन का प्रमुख दौर्बल्य है। किन्तु वे अपनी तरल कला से प्रभावित करते हैं :

झट-झट-झट पत्ते झरने लगे
भर आया दर्द से हिया
बुझ-बुझ कर खेतों के रंग बिखरने लगे
काँप उठा अनगिन छायाओं से सूना जल
बिखर गए तिनको-से बँधे हुए टूटे पल
किसने फिर स्वप्न छू दिया
पत्थर से जमें प्राण फिर-फिर डरने लगे
शिखर-शिखर नभ-गिरि का टूट उड़ा जाता है
बाँसों से आज पवन हाथ छुड़ा जाता है
खींच रहीं दीठि दूरियाँ
उजड़ी डाली-डाली पर स्वर फिरने लगे।

मोहन राकेश

1950-1970 ई. के दो दशकों में नाट्यकार एवं कहानीकार के रूपों में स्व. मोहन 'राकेश' (8 जनवरी, 1925-72 ई.) की बहुत चर्चा हुई; सबसे बड़ा कारण था उनका सजीव समाज-चित्रण एवं वंकिम शिल्प जो जीवन की विभीषिका के चित्रण में अद्वितीय प्रमाणित हुआ, जिससे अभिभूत होकर एक उत्साही प्राध्यापक-लेखक ने उन्हें 'आधुनिक नाटक का मसीहा' ही घोषित कर डाला! भारत में मसीहों की क्या कमी? फिर, मसि और मसीहा निकट भी हैं! क्रमिक विकास की सूचक 'नए बादल', 'जानवर और

---

1. सुमित्रानंदन पंत एवं जी. शंकर कुरुपू—दोनों विख्यात, दोनों ज्ञानपीठ-पुरस्कार विजेता।

जानवर', 'एक और ज़िन्दगी' तथा 'फ़ौलाद का आकाश' कहानीसंग्रहों के माध्यम से उन्होंने साम्प्रदायिकता, शोषण, पारिवारिक टूटन, घुटन, कुण्ठा, संत्रास इत्यादि के प्रभावी चित्रण किए। 'नई कहानी' के इतिहास में उनको एक ऊँचा स्थान प्राप्त है। साम्यवादी होने के कारण उनका मुस्लिम-सम्वेदन एवं हिन्दू-विगर्हण यशपाल, भीष्म साहनी, इत्यादि का सा होकर रह गया है, किन्तु वे अपेक्षाकृत अधिक सन्तुलित हैं। उनमें साम्यवादी-यथार्थ है अवश्य, यशपाल और कमलेश्वर जैसा प्रखर नहीं। एक मंच-सफल नाट्यकार के रूप में मोहन 'राकेश' का नाम सर्वथा उल्लेख्य है। गुण-परिणाम-प्रभाव के त्रित् में वे भारतेन्दु हरिशचन्द्र, जयशंकर प्रसाद एवं लक्ष्मीनारायण मिश्र की त्रयी में किसी से भी तुलनीय नहीं है। किन्तु उनकी प्रतिभा का पैनापन उन्हें समकक्ष जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर एवं लक्ष्मीनारायण लाल प्रभृति अधिक धारदार सिद्ध करता है। 'आषाढ़ का एक दिन' एवं 'लहरों के राजहंस' में वे प्रसाद के 'स्कन्दगुप्त' एवं 'अजातशत्रु' से बेहतर प्रभावित हैं, किन्तु 'आधे-अधूरे' में वे पर्याप्त सफल हुए हैं, यद्यपि इस पर भी भुवनेश्वर के महान् एकांकी 'स्ट्राइक' का प्रभाव स्पष्टतः दृग्गत होता है। भारतीय परिवार की पुरातन संस्था की टूटन और उसके बिखराव पर भुवनेश्वर, उपेन्द्रनाथ 'अशक़', विष्णु प्रभाकर इत्यादि ने भी लिखा है किन्तु इस दृष्टि से 'आधे-अधूरे' की विलक्षणता निर्विवाद है। सारे पैनेपन के बावजूद, 'आधे-अधूरे' में अंततः पति-पत्नी का समझौता-सा चित्रित कर भारतीय यथार्थ का सम्मान किया गया है। मोहन 'राकेश' की भाषा सन्दर्भो की विविधता के नितान्त अनुकूल एवं प्रभावी है, जिसका साहित्यिक मूल्य अप्रतिम है। उनकी प्रतिभा बहुत पैनी है, इसमें सन्देह नहीं।

विनीत विक्रम बौद्ध

अतिस्फीत नवबौद्धवादी 'बुद्धचरित-चन्द्रोदय' एवं स्फीत 'पांडव-पुराण' शीर्षक अवधी तथा स्फीत 'चन्द्रगुप्त मौर्य',[1] विशद 'जयदेव' एवं व्यापक 'चारुवाक' (चार्वाक) शीर्षक खड़ीवोली के पंच-महाकाव्य-प्रणेता, 'शम्बूकवध', 'नागौर का नाहर' (अमरसिंह राठौर) एवं 'अंगुलिमाल का आत्मसमर्पण' के खंडकाव्यत्रय-प्रणेता विनीत विक्रम बौद्ध[2] (2 दिसम्बर, 1925, सोनबर्षा, जनपद सतना, मध्यप्रदेश) ने गीत, ग़ज़ल, कवित्त, व्यंग्यकविता, मुकरियाँ, पहेलियाँ इत्यादि की रचनाएँ भी की हैं। उनका विराट् सृजन-सामर्थ्य विस्मयकारी है, महाकाव्यरचना में वे रामदयाल पाण्डेय, पोद्दार रामावतार 'अरुण', परमानन्द जाड़िया, विनोचन्द पाण्डेय 'विनोद', ताराचन्द पाल 'बेकल' इत्यादि तक को पीछे छोड़ देते हैं। उनका काव्य विषयानुरूप रूढ़-सा रह जाता है, उसमें 'प्रस्थान' के दर्शन नहीं होते, किन्तु काव्य की विविधता एवं विशालता प्रणम्य है। वे चार्वाक के भयावह भौतिकवाद का सश्रद्ध चित्रण भी करते हैं, वे बुद्ध के जटिल विरागवाद का अतिश्रद्ध चित्रण भी करते हैं, जिससे भ्रम उत्पन्न होता है कि उनके पास कोई एक निर्दिष्ट सिद्धान्त नहीं है; और, वे वर्णन के लिए वर्णन करते हैं।

शम्बूककाव्य, पाण्डवकाव्य, चार्वाककाव्य, बुद्धकाव्य, चन्द्रगुप्त-चाणक्य-काव्य, जयदेवकाव्य, वीरकाव्य एवं लोककाव्य को एक सूत्र में पिरोनेवाला कोई दार्शनिक सूत्र विद्यमान न हो। 'चारुवाक' निस्सन्देह भौतिकवादी दर्शन की सफल विवृति करता है तथा उसमें तथ्य का कल्पना से समन्वय भी अच्छा है, यह उनका विद्वत्तापूर्ण मौलिक काव्य है; किन्तु ''ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'' स्वस्थ या व्यापक जीवन-दर्शन न कभी और कहीं बन सका है, न बन सकता ही है। फिर, बुद्ध का जीवन और दर्शन चार्वाक के जीवन और दर्शन से बहुत भिन्न है। एक ओर वे यथार्थवादी लगते हैं, दूसरी ओर बुद्ध-प्रसंग में धार्मिक श्रद्धा से ऊभचूभ। अतः वे न यथार्थवाद या बुद्धिवाद की परितृप्ट कर पाते हैं, न धर्मवाद या आस्थावाद को। स्वयं ग्रन्थारंभ के 'चन्द्रोदयः एक अवलोकन' में प्रसिद्ध गीतकार एवं विद्वान् डॉ. सुमेरसिंह 'शैलेश' के ये शब्द मेरे विचार का समर्थन करते हैं: ''श्रद्धालु उपासकों ने ऐतिहासिक चरित्र को पौराणिक चरित्र के रूप में महिमा-मण्डित करके बुद्ध से भगवान् बुद्ध बना डाला। यद्यपि चन्द्रोदय के कवि को उनका ऐतिहासिक रूप ही मान्य है, फिर भी उसकी चारित्रिक सृष्टि अज्ञात की गुलामी की ज़ंजीरों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाई है।'' यही नहीं, 'चन्द्रोदय : एक

---

[1] मध्य प्रदेश शासन द्वारा केशव पुरस्कार से सम्मानित।

[2] 14 अक्टूबर, 1985 को बौद्ध बनने से पूर्व रामखेलावन वर्मा—केदार पाण्डेय से रामउदास दास और तब बौद्ध बनने पर राहुल सांकृत्यायन का स्मरण आता है। भदन्त आनन्द कौसल्यायन की याद भी आ जाती है, यद्यपि उनका साहित्यिक दाय विशेष नहीं रहा।

अवगाहन' में प्रो. आदित्यप्रताप सिंह हिन्दुत्व पर प्रहार में आवश्यकता से अधिक निर्मम हो गए हैं तथा 'चन्द्रोदय एक स्पष्टीकरण' में आनन्द बौद्ध राम और कृष्ण पर प्रहार करते समय आपराधिक रूप से साम्प्रदायिक। कठोर बुद्धिवाद या यथार्थवाद किसी भी भगवान् या भगवान्-पुत्र या वार्तावह को स्वीकार नहीं कर सकता। फिर, बुद्ध से ही पक्षपात क्यों? स्पष्टतः 'चन्द्रोदय' एक रूढ़ बौद्धधर्मकाव्य बनकर रह गया है।

बुद्ध का दुःखवाद नितान्त एकांगी है। बौद्धधर्म की प्रशंसा में ब्राह्मणधर्म निन्दा नितान्त निराधार है : कौंडिन्य इत्यादि पंचवर्गीय भिक्षु, सारिपुत्र एवं मौद्गलयायन, अश्वघोष एवं नागार्जुन, धर्मानन्द कोसंबी एवं राहुल सांकृत्यायन इत्यादि साक्षी हैं। बौद्धधर्म में बुद्ध के अतिरिक्त सब कुछ ब्राह्मणमय है! जहाँ तक जातिवाद का सम्बन्ध है, बौद्धधर्म उसका प्रधान दोषी है क्योंकि वैदिककाल एवं महाकाव्यकाल अथवा रामायणकाल-महाभारतकाल (उत्तरवैदिक काल) वर्ण-व्यवस्था के होते हुए भी अस्पृश्यता से मुक्त थे (शम्बूककथा परवर्ती एवं प्रक्षिप्त है) तथा नारी-अवेहलना भी बौद्धों और जैनों की देन है (सीतात्याग कथा भी परवर्ती एवं प्रक्षिप्त है)। घोर साम्यवादी इतिहास ग्रन्थकार प्रो. इर्फ़ान हबीब ने 'भारतीय इतिहास में जाति और मुद्रा' नामक ग्रन्थ में जातिप्रथा को सार्वभौम बनाने में केन्द्रीय भूमिका ब्राह्मणों के स्थान पर बौद्ध धर्म की निर्धारित की है। प्रो. हबीब शाक्य-जाति को एक क़बीला मानते हैं, बौद्ध साहित्य के 'श्रेष्ठ' एवं 'निकृष्ट' शब्द जातिवादी समझते हैं, 'आखेटक' में 'चाण्डाल' एवं 'निषाद' की स्थापना का विवेचन करते हैं जिन्हें बौद्ध कृषिकर्म-वंचित रखते हुए 'असपृश्य' मानते थे। बुद्ध की उन्नति का एक कारण उनका क्षत्रिय होना तथा क्षत्रिय राजाओं से सम्पर्क था। फिर भी, बौद्धधर्म की व्यापक प्रतिष्ठा अशोक[1] के साधनों के फलस्वरूप हुई। ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि बौद्धधर्म कभी भारत में जनधर्म था—अशोक, कनिष्क, हर्ष प्रभृति के कालों में वह राजधर्म अवश्य था। बुद्ध विश्वपुरुष थे, उनके कारण भारत का गौरव बढ़ा है। वे मानवमूल्यों के महान् प्रतिपादक थे। किन्तु कमियाँ राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा, मोहम्मद, सब में है और 'चन्द्रोदय' में उनका चित्रण नहीं है। बुद्ध के व्यक्तित्व, दर्शन एवं धर्म का स्तुतिपरक निरूपण करनेवाला यह अभिनव राजनीति-प्रेरित महाकाव्य महाकवि अश्वघोष कृत 'बुद्धचरितम्' के अनन्तर एक विशद महाकाव्य अवश्य बन पड़ा है। महाकाव्य का अंगीरस शान्त है (जिनका स्थायीभव वैराग्य या निर्वेद होता है), न कि करुणरस (जिसका स्थायीभाव शोक होता है) जैसा ग्रन्थगत 'चन्द्रोदयः एक अनुशीलन' में नागार्जुन रामनारायणसिंह राजा ने माना है। बुद्ध की 'करुणा' और रसशास्त्र के 'करुण' में अन्तर है। अश्वघोष वाल्मीकि-प्रभावित हैं, विनीत विक्रम बौद्ध समग्रतः तुलसीदास-प्रभावित, अंशतः कृष्णायनकार द्वारकाप्रसाद मिश्र-प्रभावित। वही अवधी, वही दोहा-चौपाई-प्रधानता (हरिगीतिका, सवैया, सार इत्यादि भी), वही अनन्धयास्था, वही प्रचारवाद! अनूप शर्मा, विनोदचन्द्र पाण्डेय 'विनोद' इत्यादि बुद्धकाव्यकार उनकी समता नहीं कर सकते। हाँ, मैथिलीशरण कृत चम्पूकाव्य 'यशोधरा' नव्यनारी-सम्वेदन एवं युगनिष्ठ मौलिकता के कारण अपने अपेक्षाकृत लघु आकारों में भी श्रेष्ठतर काव्यकृति-कलाकृति है।

अवधी एवं खड़ीबोली के स्फीत महाकाव्य के रूप में विनीत विक्रम बौद्ध को हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक निश्चित स्थान प्राप्त होना चाहिए। वे वर्णनात्मक कविता के असाधारण कवि हैं। उनकी कृतियाँ कला एवं शिल्प पर न रीझने पर भी प्रभावी हैं। छन्दों पर उनका असाधारण अधिकार है। यदि वे कहीं भौतिकवाद तो कहीं बुद्धवाद के प्रति प्रतिबद्ध मात्र होते तो भी केवल प्रचारवाद का आरोप ही लगता, किन्तु उनके प्रत्येक वाद के मूल में हिन्दूधर्म पर प्रहार मात्र का उद्देश्य उन्हें पूर्वाग्रहग्रस्त एवं असन्तुलित प्रमाणित कर देता है। वे राहुल, यशपाल, रांगेय राघव, भीष्म साहनी इत्यादि साम्यवादियों के सदृश हिन्दुत्व-विरोधी साहित्यकारों में समाविष्ट किए जाएँगे। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कंदन मोह कलाप भव भूषन दूषन हरन। समन सकल संताप बुद्ध सरन मंगल करन।।
बिस्व सांति सुख मूल भद्र भाव भूतल भरन। देस काल अनूकूल धम्म सरन मंगल करन।।

---

[1] भयावह भ्रातृहंता चण्डाशोक, पहले युद्ध और बाद में अहिंसा का प्रतिक्रिया-चलित बौद्ध अशोक, मांसाहारी, बहुपत्नीवादी (जिसने जर्जर अवस्था में युवती तिष्यरक्षिता को हथियाया तथा प्रतिक्रियास्वरूप कुणाल-अन्धकरण का कारण बना एवं तिष्यरक्षिता के शरीरदाह का अपराधी भी) सम्राट्, अशोक की एच. जी. वेल्स ने तारीफ़ क्या कर दी कि छोटे-अशोक नेहरू दीवाने हो गए और "यथा राजा तथा प्रजा" का दासतायुग साकार हो उठाः दर्ज़नों ग्रन्थ और सब बेक़ार! इतिहास-विद्वान् डॉ. राधाकृष्ण शर्मा ने तो 'अशोक' ग्रन्थ में उसे 'विश्व का सर्वश्रेष्ठ मानव एवं शासक' लिख मारा!!! लोग यह भूल-से गए कि संस्कृत में 'देवानांप्रिय' (अशोक की स्वदत्त पदवी जो लाटों और शिलालेखों में मिलती है) का अर्थ 'मूर्ख' होता है तथा 'बुद्ध' शब्द मूलतः 'बौद्ध' है!!!

सामक संसय सोक पन पारन तारन तरन। सुख दायक सब लोक संघ सरन मंगल करन।।
देवदत्त खल कीन्ह, बारहि बार कुचक्र बहु। जीति छमा बल लीन्ह, सो मुनि जनमंगल करहिं।।
नव दर्सन नव धम्म प्रनेता।[1] कोह मोह मद मत्सर जेता।।
बिगत बिकार मार मद सामी[2]। नमो तथागत बुद्ध नमामी।।

2. चित चाह रही बहु बोलने की, तिय बात न एकहु बोलि सकी।
अभिलाष रही उर खोलन की, मुख मूक न अंतुह खोलि सकी।।
पिय ठाढ़ रहे कहि बैठन को जड़ जीभ न विक्रम डोलि सकी।
कहँ जोहि सकी मुँह जात समै टुक पायँन दीहि टटोलि सकी।।
('बुद्धचरित-चन्द्रोदय' से)

श्रीलाल शुक्ल

'राग दरबारी' (1969 ई. को साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित आंचलिक उपन्यास) 'मकान' (1978 ई. में मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् के देव पुरस्कार से सम्मानित सामाजिक उपन्यास), 'सूनी घाटी का सूरज', 'आदमी का ज़हर', 'पहला पड़ाव' इत्यादि के प्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल (31 दिसम्बर, 1925, अतरौली[3] जनपद लखनऊ) यथार्थवादी युग के एक अग्रणी उपन्यासकार हैं। 'अंगद के पाँव' जैसे व्यंग्यलेख-संग्रह एवं 'उमरावनगर में चार दिन' जैसे कहानीसंग्रह उनकी प्रासंगिक रचनाएँ हैं। हिन्दी के उच्च प्रशासनिक अधिकारी साहित्यकारों में उनकी प्रतिभा विशिष्ट माना जा सकती है। प्रायः इसी स्तर का किन्तु कवि-नाम अशोक वाजपेयी का माना जा सकता है। जिनके कई कवितासंग्रह चर्चित हुए हैं।

श्रीलाल शुक्ल ने लखनऊ-उन्नाव अंचलों की सामाजिक कुत्सा एवं स्वतन्त्र भारत की राजनैतिक पतनाग्रस्तता का भीषण चित्रण किया है। यशपाल, राहुल, रांगेय राघव, कमलेश्वर, भीष्म साहनी इत्यादि साम्यवादी कथाकारों के सदृश ही उन्होंने भी बीभत्स को उभारने की कला में सिद्धि प्राप्त की है। सम्भव है, मन्नू भण्डारी को 'महाभोज' उपन्यास की परोक्ष प्रेरणा इन्हीं से मिली हो! उनकी भाषा अपनी है, जानदार है। वे 'रेणु' के सदृश अमौलिक नहीं हैं, भले ही उनके सदृश भावनाशील भी न हों। प्रशासन की रग-रग से परिचित (स्वयं उन पर भावी भ्रष्टाचार के संगीन आरोप लगे) वे पतन का प्रभावी चित्रण करते हैं। श्रीलाल शुक्ल ध्वंस के कलाकार हैं, निर्माण के नहीं। किन्तु ध्वंस जीवन का एक प्रखर सत्य है। अतः उन्हें लोकप्रियता प्राप्त हुई है।

दुष्यन्त कुमार

'साये में धूप' के ग़ज़लकार तथा 'सूर्य का स्वागत', 'आवाज़ों के घेरे में' एवं 'जलते हुए वन का वसन्त' के युगजागरण के कवियों में एक स्व. दुष्यन्तकुमार स्वांतत्र्योत्तर कवियों में 'एक कंठ विषपायी' के कारण भी स्मरणीय माने जाएँगे। वैसे, अधुनातन हिन्दी ग़ज़ल के पुरोधा के रूप में उनकी बड़ी शोहरत है। 31 दिसम्बर, 1975 को उन्होंने आत्महत्या की। दक्ष का शिव पर सती के स्वच्छन्द वरण के कारण क्रोध, यज्ञ में शिव को न बुलाना तथा सती का स्वयं को भस्म करना एवं तज्जन्य को ध्वंस, प्रियाहीन शिव का सती-शव को चिपकाएँ सर्वध्वांतकारी संघर्ष के लिए प्रस्तुत होना, सृष्टि-रक्षार्थ विष्णु का प्रमाण-बाण छोड़ना जिसके अनेक फलकों द्वारा शिव-स्कन्ध पर लदे सती-शव का अनेकखण्ड होना तथा प्रत्येक खण्ड के निपातस्थल का तीर्थ बनना अनेक प्रतीकों से विष्पन्न है। रूढ़ि के नाशस्थल का तीर्थ होना, शिव (कल्याण) का गतिशील रहना इत्यादि प्रतीक-बिन्दु 'एक कण्ठ विषपायी' को परम्परा एवं प्रगति का संगमस्थल बना देते हैं :

1. शंकर।
शंकरा शंकरी

---

[1] बुद्ध ने 'स' हि धम्मो सनन्तनो' कहा है।
[2] शमनकर्ता।
[3] डॉ. नगेन्द्र के जन्मस्थान अतरौली (जनपद अलीगढ़) से भिन्न। इस (मूलतः 'अन्तरावली'?) नाम के कई ग्राम हैं।

वह जिसने मेरे यश पर कालिख पोती है
जिसके कारण
मेरा माथा नीचा है सारे समाज में।

2. देवत्व और आदर्शों का परिवसन ओढ़
मैंने क्या पाया?
निर्वासन।
प्रेयसि-वियोग!....
हर परम्परा के मरने का विष
मुझे मिला
हर सूत्रपात का
श्रेय ले गए और लोग।

विद्यानिवास मिश्र

'छितवन के छाहें', 'कदम की फूली डाल', 'तुम चन्दन हम पानी', 'आँगन का पंछी और बंजारा मन', 'मैंने सिल पहुँचाई', 'वसन्त आ गया पर कोई उत्कंठा नहीं', 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है।' जैसे संग्रहों में प्रस्तुत ललित-निबन्धों के प्रस्तोता तथा 'हिन्दी-शब्द सम्पदा', 'पाणिनीय व्याकरण की विश्लेषण-पद्धति', 'रीतिविज्ञान' के भाषावैज्ञानिक डॉ. विद्यानिवास मिश्र (14 जनवरी, 1926, पकड़डीहा, जनपद गोरखपुर—सोमवार 14 फरवरी 2005, मऊ—सड़क दुर्घटना में) ने 'साहित्य की चेतना' (आलोचना) पर भी हाथ आज़माया है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र की ख्याति ललितनिबन्धकार के रूप में ही है, किन्तु वे वैयाकरण, भाषावैज्ञानिक, काव्यशास्त्री एवं विद्वान् भी हैं। हिन्दी में ललित-निबन्ध की परम्परा के प्रवर्तक राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द (राजा भोज का सपना) थे तथा भारतेन्दु (एक अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न), माधवप्रसाद मिश्र (सब मिट्टी हो गया), गुलाबराय ('मेरी असफलताएँ' प्रभृति ग्रन्थ), हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ('अशोक के फूल' प्रभृति ग्रन्थ) इत्यादि ने इस विधा को सम्पन्न किया है। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने गार्डिनर (अल्फा ऑफ़ प्लाऊ)[1] की शैली की प्रेरणा से मौलिक ललित-निबन्ध लिखे, जिससे विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय इत्यादि प्रभावित हुए! शीर्षक-कला का चमत्कार सारी विधाओं पर हावी है, किन्तु विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, देवेन्द्र इत्यादि तो प्रायः इसी पर लट्टू रहे हैं। 'नवभारत टाइम्स' के सम्पादक (1993 ई.) के रूप में डॉ. विद्यानिवास मिश्र वैसे ही जमे जैसे 'धर्मयुग' के सम्पादक के रूप में डॉ. धर्मवीर भारती।

गाँव का मीठापन और संस्कृति की मार्मिक व्याख्या दोनों ही डॉ. विद्यानिवास मिश्र को गौरव प्रदान करती हैं। धुर-देहाती लगने वाले डॉ. मिश्र सच्चे नागर हैं। उनकी 'महाभारत का काव्यर्थ' (सत्य, पीड़ा, अव्ययभाव) ग्रन्थ संस्कृति के पांडित्य का प्रतीक है।

'मधुप'

''गाँव का सुरपुर देउ बनाय', 'खेतवन के देखि-देखि जिउ हुलसै मोर' एवं 'घास के घरउँदे' इत्यादि के अवधी काव्य-संकलनकर्त्ता एवं प्रौढ़ अवधी-कवि डॉ. श्यामसुन्दर मिश्र 'मधुप' (1926 ई., सरैंया मैनासी, जनपद सीतापुर) 'परम्परा के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक अवधी-कवि' (डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित के अनुसार ''अवधी-काव्य पर पहली बार शोधकार्य...जिसका ऐतिहासिक महत्त्व है''?), 'आधुनिक अवधी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ', 'अवधी की राष्ट्रीय कविताएँ' इत्यादि के अवधीकाव्याचार्य भी हैं। उनकी कविता में एक ओर अवधी प्रकृति एवं संस्कृति का प्रभावी चित्रण प्राप्त होता है तो दूसरी ओर राष्ट्रीय शोषण-प्रपीड़न एवं नेतृ-पाखण्ड का सूक्ष्म प्रत्याख्यान भी। उन्होंने गम्भीर प्रतीकों एवं बिम्बों के समायोजन में जैसी सफलता प्राप्त की है वैसी किसी अन्य अधुनातन अवधी-कवि ने नहीं। छन्दबद्ध एवं मुक्त तथा पारम्परिक एवं नई कविता-शैलियों पर उनका अधिकार सर्वथा विलक्षण है। यह सत्य है कि उनकी कविताएँ अपने बौद्धिक नियोजन में प्रयत्नज लगती हैं, सहज नहीं। किन्तु यह भी सत्य है कि वे अधुनातन बौद्धिकरस के सफलता अवधी-कवि हैं और अग्रणी अवधीकाव्याचार्य तो हैं ही। उदाहरण देखें :

---

[1] उपनाम, जिसका अर्थ है 'हल का फल'।

1. म्वाट औरु म्वाट होइ

तनि बरसउ वहि पर....
तुम तउ बरसउ
सागर-महासागर पर
जिनका बड़ी बोहि
धरइ का ठेकाना नाहिं
जिनका राति-दिनु
स्वाँता उबलि-उबलि
झरना झरि-झरि
भरि रहे
यहइ अन्याउ बड़
दूबर दुबराइ रहा
म्वाट औरु म्वाट होइ।

2. देश की व्यथा

राम! देश की नइया, कस मझधार। डारउ तनिक निगहिया, लागइ पार।।
कहाँ क्षीर मा स्वावउ, बरखुदार। देस-कोष का लूटइँ चौकियदार।
नदिया लाइव पानी, पी खुद जाइ। ख्यात परे सब सुखदूँ तरु कुम्हिलाइ।।
बादर गरजइँ, तरजइँ, बरसइँ नाँहिं।। पपिहा मरइ पियासा, ताल सुखाँहिं।।
हार भए अब सँपवा, गरु डसि खाँइ। का प्रतीति के जरिगे, दोनरु पाँइ।।

धर्मवीर भारती

स्व. धर्मवीर 'भारती' (15 दिसम्बर, 1926 ई., इलाहाबाद) की बड़ी धूम रही, जिसका एक बड़ा कारण उनका 'धर्मयुग' का सम्पादक होना था। योग अच्छा रहा। वैसे तो धर्मवीर भारती ने कहानियाँ, निबन्ध, आलोचना इत्यादि में भी हाथ आज़माया है तथा उनके 'गुनाहों का देवता' और 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' जैसे जीवन-विरोधाभास और शिल्प की चकपकाहट से लबालब उपन्यास भी कई वर्षों तक 'लोकप्रिय' रहे, किन्तु उल्लेखनीय सफलता उन्हें 'कनुप्रिया' (खण्डकाव्य) एवं 'अन्धा युग' (गीतनाट्य) में ही मिल पाई है। शान्ति-अभियान से कई ''यथा राजा तथा प्रजा''—छाप साहित्यकार हतप्रभ-से रह गए थे, जिनमें 'धर्मवीर 'भारती' प्रमुख माने जा सकते हैं। अतः उनकी राधा शान्ति-नेत्री जैसी लगती हैं तथा 'अन्धा युग' में तो वे कृष्ण, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव, युधिष्ठिर के अतिरिक्त सभी पर अपने शान्ति-वज्र को लेकर भयानक शैली में टूट पड़े हैं।

'अन्धा युग' में एस्काइलस की भयावह-त्रासदी से प्रेरित कला का प्रभावी उन्मेष हुआ है तथा मंचन की दृष्टि से यह गीतिनाट्य अतीव सफल है। इसमें अश्वत्थामा के चरित्र को उभारा है। स्वतन्त्र भारत के आदर्शहीन पतनोन्मुख मनोविज्ञान ने असत् के पक्षधरों का सम्मान किया ही है; भारती ने उसे आर्ष चरित्रों पर प्रहार से निष्पन्न किया, जिसका प्रभाव नरेश मेहता ('संशय की एक रात', 'स्वर्गारोहण'), सुनीता जैन (रति-रंग), बालकृष्ण मिश्र (जलसमाधि से पूर्व') इत्यादि पर पड़ा; दूसरे, महाभारत के चरित्रों की ओर अन्य लेखकों का ध्यान आकृष्ट हुआ जिसके परिणामस्वरूप मनु शर्मा ने द्रौपदी, द्रोण इत्यादि की आत्मकथाओं की झड़ी लगा दी; तीसरे, नरेन्द्र कोहली, युगेश्वर इत्यादि ने 'युद्ध' तथा सीता, राम इत्यादि के व्यक्तित्वों के 'आधुनिक' आकलनों के ढेर लगा डाले! निस्सन्देह डॉ. धर्मवीर भरती ने अनेक कवियों एवं लेखकों को प्रभावित किया है।

लक्ष्मीनारायण लाल

'यक्ष प्रश्न', 'मिस्टर अभिमन्यु', 'मादा कैक्टस', 'कर्फ़्यू' इत्यादि के अभिनय-सफल नाट्यकार तथा 'मन-वृन्दावन', 'गली-अनारकली' इत्यादि के कुशल उपन्यासकार स्व. लक्ष्मीनारायण लाल (1927-87 ई., जन्मस्थान जलालपुर, ज़िला बस्ती उ. प्र.) ने 'जयप्रकाश नारायण की जीवनी' लिखकर जनता पार्टी के शासनकाल (1977-79 ई.) के इधर-उधर अच्छा नाम कमाया तथा लगे हाथ 'मेरी जेल-डायरी' भी लिख डाली। उनका 'हिन्दी कहानियों की शिल्प-विधि' एक फस्सड़ प्रबन्ध है। किन्तु नाट्यकार के रूप में उन्होंने अनेक प्रयोग किए। रामकुमार वर्मा, उपेन्द्रनाथ 'अश्क़', मोहन 'राकेश', जगदीशचन्द्र माथुर, विष्णु प्रभाकर प्रभृति के साथ-साथ वे एक स्मरणीय नाट्यकार सिद्ध होते हैं। यह सत्य है कि उनकी कोई कृति 'रेशमी टाई', 'आधे-अधूरे' या 'कोणार्क' के स्तर की नहीं है किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि वे नाटक को (पश्चिम से प्रेरित ही सही) नवीनतम रूप देने के लिए यत्नशील रहे। नागर-सर्जन में वे आवश्यकता से अधिक सचेष्ट रहे जिससे उनके अनेक नाटक शीर्षक से वस्तु-पात्रादि तक कृत्रिम प्रतीत होने लगते हैं, किन्तु वे भारत एवं भारतीय संस्कृति के प्रति सतत् आस्थावान कलाकार थे, इसमें सन्देह नहीं। मोहन 'राकेश' के ायावह यथार्थ या धर्मवीर 'भारती' की सांस्कृतिक अन्धता के फेर में वे कभी नहीं पड़े। प्रतिभा के पैनेपन के अभाव को उन्होंने अध्यवसाय द्वारा भाव में परिणत कर लिया तथा हिन्दी के नाटक-साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर बन सके। एकांकीकार के रूप में भी वे स्मरणीय हैं।

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

'तीसरा सप्तक' (1959 ई., सं. अज्ञेय) के अन्तिम कवि स्व. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (15 सितम्बर, 1927-24 सितम्बर, 1983, जन्म महसों, ज़िला बस्ती में, निधन दिल्ली में) पहले धर्म एवं पूजा इत्यादि के प्रति युद्ध का तुमुल घोष करते हुए मैदान में कूदे थे लेकिन साहू-जैन की सेवा में आने पर शान्त एवं सौम्य होते देर न लगी। उन्होंने नाटक वगैरह में हाथ आज़माया। उनकी 'बकरी' ने खूब घास चरी! 'सप्तक' परम्परा के कवियों में अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, रघुवीर सहाय इत्यादि को साहित्य अकादमी का पुरस्कार जीवन में ही प्राप्त हो गया, किन्तु सर्वेश्वर को वह मरणोपरान्त मिला। सर्वेश्वर की सर्वोत्तम कविता 'यहीं कहीं एक कच्ची सड़क थी' में सहज मानवीय सारल्य एवं प्रकृति के प्रेम की तलस्पर्शी विवृति हुई है जो नलिनीकान्त (1925 ई., बन्दनवार, सन्थाल परगना, निवास वर्द्धमान) की 'पगडंडी' ('समन्दर में कोई हिसाब नहीं माँगा' संग्रह में जो 1992 ई. में प्रकाशित हुआ) कविता का स्मरण कराती है—कमलाकान्त वर्मा की विचार-बोझिल कहानी 'पगडंडी' एवं रामदरश मिश्र की कविता 'पगडंडी' में ऐसी मार्मिकता कहाँ? नए वैज्ञानिक युगीन मानव के द्वन्द्व को सर्वेश्वर ने अच्छी अभिव्यक्ति दी है। बच्चन की 'प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर' कविता से प्रभावित 'यह तो परछाई है' में उनकी यह ललकार भी इसी की एक भंगिमा है :

> यह तो परछाई है
> परछाई है
> यह नहीं बोलेगी
> तू इसको बुलाता है क्या?
> कुछ सुनेगी नहीं यह
> दर्द सुनाता है क्या?
> राह पर जब तक उजाला है चली जाएगी
> पर अँधेरे में नहीं हाथ तेरे आएगी....
> यह नहीं बोलेगी तू इसको बुलाता है क्या?
> कुछ सुनेगी नहीं यह, दर्द सुनाता है क्या?
> आगे चलना है तुझे, अपने सहारे पर चल,
> इसका तू हाथ पकड़ राह पर जाता है क्या?

यह तो परछाई है
परछाई है
परछाई है।[1]

कुँवर नारायण

'आत्मद्ययी', 'चक्रव्यूह', 'हम-तुम', 'आमने-सामने' के कवि तथा 'आकारों के आसपास' के कहानीकार कुँवर नारायण (19 सितम्बर, 1927) सांस्कृतिक द्वन्द्व के आधुनिक मानव में पूर्णता के अन्वेषी रहे हैं। काव्य एवं कला के अपकर्ष तथा यांत्रिकी एवं सांख्यिकी के उत्कर्ष के इस युग में कुँवर नारायण ने सन्तुलन के स्वर छेड़ने का प्रयास किया है। कैलाश वाजपेयी के 'संक्रान्त' की तुलना में उनका 'आत्मजयी' गहनतर है। 'तीसरा सप्तक' के एक कवि के रूप में उभरे कुँवर नारायण ने अपनी अलग पहचान बना ली है। उनकी कविता अन्य ललित-कलाओं (संगीत, नृत्य, चित्र, मूर्ति, शिल्प) एवं नाट्यधार्मिता से भी निष्पन्न है।

कुँवर नारायण ने अपनी कविता में मानव से बाह्य के सतत्-परिवर्तनशील उपकरणों एवं उसके आभ्यंतर के नित्य सत्य के ऊहापोह में जो रुचि दिखलाई है, वह उन्हें एक गम्भीर सांस्कृतिक कवि सिद्ध करती है। उन्होंने लोकप्रियता की चिन्ता नहीं की। वे साम्यवादी और पूँजीवादी (समाजपरक और व्यक्तिपरक) खेमों से बाहर रहकर भी पुरस्कृत हुए, यह हर्ष का विषय है।

दो कविताएँ देखें :

1. सहज चुम्बन, सहज आलिंगन,
सहज़-सी भूल।
थके मुख पर इस सफ़र की धूल।
कौन समझेगा कि कैसे नर्क[2] से
मिला मुझको ज्ञान,
ईश्वर, गीत, आत्माभियान?.....
वासना की घोर अन्धी तहों में
अनुभूतियों के सत्य
अपने में छिपाए वे अलौकिक तथ्य
जो ऐहिक सुखों के तीव्रतम क्षण में
समाहित हो अचानक
चौंक पड़ते किन्हीं सपनों से उझक!
हाय, छोटी-सी तलैया, बँधी गँदली,
क्या करे? सागर ललकता
जब कि अपने चन्द्रमा को छू न सकता!

2. जाड़ों की एक दोपहर
दूब का अविरोध फैला क्षेत्र; बेतरतीब
वृक्षों की क्षितिज की मोड़ पर कुछ भीड़।
चुहलते पक्षियों की तोतली कविता,
पवन की लोरियों में ऊँघती सरिता।
बरसाती दृष्टि के उस छोर तक अविराम
जाड़ों की उजागर गुनगुनी-सी घाम....
रुको....प्रिय....

---

[1] लगता है, किसी चटपटे फ़िल्मी गीत को उलट-पलट कर रख दिया गया है।

[2] नरक शुद्ध होता, पर "सब चलता है!"

विश्रान्ति की इस अरौंदी छाया तले
भूल जाएं कुछ क्षणों को हम हृदय के भार,
सभ्यता की परिष्कृति से दूर
आओ, हम बनें इस शान्ति के दो नए साझीदार।

कृष्णा सोबती

स्व. मोहन 'राकेश', राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, स्व. भीष्म साहनी, स्व. शैलेश मटियानी, मार्कण्डेय, अमरकान्त, गंगाप्रसाद मिश्र, उषा प्रियंवदा, सोमा वीरा, रामकुमार, शिवप्रसादसिंह, श्रीकान्त वर्मा, हरिशंकर परसाई, भैरवप्रसाद गुप्त, मनहर चौहान, लक्ष्मीकान्त वर्मा, रामदरश मिश्र, शानी, सुरेश सिन्हा इत्यादि कहानीकारों की सामाजिक चेतना साम्यवाद के निकटतर रही। रेणु, गिरिराज किशोर, महीपसिंह, मन्नू भण्डारी इत्यादि की 'वाद' की पकड़ 'वैसी' 'मज़बूत नहीं रही। निर्मल वर्मा, धर्मवीर 'भारती', नरेश मेहता, 'पहाड़ी'[1], राजेन्द्र अवस्थी, प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय, गंगाप्रसाद 'विमल', प्रयाग शुक्ल, ममता कालिया, दूधनाथ सिंह, हिमांशु जोशी इत्यादि के व्यक्तिगत हित व्यक्तिवाद के निकट रहे हैं। यदि कवियों की संख्या अनन्त है, तो कहानीकारों की अपार! कहानी की विधा में प्रेमचन्द का उत्तराधिकार ग्रहण करनेवालों में सुदर्शन, यशपाल, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती इत्यादि प्रमुख हैं (जिनमें सुदर्शन साम्यवादी न थे) तथा प्रसाद का उत्तराधिकर ग्रहण करनेवालों में जैनेंद्र, अज्ञेय, इलाचन्द्र जोशी, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, लक्ष्मीनारायण लाल, शिवानी, निर्मल वर्मा, धर्मवीर 'भारती' इत्यादि (जिनमें निर्मल वर्मा, धर्मवीर 'भारती' व्यक्तिवादी हैं)। एक तीसरा वर्ग भी है जो प्रचण्ड सामाजिकता एवं प्रखर विरोध को उत्तेजक अश्लीलता से सजाकर पेश करता है, जिसके नायक 'उग्र'[2] थे, जिनसे यशपाल, कमलेश्वर, कृष्णा सोबती इत्यादि साम्यवादी प्रभावित हुए हैं (यद्यपि 'उग्र' साम्यवादी न थे)।

कृष्णा सोबती की आठवें दशक से ही अच्छी धूम रही है। अनन्तर वे चुक-सी गईं। उनके 'जिन्दगीनामा' जैसे उपन्यास और 'मित्रो मरजानी' जैसे कहानी-संग्रहों में मांसलता को भारी उभार दिया गया है—केशवप्रसाद मिश्र जैसे सेक्सी कहानीकार भी कोसों पीछे छूट गए! कृष्णा सोबती की कुण्ठा उनके नारी-पात्रों पर छाई रहती है (जैसे अज्ञेय की उनके पुरुष पात्रों पर)। 'बादलों के घेरे', 'डार से बिछुड़ी', 'यारों से यार तिन पहाड़' एवं 'मित्रो मरजानी' कहानीसंग्रहों में कृष्णा सोबती ने नारी की अश्लीलता की कुण्डित राष्ट्र को अभिभूत कर सकने में सक्षम अपसंस्कृति के बल-संबल के साथ ऐसा उभारा है कि साधारण पाठक हतप्रभ तक हो सकता है। 'सिक्का बदल गया', 'बदली बरस गई' जैसी कहानियाँ भी तेज़ी-तुर्शी में पीछे नहीं। उनकी हिम्मत को दाद देने वालों में अंग्रेज़ी की अश्लीलता के स्पर्श से उत्तेजित सामान्यजन-पत्रकारिता एवं मांसलता से प्रतप्त त्वरित-लेखन के आचार्य खुशवंतसिंघ तक ने सराहा है! पंजाबी कथाकार मूलस्थानों की परिस्थितियों के कारण संस्कारतः मुस्लिम-अभिभूत रहे हैं। दूसरे, हिन्दूनिन्दा बड़े-छोटे नेताओं को प्रभावित करने का एक लाभप्रद-फलप्रद उपादन भी रही है। यशपाल, भीष्म साहनी, कृष्णा सोबती इत्यादि मुस्लिम-प्रशस्ति की मनौवैज्ञानिकता एवं लाभप्रद-प्रगतिवादिता (जिसे धर्मनिरपेक्षता भी कहा जाता रहा है) से ऊभचूभ हैं। वास्तव में, ये भारी लाभ में रहे भी!

कृष्ण सोबती हिन्दी-साहित्य में 'पंजाबीयत' की प्रतिनिधि कथाकार हैं। पंजाबी जीवन, पंजाबी हास-परिहास, पंजाबी भाषा-शैली, पंजाबी दबंगपन या धक्काशाही, सब उनके साहित्य में प्रशस्यतः उजागर हुआ है। उन्होंने मुझे मेरे प्रश्न के उत्तर में बताया कि उनके एक दूरंगत-पूर्वज सोबर्टिअस् सिकन्दर की सेना के साथ भारत आए तथा उनके वंशज सोबती कहे गए। सिकन्दर-पुरु-युद्ध 326 ईसा-पूर्व में हुआ था। वे तर्कसंगत बिन्दुओं की प्रशंसक हैं (जड़ साम्यवादी नहीं); एक बार तुलसी पर भाषण के बाद मुझसे बहुतों ने प्रश्न किए, उन्होंने भी। अन्ततः उन्होंने कहाः "तुलसी इज़ सेफ़ इन योर हैंड्स!" (तुलसी आपके हाथों में सुरक्षित हैं)! मैंने "तुलसी अपने अप्रतिम मानववाद में सुरक्षित हैं" का उत्तर दिया था। मैंने बाइस-सर्गीय वस्तुततः एकमानववादी तथा तत्त्वतः एकब्रह्माण्डवादी शतशः नव्य महाकाव्य 'दृष्टि' उन्हें भिजवाया, तो यथासमय दूरभाष पर बोलीं: मुझे आश्चर्य होता है कि ऐसा काव्य भी लिखा जा सकता है! उनका व्यापक सम्मान उनके विलक्षण कृतित्व के कारण तो है ही, विचक्षण व्यक्तित्व के कारण भी है।

---

[1] स्व. रामप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी'।

[2] पाण्डेय बेचनराम शर्मा 'उग्र' या पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'।

स्मेकल

'मेरी प्रीत तेरे गीत' (1982 ई.), 'तेरे दान किए गीत' (1982 ई.), 'स्वाति बूँद' (1983 ई.), 'नमो नमो भारत माता' (1983 ई.), 'कमल को लेकर चल' (1983 ई.), 'तेरे दिग्दिगंतर अभिराम' (1984 ई.) के कवि[1], 'भारत के स्वरूप' (1974 ई.) के निबंधकार, 'गोदान' के चेक-अनुवादक (1957 ई.), 'आधुनिक हिन्दी-कविता का संकलन' (1975 ई.), 'भारतीय लोककथाएँ' (1967 ई.) के हिन्दी-चेक-सेतु डॉ. ओदोलेन स्मेकल (18 अगस्त, 1928, ओलोमोउत्स, भूतपूर्व चोकोस्लोविकेआ) ने अपने देश के छात्र-छात्राओं के लिए अनेक हिन्दी-पाठ्यपुस्तकें भी लिखी हैं। भारत के अनेक नेताओं एवं हिन्दी के अनेक साहित्यसेवियों से उनका अच्छा सम्पर्क रहा है। देश के चेक एवं स्लोवाक गणतन्त्रद्वय में विभाजन के बाद वे चेक-राजदूत के पद पर प्रतिष्ठित हुए हैं।

स्मेकल फ़्रेडेरिक पिन्कॉट[2] (ब्रिटेन) के अनन्तर मौलिक हिन्दी-कविता रचनेवाले गोदो में अन्यतम अभिधान हैं। उनकी कविता में भारत, भारत की नाड़ी गंगा,[3] भारत की दरिद्र जनता, भारत की प्रकृति इत्यादि के प्रति घनीभूत सम्वेदन प्रशस्यतः व्यक्त हुआ है। 'करोड़ों की जननी'[4], 'पाठशाला जाते हुए भारतीय बच्चे', 'गंगा के तट पर', 'माटी के दीये', 'न जाने क़ैसे!' जैसी अनेक कविताएँ उनके गहन भारत-सम्वेदन की प्रतीक हैं। उन पर शमशेर, दिविक रमेश इत्यादि की ध्वंसात्मक तथा जगदीशचन्द्र 'जीत' इत्यादि की प्रशंसात्मक आलोचनाएँ निरर्थकप्राय हो सकती हैं, किन्तु यशपाल जैन इत्यादि ने सार्थकप्राय स्फुट आलोचना भी लिखी है। 'ओ सगुनिए' को ललकारती 'प्रातः स्मरण' जैसी कविताएँ उनके सगुणवाद-साकारवाद के मूढ़तापूर्ण अज्ञान एवं साम्यवादी दुराग्रह की सूचना भी देती हैं जो स्वयं उनके 'पूर्व' देश के विखंडन एवं वहाँ साम्यवाद के समापन के द्वारा भी निरर्थक सिद्ध हो चुकी हैं। किन्तु उनके भारत-ज्ञान विहीनप्राय होने पर भी उनका भारत-सम्वेदन स्मरणीय है। स्मेकल भारत-सम्वेदन की दृष्टि से अतुलनीय गौरांग महानुभाव हैं। उनका उत्कट हिन्दी-प्रेम सर्वथा प्रशस्य है। उन्होंने हिन्दी का मानक रूप अपनाया है, टकहवा बाज़ारू रूप नहीं। साहित्य के इतिहास में उनका नाम अवश्य अंकित होना चाहिए। कविता के उदाहरण देखें :

1. पूछ रहा
भारत वासी
सड़क पर घूमते हुए
दूसरे को टोके
ए भाई साहब!
पुराने मालिक की भाषा
कब तक लादते रहेंगे
देश भाषा पर अधिकार प्राप्त किए बिना?
कब तक?

2. मत भूलना
मेरे भारतीय मित्र—
और बार-बार किंकर्तव्यविमूढ़
इस देश की ठेठ भाषा—
सत्यं शिवं सुंदरं
भोग लेने के लिए
क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?
किस के साथ संभाषण करूँ?

---

[1] द्रष्टव्य है, 'स्मेकल की प्रतिनिधि कविताएँ' (सं. जगदीशचन्द्र 'जीत', 1983 ई., श्री 'जीत' ने 'कवि स्मेकलः नज़रों में' शीर्षक सम्मतियों एवं लघु समीक्षाओं का संग्रह भी सम्पादित किया है।)

[2] कविता ब्रजभाषा में लिखते थे। भारतेन्दु के भक्त एवं मित्र थे।

[3] 'बौद्धिकरस' (1964 ई.) में मेरा प्रयोग।

[4] मार्मिक एवं उत्कृष्ट कविता, किन्तु अन्त में शिथिल।

3. न जाने कैसे
इस देश की कर्मठ नारी–
कुएं से पानी निकालती
आँगन में तुलसी उगाती
हसिये से गेहूँ, धान काटती
खेतों में बैलों से जूझती
कात-कात कपड़े बुनती
दही बिलोती, मेमने चराती
नन्हों-मुन्नों को लोरियाँ सुनाती!

न जाने कैसे
इस देश की परम सुंदरी
आँखों में सुरमा डालती
केशों में चमेली के फूल सजाती
झरने में मेहंदी लगे पाँव धोती
ड्योढ़ी की देहरी पर अल्पना बनाती
गहनों की झंकार से जग मुखरित करती।

न जाने कैसे
इस देश की वीरांगना
सतत उभर आती मन में उसकी झाँकी–
उदास मन ससुराल जाती
गैया के बछड़ा सी किलकारी भरती
नवरात्रों में नहाने जाती
बरखा गीत गा-गा कर साँझी बनाती
नदिया के घाट मीठा मुस्कुराती
पर संतान न होने पर मुरझा जाती।

अमरेश[1]

बैसवारे (उन्नाव-रायबरेली जनपद-द्वय के अंचलों में प्रसरित) के विख्यात कवि एवं लेखक अमरबहादुर सिंह 'अमरेश' (1 मार्च, 1971 ई.[2]) ने 'बैसवारे का इतिहास' लिखा है, 'राना बेनीमाधव', 'राजकलश', 'सोनगिरि', 'क्रान्ति के कंगन', 'कछार के काँटे', 'हिना के हाथ', 'प्रवीन राय', 'महलों के दायरे', 'गंगा और गोमती' इत्यादि उपन्यास रहे हैं, 'एक और जलियाँवाला' (मुन्शीगंज हत्याकाण्ड) एवं 'देवता मेरे देश का' (गाँधी) गाया है तथा कृतियों द्वारा अंचल, प्रदेश एवं राष्ट्र की स्मरणीय सेवा की। 'अमरेश कोरे साहित्यकार न होकर, इतिहासकार एवं प्रेरक सेवाव्रती भी थे। उनके 'राना बेनीमाधव' (1954 ई.) 'हिना के हाथ' (1969 ई.), 'राजकलश' (1960 ई.), 'प्रवीन राय' (1960 ई.), 'सोनगिरि', तथा 'गंगा और गोमती' उपन्यास उन्हें एक सम्मान्य उपन्यासकार सिद्ध करते हैं। रायबरेली की साँस-साँस में वे आज भी रमे हैं तथा बहुत दिनों तक रमेंगे। वे, उत्कृष्ट आंचलिक-उपन्यासकार एवं सुयोग्य ऐतिहासिक-उपन्यासकार

---

[1] शिवसिंह कृत 'सरोज' में (तुलसी-कालीन) शृंगारी कवि अमरेश (जन्म 1578 ई.) का उल्लेख है (एक छंद भी)। कानपुर में अमरेश वैद्य नामक कवि याद आते हैं।

[2] कहीं-कहीं 1978 ई. में निधन लिखा मिलता है, जो ग़लत है। उनके मित्र तथा निधन के समय विद्यमान शिवसिंह 'सुमन' ने 1979 ई. लिखा है जिन्हें मैंने देखा-सुना है।

के अतिरिक्त, जागरूकता एवं प्रबुद्ध कवि थे, जिन्होंने मनोहारी नवगीत भी रचे हैं। वे एक अनूठे शब्दचित्रकार हैं। उनकी 'बाढ़ : एक चित्र' कविता देखिए :

बरसाती मौसम में
पेट का जुगाड़।
हरी-हरी साड़ी पर
लाल-लाल पाड़।
परवतिया झाँक रही खोलकर किंवाड़।
बरखा से लहर उठे—
पोखर औ ताल!
बरगद की छाया में
खड़ा लेखपाल[1]!
उठे रहे है छप्परों से धुएं के पहाड़।
बहती है घाटी
उभरता दोआबा।
टूट गया पानी में—
नहर का कुलाबा।
रेडियो[2] से आल्हे की थाप औ दहाड़।
बाँध लिया पेड़ों में
बादल का साफा।
डाकिया बहा गया है—
द्वार पर लिफ़ाफ़ा[3]।
राम जाने तिल कहाँ है और कहाँ ताड़।

निर्मल वर्मा

हिन्दी-कहानीकारों को दो विराट् वर्गों में बाँटा जा सकता है : 1. सामान्यतः माधवप्रसाद मिश्र एवं माधवराव सप्रे प्रभृति आरम्भिक कहानीकारों तथा विशेषतः प्रेमचन्द एवं विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक प्रभृति विकसित कहानीकारों की समाजप्रधान परम्परा को विकसित करने वाले चन्द्रकिरण सोनरेक्सा, यशपाल, कमलेश्वर, मोहन 'राकेश', राजेन्द्र यादव, मन्नू भण्डारी, कृष्ण सोवती, भीष्म साहनी, रामदरश मिश्र इत्यादि कहानीकार जिनमें से प्रायः सभी साम्यवादी रहे हैं (यद्यपि इस वर्ग में गंगाप्रसाद मिश्र जैसे श्रेष्ठ कहानीकार वाद-लाभ न उठा सकने के कारण या आपाधापी में पिछड़ जाने के कारण न्यास से वंचित रहे हैं तथापि इनकी संख्या भी अच्छी-ख़ासी रही है—'अश्क़', रामप्रसाद घिल्डियाल 'पहाड़ी', भैरवप्रसाद गुप्त, गंगारत्न पाण्डेय, गंगाप्रसाद 'विमल' प्रभृति को इनमें समाहित किया जा सकता है) तथा 2. सामान्यतः किशोरीलाल गोस्वामी एवं राधिकारमण प्रसाद सिंह प्रभृति आरम्भिक तथा विशेषतः प्रसाद एवं राय कृष्णदास प्रभृति विकसित कहानीकारों की व्यक्तिप्रधान परम्परा को विकसित करनेवाले विनोदशंकर व्यास, वाचस्पति पाठक, जैनेन्द्र अज्ञेय, निर्मल वर्मा, धर्मवीर 'भारती', राजेन्द्र अवस्थी, हिमांशु जोशी इत्यादि कहानीकार जिनमें से प्रायः सभी व्यक्तिवादी रहे हैं। हिन्दी के व्यक्तिवादी कहानीकारों में प्रसाद, जैनेन्द्र और निर्मल वर्मा विशिष्ट हैं। निर्मल वर्मा ने साधारण में असाधारण का अन्वेषण एवं

---

1. शोषण-प्रतीक 'पटवारी' का नया-संस्करण।
2. 'रडिओ' को सभी 'रेडियो' ही लिखते हैं।
3. डाकिया डाक का डाक़ा डालता है—वह डाक बहाता भी है, फेंकता भी है; वैसे, डाक देता भी है (ख़ासकार 'बड़े-बड़े लोगों' की जो दीवाली वगैरह पर 'इनाम' देते हैं) : लेन-देन सत्त है, लो-दो तो गत्त है!

चित्रण किया। वे जटिल कलाकार (कहानीकार, उपन्यासकार, यात्रावृत्तकार) एवं जटिलतर विचारक थे। अपने उत्तर काल में वे श्रेष्ठतम कहानीकार रहे। एक तीसरा वर्ग शतशः स्वतन्त्र कहानीकारों का रहा है जिन्होंने वाद की परवाह न कर बस जीवन को उरेहा है; इनमें उग्र, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, 'रेणु', शिवानी इत्यादि प्रमुख हैं। तीनों ही वर्गों के कहानीकारों ने विधा को समुन्नत किया है। तीनों की ही मानव के प्रति निष्ठा प्रशस्य रही है। प्रेमचन्द और कौशिक, प्रसाद और राय कृष्णदास, उग्र और चतुरसेन शास्त्री, जैनेन्द्र और अज्ञेय, भगवतीप्रसाद वाजपेयी और गंगाप्रसाद मिश्र, मोहन राकेश और कृष्ण सोबती, निर्मल वर्मा और राजेन्द्र अवस्थी, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव इत्यादि ने उच्च कोटि की कहानियाँ लिखकर साहित्य की इस लोकप्रिय विधा की स्मरणीय सेवा की है।

निर्मल वर्मा (3 अप्रैल, 1929–25 अक्टूबर 2005, जन्म शिमला, निवासी दिल्ली) हिन्दी कहानी में पाश्चात्य एवं तत्प्रेरति प्राच्य जीवन-जटिलता के प्रमुख शिल्पी हैं। उनके 'परिंदे' (1960 ई.), 'जलती झाड़ी' (1964 ई.), 'पिछली गर्मियों में' (1968 ई.) इत्यादि कहानीसंग्रह सम्वेदनहीन, एकाकी अथवा अहं-संत्रस्त अधुनातन प्रबुद्ध-मानव को विदग्धतापूर्वक विवृत करने के कारण हिन्दी-दृष्टि से असाधारण भी हैं, मौलिक भी। निर्मल वर्मा एक गम्भीर चिन्तक भी थे। यह सत्य है कि उनकी 'लन्दन की एकरस कहानी', 'परिंदे' 'सितम्बर की एक शाम' इत्यादि रचनाएँ आजीविकाहीन, दिशाहीन, प्रतीक्षात्रस्त मानव को निरुउद्देश्वत् चित्रित करती है; किन्तु यह भी उतना ही सत्य है कि संप्रति लक्ष-लक्ष अहं में उलझे मनुष्य (विश्षेतः युवक-युवतियाँ) ऐसा ही जीवन जी रहे हैं। आज के अनेक बुद्धिजीवी नर-नारी नपुंसकता, बाँझपन, छड़ापन, शराबीपन, कामुकता, विकलांगता, म्रियमाणता के आखेटत्व को जीवन-विभीषिका के रूप में चित्रित करते रहे हैं क्योंकि यह उनकी मनोवैज्ञानिक विवशता भी रही है (और इस यथार्थ के दायरे में व्यक्तिवाद-सम्यवाद-अन्यवाद सब चकनाचूर होकर रह गए हैं): अज्ञेय, मन्नू भण्डारी, कृष्णा सोबती, राजेन्द्र यादव, निर्मल वर्मा, राजेन्द्र अवस्थी, कमलेश्वर इत्यादि की विविध प्रकार की विवशताएँ सम्वेदन के द्वारा ही समझी जा सकती हैं।

विष्णुकान्त शास्त्री

जितनी साँसे मिली मुझे वे खोई नहीं, न अब खोऊँगा।
बुझते-बुझते भी पूनम के बीज अमावस में बोऊँगा।।

'कवि निराला की वेदना तथा अन्य निबन्ध' एवं 'चिन्तन-मुद्रा' (आलोचना), 'कुछ चन्दन की कुछ कपूर की' (निबन्ध), 'बांग्लादेश के सन्दर्भ में' (रिपोर्ताज या तात्कालिकी) एवं 'स्मरण को पाथेय बनने दो' (संस्मरण एवं यात्रावृत्त) के बहुविधाकार आ. विष्णुकान्त शास्त्री (2 मई, 1929–17 अप्रैल 2005 पटना, कार्यक्षेत्र कलकत्ता) ने 'द्विवेदीयुगीन हिन्दी–साहित्य का इतिहास' जैसे शोधपरक निबन्ध भी लिखे हैं। वे तुलसी-साहित्य के विद्वान् माने जाते हैं। उन्होंने डॉ. शशिभूषणदास गुप्त के बांग्ला-ग्रन्थ का 'उपमा कालिदासस्य' रूप में हिन्दी-अनुवाद किया हैं तथा डॉ. महादेवप्रसाद के अंग्रेज़ी-ग्रन्थ का 'महात्मा गाँधी का समाज-दर्शन' के रूप में। उन्होंने अनेक ग्रन्थों का सम्पादन भी किया है। उन्हें अनेक सम्मान एवं पुरस्कार ठीक ही प्राप्त हुए हैं। वे भारतीय जनता पार्टी के नेता, सांसद तथा उत्तर प्रदेश के राज्यपाल रहे।

डॉ. विष्णुकान्त शास्त्री कश्मीरमूलक[1] हैं; 'बंगाली' माने जाते हैं तथा हिन्दीग्रन्थकार हैं–उनका व्यक्तित्व भारत की राष्ट्रीय एकता का प्रतीक है! 1992 ई. में वे राज्यसभा-सदस्य उत्तर प्रदेश से निर्वाचित हुए तथा इससे पूर्व विधायक पश्चिम बंगाल में रहे! संस्कृत, हिन्दी, बांग्ला, अंग्रेज़ी इत्यादि अनेक भाषाओं के ज्ञाता विष्णुकान्त शास्त्री एक प्रभावी वक्ता एवं सुयोग्य विधायक-सांसद हैं।

यद्यपि अनेक विधाओं में थोड़ा-थोड़ा कार्य करने के कारण विष्णुकान्त शास्त्री किसी एक विधा में कोई निर्णायक कार्य नहीं कर सके तथा राजनीतिज्ञ होने के कारण जमकर साहित्य-साधना भी सम्भव नहीं रही तथापि वे एक मननशील विद्वान् एवं ध्येयनिष्ठ राष्ट्रवादी साहित्यकार के रूप में स्मरणीय अवश्य हैं।

---

[1] मेंरे ग्रन्थ 'हिन्दीसेवी नेता, दार्शनिक, योगी' के 14 जुलाई, 1992 को सायं त्रिवेणी कला संगम नई दिल्ली में हुए लोकार्पण-समारोह में डॉ. रमानाथ त्रिपाठी ने बताया कि विष्णुकान्त शास्त्री कश्मीरी हैं। 'हिन्दी के कश्मीरी साहित्यकार' शोध का विषय है इनमें आग़ा हश्र कश्मीरी, स्वरूपंकुमारी बख़्शी, गोपालकृष्ण कौल, विष्णुकान्त शास्त्री, शिब्बन कृष्ण रैणा, शम्भूनाथ भट्ट 'हलीम', उर्मिला कौल, पुरुषों के विरुद्ध जिहाद छेड़नेवाली तेज़-तर्रार शामा इत्यादि स्मरणीय हैं।

शिवप्रसाद सिंह

'नीला चाँद' उपन्यास पर 1990 ई. का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त करने वाले स्व. डॉ. शिवप्रसाद सिंह 19 अगस्त, 1928 या 1929 ई. में जलालपुर जनपथ, गाजीपुर निवासी वाराणसी ने 'आर-पार की माला', 'कर्मनाशा की हार', 'मुरदा सराय', 'इन्हें भी इन्तज़ार है' प्रभृति कहानी-संग्रह, 'अलग-अलग वैतरणी', 'गली आगे मुड़ती है', 'नीला चाँद', 'शैलूष' प्रभृति उपन्यास तथा 'घाटियाँ गूँजती हैं' नाटक के अतिरिक्त यत्र-तत्र आलोचना पर भी हाथ आज़माया है। वे गौरवशाली चन्देल-वंश के रत्न थे। इसी वंश के डॉ. अनुजप्रतापसिंह (3 जनवरी, 1953, तिलवाही, जनपद सोनभ निवासी अमेठी) विद्वान्, शोधगुरु एवं मार्मिक कहानीकार ज़िन्होंने आदिवासियों का मार्मिक चित्रण किया है तथा जो नारी जीवन के विशद्ध चितेरे हैं। उनकी औपन्यासिक प्रतिभा उच्चकोटि की है। शीर्षक-कला के चमत्क़ार में वे विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, धर्मवीर भारती, देवेन्द्र सत्यार्थी इत्यादि का स्मरण कराते हैं। 'अधुनातम साहित्य में शीर्षक-कला का चमत्कार' शोध का विषय है। एतद्‌विषयक विश्लेषण से स्पष्ट होगा कि डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय इत्यादि यहीं आकर फीके पड़ जाते हैं।

'नीला चाँद' मध्यकालीन काशी के ऐतिहासिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक जीवन को मार्मिक रूप में प्रस्तुत करता है। उज्ज्वल चन्द्र के सदृश जाज्वल्यमान् चिर-नगर अपनी दुर्बलताओं एवं विदेशी आक्रान्ताओं के कारण नीलचन्द्र हो रहा था! राष्ट्रीय अन्तर्विरोधों का संवेदनशील अंकन एवं चाँद के नीले होने पर भी प्रकाश की स्पृहा जैसी प्रवृत्तियाँ इस उपन्यास को एक महत्त्वपूर्ण कलाकृति का रूप प्रदान करती हैं।

रघुवीर सहाय

'दूसरा सप्तक' (1951 ई., सं. अज्ञेय) में जिन सात कवियों को समाविष्ट किया गया, उनमें रघुवीर सहाय (9 दिसम्बर, 1929-1990 ई., जन्म लखनऊ, कार्यक्षेत्र दिल्ली) 'सामाजिक यथार्थ' के प्रति जागरूक होते हुए भी ''मार्क्सवाद को कविता पर गिलाफ की तरह चढ़ाए जाने को'' नकारते रहे। वे लोहियावादी (समाजवादी) थे। 'वसन्त', 'पहला पानी', 'प्रभाती' इत्यादि कविताओं का प्रकृतिप्रेम तथा 'भला', 'याचना', 'अनिश्चय', ''समझौता'' इत्यादि कविताओं का प्रेम उन्हें एक अच्छी दूरी तक सहज-कवि सिद्ध करता है। 'आत्महत्या के विरुद्ध' एवं 'हँसो, हँसो, जल्दी हँसो' उनके स्मरणीय कविता-संग्रह हैं। उन्होंने कहानी, निबन्ध और आलोचना पर भी हाथ आज़माया। उन पर बच्चन एवं गिरिजाकुमार माथुर का प्रभाव स्पष्ट है। वैसे, वे अज्ञेय एवं शमशेर से प्रभावित हुए हैं। यह सत्य है कि उनकी कविताएँ साधारण क़िस्म की हैं, किन्तु जहाँ कहीं वे तन्मय हो पाए हैं वहाँ बहुत मार्मिक सृजन भी कर सके हैं :

मैं कभी-कभी कमरे के कोने में जाकर
एकांत जहाँ पर होता है,
चुपके से एक पुराना क़ाग़ज़ पढ़ता हूँ
मेरे जीवन का विवरण उसमें लिखा हुआ,
वह एक पुराना प्रेमपत्र है जो लिखकर
भेजा ही नहीं गया, जिसका पानेवाला
काफ़ी दिन बीते गुज़र चुका। (भला)

जगदीश गुप्त

'बोधिवृक्ष' के खंडकाव्यकार एवं 'नाव के पाँव'[1] इत्यादि संग्रहों के कवि स्व. डॉ. जगदीश गुप्त 1950-60 ई. के बीच प्रयोगवाद के एक प्रचारक के रूप में उभरे ('नयी कविता[2] का रामस्वरूप चतुर्वेदी के साथ संपादन किया), इलाहाबाद विश्वविद्यालय में हिन्दी

---

1. कवि (वस्तुतः 'लेखक' जैसा कि उन्हीं के 'विज्ञापन' से स्पष्ट है) द्वारा अंकित चित्रों से युक्त। डॉ. जगदीश गुप्त चित्रकार भी हैं (महादेवी का स्मरण कराते हुए)।
2. 'नयी कविता' में अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे इत्यादि से लेकर अनन्तकुमार 'पाषण', रामावतार 'चेतन', 'गिरिधर गोपाल', परमानन्द 'नयी कविता' में अज्ञेय, भवानीप्रसाद मिश्र, प्रभाकर माचवे इत्यादि तक 'च.1ग प्रयोगवादियों की 'नयी' कविताएँ तो छापती ही थीं; शम्भूनाथ सिंह, जनार्दन 'मुक्तिदूत' जैसों के गी श्रीवास्तव, रामबहादुर सिंह, 'मुक्त' इत्यादि तक 'च.1ग प्रयोगवादियों की 'नयी' कविताएँ तो छापती ही थीं; शम्भूनाथ सिंह, जनार्दन 'मुक्तिदूत' जैसों के गी भी छपते थे—अच्छी 'सामयिक' पत्रिका थी (हल्की-सी गिरोहबाज़ी के साथ)!

विभागध्यक्ष के रूप में खूब जमें। उन्होंने गीतिकाव्य, प्रयोगवादी कविता इत्यादि 'प्रचलित' विषयों पर विवेचनात्मक गद्य भी लिखा है, जो एतद्‌विषयक अज्ञेय, मुक्तिबोध, धर्मवीर 'भारती', नलिनविलोचन शर्मा, शमशेर, लक्ष्मीकान्त वर्मा, देवीशंकर अवस्थी, अजितकुमार इत्यादि विवेचकों के गद्य से मिलता-जुलता ही है तथा एतद्‌विषयक पाश्चात्य विवेचकों के मूल विचारों से प्रेरित है। डॉ. जगदीश गुप्त के लचीले व्यक्तित्व की एक बड़ी विशेषता यह रही है कि वे साम्यवादियों को साम्यवादी, काँग्रेसियों को काँग्रेसी, संघियों (राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से जनसंघ एवं भारतीय जनता पार्टी तक) को संघी तथा अन्यों को अन्य लगते रहे। इससे भारी लाभ हुआ। प्रसाद के सदृश हलवाई (मोदनवाल या मोदकवाल) होने के कारण उनके व्यक्तित्व में मिठास की कमी कभी नहीं रही! जगदीश गुप्त की एक श्रेष्ठ कविता की बानगी पेश है :

पहेली

तुम्हें जानें,
अगर इस बार बतला दो
हमारी मुट्ठियों में है छिपी क्या चीज़?
ऊँ, हुँ! क्यों बतायें हम,
छिपाने में पुरुष होते नहीं हैं कम
किसी से भी।
न बतलाओं नहीं मालूम है तो,
यों किसी को दोष देने से
मिलेगा क्या?
मिलेगा क्या?
यही तो पूछना था—
हाँ, सुनो! यदि हम बता दें
तो मिलेगा क्या!....

भगवतशरण अग्रवाल

हिन्दी के प्रथम प्रकाशित हाइकू[1]—संग्रह 'शाश्वत क्षितिज' (1985 ई.) के उल्लेखनीय कवि डॉ. भगवतीशरण अग्रवाल (23 फरवरी, 1930—फ़तेहगंज, बरेली, पूर्व आचार्य गुजरात विश्वविद्यालय अनुस्तानक केन्द्र अहमदाबाद) ने 'टुकड़े-टुकड़े आकाश' के रूप में भी इस उपविधा को सम्पन्न किया है।[2] सम्पादक-द्वय कमलेश भट्ट 'कमल' एवं रामनिवास 'पन्थी' के हिन्दी के प्रथम हाइकू-संकलन 'हाइकू-1989' में झीणाभाई देसाई, डॉ. भगवतशरण अग्रवाल, डॉ. जीवनप्रकाश जोशी, डॉ. कमलकिशोर गोयनका, डॉ. मोतीलाल जोतवाणी, डॉ. वेदज्ञ आर्य, सतीश राठी, गोविन्दनारायण मिश्र, जवाहर 'इन्दु', राजेन्द्र बहादुर सिंह 'राजन', रामनारायण 'रमण', रामसुमेर 'मधुपर्क, शम्भूदयाल सिंह 'सुधाकर', शम्भूशरण द्विवेदी 'बन्धु', 'रामनिवास 'पन्थी' एवं कमलेश भट्ट 'कमल' प्रभृति 30 कवियों की 210 रचनाएँ उपलब्ध हैं। इस संकलन में हिन्दी हाइकू के एक स्तम्भ आदित्यप्रताप सिंह का अभाव खटकता है, जबकि गुजराती के महान् हाइकूकार स्नेहरश्मि की रचनाएँ डॉ. भगवतशरण अग्रवाल द्वारा अनूदित हैं। इधर के वर्षों में शान्त-गहन कवि-पत्रकार श्री रमाकान्त श्रीवास्तव, दर्शनशास्त्रवेत्ता डॉ. रमेशकुमार त्रिपाठी, वरिष्ठ कवि नलिनीकांत ने हाइकू विधा में उल्लेखनीय सृजन किया है। 'हाइकू—1989' की विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना में हिन्दी हाइकू के एक नेता डॉ. सत्यभूषण वर्मा (देहान्त 13 जनवरी, 2005) ने अपनी हाइकू पत्रिका के ही कवियों की संख्या 70 से अधिक बताई है। भगवतशरण अग्रवाल ने 'गीली धरती', 'तपते बादल' एवं 'तुम ही तुम'

---

1. 'हाइकु' शुद्ध है किन्तु 'हाइकू' भी प्रचलित है। रूढि योगात् बलीयसी।
2. 'अकह' (1994 ई.) में हाइकू भी हैं तथा किशोरकालीन गीत एवं मुक्तक भी, जबकि 'प्यारी धरती ख़ाली बादल' (1993 ई.?—प्रकाशन वर्ष नहीं दिया किन्तु 'दृष्टिकोंण' शीर्षक भूमिका के अन्त में '2-9-93' लिखा है) में नई कविता की सफल रचनाएँ दृष्गिोचर होती हैं।

कवितासंग्रहों एवं 'गीत-नवगीत-संग्रह' के द्वारा भी एक सफल कवि होने का परिचय दिया है। वे 'सफेद कौए, काले हंस' में एक प्रभावी व्यंग्यकार भी हैं। वैसे, उन्होंने कहानियाँ, एकांकी, समीक्षाएँ एवं शोध की दिशाओं में भी पर्याप्त लेखन किया है। उनकी गुजरात में हिन्दी प्राध्यापन एवं शोध की सेवाएँ प्रशस्य हैं। गुजराती-भाषी हिन्दी-कवयित्री दिव्या रावल को भी उन्होंने उत्साहित किया है। वे एक प्रौढ़ एवं उत्कृष्ट हिन्दी-कवयित्री हैं।

डॉ. भगवतशरण अग्रवाल की कवि-प्रतिभा 5-7-5 अर्थात् त्रिपंक्तीय सत्रह-अक्षरी जापानी छन्द में निष्णात होते हुए भी भारत एवं भारतीय संस्कृति में ही रमी-रसी है। वे आयातित अनूभूमि एवं अभिव्यक्ति के कवि नहीं हैं। उनके हाइकू अस्मिता से प्रकृति तथा प्रतीक से संस्कृति तक प्रसरित हैं। उनका रहस्य-संकेत अतीव गहन हैं। उन्होंने स्फीत भारतीय कथा-वैभव[1] को वैदग्ध्य-पूर्वक आत्मसात् किया है। डॉ. ओमानन्द रू. सारस्वत ने ठीक लिखा है "व्यंग्य, संवेदन, ख़ालीपन, युगबोध, अन्तर्विरोधी आदि को उजागर करने में कवि जहाँ सीता, राधा आदि का मिथकीय प्रतीकार्थ में प्रयोग करता है वहाँ फूल, छड़ी, आकाश, सागर, पेड़, सिंह, चन्द्र आदि के परम्परा-युक्त प्रतीकों में नई अथर्वता भी भरता है।" गुजराती के विशिष्ट हाइकूकार श्री झीणाभाई देसाई 'स्नेहरश्मि' (जिनका 1967 ई. में प्रकाशित 'सोनेरी चाँद रूपेरी सूरज' का भारतीय हाइकू की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्त्व है) ने भी डॉ. अग्रवाल की प्रशंसा की है। कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. ओर न छोर
कहाँ ढूँढ़ूँ क्षितिज
कहाँ नहीं है?

2. बर्फ़ से ढँके
शिखरों का सौन्दर्य
शाश्वत गीत।

3. सदियाँ बीतीं
कभी मैला न हुआ
चिट्टा सूरज।

4. फूलों से पूछो
काँटों के साथ कैसे
महकते हैं?

हाइकू की अनवरत साधना करते हुए डॉ. भगवतशरण अग्रवाल ने 'अर्घ्य' (जून, 1995) में 65 रचनाएँ तथा उनके भारत एवं विश्व की 24 भाषाओं में अनुवाद (उनकी अपनी लिपियों में भी, यथास्थान देवनागरी लिपि में भी) प्रस्तुत कर मानवीय एवं भारतीय एकता की प्रणम्य सेवा की है। हिन्दी-हाइकू एव हिन्दी-साहित्येतिहास में डॉ. अग्रवाल को उनका अपना स्थान प्राप्त है।

मन्नू भंडारी[2]

एकता प्रस्थान-कोशकार सुखसम्पतिराय भंडारी की पुत्री तथा 'सारा आकाश' के प्रसिद्ध उपन्यासकार राजेन्द्र यादव की सम्वन्धविच्छेद पूर्व तक पत्नी, मन्नू भंडारी (जन्म 1 अप्रैल, 1930 को अजमेर में) 'मैं हार गई' तथा 'शमशान' कहानियों के कठोर यथार्थवाद के साथ प्रसिद्ध हुई थीं तथा 'महाभोज' उपन्यास के साथ 'महाप्रसिद्ध'! सत्यप्रकाश 'मिलिन्द' लिखते हैं, "मन्नू भंडारी की रचनाओं में नारीत्व के स्वाभाविक गुण नहीं हैं जिनकी अपेक्षा एक नारी-लेखिका से की जाती है। कोमलता में इन्हें विश्वास नहीं है। राहुल हों या यशपाल, रांगेय राघव हों या कमलेश्वर, मुक्तिबोध हों या नागार्जुन, राजेन्द्र यादव हों या मन्नू भंडारी—साम्यवादी खेमे के प्रायः सारे कथाकार भारतीय संस्कृति पर प्रहार को अपना प्रथम कर्त्तव्य मानते रहे हैं। रामविलास शर्मा जैसे बड़े एवं रामदरश मिश्र जैसे अन्य अपवाद 'नियम' नहीं बदल सकते। मन्नू भंडारी की रचनाएँ किसी वाद में बद्ध नहीं लगतीं किन्तु भारत एवं भारतीयता पर प्रहार उन्हें साम्यवादियों के निकट खड़ा कर देता है। चन्द्रकिरण सौनरक्सा ने 'आदमख़ोर' से परिचय कराया था किन्तु नारीत्व को बहिष्कृत करके नहीं और कवयित्री भी होने के कारण उनमें भावुकता का स्तर भी सन्तोषजनक रहा। "मन्नू भंडारी न तो नर न नारी" लिखने की विवशता को विवृत करने की आवश्यकता मुझे आज ही अनुभूत हुई है! 'गोदान' में प्रेमचन्द ने नारी के नर बनने का प्रत्यख्यान किया है। सम्भव है कि यह उनके नरवाद का उद्गार हो। उनके सर्वसुविधा-सम्पन्न जीवन के तल में कोई अभाव लगातार व्रण बनकर सालता रहा है जिसकी परोक्ष अभिव्यक्ति जीवन की विभीषका के चित्रण के रूपों में कर गई है।

---

[1] फ़ैशन 'मिथक' कहने का है।

[2] 'हिन्दी की महिला साहित्यकार' (सं. सत्यप्रकाश 'मिलिंद') में मन्नु भंडारी ने लिखा है जो ग़लत है। मनु पुरुष होते हैं (मनु शर्मा हैं ही)—मन्नू भी पुरुष होते हैं किन्तु लगता है कि मन्नो से मन्नू हो गया है?

लक्ष्मीकान्त वर्मा

बीसवीं सदी (ई.) के अन्तिम दो दशकों में स्व. लक्ष्मीकान्त वर्मा को बहुत प्रसिद्धि मिली। 'जनसत्ता'[1] जैसे विरोधी दल के प्रतीक लोकप्रिय दैनिक से भी संपृक्त रहे। किन्तु उनकी प्रतिभा एवं विचारशीलता विस्मरणीय नहीं है। वे तत्वतः लक्ष्मीकान्त अधिक हैं, सरस्वतीकान्त अल्प : किन्तु उनमें लेखन-क्षमता थी। उनका कवि-रूप उल्लेखनीय है। वे अधुनातन जीवन की जटिलताओं के सहज चितेरे हैं, जिनमें प्रतीक भी है, कला भी और लालित्य भी। वे जीवन की जटिलता को वाद के चश्मे के नीचे से नहीं देखते प्रत्युत ज्यों-की-त्यों आँख से देखते हैं, वे सतुवा बाँध कर भारतीय संस्कृति के पीछे नहीं पड़ते प्रत्युत उसको ठीक-ठीक आँकते हैं जिसमें न पोंगावाद होता है और न बेपेन्दावाद या परकीयतावाद। दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. कभी-कभी जब मैं खामोश
बिना किसी हरक़त के चुपचाप
पलँग पर पड़ा छत की तरफ़ देखता रहता हूँ
लोग समझते हैं मेरी हालत बड़ी ख़राब है
लोग अंदर बाहर दौड़ते हैं
डॉक्टर हकीम बुलाते हैं
नब्ज़ नाड़ी दिखाते हैं
हृदय की धड़कन मापते हैं,
रक्त-चाप देखते हैं,
लोग चाहते हैं मैं बोलूँ
और लोगों को बताऊँ अपनी बीमारी—
अपनी तकलीफ़
लेकिन मैं जानता हूँ
कि मेरी ज़रा-सी हरक़त से
वह साँप फन फैलाए
मेरे तकिए के नीचे से निकलेगा

---

[1] 'अखबार' शीर्षक अपनी कविता प्रस्तुत करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहाः

अख़बार
सत्य हार
व्यापार।

अख़बार
किसी का प्रचार
तथ्य पर मार।

अख़बार
विज्ञापनों का भार
क्राइम-सेक्स की बहार।

'आज'
साहित्य-काज
भाषा का साज।

'नवभारत टाइम्स'
जूस एंड लाइम्स
सेक्स एंड क्राइम्स।

'हिन्दुस्तान'
बिड़ला की आन
काँग्रेस की शान।

'जनसत्ता'
विरोध का पत्ता
भाषा में लत्ता।

'जागरण'
कोष-भरण
हिन्दी-क्षरण।

'नवजीवन'
हर लेखक-धन
हस्ताक्षरनू!

'पंजाब केसरी'
भाषा में खेसरी
कहता खरी-खरी

'राष्ट्रीय सहारा'
बाज़ी नहीं हारा
पर प्रचलित धारा।

'अमर उजाला'
साहस का उजियाला
पी ज़हर का प्याला।

'स्वतन्त्र भारत'
बस, नहीं आरत
सत्यकथन में रत।

'दैनिक भास्कर'
राज्यों में भास्कर
ठीक बनाए स्तर।

अब नहीं साधना
राजनीति तम घना
ऐश्वर्य महल बना।

और मेरे चारों ओर खड़े लोगों, नाते रिश्तेदारों
क़ुनबे क़बीलों,
अड़ोसियों-पड़ोसियों में से
किसी न किसी को डँस लेगाः मैं कह नहीं सकता....

2. चिड़िया बैठी डाल पर
कविता की छन्द है,
उड़कर कविता की कॉपी से
जा बैठी है डाल पर!
फूलों से कह दो भर दें सुगंध
हवा से कहो भर दे सौरभ अमन
दिशाओं से कहो भर दें प्रकाश
आकाश से कहो और दे विस्तार....

राजेन्द्र अवस्थी

'नन्दन' एवं 'कादम्बिनी' के यशस्वी सम्पादक तथा 'जंगल के फूल' (राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत), 'लमसेना', 'फ़िसलती हुई मछली', 'प्रतीक्षा' इत्यादि के कथाकार राजेन्द्र अवस्थी (25 जनवरी, 1939[1], जबलपुर, निवास दिल्ली) यथार्थवादी युग के एक अग्रणी पत्रकार एवं उपन्यासकार हैं। उन्हें बिहार सरकार के राजभाषा विभाग द्वारा प्रथम महादेवी वर्मा पुरस्कार (1 अगस्त, 1988) भी प्राप्त हुआ है। अनेक देशी-विदेशी पुरस्कारों से सम्मानित राजेन्द्र अवस्थी एक बहुचर्चित साहित्यकार रहे हैं। राजेन्द्र अवस्थी द्वारा आदिवासियों, वेश्याओं इत्यादि का सूक्ष्म चित्रण उच्चकोटि का है, इसमें सन्देह नहीं। वे एक उत्कृष्ट आंचलिक उपन्यासकार भी हैं। साम्यवादी दल के अनेक विश्वविद्यालयों, साहित्य अकादमी इत्यादि पर छा जाने के कारण नागार्जुन, राजेन्द्र यादव इत्यादि बड़े लाभ में रहे। राजेन्द्र अवस्थी नागार्जुन एवं राजेन्द्र यादव का सर्वथा समकक्ष उपन्यासकार हैं।

श्रीकान्त वर्मा

'मगध' के कवि एवं 'ज़िरह' के आलोचक श्रीकान्त वर्मा (1931-86 ई., विलासपुर, कार्यक्षेत्र दिल्ली) एक नेता और वह भी शासकदल नेता होने के कारण अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हुए। उनका रुझान साम्यवाद की ओर था जिससे लाभ भी हुआ क्योंकि साम्यवादी भाई (तत्वतः 'कॉमरेड') साहित्य पर छाए रहे हैं, किन्तु लाभ-ही-लाभ काँग्रेसी होने में था अतः भारत और भारतीयता में उन्हें इन्दिरा, संजय, राजीव गाँधी-त्रयी के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा न लगता था। वे दो बार राज्यसभा सदस्य रहे, काँग्रेस के एक महामन्त्री भी बने और इसी पद पर से बेहद बेसुरौवती से निकाले जाने के सदमे में ही चल बसे। कैलाश वाजपेयी ने नेहरू-वंश तथा अशोक वाजपेयी ने अर्जुनसिंह की एकनिष्ठ सेवा कर सुदीर्घ नाम-दाम-काम बनाए, श्रीकान्त वर्मा का अहं और आसव ऐसा न कर पाए। 'हिन्दी के काँग्रेसी साहित्यसेवी' शोध का रोचक विषय है, जिसमें प्रतापनारायण मिश्र, मदनमोहन मालवीय, 'पूर्ण', डॉ. राजेन्द्रप्रसाद राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन, मैथिलीशरण गुप्त, दिनकर, सेठ गोविन्ददास, हितैषी, नवीन, बनारसीदास चतुर्वेदी, बच्चन, बालकवि वैरागी, श्रीकान्त वर्मा, बेकल उत्साही इत्यादि समाविष्ट होंगे। और सारे प्राचीन को एकबारग़ी धता बताने का राहुली जीवट उनमें न था

संयोगात् श्रीकान्त वर्मा की प्राचीन में भी रुचि थी और सारे प्राचीन को एकबारग़ी धता बताने का राहुली जीवट उनमें न था जो भारत में प्रतिष्ठित बुद्धिजीवी बनने की सबसे बड़ी शर्त है, 'बारहबानी' खरा टकसाली साम्यवादी बनने के लिए अपरिहार्य है अतः कई 'सच्चे प्रगतिवादी' उन्हें 'सामंतवादी' भी कह मारते थे। जब श्रेष्ठतर कवि मुक्तिबोध तक को 'बूर्ज्वा' घोषित करने वाले 'खरे क्रान्तिकारी' मिल जाते हैं तब श्रीकान्त वर्मा की बात ही क्या! आलोचक-रूप में तुलसी पर प्रहार के फ़ैशन से श्रीकान्त वर्मा को थोड़ा-सा सामयिक लाभ तो हुआ, पर इस दिशा में उनकी कोई पहचान न बन सकी। हाँ, दलगत एवं जातिगत लाभ उन्हें लगातार मिले और

---

[1] कहीं-कहीं 25 जनवरी, 1929 दिया है।

मरने के बाद भी उनके नाम पर पुरस्कार चलाया गया जो (सुना जाता है) उनकी 'क्रान्तिकारी' एवं 'प्रगतिशील' विचारधारा के अनुरूप लेखन पर दिया जाता है।

1. तब सुनो या मत सुनो
हस्तिनापुर के निवासियो! होशियार
हस्तिनापुर में तुम्हारा एक शत्रु पल रहा है,
विचार—
और याद रखो
आजकल महामारी की तरह फैल जाता है
विचार।

2. कपिलवस्तु में वृद्ध नहीं है
वृद्ध होने का भय है
कपिलवस्तु में कोई वृद्ध न हो
युवा होने का इतना ही आशय है।

3. मथुरा और अवंती
स्मृतियाँ नहीं हैं
और अगर हैं, भी
क्या कोई मानेगा
मथुरा और अवंती
केवल स्मृतियाँ हैं।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रीकान्त वर्मा के पास विचार था और वे उसे प्रभावी शैली में व्यक्त कर सकते थे। उनके कवि के यहाँ एक व्यापक जीवन मिल जाता है और यह एक उपलब्धि है। उनकी भाषा एवं शैली न क्लिष्ट है न कृत्रिम; और इतने पर भी असर डालती है।

घूरू किसान

ग्राम्य प्रकृति (ऋतु, वृक्ष, प्रभात इत्यादि) एवं ग्राम्य परिवेश (घर, छानी-छप्पर, मेला इत्यादि) को विशद मानवतावादी स्वरों से सँजोकर ग्राम्य भाषा-शैली में ही प्रस्तुत करने वाले स्व. घूरूप्रसाद 'किसान' (1931 ई.[1], कुसुम्भी, जनपद उन्नाव) एक शत-प्रतिशत जनकवि हैं, ग्रामकवि हैं। 'धरती के बोल' ठीक ही 'उन्नाव के कबीर' के रूप में समादृत किया गया है। लगभग कबीर की तरह कवियों के मध्य घूरू किसान को एक विशिष्ट एवं आदरणीय स्थान प्राप्त है। डॉ. महेशचन्द्र मिश्र 'विधु' के शब्दों में, ''उनके अवधी लोकगीत मन की सौम्य संस्कारभाव सँजोए हैं। उनका मधुर कंठ उनकी अभिव्यक्ति में अभिनव-रस घोलता है। माटी की सोंधी गन्ध में रसा-बसा कवि अभिनन्दनीय है।'' उनकी 'बचपन', 'गाँव' इत्यादि कविताएँ सहज अनुभूति को सहज अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम हैं, स्तरीय हैं। उनका शब्दचयन प्रशस्य है। 15 सितम्बर, 1990 को उन्नाव पालिका भवन के कविसम्मेलन में हरिजन लगते एक काले-कलूटे, दुबले-पतले, मामूली धोती-कुर्त्ता पहने ठेठ ग्रामीण को कवि-रूप में देखकर अनेक व्यक्ति हँसने लगे थे, किन्तु जब उसने तन्मयता का मानवीकरण बनकर 'बचपन' कविता सुनाई तब सबके साथ वे भी मन्त्रमुग्ध हो गए। श्रोताओं में स्थानीय नेता, प्राध्यापक, कवि, वकील, व्यापारी, सभी थेः कवि सम्मेलनों के नामी-गिरामी कवि 'नीरज' भी थे। घूरू किसान, सुभाषचन्द्र 'भ्रमर' (दुमका), दूधनाथ शर्मा 'श्रीश' (जनपद जौनपुर, निवास कानपुर), 'डेब्बी गोहरउनी' के कवि डॉ. सत्यनारायण सिंह गौतम[2] (फ़तेहपुर जनपद) एवं स्व. हरिनन्दसिंह 'सिपाही' (जनपद पूर्वी चम्पारन, निवास दिल्ली) जैसे जनकवि माटी के कवि हैं, अपनी-अपनी विभाषाओं के सहज गायक हैं, धरती की साँस के कवि हैं। खेद है कि इन सच्चे जनकवियों की उपेक्षा 'जनवाद-जनवाद' रेंककर कान फाड़ने वाले असली-बूर्ज्वा

---

[1] चैत्र पूर्णिमा 1987 वि. (माघ से ई. बदल जाती है)।

[2] इनके भाई कृष्णपाल सिंह गौतम खड़ीबोली-कवि हैं।

साहित्य-ठेकेदारों और जनता से कोसों दूर 'परिसर'-कवियों और 'मैडिआ (मीडिया नहीं)—कवियों ने अथ से इति तक की है: ये असली-जनवाद के चोर हैं! दो उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. हमका सुधि ना भुलाय बचपन की।
अम्मा वेड़ें हमका सुलावैं
चुपकारैं औ बहुत दुलरावैं
दुन्हऊ अचरन माँ दूधु पियावैं,
लय उढ़निउ म अपनी लुकाय—
ना भुलाय बचपन की।
हमका सुधि ना भुलाय बचपन की।
देही म सरसन क तेल लगावैं
उलटि पलटि कै खुब सोहरावैं
आरे ते कजरउटा मँगावैं
दून्हउ अँखियन म देतीं लगाय—
ना भुलाय बचपन की।
हमका सुधि ना भुलाय बचपन की।
माथे टिकुवा तीनि लगावैं
थ्वारा तरवन माँहै छुवावैं
झउवा का झुलुवा हिलगावैं
डारि हमका हैं देती झुलाय—
ना भुलाय बचपन की।...

2. होरी रे मोरी रँगि गई सबियाँ गाँव!
छपरा राँगि गई, छनियाँ रँगि गई
कलियाँ रँगि गई, गलियाँ रँगि गई
रँगि गई दाहिन बाँव—
होरी रे मोरी रँगि गई सबियाँ गाँव!
लोटिया रँगि गई, थरिया रँगि गई
रँगि गई गोदना क नाँव—
होरी रे मोरी रँगि गई सबियाँ गाँव!
गगरी रँगी, घनउची रँगि गई
भइया राँगे गे, भउजी रँगि गई
रँगि गई ठाँव-कुठाँव—
होरी रे मोरी रँगि गई सबियाँ गाँव!

रजनीश

दुनियादारी के साथ-सा 'च.1ग्थ सन्तगिरि का झमेला पालने में मोहम्मद, कबीर वगैरह सफल रहे, किन्तु रजनीश (1931-90 ई.) असफल सिद्ध हुए, यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि वे एक क्रान्तिकारी विचारक थे जिनके 'शिक्षा में क्रान्ति', 'सम्भोग से समाधि' प्रभृति ग्रन्थों ने, संकीर्ण समय-सीमा में ही सही, विश्व को झकझोरा अवश्य है। मध्य प्रदेश में जन्में तथा सागर विश्वविद्यालय में प्राध्यापक रह चुकने के कारण मातृभाषा हिन्दी पर उनका पूरा अधिकार रहा। अंग्रेज़ी उनकी माध्यम-भाषा बन गई क्योंकि विदेशियों पर उनका भारी प्रभाव रहा। मेरे विचार से, उन पर डॉ. भगवानूदास, महाकवि प्रसाद एवं कविवर दिनकर के काम-दर्शन का प्रभाव भी पड़ा है, जबकि अज्ञेय

उनसे प्रभावित हुए हैं। हिन्दी साहित्य में रजनीश को न्यायसंगत स्थान प्राप्त होना चाहिए। उनका साहित्य नवरहस्यवादी साहित्य है, इनमें सन्देह नहीं। ईशावास्य उपनिषद्, सर्वसार उपनिषद्, कैवल्य उपनिषद् अध्यात्म उपनिषद्, कृष्ण : मेरी दृष्टि में, गीता-दर्शन (13 भाग), महागीता (9 भाग), महावीर : मेरी दृष्टि में, महावीर या महाविनाश[1] (3 भाग), महावीर-वाणी (4 भाग), जिन-सूत्र (4 भाग), एस धम्मो सन्तनो (6 भाग), योगदर्शन (पतंजलि-योगसूत्र[2] : 2 भाग), नारद-भक्तिसूत्र (2 भाग), अथातो भक्तिजिज्ञासा (शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र : 2 भाग), सहजयोग (सरहपा-तिलोप), शिवसूत्र, भज गोविन्दम् (आदिशंकराचार्य), एक ओंकार सतनाम (नानक), सुनो भाई साधो, गूँगे केरी सरकरा, कस्तूरी कुंडल बसै, कहै कबीर दिवाना, मेरा मुझमें कुछ नहीं, कहै कबीर मैं पूरा पाया, पिव-पिव लगी प्यास, सबै सयाने एक मन (दादू), बिन धन परत फुहार (सहजोबाई), जगत तरैया भोर की (दयाबाई), मैंने राम रतन धन पायो, झूक आई बदरिया सावन की (मीराँ), कन थोरे काँकर घने (मलूकदास), कानों सुनी सो सब झूठ, अमी झरत बिगसत कमल (दरिया साहब), अजहूँ चेत गँवार, सपना यह संसार (पलटू), कहे वाजिद पुकार, अरी मैं तो नाम के संग छकी, नाम सुमिर मन बावरे (जगजीवन साहब), नहीं साँझ नहीं भोर (चरणदास), जस पनिहार धरे सिर गागर, का सौवे दिन-रैन (धरमदास), सन्तो मगन भया मन मेरा (रज्जब), हरि बोलो, ज्योति से ज्योति जले (सुन्दरदास), प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया (दूलहन), बिरहिनि मन्दिर दियन बार (यारी साहब), मरो, हे जोगी मरो (गोरखनाथ), हंस तो मोती चुगै (लाल साहब), दरिया कहै सब्द निरबाना (दरियासाहब बिहारवाले), गुरु परताप साध की संगति (भीखा), मन ही पूजा मन ही धूप (रैदास) इत्यादि ग्रन्थों की बेतरतीव स्फीत-सूची उन्हें संस्कृत, पालि एवं प्राकृत के आध्यात्मिक एवं धार्मिक साहित्य से लेकर हिन्दी की सिद्ध-नाथ-निर्गुणप्रधान परम्परा एवं मीराँ, मलूकदास के रूपों में दो की सगुणप्रधान परम्परा का अप्रतिम अध्येता एवं विचारक सिद्ध करती है। रजनीश की हिन्दी-सन्तकाव्यपरक ग्रन्थराशि उन्हें हिन्दी-सन्तकाव्य का विश्वकोश सिद्ध करती है। इस दिशा में 'सहजज्ञानी सिद्ध कवि और रजनीश', 'हठयोग और रजनीश', 'निगुर्ण-प्रधान सन्त-कवि और रजनीश' ('कबीर-काव्य और रजनीश' स्वतन्त्र रूपसे) से 'सगुण प्रेमाभक्ति और रजनीश' प्रभृति शोधग्रन्थ अपेक्षित हैं। 'साधनापथ' उनका अन्य ग्रन्थ है जिस पर वैचारिक ऊहापोह किया जा सकता है। रजनीश की प्रायः असंख्य-अपार-ग्रन्थराशि से आतंकित होने को कोई कारण नहीं क्योंकि वे एक स्फीत वक्ता थे और वर्षों तक प्रसरित अपने उत्कर्ष-युग में नित्यप्रति (अनेक अवसरों पर एक दिन में कई बार) बोलते थे और हम टीपयुग और टेपयुग के मानव हैं ही![3] नेताओं के भाषणसंग्रह भी मिल जाते हैं। नेताओं के आलेखों को उनके सचिव-सहायक लिखते हैं किन्तु वे छपते नेताओं के नाम पर हैं। नेता अपने भाषणों में झूठा, उद्घाटनों में झूठा, आश्वासनों में झूठा, पर ग्रन्थों में जाली। सबका माल पचाओ रे! रजनीश इत्यादि के ग्रन्थ तो उन्हीं से संबद्ध!

रजनीश के मास्तिष्किक आयाम विस्मयकारी रूप से आतंकित करने वाले हैं। उनका विश्व के धर्मों एवं मजहबों, साहित्यों, दर्शनों, मनोविज्ञान, विज्ञान, इतिहास इत्यादि का अध्ययन अतिस्फीत है। यदि वे अहं एवं कामुकता के पाटों में पिस न गए होते तो विश्व का एक बौद्धिक आश्चर्य ही होते। उन्होंने सभी धर्मों एवं मजहबों की निन्दा की, जिससे प्रायः सभी धर्मों एवं मजहबों के अनुयायी रुष्ट हुए। वे घोर व्यक्तिवादी थे, जिससे साम्यवादी उनसे खार खा बैठे, क्योंकि साम्यवाद में विचार-स्वातन्त्र्य सबसे बड़ा पाप है। उनके क्रान्तिकारी विचारों से संकीर्ण पोपलीलावादी पाखंडी घबरा गए तथा अपनी-अपनी सरकारों पर दबाव डालकर झूठे-सच्चे आरोपों के आधार पर उन्हें एक-के-बाद एक देश से निकालते रहे। निराश-हताश लौटे राजनीश को पूर्वावास पुणे में ही शरण मिली!

रजनीश का अद्वैतवादी विचार मूलतः हिन्दू-विचार था, भले ही वे क्रान्तिकारी बनने के फेर में पड़कर हिन्दूधर्म की कठोर आलोचना भी करते रहे हों क्योंकि उनका अहं सबको दबोचता था। और हिन्दूधर्म की निन्दा केवल निरापद ही नहीं अपितु लाभदायक भी होती है। रजनीश के अहं ने कई पैंतरे बदले—पहले वे 'आचार्य रजनीश' थे, फिर 'भगवान् रजनीश' बने, अन्ततः 'ओशो (बुद्ध या प्रबुद्ध) रजनीश'! यदि वे 'केवल रजनीश' रहते तो कम धक्के खाते। जैन होकर भी वे जैन न थे। साहू-जैसे इत्यादि कट्टर जैनधर्मप्रचारक पूँजीपतियों ने भी उनकी सहायता नहीं की क्योंकि ये रूढ़िवादी हैं। रजनीश का पतन न वैचारिक था, न आपराधिक, न आर्थिक—वह शुद्ध ईसाई-राजनीतिमूलक था! धर्म-मजहब-वाद-मुक्त 'अखंड मनुष्य' रजनीश का प्रतिपाद्य था; और वह विगर्हणीय कैसे हैं?

---

1. रजनीश जन्म से जैन थे। वास्तविक नाम चन्द्रमोहन जैन था।
2. ग्रन्थविषय-स्पष्टीकरण हेतु कोष्ठक-प्रयोग मैंने कर दिए हैं।
3. रामचरितमानस के विख्यात कथावाचक स्व. पं. रामकिंकर उपाध्याय के अनेकानेक ग्रन्थ मूलतः प्रवचन हैं। स्वर्गीय उपन्यासकार तथा विविधविषयक स्फीत लेखक गुरुदत्त के अनेकानेक ग्रन्थ टेपमूलक हैं (जबकि अधिकांश शोधप्रबन्ध 'टीपमूलक' होते हैं)।

यह सत्य है कि रजनीश बहुत बौखला जाते थे : लिखने में, बोलने में, व्यवहार में। किन्तु यह भी सत्य है कि वे अन्ध-यन्त्रीकरण एवं श्रमवृत्तिहरण के प्रखर विरोधी जीवनवादी चिन्तक थे। उनका घोर व्यक्तिवाद भी अज्ञेय के घोर व्यक्तिवाद के सदृश मननीय अवश्य हैं। बानगियाँ पेश है :

1. मेरा संन्यासी संसार में रहेगा और परमात्मा में भी। और दोनों के मध्य जो सेतु है—काव्य का, सौन्दर्य का प्रेम का—उसे भी सजाएग़ा, सँवारेगा। निश्चित ही यह अखंड मनुष्य किसी को भी स्वीकृत नहीं होगा। नास्तिक विरोध करेंगे, आस्तिक इसका विरोध करेंगे। पूरब में इसकी निन्दा होगी, पश्चिम में इसकी निन्दा होगी। मगर इन सारी निन्दाओं के बावजूद भी इस अखंड मनुष्य के आने का क्षण आ गया है, इसे अब रोका नहीं जा सकता।[1]

2. मेरी सारी निष्ठा व्यक्ति में है, समाज में नहीं,[2] 'राष्ट्र में नहीं, भविष्य में नहीं। मेरी सारी निष्ठा—वर्तमान में और व्यक्ति में। क्योंकि व्यक्ति ही रूपांतरित होता है, समाज रूपांतरित नहीं होते। क्रान्ति व्यक्ति में होती है, क्योंकि व्यक्ति के पास आत्मा है। जहाँ आत्मा है वहाँ परमात्मा उतर सकता है। समाज की कोई आत्मा ही नहीं होती,[3] वहाँ परमात्मा की कोई सम्भावना नहीं।

3. मनुष्य अखंड हो सकता है, होना चाहिए—होना उसकी नियति है। और जब तक न होगा तब तक पीड़ा है, तब तक विषाद है, तब तक दुःख है।

4. सेक्स लोकोत्तर-ऊर्ध्वीकृत अथवा परा-ऊर्ध्वीकृत (ट्रान्सेन्डेड) होने पर प्रेम हो जाता है; केवल यौन-ऊर्जा ही प्रेम की शक्ति में पुष्पित हो सकती है। मानव यौन से विमुक्त नहीं किया जा सकता। यौन उसका प्राथमिक बिन्दु है; वह इसी से उत्पन्न होता है। परमात्मा ने यौन-ऊर्जा को सृष्टि प्रारम्भ बिन्दु बनाया है।

'डॉ. भगवान्दास, प्रसाद एवं दिनकर के काम-दर्शन का रजनीश पर प्रभाव' तथा 'रजनीश के व्यक्तिवादी एवं कामवादी चिन्तन का अज्ञेय पर प्रभाव' शोध के अच्छे विषय हैं। रजनीश से बिदकने की कोई आवश्यकता नहीं है। उनको समझने की आवश्यकता है।

राजेन्द्र यादव

राजेन्द्र यादव (1932 ई., आगरा जनपद) एक प्रमुख कहानीकार हैं, जिनके 'खेल-खिलौने', 'जहाँ लक्ष्मी क़ैद है', 'अभिमन्यु की आत्महत्या', 'टूटन और अन्य कहानियाँ' इत्यादि संग्रह घोर साम्यवादी यथार्थ, टूटते-बिखरते जीवन, यौन-कुंठा इत्यादि को विवृत करती हैं। शिल्प के अतिरेक ने उनकी अनेक कहानियों को दबोच डाला है। समाज अत्यधिक विषम प्रतीत हुआ है, तो स्वाभाविक ही है! मोहन 'राकेश', कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव की साम्यवादी तिकड़ी जीवन की कुत्सा के चित्रण में बेतरह रमी है। दरिद्रता का व्यावसायिक निर्मम-चित्रण किया। इस निर्मम चित्रण में वे दरिद्र की अस्मिता के साथ न्याय नहीं कर पाए। जब सहज-कला के प्रतिनिधि प्रेमचन्द तक 'कफन' में दरिद्र की मानवता का गला घोट गए तब यशपाल या कमलेश्वर या राजेन्द्र यादव जैसे सायास-कला के प्रतिनिधि उसकी ठठरी को अपनी कारों से बाँधकर सड़क पर क्यों न खींचते (प्रदर्शित करते)! यथार्थ का जैसा विशद एवं संतुलित रूप गोर्की या शोलोख़व में प्राप्त होता है वैसा हिन्दी के कथाकारों में कम ही दिखाई देता है। अपनी सीमाओं और अपने व्यस्त स्थार्थों को समाज पर थोपना 'नई कहानी' के रचयिताओं की प्रधान दुर्बलता रही है। भारतीय संस्कृति पर प्रहार इन कहानीकारों का प्रिय व्यसन रहा है। अतः इनका जीवनकाल में ही चुक जाना (अथवा शोधग्रन्थों की शोभा बढ़ाना) स्वाभाविक है। पता नहीं, यथार्थ के रूप में आत्मसात् न कर सकने वाले अथवा पूर्वाग्रहग्रस्त बिन्दुओं को ही यथार्थ मानने वाले कहानीकार भस्मासुर-नाटक कब तक खेतते रहेंगे?

कुबेरनाथ राय

'प्रिया नीलकंठी', 'रस-आखेटक', 'गन्धमादन', 'निषाद-बाँसुरी' एवं 'कामधेनु' (1990 ई. जिस पर 1992 ई. का मूर्तिदेवी पुरस्कार प्रदान किया गया) के ललित-निबन्धकार कुबेरनाथ राय (1933–5 जून, 1996, मतसा, ग़ाज़ीपुर) ने डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी

---

[1] नीत्शे का 'अतिमानव' याद आता है। किन्तु रजनीश का 'अखंड मनुष्य' यथार्थ के निकटतर है, रक्ताक्त नहीं है।

[2] समाजवाद-विरोधी पूँजीवादी खेमे ने व्यक्तिवादी रजनीश को राजनैतिक कारणों से बहुत चढ़ाया। किन्तु जब उन्होंने देखा कि रजनीश ईसाई मजहब की आलोचना भी कर रहे हैं तब गिरा दिया। रवीन्द्र, राधाकृष्णन् हों या गाँधी, नेहरू—पश्चिम में वही पाएगा जो ईसाइयतपरस्त हो।

[3] वह स्थापना पर्याप्त विवादग्रस्त है।

के ललितनिबन्धों में व्याप्त ऐतिहासिकता-निष्पन्न लोकसंस्कृति-चित्रण के अनुकरण को अस्मिता सम्पन्न रूप प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त की है। उमर ख़य्याम की मधु-चिन्तन एवं कामधेनु का एक ही खूँटे में बाँधने की चिनिया-बेग़मी कल्पना, लक्ष्मी को उलूकवाहिनी एवं असत् की प्रतीक मात्र कहने का बाज़ारी एकतरफ़ापन (लक्ष्मी विवेक-प्रतीक कमल पर आसीन सुख-समद्धि-दात्री देवी हैं जो पालक विष्णु की प्रिया भी हैं—वे 'श्री' हैं), महान् दार्शनिक कपिल को भारतीय दर्शन का जनक एवं 'लोकचक्षु' घोषित करने की उपनिषद्-विरोधी एवं अद्वैतवाद-अवमानताकारी स्थापना (जो मिथ्या भी है क्योंकि अद्वैतवाद प्राचीनतर भी है, व्यापकतर भी तथा कोटि-कोटि जनलोक कपिल के नेत्रों से नहीं प्रत्युत व्यास, कृष्ण, शंकर, तुलसी प्रभृति के नेत्रों से आलोक प्राप्त करता है, सन्तों कबीर, नानक इत्यादि के नेत्रों से देखता है)। कपिल नास्तिक थे किन्तु विश्व में बुद्धिवादी दर्शन के प्रथम प्रस्तोता के रूप में हिन्दू उन्हें विष्णु के एक अवतार के रूप में पूजते हैं। गंगा-कथा तथा अन्य कथाओं में वे सादर समाहित हैं। काशी की ज्ञानवापी में प्रतिष्ठित उनकी मूर्ति पूजी जाती है। उनका कणाद्, बुद्ध, महावीर जैसे ईश्वर-अस्वीकर्ता दार्शनिकों पर भारी प्रभाव पड़ा।

डॉ. श्यामसिंह 'शशि'

काव्य, यात्रावृत एवं नृवैज्ञानिक ग्रन्थों के स्फीत प्रणेता पद्मश्री डॉ. श्यामसिंह 'शशि' (7 अप्रैल, 1936 ई.—बहादुरपुर जट, हरिद्वार) उच्चतम प्रशासकीय पदों पर प्रतिष्ठित रह कर भी गंगातट एवं ग्राम को सदैव अपने वक्ष में लगाए रहे हैं। उन जैसे सहृदय सज्जन कम ही मिलेंगे। उनका हिन्दी-प्रेम अटूट-अखूट है (जो 'हिन्दी हम सब की' ग्रन्थ में भी विवृत हुआ है)। 'लहू के फूल', 'शिलानगर में', 'एक दधीचि और,' 'ढाई आखर' एवं सबसे बढ़कर मानव-पिता मनु एवं समृतिकार मनु की एकाकार कल्पना पर आघृत दशादेशों के अनुरूप दशसर्गीय महाकाव्य 'अग्निसागर' के कवि के रूप में सर्वथा स्मरणीय हैं। 'शशि' के यहाँ प्राचीन-नवीन में कोई वैर नहीं। वैसे, वे अधुनातन कवि हैं। अज्ञेय एवं मुक्तिबोध के अतिरिक्त सप्तक कवियों में कोई उनसे श्रेष्ठतर नहीं तथा अधिकांश उनके स्तर के नहीं, किन्तु 'बन्दरबाँट' में उनके साथ न्याय कैसे हो! उनका एक दोष भी है: वे भारत को पानी पी-पी कर गरियाते नहीं! 'पिछड़े' हैं!! उनके 'हमारा समाज', 'भारत की पशुपालक जातियाँ', 'आदिवासी महिलाएँ', 'हिमालय के यायावर', 'देश देश में रोमा बच्चे', 'वनवासी बच्चे कितने सच्चे' प्रभृति ग्रन्थ हिन्दी के रत्न हैं। 'शेफ़र्ड्स ऑफ इंडिया', 'नाइट लाइफ़ आफ़ इंडियन ट्राइब्ज', 'हिमालय-नेचर्स पीसफुल पैराडाइज़', 'ए सोशियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ गद्दी ट्राइब इन हिमाचल प्रदेश', 'द नौमेड्स ऑफ़ द हिमालयाज़', 'ट्राइबल विमेन ऑफ़ इंडिया', 'ॲवर ट्राइबल चिल्ड्रेन' इत्यादि उन्हें सफल अंग्रेज़ी-ग्रन्थकार सिद्ध करते हैं। उनकी ग्रन्थ-संख्या शतक पार कर चुकी है। हिन्दी-अंग्रेज़ी प्रायः समान। काव्योदाहरण देखें :

1. भावों का एक बवंडर उठता है
अंतरिक्ष की प्रयोगशाला बना मुझे गगन में लटका देता है
भावों का दूसरा बवंडर उठता है
धरती के गर्भ में दहकते आगबबूलों में मुझे झोंक देता है
भावों का एक तीसरा बवंडर उठता है
मुझे कुत्तों और गिद्धों से नुची किसी दम तोड़ती
उर्वशी की बाँहों में फेंक देता है
भावों का एक और बवंडर उठता है
जो जर्जरित, व्यधिग्रस्त, खोखले समाज को
महाकाल की घंटियाँ बजा चिता पर चढ़ाने को मुझे
मजबूर कर देता है
और मैं नए मानव की तलाश में भटकने लगता हूँ। (शिलानगर में)

ब्राह्मरात्रि
बीते कुल के निष्ठुर बंधन
तिमिर ओढ़ कर चलते आए

जल-प्लावन के प्रलय-प्रहर में
सत्य असत्य खोजते आए।

श्रद्धा
''मनु आओ जब लौट चलें घर
दम घुटता इस राजभवन में
बना दिया जिसको कारागृह
इच्छाओं के कल्पित कल ने।''

मनुः
''लौट चलूँ, क्या कहतीं श्रद्धे?
नहीं पढ़ाओ मुझे पलायन
मुझे जूझे लेने दो कल से
कल ही सुंदर कल ही नूतन....(अग्निसागर)

धूमिल

'संसद के सड़क तक' एवं 'कुल सुनना मुझे' के नामी-गिरामी कवि सुदामाप्रसाद पाण्डेय 'धूमिल' (9 नवम्बर, 1936—10 फरवरी 75) जलते-उबलते यथार्थ के जलते-उबलते कवि हैं, जिनकी दहकती वाणी में शोषित श्रमिक एवं प्रपीड़ित मानव की अन्तर्ज्वाला को उद्गार प्राप्त हुआ है। वे घोर-साम्यवादी या घोर-प्रगतिवादी कवि हैं, जिन्होंने अपने वर्ग के यशपाल, राहुल, कमलेश्वर इत्यादि के सदृश सत्य की विभीषिका मात्र के दर्शन किए हैं तथा अपने एकांगी जीवन-दर्शन को शब्दित करने में बीभत्स का पूर-पूरा प्रयोग किया है। बीभत्स को साम्यवादी-साहित्यकाल का अंग माननेवालों में यशपाल, कमलेश्वर, धूमिल इत्यादि अग्रणी हैं। धूमिल ने बीभत्स का धकापेल प्रयोग भी किया है। वे बीभत्स के प्रतिनिधि कवि हैं (चिरकीन की याद दिलानेवाले)! भारत के प्रगतिवादी साहित्यकारों ने केवल शोषित-प्रपीड़ित समाज या मनुष्य का चित्रण किया है, शोषण-प्रपीड़न के मूल कारणों की पड़ताल नहीं की; अतः यह चित्रण एकांगी तो रह ही गया है, सतही भी है, जिसका कोई विशेष प्रभाव 'इंटेलेक्चुअल दाढ़ी' और 'जनवादी थैले' से सजे-बजे कॉफ़ी हॉउस के प्रगतिवादी-बुद्धिजीवियों के कुनबे के बाहर नहीं पसर पाया।

भारत का शोषित-प्रपीड़ित मनुष्य तभी उन्नति कर सकता है जब हरामख़ोर नेताओं की टेढ़ी-मेढ़ी चाल रोकने के लिए उनके नकेल डाली जाए, नेता-अभिनेता-तस्कर-उद्योगपति-व्यापारी-अधिकारी (जो एक ही जनता की लूट की थैली के चट्टे-बट्टे हैं) का ऐक्यन्यस्त अपव्यय राष्ट्र के हवाले किया जाए। भारतीय राष्ट्र तभी एक हो सकता है, जब सारे विदेशी धर्मान्तरणकर्त्ता निकाल बाहर किए जाएँ, विदेशी धन का भारतनाशी खेल बन्द किया जाए, सारे वर्गों एवं संप्रदायों पर एकविवाहवाद एवं परिवार-परिसीमन (परिवार-नियोजन नहीं, परिवार-कल्याण नहीं—प्रकट-प्रभावी परिवार-परिसीमन) लागू किया जाए, धार्मिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक विदेशयात्राओं पर रोक लगाकर राष्ट्र की खटी कमाई बचाई जाए, मन्दिरों-मस्जिदों-गुरुद्वारों-गिरजाघरों इत्यादि को सार्वजनिक हितकेन्द्रों में बदला जाए, भ्रष्टाचार पर कठोर दंड दिया जाए। किन्तु जनवादी साहित्यकारों ने इन दिशाओं में विशेष ध्यान न देकर शोषण की विभीषिका के रूढ़ चित्र मात्र खींचकर अपने कर्त्तव्य की इति समझ ली और चुक गए।

भारवाही से वन-विभाग-अधिकारी बनना ही पुरुषार्थ का द्योतक था, किन्तु स्मरणीय कवि बनना सर्वथा विशिष्ट।[1] 'कवि 1970' शीर्षक कविता धूमिल की 'गीतफ़रोश' है, जिसमें भवानीप्रसाद मिश्र की सी बेहद गहरी छटपटाहट और मजबूरी, विम्बित नहीं हो पाई, किन्तु पूँजीवादी सभ्यता एवं यान्त्रिक जीवन में कवि की कुत्सा सशक्त रूप में व्यक्त हुई है। यदि 'किस्सा जनतन्त्र' मार्मिक कविता

---

[1] धूमिल का सम्बन्ध वाराणसी जनपद से रहा है। पड़ोस के मिर्ज़ापुर (मीरजापुर) जनपद में ही रामगुलाब द्विवेदी हुए थे जिन्होंने पल्लेदारी की थी। पड़ोस के बलिया जनपद में भोलानाथ तिवारी (निधन 1989 ई. में) हुए जिन्होंने कुलीगीरी की थी। रामगुलाम द्विवेदी, धूमिल, भोलानाथ तिवारी जैसे जीवन-जेताओं को प्रणाम!

है, तो 'एक आदमी' हृदयद्रावक कविता है। 'दिनचर्या', 'नगर-कथा', 'गृहस्थीः चार आयाम', 'सापेक्ष्य-संवेदन', 'बारिस[1] में भींग[2] कर', 'दूसरे का घर', 'कल', 'पतझड़' इत्यादि उनकी कविताएँ आम आदमी की ज़िन्दगी के दर्द का (एकतरफ़ा ही सही) दस्तावेज़ मानी जा सकती हैं। धूमिल की अभिव्यक्ति एक गहरे जनसंवेदन की अभिव्यक्ति है। धूमिल का काव्य दर्द का काव्य है (अतः वे सच्चे कवि अवश्य थे) :

दर्द को दिल में दे जगह नासिख़,
इल्म से शायरी नहीं आती।

धूमिल को मरणोपरान्त साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला, पाठ्यक्रम-सम्मान मिला, साम्यवादी एवं अन्य युवावर्गों में लोकप्रियता मिली। धूमिल एक सशक्त एवं मौलिक कवि माने जा सकते हैं। उनकी कविताओं से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

इस वक्त जबकि कान नहीं सुनते हैं कविताएं
कविता पेट से सुनी जा रही है आदमी
ग़ज़ल नहीं गा रहा है ग़ज़ल
आदमी को गा रही है।
इस वक्त जबकि कविता माँगती है
समूचा आदमी अपनी खुराक़ के लिए
उसके मुँह में खून की बू
आ रही है।....
जहाँ पसीना पाप से अधिक बदबू
देता है
अपना हाथ खोकर
चिमनी के नीचे खड़ा है
निहत्था मजूर
वहाँ आप मुझे मजबूर क्यों करते हो?....
इस ससुरी कविता को
जंगल से जनता तक
ढोने से क्या होगा?
आपे जवाब दो
मैं इसका क्या करूँ?
तितली के पंखों में पटाखा बाँधकर
भाषा के हलके में
कौन-सा गुल खिला दूँ?....
क्या मैं व्याकरण की नाक पर
रूमाल लपेटकर
निष्ठा का तुक
विष्ठा से मिला दूँ?....
लेकिन एक जरूरतमंद चेहरे के अलावा
वह धूमिल नहीं—

---

1. धूमिल को बनारसी 'बारिस' पसन्द है, लखनवी 'बारिश' नहीं (यद्यपि वे मरे थे लखनऊ मेडिकल कॉलेज में संबद्ध अस्पताल में)।
2. धूमिल मैथिलीशरण गुप्त की तरह 'भींग कर' खुश होते हैं, नागेन्द्र की तरह 'भीग कर' नहीं।

एक डरा हुआ हिंदू[1] है....
अंत में कहूँगा—
सिर्फ़ इतना कहूँगा—
'हाँ हाँ, मैं कवि हूँ;
कवि-याने भाषा में
भदेस हूँ;
इस क़दर कायर हूँ,
कि उत्तर प्रदेश हूँ!
(कवि, 1970)

....(औरतः आँचल है,
जैसाकि लोग कहते हैं—स्नेह है,
किंतु मुझे लगता है—
इन दोनों से बढ़कर
औरत एक देह है)....
(गृहस्थीः चार आयाम)

बम फटने का
दुख तो होता है पर
उतना ज़्यादा नहीं; चाय के—
ठंडे होने का दुख जितना।....
(सापेक्ष्य-संवेदन)

सहसा हम क्यों चाहने लगते हैं,
हमारे सिरों पर छत हो।
(जनतांत्रिक)-वर्ष में धुली हुई
क्या यह खुली सड़क काफ़ी नहीं है....
(वारिस में भींग कर)

सचमुच मजबूरी है
मगर जिन्दा रहने के लिए
पालतू होना जरूरी है।
(पतझड़)

हरीश निगम

'हिरना साँवली' (1981 ई.) के मालवी-लोकगीतकार हरीश निगम (उज्जैन) की समता छोटकुन, भागीरथी, भिखारी ठाकुर, 'वटोहिया', 'मैना', (भोजपुरी), प्रणमोहन 'प्राण' (अंगिका), स्वयं मध्य प्रदेश में ईसुरी ठाकुर (बुन्देलखंडी) और घूरू किसान (अवधी) से सरलतापूर्वक की जा सकती है, क्योंकि प्रसाद-रचित लोकगीत प्रकाश में नहीं आ सके, बच्चन के लोकगीतों में उनके अत्यधिक नागर होने के कारण ग्राम की आत्मा व्यक्त नहीं हो पाई और 'झड़प' कवि से अधिक आचार्य हैं। मणि मधुकर, अरजनदास चारण इत्यादि की आरोपित राजस्थानी कविता कृत्रिमता की पर्याय मात्र बनकर रह गई है। जहाँ तक चलचित्र-जगत् के लोकगीत-तस्करों का सम्बन्ध है, वे व्यावसायिक-गीतकार होते हैं जिनके साथ सहज-गीतकार को खड़ा करना ललित-कला का अपमान करना-सा होगा। 'हिरना

---

1. 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग करने पर कॉमरेडों ने धूमिल को फाँसी पर नहीं लटकाया, जबकि यह उनको धर्मनिरपेक्षता के स्वर्गभाल (सरगमाथा या सागरमाथा या मॉउन्ट एवरेस्ट) से धर्मान्धता के रसातल में ढकेलने का पक्का प्रमाणपत्र है!

साँवली' में मालवा की माटी की खुशबू पूरी तरह उभर आई है, जिसमें वहाँ की प्रकृति, पर्व, पुरुषार्थ, सब समाहित हैं। उसमें प्रगति भी है, व्यंग्य भी है। काव्यशास्त्र के मर्मी विद्वान् डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी ने उनकी प्रशंसा एकदम ठीक की है। उदाहरण देखें :

1. **हिरन साँवलो**

सायबा आप हलो तो धरती नीपजे,
काली धरती को करी सिनगार,
हठीला सायब!
आज जगावे हिरना साँवली।
सायबा मोती टालो रे रूढ़ा खेत से,
सायबा घर में हो लक्ष्मी को बास,
हठीला सायब!
आज जगावे हिरना साँवली।
सयबा आप गाजो तो बदली झर जावे,
क्याँरी क्यारी में बहे अमरत धार,
हठीला सायब!
आज जगावे हिरना साँवली।
सायबा खेते हुंकारो बाजी रणभेरी,
माता दुर्गा के चोड़ो मुडा-माल,
हठीला सायब!
आज जगावे हिंरना साँवली।
सायबा आप चालो तो धरती नाच करे,
सति ताल देवे रे सूरजचाँद रे,
हठीला सायब!
आज जगावे हिरना साँवली।

2. **सिपरा[1] किनारे म्हारो गाँव है**

केलू को टापरो है,
फूस को यो छापरी है,
आँगणे बँधी है गऊ मात रे।
तुलसी की क्यारियाँ,
खेले कुँवारियाँ,
करदे सरग के भी मात रे।
खाँदा पे भार धर्यों,
मूँछाँ पे ताव चढ्यों
खेताँ से आया म्हारा राम है।
सिपरा किनारे म्हारो गाँव है।....

केदारनाथ सिंह

साम्यवादी कवि केदारनाथसिंह एक ऐसे संवेदनशील एवं आशावादी कवि हैं जो केवल कुंठा, शोषण प्रपीड़न के सनातन सत्यों का करोड़ों बार अलापा राग एक बार फिर अलाप कर चुक नहीं जाता। 'बिल्कुल अभी', 'यह ज़मीन पक रही है' जैसे संग्रह तो केवल

---

[1] शिप्रा नदी। (उज्जयिनी, अवंती) से जुड़ी। कालिदास की प्रिय नदी।

साम्यवादी प्रशंसा के घेरों में ही बन्द रहे लेकिन 'अकाल में सारस' तथा 'उत्तर कबीर और अन्य कविताएँ' के कारणों से विशेष चर्चित हुए। यह सत्य है कि कवि केदारनाथ सिंह में मुक्तिबोध की प्रखरता, केदारनाथ अग्रवाल की प्रांजलता एवं नागार्जुन की विशदता नहीं मिलती, उनमें शिवमंगल सिंह 'सुमन' का सहज-जीवनरस भी नहीं दीखता, किन्तु वे आकर्षक अवश्य हैं तथा लहू लगाकर शहीद छाप जैसों से उच्चतर भी, क्योंकि वे बौद्धिकता के बावजूद जीवन से, सच्चे जीवन से (वाद के मुखौटे के नीचे छिपे जीवन से नहीं) अलग-थलग नहीं ज्ञान पड़ते। जितना सत्य जीवन का संघर्ष है, द्वन्द्व है, शोषण है, प्रपीड़न है, पाखंड है, उतना ही सत्य सहजता है—अतः किसी एक छोर पर खड़ी कविता न सत्य को सन्तुष्ट कर सकती है, न जीवन को। केदारनाथ सिंह में सहज-जीवनवाद विशेष सशक्त नहीं हैं, क्योंकि वे संकीर्ण अनेकानेक कवियों द्वारा प्रयुक्त साम्यवादी-युगकाव्यधारा में दूर तक बहे हैं किन्तु बहते-बहते जहाँ उन्हें धरती पर खड़े होने का अवसर मिला है (जिसे उन्होंने खोया नहीं है) वहाँ वे एक मजबूत कवि दिखाई पड़ते हैं :

1. पर मौसम
चाहे कितना ख़राब हो
उम्मीद नहीं छोड़ना कविताएं
वे किसी अदृश्य खिड़की से
चुपचाप देखती रहती हैं
हर आते-जाते को
और बुदबुदाती हैं
धन्यवाद! धन्यवाद!!

2. लेकिन प्रिय पाठक
एक कवि का काम चलता नहीं है
अगले जन्म के बिना
वह यही तो करता है अधिक से अधिक
कि लोगों में
यहाँ तक कि चीजों में भी
हमेशा बनी रहे
बार-बार जनम लेने की इच्छा!

3. यों सब एक है पाना भी खोना भी
मेरी सारी कोशिश
बस इतनी-सी है
कि बची रहे धूप
और बचा रहे दोना भी!

सुमन राजे

'सपना और लाशघर' एवं 'उगे हुए हाथों के जंगल'[1] की प्रणेता सुमन राजे (22 जून, 1938 ई.) अज्ञेय संपादित 'चौथा सप्तक' (1979 ई.) में पाँचवें स्थान पर भी प्रतिष्ठित हैं। 'दूसरा सप्तक' की शकुन्त माथुर एवं 'तीसरा सप्तक' की कीर्ति चौधरी के सृजन में नारी का अस्तित्व प्रायः सर्वत्र विद्यमान है किन्तु 'चौथा सप्तक' की सुमन राजे 'नारी नहीं व्यक्ति' हैं। (क्या नारी होना ही हीनतामय है?) 'हथेली पर थूकी हुई ज़िन्दगी' जैसी कविताओं में बीभत्सरस में उनकी गहरी रुचि 'धूमिल' की याद दिलाती है, यद्यपि वह घोर व्यक्तिवादी हैं और धूमिल घोर साम्यवादी थे। 'जवाबदेही' में भवानीप्रसाद मिश्र की मार्मिक कविता' 'गीतफ़रोश' का तर्ज़तरन्नुम

---

[1] 'चौथा सप्तक' की एक कविता। 1987 ई. में प्रकाशित पुस्तक की शीर्षक-कविता यही है। संग्रह में 48 कविताएँ हैं, जिनमें 11 'चौथा सप्तक' की हैं। 'चौथा सप्तक' में इनकी 15 कविताएँ संकलित हैं।

अँगियाया गया है, पर व्यंग्य में वह गहरी चुभन नहीं है। सहज एवं प्रयत्नज द्विविध-प्रचलित कुंठा-आक्रोश इत्यादि से भरपूर उनकी कविता शालीनता की लक्ष्मण-रेखा कहीं-कहीं ही फाँदती है, जैसे–'उगे हुए हाथों के जंगल', 'पीछे आने वाले भविष्य', 'होने की प्रक्रिया' में। 'सूरज की दुलहिन' और 'भोर' जैसी कविताओं पर लोकगीत-शैली का प्रभाव है तो किन्तु तद्वत् जीवन्त नहीं। वे जहाँ प्रकृति में रमी हैं, वहाँ प्रभावी हैं। अन्य अज्ञेय-वाहित कवयित्रियों के सदृश ही, सुमन राजे ज़ल्दी ही चुक गईं। सुमन राजे की कविता से दो नमूने पेश हैं :

1. महाकाल का पहिया सरकता है
मैं–तुम–हम
सब
कुचले तो गए हैं पर मरे नहीं हैं
रथ के पहिए की धुरी में।
घूमते ही जाते हैं
चारों तरफ़ जयजयकार बोलने वाले लोग
आँखों में गोलाकार चक्कर लगाते हैं।

2. कोई भी अनजानी सिहरन
शीशियों को थरथरा जाती है
जलतरंग में स्वर-से बजती है
उसकी तरल रंगीन चौंधें
आँखों में फूल खिला जाती हैं।

शिबन कृष्ण रैणा

प्रायः कश्मीरी उर्दूभक्त एवं अंग्रेज़ी-सेवक होते हैं उनमें से अधिकांश हिन्दीविरोधी भी मिल जाएँगे। किन्तु अमर नेताओं में इन्दिरा गाँधी अन्य नेताओं में विष्णुकान्त शास्त्री, न्यायधीशों में शिवनाथ काटजू इत्यादि हिन्दी प्रेमी भी रहें हैं। शामा कवयित्री हैं। स्वरूप कुमारी बक्शी[1] तो हिन्दी-कवयित्री व्यंग्य के रूप में स्मरणीय हैं। किन्तु 'कश्मीरी-रामायणः रामवतारचरित' के अनुवादक, 'लालद्यद' के प्रस्तोता (लल्लेश्वरी या लल्ल[2] के काव्य के अंग्रेज़ी से हिन्दी में अनुवादक) 'हब्बा ख़ातून', 'एक दौर', 'कश्मीर की प्रतिनिधि कहानियाँ', शायरे-कश्मीरः महजूर' प्रभृति ग्रन्थों के भी अनुवादक एवं 'कश्मीरी भाषा और साहित्य' तथा 'कश्मीरी साहित्य की नवीनतम प्रवृतियाँ' के सुयोग्य लेखक डॉ. शिबन कृष्ण रैणा (22 अप्रैल, 1942 ई., श्रीनगर, निवास अलवर) को तो हिन्दी-कश्मीरी-सेतु ही कहा जा सकता है। वे कहानीकार भी हैं। बिहार राजभाषा विभाग पटना, हिन्दी निदेशालय नई दिल्ली, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति जयपुर, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति श्री डूँगरगढ़ (बीकानेर), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ इत्यादि ने उन्हें ठीक ही सम्मानित एवं पुरस्कृत किया है। इस दिशा में प्रेमनाथ 'प्रेमी' का नाम' भी सम्मानपूर्वक स्मरणीय है, जिन्होंने दलित-संवेदन पर 'प्रायश्चित' ('प्रायश्चित' वेहतर रहता) शीर्षक अष्टसर्गीय सामाजिक महाकाव्य रचा है, जो मौलिक भी है, उत्कृष्ट भी। इसका नायक मंगू चमार 'रंगभूमि' (प्रेमचन्द) के महान् नायक सूरदास एवं 'चतुरी चमार' (निराला) की याद दिलाता है पर ये दोनों वास्तविक व्यक्तियों पर आधृत हैं, जबकि 'प्रायश्चित' कल्पना पर आधृत महाकाव्य। कश्मीरी (फ़रीदावाद, हरियाणा में बसे) कविवर प्रेमनाथ 'प्रेमी' को हिन्दी-साहित्य के इतिहास में आदरणीय स्थान प्राप्त होना चाहिए। उनका आकलन भी वरेण्य है।

डॉ. रैणा के अनुवाद नहीं लगते। उनकी मौलिक रचनाओं की भाषा-शैली भी स्तरीय है। अहिन्दीभाषी हिन्दी सेवकों में उनका नाम और काम दोनों स्मरणीय हैं।

---

[1] वे 'बख़्शी' नहीं लिखतीं।

[2] कश्मीरी-कविता की जननी, सन्त-योगिनी-कवयित्री। स्वामी मुक्तानन्द परमहंस ने 'लल्लेश्वरी' पुस्तक में इस कवयित्री की ललित एवं श्रेष्ठ गद्यगीत-प्रस्तुति की है। उनकी अपनी 'मुक्तेश्वरी' पर भी लल्ल का प्रभाव पड़ा है।

अब समय आ रहा है जब केरल के स्वनामधन्य हिन्दी सेवी डॉ. एन् चन्द्रशेखरन् नायर के सदृश (यदि इतना विराट् पुरुषार्थ न हो तो अनुकरण में ही सही) भारत की विभिन्न भाषाओं के हिन्दीसेवियों पर शोध-लुघशोध ग्रन्थ रचे जाएँ। इस दृष्टि से 'उड़ीसा के हिन्दीसेवी' नया (प्रस्थान) ग्रन्थ होगा जहाँ के अर्जुन सतपथी, मधुसूदन साहा, डॉ. सुधांशुकुमार नायक इत्यादि ने सर्जन, विवेचन, शोध इत्यादि दिशाओं पर प्रशस्य कार्य किए हैं। प्रत्येक राज्य से संबद्ध हिन्दी के गौरव में वृद्धि करेंगे।

डॉ. स्वामीनाथ पांडेय

कठोर यथार्थवादी कविता-संग्रह 'झाँवा' (1978 ई.) एवं व्यंग्य-कविता संग्रह 'खेल' (1990 ई.) के कवि तथा 'अजायबघर' (1990 ई.) के व्यंग्यकार डॉ. स्वामीनाथ पांडेय ने तुलसी के हनुमानबाहुक का अनुवाद 'संस्कृत-हनुमद्बाहुकम्' भी प्रस्तुत किया है। फ़ैजाबाद में संस्कृत-प्राध्यापक डॉ. पांडेय की व्यंग्य-प्रतिभा स्मरणीय है। वे व्यंग्य का लंकादहन नहीं करते, व्यंग्य की फुलझड़ियाँ छोड़ते हैं, जो अपनी संक्षिप्तता में अच्छा मनोरंजन करती हैं। उनकी रुचि (लोकप्रिय किन्तु गम्भीर हास्यकवि मानिक वर्मा जैसों से भिन्न है) जमकर गहरा और व्यापक व्यंग्य करने की नहीं है। उनका दीन-दलित संवेदन युग के सर्वथा अनुरूप है। राजनैतिक पाखंड एवं सामाजिक बिडंबना के चित्रण एवं उन पर प्रहार में वे शरद जोशी के स्तर के व्यंग्यकार हैं। उदाहरण देखें :

1. नाच कन्हैया ता-ता थैया।
बोलो गाँधी बाबा की जै,
बोल जवाहर चाचा की जै
जै-जै बोलो प्रजातंत्र की,
जै बोलो भारत-स्वतंत्र की,
नहीं नून-रोटी तो जी-भर,
खाजा-खाजा दूध मलैया!
नाच कन्हैया ता-ता थैया!!
(खेल : 'बालवर्ष')

2. काँवर की शक्ल में,
बहँगी के एक सिरे पर हिमालय
और दूसरी पर विंध्याचल लटकाए,
खालीपेट,
पानी की जगह
माथे से अजय-प्रवहमान खारे स्वेदसागर को पीते,
जो अगस्त्य
देखता हूँ
इस अंतहीन यात्रा का
तुम्हारे ही जैसा प्रेताकार अवबोध...
(झाँवा : 'कहाँर')

सुमेरसिंह 'शैलेश'[1]

'गीतों के रश्मिद्वार' (1984 ई.) एवं 'दर्पण के आरपार' (2005) के गीतकार-नवगीतकार-ग़ज़लकार प्रो. डॉ. सुमेरसिंह 'शैलेश' एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट् (10 अप्रैल, 1943, मनकेशर जनपद सतना, मध्यप्रदेश, निवास सतना) को गीतों की रचना में विशेष सफलता प्राप्त हुई है। उनके भावों में बारीक़ी है और भाषा में तराश। वे जिस सरलता से प्रेम, स्मृति, विरह इत्यादि शाश्वत भावों की विवृति

---

[1] उपन्यासकार शशिवर्द्धन शर्मा 'शैलेश' समानोपनामी हैं। डॉ. शैलेश ज़ैदी तो विख्यात हैं ही।

करते हैं प्रायः उसी से युगविडम्बनाओं, नेतृ-पांखड, विषमताओं की भी। 'हिन्दी ग़ज़ल का विवेचनात्मक अनुशीलन' (1997) में वे एक अध्यनशील एवं संवेदनशील शोधकर्त्ता एवं विद्वान् के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं। 'शैलेश' जी की कविता उनके गीत, ग़ज़ल, छन्द तीनों में अधिकार की सूचना देते हैं। उनका ब्रजभाषा-काव्यसृजन भी अत्यन्त मधुर है। प्रह्लाद अग्रवाल सम्पादित 'गीतकवि' 'शैलेश' एवं जितेन्द्र कुमार सिंह 'संजय' द्वारा प्रस्तुत 'बघेलवंश' के चार कविरत्न 'राजसिंह जू देव', 'विश्वनाथसिंह जू देव', 'रघुराजसिंह जू देव', 'सुमेरसिंह' 'शैलेश' उनकी प्रतिभा को उजागर करते हैं। गीतों से उदाहरण देखें :

1.
मौन हुए गीत के पखेरू–
अंतर की मृदुता को तोलें
छंदों के रश्मिद्वार खोलें
पातों के हिलते विश्वास में–
दूरियाँ सहेजती हवाएँ।
उपचारी देशों की व्यथा लिए–
अर्थहीन शब्द की दवायें।
ओठों से रूठी मुस्कान को–
पलकों की कोर से सँजो लें।
छंदों के रश्मिद्वार खोलें।।
विद्रोही छैनी से मान किए–
स्वयं को ताराशती शिलाएं।
घूँट-घूँट विष को भी पीकर
अमृत के गाँव तलक होलें।
छंदों के रश्मिद्वार खोलें।।

2.
सुविधा की खूँटी पर–
टँगे हुए आश्वासन।
संयम की द्रुपद-सुता
कितने हैं दुःशासन।।

3.
इतने भटकाव हुए–
सूझता न ठाँव।
मुश्किल है अव जीना–
चंदन की छाँव।।[1]

आयु के साथ तथा शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय सतना के हिन्दी-विभागाध्यक्ष होने के कारण वे 'आचार्य' वर्ग में भी आ गए हैं। अनेक ग्रन्थों में उनकी भूमिकाएँ विद्वता की सूचना देती हैं। वरिष्ठ कवि विनीत विक्रम बौद्ध (पूर्वनाम रामखेलावन वर्मा), रानार्जुन राना (पूर्वनाम रामनारायण 'रामा'), रोहिणीप्रसाद मिश्र, मोहनलाल वर्मा 'मुकुट एवं रोशनलाल खत्री 'रोशन' (सम्पादक 'टमसांचल काव्यधारा) इत्यादि के ग्रंथों की भूमिकाएँ प्रमाण हैं। वे शोधनिर्देशन एवं समारोह-आयोजन में भी योग्य एवं सक्षम सिद्ध हुए हैं। उन्हें वघेलखंड के कवियों में जयसिंह जूदेव, विश्वनाथसिंह जू देव, रधुराज सिंह और रामसुजान सिंह के साथ श्रेष्ठ कवि के रूप में स्वीकार किया गया है। शैलेशजी के गीतों में रूप, प्रकृति, युगदशा इत्यादि व्यापक प्रवृतियाँ अस्मिता से निष्पन्न एवं अपसंस्कृति से मुक्त हैं। वे रूप-रंग एवं अध्यात्मक में विरोध नहीं प्रत्युत मैत्री के प्रतिपादक हैं। उनकी अनुभूतियाँ देशभक्ति से अनुस्यूत हैं। वे कहीं भी बहे नहीं हैं, उन्होंने सर्वत्र अनुभूतिधारा को बहाया है। वे एक मोहक रचनाकार मात्र नहीं हैं, एक प्रशस्य गीत-गीर्वाण भी हैं।

---

[1] सुमेरसिंह 'शैलेश' की विरामचिह्नयोजना समझ में नहीं आती। फुलस्टॉप की जगह बिंदिया लगाते हैं। किन्तु यह विशिष्ट तो है ही।

‘प्रकाश’[1]

कैकेयी पर सत्पसर्गीय खंडकाव्य ‘अनुताप’ के कवि वेदप्रकाश सिंह ‘प्रकाश’ (3 फरवरी, 1944, जबलपुर, निवास सतना) प्रमुखतः बालसाहित्यकार हैं, जिनके ‘किसलय’, ‘किलकारी’ इत्यादि खड़ीबोली-बालककवितासंग्रह एवं ‘मुस्कान’ शीर्षक बघेली-बालक कवितासंग्रह बालमन पर अच्छा प्रभाव छोड़ते हैं। ‘अनुताप’ हो या ‘किसलय’, ‘प्रकाश’ की खड़ीबोली-कविता में भाषा का रूप परिनिष्ठित या व्यवस्थित नहीं रह पाया। उनकी बघेली-बालकविता अभिव्यक्ति की दृष्टि से अधिक सफल लगती है। उनका दृष्टिकोण सर्वत्र भारतीयतावादी है, जिसमें पाश्चात्य प्रभाव से उत्पन्न अपसंस्कृति को कोई स्थान नहीं प्राप्त हो सका। उनकी कैकेयी का ‘अनुताप’ स्वयं शीर्षक से ही सत्य एवं संस्कृति के साथ न्याय करता है। खंडकाव्य सुखान्त है। बालकविताओं में भी मौलिकता तो नहीं है, किन्तु प्रेरणा के स्वर स्वागत-योग्य हैं। उदाहरण देखें :

1. सुरिज उऔ के पहिलेन लड़िकौ, बड़े सकारे जागा
घर के मनई उठै न पामै, तुम पहिलेन उठि बागा
तड़के उठे न आलस लागै उर न जिउ लरमई
जैसे सुरिज उऔ अँधियरके, छूट जाय गरमई
होवे कुबौ नहीं मन कोंधिल, बल देहे बढ़ि जाई
देह बाँह ते तागड़ रहिया, रोग सबै कढ़ि जाई
नीक पढ़इया तुम कहबइरा, होइहा कबौं न छाई....

2. मिन्टी बिटिया
खटपट करती रहती है
चटपट बातें करती है
अपटपट बोला करती है
लटपट लटपट चलती है
मिन्टी बिटिया छोटी सी
लगती बिल्कुल गुड़िया सी...

आचार्य विद्यासागर

अपनी कठोरतम साधना-पद्धति के लिए विख्यात दिगम्बर जैन सम्प्रदाय[2] के परम आचार्य विद्यासागर दिगम्बरत्व के विग्रह हैं। उनका बाल्यनाम विद्याधर था जन्म 10 अक्टूबर, 1946, ग्राम सदलगा, जनपद बेलगाँव, कर्णाटक। हिन्दी, संस्कृत, अंग्रेज़ी इत्यादि भाषाओं में अनेक जैनधार्मिक ग्रन्थ लिखे तथा अनुदित किए हैं। प्रायः पच्चीस छोटे-मँझोले-बड़े-ग्रन्थ हिन्दी में हैं। अधिकांश काव्य हैं। उन्होंने संस्कृत में भी ‘पञ्चशती’ शीर्षक सफल धर्मनीतिकाव्य की रचना की है। ‘माइ सेल्फ़’ उनका अंग्रेज़ी-ग्रन्थ है। कर्णाटक ने आधुनिक हिन्दी-गद्य को स्वामी मुक्तानन्द परमहंस जैसा विश्व-विख्यात योगी-सुलेखक एवं आचार्य विद्यासागर जैन-समाज का पूज्यआचार्य-मान्यकवि प्रदान किया है—संयोगात् दोनों की व्यवहार-भाषा मराठी रही! मुक्तानन्द के ग्रन्थ मानव-मात्र हेतु हैं, विद्यासागर के जैन-धर्मबद्ध तथा वेद-उपनिषद्-पुराण-निन्दक। जैनधर्मगत ईश्वर[3] का प्रत्याख्यान किन्तु परमात्मा[4] की स्वीकृति, औपनिषदिक अत्मा की अस्वीकृति किन्तु जीवाकार-आत्मा (पुद्गल) की स्वीकृति, अवतारवाद-खंडन किन्तु तीर्थंकर-विशिष्टता इत्यादि अंतर्विरोधमय माने जा सकते हैं। बादरायण, शंकराचार्य, सम्पूर्णनन्द इत्यादि ने जैनधर्म को नास्तिक-धर्म माना है, जो विवादास्पद भी माना जा सकता है क्योंकि ईश्वर को न मानते हुए भी जैन आकारभूत, अथवा एक विचित्र प्रकार से ही सही, आत्मा एवं परमात्मा को मानते हैं, कर्मवाद एवं पुनर्जन्मवाद का प्रतिपादन

---

[1] ‘प्रकाश’ द्विवेदी समोपनामी हैं (प्रायः समनामी भी।)

[2] अन्य सम्प्रदाय ‘श्वेताम्बर’ है जो श्वेत-परिधान, साधना एवं नारी-दर्शन में पर्याप्त भिन्न है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के तेरा पंथ (13 पंथ) के स्व. युगप्रधान आचार्य तुलसी अत्यंत विख्यात रहे हैं।

[3] ‘‘ऐश्वर्यस्य समग्रस्य....’’ इत्यादि। सृष्टिकर्त्ता, लीलाधर।

[4] ‘‘सार्वजीवान्तरात्मा....’’ इत्यादि। किन्तु जैन-दर्शन में आत्मा प्राणी के आकार के अनुरूप लघु-गुरु होती है। इसे ‘पुदग्ल’ कहते हैं। बौद्ध न ईश्वर को मानते हैं, न आत्मा को। जैन कुछ भिन्न हैं।

करते हैं। जैनधर्म मूलतः हिन्दूधर्म से पृथक् नहीं है तथा वह बौद्धधर्म के अनीश्वरवाद-अनात्मवाद को देखते हिन्दूधर्म के अपेक्षाकृत निकटतर है। ऋषभदेव (आदिनाथ[1]) की भागवत-चित्रित दिगम्बर-दशा, वृषभचिह्न, कैलास-कैवल्य इत्यादि के कारण उनकी शिव से निकटता प्रतिपादित की जा सकती है तथा वे चौबीस विष्णु-अवतारों में परिगणित हैं—हिन्दूपूज्य हैं। ऋग्वेद के एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि के रूप में भी ऋषभदेव हिन्दूमान्य हैं। हठयोगियों की कथा भी आदिनाथ से आरम्भ होती है। दूसरी ओर, जैन-रामायणों में राम-सीता इत्यादि की अच्छी प्रतिष्ठा है, भले ही वह जिन-पूजामय हो। हिन्दुओं ने ऋषभदेव एवं बुद्ध का जैसा आदर किया है वैसा जैनों एवं बौद्धों ने राम का नहीं किया। फिर भी, राम हिन्दू-बौद्ध-जैन-संयोजक अवश्य हैं क्योंकि वे, बुद्ध और महावीर इक्ष्वाकुवंशी हैं तथा बौद्धों और जैनों के साहित्य में उनकी प्रतिष्ठा है। सिख-पन्थ में भी रामनाम का भारी महत्त्व है, भले ही अर्थ में अन्तर हो। 'विचित्र नाटक' में गोविन्दसिंह ने स्वयं को लव तथा नानक को कुश का वंशज घोषित किया है। बौद्धधर्म के कर्मवाद-पुनर्जन्मवाद, करुणावाद एवं निर्वाणवाद प्रभृति तत्त्व मूलतः हिन्दूतत्व हैं। जैन एवं बौद्ध वस्तुतः नहीं तो तत्वतः हिन्दू हैं, इसे भारतीय संविधान ही नहीं अपितु असांप्रादायिक जैन एवं बौद्ध भी मानते हैं। जहाँ तक सिखपन्थ का सम्बन्ध है, वह ईश्वरवाद, आत्मवाद, कर्मवाद, पुनर्जन्मवाद, गुरुमहिमावाद इत्यादि सारे तत्वों की दृष्टि से हिन्दूधर्म से प्रायः समग्ररूपेण अभिन्न है—'प्रायः' से अभिप्राय उसमें यत्र-तत्र अवतारवाद एवं मूर्तिपूजावाद का खंडन प्राप्त होने से है। किन्तु इनका वैदिक एवं औपनिषदिक हिन्दूधर्म में अस्तित्व नहीं। संविधान ने ठीक ही सिखों को हिन्दू में समाहित किया है। संसार सिखों को एक सैनिकवादी हिन्दू संप्रदाय (ए मिलिटैंट हिन्दू सेक्ट) मानता रहा है।

'मूक-माटी' के कारण आ. विद्यासागर को हिन्दी का एक स्मरणीय जैन-कवि माना जा सकता है—मेरे विचार से अपभ्रंश, वस्तुतः पुरानी-हिन्दी, में रचित स्वयंभू के पउम-चरिउ के अनन्तर 'मूक-माटी' किसी जैन-कवि की सर्वोत्तम काव्यकृति है, क्योंकि पुष्पदन्त, देवसेन, मेरुतुंग, बनारसीदास इत्यादि की कोई एक कृति दृष्टि एवं सृष्टि की साहिति में इसकी समता नहीं कर सकती। स्वयंभू जेनवादवद्ध हैं (उनके राम रावणादि को नहीं मारते, लक्ष्मण मारते हैं तथा हिंसा के कारण नरकगामी होते हैं, जबकि राम जैन हो जाते हैं), आ. विद्यासागर भी (वे ईश्वरवादियों अवतारवादियों इत्यादि को कठोर शब्दों को पात्र समझते हैं, वेद का प्रत्याख्यान करते हैं।) स्वयंभू रसवादी हैं जिनके विलाप साहित्य के श्रृंगार हैं, विद्यासागर बुद्धिजीवी हैं जिनका तर्क प्रभावी है। स्वयंभू भाव से खेलते हैं, विद्यासागर शब्द से (वास्तविक या कल्पित शब्द-निरूपण के शत्-शत् निदर्शन इसे अनायास ही सिद्ध कर देते हैं)। विद्यासागर शब्द-शिल्पी से अधिक शब्द-व्याख्याता हैं। किन्तु उनमें प्रतिभा है, अध्यवसाय है, ध्येयनिष्ठा है। अतः वे प्राकृत के विमल सूरि, अपभ्रंश या पुरानी-हिन्दी के स्वयंभू एवं पुष्पदन्त तथा कन्नड़ के पम्प[2] इत्यादि महाकवियों की परम्परा में प्रतिष्ठित किए जा सकते हैं।

'मूक-माटी' की रचना का उद्देश्य 'मानस-तरंग' भूमिका (जो आरम्भ में श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन के विद्वतापूर्ण किन्तु स्तुति-परक मात्र 'प्रस्तवन' के अनन्तर दी गई है) में स्वयं आ. विद्यासागर ने स्पष्ट कर दिया है....स्रष्टा कोई साधारण बलशाली पुरुष है और वह ईश्वर को छोड़कर और कौन हो सकता है? इस मान्यता का समर्थन प्रायः सब दर्शनकार करते हैं। ये कार्य-कारण व्यवस्था से अपरिचित हैं।....ईश्वर मुक्तावस्था को छोड़कर पुनः शरीर को धारण कर जगतिक-कार्य कर लेता है, ऐसा कहना भी उचित नहीं।....शरीर है तो संसार है, संसार में दुःख के सिवा और क्या है?....विद्या-विक्रियाएँ भी पूर्व-कृत पुण्पोदय के अनुरूप ही फलती हैं, अन्यथा नहीं। ....कुछ दर्शन जैन-दर्शन को नास्तिक मानते हैं और प्रचार करते हैं कि ईश्वर को नहीं मानते, वे नास्तिक होते हैं। यह मान्यता उनकी दर्शन-विषयक अल्पज्ञाता को सूचित कराती है। ज्ञात रहे कि श्रमण-संस्कृति के संपोषक जैन-दर्शन ने बड़ी आस्था के साथ ईश्वर को परम श्रद्धेय-पूज्य के रूप में स्वीकारा है, सृष्टिकर्त्ता के रूप में नहीं।....ईश्वर को सृष्टिकर्त्ता के रूप में स्वीकाराना ही उसे नकारना है और यही नास्तिकता है, मिथ्या है। यह भाव तेजबिन्दु-उपनिषद्[3] की निम्न कारिका से भली-भाँति स्पष्ट होता है :

रक्षको विष्णुरित्यादि ब्रह्मा सृष्टेस्तु क़ारणम्।[4]
संहारे रुद्र इत्येनं सर्वं मिथ्येति निश्चिनु।।[5]

---

[1] हठयोगी (हिन्दू) आदिनाथ (शिव) को आदिनाथ (प्रथम हठयोगी) बताते हैं। दो आदिनाथ मानने पड़ते हैं किन्तु 'शिव'-एक रूप भी है।

[2] कन्नड़-महाभारतकार। कन्नड़ का जैन-साहित्य पर्याप्त सम्पन्न है।

[3] अल्लोपनिषद् के सदृश तेजबिन्दु उपनिषद् परवर्ती है।

[4] 5/51

[5] 5/52

ब्रह्मा को सृष्टि का कर्ता, विष्णु को सृष्टि का संरक्षक और महेश को सृष्टि का संहारक मानना मिथ्या है, इस मान्यता को छोड़ना ही आस्तिकता है....वर्ण-जाति-कुल आदि व्यवस्था-विधान को नकारा नहीं।....वीतराग श्रमण-संस्कृति को जीवित रखना है। ....महाकाव्य के अन्त में भी यही ध्येय प्रतिपादित है :

इस पर भी यदि
तुम्हें
श्रमण-साधना के विषय में
और
अक्षय सुख-सम्बन्ध में
विश्वास नहीं हो रहा है...
मैं जहाँ पर हूँ
वहाँ आकर देखो मुझे...
शब्दों पर विश्वास लाओ...
विश्वास को अनुभूति मिलेगी...
और माहौल को
अनिमेष निहारती-सी
मूक-माटी।

'मूक माटी' निस्सन्देह एक जैन-महाकाव्य है, जिसका उद्देश्य अद्वैतवाद, अवतारवाद इत्यादि का खंडन करते हुए जैनधर्म की सर्वश्रेष्ठता सिद्ध करना है। किन्तु आ. विद्यासागर ईसाई मज़हब के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य 'डिवाइन कॉमेडी' के महाकवि दाँते के सदृश ईसा-पूर्व एवं ईसा-परवर्ती सारे ज्ञात महापुरुषों को नरकगामी चित्रित करने की दूरी तक नहीं जाते (खेद है कि ऐसे घोर एवं घृण्य सांप्रदायिक महाकाव्य में टॉमस स्टर्न एलिअट[1] ने विश्व का श्रेष्ठतम दर्शन देखा है—गीता नम्बर दो)! वे 'मुझे मानो या नरक में पड़ो'' का स्वपूजाव्यमोही घोष भी नहीं करते। संसार के सारे धर्म[2] और सारे मजहब[3] ''मैं पावनतम, मैं ही सत्य'' की अतार्किक एवं असत्य-भूमि पर ही खड़े हैं। हिन्दूधर्म का बहुतदेववाद और अवतारवाद (भले ही ये मूलतः अद्वैतवाद से अनुस्यूत हों) अपने व्यक्त रूप में मिथ्या हैं। बौद्धधर्म का बोध अव्यावहारिक है और निर्वाण मिथ्या। जैनधर्म का आकारानुरूप-जीवात्मा हास्यापद है[4] और सिद्धशिला मिथ्या। ईसाई मज़हब का ईसा-एकपुत्रवाद प्रभु का भी अपमान करता है, मनुष्य का भी (प्रत्येक मनुष्य ईश्वरपुत्र है—वस्तुतः प्रत्येक प्राणी ईश्वरपुत्र है) और स्वर्ग मिथ्या।[5] मोहम्मदी मजहब का खड्गाधृत प्रसारवाद भयावह रहा है (स्वयं मोहम्मद ने सत्तर युद्ध लड़े थे), उसकी जन्नत विलासितापूर्ण है और मिथ्या भी[6]। अतः ''मैं पावनतर, मैं ही सत्य'' का राग अलापना प्रमाद है। मज़हब के अन्धे सिकन्दर लोदी (मृत्यु 1527) ने बोधन पंडित 'हिन्दूधर्म भी सच्चा इस्लाम[7] भी सच्चा'' कहने पर आग में जलवा मारा था[8]। जैनधर्म एक उच्चादर्शमय[9] किन्तु अव्यावहारिक धर्म है।

---

[1] इलिअॅट। 'इलियट' प्रचलित है, किन्तु यह शुद्ध नहीं।

[2] धार्य गुणों अर्थात् सत्कर्मों पर आधृत जीवनपथ। शील।

[3] एकव्यक्तिशृंखलित एवं एकग्रन्थबद्ध अन्धास्था।

[4] इसे चेतना या जीवनशक्ति कहा जा सकता है, आत्मा नहीं। महाकवि का संकेत ईसा को रोमन जज

[5] 'शाहनामा' में फ़िरदौसी कहता है कि जो व्यक्ति स्वयं अपनी रक्षा न कर सका वह संसार का रक्षक कैसे होगा? पाइलेट द्वारा दिए गए मृत्युदंड से है।

[6] हमको मालूम है जन्नत की हक़ीक़त, लेकिन
दिल के बहलाने को ग़ालिब ये ख़याल अच्छा है।

[7] सलाम (शान्ति) का दीनोईमान। किन्तु इतिहास आदि से अब तक रक्तरंजित रहा है। इसीलिए, पश्चिम में ठीक ही मोहम्मडनइज़म कहते हैं। मैंने इसी दृष्टि से मोहम्मदीयत शब्द गढ़ा और लिखा है।

[8] 'ल कुन दीन कुन बलयादीन' के क़ुरान-सूत्र को सर्वथा विरुद्ध बर्बर-मतांधतापूर्ण मृत्युदंड। सिकन्दर लोदी कुख्यात सांप्रदायिक थाः एक छोटा-सा औरंगजेब। मथुरा-मन्दिर गिरवाया था (इससे भी)। पहला ध्वंस महमूद ग़ज़नवी द्वारा, दूसरा सिकन्दर लोदी द्वारा, तीसरा औरंगज़ेब द्वारा।

[9] दिगम्बर की साधना कठिनतम सहजमानव-साधना है जो सम्पूर्ण अपरिग्रह एवं सम्पूर्ण निश्चिन्तता की प्रतीक है, अहिंसा सर्वोच्च मानव-मूल्य है, शाकाहार सभ्यता एवं संस्कृति की उच्चता को द्योतक है। किन्तु ये तत्त्व जैनधर्मबद्ध भी नहीं। हिन्दुओं में 'नागा' बाबा आज तक प्राप्त हैं। शुकदेव का दिगम्बरत्व विख्यात है। शर्मद शहीद जैसे दिगम्बर भी मिलते हैं। हिन्दुओं में अहिंसा एवं शाकाहारियों की कमी नहीं। गाँधी विश्व में अहिंसा के महान् प्रतीक माने जाते हैं। शाकाहार भी व्यापक हैं—हिन्दू कम शाकाहारी नहीं।

'मूक माटी' का महाकाव्यलोक 488 (डिमाई) पृष्ठों का है। इसका आकार 'लोकायतन' (पन्त) का स्मरण कराता है। आरम्भ में 13 पृष्ठों का 'प्रस्तवन' (लक्ष्मीचन्द्र जैन), 1 पृष्ठ समर्पण (गुरु ज्ञानसागर को), 4 पृष्ठों की 'मानस-तरंग', तब काव्य। 'प्रस्तवन' बौद्धिक किन्तु प्रशंसाप्रधान है, 'मानस-तरंग' जैनवाद से आच्छन्न। 'मूक माटी' में बौद्धिकरस का अच्छा उत्कर्ष दिखाई देता है, किन्तु वह जैनवाद से आक्रान्त भी हुआ है। पन्त के 'लोकायतन' का विद्यासागर की 'मूक माटी' पर प्रभाव पड़ा है : खंड-निर्धारण में, सामयिक कथा-नियोजन में, कल्याण-कामना में किन्तु यह नितान्त परोक्ष है। 'मूक माटी' की मौलिकता निर्विवाद है, भले ही कबीर के 'गुरु कुम्हार...' इत्यादि की प्रेरणा का बीज अनुभूत होता हो। 'लोकायतन' एवं 'मूकमाटी' दोनों स्फीत महाकाव्य हैं, किन्तु 'लोकायतन' के आयाम वैश्विक एवं मानवतावादी हैं जबकि 'मूक माटी' के जैनवादी एवं संकीर्ण। पन्त ने समग्र मानव-संस्कृति का समाहार प्रस्तुत किया है। 'लोकायतन' में जीवन अंगी है तथा अध्यात्म अंग, 'मूक माटी' में जैन-अध्यात्म अंगी है तथा जीवन अंग! 'मूक माटी' के चार खंड हैं :

1. संकर नहीं, वर्ण-लाभ।
2. शब्द सो बोध नहीं, बोध सो शोध नहीं।
3. पुण्य का पालन : पाप-प्रक्षालन।
4. अग्नि की परीक्षा, चाँदी की राख।

माटी प्रतीक है आत्मा या जीव की। वह खोदकर लाई जाते समय कूड़ा-कंकड़ इत्यादि से युक्त होती है। कुम्भकार उसे स्वच्छ, संकर-मुक्त एवं सुन्दर रूप प्रदान करता है। शब्द स्वयं में एक ध्वनि मात्र है, बोध का अर्थवान् रूप है तथा उसका अनुभूतपुष्ट-आचरण बनना शोध। वर्णलाभ या अमिश्रित सहज पाने पर माटी का रस से सम्पर्क होता है। चक्र चलता है। मूक-माटी मंगल-घट में विकसित होती है। अन्ततः वह घट रसमय रूप में गुरु के पद-प्रक्षालन एवं तृषाशान्ति का कारण बनता है। किन्तु साधु रूप गुरु अर्हन्तदेव या भगवान् के प्रति समर्पित है। उसकी 'देशना' (उपदेश) के साथ महाकाव्य समाप्त होता है। माटी आत्मा है, कुम्भकार गुरु, 'गुरु' (पात्र) 'गुरुनांगुरु तथा अर्हन्तदेव परमगुरु। माटी नायिका है, कुम्भकार नायक, 'गुरु' अतिनायक तथा अर्हन्तदेव परमनायक। किन्तु काव्य में नायिका एवं नायक का अधिकतम वर्णन स्वाभाविक है। 'गुरु' अन्त में आते हैं तथा अर्हन्तदेव फलागम-प्रतीक हैं। इस प्रतीकनिष्पन्न-कथानक में कवि ने यथास्थान नानादर्शननिरूपण, रसनिरूपण कल्पित-कथानक (सेठ, आतंकवादी, गुरु आतंकवादीगण-हृदय-परिवर्तन इत्यादि) जैसे अनेक तत्वों का प्रौढ़ समावेश किया है, जिसकी क्रमिक प्रोन्नति एवं पराकाष्ठा माननीय भी है, माननीय भी। आवरणपृष्ठ पर कुम्हार का चाक और उस पर माटी का लोंदा तथा सुन्दर मंगलघट महाकाव्य की प्रतीक-योजना के सर्वतः अनुकूल हैं।

माटी का प्रतीक यत्र-तत्र कबीर इत्यादि सन्तों से लेकर पन्त के "माटी का दीपक यह मेरा", धूमिल की 'माटी की करुणा' इत्यादि में स्फुट तथा शिवमंगलसिंह 'सुमन' के कवितासंग्रह 'मिट्टी की बारात', कवि राहुल की "मिट्टी की संवेदना' कविता-पुस्तक इत्यादि तक प्रसरित हैं। सोम ठाकुर का "मेरे भारत की माटी है चन्दन और अबीर" गीत लोकप्रिय है। मैंने भी 'ओ कवि अपनी माटी भूला' लघुगीत लिखा है। माधवप्रसाद मिश्र का महान् एवं अमर भावात्मक-निबन्ध 'सब मिट्टी हो गया' तत्त्वतः एक महाकविता है। दिनकर ने अपनी आलोचना को 'मिट्टी की ओर' मोड़ा है।[1] सन्तों से साम्यवादियों तक, निबन्धकारों से आलोचनाकारों तक, माटी की अनेक छवियाँ अनेक प्रतीकों से सजकर साहित्य का शृंगार कर चुकी हैं, जिनमें सर्वाधिक स्फीत-कलेवर एवं गम्भीर 'मूक-माटी' है। माटी के प्यारे बेटे वृक्ष पर आधुनिक अवधी के महाकवि 'मृगेश' ने 'पारिजात' शीर्षक महाकाव्य लिखा है। निस्सन्देह, 'मूक-माटी' हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक उल्लेखनीय प्रतीकात्मक जैन-अध्यात्मकाव्य के रूप में स्थान प्राप्त करने का अधिकार रखती है। कामायनी में दर्शन एवं कला का अर्द्धनारीश्वर रूप उसे बीसवीं शताब्दी का प्रमुख महाकाव्य बना चुका है, वह विश्वस्तरीय-सृष्टि है। 'प्रियप्रवास' की मार्मिक रसवत्ता साहित्य की एक दुर्लभ निधि है। 'साकेत' की उपेक्षिता-संवेदनशीलता शत्-शत् कवि-प्रेरिका सिद्ध हुई है, उसकी पारिवारिकता अनूठी है। कवियों पर प्रभाव तथा जनता पर प्रभाव (साकेत या साकेतनगर सर्वत्र-प्रसरित) की दृष्टियों से साकेत रामचरितमानस के अनन्तर अन्यतम है। इस त्रयी की श्रेष्ठता अखंडित है। 'पल्लव' और 'अनामिका' की कविताएँ इतिहास बन चुकी हैं; ये दोनों कवितासंग्रह कामायनी, प्रियप्रवास एवं साकेत से प्रतिस्पर्द्धा-सी कर सकती हैं। 'मूक माटी' की तुलना पन्त कृत 'लोकायतन' तथा डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' कृत 'विरहिणी' महाकाव्यों से करना अधिक समीचीन होगा। 'मूक माटी' एवं 'पारिजात' भी तुलनीय है, यद्यपि 'मूक माटी' की गहनता 'पारिजात' में नहीं दिखती। 'लोकायतन' में जीवन-तत्त्व अधिक है। 'विरहिणी' आद्यंत

---

[1] कविता में 'माटी' मोहक लगती है। 'माटी की बारात' ज्यादा धूम से निकलती! 'सब मिट्टी हो गया' कहावत के कारण भी सार्थकतर है। 'हिन्दी का माटी-साहित्य' शोध का महान् विषय है।

अध्यात्मकाव्य है, जिसकी नायिका भी 'मूक माटी' की नायिका आत्मा ही है। किसी-किसी को माटी को मूक मानना भावुकता का द्योतक नहीं लगेगा। वह शीर्षक 'माटी तेरे कितने बोल' या 'माटी तेरे कितने गीत' या 'माटी तुझमें भरी उमंग' या 'माटी तेरे कितने रंग' रखना पसन्द कर सकता है तथा कह सकता है : माटी मूक नहीं, मुखर है। माटी जड़ नहीं, चेतन है! किन्तु विद्यासागर आचार्य-कवि हैं, जिनमें बौद्धिकता स्वभावतः अधिक है! दोनों महाकाव्य तुलनीय हैं। दोनों एक दूसरे के निकट हैं—अन्तर है तो हिन्दू-आत्मवाद एवं जैन-आत्मवाद का! कवि ने यत्र-तत्र प्रशस्य उदारता का परिचय भी दिया है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. आना-जाना लगा हुआ है
आना यानी जनन—उत्पाद है
जाना यानी मरण—व्यय है
लगा हुआ पानी स्थिर—ध्रौव्य है
और
है यानी चिर सत्
यही सत्य है, यही तथ्य।[1]

2. ऊपर अणु की शक्ति काम कर रही है
तो इधर नीचे मनु की शक्ति विद्यमान,
एक मारक, एक तारक
एक विज्ञान है जिसकी आजीविका तर्कणा है,
एक आस्था है जिसे आजीविका की चिन्ता नहीं....
निरन्तर साधना की यात्रा भेद से अभेद की ओर
वेद से अवेद की ओर बढ़ती है, बढ़नी ही चाहिए।[2]

3. मेरे दोषों का जलना ही, मुझे जिलाना है।
स्व-पर दोषों को जलाना परम धर्म माना है सन्तों ने....
दोष अजीव है, नैमित्तिक है
बाहर से आगत है कथंचित्
गुण जीवगत है, गुण का स्वागत है।

4. सा....रे....गा....म....यानी (सारे गम)
सभी प्रकार के दुःख
प....धा....यानी नहीं—
दुःख आत्मा का स्वभाव नहीं हो सकता
मोह कर्म से प्रभावित आत्मा का
विभाव परिरमण मात्र है वह।

5. धा....धिन....धिन....धा।
धा....धिन....धिन....था
वे तन भिन्ना, चेतन भिन्ना,
ता....तिन....तिन....ता।
ता....तिन....तिन....ता
का तन चिन्ता, का तन चिन्ता?

---

[1] "उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत्" सूत्र पर आधृत। ध्रुवता या ध्रुवगुण या स्थिरता ध्रौव्य है।

[2] 'कामायनी' के दर्शन के निकट-सा स्वच्छन्दतावादी विचार, किन्तु अतिशय गद्यात्मक। परोक्ष वेद-प्रत्याख्यान भी।

'नर्मदा[1] का नरम[2] कंकर'[3] आ. विद्यासागर की 36 (छत्तीस)[4] आध्यात्मिक मुक्त (नयी) कविताओं का संग्रह है, जिसका आरम्भ 'वचन सुमन' से होता है तथा समापन 'हुवा[5] है जागरण' से। संग्रह में जैन-दर्शन को अत्यन्त ललित उद्‌गार प्रदान किया गया है। आचार्य-कवि का कोमल हृदय यत्र-तत्र प्रकृति में रमा है, किन्तु वर्ण्य साधना-संपृक्त ही हैं। गुरु-शरण, विवेक, साधना-यात्रा, साधक-गुण, स्थितप्रज्ञा, साधना-साफल्य प्रभृति विषय-बिन्दु सिन्धु का रूप लेते प्रतीत होते हैं। आचार्य-कवि की उच्चस्थिति कहीं भी शिथिल या द्विधाग्रस्त नहीं लगती। वह सर्वत्र एक सशक्त साधु नहीं ही दीखता है, क्योंकि वस्तुतः 'नर्मदा का नरम कंकर' आचार्य-कवि का ही प्रतीक है, जो 'ह्रास या विकास' मात्र में विश्वास करता है :

या तो इस कंकर को
फोड़-फोड़ कर
पल भर में
कण-कण कर
शून्य में....
....उछाल
....समाप्त कर दो
अन्यथा
इसे
सुन्दर सुडौल
शंकर का रूप प्रदान कर
अविलम्ब....इसमें
अनंत गुणों की
प्राण प्रतिष्ठा
....कर दो

आधुनिक हिन्दी के नवअध्यात्मकाव्य या नवरहस्यवादकाव्य में पन्त का सृजन गुण में भी अन्यतम है, परिणाम में भीः उत्तरा, स्वर्णधूलि, स्वर्णकिरण, अमिता, 'कला और बूढ़ा चाँद', पतझर, लोकायतन इत्यादि ग्रन्थों का अनन्त प्रसार पन्त को विश्व का श्रेष्ठतम नवरहस्यवादी कवि सिद्ध करता है। अज्ञेय की 'असाध्य वीणा', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'आँगन के पार द्वार' प्रभृति कविताएँ नवरहस्यवादी हैं। आनन्दशंकर माधवन्, प्रयागनारायण त्रिपाठी, स्वरूपकुमारी बख़्शी इत्यादि का नवरहस्यवादी सृजन इस काव्यधारा के भारतनुकूल होने का सूचक है। आचार्य विद्यासागर 'नर्मदा का नरम कंकर' एवं 'चेतना के गहराव में' संग्रहों के कारण नवरहस्यवादी कवियों में एक उच्च स्थान के अधिकारी बन गए हैं; और 'मूक माटी' में तो महाकवि ही लगते हैं। किन्तु एक तो उनका नवरहस्यवाद साधनात्मक है, दूसरे जैन। अतः उसमें विज्ञान-मनोविज्ञान-सम्पन्न वैश्विकता की वैसी सार्वभौम विवृति दृग्गत नहीं होती जैसी पन्त, माधवन् प्रभृति के सृजन में। स्व. स्वामी मुक्तानन्द परमहंस एक उच्चकोटि के नवअध्यात्मवादी या नवरहस्यवादी हैं—'मुक्तेश्वरी' प्रमाण है। किन्तु 'मुक्तेश्वरी' गद्यगीत विद्या में रचित है; दूसरे, 'लल्लेश्वरी' (कश्मीरी-कविता की जननी एवं अमर रहस्यवादी कवयित्री, जिसकी वाणी का अनुवाद मुक्तानन्द ने 'लल्लेश्वरी' शीर्षक पुस्तक में किया है) से प्रभावित भी।

* * *

'चेतना के गहराव में' आचार्य विद्यासागर का यथानाम-तथागुण कवितासंग्रह है, जिसका विग्रह 'मूक माटी' एवं 'नर्मदा का नरम कंकर' के सदृश नयी कविता का है। इस संग्रह में अनुभूति बहुआयामी है। सन्त-कवि अन्तश्चेतना के साथ प्रकृति एवं युगचेतना का द्रष्टा भी है। वह जीवन-निरपेक्ष नहीं है। उसने प्रवृति पर भी दृष्टि डाली है किन्तु निवृत्ति को पुष्ट करने के ध्येय से। वह ज्ञानी

---

1. नार्म = मोक्ष + दा = देने वाली। मोक्षप्रदायिनी।
2. नर्म शब्द होता तो अर्थ बनता मोक्षदा का मोक्ष-रूप जो दार्शनिक दृष्टि से सार्थकतर रहता।
3. कोमल-अहिंसक आचार्य-कवि ने 'कंकड़' को 'कंकर' बना दिया है! (प्रसाद ने 'पिछोला' को 'पेशोला' बनाया!)
4. किन्तु परस्पर-विपरीत नहीं, तत्वतः 63! वैसे, संख्या को ''जग ते रहु छत्तीस ह्वै रामनाम छा-तीन (तुलसी : देहावली) के आलोक में भी देखा जा सकता हैं।
5. 'हुआ' ठीक रहता ('हुवा' सियार की आवाज़ को कहते हैं)।

है, योगी है, किन्तु भक्तिविपन्न नहीं, क्योंकि उसने भक्ति के परम मुक्ता-धन 'नयननीर' का भावनामय साक्षात्कार किया है (कर्म को भी 'ध्यान' से देखा है)—वस्तुतः ज्ञान-योग-भक्ति (तत्वतः कर्म भी) परस्पर-अनुस्यूत हैं :

प्रभु के प्रति किस में?
इसमें....
प्रीति का वास है
प्रतीति का वास है
पर्याप्त है यह,
अब इसकी
नयन-ज्योती
चली भी जाय!
कोई चिंता नहीं
किंतु
कहीं ऐसा न हो,
कि
प्रभु स्तुति से पूर्व
इसके करुण-नयनों में
नीर कम पड़ जाय

नयन-नीर के विना ज्ञान-योग शुष्क, भक्ति-कर्म निर्धन! अतः नयन-नीर का महत्त्व अपार एवं बहुआयामी है।

आचार्य विद्यासागर अक्षर के आराधक हैं, शब्द की चेतना के पारखी। उनकी शब्दक्रीड़ा 'मूक माटी' एवं संस्कृत 'पञ्चशती' में विशिष्ट रूप से दृग्गत होती है। 'चेतना के गहराव में' संगृहीत 'याद आती, कल की छवि' शीर्षक कविता में उन्होंने कल को बड़े काल के साथ अविकल दृष्टि से देखा है। कविता यमक की दृष्टि से विलक्षण बन पड़ी है। 'पञ्चशती' तो यमक-कोष है ही, यह कविता भी एक स्वतन्त्र यमकिरणमाला बन गई है। भारतीय काव्यालंकार विश्व-काव्यशास्त्र के अमूल्य रत्न हैं। विज्ञाता-कवि का ध्यान उनकी ओर कैसे न जाए और क्यों न जाए? और, अज्ञानी, 'अलंकार' शब्द सुनते ही चिहुँक क्यों न पड़े?

'चेतना के गहराव में' 'मैं' निज को पहचान लेता है। आत्मसाक्षात्कार से गहरा कुछ भी नहीं। अपने प्रवचनों एवं लेखों में भी आचार्य विद्यासागर लोगों से अपने को पहचानने के लिए कहते हैं। ऐसे प्रकरणों में वे उपनिषद् के ''आत्मा वै गुरुरेकः'' का स्मरण कराते हैं। गुरुडम से मुक्त व्यक्ति ही गुरु हो सकता है। 'स्वयं' का स्रष्टा, मैं' कविता में आचार्य विद्यासागर परिपक्व जैन आत्मवादी के रूप में दृग्गत होते हैं (याज्ञवल्क्य से सुकरात तक की परम्परा के जैन-उत्तराधिकारी--मुक्तानन्द परमहंस के जैन साथी) :

बाहर यह
जो कुछ दीख रहा है
'सो' मैं नहीं हूँ[1]
और वह
मेरा भी नहीं है
ये आँखें
देख नहीं सकतीं
मुझमें देखने की शक्ति है
उसी का मैं स्रष्टा हूँ।
सभी का मैं द्रष्टा हूँ।

* * *

---

1. 'सोऽहंवाद' की अस्वीकृति। जैन-अध्यात्मवाद के अनुरूप (''सो'' की विशेष प्रस्तुति का रहस्य) किन्तु 'सो' के अन्य अर्थ भी हैं : स्थूल जगत्, शरीर।

जैन आचार्य होने के कारण विद्यासागर जी ने स्फीत अध्ययन भी किया है। आचार्य समन्तभद्र कृत 'रत्नकरण्ड श्रवाकाचार' एवं श्री नेमिचन्द कृत 'द्रव्यसंग्रह' एवं 'रयण-मञ्जूषा' शीर्षक ग्रन्थद्वय का तथा आचार्य कुन्दकुन्द कृत 'अष्टपाहुड़' का इसी शीर्षक से पद्यानुवाद इस कथन को प्रमाणित करने वाले ग्रन्थों में से हैं। वे स्फीत अनुवादक हैं। अनूदित विषयों की शुष्कता एवं गहनता के कारण अनुवादों के साहित्योपयुक्त लालित्य एवं कला का समावेश बहुत कम ही हो पाया है, किन्तु इनसे जैनधर्म एवं जैन-दर्शन का ज्ञान अवश्य प्राप्त किया जा सकता है। गद्य में 'प्रवचन-प्रदीप', 'आदर्श कौन!' जैसे ग्रन्थों में उन्होंने जैन धर्म, दर्शन, काव्य इत्यादि पर प्रभावी किन्तु प्रकीर्ण प्रकाश डाला है। अनेकान्तवाद, स्याद्वाद, मोक्ष इत्यादि विषयों को वे अधिकारपूर्वक बोधगम्य बना देते हैं। उनके प्रवचनों में राम, रामकथा तथा उसके हनुमान्, जटायु[1] इत्यादि का जैनधर्मानुरूप किन्तु उदार समावेश भी रहता है। प्रवचनों से दो उदाहरण देखें :

1. मोक्ष पुरुषार्थ किसी वर्ग में सम्मिलित नहीं है इसलिए इसे संस्कृत में अपवर्ग कहते हैं, वर्गविहीन कहते हैं परन्तु धर्म, अर्थ और काम आपस में संबद्ध हैं इसलिए इन्हें त्रिवर्ग कहते हैं। मोक्ष अकेला और ये तीन, फिर भी मोक्ष का सामर्थ्य देखो, वह अकेला ही, इन तीनों को समाप्त कर देता है

यह मोक्ष पुरुषार्थ कर्मभूमिज मनुष्य से ही बनता है अतः आपको मोक्ष के लिए पुरुषार्थ अवश्य करना चाहिए।

2. अनेकान्त का हृदय है समता। सामनेवाला जो कहता है उसे सहर्ष स्वीकार करो। ऐसा कोई भी मत नहीं है जो भगवान् महावीर की देशना[2] से सर्वथा असम्बद्ध हो।

* * *

'पञ्चशती' में आचार्य विद्यासागर संस्कृत-कवि के रूप में प्रकट होते हैं। 1999 ई. में प्रकाशित इस कृति में 'श्रमणशतक', 'निरंजनशतक', 'भावनाशतक', 'परिषहजशतक' (ज्ञानोदय) एवं 'सुनीतिशतक' संग्रथित हैं, जिनकी रचना 1974 ई. एवं अनन्तर होती रहती थी। अलंकृत संस्कृत तथा जैन दर्शन के प्राचीन एवं अप्रचलित शब्दों के भरपूर प्रयोग के कारण आचार्य विद्यासागर के शतक संस्कृत के लिए भी क्लिष्ट हो गए हैं। श्री पन्नालाल साहित्याचार्य ने संस्कृत-टीका, हिन्दी-काव्यानुवाद के द्वारा इन्हें बोधगम्य बनाकर उपयोगी कार्य किया है—उनका आचार्य श्रीधरसेन के 'विश्वलोचन कोश' एवं महाकवि धनंजय[3] के 'नाममाला' प्रभृति का संकेत भी प्रशस्य है, क्योंकि वह संस्कृतज्ञ पाठक को मूल तत्त्व को सीधे समझने की प्रेरणा दे सकता है।

डॉ. आशालता मलैया ने 'संस्कृत शतक-परम्परा और आचार्य विद्यासागर के शतक' शीर्षक शोधप्रबन्ध (प्रकाशित) के द्वारा विषय का तुलनात्मक विवेचन-विश्लेषण किया है। अन्यत्र भी शोधकार्य हो रहा है।

'श्रावणशतक' में आचार्य विद्यासागर ने महावीर, भद्रबाहु, कुन्दकुन्दाचार्य एवं स्वगुरु आचार्य ज्ञानसागर (ज्ञानाब्धि) की वन्दना करते हुए, सरस्वती से स्वरक्षा की प्रार्थना की है, तथा रचना का उद्देश्य साधुता की प्राप्ति घोषित किया है। आर्या छन्द में निबद्ध इस सुन्दर एवं अलंकृत रचना में 'श्रमण' (गीता का 'स्थितप्रज्ञ' स्मरण आता है) के कठिन दायित्यों एवं गुणों का विशद निरूपण किया गया है। जैनतत्त्वप्रधान होते हुए भी श्रवणशतक किसी भी धर्म या मज़हब के मान्यव्यक्ति से सामान्यव्यक्ति तक सबके लिए पठनीय है, क्योंकि एक ओर यह पतञ्जलि के 'स्वरूपऽवस्थान' का स्मरण कराती है, दूसरी ओर सार्वभौम सदाचार का। अन्तिम (गुरुस्मरणसम्पन्न) साधनोत्कर्ष के उद्गार तुलसीदास के "कबहुँक हैं यह रहनि रहौंगो" (विनयपत्रिका) का स्मरण कराते हैं। रचना जैनआत्मतत्व एवं भक्तितत्व से उभयविध निष्पन्न है। एक उदाहरण प्रस्तुत है :

> भवता विषयवासनाऽपास्यतामुपास्यतां निजभावना।
> प्राहेति जैनोऽमना यद् भवन्तमटेत् शिवाङ्गना।। (9)

(हे साधो! तुम्हें विषयवासना-इन्द्रियविषयों की अभिरुचि छोड़ देनी चाहिए और स्व-स्वरूप की भावना करनी चाहिए। जिससे मुक्ति-रूपी स्त्री तुम्हें वर सके, ऐसा भावमनरहित केवलज्ञानी जिनदेव ने कहा है।)

'निरञ्जनशतक' में कलुष-कालिमा-रहित ज्ञान-दृष्टि-निष्पन्न 'परमात्माओं' का संस्तवन भी है, गुणविवेचन भी। रचना-विधान ऐसा है कि इसे 'जिनेद्रशतक' या 'महावीरशतक' भी कहा जा सकता है। बुद्ध, सुगत इत्यादि विशेषणों का प्रयोग निरंजन के लिए ही किया

---

[1] मैंने स्वयं 3 अक्टूबर, 1993 को रामटेक में उनके श्रीमुख से जटायु पर अत्यन्त प्रभावी एवं मौलिक भाषण सुना था।

[2] उपदेश। निर्देश।

[3] 'दशरूपक' के विख्यात प्रणेता काव्याचार्य धनंजय से भिन्न।

गया है। स्वर्ग, कल्पतरु इत्यादि भी विद्यमान हैं, किन्तु मोक्ष को वरीयता प्रदान की गई है जो शीर्षक से पूरा मेल खाती है। ज्ञान-वैराग्य की यह जैनतत्वप्रधान रचना किसी भी साधक को प्रेरणा प्रदान कर सकती है। रचना-विधान 'श्रमणशतक' से मिलता-जुलता है, किन्तु अलंकरण (विशेषतः यमक-चमत्कार) अधिक प्रभावी है। उदाहरण देखें :

वै विषमयीमविद्यां विहाय ज्ञानसागरजां विद्याम्।
सुधामेमात्मविद्यां नेच्छामि सुकृतजां भुवि द्याम्। (100)

(हे भगवान्! इस पृथ्वी पर मैं निश्चय से पुण्योदय से प्राप्त होने वाले स्वर्ग को नहीं चाहता हूँ किन्तु विषरूप अविद्या को छोड़कर ज्ञानरूप सागर (पक्ष में ज्ञानसागर गुरु) से उत्पन्न आत्मविद्यारूपी सुधा को प्राप्त होता हूँ।)

अतिक्लिष्ट चित्रकाव्य-प्रयोगों से युक्त, 'भावनाशतक' में अरहन्त एवं गुरु ज्ञानसागर की वन्दना के अनन्तर सरस्वती की स्तुति की गई तथा तीर्थंकर-प्रवृत्ति (दार्शनविशुद्धि षोडश भावनाओं) का निरूपण किया गया है। अन्त में भी गुरु-स्मरण किया गया है। भारत-शुभाशा भी व्यक्त है। इसमें द्रुतविलम्बित छन्द प्रयुक्त है। उदाहरण देखें :

भक्त्येप्सितासवारिर्मोहतमः प्रसारत्वादवारिः।
धर्मवारिदां वारिमीडेऽनिच्छन् विषयवारि।। (3)

(जो संवर का इच्छुक है तथा मोह-रूपी तिमिर का प्रसार होने से नेत्रहीन है, ऐसा मैं विषय-रूप जल की इच्छा न करता हुआ धर्म-रूप जल देनेवाली सरस्वती की भक्तिपूर्वक स्तुति करता हूँ।)

'परीषहजयशतक' में क्षुधा इत्यादि बाइस परीषहों पर नियन्त्रण का आदेश प्राप्त होता है। रचना-विधान 'भावनाशतक'—जैसा है, किन्तु यह शतक वैसा क्लिष्ट नहीं है। अन्त में मंगलाशा की गई है, जो उत्कृष्ट है। उदाहरण देखें :

वियति को वियतिर्वियुतोऽयतः, गतियति ह्यगतो यतितोयतः।
शकलतो विकलं कलशंकरं, किल यजे सकलं ह्यनिशं करम्।। (2)

(जो आकाश में सूर्य के समान गतिशील हैं, यतियों में श्रेष्ठ हैं, जो कर्मोदय से रहित हैं अथवा अय-शुभावह विधि से वियक्त-विशेषरूप से सहित हैं, गति-यति-ज्ञान की विश्रंति से रहित हैं अर्थात् अनन्तज्ञान से सम्पन्न हैं, यतितोयतः इन्द्रियदमनरूप जल से सहित अखंड-समस्त विश्व को जानेवाले हैं उन सकल-परमौदारिक शरीर से संहित कर-सुखदायक, शान्तिविधायक जिनेन्द्र की मैं पूजा करता हूँ।)

अन्तिम 'सुनीतिशतक' उपजाति छन्द से निबद्ध है तथा ज्ञान-वैराग्य-प्रवण उपदेशों की उपमा-दृष्टान्त प्रभृति अलंकारों से सम्पन्न मंजूषा मानी जा सकती है। 'सु' का प्रयोग मननीय है, क्योंकि भर्तृहरि कृत 'नीतिशतकम्' प्रभृति लोकाचार-प्रधान हैं और यह विशुद्ध आध्यात्मिक। भर्तृहरि ने 'शृंगारशतकम्' भी रचा था, जबकि इसमें शृंगार को प्रमुख रस नहीं माना गया ’च.1ग। यह भर्तृहरि के 'वैराग्यशतकम् के कुछ-कुछ निकट है, किन्तु जिनतत्वप्रधान होने के कारण इसका 'व्यक्तित्व' भिन्न है। इसमें पूरे 100 छन्द हैं, जबकि अन्य चार शतकों में सौ के बाद भी कुछ का प्रयोग किया गया है (छन्दान्तर भी किया गया है) जो परम्परा-अनुमोदित है, क्योंकि पंचक, सप्तक, दशक, पंचाशिका, शतक, पंचशतक, सप्तशती इत्यादि में शीर्षक-संख्या से कुछ अधिक छन्द ही रचे जाते रहे हैं। प्रसाद गुण, अलंकार-वैविध्य एवं प्रभाव अन्विति में 'सुनीतिशतक' निस्सन्देह विशिष्ट है। उदाहरण देखें :

पूर्वानुवृत्तिस्तु पुनश्चरेयं, परम्परा वा तरुबीजवृत्तिः।
बीजे विदग्धे न तरोः प्रसूतिर्दान्तेषु खेषु स्वत आत्मसिद्धिः।।

(पूर्व पूर्व कारणों का अनुसरण करने वाली यह चिरकालीन परम्परा वृक्ष और बीज के समान है अर्थात् वृक्ष से बीज होता है और बीज से वृक्ष होता है। बीज के जल जाने पर वृक्ष की उत्पत्ति नहीं होती। इन्द्रियों का दमन होने पर आत्मा की सिद्धि स्वयं हो जाती है।)

'पञ्चशती' आचार्य विद्यासागर को संस्कृत के अध्यात्म एवं नीति विषयों पर रचना करने वाले एक श्रेष्ठ कवि के रूप में स्थापित करती है। छन्दों पर अधिकार, भाषा के प्रवाह एवं अलंकरण (विशेषतः यमक जिसके वे सम्राट् ही हैं : विरक्त होते हुए भी सम्राट्!) के वैभव के साथ जैन-अध्यात्मवाद को विवृत करना निस्सन्देह एक कठिन कार्य है, जिसमें वे सफल हुए हैं। आचार्य विद्यासागर का अध्यात्म एवं नीति काव्य भर्तृहरि, तिरुवल्लुवर, सादी, कबीर, तुलसी, रहीम, वृन्द इत्यादि के तद्वत् काव्य से भिन्नप्राय विशुद्धतम निर्वेदकाव्य है, जिसमें शान्तरस की गंगा में आद्यंत अवगाहन प्राण को शीतल कर देता है।

* * *

अन्ततोगत्वा, आचार्य विद्यासागर दिगम्बर जैन धर्म के प्रतिनिधि कवि, व्याख्याता एवं आचार्य तो हैं ही, हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक उत्कृष्ट एवं स्मरणीय कवि-विभूति भी हैं तथा संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक निश्चित स्थान के अधिकारी भी। आचार्य विद्यासागर का व्यक्तित्व श्वेताम्बर जैन धर्म (तेरापन्थ) के युगप्रधान स्व. आचार्य तुलसी से हिन्दी-संस्कृत-पांडित्य में भी मिलता-जुलता है, लेखन में भी। किन्तु यह तपप्रधान हैं तथा आचार्य तुलसी नेतृत्वप्रधान (अणुव्रत-अनुशास्ता, सुधारक, जैन विश्व भारती लाडनूँ के संस्थापक एवं प्राण, इन्दिरा गाँधी पुरस्कार विजेता इत्यादि बिन्दु इसके प्रमाण हैं)। हिन्दी-कवि एवं संस्कृत-कवि के उभय रूपों में आचार्य विद्यासागर श्रेष्ठतर हैं। उनका स्मरण स्वयंभू के साथ किया जाएगा, पम्प के साथ किया जाएगा। एक महान् जैनाचार्य एवं एक महान् जैन-कवि के रूपों में वे अजर-अमर हैं।

प्रह्लाद रामशरण

'एशिया[1] की श्रेष्ठ लोककथाएँ', 'मॉरीशस की लोककथाएँ', 'मॉरीशस का लोकसाहित्य और संस्कृति', 'मॉरीशस का इतिहास' जैसे ग्रन्थों के प्रणेता तथा त्रैमासिक 'इन्द्रधनुष' (साहित्यिक पत्रिका) एवं पाक्षिक 'आर्योदय' (वैदिक विचारधारा-पूर्ण पत्रिका) के सम्पादक श्री प्रह्लाद रामशरण ने अंग्रेज़ी में 'मॉरीशस में आर्यसमाज का आन्दोलन' एवं फ्रेंच में 'महर्षि दयानन्द सरस्वती' (आत्मकथा-अनुवाद) जैसे ग्रन्थ भी प्रस्तुत किए हैं। 1973 ई. में भारत आकर शिक्षा प्राप्त करने के वर्षों में ही उनका लेखन आरम्भ एवं विकासमान हुआ था। उनके पूर्वज आरा (विहार) के निवासी थे। उनके परदादा 1869 ई. में मॉरीशस गए थे।

प्रह्लाद रामशरण लोकलेखक एवं लोकसेवक हैं। वे भारत-मॉरीशस के एक सुदृढ़ सांस्कृतिक सेतु के रूप में भी स्मरणीय हैं। उनके लेखन का उद्देश्य लोकोत्थान है, जो प्रशस्य ही माना जाएगा।

अभिमन्यु 'अनत'

मॉरीशस के हिन्दी-साहित्यकारों में कवि, कथाकार, लघुकथाकार, श्री अभिमन्यु 'अनत' का स्थान आदरणीय है, स्मरणीय भी। थोड़ी-सी बोझिल और कलाविपन्न होते हुए भी उनकी लघुकथाएँ अच्छी भी हैं, बहुआयामी भी। एक लघुकथा प्रस्तुत है :

सज़ा

अदालत में जब राधेश्याम का मुकदमा पेश हुआ तो न्यायधीश ने थोड़ी-सी हैरानी के साथ सरकारी वकील से पूछा—

—इस पर शराब पीने का आरोप है!

—हाँ।

—पर शराब पीना तो देश में कोई अपराध नहीं। शराब की दुकानें चलाने को परमिट तो सरकार ही देती है।

—योर ऑनर, लगता है आपके सामने आरोपी राधेश्याम के केस का पूरा विवरण नहीं पहुँचा है।

—शराब पीने का आरोप है।

—हाँ। लेकिन केवल इतना ही नहीं।

—तो और क्या किया है इसने!

—योर ऑनर। राधेश्याम श्रम मन्त्रालय में चपरासी है।

—हाँ तो!

—इसने बारह मार्च को यानी कि देश की आज़ादी की अठारहवीं सालगिरह के अवसर पा ग़ोल्डन गेट जैसे भव्य रेस्टरॉ में व्हिस्की पी।

—लेकिन हमारे देश के संविधान में तो यह भी कोई अपराध नहीं।

—उस रात उस भव्य रेस्टरॉं में श्रम-मन्त्री जी विदेशी आयुक्तों के साथ राष्ट्रीय पार्टी में हिस्सा ले रहे थे।

---

[1] एशिआ (ए एस आई ए) ठीक है। किन्तु प्रचलन एशिया (ए एस एच आई वाई ए) का है।

—लेकिन आपकी इन किसी भी बातों से आरोपी का कोई अपराध प्रमाणित नहीं होता। क्या आरोपी भी उसी पार्टी में शामिल था?

—नहीं।

—उसने मन्त्री तथा उनके साथियों के बीच कोई गुस्ताख़ी की थी?

—वह अपने तीन साथियों के बीच से उठकर मन्त्री जी तथा उनके विदेशी मित्रों के बीच पहुँच आया था।

—कोई हंगामा किया था उसने?

—उसने अपने हाथ के गिलास को मन्त्रीजी के गिलास से टकराकर कहा था—चिन-चिन! आज मन्त्री और चपरासी एक ही ठौर पर एक ही चीज़ पी रहे हैं। यह रहा आज़ादी का सही अर्थ।

—अच्छा तो फिर यह बात है। यानी कि मन्त्री जी का विदेशी मित्रों के बीच अपमान!

—नहीं योर ऑनर।

—तो फिर केस क्या है?

—प्रतिष्ठित विदेशी आयुक्तों के बीच यह कहना कि ''यह रहा आज़ादी का सही अर्थ'' हमारे देश की आज़ादी की तौहीन थी। यह आदमी, देश और उसकी आज़ादी का द्रोही है।

और न्यायधीश ने फ़ैसला सुनाने के लिए ऐनक को नाक पर थोड़ा-सा नीचे उतारा।

अभिमन्यु 'अनत' का कवि-रूप अभिनव, अस्मितासम्पन्न एवं तेजोमय है। उदाहरण देखें :

मेरे दोस्त!
उस भाषा में मेरे लिए
शुभ की कामना मत कर जिसकी चुभती ध्वनि मुझे
उन गुलामी के दिनों की याद में ले जाती है
चाबुक की बौछारों का आदेश
निकलता था जिस भाषा में
उस भाषा को मेरी भाषा मत कह
मेरे दोस्त!

उपविधाएँ एवं नवविधाएँ

1. नवगीत

नवगीत के वास्तविक प्रवर्तक निराला थे, जो स्वछन्दतावाद (छायावाद) के प्रवर्तकों में एक थे, प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद के भी वास्तविक प्रवर्तक थे। किन्तु पृथक उपविधा-रूप में इसके विकास में भवानीप्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती, शम्भूनाथ सिंह, रामदरश मिश्र, उमाकान्त मालवीय, वीरेन्द्र मिश्र, रवीन्द्र भ्रमर, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', के नाम उल्लेखनीय हैं। राजेन्द्रप्रसाद सिंह, शम्भूनाथसिंह इत्यादि ने इस उपविधा पर अच्छा प्रकाश डाला है। डॉ. शम्भूनाथ सिंह ने 'नवगीत दशक' (तीन खंड) प्रकाशित कर प्रतिनिधि नवगीतकारों को प्रस्तुत किया। राजेन्द्रप्रसाद सिंह सम्पादित 'नवगीत-सप्तदशक' में विषय का निरूपण एवं रचना-वैभव उत्कृष्ट स्तर का है। इन ग्रन्थों से उपविधा की अलग पहचान उजागर हुई है। नवगीत जगदीश चतुर्वेदी इत्यादि की अकविता एवं देवेन्द्र सत्यार्थी इत्यादि की अकाहानी के नकारात्मक नव्यता-रोग की उद्‌भूति न होकर गीत का स्वच्छन्द विकास है जो गीतकारों की नवप्रयोगशीलता विवृत करता है। गीत एक भावयज्ञ है जिसके अनेक में एक रूप स्वाभाविक है। तीव्रतम अनुभूति जब गेय शोभा में अभिव्यक्ति होती है तब उसे गीत कहते हैं। गीत का जन्म मानवता के साथ हुआ था। सद्यःजात शिशु का मोहक रोदन आरम्भ में भी महानतम गीत था, अब भी है। विश्व का आदिग्रन्थ ऋग्वेद ('श्रुति') से ही प्राचीनतमता सिद्धः न लिपि, न इष्टिका-लेखन, न पेरिस, न पार्चमेन्ट, न भूर्ज्यपत्र, न क़ाग़ज़—केवल कान से कान की अक्षर-यात्रा) गेय है; सामुवेद का नाम ही गानवेद है। एकल अनुभूति, एकल प्रवाह, संक्षिप्तता, आत्माभिव्यक्ति प्रभृति गीत के अन्य गुण हैं। नवगीत इन सबसे संपृक्त है। इसकी गेयता निर्विवाद है, किन्तु वह केवलमात्र पारम्परिक अथवा लौहानुशासनबद्ध नहीं। 'परमिल' की भूमिका में निराला ने वैदिक-औपनिषदिक मन्त्रों के उद्धरण देकर यह सिद्ध किया कि स्वतन्त्र एवं प्राचीन भारत में गेयता जड़बन्धनबद्ध नहीं थी। मैं भी गीत को संगीत का पिछलगुवा बनाना अनुचित मानता हूँ। गीत की आत्मा अनुभूति है, शरीर गेयता। यदि आकार गेय है तथा भाव प्रभावी, तो उसे गीत मानना ही उचित होगा। महान् गायत्री मन्त्र (यजुर्वेद) की गेयता गीत-स्वातन्त्र्य का विलक्षण उदाहरण है। सामदेव गानवेद है किन्तु उसमें आद्यंत गीत-स्वातन्त्र्य की व्याप्ति के दर्शन अनायास ही हो जाते हैं। वैसे भी, ललित-कलाओं में सर्वश्रेष्ठ स्थान साहित्य क़ा है। संगीत, उसके पीछे चलता आया है, वह संगीत के पीछे नहीं चला। नवगीत स्वागत-योग्य है। डॉ. रंगनाथ मिश्र 'सत्य' ने अखिल भारतीय अगीत परिषद् (लखनऊ) स्थापित किया है। उनके अनुसार, 'अगीत'-रचना भी पर्याप्त हुई है। डॉ. बलदेव 'वंशी' की 'विचार-कविता' भी चर्चित हुई है। डॉ. अजय प्रसून ने 'अनागत कविता' का 'प्रवर्तन' किया है जो भविष्यप्रधान अनुभूतिपक्ष की ओर संकेत करती है, केवल विधागत नहीं है। बहरहाल नवगीत के दो उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. बार-बार गर्जन
वर्षण है मूसलधार[1],
हृदय थाम लेता संसार,
सुन-सुन घोर वज्र-हुंकार।
अशनि-पात से शायित उन्नत शत-शत वीर,
क्षत-विक्षत हत अचल-शरीर,
गगनस्पर्शी स्पर्द्धी-धीर। (निरालाः 'परिमल' में 'बादल-राग')

2. ओ नृत्य नूपुरों के सरगम
राजसी लचक के दिग्दर्शन
मन बहलावी भंगिमा
देश के उच्च वर्ग की चिन्ता के पट परिवर्तन
ओ कलाकार नव संघर्षण
देखो तो विद्रोही नर्तन.... (वीरेन्द्र मिश्रः 'धरती गीताम्बरा' में 'पट-परिवर्तन')

---

[1] तुलसी ने 'मुसलधार' (कवितावली, सुन्दरकांड 19/6) का प्रयोग किया है। हिन्दी में 'मूसल' (अवधी में 'मूसर' या 'मूसरु') कहते-लिखते हैं। निराला का प्रयोग ठीक है। किन्तु आजकल प्रचलित 'मूसलाधार' अपनी निरर्थकता में 'मूसलभाषा' का शब्द लगता है!

2. हिन्दी-ग़ज़ल

प्राचीन अरब में ग़ज़ल नामक शायर अपनी अटूट शराबख़ोरी के लिए 'प्रसिद्ध' था। अतः अरबी, फ़ारसी, तुर्की और उर्दू वग़ैरह में इश्क़ोशराबी-शायर का नाम ही ग़ज़ल पड़ गया। वैसे, ग़ज़ाला का मतलब हिरन होता है और हिरन-जैसी आँखों वाले सुन्दर तरुण एवं हिरनी-जैसी आँखों वाली सुन्दरी तरुणी माशूक़ पर रचित सुरा-सौन्दर्य काव्य भी ग़ज़ल के साँचे में फ़िट बैठता है। ग़ज़ल 'शेर' में कहे जाते हैं, जिसका अर्थ है 'बाल' जो कामोद्दीपन का एक प्रतीक है। ग़ज़ल कुछेक शेरों में कहा जाता है जिसमें शायर का नाम या उपनाम (तख़ल्लुस) चस्पाँ रहता है। शेर के एक चरण को मिसरा कहते हैं। शेरों के अन्त के पुनरावृत्ति वाले शब्द 'रदीब' कहलाते हैं तथा रदीब से पहलेवाला तुक 'काफ़िया'। दसवीं सदी में ईरान के रूदाग़ी[1] ने फ़ारसी में ग़ज़लगोई की इब्दतदा की, जो दकीकी, वाहिदी, निज़ामी, कमाल, बेदिल इत्यादि के द्वारा विकसित हुई। खुसरो, सादी, हाफ़िज फ़ारसी के सर्वश्रेष्ठ ग़ज़लगो हैं। खुसरो ने भारत में ग़ज़ल का प्रचलन किया। उनकी 'सखी पिया को जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अँधेरी रतियाँ' जैसी ग़ज़लें अब तक मशहूर हैं। खुसरो (1253-1325 ई.) हिन्दी-ग़ज़ल के जनक हैं। उर्दू का वास्तविक प्रचलन अठारहवीं शताब्दी में हुआ। उर्दू के आदिकवि वली (1668-1744 ई.), आरज़ू (1669-1756), सौदा (1710-81 ई.), मीर तक़ी 'मीर' (1724-1810 ई.), मीर दर्द (1721-85 ई.), सोज़ (1721-68 ई.), नज़ीर अकबराबादी (1735-1830 ई.), इंशाअल्लाह खाँ (प्रभावकाल उन्नीसवीं सदी का पूर्वार्द्ध), नासिख़ (मृत्यु 1838 ई.), गालिब (1769-1869 ई.), जौक़ (1789-1854 ई.), ज़फ़र (1775-1862 ई.), मोमिन (1800-51 ई.), दाग़ (1831-1990 ई.), हाली (1837-1914 ई.—1 जनवरी, 1915 भी लिखा मिलता है), चक़बस्त (1882-1926 ई.), इक़बाल (1875-1938 ई.), जिगर मुरादाबादी (1890-1960 ई.), मज़ाज (1909-55 ई.), जोश मलीहाबादी (1894-1982 ई.), फ़िराक़ गोरखपुरी (1896-1982 ई.), फ़ैज अहमद 'फैज' (1911-85 ई.) इत्यादि असंख्य उर्दू ग़ज़लकारों में मीर, ग़ालिब, फ़िराक, फ़ैज़ वगैरह का स्थान अन्यतम है।

हिन्दी-ग़ज़ल ''यथा राजा तथा प्रजा'' के अनुरूप खुसरो से आरम्भ होकर प्यारेलाल 'शौक़ी' (जहाँगीर-समकालीन), गोपाल चन्द्र उपनाम गिरिधरदास (1833-73 ई.: भारतेन्दु के पिता), प्रेमघन (1855-1930 ई.), हरिऔध (1865-1947 ई.) इत्यादि के द्वारा विकसित की जाती रही। ''हमन हैं इशक़ मस्ताना हमन की होशियारी क्या'' शीर्षक ग़ज़ल ही है, जो कबीर की मानी जाती है। बौद्धिककाल में भी ग़ज़लबाज़ी क़ायम रही और लाला भगवानदीन 'दीन' (1866-1930 ई.), नारायणप्रसाद 'बेताब' (1872-1945 ई.), गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' (1883-1972 ई.), जगदम्बाप्रसाद मिश्र 'हितैषी' (1895-1957 ई.)[2], 'बिस्मिल' (1897-1927 ई.)[3] इत्यादि ने अच्छी ग़ज़लें लिखी हैं। स्वतन्त्र्योत्तर भारत में ग़ज़ल का अच्छा विकास हुआ है और दुष्यन्त कुमार, शमशेर, निरंकारदेव 'सेवक', कुँवर बेचैन, स्वामी श्यामानन्द सरस्वती, भगवतप्रसाद मिश्र, नियाज, ज्ञान प्रकाश 'विवेक', माधव मधुकर, मोहम्मद शफ़ी खाँ लोदी उपनाम 'बेकल उत्साही', शेरजंग गर्ग इत्यादि ने अच्छी ग़ज़लें लिखी हैं। रोहिताश्व अस्थाना (जो स्वयं ग़ज़लकार हैं) ने 'हिन्दी ग़ज़ल : उद्‌भव और विकास' सुन्दर प्रबन्ध लिखकर इस विद्या पर अच्छा प्रारम्भिक प्रकाश डाल चुके हैं। सुप्रसिद्ध गीतकार डॉ. सुमेरसिंह 'शैलेश' के 'हिन्दी-ग़ज़ल का विवेचनात्मक अनुशीलन' शीर्षक प्रबन्ध में विषय के निरूपण एवं कुछ ग़ज़लकारों का विवेचन सन्तोषजनक है। अशोक 'मधुप', अशोक 'अंजुम' इत्यादि अनेक संपादकों ने संकलन निकाले हैं। मीर और ग़ालिब, फ़िराक़ और फ़ैज की उर्दू ग़ज़लों के सामने हिन्दी की ग़ज़लें जम नहीं पातीं। फिर भी, अनेक उच्चकोटि की सामयिक ग़ज़लें अपने अंशों में बेहरतीन हुईं। इसमें सन्देह नहीं। जैसे :

ईमान बदल देते हैं तारीख़ की तरह।
—राजकुमारी 'रश्मि'

और सबसे बढ़करः

मुझको देखा तो शैतान चिल्ला पड़ा,
''आदमी! आदमी! ! बाप रे, आदमी ! ! !''
—निरंकारदेव 'सेवक'

---

1. ग़लत 'रौदग़ी' भी लिखा मिलता है।
2. शहीदों की चिताओं पर लगेंगे हर बरस मेले,
वतन पर मिटनेवालों का यही बाक़ी निशाँ होगा! —'हितैषी' की अमर पंक्तियाँ
3. सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है। —बिस्मिल

3. हाइकू[1] = त्रिशूल

हिन्दी-कविता में नव्यतम आयात जापान के हाइकू (हाइकु हायकु) या त्रिपंक्ति (क्रमशः 5-7-5 वर्ण तथा 5-5 पर तुक—यद्यपि तक अपरिहार्य नहीं) का हुआ है। यह सामयिक भी है, स्वागत-योग्य भी। भारत में जापान का यह 'गागर में सागर' छन्द रवीन्द्र लाए थे। अज्ञेय इत्यादि ने इसे हिन्दी में आजमाया। पर प्रभावी रूप में नहीं। संप्रति इसका अच्छा ज़ोर है। स्व. डॉ. सत्यभूषण वर्मा ने 'हाइकू' नामक लघु-मासिक नई दिल्ली से निकाला तथा सर्वश्री शम्भूदयालसिंह 'सुधाकार', शम्भुशरण द्विवेदी 'बन्धु', कमलेश भट्ट 'कमल' इत्यादि ऐसा ही 'त्रिशूल' रायबरेली से। प्रो. आदित्यप्रताप सिंह हिन्दी, जापानी, अंग्रेज़ी इत्यादि अनेक साहित्यों के मर्मी विद्वान् एवं स्फीत-गम्भीर हाइकूकार है। हिन्दी में जापानी हाइकू तथा कोरियाई सिजो (प्योंग) के वाहकों में वे अग्रणी विद्वान् एवं कवि हैं। हाइकू, सिजो, ताँका, सिन्यू इत्यादि छन्दों के साथ उनका नाम विधिवत् जुड़ने योग्य है। इन छन्दों में हाइकू को 'त्रिशूल' नामक राष्ट्रीय अभिधान प्रदानकर डॉ. शम्भुशरण द्विवेदी 'बन्धु' ने प्रशस्य कार्य किया है क्योंकि इसकी मार आधुनिक अर्थात् धातुगत होने के कारण दोहे से अधिक तीख़ी है, दूसरे 5-7-5 का अक्षरक्रम त्रिशूल के सम-उच्च सम के सर्वथा अनुरूप है। यद्यपि आदित्यप्रताप सिंह, शम्भुदयाल सिंह 'सुधाकर', कमलेश भट्ट 'कमल', सुरेश 'सिन्धु', रामप्रवेश सिंह 'नीर', सिद्धेश्वर, सतीशराज पुष्पकरणा, सत्यभूषण वर्मा इत्यादि अनेक कवि त्रिशूल-रचना कर रहे हैं, तथापि प्रकाशन की दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेखनीय सफलता मुख्यतः डॉ. भगवतशरण अग्रवाल, शम्भुशरण द्विवेदी 'बन्धु' तथा डॉ. रमेशकुमार त्रिपाठी और तदनन्तर गोविन्दनारायण मिश्र एवं रामाकान्त श्रीवास्तव को प्राप्त हुई है। डॉ. अग्रवाल के 'शाश्वत क्षितिज', 'टुकड़े-टुकड़े आकाश' 'अकह' (हाइकू भी हैं) एवं 'अर्घ्य' (1995 ई.), 'बन्धु' का 'त्रिशूल' (1995 ई.), रमाकान्त श्रीवास्तव के दो संग्रह भी, डॉ. रमेशकुमार त्रिपाठी कृत 'मन के बोल' (1989 ई.) में 240 तथा 'अनुभूति-कलश' (1995 ई.) में 1320 हाइकू संगृहीत हैं, जिनका अकल कला में जीवन की व्याप्ति अप्रतिम है। गोविन्दनारायण मिश्र का तुकान्त-संग्रह (1986 ई.) 'त्रिवेणी' भी प्रशस्य है। हिन्दी में यदि कोई हाइकु-पुरुष है तो वह डॉ. भगवतशरण अग्रवाल ही हैं। डॉ. अग्रवाल, डॉ. आदित्यप्रताप सिंह एवं डॉ. रमेशकुमार त्रिपाठी हिन्दी के प्रमुख हाइकुकार हैं। डॉ. अग्रवाल के 'अर्घ्य' में 65 हाइकुओं का 18 भारतीय तथा 7 विदेशी भाषाओं में अनुवाद एक विलक्षण प्रयोग है।[2] त्रिशूल की बहुआयामी शक्ति एवं जागरूक अधुनातनता के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं[3] :

1. मैंने तुमसे
कुछ बूँदे माँगी थीं
सागर नहीं।

2. कितना चाहा
दर्पण को मना लूँ—
सत्य न बोले।

(भगवतशरण अग्रवाल)

3. रश्मि ललाम
सूरज का प्रणाम
धरा के नाम।

4. शांति-प्रयास
धरती से आकाश
शस्त्र-विकास

(गोविन्दनारायण मिश्र)

5. टूटी हवेली
बीरान खंडहर
कोयल बोली।

(शम्भुदयाल सिंह 'सुधाकर')

6. आओ, बताओ
किस धर्म में लिखा
आग लगाओ।

(शम्भुशरण द्विवेदी 'बन्धु')

7. मीठा ज़हर
मरने भी न देती
ऐसी नज़र।

(सिद्धेश्वर)

8. फूल सी पली
ससुराल में बहू
फूस-सी जली।

(कमलेश भट्ट 'कमल')

---

[1] 'हाइकु' शुद्ध है, 'हायकु' भी चलता है, किन्तु 'हाइकु' प्रचलित है।

[2] पश्चिम में होता तो 'अर्घ्य' का नाम 'गिनीज़ बुक आफ़ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स' में आ जाता।

[3] 'त्रिशूल' (भूमि से वायु में आक्रमण करने वाला प्रक्षेपास्त्र) के प्रभाव अव्यर्थ हैं।

9. मुसुटी बोली
चुक-चुक-किटिर्र
कूदा बिलार।
10. बड़े मनई
देह बाँह सुपई
मन हरहाँ।

(डॉ. अमोल 'बटरोही')

11. पास तुम्हारे
निरस्त मनोरथ,
सिवा तुम्हारे।
12. दिसम्बर के
गुलाब-सी किशोर
की संवेदना

(डॉ. रमेशकुमार त्रिपाठी)

4. अगीत

1966 ई. में 'अगीत' की अवधारणा करनेवाले लखनऊ के प्रसिद्ध कवि डॉ. रंगनाथ मिश्र 'सत्य' ने 'अगीत' त्रैमासिक निकालकर तथा अखिल भारतीय अगीत परिषद् स्थापित कर कविता की इस अधुनातन उपविधा को चिन्तन-योग्य बना दिया। वीरेन्द्र निझावन कृत 'चाँद को चूमते अगीत' एवं 'अनकहे अगीत', काशीनरेश श्रीवास्तव 'अविराम' कृत 'अगीतांकुर', 'अगीतांजलि', एवं 'बोलते अगीत', मंजू सक्सेना 'विनोद' कृत 'महके फूल अगीत', श्रीकृष्ण तिवारी कृत 'खिड़की से झाँकते अगीत' जैसी कृतियों के प्रकाशन से इस उपविधा को बड़ा बल मिला, जिसके कारण डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, डॉ. देवकीनन्दन श्रीवास्तव 'नन्दन', डॉ. प्रभाकर माचवे, डॉ. विश्वंभरनाथ उपाध्याय इत्यादि विद्वानों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ।

अगीत गेयताविरोधी न होकर पिष्टपेषणविरोधी-चर्वितचर्वणविरोधी नव्य उपविधा है, जो अकवितावाद-विरोधी भी है, पाश्चात्य-अन्धानुकरणवाद-विरोधी भी। अगीत नवगीत की ईषत्-पारम्परिकता को भी अस्वीकार करते हुए नव्यतम सृजन-स्वच्छन्दता का प्रतिपादक है। अगीत के प्रवर्तक डॉ. रंगनाथ मिश्र 'सत्य' ने स्वीकार किया है कि यह ''खोज की ओर अग्रसर नवीनतम काव्य विधा है।'' इसमें सन्देह नहीं कि अधुनातन जीवन से जूझते हुए भी, भारत की माटी की महक से भरा अगीत हमारे हृदयों को छूने की शक्ति रखता है :

स्तम्भन एक और संबंध भीड़भाड़
ध्वंस की कातरों में मक्षिका नहा रही
दूध की पिटारों में ढला ढला लगता सब ओर
अपने में स्नेहसिक्त तिरछा भूगोल।

(रंगनाथ मिश्र 'सत्य')

घूर घूर देखता आईना आज....कल परसों।
परत परत सूख गई जीवन की सरसों।

(वीरेन्द्र निझावन)

5. लोकगीत

लोकगीत समूह-सृष्टि का प्रतीक है। जनता ही आदिकवि है। जन-मानस के विशद उद्‌गार लोकगीत कहलाते हैं : जीवनरस से सराबोर, पर्वरस से ऊभचूभ। स्वच्छन्दतावादी कविता के एक अग्रदूत, 'पथिक' के अमर कवि, 'हे प्रभो, आनन्ददाता, ज्ञान हमको दीजिए!' प्रार्थना के प्रणेता, हिन्दी में उर्दू-शायरी के आदि एवं अप्रतिम[1] वाहक पं. रामनरेश त्रिपाठी की बहुआयामी—बहुखंडीय 'कविता-कौमुदी' लोकज्योति-सुधा से भी आप्लावित है। रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी-लोकगीतों पर प्रस्थान-ग्रन्थकार के रूप में अमर रहेंगे। श्यामू संन्यासी, देवेन्द्र सत्यार्थी, शन्नोदेवी, महेश अवस्थी, विद्याबिन्दु सिंह, रामनारायण उपाध्याय इत्यादि ने भी इस दिशा में पर्याप्त कार्य किया है। डॉ. मेहश अवस्थी ने स्फीत 'अवधी-हज़ारा' (1000 लोकगीत) प्रस्तुत कर विलक्षण कार्य किया है। डॉ. विद्याबिन्दु सिंह ने अवधी-लोकगीतों के संकलन, विवेचन, विश्लेषण इत्यादि पर स्फीत कार्य तो किया ही है, मौलिक एवं मार्मिक अवधी-गीत भी रचे

---

[1] अयोध्याप्रसाद गोयलीय, प्रकाश पंडित इत्यादि केवल संकलनकर्त्ता हैं।

हैं (जो वस्तुतः भी लोकगीत हैं, तत्त्वतः भी)। आ. केशवप्रसाद मिश्र ने लोकगीत-शोधकार्य का 'प्रस्थान' कराया। तब से विभिन्न क्षेत्रों एवं जनपदों के लोकगीतों पर प्रभूत कार्य हो चुका है। अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं, यद्यपि अभी 'लोकगीतः समग्र जीवन का प्रतिनिधि-काव्यरूप', 'लोकगीतः एक समग्र जीवन-काव्य', 'लोकगीतों में विवाह' प्रभृति समग्र हिन्दीक्षेत्रपरक तुलनात्मक ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आए। क्षेत्रीयता के आयामों की व्यापकता को लोकगीत सर्वाधिक सफलतापूर्वक प्रमाणित करते हैं, क्योंकि राजस्थानी, खड़ीबोली, व्रज, बघेली, छत्तीसगढ़ी, बुन्देलखंडी, कन्नौजी, बैसवाड़ी (बैसवारी), अवधी, कुमाउँनी, भोजपुरी, मगही, मैथिली, अंगिका इत्यादि विभाषाओं के जन्म, विवाह, विदाई इत्यादि के गीत विस्मयकारी रूप में एक-जैसे हैं। लोकगीतों का व्यापक आयामी तुलनात्मक अध्ययन एवं आकलन स्फीत हिन्दी की प्रणम्य एकता को जाज्वल्यमान् करता है।

'हिन्दी के नए लोकगीतकार' तपस्यापूर्ण शोध का विषय है। बुन्देलखंड के महान् लोकगीतकार ईसुरी (ईश्वरी ठाकुर) का नाम अमर हो चुका है। महोबा के नाथूराम चौरसिया अच्छे लोककवि थे। हरिहरपुर (बस्ती) के राजा 'रंगपाल' के फाग (होलीगीत) ईसुरी के फागों से पूरी टक्कर लेते हैं। बस्ती के अब्बास अली 'बास' लोककवि भी हैं। 'ब्रजनन्दन' इत्यादि ब्रजभाषा एवं रमई काका इत्यादि अवधी (बैसवाड़ी) कवि विख्यात लोककवि रहे हैं। भोजपुरी के भिखारी ठाकुर, छोटकुन, भागीरथी इत्यादि तथा बैसवाड़ी (बैसवारी) के महान् आल्हा-गायक लल्लू वाजपेयी, कलदार सिंह इत्यादि आज के अनेक वास्तविक या तथाकथित 'प्रसिद्ध' कवियों से श्रेष्ठतर कवि हैं। बैसवाड़े (बैसवारे) के एक पुराने महान् आल्हा-गायक भिखारी पाँड़े को तो अब लोग भूल ही गए हैं। वे डकैत भी थे। एक बार आल्हा सुनाते-सुनाते थाने में सबको इन्द्रजाल-मुग्ध करते हुए गिरफ़्तारी से भाग निकले थे! खड़ीबोली में 'डमरू और वीणा' तथा 'जीत के गीतः व्यथा के स्वर' जैसे संग्रहों के कवि हरिनन्दसिंह 'सिपाही' लोककवि (जनकवि) ही थे।

विश्व-साहित्य में लोककाव्य का महत्त्व अपार है। रामकाव्य सहस्राब्दियों से लोकाधृत रहा है। होमर से सूर तक, खुसरो से कबीर तक, सैफो से मीराँ तक शत-शत अमर कवियों एवं कवयित्रियों ने लोकगीतों से भारी प्रेरणा प्राप्त की है। तुलसी ने 'रामललानहछू' (सोहर) में लोकगीत-रचना की है। प्रसाद ने भी अनेक सरस लोकगीत रचे थे जो प्रकाश में नहीं आ सके। दार्शनिक-प्रवर भारतरत्न डॉ. भगवानदास ने अपने गम्भीर ग्रन्थ 'पुरुषार्थ' में अनेक देशी-विदेशी लोकगीत उद्घृत भी किए हैं, प्रस्तुत भी, जिनमें एक चीनी-लोकगीत भी है—"जाग पिया, अब निसा सिरानी, तारा अस्त भए" इत्यादि का उद्गार एक ऐसी प्रिया का है जो प्रियतम को सैन्य-प्रस्थान हेतु जगा रही है! यहाँ "तारा अस्त भए" में अनेक अर्थ निकलते हैं, नियतिवाद का ध्यान जाता है। हमारे कवि यदि परकीयता के द्रुतधावन से यत्किंचित् अवकाश निकालकर लोकगीत-रचना में भी रुचि लें तो कविता पर भी कृपा करेंगे, जनता पर भी, और (सबसे बढ़कर) अपने-आप पर भी। अवधी, ब्रज, भोजपुरी, अंगिका, बुन्देली, बघेली, छत्तीसगढ़ी, डोगरी इत्यादि विभाषाओं में कविगण अच्छे लोकागीत भी रच रहे हैं। किन्तु फिल्मी गीतों के नक्कारख़ाने में वे तूती की आवाज़ बनकर रह जाते हैं। बच्चन ने कुछ लोकगीत रचे हैं, कुछ लोकगीत 'पचाए' हैं। चलचित्र-संगीतकारों में अग्रणी नौशाद[1] एवं गहनतर शचिन् देव बर्मन (संगीतकारों में राजकुमार) लोकगीतों की प्रेरणा से ही दीर्घकाल एक आदर प्राप्त करते रहेंगे। यह हर्ष का विषय है कि चलचित्र (तत्त्वतः छलचित्र होते हुए भी) लोकगीत एवं लोकसंगीत को भारी महत्त्व प्रदान करता आया है, किन्तु यह खेद का विषय है कि अनेक अवसरों पर वह इन दोनों की छवियों को विकृत करने में भी नहीं चूका : "जिस पत्तल में खाओ उसी में छेद करो"! लोकगीत की शुद्धता पर आघात विगर्हणीय है। उसे ज्यों-का-त्यों प्रस्तुत किया जाना चाहिए। कवि अपने लोकगीत चाहे जिस रूप में रचे किन्तु विख्यात लोकगीतों से बलात्कार न करे!

लोकगीत के महान् काव्यात्मक-गौरवनिष्पन्न कुछ उद्धरण प्रस्तुत करता हूँ :

1. बारी मोरी बैस, राजा छतरपुर छाय गए।
अरे बागा पुराने ह्वै गए, पुराने ह्वै गए,
टूटन लागी डार, राजा छतरपुर छाय गए।
अरे कुवनाँ पुराने ह्वै गए, पुराने ह्वै गए,
हालन लागे मरुवा, राजा छतरपुर छाय गए।
अरे महला पुराने ह्वै गए, पुराने ह्वै गए,

---

[1] एक 'नाशाद' भी हुए हैं।

सरकन लागी ईंट, राजा छतरपुर छाय गए।
अरे रनियाँ पुरानी ह्वै गई, पुरानी ह्वै गई,
लचकन लागी बैस, राजा छतरपुर छाय गए।
बारी मोरी बैस, राजा छतरपुर छाय गए।[1]

2. औचक आय जोबनवाँ मारेसि बान,
महुवा रोवै ठाढ़, आम बौरान।[2]

3. बिरहिनि दिन आम लखाने,
बसंत नेराने![3]

आ. शुक्ल ने दृष्टान्त-पुष्ट गीतोदाहरण के अभाव में 'जायसी-ग्रन्थावली' की अमर भूमिका में गद्योदाहरण देकर जो बिन्दु स्पष्ट करना चाहा है वह "बारी मोरी बैस" लोकगीत में नितान्त स्पष्ट हो जाता है (बाह्य निदर्शनों द्वारा आन्तरिक व्यथा की अभिव्यक्ति)। यौवन के अचानक आकर विषाक्त-बाणप्रहार से रोदन एवं मादन की प्रतिक्रियाएँ अतीव कलात्मक है—बिम्बनिष्पन्न भी। विरहिणी को अब दिन अगम होते दीखने लगे; कारण, बसन्त निकट था (अभी आया नहीं)! ऐसे सृजन कालिदास का स्मरण करा देते हैं! खेद है कि जीवन की व्यापक (जनपरक) रसात्मकता से अनभिज्ञ होने के कारण कतिपय नागर[4] आलोचक लोकगीतों पर न्यायसंगत विचार नहीं प्रस्तुत कर सके। किन्तु कहीं-कहीं 'आल्हा' को विश्वविद्यालय-पाठ्यक्रम में प्रतिष्ठा देकर, कहीं-कहीं लोकगीतों को विश्वविद्यालय-पाठ्यक्रम में स्थान देकर, कहीं-कहीं विभाषा-नवकाव्य को विश्वविद्यालय की पाठ्यपुस्तक बनाकर तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा लोककथाओं के संकलनकर्ताओं को सम्मानित कर अच्छे कार्य भी किए गए हैं।[5] उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश इत्यादि की सरकारें विभाषा-मौलिक लेखन को पुरस्कृत भी कर रही हैं। लोकगीत-रचनाकारों को पुरस्कृत करने की योजनाएँ चलनी चाहिए।

मुझे आश्चर्य है कि बुन्देलखंड तथा कानपुर, उन्नाव, रायबरेली, लखनऊ इत्यादि में प्रचलित होलीगीत 'फाग'[6] (पूरब में 'फगुवा') पर कोई तुलनात्मक शोधग्रन्थ या स्वतन्त्र आलोचना-ग्रन्थ प्रकाश में नहीं आया!

मैं 'मैडिया' कहता हूँ। किन्तु विश्वविद्यालयों द्वारा फाग की उपेक्षा उचित नहीं क्योंकि वहाँ इक्के-दुक्के विद्वान्, कम-से-कम भावनाशील (भावनासम्पन्न तक) नर-नारी मिल जाते हैं। जादुई इकताला, सरस दुताला, रोचक दहंकवा इत्यादि रूपों में निष्पन्न फाग को साहित्य एवं संगीत में न्याय मिलना ही चाहिए।

6. शोकगीत

प्रबन्धकाव्य के अंग एवं अन्य विधाओं के प्रासंगिक करुण-प्रकरणों से भिन्न, सर्वतः स्वतन्त्र एवं तात्कालिक मृत्युगीत ही शोकगीत कहे जा सकते हैं। शोकगीत का गेय होना आज के युग में अपिरहार्य नहीं है। साहित्य में शोकगीत एक विधा के रूप में मान्य होने योग्य है। हिन्दी में इस अचर्चित विधा पर डॉ. पवनकुमार ने 'शोकगीत और हिन्दी-शोकगीत'[7] शीर्षक 'प्रस्थान'- निबन्ध लिखकर एक चिरस्मरणीय एवं प्रेरक कार्य किया है। हिन्दी-साहित्य में शोकगीत का वह स्वतन्त्र एवं उन्नत रूप नहीं दिखाई देता जो अंग्रेज़ी (एलेजी) एवं उर्दू (मर्सिया) में, क्योंकि हिन्दी उस हिन्द (भारत) की प्रतिनिधि है जिसमें आत्मा की अमरता के सिद्धान्त के कारण मृत्यु को बहुत अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता। किन्तु उसे उपेक्षणीय भी नहीं माना जा सकता। यदि हिन्दी-शोकगीत का उद्भव देखा जाए तो वह पुनरुत्थानकाल के प्रसिद्ध कवि हरिराम व्यास की अपने गुरु एवं मित्र हित हरिवंश के चिरवियोग पर रचित मर्मस्पर्शी

---

[1] इस मार्मिक लोकगीत को मैंने पत्नी राजकिशोरी मिश्र से सुना तथा 'खड़ीबोली कविता में विरह-वर्णन' (1964 ई.) शीर्षक शोधग्रन्थ में भी प्रयुक्त किया।

[2] शन्नोदेवी ने 'हिन्दी-लोकगीत' में इसकी मार्मिक व्याख्या की है।

[3] बाल्यकाल से याद ये पंक्तियाँ छोटकुन की हैं, यह रसज्ञ डॉ. रामदरश मिश्र से ज्ञात हुआ।

[4] शब्दतः 'नागर' (नगाइच, नागपाल, नाग, नाग-चौधरी इत्यादि भी)।

[5] उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ के भूतपूर्व उपाध्यक्ष स्व. डॉ. भक्तदर्शन के काल (1987-88 ई.) में स्मरणीयतः।

[6] फाल्गुनगीत।

[7] त्रैमासिक 'अनुमेहा' (सं. डॉ. रजनीकान्त लहरी-उन्नाव) के मार्च, 1989 एवं जून, 1989 अंकों में।

आत्मव्यथा में व्यक्त हुआ है। बीरबल के अवसान पर अकबर ने केवल एक दोहा कहा था, जो मार्मिक अवश्य है किन्तु अतिसंक्षिप्त उद्‌गार मात्र है। केशवदास में बीरबल के वीरगति पाने पर बहुत ही उत्कृष्ट छन्द-रचना की थी किन्तु वह अत्यधिक अलंकृत है। हरिराम व्यास का शोकगीत है :

हुतो रस रसिकन को आधार!
बिन हरिबंसहि सरस रीति को कापै चलिहै भार?
को राधा दुलरावै, गावै, वचन सुनावै चार?
बृंदाबन की सहज माधुरी कहिहै कौन उदार?
पदरचना अब कापै ह्वैहै? निरस भयो संसार!
बड़ो अभाग अनन्य सभा के उठिगो ठाट सिंगार!!
जिन बिन दिन-छिन जुग-सम बीतत सहज रूप-आगार।
व्यास एक कुल कुमुद चंद बिनु उडुगन जूठी थार।।

यदि कोई चाहे तो हरिराम व्यास को हिन्दी-शोकगीत का आदिकवि कह सकता है, क्योंकि अमीर खुसरो का ''गोरी सोवै सेज पर'' इत्यादि शोकगीत के स्थान पर रहस्यवादी उद्‌गार है। शोकगीत वस्तुतः लौकिक है, रहस्यवाद में परालौकिकता का प्राधान्य हो सकता है। हरिराम व्यास के अनन्तर, सुखदेव मिश्र ने भगवंतराय खींची के अवसान पर शोकगीत रचा, जो उत्कृष्ट भी है। आधुनिककाल में इस विधा के सशक्त दर्शन भारतेन्दु के निधन के अनन्तर होते हैं, जिसके असमय कालकवलित होने पर श्रीधर पाठक इत्यादि अनेकानेक कवियों ने शोकगीत लिखे थे। गोखले के निधन (1915 ई.) पर मन्नन द्विवेदी गजपुरी, तिलक के निधन (1920 ई.) पर रामनरेश त्रिपाठी, नवीन के निधन (1960 ई.) पर मैथिलीशरण गुप्त ने मार्मिक शोकगीत रचे थे। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी के निधन (1938 ई.) पर शताधिक कवियों ने शोकगीत लिखे थे जिनमें सनेही का मर्मभरित उद्‌गार अपनी तात्कालिकता गुरुभक्ति इत्यादि कारणों से सर्वोत्तम है। हिन्दी-शोकगीत के सर्वश्रेष्ठ आलंबन आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ही हैं। गाँधी के निधन पर भी अनेकानेक कवियों ने अपने उद्‌गार व्यक्त किए थे। प्रायः नेताओं पर रचित कविताओं का महत्त्व साधारण रह जाता है; एकाध शोकगीत अपवाद हो सकते हैं। नेताओं पर लिखित शोकगीतों में केवल व्हिट्‌मैन की ''ह्वेन लिलैक्स लास्ट इन द डोरयार्ड ब्लूम्ड'' एवं ''ओह कैप्टेन, माई कैप्टेन'' शीर्षक कविताएँ गौरवशाली हैं। शोकगीतों का सर्वाधिक हृदयस्पर्शी रूप तब प्राप्त होता है जब स्वजन के चिरवियोग पर अश्रुभरित कविता लिखी जाती है। निराला की 'सरोज-स्मृति' हिन्दी-साहित्य की सर्वोत्तम शोक-कविता है जो उन्होंने पुत्री के निधन पर लिखी थी। 'सरोज-स्मृति' अपनी विधा की अन्य रचनाओं से सरलतापूर्वक टक्कर ले सकती है। बच्चन ने अपनी प्रथम पत्नी श्यामा के क्षयजनित अवसान पर अनेक छोटे-छोटे शोकगीत लिखे थे जो 'निशा-निमन्त्रण', 'आकुल अन्तर', 'व्याकुल विश्व' और 'एकान्त संगीत' में संगृहीत हैं। राजेश दयालु 'राजेश', शत्रुघ्नलाल शुक्ल, रमाकान्त श्रीवास्तव, मुचकुन्द शर्मा, प्रकाश द्विवेदी इत्यादि ने पत्नी-निधन-सन्दर्भी शोककाव्य रचे हैं। 25 मई, 1994 को पत्नी राजकिशोरी के अवसान पर मैंने सप्तसर्गीय खंडकाव्य 'स्वर्गता' लिखा जो हिन्दी का प्रथम शोककाव्य या शोकप्रबन्ध है। सूर्यनारायण दुबे 'सूरज' (रायबरेली) ने पुत्रवियोग पर 'फ्रेंडशिप विद सॉरो' एवं 'दुःख से मैत्री' (अंग्रेज़ी-हिन्दी एक साथ) काव्य रचा है, प्राणमोहन 'प्राण' (बौंसी, बाँका) ने पुत्रवियोग पर हृदयविदारक कविता लिखी है। अतीया परवीन (रायबरेली) ने पतिवियोग पर मार्मिक कविताएँ लिखी हैं। हिन्दी में मित्रों के निधन पर शोकगीत देखने में नहीं आए। अंग्रेज़ी में टेनीसन के 'इन मेमोरियम' सदृश विस्तृत और मार्मिक शोकगीत के दर्शन हिन्दी में नहीं होते। उर्दू के 'यादगारे ग़ालिब' जैसे स्फीत शोकगीत भी हिन्दी में नहीं प्राप्त। किन्तु उसे 'सरोज-स्मृति', 'हा द्विवेदी जी!'[1] जैसे शोकगीत प्राप्त हैं। हर्ष का विषय है कि रानीशंकर मिश्र ने इस विषय पर पीएच. डी. शोधकार्य किया है।

7. गद्यगीत

'गीतांजलि' (अंग्रेज़ी—जिस पर 1913 ई. में नोबेल-प्राइज़ मिला) की महान्‌ ख्याति के कारण हिन्दी में गद्यगीत विधा का उद्‌भव एवं विकास हुआ। राय कृष्णदास कृत 'साधना' को 'हिन्दी-साहित्य की गीतांजलि' कहा जा सकता है। उनकी 'प्रवाल' एवं 'छायापथ' कृतियाँ भी उत्कृष्ट हैं। राय कृष्णदास हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ गद्यगीतकार हैं। उनके बाद वियोगहरि का नाम लिया जा सकता है, जिनकी

---

[1] सनेही।

'भावना' एवं अन्तर्नाद' कृतियाँ स्मरणीय हैं। माखनलाल चतुर्वेदी कृत 'साहित्य-देवता', चतुरसेन शास्त्री कृत 'अन्तस्तल', भँवरमल सिन्धी कृत 'भावना' गद्यगीत विधा की अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। दिनेशनन्दिनी डालमिया ने अनेक गद्यगीतसंग्रह रचे हैं। स्व. डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' (एम.ए., पी-एच.डी., डी.लिट्.–आदर्शवादी युग के प्रख्यात आचार्य पद्मसिंह शर्मा से नितान्त भिन्न; खेद है कि अनेक छोटे-बड़े लेखक दोनों के गड्डमगड्ड की भूल कर चुके हैं) ने 'हिन्दी-गद्यकाव्य' शीर्षक प्रबन्ध (पीएच. डी.) लिखकर इस विधा पर अच्छा प्रकाश डाला है। रामप्रसाद 'रावी' एवं दिनेशनन्दिनी डालमिया ने गद्यगीत-परम्परा को अनेक वर्षों तक गतिशील रखा। दिनेशनान्दिनी जी की अनुजा राकेशनन्दिनी गुप्त ने 'मधुबन में बाँसुरी' (1997 ई.) के द्वारा विद्या को जीवन्त बनाए रखा है। वे कवयित्री भी हैं। स्वामी मुक्तानन्द परमहंस कृत 'मुक्तेश्वरी' एवं उनके द्वारा अनूदित 'लल्लेश्वरी' (कश्मीरी-कविता की जननी सन्त-कवयित्री जिसे 'लल्ल' कहते हैं) में भी उच्च कोटि की गद्यगीत-रचना दृग्गत होती है।

जिस अतिभावुकता से गद्यगीत विधा उद्भूत एवं विकसित हुई थी, उसके युग के समापन के पश्चात् विधा को जीवन्त बनाए रखना कठिन था; अतः यह विधा अतीतगत-सी हो गई है, भले ही लघुकथा में यत्रतत्र उसके अवशेष दृग्गत हो जाते हों।

गद्यगीत का शरीर गद्य को होता है, आत्मा गीत की। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी कृत 'कवियों की उर्मिला-विषयक उदासीनता' जैसे कई भावात्मक-निबन्ध गद्यगीत-शैली के सुन्दर निदर्शन हैं। उनसे पूर्व, बालकृष्ण भट्ट कृत 'आँसू' एवं 'चन्द्रोदय' शीर्षक भावात्मक-निवन्ध उन्हें हिन्दी-गद्यगीत का पूर्वपुरुष तो सिद्ध कर सकते हैं किन्तु उन पर विश्व-साहित्य के सर्वश्रेष्ठ गद्यगीतकार 'कादम्बरी'-प्रेणता बाण भट्ट का प्रभाव इतना अधिक हो गया है कि हिन्दीपन ही खो गया है। प्रसाद के नाटकों में गद्यगीत के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। उनकी 'आकाशदीप', 'पुरस्कार', 'देवरथ', 'ममता' प्रभृति कहानियों में भी गद्यगीत-शैली के दर्शन होते हैं। महादेवी वर्मा कृत 'अतीत के चलचित्र' के संस्मरणात्मक-रेखाचित्रों में गद्यगीत-शैली की मनोहारी छटा दिखलाई पड़ती है। कालान्तर में उन्होंने इसे त्याग-सा दिया। 'पथ के साथी' में यह कम दीखती है। पत्रकारिता के सुमेरु अमर हुतात्मा गणेशशंकर विद्यार्थी ने राणा प्रताप एवं क्रान्तिकारियों पर लिखे भावात्मक-निबन्धों में तेजस्वितापूर्ण गद्यगीत-शैली का अप्रतिम प्रयोग किया है। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' का गद्य बहुत बार उत्कृष्ट गद्यगीत बनकर प्रकट होता है; उनका हैदराबाद-राज्य (संप्रति आन्ध्र एवं महाराष्ट्र में भाषा के अनुसार विलीन) के 'शहीद-पत्रकार शोएबुल्ला ख़ान' पर जो भावात्मक-निबन्ध है वह उत्तम गद्यगीत-शैली का परिचायक है। स्व. महाराजकुमार रघुवीरसिंह के 'अवशेष' के 'फ़तहपुर सीकरी', 'ताज' प्रभृति भावात्मक-निबन्ध भी गद्यगीत-शैली से ऊभचूभ हैं।

8. एकांकी

आजकल मिनी-युग चल रहा हैः मिनी नेता, मिनी-राष्ट्रपति, मिनी-प्रधानमन्त्री, मिनी राज्यपाल, मिनी-मुख्यमन्त्री, मिनी-कवि, मिनी-नाट्यकार, मिनी-कथाकार, मिनी-आलोचक, मिनी-गायक, मिनी-चित्रकार इत्यादि ने भारत को, दो विभाजनों के बाद भी, मिनी-राष्ट्र (सवर्ण, पिछड़ी जातियाँ, अनुसूचित जातियाँ, आदिवासी-जातियाँ, अल्पसंख्यक इत्यादि स्वयं में एक-एक राष्ट्र बना दिए गए हैं, प्रत्येक राज्य तो ख़ैर एक-एक राष्ट्र बन ही गया है) की गरिमा प्रदान कर दी है, क्योंकि इसी से उनकी 'मिनी ('मीन'?) छवि' खिल सकती है। मिनी-कार, मिनी-मोटरसाइकिल, मिनी-स्कर्ट इत्यादि से ज़ाहिर है कि संसार भी मिनी-वर्ल्ड बनने को उतावला है! साहित्य में भी मिनी-विधाएँ ज़ोर मार रही हैं। एकांकी मिनी-नाटक है, लघुकथा मिनी-कहानी है, हाइकू (हाइकु) मिनी-कविता है। विधाओं और उपविधाओं की बाढ़ का कारण अहं में अपूर्व वृद्धि है। किन्तु एकांकी का विधागत स्वतन्त्र रूप अत्यन्त परिपुष्ट हो चुका है। वैसे तो भारतेन्दु कृत 'अन्धेर नगरी' एवं प्रसाद कृत 'एक घूँट' (1926 ई.) भी एकांकी माने जा सकते हैं, 'बादल की मृत्यु' (1930 ई.) के कारण डॉ. रामकुमार वर्मा का एकांकी का प्रवर्तक माना जाता है, किन्तु कथ्य एवं कला की दृष्टि से अधुनातन एकांकी के वास्तविक जन्मदाता भुवनेश्वर हैं जिनका 'कारवाँ' शीर्षक संग्रह (1936 ई.[1]) ऐतिहासिक उपलब्धि है। 'कारवाँ' के 'शैतान', प्रतिभा का विवाह', 'लाटरी' इत्यादि एकांकी स्पष्ट करते हैं कि उन पर मार्क्स का भी प्रभाव पड़ा है, फ़्रायड का भी। उनके द्वारा क्रान्ति और कान्ति का जो समन्वय किया गया है, वह चुभते व्यंग्य से भी ऊभचूभ है। 'मृत्यु', 'ऊसर' इत्यादि एकांकी हों या अन्य, भुवनेश्वर

---

1. 1936 ई. में सेठ गोविन्ददास एवं उपेन्द्रनाथ 'अश्क़' ने एकांकी-लेखन आरम्भ किया। 1936 ई. 'कामायनी' एवं 'गोदान' का महान् प्रकाशन-वर्ष है, 'राम की शक्तिपूजा' का अमर वर्ष है; किन्तु एकांकी का स्वर्ण-वर्ष भी है। कहीं-कहीं 'कारवाँ' का प्रकाशन-वर्ष 1935 ई. लिखा मिलता है।

स्वस्थ-जीवनवाद के चितेरे न होकर जीवनविभीषिज्ञकावाद के ही चितेरे अधिक लगते हैं। उनका 'स्ट्राइक' हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ एकांकी माना जा सकता है, जिसमें जीवन की व्यावसायिकता में पति-पत्नी सम्बन्ध की टूटन पर बड़ा ही चुभता व्यंग्य किया गया है, जिसका बीभत्स एवं भयानक रूप मोहन 'राकेश' के 'आधे-अधूरे' एवं आदर्श-समन्वित रूप विष्णु प्रभाकर के 'टूटते परिवेश' में प्राप्त होता है। विष्णु प्रभाकर का 'संस्कार और भावना' एकांकी भी इस समस्या पर ही आधृत है।

डॉ. रामकुमार वर्मा आधुनिक एकांकी के जन्मदाताओं में हैं। वर्माजी का 'बादल की मृत्यु' (1930 ई.) इसका प्रमाण है। उन्होंने अनेक सफल पौराणिक एवं ऐतिहासिक एकांकी लिखे हैं। सेठ गोविन्ददास, सद्गुरुशरण अवस्थी, भगवतीचरण वर्मा, विनोद रस्तोगी, लक्ष्मीनारायण लाल इत्यादि ने भी सफल एकांकी लिखे हैं। गुण एवं परिमाण की दृष्टि से भुवनेश्वर, जगदीशचन्द्र माथुर, उपेन्द्रनाथ 'अश्क़', उदयशंकर भट्ट एवं विष्णु प्रभाकर हिन्दी के उत्कृष्ट एकांकीकार हैं।

हिन्दी-एकांकी आरम्भ से ही यथार्थप्रधान रहा है जिसमें नए भारत की मिनी-संक्रान्ति की पारिवारिक टूटन (भुवनेश्वरः 'स्ट्राइक', उपेन्द्रनाथ 'अश्क़' 'सूखी डाली', विष्णु प्रभाकरः संस्कार और भावना' इत्यादि) का चित्रण बहुत ही गम्भीर रूप में प्राप्त होता है। विवाह, नेता-पाखंड, शोषण, प्रपीड़न इत्यादि बिन्दु भी अच्छे उभारे गए हैं। सीता, पृथ्वीराज चौहान (रामकुमार वर्मा कृत 'राजरानी सीता', 'पृथ्वीराज की आँखें'), शिवाजी (सेठ गोविन्ददास कृत 'शिवाजी का सच्चा स्वरूप') इत्यादि को भी सन्तोषजनक रूप से उरेहा गया है। 'रीढ़ की हड्डी' (जगदीशचन्द्र माथुर) एवं 'सबसे बड़ा आदमी' (भगवतीचरण वर्मा) जैसे व्यंग्य एवं हास्य से ओतप्रोत एकांकी भी सर्वथा सफल हैं। 'एक दिन' (लक्ष्मीनारायण मिश्र) में विवाह की गरिमा का भव्य निरूपण प्राप्त होता है। 'भोर का तारा' (जगदीशचन्द्र माथुर) जैसे भावात्मक प्रयोग भी किए गए हैं। हिन्दी साहित्य की एकांकी विधा ने सात दशकों में जो विकास किया है, वह अतीव सन्तोषजनक है।

9. लघुकथा

बौद्धिककाल विस्तारवादी नहीं हो सकता। उसमें भी, यथार्थवादी युग संक्षेपवादी ही हो सकता है। कविता में हाइकू या त्रिशूल, नाटक में एकांकी, उपन्यास में उपन्यासिका[1] इत्यादि इस कथन के प्रमाण हैं। अतः कहानी या कथा से लघुकथा का विकास सामयिक भी है, प्रशस्य भी। वैसे, लघुकथा का आदिरूप उपनिषद् में देखा जा सकता है। ईसप तो महान् लघुकथाकार थे ही। किन्तु अपने नव्य यथार्थ में लघुकथा एक नूतन विधा है। (वैसे, माधवप्रसाद मिश्र, माधवराव सप्रे, गुलेरी, प्रसाद प्रभृति को इससे जोड़ा या मिलाया जा सकता है) हिन्दी-तात्कालिकी (रिपोर्ताज़) के जनक कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' हिन्दी-लघुकथा के जनक भी हैं, रामप्रसाद रावी, बैकुंठनाथ मेहरोत्रा, जगदीशचन्द्र मिश्र प्रभृति नाम भी 'अथ' के 'गथ' हैं। रामप्रसाद 'रावी' ने गद्यगीत के साथ लघुकथा को भी सम्पन्न किया। वैद्य शरदकुमार मिश्र 'शरद', शंकर पुणताम्बेकर, डॉ. स्वर्णकिरण, जगदीश कश्यप (सं. 'मिनीयुग'), विक्रम सोनी (सं. 'लघुआघात'), सतीशराज पुष्करणा (सं. 'दिशा'), राजेन्द्रमोहन त्रिवेदी 'बन्धु'[2] (सं. 'साहित्यकार'), सतीश राठी (सं. 'क्षितिज') इत्यादि लघुकथाकारों ने अच्छा सृजन किया है। अनेक ग्रन्थ तथा पत्रिका-विशेषांक निकल चुके हैं, जिनमें 'सदाकांक्षा' प्र. स. मौलाना मोहम्मद फारूक़ खाँ का 2005 ई. अंक उल्लेखनीय है। मैंने भी लघुकथाएँ लिखी हैं जिन्हें डॉ. पुष्करणा ने पसन्द किया है तथा जो 'मिस्टर यूसुफ़ का प्रेत' (1994 ई.) शीर्षक कहानी-लघुकथा संग्रह में संगृहीत हैं। इस विधा में सम्भावनाएँ विद्यमान हैं क्योंकि इसमें शक्ति भी है, आकर्षण भी। उपन्यास एक पूर्ण-परिस्फुट चलचित्र है, कहानी अस्मितापूर्ण लघुचित्र, लघुकथा अपने-आप में पूर्ण नन्हीं-सी झलकी। लघुकथा न कहानी का संक्षेपण है, न घटना का पल्लवन। लघुकथा कहानी भी नहीं है, घटना भी नहीं—वह स्फीत षट्कोण उपन्यास, विशदाकारी-कोण कहानी, अनिश्चिताकारी घटना से भिन्न एक ज्योतिरेखा है जिसका अपना व्यक्तित्व है। लघुकथा के व्यक्तित्व की रक्षा तभी हो सकती है जब उसे कहानीपन से भी बचाया जाए, घटनापन से भी। उसका आधार चरित्रचित्रण या परिस्थिति-चित्रण ही हो सकता है, कोरा कथानक या कोरा घटित मात्र नहीं। उसके नए आयाम (ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक प्रभृति) भी किए जाने चाहिए। एक उदाहरण प्रस्तुत है :

---

[1] नॉवेलेट। मैं इस शब्द का प्रयोग चाहता हूँ क्योंकि 'लघु-उपन्यास' भारी-भरकम भी है, कर्कश भी।

[2] श्री राजेन्द्रमोहन त्रिवेदी 'बन्धु' ने 'ज़िन्दगी के आसपास' (1989 ई.) लघुकथासंग्रह में 124 लघुकथाकारों की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। कई अन्य संग्रह भी निकले हैं, कोश भी।

जन्मदिन

—''सुनो! अपना गोलू आज एक साल का हो गया है।'' गोलू के मुँह में सूखा स्तन ठूँसते हुए सुगना ने अपने चौकीदार पति से कहा।

—''तुम्हें कैसे याद रह गया इसका जन्मदिन?'' चौकीदार का प्रश्न था।

—''उसी दिन तो साहब की अल्शेसियन कुतिया ने यह पिल्ला जना था जिसका जन्मदिन कोठी में धूमधाम से मनाया जा रहा है।'' ठंडी साँस लेते हुए सुगना बोली।

—सतीश राठी

इधर, 2005 ई. में, सुनने में आया है कि लघुकथाकार कृष्णानन्द 'कृष्ण' हिन्दी-लघुकथा का इतिहास लिख रहे हैं।

10. आत्मकथा

अहं मानव की सहज मूलवृत्ति है, जो साहित्य के प्राचीन एवं मध्य कालों में परोक्षतः एवं आधुनिक काल में व्यक्तिवाद के अभ्युदय के साथ स्पष्टतः व्यक्त हो रहा है। हिन्दी-साहित्य में तुलसी की आत्मपरक कविता में दास्यभक्ति-निष्पन्न आत्मकथात्मक बिन्दु प्राप्त होते हैं, गोविन्दसिंह के आत्मकथात्मक 'विचित्र' नाटक में पूर्ववर्ती गुरुओं (जिनमें छह उनके पूर्वज थे—सोढी खत्री तथा शेष अन्य खत्री, क्योंकि गुरुपद केवल खत्रियों में परिसीमित रहा) से संपृक्त स्वयं उनका वृत्त भी, बनारसीदास (जैन-कवि) कृत 'अर्द्ध-कथानक' तो सुस्पष्टतः आत्मकथाकाव्य है ही। विद्यापति, कबीर, नानक, जायसी, केशव, सुखदेव, पद्माकर, प्रसाद, निराला इत्यादि कवियों की आत्मपरक कविता में भी आत्मकथा-बिन्दु उपलब्ध हैं। 'हिन्दी की आत्मपरक कविता में आत्मकथा-बिन्दु' शोध का उत्तम विषय है। संयोगात् हिन्दी की प्रथम आत्मकथा जौनपुर के जौहरी जैन-कवि बनारसीदास (जन्म 1586 ई.) कृत 'अर्द्ध-कथानक' (1641 ई. तक का वृत्त) कविता में ही निबद्ध है। किन्तु संप्रति आत्मकथा गद्य-साहित्य की वह विधा है जिसमें व्यवस्थित रूप से स्वयं को ही विवृत किया जाता है। यह आत्मकथाकार पर निर्भर है कि वह किन वृत्तों को प्रकाशन के योग्य मानता है। रूसो (कॉन्फ़ेशंस) एवं उनके अनुकरण में टॉल्स्टॉय (चाइल्डहुड, ब्वॉयहुड एंड यूथ) ने दौर्बल्य-विवृति को प्रकाशन-योग्य माना है, जिनका पूर्ण अनुकरण गाँधी (माइ एक्स्पेरिमेन्ट्स विद ट्रूथ) एवं आंशिक अनुकरण रवीन्द्र (माइ ब्वॉयहुड डेज) ने किया है। किन्तु अन्य अनेक आत्मकथाकार दौर्बल्य-विवृति के प्रकाशन के योग्य नहीं मानते। नेहरू (ऑटोबायोग्राफी) इत्यादि ने अस्मिता को वरीयता प्रदान की है। व्यक्तिवादी पश्चिम में प्रायः प्रत्येक विशिष्ट व्यक्ति विशेषतः नेता आत्मकथा विधा के किसी-न-किसी रूप पर हाथ ज़रूर आज़माता है। देखादेखी भारत के कई नेताओं ने भी आत्मकथाएँ लिखी हैं। किन्तु खेद है कि भारत के अनेक नेताओं ने विश्वख्याति-व्यामोहवश अंग्रेज़ी का दामन थामा है।

हिन्दी-गद्य की आत्मकथा विधा में दयानन्द कृत 'आत्मचरित' को ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं आ. श्यामसुन्दरदास ने संक्षिप्त आत्मकथाएँ लिखी हैं किन्तु पूरे ज़ोर-शोर के साथ नहीं, पूरे उत्साह से नहीं; अतः उनमें विधा की वास्तविक छवि नहीं खिल पाई। किन्तु पं. देवीदत्त शुक्ल कृत 'सम्पादक के पच्चीस वर्ष' एक बेलाग-बेबाक आत्मकथा है। डॉ. गुलाबराय कृत 'मेरी असफलताएँ' एवं 'ठलुवा क्लब' आत्मकथात्मक होते हुए भी रोचक अनौपचारिक निबन्ध-ग्रन्थ या ललितनिबन्ध-ग्रन्थ ही माने जाएँगे क्योंकि उनमें 'आत्म' तत्त्व गौण है, 'कथा' तत्त्व (घटना-प्रस्तुति एवं विचाराभिव्यक्ति) प्रधान। डॉ. नगेन्द्र ने (बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्ध-कथानक' शीर्षक की तर्ज़ पर) 'अर्द्धकथा' शीर्षक आत्मकथा लिखी है!

आत्मकथा की विधा का समग्र स्वरूप डॉ. राजेन्द्र प्रसाद की 'आत्मकथा' में विवृत हुआ है, जिसमें व्यक्ति भी साकार है, समाज भी। राष्ट्रीय महत्त्व के नेताओं में से केवल राजेन्द्रबाबू ने ही मौलिक हिन्दी-आत्मकथा लिखी है, क्योंकि हिन्दी-क्षेत्र के राष्ट्रीय नेताओं में मदनमोहन मालवीय, पुरुषोत्तमदास टंडन इत्यादि ने आत्मकथाएँ लिखी नहीं, मोतीलाल नेहरू लेखक न थे, जवाहरलाल नेहरू अंग्रेज़ी में लिखते थे। वस्तुपरकता, गहनता, प्रेरणा एवं राष्ट्रेतिहास-विवृति की दृष्टियों से राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा हिन्दी की विश्वस्तरीय आत्मकथा है। रामप्रसाद 'बिस्मिल' की (बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित) आत्मकथा आकार-लघुता में भी बलिदान-गुरुता से निष्पन्न अमर कृति है, जो फाँसी पर लटकने से ठीक दो दिन पहले समाप्त की गई थी। यद्यपि सुमित्रानन्दन पन्त कृत 'साठ वर्षः एक रेखांकन'

शीर्षक से विधा के साथ न्याय करती नहीं दीखती, तथापि एक प्रशान्त किन्तु कलामय आत्मकथा है। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की 'अपनी ख़बर' शीर्षक आत्मकथा सपाटबयानी और धाकड़पन में लासानी है। बच्चन ने 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ', 'नीड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर' एवं 'दशद्वार से सोपान तक' चार ग्रन्थ-खंडों में स्फीत आत्मकथा लिखकर विधा को विशद-स्तर तक पहुँचाया है—उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि स्फीत हिन्दी आत्मकथा को भी लाखों पाठक प्राप्त हो सकते हैं। बच्चन ने हिन्दी-आत्मकथा को गौरव एवं लोकप्रियता प्रदान की है। प्रो. बलराज मधोक कृत बहुखंडीय 'ज़िन्दगी का सफ़र' एक श्रेष्ठ, मार्मिक एवं राष्ट्रीय इतिहास से सम्पन्न आत्मकथा है। स्व. डॉ. भोलानाथ तिवारी ('पर हार नहीं मानी'), स्व. अमृतलाल नागर ('टुकड़े-टुकड़े दास्तान') इत्यादि ने भी आत्मकथाएँ लिखी हैं। डॉ. रामदरश मिश्र की आत्मकथा भी प्रकाशित हुई है। डॉ. रमानाथ त्रिपाठी कृत आत्मकथा 'बनफूल' (2005 ई.) एक अत्यन्त भावपूर्ण कृति है। 'बनफूल' नाम (उपनाम) बांग्ला-कथाकार हुए हैं, 'बनफूल' भारतभूषण अग्रवाल की एक कविता है। किन्तु यह ग्रन्थ विशेष बनफूल है।

आत्मकथा विधा पर कुछ शोधकार्य भी हो चुके हैं, जिनमें विश्वबन्धु कृत 'हिन्दी का आत्मकथा-साहित्य' विशेष उल्लेखनीय है।

11. जीवनी

जीवनप्रेरक-साहित्य में धर्म के अनन्तर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विधा जीवनी है, जिसका परम साहित्य-रूप महाकाव्य में विवृत होता है। रामायण, महाभारत, इलिअड, शाहनामा इत्यादि विश्व के सीमान्तक महाकाव्यों में प्राचीन महापुरुषों की जीवनियाँ भी प्राप्त होती हैं। किन्तु महाकाव्य संस्कृति-विश्वकोश पहले है, अन्य-कुछ तदनन्तर। संस्कृत में बाण भट्ट कृत 'हर्षचरितम्' के रूप में एक अमर एवं विश्वस्तरीय जीवनी प्राप्त है। कुछ अन्य ग्रन्थ (विक्रमांकदेवचरितम् प्रभृति) भी हैं। हिन्दी में नाभादास, प्रियादास, भारतेन्दु इत्यादि ने शत-शत भक्तों के जीवन-बिन्दु प्रस्तुत किए हैं। बाबा वेणीमाधवदास कृत 'गोसाईंचरित' एवं बाबा रघुवरदास कृत 'तुलसी-चरित' शीर्षक ज़ाली ग्रन्थ भी दिखाई नहीं तो सुनाई अवश्य पड़ जाते हैं। गद्य में ऐसे ही बिन्दु गोकुलनाथ के नाम से प्रचलित की गई 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' एवं 'दो सौ-बावन वैष्णवन की वार्ता' में प्राप्त होते हैं। किन्तु सुनियोजित, वैज्ञानिक एवं यथासम्भव-वस्तुपरक दृष्टि से रचित जीवनी गद्य की विधा है, जो पश्चिम से आई है। संसार-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ जीवनी एबॅट कृत 'लाइफ़ ऑफ़ नैपोलियन बोनापार्ट है, जिसे गद्य में महाकाव्य एवं टॉलस्टॉय के महान् उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' (वार एंड पीस) के स्तर का ग्रन्थ मानना ही न्यायसंगत होगा (संयोगात् नैपोलिअॅन इसमें भी विद्यमान हैं।) बॉस्वेल कृत 'लाइफ़ आफ़ जॉन्सन' सामयिक साहित्यिक जीवन का विश्वकोश ही है : संसार-साहित्य का एक महान् ग्रन्थ! हिन्दी में इस स्तर के उदात्त एवं स्फीत जीवनी-ग्रन्थ नहीं प्राप्त होते हैं। अधिकतर शासन-संबद्ध या विक्रयदृष्टि-बद्ध साधारण ग्रन्थ ही भरे पड़े हैं। पश्चिम में भी ऐसे ग्रन्थों की बाढ़ दिखाई देती है। इन असंख्य कितबियों को कोई साहित्यिक महत्त्व नहीं प्रदान किया जा सकता। हाँ, मन्नन द्विवेदी गजपुरी ने 'भारतवर्ष के प्रसिद्ध पुरुष', 'गोरखपुर विभाग के कवि', 'रणजीतसिंह' तथा 'जमशेदजी नौसेरवानजी ताता' (टाटा-परिवार के अमर पूर्वज) का जीवन-चरित्र लिखकर जीवनी-विधा में गौरवशाली कार्य किया था। परिपूर्णानन्द वर्मा कृत 'भारत की विभूतियाँ' एवं 'संयुक्त प्रान्त की विभूतियाँ' अच्छी छात्रोपयोगी पुस्तकें हैं। इन्द्र विद्यावाचस्पति ने अनेक देशी-विदेशी नेताओं पर अच्छी-जीवनियाँ लिखी हैं। साहित्य की दृष्टि से राधाकृष्णदास, शिवनन्दन सहाय[1] एवं व्रजरत्नदास ने भारतेन्दु, माधवप्रसाद मिश्र ने स्वामी विशुद्धानन्द[2], बनारसीदास चुतर्वेदी ने महावीरप्रसाद द्विवेदी (पं. देवीदत्त शुक्ल कृत 'आयार्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी' ग्रन्थ अप्रकाशित—उनका प्रकाशित 'बाल-द्विवेदी' भी जीवनी-वर्ग का ही है)। स्व. सीताराम चतुर्वेदी ने 'महामना पंडित मदनमोहन मालवीय', शिवरानीदेवी (प्रेमचन्द घर में) एवं अमृतराय (कलम का सिपाही) ने प्रेमचन्द पर अच्छी जीवनियाँ लिखी हैं। स्वतन्त्र्य-सेनानी एवं हिन्दीसेवी आनन्दीप्रसाद माथुर ने 'अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी' (1997 ई.) के अतिरिक्त सरदार पटेल, मौलाना आज़ाद, स्व. गुलज़ारीलाल नन्दा इत्यादि अनेक नेताओं की जीवनियाँ भी लिखी हैं। 'हिन्दी-नवरत्न' में मिश्रबन्धु, 'कविता-कौमुदी' में रामनरेश त्रिपाठी, 'हिन्दी-कोविद-रत्नमाला' में श्यामसुन्दरदास, 'ब्रजमाधुरीसार' में वियोगीहरि इत्यादि

---

[1] 'भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र की जीवनी', 'बाबू साहबप्रसादसिंह की जीवनी', 'श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद की जीवनी', 'बाबा सुमेरसिंह साहबज़ादे की जीवनी' एवं 'गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी' के रचयिता शिवनन्दन सहाय हिन्दी के एक अमर जीवनीकार हैं।

[2] 'स्वामी विशुद्धनन्द का जीवन-चरित्र' एक उच्चकोटि की जीवनी है, जो 1903 ई. में प्रकाशित हुई।

ने अनेकानेक कवि-कोविदों के जीवनों पर जो प्रशस्य एवं प्रणम्य प्रकाश डाला है, वह कवि-परिचय या साहित्यकार-परिचय है, जीवनी नहीं। भगतसिंह की कई जीवनियाँ प्रकाशित हुईं किन्तु वे स्तुतिपरक मात्र होने के कारण मूल्यहीन हो गई हैं। डॉ. हेडगेवार की जीवनी अच्छी है, किन्तु वह अनूदित है। श्रीप्रकाश कृत 'भारतरत्न डॉ. भगवानूदास' जीवनी ठिकाने की है। रामवृक्ष बेनीपुरी की 'जयप्रकाश' भी एक अच्छी जीवनी है। लक्ष्मीनारायण लाल ने भी जयप्रकाश की अच्छी जीवनी लिखी है। आ. किशोरीदास वाजपेयी ने 'सुभाषचन्द्रबोस' शीर्षक जीवनी लिखी है। 1936 ई. में लिखित मुन्शी अजमेरी के 6 जीवनपरक लेखों तथा अन्य सामग्री के आधार पर प्रभाकर माचवे ने 'मैथिलीशरण गुप्त' शीर्षक अच्छी जीवनी-पुस्तिका लिखी है। स्व. प्रभुदत्त ब्रह्मचारी कृत 'चैतन्य-चरितावली' एवं विष्णु प्रभाकर की 'आवारा मसीहा' (शरदचन्द्र चट्टोपाध्याय) उत्कृष्ट ग्रन्थ। इधर 2003 ई. में डॉ. अहल्यायन ने अमेरिका का वैभव त्याग कर देशप्रेमवश भारत आने तथा यहाँ विक्षिप्तता कर प्रतिदान प्राप्त करने वाले जीवन में ही पुराण बनाने वाले चरित्रनायक पर 'विश्व के अप्रतिम गणितज्ञ डॉ. वशिष्ठ नारायण सिंह' शीर्षक लघु किन्तु उत्कृष्ट जीवनी लिखकर आशा का संचार किया है। डॉ. अहल्यायन ने 'स्वामी श्याम आनन्द' (2005 ई.) शीर्षक जीवनी भी लिखी है।

12. लोककथा

भारत कथा जन्मभूमि है। यहाँ नैतिकता पर आधृत पशु-पक्षी-कथा का उद्‌भव एवं विकास डॉ. विन्टरनिट्ज (विन्तरनिज़) जैसे विदेशी एवं मोतीचन्द्र, प्रो. शारदाप्रसाद सक्सेना इत्यादि देशी विद्वान् स्वीकार कर चुके हैं। ईसप भारत की नैतिकतशिक्षामयी कथाओं का प्रभाव एक सर्वस्वीकृत तथ्य है। गुणाढ्य कृत 'वड्‌कहा' या 'बृहत्कथा' या तदाधृत सोमदेव कृत कथासागरित्सागर का अलिफ़लैला की कथाओं पर प्रभाव भी सर्वस्वीकृत है। पंचतन्त्र एवं हितोपदेश की कथाओं ने अरब, ईरान इत्यादि की कथाओं पर भारी प्रभाव डाला है। सादी (गुलिस्ताँ एवं बोस्ताँ के शायर) तो विष्णु शर्मा के ईरानी-उत्तराधिकारी ही लगते हैं। बेताल-पंचविंशतिका (बैताल-पच्चीसी) एवं सिंहासन-द्वित्रिंशतिका (सिंहासन-बत्तीसी) इत्यादि विक्रमादित्य-कथाओं ने तिलिस्म-होशरुबा जैसी स्फीत कथा को प्रेरणा प्रदान की है। गुणाढ्य, सोमदेव, विष्णु शर्मा इत्यादि विश्वकथासाहित्य के वे सीमान्त हैं जिन्होंने ईसप, सादी, बोक्कैशिओ (बोक्कैचिओ) इत्यादि को प्रेरणा प्रदान की। यहाँ की रामकथा मिस्त्र से जापान तक, चीन से इंडोनेशिया तक प्रसरित है। यहाँ की कृष्णकथा का प्रभाव मूसा (कृष्ण)-कथा[1] पर पड़ा है। भारत के कथा-वैभव की अद्वितीयता इस प्रमाण से भी स्पष्ट है कि अठारह पुराणों में प्रसरित शत-शत कथाओं के काव्यात्मक-कलात्मक-प्रतीकात्मक आयामों की तुलना में बाइबिल एवं तदाधृत कुरान की कथाएँ शुष्क-नीरस-स्थूल लगती हैं।

विराट् पृष्ठभूमि के कारण भारतीय राज्यों, राज्यखंडों, लघुखंडों इत्यादि में लोककथा का सम्पन्न रूप स्वाभाविक विराट् हिन्दी-क्षेत्र में ब्रजी, अवधी, मैथिली, भोजपुरी, हिमाचली (पहाड़ी), कुमाउँनी, गढ़वाली, बुन्देलखंडी, छत्तीसगढ़ी, बघेलखंडी इत्यादि लोककथाएँ कथा-महासागर का रूप धारण कर लेती हैं तथा इस पर संकलन-कार्य भी अच्छा हुआ है, यद्यपि अभी लोकगीत की भाँति किसी रामनरेश त्रिपाठी की आवश्यकता बनी ही है। डॉ. मोतीचन्द्र ने 'पंचतन्त्र' को जैसी विद्वत्ता से सम्पादित-अनूदित किया है वैसी विद्वत्ता इस दृष्टि से भी आदर्श मानी जा सकती है। संप्रति आवश्यकता है 'हिन्दी की पुराणमूलक लोककथाएँ', 'हिन्दी-लोककथाओं में इतिहास की विवृति', 'हिन्दी-लोककथाओं में धर्म-निरूपण', 'हिन्दी-लोककथाओं का समाजशास्त्रीय अध्ययन', 'हिन्दी-लोककथाओं में विक्रम', 'हिन्दी-लोककथाओं में भोज', 'हिन्दी-लोककथाओं में अकबर', 'हिन्दी-लोककथाओं में वाल्मीकि और कालिदास', 'कबीर-सम्बन्धी लोककथाएँ', 'नानक-सम्बन्धी लोककथाएँ', 'मीराँ, सूर, नन्ददास, रसखान इत्यादि से सम्बन्धित लोककथाएँ', 'तुलसी-सम्बन्धी लोककथाएँ' जैसे विशेषज्ञता-व्यंजक एवं संस्कृति-सम्पन्न शोधग्रन्थों अथवा 'चन्द्रवरदायी-सम्बन्धी लोककथाएँ', 'विद्यापति-सम्बन्धी लोककथाएँ', 'केशवदास-सम्बन्धी लोककथाएँ', 'सुखदेव मिश्र सम्बन्धी लोककथाएँ', 'भारतेन्दु-सम्बन्धी लोककथाएँ', 'निराला-सम्बन्धी लोककथाएँ', जैसे शोधनिबन्धों, क्योंकि सामान्यस्तरीय क्षेत्रीय-संकलन पर्याप्त हो चुके हैं। लोककथासंकलन मात्र पर्याप्त नहीं; उनका सामाजिक, ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं साहित्यिक विश्लेषण भी आवश्यक है।

---

[1] मूसा का अर्थ ही कृष्ण या श्याम है। बाइबिल 'जिनेसिस' या जनन या सृष्टि का आरम्भिक प्रकरण जलवाद में ऋग्वेद के नासदीय-सूक्त द्वारा प्रेरित है तथा इस ग्रन्थ में अन्यत्र दो बार भारत का उल्लेख भी प्राप्त होता है। मूसा का जन्म एवं नदी-अर्पण कृष्ण एवं कर्ण की कथाओं से प्रेरित हैं। समुद्रगर्भस्थ द्वारिका (कम-से-कम 15 सदी ईसा-पूर्व) की खोज ने कृष्ण को मूसा-पूर्ववर्ती सिद्ध कर दिया है। समय आसपास का भी है!

लोककथा ने प्राचीनकाल में व्यास और होमर तथा मध्यकाल में फ़िरदौसी और जायसी जैसे महाकवियों को प्रेरित एवं प्रभावित किया था। सारे हिन्दी-सूफ़ीकाव्य लोककथात्मक हैं। मार्को पोलो इत्यादि की भारत-यात्रा के परिणामस्वरूप इटली में लोककथात्मक काव्यों का प्रचलन हुआ जो 'नॉवेला' (नवला या नवलकथा–गुजराती में उपन्यास को नवलकथा ठीक ही कहते हैं) का उद्‌भव हुआ, जिससे 'नावेल' (उपन्यास–यह शब्द बाँग्ला से आया) का उद्‌भव हुआ[1]। लोककथा साहित्य का मेरुदंड रही है। इसने काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, लघुकथा इत्यादि को स्फुरित किया है। संप्रति आवश्यकता है इस धरातल पर कार्य की।

13. हास्य-साहित्य

हास, परिहास एवं व्यंग्य जीवन को ऊर्जा, स्फूर्ति एवं विरेचन प्रदान करते हैं। हास में हम किसी या किन्हीं के साथ मिलकर हँसते हैं, परिहास में हम किसी या किन्हीं पर हँसते हैं, व्यंग्य में हम किसी के दौर्बल्य पर हँसते हैं। स्मित से अपहसित तक हास्य के पाँच रूपों का काव्यशास्त्रीय प्रतिपादन अतीव गम्भीर है। प्रहसन प्रभृति हास्यनाटक विद्यमान हैं। हिन्दी का हास्य-साहित्य तुलसी और सूर से जाज्वल्यमान् है, जिसे कविराज सुखदेव मिश्र, अली मुहिब खाँ 'प्रीतम', बेनी बन्दीजन, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, रामसुजान सिंह, बालमुकुन्द गुप्त, हास्यरसावतार जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा 'कौशिक', रामानुजलाल श्रीवास्तव 'ऊँट', गुलाबराय, भगतवीचरण वर्मा, अन्नपूर्णानन्द, जी. पी. (गंगाप्रसाद) श्रीवास्तव, कृष्णदेद प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी', बेधड़क बनारसी, ऋषिकेश चतुर्वेदी, गोपालप्रसाद व्यास, माणिक वर्मा, काका हाथरसी, हरिशंकर परसाई, रामरिख 'मनहर', शैल चतुर्वेदी, शरद जोशी, के. पी. सक्सेना, नरेन्द्र कोहली, डॉ. स्वामीनाथ पांडेय, ओमप्रकाश 'आदित्य', डॉ. अशोक 'चक्रधर, डॉ. महेश इत्यादि ने विविध रूपों में सम्पन्न किया है। प्रस्तुत पक्तियों के लेखक ने भी 'मौर्ख्यशास्त्र' (ईडिऑटिक्स) शीर्षक अपने ढंग का एकमात्र व्यंग्य-प्रबन्ध (जिसमें पाँच छोटे-बड़े निबन्ध हैं), 'मच्छर-सभाः अध्यक्षीय भाषण' एवं 'मौर्ख्य और साहित्य' (हास्यनिबन्ध-संग्रह), 'कॉफी हॉउस' (नाटक), 'दस हास्य एकांकी' (अप्रकाशित) एवं 'नेताचरित्रम्' (अपने ढंग का प्रथम 9 सर्गीय काव्य) इत्यादि रचे हैं। पद्म डॉ. बरसनेलाल चतुर्वेदी (1921–5 जून 2005) ने हास्य-साहित्य पर अच्छा शोधकार्य किया है। कुछ कविताएँ भी लिखी हैं।

यह ठीक है कि हिन्दी में एरिस्टोफेनीज़, सर्वेन्टीज़, शेक्सपीअर, मोलियर, जोनाथन स्विफ्ट, या शॉ के स्तर के व्यंग्यकार नहीं मिलते, पोप, गोल्डस्मिथ आदि के स्तर के व्यंग्य-कवि नहीं मिलते (ठीक वैसे ही जैसे यूनानी, स्पेनी, अंग्रेज़ी, फ्रेंच, रूसी इत्यादि में विद्यापति, जायसी, केशव, बिहारी, मतिराम, देव, पद्‌माकर के स्तर के शृंगारी कवि नहीं मिलते) जिसका कारण हमारी शृंगार, भक्ति एवं वीर काव्यों में विशेष रुचि रही है। मैंने 9 सर्गीय व्यंग्य काव्य 'नेताचरित्रम् (1994 ई.) के द्वारा स्फीत काव्यकृति के अभाव की पूर्ति का यत्न किया है। फिर भी, हमारा हास्य साहित्य वैसा विपन्न नहीं है जैसा कुछ वास्तविक अथवा तथाकथित आचार्य बताते आ रहे हैं। तुलसी का नारदमोह-प्रसंग, प्रतापनारायण मिश्र के 'दाँत' जैसे निबन्ध, बालमुकुन्द गुप्त कृत 'शिवशम्भु का चिट्ठा तथा 'चिट्ठे और खत', गुलाबराय कृत 'मेरी असफलताएँ' और 'ठलुआ क्लब', भगवतीचरण वर्मा कृत 'दो बाँके' तथा 'इन्स्टाल्मेन्ट' कहानी-संग्रह और 'सबसे बड़ा आदमी' एकांकी इत्यादि में विश्वस्तरीय अथवा प्रथम श्रेणी का हास्य विद्यमान है। काका हाथरसी जैसी कोटि-कोटि जनता के कवि तथा हरिशंकर परसाई जैसे अतिपुरस्कृत के चितेरे गद्यकार भी पर्याप्त मनोरंजन करने में सफल हुए हैं।

आधुनिक अवधी-कविता हास्य-व्यंग्य की दृष्टि से अत्यन्त सम्पन्न है। बलभद्रप्रसाद दीक्षित 'पढ़ीस', वंशीधर शुक्ल, 'मृगेश', शारदाप्रसाद 'भुशुंडि', 'रमई काका' जैसे लोकप्रिय कवि इस कथन के प्रमाण हैं।

14. यात्रावृत्त

यात्रा जीवन के आयाम व्यापक करती है, मानवता के बिखरे तत्वों को जोड़ती है, विवेक प्रदान करती है। धर्मनेता (राम, कृष्ण, मूसा, बुद्ध, महावीर ईसा, मोहम्मद, नानक इत्यादि) हों या विजेता (सिकन्दर, सीज़र, समुद्रगुप्त, चंगेज़ ख़ान, नैपोलियन इत्यादि), दार्शनिक (कपिल, कणद्, प्लेटो, शंकरचार्य इत्यादि) हों या कवि (व्यास, कालिदास, तुलसीदास, मिल्टन इत्यादि), अपवादों (सूर, कांट इत्यादि) के अतिरिक्त, सभी यात्रा-लाभी रहे हैं। प्राचीन एवं मध्यकालों में यात्रा कठिनतम एवं कठिनतम थी; अतः तब उसका महत्त्व एवं मूल्य

---

[1] आर्य भट्ट इत्यादि द्वारा प्रतिपादित भूमण्डल एवं सूर्य-परिक्रमा के तथ्य भी मार्को पोलो के द्वारा इटली पहुँचे, जिनसे गैलीलियो प्रेरित-प्रभावित हुए।

स्वभावतः अधिक था। मेग़स्थीनज़, फाह्यान, ह्वेनत्साँग, इत्सिंग, अल बेरूनी, इब्नेबतूता, पीअरी लोटी, मार्को पोलो, अब्दुल रज्जाक, आफ़नासी निकितिन, हॉकिन्स, सर टॉमस रो, लिबिदेव इत्यादि दूतों एवं यात्रियों के वृत्त भारतीय इतिहास के स्रोतों में समाहित हैं। भारतीयों ने यात्रावृत्त-रचना पर ध्यान नहीं दिया था। किन्तु आधुनिककाल में अनेक सफल यात्रावृत्तकार हुए हैं, जिनमें स्वामी सत्यदेव परिव्राजक, शिवप्रसाद गुप्त, सेठ गोविन्ददास, डॉ. रघुवीर, काका कालेलकर, यशपाल, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, अज्ञेय, यशपाल जैन, डॉ. शिवानन्द नौटियाल, चन्दूलाल चन्द्राकर इत्यादि प्रमुख हैं, जिन्होंने 'पृथ्वी-परिक्रमा' (गुप्त), दक्षिण-पूर्व एशिया[1], हिमालय, पूर्वी यूरोप, तिब्बत, संयुक्त राज्य, चीन, अफ्रीका इत्यादि के जीवन्त चलचित्र प्रस्तुत किए हैं। यात्रावृत्त विधा का श्रीगणेश कराने का श्रेय भी नानविधानेता आ. माहवीरप्रसाद द्विवेदी को है जिन्होंने पंजाब के विश्व-पर्यटक स्वामी सत्यदेव के स्थानों, यात्राओं इत्यादि के टूटी-फूटी हिन्दी में लिखे वृत्तों को अपनी पारस-साधना से जगमगा कर 'सरस्वती' में प्रकाशित किया—कृतज्ञ लेखक ने आश्चर्यमिश्रित श्रद्धा भी व्यक्त की! राहुल हिन्दी के प्रमुख यात्रावृत्तकार हैं।

भारत स्वयं में एक विश्व है। उच्चतम पर्वतशिखर, मरुस्थल, समतल, अतिवृष्टि क्षेत्र, अनावृष्टिक्षेत्र, सरिताबहुल क्षेत्र, सरितारहित क्षेत्र, वनबहुल क्षेत्र, वनरहित क्षेत्र, प्राणिसंकुल क्षेत्र, प्राणिरहितप्राय क्षेत्रः सब-कुछ एक ही भू-भाग में! अतएव, अन्तर्देशीय यात्रावृत्त भी पर्याप्त लिखे गए हैं, जिनमें कश्मीर, लद्दाख, अमरनाथ, पिंडारी हिमनद, बदरीनाथ, केदारनाथ, गंगोत्री, युमनोत्री, मानसरोवर, कैलाश[2], गंगासागर, कन्याकुमारी इत्यादि को समाष्टि किया गया है। किन्तु ये वृत्त प्रकीर्ण रूपों में मूल्यहीनप्राय पड़े हैं। इनका एक विशाल संकलन प्रकाशित होना चाहिए। इनमें से अनेक राहुल, महादेवी वर्मा, मोहनबल्लभ[3] पन्त, श्रीनारायण चतुर्वेदी इत्यादि सक्षम साहित्यकारों ने लिखे हैं। बालयात्रावृत्त-साहित्य का सोद्देश्य प्रणयन राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से भी उपयोगी है, ज्ञानवर्द्धन की दृष्टि से भी। मासिक 'देवपुत्र' (ग्वालियर) में प्रसिद्ध बालसाहित्यकार श्री चक्रधर 'नलिन' के 'भारत-दर्शन' जैसे धारावाहिक ग्रन्थ-रूपों में भी आने चाहिए। सुन्दर एवं सचित्र ग्रन्थों की दृष्टि से हिन्दी का यात्रावृत्त-साहित्य अभी विश्व-स्तर से बहुत पीछे है।

15. संस्मरण

संस्मरण साहित्य की एक मार्मिक विधा है क्योंकि इसका सम्बन्ध स्मृति से है जो स्वभावतः भावसम्पन्न होती है। इसीलिए, संप्रति आत्मकथाओं को भी 'मेमोइर्स' (मेमोयर्स) कहने लगे हैं, क्योंकि आत्मकथा भी स्मृति का समाहार ही होती है। किन्तु आत्मकथा आत्मप्रधान होती है, घटनाप्रधान होती है, जबकि संस्मरण वस्तुप्रधान होता है, भावप्रधान होता है। संस्मरण एवं रेखाचित्र भी समीपस्थ विधाएँ हैं किन्तु रेखाचित्र में शब्दचित्र को प्रधानता प्राप्त होती है, जबकि संस्मरण में भावभूमि ही प्रधान रहती है। भारत में संस्मरण की विधा में रवीन्द्र का नाम अविस्मरणीय है। हिन्दी में डॉ. राजेन्द्र प्रसाद कृत 'बापू के क़दमों में' विश्वस्तरीय संस्मरण-ग्रन्थ हैं, जिसमें चम्पारन-सत्याग्रह के युग के तपस्वी गाँधी का व्यक्तित्व जैसा उभरा मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं। नाथूराम विनायक गोडसे के अनुज गोपाल विनायक गोडसे कृत 'गाँधीवध और मैं' भी संस्मरण-ग्रन्थ माना जा सकता है।

महादेवी वर्मा कृत 'अतीत के चलचित्र', 'शृंखला की कड़ियाँ', 'पथ के साथी', प्रभृति प्रख्यात ग्रन्थ भी मूलतः संस्मरण-ग्रन्थ ही हैं, यद्यपि शब्दचित्रंकन के कारण संप्रति रेखाचित्र माने जाते हैं। जैनेन्द्र कृत 'मैथिलीशरण गुप्त' संस्मरण है ही। किशोरीदास वाजपेयी, बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीनारायण चतुर्वेदी, नगेन्द्र, भदंत आनन्द कौसल्यायन, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' जानकीवल्लभ शास्त्री, क्षेमचन्द्र 'सुमन' इत्यादि ने भी अनेक मनोहारी संस्मरण लिखे हैं। श्रीनारायण चतुर्वेदी कृत 'मनोरंजक संस्मरण', रामनाथ 'सुमन' कृत 'मैंने स्मृति के दीप जलाए', श्रीराम शर्मा[4] (शिकार-साहित्य के शीर्षस्थ लेखक) कृत 'सनू बयालीस के संस्मरण' प्रभृति ग्रन्थ संस्मरण-विधा के स्मरणीय रत्न हैं। डॉ. विजयेन्द्र स्नातक कृत 'स्मृति-शेषः मेरे समकालीन' (1993 ई.), प्रो. विष्णुकान्त शास्त्री कृत 'सुधियाँ उस चन्दन के वन की' (1992 ई.) क्रमशः साहित्यकारों एवं विभिन्नक्षेत्रीय विख्यात व्यक्तियों से संबद्ध संस्मरणों की पठनीय पुस्तकें हैं। कवि और ग़ज़लकार भगवतप्रसाद मिश्र 'नियाज' (अहमदाबाद) कृत 'अतीत की झलकियाँ' (2002 ई.) विधा की एक स्मरणीय कृति है।

---

1. 'एशिया' ग़लत लिखा जाता है।
2. 'कैलाश' ग़लत लिखा जाता है।
3. वे 'बल्लभ' ही लिखते थे; राजनीतिज्ञ गोविन्दबल्लभ पन्त एवं नाट्यकार गोविन्दबल्लभ पन्त भी। पर्वतांचल में 'ब्रल्लभ' ही प्रचलित है।
4. श्रीराम शर्मा आचार्य (उपनाम 'मत्त') एवं श्रीराम शर्मा 'राम' से भिन्न।

मैंने लेखकीय अस्मिता की समुचित विवृति के साथ 'संस्मरण, श्रुतिसंस्मरण और जनसंस्मरण' (1990 ई.) तथा 'कंगाली के खज़ाने' (2001 ई.) शीर्षक दो ग्रन्थ लिखे हैं, जिनमें विधा को नवीन आयामों तक प्रसरित किया गया है—आत्मसंस्मरण को तो महत्त्व प्रदान किया गया ही है। संप्रति आवश्यकता है आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, उपन्यास-सम्राट् प्रेमचन्द, महाप्राण निराला इत्यादि साहित्यकारों तथा गाँधी, पटेल, राजेन्द्र प्रसाद इत्यादि नेताओं से संबद्ध शत-शत ग्रन्थ-पत्र-पत्रिका-गुहाग्रस्त संस्मरणों के संकलन की, जिससे विधा की अस्मिता उजागर की जा सके। 'संस्मरण-सागर' की प्रस्तुति अपेक्षित है। साहित्यकारों को हीनभाव त्यागकर आत्मसंस्मरण भी लिखने होंगे जिससे कृती एवं कृति परत-दर-परत खुल सके। श्रुतिसंस्मरण (अधिकारी-व्यक्तियों के महत् व्यक्तियों से संबद्ध सुने गए प्रात्ययिक संस्मरण) एवं जनसंस्मरण (संस्मरणकार के एक 'जन' के रूप में स्मृत अथवा जनसमूह में देखे गए स्मृति-बिन्दु इत्यादि) के आयामों तक प्रसरित कर विधा को विशदतर बनाया जा सकता है।

16. रेखाचित्र

शब्दचित्र-समार्थ्यसम्पन्न व्यक्ति-निरूपण रेखाचित्र कहलाता है। रेखाचित्र विधा साहित्य के चित्रकला के साथ सनातन सम्बन्ध (जो बिम्ब, चित्रकाव्य इत्यादि से स्पष्ट है) की द्योतक है। महादेवी वर्मा हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ रेखाचित्रकार हैं, जिनके 'अतीत के चलचित्र', 'शृंखला की कड़ियाँ', 'पथ के साथी' जैसे ग्रन्थों में प्राप्त संस्मरणात्मक-रेखाचित्र या रेखाचित्रात्मक-संस्मरण अनुभूति की सजलता एवं अभिव्यक्ति की प्रांजलता में विश्वस्तरीय हैं; भले ही अलंकरण का परिमाण अपेक्षाकृत अधिक हो गया है। महादेवी वर्मा के कवि-रूप एवं चित्रकार-रूप उनके रेखाचित्रकार-रूप को सम्पन्नतर बनाने में सहायक सिद्ध हुए हैं। रेखाचित्र सूक्ष्मतर पर्यालोचन एवं मर्मभेदी अन्वेषण की अपेक्षा करता है। यही कारण है कि इस विधा में सफल सृजन बहुत कम हो पाया है। उपन्यासों (उदाहरणार्थ, अमृतलाल नागर कृत 'बूँद और समुद्र' में ताई), कहानियों (उदाहरणार्थ, पांडेय बचेन शर्मा 'उग्र' कृत 'उसकी' माँ'), आत्मकथाओं (उदाहरणार्थ, बलराज मधोक कृत 'ज़िन्दगी का सफ़र' में सरदार पटेल), संस्मरणों (उदाहरणार्थ, जैनेन्द्र कृत 'मैथिलीशरण गुप्त') इत्यादि में भी अनेक सफल रेखाचित्र प्राप्त होते हैं; यद्यपि अंगी न होने के कारण उनकी अस्मिता सिद्ध नहीं हो पाती। यदि विधा-सीमा का अतिक्रमण कर या गुणगत आधार पर 'रेखाचित्रावली' प्रस्तुत की जाए तो अतीव मनोहारी प्रमाणित हो सकती है। पत्र-पत्रिकाओं में आए दिन अच्छे-अच्छे रेखाचित्र दिखाई पड़ते रहते हैं, किन्तु वे 'ढाई दिन के बादशाहों' या नए-नए 'बच्चा सक्काओं' या नए-नए 'भिश्ती निज़ामों' (नेताओं) से संबद्ध होने के कारण गद्दी-परिवर्तन के साथ ही इतिहास के घूरे में बिला कर रह जाते हैं। यही कारण है कि रेखाचित्र की विधा में टिकाऊ नाम महादेवी वर्मा का ही मिल पाता है, यद्यपि बनारसीदास चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', रामवृक्ष बेनीपुरी, देवेन्द्र सत्यार्थी इत्यादि ने इस दिशा में भी उल्लेखनीय सफलता प्राप्त की है।

17. रिपोर्ताज़ (तात्कालिकी)

ऐतिहासिक महत्त्व अथवा स्थायी महत्त्व के घटनाचक्र का तात्कालिक अथवा प्रायः—तात्कालिक स्वयं का देखा-सुना अनुभव शब्दबद्ध किए जाने पर रिपोर्ताज़ कहलाता है। हिन्दी में इसे तात्कालिकी कहा जा सकता है। यह विधा द्वितीय विश्व-युद्ध (1939-45 ई.) में उभरी। निस्सन्देह, यह समय इस विधा के लिए सर्वाधिक उपयुक्त था। मानव-जाति के इतिहास के भयानकतम एवं व्यापकतम प्रलयंकर घटना-चक्र का वेधन कर शतशः प्रात्ययिक वृत्त-प्रस्तुतीकरण जितना साहसपूर्ण था उतना ही महत्त्वपूर्ण। तात्कालिकी पत्रकारिता का एक घटनामूलक रूप है। जैसाकि रिपोर्ताज़ शब्द से ही स्पष्ट है, इस विधा के उद्भव (निबन्ध के सदृश) फ्रांस में हुआ। फ्रेंच, जर्मन, रशिअन, अंग्रेज़ी इत्यादि पाश्चात्य भाषाओं में रिपोर्ताज़ का अच्छा विकास हुआ है। रूस के इल्या एहरेम्बर्ग़ इस विधा के विख्यात लेखक माने जाते हैं। जूलिअस सीज़र[1] (100-44 ईसा-पूर्व) के अमर लैटिन-युद्धसंस्मरण तात्कालिकी-तत्त्वों से भी सम्पन्न हैं। मराठी में रामशास्त्री गोडसे कृत 'माझा प्रवास' (जिसका हिन्दी-अनुवाद अमृतलाल नागर ने 'आँखों देखा ग़दर' शीर्षक से किया है) तात्कालिकी की कसौटी पर पूरी तरह खरी उतरने वाली रचना है। 'प्रताप' के सम्पादक अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी द्वारा 1921 ई. के मुन्शीगंज (रायबरेली) हत्याकांड इत्यादि के वृत्त तात्कालिकी की दृष्टि से हिन्दी के रत्न हैं। किन्तु तात्कालिकी के पूर्व-पुरुष प्रख्यात

---

1. 'जुलाई' का महीना, 'कैसर' (जर्मनी के सम्राटों की पदवी) एवं 'ज़ार' (रूसी सम्राटों की पदवी) इत्यादि के आधार। महान् रोमन साम्राज्य के संस्थापक ऑगस्टस सीज़र (अगस्त मास के आधार) के चाचा। विश्व-इतिहास की एक महान् विभूति।

भावात्मक-निबन्धकार एवं मार्मिक संस्मरणकार एवं सफल भेटवार्ताकार स्व. श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' हैं, जिनकी 1927 ई. के 'ब्राह्मण-सर्वस्व' में प्रकाशित 'वेदों की खोज' (गुरुकुल काँगड़ी के गाँधी, मालवीय, साधु वासवानी, डॉ. मुंजे, आ. रामदेव इत्यादि से संपृक्त रजतोत्सव की झाँकियों का चित्रोपम एवं सजीव वर्णन) डॉ. प्रभाकर माचवे के शब्दों में, इस विधा की "जीवन्त खोज"[1] हुई। 'प्रभाकर' के 'ज़िन्दगी लहलहाई' एवं 'क्षण बोले कण मुस्कराए' ग्रन्थ तात्कालिकी के मूल्यों की दृष्टि से भी प्रशस्य हैं। उनमें चित्रमूल्यता, जीवन्तता एवं संप्रेषण-कलात्मकता का स्तर उच्च है। तात्कालिकी की पृथक् विधा-रूप की औपचारिक दृष्टि से रांगेय राघव, कृष्ण चन्दर, प्रकाशचन्द्र गुप्त इत्यादि लेखकों के नाम प्रसिद्ध हैं, किन्तु श्री वीरपाल वर्मा ने कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' को इसका 'जन्मदाता'[2] माना है तथा 'एक दिन की बात', 'मेरे मकान के आसपास', 'अपने भंगी भाइयों के साथ', 'दिल्ली-यात्रा की स्मृतियाँ' इत्यादि को 'रिपोर्ताज़ों की जीवंतता' की दृष्टि से सराहा है; डॉ. जीवनप्रकाश जोशी द्वारा उन्हें 'हिन्दी' का सर्वश्रेष्ठ रिपोर्ताज़कार' और 'हिन्दी का इल्या एहरेम्बुर्ग'[3] कहा जाना उद्धृत किया है। 'प्रभाकर' की तात्कालिकी कहीं काल्पनिक सृजनशीलता से ऊभचूभ है, तो कहीं अतिभावुकता से, कहीं व्यक्ति-विशेष-श्रद्धा से, जिससे विधा की औपचारिकता, यथार्थता एवं वस्तुवादिता बाधित होती लग सकती है। रांगेय राघव कृत 'तूफानों के बीच' का तो शीर्षक ही भ्रामक है, क्योंकि रचना 1942 ई. के ऐतिहासिक बंगाल की रोमांचकारी त्रासदी के एक वर्ष बाद कथनों के आधार पर रची गई है।

18. साक्षात्कार (भेंटवार्ता—इंटरव्यू)

साक्षात्कार (भेंटवार्ता या इंटरव्यू) पत्रकारिता-उत्कर्ष युग की एक अभिनव विधा है, जिसमें भेंटवार्ताकार सुचिंतित, सुनियोजित प्रश्नावली के द्वारा प्रत्यक्ष या परोक्ष (पत्राचार इत्यादि) रूप से व्यक्ति-विशेष की विचार-विवृति करता है। इस विधा पर 1984 ई. में 'हिन्दी-इंटरव्यू : उद्भव और विकास' शीर्षक प्रथम शोधग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है जिसके शोधकर्ता डॉ. विष्णु 'पंकज' स्वयं एक सफल भेंटवार्ताकार हैं। 'जनसंचार की विधा साक्षात्कार' (1994 ई.) उनका अन्य ग्रन्थ है, जबकि 'चिरस्मरणीय भेंटवार्ताएँ (1985 ई.) सम्पादित ग्रन्थ है तथा 'नवरंग' (1986 ई.) में भी भेंटवार्ता का रंग मिला हुआ है। वे 'साक्षात्कार के सौ वर्ष' शीर्षक ग्रन्थ में व्यस्त हैं। डॉ. नगेन्द्र, डॉ. विश्वनाथ शुक्ल इत्यादि भेंटवार्ता-साहित्य के आलोचक सितम्बर, 1931 ई. के 'विशाल भारत' में प्रकाशित 'रत्नाकार जी से बातचीत' के आधार पर बनारसीदास चतुर्वेदी को विधा का प्रवर्तक मानते रहे हैं, किन्तु डॉ. विष्णु 'पंकज' ने 1905 ई. के 'समालोचक' में प्रकाशित 'संगीत की धुनः एक संवाद'[4] के आधार पर चन्द्रधर शर्मा गुलेरी को यह गौरव ठीक ही प्रदान किया है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बनारसीदास चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', आ. क्षेमचन्द्र 'सुमन', डॉ. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', डॉ. रामचरण महेन्द्र, कैलाश 'कल्पित', डॉ. रणवीर रांग्रा, डॉ. देवीशंकर अवस्थी, डॉ. विष्णु 'पंकज', यशपाल जैन, चक्रधर 'नलिन', मजीद अहमद, प्रकाश मनु, राजेन्द्र 'परदेसी', सुनील 'जोगी', हरिशचन्द्र शाक्य इत्यादि हिन्दी के प्रमुख भेटवार्ताकार हैं। कल्पित-भेंटवार्ता भी विधा का एक गौण है जिसमें कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', राजेन्द्र यादव इत्यादि ने अच्छी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। डॉ. रामकुमार वर्मा, दिनकर, जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, देवेन्द्र सत्यार्थी इत्यादि कवियों एवं पत्रकारों ने भी इस विधा का स्पर्श किया है।

डॉ. विष्णु 'पंकज' के शब्दों में, "इस कला के आचार्य" कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने इंटरव्यू के लिए 'अंतर्व्यूह' शब्द का पर्याय प्रस्तुत किया है क्योंकि इंटरव्यूकार सामनेवाले के 'अन्तर' में एक 'व्यूह'-रचना करता है। मैं 1956 ई. से नौकरी के इंटरव्यू को 'अंतर्व्यूह' कहता चला आ रहा था (मेरे 'संस्मरण, श्रुतिसंस्मरण और जनसंस्मरण' ग्रन्थ में 'अंतर्व्यूह' शीर्षक दो रचनाएँ विद्यमान हैं) क्योंकि इसके वाह्य नाटक की व्यूह-रचना 'अन्तर' (साक्षात्कार-समिति के कक्ष के अंतर्भाग) में निश्चित होती है। 'प्रभाकर' जी का 'अंतर्व्यूह' मेरे 'अंतर्व्यूह' से भिन्न है। भेंटवार्ता विधा में 'साहित्य-साधिकाएँ' तथा इसके व्यापकतर रूप 'साहित्यिक इंटरव्यूज' के लेखक श्री कैलाश 'कल्पित' को एक विशिष्ट स्थान प्राप्त है जिनकी निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, रामकुमार वर्मा, वृन्दावनलाल वर्मा, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन, सियारामशरण गुप्त, गोपालशरणसिंह, शकुन्तला सिरोठिया, कंचनलता सब्बरवाल, सावित्रीदेवी वर्मा, रजनी पनिक्कर, शचीरानी गुर्टू इत्यादि से भेंटवार्ताएँ विधा की कसौटी पर खरी और आयामों की व्यापकता में अद्वितीय हैं।

---

1. "कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर': व्यक्ति आर साहित्य" (सं. डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी) में 'मिश्रजी के रिर्पोताज़' निबन्ध पृष्ठ 221
2. वही, 'प्रभाकर जी का रिपोर्ताज़-लेखन' निबन्ध, पृष्ठ 217
3. 'एहरेम्बर्ग' प्रचलित है।
4. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर से सम्बद्ध।

19. परिचर्चा

लोकतन्त्र हो या साम्यतन्त्र, अतीत के सामान्य अब साहित्य में विशिष्ट बन गए हैं। विशिष्ट को धरती पर उतरना पड़ा है क्योंकि सामान्य धरती पर पड़े से खड़ा हो गया है। परिणाम है, साहित्य की नाना नवविधाएँ, जिनमें परिचर्चा भी सम्मिलित है जो नेता हो या अभिनेता, कवि हो या कलाकार, विद्वान् हो या अन्य, सबको एकरस महत्त्व देने के कारण स्वागत-योग्य है। एक विषय पर अनेक मनीषियों की विचारसृष्टि या भावसृष्टि परचिर्चा की सृजनात्मक साहित्य की विधा के रूप में अभिहित है, जिसके मूलतत्त्व हैं अतिसंक्षिप्तता, अतिविषयसंपृक्ता एवं अतिसंप्रेषणीयता। प्रायः परिचर्चा की विधा प्रातिभ एकता की समता उजागर करती है, किन्तु कभी-कभी ''वादे वादे जायते तत्त्वबोधः'' का सत्य भी। परिचर्चा गोष्ठीगत भी हो सकती है, परस्पर-अज्ञात मनीषियों के आमन्त्रित विचारों के सम्पादित रूप में भी। इस विधा में नाटक (परिचर्चाकार एवं परिचर्चा-आधार का संवाद), निबन्ध (विषयबद्धता) एवं भेंटवार्ता (परिचर्चाकार एवं परिचर्चा-आधार का साक्षात्कार या इंटरव्यू) का समन्वय होता है। डॉ. शंकर पुणताम्बेकर के अनुसार, लगभग दो सौ-पचास परिचर्चाओं के प्रस्तोता श्री जगदीश 'किंजल्क' परिचर्चा ''विधा के जनक'' हैं। अन्य परिचर्चाकारों में कुँवर प्रेमिल, आशारानी व्होरा, सावित्री परमार, कैलाश 'कल्पित', विनयकुमार मालवीय इत्यादि विधा के विकास की सूचना देते हैं। डॉ. रमेशचन्द्र खरे ने परिचर्चा पर ही एक परिचर्चा आयोजित की जिसमें विधा के साहित्यिक एवं सामाजिक गुण-परिमाण पर विचार किया गया। साहित्य समाज का स्थायी उद्‌गार है। अतः परिचर्चा की सामाजिकता स्वयंसिद्ध है जिसमें पारिवारिक, पर्वगत, सामयिकबिन्दुगत, साहित्यिक (ग्रन्थगत, ग्रन्थकारगत, प्रवृत्तिविशेषगत, अन्यान्य), व्यंग्यपरक प्रभृति अनेक आयाम समाहित हो सकते हैं। डॉ. शंकर पुणताम्बेकर, श्री कृष्णकेतु इत्यादि ने परिचर्चाओं का संकलन किया है। डॉ. शंकर पुणताम्बेकर, श्री जगदीश 'किंजल्क', श्री कमलेश्वर, श्री कृष्णकेतु इत्यादि ने परिचर्चा के विधागत रूप को स्पष्ट, विवेचित एवं विश्लेषित किया है। अपने बहुरंगे रूप के साथ भी एकल प्रभावान्विति से निष्पन्न यह विधा सम्भावनाओं से भरी-पूरी है।

परिचर्चा एवं परिसंवाद मिलती-जुलती विधाएँ किन्तु परिसंवाद उपस्थित व्यक्तियों में सतर्क-सवितर्क विचार-विनिमय है जबकि परिचर्चा प्रत्येक संभागी के स्वकीय विचार या भाव पर आधृत होती है तथा उसमें उपस्थिति अपरिहार्य नहीं—प्रायः वह पत्राचार द्वारा निष्पन्न होती है।

20. संवाद

साहित्य की प्राय प्रत्येक विधा में संवाद के दर्शन किसी-न-किसी रूप में अवश्य हो जाते हैं। महाकाव्यों में संवाद-वैभव अतीव प्रभावी होता है (केशवदास निदर्शन हैं)। नाटक एवं एकांकी संवादात्मक विधाएँ हैं ही। भारतेन्दु ने 'सबै जाति गोपाल की' एवं 'शंडभंडयो संवाद' प्रभृति संवादरचनाएँ लिखी ही हैं। उपन्यास एवं कहानी भी प्रायः संवादसम्पन्न होती ही हैं। निबन्ध एवं आलोचना में प्रत्यक्ष संवाद तो नहीं होते किन्तु निबन्धकार एवं आलोचक के एकालाप से पाठक संपृक्त बना ही रहता है। किन्तु संवाद की स्वतन्त्र विधा वहाँ सिद्ध होती है जहाँ रंगमंचहीन-शिल्पहीन द्विवार्ता प्रस्तुत की जाती है, जैसे राय कृष्णदास कृत 'सागर और मेघ' एवं 'लोहा और कोयला'। 'बौछार' के प्रसिद्ध अवधी-कवि रमई काका (चन्द्रभूषण त्रिवेदी) ने 'सोना और लोहा' संभवतः राय कृष्णदास के 'सागर' और मेघ', 'लोहा और कोयला' से प्रभावित होकर ही लिखी थी। दिनकर कृत 'चाँद और कवि' प्रसिद्ध संवाद-कविता है। बालकृष्ण मिश्र ने 'कवि और ठोकर', 'नींव और शिखर' जैसी कई कविताएँ संवादात्मक हैं। गिरिजादयाल 'गिरीश' की 'अलि-सुमन संवाद' सुन्दर कविता है। सत्यधर शुक्ल कृत 'आर्यावर्त' पक्षी-संवाद शैली रचित है। किन्तु संवाद की पृथक विधा गद्यगत है। बालसाहित्य में 'ककड़ी और लकड़ी की बातचीत' जैसी सफल संवाद-रचनाएँ प्राप्त होती हैं। अंग्रेज़ी से अनूदित 'सिकन्दर और डाकू' भी सुन्दर संवाद है। साहित्य में संवाद की विधा पर सृजन अत्यल्प ही हुआ है किन्तु जितना हुआ है वह आकर्षक है। 'संवाद-संकलन' जैसा ग्रन्थ प्रकाश में आए तो इस विधा का महत्त्व स्पष्ट हो सकता है। इस विधा में सृजन के आयाम उपलब्ध हैं, जिन पर ध्यान देने से प्रतिभाशाली साहित्यकार मौलिकता की सिद्धि अपेक्षाकृत सरलतापूर्वक प्राप्त कर सकते हैं। 'पाप-पुण्य', 'युद्ध-शान्ति संवाद', 'नेता-अभिनेता संवाद' (दोनों की 'मूल' जाति एक ही है—अन्तर केवल उपसर्ग का है), 'सिपाही-चोर संवाद' (दोनों में गहरा रब्त-ज़ब्त है—कम-से-कम भारत में,) 'लेखक-प्रकाशक संवाद', शोधनिदेशक-शोधार्थी संवाद' इत्यादि विषयों पर सुन्दर एवं गम्भीर संवाद लिखे जा सकते हैं।

21. बाल-साहित्य

हिन्दी के बाल-साहित्य का विकास सन्तोषजनक ढंग से हो रहा है। मैं हिन्दी-बालसाहित्य का आदिकवि अमीर खुसरो (1253-1325 ई.) को मानता हूँ जिनकी पहेलियाँ और मुकरियाँ आज तक प्रचलित हैं तथा जिनका शब्दकोष 'खालिकबारी' भी बालसाहित्य से बहुत दूर नहीं है। तुलसी ने परशुराम-लक्ष्मण-संवाद एवं अंगद-रावण-संवाद बालरुचि को ध्यान में रखकर लिखे हैं। सूर को तो महान् बालसाहित्कार भी माना जा सकता है। भारतेन्दु कृत चूरन के लटके, प्रतापनारायण मिश्र कृत 'पितु मातु सहायक' एवं 'शरणागतपाल कृपाल' प्रार्थनाएँ बालसाहित्य ही (या भी) हैं। किन्तु व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध बालसाहित्य का समारंभ आदर्शवादी युग (1900-20 ई.) से हुआ। बालकथाओं और बालकविताओं के क्षेत्रों में तो स्फीत एवं प्रशस्य उन्नति हुई ही है, बालनाटक एवं बालएकांकी, बालउपन्यास एवं बालखंडकाव्य भी प्रकाश में आने लगे हैं। 1986 ई. में प्रसिद्ध बालसाहित्यकार श्री चक्रधर 'नलिन' कृत 'अच्छे मार्ग चले जीवन' बुद्ध पर लिखा गया सुन्दर बालखंडकाव्य है। मैं तो चाहता हूँ कि राम, सीता, हनुमान, अर्जुन, भीम, प्रताप, शिवाजी, लक्ष्मीबाई, चन्द्रशेखर 'आज़ाद' जैसे महाकाव्य-नायकों पर बालमहाकाव्य रचे जाएँ। साथ ही, पारम्परिक कथा-लोककथा इत्यादि पर आधृत बालसाहित्य मात्र से सन्तोष न करते हुए नवीनतम एवं अधुनातन ज्ञान-विज्ञान पर आधृत बालसाहित्य भी रचा जाए :

राजा रानी की कहानी
अब तो बंद करो नानी
और बताओ हमें वो जो नई बात है
होता मीठा कैसे जल
कैसे पकते हैं फल
कैसे दिन होता, कैसे होती रात है? **—दामोदर अग्रवाल**

मेरी समझ में राजा-रानी की कहानी न तो बन्द हो सकती है और न होनी चाहिए क्योंकि राजाओं में शिवि, दधीचि, हरिश्चन्द्र, भगीरथ, राम, विक्रम, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, भोज, प्रताप, शिवाजी आदि भी सम्मिलित हैं, जिनके विषय में जाने बिना बालमस्तिष्क राष्ट्रीय मूल्यों से वंचित रह जाएगा। इन महामानवों की उपेक्षा से ही राष्ट्र का क्लीबकरण हुआ है, देशभक्ति का ह्रास हुआ है। प्रश्न नए आयामों के खोलने का है, पुराने आयामों को बन्द करने का नहीं। बालसाहित्य की सफलता इसमें है कि वह बाल-रुचि कपिल में भी चढ़ाए और कप्यूटर में भी, राम में भी बढ़ाए और रडार में भी, सीता में भी बढ़ाए और सेना में भी। वह अंगिरा और अश्विनीकुमार-बन्धुद्वय में भी रुचि ले, अल्बर्ट आंइस्टाइन और राइट-बन्धुद्वय में भी। उनके सर्वांगीण विकास के लिए चिर एवं युग का समाहार प्रस्तुत करना होगा :

अक्कड़ बक्कड़ बंबे बो
अस्सी नब्बे पूरे सौ
सौ में लागा तागा
देश हमारा जागा। **—राष्ट्रबन्धु**

हिन्दी-बालसाहित्य पर प्रसिद्ध बालसाहित्यकार स्व. श्री निरंकारदेव 'सेवक' ने 'बालगीत-साहित्य' शीर्षक उत्कृष्ट ग्रन्थ लिखा है। प्रसिद्ध बालसाहित्यकार एवं 'बालसाहित्य समीक्षा' के संपादक डॉ. श्रीकृष्णकुमार तिवारी 'राष्ट्रबन्धु' संकलित 'हिन्दी के बालसाहित्यकार' शीर्षक मूल्यवान ग्रन्थ में 375 बालसाहित्यकारों के नाम और पते दिए गए हैं। अच्छा होता यदि प्रमुख कृतियों के नाम भी दिए गए होते। कवि, बालसाहित्यसेवी एवं बालसाहित्यकार श्री विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद' एवं संपादक, हाइकूकार एवं बालसाहित्यकार डॉ. रमाकान्त श्रीवास्तव के संपादन में 'भारतीय बालसाहित्य के विविध आयाम' (1996-97 ई.) अपने विषय का स्फीत, विशद एवं अद्वितीय ग्रन्थ है। श्रीनाथ द्वारा (राजस्थान) के अविस्मरणीय हिन्दीसेवी एवं 'हरसिंगार'-संपादक श्री भगवतीप्रसाद देवपुर ने 'शिशु', बालसखा', 'शेरदिल', 'लल्ला', 'मनमोहन' (इलाहाबाद), 'बालविनोद', 'होनहार (लखनऊ), 'राजा बेटा', 'राजा भैया' (वाराणसी), 'बालक', मिश्र बन्धु' (पटना), 'चंपक', 'लोटपोट', 'मधु मुस्कान, 'सुमन सौरभ' 'नन्दन', 'नन्हें सम्राट', 'बाल भारती', 'पराग', 'इन्द्रजाल कॉमिक्स, 'दीवाना' (दिल्ली), 'बाल वाटिका' (भीलवाड़ा), 'देवपुत्र' (इन्दौर), 'फाल्कन', 'अमर चित्रकथाएँ' (मुम्बई) तथा दक्षिण की 'गुड़िया' और 'चन्दा मामा' पत्रिकाओं के उल्लेख किए हैं। इस समय 'बालसाहित्य समीक्षा (कानपुर), 'बालसेतु' (बस्ती) इत्यादि पत्रिकाएँ भी अच्छी सेवा कर

रही हैं। यदि अकारदिक्रम से नाम लिए जाएँ तो अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डॉ. आनन्दप्रकाश त्रिपाठी 'रत्नेश', आशारानी व्होरा, कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', कृष्ण विनायक फड़के, गोपालसिंह 'नेपाली', चन्द्रपालसिंह यादव 'मयंक', चक्रधर 'नलिन', ठाकुरप्रसाद सिंह, द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, नर्मदाप्रसाद खरे, निरंकारदेव 'सेवक', प्रेमचन्द, वल्लभदास बिन्नानी 'व्रजेश', महावीरप्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, यशपाल जैन, डॉ. रत्नलाल शर्मा, रमापति शुक्ल, राधाकृष्ण शर्मा, राधेश्याम 'प्रगल्भ', डॉ. रामकुमार वर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. रामवचनसिंह आनन्द, रामेश्वरदयाल दुबे, डॉ. रोहिताश अस्थाना, लल्लनप्रसाद व्यास, लल्लीप्रसाद पांडेय, विद्याभूषण 'विभु', विनयकुमार मालवीय, विनोदचन्द्र पांडेय 'विनोद', वृन्दावनलाल वर्मा, शकुन्तला सिरोठिया, स्व. डॉ. शोभनाथ लाल, डॉ. श्रीप्रसाद, संतराम बी. ए. सुभद्राकुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी इत्यादि उल्लेखनीय बालसाहित्यकार माने जाएँगे। बालपत्रपत्रिका-संपादक की दृष्टि से देवीदत्त शुक्ल, लल्लीप्रसाद पांडेय (बालसखा), श्रीनाथसिंह, लोकेश्वरन नाथ (दादाजी) 'बालमित्र', राजेन्द्र अवस्थी, कन्हैयालाल 'नन्दन', डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, स्व. जयप्रकाश 'भारती', डॉ. राष्ट्रबन्धु, डॉ. मुनिलाल उपाध्याय 'सरस' इत्यादि के कार्य भी स्मरणीय हैं। प्रसिद्ध बालकाव्यकार रामवचनसिंह 'आनन्द' ने विज्ञान को भी रोचक ढंग से प्रस्तुत किया है। गद्य में योगेन्द्रकुमार 'लल्ला', स्व. श्यामनारायण कपूर, दामोदर अग्रवाल इत्यादि ने भी इस दिशा में अच्छी सामग्री प्रस्तुत की है।[1]

22. दर्शनपरक साहित्य

"दृश्यते अनेन इति दर्शनः"। जो शास्त्र अध्येता को उसकी क्षमता के अनुरूप गहनतम सत्यों का साक्षात्कार या बोध या परिचय कराता है, उसे दर्शन कहते हैं। इन गहनतम सत्यों में परमात्मा, आत्मा, स्वर्ग, पुनर्जन्म, नाना ध्यान-मार्ग, नास्तिकता, आदर्शलोक, आदर्शराज्य इत्यादि का अनन्त विस्तार सन्निविष्ट है। औपनिषदिक अद्वैतवाद, गीतापरक आत्मवाद, सांख्यवाद, वैशेषिकवाद, न्यायवाद, मीमांसावाद, शून्यवाद, स्याद्वाद, शांकर अद्वैतवाद, द्वैतवाद, विशिष्टद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, त्रैतवाद (दयानन्द), भूमिस्वर्गीकरणवाद (अरविन्द) इत्यादि की व्यापकतम एवं गहनतम विविधता से सम्पन्न भारतीय दर्शन चिरकाल से सारे विश्व को प्रभावित करता आ रहा है, जैसाकि सुकरात, प्लेटो, कांट इत्यादि पर प्रभाव से ही स्पष्ट है। प्रसिद्ध है, "जहाँ से विश्व का दर्शन समाप्त होता है वहाँ से भारत दर्शन आरम्भ" (इंडिअन फिलॉसॉफी बीगिन्स व्हर द फिलॉसॉफी ऑफ़ द वर्ल्ड एंड्स)। टी.एस. इलिअट (एलिअट) ने स्वीकार किया है कि पंतजलि जैसे भारतीय ऋषियों की तुलना में पश्चिम के दार्शनिक पीठ पर बस्ते लटकाए स्कूली बच्चे लगते हैं। ब्रह्मास्थानप्रधान मज़हबों में दर्शन के लिए अवकाश ही नहीं है। सूफ़ी दर्शन की भारतीय अद्वैतवादमूलकता निर्विवादतः सिद्ध है। संस्कृत के दर्शन-साहित्य का महतोमहीयान रूप विश्वविश्रुत है। उसकी समता का प्रश्न नहीं उठता। किन्तु अंशतः सरहपा इत्यादि सिद्धों, गोरखनाथ इत्यादि योगियों, कबीर इत्यादि सन्तों, सूर इत्यादि कृष्णभक्तों तथा तुलसी की रामभक्ति, प्रसाद का समरसतावाद इत्यादि में दर्शन का सन्निवेश अतीव प्रभावी है, इससे सन्देह नहीं। गद्य में भी डॉ. भगवानूदास ('पुरुषार्थ' इत्यादि), आचार्य नरेन्द्रदेव (बौद्ध धर्म-दर्शन), डॉ. सम्पूर्णानन्द (चिद्विलास), डॉ. बलदेव उपाध्याय ('भारतीय दर्शन', 'बौद्ध दर्शन मीमांसा', 'शंकरचार्य' इत्यादि), डॉ. उमेश मिश्र (भारतीय दर्शन), डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' (भक्ति का विकास), डॉ. बलदेवप्रसाद मिश्र (तुलसी-दर्शन), डॉ. उदयभानु सिंह (तुलसी-दर्शन-मीमांसा), अड़गड़ानन्द ('यथार्थ-गीता' इत्यादि), आ. तुलसी ('धर्म-सहिष्णुता', 'सर्वधर्म-सद्भाव' इत्यादि), मुनि नथमल अथवा युवाचार्य महाप्रज्ञ ('जैन धर्मः उद्भव और विकास', 'महावीरः मेरी दृष्टि में'), डॉ. चन्द्रधर शर्मा (बौद्ध दर्शन) के विश्व-स्तरीय ग्रन्थ उपलब्ध हैं। डॉ. दीनदयालु गुप्त (अष्टछाप और वल्लभ-संप्रदाय), स्व. डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' (भारतीय साधना और सूर-साहित्य), डॉ. विजयेन्द्र स्नातक (राधावल्लभ-संप्रदायः सिद्धान्त और साहित्य) इत्यादि ने, हिन्दी-कृष्णकाव्य की दार्शनिक महत्ता के अनेक पक्षों की प्रशस्य मीमांसा प्रस्तुत की है। डॉ. फ़तेहसिंह (कामायनी-सौन्दर्य), डॉ. रामलालसिंह (कामायनी-अनुशीलन) इत्यादि ने शैव-आनन्दवाद (प्रत्यभिज्ञा दर्शन) पर प्रकाश डाला है, जिसे अन्य अनेक विद्वानों ने सविस्तार विवेचित-विश्लेषित किया है। आ. रजनीश ने प्रायः सभी निर्गुणप्रधान सन्तों पर राशि-राशि ग्रन्थ प्रस्तुत किए हैं, जो दर्शन-निष्पन्न हैं। आनन्दशंकर माधवनू, आ. विद्यासागर, अड़गड़ानन्द इत्यादि ने भी दार्शनिक ग्रन्थ रचे हैं। इस प्रकार, हिन्दी-कविता में व्याप्त दर्शन के आधार पर उसका स्वतन्त्र दर्शनपरक साहित्य भी विकसित हो चला है जिसका युगबद्ध

---

[1] मेरा 'बालसागर' ('गोरिल्ले का ब्याह और अन्य रोचक बाल कथाएँ' एवं 'तेरह प्रेरक बाल कथाएँ' द्विरूपों में भी) एवं 'भालू जी कनॉट प्लेस गए' गद्य-पुस्तकें तथा 'सितारे' एवं 'सबसे प्यारा अपना देश' कवितासंग्रह प्रकाशित हो चुके हैं।

विवेचन करने वाले अनेक शोधग्रन्थ भी उपलब्ध हैं। अच्छा हो, यदि 'हिन्दी-साहित्य का दार्शनिक इतिहास' तथा 'हिन्दी का दर्शनपरक साहित्य' जैसे स्वतन्त्र-ग्रन्थ या शोध-ग्रन्थ प्रकाश में आएँ।

23. वेदपरक साहित्य

वेद विश्व-साहित्य के आदिग्रन्थ हैं, जैसाकि उनके 'श्रुति' (कान) कहे जाने से ही स्पष्ट है (जब न लिपि थी, न इष्टिका-लेखन, न भूर्ज्यपत्र, न पेपिरस, न पार्चमेन्ट, न क़ाग़ज़, न स्याही, तब की प्राचीनता का सूचक), जैसाकि उनमें व्यक्त प्राचीनतम धर्म-साधना एवं अन्य वर्ण्यविषयों से ही स्पष्ट है। घोर ईसाई मैक्स मुलर तक ने ऋग्वेद को ''मानव-जाति के पुस्तकालय का प्रथम ग्रन्थ'' माना। ऋग्वेद के जलसृष्टिवादी 'नासदीय सूक्त' का बाइबिल के 'जनन' (जिनेसिस) पर भारी प्रभाव एकदम स्पष्ट है। ऋग्वेद के ''एकं सद् विप्रा बहुधा वदंति'' एवं ''एक सन्तं बहुधा कल्पयंति'' जैसे मन्त्रों का उपनिषद् के सूक्ष्म सर्ववाद (अद्वैतवाद), बाइबिल के स्थूल एकेश्वरवाद, कुरान के कठोर एकेश्वरवाद इत्यादि पर प्रभाव सर्वविज्ञान है। मनु ने ''वेदोऽखिलोधर्ममूलम्'' की स्थापना ठीक ही की है। ऋग्वेद के 'पुरुष सूक्त' का पुराणों के विशद अवतारवाद, ईसाई-बाइबिल (न्यू टेस्टामेन्ट) के ईश्वरपुत्रवाद, कुरान के पैग़म्बरवाद पर प्रभाव पड़ा है। प्राचीनता, प्रकृति, दर्शन, कविता एवं कला की दृष्टियों से ऋग्वेद विश्व का अद्वितीय ग्रन्थ है। स्वभावतः बौद्धिककाल की चेतना ने वेद पर प्रचुर कार्य किया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थप्रकाश' एवं 'ऋग्वेदादि-भाष्य भूमिका' में अपने ढंग से वेद-निरूपण किया है, तो जयदेव वेदालंकार ने आर्यसमाजी पद्धति पर विशद हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया। वेदमूर्ति श्रीपाद दामोदर सातवलेकर ने वेदानुवाद की दिशा में हिन्दी को भी अपनाया है। पं. रामगोविन्द त्रिवेदी ने 'हिन्दी-ऋग्वेद' (सायण के भाष्य का सुन्दर अनुवाद और आरम्भ में उत्तम भूमिका) प्रस्तुत कर अतीव प्रणम्य कार्य किया है। श्रीराम शर्मा आचार्य ने वेदों की सरल हिन्दी-टीकाएँ लिखी हैं। पं. रघुनाथ शर्मा कृत 'वैदिक सम्पत्ति' एक सर्वप्रथम ग्रन्थ ही है, जिसके संस्करण-पर-संस्करण निकलते जा रहे हैं। आ. अभयदेव ने वेद, वैदिक संस्कारों, यज्ञ इत्यादि पर अनेक लेख लिखे जो 'ब्राह्मण की गौ', 'यज्ञ और योग', 'तरंगित हृदय' प्रभृति ग्रन्थों में डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी ने सम्पाददत किए हैं। आ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'वेदमूर्ति' आ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम' (सूर-साहित्य के सीमान्त, 'विरहिणी' के महाकाव्यकार', 'सोम-सुधा स्तोत्रम्' के संस्कृत-कवि) ने 'वैदिक एवं 'चतुर्वेद-मीमांसा' प्रभृति ग्रन्थों में गहन एवं व्यापक वेद-विवेचन द्वारा ज्ञान-विज्ञान की स्तुत्य सेवा की है। इस प्रकार, हिन्दी में प्रतीकवादी आर्यसमाजी शैली (दयानन्द, रघुनन्दन शर्मा, जयदेव वेदालंकार, आ. अभयदेव, मुन्शीराम शर्मा 'सोम', विशुद्धानन्द मिश्र इत्यादि में) तथा यथार्थवादी सनातनी शैली (सातवलेकर, रामगोविन्द, त्रिवेदी, श्रीराम शर्मा आचार्य इत्यादि में) दोनों में ही प्रचुर एवं प्रभावी वेदपरक साहित्य उपलब्ध होता है। 'वैदिक साहित्य और संस्कृति' ग्रन्थों को रचकर डॉ. किरणकुमारी (पटना) वैदिककाल के ग्रन्थकारों में प्रशस्यतः चिरस्मरणीय हो गई हैं।

24. योगपरक साहित्य

योग का अर्थ है, आत्मशक्ति का पराशक्ति से कैवल्य।[1] ससीम एवं असीम की एकानुभूति का नाम योग है। योग का जन्म भारत में हुआ, जैसाकि लगभग 5-6 सहस्त्र वर्ष प्राचीन मोहनजोदड़ो[2] की पशुओं से घिरी ध्यानस्थ मानव-मुद्रा (पशुपति) से ही प्रमाणित है। याज्ञवल्क्य, जनक, उद्दालक, श्वेतकेतु, भृगु (वरुणपुत्र), श्वेताश्वतर, कपिल, कणाद, बुद्ध, महावीर, कणाद, बुद्ध, महावीर, पतंजलि, शंकरचार्य, सरहपा, गोरक्षनाथ (गोरखनाथ), रामकृष्ण परमहंस, अरविन्द, रमण महर्षि, मुक्तानन्द परमहंस, महेश योगी, रजनीश, आनन्दशंकर माधवन्, इत्यादि ने आस्तिकतामूलक-योग, नास्तिकतामूलक-योग, राजयोग, हठयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, सिद्धयोग, ध्यानयोग, कामयोग इत्यादि का जितना और जैसा निरूपण किया है उतना और वैसा तो क्या उसका शतांश भी शेष विश्व मिलकर भी नहीं कर पाया, यद्यपि मूसा, लाओ-त्से, सुकरात, ईसा, मोहम्मद इत्यादि में भी भारत-प्रेरित योग-प्रक्रिया के दर्शन अनायास ही हो जाते हैं। हिन्दी में मौलिक योग-साहित्य प्राप्त है। सरहपा इत्यादि सिद्धों, गोरखनाथ इत्यादि नाथों तथा कबीर इत्यादि सन्तों, नानक इत्यादि गुरुओं का योगकाव्य प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। गद्य की दिशा में सर्वश्रेष्ठ स्थान है स्वामी मुक्तानन्द परमहंस का, जिनके

---

1. केवलता, एकपन, एकता, तादात्म्य।
2. मुर्दों का टीला। 'मुर्दों का टीला' त्वरित-लेखक रांगेय राघव का एक स्थूल-पश्चिमीवादी उपन्यास भी है।

'चित्शक्तिविलास', 'परमार्थप्रकाश', 'भगवान् नित्यानन्द' (गुरु पर ग्रन्थ), 'मुक्तेश्वरी' (वस्तुतः गद्यगीत), 'लल्लेश्वरी' (कश्मीर की योगिनी लल्लेश्वरी की वाणी का अनुवाद) इत्यादि ग्रन्थों में सिद्धयोग (जो कुंडलिनी-शक्ति के प्रतिपादन में हठयोग से भी संबद्ध है किन्तु कठोर साधना का एकान्त-प्रतिपादन नहीं) का साधिकार एवं ललित, प्रेरक एवं आनन्ददायी निरूपण किया गया है। सम्पूर्णानन्द के 'चिद्विलास' (गद्य) एवं 'गगनगुफा' (कवितासंग्रह) में औपनिषदिक योग एवं हठयोग के अच्छे दर्शन होते हैं। हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ने 'नाथ-सम्प्रदाय' एवं 'कबीर' ग्रन्थों में हठयोग पर भी गम्भीर प्रकाश डाला है। बलदेव उपाध्याय ने 'भारतीय दर्शन' एवं 'बौद्ध मीमांसा' में वैदिक एवं बौद्ध योग-पद्धतियों पर प्रशस्य प्रकाश डाला है। रजनीश के असंख्य ग्रन्थों में से 'ताओ उपनिषद्' में लाओ-त्से की योग-पद्धति संकेतित है, कबीर इत्यादि पर प्रस्तुत ग्रन्थों में हठयोग की झलकियाँ हैं, जो योग के कतिपय रूपों से परिचय तो कराती ही हैं। मैंने भी 'ध्यान के गान' एवं 'योग के अद्भूत अनुभव' ग्रन्थ लिखे हैं। अनेक योग संस्थानों द्वारा समय-समय पर पुस्तकें, स्मारिकाएँ इत्यादि निकलती रहती हैं, जिनमें से अनेक में योग से संबद्ध रूपों का परिचय प्राप्त हो जाता है।

25. पत्र-साहित्य

व्यक्ति-उत्कर्ष के बौद्धिककाल में, और विशेषकर बीसवीं सदी के उथल-पुथल से भरे युगों में, पत्रसाहित्य का प्रशस्य विकास स्वाभाविक है। पत्र के लेखक एवं प्राप्तिकर्त्ता के दोनों व्यक्तित्वों को अपेक्षाकृत अधिक अनौपचारिकता एवं सत्यता के साथ विवृत करने के कारण पत्र सृजनात्मक साहित्य के वर्ग में आ जाते हैं। सहज मानवीय प्रवृत्तियों एवं भंगिमाओं की जैसी झलकियाँ पत्रों में मिलती हैं, वैसी अन्यत्र नहीं। राठौड़राज प्रिथीराज द्वारा राणा प्रताप को लिखा गया काव्यपत्र हिन्दी-पत्रसाहित्य में सर्वश्रेष्ठ है। मीराँ-तुलसी-पत्रव्यवहार प्राप्त है किन्तु वह प्रामाणिक नहीं माना जाता है। निराला ने पत्र-शैली की कविता (शिवाजी का पत्र) में अच्छी सफलता पाई है, किन्तु इसका अतिविस्तार खटकता है। इस शैली का प्रयोग प्रसाद इत्यादि कथाकारों ने भी किया है। किन्तु यह सब पत्रसाहित्य न होकर पत्र-शैली का साहित्य है। 'शिवशम्भू का चिट्ठा' तथा 'चिट्ठे और ख़त' (बालमुकुन्द गुप्त) एवं 'दुबेजी की चिट्ठी' (विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक) पत्र-शैली के साहित्य के प्रख्यात निदर्शन हैं।

1905 ई. में महात्मा मुन्शीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) द्वारा सम्पादित 'स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्र' हिन्दी में पत्र-साहित्य का प्रथम ग्रन्थ है किन्तु इसका शीर्षक विवादस्पद है क्योंकि इसमें अन्यों के पत्र अधिक हैं, दयानन्द के कम। 1909 ई. में पं. भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित 'ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार' विषय के साथ न्याय करनेवाला ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रन्थ है।

हिन्दी-पत्रसाहित्य के सीमान्त आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी हैं जिनके हिन्दी एवं अंग्रेज़ी के पत्रों की संख्या सहस्त्रों में जाती है जिनके कई संकलन भी निकले हैं तथा जो अन्य साहित्यकारों से संबद्ध पत्रसाहित्य में भी खूब निकले हैं। श्रीधर पाठक को लिखे गए आ. द्विवेदी के अंग्रेज़ी-पत्रों का संग्रह (जो पाठक के पौत्र पद्मधर पाठक ने प्रकाशित कराया है) उनके अगाध अंग्रेज़ी भाषा-ज्ञान की प्रशस्य सूचना देता है। बैजनाथसिंह 'विनोद' ने 'द्विवेदी-पत्रावली' (1954 ई.) सम्पादित की है। आ. किशोरीदास वाजपेयी द्वारा प्रस्तुत 'साहित्यिकों के पत्र' (1958 ई.) भी उल्लेख ग्रन्थ है। प्रेमचन्द के हिन्दी-अंग्रेज़ी पत्र भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। अमृतराय ने 'चिट्ठी-पत्री' (दो भाग-1970 ई.) में प्रेमचन्द के पत्रों का सम्पादन किया है। महावीरप्रसाद द्विवेदी और प्रेमचन्द पत्र-संस्कृति के दो प्रकाश-स्तम्भ हैं; बच्चन इस दिशा में तृतीय अभिधान हैं। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा एवं डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा सम्पादित 'प्राचीन हिन्दी-पत्र-संग्रह' (1959 ई.) एवं वियोगीहरि द्वारा सम्पादित 'बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र' (1960 ई.) अपने अटपटे शीर्षकों के बावजूद साहित्येतिहास की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। रामचन्द्र शुक्ल, महादेवी वर्मा एवं अज्ञेय पत्र-संस्कृति की दृष्टि से बेहद पिछड़े व्यक्ति रहे हैं। 'महावीरप्रसाद द्विवेदी के पत्र' (अंग्रेज़ी में पृथक् ग्रन्थ भी), 'प्रेमचन्द के पत्र' (दो भाग), 'निराला के पत्र', 'पन्त के पत्र', 'माखनलाल चतुर्वेदी के पत्र' इत्यादि हिन्दी साहित्य की निधियाँ हैं। रत्नशंकर प्रसाद द्वारा प्रस्तुत 'प्रसाद को पत्र' ('प्रसाद के पत्र' नहीं) ग्रन्थ अपनी विविधता में विधा का वित्त है। 'सम्मेलन पत्रिका' का पत्र-विशेषांक (1985 ई.), डॉ. कमल पुंजाणी का एतद्विषयक शोधकार्य[1], डॉ. त्रिलोकीनाथ ब्रजबाल, डॉ. शारदा शर्मा एवं डॉ. कमलसिंह द्वारा सम्पादित अतीव मूल्यवान एवं स्फीत 'संस्कृति, साहित्य और भाषा' (जिसमें डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' के तथा उनको लिखे गए पत्रों का संकलन प्राप्त होता है) तथा श्री कैलाश 'कल्पित' द्वारा प्रस्तुत 'रवीन्द्र-पत्रांजलि', 'पत्रों के दर्पण में शरत्चन्द्र', 'अनुत्तरित पत्र' एवं 'पत्रलेखन-कला' शीर्षक ग्रन्थ पत्रसाहित्य के विधागत महत्त्व के

---

[1] 'साहित्यकार-2' (रायबरेली, सं. श्री राजेन्द्रमोहन त्रिवेदी 'बन्धु'), पृष्ठ 45 में डॉ. सतीशराज पुष्करणा की संक्षिप्त टिप्पणी से।

सूचक हैं। कल्पित जी द्वारा प्रस्तुत 'सृजन-पथ के पत्रः कुछ प्रेषित कुछ प्राप्त' 220 साहित्यकारों, नेताओं, पत्रकारों एवं पाठकों से पत्राचार पत्र-साहित्य का एक विलक्षणग्रन्थ है जिसमें प्रायः 1955-93 ई. के साहित्य का परिचय भी प्राप्त हो जाता है, वादबद्ध साहित्यकारों की पैंतरेबाज़ी भी स्पष्ट हो जाती है, तपस्वी साहित्यकारों में भी कठिन साहित्य-साधना भी उजागर हो जाती है—पाठकों के पत्रों का समावेश कल्पित जी की साहित्य को एक देन मानी जा सकती है। मैं तो 'पाठकालोचना' को साहित्य की एक नई विधा के रूप में देखने को उत्सुक हूँ क्योंकि साहित्यकारों की आलोचना प्रायः वादग्रस्त, पूर्वाग्रहग्रस्त एवं अनध्ययनग्रस्त हो सकती है। श्रीमती कान्ति शर्मा द्वारा सम्पादित ''मेरे आराध्य डॉ. त्रिभुवननाथ शर्मा 'मधु' की साहित्य-साधना'' (1991 ई.) में भी बहुत-से पत्र संकलित किए गए हैं।

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, डॉ., मुन्शीराम शर्मा 'सोम', श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर', डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, गणेशशंकर विद्यार्थी, भगतसिंह प्रभृति स्फीत एवं परिसीमित पत्रलेखकों के पत्र साहित्यिक एवं राष्ट्रीय इतिहास की निधियों के रूपों में संकलित किए जाने चाहिए। श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' जैसे सतत् अटनशील 'दिवंगत हिन्दीसेवी' (दो भाग) के प्रस्तोता तथा ऐसे ही कुछ अन्य साहित्यकारों के पास पत्रों के जो अखूट भंडार हैं, वे प्रकाश में आएँ तो साहित्य के सत्य को बल मिलेगा। नेहरू द्वारा प्रस्तुत 'बंच ऑफ़ ओल्ड लेटर्स' का 'कुछ पुरानी चिट्ठियाँ' अनुवाद ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण पत्रसंग्रह है। इसके कुछ पत्र मूलतः हिन्दी में भी हैं, जैसे कि डॉ. राजेन्द्र प्रसाद का।

पत्रलेखन में संक्षिप्तता, विन्दुबद्धता, रोचकता एवं संप्रेषणीयता अपरिहार्य गुण माने जा सकते हैं। यह रूढ़ि कि पत्र लेखक के एकाधिकार की वस्तु है अतः या तो उसके जीवनकाल में न प्रकाशित किया जाए या उससे पूछकर ही प्रकाशित किया जाए, युक्तियुक्त नहीं लगती (यद्यपि इसे वैधानिक बल प्राप्त है—पन्त और बच्चन का वाद साहित्येतिहासिक प्रमाण है ही जिसमें पन्त विजयी हुए थे)। पत्र प्राप्तिकर्त्ता के हाथ आकर उसकी निधि बन जाता है तथा अपनी निधि के प्रयोग का अधिकार एक निर्विवाद बिन्दु है। अतः पत्राधिकारी औचित्य एवं अवसर के अनुरूप पत्र प्रकाशित कराए तो समीचीन ही है। इससे अनेक अमूल्य पत्रों के विनाश या उपेक्षा या महत्त्वहीनता की सम्भावना भी या तो नहीं रहेगी या कम हो जाएगी।

क्या ही अच्छा हो यदि प्रेमीजन भी महत्त्व का सम्यक् आकलन कर अपने तथा प्राप्त पत्र प्रकाशित कराने लगें, जो सर्वाधिक अनुभूतिपूर्ण एवं साहित्यिक होंगे। गाँधी के मीरा बेन (विदेशी शिष्या एवं स्नेहपात्रा) के लिखे गए अनेक तथा नेहरू के लेडी मॉउंटबैटेन को लिखे ढेरों प्रेमपत्रों में अनेकानेक प्रकाशित हुए है क़िन्तु भारत में नहीं, भारतीय भाषा में नहीं। स्व. राजनारायण, स्व. बीजू पटनायक (विजयानन्द पटनायक) के नाम स्व. इंदिरा गाँधी का एक भावपूर्ण प्रेमपत्र जनता को दिखाया करते थे, जो सिद्ध करता था कि राजनीतिजीवी भी मनुष्य ही होते हैं—किन्तु वह भी अब लुप्त हो चुका है।

26. चलचित्र-साहित्य

चलचित्र सर्वाधिक व्यापक जनमाध्यम है। इसमें साहित्य (कथा, नाट्य, गीत) संगीत, नृत्य, चित्र (यंत्रचित्र), स्थापत्य या शिल्प (रंगशाला) इत्यादि प्रायः समग्र ललितकलाओं का समाहार होने के कारण विलक्षण प्रभाव निष्पन्न होता है। चलचित्र से संबद्ध नायक-नायिका, गायक-गायिका इत्यादि बहुत लोकप्रिय हो जाते हैं। इनमें कई राजनीति में भी जम सकते हैं। भारत में प्रथम अवाक्-चलचित्र (मूवी) 'हरिश्चन्द्र' दादासाहब फाल्के ने 30 मई, 1912 को मुम्बई में प्रदर्शित किया था। प्रथम सवाक्-चलचित्र (टॉकी) 'आलमआरा' 1931 ई. में बना। हिन्दी-चलचित्र लोकप्रियता में सर्वोपरि है। अनेक हिन्दी कवि एवं कथाकार चलचित्र-जगत् में गए। स्व. नरेन्द्र शर्मा, स्व. गोपालसिंह नेपाली, नीरज, स्व. वीरेन्द्र मिश्र, सन्तोष आनन्द इत्यादि ने इस दिशा में अच्छा नाम कमाया। भवानीप्रसाद मिश्र जैसे कवि को भी चलचित्र के द्वार खटखटाने पड़े थे। उनकी सर्वोत्तम कविता 'गीतफ़रोश' इसी का परिणाम लगती है। कई विशुद्ध हिन्दी-चलचत्रिकवि भी हुए हैं, जिनमें स्व. रामचन्द्र द्विवेदी 'प्रदीप', स्व. डी. एन. मधोक, स्व. भरत व्यास, स्व. शैलेन्द्र इत्यादि प्रमुख हैं। 'हिन्दी कवियों के चलचित्रगीत' शोध का ठीकठाक विषय है। हिन्दी-कथाकारों में प्रेमचन्द, वृन्दावनलाल वर्मा, सुदर्शन, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा एवं कमलेश्वर चलचित्र-जगत् में गए अवश्य किन्तु देर-सबेर लौट आए। 'हिन्दी के कथाकार एवं चलचित्र' शोध का रोचक विषय है। शुद्ध चलचित्र-कथाकार के रूप में पं. मुखराम शर्मा ने हिन्दी का झंडा ऊँचा रखा। वैसे, चलचित्र (जो कम-से-कम भारत में 'छलचित्र' है—अतिरंजना में, अतिसंवेदना में, अतिकरप्रवंचना में) की रंगीनी में उर्दू-शायर खूब ज़ज्ब हुए,

जिनमें शकील बदायूँनी, साहिर लुधियानवी, मजरूह सुल्तानपुरी, हसरत जयपुरी, कैफ़ी आज़मी, जावेद अख़्तर इत्यादि प्रमुख हैं; इन शायरों ने हिन्दी-चलचित्र के गीतों में ठूँस-ठूँस कर अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्द भरे जो कारदार, महबूब, के. आसिफ़ इत्यादि निर्माताओं, दिलीपकुमार, अजीत, रामकुमार[1], जगदीप इत्यादि मुसलमान अभिनेताओं, नर्गिस (विवाह-पूर्व), नूरजहाँ, सुरैया, मीनाकुमारी, मधुबाला, निम्मी, श्यामा, अमीता, कुमकुम, मन्दाकिनी इत्यादि मुसलमान अभिनेत्रियों तथा अमीरबाई कर्णाटकी, जौहराबाई अम्बालेवाली, ख़ुर्शीद, शमशाद बेग़म, नूरजहाँ (अभिनेत्री भी), सुरैया (अभिनेत्री भी), मुबारक बेग़म इत्यादि गायिकाओं को बेहद रास आए। बहराल, 'उर्दू-शायरों के हिन्दी-चलचित्रगीत' भी शोध का अच्छा विषय है। स्व. राजेन्द्रकृष्ण भी हिन्दी-कवि से अधिक उर्दू-शायर थे किन्तु उन्होंने उर्दूबाज़ी में दिलचस्पी नहीं ली। स्व. आनन्द बख़्शी भी 'धन्धे' (इंडस्ट्री) पर छा गए थे। इन सब की 'कृपा' से 'व्यावसायिक चलचित्र-कवियों के गीत' कम-से-कम लघुप्रबन्ध का विषय तो बन ही चुका है। कुल मिलाकर, लगभग सौ चलचित्र-गीत ऐसे हैं जिनका साहित्यिक महत्त्व नकारा नहीं जा सकता। 'हवा तुम धीरे बहो मेरे आते होंगे चितचोर', 'पपीहा रे मोरे पिया से कहियो जाय', 'चाँद से प्रीत लगाए पंछी बावरा', 'भारत की इक सन्नारी की हम कथा सुनाते हैं', 'आएगा आनेवाला आएगा', 'वतन के वास्ते वतन के नौजवाँ शहीद हो', 'बदनाम न हो जाए मोहब्बत का फ़साना', 'तू गंगा की मौज मैं जमना की धारा', 'मन तरसत हरि-दरसन को आज', 'बचपन की मोहब्बत को', 'माँझी ले चल पार', 'वहाँ कौन है तेरा', 'ओ जानेवाले हो सके तो लौट के आना', 'ज्योति-कलश छलके', 'ओ कौन चित्रकार है', 'स्यामल बरन', 'ज़िन्दगी इक सफ़र है सुहाना' इत्यादि निस्सन्देह उत्कृष्ट गीत हैं जिनका व्यवस्थित संकलन अपेक्षित है। चलचित्र-गीतों पर शोधकार्य हुए हैं, बच्चन श्रीवास्तव ने चलचित्र-इतिहास भी लिखा है। श्रीहरमन्दिरसिंह 'हमराज' (कानपुर) ने 'हिन्दी फ़िल्म-गीत कोश' (पाँच खंड) का स्मरणीय-उल्लेखनीय-पठनीय संकलन (श्रीमती सतिंदर कौर द्वारा प्रकाशित) किया है। इसके आधार पर चलचित्र-गीतों में प्रेम, मिलन, विरह, सौन्दर्य, लोरी, बालगीत, प्रेरणागीत, प्रगतिगीत, राष्ट्रीयगीत, नश्वरतागीत, मृत्युगीत इत्यादि का विश्लेषण किया जा सकता है। चलचित्र-पत्रकारिता का अपना स्वतन्त्र महत्त्व है।

27. शिकार-साहित्य

आखेट प्राचीन काल में वीरकर्त्तव्य-वीरक्रीड़ा एवं मध्यकाल में ऐश्वर्यलीला-संधानशक्ति का प्रतीक रहा है, जिसके वर्णन रामायण, महाभारत, ओडिसी, लोकगीत, लोककथा इत्यादि तक प्रसरित हैं। आधुनिक काल के जनसंख्या-विस्फोट में आखेट को नाम मात्र का ही महत्त्व प्राप्त हो सकता है। मनुष्य का पेट इतना अधिक बढ़ गया है कि पर्वत, वन, नदी, निर्झर, पशु, पक्षी, सरीसृप, सब उसमें समाते जा रहे हैं! फिर भी, आखेट-साहित्य अपनी रोमांचकता में अब भी रोचक तो लगता ही है। आखेट के अपरिहार्य तत्त्व हैं साहस, क्षेत्रज्ञान, पशुप्रवृत्तिबोध एवं तत्क्षणक्रियाविवेक, जो आखेटक के एकसाथ ही वीर, बलवान एवं बुद्धिमान होने की अपरिहार्यता के सूचक हैं। हिन्दी साहित्य में तुलसीदास के आखेट-वर्णन (प्रतापभानु एवं राम के संबद्ध) विश्व-स्तरीय हैं, जिनमें पशुप्रवृत्ति की चित्रसम्पन्नता अतीव प्रभावी है। उनके आखेटरत राम के छविचित्र (मानस, कवितावली, गीतावली) भी विश्व-कविता में सर्वथा अद्वितीय हैं। उपन्यास-साहित्य में वृन्दावनलाल वर्मा ने उत्कृष्ट आखेट-चित्रण किया है। उन्होंने शिकार-साहित्य में भी योगदान किया है। हिन्दी के शुद्ध शिकारसाहित्यकारों में श्रीयुत् श्रीराम शर्मा[2] का नाम सदा याद किया जाता रहेगा, जिनका 'शिकार' एवं 'प्राणों का सौदा' विश्व-स्तरीय मौलिक-ग्रन्थ है। 'जंगल के जीव' उनकी एतद्विषयक अन्य कृति है। श्रीराम शर्मा हिन्दी के जिम कॉर्बेट हैं। स्वयं बहुत सफल शिकारी होने के कारण उनका शिकार साहित्य शतशः प्रात्ययिक है (तथा ऐसा ही लगता भी है)[3] राजा यादवेन्द्रदत्त दुबे ने 'अद्भूत शिकार' एवं 'शेर और शिकारी' ग्रन्थ लिखकर इस विधा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

समय की अनुकूलता के कारण शिकार-साहित्य की रचना नहीं हो पा रही है। सुरजीत ने 'शिकारनामा' शीर्षक एक अतीव रोचक एवं ज्ञानवर्द्धक पुस्तक में विश्व के अनेक विख्यात शिकारियों के अनेक पशुओं से संबद्ध शिकारों पर लेखों का अनुवाद के द्वारा इस दिशा में अच्छा कार्य किया है, जो मौलिक न होने पर भी तथा लेखक के शिकारी न होने पर भी उल्लेखनीय लगता है। उनकी 'शिकार की रोमांचकारी कहानियाँ' पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। प्रत्येक पशु या पक्षी स्वरक्षावृत्ति में पर्याप्त सक्षम होता है। पशु का प्रेमलोक भी कम आकर्षक नहीं है। जन्म से जीवन-यापन, जीवन-संघर्ष इत्यादि तक पशु-जीवन मानव-जीवन से मूल अभिन्नता के नाना बिन्दुओं

---

[1] बाद में हिन्दू?

[2] वेद-विद्वान् श्रीराम शर्मा आचार्य (उपनाम 'मत्त') एवं श्रीराम शर्मा 'राम' से भिन्न।

[3] उन्होंने 'बोलती प्रतिमा', 'संघर्ष और समीक्षा' जैसे अन्य ग्रन्थ भी लिखे हैं।

से ऐसा ओतप्रोत है कि अद्वैत-चिन्तन तक की प्रेरणा दे सकता है। अब शिकार पर रोक (जो सती पर रोक के सदृश सर्वथा प्रशस्य है) के कारण यह विधा अतीतगत हो गई है।

28. पत्रकारिता

संप्रति पत्रकारिता नेता-चाटुकारिता, पूँजीपति-दासता, लेखिका-शोषण, लेखक-प्रपीड़न इत्यादि की विगर्हणीय सूचक बन गई है। पत्रकारिता छत्रकारिता बन गई है। समाचारपत्र अनाचारपत्र बन गए हैं जिनमें अपराध, यौन (चलचित्र-प्रधान) एवं क्रीड़ा का त्रित् छा गया है। दुर्दर्शन, आभासबानी, अनाचारपत्र इत्यादि की छत्रकारिता ने मीडिया को 'मैडिया' बना डाला है। मेरी एक प्रतिक्रिया देखिए :

अक्सर उस गली से होकर गुज़रता था
किन्तु उस रात कुत्तों ने बड़ी आफ़त कर दी
मैंने साथी से कहा, ''अकेले नहीं छोड़ते?''
साथी ने उत्तर दिया ''जी, मैं पत्रकार हूँ!''

(वैसे, पत्रकार 'वाच-डॉग' होता ही है!) किन्तु हिन्दी-पत्रकारिता का इतिहास तपोज्ज्वल रहा है जो 30 मई, 1926 को पं. युगलकिशोर[1] शुक्ल (कानपुर-निवासी) के कलकत्ते से प्रकाशित साप्ताहिक 'उदन्त' मार्तण्ड' से आरम्भ होता हैं 'अक्षरा' (त्रैमासिक, सं. डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय) के जनवरी-मार्च, 1989 अंक में जे. एच. आनन्द ने अपने लेख 'हिन्दी के प्रथम समाचारपत्र' में ईसाई मिशनरियों के 'दिग्दर्शन' (1918 ई.) को यह श्रेय देना चाहा है किन्तु इसके हिन्दी-अंक नहीं मिल सके तथा 'गास्पल' मैगज़ीन (1820 ई.) का केवल एक अंक ही मिल पाया है।

ये दोनों ईसाइयत-प्रचारपत्र थे जिनका पत्रकारिता से कोई सम्बन्ध नहीं। मिश्रबन्धु एवं रामचन्द्र शुक्ल ने अपने अमर इतिहासों में पत्रकारों पर सोदाहरण प्रकाश डाला है। वेदप्रताप वैदिक एवं स्व. श्री जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी (पत्रकारद्वय) ने पृथक्-पृथक् पत्रकारिता के इतिहास पर स्फीत शोधग्रन्थ लिखे हैं। क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने 'हिन्दी के यशस्वी पत्रकार' शीर्षक ग्रन्थ प्रस्तुत किया है। पत्रकारिता इतर श्रेणी की साहित्यिकता कही जा सकती है। किन्तु हिन्दी के अनेक यशस्वी साहित्यकार इससे संपृक्त रहे हैं जिसके कारण इसे विशेष गौरव प्राप्त हुआ हैः भारतेन्दु (कविवचन- सुधा, हरिशचन्द्र मैगजीन, बालाबोधिनी), प्रतापनारायण मिश्र (ब्राह्मण), बालकृष्ण भट्ट (प्रदीप), राधाचरण गोस्वामी (भारतेन्दु), प्रेमघन (आनन्द-कादम्बिनी), महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी एवं देवीदत्त शुक्ल एवं श्रीनारायण चतुर्वेदी (सरस्वती), बालमुकुन्द गुप्त (भारतमित्र), बनारसीदास चतुर्वेदी (विशाल भारत), गणेशंकर विद्यार्थी (प्रताप), अम्बिकाप्रसाद गुप्त (इन्दु), निराला (मतवाला), रूपनारायण पांडेय (माधुरी), महादेवी वर्मा (चाँद), माखनलाल चतुर्वेदी (कर्मवीर), अज्ञेय (प्रतीक, नया प्रतीक, दिनमान), क्षेमचन्द्र 'सुमन' एवं नामवर सिंह (आलोचना), स्व. डॉ. प्रेमनारायण शुक्ल (सम्मेलन पत्रिका), स्व. धर्मवीर 'भारती' (धर्मयुग), राजेन्द्र अवस्थी (कादम्बिनी), गिरिजाशंकर त्रिवेदी (नवनीत), डॉ. मेघासिंह चौहान एवं डॉ. योगेन्द्रप्रसाद (पहले 'आदर्श कैयुदी', अंगतर 'मान-वीणिका'), डॉ. तोताराम गुप्त 'विरही' (क्रान्तिस्वर), डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया (पारिजात), स्वामी शयामानन्द सरस्वती (काव्य गंगा), डॉ. मोहम्मद अहमद (कान्ति) इत्यादि ने हिन्दी-साहित्य की प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष श्रीवृद्धि का परिचय दिया है। हिन्दी-पत्रकारिता आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं भारतेन्दु हरिशचन्द्र जैसे महतोमहीयान् निर्माताओं, निराला एवं अज्ञेय जैसे अमर कवियों, प्रतापनारायण मिश्र एवं बालकृष्ण भट्ट जैसे अमर निबन्धकारों तथा गणेशशंकर विद्यार्थी (प्रताप) एवं लाला जगतनारायण[2] (पंजाब केसरी) जैसे अमर शहीदों की ज्योति से जगमग है। स्वयं पत्रकार कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने 'शहीद पत्रकार शोएबुल्ला ख़ान' (हैदराबाद) पर लिखा है। अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी (स्व. प्रधानमन्त्री चरणसिंह जिनका चरणस्पर्श करते थे), लक्ष्मण नारायण गर्दे, बाबूराम विष्णु पराड़कर, सम्पूर्णानन्द, शिवपूजन सहाय, रामवृक्ष बेनीपुरी, स्व. लक्ष्मीशंकर व्यास, स्व. चन्दूलाल चन्द्राकर, स्व. अक्षयकुमार जैन, महावीर अधिकारी (देहान्त 2005 ई.), जगदीशचन्द्र झा, स्व. डॉ. रणधीर सिन्हा प्रभृति ने भी इसे गौरवान्वित किया है। स्व. श्रीपति लाल दास अपनी निःस्पृहता के कारण उतने विख्यात नहीं हुए जितने के वे अधिकारी थे किन्तु अंग्रेज़ी के अनेक एवं हिन्दी के 'भारत' (वाराणसी)[3] तथा 'हिन्दुस्तान' (नई दिल्ली) दैनिकों में उन्होंने

---

[1] आ. शुक्ल ने केवल पं. जुगुलकिशोर लिखा हैः शुक्ल शुक्ल लिखना भूल गए।

[2] इनके एक पुत्र रमेशचन्द्र चोपड़ा भी शहीद-पत्रकार के रूप में स्मरणीय हैं।

[3] बाद में प्रयाग (इलाहाबाद)।

उच्च स्तर की सेवाएँ कीं। यद्यपि स्व. रामनाथ गोयनका पत्रस्वामी थे, वस्तुतः पत्रकार नहीं, हिन्दी से अल्प संबद्ध भी रहे, तथापि जुझारूपन के कारण वे भी स्मरणीय हैं।

पत्रकारिता साधुमत एवं लोकमत में समन्वय स्थापित करने की कला है, जिसमें संक्षिप्तता, रोचकता, उत्सुकता, साधारणीकरण प्रभृति का अपरिहार्य किन्तु स्तरीय समावेश सरल कार्य नहीं है। संप्रति पत्रकारिता के गौरव के ह्रास के कारण नेताओं द्वारा गर्दभ-नियुक्तिवाद, पूँजीपतियों द्वारा वित्तपरक-नियुक्तिवाद, दुराचारियों का प्रवेश, पारिश्रमिक-लूटवाद इत्यादि हैं। किन्तु इन काराणों के बावजूद हिन्दी-पत्रकारिता नितान्त आदर्शहीन नहीं हुई तथा उसका भविष्य तिमिराच्छन्न नहीं है।

संप्रति साहित्यिक-पत्रकारिता, राजनैतिक-पत्रकारिता, वित्तीय-पत्रकारिता, चलचित्र पत्रकारिता, क्रीड़ा-पत्रकारिता, अपराध-पत्रकारिता इत्यादि के कारण पत्रकारितां के आयाम अत्यधिक विस्तृत हो गए हैं। फिर भी, साहित्यिक-पत्रकारिता अपनी अस्मिता बनाए है। डॉ. रामशरण गौड़ (इन्द्रप्रस्थ-भारती), स्व. श्री जयप्रकाश 'भारती' (नन्दन) श्री विनोदचन्द्र पांडेय एवं डॉ. विद्याबिन्दुसिंह (साहित्य-भारती), डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय (वागर्थ एवं ज्ञानोदय) आचार्य निशान्तकेतु (सुलभ-अंतरराष्ट्रीय के विख्यात विदेशवरी पाठक से प्रेरित 'चक्रवाक्') जैसे हिन्दीसेवी स्तर का निर्वाह कर रहे हैं। सामान्य-पत्रकारिता हो या साहित्यिक-पत्रकारिता, हिन्दी भारत में अग्रणी तथा संसार में अग्रणियों में एक है।

29. हिन्दी-शोधकार्य

हिन्दी-शोधकार्य संसार की किसी भी एक भाषा में हो रहे शोधकार्य से गुण में भी अधिक है, परिमाण में भी। विश्व की स्फीत भाषाओं में अंग्रेज़ी, चीनी और हिन्दी अग्रणी हैं, किन्तु एक तो अंग्रेज़ी और चीनी भाषाओं में शोधकार्य अर्से से चले आ रहने के कारण गुण-परिमाण रूढ़ एवं शिथिल हो चला है, दूसरे इनसे सम्बन्धित देशों में साहित्य पर वाणिज्य एवं विज्ञान को अत्यधिक वरीयता प्रदान की जा रही है, जबकि हिन्दी का शोधकार्य अभी न पुराना पड़ा है, न हिन्दी-क्षेत्र साहित्य के रस से वंचित या वंचितप्राय ही हुए हैं। हिन्दी-शोधकार्य का गौरव अन्यविषयगत छात्रों, प्राध्यापकों एवं विद्वानों के ही हीनभावजन्य व्यंग्य से भी स्पष्ट होता है।

'अष्टछाप और बल्लभ-सम्प्रदाय' (डॉ. दीनदयालु गुप्त), 'भक्ति का विकास' (डॉ. मुन्शीराम शर्मा' 'सोम'), 'रीतिकाव्य की भूमिका' तथा 'देव और उनकी कविता' (डॉ. नगेन्द्र), 'राधाबल्लव-सम्प्रदायः सिद्धान्त और साहित्य' (डॉ. विजयेन्द्र स्नातक), 'प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन' (डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा), 'कविराज सुखदेव मिश्रः जीवन और साहित्य' (प्राचार्य डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र), नवरहस्यवाद और नई कविता' (डॉ. पवनकुमार), 'जायसी के अभिप्रेत आशय' (डॉ. विजयशंकर मिश्र) प्रभृति शोधग्रन्थ उच्चस्तर हैं, जो या तो प्रस्थान-प्रबन्ध हैं या दिशाविस्तारक या उपादेयतम।

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डॉ. माताप्रसाद गुप्त, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, डॉ. सुधीचन्द्र, डॉ. श्रीकृष्णलाल, डॉ. उदयभानु सिंह, डॉ. देवराज उपाध्याय, डॉ. मेहन्द्र भटनागर इत्यादि के निर्गुण-सम्प्रदाय, तुलसी, कबीर, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, उपन्यास, प्रेमचन्द आदि पर किए गए कार्य सराहनीय हैं। तुलसी पर हुआ स्फीत शोधकार्य शेक्सपीअर पर हुए शोधकार्य से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। संसार में किसी तीसरे कवि पर इतना और ऐसा कार्य नहीं हुआ।

उपाधि-असंपृक्त शोधकार्य भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हुए। मिश्रबन्धु, आचार्य शुक्ल, लाला भगवानदीन 'दीन', श्री चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी', पण्डित रामनरेश त्रिपाठी, श्री वियोगीहरि, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, पंडित कृष्णशंकर शुक्ल, आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, पंडित चन्द्रबली पांडेय, आचार्य क्षेमचन्द्र 'सुमन', डॉ. किशोरीलाल गुप्त इत्यादि नवकवि-प्रतिष्ठापन, भाषानिर्धारण सन्तकाव्य, सूफीकाव्य, अमितायामी साहित्यकार-परिचय इत्यादि दिशाओं में महत्त्वपूर्ण कार्य कर चुके हैं।

भाषाविज्ञान, भाषाविस्तार, विभाषाविस्तार, काव्यशास्त्र के रस, अलंकार, छन्द, शब्दशास्त्र, गुण-दोष, सौन्दर्यशास्त्र, प्रतीक उदात्त, बिम्ब मिथक[1], प्रत्येक विधा[2] एवं उपविधा, एक-एक कवि-नाट्यकार-उपन्यासकार-निबन्धकार-आलोचक-कहानीकार-एकांकीकार इत्यादि पर शत-शत शोधकार्य हो चुके हैं तथा हो रहे हैं। क्षेत्र-उपक्षेत्र-जनपद-नगर इत्यादि से संबद्ध अनेक शोधकार्य भी हो चुके हैं तथा हो रहा है।

---

1. 'कथा' ठीक रहता किन्तु जब चल ही पड़ा तो स्वागत है। चलानेवाले डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी हैं या डॉ. नगेन्द्र? उत्तर कठिन है।
2. उदाहरणार्थ, डॉ. महेश 'दिवाकर' ने स्वातन्त्र्योत्तर कहानी में केन्द्रित रहकर पीएच. डी. एवं डी. लिट्. किया, स्फीत शोधप्रबन्ध लिखे जो प्रकाशित भी हुए।

हिन्दी-शोधकार्य सर्वथा गौरवशाली है। उपाधिरहित अथवा उपाधिसहित तुलसी-शोध-समीक्षा-कार्य इसका एक अकाट्य निदर्शन है, जिसके साथ तासी, ग्रीयर्सन, मिश्रबन्धु, शुक्ल, श्यामसुन्दरदास, रामनरेश त्रिपाठी, माताप्रसाद गुप्त, मुन्शीराम शर्मा, रामदत्त भारद्वाज, राजपति दीक्षित, उदयभानु सिंह, रमानाथ त्रिपाठी, वचनदेव कुमार, युगेश्वर इत्यादि के मानक कार्य जुड़े हुए हैं। कुछ विशिष्ट विश्वविद्यालयों में ऐसे तुलसी-पुस्तकालय होने चाहिए, जिनमें दस हज़ार ग्रन्थ तो मिल ही जाएँ। रामचरितमानस, विनयपत्रिक इत्यादि के नानासंस्करण, इनकी नाना टीकाएँ, तुलसी तथा इन पर शोधग्रन्थ तथा अन्य ग्रन्थ, तुलसी तथा मानस पर रचित अनेक काव्य तथा शत-शत कविताएँ एक स्वतन्त्र पुस्तकालय के लिए पर्याप्त हैं।

हर्ष का विषय है कि बिजनौर के डॉ. गिरिराजशरण ने अपार परिश्रम और अव्याहत लगन के साथ हिन्दी के शोधप्रबन्धों पर स्फीत ग्रन्थरत्न प्रस्तुत किया है। इस दिशा में डॉ. उदयभानुसिंह भी स्मरणीय हैं।

30. कोश-साहित्य

कोश का जन्म भारत में हुआ था, जैसाकि महर्षि यास्क कृत 'निरुक्त' एवं विक्रमादित्य की राजसभा के विद्वान् अमरसिंह कृत 'अमरकोश' से ही स्पष्ट है, 'निघंटु' से स्पष्ट है। कोश ज्ञान-कोष होते हैं। हिन्दी-कोशसाहित्य के इतिहास में अमीर खुसरो के फ़ारसी-हिन्दी-कोश 'ख़ालिकबारी' को 'प्रस्थान'-महत्त्व प्राप्त है, किन्तु यह फ़ारसी-हिन्दी-शब्दकोश है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा का केवल हिन्दी से संबद्ध विशाल एवं ऐतिहासिक 'शब्दसागर'[1] भी शब्दकोश ही है, जिसके प्रधान सम्पादक आचार्य श्यामसुन्दरदास थे जिन्हें हिन्दीकोशसम्राट् कहा जा सकता है, क्योंकि यह 'हिन्दी वैज्ञानिक कोश' के भी प्रधान सम्पादक थे। आचार्य नगेन्द्रनाथ वसु कृत 'हिन्दी-विश्वकोश' एक व्यक्ति की एक संस्था से भी अधिक व्यापक एवं गहन क्षमता का प्रतीक है। हिन्दी-शब्दकोशकारों में चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, श्री सुखसम्पतिराय भंडारी (मन्नू भंडारी के पिता) एवं श्री रामचन्द्र वर्मा के नाम भी अविस्मरणीय हैं। पारिभाषिक कोशकारों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के विद्वान् एवं भाषाविद् डॉ. रघुवीर एवं साम्यवादी महापंडित राहुल सांकृत्यायन अग्रणी हैं। चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा के स्मरणीय 'साहित्यिक ब्रजभाषा कोश' को डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने तीन खंडों में फिर से निकाला है। रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर' का 'अवधी कोष' भी उल्लेख्य है।

सभा का बहुखंडीय 'हिन्दी-विश्वकोश' 'यद्यपि' एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका', एन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना', 'द ग्रेट रशिअन एन्साइक्लोपीडी' प्रभृति के आकार-प्रकार की समता नहीं कर सकता, किन्तु सन्तोषजनक माना जा सकता है। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश', श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' द्वारा प्रस्तुत 'दिवंगत हिन्दी-सेवी' (1800 ई. से), डॉ. नगेन्द्र इत्यादि द्वारा सम्पादित 'भारतीय साहित्य कोश' अच्छे सन्दर्भ-ग्रन्थ कहे जा सकते हैं। 'हिन्दी साहित्य कोश' (दो भाग) विशेष लोकप्रिय हुआ। महान् कोशकार चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद का 'चरित्र कोश' एवं डॉ. दशरथ ओझा का 'हिन्दी नाटक कोश' भी अतीव उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करते हैं। डॉ. सूर्यकान्त (रामायण-शब्दसूची) एवं उनसे प्रेरित 'तुलसी-शब्दसागर' के प्रस्तोता श्री हरगोविन्द तिवारी तथा डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. हरदेव बाहरी, श्री सुधाकर पांडेय इत्यादि ने तुलसी, प्रसाद इत्यादि से संबद्ध कोश प्रस्तुत किए हैं। सूर, कबीर इत्यादि पर भी शोधकार्य हुआ है। तुलसी, सूर, कबीर, प्रेमचन्द इत्यादि की सूक्तियों पर भी कोश निकले हैं। परिश्रमी सूक्ति-शब्द-खोजी डॉ. श्यामबहादुर वर्मा एवं डॉ. मधु वर्मा का 'बृहत् विश्व-सूक्ति कोश' (तीन खंड) अपने-आप में विशिष्ट प्रयोग हैं, क्योंकि इसमें अनेकानेक देशी-विदेशी भाषाओं की सूक्तियों का अपूर्व समाहार प्राप्त होता है। डॉ. रामशरण गौड़ ने 'साहित्यशास्त्र समीक्षासन्दर्भ कोश', 'छायावादी काव्यसमीक्षा कोश', 'मध्यकालीन काव्य समीक्षा कोश', 'पौराणिक आख्यान कोश', 'कृष्णकथा कोश' प्रभृति की स्फीत एवं बहुआयामी प्रस्तुति से कोशकारों में एक स्थान प्राप्त कर लिया है। समणी कुसुमप्रज्ञा ने पाँच बड़े खंडों में जैनों के तेरापन्थी युगप्रधान स्व. आ. तुलसी का 'एक बूँदः एक सागर' शीर्षक सूक्ति-कोश प्रस्तुत किया है। उनका अध्यवसाय सर्वथा विलक्षण है। अन्य विशाल सूक्तिकोश भी निकले हैं। डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह सम्पादित 'राधाकृष्ण-भक्ति कोश' (5 खंड) ऐतिहासिक महत्त्व का ग्रन्थ है। श्री यशपाल महाजन के अनेक साधारण सूचनात्मक साहित्य-कोशों की अपनी उपयोगिता है। डॉ. कमलकिशोर

---

[1] महान् 'हिन्दी-शब्दसागर' की अमर भूमिका का पल्लवन एवं मिश्रबन्धु कृत 'विनोद' का संक्षेपण कर आ. रामचन्द्र शुक्ल ने अतीव प्रभावी 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (1929 ई.) प्रस्तुत किया। आ. शुक्ल शब्दसागर के सम्पादक-मंडल के एक सदस्य भी थे। अतः उनके 'इतिहास' पर बड़ा विवाद हुआ था। सर्ववस्तुपाचनाचार्य महान् शुक्ल के औपचारिकताः एवं व्यवहारतः अन्यायपूर्ण व्यवहार से आ. श्यामसुन्दरदास की विशेष क्षति हुई (जिनके साथ डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने न्याय किया है)।

गोयनका का 'प्रेमचन्द-विश्वकोश' एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं स्मरणीय ग्रन्थ है जिससे प्रेमचन्द के निर्धन होने के गल्प निराधार सिद्ध हो जाते हैं तथा व्यक्तित्व-कृतित्व पर सर्वांगीण प्रकाश पड़ता है।

कोश-दृष्टि से हिन्दी में अच्छा कार्य हुआ है। आ. श्यामसुन्दरदास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, आ. नगेन्द्रनाथ वसु, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन', डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रमानाथ त्रिपाठी, डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह, चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा इत्यादि ने विभिन्न स्तरों पर साहित्यगत कोश-दिशा में उल्लेख्य सेवाएँ की हैं। श्री सुखसम्पतिराय भंडारी, श्री रामचन्द्र वर्मा, डॉ. रघुवीर, महापंडित राहुल सांकृत्यायन, कामिल बुल्के, इत्यादि ने शब्द की महान् सेवा की है। चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा, डॉ. दशरथ ओझा, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. हरदेव बाहरी, श्री सुधाकर पांडेय, 'समान्तर कोश' के प्रशस्य प्रस्तोता अरविन्दकुमार इत्यादि ने चरित्रों, नाटक, तुलसी, प्रसाद, भावमूलकता इत्यादि पर कोश-रचना कर साहित्य की स्मरणीय सेवा की है। विश्व एवं भारत की अनेक भाषाओं से संपृक्त कोश भी प्रस्तुत किए गए हैं। हिन्दी के साथ सारी संविधान स्वीकृत भाषाओं को समाहित करने वाले कोश भी प्रस्तुत किए गए हैं। आवश्यकता है ऐसे साहित्यकोशों की जो भारत के सारे साहित्यकारों को वस्तुपरक रूप में प्रस्तुत कर सकें, विश्व के साहित्यकारों को वस्तुपरक रूप में प्रस्तुत कर सकें।

31. भाषाविज्ञान

गौरांगों के भारत-सम्पर्क ने उन्हें संस्कृत से परिचित कराया, जो आर्य-नृवंशमूलकता के कारण उनकी भी आदिभाषा थी, प्राचीनतम भाषा थी, महानतम भाषा थी। इसका एक परिणाम भाषाविज्ञान (फिलॉलॉजी) के उद्भव के रूप में दृष्टिगोचर हुआ। प्राच्यविद्या या भारतविद्या (इंडोलॉजी) के जनक सर विलियम जोन्स, बॉप, ग्रिम इत्यादि की साधना ने यथासमय भाषाविज्ञान को एक पृथक् शास्त्र का रूप प्रदान कर दिया। भारत में सर जॉर्ज ग्रीअर्सन[1], महामहोपाध्याय रायबहादुर डॉ. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या जैसे विश्वस्तरीय भाषाविदों ने इस शास्त्र के उद्भव एवं विकास की दिशाओं में प्रशस्य कार्य किया (यद्यपि चाटुर्ज्या हिन्दीविद्वेषी एवं रामविरोधी होने के कारण केवल सरकारी सम्मान पा सके)। हिन्दी में 'भाषाविज्ञान' पर 'प्रस्थान' ग्रन्थ महान् साहित्यकार आ. श्यामसुन्दरदास ने प्रस्तुत किया, जिसमें ग्राह्यता एवं अस्मिता, प्रौढ़ता एवं अभिव्यक्ति-गांभीर्य का भव्य रूप दृग्गत होता है। हरिऔध ने भी इस दिशा में कार्य किया। व्याकरण भाषाविज्ञान का एक अपरिहार्य अंग है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा ने आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी की अध्यक्षता में एतद्विषयक समिति का गठन किया जिसका प्रतिफलन हुआ आचार्य के एक प्रमुख शिष्य एवं हिन्दी के प्रथम व्याकरणाचार्य पं. कामताप्रसाद गुरु द्वारा प्रस्तुत मानक 'हिन्दी-व्याकरण' के रूप में। कालांतर में आचार्य-सम्राट् के एक अन्य शिष्य आ. किशोरीदास वाजपेयी ने महान् ग्रन्थ 'हिन्दी-शब्दानुशासन' रचकर स्वयं को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ वैयाकरण (हिन्दी का पाणिनि) सिद्ध किया। अवधी पर आ. रामचन्द्र शुक्ल ('जायसी-ग्रन्थावली' की भूमिका) एवं डॉ. बाबूराम सक्सेना, ब्रजभाषा पर आ. रामचन्द्र शुक्ल ('बुद्धचरित' शीर्षक अनूदित ग्रन्थ की भूमिका) एवं डॉ. धीरेन्द्र वर्मा जैसे अधिकारी विद्वानों ने प्रशस्य कार्य किया, जिसने राजस्थानी, छत्तीसगढ़ी, बघेलखंडी, बुन्देलखंडी, कन्नौजी, बैसवाड़ी (बैसवारी), भोजपुरी, मगही, मैथिली, खड़ीबोली, पहाड़ी, डोगरी इत्यादि विभाषाओं से लेकर मुहावरों और कहावतों तक पर कार्य का पथ प्रशस्त किया। आ. किशोरीदास वाजपेयी[2], प्रो. नरोत्तमदास स्वामी, डॉ. मोतीलाल मेनारिया, डॉ. विश्वनाथप्रसाद, डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, डॉ. बालमुकुन्द मिश्र, डॉ. विश्वंभरदयालु अग्रवाल, स्व. डॉ. भोलानाथ तिवारी (देहान्त 1989 ई.), डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, डॉ. ओमप्रकाश भाटिया 'अराज', स्व. डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' इत्यादि ने उच्चस्तरीय से स्तरीय, सामान्य से छात्रोपयोगी तक, नानाआयामी ग्रन्थरचना द्वारा भाषाविज्ञान को व्यापक विषय बना दिया है।

आरम्भिकता के कारण आ. शुक्ल, आ. श्यामसुन्दरदास, हरिऔध, आ. परशुराम चतुर्वेदी प्रभृति विद्वान् साहित्येतिहास एवं कवि-सम्पादन में भाषा पर भी स्फीत प्रकाश डालते थे, जो संप्रति अनावश्यक है, क्योंकि भाषाविज्ञान एक पृथक् विषय बन चुका है, जैसाकि अनेक विश्वविद्यालयों द्वारा इसके लिए पृथक् एम. ए. एवं शोधकार्यादि से ही स्पष्ट है। संबद्ध काल या युग तथा कवि या अन्यविधाकार के सृजन की आलोचना साहित्यगत होती है, जिसमें भाषा-शैली का संकेत मात्र पर्याप्त होता है। सर्वत्र भाषिक संरचना का ऊहापोह अरुचिकर लग सकता है। साहित्य सार्वभौम विषय है, भाषाविज्ञान प्राविधिक।

---

[1] 'गियर्सन' ग़लत है, भले ही प्रचलित हो। वैसे, 'ग्राइर्सन' भी ठीक है किन्तु 'ग्रीअर्सन' शुद्धि एवं प्रचलन के मध्यस्थित है। अतः विशेष ग्राह्य लगता है।

[2] इनका 'भारतीय भाषाविज्ञान' भी इनके 'हिन्दी-शब्दानुशासन' के सदृश ही अद्वितीय है।

32. साहित्येतिहास

हिन्दी-साहित्येतिहास का इतिहास गार्सां द तासी नामक एक विगर्हणीय हिन्दीविरोधी, फ्रेंच विद्वान् के 'इस्त्वार द ल लितरेत्यूर ऐंदुई एं ऐंदुस्तानी (प्रथम भाग 1839 ई., द्वितीय 1847 ई.) के खिचड़ी हिन्दी-उर्दू कविकोश से माना जाता है, जिसमें यत्र-तत्र वर्गीकरण एवं प्रवृत्ति-निरूपण के दर्शन भी हो जाते हैं। फ्रेंच में लिखित एवं हिन्दू-विद्वेषणपूर्ण होने के कारण इस ग्रन्थ का केवलमात्र ऐतिहासिक महत्त्व है। सम्भव है, शिविरसिंह सेंगर ने इसकी चर्चा सुनी हो।"ग्रीअर्सन पर इसका कुछ अधिक प्रभाव सम्भव है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' शीर्षक से इसके हिन्दी-अंश का अनुवाद किया है। वस्तुतः काँथा (जनपद उन्नाव, उत्तर प्रदेश) के निवासी ठाकुर शिवसिंह सेंगर (1833-78 ई.) हिन्दी के प्रथम साहित्येतिहासकार थे, जैसा कि आचार्य शुक्ल के 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' का 'वक्तव्य' से लेकर डॉ. धीरेन्द्र वर्मा इत्यादि सम्पादित 'हिन्दी साहित्य कोश' तक प्रायः सर्वत्र मान्य भी है, क्योंकि उनका अमर 'सरोज' एक हज़ार कवियों के वृत्तों एवं अमूल्य से सम्पन्न है। 'सरोज' (1878 ई.-शुक्ल ग़लती से 1883 ई. लिख गए हैं) ने ग्रीअर्सन को आधार प्रदान किया, मिश्रबन्धु ने इसकी उचित प्रशंसा करते हुए इसका भरपूर प्रयोग किया, शुक्ल की सामग्री का आधार 'विनोद' रहा किन्तु उन्होंने भी इससे पूरा लाभ उठाया। 'सरोज' में अनेक त्रुटियाँ हैं। अकारादिक्रप सुस्पष्ट इतिहास-बोध में बाधक है। उद्धरणों की पृथक् प्रस्तुति से यह बाधा और अधिक कष्टसाध्य हो जाती है। किन्तु समय, 'प्रस्थान' एवं लेखक के दारोग़ा होने पर विचार किया जाए तो ग्रन्थ अमूल्य ही लगता है। विख्यात शोधकर्त्ता डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने अपने विराट् 'सरोज-सर्वेक्षण' में इसकी त्रुटियों का विश्लेषण कर साहित्य को ठोस सेवा की है, किन्तु 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' (अनुवाद) ग्रीअर्सन का 'द मॉर्डन वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ़ हिन्दुस्तान' (1889 ई.) बताकर बहुत बड़ा अन्याय भी किया है, क्योंकि ग्रीअर्सन का मुख्य आधार शिवसिंह ही हैं, जिसे उन्होंने छिपाया भी नहीं है। ग्रीअर्सन के अंग्रेज़ी-इतिहास का कोई विशेष प्रभाव दृग्गत नहीं होता। इस पर ईसाइयत के प्रभाव ने वस्तुपरक दृष्टि को आघात पहुँचाया है (भारतीय भक्ति पर ईसाई भक्ति का निरूपण एकदम लचर है)। इस पर साम्राज्यवादी प्रभाव ने विक्टोरिया पर अध्याय ठूँसकर व्यर्थ-विस्तार किया है (अकबर पर अध्याय भी अनावश्यक-सा है)। किन्तु इसमें प्रवृत्ति-निरूपण प्रशस्य स्तर का है तथा इसकी तुलसी, कबीर, बिहारी इत्यादि की समीक्षा उच्चकोटि की है।

शिवसिंह सेंगर के 'सरोज' (1878 ई.) के अनन्तर, प्रभावी एवं महान् साहित्येतिहास मिश्रबन्धु (गणेशबिहारी-श्यामबिहारी-शुकदेवबिहारी) का 'विनोद' (1913 ई.) सिद्ध हुआ, जिससे रामचन्द्र शुक्ल का 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' (1929 ई.) बहुत ही अधिक लाभान्वित हुआ है—वस्तुतः 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' 'विनोद' का प्रातिभ-संक्षेपण मात्र लगता है। शुक्ल ने अधिकांश सामग्री (कवि-परिचय एवं उद्धरण ही नहीं प्रत्युत प्रवृत्ति-निरूपण भी) मिश्रबन्धु से ही ली है। वे काल-निर्धारण एवं काल-नामकरण तक में मिश्रबन्धु से ही प्रभावित रहे हैं; इसी की मनौवैज्ञानिक प्रतिक्रिया के रूप में अस्मिता-प्रतिष्ठापनार्थ उन पर प्रहार भी करते रहे हैं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि शुक्ल का 'इतिहास' (जो 'हिन्दी-शब्दसागर' की भूमिका के ही पल्लवन के कारण प्रधान-सम्पादक श्यामसुन्दरदास एवं अन्य सम्पादकों के परिश्रम-दधि का भी नवनीत है) समग्र पूर्ववर्ती इतिहासों में अपेक्षाकृत अधिक व्यवस्थित, अपेक्षाकृत अधिक अधिकारपूर्ण, अपेक्षाकृत अधिक मूल्यवान, अपेक्षाकृत न्यून त्रुटिपूर्ण है, जिसका आतंक रामकुमार वर्मा, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी प्रभृति द्वारा लिखित एवं नगेन्द्र इत्यादि द्वारा सम्पादित इतिहासों पर व्याप्त रहा है। शुक्ल के एक छात्र ने कहा था कि उनकी कक्षाओं में और कोई 'वाद' रहता रहा हो या नहीं पर 'आतंकवाद' पूरी तरह व्याप्त रहता था—मैंने इस आतंकवाद की व्याप्ति के दर्शन उक्त वर्मा, द्विवेदी, नगेन्द्र जैसे मान्य विद्वानों से लेकर डॉ. नलिनविलोचन शर्मा, डॉ. भगीरथ मिश्र, डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय जैसे ग्रन्थकारों एवं डॉ. रामदरश मिश्र जैसे प्राध्यापकों में प्रायः एकरस रूप में किए हैं।

शुक्ल-परवर्ती साहित्यतिहासकारों में आ. श्यामसुन्ददास, कविसम्राट अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डॉ. सूर्यकान्त शास्त्री, डॉ. रामशंकर शुक्ल 'रसाल', आ. चतुरसेन शास्त्री, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त (हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास), डॉ. रामखेलावन पांडेय, डॉ. हरिशचन्द्र वर्मा, डॉ. रामनिवास शर्मा, श्री राजनाथ शर्मा, डॉ. मोहन अवस्थी इत्यादि के नाम महत्त्वपूर्ण हैं। यद्यपि इन-सब के उपजीव्य शुक्ल ही हैं, तथापि इन्होंने शुक्लोपेक्षित विषयों, कवि-वर्गों, कवियों, सिद्धान्तों इत्यादि का प्रशस्य विवेचन किया है। पूर्वचिंतित किन्तु 1962-63 ई. में लिखित एवं 1967 ई. में प्रकाशित 'हिन्दी साहित्य का नवीन इतिहास' (जो 1985 ई में परिवर्द्धित 'हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास' के रूप में पुनः प्रकाशित हुआ तथा 'आलोचना-सागर' का प्रथम खंड भी है) में मैंने विषय को 800 ई. से आरम्भ कर संक्रान्तिकाल-पुनरुत्थानकाल-शास्त्रीकाल-आधुनिककाल (सुधारवादी-आदर्शवादी-स्वच्छन्दतावादी-यथार्थवादी युगों) के सोपानों

में विवृत किया। (अब मेरे दृष्टिकोण में कुछ परिवर्तन हुआ है) डॉ. रामखेलावन पांडेय के 'हिन्दी साहित्य का नया इतिहास' तथा डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा एवं डॉ. रामनिवास शर्मा के सम्मिलित-ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में संक्रमणकाल का प्रयोग मुझे समीचीन क्यों न लगता! डॉ. बच्चनसिंह कृत 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' भी पठनीय है। कालविशेषबद्ध इतिहासों में प्रस्थान-ग्रन्थकार पं. कृष्णशंकर शुक्ल कृत 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास' उल्लेख्य है। डॉ. बैजनाथ सिंहल कृत 'नयी कविता का इतिहास' भी सर्वथा उल्लेखनीय है। छात्रोपयोगी इतिहासों में श्री गणेशप्रसाद द्विवेदी कृत 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' एवं डॉ. गुलाबराय कृत 'हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास' उल्लेख्य है।

हिन्दी-साहित्येतिहासों पर प्रथम प्रकाश स्वयं एक अग्रणी साहित्येतिहासकार, कवि, नाट्यकार, एकांकीकार एवं आलोचक डॉ. रामकुमार वर्मा ने अपने अतीव उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' (1939 ई.) में डाला था। कालान्तर में डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने साहित्येतिहासों का इतिहास लिखा। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने हाथ आज़माया, यद्यपि उन्होंने सैद्धान्तिक को वरीयता प्रदान की जिससे विशिष्टता पर आँच न आ सके।

यदि कोई मुझसे पूछे कि हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ सहित्येतिहास कौन-सा है तो मैं द्विधा में पड़ जाऊँगाः 'विनोद' या 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास'? यदि विराट् अंकन-आकलन में 'विनोद' अतुलनीय है, तो विराट् शैक्षिक-प्रभाव एव तज्जन्य विराट् मान्यता में 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास'! समय-क्रम एवं सामग्री-ग्रहण को देखते डॉ. विजयेन्द्र एवं प्रा. डॉ. दुर्गाशंकर मिश्र 'विनोद' को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं, तो उन्हें एकबारग़ी ग़लत कहना स्वयं ग़लत होगा! और प्रभाववादी दृष्टि से 'हिन्दी-साहित्य का इतिहास' अधिकांश व्यक्तियों द्वारा सर्वश्रेष्ठ माना ही जाता है जिसे नकारना भी सरल नहीं।

❑

अन्ततोगत्वा

चरैवेति

कम्प्यूटर-युग में मुद्रण सुरक्षित रखा जा सकता है तथा संस्करण तद्वत् निकल जाते हैं। अतः 'अन्ततोगत्वा' की उपयोगिता स्पष्ट है। साथ ही, परवर्ती जानकारी का पृथक् अस्तित्व भी प्रमाणित होता है। 'हिन्दी साहित्य का वस्तुरपरक इतिहास' में प्रत्येक राजनैतिक दल (नागनाथ-साँपनाथ-भुजंगनाथ-उरगनाथ 'इत्यादि') को भारतीय दुर्दशा के साथ संबद्ध करने के वस्तुपरक विवेचन, मूढ़ता-प्रतीक 'महापुरुषवाद' (सर्जन एवं कर्म नहीं अपितु 'अलौकिकता' पर आधृत या गद्दीधरों के चमचों द्वारा 'स्थापित') पर प्रहार, विजातीयतावादियों द्वारा इतिहास एवं साहित्य के सत्य की युगपत् हत्या, वास्तविक अथवा तथाकथित 'विद्वानों' द्वारा प्रभाववादी या तरंगवादी या अहंवादी 'विवचेन' की आलोचना न्यस्त-स्वार्थग्रस्त अतिप्रशस्ति या अतिनिन्दा या उपेक्षा का प्रत्याख्यान किया गया है तथा राजनीति से दूर रहा गया है, जबकि युग राजनीति, दल, वाद, प्रशस्ति, निन्दा, उपेक्षा इत्यादि का बन्दी बन चुका है। फिर भी, ग्रन्थ का स्वागत हुआ, जबकि वह विशाल-द्विखंडीय एवं स्फीत मूल्य भी है। अनेक विश्वविद्यालयों में इसे संस्तुत किया गया, शोधकार्य हुए, समीक्षाएँ छपीं और मिली....इत्यादि। इससे प्रतीत हुआ कि सत्य अभी जीवित है, भले ही दुर्बल हो गया हो।

सम्प्रति हिन्दी की दशा अच्छी नहीं है। उसका विश्वभाषा-रूप भारत में उसके राष्ट्रभाषा-रूप की दुर्बलता तथा राजभाषा-रूप की उपेक्षा के कारणों से शिथिल हो रहा है। मॉरीशस इत्यादि में पाश्चात्य भाषाओं का ज़ोर बढ़ रहा है। फिजी में भारतीयों के साथ भारती का ह्रास स्वाभाविक है। भारत में अंग्रेज़ी और उर्दू के पाटों में पिसती हिन्दी सदूर ग्राम्य और पार्वत्य अंचलों तक में व्याप्त अंग्रेज़ी-दासता की आत्मघाती वृद्धि तथा चलचित्र पर माफिया आधिपत्य और तज्जन्य उर्दू-ए-मुअल्ला के ज़ोर के कारणों से दयनीय हो रही है। ग़ज़लबाजी, रुबाईबाजी, मुक्तकबाजी अलग जाने-अनजाने रेडियो और टेलीविजन भी उर्दू का प्रचार-प्रसार कर रहे हैं। रस, अलंकार, छन्द, शब्दशक्ति, गुणदोष इत्यादि को कालातीत घोषित करने से काव्य की पृष्ठभूमि ही नष्ट नहीं की जा रही, प्रत्येक व्यक्ति को कवि कहने का उच्छृंखल पथ भी प्रशस्त किया जा रहा है। पाठ्यक्रमों में संस्तुति-प्रस्तावादि 'दलगत' हो चुके हैं। भाषा की प्रकृति को नष्ट किया जा रहा है : 'प्राप्त' नहीं हासिल, भाग नहीं हिस्सा, 'अ' नहीं गैर (गैर-सरकारी, गैर-कॉंग्रेसी, गैर-कॉम्युनिस्ट इत्यादि तो ठीक हैं किन्तु गैर-ऐतिहासिक, गैर-काल्पनिक, गैर-पारम्परिक इत्यादि हिन्दी हत्या के नियोजित षंड्यन्त्र के परिणाम हैं)। प्रचलित एवं लोकप्रिय हिन्दी शब्दों के स्थानों पर अंग्रेज़ी और उर्दू थोपा जाना भाषागत-अस्मिता पर प्रहार करना है। आत्महत्याग्रन्थि-प्रेरित हिन्दी प्रेमी इस षड्यन्त्र को नहीं समझ पा रहे। भाभी नहीं भाबी, चाभी नहीं चाबी, भूख नहीं भूक, धोखा नहीं धोका इत्यादि के प्रयोग हिन्दी के पतन के सूचक हैं; किन्तु हम सावधान नहीं हैं। ''हिन्दी को सरल करो'' के नारे के साथ-साथ ''उर्दू को कठिन करो'' और अंग्रेज़ी को ''अप-टु-डेट अमेरिकन करो'' के प्रयोग चल रहे हैं। संविधान तक में हिन्दी की संस्कृतनिष्ठता का प्रतिपादन है, क्योंकि संस्कृत ही हिन्दी को बांग्ला, असमिया, उड़िया, मराठी, गुजराती इत्यादि ही नहीं प्रत्युत मलयालम्, कन्नड़, तेलुगू (तमिल से द्रविड़वादी संस्कृत-हटाओ का प्रचलन अब व्यवहार बन चुका है—परिणामतः वह समझ में तनिक भी नहीं आ पाती) इत्यादि से जोड़ती है। किन्तु हिन्दी पर उर्दू को थोपकर उसका राष्ट्रभाषा-रूप विकृत किया जा रहा है। हिन्दी पर भाषागत अस्मिता का संकट भी है, साहित्यगत अतीत-विनाश का संकट भी है; और न कोई आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसा स्रष्टा-निर्माता है, न भारतरत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन जैसा द्रष्टा-रक्षक! आह!!

अज्ञेय ने घोर पाश्चात्य व्यक्तिवाद एवं वाल्ट ह्विट्मैन, एज़्रा, पॉउंड, टॉमस स्टर्न, एलिअॅट इत्यादि के प्रयोगवाद का प्रचार-प्रसार किया किन्तु भाषागत अस्मिता का ध्यान रखा। मुक्तिबोध ने घोर पाश्चात्य समाजवाद का साम्यवाद को प्रयोगवादी शैली में व्यक्त किया किन्तु मानक भाषा का ध्यान रखा। इन दोनों से पूर्व, निराला ने वादमुक्त-प्रयोगवाद के शत-प्रति-शत अस्मितासम्पन्न रूप में ही अपनाकर हिन्दी में काव्य-क्रान्ति की थी। किन्तु परवर्ती कवियों में जो स्तरहीन थे, वे भाषा की अस्मिता का ध्यान न रख पाएँ। उधर, ग़ज़लबाजों ने फिल्मी नक़ल पर जाने या अनजाने अपने टेटुओं पर तो ब्लेड रगड़ा ही, भाषा की गरिमा को भी काटना शुरू कर दिया। एक नयी पेट्रोडॉलरी भाषा ईज़ाद की जा रही है। सी. आई. ए., क्रिश्चियन मिशनरीज़, आई. एस. आई. हिन्दी हत्या के बिन्दु पर एकमत हैं। सबका सम्बन्ध धर्मान्तरण की राजनीति से भी है। भाषा-विखंडन धर्मविखंडन का एक अंग है।

मनुष्य सदैव विद्यार्थी रहता है। गणेशशंकर विद्यार्थी प्रतीक हैं! अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत्! जो अर्थी न रहा, उसकी अर्थी निकलती है! मेरा मन-मस्तिष्क किशोरवत् जागरूक है। मैं अपने विचार छिपाता नहीं, किन्तु दूसरों का आकलन वस्तुपरक करता हूँ। मेरा कोई दल या वाद या न्यस्त-स्वार्थ नहीं (कार-बेकार, देशयात्रा-विदेशयात्रा, पद-अलंकार-पुरस्कार, ग्रन्थ-सम्पादन, संकलन-अनुवाद, शोध-राजनीति, पाठ्यक्रम-राजनीति, आकाशवाणी-दूरदर्शन-राजनीति, सब से दूर)। समय-ही-समय और उसका सदुपयोग ही मेरा जीवन है। 'हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास' के प्रकाशन के अनन्तर मुझे जो समीक्षाएँ मिलीं। मैंने जो अध्ययन किया, उसमें कुछ ऐसा भी मिला जो इतिहास में संपृक्त करने योग्य है।

क्रान्त-कवि क़ाजी नज़र-उल्-इस्लाम (नज़रुल)

आमि दुर्वार
आमि भेंगे केरि सब चुरमार
आमि अनियम उच्छृंखल
आमि दले जाई जो बन्धोन
जतो नियम कानून श्रृंखल

'विद्रोही' एवं 'अग्निवीणा' (दोनों 1922 ई.) के क्रान्त बांग्ला-कवि नज़रुलइस्लाम (24 मार्च 1899—29 अगस्त 1976) ने हिन्दी एवं उर्दू में भी काव्यरचना की थी, जो अनेक विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण स्मरणीय एवं महत्त्वपूर्ण है। निर्धनजात, मातृहीन, घरभागू, श्रमिक, पितृहीन, परिवारहीन, अनाथ/सैनिक, 'धूमकेतु'-सम्पादक, राजनैतिक कार्यकर्त्ता, जेलयात्री, चलचित्र-गीतकार, अभिनेता, संगीतकार, 1942 ई. में मूक, इससे पूर्व पक्षाघातग्रस्त, आत्महत्या-उद्यत, अंततः विक्षिप्त तथा राँची पागलख़ाने में इलाज वगैरह के बावजूद मूक-पक्षाघातग्रस्त-विक्षिप्त रूप में बांग्लादेश में मुक्त नज़रुल संघर्ष-सम्पन्न व्यक्तित्व की दृष्टि से सर्वथा अतुलनीय थे। 'फाँकीस्तान' और इस्लामिक-गीतों के कारण उन्हें न मुसलमान अपना सके, न हिन्दू, यद्यपि दोनों में वे समादृत रहे। उनकी पत्नी कमला थीं और पुत्र सव्यसाची! वे 'साम्यवाद' भी लिख सके, 'प्रणमामि दुर्गे!' और 'कृष्णमुरारी' भी; और 'मोहर्रम' भी—परिणाम यह हुआ कि इस अभागे सांप्रदायिकताग्रस्त उपमहाद्वीप में उन्हें न विजातीयतावादी साम्यवादी 'अपना' सके, न संकीर्णतावादी मुसलमान, न शुद्धतावादी हिन्दू, किन्तु उनकी प्रतिभा का लोहा सभी ने माना। यदि शिक्षाविद् तथा नेता श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने उनकी जीवन-व्यवस्था एवं आर्थिक सहायता में सर्वाधिक कार्य किया, तो नेता तथा शासक विधाचन्द्र राय ने उस समय को देखते पर्याप्त अधिक 200 रु. प्रतिमास वृत्ति का प्रबन्ध किया। कोई मुसलमान उनके लिए आगे नहीं आया: मगहर में कबीर-समाधि का मुस्लिम-अधिकृत भाग सूना-सा पड़ा रहता है, दिल्ली में मौलाना अबुल कलाम आज़ाद की जामा मस्जिद के सामने बनी समाधि पर सन्नाटा छाया रहता है (बाज़ार की तरफ़ जीने पर लोग पेशाब करते थे जो मैंने स्वयं बहुत-बहुत बार देखा था, अतः दरवाजे पर ताला ठोंकना पड़ा पर अब भी स्वच्छता नहीं रहती), मोहम्मदअली करीम छागला (चागला) को काफिर (मैंने एक मित्र के मुँह से 'मोहन भाई' सुना था) माना गया तथा उपेक्षित कर दिया गया है[1], हमीद दलवई को तो लगभग सभी भूल गए हैं, मुख़्तार अब्बास नक़वी मुसलमानों को फूटी आँख भी नहीं भाते—और-तो-और, इराक़ के नेता सद्दाम हुसैन (संप्रति वंदी) जो अमेरिका-ब्रिटेन इत्यादि (पाकिस्तान समेत) की सेनाओं से युद्ध के समय 'परम नायक' थे जिनके लाखों-लाख चित्र छपे-बिके थे, 6 दिसम्बर, 1992 को अयोध्या के ढाँचे के ढहाए जाने पर "क्या बावेला मचा रखा है एक विवादग्रस्त ध्वंसावशेष के ढहाए जाने पर, जबकि यहाँ सैकड़ों ऐतिहासिक मस्जिदों के ढहाए जाने पर कुछ नहीं किया गया" की फटकार के कारण रातोरात 'ब्लैक-ऑउट' हो गए!

---

1. 'अग्नि-दर्शन' (फिलॉसॉफी ऑफ़ फ्लेम्स) अपनाने और कहानी पर भी छागला, सफ़दर हाशमी, इस्मत चुग़ताई, हिदायतुल्ला इत्यादि को काफ़िर मानते हुए उपेक्षित किया गया।
2. विष्णु प्रभाकर कृत शरद-जीवनी 'आवारा मसीहा' की प्रेरक।
3. मासिक 'वागर्थ' (कलकत्ता), अंक 52 जुलाई-अगस्त, 1999, पृष्ठ 11 (डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय) एवं पृष्ठ 22 (श्री श्यामल गंगोपाध्याय)। विष्णु प्रभाकर का लेख भी पठनीय है। सारी सामग्री प्रशस्यतः सूचना सम्पन्न तो है, प्रणम्यतः सघन-गहन नहीं।

नज़रुल ने 'आवारा की आत्मकथा'[2] लिखी, उपन्यास और कहानी पर भी हाथ आज़माया, सत्तर घाटों का पानी पिया, किन्तु 6 खंडों में विभक्त 4000 गीतों और कविताओं की सर्जना भी कर गए।[3] निराला के सदृश नज़रुल बांग्ला में नयी कविता के इतिहास-पुरुष भी हैं। कुल मिलाकर, नज़रुल निराला के सदृश व्यक्तित्व की विलक्षणता एवं कवि होने के कारण अमर हैं। नज़रुल कलाकार बाद में है, सन्देशदाता पहले। उनकी अनेक कविताएँ, दिनकर की कविताओं के सदृश, भाषण (काव्यगत-भाषण) लगती हैं। वे क्रान्ति का ध्वांतसन्देश तो देते हैं (दिनकर के सदृश, मुक्तिबोध के सदृश) किन्तु लक्ष्यबोधविहीन हैं: क्रान्तिपुरुष लेनिन अराजकतावादियों से बहुत घबराते थे—उनके विरोधी थे। बंगाल के क्रान्तिकारी (चाहे हुतात्मा खुदीराम बोस हों या योगी अरविन्द घोष या विदेशी-सक्षम रासबिहारी बोस या विख्यात सुभाषचन्द्र बोस या गहन मानवेन्द्रनाथ राय) अखाड़े में पहले कूदे, प्रतियोगी को बाद में देखा; फलतः नाद-निनाद अधिक रहा, प्रतिफल-परिणाम अल्प! नज़रुल भी झोली में बम भरे अन्धाधुन्ध फेंकाई तो करते हैं किन्तु प्रतिक्रिया नहीं देखतेः आग लगाओ, चाहे स्वयं जल जाओ! नज़रुल पागल, निराला पागल, राहुल पागल, मुक्तिबोध पागल! तो क्या क्रान्ति पागलपन है? भारत अब भी क्रान्ति का क-ख-ग तक नहीं सीख पाया। जनता को परखे या बदले बिना क्रान्ति सम्भव नहीं, और, भारत की सांप्रदायिकता जातिवाद, सर्वशोषकता से ग्रस्त-स्रस्त-ध्वस्त सड़ी हुई जनता क्रान्ति को पहचानने तक के अयोग्य है—करना तो कल्पनातीत है! यहाँ के प्रायः सारे नेता तथा साहित्यकार स्वार्थी व्याति-आखेटक मात्र रहे हैं, क्रान्तिकारी नहीं। अतः, प्रशस्य-प्रणम्य नज़रुल भी प्रभावहीन-परिणामहीन ही रहे!

नज़रुल निराला से तुलनीय हैं : दोनों नवता-वाहक, दलित-संवेदक, राष्ट्रवादी; किन्तु निराला में कला का अनुपात बलवत्तर है। वैसे, दोनों बंगाल में जन्मे, दोनों क्रान्त (प्रत्येक बंगाली जन्मना क्रान्तिकारी होता है—पर ये अधिक), दोनों को विक्षिप्तता का आखेट बनना पड़ा। वैसे, स्पष्ट क्रान्ति-आह्ववानों एवं ध्वंस-सन्देशों में नज़रुल दिनकर के निकट हैं: नज़रुल की भाषा में चारुत्व अधिक है, तो दिनकर-जैसा 'कुरुक्षेत्र' का पश्चिम-प्रभावित किन्तु विदग्धतापूर्वक समाहित-मौलिक युद्ध-दर्शन तथा 'उर्वशी' में कामायनी-प्रेरित किन्तु अधिक ऊर्जास्वित् काम-दर्शन नहीं है।

जोश मलीहाबादी ने दिनकर-नजरुल-तुलना की है किन्तु पता नहीं किस मनोवैज्ञानिक तनाव में दोनों के लिए 'जर्रा' लफ़्ज लिख गए?:

हिंद में लाजवाब हैं दोनों शायरे-इंकलाब हैं दोनों
देखने मे अगर्चे जर्रा हैं वाक़ई आफ़ताब[1] हैं दोनों!

नज़रुल ने अनेक हिन्दी-कविताएँ भी लिखी हैं जिनमें एक 'वागर्थ' से अवतरित है :

श्री कृष्ण मुरारी
श्री कृष्ण मुरारी गदा पद्मधारी
मधुबन चारी गिरिधारी
त्रिभुवनबिहारी।।
लीला-विलासी गोकोलवासी
राधा तुलसी प्रेम-पियासी।।
महाविराट् विष्णु भूभारहरणकारी।।
नव-नीरद-कांति-श्याम
चिर किशोर अभिराम
रसघन आनंद रूप
माधव वनचारी।।

नज़रुल का भक्तिकाव्य या दुर्गा-राम-कृष्ण-काव्य निराला के परवर्ती 'आराधना', 'अर्चना', 'गीतगुंज' में प्राप्त भक्तिकाव्य से अनुभूति-पक्ष में भी मिलता है, अभिव्यक्ति-पक्ष में भी। इस दृष्टि से भी दोनों क्रान्त-कवि निकट हैं। 'निराला और नज़रुल' तथा 'निराला और दिनकर' जैसे शोधग्रन्थ या आलोचनाग्रन्थ लिखे जाने चाहिए; इनसे राष्ट्रीय एकता परिपुष्ट होगी।

---

[1] दिनकर-सन्दर्भ में श्लेष।

मुचकुन्द शर्मा

रवीन्द्र-प्रेरक विश्वस्तरीय गीतकार विद्यापति, गद्येतिहास-पुरुष ज्योतिश्वर ठाकुर, राष्ट्रस्तरीय विख्यात-कवि दिनकर, बहुविधाकार रामवृक्ष बेनीपुरी, कविवर जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज' कवि-कथाकार मोहनलाल महतो 'वियोगी', कवि केदानाथ मिश्र 'प्रभात' (द्विज+वियोगी+प्रभात = बिहार की स्वच्छन्दतावादीत्रयी), कविरत्न-उपन्यासकार आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री, गीतरत्न आरसीप्रसाद सिंह, बहुविधाकार सन्त-कवि आनन्दशंकर माधवन्, स्फीत-महाकवि रामदयाल पांडेय, गहन कवयित्री रंजना गुप्त तथा कल तक के बिहार और अब झारखण्ड के सांस्कृतिक कवि रामवरण चौधरी, अंगिका कवि सुमन सूरो, प्राणमोहन 'प्राण' तथा शत-शत कवियों, कथाकारों (आंचलिक उपन्यासकार-रत्न फणीश्वरनाथ 'रेणु' शीर्षस्थ), विद्वानों (महामहोपाध्याय रामावतार शर्मा शीर्षस्थ), आचार्यों (शिवपूजन सहाय शीर्षस्थ), अतिविख्यात बहुविधाकार नागार्जुन, काव्यशास्त्र-पंडित लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' (देवेन्द्रनाथ शर्मा, कुमार विमल विशेष स्व. आनन्द शास्त्री, स्व. रामगोपाल 'रुद्र', संस्कृत-विदुषी तथा हिन्दी-लेखिका डॉ. किरणकुमार) इत्यादि के साहित्य-गौरव बिहार को प्रो. (डॉ.) मुचकुचन्द शर्मा (15 जनवरी, 1936, बहरपुर जनपद पटना, 'निवास हुसैनगंज, पत्रालय बाढ़, जनपद पटना) के रूप में एक अन्य साहित्यिक विभूति प्राप्त हुई है, जो अस्मिता-सम्पन्न सृजन के अतिरिक्त याज्ञवल्क्य, गार्गी, मैत्रेयी, जनक, सीता, जरासन्ध, कर्ण, बुद्ध, महावीर, चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक, पुष्यमित्र शुंग, पंतजलि, समुद्रगुप्त, चन्द्रुप्त विक्रमादित्य, स्कन्दगुप्त, शेरशाह, कुँवर सिंह, विररसा मुंडा, राजेन्द्रप्रसाद, जयप्रकाश नारायण प्रभृति के समग्र संसार के अतुलनीय इतिहास-गौरव बिहार[1] पर सृजन ('पाटलिपुत्र' महाकाव्य) में भी सक्षम सिद्ध हुआ है। 'कुन्ती' पर वर्णनात्मक काव्य उनकी अन्य उल्लेख्य कृति है। वे मगही-प्रेमी एवं मगही-कवि के रूप में भी स्मरणीय हैं। सतीशकुमार मिश्र, कुमारी राधा इत्यादि ने मगही में स्फीत रचनाएँ की हैं। इनका योगदान अल्प है, पर अच्छा है।

प्रो. मुचकुन्द शर्मा कृत एकादशसर्गीय काव्य 'शकुन्तला' स्फीत पत्नीशोककाव्य में समग्र साहित्य की एक विलक्षण एवं मौलिक सृष्टि है। हिन्दुओं में विवाह होता है, शादी या मैरिज नहीं होती। विवाह का अर्थ है, विशेष दायित्व-वहन कराने वाला धार्मिक संस्कार।

भारत नारी-सम्मान का सर्वोच्च देश है : विश्वावारा, अपाला, घोषा, सूर्या, श्रद्धा, वाक् जैसी ऋग्वेद-ऋषिकाएँ मानव-जाति की प्राचीनतम नारी-विभूतियाँ हैं। गार्गी, मैत्रेयी, कात्यायनी जैसी विदुषियाँ भी प्राचीनतम हैं। ऋग्वेद की वीरांगना विश्पला विश्व की आदि-वीरांगना है, जिसकी परम्परा कैकेयी, दुर्गावती, लक्ष्मीबाई, अवन्तीबाई इत्यादि तक व्याप्त रही है। सावित्री, दमयन्ती, सीता इत्यादि केवल भारत में ही हो सकती हैं। इस युग में भी अनेक नारी-विभूतियाँ हुई हैं जिनमें राजनीति में इंदिरा गाँधी, कविता में महादेवी वर्मा, संगीतशास्त्र में सुब्बालक्ष्मी, लोकप्रिय गायन में लता मंगेशकर विश्वस्तरीय हैं; इस युग में भी कोई एक देश इस स्तर के इतने नारी-रत्न उत्पन्न नहीं कर सका। केवल इंदिरा के कारण श्रीलंका, पाकिस्तान, बांग्लादेश जैसे अपर-भारत, भारतपुत्र, भारतपौत्र में नारियाँ सर्वेच्च राजनैतिक पदों तक पहुँच गईं! भारत में ही विवाह होता है, 'सती' केवल भारत में हुई हैं (मैं समर्थन नहीं कर रहा, व्यक्तिगत रूप से विरोधी हूँ, किन्तु इब्नेबतूता, कबीर, जायसी, (तुलसी) इत्यादि के उद्गारों तथा जनश्रद्धा को नकारने का मिथ्यात्व भी नहीं ओढ़-बिछा सकता—'वस्तुपरक' से न्याय मेरा दायित्व है), 'जौहर' (रत्न-परीक्षण) केवल भारत में हुए हैं, पुनर्विवाह-प्रथा यहाँ हिन्दुओं तथा तत्वतः हिन्दू सिखों, जैनों, बौद्धों में ही नहीं अपितु मुसलमानों, ईसाइयों इत्यादि में भी प्रचलित नहीं हो पाई। इसीलिए, विवाह एक कठिन समस्या है, जबकि शादी या मैरिज नहीं। अनेक सुविधादासी स्त्रियाँ विवाह की जटिलता के कारण मुसलमानों या अन्यों से जुड़ जाती हैं किन्तु ''न घर की न घाट की'' व्यथा का भार केवल वे ही समझ पाती हैं: इसे ऊपरी लकलक-दगदग में अल्फ़ा-ओभेगा पाने वाले मूढ़जन नहीं समझ सकते! स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः!! मनुष्य (नर हो या नारी) बाह्य उपादानों से सुख नहीं प्राप्त कर सकता, उल्लास तो दूर रहा, आनन्द की तो कल्पना भी नहीं!!! केवल भारत में पति-पत्नी समान हैं। बृहदारण्यक उपनिषद् हो या मनुस्मृति, सबके अनुसार एकांकी अरमणशील ब्रह्म या विराज या प्रभु ने स्वयं को 'पत्' (गिरा) कर पति-पत्नी के द्विरूपों में रमणार्थ सर्जित किया। पावन नर, पावन नारी ब्रह्मोद्भूत समान हैं। मजहबों में जीवन पाप से है, नारी गौण। भारतीय विवाह विश्व में अद्वितीय है, भारतीय दाम्पत्य जीवन की कहीं कोई तुलना नहीं। विवाह भारतीय संस्कृति का गौरव-ध्वज है। मुचकुन्द शर्मा ने 'शकुन्तला' में विवाह-गौरवध्वज का प्रशस्य अवरोहण किया है।

---

[1] रचनाकारों से स्फीत 'बिहार-गौरवम्' महाकाव्य की प्रार्थना मैं अर्से से करता आ रहा हूँ। 'राजगृह' एवं 'नालन्दा' खंडकाव्य भी रचनीय हैं।

महापुरुषों, धर्मपुरुषों, नेताओं, वीरों, बलिदानों इत्यादि पर बहुत लिखा जा चुका है तथा लिखा जाता रहेगा क्योंकि इससे जनश्रद्धागत लाभ भी होते हैं, सामयिक लोकप्रियता भी प्राप्त होती है, दलगत लाभ भी प्राप्त होते हैं। हर्ष है कि मुचकुन्द शर्मा ने अपनी प्रेरक स्वर्गता 'शकुन्तला' प्राणप्रिया पर लिखा। 'सम्बन्धों की सुगन्ध' में पितामह, पिता, माता, पत्नी, पुत्री[1], पुत्र तथा जीवित मित्रों पर लेखनी चलाई है। 'सम्बन्धों की सुगन्ध' मुचकुन्द शर्मा का 'अर्द्धकथानक' (जैन-कवि बनारसीदास, जन्म 1586 ई. में जौनपुर—55 वर्षों का जीवनवृत्त) माना जा सकता है। 'फागुन आया' में लोककाव्य के स्पर्श से पुलकित, प्रकृति ग्राम, पर्व इत्यादि पर सृजन किया है; आत्मपरक उद्‌गार भी व्यक्त किए हैं, युगव्यथा की ओर भी दृग्पात किया है। प्रो. मुचकुन्द शर्मा की कविता में अस्मिता के प्रभावी दर्शन होते हैं। पत्नी-चिरवियोग पर बच्चन, उमाकान्त मालवीय, शत्रुघ्नलाल शुक्ल, प्रकाश द्विवेदी, रमाकान्त श्रीवास्तव इत्यादि ने मार्मिक काव्यरचना की है तथा डॉ. केदारनाथ अवस्थी ने महाग्रन्थ लिखा है। किन्तु इसमें मुख्यतः अपनी शोकानुभूतियाँ व्यक्त की गई हैं। यत्र-तत्र निधन-परिस्थितियाँ भी विवृत हैं, चरित-नायिका के जीवन को वरीयता नहीं प्रदान की गई। बुद्ध-पूर्णिमा, 2051 वि. (बुधवार, 25 मई, 1994) को दिवंगत पत्नी राजकिशोरी (जन्म स्थान मटियारा, कानपुर जहाँ उनकी स्मृति में मन्दिर बनवाया है) पर सप्तसर्गीय खंडकाव्य 'स्वर्गता' (उसी वर्ष रचित-प्रकाशित) में मैंने चरितनायिका को वरीयता प्रदान करते हुए उनके जीवन-संघर्षो एवं गौरव को यथार्थ-शैली में चित्रित करने की परिपाटी का श्रीगणेश किया। 'स्वर्गता' महानता के साधारणीकरण का प्रथम प्रयास था। ''आत्मा वै गुरुरेकः'', ''अहं ब्रह्मास्मि'', ''तत्वमसि'', ''शिवोऽहम्'', ''परस्पर देवो भव'', ''सर्वं खल्विदं ब्रह्म'' के देश में 'स्वर्गता' की रचना का एक उद्देश्य शक्ति, सत्ता, धन, प्रचार-साधना इत्यादि के बल पर घटिया ख्याति-आखेटकों की खोखली पूजा से हटकर अपनों की महानता का दर्शन करना-कराना था। मैंने राजकिशोरी को उनके जीवनकाल में समय-समय पर अनेक ग्रन्थ समर्पित किए थे, अनन्तर भी किए। डॉ. पवनकुमार (नवरहस्यवाद और नयी कविता), डॉ. विजयशंकर मिश्र (जायसी के अभिप्रेत आशय) एवं डॉ. सुनील जोशी (माँ से बढ़कर कौन महान्) ने भी ऐसा किया। महापुरुषवाद से मुक्त पश्चिम, जापान, चीन, इस्त्राइल इत्यादि ने जनमहानता का विकास किया है। स्वयं को महान् या असाधारण या अलौकिक कहने वालों ने मानवता को खंडित कर डाला है, विभाजित कर डाला है, मानव को हिंस्र एवं पशुलज्जितकर प्राणी बना डाला है। महानता के निस्संग दर्शन परिवार कार्यस्थल, समाज इत्यादि में होने चाहिए। कवि मुचकुन्द शर्मा जी ने 'शकुन्तला' में महानता का प्रशस्य साधारणीकरण किया है। निस्सन्देह, 'शकुन्तला' महाकाव्य है, क्योंकि इसकी वास्तविक नायिका 'नारी' हैः शकुन्तला नारीत्व का मानवीकरण है। आविर्भाव, पूर्वमंगल, मंगल, जीवनपथ, मातृत्व, संतति-मंगल, अटन, लय, सुमनांजलि, वियोग-दर्शन, अर्द्धनारीशंकर शीर्षक एकादश सर्ग व्यक्ति नहीं अपितु संस्कृति से संपृक्त हैं। उदात्त-संस्कृति से बढ़कर महाकाव्य नायिका कौन हो सकती है? महाकाव्य पर प्राचीन परिभाषाओं में बद्धता जड़ता की सूचक है। उनके निकष पर खरे महाकाव्य भी प्रशस्य हैं, जीवन के नए महायामों से संबद्ध महाकाव्य भी खरे हो सकते हैं।

पश्चिम में पत्नी-श्रद्धा सम्भव नहीं (विकसित जीवन का शिष्टाचार एवं समभाव अवश्य प्रशस्य है) क्योंकि उनके मजहब (वस्तुतः सामी मजहबों में मूसाइयत प्रथम है, ईसाइयत तत्प्रसूत किन्तु वेदान्त-बौद्धमत-प्रेरित होने के कारण विलक्षण भी मोहम्मदीयत प्रायः मूसाइयत-प्रेरित) के अनुसार आदम (एडम) की बीवी हब्बा (ईव) ने वर्जित गंदुम (ज्ञानतरु-फल या सेब) खाने को प्रेरितकर आदम को स्वर्ग-च्युत कराया थाः नारी नारकीय है! अंग्रेज़ी में मित्रचिरविरह पर 'लिसीडस' (मिल्टन) जैसी श्रेष्ठ-विशद तथा 'इन मेमोरिअम' (टेनीसन) जैसी महान् काव्यकृतियाँ उपलब्ध हैं, किन्तु-पत्नी-चिरवियोग पर ब्रॉउनिंग कृत 'प्रॉस्पिके' शीर्षक छोटी कविता मात्र जिस पर भारतीय आत्मवाद छाया है। ईसा माँ-बहन-भाई वगैरह को कोई महत्त्व न देते थे, पिता की उन तथा उन की पिता पर कोई रुचि तक न थी। अतः पश्चिम में पारिवारिता पर कोई उत्कृष्टतर सृजन नहीं उपलब्ध होता (जैसा रामायण, महाभारत इत्यादि से रामचरितमानस, साकेत इत्यादि तक दृग्गत होता है)। अब तो, यन्त्रमानवयुग में, पश्चिम में पारिवारिकता का विकट ह्रास ही होता जा रहा है। नक़लची इंडियंस पर भी उसका प्रभाव (दुष्प्रभाव?) देखा जा सकता है।

'शकुन्तला' काव्य से तीन उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. पाणिग्रहण वेला में वर थामा कन्या हाथ
हुई प्रतिज्ञा यह कि हम न छोड़ेंगे तेरा साथ

---

[1] डॉ. इंद्र सेंगर (दिल्ली) ने पुत्री अल्पना के चिरवियोग पर मार्मिक काव्य रचा है।

पाणिग्रहण, वर थामे है कन्या का सुंदर हाथ
पाणिग्रहण, कन्या सनाथ है, वर समक्ष है माथ
पाणिग्रहण, वर कन्या को आज से ग्रहण करता है
अपने मन-मानस में कन्या के सुख को धरता है
पाणिग्रहण, कुश शंख लिए आते घर के सब जन हैं
पाणिग्रहण, अर्पित करते वर को कन्या-सा धन हैं
पाणिग्रहण, सबकी आँखों में भर आया है पानी
पाणिग्रहण, सिसकियाँ भर रहे अब हैं कन्यादानी¨

2. चुटकी भर सिन्दूर, इसी के हित कन्या है जीती
चुटकी भर सिन्दूर, जगा कन्या का भाग्य सपूती
चुटकी भर सिन्दूर, इसी के लिए सभी तैयारी
चुटकी भर सिन्दूर, कहो बनता किसकी लाचारी
चुटकी भर सिन्दूर, बनी कन्या अब नवपरिणीता
चुटकी भर सिन्दूर, माँग में भरकर वह है जीता
चुटकी भर सिन्दूर, यही कन्या के लिए रतन है
चुटकी भर सिन्दूर और पुलकित धरती कण-कण है

3. वृद्धावस्था जीवन का सुंदरतम मीठा फल है
यह जीवन समतल की सरिता यह न रेत चंचल है
वृद्धावस्था जीवन के कुल अनुभव को कहते हैं
वृद्धावस्था जीवन में सबकुछ लहते-सहते हैं
वृद्धावस्था है जीवन की सबसे बड़ी उदासी
घट रह जाता है खाली, आँखें प्यासी-की-प्यासी
वृद्धावस्था जीवन के बुझने के पल की बाती
वृद्धावस्था प्रभु-चरणों में जानेवाली पाती¨

'शकुन्तला' केवल कविपत्नी एवं कवि का, परिवार का, विवाह-प्रथा का वृत्त मात्र नहीं है, भारतीय संस्कृति के मानक-रूप का चित्र भी है, जो आशावाद और जीवन के साथ पूरे समझौते को उजागर करता है। 'सम्बन्धों की सुगन्ध' वस्तुतः 'शकुन्तला' का परिशिष्ट है। 'फागुन आया' में कवि की उमंग और तरंग व्यक्त है तथा जीवन-दर्शन से सम्पन्न भी है। इनके बाद कुन्ती, द्रौपदी और सीता पर भी उनके काव्य प्रकाशित हुए हैं। इन काव्यकृतियों ने प्रो. मुचकुन्द शर्मा को एक सशक्त एवं स्मरणीय जीवन-कवि बना दिया है। तुलसीदास (रामचरितमानस, कवितावली, गीतावली, रामाज्ञा-प्रश्न) के अनन्तर, 'विवाह' पर ऐसा कृतित्व केवल मुचकुन्द शर्मा का ही है।

प्रो. मुचकुन्द शर्मा मगही के मधुर कवि भी हैं। मगही भोजपुरी एवं मैथिली की मध्याभाष्त के रूप में मधुरिमा एवं कला से द्विविध-सम्पन्न है। दो बानगियाँ देखिएः

1. चैत के इंजोरिया

चैत के इंजोरिया उगल हे टहपोर
मटकी से दूध गिरल फैलल सब ओर
चिरई चुरमुन्नी सब खोंता में बंद
धरती पर उतरल इंजोरिया के छन,
रात हे नीख पात निस्पंद

नदी नाला सुत्तल हे धार भी बन्द
रात अभी आधे हे लगल जैसे भोर
चैत के इंजोरिया उगल हे टहपोर
महुआरी धीरे-धीरे तपके हे
लगल जैसें आय-माय लपके हे
बुतरू के आँख बड़ी झपके हे
धरती के साड़ी बड़ी दपके हे
उमड़ रहल नेह ढरल अँखिया के कोर
चैत के इंजोरिया उगल हे टहपोर
धरती परी जैसन लगल बड़ी गोर"

2. नइकी दुलहिनियाँ

डोली से उतर रहल नइकी दुलहिनियाँ
उतरल सुबह में जैसें सुरुज के किरिनियाँ
हँटस ओहार जैसें फटल अन्हार तखने
धूप पियराल ओकर उबटन सन देह लखने
मुलुर-मुलुर ताके हे अपना के झांपे हे
एने ओने हील तो अंचरा के चांपे हे
घूँघट उठैलक तो उदयाचल बरो लगल
मुँह खोललक तो मोती भी झरो लगल
गाल हे लाल छितराल हे बड़बाल
चमक रहल बिन्दी चल रहल बड़ी मंद चाल
पाँव में महावर, पायल बाजे है, टुनुर टुनुर
घुँघरू सन बोले हे गहना सब झुनुर-मुनुर
गाल पर तिल है रूप झिलमिल हे
देख पड़ोसिन के छाती पड़ल सिल हे"

सतना-सन्दर्भ

1990-2000 ई. के मध्य सतना (सुतीक्ष्ण की स्मृति में सुतीक्ष्णा नदी एवं नगरः राम-यात्रा का एक स्मारक) साहित्यिक दृष्टि से समूचे मध्य प्रदेश में अग्रणी रहा। गीतकार एवं ग़ज़ल-विवेचक डॉ. सुमेरसिंह 'शैलेश', बघेली- कवि एवं बालसाहित्यकार वेदप्रकाशसिंह 'प्रकाश', अध्यात्य-काव्य 'नारायणी' के प्रेणता एवं बघेली-कहावतसंग्रह 'उक्खाना'के प्रस्तोता रोहिणीप्रसाद मिश्र, प्रताप-कवि छोटेलाल पांडेय, प्रचंड दलितवादी (आम्बेदकरवादी एवं मंडलवादी) कवि एवं लेखक रानार्जुन 'राना' (पितृदत्त नाम रामनारायण सिंह 'राना'—राम से 'रा' तथा नारायण से 'ना' लेकर—किन्तु दलितवाद-प्रेरित परवर्ती 'रानार्जुन') इत्यादि के अतिरिक्त वरिष्ठ कथाकार विमल अहल्यायन, हास्यव्यंग्यकार सन्तोष खरे, कलात्मक 'नई' कविता-रचनाकार (उज्जैन के मार्मिक लोककाव्यकार हरीश निगम से भिन्न) हरीश निगम इत्यादि ने भी सतना का साहित्य-गौरव बढ़ाया है। इधर, 'हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य का अनुशीलन', 'रामकाव्यः बोध के विविध रूप', 'रामचरितमानस और साकेत' जैसे विद्वतापूर्ण-शोधपूर्ण ग्रन्थों के प्रसिद्ध प्रणेता डॉ. परमलाल गुप्त ने कविता, कहानी, नाटक, उपन्यास, संस्मरण, हास्यव्यंग्य जैसी ललित विद्याओं में भी पठनीय रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। 'केशवदास का प्रेत' (नाटक), 'एक बुद्धिजीवी का विषाद' एवं 'मन्त्री जी की भैंस' (कहानीसंग्रह), 'अतीत के अनमोल क्षण' जैसी कृतियाँ उन्हें बहुविधाकार का गौरव प्रदान करती हैं। प्रवासी-रचनाकारों में ऋषिवंश (विद्याशंकर मिश्र) को अग्रणी माना जा सकता है, जिनके विलक्षण 'युद्धबीज' उपन्यास

(1998 ई.—भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन) में वैवश्यजन्य जीवन से भयावह माफिया-सरगना बना नायक अध्यात्म की ओर उन्मुख होता चित्रित किया गया है, किन्तु अधुनातन कला का निर्वाह आद्यंत दृग्गत होता है। 'युद्धबीज' एक उत्कृष्ट उपन्यास है जिसमें विकट वैज्ञानिक युग में भी प्रशान्त आध्यात्मिकता की उपयोगिता प्रतिपादित है। 'उत्तरा' (पन्त), 'पूर्वा' (अज्ञेय), 'उत्तर-कबीर और अन्य कविताएँ' (1997 ई. केदारनाथ सिंह) की चिर महाकवि पन्त प्रवर्तित, युगवर कवि अज्ञेय गृहीत, कवि केदानाथ सिंह अनुकृत परम्परा का नाम स्मरण कराने वाली ऋषिवंश की काव्यकृति 'उत्तरायण' (1993 ई.—साहित्य भवन इलाहाबाद) मानव की अध्यात्ममूलक एकता के प्रतिपादन की एक वरेण्य अधुनातन सृष्टि है। सम्भव है, साम्यवादी केदारनाथ सिंह इससे प्रतिक्रिया-प्रेरित हुए हों? दोनों कवि एकस्तरीय हैं, यद्यपि ऋषिवंश के आयाम प्रायः कालातीत एवं रुक्षप्राय साम्यवाद की लौह-शृंखला से मुक्त विज्ञानयुग को अध्यात्म-संपृक्त करने के प्रतिपादक हैं। मानव-खंडक विजातीयतावादी-साम्यवादी राम और बुद्ध, कबीर और तुलसी, भारतेन्दु और महावीरप्रसाद द्विवेदी, प्रसाद और निराला इत्यादि का राजनीति-प्रेरित अलगाव कर साहित्य की हत्या कर रहे हैं। इस दृष्टि से ऋषिवंश के शुद्ध-एकतावादी स्वर गहनतर हैं।

प्रकीर्णक

हिन्दी-साहित्येतिहास-लेखन एक स्फीत एवं गहन कार्य है। इस पर समीक्षा-लेखन भी व्यापक दृष्टि से ही उचित होगा। किन्तु क्षेत्रगत दृष्टि से भी विचार किया ही जाता है : अपनी-अपनी सीमा![1] एक बाराबंकवी मित्र ने लिखा, ''होलराय ब्रह्मभट्ट रायबरेली के नहीं थे। वे होलपुर-चौबीसी (हैदरगढ़ की ओर) बाराबंकी के थे।'' यह 'बारहबामी' एवं 'बाँका' आदेश मुझे इसलिए स्वीकार नहीं कि होलपुर रायबरेली जिले में भी और सारे साहित्येतिहासकारों ने होलराय को रायबरेली का ही माना है। इन मित्र के इस आदेश को मैं पाठकों के विवेक पर छोड़ता हूँ, ''शिवसिंह सेंगर को अपनी महत्त्वपूर्ण देन 'शिवसिंह-सरोज' प्रस्तुत करने के लिए पं. महेशदत्त शुक्ल (बाराबंकी) से ही प्राप्त हुई थी[2]। अन्य अनेक विद्वानों की चर्चाएँ भी छूट गई हैं, यथा डॉ. रमाशंकर तिवारी, बाबू वृन्दावनदास आदि।'' रायबरेली की एक महिला ने 'बहुत-सब बातें' लिखीं जिनमें सीतात्याग-प्रकरण की प्रक्षिप्तता के सन्दर्भ में डॉ. रामकुमार वर्मा कृत महाकाव्य 'उत्तरायण' के अनुल्लेख की बात ठीक है। संप्रति (किन्तु विराट् साहित्येतिहास में प्रत्येक ग्रन्थ से परिचय सम्भव नहीं):

''सीता-निर्वासन है असत्य फिर रामायण क्यों दे प्रमाण?
''मैं कहता हूँ अपने उर का चुभा बाण!''

उन्नीसवीं शताब्दी तक सेन्ट्सबरी इत्यादि सारा-कुछ पढ़कर लिख सकते थे, बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में संख्या में तीन तथा अतिसम्पन्नता के कारण साधनमय होने के कारणद्वय से मिश्रबन्धु शत-शत सन्दर्भों में ''हमने देखा है'' जैसे शब्दों के प्रयोग कर सकते थे किन्तु शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यह अतिकठिन होते-होते अन्त तक 'असम्भव' हो चुका है—एक नहीं, तीन नहीं, दस लेखकों के मण्डल के लिए भी।

नोइडा

दिल्ली का तत्वतः एक अंग नोइडा (ग़लत प्रचलना नोएडा या नौएडा) साहित्यिक दृष्टि से एक सम्पन्न नगर है। एक अग्रणी बाल-साहित्य विभूति आशारानी व्होरा, हास्यकवि बाबा कानपुरी, राष्ट्रीय विचारधारा के पोषक डॉ. मदनलाल वर्मा 'क्रान्त' (जिन्होंने अमर; हुतात्मा रामप्रसाद' 'बिस्मिल' पर शोधकार्य भी किया है तथा उनके उर्दू-हिन्दी कृतित्व का सम्पादन भी—'बिस्मिल' एवं 'क्रान्त' अन्योन्य हो गए हैं: निराला एवं डॉ. रामविलास शर्मा, बच्चन एवं डॉ. जीवनप्रकाश जोशी प्रभृति के सदृश), गीत-ग़ज़लकार अशोक 'मधुप', हिन्दीसेवी राजमणि तिवारी, सोमदत्त दीक्षित, उपेन्द्र मिश्र इत्यादि के मध्य गहन कवि प्रो. लल्लनप्रसाद एवं गहन गद्यकार एयर वाइस-मार्शल (अवकाशप्राप्त) श्री विश्वमोहन तिवारी निस्सन्देह विशिष्ट हैं। हिन्दी-प्राध्यापन, हिन्दी-व्यवसायमूलक लेखन, हिन्दी-दोहन इत्यादि को मैं धन्धा मानता हूँ। इनमें भी अपवाद होते हैं क्योंकि अपवाद जीवन का नियम है। अनेक प्राध्यापक उत्कृष्ट साहित्यकार

---

1. ''निज पौरुष परमानज्यों मसक उड़ाहि अकास'' का याद आना ठीक नहीं!
2. 'प्ररेणा' या 'स्फुरण' या 'विचार' या अन्य शब्द होता तो सुविधा रहती!

हुए हैं जिनका ऐतिहासिक महत्त्व है: आ. श्यामसुन्दरदास, आ. रामचन्द्र शुक्ल, डॉ. मुन्शीराम शर्मा 'सोम', डॉ. रामकुमार वर्मा, डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, आ. नन्दुलारे वाजपेयी, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. रामविलास शर्मा इत्यादि प्रमाण हैं। किन्तु पहले कुछ तथा अब अधिकांश प्राध्यापक धन्धेबाज़, कुछ घटिया धन्धेबाज़ भी, हो गए हैं। जिनका हिन्दी से रोटी-रोज़ी और धन्धेबाज़ी का रिशता नहीं, ऐसे साहित्य-दिग्गज भी कम नहीं हुए: मिश्रबन्धु, आ. कृष्णबिहारी मिश्र, आ. परशुराम चतुर्वेदी, वृन्दावनलाल वर्मा इत्यादि की सूची बहुत लम्बी है। प्रो. लल्लनप्रसाद एवं श्री विश्वमोहन तिवारी उन कवियों एवं लेखकों में हैं जिनकी सेवामयी रुचि माता-हिन्दी को नमन करती रहती है। 'भीड़ की आँख' और 'नीम पीपल बरगद के शहर' संग्रहों में प्रो. लल्लनप्रसाद की गहरी-गहरी कविता पर्यावरण और युग-विडम्बन के बिन्दुओं में बहुत सफल है। स्फीत कवि प्रो. महेन्द्रप्रसाद सिंह (राजनीति-शास्त्र) एवं कवयित्री डॉ. रंजना गुप्ता (दर्शनशास्त्र) प्रभृति अन्यविषयविद्वानों एवं विदुषियों ने भी हिन्दी की स्मरणीय सेवाएँ की हैं। एयर वाइस-मार्शल विश्वमोहन तिवारी ने 'खाड़ी-युद्ध 1991: वायुशक्ति की विजय' तथा 'इलेक्ट्रॉनिकी युद्धकला' जैसे मौलिक ग्रन्थ विश्वस्तरीय हैं तथा हिन्दी की किसी भी विषय पर गहन रचना के द्योतक हैं—बस, अधिकारी लेखक होना चाहिए जो तिवारी जी से बढ़कर मिलना कठिन है! 'सरल वैदिक गणित' के अनुवादक के रूप में भी उनका नाम स्मरणीय है। वायुसेना में हिन्दीप्रेमी ही बहुत कम मिलते हैं, फिर हिन्दी-लेखक! और, सक्षम लेखक!! विरल में विरल!!!

राजनीतिज्ञों में हिन्दीक्षेत्र-शोषक अधिक हुए हैं, हिन्दीसेवी (महामना मालवीय, भारतरत्न राजीर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन जैसे) तथा हिन्दी-लेखन (देशरत्न डॉ. राजेन्द्रप्रसाद, अमर हुतात्मा गणेशंकर विद्यार्थी जैसे) कम ('नई' कविता में विश्वनाथप्रतापसिंह तथा 'नई' कविता + गीत + 'कैदी कविराय' के त्रित् में अटलबिहारी वाजपेयी आदरपूर्वक स्मरणीय हैं किन्तु दोनों में हिन्दी-माता के प्रिय केवल वाजपेयी जी ही हैं) अनेक हिन्दीभाषी उच्च विदेश-सेवा, सेना-जलसेना-वायुसेना तथा अन्य सुरक्षा बलों, विविध प्रशासनिक सेवाओं इत्यादि में रहे किन्तु अपनी दिशाओं में गहनग्रन्थरचना-विपन्न ही जिए-मरे ऐसे में, विश्वमोहन तिवारी विशेष सम्मान के पात्र लगते हैं।

हरिशंकर 'आदेश'

जैसे मॉरीशस के बहुविधाकार अभिमन्यु 'अनत' स्वदेश-हिन्दीप्रतीक हैं, वैसे ही प्रो. (कविवर) हरिशंकर 'आदेश' ट्रिनिडाड के। वे ट्रिनिडाड में बीसवीं सदी (ई.) की हिन्दी को इक्कसवीं सदी में प्रवेश करा रहे हैं तथा यह प्रवेश परम्परा एवं प्रगति के समन्वय से सम्पन्न है। यदि हिन्दी में कोई एक ऐसा महान् साहित्यकार है जो उसे समग्र राष्ट्र से ही नहीं अपितु नेपाल, मॉरीशस, फिजी, गुयाना, सूरीनाम, टोबैगो, ट्रिनिडाड तथा शेष विश्व के भारतीयों से जोड़ सकता है तो वह तुलसीदास और केवल तुलसीदास हैं। विजातीयतावादी एवं जातिवादी तत्त्व कबीर पर केन्द्रित करने के यत्न में जुटे हैं। महापुरुष-महाकवि कबीर ने रैदास, नानक, दादू, रवीन्द्र जैसे अमर कवियों को प्रभावित किया है तथा कोटि-कोटि भारतीयों में समादृत हैं, किन्तु भारत से बाहर उनकी कोई ख़ास अपील नहीं: वे कोई रामकिंकर उपाध्याय या मुरारी बापू या आसाराम बापू भी नहीं विकसित करते। खंडन-मंडन या धार्मिक एकता का भारत में ही महत्त्व हो सकता है क्योंकि यहाँ के नेता फूट के बल पर ही अपनी घिनौनी सत्ता बनाए रखते हैं। ये कबीर से भी अपना राजनैतिक या राजनीति-मूलक लाभ उठा रहे हैं। इसी प्रकार, राम ही भारत और शेष विश्व के सर्वपरि संयोजक हैं क्योंकि रामकथा सारे बौद्ध, अनेक मोहम्मदी देशों में तो प्रचलित है ही, पेरू-अर्जेन्टीना-मेक्सिको तक प्रसरित है, क्योंकि उसमें जीवन का 'समग्र' विवृत होता है। स्वयं भारत में बुद्ध का जीवन-क्षेत्र गया, सारनाथ, कुशीनगर तथा राजाश्रय-संबद्ध राजगृह-श्रावस्ती-कुशीनगर में सीमित है। बुद्ध एक सर्वश्रेष्ठ विश्वमानव हैं, किन्तु उनके जीवनायाम विस्तीर्ण नहीं हैं। यों ही, राम-बुद्ध-महावीर इक्ष्वाकु-वंशीय हैं; राम बुद्ध के एक पूर्वावतार हैं तो बुद्ध विष्णु के एक अवतार और जैनों में राम विवेक-प्रतीक पद्म (पउम) हैं। राम और तुलसी भारत और हिन्दी के सर्वेपरि विश्व-संयोजक हैं।

हरिशंकर 'आदेश' तुलसी-विज्ञाता हैं। वे तुलसी पर प्रायशः काव्यरचना करते रहते हैं। वे तुलसी के मूल-प्रकृत मानवतावादी-प्रगतिसम्पन्न रूप से परिचित हैं। वे हिन्दी-भक्त हैं। उनकी 'गोस्वामी तुलसीदास से'[1] और हिन्दी की आरती' कविताएँ प्रस्तुत हैं, जो शाश्वत-विश्वकवि एवं माता-हिन्दी के अनुरूप है :

---

[1] एक नया इतिहास रचा गोस्वामी तुलसीदास ने

1. एक नया इतिहास रचा गोस्वामी तुलसीदास ने

फँसा हुआ था धर्म सनातन दुष्टों के जंजाल में,
संप्रदाय-मत-मतांतरों के भीषण मायाजाल में।
अपनी ढपली अपना राग अलाप रहे विद्वान् थे,
नए पंथ उगते आते थे, फाँस भक्तजन जाल में।
संस्कृतियों का सेतु बनाया, राम नाम का केतु ले,
नवजीवन आभास दिया गोस्वामी तुलसीदास ने।

एक सत्य है, एक है ईश्वर, सब उसकी संतान हैं,
जाति-पाँति-कुल-जाति न बढ़कर, यह जग कर्मप्रधान है।
छोटा-बड़ा न कोई जग में सारे भक्त समान हैं,
करो घृणा मत किसी से सब सम आत्मवान हैं।
वेद, शास्त्रों, उपनिषद्, पुराणों का मंथन कर, सार में
एक नया विश्वास दिया गोस्वामी तुलसीदास ने।

"पराधीन सपनेहुँ सुख नहीं" जियो कभी मत त्रास में,
पूर्ण समर्पण राम को, बल भरकर विश्वास में।
धर्म-कर्म-कर्तव्य करो, जब तक बल शेष है श्वास में,
स्वतंत्रता का बीज बो दिया भारत के इतिहास में।
नए प्राण नूतन आशा दे, भाषा देकर प्रेम की,
नवल क्रांति आकाश दिया गोस्वामी तुलसीदास ने।

2. हिन्दी की आरती

जय हिन्दी! जय भारती!
आओ, मिलकर आज उतारें, हम हिन्दी की आरती।।

1. गंगा-यमुना की दुहिता है, सर्व-मंगला सर्व-हिता है।
भारतीयता की प्रतीक है, कोटि-कोटि उर-समादृता है।
जन-मानस में शताब्दियों से, उदात्त भाव उभारती।।

2. हिन्दु-मुसलमान-ईसाई, सदैव सब के ही मन भाई।
कर साहित्य-सर्जना सबने, हिन्दी है समृद्ध बनाई।
कवि-मनीषियों की मेधा नित, जिसको रही संवारती।।

3. सक्षम देवनागरी लिपि ले, हर ध्वनि आत्म समाहित कर ले।
ज्यूं की त्यूं सारी भाषायें, लिख लो, जो जैसा भी बोले।
हर भाषा की सखी, सतत सौजन्य-कुम्भ है ढारती।।

4. भारत भू में उभरी हिन्दी, संत-पदों में निखरी हिन्दी।
गौरव-गरिमा ले, जग के कोने कोने में बिखरी हिन्दी।
एक सूत्र में इसे पिरो लें, कहती है मां भारती।।

5. नये क्षितिज-आकाश बनायें, जन-जन में विश्वास जगायें।
विश्व-वासियो मिल हिन्दी का एक नया इतिहास रचायें।
नव आशा भर आज दृगों में, हिन्दी तुम्हें निहारती।।

6. प्रेम-पूर्ण व्यवहार बनायें, हिन्दी का संसार सजायें।
विश्व-मंच रच हिन्दी का दृढ़, जग-हिन्दी परिवार बनायें।
देती है 'आदेश' शती, युग-वाणी यही पुकारती।।

सहस्राब्दि के सर्वश्रेष्ठ सानतनधर्मरक्षक एवं सर्वश्रेष्ठ कवि तुलसीदास राम, कृष्ण, व्यास, बुद्ध और शंकराचार्य के साथ राष्ट्र के शलाका-पुरुष तो हैं ही, एक विश्वपुरुष एवं एक विश्वकवि भी हैं। 'आदेश' की तुलसी पर रचित यह कविता अतीव सार्थक भी है, अतीव उत्कृष्ट भी।

मॉरीशस

मॉरीशस को छोटा-भारत कहा जा सकता है। वहाँ एक कथा प्रचलित है : राम के बाण से आहत मारीच यहीं आकर गिरा अतः इस देश को मारीचस् या मॉरीशस कहा गया। इस विलक्षण सौन्दर्यसम्पन्न द्वीप-देश की रिक्तता मिटाने के लिए 'पूरब' (पूर्वी उत्तरप्रदेश-पश्चिमी बिहार) से मज़दूरों को ले जाया गया, उनसे विकट परिश्रम कराया गया, उन पर भयानक अत्याचार किया गया (ठीक वैसा ही जैसा संयुक्त राज्य अमेरिका में हब्शी (नीग्रो) गुलामों से कराया जाता था, वहाँ के परम-लोकप्रिय कवि हेनरी वाड्सवर्थ लॉंगफ़ेलो ने अपनी अमर कविता 'द स्लेन्ज़ ड्रीम' या 'गुलाम का स्वप्न' में चित्रित किया गया हैः अतिश्रांतश्लथ दास काम करते-करते सो जाता है, उसे स्वप्न में अपना वतन, नाइज़र नदी, गृहपरिवेश 'दीखता' है तथा हर्षतिरेक में हृदयगति अवरुद्ध हो जाती है)। किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध की प्रतिक्रिया में जब संसार के सारे उपनिवेश स्वतन्त्र हुए तब मॉरीशस भी हुआ। वहाँ हिन्दी-परिवेश भारतवत् रहा। संप्रति जब भारत में हिन्दी अपनों की हीनताग्रन्थि, विश्व-मुस्लिम आन्दोलन के प्रच्छन्न प्रभाववंश उर्दू-वर्चस्व तथा क्रिश्चियन मिशनरीज़ के प्रकट प्रभाववंश अंग्रेज़ी-दासत्व के पाटों में पिस रही है तब मॉरीशस में भी वैश्विक अंग्रेज़ी-प्रभाव तथा ऐतिहासिक फ्रेंच-प्रभाव की वृद्धि हो रही है। किन्तु जैसे भारत में हिन्दी-साहित्य का पठन-लेखन किसी-न-किसी रूप में जीवन्त है, वैसे ही मॉरशीस में भी।[1]

यदि कोई मॉरीशस के हिन्दी-साहित्येतिहास को बीसवीं सदी (ई.) से आरम्भ करे तो कर सकता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के अनन्तर मॉरीशस में हिन्दी-साहित्य की प्रचुर सर्जना हुई। मॉरीशस के प्रथम हिन्दी साहित्यकार जयनारायण राय (8 दिसम्बर, 1908—2 दिसम्बर, 1986 जिनका नाटक 'जीवन-संगिनी' प्रथम माना जाता है तथा जो हिन्दी-प्रचारिणी सभा के प्राण थे, जो साहित्य-सम्मेलन आयोजन के कारण भी ऐतिहासिक हैं) वहाँ के आचार्य श्यामसुन्दरदास थे। मॉरीशस के प्रथम कवि लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज', बीसवीं-इक्कीसवीं सदियों के सेतु-विवेचक प्रह्लाद रामशरण और उनके शब्दों में 'मॉरीशस के प्रेमचन्द' अभिमन्यु 'अनत' (मॉरीशस-प्रतीक हिन्दी-बहुविधाकार), बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न सर्जक डॉ. वीरसेन जागासिंह, कविराज हीरामन, सुखलाल रंगू 'जीवन', सत्यवती वम्मा, इन्द्रदेव भोला 'इन्द्रनाथ', धनराज शम्भू 'आनन्द', नारायणदत्त बनर्जी, केशवदत्त चिन्तामणि, लालदेव अंचराज इत्यादि ने मॉरीशस के हिन्दी-साहित्य को प्रतिष्ठित स्तर तक पहुँचा दिया है।

'रसपुंज'

'मॉरीशस के प्रथम कवि'[2] पंडित लक्ष्मीनारायण चतुर्वेदी 'रसपुंज' (16 जनवरी, 1878—अगस्त, 1948, जन्मस्थान बघाँव जनपद बलिया उ. प्र., प्रथम मॉरीशस—यात्रा 1921) हास्यप्रधान-जनकवि भी थे, जिनके 'रसपुंज-कुंडलिया' (1923 ई.) का भारत के अनेक हिन्दी-कवियों पर भी प्रभाव पड़ा तथा दोहा-चौपाई प्रभृति छन्दों में 'शताब्दी-सरोज' (1935 ई.)[3] के इतिहास-चितेरे करुणाप्रधान-गहनकवि भी। 'रसपुंज मॉरीशसवासियों के उपनिवेशवादी शोषण-प्रपीड़न के कवि भी हैं, उनकी संघर्षगाथा के वैतालिक भी। वे समूचे

---

[1] इस दिशा में 'यू एस एम पत्रिका' (गाज़ियाबाद—सं. उमाशंकर मिश्र) का जनवरी-फरवरी, 1999 विशेषांक पठनीय एवं संग्रहणीय है।

[2] यू एस एम पत्रिका, जनवरी-फरवरी, 1999 अंक, पृष्ठ 79 में डॉ. मुनीश्वरलाल चिन्तामणि।

[3] भारतीय प्रवासी 1835 ई. में मॉरीशस पहुँचे या ले जाए गए।

हिन्दीसाहित्येतिहास के एक गौरव-पुरुष हैं जिनका एक पद भारत रहा है और दूसरा मॉरीशस किन्तु जो मॉरीशस के ही हो गए। दो रोचक उदाहरण देखें, जिनमें द्वितीय पिता रामटहल चौबे से संबद्ध है:

1. कुत्ता सम दौड़त फिरै हाँ हुजूर के फेर।
लाखन स्वाहा कर दिए डाली दावत बेर।।
डाली दावत बेर निरेखत साहब बँगला।
बनिठनि के प्रतिहार भयो सिर धरि के सँमला।।
वरणत कवि 'रसपुंज' मसकि गे पायन जुत्ता।
रायबहादुर हेत बने बाबू सब कुत्ता।।[1]

2. परवासी भे मारिशस रामटहल द्विजराज।
पंडितवर नित करत हैं हिंदूधर्म रिवाज।।
हिंदूधर्म रिवाज दियो परवासिन केरो।
न तु ईसा संतान बनत हिंदू बहुतेरो।।
वरणत कवि 'रसपुंज' कियो हरिचरचा खासी।
कथा पुराण सुनाय बचाओ धरम प्रवासी।।

साहित्यक पत्रकारिता

साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से अक्षर की आराधना का समारंभ पं. युगलकिशोर शुक्ल (1788-1853 ई., जन्म कानपुर तथा निधन कलकत्ता में) कलकत्ता के 'उदन्त मार्तण्ड' (30 मई, 1826) के समय से ही देखा जा सकता है। समाचारपत्र अंशतः तथा विविधायामी पत्रिकाएँ मुख्यतः साहित्य की सेवा भी करती आ रही हैं। कुछ महानुभाव स्वयं पत्रिका-प्रकाशन कर तथा कुछ उनमें काम कर साहित्यसेवा करते आए हैं। आधुनिक हिन्दी के जनक भातेन्दु हरिशचन्द्र (8 सितम्बर 1850-1885) ने पारम्परिक कविता-संवर्द्धन हेतु 'कविवचनसुधा', आधुनिक साहित्य-संवर्द्धन हेतु 'हरिशचन्द्र मैगज़ीन' तथा नारीहित-संवर्द्धन हेतु 'बाला-बेधिनी' के तीन प्रयोग किए थे। वे धनकुबेर-परिवार के लाल थे और जानते थे कि अर्थ का अक्षर-प्रयोग कैसे किया जाता है! प्रतापनारायण मिश्र, (26 सितम्बर 1856–6 जुलाई 1894) बालकृष्ण भट्ट, (3 जून 1844–20 जुलाई, 1914) उपाध्याय पं. बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', राधाचरण गोस्वामी इत्यादि उनके युग-मित्रों ने अपने-अपने ढंगों से अक्षर की आराधना की। सम्पादकचार्य पं. रुद्रदत्त शर्मा (1854–17 नवम्बर, 1918, जन्म धामपुर, जनपद बिजनौर) ने 'आर्य-विनय', 'आर्यावर्त', 'आर्यमित्र', 'भारतमित्र' (पटना), 'मारवाड़ी' (नागपुर) इत्यादि का सम्पादन कर पत्रकारिता के इतिहास में स्थान बनाया। हिन्दी के महानतम निर्माता आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी ने चिन्तामणि घोष संस्थापित 'सरस्वती' की जो सेवा की, वह अजर-अमर है ही, उनके एक महान् शिष्य गणेशशंकर विद्यार्थी का 'प्रताप'[2] भी शाश्वत है। प्रसाद ने स्वजन अम्बिकाप्रसाद गुप्त द्वारा प्रकट 'इन्दु' की सुधा-वर्षा की-कराई, तो निराला महादेवप्रसाद सेठ के 'मतवाला' से जुड़े। महादेवी का 'चाँद' अमावस्या में भी चमका! इलाचन्द्र जोशी ने 'संगम' में स्नान किया, कराया! दुलारेलाल भार्गव की 'सुधा'-'माधुरी' के पान से प्रेमचन्द, निराला, नन्ददुलारे वाजपेयी, कृष्णबिहारी मिश्र, अनूप शर्मा इत्यादि साहित्यकार अमर हुए। तन्त्ररत्न राजेन्द्र अवस्थी, परम्परावादी गिरिजाशंकर त्रिवेदी, अत्याधुनिक प्रभाकर श्रोत्रिय इत्यादि इसी परम्परा में सेवारत रहे हैं।

सिख-हिन्दीसेवी

जसपालसिंह 'संप्राण' ने 'प्रकृति और पुरुष' तथा 'आत्मा का विज्ञान' काव्यद्वय के द्वारा विज्ञान-अध्यात्म के समन्वय का उदार, युगीपयोगी एवं प्रशस्य प्रयास किया है। जीतसिंह 'जीत' वीरेन्द्रसिंह गूम्बर और गुचरणसिंह इत्यादि सिख-मित्रों की साहित्य-सेवा हिन्दी की सनातन व्यापकता के अनुरूप ही है। मस्तमौलापन के साथ जुगाड़ूपन से भी निष्पन्न डॉ. हरिभजन सिंह को हिन्दी-जगत भूलता-सा जा रहा है, किन्तु डॉ. महीपसिंह की 'अतिसजगता' अभी बाक़ायदा चल रही है! हिन्दी-साहित्येतिहास हिन्दीपन-लिए व्यापक-पंजाबी तथा

---

[1] 'नवीन पिंगल, ले. अवध उपाध्याय, प्र. साहित्य भवन लि. प्रयाग, चतुर्थ सं. 2005 वि. (1948 ई.), पृष्ठ 101

[2] शिवनारायण मिश्र के स्वामित्व में।

ब्रजभाषा के कारण नानक, लगभग पूर्णतः हिन्दीपन के कारण गुरु अर्जुन, ब्रजभाषा-कविद्वय गुरु तेगबहादुर एवं गुरु गोविन्दसिंह के बिना अधूरा रह जाएगा। पंजाब के प्रथम अकाली मुख्यमन्त्री न्यायमूर्ति गुरनामसिंह ने हिन्दी के साथ न्याय करते हुए कहा था कि सिख हिन्दी-विरोधी कैसे हो सकते हैं क्योंकि गुरुग्रन्थसाहब हिन्दी से परिपूर्ण है! हिन्दू-सिख-भेदभाव के जनक ट्रम्प तक ने स्वीकार किया था कि गुरुग्रन्थसाहब विशेषतः पुरानी बोलियों के कारण हिन्दी-ग्रन्थ है!! यदि अत्यधिक-सजग अस्मिता का प्रायः आरोपित भाव न होता तो पंजाबी और उर्दू हिन्दी की वैसी ही विभाषाएँ और शैलियाँ होतीं जैसी अवधी और ब्रज, बुन्देली और बघेली, मैथिली और अंगिका, डोगरी और हिमाचली, खड़ीबोली और कौरवी, कुमाउँनी और गढ़वाली हैं। खेद है कि इनमें भी भेदवादी घुसपैठ कर रहे हैं क्योंकि भेदवाद बीसवीं सदी (ई.) से भारत का अमोघ ख्यातिओखट-अस्त्र रहा है। मॉरीशस, फिजी, गुयाना, टोबैगो, ट्रिनिडाड तथा विश्व भर में बसे सारे हिन्दू-मुस्लिम-सिख-ईसाई-जैन-पारसी-यहूदी भाई सारी विभाषाओं और शैलियों के साथ हिन्दी की विराटता स्वीकार करते हैं। सत्य पर सदा आघात होते हैं किन्तु उसकी सत्ता नहीं मिटती।

अंगिका

1990-2000 ई. की दशाब्दि में मैथिली से भिन्न अस्तित्व के प्रमाण देनेवाली अंगिका का अच्छा विकास हुआ है। इसी बीच बिहार सरकार ने उसे पृथक् भाषा-स्तर प्रदान किया, इसी बीच अंगिका-कवि सुमन सूरो तथा डॉ. सकलदेव शर्मा 'दुर्वासा' जैसे कवियों, अंगिका-पाण्डित्यसीमान्त डॉ. डोमन साहु 'समीर' जैसे शब्दकोषकार-व्याकरणचार्य-साहित्येतिहासकार विद्वान्, डॉ. तेजनारायण कुशवाहा जैसे कवि-साहित्येतिहासकार तथा अन्य बहुआयामी साहित्यकारों, डॉ. अमरेन्द्र, डॉ. बैजनाथ चतुर्वेदी, डॉ. वसन्त चक्रवर्ती जैसे पत्रकारों ने इसे बहुविधासम्पन्न रूप प्रदान किया है। प्राणमोहन 'प्राण', सूर्यनारायण, स्व. अवधभूषण मिश्र, लक्ष्मण मण्डल, गुरेशमोहन घोष 'सरल', सोहनप्रसाद चौबे, विजेता मुद्‌गलपुरी इत्यादि कवियों, प्रदीप 'प्रभात' जैसे संकलनकारों, डॉ. विद्यारानी जैसी विदुषियों के अंगिका-अभियान प्राचीन अंग-देश (भागलपुर तथा अन्य क्षेत्र) की अधुनातन अंगिका विभाषा को प्रशस्यतः सजाया है। रघुनन्दन झा 'राही' एवं सुभाषचन्द्र 'भम्रर' सम्पादित 'प्रतिनिधि अंगिका-कवि' 'पैहल संस्करण' 1985 ई. मेरे समक्ष 'दोसरें संस्करण' 1963 ई.) डॉ. परमानन्द पांडेय, सुमन सूरो, प्रसाद 'विमल', प्राणमोहन 'प्राण' मधुसूदन 'मधु'[1] इत्यादि चौतीस कवियों का समावेश किया गया है। भागलपुर, देवधर बौंसी और दुमका अंगिका की साहित्यिक गतिविधियों के प्रमुख केन्द्र हैं। सुमन सूरो इत्यादि के कारण दुमका 'दमका' है!

अंगिका में मैथिली के माधुर्य, मगही का लालित्य और भोजपुरी का प्रवाह संपृक्त है। संप्रति महाकाव्य, खंडकाव्य, गीतिकाव्य, लोककाव्य (सम्पादन एवं प्रस्तुति रूपों में), 'नयी कविता', नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध (पत्र-पत्रिकागत लेख भी), आत्मकथा, साहित्येतिहास, भाषाविज्ञान, व्याकरण, शब्दाकोष, अनुवाद प्रभृति विभिन्न विधाओं-उपविधाओं में पर्याप्त कार्य निष्पन्न हो रहा है। सांस्कृतिक गरिमा की दृष्टि से विजातीयतावादी-अपसंस्कृतिवादी अथवा डॉलरवादी-पेट्रोडॉलरवादी-रूबलवादी-युआनवादी तत्वों से मुक्त अंगिका का साहित्य भारत की मीठी माटी का स्वच्छ-स्वस्थ साहित्य है जिसका स्वागत किया जाना चाहिए। 'प्रतिनिधि अंगिका-कवि' के आरम्भ में दी गई अत्यन्त मधुर कविता देखिए जिसके उत्साह में भाषाविज्ञान सहजतः पलायित है :

जे बोली में मायँ सुतैलकै गाबी-गाबी लोरी,
भरी जुआनी जे बोली में मचलै जोरा-जोरी,
जे बोली लौलीन बुढ़ारी बाँचै में उपदेस,
जे बोली जतसार, रोपनी, लोरिका, ’च.4गबिहू, सलेस,
जे बोली ने भाव-भाव के बान्हन देलकै खोली,
बोलबै आपनै बोली!
जे बोली में श्रृंगी न शांता के देलकै प्यार,
कर्ण के छाती पर झुललै जे बोली के हार,
जेकरें लिपि चौंसठ में चौठें भारत भरी बखान,
पाणिनि-बामन ने जेकरा देलकै प्राच्या में मान,
जिनगी-जिनगी दे के भैया भरबै ओकरें झोली,
बोलबै आपनें बोली!

---

[1] 'दुमका-दर्पण' के पत्रकार 'अपूर्व्या' सम्पादक डॉ. यू. एस. आनन्द व्यापक हिन्दी मात्र से संपृक्त हैं।

1857-काव्य

1857 ई. एक संग्राम, एक गौरव, एक त्रासदी! 1857 ई. एक सत्य, एक स्वप्न, एक जागृति! अपनी हसरत में 1857 ई. एक स्वातन्त्र्य संग्राम थाः प्रथम स्वातन्त्र्य संग्राम! अपनी विश्रृंखलता में 1857 ई. एक महाविल्पव था! यह एक पहेली था, यह एक हल था! यदि इसका कोई एक मज़बूत नेता होता, तो इसकी सफलता में सन्देह न रहता।[1] यदि हिन्दू नानाराव पेशवा तथा मुसलमान बहादुरशाह जफ़र की द्विविधा में न रहते, वस्तुतः प्रायः प्रत्येक स्वातन्त्र्य-नायक अपने-अपने राज्य के बजाए राष्ट्र के लिए लड़ता, हिन्दुओं के मन में मुस्लिम-अत्याचारों (ज़फ़र के समय में कवि हिन्दू बलात् मुसलमान बनाए गए थे) के प्रति प्रछन्न, घृणाभाव तथा मुस्लिमों के मन में किसी भी स्थिति में हिन्दू-राज्य का प्रच्छन्न विरोधाभाव न होता। यदि सिख-गोरखा-दाक्षिणालयों के तिगड्डे के अतिरिक्त अनेक हिन्दू-राजा तथा प्रभावी व्यक्ति (अमोटेया के मानसिंह 'द्विजदेव', रीवा के रघुराजसिंह, राजा लक्ष्मीसिंह इत्यादि तो कुछ निदर्शन मान हैं) और मुस्लिम-शासक तथा अन्य प्रभावी व्यक्ति (निजाम, सर सैय्यद अहमद खाँ इत्यादि की सूची बनाई जा सकती है)। अंग्रेजों के साथ न होते तो (यदि, यदि, यदि के साथ) यह संग्राम सफल हो सकता था। 1857 ई. संग्राम भारतीय अजेयता का एक विफल प्रतीक था। अन्य प्रतीक भी हैं तथा राष्ट्रीय एकता के अभाव की एक-सी सूचना देते हैं:[2] अरज आक्रान्त मोहम्मद कासिम के वसन्त 722 ई. के सिंध पर आक्रमण में देवल (करांची) युद्ध में हुतात्मा राजा दाहिर के विरुद्ध बौद्धों, मुल्तान-युद्ध आरहिल शासकों के विरुद्ध जाटों तथा मेदों ने उसे सहयोग दिया (तब भी, इस सफलता का वास्तविक महत्त्व केवल सांस्कृतिक समन्वय मात्र में प्रतिफलित हुआ, राजनैतिक रूप में नहीं—वैसे भी, उमय्यद-वंश के अरब उदार शासक थे) 2. तुर्क-आक्रान्ता, दास से सुल्तान बननेवाले सुबुक्तगीन एवं उसके निरक्षर पुत्र महमूद ग़ज़नबी के 994-1030 ई. ने क्रमशः एक एवं सत्रह आक्रमण हिन्दुओं की फूट के ज्वलंत उदाहरण हैं। महमूद ग़ज़नबी के आक्रमणों के समय मालवा के भोज और तमिलनाडु के राजेन्द्र चोल प्रतापी शासके थे। धूर्त महमूद ने उन्हें नहीं छेड़ा और वे भी निस्संग रहे। चोल-सेवाओं ने तो महमूद द्वारा लूटी-हारी वाराणसी (बनारस) को लूट-जीतकर "मरे का मारे शाह मदार" तक चरितार्थ किया था! सोमनाथ के पतन पर शैव भोज की चेतना कुछ-कुछ आहत हुई किन्तु भनक पड़ते ही महमूद सिंध के दुर्गम मार्ग से लौटा जिसमें उसकी भयावह क्षति हुई, किन्तु यह ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण सिद्ध न हो सका। कालिंजर-युद्ध में महमूद माल-टाल लेकर लौट गया और खजुराहो बच गयाः यहाँ 'जिहाद' की तिज़ारत की गई और महमूद प्रकारांतर से 'बुत-फरोख्त' बन गया! 3. मोहम्मद गोरी (पृथ्वीराजरासो में शिहबुद्दीन गोरी तथा मुस्लिम-इतिहासग्रन्थों में मुइज़ुद्दीन साम) की 21 (मुसलमानों में विशेषतः तथा हिन्दुओं में सामान्यतः) या 17 (सामान्यतः कथित) या 7 (पृथ्वीराजरासो में वर्णित) या 2 (इतिहासकार डॉ. आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव) या 1 (मुस्लिम-इतिहास पर आधृत आम धारणा) पराजय इतिहास-सिद्ध है। 1192 ई. के पराजय-युद्ध से पूर्व पृथ्वीराज ने जयचन्द्र से सहायता-याचना की जो न मानी गई। परिणाम? 1194 के चदावर (इटावा-क्षेत्र) युद्ध में गोरी से ही युद्ध में जयचन्द्र का पतन एवं बलिदान! पृथ्वीराज के चौहान-वंशजों एवं उनके चारणों ने जयचन्द्र को देशद्रोही ही बना डाला! जयचन्द्र देशद्रोही न थे, किन्तु राष्ट्रवादी भी न थे (वस्तुतः राष्ट्रवाद यूरोप में अठारहवीं सदी में ऐतिहासिक कारणों से पनपा तथा सारे संसार पर छा गया)। 4. मानिक खुसरू (पतन 1320 ई.) ने मुसलमान बनने के बाद राणा सांगा (पतन 16 मार्च 1527) ने प्रत्यक्षतः हेमू विक्रमादिता ने सूरी-वंश के नायक के रूप में तथा पेशवा बालाजी बाजीराव (प्रभावकाल 1740-61 ई.) ने वर्चस्व-संपृक्त युद्ध के माध्यमों से हिन्दू-राजस्थापन के जो भाग किए वे योग्यता-दूरदर्शीता, अस्त्र-शस्त्र-प्रतिभागिता, संयोग, मतभेद इत्यादि कारणों से विफल रहे किन्तु ये सब हिन्दू-एकता अथवा हिन्दुत्व-जागरूकता के प्रतीक नहीं माने जा सकते। शुद्ध शक्ति के बल पर महावज्ञनन्द (सितम्बर 326 ईसा-पूर्व) में सिकन्दर को बिना युद्ध के ही, पूरू (पोरस[3], फूर[4], प्रतर्वतक, पर्यतेश्वर) से युद्ध (मई 1326 ईसा पूर्व) के कठोर अनुभव के परिणामस्वरूप भी वापस होने पर विवश किया था। शुद्ध शक्ति के बल पर चन्द्रगुप्त मौर्य ने 305 ईसा-पूर्व में सेल्यूकस 'नाईकटर'

---

[1] बहादुशाह 'जफर' (1775-1862 ई.) न बहादुर थे, न शाह, न ज़फ़र। वे विवशता में नेता बने, विवशता में बन्दी। वे विवशता में जिए, विवशता में मरे। अंग्रेज़ों के न्याय-नाटक (1858 ई.) में उनका गिड़गिड़ाना (द्र. है 'आज़ादी के मुकदमे', ले. बालमुकुन्द अग्रवाल, अनु. विद्यानिधि छाबड़ा, प्र. नेशनल बुक ट्रस्ट नई दिल्ली, 1995 ई. का लेख 'बहादुरशाह ज़फ़र' पृष्ठ 4-13) कायरतापूर्ण था। चार पुत्रों की हत्या देखने तथा बन्दी बननेवाले 'ज़फ़र' का नाम अमर है, यश विवादास्पद।

[2] यूनानी उच्चारण।

[3] शाहनामा (फारसी-उच्चारण)

[4] महदाशार-विशेषण ("चन्द्रगुप्त' नाटक में प्रसाद)।

(विजेता) को परास्त कर हैरान बलूचिस्तान तक का क्षेत्र प्राप्त किया था तथा आक्रान्ता की पुत्री हेलेन (प्रसाद ने कॉर्नेलिया नाम दिया है) से विवाह भी किया था। शुद्ध शक्ति की यह परम्परा 1965 ई. (लालबहादुर शास्त्री), 1971 ई. (इंदिरा गाँधी) और 1999 ई. (अटलबिहारी वाजपेयी) तक प्रसरित है। 'शुद्ध शक्ति' के इन संवादों-हजार साल के प्रयोगों में देशद्रोही चुप ही रहे क्योंकि परिणाम ज्ञात थे। ये युद्ध राष्ट्रीय एकता के प्रतीक भी हैं। 1857 ई. को चिन्तन-केन्द्र में रखने पर राष्ट्र-विशृंखलता के उद्धरण भी मिलते हैं, राष्ट्रीय एकता के भी किन्तु 'शक्ति' का निर्णयक तत्त्व स्वयंसिद्ध है। चूँकि भारत का कोई समेकल एवं वस्तुपरक इतिहास उपलब्ध नहीं है (यद्यपि सर जदुनाथ सरकार, रमेशचन्द्र मजूमदार, राधाकमल मुखर्जी, रारव्रालदास बैनर्जी कानूनगो, काशी मोठ जायसवाल, आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव, बी. बी. लाल इत्यादि के अमूल्य ग्रन्थ गहन चिन्तन का पथ प्रशस्त कर सकते हैं) जवाहरलाल नेहरू से दिनकर तक पल्लवग्राही ग्रन्थकार (इतिहासकार नहीं—किन्तु अच्छे उद्धरणों के धनी) गहन विवेचन में सक्षम हो पाए; तथा ताराचन्द, नीहररंजन राय, सॉकलिया, विपिनचन्द्र, रोमिला थापर, इर्फ़ान हबीब, रामशरण शर्मा इत्यादि साम्यवादी इतिहासकार अधिक-से-अधिक 'एंबेसी-ब्रेंड हिस्टोरिअंस' (राजदूतावास-छाप इतिहासकार) अथवा छद्म-इतिहासकार मात्र हैं, अतः मैं अधुनातन विश्व-दृष्टि एवं वस्तुपरक राष्ट्रदृष्टि से इतिहास की ग्रन्थियाँ खोलते चलना साहित्येतिहासकार का कर्तव्य मानता हूँ।

मैं एक ऐसे क्षेत्र में जन्मा और पला-पुसा जहाँ 1857 ई. जीवन्त रहा है। शैशवत में बलिदान कथाएँ सुनी; दादा (शिवलाल मिश्र 1900-63 ई.—पिता) के पिता शम्भूरत्न मिश्र बाद में जन्मे थे और मेरे जन्म के अनेक वर्ष पूर्व दिवंगत हुए किन्तु उनके पिता रामकृष्ण मिश्र (रामकिसुन मिसिर) ने 'गदर' देखा था। दादा के साथ बाल्यकाल (1944 ई.) में दौलतपुर (रायबरेली) से बक्सर (उन्नाव) की चन्द्रिकादेवी के दर्शनार्थ गया था जो जनपदों में अनन्तर के होते हुए भी अत्यन्त निकट (प्रायः तीन किलोमीटर) ही है। गंगास्नान, देवीदर्शन, कुसिली के प्रसाद के स्वाद के अनन्तर लौटते हुए दादा ने एक इमली का पेड़ दिखलायाः इसी की एक डाल में बाबू रामबक्शीसिंह लटकाए गए थे। हर पेड़ पर लाशें-ही-लाशें। प्रपितामह ने देखी थीं। कालान्तर में राना बेनीमाधव इत्यादि की बलिदान गाथा सुनी। अमृतलाल नागर, अमरेश (अमरेन्द्र बहादुर सिंह), राममनोहर त्रिपाठी, डॉ. चक्रणणि पांडेय, बालकृष्ण मिश्र, काका 'बैसवारी' इत्यादि ने राना बेनीमाधव एवं राव रामबख्शसिंह के बलिदान-गाथाओं पर प्रचुर साहित्य रचा है, जिस पर शोध अपेक्षित है। कानपुर में बढ़ा-पढ़ा (बस, 'कढ़ा' नहीं) जहाँ कभी मेमोरियल-वेल (अब नानाराव पार्क), कभी मैसकर-घाट, कभी बिठूर जाना होता रहाः यहाँ कुएँ में गोरे भर दिए गए थे, यहाँ से नावों पर गंगा पार करते गोरों पर गोलियाँ बरसाई गई, यहाँ नागाराव पेश्वा रहते थे तथा उनके सेनापति तात्या टोपे और अमर लक्ष्मीबाई (झाँसी की रानी) उनसे वर्णवित्त-संपृक्त हैं ही! अद्यावधि कभी राजा तेजसिंह (मैनपुरी) पर देखा-सुना, कभी राना तुलाराम (नई दिल्ली में मार्ग है, महाविद्यालय था) पर लक्ष्मीबाई, नानाराव, तात्या टोपे, कुँवरसिंह इत्यादि 'इतिहास-पुरुष हैं ही और मैंने इतिहास पढ़ा है, विभिन्न संग्रहालयों में देखा है और सोचा है। जुझारू उत्तरप्रदेश ने 1857 ई. में सर्वाधिक बलिदान किया (1920-22 ई. के असहयोग-आन्दोलन, 1942 ई. के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन', 1975-77 ई. के आपातकाल विरोध इत्यादि में भी)। किन्तु कुँवरसिंह इत्यादि के कारण बिहार और रानी अवंतीबाई के कारण मध्यप्रदेश का स्थान भी अविस्मरणीय है।

अब कुछ तत्कालीन रचनाएँ जो व्यापक क्षेत्र-प्रसरित हैं। जिनमें प्रथम को 'कौमी गीत'[1] माना जा सकता है। जिसका शीर्षक सन् 1887 ई. में बाग़ी सैनिकों का 'कौमी गीत' शीर्षक एकदम लचर है किन्तु यह विद्वान् सम्पादक की भूल है :

1. हम हैं इसके मालिक हिंदुस्तान हमारा।
पाक वतन है कौम का जन्नत से भी प्यारा।।
ये है हमारी मिल्कियत हिंदुस्तान हमारा।
इसकी रूहानियत से रोशन है जग सारा।।
कितना कदीम कितना नईस सब दुनिया से न्यारा।
करती है जरखेज जिसे गंगो-जमुन की धारा।।
ऊपर बर्फीला पर्वत पहरेदार हमारा।
नीचे साहिल पर बजता सागर का नक्कारा।

---

[1] 'आजादी के अग्निशिखाएँ' सं. डॉ. शिवकुमार मिश्र ने 'एँ' रखा है।

उसकी खानें उगल रहीं सोना हीरा पारा।
इसकी शानो-शौकत का दुनिया में जयकारा।।
आया फिरंगी दूर से ऐसा मंतर मारा।
लूटा दोनों हाथ से प्यारा वतन हमारा।।
आज शहीदों ने तुमको अहलेवतन ललकारा।
तोड़ो गुलामी की जंजीरें बरसाओ अंगारा।।
हिंदू-मुसलमाँ-सिख हमारा भाई-भाई प्यारा।
यह है आजादी का झंडा इसे सलाम हमारा।।

इस कविता का रचयिता मुसलमान है। काश, उसका नाम मालूम होता (तो वह अगर होता)! इकबाल (जो पहले राष्ट्रवादी थे किन्तु कालान्तर में डॉ. सर मोहम्मद इक़बाल के रूप में पाकिस्तान के एक़ 'देव-पिता' या 'गॉड-फ़ादर' बनेः सांप्रदायिक) का तराना "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" (1904 ई. में कानपुर के 'जमाना' में प्रकाशित) इसका रूपान्तर जैसा है किन्तु उर्दू-ए-मुअल्ला के असर के कारण ऐसा सरल नहीं। हिन्दू-मुसलमानों की सांप्रदायिकता लॉर्ड मिन्टो और तत्कालीन आगा खाँ (विदेशी), बग-भंग, पृथक्-मताधिकार, गाँधी द्वारा खिलाफत आन्दोलन में टाँग फँसाने, नेहरू और भारत में सांप्रदायिकता की जननी काँग्रेस की मताधिकोषमूलक सत्ता-लिप्सा, द्वाराष्ट्रवादी-पंचयोगी मुस्लिम लीग और विभाजित भारत में भी उसकी तथा छद्मनाम-संततिसंस्थाओं में मूलभूतरही है; इस सब की प्रतिक्रिया में अलग हुए और अपनों से कहीं अधिक छले-दले गए हिन्दुओं की हिन्द महासभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिन्दू परिषद्, जन शोधन, शिव सेना, बजरंग दल, भारतीय जनता पार्टी संस्थाएँ अधिक सफल न हो पाईं क्योंकि इन्हें पहले अंग्रेज़-शासकों तथा अनन्तर सी. आई. ए., के. जी. बी. क्रिश्चियन मिशनरीज़, आई. एस. आई. इत्यादि का सहयोग मिलना तो दूर, घात-प्रतिघात झेलना पड़ा। भारत में वही सफल हो सकता है जो विदेशों से संपृक्त हो।

झाँसी की रानी

2. संवत दसनौ सैकरा ऊपर चौदह साल।
तास मध्य अँगरेज कौ आपुस में दहवाल।।
फिरी फिरंटे छाउनी भयो गदर असरार।
जे पाए अँगरेज जहँ ते नाँ डारे मार।।
छल बल सो झाँसी लई गंगाधर[1] की नार।
ताको अब आगे कहत भली भाँति ब्योहार।।
आई कड़वाई साथ उकड़ सिपाई अँगरेज सैन छाई कीनौ तिन आन।
तहाँ गोलन की छाई दुहूँ ओर तें लराई तैमन की ताई छिन छूटे बहुप्रान।।
जहाँ गोरा मंदराजी[2] कटैं ताजी भट भाजी से जूझत बिलानी संग साथी मरदान।
जहाँ काली लौं किलक कराल तेग घाली तहाँ बाई उनै सिपाई झुक झारी किरवान।।
मरदन सौं जग माँग ऐसी करनी ना बनी।
सुरपुर पौंची जाय नाना[3] की उतरी मनी।।
ता दिन तैं दिल्ली दरमजलन तौं खाली भई और नृपनाह काहू आँख ना चढ़ाई है।[4]
संकट सहेद पर दक्खिन औ पूरब लौं देखो लाहौर ते बुँदेलखंड ताई है।।

---

[1] झाँसी के राजा गंगाधर राव लक्ष्मीबाई के पति थे।

[2] मद्रासियों (तमिलनाडु-वासियों) ने अंग्रेज़ों का साथ दिया था। किन्तु यहाँ भी वीर पाण्ड्य कट्टबोम्मन जैसे योद्धा अवश्य हुए हैं।

[3] 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम के सर्वोच्च नेता नानाराव पेशवा।

[4] बहादुरशाह 'ज़फ़र' बन्दी बने और गिड़गिड़ाते रहे।

कहत कल्यान बान राखी परमेसुर नै बाँकी कर साकौ सुरलोक कौं सिधाई है
सूर के सराहैं जो गुनीन गुन गावैं हाल बाई की लराई की जहान मैं बड़ाई।।[1]

—कल्याणसिंह कुड़रा

कविवर कल्याणसिंह कुड़रा को चन्द्रवरदायी, जगनिक (जगनायक), जज्जल, जसवन्त, जटमल, बनवारी, भूषण, चिरजीवी, लाल कवि, गुरु गोविन्दसिंह, घनश्याम शुक्ल, गंजन, भगवतराम खींची, शम्भूनाथ मिश्र, सूदन, रतन कवि, जोधराज, मैथिलीशरण, चन्द्रशेखर वाजपेयी, केशवदेव शुक्ल 'केशव', सुभद्राकुमारी चौहान, श्यामनारायण पांडेय, दिनकर प्रभृति वीर-कवियों में प्रतिष्ठित किया जा सकता है। इनकी समसामयिक कविता विश्व-इतिहास की सर्वश्रेष्ठ वीरांगना झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई की सर्वोच्च वीरता का ऐसा निरूपण करती है जो सर ह्यू रोज जैसे शत्रु-सेनापति के विवरण से भी मेल खाने के कारण सर्वतः प्रात्यधिक है। ऋग्वेद-वीरांगना विश्यला इतिहास की प्रथम वीरांगना है। कैकेयी, बोड़ीशिया (आज के ब्रिटेन की अमर केल्ट-वीरांगना जिसने जूलिइस सीज़र से लोहा लिया), जोन ऑफ आर्क, दुर्गावती, चाँद बीवी, झलकारी, रानी अवांती बाई इत्यादि वीरांगानाओं पर मानव-जाति गर्व कर सकती है। संसार में सर्वाधिक वीरांगनाएँ भारतवर्ष में ही हुई हैं।

3. खूबई लड़ी मरदानी अरे भाई झाँसी वाली रानी।[2]
सिगरे सिपइयन को पेरा जलेबी अपन खाई गुरधानी।।
गुरजन-गुरजन[3] तोपैं लगै दई गोला चलाए असमानी।
छोड़ मोरचा लसकर खों दौड़ी ढूँड़ै मिलै न पानी।।[4]

—अज्ञात

ऐतिहासिक दृष्टि से अनमोल इन चार पंक्तियों में झाँसी की रानी का त्याग-तप पक्ष उजागर होता है: सैनिकों को पेड़े-जलेबी खिलानेवाली और स्वयं गुड़धनिया खानेवाली वीरांगना केवल एक हुई है। प्रहार एवं पलायन में समतुल्य महान् (राम का वालि-वध एवं कृष्ण के जरासंध-प्रकरण जिसमें वे 'रणछोड़' बने—अमर युद्धादर्श का पालन करने वाली) वीरांगना को चुल्लू भर पानी के लिए तरसना पड़ा! राणा प्रताप की कथा सत्य बनानेवाली महामानवी! लक्ष्मीबाई केवल एक हुई है!

4. कट गई झाँसीवारी रानी।
झाँसीवारी रानी कट गई झाँसीवाली रानी।।
चौतरफा से आफत आ गई झाँसी भई विरानी।
घर-घर बिड़ना लगे अँगरेज लूटत हैं रजधानी।।
काटत हात-पाँव राजपूतन सुनत न कोऊ बानी।
बहुएं बिटियाँ पकर लेत हैं करत रात मनमानी।।
खान फकीरे ऊधम मना रओ सबरी बात नसानी।

—फकीरे खान

फ़कीरे ख़ान का यह पद झाँसी के पतन के अनन्तर अंग्रेज़ों के अत्याचार का मार्मिक चित्रण करता है। झाँसी की रानी मुसलमान-भाइयों में बहुत लोकप्रिय थीं। उनके शरीर की रक्षा करते हुए मोहम्मद ग़ौस नामक सज्जन ने कुछ लकड़ियों की व्यवस्था कर अपनी झोपड़ी में ही आग लगा दी थी। वैसे, इस सन्दर्भ में बाबा गंगादास का नाम भी लिया जा सकता है। अमर ऐतिहासिक उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा (जिनकी दादी ने रानी को देखा था) ने महान् उपन्यासकार 'झाँसी की रानी' असाधारण अवसान का

---

[1] जेनरल ह्यू रोज़ ने झाँसी की रानी को सारे स्वातन्त्र्य-सेनानियों में "बलवत्तर और सर्वोत्तम" बतलाया है: "सी वाज़ द ब्रेवेस्ट एंड द बेस्ट ऑफ देग ऑल"।

[2] सुभद्रकुमारी चौहान की अमर कविता "खूब लड़ी मरदानी वह तो झाँसी वाली रानी थी" का शीर्षक याद आता है जिसे उन्होंने "बुन्देले हरबोलों के मुँह हमने सुनी कहानी थी" द्वारा स्पष्ट भी कर दिया है। उनकी कविता मौलिक है।

[3] बुर्ज़-बुर्ज़ पर।

[4] वागर्थ (मासिक, कोलकाता, सं. डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय) के अक्टूबर, 1999 अंक के लेख में नर्मराप्रसाद गुप्त द्वारा संकलित-रूपांतरित। पृष्ठ 80 (लेख 'प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम 1857 के बुन्देली लोकगीत, पृष्ठ 76-81)।

चिरस्मरणीय चित्रण किया है। रानी की लोकप्रियता विलक्षण थीः सरदार बल्लभभाई पटेल के पिता झबेरभाई (करमसद, खेड़ा, गुजरात) और आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी (दौलतपुर, रायबरेली, उत्तर प्रदेश) के पिता रामसहाय भी उनकी सेना में थे और लड़े थे—वे राष्ट्रीय महामानवी थीं। उन्नीसवीं सदी में लक्ष्मीबाई और दयानन्द सर्वश्रेष्ठ भारतीय हुए (बीसवीं सदी से गहनतम ऐतिहासिक नाम छाँटे जाएँ तो वे तिलक और पटेल होंगे)! फ़क़ीरे ख़ान द्वारा अंग्रेज़ों के अत्याचारों का एक अन्य हृदयविदारक जीवन्त चित्रण देखिएः

5. चूना मूँड़न पै बुझवा दए।
डाँत पाँव में कील ठोंके, पाछे ते सँदवा दए।।
तेरा दिना चार गइना लौं गोड़न खून मिटा दए।
जार दओ है बिला-बिलखुरा लूटो जिन भगवत दए।।
अँगरेजन खाँ बुला इनन में बंटाढार करा दए।
खान फ़कीरे रैना रैना कइए ऐसे हाल करा गए।।

स्वातन्त्र्य-सेनानियों के सिर पर चूना बुरूकाना, हाथ-पाँवों में कीलें ठोंकना तथा बाद में पीछे से शरीर के टुकड़े करवाए, चार मास तेरह दिनों के अत्याचार में कटे पैरों के चिह्न तक शेष न रखे, बिला-बिलखुरा ग्राम जलाकर राख कर दिया, लूटा और लोगों को खदेड़, बाहर किया और यह सारा बंटाढार स्थानीय लोगों ने ही अंग्रेज़ों को बुलाकर कराया! प्रथम स्वतन्त्र्य-संग्राम ने सिखों को सेनाओं में अधिकाधिक स्थान दिलाए, उत्तर प्रदेश इत्यादि तक में बड़ी-बड़ी जागीरें दिलवाई; गोरखों को सैनिक-जाति का स्तर दिलाया, दक्षिणात्यों को कार्यालय-पद दिलाए; बंगालियों को 'बाबू मोशाय' का रुतबा अता किया; और स्थानीय स्वामिभक्तों की रंगत ही बदल दी।

तात्या टोपे

6. हाथ में नगन खड्ग मारिबे कूँ एक पग
तन मन देस को समर्पित कीनो है।
आगे बढ़ि पीछे खाई को मिचक्का करि,
टूक-टूक छित्र में विढग दल कीनो है।।
सेंधिया[1] हों औगढ़ हरामखोर और नाहिं,
मिलिगौ फिरंगिया ते साँसघात कीनो है।
भनै हरिफूल धन्नि ताँतिया से वीर तैने
सीस को उतारि कै सुजरा जग लीनो है।।

—कवि हरफूल

1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम के बलिदानों में नानाराव पेशवा (जो पकड़े नहीं जा सके तथा सम्भवतः नेपाल चले गए जहाँ अज्ञात रूप से बहुत दिन जीकर सहज-दिवंगत हुएः 1926 ई. में??) के सेनापति तात्या टोपे जीवनकाल में ही पुराण-पुरुष बन गए थे। ऊँचे बाँस पर पैर बाँध अतितीव्रगति, छापामार युद्धकला इत्यादि के नायक का मृत्युदण्ड तक जनता ने नहीं स्वीकार किया।[2] कवि बनफूल ने महान् हुतात्मा की उचित प्रशस्ति की है।

कुँवरसिंह

बिहार के अगर स्वान्तत्र्य-योद्धा बाबू कुँवरसिंह, नानाराव पेशवा, तेजसिंह, राव तुलाराम इत्यादि के सदृश हुतात्मा न होकर भी जीवन्त-हुतात्मा रहे। याज्ञवल्चय, गार्गी, मैत्रेयी, जनक, सीता, ऋष्य शृंग, जरासंध, बुद्ध, महावीर, चाणक्य, चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक,

---

[1] पुराने सत्तालिप्सु एवं शासकचरणसेवी सिंधिया (ग्वालियर) को लक्ष्मीबाई ने परास्त कर खदेड़ा था तथा वह उनके बलिदान में भी देशद्रोही था, तात्या-सन्दर्भ में भी। कवि की उचित निन्दा!

[2] सुभाष के वायु-दुर्घटना-अवसान के सदृश। भयानक हिटलर का आत्मघात भी विवादास्पद बनाया गया। जनता पुराण जीती है।

पुष्यमित्र शुंग, पतंजलि, समुद्रगुप्त, चंन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, स्कन्दगुप्त, बाण भट्ट, शेरशाह, राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण जैसे इतिहास-पुरुषों से संपृक्त है। मैंने बिहार तथा अन्यत्र के साहित्यकार बन्धुओं-भगिनियों से याज्ञवल्क्य, जनक, पुष्यमित्र, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, शेरशाह, पाटलिपुत्र, बिहारगौरवम् प्रभृति काव्य लिखने का बांरबार आग्रह किया है तथा हर्ष है कि कुछ पर रचनाएँ हो भी चुकी हैं। ऐतिहासिक गौरव में बिहार की समता कोई राज्य नहीं कर सकता। कुँवरसिंह, विरसा गुंडा, मौलाना मजहर-उल-हक, डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, जयप्रकाश नारायण, जॉर्ज फर्नाण्डीज इत्यादि के कारण बिहार 1857 ई. तथा परवर्ती (1942 ई. 1975-77 ई. समेत) स्वातन्त्र्य-संग्रामों में भी चिरस्मरणीय रहा है। कुँवरसिंह पर परवर्ती लोककाव्य-महाकाव्य-गद्य सृजन भी पर्याप्त हुआ है। तीन समसामयिक अथवा प्रायः समसामयिक रचनाएँ देखें :

7. जैसे भृगराज गजराजन कै झुंडन पै प्रबल प्रचंड सुंड खंडन उदंड है।[1]
जैसे बाज लपकि लपेट के लवान दल दलमल डारन प्रचारत विहंड है।।
कहै राम कवि जैसे गरुड़ गरब गहि अहि कुल दंडि-दंडि मेटत घमंड है।[2]
वैसे ही कुँअरसिंह की अमर मंडि फौज फिरंगानी की करी तु खंड-खंड है।।
(राम कवि : कुँवरसिंह-आश्रित)

8. लिखि लिखि पतिया के भेजलन कुँअरसिंह[3],
ऐ सुन अमरसिंह भाय हो राम।
चमड़ा के टोड़ता दाँत से हो काटे कि
छतरी के धरम नसाय हो राम।
बाबू कुँअरसिंह भाई अमरसिंह
दोनों अपने हैं भाय हो राम।।
—अज्ञात

9. बाबू कुँअरसिंह तोहरे राज बिनु अब न रँगइबो केसरिया।
इतने अइले घेरि फिरंगी, उतते कुँअर दोउ भाई।।
गोला-बारूद के चले पिचकारी, बिचवा में होत लराई।
बाबू कुँअरसिंह तोहरे राज बिनु अब न रँगइबो केसरिया।।
—अज्ञात

राना बेनीमाधव

भीरा गोविन्दपुर (जनपद रायबरेली, उ. प्र.) के राना बेनीमाधव 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम के एक अग्रणी योद्धा थे, जिन पर प्रचुर लोककाव्य एवं लोककथा साहित्य उपलब्ध है जिससे प्रेरित होकर अमरबहादुरसिंह 'अमरेश', लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक', डॉ. चक्रपाणि पांडेय, काका बैसवारी इत्यादि ने अनेक रचनाएँ की हैं। पास ही उन्नाव अंचल के स्वातन्त्र्य-योद्धा एवं रामबख्शसिंह पर राममनोहर त्रिपाठी ने 'वीर बैसवारा' एवं डॉ. चक्रपाणि पाण्डेय ने 'राव रामबख्श' खंडकाव्य रचे हैं तथा काका बैसवारी ने छंद। दोनों योद्धा रायबरेली-उन्नाव जनपदों में जीवंत हैं तथा लखनऊ में चर्चित (अमृतलाल नागर की विशेष रुचि थी)। लखनऊ के नवाब-पक्ष से संबद्ध होने के कारण इन दोनों वीरों को राष्ट्रीय ख्याति न मिल पाई, किन्तु ये, निस्सन्देह, प्रशस्य वीर थे। दुलारे भुजवा[4] का विख्यात छन्द प्रस्तुत है; जो बैसवादी या बैसवारी (अवधी) में है :

---

[1] मृगराज-गजराज एक-दूसरे को बचाते हैं। गजराज विशेषतः किन्तु साहित्य में रूढ़ि प्रख्यात है।

[2] भूषण का भारी प्रभाव।

[3] भोजपुरी वगैरह में 'व' नहीं 'अ' का ज़ोर है। वैसे, दोनों चलते हैं।

[4] भुर्जी, भड़भूँजा।

10. अवध में राना भयो मरदाना।
पहिल लड़ाई भई बक्सर माँ सेमरी के मैदाना।
हुआँ ते जाय पुरवा माँ जीत्यो तबै लाट[1] घबराना।।
नक्की[2] मिले, मानसिंह मिलिगे जानै, सुदरसन काना।
छत्री बंस एकु ना मिलिहै जानै सकल जहाना।।
भाई-बंधु औ कुटुम-कबीला सबका करौ सलामा।
तुम तौ जाइ मिल्यो गोरन ते हमका है भगवाना।।
हाथ माँ भाला, बगल सिरोही, घोड़ा[3] चलै मस्ताना।
कहैं दुलारे सुन मेरे प्यारे यों राना कियो पयाना।।

चहलारी-नरेश बलभद्रसिंह

पश्चिम में एक कहावत चलती हैः उपमागेस्तॉन से पहले भी महापुरुष थे। अभिप्राय है कि महापुरुष सदा होते हैं किन्तु प्रख्यात वही हो पाते हैं जिन्हें कवि प्राप्त हों। ट्रॉय-युद्ध (1193-83 ईसा पूर्व) में यूनानी-पक्ष के नायक उपमागेस्तॉन पश्चिम में प्रख्यात हुए क्योंकि महाकवि होमर (ईसा पूर्व 9वीं सदी) में पूर्ववृत्त समाहित करते हुए इलियड एवं ओडिसी महाकाव्य-द्वय 'कहे' या 'रचे'! 1857 ई. में अनेक वीर-बलिदानी हुए किन्तु ज्ञात-विज्ञात वे ही रह सके जिन्हें कवियों और इतिहासकारों ने अपनाया। चहलारी (बाराबंकी जनपद) के नरेश बलभद्रसिंह पर दो लोकरचनाएँ प्रस्तुत हैं (इन पर 'मृगेश' ने 'चहलारी-नरेश' काव्य रचा है):

11. चहलारी के नरेस निज दल ओ सलाह कीन
तोप को पसारा जो सभी पर दाग दीना है।
तेगन ते मारि-मारि तोपन को छीन लेत
गोरन को काटि-काटि गीधन को दीना है।।
लंदन अँगरेज तहाँ कम्पनी की फौज बीच
मारे तरवारिन के कीच करि दीना है।
बेटा श्रीपाल को अलेंदा बलभद्रसिंह
साका रैकवारी बीच बाँका बाँधि दीना है।।

—अज्ञात

12. बिच ओबरी के मैदनवाँ माँ साहब लोगनि किहिन पड़ाव।
देस के राजा इकठउरी हुइगे लै-लै रामचंद्र का नाँव।।
तोपैं गरजी अँगरेजन की धरती अगिनि दिहिन बरसाय।
जेहिके लागै तोप का गोला ऊ की ध्वज सरग मँड़राय।।
जेहिके लगै सीसै का डंडा देहिया टूक-टूक होइ जाय।
अरे गोसइयाँ परलै हुइगै राजे भागे पीठि दिखाय।।
भागा राजा बोंडी वाला जेहिका जीतसिंह था गाँव।।
राजा कहिए चहलारी का जेहिका बाँट परी तरवार।
ब्याह का कँगना कर माँ बाजे लक्खी गौर देय बयार।।

---

[1] लॉर्ड। अशोक या अन्य की 'लाट' भी याद आती है!

[2] नक्कीशाह अवध का मीर जाफ़र या अवध का दौलत खाँ लोधी था।

[3] 'सब्जा' घोड़ा राना बेनीमाधव का चेतक था, जिस पर काका बैसवारी ने अच्छा लिखा है।

हाथी घिरिगा जब राजा का महावत गया सनाका खाय।''
बोला महावत तब राजा तें भइया दीनबंधु महराज।'''
मरजी पावौं सहजादेवी तुरतै चहलारी पहुँचाय।
सुनिके राजा राहुट होइगा करिया नैन लाल होइ जाय।।
बोला राजा चहलारी का जेहि बलगद्दर नाउँ कहाय।
हट जा हट जा मेरे आगे से तेरा काल रहा नियराय।।
धरम छत्तिरी का नाही है भागै रन ते पीठि देखाय।
अरे महावत बैठा हाथी सोने कड़ा देउँ पहिराय।।

शीलादेवी

बाँदा की बलिदानी शीलादेवी का नाम लक्ष्मीबाई, अवंतीबाई, रानी-झलकारी के पावन वर्ग का है; जीनतमहल, हज़रतमहल के नाम 'महल' की वजह से हैं। नानाराव[1] वास्तविक योद्धा थे, ज़फर ठोंक-पीटकर बनाए गए हैं। इतिहास के सत्य की रक्षा साहित्येतिहासकार (इतिहासकार का भी) परम कर्त्तव्य है। इतिहास इतिहास है; दल नहीं, वाद नहीं, जाति नहीं, सम्प्रदाय नहीं। शीलादेवी और हिम्मतबहादुर[2] के पुत्र कंचनगिरि का अंग्रेज़ों से युद्ध 1857 ई. का एक स्मरणीय घटनाचक्र है, जो इस पद में जीवन्त है :

13. बाँदा लुटो रात के गुँइयाँ।
सीलादेवी लरीं दौर के संग में सौक[3] मिहरियाँ।
अँगरेजन ने करी लड़ाई मारे लोग-लुगइयाँ।।
गिरि गोसाईं तब दौरे हैं लरन लगे भौ गइयाँ।
सीलादेवी को सिर काटो अँगरेजन ने गुइयाँ।।
गयीं सहेली तब गाँउन सें लैनों बाल-गुनइयाँ।
गंगासिंह टेर के रै गए भगो इतै ना रइयाँ।।

—गंगासिंह

श्यामलगिरि गोसाईं

सन्तों ने भी समय पर खड्ग उठाया और बुद्धू होने से बचे रहे। महर्षि अगस्त्य ने शक्ति से दुष्टों का पलायन कराया और विश्वामित्र ने राम को सर्वेपरि धर्मरक्षक बनाया। कभी चाणक्य ने चन्द्रगुप्त मौर्य को उभारा, कभी पन्तजलि ने पुष्यमित्र शुंग को। तुलसीदास ने लेखनी को खड्ग बनाया और समर्थ गुरु रामदास ने शिवाजी को 'भवानी' से मिलाया! बंकिम का 'वन्देमातरम्' के कारण अमर उपन्यास 'आनन्द-मठ' सन्तमय है, तो बंगाल के विजातीयतावादी तत्वों से लड़नेवाला आनन्द-मार्ग भी ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। 1857 ई. के स्वातन्त्र्य-संग्राम में चित्रकूट के श्यामलगिरि गोसाईं भी स्मरणीय हैं जिन पर रेवाराम का यह पद पठनीय है :

14. स्यामलगिर भोरई आ धमके।
तीनसहस साधू लै धाए अँगरेजन पै बमके।
कानपुर से भगे फिरंगी पुन बिठूर जा चमके।।
होन लगी तकरार रार है आन फिरंगी ठमके।
सात दिना लौं भई लराई गिरी गोसाईं हुमके।।
काटकूट के सबै फिरंगी चित्रकूट पै धमके।
रेवाराम देख लेव जा गत, आन मिलो सब जमके।।

---

1. नानाराव-प्रकाश (बेनी 'प्रवीन') अलंकार-ग्रन्थ है।
2. हिम्मतबहादुर-विरुदावली (पद्माकर)। किन्तु चरितनायक धूर्त थे, वीर नहीं। वैसे भी, महंत थे।
3. सौ एक (लगभग सौ? एक सौ एक?) लगता है!

रेवाराम ने स्वातन्त्र्य-योद्धाओं के मतभेदों, यहाँ तक कि कलह तक, का संकेत करते हुए एकता का आह्वान किया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है।

गोंड-नरेश शंकरशाह

गोरे आतंक के बल पर राज्य करते और कर सकते थे। मंडला-नरेश शंकरशाह और उनके पुत्र राजकुमार को इस छन्द-रचना के कारण तोप के मुँह से बाँधकर उड़ा दिया गया :

15.
मूँद मुख डंडिन कों चुगलन को चबाइ खाइ
खूँद दौड़ दुष्टन को सत्रुन संहारिका।
मार अँगरेज रंज कर देइ मात चण्डी
बचै नहिं बैरी ऐसी प्रलयकारिका।।
संकर की रच्छा कर दास प्रतिपाल कर
दीन की सुन टेर आकैं मात प्रनपालिका।
खाय लेइ म्लेच्छन कों झेल नहीं करौ अब
भच्छन कर तच्छन घोर मात कालिक।।

अन्य

बुन्देलखंड दस्तुतः बुलन्दखंड है। मेवाड़ और उसकी पुरानी राजधानी चित्तौड़ को विशेष ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है क्योंकि बाप्पा रावल, राणा कुम्भा, राणा साँगा, मीराँ, राणा प्रताप इत्यादि के चरणों ने काव्य एवं इतिहाकारों ने 'ख्यात' लगातार लिखे तथा टॉड और गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने विशेष प्रकाश डाला। किन्तु बुन्देलखंड का महत्त्व मेवाड़ से अधिक हैः चित्तौड़ का तीन बार (अलाउद्दीन खिल्जी, गुजरात-सुल्तान बहादुरशाह, अकबर द्वारा) पतन हुआ, कालिंजर को भी तीन युद्ध लड़ने पड़े किन्तु यहाँ महमूद ग़ज़नवी को खजुराहो के बुतफरोख़्त के रूप में लौटना पड़ा, शेरशाह को जान से हाथ धोने पड़े, औरंगजेब के हाथ कुछ न लगा! राजा धंग, राज गंड, राजा भरतीचन्द्र, छत्रसाल बुन्देला, लक्ष्मीबाई इत्यादि राष्ट्रीय नायक हैं। यदि मेवाड़ में नाथद्वारा है, तो बुन्देलखंड में चित्रकूट। यदि चित्तौड़ में महान् विजय-स्तम्भ है, तो बुन्देलखंड में अतुलनीय खजुराहो। किन्तु बुन्देलखंड का साहित्य-दाय सर्वथा अतुलनीय हैः तुलसीदास और केशवदास का युग्म अन्यत्र कहाँ? पद्माकर और मैथिलीशरण हैं। बुन्देलखंड के साथ ऐतिहासिक न्याय अपेक्षित है।

बुन्देलखंड में 1857 ई. से पहले और बाद में भी स्वातन्त्र्य-संग्राम चलता रहा। 1841-42 ई. में जैतपुर-नरेश परीक्षित (पारीछत) पर प्रभूत जनसाहित्य प्रचलित है अजयगढ़ (पन्ना क्षेत्र) के लछमनसिंह दौ का पराक्रम देखिए :

16.
लछमनसिंह फिरत है दौअ।
मारत खात लखत अँगरेजन काटत ककरी जौआ।
भगे फिरत अँगरेज बेकल दौआ हो रहो हौआ।।
बाँदा से कोठी तक मोर फौज फिरंगी कौआ।
सुन लेव सब कोइ कान खोल कें भाग चले लखनौआ[1]।।

—अज्ञात

और, 'हर-हर-महादेव' बोलकर शत्रु पर टूट पड़ने वाले या हरबोले बुन्देले आत्मा से अजेय रहे हैंः राजा धंग ने पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त के पुरुषपुर (पेशावर) क्षेत्र में जाकर आनन्दपाल के पक्ष से महमूद ग़ज़नवी से लोहा लिया था तो उनके पुत्र राजा गंड

---

[1] लखनऊ की ओर भाग खड़े हुए (क्योंकि वहाँ रीजेंसी थी)।

ने कालिंजर में सीधा युद्ध कर खजुराहो बचाया था, राजा भारतीचन्द्र ने शेरशाह सूरी का अन्त किया था तो छत्रसाल बुन्देला ने मुग़ल-साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया तीव्र की थी, लक्ष्मीबाई ने झाँसी के लिए बलिदान किया (ग्वालियर) तो शीलादेवी ने बाँदा के लिए। किन्तु कभी सन्धि, कभी विजय, कभी पराजय, कभी बलिदान की यह गाथा तत्वतः अजेय रही है; एक प्रतीक देखें :

17. लोहागढ़ कठिन मवास, फिरंगी झाँसी भरोसैं ना रहियो।
जहँ तोप चलैं, गोला चलैं, भालन की हुइहै मार; फिरंगी··
जहँ सीस हथेली लै चलैं जगराजा के सिरदार; फिरंगी···
लोहागढ़ कठिन मवास, फिरंगी झाँसी भरोसे न रहियो।।

1857 ई. का संग्राम हिन्दू-मुसलमानों ने मिलकर लड़ा था। दो उदाहरण देखें :

वाजिदअली शाह

नवाब वाजिदबअली शाह की कामुकता कुख्यात है, कलाप्रेम विख्यात है। लखनऊ की इमारतें उनकी कामुकता की कथा कहती हैं, बिन्दादीन महाराज और उनके वंशज कथक का उत्कर्ष और इंशाअल्ला खाँ तथा इनायत अली इत्यादि के वृत्त अदब-बुलन्दी की कथा सुनाते हैं। उनका पतन उन्हीं-सा निष्क्रिय एवं शान्त था। नक्कीशाह छल न करता तो भी पतन होता, क्योंकि वह होना ही था। अराजकता अंग्रेज़ों के सत्तालोग को वरदान के सदृश प्राप्त हो गई। मेरे प्रपितामह मेरे पिता को विलासिता-कथाएँ सुनाया करते थे। उन्होंने नवाव को देखा था। जूते पहनाने वाले नौकर की अनुपस्थिति में भाग भी न सकने का लतीफ़ा उनके व्यक्तित्व को उजागर करता है। प्रेमचन्द लखनऊ में तब रहे जब नवाब को देखने वाले मौजूद थे, पतन के चश्मदीद गवाह मौजूद थे; उनकी 'शतरंज के खिलाड़ी' कहानी वाजिदअलीशाह और उनके पतन के सत्य की सशक्त प्रतीक है। इस पर भारतरत्न सत्यजित् राय ने हिन्दी-चलचित्र ('शतरंज के खिलाड़ी') बनाया है; सफल, गम्भीर। नवाब वाजिदअली शाह ने मार्मिक रुख़्सते अहले वतन' रचा है। वे शायर भी थे; 'अख़्तर' तखल्लुस से लिखते थे :

18. सारे अब शहर से होता है ये 'अख़्तर' रुख़्सत।
आगे अब कुछ नहीं कहने की है मुझको फुर्सत।।
हो न बर्बाद मेरे मुल्क की यारब ख़ल्कत।
दरो-दीवार पे हसरत से नज़र करते हैं।
खुश रहो[1] अहले वतन! हम तो सफ़र करते हैं।।

वाजिदअली शाह के जीवन में तल्खी या मायूसी न थी, कलकत्ता (कालीकाता कोलकाता) के निर्वासित-जीवन में भी वे शान्त नहीं रहे (यद्यपि उग्रता-कथाएँ प्रचलित थीं जो मैंने भी सुनी हैं)। 'दरो-दीवार' एक महान् शेर है। इसके विपरीत बहादुरशाह 'ज़फ़र' की 'आखिरी नज़्म' अपनी करुणा में महान् है क्योंकि वह तैमूर लंग के वंशधर, बाबर-अकबर-शाहजहाँ इत्यादि से संपृक्त 'बादशाह' (नामनिहाल ही सही), "अन्तिम मुग़ल-बादशाह' थेः क्या वंश थाः तैमूर का मक़बरा समरकन्द में, बाबर का काबुल में, हुमायूँ का दिल्ली में, अकबर का आगरा (सिकन्दरा) में, जहाँगीर का लाहौर में, शाहजहाँ का आगरा (ताजमहल) में, औरंगजेब का औरंगाबाद में, ज़फ़र का रंगून में! नज़्म कैसे मार्मिक न होती!! (सम्भवतः 1861 या 1862 ई. में रंगून में रचित) :

19. लगता नहीं है दिल मेरा उजड़े दयार में।
किसकी बनी है आलम-ए-नापाएदार में।।
कह दो इन हसरतों से कहीं दूर जा बसें।
इतनी जगह कहाँ है दिले-दाग़दार में।।
उमरे-ए-दराज़ माँग के लाए थे चार दिन।
दो आरजू में कट गए दो इंतज़ार में।।

---

[1] "रुख़्सते अहले वतन" पाठ भी है। पर "खुश रहो" प्रचलित है; सार्थक भी।

कितना है बदनसीब ज़फ़र दफ़्न के लिए।
दो गज़ ज़मीं भी न कूए-यार में।।

जिसके लिए ग़ालिब ने पाँव धो-धो कर पीने की बात लिखी, शुभकामना व्यक्त की :

तुम सलामत रहो हज़ार बरस।
हर बरस के दिन हों पचास हज़ार।।

जिसके साथ मुशायरे में बैठने की ग़ालिब की हसरत पूरी होने पर वे फूले न समाए थे, जिसके उस्ताद जौक़ का दबदबा ग़ालिब बहुत देर बाद कम कर पाए, उस शायर की शायरी दिलक़श (मैं तो कहूँगा, 'दिलकुश') कैसे न हो!

किन्तु माँडले की जेल में 'गीता-रहस्य' रचकर निष्काय कर्मयोग को गाँधी-विनोबा समेत सारे राष्ट्र का जीवन-दर्शन बनाने वाले तिलक, फाँसी के तख़्ते पर गीता-मन्त्र जपनेवाले खुदीराम बोस, फाँसी पर चढ़ने से दो दिन पूर्व निस्संग आत्मकथा रचने वाले रामप्रसाद 'बिस्मिल', फाँसी पर चढ़ने से दो दिन पूर्व पिता को मार्मिकतम किन्तु सशक्त पत्र लिखने वाले नाथूराम विनायक गोडसे इत्यादि यह सिद्ध करते हैं कि आत्मवाद या कृष्ण केवल भारत के ही हैं!

दलित-साहित्यः ऐतिहासिक विश्लेषण

'दलित-साहित्य' साहित्य की अस्मिता के संकीर्ण सीमाबद्ध करने के कारण दार्शनिक दृष्टि से विवादस्पद हो सकता है, किन्तु कई बार विशेषण पहचान के लिए आवश्यक हो जाता है। यदि 'दलित-साहित्य' का अभिप्राय दीन-दलित मानवता के उत्कर्ष से हो, तो वह स्वागत नहीं अपितु आदर योग्य भी है। किन्तु खेद है कि यह परकीयता-प्रेरित हिन्दू-विरोधी आन्दोलन का साहित्यिक-पक्ष मात्र है। वैसे, 'दलित-साहित्य' प्रश्नचिह्न-योग्य तो है ही; ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार 1936 ई. में लखनऊ के प्रथम प्रगतिशील लेखक संघ की बैठक में प्रेमचन्द ने 'प्रगतिशील साहित्य' में 'प्रगतिशील' शब्द को प्रश्नचिह्नित किया थाः साहित्य की सहज प्रवृत्ति ही प्रगतिशीलता है! सभी जानते हैं कि प्रगतिवादी आन्दोलन सोविएट यूनिअॅन की प्रचारमूलक दानशीलता तथा के. जी. बी. के. के सहयोग से चलता आया है।

साम्यवादी प्रचार में वेद-शास्त्र पुरान, राम, कृष्ण, पाण्डव, पुष्यमित्र शुम्भ, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य, शंकराचार्य, तुलसीदास, तिलक, मालवीय, लाजपतराय पटेल, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, मैथिलीशरण, प्रसाद, पन्त, जैनेन्द्र इत्यादि प्रमुख भारत-प्रतीकों की विगर्हण, अप्रतिवार्य है क्योंकि भारत इनके कारण ही एक है, जीवन्त है।

साम्यवादियों ने रवीन्द्र गाँधी, सुभाष इत्यादि पर कई गिरगिटियों ने रंग दिखाए, तुलसीदास पर बेतरह टूटे, 1962 ई. में चीन का खुला समर्थन किया, परिवार नियोजन तथा बहुविवाह से लेकर बुर्का-प्रथा तथा चार साक्षियों के बलात्कार-प्रमाण तक मुस्लिम-प्रतियोगिता का समर्थन कर या इन पर ''मौन स्वीकृति लक्षमणम्'' की मोहर लगाकर कालातीत प्रतिक्रियावाद का नग्न-घोष किया, 1999 ई. के पोखरण-अणुविस्फोट का विरोध कर पाक-कार्ड खेल, यद्यपि 'समाजवादियों' के सदृश पाकिस्तान को दो हजार करोड़ रुपए देने की आई. एस. आई. प्रेरित घिनौनी दूरी तक नहीं गए।

परप्रेरणा

दलित-साहित्य का आन्दोलन सी. आई. ए., क्रिश्चियन मिशनरीज़, आई., एस., आई., जापान-थाईलैण्ड-श्रीलंका के मूलवादी (फंडागेटलिस्ट) बौद्धों की सहायता और प्रेरणा से चल रहा है। ज़ोर बढ़ाने पर अरबों मिलेंगे, अभी भी कुल मिलाकर करोड़ों का खेल चल रहा है; इस लाभ तथा आशा से शीर्षस्थ तथा उनके पिछल्लगुवे (कुछ भोले-भाले लोग मानव संवेदनवश भी) इस दिशा में सक्रिय हैं। भारतीय संस्कृति, साहित्य तथा इतिहास को नष्ट करने के पर-प्रेरित उद्देश्य में भी दलित-साहित्य प्रगतिवादी-साहित्य का बच्चा है। म्रियमाण तथा आत्मधृक्तग्रन्थि-रुग्ण हिन्दू का पतन अनेक तत्वों को अप्रतिवार्य लगता है।

दलित-साहित्य की न्यस्त-स्वार्थों के अनुरूप कई धड़ों में बँटा हुआ है। कुछ साम्यवादी जातिवाद का नया भोज जीमने के चक्कर में दलित-साहित्य के मसीहा बनने के लिए फड़फड़ा रहे हैं। कुछ के अनुसार केवल 'दलित' ही सच्चा दलित-साहित्य लिख सकता है। गीतागत आत्मवाद ने सोविएट यूनिअॅन के राष्ट्रपति ग्रोमीको तथा अन्तिम-राष्ट्रपति गोर्बाचोव को प्रभावित किया था। हर्ष का एक

बिन्दु यह है कि पश्चिम बंगाल जैसे साम्यवादी-शासित राज्यों में जातिवाद का विष-प्लावन नहीं हो सका। राजेन्द्र यादव के बहुत विकल होने पर भी, अनेक कट्टर जातिवादी 'दलित-साहित्यकार' उन्हें 'दलितो' का मसीहा नहीं मानते, क्योंकि न तो यादव दलित हैं न राजेन्द्र यादव मसीहा।

नवबौद्धवाद

नए मसीहा बनने की विकलता उत्पन्न हुई। इसके लिए कोई नया सिद्धान्त तलाशना या किसी पुराने सिद्धान्त को अपने 'व्यस्त-स्वार्थ' के अनुरूप गढ़ना अप्रतिवार्य हैः ''कार्ल मार्क्स ने धर्म को अफ़ीम कहा था।'' धर्म को अफ़ीम का नशा माननेवाले भारतीय मार्क्सवादी स्वयं धर्म के नशे से मुक्त नहीं है। कोई भी मार्क्सवादी, जो कि अधिकांशतः हिन्दू हैं, पहले हिन्दू हैं। ''दलित हिन्दुत्व को अपने अनुकूल नहीं पाते हैं, बल्कि इसे अपने विरोध में खड़ा पाते हैं। बौद्ध धर्म उनको ज़्यादा अनुकूल लगता है, इसलिए हिन्दुत्व और बौद्धवाद के प्रति झुकाव दलित साहित्य की एक सहज प्रवृत्ति है।''[1]

स्पष्ट है कि दलित-साहित्य का वास्तविक उद्देश्य हिन्दूधर्म पर प्रहार तथा बौद्ध धर्म का प्रचार है। किन्तु बौद्धधर्म में बुद्ध के प्रधान प्रचारक-द्वय सारिपुत्र एवं मौट्गल्यायन, 'बुद्धचरित' की विशद कल्पना करने वाले अवश्घोष, महायान-प्रवर्तक नागार्जुन, सहजयान-प्रतिष्ठापक सरहपा, यहाँ तक कि आधुनिक बौद्ध-विद्वान् राहुल सांकृत्यायन एवं धर्मानन्द कोसंबी तक, ब्राह्मणों का बोलबाला है; 'दशरथ-जातक' में राम बुद्ध के पूर्वावतार हैं (भागवत इत्यादि में बुद्ध विष्णु के अवतार हैं); प्रत्येक बौद्ध देश में अपनी रामायण विद्यमान है; थाईलैण्ड के राजा राम प्रथम, राम द्वितीय, राम तृतीय इत्यादि पदवी धारण करते थे और वहाँ के राष्ट्रीय संग्राहलयों के सामने धनुर्धारी राम की प्रतिमा शोभित है; कोरिया के लोग अयोध्या की एक राजकुमारी के भक्त हैं, जापान में बुद्ध के साथ बारामोन (ब्राह्मण) भी विद्यमान है (वहाँ दो रामायणें विद्यमान हैं): अतः राम पर निराधार प्रहार करने वाले राजनीति-प्रेरित बौद्ध (मानव-बौद्ध) किस प्रकार के बौद्ध होंगे? नितान्त रुग्ण दशा में, मृत्यु से केवल दो मास पूर्व, अम्बेडकर बौद्ध बन गए। उनके पूर्व कामदेव, कबीर, रैदास से लेकर ज्योति फुले (जन्म 11 अप्रैल 1817—इनके प्रोत्साहक आल्या साहब भिड़े ब्राह्मण थे), छत्रपति शाहू जी महाराज (शिवाजी-पौत्र साहूजी से स्पष्टतः भिन्न), नारायण गुरु, किसी ने धर्मपरिवर्तन किया था। जहाँ तक,अस्पृश्यता का सम्बन्ध है, वह बौद्धधर्म से उद्भूत हुई है, इसे प्रो. इर्फान हबीब तक ने प्रतिपादित किया है।

बुद्ध की आड़ में हिन्दू धर्म पर प्रहार की एक लॉबी सतना-रीवा इत्यादि के बघेलखंड में थी जिसके हाथ-पाँव दूर तक पसरे हैं। इसमें कई कॉम्युनिस्ट और नवबौद्ध धँसे पड़े हैं। डॉ. आदित्यप्रतापसिंह इत्यादि के हिन्दूधर्म पर अनियन्त्रित प्रहार होते ही रहते हैं। यद्यपि डॉ. सुमेरसिंह 'शैलेश' भी इस मण्डली में ताक-झाँक कर लेते हैं; परन्तु उनका दृष्टिकोण पूर्वाग्रह-ग्रस्त नहीं है। गुरुप्रसाद मदान भी सन्तुलित लगते हैं। डॉ. आदित्यप्रताप सिंह की 'दीरध-दाध-निदाध' के प्रचण्ड प्रताप से धधकती सिंहगर्जना सुनिएः ''दम्भ के वशीभूत तथाकथित कर्मकांडी जब यह उद्घोषित कर रहे थे कि सारा संसार देवताओं के अधीन है, देवता मन्त्रों के अधीन हैं और मन्त्र भूमिरक्षक भूसुरों के अधीन हैं, तब तथागत आए और उन्होंने देवताओं, मन्त्रों और कर्मकांडी पुरोहितों की दिमागी गुलामी से भारत और विश्व को मुक्त करने का कल्पांतकारी और सार्थक प्रयास किया। तेंतीस करोड़ देवताओं को एक ही झटके में झकझोर दिया। ब्राह्मणधर्म के जड़ीभूत आत्मवार को उखाड़ फेंका।''[2] प्रकृति-तत्वों के देवी-देवताओं का मानवीकरण ही विश्व के आदिधर्म के प्रेरक-त्तत्त्व थे। भारत, सुमेरु या सुमेरिआ या मेसोपोटामिआ या इराक़ (आर्यक), मिस्र की प्राचीनतम विश्व-सभ्यताएँ प्रतीक हैं। कर्मकांड प्रत्येक धर्म, मजहब, रिलीजन, इज़्म, सरकार, संस्था, कार्यक्रम, जीवनयापन के चिरंतन सहज अंग हैं जो बौद्धधर्म में भी कम नहीं हैं। धर्माचार्यों का संसार में सर्वत्र आदर है तथा लंका के बौद्ध धर्माचार्य उस देश की अशान्ति के प्रधान कारण हैं।

वैदिक धर्मावलंबियों ने आदिवासियों की काली, गौर आदिवासियों की दुर्गा, प्रचंडकर्मा आदिवासियों की चामुंडा, छिन्नमस्ता, नाग जाति के नाग, गंधर्व जाति के कन्दर्व (काम), किन्नर जाति के वीणादि-प्रतीक-सम्पन्न विविध प्रतीकों, यक्ष जाति के कुबेर-मणिभद्र इत्यादि, कोला जाति के वराह, वानर जाति के हनुमान् इत्यादि को समाहित करने की मानवीय उदारता का पावन परिचय दिया तथा मिज़ो जाति

---

1. दलित साहित्य 1999 (सं. जयप्रकाश कर्दग), सम्पादकीय, पृष्ठ 6-7।
2. बुद्धचरितचन्द्रोदय (तृतीय संस्करण, जुलाई, 1996, 'चन्द्रोदयः एक अवगाहन', पृष्ठ 11)।

के भूषक[1], मणिपुरी-आदिवासियों के श्वान[2], सिंहल जाति के सिंह इत्यादि को भी अद्वैत-प्रतीक बनाया। इतिहास से अनभिज्ञ एवं मानवीय उदारता से विहीन व्यक्ति मात्र इस सुन्दर समाहार की निन्दा कर सकते हैं। हिन्दूधर्म में ही प्राचीनता से नवीनतम आस्थाओं का युगपत् दर्शन सम्भव है। यदि हिन्दूधर्म पूर्ववत् प्रभावी होता तो देवी-देवता आज द्वन्द्व अरब हो जाते हैं :

सीयराममय सब जग जानी।
करहुँ प्रनाप जोरि जुग पानी।।

अन्य दृष्टियाँ सर्वसमाहार नहीं करतीं प्रत्युत इन शरणवादी स्वरों में बोलती हैं (एक बुद्ध शेष अबोध):

बुद्ध शरणं गच्छामि।
धम्मं शरणं गच्छामि।
संघं शरणं गच्छामि।।

आत्मवाद आज सर्वाधिक जीवन्त है : योग में, ज्ञान में, भारत में, उन्नत पश्चिम में; और बौद्धधर्म का लगातार ह्रास हो रहा है। क्योंकि मनुष्य ईश्वर के बिना जी नहीं सकता और आत्मा के बिना वह बौद्धिकपशु मात्र रह जाएगा। बुद्ध एक अच्छे मानवमूल्यवादी नेता थे किन्तु जैसे कृष्ण ने स्वपूजार्थ ऋग्वेद के परमदेवता इन्द्र का विरोध किया, वेदनिन्दा की (यद्यपि नया धर्म नहीं चलाया) वैसे ही उन्होंने स्वपूजार्थ ईश्वर, आत्मा, वेद, कर्मकांड इत्यादि का प्रत्याख्यान कर स्वयं को ईश्वर, करुणा को आत्मा, नवकर्मकांड इत्यादि का प्रवर्तन किया जो बिम्बसार की भक्ति, उदयन की सहानुभूति, प्रसेनजित् की आत्मीयता की समकालीन क्षत्रिय-भावना[3] तथा परवर्ती अशोक, कनिष्क, हर्ष इत्यादि से नेहरू, अम्बेडकर तथा अन्य राजनैतिक संसाधन सम्पन्न लोगों तक प्रसरित रही। धर्मो या मजहबों या वादों के पीछे व्यक्ति की स्वपूजावृत्ति प्रधान होती है। राम हों या कृष्ण मूसा हों या दाऊद, बुद्ध हों या महावीर, ईसा हों या मोहम्मद, जर्थुस्त्र (जर्दुश्त, जोरॉस्टर) हों या नानक, कुंग फुंत्से (कॅन्फ्यूशियस्) हों या लाओंत्से, मार्क्स हों या लेनिन, गाँधी हों, या माओ, सारे नेता अपने-अपने दायरों में अच्छे नेता थे किन्तु किसी को श्रेष्ठतम बनाना विषमतावाद को प्रश्रय देना मात्र है, न्यस्तस्वार्थसिद्धि मात्र है। कलम को डॉन क्विजॅाट[4] की तलवार बनाना स्वयं को हास्य-आलंबन बनाना है।

क्षत्रिय शासक रहे किन्तु वर्चस्व ब्राह्मणों का रहा क्योंकि ब्राह्मण ने ज्ञान और अपरिग्रह का पथ पकड़ा। ब्राह्मण ने स्वयं के ईश्वर या बुद्ध या जिन (जितेंद्रिया) या महावीर या ईश्वरपुत्र का रसूल (पैगम्बर, नबी) या गुरु नहीं कहा। ब्राह्मण के प्रति हीनभाव या उस पर अत्याचार की कथा उतनी ही प्राचीन है जितनी भारतीय संस्कृति या भारतीय इतिहासः पुरूरवा नहुष, सहस्रार्जुन इत्यादि राजाओं, बुद्ध-महावीर-नानक इत्यादि क्षत्रियों या खत्रियों फीरोज तुगलक-सिकन्दर लोदी-औरंगजेब इत्यादि सुल्तानों-बादशाहों, बख्यितार खिल्जी[5] (मिनहाज सिराज के अनुसार, एक लाख तो सिर्फ ब्राह्मण मारे गए; नालन्दा छह महीने जलता रहा) इत्यादि आक्रान्ताओं, नामदेव इत्यादि हिन्दू तथा कबीर इत्यादि मुसलमान सन्तों इत्यादि के क्षत्रियवादी या खत्रीवादी तथा मुस्लिमवादी या ईसाईवादी और बीसवीं सदी कें ब्राह्मण-विद्वेष की निराधारता इसी तथ्य से सिद्ध है कि उसने सदैव उदारता का प्रश्रय लिया तथा हीनभावयुक्त रहकर धर्म, दर्शन, विज्ञान, साहित्य, संगीत, नृत्य विविध कला सेवा में रत रहा। उसने गाली-गलौज से काम नहीं लिया। प्लूटार्क मेगस्थनीज, फाह्यान, हवेन्तसाँग, इत्सिंग, अमीर खुसरो, प्रसाद इत्यादि ने उसकी प्रशस्ति की है। बुद्ध और अशोक तक उसके प्रति बहुत कठोर नहीं हो पाए। यहूदियों के सदृश, ब्राह्मण निन्दा और हत्या के बीच भी साधना करते रहने के कारण न्यस्तवार्थग्रस्तों के मध्य वर्चस्व को जीवन्त रहने में सक्षम रहा है। उसने सदा अन्यों, विरोधियों तक, को सहयोग दिया। उसने सदा नये सुधारवादी आन्दोलनों को प्रवर्तित एवं पोषित कियाः बुद्ध के प्रधान शिष्य कौण्डिन्य इत्यादि पंचवर्गीय भिक्षु तथा सादिपुत्र-गौद्गल्यायन, चन्द्रगुप्त मौर्य[6] के गुरु चाणक्य, कबीर-रैदास इत्यादि के गुरु रामानन्द, अकबर के परम मित्र बीरबल (महेशदास), शिवाजी के गुरु समर्थ, रामदास तथा परम प्रशंसक भूषण तथा शिवाजी-संस्थापित संस्था 'पेशवा' के बाजीराव प्रथम-बालाजी विश्वनाथ इत्यादि। विवेकानन्द के गुरु रामकृष्ण परमहंस,

---

1. भोज्य भी।
2. श्वपच (श्वान को पचानेवाले)।
3. बुद्ध के क्षत्रिय होने के कारण तत्कालीन क्षत्रिय-नरेशों का गौरवदीप्त-सहयोग जातिवाद-प्रेरित भी था।
4. डॉन के हॅाटे' या 'डॉन के ऑटे' (स्पेनिश-महाकवि सवैन्टीज की अमर कलाकृति)।
5. मोहम्मद गोरी का एक सेनापति जो कुत्बुद्दीन सेवक से स्वभावतः जुड़ा था।
6. महापद्मनन्द का नन्द-वंश नाइयों का था, चन्द्रगुप्त राजा के मुरा नामक दासी से उत्पन्न जारज-पुत्र थे। जिन्होंने हत्या कर सत्ता पाईः तभी तो नाई 'ठाकुर' (स्वामी, प्रभु) कहलाए!

गाँधी के गुरु गोखले, मैथिलीशरण गुप्त-गणेशंकर विद्यार्थी इत्यादि के गुरु तथा हीरा डोम की भोजपुरी रचना का प्रकाशन कर उसे अमर बनाने वाले आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, जगजीवनराम से ''तुम्हारे बर्तन मैं माँजूँगा'' कहनेवाले मदनमोहन मालवीय जैसे शत-शत निदर्शन विद्यमान हैं; आधुनिक दलितोत्थान-नारीजागरण के अमर नेता राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती इत्यादि भी ब्राह्मण थे। ब्राह्मण ही अन्तर्राष्ट्रीय एवं अन्तर्जातीय विवाहों में अग्रणी रह पाए हैं! इन सारे तथ्यों को पददलित करता प्रलाप देखिए: ''एक ब्राह्मण (शंकरचार्य) जिसने बौद्ध-विहार में शिक्षा पाई थी नए सिरे से ब्राह्मणवाद का खोया स्थान दिलाने तथा बौद्धधर्म को नष्ट करने के उद्देश्य से दक्षिण भारत से उत्तर की ओर बढ़ा। वह अशिक्षित राजाओं तथा धनवान व्यापारियों की सहायता से दक्षिण तथा मध्य भारत की मिली सैनिक टुकड़ियों के साथ लूटता, मारता, आग लगाता, बिहारों को तबाह करता और सम्पत्ति पर अपना कब्जा जमाता चला आया। बिहारों पर कब्जा कर मन्दिरों में बदला। भिक्षुओं के चीवर उतारे और विवाह के लिए विवश किया। लोग डर के मारे धर्म त्यागने लगे। जो डर के मारे ब्राह्मणों की शरण में चले गए, बुद्ध से मुख मोड़कर, उन्हें शूद्र का स्थान मिल गया परन्तु जिन्होंने धर्म छोड़ना उचित नहीं समझा उन्हें अछूत, चांडाल आदि बना दिया गया। अधिकांश भिक्षु मारे गए, कुछ विदेशों में भाग गए। जो कमज़ोर थे, छिपकर रहने लगे। 'दलित साहित्य' में प्रमोदसिंह का लेख 'दलित साहित्य और चिन्तन का मूल कहाँ?' पृष्ठ 17—लेखक ने इसमें फुटनोट 10 लिखा है किन्तु विवरण नहीं दिया: ('दलित-फुटनोटवाद'! यह वर्णन बौद्ध चंगेज ख़ान पर लागू होता है: मंगोलिया के छोटे-से दायरे से निकलकर साइबेरिया, रूस, चीन, मध्य एशिया के अनेक देशों को रौंदता महान् बारूदी-योद्धा मिस्त्र तक जा पहुँचा और जहाँ-जहाँ गया वहाँ-वहाँ नगर, मस्जिदें, दरगाहें, कब्रस्तिान, बीच-खूच, मठ-मन्दिर भी धरा-धवस्त करता गया, लाखों लोगों को तलवार के घाट उतरना पड़ा, असंख्य शरणार्थी बनकर मारे-मारे फिरे। आतंक इतना भयंकर था कि भारत की ओर मुड़ने की अफ़वाह मात्र से भय-ग्रस्त सुल्तान बल्बन बेचारा निरीह भिक्षुक के रूप में नंगेसर-नंगेपैर रात भर महरौली की कुत्बुद्दीन बख़्तियार काकी की दरग़ाह में खड़ा रहा!) यह कथन शतशः निराधार है, क्योंकि गुप्तकाल में ही आज की भाषा में 'हिन्दू' (इस शब्द का प्रयोग न 780-820 ई. के जीवनकाल वाले शंकराचार्य ने किया है न तुलसीदास ने जिनका जीवनकाल 1532-1623 ई. रहा) बौद्ध-जैन एक हो चुके थे (बुद्ध एवं आदिनाथ या प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव 'अवतार' माने जाते थे) और अस्पृश्य चांडाल अहिंसक-भोजनदर्शन के कारण बौद्धों ने बनाए थे जो हिन्दू-बौद्ध-जैन एकत्व में भी विद्यमान रहे। शंकरचार्य का शास्त्रयुद्ध शस्त्रयुद्ध न था और उन्होंने बुद्ध का सम्मान 'योगिनां चक्रवर्ती' कहकर किया है; उन्हें 'प्रच्छन्न-बौद्ध' तक कहा गया। बौद्धधर्म नहीं रहा तथा आदिवासियों, आज की राजनैतिक भाषा में 'पिछड़ों' और दलितों में उसका प्रसार कभी नहीं रहा क्योंकि इसमें उक्त वर्गों के देवी-देवताओं को कोई स्थान प्राप्त न था। बौद्धधर्म क्षत्रियों तथा उनके प्रभाव से ऊभचूभ कुछ ब्राह्मणों और श्रेष्ठियों का धर्म था: 'इलीट'-धर्म। कुछ शुद्ध-भाईबहन भी प्रभावित हुए क्योंकि समाज में आन्दोलनों का प्रभाव सभी वर्गों पर पड़ता है तथा जैसे परवर्ती कालों में इस्लाम या ईसाइयत अपनाने से लाभ थे जिनसे बहुत-से लोग लाभान्वित हुए वैसे ही राजधर्म के बौद्धधर्म होने से भी। बुद्ध 'दुःखम्' पर भाषण देने के बाद राजगृह में सम्राट बिम्बसार, कौशम्बी में सम्राट उदयन एवं श्रावस्ती में सम्राट् प्रसेनजित् के राज-दरबार की ओर चल पड़ते थे! अहिंसा एवं जीवदया के प्रचार के बावजूद, वे अस्सी वर्ष की परिपक्व आयु में शूकरमांस के अतिखादन[1] के कारण उदरविकार से पीड़ित होकर मरे! भिक्षु-भिक्षुणियों का निकम्मापन इतना बढ़ गया कि अशोक तक को हस्तक्षेप करना पड़ा था; सारनाथ की लाट का अभिलेख साक्षी है। धर्मप्रतिष्ठापन पर अपार व्यय से अराजकता का परिणाम स्वाभाविक था। पुष्यमित्र शुंग ने राष्ट्र के दुर्बलरण की प्रक्रिया को नष्ट किया। गुप्त-सम्राटों ने हिन्दू-बौद्ध-जैन ऐक्य स्थापित किया। किन्तु पुष्यमित्र इत्यादि शुंग-सम्राटों ने साँची-स्तूप इत्यादि में उदारता का परिचय दिया तथा गुप्तकाल में तो अजन्ता इत्यादि तक बने। शंकराचार्य के सम्राट से पूर्व ही बौद्धों में भिक्षु-भिक्षुणी-यौनाचार, मांस-मत्स्य-मदिरा-मद्रा[2] (पंचमकार) का प्रयोग, तन्त्रवाद, वाममार्गवाद इत्यादि की अबौद्ध जीवन-पद्धति जनाक्रोश का कारण बन गई थी। सरहपा, सबरपा, लुइपा इत्यादि चौरासी 'सिद्धों के कारण आज तक 'जोगी' से कामसम्बन्धगीत प्रचलित हैं (उच्छृंखला-प्रतीक चलचित्रों तक में)। अतः शंकराचार्य के समक्ष बौद्ध नहीं ठहर पाए। ये सारे तथ्य इतिहाससिद्ध हैं। किन्तु उक्त लेखक ने ऐसी निराधार शैली का प्रयोग किया है जो प्रतिक्रिया में लिखवा सकती है : कपिलवस्तु के भूस्वामी[3] शुद्धोदन का मानसिक दृष्टि से दुर्बल पुत्र सिद्धार्थ

---

[1] संयोगात् ईसा भी अतिभक्षी थे।

[2] स्त्री।

[3] बड़े जमींदार।

पहले विवाह और पिता बनने के बावजूद परिणीता पत्नी को अकारण त्यागता तथा निर्दोष नवशात शिशु को 'राहुल' या राहुदशाग्रस्तकारी या अभागा की गाली देता पता नहीं किस कुंठा से उद्वेलित होकर चुपचाप घर से भाग खड़ा हुआ तथा कई घाटों का पानी अहं-प्रेरणा से पहले कठिन योगसाधना करते किन्तु बाद में सुजाता की खीर खा प्राण बचाते (जिसके कारण आत्मीय देवदत्त तथा ब्राह्मण कौण्डिन्य इत्यादि पाँच मित्र-शिष्य 'योगभ्रष्ट' तथा पाखंडी कहते साथ छोड़ गए) 'बुद्ध' होने का प्रचार करने लगा जिसे गया में किसी के न सुनने पर ऋषिपतन (ऋषिपत्तन? आज का सारनाथ) की ओर बढ़ा; रास्ते में भी प्रचार किया किन्तु 'बुद्ध' होने की बात किसी के गले न उत्तरी, किसी प्रकार ऋषिपतन में कैण्डिन्य इत्यादि के मिलने पर उन्हें पटाया तथा प्रसिद्ध हो गया। इतने पर भी बिम्बसार, उदयन, प्रसेनजित् इत्यादि समजातीय सम्राटों का सहयोग लेना ही पड़ा। अब 'बुद्धत्व' में क्या सन्देह रहना? 'बुद्ध' का नाटक स्वयं को ईश्वर बनाने की महत्त्वाकांक्षा से प्रेरित था, अतः ईश्वर का खंडन अप्रतिवार्य था। अव्यावहारिक अहिंसा एवं उदात्त मानव-मूल्य-प्रचार की 'रणनीति' अपनाता वह बहुत समादृत हुआ। अस्सी वर्ष की आयु में शूकरमांस ज़्यादा खा जाने से कुशीनगर में मरण हुआ।

उक्त स्तर की घटिया शैली का एक अनुकरण मैंने इसलिए प्रस्तुत किया है कि इसका प्रयोग राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मोहम्मद, सब पर किया जा सकता है! हाँ, मेरे प्रयोग का खंडन 'इतिहास' न कर पाएगा, जबकि शंकरचार्य पर प्रयोग कर सरलता से करेगा क्योंकि वह निराधार है तथा न्यस्त-स्वार्थ से प्रेरित भी। मैं बुद्ध का प्रशंसक हूँ क्योंकि वे मानवमूल्य-प्रतिपादक थे तथा मेरे करोड़ों 'सच्चे' बौद्ध-भाईबहन संसार भर में फैले पड़े हैं। किन्तु मैं उन्हें एक मानव के रूप में ही देख सकता हूँ क्योंकि महानता संयोगजनित होती है, जन्मजात नहीं। जो लोग हिन्दू महामानवों को गालियाँ देते हैं, वे 'दलित-साहित्य' की भलाई नहीं कर रहे। अपना 'धन्धा' चलाओ, फैलाओ, बढ़ाओ, कमाओ, खाओ और मर जाओ! अनेक प्रतिभाहीन छद्म-साहित्यकार ऐसा करते आए हैं। धर्मों और सिद्धान्तों के झमेलों में न पड़ो।

संसार के सबसे खूँख़ार और भयानक योद्धा चंगेज ख़ान बौद्ध थे (जो सूर्य को भी पूजते थे—हर्ष के सदृश); बीसवीं सदी के चंगेज ख़ान हिन्देकी तोजो भी बौद्ध थे। मोहम्मदी राज्य में 'दलितों' की दुर्दशा भयानकतर रही, अंग्रेज़ों के ईसाई राज्य में भी वह ज्यों-की-त्यों रही। 'दलितों' की दशा सुधरी तो गाँधी और उनकी काँग्रेस के शासन में, जिन्हें इतिहासहंता तथाकथित-दलित नेता और लेखक गालियाँ देते हैं; गाँधी की समाधि पर चप्पल मारने वाले अपने को 'बहुजन समाज' बताते हैं! 'दलित'-प्रेमी मालवीय की मूर्ति को उनके जन्मस्थल प्रयाग (इलाहाबाद) में गिरानेवाले अपने को 'दलित' कहें, यह परिहास नहीं तो क्या है? इस समय भी 'दलित'-वर्ग के हिन्दुओं को पाकिस्तान में गुलामी करानेवाले पाकिस्तान में भारत के 'दलितों' के प्रति बड़ी सहानुभूति है! पाकिस्तान के देव-पिता परम-साम्प्रदायिक डॉ. सर मोहम्मद इक़बाल की हमदर्दी देखें :

कौम ने पैग़ामे-गौतम की ज़रा परवाह न की
क़दर पहचानी अपने गौहरेयक दाना की।[1]…
आह, शूद्र के लिए हिन्दोस्तान ग़मखाना है
बढ़ इन्सानी से इस बसती का दिल बेग़ाना है।
ब्राह्मण सरशार है अब तक मैं परदार में
शमाई गौतम जल रही महफिले अगयार में।

संसार साक्षी है कि बुद्ध से बुत् शब्द बना तथा बुतों को ढहाना-तोड़ना इस्लाम का परम कर्तव्य है। बौद्धधर्म के पतन का एक सबसे बड़ा कारण बौद्ध धर्म था। अफगानिस्तान में बामियान की बुद्ध-प्रतिमा संसार के लफ्फाकी-भरे हस्तक्षेप के बावजूद तोड़ी गई। पाकिस्तान की यही दशा है। शाहबाजगढ़ी की अशोक की लाट का बुरा हाल है। बुद्ध को हिन्दूधर्म पर प्रहार के खड्ग के रूप में बहुतों ने प्रयोग किया है। इस-सब लिखने का अभिप्राय हैः महापुरुषों का शोषण न किया जाए! अपनी राजनीति राजनीति के रूप में ही खेली जाए।

---

1. इक़बाल (जिन्ना के काँग्रेसी होने के सदृश) पहले राष्ट्रवादी थे। संयोगात् विवेकानन्द भी लगभग ऐसा कह चुके थे। लोग यह नहीं सोचते कि भारत में बिना ईश्वर और आत्मा का धर्म कैसे चल सकता है? ऊपर से, पुनर्जन्म! आत्मा नहीं तो पुनर्जन्म किसका? कैसे? बुद्ध नास्तिकता में कपिल से प्रेरित थे, कणाद् के बुद्धिवाद से भी परिचित हो सकते हैं। किन्तु उनका अहं दार्शनिक या चिन्तक मात्र बनने से सन्तुष्ट न हो सकता था अतः कृष्ण की प्रेरणा से वेदालोचना और नव-रणनीति के रूप में समता (जो वेद-उपनिषद् से गृहीत है) को पकड़ा है।

ईसाई-साँठगाँठ

इधर, सम्भवतः सी. आई. ए. और क्रिश्चियन मिशनरीज़ की प्रेरणा से, सिन्धु घाटी सभ्यता को दलित-सभ्यता और बर्बर आर्य[1]-आक्रान्ताओं द्वारा उसका विनाश कर विजितों को दास बनाने का नया शुग़ल छोड़ा गया है। 'प्रचारतन्त्र और बहुजन समाज' के ग्रन्थकार श्री एच. एल. दुसाध लिखते हैं: ''आजाद देश आधुनिक भारत का गुलाम तो सिन्धु-सभ्यता के सृजनकर्त्ताओं का वंशधर भारतीय बहुजन समाज है। सहस्त्रों वर्ष पूर्व पराधीन बनाए गए सिन्धु-सभ्यतावासियों का वंशधर और उसका देश विदेशागत आर्यों द्वारा आज भी शासित है, गुलाम बना हुआ है।'' (भूमिका का प्रथम पृष्ठ) 05 नवम्बर, 1999 को आरम्भ पोप जॉन पॉल द्वितीय की भारत-यात्रा के सन्दर्भ में चले विवाद (पता नहीं क्यों? चीन, ताइवान, श्रीलंका जैसे देश पोप के यात्रा-अनुरोध ठुकरा चुके हैं और मरहूम टेरेसा या टेरीसा के 'सेवा'-आग्रह बांग्लादेश, श्रीलंका भी क्योंकि धर्मान्तरण की स्कूल-हॉस्पिटल-मूलक राजनीति से डरते हैं—भारत में तीन जनपद नागालैण्ड-मिजोरम-मेघालय तीन राज्य बनाए गए जिनकी जनसंख्या बेंगलूर के बराबर भी नहीं है तथा अरबों का व्यय भारत का 'नरकगामी' हिन्दू उठा रहा है) के सन्दर्भ में कैथलिक बिशप्स कॉन्फ़ेरेन्स ऑफ़ इंडियन (सी. सी. बी. आई.) ने भी भारत में विषमताओं का उत्तरदायी आर्य-आक्रान्ताओं को ही घोषित किया! इसके एस. लूर्दूस्वामी नामक व्यक्ति ने मूल भारतीयों पर विषमतावादी जातिवाद आर्यों द्वारा थोपे जाने पर प्रकाश डाला। उन्होंने इस विषमता को नष्ट कर समता-प्रतिष्ठापन का मिशनरीज़ का ध्येय भी घोषित किया। (द हिन्दुस्तान टाइम्स, पृष्ठ 5, 03 नवम्बर, 1999) इसी संस्था के डॉ. डॉमिनीक एम्मानुएल ने पोपलीला-विरोधी शिवसेना को क्षमा-दान की घोषणा की, किन्तु बहुजन स्वयंसेवक संगठन के सेनापति (कमांडर-इन-चीफ) तेजसिंह नामक किन्हीं व्यक्ति ने मूक-दर्शक मात्र न रहने की तेज-तर्रार धमकी भी दे डाली! (वही, पृष्ठ 5, 04 नवम्बर) इसी सन्दर्भ में राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग के विवादास्पद अध्यक्ष डॉ. ताहिर महमूद ने चिन्ता भी व्यक्त कर डाली तथा लगे हाथ केन्द्रीय सरकार को ढेरों परामर्श भी दे डाले। (04 नवम्बर, 1999) किन्तु फ्रांकोइस गॉटीअर नामक विद्वान् इस-सारे वीरदर्प एवं परामर्श-दान से पूर्व ही पूछ चुके थे: हिन्दू प्रत्येक वस्तु मान लेते हैं; उनमें से अनेक प्रत्येक मन्दिर में ईसा की वेदी (अल्टार) प्रत्येक मन्दिर में स्थापित करने को प्रस्तुत है—किन्तु क्या गिरजाघर (चर्च) उपनिषद् और वेद स्वीकार करेगा? मिशनरीज की शिक्षासेवा के सन्दर्भ में उन्होंने लिखा कि यूरोपियन्स के आने से पूर्व मद्रास राज्य (तमिलनाडु) में एक लाख पच्चीस हज़ार आयुर्विज्ञान संस्थाएँ थीं। उन्होंने विज्ञानों एवं दर्शनशास्त्र के क्षेत्रों में पश्चिम को प्राचीन भारत का ऋणी बताया और ईसाई-शिक्षा द्वारा पाश्चात्यकरण की आलोचना की। (01 नवम्बर, 1999)। तो, क्या 'दलित'-साहित्यकार कुछ राजनैतिक दलों के साथ ईसाई-मिशनरीज़ और मुस्लिम-तत्वों से मिलकर, इतिहास को विकृत कर, गृहयुद्ध का पथ प्रशस्त कर रहे हैं, जिसका पूर्वाभ्यास यत्र-तत्र चल भी रहा है? खरबों के व्यय के बावजूद कश्मीर या नागालैण्ड में शान्ति क्यों नहीं स्थापित हो पा रही?

ईसाई प्रायः 'प्रकाश' की चर्चा करते हैं किन्तु यह प्रकाश तो उन्हें भारत के ''तमसो या ज्योतिर्गमय'' से प्राप्त हुआ है; ईसा (वस्तुतः ईशु या एशु) ईश्वर शब्द का ही तद्भव रूप है, ''स्वर्ग का राज्य तेरे अन्दर'' वस्तुतः ''तत्वमसि'' (छांदोग्य उपनिषद्) का अनुवाद है, ईसा का आत्मवाद (बेनेडिक्टस् के अनुसार, ईसा अद्वैतवादी थे) उपनिषद्-मूलक तथा क्षमादयावाद (विल् ड्यूरॉं के अनुसार) बौद्धमूलक है। 'सेन्ट' शब्द ऋग्वेद-मूलक है (एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति) ईसा के बारह से तीस वर्षों का जीवनवृत्त अज्ञात है। बिहार में प्रसिद्ध है कि इस बीच वे नालन्दा में पढ़े, कश्मीर में उनकी कब्र बताई जाती है, न्यायालय-दत्त मृत्युदण्ड में उन्हें मृत समझकर शव छोड़ देने तथा उनके उस समय न मरने की बात प्रचलित है। इस कब्र का मुयायना करने देशी-विदेशी विद्वान् आते ही रहते हैं। ईसा का ईश्वर-पुत्रत्व तो खैर विवादस्पद है ही; मोहम्मद की पुस्तक 'कुरआन' (कुरान) में ईश्वर को स्थूल यौनाचार से संपृक्त करने की इस 'स्थापना' की कड़ी भर्त्सना की गई है। वस्तुतः यह पितागल्प सृष्टिकर्त्ता अथवा सर्वपिता का घोर अपमान है। क्या ईश्वर ईसा'-जन्म से पूर्व नपंसुक था और उनके मृत्युदंड के उपरान्त पुनः हो गया? अनेक यहूदी ईसा को जारज-सन्तान मानते रहे हैं और इस कारण (अन्य कारण अपने धर्म का अपमान-अभियोग जिसके कारण महान् रोमन साम्राज्य के स्थानीय न्यायाधीश ने मृत्युदंड दिया)

---

[1] बुद्ध ने 'आर्य-सत्यों' का प्रतिपादन किया है। वह दिन दूर नहीं जब इधर ध्यान जाने पर वे आलोचना के व्यूह में ढकेल दिए जाएँगे? बौद्धिक-व्यभिचार का अपराधिक रूप चिन्ता उत्पन्न करता है। जो यह कर रह हैं, वे नहीं जानते कि वे भारत को तोड़ने वालों के हाथों की कठपुतलियाँ मात्र हैं। गृहयुद्ध से किसी भारतीय का लाभ न होगा।

भी ईसाई उनकी थोक-फुटकर हत्याएँ करते रहे; क्षमादया-प्रतीक ईसा के एक विकट भक्त हिटलर ने पैंसठलाख यहूदी मरवा डाले! ईश्वर-पुत्र, गलीली-सागर पर चलनेवाले, स्पर्श मात्र से रोगी को चंगा करने वाले 'व्यक्ति' ईसा काल्पनिक मात्र हो सकते हैं। जिन 'ईश्वर-पुत्र' और 'यहूदी-नरेश' ईसा को मृत्युदंड दिया गया, उनकी अन्धविश्वास शक्तियों का प्रत्याख्यान यहूदियों और राहगीरों ने मजाक उड़ाकर, उन पर थूक-थूक कर दिया; यह ईसाई बाइबिल में ही दर्ज है। जब वे दो मृत्युदंड प्राप्त अगल-बगल लटके डकैतों के साथ सलीब (क्रॉस) पर लटके थे तब म्रियातण डकैत तक उनका परिहास कर रहे थे! वहाँ उपस्थित अधिकारी और चिकित्सक व्यंग्य कर रहे थेः यदि यह 'रक्षक' (मसीहा या सेविअॅर) सलीब (क्रूस या क्रॉस) से उतर आए तो हम इसे छोड़ देंगे! लोग कह रहे थेः यह कैसा 'रक्षक' जो स्वयं अपनी रक्षा नहीं कर सकता! मरते समय ईसा ने चिल्लाकर अपनी ईशपुत्रत्व-कल्पना की निराधारता स्वयं स्पष्ट कर दी थीः ''एली, एली, लगा शबकतनी''! आलीजाह या अल्लाह या प्रभु ने उन्हें त्याग दिया था! किन्तु उनके मरने के बाद शिष्यों पतरस या पीटर इत्यादि ने जनता के अन्धविश्वास का लाभ उठाया और अनेक गल्त प्रचारित प्रसारित किए। पॉल ने भी अपने नाम के लिए प्रसार किया। कथा गढ़ी गई; आदम (एडम) के 'अपराध' (ज्ञानतरु-फलभक्षण) के कारण। रुष्ट ईश्वर को प्रसन्न कर स्वर्ग-च्युत (अन्धे मिल्टन ने 'पैराडाइज़लॉस्ट' नामक अन्ध-महाकाव्य रचा है) आदमी के लिए ईसा ने अपने 'बलिदान' द्वारा स्वर्ग-पथ प्रशस्त किया। यह कैसा ईश्वर जो ज्ञान का विरोधी है? यह कैसा पिता जो पुत्र-मृत्यु से प्रसन्न होता है? और स्वर्ग-नरक, निर्वाण, कैवल्य, मोक्ष, जन्नत, दोज़ख, हेवेन इत्यादि हथकंडे मात्र हैं और हो सकते हैं! मोहम्मद ने ईशपुत्रत्व की विगर्हणा की है, फ़िरदौसी ने पुराना परिहास दोहराया हैः जो स्वयं को न बचा सका वह दूसरों को क्या बचाएगा, दयानन्द ने इन आदिम कथाओं पर आधृत अन्धधर्म से मुक्त हो ईसाइयों से प्रकाश धर्म (वैदिकधर्म) की ओर आने का आह्वान किया है, विवेकानन्द और गाँधी जैसों ने धर्मपरिवर्तन के पाखंड की निन्दा की है तथा गाँधी इस पर रोक के पक्ष में थे, स्वामी मुक्तानन्द परमहंस ने कहा था कि जो ईश्वर दूसरों के धर्मपरिवर्तन से प्रसन्न होता है उसे मैं आश्रम में झाड़ू भी न लगाने दूँगा! स्पष्ट है, आज का ईसाई मजहब गल्पों पर आधृत है। ईसा एक अच्छे सन्त थे, उनके उपदेश मानव मूल्य परक हैं जिनका आदर होना चाहिए। ईशपुत्रत्व, बलिदान, ईश्वरक्षमा, स्वर्ग-राज्य, धर्मपरिवर्तन इत्यादि कल्पनाओं के कारण ही 'पोपलीला' (पाखंडलीला) शब्द का प्रचलन है।

ईसा को कल्पित रूप देनेवाला ईसाई-बाइबिल मोहम्मद के अनुसार एक जाली ग्रन्थ है। बेनेडिक्टस मॅटिक्रोसा के अनुसार 1945 ई. के लगभग एक मिस्री किसान को हल जोतते प्राचीन बाइबिल मिली जिसके कुछ अंश उसकी माँ ने भोजन बनाते जला डाले किन्तु कुछ बच गए जिनमें वेदान्त का उच्च दर्शन प्रतिपादित है (किन्तु 'चर्चा के धन्धेबाज इसे दबा ही सकते हैं), पी. रामन ने 'द हिन्दुस्तान टाइम्स' में 04 नवम्बर, 1999 को प्रकाशित 'स्टोरी ऑफ़ द लॉस्ट बाइबिल' (खोई बाइबिल की कहानी) में संसार की सबसे पुरानी बाइबिल की चर्चा की है जिसे भयानक आक्रान्ता पुर्तगालियों ने नष्ट करना चाहा किन्तु जिसकी एक प्रति कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में है; यह सीरिअन चर्च के पादरियों द्वारा 325 ई. में मालाबार लाई गई थी। वर्तमान बाइबिल परवर्ती रचना है जो यूनानी शीर्षक से ही जाहिर है। यूरोप में ईसाइयत सम्राट कॉंस्टेन्टाइन की कृपा से पनपी/पाँचवीं-छठवीं सदियों में इसका ज़ोर बढ़ा। भारत में सेन्ट टॉमस 52 ई. में आए तथा मालाबार-क्षेत्र में जमे। इन्हें ईसा के द्वादश-शिष्यों में एक भी माना जाता है, किन्तु सेन्ट टॉमस के कभी भारत न आने के ऐतिहासिक सत्य को देखते एक अरब-नाविक[1] भी। उन्होंने कुछ दिन मालाबार-क्षेत्र में अपना डंड-कमंडल फैलाया, पर दाल गलती न देखकर मद्रास (चैन्ने) की ओर डगर गए जहाँ उनकी हत्या कर दी गई। किन्तु उनके कुछ भक्तों ने उनके समय से ही चर्च वगैरह बनाए। भारत में ईसाइयत दो हजार साल पुरानी है, यूरोप में डेढ़हजार! अब प्रश्न उठता हैः कौन-सी बाइबिल सच्ची हैः प्रचलित जिसे मोहम्मद जाली मानते हैं या मिस्र में प्राप्त या भारत में प्राप्त जो प्राचीनतम है? प्रचलित बाइबिल में कहीं ईश्वर के कहीं ''एली, एली, लगा शबकतनी'' के ईशत्याम-चीत्कार के साथ मरण लिखा है तो कहीं पुनर्जीवन-कथा चस्पाँ है?

उक्त तथ्यों के लेखन से अभिप्राय है कि ईसाई मिशनरीज़ और उनके क्रीत छद्म-हिन्दू अरबों विदेशी धन[2] प्राप्तकर मज़े उड़ाएँ, स्कूल-धन्धे का जाल फैलाकर अन्धाधुन्ध कथाएँ, क्योंकि हिन्दू-समाज-प्रधान म्रियमाण भारत में ''सब चलता है'', किन्तु ''सूप बोले तो बोले चलनी क्या बोले जिसमें बहत्तर छेद है'' या ''शीशे के घर में रहनेवालों को दूसरे के घर में पत्थर नहीं फेकने चाहिए''

---

1. 'नाविक' शब्द ही 'नेवी', 'नेवीमेशन' इत्यादि का मूल है; ऋग्वेद में शतकर्ण नौकाओं का उल्लेख है।
2. ''प्रमुख दानदाता संस्थाओं ने दस वर्ष में 1344 करोड़ रुपए का दान दिया।'' (राष्ट्रधर्म, लखनऊ, नवम्बर, 1999 अंक में राजेन्द्र चड्ढा का लेख 'भयंकर षड्यन्त्रः चर्च और विदेशी धन का', पृष्ठ 13)

या "खुदरा फ़ज़ीहत दीग़रा नसीहत" वगैरह का ध्यान रखते हिन्दू धर्म पर आक्रमण करने का दुस्साहस न करें। ईसाइयत अन्धविश्वासाधृत दुर्बलधर्म है जो केवल राजनैतिक धन-बल के कारण संसार पर दबदबा बनाए है। भारत में ईसाइयों, विशेषतः पुर्तगालियों ने वास्कोडीगामा, सेन्ट फ्रेंसिस इत्यादि के नेतृत्व में जो अत्याचार किए हैं, वे महमूद ग़ज़नवी, तैमूर लंग, औरंगजेब इत्यादि धर्मान्धता-प्रतीकों के स्तर के भले ही न हों क्योंकि इनके क्षेत्र बहुत विस्तृत थे, किन्तु बख्तियार खिल्जी, फिरोज तुगलक़ सिकन्दर बुतकिशन, सिकन्दर लोदी, टीपू सुल्तान इत्यादि हिन्दूघातियों के स्तर के अवश्य हैं। हिन्दू बेहद उदार हैं। सर सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, राजकुमारी अमृत कौर, जे. सी. कुमारप्पा, राजीव[1] गाँधी इत्यादि को सारे राष्ट्र का सम्मान प्राप्त हुआ जो उदार हिन्दुओं का गौरव बढ़ाता है।

ईसाइयों ने अफ्रीका इत्यादि में असंख्य ईसाई बनाए पर उनसे भयानक अन्याय करते रहे। अमेरिका के हब्शी-ईसाइयों ने ब्लैक-मुस्लिम आन्दोलन चला रखा है क्योंकि वहाँ उनके साथ भारी भेदभाव है। दस-प्रतिशत से अधिक संख्या के बावजूद आज तक एक भी हब्शी (नीग्रो) राष्ट्रपति या उच्चस्तरीय नेता नहीं बन सका। ईसाइयत की भयावह कट्टरता केवल ब्लडी मेरी के इतिहास में बद्ध नहीं है (जो जॉन केनेडी एकमात्र कैथलिक थे जो राष्ट्रपति बन सके)। क्या वैदिक ऋषि ऊर्ध्वग्रावा और ज्ञानश्रुति, औपनिषदिक ब्रह्मविद्यापात्र सत्यकाम जाबाल, रामायण-प्रणेता वाल्मीकि, निषादराज गुह, गृद्ध (आदिवासी) नेता जटायु, शबर (आदिवासी) नेत्री, शबरी, वानर (आदिवासी) नेता हनुमान्-अंगद-सुग्रीव, महाभारत-प्रणेता व्यास (माता शूद्र), विदुर शवपच इत्यादि से लेकर नामदेव, सदन, कबीर (मुसलमान), सेन, अष्टछाप वाले कृष्णदास, नाभदास (डोम), नारायण गुरु, जयकर, अम्बेडकर, जगजीवनराम, अंजैया, मायावती इत्यादि 'दलित' है? क्या दुखाध जी इन-सब को गुलाम मानेंगे? क्या महापद्मनन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार, अशोक, कर्पूरी ठाकुर, एच. के. एल. भगत इत्यादि (नाई), शिवाजी, सरदार पटेल, ब्रजलाल वर्मा (म. प्र.), चन्दूलाल चन्द्राकर, प्रो. सिद्धशेवर प्रसाद, नितिशकुमार, विनय कटियार, डॉ. ब्रजलाल वर्मा इत्यादि (कुर्मी) फुले, मोहनलाल सुखाड़िया, गहलोत इत्यादि (माली) 'पिछड़े हैं? अहीर (यादव) तो अभी कल 'पिछड़े' बने हैं, पर क्या महान् नायक सूरजमल से प्रधानमन्त्री चरणसिंह (जाट) तक अग्रण्य 'पिछड़े' थे? संसार के इतिहास में राजनीति (वस्तुतः 'नीति-रहित' राजा) जितनी पतित स्वतन्त्र भारत में हुई है, उतनी कभी और कहीं नहीं। वह दिन दूर नहीं जब 'दलित' और 'पिछड़े' स्वयं मिथ्या-राजनीति का परित्याग करने लगेंगे? 'दलितवाद' से क्षुब्ध केरल के ईसाई हिन्दू-पुनरागमन की बात कर रहे हैं (द इंडियन एक्स्प्रेस 24 नवम्बर, 1999) गोवा के सवर्ण-ईसाई भी हिन्दू बनने की बात करने लगे हैं।

अब सिन्धु घाटी सभ्यता सिन्धु-सभ्यता की आड़ (ईसा पूर्व 3000 या अधिक तक) और दलित-सन्दर्भ की इतिहास-विकृतकारी नव-कल्याण पर आते हैं। प्रथमतः 1922 ई. में किए गए इस महान् उत्खनन के प्रेरक मनीषी राखालदास वन्धोपाध्याय (बनर्जी) को यथासमय जब सर जॉन मार्शल का विभाजक-राजनीति से प्रेरित आर्य-आर्य बिन्दु स्पष्ट हुआ तब वे इससे हट गए। उत्तदायी स्तर के इतिहासकार डॉ. ईवश्वरीप्रसाद के अनुसार, सिन्धु घाटी सभ्यता के विनाश का कारण 'ऐतिहासिक अनुमान' (हिस्टॉरिकल स्पेकुलेशन) मात्र हो सकता हैः सिन्धु की बाढ़ या इसका बहाव-बदल जिससे भूमि अनुर्वर हो गई (तथा लोगों को हटना पड़ा हो), सिन्ध क्षेत्र में ईसा पूर्व द्वितीय सहस्त्राब्दि में वर्षा-यूनता जिसके परिणामस्वरूप मरुपरिवर्तन हुआ अथवा फिर आर्य-आक्रमण या भारत के किसी क़बीले का आक्रमण।[2] लौह एवं अश्व की अप्राप्ति, मत्स्य-भक्षण, नागर-जीवन इत्यादि सिन्धु घाटी सभ्यता को अनार्य घोषित करते हैं। कपाल वर्तमान पंजाबियों वाले ही हैं। इस सभ्यता का क्षेत्र मोहनजोदड़ो या मोहेंजोदड़ो (सिन्ध का लटकाना जनपद) तथा हड़प्पा (पंजाब का मॉंटगोभरी या मिन्टगुमरी जनपद) मात्र में केन्द्रित न था क्योंकि अमरी (कराची जनपद) में प्राचीनतर अवशेष प्राप्त हुए हैं (सब पाकिस्तान में) तथा हरियाणा के अनेक क्षेत्रों तक इसका प्रस्तार उत्खनित हो चुका है। गुजरात के अनेक स्थल भी प्रस्तार-सूचक हैं। गंगा-तटवर्ती स्थानों में भी प्रमाण प्राप्त हुए हैं। 'सिन्धु घाटी सभ्यता' नाम प्रचलित होते हुए भी तत्वतः कालातीत हो चुका है तथा इसे 'उत्तर-पश्चिम भारत सभ्यता' कहा जाना चाहिए।

मोहनजोदड़ो-हड़प्पा के अभिलेख अभी सार्वभौम रूप से पढ़े नहीं जा सके, यद्यपि डॉ. फतेहसिंह, डॉ. एस. आर. राव[3] प्रभृति विद्वानों ने इनकी भाषा संस्कृत मानी है था डॉ. श्रीनिवास रित्ती[4] ने ऋग्वैदिक हड़प्पा-गत जैन के एकात्मक बिन्दुओं का प्रतिपादन

---

1. धर्मपरिवर्तन नाम रॉबर्ट राजनैतिक लाभार्थ नहीं चलाया; संयोगात् दामाद का यही नाम निकला!
2. हिस्ट्री ऑफ इंडिया, पृष्ठ 14-15
3. रीथिकिंग ऑन रिग्वेदिक, इंडस वेली एरा (द हिन्दुस्तान टाइम्स, 16 अक्टूबर, 1986, पृष्ठ 7)
4. वही।

किया है। जर्मन विद्वान् कुर्त शिल्डमान ने भी इस लिपि को थोड़ा-बहुत पढ़ा है तथा विख्यात वृषभमुद्रा के आरम्भिक Ʊ चिह्न को 'सर्वश्रेष्ठ' बतलाया है। यह चिह्न रामानन्दी तिलक से मिलता है। सिन्धु घाटी सभ्यता सुमेरु (सुमेर, सुमेरिया, मेसोपोटामिया, इराक़ या आर्यक) तथा मिस्र (नील शब्द भारतीय है जिस पर भारत में प्राचीन काल से अद्यावधि नामकरण प्रचलित है) की सभ्यताओं से मिलती-जुलती हैः मुद्राएँ, वृषभपूजा, नदीपूजा, शब्दसाक्ष्य इत्यादि प्रमाण हैं। यही तीन विश्व की आदि-सभ्यताएँ हैं। आर्यायन (ईरान–शाह रज़ा पहलवी तक 'आर्य-मेहर' या आर्य-मिहिर या आर्य-सूर्य रहे) और चीन तक की सभ्यताएँ यत्किंचित् परवर्ती हैं। मिस्र से क्रीट और क्रीट से यूनान (होमर-कृत इलियॅड एवं ओडिसी महाकाव्य-द्वय में अकाइया या अशाइया, परवर्ती ग्रीस) गई सभ्यता तथा यूनान से इटली (शाश्वत-नगर रॉमा या रोम प्रतीक बन गया) गई सभ्यताएँ तो प्रायः तीन हजार साल पुरानी ही हैं। अतः इधर लगभग बीस वर्षों के अध्ययन, अटन, उत्खनन-प्राप्त अवशेषों के अवलोकन, मनन इत्यादि के आधार पर, मेरी मान्यता है क सिन्धु घाटी सभ्यता को सीमित दृष्टि से देखना तथा द्रविड़ कहना ग़लत है और 'दलित'-सन्दर्भ शतशः निराधार। यद्यपि सिन्धु घाटी सभ्यता को वैदिक सभ्यता में अन्तर्भूत करना विवादास्पद है (जैसाकि कुछ देशी-विदेशी विद्वानों ने किया है), तथापि यह उसे द्रविड़-बद्ध करने से कहीं अधिक तर्कसंगत हैः मोहेंजोदडो की वृषभपूजा, योगी, देवदासी (नर्तकी), स्नानमहत्व तथा हड़प्पा का स्वस्तिक-चिह्न कम-से-कम पाँच हजार वर्षों की सांस्कृतिक अनवरतता के प्रतीक हैं। ऋग्वेद में सिन्धु का बारंबार उल्लेख, सिन्धुक्षित, जैसे नामकरण, वृषभपूजा इत्यादि दोनों के अभिन्न तक सिद्ध कर सकते हैं।

मोहेंजोदड़ो ('मुर्दों का टीला'–इस शीर्षक का एकत्वरित-उपन्यास कॉम्युनिस्ट लेखक डॉ. रागेय राघव ने लिख मारा था) के सात स्तर मिले हैं जिनमें प्रथम जलमग्न है (जो आक्रमण-ध्वांत न होने का अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत करता है) तथा अन्तिम कुशाणकाल तक का सूचक अर्थात् तीन हजार सालों का 'इतिहास' विवृत करना (इससे आक्रान्ताओं द्वारा 'सर्वनाश' का खंडन हो जाता है)। हड़प्पा (हड़ या बाढ़ से संबद्ध) नाम ही बाढ़ से विनाश की सूचना देता है। कहीं भी आक्रमण ध्वांतता के प्रमाण नहीं मिले। सबसे बड़ा बिन्दु हैः पंजाब, सिन्ध, हरियाणा में द्रविड़-प्रधानता कैसी? नृवंश ही द्रविड़वाद को नकारता है। वैसे, 'द्रविड़' शब्द का अर्थ है, द्रव्यवान् या धनी या व्यापारी। आर्य शब्द का अर्थ है, श्रेष्ठ। आर्य-द्रविड़ जातिसूचक कम है, विशेषण अधिक। अतः 'विभाजक नीति' के अनुकरण से 'दलित'-वाद को मूढ़मोहिनी विद्या का प्रतीक बनाना अशोभनीय भी है, अलाभकर भी। आज का भारतीय समाज न आर्य है, न द्रविड़, न आदिद्रविड़ (वानर-भल्ल इत्यादि जातियों का), न गृद्ध, न शबर, न कोल, न भील, न मुंडा, न संथाल, न डाफला, न मिज़ो, न नाग (अंग्रेज़ी में 'नाग'), न खासी, न जयंतिया, न कूकी, न शान और न किन्नर-नाग[1]पक्ष-गंधर्व इत्यादि से ईरानी-यूनानी-सिथियन-कुशाण (कुषाण) हूण इत्यादि अपितु सबका समाहार है। न पेरियार द्रविड़ लगते थे, न एम. जी. आर. रामचन्द्र! न अम्बेडकर द्रविड़ लगते थे न कांशीराम द्रविड़ लगते हैं। इनमें से कोई आदिवासी न था।

'आर्य'-विषयक परकीयतावादी राजनीति

'आर्य' शब्द से द्वेष क्यों? आर्य शब्द ऋ धातु से बना है, जिसका अर्थ है, गतिशील। प्राचीनकाल में 'चरवाहा' गतिशील थाः कृष्ण, ईसा, मोहम्मद चरवाहे थे! अधुनातनकाल में ब्रह्माण्ड-अन्वेषी गतिशील है! भारत के आर्यों ने विश्व को अभियान (आर्यवर्त, आर्यक, आर्ययन, आर्यलैण्ड, हिमालय, नील, रामदान, अहराम, रॉमा इत्यादि) का जो मन्त्र दिया, अंकगणित की जो विज्ञानों की रानी विद्या दी, 'भूमण्डल' का जो सिद्धान्त दिया, वही यूनान-इटली से होता ब्रिटेन-फ्रांस-जर्मनी-अमेरिका-रूस इत्यादि तक पहुँचा और आज, चन्द्रमा पर उतरने के अनन्तर, अन्यान्य ग्रहों के रहस्य खोल रहा है। पश्चिम के गोरे भी आर्य हैं (अपने-अपने देशों के आदिवासियों से मिलकर)। नरपिशाच हिटलर तक को स्वस्तिक-चिह्न प्रिय था और आर्य होने का गर्व! अतः 'आर्य' को गाली देने से क्या लाभ हो सकता है? उस पर कौन ध्यान देगा? उसकी गज-गति पर ग्रामसिंह 'गर्जन' का क्या प्रभाव पड़ेगा? अतः 'दलित'-साहित्य हेतु मोहेंजोदड़ो के मुर्दों और हड़प्पा के हाड़ों से निकलकर शोषणहीन समता का प्रतिपादन करना ही लाभकर सिद्ध होगा।

---

1. महान् नाम जाति का महत्त्व आज भी अनन्तनाग (नाग जातियों के राजा अनन्त द्वारा स्थापित), नागौर, नागदा, नागपुर, नागदेश (नागालैण्ड–ईसाई होने के कारण उद्गम नकारना 'स्वाभाविक') इत्यादि तक व्याप्त है। नागर, नगाइच, नागा, नागचौधरी, नागपाल इत्यादि इसी के प्रतीक हैं।

'विदेशी' आर्य-आक्रान्ताओं की चर्चा जोरों पर है। पहले तो ''आर्य जाति है या विशेषण?'' का विवाद; फिर, किसी ग्रन्थ में आर्यों का विदेशी होना नहीं लिखाः ऋग्वेद से रामचरितमानस तक, अतः इस 'स्थापना' की निराधारता पर विवाद; फिर, ''आर्य विदेशी थे तो आए कहाँ से?'' महाविवाद! सर विलियम जोन्स से मैक्स मुलर तक प्रतिपातिद एशिया-माइनर या तुर्की सौ संप्रति 'प्रचलित' मध्य एशिया से? दयानन्द-प्रतिपादित सृष्टि-उद्‌गम त्रिवर्त या तिब्बत से शिवालिक पर्वतमालाओं तक से जहाँ इस बिन्दु का अध्ययन एवं शोध करने विश्वभर के विद्वान् एवं वैज्ञानिक आते रहते हैं? तिलक-प्रतिपादित उत्तरी-ध्रुव से? उत्साही कॉम्युनिस्ट राहुल सांकृत्यायन प्रतिपादित रूस से? डॉ. ईश्वरीप्रसाद द्वारा अनेक अनुमानित क्षेत्रों में से एक मध्य-यूरोप या डैन्यूब के मैदानों से?[1] तब, प्रश्न उठता है, ''कब आए?'' अतः, सर विलियम जोन्स इत्यादि के आर्य-आक्रान्तावाद तथा सर जॉन मार्शल के सिन्धु-द्रविड़वाद के विभाजन बिन्दुओं को उछालने से 'दलित'-साहित्य का कोई लाभ नहीं हो सकता; उल्टे, सी. आई. ए. और क्रिश्चियन मिशनरीज़ ही नहीं प्रत्युत आई. एस. आई. से सम्बन्ध की धारणा को बल मिलेगा।

अब सवाल उठता है कि ये बर्बर-असभ्य इस देश (नाम?) को गुलाम बनाने वाले नरपशु आर्य आए कब? अधिकतम प्राचीन 5000 ई. पू. तक मानते हैं, अधिकतम परवर्तीवादी 1500 ई. पू. किन्तु 2500 से 2000 ईसा-पूर्व का काल 'सर्वस्वीकारणीय है'![2] मैकॉलेवादियों से साम्यवादियों तक ने परप्रेरणा से विविध लाभ तक से उद्वेलित-विह्वल होकर समय 1500 से 1000 ईसा-पूर्व तक खींचा है, किन्तु समुद्रतल की द्वारिका (1500 ई. पू. नए शोध अधिक प्राचीन प्रमाणित करते हैं) तथा कृष्ण-काल (3000 ई. पू.) की मान्यताएँ इस खींचा-खाँची के अनुरूप नहीं बैठ पा रहीं। गोल्डस्टिक हफ, एच. एच. विल्सन, डब्ल्यू. एच. विल्सन, डब्ल्यू. डी. व्हिट्‌नी (व्हिट्‌ने), वितंरनित्ज (विंटरनिज) इत्यादि 4500 ई. पू. मानते हैं[3], जेकोबी इत्यादि 3500 ई. पू.। वस्तुतः आर्यावर्त-आर्यक-आर्ययन का सम्मिलित क्षेत्र मूल आर्य क्षेत्र था जिससे वे पूर्वी एवं दक्षिणी भारत में फैले; उधर, तुर्की तथा यूरोप में (आर्यलैण्ड का अर्थ ही आर्यदेश है)। राधाकुमुद मुखर्जी, जयशंकर प्रसाद, डैविड फ्रॉली (फ़ॉले) इत्यादि आर्यों को भारत का मूल निवासी मानते हैं। अवेस्ता के अनुवादक स्पीज़ल ने संस्कृत को भारो-जर्मनिक भाषाओं की जननी माना है।

घातक प्रतिक्रियावाद

अब प्रश्न उठता है कि क्या सात से तीन हज़ार पूर्व तक के गोरखधन्धे में फँसे और इतने पर भी सशक्त 'आर्य भी मूलतः भारतीय' के विवाद में उलझे प्रश्नों से 'दलित'-साहित्य को क्या लाभ होगा? इस विचारधारा को गोरों ने न्यस्त-स्वार्थवश उठाया और साम्प्रदायिक मुस्लिम तत्वों ने उछाला; परकीयतावादी तत्वों ने इसे 'बौद्धिक' रंगत में ढाला। यदि आर्य विदेशी थे, तो भी प्रश्न हैंः सारे अमेरिका-महाद्वीपद्वय, ऑस्ट्रेलिया-न्यूजीलैण्ड महाद्वीप, अफ्रीका की नीग्रो जनता के साथ कहीं प्रायः नृवंशनाश तो कहीं ईसाईकरण के बावजूद क्या गोरों ने आदिवासियों के साथ मानवीय व्यवहार किया है? क्या इस्लामी देशों में आदिवासियों का कुछ भी शेष है? क्या साम्यवादी देशों में आदिवासियों और अल्पसंख्यकों को न्याय प्राप्त हुआ है? आर्यों ने तो आदिवासियों के धर्म को आत्मसात् किया—इतना, कि आज का हिन्दूधर्म वस्तुतः आदिवासी धर्म है, द्रविड़ धर्म है (वैदिकधर्म नहीं जैसा), चिरकाल से उनमें महापुरुष उत्पन्न होते आए हैं जिनका आदर सभी ने किया है, 'स्वतन्त्र' भारत में तो आदिवासी इत्यादि सारे 'दलित' सर्वोच्च पदों तक ही नहीं पहुँचे अपितु उन्हें लोकतन्त्र की मूल सपना-भावना तक की उपेक्षा कर विशेषाधिकार भी प्रदान किए गए हैं। 'बहुजन समाज' के खोखले दावे तो निर्वाचन ही नकारते आएँ हैं। फिर, क्या 'मनुवादियों' को निष्कासित कर दिया जाएगाः कहाँ? क्या उन-सब की हत्या कर दी जाएगीः कैसे? दुसाध जी ने 'सृष्टिकर्त्ता' मनु को मनुस्मृतिकार मनु माना है, जो ग़लत है। वास्तव में, मनु तीन हुए हैंः 'स्वयंभू' और 'मानव' सृष्टिकर्त्ता माने जानेवाले मनु जो सम्भवतः अयोध्या के राजा थे, ऋग्वेद के ऋषि मनु, 'स्मृतिकार' मनु जो भाषिक एवं रचनाबिन्दु परक दृष्टियों से गुप्तकाल (वस्तुतः परवर्ती गुप्तकाल) के लगते हैं। जिनका अधिकांश ग्रन्थ समतावादी है! उनकी स्मृति विषमता एवं अन्याय पर आधृत नहीं है, यद्यपि युगबन्धनग्रस्त अवश्य है, ये अंश प्रक्षिप्त भी हो सकते हैं। अतः अतीत का रोना छोड़कर, असंगत इतिहास विडम्बनाओं से बचकर, भेदवादी राजनीति का आखेट न बनकर, विशुद्ध संवेदन, समता एवं मानववाद पर

---

[1] भारतवर्ष का इतिहास, पृष्ठ 14

[2] हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया (डॉ. ईश्वरप्रसाद), पृष्ठ 19

[3] द हिन्दुस्तान टाइम्स, 06 नवम्बर, 1999, पृष्ठ 13 में के एस. वस्मिट का पत्र।

आधृत दलित-साहित्य (जो किसी-न-किसी रूप में नामदेव, रैदास, कबीर, नानक, तुलसी, भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, सनेही, मैथिलीशरण, सियारामशरण, रामचन्द्र शुक्ल 'सरस', प्रसाद, निराला, दिनकर, जैनेन्द्र, नागार्जुन, शत-शत आधुनिक रचनाकारों में उपलब्ध है) का प्रत्येक मानवतावादी व्यक्ति स्वागत करेगा। मुझसे बढ़कर दलितावादी कौन होगा? मैं अपने दलित अतिथियों के बर्तन माँजता हूँ(उनके हठ को सफल नहीं होने देताः ''अतिथि देवो भव'' सुनते ही वे हठ का हथियार डाल देती है), मेरी एक हरियाणा-मूलक बहू 'अनुसूचित'[1] जाति की है (मैंने कभी जाति नहीं पूछी)! क्या 'अनुसूचित' जातिगत भाई-बहन, आपस में ही सही, अन्तर्जातीय-विवाह करते हैं? क्या 'पिछड़ी' जातियों के भाई-बहन अनुसूचित जातियों से सम्बन्ध की स्थापना करते है? क्या ब्राह्मण अन्तरमहाद्वीपीय, अन्तर्राष्ट्रीय, अन्तर्राजातीय विवाह-सम्बन्धों में अग्रणी नहीं है? सच्चा 'दलित-साहित्यकार वह है जिसमें दलितों के व्यसन त्यागकर, स्त्रियों का आदर करे, बच्चों का ध्यान (स्वास्थयगत-शिक्षागत) रखकर, परिवार-नियोजन कर, स्वच्छन्दता को आस्था मानकर 'अग्रणी' बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाए; उनकी दयनीय दशा को उद्दीपन बनाकर उनके उत्कर्ष का पथ प्रशस्त किया जाए। उन कारणों की पड़ताल की जाए जिन्होंने दलित बनाए हैं; उनके उन्मूलन का प्रयास किया जाए। भारत जनसंख्या को देखते बेहद छोटा देश है; यहाँ भूमिसुधार से कुछ ठोस परिणाम न निकलेंगे। शहरों की ओर अन्धी-भगदड़ दलित समस्या को सर्वजातिगत अथवा सार्वभौम बना रही है। इन पर विचार किया जाए। राजनीति का खेल वास्तविक समस्या-समाधान नहीं करता; गद्दी पर बैठकर फस्सड़ सिद्ध होता है जैसा अनेक सन्दर्भों में हो चुका है।

विश्व के चारों प्रमुख (बहुसंख्यक) धर्मों में राजनैतिक धन-बल के कारण ईसाईयत और जिहाद और पेट्रोडॉलर के बल पर इस्लाम का फैलाव अधिक है किन्तु ये दोनों धन-बल-मदांध होकर आपस में भिड़ रहे हैं और भिड़ते रहेंगे; शेष में बौद्धधर्म व्यक्तिपूजामात्र (ईसाइयत में नामनिहाल ही सही प्रभु या पिता या ईश्वर विद्यमान है और इस्लाम में अल्लाह या रब या खुदा) में बद्ध होने के कारण क्षीण हो रहा है और ''हिन्दूधर्म ग़रीब की जोरू गाँव की भाभी बन चुका है :

लतमरुआ के रूप में हिंदू जग-कुख्यात।
उसके तलवे चाटता जिसकी खाता लात।।

आज का दलित-साहित्य

यदि दलित-साहित्य राजनीतिमूलक धन्धेबाज़ी से मुक्त रहकर मानवीय विषमता तथा अत्याचार का विरोध करता है, तो वह स्वागत ही नहीं अपितु आदर के योग्य भी है। डॉ. विद्यानिवास मिश्र तथा डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी जैसे वरिष्ठ विद्वानों ने भी इसको प्रोत्साहन दिया है और डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी द्वारा सम्पादित 'हिन्दी दलित-साहित्यः रचना और विचार'[2] एक माननीय ग्रन्थ डॉ. मिश्र का फलैपी-विचार फलॉपी-विचार न होकर सचमुच विचारणीय है।

इस समय देशी-विदेशी प्रेरणा से लेकर सहज-मानवीय संवेदन की प्रेरणा से उद्‌भूत जो 'उग्र' दलित साहित्य हिन्दी-अंग्रेज़ी में लिखा जा रहा है उसमें महात्मा फुले, पेरियार, राधास्वामी नायकर (नैकर), अम्बेडकर, डॉ. राममनोहर लोहिया इत्यादि को देवपिताओं का दर्जा प्राप्त है। नन्दकिशोर, डी. सी. अहीर, डॉ. नवल वियोगी, एच. एल. दुसाध इत्यादि प्रचंड लेखकों का असामान्य दायित्व उठा रहा हैं। बौद्धिकता और भावुकता दोनों से मुक्त स्वच्छन्द लेखन कितना तेज-तर्रार हो सकता है, यह देखना हो तो इन तथा दूसरे धड़े का 'सर्जन' संस्तुत होगा। प्रायः इस सारे सृजन में शूद्र-बन्धुओं ('पिछड़े एवं 'अनुसूचित' बन्धुओं) के प्राचीन निषाद, कोल, किरात वानर इत्यादि आदिवासी, सर्वज्ञात नन्दवंश, मौर्यवंश से अनेक मराठा-राजवंशों, जाट-वंशों, गूर्जर (गुजरात, गुजरानवाला, पाकिस्तान, पंजाब का गुजरात जनपद इत्यादि के गौरवशाली प्रतीक आज भी गौरवगाथा कहते हैं) वंशों, लोध-वंशों (जो मुसलमान हो गए उनमें बहलोल सिकन्दर इब्राहिम लोध या लोधी या लोदी सुल्तान बने और आज भी उमा भारती, कल्याणसिंह, साक्षी महाराज, इत्यादि मौजूद हैं: प्राचीन यौधेय से 1857 ई. की स्वातन्त्र्य सेनानी महारानी अवन्तीबाई तक प्रसरित गौरवनाथ), काशी के डोम-राजा, शत-शत-जातिगत अन्य छोटे-छोटे राजा-रानी का कोई उल्लेख नहीं होता जो आर्य-शोषण की कल्पनाओं को निराधार सिद्ध करते हैं। पिछले ढाई हज़ार

---

1. एक अन्य बहू पंजाब-मूलक खत्री है (सरीन)। यदि मेरी एकमात्र पुत्री अनुसूचित-जातिगत या अन्य का वरण चाहती तो मैं सहर्ष स्वीकार करताः एक ईश्वर, एक सृष्टि, एक मानव! दोहित्रवधु जैन है। पौत्रवधु पंजाबी खत्री।

2. अतिश प्रकाशन, एम. आई. जी. फ्लैट्स, जी-8 हरिनगर, नई दिल्ली-110064, 1996।

वर्षों के इतिहास में राष्ट्रीय दृष्टि से केवल शुंग-वंश तथा क्षेत्रीय दृष्टियों से सिन्ध के राजा दाहिर तथा पश्चिमोत्तर-शासक शाही-वंशीय हरपाल-आनन्दपाल के अतिरिक्त ब्राह्मणराज्य के दर्शन ही नहीं होतेः पर ब्राह्मण शोषक! या तो अज्ञान या विदेशी-प्रेरित पूर्वाग्रह या स्वार्थध-राजनीति ही ब्राह्मण को शोषक प्रपीड़क कह सकता है। इस समय में अधिकांश राज्यों का शासन अब्राह्मणों के हाथों में है! तब हज़ारों सालों के शोषण-प्रपीड़न-दासत्व की निराधार गाथा कैसी? मनुवाद कैसा? तमिलनाडु से कश्मीर तक शोषित-प्रपीड़ित-पलायित ब्राह्मण पर क्रूरता कैसी? कश्मीरी पंडितों से लेकर कांची के शंकराचार्य इत्यादि पर अत्याचार के बावजूद अत्याचारी कैसे? दलित-साहित्य को निराधारता से बचना चाहिए अन्यथा वह पोलटिकल-प्रोपेगेज मात्र बनकर चुक जाएगा।

'दलित साहित्य 1999' पुस्तक यह स्पष्ट करती है कि हिन्दी-साहित्येतिहास में उसका एक स्थान बन चुका है। इतिहास, विद्वता, आक्रमण, फूत्कार, चीत्कार इत्यादि को कृत्रिम समझकर छोड़ दिया जाए, तो भी विविधविधागत सृजन-दृष्टि से दलित-साहित्य एक सत्य बन चुका है। प्रायः सारे प्राचीन-अर्वाचीन साहित्य की गुणवत्ता, रसदृष्टि, कलादृष्टि बनती जा रही है, जिसे नकारना भी मनोवैज्ञानिक दुर्बलता ही होगी। उक्त पुस्तकों के सम्पादक जयप्रकाश कर्दम हैं; परामर्श-मंडल में श्री माताप्रसाद राजनीतिज्ञ, डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, डॉ. धर्मवीर एवं मोहनदास नैमिशराय के नाम अंकित हैं।

भारत के हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, जैन, बौद्ध, सब (थोड़े-से पारसियों और मुट्ठी भर यहूदियों को छोड़कर जो शत-प्रति-शत सम्पन्न-शिक्षित हैं) जातिवादी हैं। विवाह प्रतीक है। अतः नए घृणावाद का पैंडोरा का बकसा खोलने वाले यह तक नहीं जानते कि वे क्या कर रहे हैं, क्या लिख रहे हैं! तात्कालिक-क्षुद्रलाभ के लिए वे भारत, भारतीय संस्कृति एवं भारतीय साहित्य को नष्ट करने का भस्मासुरी-अभियान छेड़ रहे हैं। किन्तु उनमें अनेक अपेक्षाकृत-सन्तुलित भी लिखना जानते हैं। विविध प्रकार के कुछ काव्योदारण देखें :

1. आओ मिलकर दलित जन जगाएं!
सब को उन्नति का पथ हम दिखाएं!
वाल्मीकि हमारे हैं भाई,
सबके पीछे वही हैं दिखाई।
पासी, धोबी, खटिक, सब मिलाएं।।
आदिवासी जो थे वन में गाते,
विस्थापन कर उनको भगाते,
रोटी, कपड़ा न, आँसू बहाएं।।
सब दलित एकजुट यदि रहेंगे,
मिलकर अधिकार हित तब लड़ेंगे,
सबकी पूरी हों तब कामनाएं।
दलितजन को न आपस में बाँटो!
फूट करके अलग कुछ न छाँटो।
कोई हो न अलग सब मिलाएं,
अपने बच्चों को हम सब पढ़ाएं।

(माताप्रसाद की एक सन्तुलित एवं प्रशस्य रचना)

2. तुमने कहा
दुल्हन की पालकी हवेली भेजो
मैंने सिर झुकाकर कहना मान लिया
आज तुम्हारी बहिन-बेटी
मुझसे प्यार करने लगी है
और दाम्पत्य-सूत्र में आबद्ध मेरे साथ रहने लगी है

(पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की नवपरिवर्तनवादी रचना)

3. जीना महज़ साँस लेना तो नहीं है
रोना और हँसना ही नहीं
वह जिहाद हो गया है
और खामोशी का लावा
बिखरेगा तो बहुत कुछ
जल जाएगा
तुम्हारे तेज़ तेवर
उच्च कुलीनता की ऋषि-संतान के मुखौटे

(पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी की रिक्ताक्रोश-दुर्बल रचना)

4. नाम पै मंदिर और मस्जिद
का खाते चंदा लोग मिले
छिप-छिप कर बेईमानी का
करते धंधा लोग मिले
कुर्सीवाले, बँगलोंवाले,
खादीवाले लोग मिले
दहेज रोधक दस करोड़
की शादी वाले लोग मिले···

(श्योराजसिंह 'बेचैन' की फ़िल्मीगीत-प्रेरित रचना)

5. आज का एकलव्य
गुरुदक्षिणा में दिए
अँगूठे के बिना
शब्दों के तेज़ाबी तरकश
चढ़ाता है
जब अपने धनुषबाण में
तब तुम चीखते हो
कराहते हो
पड़े-पड़े
अपनी संस्कृति की मृत शैय्या पर···

(कुसुम वियोगी की रिक्त-वज्र सत्य-वियोगी रचना)

6. झोपड़ों में
भीतर-ही-भीतर
हलचल है
भूकम्प होगा
या
ज्वालामुखी फटेगा
मालूम नहीं
पर–
कुछ तो होगा
यह मालूम है।

सूरज
फिर तुम नहीं बना पाओगे
इन अति उत्साही झोपड़ों से
ये तुम्हारा स्पर्श पाकर,
तुमसे ही आग लेकर—
अपने भीतर की
आग बुझाएंगे
और प्रासादों को
अपने आगे
बौना ठहराएंगे।

(हेमलता महीश्वर की कलात्मक प्रतीक-सम्पन्न सुन्दर कविता)

किन्तु झोपड़ों-झुग्गियों या चालों-स्लमों में हिन्दू (ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-कायस्थ फर्वर्डिया तथा 'पिछड़े' 'अनुसूचित' अर्थात् बैकवर्डिआ सब) मुसलमान-ईसाई-बौद्ध (जैन-सिख-पारसी-यहूदी नहीं, क्योंकि इनमें दरिद्र नहीं मिलते जिसका एक कारण सम्पन्नता है तो दूसरा कारण एकता है) सब मिलते हैं—तो क्या यह 'शुद्ध' दलित-काव्य में समाहित किए जाने योग्य है?

दलित साहित्य

मैं दलित-साहित्य का स्वागत करता हूँ किन्तु उसमें व्याप्त उत्लंग-जातिवाद का समर्थन नहीं कर सकता। मानव-एकता पर प्रहार करने वाला साहित्य कभी विश्व-सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता। नामदेव, रैदास, कबीर, तुलसी, प्रेमचन्द, निराला, सनेही, सियारामशरण, रामचन्द्र शुक्ल 'सरस', हीरा डोम इत्यादि दलित-साहित्य के पुरोधा हैं; इसे अस्वीकार करना अनैतिहासिक एवं मिथ्या है। इनका साहित्य कालजयी है। अतिवादी दलित-साहित्य देशी-विदेशी न्यस्त-स्वार्थों एवं जातिवादी-सम्प्रदायवादी-राजनीति से अत्यधिक प्रेरित होने के कारण वस्तुतः प्रभावी नहीं हो सकता। मानव-संवदेनवादी दलित-साहित्य ही प्रभावी हो पाएगा (जैसाकि हो चुका है)। दलित-साहित्य को तीन वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है :

1. संवेदमूलक दलित-साहित्य, जो नामदेव इत्यादि सन्तों तथा प्रेमचन्द इत्यादि सुधारवादियों में प्राप्त होता है।
2. साम्यवादी दलित-साहित्य जो शत-शत प्रगतिवादियों में प्राप्त होता है।
3. नवबौद्ध-रचित दलित-साहित्य में जिसके कारण पृथक् अभिधान बना है।

इनमें प्रथम चिरंतन है क्योंकि प्रवृत्ति मूलक है, द्वितीय साम्यवाद के विघटन के कारण दुर्बल हुआ है किन्तु चलेगा क्योंकि असमानता का विरोध सर्वथा मानवीय होता है, तीसरा अभी पनप ही रहा है। विकसित दलित-साहित्य विजातीयता-प्रेरित सांप्रदायिकता (हिन्दूविरोध) तथा न्यस्तस्वार्थ-प्रेरित जातिवाद (ब्राह्मण विरोध) हो ऊपर उठकर समतामूलक क्रान्ति का पथ प्रशस्त कर सकता है। उसमें विश्व के संत्रस्त अलसंख्यकों, अहमदियों, वहाबियों, शियाओं, आदिवासी-ईसाइयों इत्यादि के प्रति संवेदना भी व्यक्त होगी।

दलित-साहित्य : इतिहास के दर्पण में

ऐतिहासिक दृष्टि से दलित-साहित्य को दो कालों में विभक्त किया जा सकता है :

1. पूर्वबौद्धिक काल (1300-1800 ई.)
2. बौद्धिककाल (1800 ई. से)

(क) आदर्शवादी युग, (ख) स्वच्छन्दतावादी-युग (ग) यथार्थवादी-युग

मार्क्सवादी घृणावादी

पूर्वबौद्धिककालीन दलित-साहित्य आध्यात्मिक एवं सामाजिक धरातल पर अधिष्ठित रहा, आदर्शवाद-युगीन मानवीय संवेदन पर बिन्दु स्वच्छन्दतावाद-युगीन शोषण-प्रपीड़न का स्पर्श करने लगा तथा यथार्थवाद-युगीन कहीं मानवीय संवेदन तो कहीं सामाजिक तो अधिकतर विदेशी-प्रेरित हिन्दू-विखंडनवाद एवं नकारात्मक ब्राह्मणनिन्दावाद (मनुवाद) से वित्तेषणा एवं लोकेषणा का माध्यम न गया, जिससे इसके सार्वभौम रूप की क्षति हुई। संप्रति दलित-साहित्य से अभिप्राय है, वह साहित्य जो विशेषतः 'अनुसूचित'-जातियों[1] तथा सामान्यतः 'पिछड़ी'-जातियों[2] के शोषण-प्रपीड़न, उनके पिछड़ेपन, उनकी अशिक्षा इत्यादि के प्रति संवेदन अथवा आक्रोश अथवा विद्रोह को व्यक्त करता हो।

ब्राह्मण विरोध पूर्व वैदिककाल में पुरूरवा और नहुष, उत्तर वैदिककाल में सहस्रार्जुन (सहस्रबाहु) और स्वयं ब्राह्मण रावण, परवर्ती कालों में बुद्ध और महावीर, अनन्तर कबीर और नानक, आधुनिकाल में पेरियार और अम्बेडकर तथा अब अधिकांश 'दलित'-साहित्य करते आए हैं : लगभग हज़ारों साल का इतिहास है! कहीं हीनतावाद नामदेव, कबीर, प्रेमचन्द तो कहीं अहंवाद (पुरुरवा, नहुष, रावण) तो कहीं जातिवाद (बुद्ध, महावीर) तो कहीं घृणावाद (पेरियार अन्नादोरै) के कारण ब्राह्मणनिन्दा एक रूढ़ि बन गई है। ब्राह्मणों ने शाहूजी और अम्बेडकर की सहायता की, जगजीवनराम को स्फुरित किया; इन सत्यों की अवहेलना की जाती है। हीनभाव-आखेट यहूदी भी निन्दा-रूढ़ि के प्रतीक बन गए हैं। "वैदोऽखिलोधर्ममूलग्" (मनु) के सत्य के कारण भी परतर्वी अहंवादी धर्म मजहब ब्राह्मण-आलोचक रहे अन्यथा उनकी छद्म-अस्मिता 'सत्य' न बन जाती। सभी मजहबों में यही यहूदियों के साथ घटित हुआ।

पूर्वबौद्धिककालीन दलित-साहित्य

पूर्वबौद्धिककालीन दलित-साहित्य घृणा पर नहीं अपितु प्रेम पर आरूढ़ समता का सहज प्रतिपादक होने के कारण प्रभावी है, प्रशस्य भी। उसकी कुंठा एवं हीनता बस आई-गई है जो घृणा नहीं उपजाती। अलग-अलग रंगतों के उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. सभै घटु रामु बौले, राम बिना को बोलै रे!
एकल माटी कुंजर-चींटी भाजन है बहु जाता रे…
प्रणवै नगमा, गए निहकामा, को ठाकुर को दासा रे।।

2. पांडे! तुमरी गाइत्री लोधे का खेतु खाती थी।
लै करि ठेगा टगरी तोरी, लाँगत-लाँगत जाती थी।।
पंडे! तुमरा महादेउ घउले बलद चड़िया आवतु देखिआ था।
मोदी के घर खाणा पाका, वाका लड़का मारिआ था।।
पांडे! तुमरा रामचंदु सो भी आवतु देखिआ था।
रावन संती सरवर होई घर की जोइ गवाइ थी।।
(नामदेव)

3. बरन-अवरन, रंक नहीं, ईसुरु-बासु जानिए जगु सोइ।।
ब्रह्मन, वैस, सूद अरु खत्रीय?[3], डोम, चंडाल, मलेछ[4] मन सोइ।
होइ पुनीत भगवंत भजन ते, आपु तारि, तारे कुल दोइ।।

4. रे चित! चेति चेति अचेत, काहे न बालमीकहि देख।
किस जाति ते किए पदहि अमरिओ रामभगति बिसेख।।
सुआनसत्रु[5] अजानु सभ ते क्रिसन लावै हेतु।।

---

[1] गाँधीवादी शब्दावली में हरिजनों या अस्पृश्यों या अछूतों।

[2] स्पर्श किन्तु शूद्र-वर्ग में माने जानेवालों।

[3] क्षत्रिय।

[4] म्लेच्छ, मुसलमान।

[5] श्वानशत्रु या श्वानभक्षी (श्वपच ऋषि)।

5. मेरी जाति कुट बाँढला ढोर ढोवंता नितहि वारानसी आसपास।
अब बिप्र परधान तिहि करहि डंडउति तेरे नाम सरणाद् रविदासु दासा।।
6. मेरी जाति कमीनी, पाँति कमीनी, ओछा जनमु हमारा।
तुम सरनागति राजा रामचन्द, कहि रविदास चमारा।।
7. जाकै ईदि-बकरीदि कुल, गऊ रे बधु करहि, मनिअहि सेख सहीद पीरा।
जाकै बाप वैसी करी[1], पूत ऐसी सरी, तिहू रे लोक परसिध कबीरा।।

(रैदास)

8. एकै पवन, एक ही पानी, एक जोति संसारा।
एक ही खाक गढ़े सब भाँडे एक ही सिरजनहारा।।
9. तू बाम्हन मैं कासी का जुलहा, बूझौ मोर गियाना।
तैं सब माँगे भूपति राजा, मोरे राम धियाना।।
10. है हरिभजन के परमान।
नीच पावै ऊँच पदवी, बाजते नीसान।।
11. जाति न पूछौ साध की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान।

(कबीर)

12. तुलसी भगत सुपत्त भलो, भजै रैनि-दिन राम।
ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि का नाम।।
अति ऊँचे भूधरनि पर भुजमन के अस्थान।
तुलसी अति नीचे सुखद ऊख, अन्न अरु पान।।
13. मेरे जाति-पाँति न चाहौं काहू की जाति-पाँति।
14. तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार।

(तुलसी)

मध्यकालीन समतावाद के प्रेरक एवं प्रतीक राम रहे हैं, क्योंकि वे ही निषाद-काल-किरात-शबर-गृद्ध-वानर-भल्ल-निशाचर इत्यादि के गले लगाने वाले आसेतुहिमाचल भारतीय राष्ट्र के निर्माता थे और बौद्ध-देशों की रामायणों, मुस्लिम देशों की रामायणों, पेरू-अर्जेन्टीना-मेक्सिको की रामकथा इत्यादि के कारण आज भी सर्वोपरि विश्वमानव हैं। दशरथ-जातक के कारण वे बौद्धों के हैं, 'पउम-चरिउ' (पद्मचरित : प्राकृत में विमल सूरि और अपभ्रंश या पुरानी-हिन्दी में स्वयंभू कृत) के कारण जैनों, विचित्र-नाटक (गुरु गोविन्दसिंह) के कारण सिखों से संपृक्त राम ईसा के एक पूर्वज के नाम राम तथा रॉमा (रोम—सेटा पहाड़ी, अगस्त्य पर नामकरण, रावाना नगर, वेटिकन-संग्रहालय में शिव-लिंग : इटली सचमुच यूरोप का भारत है) इत्यादि के कारण ईसाइयों के भी हैं, रामदान (रमज़ान), अहराम, रामथा, रामअल्लाह रामादि इत्यादि के कारण मुसलमानों के भी अन्य किसी के जीवन में गुह-केवट-जटायु-शबरी-हनुमान्-सुग्रीव-विभीषण-प्रकरण कहाँ? दलितोत्थान में राम की समता नहीं। राम ही भारत के प्रतीक थे और हैंः साहित्य, तीर्थ, पर्व साक्षी हैं! अतः नव-सांप्रदायिक तत्त्वों ने हिन्दूघात हेतु राम का अवमूल्यन और बुद्ध का उत्थापन अपनी राजनीति का प्रमुख अंग बना लिया। भारत के क्लीवकरण हेतु तिलक पर गाँधी को वरीयता इसी राजनीति का अंग थी। परिभाषा? विभाजन, सांप्रदाकियता-विभीषिका, जातिवाद-विषव्याप्ति। राम को प्रक्षिप्त शंबूक-कथा से जोड़ना जितना अनैतिहासिक है, उतना ही विर्गहणीय। वाल्मीकि, रैदास, कबीर, कमाल, नानक, श्रीचन्द, लखमीचन्द, रहीम इत्यादि ने राम में अगाध रुचि दिखाई है। मध्यकाल के सन्तों ने शंबूककथा का स्पर्श भी नहीं किया।

---

[1] कबीर का कुल मुसलमानों कथा, उनके पिता मुसलमान थे। विधता-ब्राह्मणी रामानन्द-आशीर्वादजन्मा-कथा ईसा की प्रभुपुत्र-कथा की प्रेरणा से कल्पित की गई है।

तुलसी के द्वादश ग्रन्थों में मानस के अतिरिक्त किसी पर ब्राह्मणवाद का आरोप नहीं लगाया जा सकता। वैराग्य-संदीपिनी और कवितावली में वे जातिवाद-विरोधी हैं। पहले तो, मानस के शूद्र-नारी-विरोधी अंश प्रक्षिप्त भी माने जा सकते हैं क्योंकि तुलसी के हाथ की कोई प्रति उपलब्ध नहीं हुई है (डॉ. रामविलास शर्मा ने ऐसा माना भी है); दूसरे, शूद्रनिन्दा ब्राह्मणनिन्दा की प्रतिक्रिया भी मानी जा सकती है। एक बुराई को धन्य, दूसरी बुराई को धिक्कार यह मानवीय है, न तर्कसंगत और नारीनिन्दा के व्यापक युग-रोग में तुलसी कबीर का पासंग भी नहीं हैं!

और, सबसे बड़ी बात यह है कि हम कब तक गुड़े मुर्दे उखाड़ते रहेंगे? रामनिन्दा, बुद्धप्रशंसा, कबीर-प्रशंसा, तुलसी-निन्दा, गाँधी-निन्दा, अम्बेडकर-प्रशंसा, ब्राह्मणों को गरियाना, 'मनुवाद' की डफली पीटते चले जाना, ऐसा ही यह या वह करना न दलितोत्थान कर सकता है, न दलित-साहित्य को महान् ही बना सकता है। हमें दलितों की अंतरात्मा को झकझोरना होगाः नारी-जागृति, संतति-शिक्षा, परिवार-नियोजन, व्यसन-नियन्त्रण इत्यादि के बिना दलितों का उत्थान सम्भव नहीं। दलित-साहित्य पर नवोत्थान का भारी दायित्व आन पड़ा है। महात्मा ज्योतिराव गोविन्दराव फुले (11 अप्रैल 1827—29 नवम्बर 1890) ने दलितोत्थान का मूल-मन्त्र शिक्षा को ही माना था। बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर ने शिक्षा, स्वच्छता इत्यादि पर ज़ोर दिया था। माताप्रसाद जैसे पूर्वाग्रहविहीन-कुंठाहीन-विकृतिहीन चिन्तक ऐसा साहित्य लिख भी रहे हैं। अब फूले, शाहू, नारायण गुरु, अम्बेडकर, महावीरप्रसाद, सिद्धेश्वर प्रसाद इत्यादि के कार्यों को आगे बढ़ाने का युग है, रस्सी को लेकर साँप-साँप चिल्लाने का नहीं। नई राजनीति भी इसी दिशा में जा रही है।

भारतीय इतिहास के लगभग छह हजार वर्षों में शूद्र ऋषि, मुनि, राजा, महाराजा, वीर, बलिदानी, योद्धा, कवि, सुधारक, सन्त नेता, प्रशासक इत्यादि की संख्या इतनी बड़ी है कि अत्याचार, अनाचार, दुराचार और विषमता को जातिगत नहीं माना जा सकता; ये सब समाज के व्यापक बिन्दु रहे हैं। मध्यकाल में तो शूद्र-सन्तों का बहुमत तक मिलता है तथा अन्यजातीय सन्तों ने भी जातिवाद का खंडन किया है जिनमें नानक, सूर, तुलसी भी समाविष्ट हैं। शूद्र-सन्तों ने जातिवाद का रोना नहीं रोया, आज की जैसी निरुपाय आरक्षण-भिक्षा नहीं माँगी, थोथी धमकियाँ नहीं दीं प्रत्युत महानता या गुण या गौरव के सार्वभौम बिन्दुओं के आधार पर जातिवाद की व्यर्थता सिद्ध की है।

> नामदेव, कबीर, तिलोचन, सधना सेन तरै।
> कहउ रविदास सुनहु रे संभव! जिउ ते सबहि सरै।।

आदर्शवादी युग का दलित-साहित्य

मैं अस्पृश्यता को हत्या या बलात्कार से भी बड़ा अपराध मानता हूँ, क्योंकि ये वैयक्तिक होते हैं तथा अस्पृश्यता सामाजिक (वस्तुतः मानवीय) तथा इसके लिए मृत्युदंड मात्र को उपयुक्त समझता हूँ। किन्तु यह समाज-कुष्ठ तभी मिटेगी जब 'अनुसूचित' भाई-बहन स्वच्छता एवं शिक्षा में आगे बढ़ेंगे। बुद्ध के समता-उपदेश व्यर्थ गए, रैदास इत्यादि सन्तों का शूद्र-व्यक्तित्व के उत्थान या तप की प्रेरणा पर्याप्त सफल रही—लगातार 'अनुसूचित' और 'पिछड़े' लोग सन्त-कवि इत्यादि होते रहे, नारायण गुरु इत्यादि का सक्रिय-सुधारवाद अधिक सफल रहा तथा फुले, शाहूजी, अछूतानन्द, अम्बेडकर इत्यादि की शिक्षण एवं संस्थागत सुधारवाद ने तो अस्पृश्यता-उन्मूलन में भारी योगदान किया। इस दृष्टि से सार्वभौम सामाजिक नेता गाँधी का कार्य नकारना कृतघ्नता भी है, अनैतिहासिकता भी। बुद्ध, रैदास, नारायण गुरु, फुले, शाहुजी, गाँधी, जयकर, अम्बेडकर, जगजीवनराम इत्यादि भारत के समता-प्रतिष्ठापन के आदणीय नेता हैं। किन्तु आदिवासी एवं शूद्र को राष्ट्र में समाहित करने वाले सर्वेपरि नेता राम ही हैं। कृष्ण का योगदान भी निर्णायक रहा है। संप्रति अस्पृश्यता समाप्तप्राय है और 'पिछड़े' लोग तो केवल जातिवादी राजनैतिक लाभ मात्र उठा रहे हैं। अतः दलित-साहित्य के आयाम व्यापक करने होंगे, इतिहास को विकृत करने से बचाना होगा तथा सम्पूर्ण-समानता हेतु संघर्ष जारी रखना होगा।

संक्रान्तिकालीन साहित्य में (800-1300 ई.) में सिद्धों में दलित-संवेदन प्राप्त होता है किन्तु उन्होंने एतद्विषयक दृष्टिकोणबद्ध रचनाएँ नहीं कीं। पुनरुत्थानकाल (1300-1600 ई.) में दलितोत्थान काल-प्रक्रियाा का एक अभूतपूर्व अंग था जो प्रभाव में "भूतो न भविष्यति" जैसा बना हुआ है। शास्त्रीयकाल (1600-1800 ई.) में सन्त-परम्परा में दलित-साहित्य मिलता तो है किन्तु वह पुनरुत्थानकालीन दलित-साहित्य का पिष्टपेषण मात्र है। बौद्धिककाल (1800 ई. से) के सन्धियुग (1800-50 ई.) एवं सुधारवादी युग (1850-1900 ई.) में ढूँढ़ने-ढाँढ़ने पर दलित-साहित्य मिल तो जाएगा पर उसमें कोई नवीनता या विशिष्टता नहीं है। आदर्शवादी युग

(1900-20 ई.) के साहित्यकारों द्वारा उच्चस्तरीय दलित-साहित्य रचा गया। गद्य में प्रेमचन्द, (विशेषतः महान् उपन्यास 'रंगभूमि' में जिसका नायक सूरदास अन्धा-भिखारी चमार हैः साहित्य को इतना बड़ा 'दलित' नायक कभी नहीं मिला) सियारामशरण ('नारी सर्वाधिक एवं सर्वव्यापक रूप से दलित रही है और 'नारी' एक मार्मिकतम उपन्यास हैः 'त्यागपत्र' से भी अधिक मार्मिक), वियोगहरि ('दोनों पर प्रेम' निबन्ध) इत्यादि का दलित-साहित्य ऐतिहासिक महत्त्व का है। कविता में मैथिलीशरण (किसान), सियारामशरण (एक फूल की चाह), रामचन्द्र शुक्ल 'सरस' (अछूत की आह) इत्यादि सर्वथा स्मरणीय हैं। किन्तु आज के दलित-साहित्य के निकष पर शिवरत्न शुक्ल 'सिरस', हितैषी एवं हीरा डोम का सृजन अपूर्ण माना जा सकता है (डॉ. पवनकुमार हीरा डोम को दलित-काव्य का जनक मानते हैं—महान् पूर्ववर्ती डोम नाभादास और परवर्ती डोम-नेता, राज्यमाल मन्त्री महावीर प्रसाद के मध्य में स्थित रत्न) कविताएँ अवधी और भोजपुरी में बेहतर हैं। विविध बानगियाँ देखें:

1. जाड़े में गाँव के गरीब[1]

लावैं पाती लकरी बीनि, अस गरीब हैं बहुतै छीनि।
तिनुकु तापि दरवाजे साँझ, पहुड़ैं भीतर कोठरि गाँझ।।
जड़ा केरि न कपड़ा पास, पहुड़ैं पाँव सिकुरि उपास।
गठरी बनिगे तबहुँ जड़ाँय, कोठरी घुसे न जाड़ा जाय।।
ऊपर-नीचे पैरा डारि, तिहि माँ घुसै बाल नर नारि।
आधि राति के लागि प्यसाब, बाहर जाड़ा करिसि व्यताब।।
काँपन लौटैं जाडु न जाय, पैरा तरे बहुत सिसियायँ।
मुँह माँ खाँसी औंरु खखार, नींद न आवै जीवन भारु।।
राम-राम कै भा जब भोरु, तबहूँ उठैं न, जाड़ा जोरु।
द्याखै फैलि गवा जब घाम, निकरैं घर तो कहिकै राम।।
तपता तापैं उठि कै भोर, ओढ़े धोती आधी कोर।
खाले पेटु आगि की ओर, स्याकैं ठंढ लागिगै जोर।।
कबौं रजाई कम्मर पास, रहा नहीं, ना कबहूँ आस।
ओढ़े आधी धोती राति, काटैं कवनउ विधि जमुहाति।।
चले मजूर गजूरी हेत, ठिठुर, अँगुरी गई अचेत।
तबहूँ चले जात हैं रेत, जियत यातना मम जनु देत।।
साग-पाल तैं भरि के पेटु, रखैं अधनाहु[2] ना निज टेंटु।
हुक्का पियैं सखि संतोष, जिहि-विहि विधि राखैं वै होस।।"

(शिवरत्न शुक्ल 'सिरस')

2. कुशासन

गाड़े देत जिंदा जमींदार हैं जमीन ही में, ब्याज-पर-ब्याज बैरी ब्योहर बढ़ाए जात।
मूसे लेत मुंसी घूस लै-लै रक्त चूसे लेत, चूकत न चपरासी नटई दबाए जात।।
पिए लेत प्रान पटवारी बटमारी करि, बाकी अस्थि-पंजर पुलिस है पचाए जात।
दौरो-दौरो दीनबंधु औसर यही है हाय, कुटिल कुसासन किसानन को खाए जात।।

(हितैषी)

---

[1] मार्मिक यथार्थवादी कविता (जैसी कोई 'साम्यवादी' और 'दलित' न लिख सका, क्योंकि अनुभव और संवेदन ओढ़ा-बिछाया नहीं जा सकता प्रत्युत सहज होता है।)

[2] पाई, छेला, पैसा, अधन्ना, इकन्नी, दुकन्नी, अठन्नी, रुपया के क्रम में दो पैसे का छोटा-सा सिक्का। रुपया चौंसठ पैसे का था।

3. अछूत की शिकायत

हमनी के इनरा के निगिचे न जाइलेजा पांके में भरी-भरी पीअतानी पानी
पनही से पिटि-पिटि हाथगोड़ तुरि दइल हमनी के एतनी काहे के हलकानी।…

(हीरा डोम)[1]

स्वच्छन्दतावादी युग का दलित-साहित्य

स्वच्छन्दतावादी युग में जिसे आज की भाषा में प्रगतिवादी साहित्य कहते हैं वह तो पर्याप्त लिखा ही गया, जिसे दलित-साहित्य कहते हैं वह भी मिल जाता है। दलित-संवेदन मानव की एक सहज प्रवृत्ति है। आज जब यह प्रवृत्ति विशेष बलवती हो चुकी है, जातिवाद से जुड़कर भी और उससे बाहर भी, तब दलित-साहित्य का अभिधान अथवा विशेषण सर्वथा समीचीन है। निस्सन्देह, दलित-साहित्य की अपनी सत्ता भी है और महत्ता भी तथा वह, यत्र-तत्र कुंठा-विकृति इत्यादि से क्षत-विक्षत रूप के बावजूद, मूल मानवीय एकता से जुड़ा होने के कारण अभिनन्दनीय है।

'छायावादी वृहत्त्रयी' में प्रसाद के 'कंकाल' एवं 'तितली' उपन्यास प्रगतिवादी रंगत के हैं किन्तु 'बेड़ी', 'चूड़ीवाली', 'मधुआ' कहानियाँ मार्मिक दलित-साहित्य की कृतियाँ हैं। 'विधवा', 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर', 'अधिवास' इत्यादि के कवि तथा 'चतुरी चमार' के उपन्यासकार निराला तो दलित-साहित्य के पूर्व-पुरुष भी हैं। डॉ. एन. सिंह ने अनध्ययन के कारण 'बिल्लेसुर बकरिहा' को 'बिल्लेशा बकरिया' लिखा है तथा भ्रमवंश नायक को 'निमानर्गीय' समझा है जबकि वह 'तरी का सुकुल' है जो कान्यकुब्ज ब्राह्मणों में 'दो बिस्वा मरजाद' के कारण 'धाँकर' है ('बीस बिस्वा' का दर्जा 'सगल उपर' और तब क्रमशः नीचे)। पन्त ने भी 'ग्राम्या' में भारत-माता को 'ग्रामवासिनी' के रूप में देखा है तथा महादेवी ने 'भक्तिन', 'लछमा', 'रामा' इत्यादि संस्मरणात्मक-रेखाचित्रों में लगभग संवदेनात्मक 'दलित-साहित्य' ही लिख डाला है। इस युग की परिधि में आने वाले स्वामी अछूतानन्द (बुद्धपूर्णिमा गुरुवार 6 मई, 1879—सौरिख जनपद फर्रुखाबाद)[2] दलित-साहित्य के राम थे। वे रैदास, जगजीवनराम, मायावती जाति के थे। शान्ति कुंज हरिद्वार के संस्थापक श्रीराम शर्मा आचार्य भी दलित-साहित्य में स्थान के अधिकारी हैं, यद्यपि वे ईसा और भारत के पूर्व राष्ट्रपति ज़ैलसिंह के सदृश बढ़ई जाति-रत्न थे। दलित-साहित्य में सभी जातियों का प्रशस्य योगदान रहा है। उदाहरण देखें :

1. अधिवास

…मैंने 'मैं'-शैली अपनाई, देखा दुखी एक निज भाई,
दुख की छाया पड़ी हृदय में मेरे झट उमड़ वेदना आई;
उसके निकट गया मैं धाम, लगाया उसे गले से हाय!…

2. विधवा

वह इष्टदेव के मंदिर की पूजा-सी,
वह दीपशिखा-सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल-ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की विधवा है।…

---

1. सरस्वती (सितम्बर, 1914) 'दलित-साहित्यः रचना और विचार' में डॉ. एन. सिंह का सन्तुलित और ठीक-ठाक लेख 'हिन्दी का दलित-साहित्य रचना और विधान', पृष्ठ 23 से। इस लेख में दलित-साहित्य के ग्रन्थों का उपयोगी नामोल्लेख हुआ है।
2. 'दलित-साहित्य—1999' में राजपाल सिंह 'राजा' का लेख 'स्वामी अछूतानन्द और उनका साहित्य', पृष्ठ 64-78।

3. भिक्षुक

वह आता–
दो टूक कलेजे के करता पछताता
पथ पर आता।
पेट, पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को
भूख मिटाने को
मुँह फटी-पुरानी झोली का
फैलाता–····

4. दीन

सह जाते हो
उत्पीड़न की क्रीड़ा सदा निरंकुश नग्न,····
“यहाँ कभी मत आना,
उत्पीड़न का राज्य दुःख-ही-दुःख
यहाँ है सदा उठाना”

(निराला)

5. किसान

छाती तोड़ महान् परिश्रम तेरे का परिणाम
झपट हड़पता रहता है यह क्रूर विश्व अविराम।
तू भूखा, नंगा, रोगी रहता व्याकुल, बेचैन,
पर वह ही-ही हँसता है लख तेरे गीले नैन।···

(श्रीराम शर्मा आचार्य) 52ग[1]

6. सुन-सुन ओ री भारत-माता!

तू क्यों जन्मीं पूत-कपूत
कोख में तेरी ओ मतवारन
कहाँ से आए छूत-अछूत
छल खेलत तोहे लाज न आई?
घर अँगना यह दोरंगी
गोरे-गोरे ठाकुर-ब्राह्मण काले-काले सब भंगी।[2]

(संत मारहखी)

अन्तिम पंक्ति तो केवल कहने की है, सच नहीं। कथा है : एक राजा-साहब ने हमशक्ल फटीचर को देखकर पूछा, “क्या तेरी माँ महलों में काम करती थी?”–तो विनीत उत्तर मिला, “नाँही सरकार, हमार बाप महल मैं दरबान रहेत!” एक कहावत है :

---

1. जिन (अधिकांश) उद्धरणों के फुटनोट नहीं दिए, वे मेरे विशाल-द्विखंडीय 'हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास' के हैं।
2. 'दलित-साहित्य 1999' में भगवानदास के लेख 'दलित-साहित्यः एक दृष्टि', पृष्ठ 26।

''करिमा बाँगन गोर चगार''! अतः नस्ल और जात-पाँत, रंग रूप की बातें बस बातें हैं। आज का मनुष्य सैकड़ों नस्लों की मिलावट से बना है। अतएव, आर्य-द्रविड़, ब्राह्मण-चमार, गोरे-काले की बातें निरर्थक हैं। किन्तु प्रचलित तो हैं ही :

7. सभ्य सब से हिंद के प्राचीन हक़दार ढग।
था बनाया शूद्र हमको, थे कभी सरदार हम।।
अब नहीं है वह जमाना, जुल्म हरिहर[1] मत सहो।
तोड़ दो जंजीर, जकड़े क्यों गुलामी में रहो।।
8. शूद्रो, गुलाम रहते, सदियाँ गुजर गई हैं।
जुल्मोसितम को सहते, सदियाँ गुज़र गई हैं।।
अब तो ज़रा बिचारो, सदियाँ गुज़र गई हैं।
अपनी दशा सुधारो, सदियाँ गुज़र गई हैं।।

9. आदिवंश का डंका

आदिहिंदू का डंका बजाते चले।
क़ौम को नींद से जगाते चले।।
आर्य, शक, हूण बाहर से आए यहाँ।
और मुस्लिम-ईसाई जो धाए यहाँ।।
सब विदेशी हैं कल्सा जमाए यहाँ।
खोजकर सारी बातें बताते चलो।।
काम बिगड़े हुए सब बनाते चलो।
आदिहिंदू का डंका बजाते चलो।।

यथार्थवादी युग का दलित-इतिहास

वास्तव में दलित-साहित्य यथार्थवादी युग के सर्वाधिक अनुकूल है। शोषण-प्रपीड़न तथा विषमता की प्रतिक्रिया बौद्धिकता के वल को प्राप्त कर दुर्दमनीय बन जाती हैः मार्क्स का सर्वहारावाद, फ्रायड का कामवाद, एडलर का अहंवाद, गाँधी का सर्वोदयवाद, दीनदयाल उपाध्याय का अंत्योदयवाद, सभी दलित-पक्ष को बलावत्तम बनाते हैं। हमारा राष्ट्र निकम्मा है अन्यथा लोकतन्त्र में बिना आरक्षण के ही उन्नत हो जाते। किन्तु न तो शोषक-प्रपीड़क राजनैतिक दलों ने, आरक्षण की बंसी से मत्स्याखेट के अतिरिक्त, कुछ किया, न दलित-नेताओं ने ही ख्याति-धन-आखेट के अतिरिक्त कुछ किया, न स्वयं दलितों ने ऋण-उन्मूलन, शिक्षा, नारी-जागृति के मूल उत्थान-बिन्दुओं पर ध्यान दिया। वे अम्बेडकर के पथ पर नहीं चले। नारायण गुरु, फुले, शाहूजी, अछूतानन्द ने दलित-जागृति के मूल बिन्दुओं पर अधिक ध्यान दिया, कोरा विजातीयतावादी राष्ट्र-विघटनकारी राजनैतिक दलित खेल नहीं खेला। अब सारे दलित-नेता करोड़पति! पर वे अपने साधनों एवं पदों या प्रभावों के कारण दलितों के एक वर्ग को समाज-खंडक बनाने में सक्षम सिद्ध हुआ। दलित-दुर्दशा का पाप सारे राष्ट्र पर है किन्तु वह सर्वाधिक स्वयं दलितों और उनके स्वलागवादी नेताओं पर है क्योंकि उनका अपना जातिवाद मध्यकालीन कट्टरता से एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पायाः विवाह, हुक्का-पानी वगैरह प्रमाण हैं। उनके नेता उनसे नहीं अपितु अन्यों से सम्बन्ध जोड़ते रहे और उन्होंने विरोध तक न किया।

---

[1] वास्तविक नाम हीरालाल जाटव, आर्यसमाजी पंडित हरिहरानन्द, परवर्ती स्वामी अछूतानन्द (केदार पांडे की याद आती है जो अयोध्या में रामउदाहरण हुए तथा कॉम्युनिस्ट-बौद्ध रूप में राहुल सांकृत्यायन)। दोनों केंचुल-बदल 'कट्टर' थे! किन्तु अछूतानन्द हिन्दू, राहुल बौद्ध।

दलित-साहित्य के यथार्थवाद-युगीन काव्योदाहरण (जो प्रवृत्तिबोध में सहायक सिद्ध होंगे) प्रस्तुत करने से पूर्व यह लिखना अप्रतिवार्य होगा कि राहुल, यशपाल, अश्क़, अमृतलाल नागर[1], रेणु, रांगेय राघव, नागार्जुन, शिवप्रसाद सिंह, शैलेश मटियानी, गिरिराज किशोर, गंगप्रसाद मिश्र, श्रीलाल शुक्ल, प्रभाकर माचवे, कैलाश कल्पित, डॉ. अनुजप्रताप सिंह, योगेश्वर शर्मा, हिमांशु, शिवानी, हरिसुमन विष्ट इत्यादि का कथा (उपन्यास-कहानी) साहित्य भी इसे सम्पन्न करने में सहायक रहा है। डॉ. एन. सिंह ने स्वयं अपने तथा डॉ. गिरिराज किशोर अग्रवाल, डॉ. सत्यनारायण व्यास, 'सारिका' के भारतीय दलित-साहित्य विशेषांक (दिसम्बर, 1982), दया पँवार, डॉ. सूर्यनारायण रणसूभे, प्र. ई. सोनकांबले, ओमप्रकाश वाल्मीकि, पुन्नीसिंह, गोपाल आवटे, रघुनाथ प्यासा, डॉ. दयानन्द बटोही, मोहनदास नैमिशराय, डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, कालीचरण स्नेही[2] के विविध सन्दर्भगत उल्लेख किए हैं। डॉ. ठाकुरप्रसाद 'राही' ने भी अनेकानेक रचनाकारों की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। सारी कविताएँ बौद्धिक या राजनैतिक सहानुभूति या विद्रोह में ही चुक जाती हैं। सहज दलित-साहित्य के सीमान्त रैदास, तुलसीदास, हीरा डोम, प्रेमचन्द, सियारामशरण गुप्त, अछूतानन्द, निराला, अमृतलाल नागर जातिबद्ध नहीं हैं। शत-शत कवि एवं लेखक भी अच्छा काम कर रहे हैं क्योंकि दलितोत्थान मानवोत्थान का प्रतीक है तथा भारत दलितोत्थान के बिना उन्नत राष्ट्र नहीं बन सकता। बहती गंगा में हाथ धोनेवालों का बहुमत एक स्वयंसिद्ध सत्य है। लहू लगाकर शहीद भी बड़ी कसरत से होते ही आए हैं। किन्तु इन-सब से किसी साहित्य-धारा का महत्त्व घटता नहीं प्रत्युत गुण में न सही किन्तु परिमाण में बढ़ता ही है। डॉ. जगदीश गुप्त की मार्मिक व्यथा देखें :

चींटी का गम उसके अस्तित्व का संकट बन गया है।
अहंकार टूटता है। औसान घटता है।
जरा-सी चीज़ से अपना कपार कूटता है।
संसद के पंजे लहूलुहान हैं।
फूँक-फूँक कर पैर रखना अकारथ गया
शासन का भयभीत हाथी
रौंदता है पागलखाने में
अपनी ही सेना को।

मुझे दलित-साहित्य पर कोई, गम्भीर तो दूर, प्रभावी पुस्तक भी देखने को नहीं मिली। एक लेख तक ऐसा न मिल सका जो जिज्ञासा को परितुष्ट कर सके। कहीं खोखला विद्रोह, कहीं घटिया गाली-गलौज, कहीं अनुत्तरदायित्वपूर्ण इतिहास-विकृति, तो कहीं अतिसरल-अतिविश्रृंखल नाम-भिनावन ही दीखा। किसी विद्वान् ने जमकर नहीं लिखा। आश्चर्य है कि कहीं प्रेमनाथ 'प्रेमी' के 'प्रायश्चित' ('प्रायश्चित्त' बेहतर रहता) शीर्षक अष्टसर्गीय सामाजिक-महाकाव्य तक उल्लेखित नहीं मिला, जिसका नायक चमार 'रंगभूमि' (प्रेमचन्द) के महान् नायक (साहित्य का सर्वश्रेष्ठ 'दलित'-नायक) सूरदास और 'चतुरी चमार' निरालाः गद्य-पद्य के गुण-परिमाण में एक श्रेष्ठतम दलित-साहित्य प्रणेता का स्मरण कराता है। दलित-साहित्य कुछ गिरोहों और इलाकों में बँटा हुआ है। लोग देशी-विदेशी विविध लाभ और नाम के चक्कर में पड़े हैं, तप नहीं कर रहे (''तपसे शूद्रम्'' प्रो. सिद्धेश्वर प्रसाद को प्रिय है—वे 'पिछड़े' हैं पर जातिवादी नहीं अपितु उदार विद्वान हैं)!

अब काव्योदाहरण या 'सारांश' :

1. मुँह से ''वसुधैव कुटुम्ब'' कहा, व्यवहार में देखि पड़ोसी घिनाला।
तुमरे पद पावन लागीला, पै हमरे बैठे पे दुवारि धुताला।।
सिमरो पद नाव तुहार-हजार, उपस्थित दूध कै माखी बुझाला।
हिनदी हमरे हिम हार, तुम्हें उरदू सुनते उर-दू होइ जाला।।
(अब्बास अली 'बास')

---

[1] ब्राह्मण लड़की और मेहतर लड़के का प्रेम। विडम्बना यह है कि मेहतर महत्तर शब्द से बना है तथा मलेरिया के प्रधानमन्त्री महावीर हैं! गंगी का अर्थ है, झोड़ी! भंगड़ा का ज़ोर है, पर भंगी शब्द कहने पर पूर्व-प्रधानमन्त्री नरसिंहराव को क्षमा-याचना करनी पड़ी! मूड की बात है!

2. झिंगुरा : संविधान की छाया में
झेलती गरीबी की बेशुमार मार
बीमारी में बिना इलाज
सुन माँ की मौत की ख़बर
सुलगता-धुआँता रहा मन
गीली लकड़ी-सा सारी रात
लगी रही आँसुओं की झड़ी भीगता रहा अँगौछा
घूमती रहीं तस्वीरें दिमाग में माँ की तमाम-तमाम यादों की
कड़ाही में खौलते तेल-सां
गाय की मौत पर बछड़े की तड़पन-सी¨
उन्हीं बीमारी-भुखमरी के दुर्दिनों में
आए थे बुर्राक, कपड़ों में निबरे काका गाँव
जिनके साथ माँ ने भेजा था शहर नौकरी के लिए
शहर के टेसन के पास एक होटल में लगवा दिया काका ने
बर्तन धोने का काम
तय हुआ दो जून रोटी नेकर कमीज़ अँगौछा
तीस रुपया महीना तनख़्वाह
पर समाती रही पगार गिलास-प्लेटों की टूट में
फिर मिलते रहे थप्पड़-घूँसे-लात गालियाँ
न भेज सका माँ को एक पैसा भी
आई थी माँ की बीमारी की चिट्ठी¨
आई थीं फिर और दो चिट्ठियाँ
जिनमें माँ ने मुझे देख पीठ पर हाथ फेर लेने की
बार-बार लिखवाई थी अपनी लालसा¨
ऐसे में आज आई है उनकी मौत की ख़बर
व्यापा है नस-नस में खून में बेबस चुप्पी का ज़हर¨
बीमारी में बिना इलाज तीस साल की उम्र में
मुखिया के घर पड़ी डकैती में
डाकुओं को ललकारते उनके पास पहुँचे बापू
हुए थे उनकी गोली का शिकार
मिला था इनाम थानेदार को
पंद्रह साल पहले जब मैं था एक साल का माँ की गोद में
हड़प ली तभी तीन बीघा मेरी पुश्तैनी ज़मीन मुखिया ने
माँ मजूरी से अधिक बेगार-बाज़ के पंजों में
फड़फड़ाती चिड़िया-सी
मर-मर कर जीती रही रोज़ मेरे ही आसरे में¨

(उमाशंकर मिश्र 'उमेश')

'झिंगुराः संविधान की छाया में' दलित-साहित्य की एक महान् कविता है। गंगाप्रसाद मिश्र की 'गंगा-लाभ' कहानी भी ऐसी ही महान् रचना है। डॉ. अनुजप्रतापसिंह कृत कहानीसंग्रह 'डामर रोड' आदिवासी-वैवश्य के हाहाकार को व्याप्त करने वाली मर्मस्पर्शी

कृति है। खेद है कि दलित-साहित्य का कोई उच्चस्तरीय संग्रह नहीं निकल पाया। कारण? साहित्य में राजनीति की दख़लंदाजी या अनध्ययन या धड़ेबाजी या जातिवाद।

3. मानता हूँ आज फिर सावन घिरा है
नैन में झिलमिल वही सपना तिरा है
किंतु अब मैं पर्यटक छवि नहीं हूँ
भूख के तूफान से लड़ता दिया हूँ
कल्पना का बाग़ अब बीमार है
हार से झुलसा हृदय सुकुमार है
जुल्म से युद्धरत मैं वह सिपाही हूँ
रूप का भाता नहीं व्यापार है।

(शंभू 'विभाकर')

4. जमुना का छल-छल जल जाय,
टी वी टी टुट में पड़े गाज।
भाड़ में जाए कुलशीला,
गर्त में जाएं धीरोदात्त।।
भारत है जिनसे भरा है आज
जनकवि अब गाएं वही साज।।

5. मारा रे, मारा रे, मारा रे!
पंडित ने मन को, ठाकुर ने तन को,
लाला ने धन को, मुंशी ने हम को।
लूटा रे, मारा रे, हूला रे, मारा रे।।
पूर्वजन्म का भय दिखलाकर,
जात-पाँत का जाल बिछाकर,
गुरुडम का पाखंड चला।
अक्कल को मारा रे, बुद्धि को मारा रे।।…

(रानार्जुन 'राना')

6. भीड़ के तेवर
भीड़ बसों में ठसकर चल रही है
गुस्से से उबल रही है[1]
भीड़ अनेकों[2] रास्तों से
एक ही स्थान को जा रही है
मन-ही-मन कुछ सुगबुगा रही है
खदबदा रही है।
अब भीड़ खामोश है
भीतर-ही-भीतर एक अनकहा जोश है
भीड़ बिखर रही है…

---

[1] किन्तु जनसंख्या नहीं घटा रही! भारत एक भीड़ है, राष्ट्र नहीं। यहाँ समस्याएँ नहीं, सत्ता-राजनीति अहम् है।

[2] 'अनेक' ठीक रहता। पर, "सब चलता है"!

ओ सभ्यता-संस्कृति के अलम्बरदारो!
धर्म और देश के ठेकेदारों!
भीड़ बेकाबू हो गई है
इससे आदमी को बचाओ!!
आदमी को भीड़ बनने से रोको
उसे भीड़ से अलगाओ!!

(डॉ. सुखवीरसिंह)

7. भूख
चूल्हे की
वर्षगाँठ
मना रही भूख
कितने दिन
कट गए
धुआँ पीते,
कितने ही
बिना जले
दिन बीते
रोटियों पर
मानचित्र
बना रही भूख।

(रामानुज त्रिपाठी—असमय कालकवलित)

8. **सलीब पर टँगी औरत**

काँटों का ताज पहने
स्वयं को ढोती हुई
सलीब को
खुशी-खुशी
चढ़ जाती है
कठिन ज़िन्दगी के
पहाड़-से ऊँचे सलीब पर,
और ठुकवा लेती है
कीलियाँ
हाथों और पैरों में।
सह लेती है
हर दर्द
अपने कर्तव्य
और धर्म के ख़ातिर
पर,
फिर भी, न-जाने क्यों
आज तक
वह ईसा मसीह न बन सकी।

(मंजू भटनागर 'महिमा')

संसार में सर्वाधिक दलित नारी है, जिसकी केवल एक जाति है। मनु (गुप्तकाल या परवर्ती गुप्तकाल) ने उसे आजीवन क्रमशः माता-पिता, पति एवं पुत्र के शासन में रखा है, तुलसी (1532-1623 ई.) ने उसके लिए ''पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं'' का संवेदन तो प्रदान किया है किन्तु 'विधि' से जोड़कर हाथ झाड़ लिए हैं। बुद्ध और महावीर ने विवाह करके भी उसे अपमानित किया या त्यागा; ईसा ने माता का अपमान उचित माना; मोहम्मद ने उसे पुरुष की सम्पत्ति बनाया और युद्ध-लाभ (माले-गनीमत) में भी शामिल किया; कबीर ने उसको अश्लील गालियाँ देकर 'नरक का द्वार' घोषित किया (संसार में सबसे भयानक नारी-निन्दक कबीर ही हुए हैं); जायसी ने उसे 'मतिहीन' कहकर त्याज्य माना! सुलेमान, अलाउद्दीन खिल्जी, ग़यासुद्दीन (मालवा-सुल्तान) अकबर, शाहजहाँ इत्यादि ने हजारों नारियों से खिलवाड़ किया। अतः 'महिमा' की 'सलीब पर टँग औरत' निस्सन्देह साहित्य, विशेषतः दलित-साहित्य, की एक उत्कृष्ट उपलब्धि है जो आज भी सर्वाधिक दलित है।

9. **रिक्शेवाला**

आवाज़ देकर
रिक्शेवाले को बुलाया
तो वह कुछ
लँगड़ाता हुआ आया।
मैंने पूछा—यार,
पहले ये बताओगे,
पैर में चोट है
कैसे चलाओगे?
रिक्शेवाला कहता है—
बाबू जी,
रिक्शा पैर से नहीं
पेट से चलता है।
(डॉ. अशोक 'चक्रधर')

डॉ. चक्रधर 'नलिन'

अमीर खुसरो (1253-1325 ई.) की पहेलियों-मुकरियों और ख़ालिकबारी (फ़ारसी-हिन्दी-शब्दकोष) से आरम्भ, प्रत्येक काल दर्जनों के ककहरों से सम्पन्न, तुलसी[1] और सूर[2] के अमर सृजन से सम्पुष्ट, भारतेन्दु (चूरन के लटके, अन्धेर-नगरी), प्रतापनारायण मिश्र ('पितु-मातु-सहायक-स्वामि-सखा' एवं 'शरणागत पाल कृपालु प्रभो' प्रार्थनाएँ), महावीरप्रसाद द्विवेदी (अनेक बालकविताएँ एवं बालनिबन्ध) जैसे साहित्य-दिग्गजों द्वारा प्रशस्त, प्रेमचन्द, मैथिलीशरण, सियारामशरण, रामनरेश त्रिपाठी, लल्लीप्रसाद पांडेय, श्रीनाथ सिंह, देवीदत्त शुक्ल, चमूपति एम. ए., सन्तराम बी. ए., विद्याभूषण 'विभु', निरंकारदेव 'सेवक' द्वारिकाप्रसाद माहेश्वरी, रामेश्वरदयाल दुबे, शकुन्तला सिरोठिया, योगेन्द्र कुमार लल्ला, श्यामनारायण कपूर, रमाकान्त श्रीवास्तव, शोभनाथ लाल, हरिकृष्ण देवसरे, जयप्रकाश 'भारती', दामोदर अग्रवाल, राष्ट्रबन्धु, रोहिताश्व अस्थाना, चेतन दुबे 'अनिल' इत्यादि समर्पित बालसाहित्यकारों का हिन्दी-बालसाहित्य पर्याप्त स्फीत एवं सम्पन्न है। यद्यपि कुछ वरिष्ठ एवं कुछ कनिष्ठ बाल-साहित्यकारों ने बालसाहित्येतिहास अथवा इसी प्रकार के ग्रन्थ लिखे हैं, तथापि वे विवरण अथवा सूची बनकर रह गए हैं, एकाध उत्साही शोधकर्त्ताओं ने तो 'इतिहास' को 'अपनों' में बाँधने का तमाशा भी किया है! साहित्येतिहास एक निस्संग अथवा वस्तुपरक तप का द्योतक होता है, जिसके लिए व्यापक अध्ययन एवं चिन्तन अपरिहार्य तत्त्व है। अतः, मेरे बारंबार भाषणों एवं आग्रहों के बावजूद, 'हिन्दी बालसाहित्य का इतिहास' (आठ शताब्दियों में प्रसरित स्फीत गौरव-ग्रन्थ) प्रकाश में नहीं आ सका। कई बालसाहित्यकारों ने मुझसे आग्रह किया, किन्तु 'हिन्दी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास'

---

[1] परशुराम-लक्ष्मण-संवाद, अंगद-रावण-संवाद।
[2] बाललीला-पदावली।

लिखते-लिखते मैं वृद्ध एवं स्वास्थ्य-शिथिल हो चुका हूँ, अतः इतना गम्भीर ग्रन्थ लिखना सम्भव नहीं हो सकता—हाँ, मैंने बिन्दु-निर्देश कर दिए हैं किन्तु इन पर आधृत ग्रन्थलेखन इतना कठिन है कि हीनभावमोचक कई लेखक ही विरोधी बन गए तथा एक सांप्रदायिक युवा लेखक तो परिहास तक करने लगा था, जिससे मुझे स्वयं पर गौरव का अनुभव हुआ!

डॉ. चक्रधर 'नलिन' (19 जुलाई, 1939, अटौरा बुजुर्ग, जनपद रायबरेली) ने बालसाहित्य के क्षेत्र में स्फीत-अनवरत विविधाविधासृजन, विभिन्न सम्मेलनों के सम्भाग लाभ, भारतीय बालसाहित्य का विशद विवेचन कर एक टिकाऊ जगह बना ली है। उन्हें देश भर में सम्मान एवं पुरस्कार ठीक ही प्राप्त हुए हैं। बालकविता संग्रह 'नन्हीं चिड़िया फुदक रही', 'खुशियों के गीत', 'बच्चे देश महान् के', 'राष्ट्रीय कविताएँ' इत्यादि बालखंडकाव्य 'अच्छे मार्ग चले जीवन' (बुद्ध पर) एवं 'दूसरा वनवास' (सीता पर), बालनाटक 'अन्धा[1] कवि', 'गोस्वामी', 'वीरांगना (मीराँ), 'महामानव की विजय' (कबीर पर) बालएकांकी 'आज़ादी की पुकार', 'सबसे सुन्दर फूल, बालकहानी संग्रह 'नीला घोड़ा', 'सोने का पिंजड़ा', 'देश के लिए', 'सूझ-बूझ की कहानियाँ', 'बलिदान का पथ', 'एक थी बविता', 'बिल्ली रास्ता काट गई', 'जंगल की प्यास', 'सोने की वर्षा' इत्यादि बालजीवनी हमारे प्रेरणास्रोत, 'कालपुरुष', 'आज़ादी के उपासक', 'आज़ादी का सिपाही', बालयात्रावृत्त 'भारत-दर्शन', बालोपयोगी 'भारतीय इतिहास-रचना', 'स्वाधीनता की कहानी', 'भारतीय कलाएँ' इत्यादि ग्रन्थ उन्हें प्रथम श्रेणी का अति-स्फीत बालसाहित्यकार सिद्ध करते हैं। 'दूसरा वनवास', 'रघुकुल का दीपक', 'जय हनुमान्' उन्हें रामसाहित्य में स्थान प्रदान करते हैं। 'पथ के पड़ाव', 'विचार-वाणी', 'समय-धारा' में वे निबन्धकार के रूप में दृग्गत होते हैं, तो 'समकालीन भारतीय भाषाओं का बालसाहित्य' में विद्वान् शोधनिबन्धकार के रूप में। 'भूल जनपद बिखरा इतिहास' (सं. स्वातन्त्र्य सेनानी, काँग्रेस-नेता एवं विधायक स्व. मदनमोहन मिश्र) शीर्षक रायबरेली के इतिहास ग्रन्थ में उनका योगदान विशेष उल्लेखनीय रहा था और मिश्र जी उन्हें रायबरेली का प्रमुख साहित्यकार मानते थे। 'धीरे बहती नदी' एवं 'अग्निशिखा' में वे एक गम्भीर कवि के रूप में प्रकट होते हैं। बहुआयामी बालसाहित्यकार, बहुविद्या-लेखक एवं कवि के त्रित् में एक चिरस्मरणीय साहित्यकार हैं; किन्तु 'महावाणी' (शोधवार्षिकी) के सम्पादक एवं रचनात्मक संघ रायबरेली के प्राण के रूप में साहित्यिक-पत्रकारिता एवं संस्थागत-हिन्दीसेवा के क्षेत्रों में भी उनकी सेवाएँ बहुत दिनों तक याद की जाएँगी। 1980-2000 ई. के दशकों में वे रायबरेली के अग्रणी हिन्दीसेवी रहे हैं। स्व. श्री अवतंश रजनीश के शब्दों में, ''इस जनपद के गौरव, हिन्दी के यशस्वी समर्पित साहित्यकार, बहुविधा लेखक साहित्य-महोपाध्याय डॉ. चक्रधर 'नलिन' साठ वर्ष के हो गए। अपने सार्थक जीवन में उन्होंने कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध, जीवनी, समीक्षा, साहित्येतिहास, यात्रा, लघुकथा, धर्म तथा अध्यात्म के अतिरिक्त, हिन्दी-बालसाहित्य की 'समस्त' विद्याओं में, बासठ से अधिक ग्रन्थों का प्रणयन किया। ''वह भारतीय बालसाहित्य के गौरव और शलाका-पुरुष हैं।''[2]

'नलिन' जी प्रखर हिन्दीप्रेमी हैं तथा अंग्रेज़ी-हटाओ आन्दोलन में बढ़-चढ़कर भाग लेने के लिए साहित्य मंडल श्रीनाथ (राज.) द्वारा सम्मानित किए जा चुके हैं। वे उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ द्वारा निरंकारदेव सेवक बालसाहित्य-इतिहासलेखन-सम्मान भी प्राप्त कर चुके हैं। 14 नवम्बर, 1989 को लखनऊ में 'कविश्री', बने, 26 अप्रैल, 1990 को सरस्वती प्रतिष्ठान रायबरेली ने सम्मानित किया। हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग ने 'साहित्य-महोपाध्याय' की उपाधि प्रदान की।

उनकी कई पुस्तकें पंजाबी एवं गुजराती में अनूदित हुई हैं।

डॉ. चक्रधर 'नलिन' अनवरत एवं स्फीत लेखन के कारण मौलिकता पर अधिक ध्यान नहीं दे पाए; वैसे, बालसाहित्य में मौलिकता का समावेश कठिनतर है भी। वे नैतिकतावादी हैं अतः इतिहास के कठोर सत्यों का विरोध भी करते हैं; अधिकांश लेखक ऐसा ही करते हैं। किन्तु इससे प्रखर बौद्धिकता की सूचना नहीं मिल पाती। वस्तुतः भारतीय जीवन तथा तदनुरूप भारतीय साहित्य प्रखर बौद्धिकता एवं तीव्र नव्यता का विरोधी ही बना हुआ इक्कसवीं सदी में प्रवेश कर रहा है। यहाँ परम्परावादी तो रूढ़िवादी-प्रतिक्रियावादी हैं ही, गाँधीवादी एवं प्रगतिशील भी लगभग वैसे ही हैं (जीवनयापन में तो अत्यधिक भी); और प्रगतिवादी (साम्यवादी) तो सर्वाधिक प्रतिक्रियावादी सिद्ध हुए हैं (भारतनिन्दा, परकीय-स्तुतिवाद, परधनलोभ इत्यादि में)। ऐसे में नलिन जी अपने निस्संग सांस्कृतिक दृष्टिकोण से कहीं अधिक गतिशील माने जा सकते हैं। उनकी भाषा-शैली सरल-सुगम होते हुए भी बाज़ारू नहीं है। राष्ट्रीय एकता, धर्मनिरपेक्षता, त्याग, देशसेवा, श्रद्धा, भक्ति, आशावाद की प्रेरणा उनका साहित्य न रंक है न बंक!

---

1. शब्दकठोर है, परन्तु 'प्रज्ञाचक्षु' कठिन होता। वैसे, मैं अपनी 'अन्धे का आत्मनिवेदन' कविता (1965 ई.) के शीर्षक से नाराज़ हूँ!
2. चर्चित-अचर्चित (रायबरेली), सितम्बर-नवम्बर, 1999 अंक, पृष्ठ 19।

एक उदाहरण प्रस्तुत है :

अपनी पृथ्वी, अपने नभ को
सुंदर, अभिनव कर देंगे,
सोने की किरणों को लाकर
अँधियारे घर भर देंगे।
कण-कण प्रेमभाव फैलाकर
सूरज-चन्दा बन जाएंगे,
सुख के हर साधन लाएँगे।
गहरे, थके, पराजित मन के खाई-खंदक पाटना,
चाहे जैसी हों विपदाएं साहस कभी न हारना।

हिन्दीः विश्वभाषा, राष्ट्रभाषा, जनभाषा

आकार में विशाल, प्रकार में विविध-विलक्षण एवं जनसंख्या में विशालतर भारत की भारती का विश्वभाषा होना स्वाभाविक है। संयुक्त राष्ट्र संघ की मान्य या स्वीकृत भाषाओं में अंग्रेज़ी और चीनी के अनन्तर अद्यावधि-अमान्य या अस्वीकृत भारती (हिन्दी) भाषी सर्वाधिक-संख्यक हैं—मान्य या स्वीकृत फ्रेंच, रशिअन और अरबी भाषियों से अधिक विश्व की 2800 भाषाओं में तृतीय! कई सर्वेक्षक एवं पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी को विश्व की सर्वाधिक गृहीत भाषाओं में प्रथम भी मानते हैं। हिन्दी के सांप्रदायिकता-जातिवाद-भाषावाद-नृवंशवाद-क्षेत्रवाद से पंचविध-रुग्ण होने के कारण हिन्दी को उसके स्तर का वैश्विक न्याय नहीं प्राप्त हो सका, यद्यपि प्रतिनिधि-मंडल के नेता के रूप में अटलबिहारी वाजपेयी, प्रधानमन्त्री के रूप में पी. वी. नरसिंह राव तथा प्रधानमन्त्री के रूप में अटलबिहारी वाजपेयी संयुक्त राष्ट्र संघ में हिन्दी में भाषण दे चुके हैं। खेद है कि राष्ट्रीय अस्मिता-विपन्न भारत ने हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संघ की एक मान्य भाषा बनवाने के लिए कुछ नहीं किया। फिर भी, हिन्दी-भाषी भारत, नेपाल, मॉरीशस, फिजी, गुयाना, टोबैगा, ट्रिनिडाड में विद्यमान हैं तथा हिन्दी पाकिस्तान, बांग्लादेश, मालदीव (मालद्वीप या द्वीपमाला) में भी समझी जाती है—मालदीव के एक अन्तरर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रधानमन्त्री चन्द्रशेखर ने हिन्दी में भाषण दिया था। लंका तक में हिन्दी समझने वाले मिल जाते हैं। उर्दू हिन्दी की ही एक शैली है। अतः तत्वतः पाकिस्तान भी हिन्दीभाषी है। मीडिया (वस्तुतः मैडिया) का चलचित्र-पुच्छ-रूप हिन्दी को उर्दू-अंग्रेज़ी के पाटों में पीस रहा है।

हिन्दी का विश्वभाषा-रूप संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, इटली, जापान, इत्यादि के प्रवासी-अप्रवासी समग्र भारतीयों-पाकिस्तानियों-बांग्लादेशियों इत्यादि के द्वारा आपस में हिन्दी के प्रयोग, मुरारी बापू जैसे रामचरितमानस-कथावाचकों तथा स्व. स्वामी मुक्तानन्द परमहंस (मातृभाषा कन्नड़, अर्जितभाषा मराठी, ग्रन्थभाषा हिन्दी) जैसे सिद्धयोगियों के प्रवचनों से ही प्रमाणित होता है। भारतपुत्र, पाकिस्तान, हिन्दीपुत्री, उर्दू, भारतपौत्र बांग्लादेश, हिन्दी-भगिनी बांग्ला (सिद्धों की वाणी से विद्यापति को बांग्ला का आदिकवि माने जाने तक प्रमाणित) इत्यादि के घरेलू-झमेले बाहर याद नहीं रह पाते।

हिन्दी का विश्वभाषा-रूप संसार के शताधिक देशों में उसके पठन-पाठन से भी प्रमाणित है। शत-शत शोधकार्य! तुलसी, कबीर, प्रेमचन्द पर विशेषतः! पारस्परिक-अनुवाद! नेपाल, मॉरीशस, फिजी, त्रिनिडाड, टोबैगो इत्यादि में मौलिक हिन्दी-लेखन! ब्रिटेन से चेक गणराज्य तक हिन्दी-कवि! अमेरिका से रूस तक हिन्दी-लेखक! जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, कश्मीर तथा जम्मू से केरल तथा तमिलनाडु, पंजाब से असम, गुजरात से उड़ीसा तक हिन्दी-रचनाकार विद्यमान हैं!

स्थूल दृष्टि से भी छह विश्व हिन्दी-सम्मेलन के विश्वभाषा-रूप को उजागर करते हैं। देखा-देखी विश्व तमिल-सम्मेलन, विश्व पंजाबी-सम्मेलन इत्यादि भी हुए हैं और इनसे भी हिन्दी का परोक्ष प्रभाव उजागर होता है। तमिल को तो हिन्दी के समक्ष हीनभाव की प्रतिमा ही बना डाला गया है; संस्कृत के शब्दों का बहिष्कार, हिन्दी का कृत्रिम अज्ञान-प्रदर्शन, तमिल की प्राचीनता की कल्पनाएँ, तिरुवल्लुवर को 2000 वर्ष प्राचीन बतलाना, अनेक धार्मिक ग्रन्थों को 2500 वर्ष तक पीछे खींचना इत्यादि 'स्वस्थ' होने का परिचय नहीं देते! किन्तु 'अस्वस्थ' कितने दिनों तक रहा जा सकता है? पंजाबी को भी ऐसी 'अस्वस्थयता' के गले बाँधा गया था, पर वह शीघ्र ही 'स्वस्थ' हो गई!

प्रथम विश्व-हिन्दी-सम्मेलन 10 जनवरी, 1975 को नागपुर में हुआ। इसके अध्यक्ष मॉरीशस के प्रधानमन्त्री स्व. सर शिवसागर रामगुलाम थे। स्वतन्त्र भारतीय राजनीतिज्ञों में हिन्दी के लिए सर्वाधिक कार्य करने वाली प्रधानमन्त्री स्व. इन्दिरा गाँधी ने किया था। समग्र भारत से 3000 प्रतिनिधियों तथा 30 देशों के 122 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इनमें अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस, रूस, इटली, कनाड़ा, ऑस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैण्ड, तुर्की इत्यादि समाविष्ट थे। सर शिवसागर रामगुलाम ने ठीक ही कहा थाः ''हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तो है, लेकिन हमारे लिए इस बात का अधिक महत्त्व है कि यह एक अन्तर्राष्ट्रीय भाषा है।''[1] इस ऐतिहासिक सम्मेलन में हिन्दी को संयुक्त राष्ट्र संव में मान्यता पर ज़ोर दिया गया था, किन्तु इस दिशा में कुछ विशेष किया नहीं जा सका।

द्वितीय विश्व-हिन्दी-सम्मेलन 28-30 अगस्त, 1976 का विशाल त्रिदिवसीय आयोजन था जो मॉरीशस की राजधानी पोर्ट लुई में हुआ, किन्तु नागपुर-सम्मेलन के सदृश विराट् भाषिक-साहित्यिक कुम्भ सिद्ध न हो सका। फिर भी, 'विश्व-हिन्दी पुरस्कार 1978' के अन्तर्गत 24 जनवरी, 1978 को चेकोस्लोवाकिया (अब चेक गणतन्त्र एवं स्लोवाक गणतन्त्र में द्विखंडित) के प्रो. आदोलेन स्मेकल (अब चेक गणतन्त्र संबद्ध), जापान के प्रो. क्यूमा देई, फिजी के पं. कमलाप्रसाद मिश्र, मॉरीशस के श्री सोमदत्त बखोरी तथा ब्रिटेन के डॉ. रोनाल्ड स्टुअर्ट मैग्रेगर को पुरस्कृत कर हिन्दी का विश्वभाषा-रूप उजागर अवश्य किया गया।

तृतीय विश्व-हिन्दी-सम्मेलन 28-30 अक्टूबर, 1983 को दिल्ली में हुआ, जिसमें 30 देशों के 260 प्रतिनिधियों समेत 6500 ने भाग लिया। भारी भीड़भाड़ और तामझाम से यह स्पष्ट होने लगा कि न्यस्त-स्वार्थों का दबदबा बढ़ रहा है। चतुर्थ विश्व-हिन्दी-सम्मेलन 2-4 दिसम्बर, 1994 को पुनः मॉरीशस में हुआ, जिसमें देशों की संख्या 25 रह गई (घटी, जबकि चाहिए थी बढ़नी); इसमें केवल भड़कीले प्रस्ताव पारित हो पाए! पञ्चम विश्व-हिन्दी सम्मेलन 28 मार्च से 1 अप्रैल, 1996 तक ट्रिनिडाड में हुआ जो 30 मई, 1945 को प्रथम भारतीय कृषक-श्रमिक दल के कलकत्ता (कालीकाता, कोलकाता) से जलपोत द्वारा पहुँचने के स्मृति-पर्व के वार्षिक आयोजन की ऐतिहासिक से भी जुड़ा! सॉफ्ट-वेयर से हिन्दी को संपृक्त करना इसकी विशेषता थी। प्रधानमन्त्री वासुदेव पांडेय ने हिन्दी-सॉफ्टवेयर खरीदा।

षष्ठ विश्व-हिन्दी-सम्मेलन 14-18 सितम्बर, 1999 को राजभाषा-स्वर्णजयन्ती सन्दर्भ में विशेष प्रस्तावना के साथ लन्दन में सम्पन्न हुआ। बीस से अधिक देशों की प्रमुख भाषा होने के बावजूद हिन्दी के संयुक्त राष्ट्र संघ की भाषाओं में समाविष्ट न होने का बिन्दु प्रधान रहा। मॉरीशस में सचिवालय की स्थापना पर प्रसन्नता व्यक्त की गई। अन्तरर्राष्ट्रीय हिन्दी-विश्वविद्यालय की वर्धा में स्थापना पर सन्तोष व्यक्त किया गया। प्रायः 250 परिपत्र पढ़े गए। 18 सितम्बर, 1999 को समापन सत्र में डॉ. लक्ष्मीकान्त सिंघवी, शिवानी, नरेश मेहता, श्रीलाल शुक्ल, मधुकर राव चौधरी, नरेन्द्र मोहन, रामविलास शर्मा, गोविन्द्रचन्द्र पांडे, कल्याणमल लोढ़ा, शौरि राजन, महीप सिंह, मेहरुन्निसा परवेज़, विश्वनाथ अय्यर को सम्मानित किया गया। विदेशी तथा विदेश-स्थित हिन्दी-विद्वान् भी सम्मानित किए गएः निकोल बलवीर (फ्रांस), लिंडा हेस (अमेरिका), मारिओला ओफ्रेदी (इटली), मारिया नैद्पेशी (हंगरी), दातूना स्ताशिक (पोलैण्ड), राजेन्द्र अरुण एवं शुचिता रामदीन (मॉरीशस), प्रो. तोमिओ मिजोकामी (जापान), प्रो. हेल्मूट नेस्पिताल (जर्मनी), विनान्त केल्वेर्त (अमेरिका), क्षाविद लाउरांखो (मेक्सिको), डॉ. तेशाबोएव (उज़्बेकिस्तान), डीक्स्टग (हॉलैण्ड), सूर्यनारायण गोप (नेपाल), ओंकानाथ श्रीवास्तव (ब्रिटेन), विवेकानन्द शर्मा (फिजी), महातमसिंह (सूरीनाम), रवि महाराज (ट्रिनिडाड), प्रो. श्याममनोहर पांडेय (इटली)। इस सम्मेलन से हिन्दी की वैश्विकता सर्वाधिक उजागर हुई। किन्तु इस पर राजनीति छाई रहीः पुरात्तन-शिखंडी और नव-पंखडी वहाँ भी भिड़े, लौटकर भारत में भी पुरातन शिखंडी एकाधिकारी-वर्चस्व के शिथिल होने पर खिन्न थे, नव-शिखंडी उनके पर्याप्त प्रभाव से क्षुब्ध थे। डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी हिन्दीप्रेमी माने जाते हैं (सम्भवतः इसीलिए शेक्सस्पीअर के जन्मस्थान स्ट्रैटफ़र्ड-अपॉन-एवॅन में रवीन्द्र की मूर्ति खड़ी कराई है) अतः उनकी प्रेरणा से पुरातन-शिखंडी और नव-पाखंडी दोनों का ध्यान रखा गया था किन्तु ''आपन पेट हाहू। कौर न देहौं काहू।।'' के अनुरूप झपटमारी 'स्वतन्त्र' भारत के 'स्वनामधन्य'—''साहित्यकारों'' की भारी पहचान रही है!

निस्सन्देह सारे विश्व-हिन्दी सम्मेलनों में जोड़-तोड़ वाले साहित्य-व्यवसायियों ने बहती गंगा में डटकर हाथ धोए, किन्तु सारे ही हिन्दी की वैश्विकता की दृष्टि से उपयोगी रहे। प्रख्यात रामप्रेमी-तुलसीप्रेमी-मानसप्रेमी श्री लल्लनप्रसाद व्यास बिना तामझाम के विश्व-रामायण-मेले आयोजित करते रहते हैं, विश्व-हिन्दी-आयोजन भी करते हैं, जो अधिक प्रभावी परन्तु कम 'प्रसिद्ध' होते हैं। ऐसे निस्संग आयोजक मिलें तो विश्व-हिन्दी-सम्मेलन व्यापक-आयामी हो सकते हैं। हिन्दी के प्रति व्यवसाय-दृष्टि ने हिन्दी की अपार क्षति

---

[1] खनन भारती (द्विमासिक, अगस्त, 1999 अंक, नागपुर, संपादक राजेन्द्र पटोरिया), पृष्ठ 7।

की है। निष्ठा का अभाव हिन्दी-दलालों को हास्यास्पद बना देता है। किन्तु मीडिया (मैडिया) पर क़ब्ज़े के कारण वे 'प्रसिद्ध' तो माने ही जाते हैं!

हिन्दी विश्वभाषा है, किन्तु ऐसी जिसका कोई पाएदार सहारा नहीं है। भारत में अंग्रेज़ी के वर्चस्व को अनेक सशक्त सहायता तत्त्व प्राप्त हैं: 1. अमेरिका, ब्रिटेन, कैनेडा (70 प्रतिशत अंग्रेज़ी तथा 30 प्रतिशत फ्रेंच), ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैण्ड देशों का सांस्कृतिक, साहित्यिक, साहित्यिक राजनैतिक, आर्थिक प्रभाव जो शत-शत रूपों में कार्य करता है, 2. ईसाई मिशनरी जिनका स्कूल-उद्योग अंग्रेज़ी के कारण ही रौशन है—एक परिपत्र में इनके एक महाधिकारी ने हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के उन्नयन से अपने कार्य के ठप पड़ने की आशंका के साथ अंग्रेज़ी के व्यापकतम प्रचार-प्रसार का आह्वान किया गया था, 3. प्रशासनिक, चिकित्सागत, विधिगत प्रभृति क्षेत्रों में देश को लूटनेवाले न्यस्त-स्वार्थग्रस्त तत्वों की अंग्रेज़ी-वकालत, 4. राष्ट्रव्यापी (वस्तुतः उपमहाद्वीप-व्यापी) दासभाव-हीनभाव जो ग्रामों, पर्वतांचलों, वनक्षेत्रों, इत्यादि तक प्रसरित है, 5. अंग्रेज़ी का विश्व की सर्वश्रेष्ठ ज्ञान-विज्ञान-सर्वांग-व्यापक भाषा होना तथा भारत में उसका एकमात्र उच्चाध्ययन, सेवाप्राप्ति, विदेश लाभ माध्यम होना, तथा 6. अन्तरर्राष्ट्रीय अंकों की शासन तथा तत्प्रभावगत शिक्षा-क्षेत्रों में मान्यता जिसके कारण संख्या-नाम तथा लेखन अनायास भाषा-सहायक सिद्ध होता रहता है (दूरदर्शी भारतरत्न राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने देवनागरी अंकों के लिए अथक यत्न किए, व्हील-चेयर पर एक संविधान परिषद् सदस्य को लाए भी किन्तु रोमन लिपि में हिन्दुस्तानी के समर्थक नेहरू ने उस दिन मतदान टाल-टलवा दिया तथा अनन्तर एक मत से अन्तरर्राष्ट्रीय अंक वस्तुतः अंग्रेज़ी-अंक स्वीकार करा लिए—तुर्रा भारत का अंकों तथा अंकगणित का जन्मदाता-देश बताने का रहा)। (स्पीज़ल इत्यादि संस्कृत को भारत-जर्मन-गत भाषाओं की जननी मानते हैं तो अंग्रेज़ी भी तत्वतः भारतमूलक हुई अतः उसे स्वीकार किया जाए)! भारत में हिन्दी की दयनीय दशा का प्रभाव मॉरीशस, फिजी, टेबैगो, ट्रिनिडाड, सूरीनाम इत्यादि पर पड़ रहा है; 2 जनवरी, 1999 को नई दिल्ली के इंडिया इन्टरनेशनल सेन्टर में लल्लनप्रसाद व्यास के विश्व-हिन्दी सम्बन्धी आयोजन में इन देशों के प्रतिनिधियों के विचारों से भी यह बिन्दु स्पष्ट था। इसमें मैं भी बोला था। हिन्दी की स्थिति बेहतर से बद और अब बदतर हुई है। मैंने 'यूनिवर्सिटी टुडे' में 'इज़ हिन्दी डाईइंग?' (क्या हिन्दी भर रही है?) लिखा था? क्या इक्कसवीं सदी (ई.) में हिन्दी का विश्वभाषा-रूप म्रियमाण हो जाएगा।

हिन्दी का राष्ट्रभाषा-रूप तो जैन-महाकवि स्वयंभू, जैनाचार्य कलिका-सर्वज्ञ हेमचन्द्र, सन्त ज्ञानेश्वर, उमाबाई (उमावा), अमीर खुसरो, नामदेव, कबीर, एकनाथ, कुँल कुत्बशाह, अली आदिलशाह, शिवाजी, प्राणनाथ, शिष्टु कृष्णमूर्ति शास्त्री एवं नरहरि (रामचरितमानस के तेलुगू-अनुवादक), राजा राममोहन राय (पुस्तकें 'बंगदूत'), कांदर श्रीरंगाचार्य (भागवत के हिन्दी-अनुवादक), नोदेल्ल पुरुषोत्तम (हिन्दी-नाट्यकार), स्वातितिरुनाल (व्रजभाषा-पदरचना), सुब्रह्मण्य भारती (1908 ई. में चेन्नई में हिन्दी-पाठशाला), तिलक (मराठी को देवनागरी लिपि में लिखा जाना, 1917 ई. में कोलकात्य-भाषण, भारती-प्रेरणा इत्यादि), गाँधी (1918 ई. में दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की स्थापना ज़िसका मुख्यालय चैन्नै में था), सुभाष (हिन्दी में ऐतिहासिक भाषण तथा आज़ाद हिन्दी फौज़ का प्रयाणगीत इत्यादि), नजरुल इस्लाम, सत्यनारायण रेड्डी (प्रथम रचना हिन्दी में), स्वामी मुक्तानन्द परमहंस (हिन्दी के मौलिक ग्रन्थकार), आ. विद्यासागर (प्रख्यात हिन्दी-कवि) इत्यादि के द्वारा बारह सौ वर्षों के प्रात्ययिक इतिहास द्वारा ही सिद्ध है। हिन्दी का नाम तथा 'भाषा' कहा जाना ही उसकी सार्वभौमता का अकाट्य प्रमाण है। कबीर, तुलसी, केशव इत्यादि इसे 'भाषा' ही कहते हैं (चाहे मिश्रि-भाषा या सन्त-भाषा में लिखते हों या अवधी या ब्रजभाषा में); भारतेन्दु भी 'निज भाषा' कहकर परम्परा को पुष्ट करते हैं। हिन्दवी (खुसरो), हिन्दू की और हिन्दुगी (मुल्ला दाऊद), हिन्दुई (जायसी), हिन्दुस्तानी (बाबर), हिन्दी (नूरमोहम्मद), आर्यभाषा (उपाध्याय पंडित बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन'), नागरी (आ. श्यामसुन्दरदास), भारती (मैथिलीशरण गुप्त, राय कृष्णदास इत्यादि) जैसे नाम ही हिन्दी की सार्वभौम राष्ट्रीय गरिमा के द्योतक हैं।

हिन्दी की राष्ट्रभाषा-रूप मुस्लिमकालीन मुद्राओं तथा चौदहवीं सदी से ही अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर और बरार के 'दक्खिनी' सुल्तानों की राजभाषा, सिख-महाराज रणजीतसिंह की देवनागरी लिपि में लिखित डोगरी राजभाषा, 15 अगस्त, 1947 से पूर्व सारे देशी रजवाड़ों की राजभाषा इत्यादि से भी प्रमाणित होता है।

हिन्दी का पतन वस्तुतः 14 सितम्बर, 1949 को संविधान परिषद् द्वारा उसे भारत क़ी राजभाषा बनाने के साथ ही आरम्भ हुआ। उसी दिन मरहूम मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने स्वर्गीय डॉ. रघुवीर को चुनौती दी थी: बहुमत के बल पर हिन्दी को राजभाषा बनाने का प्रस्ताव तो स्वीकृत हो गया है किन्तु हम देखेंगे कि यह लागू कैसे होता है! नेहरू हिन्दी का समर्थन केवल राजनैतिक कारणों से करते थे; संस्कारात् उर्दू-भक्त थे व्यवहारतः अंग्रेज़ी में ऊभ-चूभ (अंग्रेजी-ग्रन्थकार भी)। 1898 ई. में ही मोतीलाल नेहरू (जिनके पिता

गंगाधर नेहरू पहले मुग़लों तथा अनन्तर अंग्रेज के ख़ादिम थे जो दिल्ली के कोतवाल पद पर मरे) ने परिवार में केवल अंग्रेजी के प्रयोग का नियम बना दिया था, शिशु नेहरू की धाय अंग्रेज़ थी, बालक नेहरू के गृह-शिक्षक अंग्रेज थे, उनकी शिक्षा हैरो और कैम्ब्रिज में हुई थी, उनके एक परिवार-मित्र सर तेजबहादुर सप्रू परम उर्दू-दास थे (जिन्हें वे चाचा जी भी कहा करते थे)। नेहरू ने यह कहकर कि जब तक एक भी राज्य चाहेगा, अंग्रेज बनी रहेगी, हिन्दी का भविष्य नष्ट किया। ईसाई मिशनरी स्कॉट (फ़ादर स्कॉट) के दबाव में कुछ लाख नगाओं (नागाज़) हेतु नागालैण्ड का 'स्वतन्त्र' राज्य (असम के एक जनपद से) नेहरू ने ही बनाया था, जहाँ की 'घोषित' भाषा अब अंग्रेज़ी है! अतः नेहरू अपने जीवनकाल में ही आश्वस्त हो चुके थे कि भारत में अंग्रेज़ का दबदबा बना रहेगा, उर्दू उन्नत लोगों की चहेती बनी रहेगी, हिन्दी का लगातार ह्रास होता रहेगा (1961 ई. की जनगणना में उन्होंने मातृभाषा का सनातन-एकवचन शब्द को हिन्दी-उर्दू लिखकर 'द्विवचन' बनाने की 'क्रान्ति' भी की थी)! नेहरू के जीवनकाल में सारे देशी रजवाड़ों में प्रचलित हिन्दी-प्रयोग समाप्त प्राय हो गया। 26 जनवरी, 1965 से हिन्दी राजभाषा-रूप में लागू होनी थी। किन्तु सी. आई. ए. ने तमिल-पटकथाकार अन्नादोरै को अपार सहायता तथा रणनीति से उठाकर सातवें आसमान पर खड़ा कर दिया जिसने प्रचार कराया कि 26 जनवरी, 1965 के बाद लोगों को 'अम्मा' के स्थान पर 'माता जी' कहना पड़ेगा तथा तमिल समाप्त हो जाएगी! मोरारजी देसाई ने इसे दुःखदायक माना; मिथ्या तो था ही। परिणाम यह हुआ कि लोग आत्मदाह तक करने लगे, केन्द्रीय सम्पत्ति का अपार विनाश किया गया तथा हिन्दी को राजभाषा बनना तो असम्भव-सा कर ही दिया गया, आर्य-संस्कृत-हिन्दी के प्रति घृणावाद की राजनीति 1967 ई. के निर्वाचन में तमिलनाडु में सत्ता-परिवर्तन का कारण भी बन गई; अन्नादोरै मुख्यमन्त्री एवं महान् नेता बन गए! कामराज जैसा बड़ा नेता एक अनजान युवक से चुनाव हार गया! तब से अब तक वहाँ नृवंशवादी, राज्यवादी, तमिलवादी क्षेत्रीय दल ही शासन करते आ रहे हैं। हिन्दी के राजभाषा-रूप का भविष्य उज्ज्वल नहीं है।

चाहे विश्वभाषा-रूप हो, चाहे राष्ट्रभाषा-रूप, चाहे राजभाषा-रूप, हिन्दी समस्याओं से घिरी है। उसका विश्वभाषा-रूप तभी सामान्य हो सकता है जब भारत में उसकी स्थिति सुदृढ़ हो, जो नहीं है। उसका राष्ट्रभाषा-रूप तभी सामान्य हो सकता है जब हिन्दी-क्षेत्रों में उसका व्यापक प्रयोग हो, जो नहीं है। उसका राजभाषा-रूप तभी सामान्य हो सकता है जब हिन्दी-राज्यों में उसके प्रति अटूट घनिष्ठा हो, जो नहीं है। स्वयं हिन्दीभाषी अंग्रेज़ी-व्यामोह से ग्रस्त हैं। अंग्रेज़ी रोटी-रोज़ी से लेकर देश-विदेश-यात्रा और सर्वांगीण उन्नति का माध्यम बनी हुई है। वही भाषा जाने भी अपनाई जाती है, अनजाने भी अपनाई जाती है, जिसका रोटी-रोज़ी से सम्बन्ध हो। कई लोग भाषा का रुतबा देखकर भी अभिभूत होते हैं। हिन्दी के पास न रोटी-रोज़ी है, न रुतबा। अतः उसके तीनों रूप बस लस्टम-पस्टम. डगरते तो रहेंगे, आगे न बढ़ पाएँगे।

हिन्दी की वर्तमान दशा या दुर्दशा के उत्तरदायी तत्वों में प्रथम हैं जवाहरलाल नेहरू, जिन्होंने उसे ''एक भी राज्य'' की अस्वीकृति से बाँधकर कभी राजभाषा न बनने देने का षड्यन्त्र किया तथा उसे मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, हुमायुन् कबिर, नूरुल हसन जैसे शिक्षामन्त्रियों द्वारा दुर्बल कराया; द्वितीय तत्त्व है, चलचित्र तथा अब उसमें जुड़ा टेलीविज़न जिसमें उर्दू-दासों का भयंकर ज़ोर है क्योंकि वे चालाक और तिकड़मी हैं जबकि हिन्दीभाषी बेवकूफी और भोलेपन के लिए कुख्यात हैं; तृतीय तत्त्व है, अंग्रेज़ी-प्रसारक सी. आई. ए. तथा क्रिस्चियन मिशनरीज़ की साठगाँठ जो अपनी स्कूल-अस्पताल-भुजाओं से हिन्दी का गला मरोड़ रही है। आज दशा यह है कि सब तरफ़ से पिटती हिन्दी को और अधिक पीटते हुए 'हिन्दी साम्राज्यवाद' (वस्तुतः अंग्रेज़ी-ग्रन्थ 'हिन्दी इम्पीरियलइज्म' जिसे प्रेमचन्द के पौत्र और अमृतराय के पुत्र आलोक राय ने लिखा है) का नारा लगाया जा रहा है तथा एक विराट् भाषा को 'बमनी' (ब्राह्मणी) हिन्दी, 'कैथी' (कायस्थीय) हिन्दी प्रभृति रूपों में विवेचित किया जा रहा है। दलित-साहित्य में घोर जातिवाद द्वारा साहित्य को तोड़ने के यत्न तो चल ही रहे हैं। सब तरफ टूटन-ही-टूटन। पिछड़ा, विजातीयतावादियों द्वारा क्रीत नेता-नेत्रियों से भरा हिन्दी-क्षेत्र इतने निर्णायक तत्वों का मुक़बला नहीं कर सकता। हाँ, यदि तमिल-भाषावाद, बांग्ला-भाषावाद, उर्दू-भाषावाद (शुद्ध सांप्रदायिकः जम्मू और कश्मीर राज्य की भाषाएँ डोगरी, लद्दाखी और कश्मीरी हैं पर राजभाषा उर्दू है; पाकिस्तान की भाषाएँ पंजाबी, सिन्धी पश्तो और बलूच या बलोच हैं पर राजभाषा उर्दू है; भारत में उर्दू का कोई क्षेत्र नहीं है पर केन्द्र तथां कई राज्य सरकारें उसे वोट-बैंक के कारण निहाल किए हैं। चलचित्र पर वह लाद दी गई है जिसके कारण धोखा, चाभी, गोभी, भाभी जैसे हिन्दी शब्द मर चुके हैं अर्थात् धोका, चाबी, गोबी, भाबी जैसे शब्दों का ज़ोर है; दूरदर्शन और आकाशवाणी के नन्हें-नन्हें तुग़लक 'प्राप्त' के स्थान पर 'हासिल' जैसे प्रयोग तो करते हैं, 'अकाल्पनिक' के स्थान पर 'गैर-काल्पनिक', 'अपारम्परिक' के स्थान पर 'ग़ैर-पारम्परिक', 'असंवैधानिक' के स्थान पर 'गैरसंवैधानिक' जैसे उपसर्ग-हत्यारे प्रयोग भी करते हैं जिससे अशिक्षित एवं अर्द्धशिक्षित हिन्दी भाषा अन्ध अनुकरण कहते हैं तथा

भाषा-रूप विकृत हो रहा है) जैसा जुनून पैदा किया जा सके, तो हिन्दी ''गरीब की जोरू गाँव भर की भाभी'' की दयनीय स्थिति से उबारी जा सकती है। हिन्दी को उर्दू-अंग्रेज़ी के पाटों में पीसकर उसकी हत्या के दुष्प्रयत्न ज़ोरों पर हैं और पिछड़ा, दरिद्र, जातिवाद-सांप्रदायिकता-ग्रस्त, सर्वाखेट, निजनेतृत्व-देशद्रोही ग्रस्त हिन्दी क्षेत्र पूर्णत; निष्क्रिय पड़ा है; न कोई टंडन है, न गोविन्ददास, न लोहिया!

रुहेलखंड में हिन्दीसेवा

भारत में उत्तराखंड, बुन्देलखंड, बघेलखंड, रुहेलखंड, झारखंड इत्यादि अनेक खंड उसकी विशालता, जनसंकुलता, प्राचीनता, बहुजातीयता इत्यादि को देखते स्वाभाविक ही हैं। उत्तराखंड और झारखंड क्षेत्रसूचक हैं, जबकि बुन्देलखंड राजा बुन्देल के कारण व्यक्तिपरक है तथा बघेलखंड राजा व्याघ्रदेव के कारण तद्वत्, रुहेलखंड या रुहेला-राजपूतों तथा रुहेला-मुसलमानों के कारण जातिपरक है। साहित्यिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से बुन्देलखंड बुलन्दखंड है। तुलसी, केशव, पद्माकर, बोधा, ठाकुर तृतीय, काली कवि, मैथिलीशरण, सियारामशरण, वृन्दावनलाल वर्मा, अम्बिकाप्रसाद 'दिव्य' सेवकेन्द्र इत्यादि की संख्या तथा गुणवत्ता अप्रतिम है। भारत के सर्वश्रेष्ठ विश्वस्तरीय खिलाड़ी ध्यानचन्द्र (झाँसी जन्म इलाहाबाद) अपने क्षेत्र में वैसे ही हैं जैसे ब्रेडमैन या पेले। कालिंजर का सहस्राब्दि-प्रसरित इतिहास चित्तौड़ के इतिहास से भी अधिक वीरत्वपूर्ण है, जहाँ से महमूद ग़ज़नवी वुतफ़रोख्त बनकर लौटा और खजुराहो बच गया, जहाँ शेरशाह सूरी ने जान गँवाई (राजा भारतीचन्द्र ने वध किया था बारूद की आग में झुलस मरा?), औरंगजेब कुछ कर-धर न पाया। संसार का कोई 'खण्ड' बुन्देलखंड की समता नहीं कर सकता। किन्तु उत्तराखंड 'देवतात्मा हिमालय' की तीर्थबहुलता में पावनतम है; कवियों, लेखकों, सैनिकों में भी प्रशस्य बघेलखंड का साहित्यिक उभार भी दृग्गत होने लगा है। झारखंड में अंगिका के दर्शन होने लगे हैं; कविता तथा कोश-इतिहास-गद्य-पद्य की व्यापकता स्थापित करने में अनेक साहित्यकार जुटे हैं। रुहेलखंड भी अपनी अस्मिता को उजागर करने लगा है, जिसका सर्वेपरि श्रेय रुहेलखंड के साहित्य-दिवाकर डॉ. महेश 'दिवाकर' को है।

रुहेलखंड में उत्तर प्रदेश के आठ जनपद आते हैं: बरेली, बदायूँ, पीलीभीत, शाहजहाँपुर, मुरादाबाद, रामपुर, बिजनौर और ज्योतिबाफुले नगर।[1] बरेली (वास और बल बन्धुओं की बलौली—रायबरेली भी है जो राजा बल की बलावली या बलौली पर कायस्थ-वर्चस्व सूचक 'राय' को ठोंककर 'बनी' है) साहित्य में राधेश्याम कथावाचक से डॉ. धीरेन्द्र वर्मा तक के कारण प्रसिद्ध है (वैसे, 'झुमका...' के कारण जनता में भी)। बदायूँ मध्यकालीन इतिहास के इल्तुत्मिश या अल्तमश से इतिहासकार बदायूँनी तक के कारण प्रसिद्ध है (वैसे, शक़ील बदायूँनी के कारण भी)। मुरादाबाद इश्क-लबरेज़ शायरी के एक परचम जिगर मुरादाबादी के कारण प्रसिद्ध है (वैसे, हुल्लड़ मुरादाबादी भी कविसम्मेलनों—कानपुर के 'प्रतापी' बेढ़ब के शब्द में कविसम्मेलन—में खूब जमते हैं)। बिजनौर नजीबाबाद के सुल्ताना डाकू के कारण प्रसिद्ध है (वैसे, चन्दक के स्व. डॉ. मेघासिंह चौहान और डॉ. योगेन्द्रप्रसाद के कारण साहित्य के नक्शे में दृष्टिगोचर)। काका हाथरसी भी अंशतः काका बिजनौरी बने थे! फिर भी, साहित्य में रुहेलखंड की चर्चा कम ही रही है। डॉ. महेश 'दिवाकर' के कारण रुहेलखंड साहित्य में भी प्रकाशित हुआ है। 'रुहेलखंड के स्वातन्त्र्योत्तर प्रमुख साहित्यकार' ग्रन्थ में यथानाम-तथागुण शत-शत साहित्यसेवियों के व्यक्तित्व-कृतित्व उजागर हुए हैं। उषा त्यागी, डॉ. उर्मिलेशकुमार शंखधार, पुष्पेन्द्र बरनवाल (पुष्पेन्द्र वर्णवाल), गजराजसिंह 'राजू', डॉ. गिरिराजशरण अग्रवाल, डॉ. महेश सांख्यधर, डॉ. महेश 'दिवाकर', डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी, डॉ. मेघसिंह चौहान, डॉ. योगेन्द्रप्रसाद, डॉ. रामस्वरूप आर्य, पं. राममूर्ति शर्मा, डॉ. रामानन्द शर्मा, वीरेन्द्रप्रकाश गुप्त 'अंशुमाली', डॉ. कुँवर बेचैन, डॉ. गिरीश रस्तोगी, डॉ. ज्ञानेश दत्त हरित, डॉ. प्रतीक मिश्र, डॉ. रामचरण महेन्द्र, सुरेन्द्रमोहन मिश्र, सुशीलकुमार (हुल्लड़ मुरादाबादी), डॉ. रमेशचन्द्र यादव इत्यादि में अनेक विख्यात साहित्यकार समाविष्ट हैं, अनेक सम्मानयोग्य साहित्यसेवा कर रहे हैं, अनेक में सम्भावनाएँ निहित हैं।

तदन्तर 'कुछ दिवंगत हिन्दीसेवी' नामंकित हैं: पं. दुर्गादत्त त्रिपाठी (मुरादाबाद), श्री सुबोधचन्द्र शर्मा 'नूतन' (बिजनौर), डॉ. सुभाषचन्द्र सक्सेना (बिजनौर/मुरादाबाद), श्री सतीशचन्द्र अग्रवाल (चाँदपुर), श्री कैलाशचन्द्र अग्रवाल (मुरादाबाद), विख्यात

---

[1] 'रुहेलखंड के स्वातन्त्र्योत्तर प्रमुख साहित्याकर' (सं. डॉ. महेश 'दिवाकर' एवं श्री मोहनराम 'मोहन', प्रकाशक अखिल भारतीय साहित्य कला मंच, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश; प्रथम संस्करण 1999 ई., पृष्ठ 216 डिमाई, मूल्य 100 रु. सजिल्द) 'दो शब्द' का प्रथम पृष्ठ। ज्योतिबाफुले नगर राजनीति की सृष्टि है; न इतिहास से लेना एक, न साहित्य से देना दो! वैसे, फुले पूज्य व्यक्ति हैं।

बालसाहित्यकार एवं ग़ज़लकार निरंकारदेव 'सेवक' (बरेली), श्री होरीलाल शर्मा 'नीरव' (शाहजहाँपुर), मास्टर रामकुमार अग्रवाल (मुरादाबाद), साहिर चाँदपुर, श्री भूपराम शर्मा 'न्यूप'[1] (बदायूँ), श्री मदनमोहन व्यास (मुरादाबाद) एवं श्री बाबूसिंह चौहान (बिजनौर)। ग्रन्थान्त में अखिल भारतीय साहित्य कला मंच मुरादाबाद के विषय में उपयोगी जानकारी दी गई है। इस संस्था ने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं, जिनमें 'संस्कृत-महाकाव्यों में राम का स्वरूप' (डॉ. अन्जु सक्सेना), 'गुरु गोविन्दसिंह के काव्य में भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व' (विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'), 'प्रो. विश्वनाथ शुक्ल अभिनन्दनग्रन्थ' (सं. डॉ. महेश 'दिवाकर'), 'कथाकार नागार्जुन' (डॉ. ज्ञानेशदत्त हरित) एवं 'सुमित्रानन्दन पन्त का वैचारिक व्यक्तित्व' (डॉ. किरण गर्ग) विशेष उल्लेखनीय हैं। मंच के वर्तमान स्वरूप (संस्था-संबद्ध व्यक्ति), परामर्श-मंडल, सम्मानित साहित्यकार-सूची इत्यादि से संस्था के व्यापकत्व का बोध भी होता है, घनत्व का भी। किसी-न-किसी रूप में संस्था ने सारे भारत को संपृक्त कर रखा है।

डॉ. महेश 'दिवाकर' (25 जनवरी, 1952) संस्था-प्रणेता, प्रकाशक, सम्पादक के त्रित् में एक विलक्षण व्यक्ति तो हैं ही, कवि (विशेषतः दोहाकार) एवं आलोचक के रूप में भी स्मरणीय हैं; किन्तु हिन्दी-कहानी पर स्फीत शोधकर्त्ता के रूप में उन्हें विशेष महत्त्व प्राप्त होना चाहिए ('हिन्दी नयी कहानी का समाज़शास्त्रीय अध्ययन' एवं 'बीसवीं शती की हिन्दी-कहानी का समाज-मनोवैज्ञानिक अध्ययन' शीर्षक स्फीत पीएच. डी. एवं लिट्, शोधप्रबन्ध प्रमाण हैं)। राय कृष्णदास, डॉ. श्रीकृष्णलाल, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल, डॉ. नामवर सिंह, डॉ. रामाश्रय सविता, डॉ. महेश 'दिवाकर' हिन्दी-कहानी के विशिष्ट विवेचक हैं और इनमें से भी डॉ. महेश 'दिवाकर' की स्फीति असाधारण है। रायकृष्णदास का कहानी-विवेचन प्रातिभ-अद्वितीयता का अशेष स्मारक है, डॉ. श्रीकृष्णलाल एक विद्वान् विवेचक हैं, डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल कहानी के फेर में नाहक़ ही पड़े (लोग उनकी यह बेगार ठीक ही भूल गए), डॉ. नामवर सिंह का हरफनमौलापन भी साम्यवाद से आच्छन्न रहता है, रामाश्रय सविता ने निष्ठापूर्ण परिश्रम किया है, डॉ. महेश 'दिवाकर' ने जीवनांश-अर्पण।

'अनुभूतियाँ' (1998 ई.) शीर्षक संग्रह में, अस्सी कवियों-कवयित्रियों के संक्षिप्ततम परिचय के साथ, एक या दो रचनाओं की, व्यापक अखिल भारतीय आयाम में, प्रस्तुति के द्वारा सम्पादक-द्वय अनिल शर्मा 'अनिल' एवं विमलेश 'अनिल' ने रुहेलखंड को सारे भारत से जोड़ा है। इस प्रयास की अपनी रंगत है! रचनाओं का चयन अच्छा हुआ है। इन्द्रधनुष साहित्यिक संस्था, धामपुर (बिजनौर) के इस प्रकाशन की छटा वास्तव में बहुरंगी है, भले ही यत्र-तत्र मौलिकता संदिग्ध हो! किनौनी जनपद मुजफ्फरनगर में 2 जनवरी, 1942 को जन्मे राजकुमार 'रसिक' की हिन्दीसेवा भी बिजनौर में भी हुई है; वे एक उत्कृष्ट कवि (गीतकार-ग़ज़लकार) एवं उपन्यासकार हैं।

रुहेलखंड हिन्दी-ग़ज़ल की दृष्टि से उर्वर रहा है। 'सरफ़रोशी की तमन्ना' के मानवीकरण अमर शहीद पं. रामप्रसाद 'बिस्मिला', जिगर मुरादाबादी इत्यादि से निश्तर खानक़ाही, सरदार आसिफ़ इत्यादि तक के प्रमाण उपलब्ध हैं। 'रुहेलखंड के स्वातन्त्र्योत्तर प्रमुख साहित्यकार' में अनेक ग़ज़लकारों का समावेश स्वाभाविक है। हिन्दी-ग़ज़ल हिन्दी और उसकी बिगड़ैल बेटी उर्दू में मेल-मिलाप तो कराती है, किन्तु भय है कि जवानी का जोश माता के प्रौढ़त्व पर हावी न हो जाए। उर्दू जोशोख़रोश की जुबान हो सकती है, इश्क़बाजी में लासानी हो सकती है; किन्तु उसमें भारत की प्राचीनता को व्यक्त करने का सामर्थ्य नहीं है, भारतीय संस्कृति की अद्वैतमूलक सर्वव्यापकता का उद्‌गार बनाने का सामर्थ्य नहीं है। उसकी सीमाएँ ग़ालिब (उर्दू के विहारी) और मीर (उर्दू के देव) तक हैं, तुलसी-सूर-कबीर-प्रसाद तक नहीं। उर्दू में किसी वाल्मीकि या व्यास या कालिदास तथा होमर या दांते या शेक्सपीअर तथा फ़िरदौसी की कल्पना नहीं की जा सकती। ये तो दूर, उर्दू में कोई रवीन्द्र भी नहीं है। भारत की भाषा है। वह ग़ालिब और मीर की भाषा ही नहीं है, नसीम और चकबस्त की भाषा भी है। वह इक़बाल और फ़ैज़ की भाषा ही नहीं है, फ़िराक़ गोरखपुरी और नूर लखनवी की भाषा भी है। ग़ालिब और मीर आगरा में पैदा हुए थे! पर उसे हिन्दी के आच्छन्न करने का अधिकार नहीं।

डॉ. कुमार विमल

बिहार के वरिष्ठ साहित्यकारों में डॉ. कुमार विमल (12 अक्टूबर, 1931, कालूचक-विश्वपुरिया, भागलपुर) का नाम भी आदरपूर्वक लिया जाता है। 'सौन्दर्यशास्त्र', पर उनका 'प्रस्थान'-कार्य उद्धरण बहुल एवं पश्चिम-अभिभूत होने पर भी उल्लेखनीय है। 1949 ई. में प्रकाशित 'अंगार' (कविताः चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह-राजगुरु-सुखदेव की त्रयी, गणेशंकर विद्यार्थी की

शहादत के वर्ष में जन्मे कवि 'अंगार'-वर्षा दिनकर से प्रभावित होने पर भी 'स्वाभाविक'-सी मानी जा सकती है—संयोगात् 1931 ई. में बीसवीं सदी के सरदार की अध्यक्षता में हुई कराची-कॉंग्रेस कम-से-कम प्रस्तावों में तो 'क्रान्त' थी ही), 1956 ई. में प्रकाशित 'मूल्य और मीमांसा' (निबन्ध) तथा कहानी, आलोचना इत्यादि में भी लेखन उनकी नानाआयामी लेखन-शक्ति को उजागर करता है। सृजनेतर क्षेत्रों में व्यस्तता के कारण उनका साहित्यकार रूप दब-सा गया तथा किसी भी विधा में कोई पाएदार कम न हो पाया। किन्तु उन्होंने जो भी लिखा है, ठीकठाक लिखा है। उनकी अधिकतर कविताएँ बीसवीं सदी के अधिकतर कवियों की अधिकतर कविताओं के सदृश बेजान हो सकती हैं, किन्तु कई जानदार भी हैं। चमचे के दो चावल देखिए:

1. **द्रष्टा**
एक पत्ता काँपता थर-थर
गया झर
गाछ से
कुछ-कुछ सिकुड़कर।
यही पत्थर
नए पल्लव को सिरजता।
इसी क्रम और अनुक्रम की ऋचा में
सृष्टि का संगीत पलता।
डाल पर चुपचाप बैठा
मृदुल, चिकना, सुआपंखी
एक हासिल—
थका-माँदा और एकाकी—
देखता,
महसूस करता शांत, गुमसुम
ऋत, ऋता, ऋतु की सुनहली शिंजिनी
का स्वन।
सनन सन मुग्ध मादक पवन।

2. **गिरह बर गिरह**
फूल देखे
शूल देखे
और कितने कूल देखे!
समन्दर में औ नदी में
तैरते, फिर डूबते जलयान
के मस्तूम देखे।
यह अचल जीवन रहाः
कितने उदय औ' अस्त देखे।....[1]

हर्ष है कि ग़ज़लबाज़ी के दौर में जब पेट्रोलडॉलरी-भाषा उर्दू-ए-मुअल्ला ने बहुतेरे छुटभैयों को नासिख़ और ग़ालिब के हाथ और गज़ भर-भर के पाँवों वाले जूतों में बित्ते और हाथ भर-भर के पाँव डाले घिसटकते और थकते देखा, भाषागत-दोगलापन 'प्रगति' का

---

[1] समय (लघु-त्रयमासिकी, अक्टूबर-दिसम्बर, 1999 अंक, सं. अनिरुद्धप्रसाद 'विमल', डॉ. कुमार विमल अंकः ''विमल ने 'विमल' से न्याय का दायित्व निभाया''—रामप्रसाद मिश्र), पृष्ठ 3-4।

प्रतीक बन गया, संविधान की हिन्दी तड़पती और सर पीटती रह गई, तब भी कुमार विमल 'समन्दर' (बॉलीवुड वाले) में डूबे नहीं! पर ज़माने की रफ़्तार का मामूली असर पड़ा अवश्य है।

विजयसिंह 'पथिक'

गूजर बन्धुओं के अनुसार, वे गुर्जर-प्रतिहार क्षत्रियों या राजपूतों से संपृक्त हैं। 'गूजर' शब्द स्वयं में अतीत गौरवशाली हैः भारत का गुजरात राज्य, भारतपुत्र पाकिस्तान का गुजरात जनपद तथा वहीं का इतिहास विख्यात गुजरानवाला इत्यादि प्रमाण हैं। उनका यह दावा कि सरदार पटेल गूजर थे, विवादस्पद है क्योंकि कुर्मी भी ऐसे ही दावेदार हैं। इस समय भी कई छोटे-मोटे गूजर-नेता विद्यमान हैं। किन्तु स्मरणीय क्रान्तिकारी, आर्य-समाजी नेता, पत्रकार बहुविधाकार एवं कवि विजयसिंह 'पथिक' (27 फरवरी, 1882, गुठावली कलाँ ज़िला बुलन्दशहर, उ. प्र. देहान्त 28 मई, 1954) निस्सन्देह एक महान् गूजर एवं एक महान् भारतीय थे। कुछ न्यस्त-स्वार्थग्रस्त तत्त्व उनके महान् व्यक्तित्व से क्षुद्र जातिवादी लाभ उठाने के फेर में पड़कर अपनी क्षति कर रहे हैं। उन पर विवरण कहीं अतिरंजित हैं, कहीं घटिया। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि 'पथिक' ने विशेषतः राजस्थान तथा सामान्यतः देश के अन्याय भागों में सशस्त्र क्राान्ति के अनेक संघर्षों में भाग लिया। रासबिहारी बोस से उनका सम्पर्क था। वे गाँधी से भी मिले थे। क्रान्तिकारी के रूप में उन्हें पकड़वाने पर उस समय के 15,000 रु. का ब्रिटिश इनाम तथा बिजौलिया (मेवाड़, राजस्थान) सत्याग्रह उनके गौरव के प्रतीक हैं। श्री रामप्रसाद राठी के अनुसार उन्होंने 'नवीन राजस्थान' एवं 'राजस्थान सन्देश' पत्र भी निकाले तथा जेल में 21 तथा बाहर 9 अर्थात् 30 ग्रन्थों की रचना की जिनमें 1 अंग्रेज़ी का 'व्हेअर आर इंडियन स्टेट्स[1]? भी सम्मिलित है। 'पथिक' जी के ग्रन्थों में 'प्रह्लाद-विजय' महाकाव्य, 'अजयमेरु' ऐतिहासिक उपन्यास, 'कल्पना-कल्लोल' गद्यगीत, 'पथिक-प्रमोद' (भाग 1-2) कहानीसंग्रह, 'पथिक-निबन्धावली' (भाग 1-2), 'पथिक-विनोद' (भाग 1-2-3) का कवितासंग्रह प्रमुख हैं। 'वेदों में विश्व-इतिहास', 'राजस्थान की मूल संस्कृति' उनके अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ हैं। पूँजीवाद ने भारतीय चिकित्सा-प्रणाली को नष्ट करके, आयुर्वेद के 3000 से 4000 तक की बड़ी संख्या में नुस्खे चुराकर तुलसी, बबूल, अदरक, नीम, हल्दी, इसबगोल वगैरह की तस्करी कर, यहाँ की निर्धन जनता को निरुपाय एवं धनी जनता को विवश कर दिया है; ऐसे में 'पथिक' जी का 'गाँव के हकीम जी' ग्रन्थ बरबस याद आता है!

यह भी एक संयोग है कि उनका जन्मदिवस 1931 ई. में शहीद-सम्राट् चन्द्रशेखर 'आज़ाद' का बलिदान-दिवस बना!

निस्सन्देह, विजयसिंह 'पथिक' एक गौरवशाली इतिहास-पुरुष थे। स्वातन्त्र्य-सेनानी, कवि एवं बहुविधाकर के त्रित् में उनका व्यक्तित्व सादर-स्मरणीय है। उनका राजस्थानी राजाओं से संघर्ष उन्हें हीरालाल शास्त्री, जयनारायण व्यास, माणिकलाल वर्मा इत्यादि की पंक्ति में प्रतिष्ठित करता है (यद्यपि वे राजस्थानी न थे)। उनके क्रान्त-कार्यक्षमता के द्योतक थे। उनकी प्रतिभा उल्लेखनीय थी।

'पथिक' जी की कविता मानक भाषा में प्रेरक विषयों को कलात्मक शैली में व्यक्त करती है। आर्यसमाज से उनका गहरा सम्बन्ध था। कविता पर भी प्रभाव स्पष्ट है। उदाहरण देखें :

> लिख मनचाहे लेख, लेखनी! किंतु रहे यह ध्यान।
> लेख वही जो हृदपट से तजे न अपना स्थान।।
> जो पढ़ने में ही हो जावे अंकित हृदय-पटल पर।
> जब देखो तब खिलें सुमन नव जिसके मिले अतल पर।।
> 'पथिक' मनों में भी जो शुचि स्वर्गीय भाव सरसा दे।
> कायरता के मरुस्थल में भी शौर्य-सुधा बरसा दे।।
> लेख लेख क्या, कमरिख-सम जो न अमिट हो जावे।
> काव्यकुंज क्या जिसमें आ ऋतुपति न भूल पथ जावे।।

---

[1] राठी जी ने 'वेयर आर इंडियन स्टेट्स' लिखा है। उनका लेख 27 फरवरी, 2000 के 'चेतना मंच' नोइडा (पृष्ठ 2) में छपा है। इसी पृष्ठ पर 'पथिक' की उपेक्षा' शीर्षक सम्पादकीय अतिजातिवादी हो गया है। इसी के नीचे 'लिख मनचाहे लेख 'शीर्षक से 'पथिक जी की अष्टपंक्तिय कविता छपी है। 28 फरवरी, 2000 को मुखपृष्ठ पर 'पथिक' जी के जन्मस्थान पर प्रतिष्ठित साढ़े-नौ फुट की विशाल मूर्ति का चित्र और समाचार दिया है।

सीताराम चतुर्वेदी

नाट्यशास्त्र के स्फीत व्याख्याता, काव्यशास्त्र के स्फीत विवेचक, स्फीत नाट्यकार, स्फीत लेखक, स्फीत अनुवादक (‘कालिदास-ग्रन्थावली’ के अमर प्रस्तोता), स्फीत गुरु आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी (17 जनवरी, 1907, काशी फरवरी 2005 रेलयात्रा करते—मूलस्थान एवं निवास मुज़फ़्फ़रनगर) शरीर से भी स्फीत रहे हैं :

अवयव की दृढ़ मांसपेशियाँ ऊर्जस्वित् था वीर्य अपार
स्फीत शिराएं स्वस्थ रक्त का होता था जिनमें संचार।

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में अनेक रचनाकार भव्य एवं विशाल व्यक्तित्व के स्वामी रहे हैं: निराला, दिनकर, अज्ञेय, राहुल जैसे। बनारसीदास चतुर्वेदी एवं सीताराम चतुर्वेदी इनकी पंक्ति में ही सुशोभित हैं। ‘‘प्रलंबतर मूर्खतर’’ (टॉलर द फूलर अधिक लम्बाई से हृदय-मस्तिष्क अधिक दूर हो जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से भी ‘टॉलर द फ़ूलर’ का विवेचन हुआ है।) की कहावत भी ऐसे सन्दर्भों में मिथ्या सिद्ध हो जाती है, ‘‘पैर बड़ा गँवार का, सर बड़ा सरदार का’’ तो खैर स्थूलतः भी ग़लत है ही। पन्त, डॉ. रामकुमार वर्मा, बच्चन इत्यादि भी व्यक्तित्व-सम्पन्न रहे। मैथिलीशरण, प्रसाद, हरिऔध, महादेवी इत्यादि के व्यक्तित्व सामान्य थे। आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी का तेजस् असाधारण था, डीलडौल साधारण रत्नाकर भारी सेठ लगते थे। आ. रामचन्द्र शुक्ल एवं आ. श्यामसुन्दरदास सरकारी दफ़्तर के बड़े-बाबू लगते थे, आ. नन्ददुलारे वाजपेयी एवं डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी ‘पुरबिया सांसद’, डॉ. रामविलास शर्मा पुराने-पहलवान। कई साधारण पर तिकड़म के बल पर ‘जाने-माने’ कवि एवं लेखक तो देखने में गुंडे या लुच्चे या चरबाँक या ठग तक लगते रहे हैं। कुछेक क्लीब, कुछ स्त्रैण। सृष्टि की विलक्षणता! अच्छा हो, ‘हिन्दी साहित्य के विशिष्ट व्यक्तित्व’ जैसा शोध या आलोचना-ग्रन्थ लिखा जाए: सैनिक-कवि चन्द्रवरदायी, पंडित-कवि विद्यापति, फ़क़ीर-कवि कबीर, अतिकुरूप-कवि जायसी, लम्बे पर कन्धों से झुके गौरवर्ण सूर, दीर्घकाय-अतिगौर-अतिसुन्दर तुलसी, भव्य वाद्यवाहि जी मीराँ, शाही रहीम, भारी-दरबारी केशव एवं बिहारी तथा भूषण एवं मतिराम, रूप-अन्वेषणरत सामान्याकार देव गवैया, भक्त घनआनन्द, करोड़पति सामान्याकार तथा अनन्तर कुष्ठपीड़ित पद्माकर, सामयिक अभिनेता भारतेन्दु एवं प्रतापनारायण मिश्र इत्यादि के रूप-रंग ज्ञात हों तो क्या हर्ज़? ‘हिन्दी-सहित्यकारों’ के परिधान’ पर भी उत्कृष्ट सचित्र ग्रन्थ अथवा शोधकार्य किया जा सकता है।

स्फीत व्यक्ति-गुरु आ. सीताराम चतुर्वेदी स्फीत शिष्य-गुरु भी हैं: रामबहोरी शुक्ल, बच्चन, करुणापति त्रिपाठी, शिवप्रसाद मिश्र ‘रुद्र काशिकेय’, मोती बी. ए. (मोतीलाल उपाध्याय), निरंकारदेव ‘सेवक’, डॉ. किशोरीलाल गुप्त, केदारनाथ शुक्ल, डॉ. भगवतीप्रसाद सिंह, डॉ. रामलाल सिंह, डॉ. कृष्णदेवप्रसाद उपाध्याय (डॉ. कृष्णदेव, उपाध्याय) के नाम ‘चतुर्वेदी-यशसिन्धु’ (सीताराम चतुर्वेदी अभिनन्दनग्रन्थ) में सम्पादक डॉ. किशोरीलाल गुप्त ने स्वयं गिनाए हैं।[1] शतशः स्फीत चतुर्वेदी जी की ग्रन्थसंख्या भी स्फीत है, ‘‘डेढ़ सौ से अधिक’’।[2]

सीताराम चतुर्वेदी ने 53 नाटक लिखे हैं जिनमें ‘बेचारा केशव’, ‘बसन्त’, ‘वाल्मीकि’, ‘रज़िया’, मंगल-प्रभात’ ‘उत्तर-कालिदास (विक्रमादित्य)’, ‘अंगुलिमाल’ ‘भगवान् बुद्ध (गीतिनाट्य)’, ‘सिदार्थ’, ‘शबरी’, ‘सेनापति पुष्यमित्र’, ‘जय सोमनाथ’, ‘मीराबाई’, ‘आचार्य विष्णुगुप्त’ इत्यादि प्रकाशित हुए हैं। अप्रकाशित नाटक, रेडियो-नाटक इत्यादि में से कुछ उल्लेखनीय हैं: ‘हर्षवर्धन’, ‘बापू’, ‘तुलसी का वैराग्य’, ‘प्रसाद’ इत्यादि। उनकी जीवनियों में हिन्दी तथा अंग्रेज़ी दोनों में लिखित ‘पंडित मदनमोहन मालवीय’ प्रमुख है। उन्होंने उपन्यास, कहानी, निबन्ध, चंपू, प्रबन्धकाव्य, धर्मकथाग्रन्थ, समीक्षाग्रन्थ, काव्यसंग्रह-सम्पादन, पर्यटन-निर्देशिकाएँ, हिन्दी-साहित्येतिहास, इतिहास, भाषाविज्ञान, नागरीलिपि, समीक्षाशास्त्र, शिक्षाशास्त्र इत्यादि पर जो ग्रन्थ लिखे हैं, वे बस लिखे हैं। हाँ, ग्रन्थावली-प्रस्तुति में वे सर्वाधिक स्मरणीय हैं: ‘कालिदास-ग्रन्थावली’ तो एक क्लासिक ही बन गई है, ‘तुलसी-ग्रन्थावली’ (तीन खंड) और ‘सूर-ग्रन्थावली’ (पाँच खंड) अपनी उपादेयता में अप्रतिम हैं।

महामन्त्री भारती परिषद् प्रयाग ने चतुर्वेदी जी की इच्छा के विरुद्ध की। ऐसी अवज्ञा धन्य है! उक्त शिष्य

[1] इस अमूल्य ग्रन्थ की प्रस्तुति स्व. श्रीधर शास्त्री, नाम, आरम्भिक सामग्री के अनन्तर, पृष्ठ 1 में है।

[2] वही।

अनाप-शनाप लिखने के कारण चतुर्वेदी जी 'प्रस्थान' की सूचना कहीं नहीं दे पाए। सब विषयों पर कलम चली तो, पर व्यवसाय की लपेट में आ गई। उन-जैसे दिग्गज विद्वान् का अपने साथ ऐसा अन्याय विचित्र लगता है। अन्ततः, उनकी रचनाओं से कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं :

1. सरस्वती-वन्दना

(कल्याण राम)

वीणावादिनि, राग जगा दो।
जनमानस का कल्मष धोकर,
भाव अभावन त्वरित भगा दो।
धवल-वेश नव उज्ज्वल शोभा,
धवल कांति बुध-मानस लोभा
धवल-हंस-वाहिनी, धवल गति,
धवल कीर्ति का मौर लगा दो।

2. प्रगतिवादी काव्य

यह नई आग, यह नई आग
यह लाल चीन, वह लाल रूस
है लाल ध्वजा जन-रक्त-चूस
मानव का तन-मन गया जाग।
मज़दूर किसानों की टोली
है खेल रही कैसी होली
देखो पूँजीपति गया भाग।
मच गया क्रांति का महायुद्ध
हो गई रूस की विजय शुद्ध
कौवों का फिर-से छिड़े राग।
वोल्गा के है इस पार नरक
उस पार स्वर्ग की नई सड़क
जय जय इस्टैलिन[1] महाभाग।
उस ईश्वर की ऐसी-तैसी!
है कहाँ धर्म, संध्या कैसी?
तुम बनो साँड़, तुम बनो काम!

3. हिन्दी तो भाषाओं के उस समूह का नाम है जो आर्यावर्त में बोली जाती हैं।

4. हिन्दी वास्तव में उस भाषा-समूह का नाम है जिसके अन्तर्गत पंजाबी, राजस्थानी, ब्रज, अवधी, मैथिली, मगधी, बुन्देलखंडी, छत्तीसगढ़ी, उर्दू तथा बस प्रादेशिक भाषाएँ और बोलियाँ आती हैं।[2]

5. कुछ दिन पूर्व हिन्दी की एक प्रसिद्ध संस्था में ऐसा प्रस्ताव रखा गया था कि केवल नागरी (खड़ीबोली) को ही हिन्दी के अन्तर्गत स्थान दिया जाए, किन्तु सभी ने बुद्धिमत्तापूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया, क्योंकि साहित्य के क्षेत्र में उस साहित्य, को अलग नहीं किया जा सकता जिसका वर्तमान हिन्दी से बहुत पुराना सांस्कृतिक सम्बन्ध रहा है और जिसने हिन्दी साहित्य के भंडार को समृद्ध किया हो।

---

[1] स्टालिन सेविएट यूनिअॅन के महान् नेता थे जो 1953 ई. में गत हुए, किन्तु कालान्तर में उनकी घोर अवमानना हुई। भारत के विजातीयवादी कॉम्युनिस्ट उनके जीवनकाल में अन्धश्रद्धा से ओतप्रोत रहे।

[2] पंजाबी और उर्दू को संविधान में पृथक् भाषाएँ माना गया है।

केशरीनाथ त्रिपाठी

उत्तर प्रदेश विधानसभा के अपने प्रखर निर्णयों हेतु प्रसिद्ध पूर्व-अध्यक्ष एवं प्रदेश भारतीय जनता पार्टी के प्रधान केशरीनाथ त्रिपाठी (10 नवम्बर, 1941, इलाहाबाद) ने वकालत में भारी नाम कमाया है। 'द रिप्रेजेन्टेशन ऑफ़ पीपुल एक्ट—1951' (जनप्रतिनिधित्व अधिनियम—1951 ई.) ग्रन्थ उनके विधि-ज्ञान एवं अंग्रेज़ी अधिकार की सूचना देता है। 1997-98 ई. में उत्तर प्रदेश विधानसभा की घटनाओं पर उनके दलबदल-सम्बन्धी विचारों का लोहा उच्चतम न्यायालय तक को मानना पड़ा तथा संकीर्णतम विचारधारा के पोषक तत्त्व मुँह बाकर निष्क्रिय हो गए: माया संसार को नचाती है किन्तु केशरीनाथ ने माया को नचा दिया! किन्तु त्रिपाठी जी एक सहृदय कवि भी हैं, जिनकी तिरपन कविताओं का संग्रह 'मनोनुकृति' एक प्रौढ़ कृति है, जिसमें व्यापक जनसंवेदन, मार्मिक ग्रामचित्रण, विशद राष्ट्रवाद एवं प्रभावी अस्मिता के दर्शन होते हैं। 'प्रस्थान' तो समूची बीसवीं सदी (ई.) में मैथिलीशरण (साकेत, यशोधरा, भारत-भारती), प्रसाद (कामायनी), निराला (दलित-संवेदन) एवं पन्त (सुन्दरम्-प्रधानता, अरविन्द-दार्शनिकता) में हो पाते हैं, अतः त्रिपाठी जी में नहीं तो कोई चिन्तन-बिन्दु नहीं; किन्तु कथ्य एवं विवृति दोनों में अस्मिता सर्वथा स्मरणीय है। 2000 ई. के इधर-उधर के राजनीतिज्ञ हिन्दी कवियों (विदेशी शैली में जातिवादी ज्वाला के दाहक विश्वनाथप्रतापसिंह तथा देशी शैली में निरुपाय-सत्ता के प्रतीक अटलबिहारी वाजपेयी समेत) केशरीनाथ त्रिपाठी का नाम अवश्य लिया जाएगा। बानगियाँ देखें :

1. अक्षर-अक्षर भाव भरे सागर से गहरे
शब्द सँजोकर मन से निकल गीत हो गए।[1]

2. अँधेरे में
अपनी ही उँगलियाँ पकड़े
घूमते हैं इधर से उधर
और ढूँढ़ते हैं, तोड़ने को
चक्रव्यूह का सातवाँ द्वार।…
ढूँढ़ना है तो ढूँढ़ो
देश की माटी को
इसकी परिपाटी को
माटी की सुगंध को
मानव से मानव के
टूटे संबंध को
और उनमें जोड़ो
संस्कृति और संस्कार
फिर अपने-आप टूट जाएगा
चक्रव्यूह का सातवाँ द्वार।[2]

3. मैं वह इंसान हूँ
जो रोज़ मर जाता हूँ
और श्मशान जाकर
रोज़ जी जाता हूँ।[3]

---

[1] 'मनोनुकृति' का शीर्षक-स्पष्टीकरण। मुझे 'मनोनुकृति' शीर्षक बहुत अच्छा लगा: पहले मन में भाव की आकृति तब लेखनी में उसकी कृति! यह प्लेटो की स्थूल-अनुकृति (अनुकरण-सिद्धान्त) नहीं जिसकी आलोचना उनके अजर-अमर शिष्य अरस्तू तक ने की थी; यह सूक्ष्म आत्मबिम्ब-अनुकृति है।

[2] साम्यवादी मुक्तिबोध 'अँधेरे में' रहे। इसे मौलिक कविता में प्रकाश है, जो विजातीयतावादी नहीं।

[3] व्यक्तित्व-विखंडन स्वतन्त्र भारत का अभिज्ञान बन गया है।

1. "पंख फड़फड़ा कर पखेरू हैं उड़ चले
रँभा रही हैं गायें भी छप्परों तले
साँकलें खनक रहीं; मुर्गे की लगी बाँग
उठ रहीं चारपाइयाँ, उठ रहे बिछान
चल पड़ा है खेत को हल लिए किसान
ओस सिंची भूमि पर पाँव के निशान
लो आ गया बिहान।"
कुछ ने लिए गँड़ास, चलो कुट्टियाँ काटें
सुतुही व पहुसुली की धार, सब्जियाँ काटें
दालान में चली बहुरिया दही बिलोने
मूसल से ओखली में कोई धान कूटने
पीसे कोई चकरी में दाल, जाँते से आटा
चहुँ ओर दीखता यहाँ है कर्म का सम्मान
लो आ गया बिहान।

'बिहान' कविता का देशकालचित्रण एवं शब्दचयन विलक्षण है तथा यह ग्रामचित्रण की बेजोड़ कविता बन पड़ी है। मैं इसे 'मनोनुकृति' की सर्वोत्तम कविता मानता हूँ।

शकुन्तला सिरोठिया

श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया को प्रणाम—
साहित्यिक प्रतिभा और मानवता की धाम!
श्रीमती शकुन्तला सिरोठिया को प्रणाम—
भारतीय नारीत्व मूर्तिमंत अभिराम!
(रामप्रसाद मिश्र)

संवेदनशील कवयित्री, उल्लेखनीय गद्यगीतकार एवं एक शीर्षस्थ बालसाहित्यकार श्रीमती सिरोठिया (15 दिसम्बर, 1915, कोटा, 5 जून, 2005 देहान्त एवं निवास इलाहाबाद) का व्यक्तित्व अपने समग्र में महिला-साहित्यकारों में विलक्षण है। गीत में वे विद्यावती मिश्र, विद्यावती 'कोकिल', चन्द्रमुखी ओझा 'सुधा' इत्यादि के समीप हैं; 'नयी कविता' में उनकी शालीनता शीला गुजराल, दुर्गावतीसिंह, स्वरूपकुमारी बख़्शी[1] का स्मरण कराती है (मतलब कि पुरुष पुरुष के विरुद्ध मधुरिमा सिंह, सुदर्शन प्रियदर्शनी, मालती शर्मा के सदृश जिहाद नहीं); गद्यगीत में वे दिनेशनन्दिनी डालमिया, राकेशनन्दिनी गुप्त के साथ बैठी दिखाई पड़ती हैं। बालसाहित्यकारों में वे निरंकारदेव 'सेवक', द्वारिकाप्रसाद महेश्वरी, चक्रधर 'नलिन' जैसी एक मूर्द्धन्य एवं स्फीत रचनाकार हैं। लोरी-रचनाकार के रूप में निरंकारदेव 'सेवक' ने उनकी उचित प्रशस्ति की है। पन्त, रामकुमार वर्मा, महादेवी, लक्ष्मीनारायण मिश्र, अंचल, 'सुधा', जैसों ने उनके गीतों, अन्य कृतियों, गद्यगीतों, बालसाहित्य की प्रशंसा ठीक की है। उन्हें अनेक सम्मान, पुरस्कार, उपाधियाँ प्राप्त होना स्वभाविक लगता है, कृत्रिम नहीं। वे संस्था-संस्थापक एवं हिन्दी-सेवी भी हैं। हिन्दी महिला-साहित्यकारों में महादेवी एवं सभुद्रा में अनन्तर, अपने समाहार में, शकुन्तला सिरोठिया जी अग्रणी मानी जा सकती हैं। प्रेम, विरह, पीड़ा प्रकृति, रहस्य इत्यादि उनके सर्जन की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं। उनकी अनुभूति की सरलता और अभिव्यक्ति की प्रांजलता मन मोह लेती है। वे सर्वत्र धरती से जुड़ी रहती हैं। उनकी स्फीत रचना-राशि में गुणवत्ता का परिमाण सन्तोषजनक है। कविता में 'दीप' 'सुधि के स्वर', 'चाँद इतना हँसा', 'अंश-अंश अभिव्यक्ति', गद्यगीत में 'मेरे परदेसी', 'दर्द का दर्पण' तथा बालसाहित्य में 'काँटों में फूल', 'गा ले मुन्ना', नन्हीं चिड़िया', 'सोन-चिरैया', 'आ री निंदिया', 'माँ मुझको आवाज़ लगाना' इत्यादि कृतियाँ उनकी प्रतिभा में व्यापकता की सूचना अनायास दे जाती हैं। तीन उदाहरण देखें :

---

[1] वे बक्शी लिखती हैं।

1. **जुल्मी बसन्त**

आग लगी वन में नयन भर आए।
टेसू ने कैसे अंगार दहकाए।
तारों की पाँति खिली,
पानी में ज्योति जली,
पुरइन पर चंदा नीहार ढरकाए।
टेसू ने कैसे अंगार दहकाए
बेला ने आह भरी,
चम्पा विरहाग्नि जरी,
सौतन रंगीले बालम भरमाए।
टेसू ने कैसे अंगार दंहकाए।
माथे का सेंदुरा
बिखर गया अँखियन
अँखियन का कजरा
बरस रहा छतियन,
जुल्मी वसंत दई! प्राणों पर आए।

2. **कहाँ लौटूँ?**

अर्धरात्रि है। विकट अंधकार है।
प्रकृति मूक है और दिशाएं स्तब्ध
मन में अशांति का तूफान भरे
उर में सूना संसार लिए
चुपचाप, मौन मैं
चली जा रही हूँ निरुद्देश्य अज्ञात पथ पर!
लौटूँ तो क्यों और कहाँ?
कहीं से आकार मैंने किसी को
उदास नहीं किया तब लौटकर किसको अचानक प्रसन्न
करूँ?
किसी को रुलाकर नहीं आई फिर
निकट जाकर किसको हर्षोन्मत्त करूँ?

3. परदेसी!

जब तुम्हारी याद मुझे अत्यन्त व्याकुल कर देती है मैं तुम्हें पत्र लिखने बैठ जाती हूँ। लगता है तुम मेरे सम्मुख बैठे हो और मैं तुमसे बात कर रही हूँ। कैसी सुखद अनुभूति होती है तब। आत्मा का आत्मा से मिलन। सूक्ष्म का सूक्ष्म में विलय। स्थूल शरीर की बाधा नहीं। जैसे निस्सीम आकाश में स्वच्छन्द पक्षी का उड़ान!''''

डॉ. महेश अवस्थी

अवधी-पुरुष डॉ. महेश अवस्थी (महेशप्रतापनारायण अवस्थी, 5 जनवरी, 1933, चिलौली, जनपद रायबरेली, निवास प्रयाग) ने 'जन-रामायण', 'जन-कृष्णायन', 'महेश-सतसई', 'पँचागुर', प्रभृति अवधी तथा 'प्रेम-प्रकाश', 'काव्यधारा' प्रभृति खड़ीबोली काव्यों द्वारा अपनी वर्णनात्मक एवं प्रेरक क्षमता का अच्छा परिचय दिया है। किन्तु 'अवधी-लोकगीत' (तीन खंड), 'अवधी-लोकगीत-हज़ारा',

'अवधी-लोकगीतों के अनोखे स्वर', 'जात्रा-बरनन', 'जात्रा-वृत्तान्त' प्रभृति के द्वारा अवधी-पुरुष बनना ऐतिहासिक दृष्टि से सर्वथा विशिष्ट है। डॉ. विद्याबिन्दु सिंह का स्फीत अवधी-कार्य भी डॉ. महेश अवस्थी के स्फीततर कार्य से कम प्रतीत होता है। विद्याबिन्दुसिंह में लालित्य एवं रस प्रधान है, महेश अवस्थी में आस्था एवं प्रेरणा; और इस प्रकार दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। सृजनात्मक दृष्टि से विद्याबिन्दु सिंह अधिक कवित्वपूर्ण हैं, महेश अवस्थी अधिक संस्कृति सम्पन्न। उदाहरण देखें :

1. कुँअर करहु परतीति, परनकुटी छाउब ललित।
बनबासिन्ह कै रीति, पालेउ नित रहि निज रुचिहिं।।
मग धारहु मम धाम, एक जन हरषित होइ कहेउ।
होइहि सुख अभिराम, तुम सब कहँ मम ग्राम लखि।।
राम कहा समुझाइ, उचित नाहिं गृह ग्राम मोहिं।
चौदह बरस बिताइ, पुनि पैठब निज पुर सदन।।

(जन-रामायण)

2. माटी केरी गागरी, काहे बहु इतराइ।
बिपति काँकरी के परे, टूक-टूक होइ जाइ।।
क्रोध करे सकती घटहि, अनरथहू होइ जात।
जे नर क्रोधहि करहिं बस, ते समरथ ठहरात।।
क्रोध समर-आँगन करइ, जहाँ देस कै आन।
नाहक क्रोध गँवारपन, कह महेस मति मान।।
नारी कै सम्मान करि, लहत बड़ाई लोग।
सुखी होत परिवार सब, नहिं भय रोग न सोग।।

3. सेस महेस गनेस सुरेस दिनेसहु की महिमा अति भारी।
तेउ सबै रितुराज के आवत अपनी सो मरजाद बिसारी।।
कोकिल कूकि करै अस मान मनौ असमान उठावत डारी।
रंग-रँगीले सबै सजिकैं निकसैं घर ते कर लै पिचकारी।।

(पँचागुर—पिचकारी)

4. छोड़ो दंद-फंद सब व्याकुल न होओ तुम,
दीनों से छीनकर न एक पाई लो।
राम का नाम ले नित्य पेट-पूजा करो
और जिन पसीने की गाढ़ी कमाई लो।।
सबसे करो स्नेह और रहो निश्चिंत हो,
करो परोपकार और नीकी बड़ाई लो।
देश पर छाएं बिपत्ति के बलाहक जब,
तब तुम जागो वीर और अँगड़ाई लो।।

(प्रेम-प्रकाश)

5. मानवता धन्य है,
किंतु मानव का जब पतन होता है,
तो उस-सा क्षुद्र प्राणी कहने में भी
लज्जा का बोध होता है,
नैतिकता का इतना ह्रास।

(काव्यधारा—मानव)

ब्रजबुलि

डॉ. सुकुमार सेन कृत अंग्रेज़ी-शोधप्रबन्ध 'ब्रजबुलि साहित्य का इतिहास' (1935 ई.) के 'प्रस्थान' कार्य के परिणामस्वरूप डॉ. रत्नकुमारी ('सोलहवीं सदी के हिन्दी और बंगाली वैष्णव कवि), श्री रामपूजन तिवारी ('ब्रजबुलि साहित्य'—1960 ई.), डॉ. कणिका विश्वास (विवाहोपरान्त कणिका तोमर-'ब्रजभाषा और ब्रजबुलि साहित्यः तुलनात्मक अध्ययन') तथा इन-सब के आधार पर प्रख्यात शोध-पंडित डॉ. किशोरीलाल गुप्त ('ब्रजबुलि पदावली का इतिहास'[1]) ने विषय पर अच्छी सामग्री प्रस्तुत की है। विद्यापति (1360-1446 ई.) की पदावली के कारण ही ब्रजबुलि का विशेष विकास हुआ, किन्तु प्रमुख कारण चैतन्य महाप्रभु (1542-90 ई.) का इस पदावली का गान एवं प्रायः प्रेमावेगवश मूर्च्छित तक होना रहा। चैतन्य महाप्रभु के व्रज-पर्यटन से विद्यापति की संस्कृतनिष्ठ, तत्परिणामस्वरूप सार्वभौम, मैथिली का ब्रजभाषा से समन्वय हुआ तथा ब्रजबुलि विकसित हुई। नेपाली की ब्रजबुलि तत्त्वतः एवं वस्तुतः मैथिली है; असमिया-ब्रजबुलि-साहित्य महापुरुष शंकरदेव एवं उनके महान् शिष्य माधवदेव में केन्द्रित है; उड़िया में भी चैतन्य महाप्रभु के समकालीन राय रामानन्द (शताधिक पद), प्रतापरुद्र, माधवी दासी, चम्पतिराय, दमोदरदास तथा जागन्नाथदास तक सीमित है; किन्तु बंगाल में इसका व्यापक सृजन बांग्ला-ब्रजबुलि के आदिकवि यशोराज खान[2], मुरारि गुप्त (चैतन्य महाप्रभु के सहपाठी), नरहरिदास सरकार ('पद-कल्पतरु' में प्राप्त), वासुदेव घोष ('पद-कल्पतरु' में प्राप्ति 95 पदों में 12), माधव घोष (रचना नगण्य), रामानन्द वसु, वंशीवदन, वृन्दावनदास (देहावसान लगभग 1650 ई.), माधवदास, द्विज हरिदास, पुरुषोत्तमदास, ज्ञानदास, अनन्तदास, बलरामदास, कानुरामदास, नरोत्तमदास, कृष्णदास कविराज, कवि शेखर राय, कवि रंजन, मोहनदास, बल्लभदास, कवि वल्लभ, कवि राघावल्लभदास, प्रसाददास, श्यामदास, यदुनंन्दनदास, किशोरदास, घनश्यामदास, गोपालदास, सुबलचन्द्र ठाकुर, बलदेवदास (18वीं सदी ई.), प्रेमदास, भुवनदास, नयनाजंद, चन्द्रशेखर (उन्नीसवीं सदी), रवीन्द्रनाथ ठाकुर (1861-1941 ई.—'भानुसिंह' उपनाम से 22 पदों की 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली' जो 1886 ई. में प्रकाशित हुईः रवीन्द्र का भानुसिंह रूप अयोध्यासिंह के हरिऔध रूप जैसा ही है) तक पाँच शताब्दियों में प्रसरित है। बांग्ला के भक्त-कवि कबीर तथा शेख कबीर इत्यादि पर भी चैतन्य छाए हुए हैं। विद्यापति का प्रभाव आरम्भ में बहुत है, किन्तु अन्त तक भी देखा जा सकता है। 'ब्रजबुलि' का शरीर विद्यापति हैं, आत्मा चैतन्य महाप्रभु। रवीन्द्र की ब्रजबुलि में अस्मिता के दर्शन होते हैं:

सजनि सजनि राधिका लो देख अजहुँ चाहिया
मृदुल गमन श्याम आवे, मृदुल गान गाहिया
पिनह जटित कुसुमहार, पिनह नील आँङिया
सुंदरी, सिंदूर देके, सीथि करह राँङिया
सहचरि सब नाच-नाच, मिलन-गीत गाओ रे
चंचल मंजीर राव कुंज गमन छाओ रे
सजनि, अब उजार मंदिर, कनकदीप ज्वालिया
सुरभि करह कुंजभवन, गंध सलिल ढालिया
मल्लिका चमेलि बेलि, कुसुम तुहल बालिका
गाँथ यूथि, गाँथ जाति, गाँथ बकुल मालिका
तृषित नयन भानुसिंह, कुंज पयम चाहिया
मृदुल गमन श्याम आवे, मृदुल गान गाहिया।

मेरे मत से, 'भानुसिंह ठाकुरेर पदावली' की मधुर-भक्ति ही 'गीतांजलि' इत्यादि के रहस्यवाद की मूल थी। प्रसाद ने भक्ति को मिथ्या-रहस्यवाद कहकर स्वयं को द्वैत का आखेट बना लिया है। विद्यापति, सूर, देव, घनआनन्द इत्यादि में रहस्यवाद की विद्यमानता

---

[1] चतुर्वेदी-यशसिन्धु (सीताराम चतुर्वेदी अभिनन्दनग्रन्थ, सं. डॉ. किशोरीलाल गुप्त) में विस्तृत निबन्ध।

[2] गौड़-सुल्तान हुसेनशाह (राज्यकाल 1493-1519 ई.) द्वारा प्रदत्त पदवी, मुसलमानों ने बौद्ध-सूर्योपासक महान् योद्धा चंगेज़ ख़ान (मंगोलिआ—जन्म 1155 ई.) से ग्रहण किया। अर्थ है राजा, नायक-योद्धा, सरदार, नेता।

उन्हें कबीर, जायसी, प्रसाद, महादेवी इत्यादि से कुछ पृथक्-सा ही सिद्ध कर सकती है, एकदम भिन्न नहीं बना सकती। नानक की रहस्य-पदावली तो ब्रजभाषा के निकटतर लगती है, एकाध पद तो रवीन्द्र के प्रेरक-से लगते हैं। यदि हिन्दी-आलोचना, रस-सिद्धान्त के सदृश, अद्वैत-निष्पन्न होती, तो वह एकता के दर्शन अधिक विदग्धता के साथ कर पाती।

भगवतप्रसाद मिश्र 'नियाज'

शिक्षक-शिक्षिका-पुत्र एवं स्वयं शिक्षक भगवतप्रसाद मिश्र 'नियाज' (13 अप्रैल, 1918, राठ जनपद हमीरपुर—मूलस्थान भगवन्तनगर, मल्लावाँ, जनपद हरदोई) की कविताएँ एक शिक्षक की प्रेरक कविता है, जिसमें उद्‌बोधन एवं मानवोत्थान के स्वर प्रधान हैं, कला की भंगिमाएँ प्रायः नहीं। वे एक नन्हें-से मैथिलीशरण गुप्त हैं (जिनसे उनका सम्पर्क भी था)। 'कारा', 'गीत-रश्मि', 'कस्मै देवाय', (खंडकाव्य) इत्यादि के अतिरिक्त उन्होंने ग़ज़ल, बालसाहित्य एवं अनुवाद की दिशाओं में भी अच्छा कार्य किया है। 'कारा' (1950 ई.) उनकी वह खंडकाव्यात्मक कृति है जिसमें 'प्रवेश', शाहजहाँ, 'बहादुरशाह', 'भगतसिंह', 'गाँधी' एवं 'निस्सरण' शीर्षक छह सर्ग हैं। 'कारा' में 'कृष्ण', 'शकटार', 'गुरु हरगोविन्द', 'तिलक', 'सावरकर' जैसे सर्ग होते तो यह महाकाव्यात्मक कृति स्मरणीय बन जाती। फिर भी, 'भागवत', 'गोमान्तक' इत्यादि की परम्परा में 'कारा' का समावेश किया जा सकता है। 'गीत-रश्मि' (1958 ई.) में 1948 ई. से पहले रचे गए बासठ गीत हैं, जिन पर छायावादी रंगत स्वाभाविक है किन्तु जो नेता-स्तुति, राष्ट्रपर्वप्रधानता इत्यादि के कारण चलताऊ भी लगते हैं; वास्तविक काव्य-शोभा प्रकृति और प्रेम के गीतों में ही विवृत हो पाई है। देश-दुर्दशा पर रचित, यत्र-तत्र सहज-निराशावाद-स्पर्शित 'कस्मै देवाय' (1999 ई.) 'आह्वान', 'सत्य', 'धर्म', 'शांति', 'प्रेम', 'अहिंसा' एवं 'अस्थि-कलश' रचनाएँ राष्ट्रवादी हैं। 'दीर्घा' में उन्होंने 'नई' या मुक्त शैली में कुछ बड़ी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें राष्ट्रवाद की प्रधानता है। 'तलाश' ग़ज़लों और राज्यों का संग्रह है। जिनमें मृत्यु का बिन्दु प्रमुख है। 'द ब्रोकेन मिरर ऐंड अदर पोएम्स' में जीवन से समझौता और स्मृति को प्रधानता प्राप्त है। हिन्दी, उर्दू और अंग्रेज़ी, के सफल रचनाकार 'नियाज़' में 'प्रस्थान' तो नहीं है, किन्तु अस्मिता विद्यमान है। वे एक आदरणीय एवं स्मरणीय कवि हैं। वस्तुतः मानवतावाद-परिपुष्ट राष्ट्रवाद भगवतप्रसाद मिश्र 'नियाज़' के काव्य-शरीर का मेरुदंड है। उदाहरण देखें :

1. मैं तो निष्प्राण, निरीह, व्यथित
जग का देखा करती मेला
मेरे प्रांगण में भूपति से
लेकर भिक्षुक तक है खेला।
(कारा)

2. मैं हृदय की कल्पना का
भार लेकर आ गया हूँ
विश्व की अवहेलना का
प्यार लेकर आ गया हूँ।...
विश्व के उद्यान का हूँ
मैं अभागा एक माली
पास जा जिसके यहाँ हर
एक डाली देख डाली।
फूल चुनने को गया था
ख़ार लेकर आ गया हूँ।...
(गीत-रश्मिः मैं हृदय की कल्पना का भार लेकर आ गया हूँ)

3. जहाँ प्रेम है स्वार्थ न होगा।
मन को करो उदार

बनाओ इतना व्यापक
सारा विश्व समा जाए
तेरे अंतर में।

(कस्मै देवाय : प्रेम)

उन्होंने उत्कृष्ट एवं स्मरणीय संस्मरण भी लिखे हैं। पत्र-पत्रिकाओं में सम्मति-लेखक की दृष्टि से भी वे प्रभावी रहे हैं।

रोहिणीप्रसाद मिश्र

प्रगतिवाद एवं अध्यात्मवाद के अभेद-कवि श्री रोहिणीप्रसाद मिश्र (8 जून, 1948, मौहार, जनपद सतना) एक विलक्षण रचनाकार हैं। 'गीत-गंगा' (1982 ई.) अनगढ़ आध्यात्मिक कविता है तथा 'नारायणी' (1989 ई.), 'अभ्यर्थना', 'धूपछाया', 'चेतना', 'अर्चना', 'पंचगंगा', 'आसिक्त', 'पंचगीत', 'निरंजन', 'तमस्', एवं 'प्रभा' शीर्षक दस दलों का आध्यात्मिक-महाकाव्य, जो विशृंखलता में भी 'प्रवद्ध' माना जा सकता है। किन्तु उनका प्रखर प्रगतिवादी रूप 'सूखती नदी' में व्यक्त होता है, जो 1994 ई. में प्रकाशित हुई, जिसमें उत्कृष्ट विम्बालेखन एवं प्रतीक-चयन के साथ उनका श्रमिक-कृषक-नारी-संवेदन अथवा वास्तविक (जातिवादमुक्त) दलित-संवेदना का क्रान्त स्वर उन्हें मुक्तिबोध का एक अनुज सिद्ध करता हैः मुक्तिबोध की कविताएँ लम्बी हैं, कड़ियाँ लम्बी हैं, बिम्ब लम्बे हैं, प्रतीक लम्वे हैं; जबकि रोहिणीप्रसाद जी के छोटे-छोटे। किन्तु दोनों मुँडारा हाथ में लिए आग लगाते फिरते हैं (कबीर की तरह)। क्यों? पता नहीं! भारत का प्रगतिवादी कवि शोषित के प्रति अपार संवेदन से आच्छन्न तो है, किन्तु वह उसकी दुर्दशा के मूल में नहीं जाताः क्या कारण है कि संसार में प्रायः सर्वत्र कृषक-श्रमिक-नारी का उत्कर्ष हुआ किन्तु भारत में नहीं? हर्ष है कि रोहिणीप्रसाद जी ने 'रूस चलो' या 'चीन चलो' का नारा नहीं लगाया। वे भारत की भाटी के कवि हैं तथा ईश्वर इत्यादि के प्रति क्रुद्ध होते हुए भी इनको मटियामेट करने का युद्धघोष अथवा शंखनाद नहीं करते (ऐसा करके शत-शत साम्यवादी कवि मूर्च्छित अथवा कंठ-रक्तश्लथ हो 'चुके' हैं)। आखिर 'यथार्थ-गीता' के विवेचक स्वामी अड़गड़ानन्द के शिष्य हैं! 'सूखती नदी' का शीर्षक दलित-जीवन से पर्यावरण तक के ह्रास की प्रभावी सूचना देते हुए भी आशाविहीन नहीं है–'सूखी नदी' मरी नहीं है (मुझे अपने 'एक सड़ी हुई क़ौम' उपन्यास का ध्यान आता है जो 'एक मरी हुई क़ौम' नहीं है)! 'सूखती नदी' एक कलासम्पन्न एवं प्रभावी कवितासंग्रह है जो रोहिणीप्रसाद मिश्र जी को एक चिरस्मरणीय कवि बना देता है। काव्य रचना के अतिरिक्त, श्री रोहिणीप्रसाद मिश्र ने 'उक्खान' (1994 ई.) शीर्षक बघेली-कहावतों का सुन्दर संग्रह प्रस्तुत कर हिन्दी की उल्लेख्य सेवा की है। कहावतें संबद्ध भाषा की शक्ति की प्रतीक सार्वभौम होती कविताएँ मानी जा सकती हैं जिनसे क्षेत्र का जीवन भी उजागर होता है। 'उक्खान' वस्तुतः 'उक्तिखान' है। उनके काव्यों से उदाहरण प्रस्तुत हैं :

1. भक्ति, चित्त, श्रद्धा जगता मन
शक्ति, शिव, सुंदर लगता तन
मनुज में ही मनुजत्व महान्
शोध कर ईश्वर को पहचान¨

(नारायणी)

2. कामनी को तरसते नमन चाँदनी को तरसता गगन
रागिनी को तरसते श्रवण यामिनी को तरसता वतन
तम उजाले को ढूँढ़ रहा है
ग़म शिवाले को ढूँढ़ रहा है

(गीत-गंगा : अभय-सरोज)

3. कुतिया के
मरियल; पिल्ले-सा
दबाए हुए,
काँख में कसमसाती
कोख–से

सुगबुगाते, भाव
चीथड़ों से
झाँकती देह
प्रतिबिम्बित–प्रसव
हथौड़े से
गिट्टियों को
सस्नेह
कूटते हुए
सघःस्नाता
श्रम-गंगा में
मुकुलित
शतदल-सा
किंतु
तन्मय,
सूखती नदी-सी¨

(सूखती नदी)

4. चमगादड़ी व्यवस्था को
यूँ ही, गीदड़-भभकी से
उल्लू, सीधा कर रहे हैं।

(सूखती नदी : चिमनी से झाँकती)

5. अनजाने ही।
पथ पाने में
सुख होता है।

(सूखती नदी : सिसकती किरण)

6. मनुष्य, पानी का
एक बुदबुदा है।
स्वयं में खुदा है।।

(सूखती नदी : व्यास क्या करेगा?)

डॉ. किशोरीलाल[1] गुप्त

हिन्दी के एक शीर्षस्थ शोधकर्त्ता ('सरोज-सर्वेक्षण', 'शिवसिंह सरोज', 'प्राकृत-पैंगलम् और उसके कर्त्ता हरिब्रह्म', 'हिन्दी साहित्य के इतिहास के मूल स्रोतों का विशलेषण', 18 भागों का बृहद् 'हिन्दी कवि और काव्य', 4 विशाल खंडों में 'हिन्दी कविता का इतिहास', 'गिरिधर कविराय ग्रन्थावली', 'हिन्दी साहित्य के इतिहासों का इतिहास', 'तुलसी और तुलसी', 'प्राचीन हिन्दी काव्यों के उद्धारक संपादक' इत्यादि अनेक प्रमाणों से सिद्ध-प्रसिद्ध) एवं विद्वान् डॉ. किशोरीलाल गुप्त (जून, 1916 ई. सुधवै जनपद भदोही, उ. प्र.) ने 'कामायनी अंग्रेज़ी पद्यानुवाद' भी किया है, ग्रीयर्सन (ग्रायर्सन, ग्रियर्सन) के अंग्रेज़ी-ग्रन्थ का 'हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास' शीर्षक से अनुवाद भी ('प्रथम' का गौरव 'सरोज' को प्राप्त है अतः शीर्षक उचित नहीं)। डॉ. किशोरीलाल गुप्त सन्त-साहित्यकार हैंः पूज्यवर्गीय। किन्तु उनका ब्रजभाषा-कवि रूप भी नितान्त उल्लेखनीय एवं आदरणीय है। प्रयोगवादियों (व्यक्तिवादियों) द्वारा कविता की कपालक्रिया के दुष्प्रयत्न एवं प्रगतिवादियों (साम्यवादियों) द्वारा कविता को विजयातीयतावादी वाद-कारा की वन्दिनी बनाए जाने

---

[1] इलाहाबाद के डॉ. किशोरीलाल का स्मरण आता है जो विद्वान्-लेखक हैं।

के बाद वह शत-शत प्रबुद्ध साहित्यकारों के काम की नहीं रहीः पश्चिम का उच्छिष्ट क्यों चाटें? जनवादियों ने जनता को कविता से दूर कर दियाः उसमें अपनी माटी की सोंधी-सोंधी सुगन्ध कहाँ? ऐसे में अनेक प्रबुद्धों ने ब्रजभाषा-शरण लीः स्व. गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, गिरीश चतुर्वेदी, किशोरीलाल गुप्त प्रभृति प्रतीक मात्र हैं। अवधी, भोजपुरी, अंगिका, बघेली, कुमाउँनी, राजस्थानी इत्यादि में अभिरुचि का एक कारण यही है। गुप्त जी ने मौलिक ब्रजभाषा-काव्य भी रचा है, अमरूक एवं घटखर्पर के अमर एवं घटरसभर संस्कृत-के काव्य के मनोहारी ब्रजभाषा-अनुवाद भी किए हैं। 'अमरुक-शतक' एवं 'घटखर्पर-काव्य' के सवैया-घनाक्षरी में ब्रजभाषा-अनुवाद सफल हैं। सवैया में विशेष सफलता मिली है। भ्रमरगीत पर नए प्रयोग 'उराहनौ' एवं 'सोनजुही' तथा 'राधा' काव्य उनकी मौलिक कृतियाँ हैं। रस-अलंकार-छन्द के त्रित् में रचनाएँ प्रशस्य हैं। डॉ. किशोरीलाल गुप्त एक चूड़ांत विद्वान् ही नहीं, उत्कृष्ट ब्रजभाषा-कवि भी हैं। सम्मानः

अमरूक शत-शत युगों तक अमर-पात्र।
ब्रजभाषा-ज्योतित हुआ उनका अन्तस्-गात्र।।
जिन कुछ कृतियों से हुआ है रसराज ललाम।
उनमें अमरुक का शतक—कविहृदयों का धाम।।
यमक यमक द्युतिकाव्य है यमक-भीति से मुक्त।
घटखर्पर रसपूर्णता धन्य अलंकृति-युक्त।।
रामचरित[1] चिर-धन्य हैं, धन्य किशोरीलाल।
कविता-रसिकों का सदा झुका रहेगा भाल।।

(रामप्रसाद मिश्र)

अब उदाहरण देखकर सहमति की अपरिहार्यता का सम्मान करें :

1. देखते-देखते बीति गयो दिन, बाढ़न लाग्यो दिसान अँधेरौ
पंथिन ते पथ हीन भयो, गई दीठि जहाँ लौं, लख्यौ बहुतेरौ
आवत देखि न आपनो पीतम, सोक-सनी घर, को डग फेर्यौ।
आए न होइँ वे सोचि तुरंतहि, मोरि गरो, फिरि, ता दिसि हेर्यो (अमरुक-शतक, 74)

2. छाए गए नभ में सजनी, चहुँ ओरन ते बदरा, कजरारे
पीय-विहीन वियोगिनी के हिय के हैं बिदारनवोर ये आरे
भू-रज सों मिलि बरखा-जल धाइ बहैं जिमि पंक-पनारे
सूरज चन्द्र छिपे घन में, (घर कैसे चले परदेसी पिया रे?) (घटखर्पर-काव्य, 1)

3. बाछरू छोरि दयो अपनो; फिर मो ढिग आइकै बातैं बनाई
कान्ह जू साँझ भई, सुरभी सब मेरी सवत्स घरै फिरि आई
देहु हेराय, गयो है हेराय बछा धवरी को, है राम दुहाई
देर करौ जनि, खीझिहै माई, चुभी चित में अजौं सो चतुराई। (राधा, 22)

4. कान्ह-वियोग की छाई अमा, दहकै ज्यों चिता तन धू-धू भयावन
आजु मसान बन्यो ब्रज है, फेंकरैं जनु स्यारिनि-स्यार अपावन
जानि सनेहिनि मोहिं मरी, शव-साधना-साध जगी चित चावन
आए इतै तुम ऊधव जू, गुनि कै, गनि कै, जनु मंत्र जगावन। (उराहनौ, 20)

5. निज रूप की रासि बगारो नहीं; मो बनी को मया कै बिगारो नहीं
मम मानस मो रस गारौ नहीं, रे बिसासी मरे कहँ मारौ नहीं
भ्रम मेरो ढको है, उघारौ नहीं, बिनती इतनी यों निहारौ नहीं
मुखचंद-जुन्हाई पसारौ नहीं; रसमै घन-घूँघट टारौ नहीं। (सोनजुही, 111)

---

[1] आदर्शवादी युग के एक अमर कवि रामचरित उपाध्याय।

महेन्द्रप्रसाद सिंह 'मुकुन्दन'

फल-चतुष्टय महेंद्र का प्रसाद प्राप्तकर
हृदय उल्लास और अतिकृतज्ञता से भर।
'सूर्यारोहण' नियमित, 'तृज्या' की पृथक् विवृति
'अश्वस्थ' चिरप्रतीक, 'विजयपर्व' जीवन-गति।
यह विराट् यात्रा तप-समय चाहती
देखूँगा कैसे और कितना अवगाहती!

—रामप्रसाद मिश्र

'सूर्यारोहण' (1986 ई.), 'तृज्या' (1991 ई.), 'अश्वत्थ' (1994 ई.) शीर्षक सुन्दर-सुप्रकाशित संग्रहों एवं 'विजयपर्व' (1997 ई.) शीर्षक प्रबन्धकाव्य के प्रणेता राजनीतिशास्त्रवेत्ता-कवि डॉ. महेन्द्रप्रसाद सिंह (2 फरवरी, 1942 ओकरी, जनपद गया) 1994 ई. में प्रकाशित 'नोस्टाल्जिआ फ़ॉर इनोसेन्स' ('सौम्यता हेतु मोहकस्मृति' या 'भोलेपन की जादुई-यादें' या? या?....) के अंग्रेज़ी-कवि भी हैं। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कवियों में अज्ञेय एवं 'मुकुन्दन' उनमें विशेष उल्लेख्य हैं जिन्होंने अंग्रेज़ी-कविता भी लिखी है। 'मुकुन्दन' व्यास, कालिदास, दान्ते, तुलसीदास, केशवदास, मिल्टन, ब्रॉउनिग, निराला[1] इत्यादि की 'जाति' के विद्वान्-कवि हैं। उनकी कविता पर अवह्य-विद्वत्ता एवं उत्कृष्ट-बिम्बधार्मिता-प्रतीकायोजन के आरोप लगाए जा सकते हैं। किन्तु वे एक उत्कृष्ट-गहन एवं विशद कवि हैं: बौद्धिकता-प्रधान 'नई' कविता के एक गौरव। डॉ. केदारनाथ सिंह साम्यवादी-राजनीति के कवि हैं, मुकुन्दन व्यक्तिवादी-चेतना के कवि: दोनों तुलनीय भी हैं, वितुलनीय भी। किन्तु अधिक-गम्भीर विद्वान्-कवि होने के कारण मुकुन्दन एक वैज्ञानिक एवं निस्संग समन्वय से निष्पन्न हैं, जबकि केदारनाथ सिंह संकीर्ण-वादबद्धता से। पन्त ने विज्ञान-अध्यात्म-समन्वयकाव्य की पृथक् परिपाटी चलाई जो अरविन्द, भगवानदास, राधाकृष्णन् इत्यादि दार्शनिकों, प्रसाद इत्यादि कवियों, जुंग इत्यादि मनोविज्ञानवेत्ताओं, आइन्सटाइन इत्यादि वैज्ञानिकों द्वारा अनुमोदित थी। मुकुन्दन का स्फीत अध्ययन इससे भी आगे बढ़ता 'अद्यतन'-समन्वयक बन पड़ा है। वे उच्चकोटि के किन्तु कठिन कवि हैं, किन्तु 'ग्रह-ग्रह' के कवि का सरल-कवि होना भी कठिन ही है। उनकी भाषा संस्कृतिनिष्ठ भी है, संस्कृतनिष्ठ भी; गहन-भाषा। शैली में एक सिम्फानी है—खींचाखाँची नहीं।

'सूर्यारोहण' में जीवन की जटिलताएँ तद्वत् बिम्बों-प्रतीकों से निष्पन्न अस्मिता के साथ विवृत हैं। कवि की अज्ञेय, धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, प्रयागनारायण त्रिपाठी इत्यादि कवियों के सदृश व्यक्तिवादी चेतना परिवेशजन्य समाजवाद (वादमुक्त ही सही) से टकराती तो क्या, कतराती तक नहीं: यही 'मुक्त'-सहज जीवनवाद है। व्यक्ति-समाज, राजनीति-धर्म, विज्ञान अध्यात्म के विलोम 'सूर्यारोहण' में, शीर्षक से ही स्पष्ट, आशावाद से संपृक्त हैं :

अकालग्रस्त भूमि में यहीं कहीं
वैभव का कनककुम्भ गड़ा है
जिसे विदेह के हलाग्र का प्रहार
खोद निकालेगा·· (आकाश-मंथन)
चेतना के मधुमास में
गत सीमित और अनागत विस्तीर्ण हुआ जाता है
प्रकृति और प्रवृत्ति के पराक्रमी प्रभंजन में
सीमांत और मर्मान्त एकाकार हो रहे हैं
टनेल के उस पार
जब अरुणाभ उदय होगा
तो सूरजमुखी, गुलाब और हरसिंगार से
दिगंत लदा होगा
कोहरा और तुषार पर
नख-शिख प्रफुल्ल अमलतास खिला होगा।

(आमुख में, 1983 ई. में रचित, 'मधुमास'[2] अप्रकाशित-कविता)

---

[1] असद या ग़ालिब (यह खुद समझें या खुदा) भी यत्र-तत्र क्लिष्ट है; किन्तु संकीर्णायामी, इश्क़-वद्ध, अतः ्र्थवत्ता विशद नहीं है।

[2] 'तृज्या' (1991 ई.) की नवम कविता, किन्तु 'सूर्यारोहण' की परिचायिका।

'सूर्यारोहण' की सामाजिकता से 'तृज्या' की वैयक्तिकता, किन्तु रोमानी नहीं, वैज्ञानिक! यह संग्रह प्रेम की पुलक और प्रकृति के हुलास से भरा-पूरा है। फ्रायड के इड-ईगो-सुपरईगो (काम, अहम्, पराहम्) की वैज्ञानिकता को प्रेम-अविरोधी-रूप में प्रस्तुत कर पाना कवि के गहन यथार्थ-बोध का सूचक है। पर्यावरण-जागरूकता के प्रति सजगता वैज्ञानिक भी है, भावात्मक भी। इस दृष्टि से प्रो. लल्लनप्रसाद भावनाप्रधान हैं। वास्तव में विज्ञान एवं भाव शत्रु नहीं, मित्र हैं। यह सत्य है कि वाल्मीकि रामायण का उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है तथा तुलसीदास तक ने सीता-वनवास (शम्बूक-कथा भी) को अपने मानस में स्थान नहीं दिया, किन्तु यह भी सत्य है कि कालिदास, भवभूति, हरिऔध जैसे वैश्विक, भारतगत, हिन्दी कवियों ने इस पर लिखा है (छोटे-मोटे कवियों के सदृश राजनीति-प्रेरित होकर नहीं)। मुकुन्दन में प्रक्षेप को सत्य माना है। मानव एवं राष्ट्र, प्रेम और प्रकृति, संस्कृति एवं कृति की 'तृज्या' में बौद्धिकता का आतंक अपेक्षाकृत-अल्प तथा संवेदशीलता की मोहक-शीतल छाया बहुत अधिक है :

अपनी हिमांशु हँसियों को
वन्दिनी बनाने के पहले
मुझे लिपिबद्ध कर लेने दो। (धरित्री की प्रशस्ति में)
मूल इमारत के पास
के अश्वत्थ में
गंगा के हाल्दिक नवागम की तरह
उद्दीप्त अग्निशिखा-निभ
पल्लवों का नवबहार आ गया है।...
तो महाभारत की परिणति
खून से सनी धरती में नहीं होगी,
बल्कि हिन्द-महासागर में सर्वशुभ पद्म खिल जाएगा!.... (अश्वत्थ)

'अश्वत्थ' प्रतीक है देवत्व[1] का, प्रकृति का, प्राणवायु का, पर्यावरण का। 'तृज्या' में 'अश्वत्थ' विद्यमान है, किन्तु 'अश्वत्थ' में नहीं—यहाँ यह केवल प्रतीक है। प्रतीक है लोक-अलोक का, समग्र का। 'अश्वत्थ' एक प्रौढ़तर विशालजीवनायामी कवितासंग्रह है किन्तु 'गृह-गृह' के विराट्वादी कवि का शैली-शिल्प सर्वत्र नया है, नए मानव की जटिल जीवन-पद्धति के अनुरूप है। मुकुन्दन की कविता में परम्परा प्रगति है, प्रगति परम्परा; किन्तु दोनों के दर्शन, जवनिका के पीछे से ही, बड़ी कठिनाई से हो पाते हैंः यह सामर्थ्य जीवन की शाश्वत अनवरतता के सर्वथा अनुरूप है। बानगियाँ देखें :

पर कैसे करूँ इतिहास के अंत का अनुष्ठान अभी—
शेष हैं जब तक विषमताएं?
शेष हैं जब तक स्वतंत्रता के संकट?
शेष हैं जब तक अंतर्विरोध और अंतर्द्वन्द्व?.... (इतिहास का अंत)
मैं वेदना की शैया पर मरणासन्न हूँ
पर किसी को परवाह नहीं।
मैं उत्सर्ज्य का उत्सर्ग-स्थल बना हूँ
मैं चोरी-चोरी अपने निन्दकों में शामिल हो जाता हूँ.... (पवि)

'सौम्य', 'राज्यारोहण', 'सत्य', 'धर्म', 'अर्थ', 'काम', 'मोक्ष', एवं 'महाप्रस्थान' शीर्षक आठ सर्गों में निबद्ध काव्य 'विजय-पर्व' में युधिष्ठिर और द्रौपदी की प्रधानता में धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष अर्थात् पुरुषार्थ का बौद्धिक निरूपण भावसम्पन्न भी है। विषय की उदात्तता महाकाव्योचित है, किन्तु सर्गों के आकार-प्रकार खंडकाव्य का संकेत करते हैं। आनन्दशंकर माधवन्, भानुशंकर मेहता, स्वरूपकुमारी बख़्शी इत्यादि ने भारतीय संस्कृति एवं दर्शन को बौद्धिकता, वैज्ञानिकता, यथार्थ इत्यादि से संपृक्त तो किया है, किन्तु मुकुन्दन में अधुनातनता विशेष परितुष्ट होती लगती है। मनुष्य शरीर है (शरारत करता है), किन्तु वह मन (मनन करता है) भी है, प्राण (चेतनः

---

[1] मूले ब्रह्मा, त्वचे विष्णुः, शाखा-मध्ये महेश्वरः।
पात्रे-पात्रे देवानाम्, वृक्षराज! नमोस्तुते।।

महाचिति-सम्पन्न) भी है, विज्ञान भी है, आनन्द भी हैः महान् धर्म या दर्शन या साहित्य वही है जो मानव को उसके समग्र में प्रस्तुत करे। पन्त ने यही किया था, मुकुन्दन यही कर रहे हैं! अपने समाहारा में मुकुन्दन नरेश मेहता के स्तर के कवि हैं। उनका विराटवाद, समन्वय, आशावाद सर्वतः जीवन्त है। 'विजयपर्व' शीर्षक ही उसे 'कुरुक्षेत्र' (दिनकर) से भिन्न कर देता हैः जीवन दर्शन से बृहत्तर भी है और महत्तर भी! वैसे, 'विजयपर्व' मुकुन्दन का 'कुरुक्षेत्र' हैः पुरुषार्थवादी, आशावादी, जीवनवादी! आरम्भ के अंश देखिए :

हो खड़ा मंदाकिनी के तरल रश्मिक तीर पर
अर्धांगिनी संग राशि ग्रह नक्षत्र भर-भर
अर्ध्य डालेगा महत् दिक्काल को
वह मनाएगा विजय का पर्व वासंतिक चिरंतन···
भूमि-नभ को एक मंगलपाश में
आज वह समवेत हो ऊपर उठेगा···
व्यक्ति ही है नाभिकीयक केन्द्र में
व्यक्ति है यदि तो सकल समुदाय हैं
सत्य हैं अस्तित्व दोनों के सुनिश्चित···

(सौम्य)

'विजयपर्व' में मुकुन्दन के 'लोकायतन' (पन्त) के दर्शन होते हैं। यह एक प्रशस्य खंडकाव्य है। 'शरतल्प' महाकविता में भीष्म की प्रधानता शीर्षक से ही सुस्पष्ट है, जिसमें द्रोण एवं कर्ण का त्रित् एक अपूर्व आयाम जोड़ता है। द्रोण भीष्म के मित्र थे, जबकि कर्ण विरोधी, क्योंकि भीष्म उस महारथी का अपमान करते न चूकते थे। किन्तु काव्य में तीनों के अंतर्द्वन्द्व का उन्मेष प्रभावी है। कृष्ण से बर्ट्राण्ड रसेल तक प्रसरित युद्धदर्शन को दिनकर ने 'कुरुक्षेत्र' काव्य में विशद अभिव्यक्ति प्रदान की है। मुकुन्दन ने भी युद्धदर्शन विवृत किया है। यदि जीवन शाश्वत है, तो युद्ध भी शाश्वत है। मुकुन्दन शान्ति-समर्थक हैं जैसाकि प्रत्येक 'मानव' होता है, किन्तु शान्तिरोगी नहीं जैसाकि प्रत्येक वाहवाहवादी साधारण सर्जक होता है। अतएव, 'शरतल्प' एक प्रभावी मननकाव्य बन पड़ा है। शाश्वत समस्या की जटिलता भी शाश्वत हैः

सत्य की विजय का उर्वरक है
असत्य की पराजय।

डॉ. पवनकुमार

डॉ. पवनकुमार (8 फरवरी, 1956, मटियारा, कानपुर) ने अपने विषय का एकमात्र और अत्यन्त गम्भीर पीएच. डी. शोधप्रबन्ध 'नवरहस्यवाद और नई कविता' (1996 ई.) लिखकर एक अछूते आयाम को विकसित किया है। आज साहित्य पर विजातीयतावादी आधिपत्य है; दूसरे, वह साम्यवादियों, काँगेसियों और भाजपाइयों के कब्जे में है, जिनका उद्देश्य एक हैः साहित्य को राजनैतिक न्यस्त-स्वार्थ रूपी पशु की पूँछ बनाना। ऐसा न होता तो इस प्रबन्ध को अत्यन्त गौरवशाली माना जाता। उन्होंने मौलिक 'आचार्य रामचन्द्र शुक्लः एक अध्ययन' (1992 ई.) ग्रन्थ में कठिन को सरल करने का कठिनतर कार्य निष्पन्न किया है। 'डॉ. रामप्रसाद मिश्रः व्यक्तित्व और कृतित्व' (1979 ई.), 'आलोचक डॉ. रामप्रसाद मिश्र' (1983 ई.) एवं 'डॉ रामप्रसाद मिश्र की मान्यता प्राप्त कविताएँ' (1985 ई.) ग्रन्थों की 'प्रस्थान'-रचनाएँ भी की हैं। आजीविका-क्षेत्र के प्रायः साहित्येतर होने के कारण उनकी रचनाधर्मिता कुंठित हो गई; 'प्रायः' से अभिप्राय हिन्दी-अधिकारी इत्यादि से है। उनका आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी पर आरम्भ किया गया ग्रन्थ पूर्ण नहीं हो पाया अन्यथा देवीदत्त शुक्ल, सुधीन्द्र, श्रीकृष्णलाल, उदयभानुसिंह, रामविलास शर्मा इत्यादि द्वारा रचित जीवनपरक, शोधपरक, आलोचनापरक ग्रन्थों का मौलिकता-सम्पन्न समाहार प्रकाश में आ जाता! उनकी अपनी पकड़ है। वे सरल भाषा में विषय को सरलतापूर्वक स्पष्ट कर देते हैं। उनका निर्विवाद सन्त-स्वभाव रचनाओं द्वारा एक शीतल प्रभाव निष्पन्न करता है। हिन्दी और अंग्रेज़ी के विद्वान् तथा संस्कृत के अध्येता डॉ. पवनकुमार भारत एवं भारतीयता के अनन्य उपासक हैं (और 'स्वतन्त्र' भारत में इससे बड़ा कोई कुफ़्र नहीं)। वे कवि हैं या नहीं? पता नहीं! परन्तु 'नई' कविता लिखने के लिए कवि होना आवश्यक नहीं। (निन्यानवे-प्रतिशत ग्रन्थ-पर्वत प्रमाण है)। वैसे, गहन—उनकी कविताओं में व्यंग्य आकर्षक है। क्षणिकाएँ कह सकते हैं। अतः कुछ बानगियाँ देखें :

1. ओ फलसफा
तू कहाँ गया
तू खो गया
मैं रो पड़ा
तू हँस दिया!
2. जीवन...जीवन
जीव...न
वन...वन
नव...नव
3. नियम...नियम
यम यम
मय मय
मय मय
4. समय
सम य
मयस
समय
यम स
5. केवल व्याकरण नहीं
समय की भाषा भी चाहिए!
6. चाय की प्याली में तूफान आया,
हम प्याला, तुम नेवाला
हो गए
बाँस के डंडे।
7. कब
कौन
किससे
जुड़ जाए
कह नहीं सकते
कब
कौन
किससे
हट जाए
कह नहीं सकते
8. आसमान रोया
धरती के भाग्य पर
देखा उसने
जीवन का रंग
रंग, रंग
पर मैं तो हूँ रिक्त, रिक्त
आसमान रोया
धरती के भाग्य पर।
9. दर्द के पक्षी सर के ऊपर उड़े,
उड़े अच्छा है,
खूब ऊपर उड़े,
पर
उन्हें सर के बालों में
न बैठने दो
घोसला मत बनाने दो!
मत बनाने दो!

1. कॉपीराइट एक्ट
अक्षर पर
धन की विजय का
प्रतीक
कॉपीराइट एक्ट!
शब्द पर
शक्ति की विजय का
प्रतीक
कॉपीराइट एक्ट!
लेखक की
अनुभूति का प्रतीक
कॉपीराइट एक्ट।
क्रोचे को
सत्य सिद्ध करता
कॉपीराइट एक्ट!

2. राजभाषा अधिनियम
हिन्दी पर
अंग्रेज़ी की विजय का
प्रतीक
राजभाषा अधिनियम!
हिन्दी की
अस्मिता समाप्ति का
उपकरण
राजभाषा अधिनियम!
अंग्रेज़ी की
शाश्वत विजय का
महाप्रतीक
राजभाषा-अधिनियम!

शोषितों को
प्रपीड़ित करने का
वैधानिक अधिकार देता
राजभाषा-अधिनियम!

3. **हिन्दी दिवस हिन्दी की हत्या पर उतारू संस्थाएँ**
मनाती हैं प्रतिवर्ष, ज़ोर-शोर से
हिंदी दिवस
और बाँटती हैं पुरस्कार
लाखों रुपयों के
क्योंकि, मिलता है प्रत्येक
हत्या
पर पुरस्कार
राजनीति में, राजनीति

दोहा

हिन्दी के बारह सौ वर्षों के साहित्य का सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द दोहा पाकिस्तान में भी अपनाया जा रहा है, यद्यपि उतने जोर-शोर से नहीं जितने से ग़ज़ल भारत में (भारत में रुबाई की तरह)। भारत में ग़ज़ल और पाकिस्तान में दोहा उपमहाद्वीप की एकता के प्रतीक हैं; वस्तुतः भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश एक राष्ट्र हैं—भविष्य में पुनः एक हो भी सकते हैं, क्योंकि कृत्रिम पृथकतावाद कब तक ओढ़ें-बिछाएँगे? धर्म और मजहब को कब तक विकृत करेंगे? मानवीय प्रवृत्तियों को कब तक घृणा से आच्छन्न रख पाएँगे?

सिद्धों में सरहपा इत्यादि, जैनों में देवसेन इत्यादि, रासोकारों में चन्द्रवरदायी-जल्हण-मलयसिंह इत्यादि (पृथ्वीराजरासो के रचयिता) तथा जज्जल इत्यादि सूफियों में खुसरो से नूरमोहम्मद तक अनेक विविधविधाकारों इत्यादि, निर्गुणप्रधान सन्तों में कबीर इत्यादि सगुणप्रधान भक्तों में तुलसीदास इत्यादि स्वच्छन्द कलाप्रधान-नीतिकारों में रहीम इत्यादि अन्य नीतिकारों में वृन्द इत्यादि कलाकार महाकवियों में बिहारी, मतिराम इत्यादि पूर्वाधुनिक अमर दोहाकार हैं; तो, दाऊद, कुत्बन, जायसी, मंझन, उस्मान, कासिमशाह इत्यादि सूफ़ी-प्रेमाख्यानकारों से भारतेन्दु, मैथिलीशरण इत्यादि तक ने दोहा का रचनागत अथवा प्रासंगिक प्रयोग किया है। बनारसीदास चतुर्वेदी, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, नगेन्द्र इत्यादि गद्यकारों ने भी यथासमय दोहे का दोहन किया। मैं पत्रोत्तर प्रायः दोहा या दोहों में देता हूँ (कभी-कभी हाइकु या अन्य मध्यमों में भी) किन्तु अनुकृति नहीं कर पाता या सुरक्षित नहीं रख पाता (अन्यथा सैकड़ों दोहे और कोड़ियों हाइकु हो जाते)।

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-साहित्य में "यथा राजा तथा प्रजा" के अनुरूप व्यक्तिवादी अज्ञेय इत्यादि तथा साम्यवादी नागार्जुन इत्यादि की प्रयोगवादी तथा प्रगतिवादी विवादी कविताओं की धूम रही। कोई जनता तक न पहुँच सका, क्योंकि परकीयता कला में गहरे नहीं उतर पाती। लोग वादी-विवादी और पश्चिम की जूठल 'नई' कविता से ऊब गए। पुनः गीत, नवगीत (शुग़ल), ग़ज़ल (पेट्रो-डॉलरी ज़ोर-ज़ुबान) वगैरह की ओर मुड़े; दोहा इसी प्रतिक्रियावश, जाने-अनजाने, प्रमुख रूप से, उभर पड़ा। वैसे, वह दुलारेलाल भार्गव, राजेशदयालु 'राजेश' जैसे समर्थ रचनाकारों में गतिमान था, तथापि 'नया' दौर विलक्षण रहा। 'नए' दोहाकारों में डॉ. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' (16,000 दोहे तथा 6 सप्तपदियों का 'संपादन'—प्रत्येक में सात दोहाकार और प्रत्येक के 101 दोहे), छन्दराज पारदर्शी (विराट् संख्या किन्तु लघु गुणवत्ता), ए. बी. सिंह (21,000 संख्या पार किन्तु रचनाएँ अतिसरल एवं प्रेरक मात्र) भारी जीवट के बन्दे हैं; स्पष्ट है, स्फीततम रचना-राशि में रत्न अत्यल्प! 'इन्द्र' ने अपनी सीमाओं में सूर्यभानु गुप्त, दिनेश शुक्ल, कैलाश गौतम (अब शुद्ध 'कैलास' ग़लत माना जाता है), योगेन्द्रदत्त शर्मा, पाल भसीन, यश मालवीय, माहेश्वर तिवारी, बाबूराम शुक्ल, भारतेन्दु मिश्र, विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक', विभाकर आदित्य शर्मा, आचार्य भगवत दुबे, राजकुमार शर्मा, वेदप्रकाश पांडेय ('आदि') के नाम गिनाए हैं (हरेराम 'समीप' कृत दोहासंग्रह 'जैसे' की भूमिका में)। व्यक्तित्व रूप से मुझे सारस्वत मोहन मनीषी के दोहे कलात्मक लगते हैं। रुहेलखंड के

साहित्य-पुरुष डॉ. महेश 'दिवाकर' ने भी दोहा विधा की उल्लेख्य सेवा की है। दोहा-आन्दोलन दिल्ली एवं उत्तर प्रदेश से बाहर बिहार, मध्य प्रदेश, प्रभृति तक प्रसरित है। संख्या की दृष्टि से ए. बी. सिंह (अमरेन्द्र बहादुर सिंह) प्रथम दोहाकार हैं ('कप्लेट्स' की दृष्टि भी) जिनका नाम गिनीज बुक्स, लिम्का बुक्स ऑफ रिकॉर्ड इत्यादि में आना चाहिए (वस्तुतः उनकी दोहा-रचना एकलाख के पार जा चुकी है, जिसमें चतुर्थांश का प्रकाशन हो चुका है सो पर्याप्त है)।

दोहा छन्द (13-11 मात्राओं, आदि में जगण न हो तो अच्छा, अन्त में लघु अप्रतिवार्य, तुकान्त) का आकार न इतना छोटा है कि एक पूरी बात कही ही न जा सके, न इतना बड़ा कि प्रत्यय-उपसर्ग की बैसाखी का सहारा लेना पड़े। दूसरे, यह बारह सौ वर्षों की परम्परा और प्रवाह से जुड़कर अत्यधिक साधारणीकरण-सक्षम बन चुका है। तीसरे, यह शेर और रुबाई की भाँति इश्कवाजी में क़ैद नहीं है तथा सभी प्रकार के उद्गारों का सक्षम वाहक है। दोहा 'वाह! वाह!! वाह!!!' के बाद टाँय-टाँय फिस्स नहीं जो जाता, कुछ सोचने-विचारने को भी छोड़ जाता है। यह एक वज़नदार छन्द है जो 'फुर्र' नहीं हो जाता, टिकता है। कला में बिहारी, कला और नीति के संगम में तुलसी, प्रवाह में रहीम, उपदेश में कबीर के दोहे मेरे उक्त विश्लेषण के प्रमाण हैं। बिहारी सर्वश्रेष्ठ दोहाकार हैं, जिनकी तुलना आचार्य पद्मसिंह शर्मा ने ग़ालिब से की थी, जिसे ग़ालिब के एक शाग़िर्द हाली ने दुरुस्त पाया था। तुलसी के दोहे, उनके महतोमहीयान् व्यक्तित्व के सदृश, भारी तो हैं, पर भारी प्रभाव भी छोड़ते हैं। रहीम के दोहे मनोविमोहक हैं। कबीर के दोहे अकल उपदेशात्मक हैं। आधुनिक दोहाकारों में ए. बी. सिंह के कुछ दोहे मेवाड़ की जनता में प्रवेश पा सके हैं क्योंकि सरल-जनोपयोगी हैं। फिर भी, आधुनिक दोहाकारों में कोई व्यापक लोकप्रिय रचनाकार नहीं हो सका; कारण मीडिया उर्फ़ मौडिआ (मेरा दिया नाम) है। आज का दोहा (हरेराम 'समीप' के साथ) कह सकता हैः

जो जैसा भी मिला, लिया उसी को संग।
यारो मेरे प्यार का, पानी जैसा रंग।।

डॉ. मेघासिंह चौहान

पहले 'भाव-वीथिका' तथा अनन्तर 'आदर्श कौमुदी' के द्वारा साहित्य की सुदीर्घ सेवा करने वाले साहित्यिक पत्रकार कवि (गीतकार-ग़ज़लकार-छन्दकार) एवं व्यंग्य-निबन्धकार स्व. डॉ. मेघासिंह चौहान (1 जनवरी, 1942, नजीमपुर, बिजनौर) ने निष्ठा, व्यय एवं अध्यवसाय के साथ सर्वथा न्यायोचित राष्ट्रीय प्रतिष्ठा भी प्राप्त की, जनपद का नाम भी उजागर किया वे एक सफल आयोजक भी थे। उन जैसे साहित्य को समर्पित व्यक्ति बहुत कम ही मिलते हैं। पत्रकार, समीक्षक एवं कवि डॉ. योगेन्दप्रसाद का अनवरत सहयोग उनकी साहित्य-यात्रा का पाथेय रहा है। दोनों की मैत्री स्मरणीय है।

'बूँदे दर्द की' (1991 ई.), 'उलझते फूल सुलझते काँटे' (1992 ई.), 'माटी के धागे' (1993 ई.), 'त्रिपथगा' (1996 ई.) में कविता के कई रूप खिलते हैं। 'दर्द के दायरे' उल्लेखनीय ग़ज़ल-संग्रह है। 'अपना-अपना सोच' लघुकथा-संग्रह है। 'कुलाबे (धरती-आसमान के)' में व्यंग्य-निबन्ध संगृहीत हैं। 'राजनीति से हटकर' ऐसा निबन्ध संग्रह है जिसमें रोने से बचने के लिए हँसने का यत्न परिलक्षित होता है। एलिस द क्रुज़ नामक सुन्दरपुर (रक्सौल) की कवयित्री और लेखिका के लेखों का अनुवाद 'द सिंबल्स ऑफ ह्यूमैनिटी' में अंग्रेज़ी (जिसके वे प्रवक्ता भी थे) गद्य के दर्शन होते हैं। इस प्रकार, अपने प्रकाशित साहित्य में वे एक विरल एवं विशद साहित्यकार सिद्ध होते हैं। उनके साहित्य में प्रस्थान एवं प्रखरता के दर्शन हों या न हों (ऐसे दर्शन सहस्र में एक ही सम्भव हैं) किन्तु युग-विवृति एवं दलित-संवेदन प्रचुर गुण-परिमाण में प्राप्त हैं। वे मानवतावादी साहित्यकार हैं। शालीनता एवं निष्ठा उनकी विशेषताएँ हैं। बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के हिन्दी-साहित्यकारों में उनका नाम आदर से लिया जाना चाहिए। मैं तो उन्हें सन्त-साहित्यकार मानता हूँ: कबीर का एक 'शालीन' वंशज!

यद्यपि डॉ. मेघासिंह चौहान ने काव्यरचना अधिक की है, तथापि उनकी गद्य-कृतियाँ भी उल्लेखनीय हैं। उनकी लघुकथाएँ मानवीय संवेदन से ऊभचूभ हैं। व्यंग्य-निबन्धों या व्यंग्य-लेखों में उन्हें बहुत अच्छी सफलता प्राप्त हुई है। युग की राजनैतिक एवं सामाजिक विडम्बनाओं पर उनकी व्यंग्य-दृष्टि सजीव भी है, सटीक भी। उनकी सभी रचनाओं के सदृश, उनके व्यंग्य-निबन्धों में भी पैनापन नहीं है, किन्तु सत्य को कहने में झिझक भी नहीं है, 'युधिष्ठिरी सत्य' का अवलम्ब भी नहीं लिया गया। उनकी युगदृष्टि में निष्ठा विद्यमान है।

'बूँदे दर्द की'! राजयक्ष्मा-जयी (कीट्स, भारतेन्दु, प्रसाद, इत्यादि के विपरीत पन्त, नरेन्द्र शर्मा इत्यादि के सदृश—मेरे सदृश...) कवि का दर्दीला होना स्वाभाविक-सा है। ('सा' क्यों? मैं कुत्ते की पूँछ ही रहा!⋯) जीवन का एक सत्य देखें :

पहचाने फूल जब विपरीत हो गए
अनजाने शूल जब मीत हो गए
दिल के अनचाहे दर्द बहे आँखों से
अधरों पर मनचाहे वे गीत हो गए!

किन्तु मेघा गरजेगा ज़रूर, सिंह दहाड़ेगा अवश्य (चौहान शंखनाद किए बिना नहीं रह सकता), और यही वरेण्य है :

फूलों के हास का
शूलों के त्रास का
जीवन है संगम
रुदन का, हास का।

ये चार छोटी-छोटी पंक्तियाँ चौहान साहब की कविता का बीजमन्त्र हैं।

'उलझते फूल सुलझते काँटे' में जीवन से समझौता स्पष्ट है; चौंतीस प्रेमगीतों के संग्रह में 'बूँदे दर्द की' में प्राप्त अभाव, अतृप्ति व्यथा की जैसी अधिकता नहीं है प्रत्युत भाव, तृप्ति, उल्लास के स्वर भी सुनाई पड़ते हैं। अभाव के उद्दाम वेग के साथ असीम से परिचय कवि के शक्ति की सूचना देता है।

'माटी के धागे' को कवि 'आग का जंगल' मानता है। यह भारत की प्यारी-प्यारी सोंधी-सोंधी माटी और उसके सँवारने वाले किसानों, जवानों, मजूरों, मजबूरों को अर्पित गीतों का संग्रह 'बूँदें दर्द की' और 'उलझते फूल सुलझते काँटे' की आत्मपरकता से वस्तुपरकता की ओर कविता-यात्रा की सूचना देता है। सारांश है :

घन के सहरा में प्यासा भटकता हुआ
आदमी आज बेचैन बेआस है
आग का एक जंगल उठा हर तरफ
चाहता छाँव, बुझती नहीं प्यास है।

'त्रिपथगा' में दो सौ मुक्तक, दो सौ दोहे तथा दो सौ हाइकु लिखकर डॉ. मेघासिंह चौहान ने अपनी गीतकार-ग़ज़लकार-रुबाईकार कवि-रूप में तीन अन्य विधाओं का समावेश कर प्रतिभा का परिचय भी दिया है, स्फीति का भी। शोषण-प्रपीड़न, दलित-संवेदन इत्यादि से स्नेह चुभन, स्मरण इत्यादि तक प्रसरित उनके काव्यायाम उन्हें एक सक्षम कवि सिद्ध करते हैं।

प्रो. लल्लनप्रसाद[1]

अर्थशास्त्र एवं वाणिज्य के प्रख्यात पंडित होते हुए भी गम्भीर हिन्दी-कवि एवं हिन्दी-प्रेमी सौजन्यमूर्ति प्रो. लल्लनप्रसाद (1939 ई., वाराणसी, शिक्षणक्षेत्र दिल्ली, निवास नोइडा) की कविताएँ पांडित्य के भार तले नहीं दबने पाईं। अर्थशास्त्रीः प्रकृति का कवि! वाणिज्य-विद्वानः पर्यावरण-प्रदूषण का व्यथा-गायक! लगता है, माता-हिन्दी का भविष्य तिमिराच्छन्न नहीं है। यदि विभिन्न विषयों के भावुक-विद्वान् हिन्दी में लिखने लगें तो हिन्दी-परिसर के घुसपैठियों से उसकी रक्षा हो सकती है अन्यथा ये उसे दल के दलदल में ढकेलकर दल डालेंगे।

नोइडा की एक उच्चस्तरीय काव्यगोष्ठी में जब एक साँवले-सलोने संकोची व्यक्ति से अपार आदर के साथ आग्रह किया गया, तब मैं अपरिचित सजग हुआ और जब उसने "जब पेड़ की एक डाल कटती है⋯" तब क्या-क्या होता है, यह सुनाया, तो मैं अभिभूत हुए बिना न रह सका : यदि हिन्दी में प्रकृति के प्रतिनिधि-कवि पन्त होते तो गले लगा लेते! ऐसी गहरी और सार्वभौम कविताएँ सारे साहित्य में बहुत नहीं हैं। सोचा था कि आगे बढ़ूँ, पर मन कविता के इतने अंश का उद्धृत किए बिना नहीं मानता :

---

[1] प्रख्यात रामकथा-विद्वान् एवं तुलसी-भक्त लल्लनप्रसाद व्यास एवं डॉ. लल्लन मिश्र की याद आ जाती हैः अब तो कुत्तों-बिल्लियों वाले विदेशी नामों का फ़ैशन है, पर मुझे अपने ये प्यारे-प्यारे नाम ही भाते हैं!

एक पेड़ की
एक डाल कटती है
एक चिड़िया सपरिवार
बेघर हो जाती है
तितलियों का
एक पड़ाव
नष्ट हो जाता है
बादलों का
एक आकर्षण
कम हो जाता है
धरती का
एक टुकड़ा
सूख जाता है···

यहाँ एक न होता तो मस्तिष्क में 'एकमेवाद्वितीयम्' अथवा 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' की दर्शनयात्रा सम्भव न हो पाती, ऋग्वेद के वन-देवता का स्मरण न आ पाता!

उनका अड़तालीस छोटी कविताओं का एकमात्र संग्रह 'भीड़ की आँखें' देखा है। सोचता हूँ, शीर्षक 'लल्लन की आँखें' होता तो सार-सारांश तत्काल पकड़ में आ जाता। वैसे, यह शीर्षक संग्रह को व्यक्त करता हो या न करता हो, किन्तु कवि की नम्रता, उसके जनप्रेम (सम्भवतः जनबोध भी) की सूचना अवश्य देता है। कवि का प्रमुख वर्ण्य प्रकृति है तथा प्रदूषण उसी से संपृक्त है। आज जब भारत एक महास्लम है तथा राष्ट्र एक भीड़, तब ये कविताएँ अधिक प्रभावी तथा मार्मिक लगती हैं! छोटी-छोटी हल्की-हल्की लाइट-लाइट लाइट-वेट सुन्दर पठनीय कविताएँ!

पहली कविता 'शहर किनारे की नदी' संग्रह की सर्वोत्तम कविताओं में एक है; भावसम्पन्न। इसमें अतीतस्मृति के साथ नदी की व्यथा व्यक्त है। सम्भवतः नित्य दिल्ली के एक किनारे पड़ी यमुना की लाश देखकर लिखी गई कविता! दूसरी कविता 'एक सा लगा' में 'तुम्हारा चुपके-से आना, अकेले आना, अँगड़ाई लेकर उठ जाना, समीप आना अच्छा उभरा है; प्रकृति की भंगिमाओं की अनुरूपता की उभार से बेहतरीन संगति कोमल-प्रशान्त कला की सूचना देती है। 'अरुणाई' उषा की है, जो प्रेमिका की भी हो सकती है। 'चैती फूल गुलाब के': अधखुले नयनों का रहस्य प्रकृति की ओर भी खुलता है, प्रकृति की मोहकतम कृति की ओर भी। 'चौराहा' जीवन का! 'जंगल और जंगल के शेर' में विकास का त्रास चित्रित है। शवप्रवाह = 'यह पाप किसके नाम'? शीर्षक-संपृक्त 'भीड़ की आँखें' एकान्त की ललक के साथ व्यापक जनदृष्टि की इच्छा भी रखती हैं; समझौता ही जीवन है। शेले (शेली), रवीन्द्र, प्रसाद की यादें आती हैं :

भीड़ में रहकर भी
मैं भीड़ से
अलग होना चाहता हूँ
भीड़ से अपना
अस्तित्व माँगता हूँ····

नवीं कविता, 'काला मुहर' लगा है जीवन की सहज इच्छाओं पर! 'देव-दर्शन' = तीर्थयात्रा तत्त्वतः शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य-यात्रा होती थी; अब सुविधायात्रा हो गई है। 'हरिजन' की जड़ीभूत, प्रगतिहीन जीवन-यात्रा। 'हम जड़ क्यों हैं?' कविता संग्रह की सर्वोत्तम कविताओं में एक है; 'शहर किनारे की नदी' की टक्कर की; प्रश्न का उत्तर है, वृक्ष की चेतनता! पता नहीं क्यों, जैनेन्द्र की 'तत्सत' कहानी याद आ गई? 'पत्थर की चीख' अच्छी प्रतीकात्मक लघुकविता है। 'दूसरे कन्धों से' में मृत्यु और अंत्येष्टि का प्रभावी चित्रण प्राप्त होता है। 'अस्पताल' में बहुत सुन्दर चित्रण दर्शन से निष्पन्न है :

जीवन और मौत का
मिला-जुला स्मारक है—अस्पताल।

'हिप्पी मेरे यार' = संपन्नता से संयस्त, विपन्नता के द्वार! 'आँगन की तुलसी' पौधे की सफलताः एक प्रतीक भी! लल्लनप्रसाद जी को पत्थर बहुत प्यारा हैं; पत्थर पर दूसरी कविता 'तुम मुझे पत्थर कहते हो' शरीर से उपल किन्तु प्राण से उत्पल है। पत्थरों के पत्थर मनुष्य ने पत्थरों से बड़ा अन्याय किया है। विपर्यय यह है कि पूजा भी है—भारत में केदारनाथ, विश्वनाथ, महाकाल, रामेश्वरम् प्रभृति रूपों में, मक्का में मक्केश्वर (राहुल) के रूप में, पोप के वैटिमन संग्रहालय में पापेश्वर—मेरे अनुसार) के रूप मेंः प्राचीन मिस्र, सुमेनिया में भी)! जड़ मनुष्य ने चेतना पत्थर का बहुत दुरुपयोग किया है। मैं रास्तों पर, भवनों में, उपवनों में पत्थरों की फ़रियाद सुनता रहता हूँ। अतः कवि का प्रस्तर-काव्य मुझे प्र+स्तर का लगता है। अमर निबन्धकार माधवप्रसाद मिश्र की महान् रचना 'सब मिट्टी हो गया' याद आ गई! 'ड्रॉइंगरूम' का विलास और द्यूत अच्छा चित्रित है। 'धूप छाँव' के बीच स्नावनी रंगत की कल्पना अच्छी है। 'चलती ट्रेन' जोसेफ एडिसून या मज़ाज की नहीं, किन्तु प्रभावी चलचित्रः मंजिल के लिए सब सहन! शोषण का प्रतीक, कृत्रिम जीवन प्रतीक 'बड़ा शहर'! 'दुखते पाँव' जीवन-यात्रा के विपर्ययों पर चलते हैं! 'देहात की सड़क': एक रोमांस; कमलाकान्त वर्मा की कहानी 'पगडंडी' और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'यहीं कहीं एक कच्ची सड़क थी' का ध्यान हो आया! 'जलसमाधि': बाढ़ का एक दृश्य! 'कौन-सा रूप' एक अत्यन्त उत्कृष्ट कविता है। मौलिक। गृहिणी की अनेक भाव-भंगिमाओं का मनोहारी चित्रणः चिरस्मरणीय पत्नी-कविता! अज्ञेय की कहानी 'रोज' बहुत बूढ़ी लगती है; रूढ़-सी। मुझे यह संग्रह की सर्वोत्तम कविता आती है, क्योंकि प्रकृति-परिवर्तन एवं पर्यावरण-प्रदूषण के बावजूद जीवन तो प्रवहमान ही रहता है तथा 'कौन-सा रूप?' शाश्वत है (अपने एक में दो शेर पेश हैं)

1. आसमान पर धुआँ, धरती पर धूल है,
फिर भी तो बुलबुल ने बोलना नहीं छोड़ा!
2. धुआँ, धूल, आम नहीं, यूकेलिप्टस् खड़े,
फिर भी तो कोयल ने कूकना नहीं छोड़ा!

'रोशनी' की ऊँची-नीची यात्राएँ सुन्दर प्रतीकों में बाँधी गई हैं। 'पानी का बोझ = बाँध और वृक्ष'। 'एक डाल' एक उत्तम कविता है; प्रकृति की विचारोत्तेजक कविता, प्रदूषण पर मार्मिक सर्जना। यह संग्रह की एक सर्वोत्तम रचना है। 'एक गाँव' को 'एक डाल' का अर्द्धनारीश्वर-रूप कहा जा सकता है। 'एक चट्टान' में 'एक' के विनाश की एक और कथा प्राप्त है। 'चिमनी का धुआँ' उत्कृष्ट पर्यावरण-कविता है, जो अठारहवीं सदी की औद्योगिक क्रान्ति की प्रतिक्रिया में रूसो के दर्शन, ब्लेक की आशंका, कॉलरिज की चिन्ता, वर्ड्स्वर्थ के द्वन्द्व इत्यादि का स्मरण तो कराती है, किन्तु स्वच्छन्दतावादी नहीं अपितु यथार्थवादी रचना है। बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में चिमनी का काला झंडा प्रगति का प्रतीक भी बना, दुर्गति का प्रतीक-ध्वजं भी! समय की विडम्बना सारे अनुकूलों का प्रतिकूलों में परिणत कर देती है। 'घर की बछिया' अच्छा चित्रण; कोई चाहे तो प्रतीक ढूँढ़ ले! 'किसान' का प्रशस्य चित्र; भूमिपुत्र-रूपक भी। 'झुग्गी-झोपड़ी' = सही तस्वीर! 'सागर' की महानता का मौलिक चित्रण। 'वर्षा' प्यार के सागर से जुड़ी! 'बादल' छोटी पर सुन्दर कविता। 'शरद' की सुरम्य शोभा का सफल रूपक। 'शिशिर' का आक्रमण प्रभाव। अश्वमेघ ग़लत छपा है—अश्वमेघ ठीक नहीं 'ग्रीष्म' की शक्ति। 'बसन्त' का सौन्दर्य; उसका कवि-रूप! अच्छा लगता है :

कवि तो सचमुच
तू है प्यारे वसंत
आजा साथ तेरे
छू लूँ मैं भी
खुशियों के दिगंत...

'पीली मिट्टी नीले फूल' सुन्दर पुष्प-कविता है। 'पन्थ के भूले' गीतों के पथ पर लाने के लिए प्रिय से अनुरोध! जब ना रहे वेल' बहुरंगी पर्यावरण-कविता है। 'फूटने दो' एक अर्थ प्रकृति पर खुलता है, तो दूसरा समाज पर। रस से सराबोर 'बारिश में मेरा गाँव'! 'सामने का सच' हमें निरुपाय किए हैं। 'तीसरी मंजिल' से कूड़ा बीननेवाले लड़के तक की नाप-जोख! 'भोपाल दुर्घटना' में कम्पनी तोड़कर निकले गैस-दानव का सांग-रूपक प्रभावी बन पड़ा है। 'भूकम्प' का सजीव वर्णन! धरती प्यारी (भारत माँ)' में देशभक्ति! भारत ''उपसर्प मातरं भूमिम्'', ''माता भूमिः....'' ''हिन्द....माद। अस्त'' (अमीर खुसरो 1253-1325 ई.) का देश है!!

'परियों का देश' (फ्रांस) में 'ला बेल फ्रांस' का चित्रण बढ़िया है। उपभोक्ता संस्कृति का खंडित राग (अमेरिका) के दोनों पक्ष वर्णित हैं। पन्त का परवर्ती काव्य याद आता है। बर्फ़ का नगर (मॉस्को)' सहज-सुन्दर वर्णन से सम्पन्न है। 'नारी' मार्मिक कविता है जिसमें शकुन्तला एवं द्रौपदी के प्रतीकों के माध्यम से संवेदन की गम्भीर विवृति दृष्टिगोचर होती है। 'इतिहास' में उभय पक्ष राम-रावण प्रभृति प्रतीकों से निष्पन्न हैं। अंगुलिमाल का अंगुलिमार छपना ठीक ही ठीक नहीं लगता। अन्तिम कविता 'छाया' में दर्शन की झलकी अच्छी लगती है :

> सच क्या है?
> यह खड़ा पेड़
> या इसकी
> हिलती छाया?

'भीड़ की आँखें' स्वस्थ-स्वच्छ कविताओं का हल्का-फुल्का प्यारा-प्यारा संग्रह है, जिसकी 'कौन-सा रूप', 'एक डाल' एवं 'शहर किनारे की नदी' जैसी उत्कृष्ट कविताएँ प्रभावी भी हैं, स्तरीय भी। कुल मिलाकर, इसमें प्रकृति, पर्यावरण एवं प्रिया पर मनोहारी सृजन प्राप्त होता है।

2005 ई. में लल्लनप्रसाद जी का 'नीम पीपल बरगद के शहर' शीर्षक उन्नीस कविताओं का द्वितीय संग्रह प्रकाशित हुआ, जो पर्यावरण-कविता की अन्य उल्लेखनीय कृति है इसका ग्राम, चौपाल, नदी, पर्वत इत्यादि का मार्मिक दर्शन उत्तर-आधुनिक कविता की अति से बचा हुआ है। एक उत्कृष्ट कृति!

प्रकाश द्विवेदी

'पारावार ब्रज कौं' के स्मरणीय-आदरणीय ब्रजभाषा-कवि एवं 'आँसू के अक्षर' के स्मरणीय-मार्मिक खड़ीबोली-कवि डॉ. वेदप्रकाश द्विवेदी 'प्रकाश' (1 जनवरी, 1950, सेठवा, जनपद अम्बेडकरनगर, उ. प्र.) ने 'सुलझा सोम उलझी कौमुदी' शीर्षक खड़ीबोली-कवितासंग्रह, अन्य काव्य तथा गद्यरचना भी की है। उनकी कविता में परम्परा एवं प्रगति का योग अच्छा बन पड़ा है। 'अध्यात्म' जीवन का व्यापक सत्य है, जिसे यथार्थ का सूक्ष्म रूप माना जा सकता है। 'प्रकाश' जी ने अध्यात्म-काव्य की उल्लेखनीय रचना भी की है। स्व. डॉ. रामकुमार वर्मा, स्व. कविवर श्यामनारायण पांडेय, स्व. वियोगीहरि, स्व. आ. सीताराम चतुर्वेदी, स्व. डॉ. जगदीश गुप्त, नीरज, ऋषिकुमार चतुर्वेदी, डॉ. श्रीपालसिंह 'क्षेम', डॉ. अनन्तराम मिश्र 'अनन्त', डॉ. एम. एच. रिज़वी 'पुंडरीक', स्व. उमादत्त सारस्वत 'दत्त', डॉ. भवानीभीख त्रिपाठी 'दिव्य', सतीश आर्य, डॉ. राजेन्द्र मिश्र, ललित-जनकवि दूधनाथ शर्मा 'श्रीश' इत्यादि साहित्यसेवियों ने 'प्रकाश' के काव्य की जो प्रशस्ति की है, वह उचित है। काव्यशास्त्र के विद्वान् डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित ने 'पारावार ब्रज कौं' की बयासी-पृष्ठीय स्फीत-भूमिका लिखी है। 'प्रकाश' जी के पिता श्री सत्यानारायण द्विवेदी 'श्रीश' स्वयं एक उत्कृष्ट गीतकार हैं। 'प्रकाश' जी के अनेक शिष्य भी रचनाकार हैं।

'पारवार' ब्रज कौं' में हरिऔध के 'प्रियप्रवास' एवं रत्नाकर के 'उद्धवशतक' का युगपत् विकास दृष्टिगोचर होता है, जिसमें वात्सल्य से आरम्भ होकर श्रृंगार (लीला-लास) से परिपुष्ट होता भावसागर अंततः वियोग के योग में सम्पन्न बनता है। यदि कंस-विरोध में कृष्ण का क्रान्त रूप नवयुग के अनुरूप है, तो नानाॠतुवर्णन, बारहमासा में पर्याप्त रुचि, शकुन-अपशकुन में विश्वास इत्यादि अतीत के साथ न्याय करते हैं। कवि ने मार्मिक अनुभूति को प्रांजल ब्रजभाषा में विवृत किया है तथा दर्शन को कविता में अर्द्धनारीश्वर-व्रत संपृक्त किया है। कवित्त (घनाक्षरी) पर कवि का पूर्ण अधिकार दृष्टिगोचर होता है। अलंकरण, विशेषतः श्लेष (यत्र-तत्र श्लेष-वक्रोक्ति) की सन्तुलित गरिमा 'प्रकाश' की कविता को प्रशस्यतः प्रकाशित करती है। 'उद्धव-शतक' भ्रमरगीत-परम्परा में बुद्धप्राय है, जबकि 'पारावार ब्रज कौं, अपने नाम के अनुरूप ब्रज-जीवन की व्यापक विवृति करता है। निस्सन्देह, रत्नाकर प्रेरक-महाकवि हैं, किन्तु कविवर 'प्रकाश' ने प्रेरणा का मौलिक प्रसार किया है। सूरदास, नन्ददास, आलम, घनआनन्द, देव, पद्माकर, रत्नाकर, अनूप शर्मा इत्यादि से प्रभावित होते हुए भी 'प्रकाश' की कविता का अपना रंग है। कवि को अत्यन्त प्रिय यह छन्द (जिसे वे प्रायः सुनाते हैं तथा जो बारंबार सुनाने योग्य भी है, सुनने योग्य भी) उदाहरण-रूप में प्रस्तुत है जो सवैया क्या सवाया भी है :

नंदलला सौं मिल्यो मन मेरो, पुरोहित हू बिना भाँवरी ह्वै गई।
गोरी रही अब लौं, पर स्याम के रंग रँगी अब साँवरी ह्वै गई।।
द्वैत गर्‍यो, दुविधा सगरी गरी, हौं सब भाँति सौं रावरी ह्वै गई।
आठहुँ जाम रटौं घनस्याम, कहैं सब, राधिका बावरी ह्वै गई।।

'द्वैत गर्‍यो' में स्वशब्दवाचत्व दोष है। सारा छन्द ही अद्वैतपरक है।

यह रत्नाकर, जोतिसी, श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी', केशवदेव शुक्ल 'केशव', सिरस, ब्रजनन्दन, राजेश, गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, गिरीश चतुर्वेदी प्रभृति के साथ-साथ बीसवीं सदी के एक उत्कृष्ट ब्रजभाषा-कवि माने जाएँगे। ब्रजभाषा-कवि स्व. गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी का सृजन स्फीततर भी है, बहुआयामी भी, अलंकृत भी, तथापि 'प्रकाश' युगनिष्ठ भी हैं। रघुवीरसिंह 'आनन्द के ब्रजभाषा-काव्य में सहजता का अभाव है। भ्रमरगीत-काव्य निवृत्ति पर प्रवृत्ति की विजय का उद्गार है, जो निर्गुण पर सगुण, निराकार पर साकार, ज्ञान पर भक्ति एवं योग पर प्रेम का प्रतिपादन करता है। भागवत में यह केवल विरह-उपालंभ-संकेत मात्र है; सूर की महान् मौलिक प्रतिभा ने इसे दर्शनकाव्य का विशद गौरव प्रदान किया है। सूर का भ्रमरगीत एक साथ ही विरहकाव्य भी है, उपालंभकाव्य भी, व्यंग्यकाव्य भी, दर्शनकाव्य भी; तभी तो उसने परमानन्ददास, नन्ददास, तुलसीदास, देव, पद्माकर, भारतेन्दु, हरिऔध, रत्नाकर, रसाल, ब्रजनन्दन, गजेन्द्रनाथ चतुर्वेदी, गिरीश चतुर्वेदी 'प्रकाश' इत्यादि को किसी-न-किसी रूप में प्रभावित किया है। 'प्रकाश' जी निर्गुण-सगुण के विवाद में नहीं उलझे प्रत्युत कृष्णकथा के नवयुग-रूप तथा वियोग पर केन्द्रितप्राय् रहे हैं। यही उनकी मौलिकता एवं युगवत्ता है। कृष्ण (3000 ईसा-पूर्व) क्रान्तिकारी नेता थे; राम (3500 ईसा-पूर्व) के ''स हि धर्मः सनातनः'' के प्रतिपादक न होकर वेद की आलोचना (निन्दा-वत्) करने वाले, वेद के परमदेवता इन्द्र का अवमूल्यन करने वाले, स्वयं उपनिषद्काल के होने के कारण आत्मवाद का प्रसार करने वाले; अतः कंस के अत्याचार पर उनका क्रान्ति-घोष निराधार नहीं कहा जा सकता :

तनि गई भवैं फरफरकि अधर गए
लाल-लाल डोरे लगे दिखै अँखियान मैं
पग बढ़े आगे, हांथ औचक ही नाचि[1] गए
आइ गयो भाव को उफान बतियान मैं
सिर तैं सु[2] खैंचि गोपगनन लुटाय पट
क्रान्ति के जगायो जोति-पुंज गलियान मैं
नृपति की बस्तु है सबै की, सबै लीजै याहि
क्रांति को बजो है तूर्य बीथी बगियान मैं।

कृष्ण ने जीवन भर युद्ध लड़े और लड़वाए, किन्तु राम के सदृश, स्वयं सत्ताधारी नहीं बने; सत्ताधारी उग्रसेन, वसुदेव, युधिष्ठिर इत्यादि ही रहे (राम अन्ततोगत्वा राजा बने थे किन्तु कृष्ण 'वस्तुतः' नहीं)। उनके कंसवध, शिशुपाल-वध, जरासन्धवध-कूटचक्र, श्वपच-सम्मान, विदुर-प्रेम, सुदामा-प्रकरण, सारथी-गाथा इत्यादि अद्वितीय (न भूतो न भविष्यति) हैं, उन्हें सर्वतः क्रान्त एवं दीनबन्धु सिद्ध करते हैं। 'प्रकाश' ने कंस-प्रकरण में उनके क्रान्त-रूप को पहले-पहल उजागर कर प्रशस्य कार्य किया है, मौलिक सृजन किया है, जो साधार भी है :

वसुदेव-देवकी को आँसू चिनगारी ह्वैहै
रोहिनी को रोइबो, धरा को हू कँपाइहै
मथुरा-निवासिन की आहन-कराहन तैं
कौनौ दिन कंसऊ कौ 'लै' को छिन लाइहै
धरम की हानि भयी जेती तेती ह्वैद्वै कहा?
प्रभु बिन कौन भूमि-भार को उतारिहै?
दिन दूरि नाहिं, दलदल माहिं परैगोई
याको काहू भाँति कोऊ नैंकु न निकारिहै।

---

1. विषयानुरूप नहीं। अप्रयुक्त्व दोष।
2. सार्थक नहीं। भरती का अक्षर।

'पारावार ब्रज कौं' का समारम्भ कृष्ण-जन्म तथा समापन ब्रज से स्नेहसिक्त होकर लौटे उद्धव से कृष्ण के ब्रजप्रेमोद्‌गार के साथ होता है। काव्य में भक्ति, 'संभवामि युगे युगे' का आशावाद, प्रेम, विरह की व्याप्ति का निर्वाह उत्कृष्ट रूप से निष्पन्न हुआ है। अवतारवाद परम आशावादी दर्शन है। राम-कृष्ण के बल पर अवतारवाद बोधितत्वावतारवाद, तीर्थंकरवाद, ईशपुत्रवाद, पैग़म्बरवाद, पोपवाद, मार्क्सवाद इत्यादि से रक्षा करता चला आ रहा है। 'प्रकाश' ने ब्रह्मवाद को 'शक्ति'-वाद से संपृक्त कर विलक्षण मौलिकता का प्रशस्य परिचय दिया है (अवतारवाद भी नरबद्ध नहीं, नारीसंबद्ध भी है—यह नारी-संवेदन का प्रणाम रूप है) :

कबौं बनि सक्ति-ब्रह्म, प्रकृति-पुरुष कबौं
परमानु ह्वैकै कबौ सृष्टि को करै जो अथ
सरजै सिंदूरवारी साँझ, रागवारो प्रात
तिमिर-बरूथन को छिन में करे है स्लथ
सिंधु-गिरि, गुल्म-लता, चेतन-अचेतन को
बिरचै निरंतर, रुकै न रचना को रथ
भानु-चंद-तारन मैं ताही को 'प्रकास' भरो
कोऊ कितै खोजै, पै न पावै भेद को तौ पथ।

स्वतन्त्र भारत परकीयता से आच्छन्न रहा है। संविधान, प्रशासन, योजना, कल-कारखाने, परिवहन, चलचित्र, वेशभूषा, साधन-प्रसाधन, शिक्षा-दीक्षा अर्थात् राजनीति, अर्थनीति, दंडनीति, समाज, सब-कुछ पश्चिममय। व्यक्तिवादी (प्रयोगवादी) घनघोर अमेरिकावादी या पश्चिमवादी रहे, साम्यवादी (प्रगतिवादी) घटाटोप रूसवादी या चीनवादी। पाश्चात्य प्रभाव-द्वय के अतिरेक में "यथा राजा तथा प्रजा" का सनातन सत्य आ मिला। फलतः कविता भी विजातीयतावादी हो गई। रस का प्रस्तार नहीं, नकार! अलंकार का संस्कार नहीं, उस पर प्रहार! रामकाव्य, कृष्णकाव्य, शिवकाव्य, शक्तिकाव्य, राष्ट्रकाव्य की उपेक्षा। कुछ परकीय लाभों के कारण, कुछ सरकारी प्रलोभनों (उपाधियाँ, पुरस्कार, माध्यम या मीडिया उर्फ मैडिया") के कारण, कुछ 'नएमन' की झोंक के कारण, तो बहुत-कुछ अज्ञानवश अलंकार की निन्दा अथवा अवहेलना एक फैशन बन गई। किन्तु जिन्हें अलंकार के सहज-काव्य से संपृक्त होने का बोध है, वे जानते हैं कि अलंकार अनमोल होते हैं! 'प्रकाश' की श्लेष-वक्रोक्ति सचमुच अनमोल है :

आली! बतरावौ तौ हमैं, हैं बनमाली कहाँ?
ह्वैहैं बन बीच कहूँ वै गुहत बनमाल!
जानति खबरि घनस्याम की कछू तौ कहौ?
देखति हौ नाहिं वै तौ छाये नभ मैं बिसाल!
पूछति हौं मोहन कौ? मोहई न जाको कछू
सकौगी सनेह ताको का विधि कहौ सम्हाल?
पाँयन परति चक्रधारी कौ बतावौ, सखि?
बैठे घर ह्वैहैं सँवारत कलस-जाल!

छन्द अद्वैत-सम्पन्न भी है। सूर-कृत भ्रमरगीत हो अथवा रत्नाकर-कृत उद्धवशतक, कृष्ण को अतीव भावुक-प्रेमी एवं उत्कट ब्रजप्रेमी दिखाया गया है। इस छन्द में कृष्ण का स्नेहपूर्ण आश्वस्तिकारक कथन कवि की मौलिकता और आदर्शवादिता का सीधा परिचय देता है :

थोरे द्यौस बसि गाँव-देस ननिऔरे माँहि
माय! यहि मन कौ भलोई बहराइहौं
छाया मैं तिहारी बैठि पायी सीख-भीख जौन
ह्वाँ के सब लोगनि को वाको बतराइहौं
प्रेमपाठ ह्याँ को सूत्र-'भाष्य' मैं बताय, गाय
सिगरी पुरी मैं कंस केर बिखराइहौं
सहज सनेह समुदारता तिहारी गाय
मथुरा पुरी के गेह-गेह बगराइहौं।

संप्रति भारतीय, विशेषतः हिन्दी, साहित्य विदेशी षड्यन्त्रकारियों एवं देशी एजेन्टों द्वारा अंग्रेज़ी और उर्दू द्वारा पीसा जा रहा है। अंक संस्था भारतीयता को विनष्ट करने में जुटी पड़ी है। साहित्य के भेद हो गए हैं: 1. परिसर-साहित्य जो पश्चिमी शिल्प-तकनीक अथवा इस-उस-वाद की जूठन है जो रस-अलंकार-छन्द के विरुद्ध अनावश्यक जिहाद छेड़े बैठा है क्योंकि उसके तथाकथित-दिग्गज इनसे अनभिज्ञ हैं, 2. विश्व-पराङ्मुख परम्परावादी साहित्य जो 'नई' या 'नए' शब्द से भी अरुचि रखता है, 3. विभाषागत (खड़ीबोली-ब्रजभाषा-अवधी-भोजपुरी-अंगिका-बघेली-बुन्देली-कुमाँउनी-गढ़वाली-डोगरी इत्यादि) साहित्य जो पुरस्कार या महत्त्व या गौरव की सहज स्पृहा से प्रेरित होकर भाषाभेदवाद का आखेट बनता दीखता है, तथा 4. परम्परा-प्रगति-संपृक्त युग-निरपोषक साहित्य जो कम लिखा जा रहा है क्योंकि इसके लिए व्यापकतम दृष्टि अपेक्षित है जो विराट् अध्ययन से ही प्राप्त हो सकती है, जबकि आज त्वरित-नामदामकाम का युग चल रहा है। अनेक अतिशिक्षित व्यक्ति 'नई' कविता या 'नए कथासाहित्य' को पढ़ते ही नहीं: पश्चिम की जूठन! हम सीधे ताज़ा आस्वाद पा चुके हैं!! ऐसे व्यक्ति वही साहित्य पढ़ते हैं जो 'अपना' हो। कोई प्रयोगवादी या कोई प्रगतिवादी (जनवादी) जनता में प्रवेश नहीं पा सका। जनता में खड़ीबोली कबिता में मैथिलीशरण, हरिऔध, दिनकर, बच्चन इत्यादि कवि अथवा 'लोकप्रिय', कविसम्मेलनी कवि ही पढ़े सुने जाते हैं। कारण? जिसकी जड़ें भारत में नहीं, उसे भारतीय कैसे पढ़ेगा? कैसे समझेगा? साहित्य का सहित 'अब' जनजीवन-सहित हो गया है! जनजीवन परम्परा से उच्छिन्न करने वाला साहित्य ठुकराता है, तो क्या आश्चर्य! साथ ही, प्रगति के बिना प्रबुद्ध वर्ग सन्तुष्ट नहीं हो सकता। अतः सन्तुलित-साहित्य आज की सर्वोपरि आवश्यकता है। वैसे ही, साहित्य का युग नहीं है; युग वाणिज्य एवं विज्ञान का है। ऐसे में अतिपरकीय अथवा अतिस्वकीय साहित्य का ह्रास अधिक त्वरा से होगा। हर्ष है कि 'प्रकाश' जी ने 'परम्परा' एवं प्रगति में समन्वय स्थापित कर चिर के साथ भी न्याय किया है, युग के साथ भी।

डॉ. राय राजेश्वर बली का ब्रजभाषा-काव्य

हिन्दुस्तानी एकेडेमी इलाहाबाद, आर्ट स्कूल एवं संगीत महाविद्यालय लखनऊ के एक संस्थापक तथा आगरा विश्वविद्यालय के एक प्रतिष्ठापक डॉ. राय राजेश्वर बली (श्रावणी तृतीया या श्रावण शुक्ल 3, सं. 1946 वि.-विहार पंचमी या माघ शुक्ल 5, सं. 2002 वि. तद्नुसार 20 जुलाई, 1889—25 नवम्बर, 1944, जन्म स्थान दरियाबाद, जनपद बाराबंकी, उ. प्र.) केरल के स्वाति तिरुनाल, बस्ती के रंगपाल प्रभृति नरेशों के सदृश ललित कृष्णकाव्यकार भी थे। उनकी जन्म एवं निधन तिथियों का लीलाप्रेमी-कृष्णभक्तों में विशिष्ट स्थान है। वे प्रसिद्ध भक्त एवं ललित कवि थे तथा नरेश के रूप में उनके चमत्कारों की कथाएँ प्रचलित हैं। साइमन कमीशन के सन्दर्भ में शिक्षामन्त्री का पद त्यागने तथा नेशनलिस्ट पार्टी के नेता के रूप में उनका स्वातन्त्र्य-प्रेम सर्वथा सराहनीय रहा। वे भारतभक्त एवं एकता के कवि के रूप में भी स्मरणीय हैं :

1. जय जय मम जन्मदेश, भारत भूतल-नरेश
यक ते एक गनि विशेष जासु मुकुट साजै।
नदियन-मनि जहाँ गंग, गिरि-मनि हिमगिरि उत्तंग
मानसरहु तालन-मनि हंस जहाँ राजै।।
कोकिल जहँ करत शोर, पंछी-गनि नचत मोर
द्वार-द्वार हाथी झूमे, बननि सिंह गाजै।
आम जहाँ फलन-रत्न, तुलसीदल, दलनि-रत्न
अमल कमल देखि देखि कुमुमवृंद लाजै।।

2. देसभेद, रेसभेद, मतिभेद, गतिभेद
मारि पिचकारि सबै भेदनि मिटाय दे।
ठौर-ठौर, पौरि-पौरि, मरे मिलैं दौरि-दौरि
बौरनि की भौरनि की जोर तो दिलाय दे।।
राजेश्वर तेरी गंध सूँघें रस चाखैं चहुँ
आपन-परायौ ताहि सयन कराय दे।

विजयी जसीले रितुनायक जुसीले!
काहू रंग चटकीले विश्व याको रँगाय दे।।

'पैंगे' और 'फाग' संग्रहों में भक्ति एवं जनोल्लास का विलक्षण संयोग दृग्गत होता है। उनके द्वारा रचित 'श्री बाँकेबिहारी अष्टक' वृन्दावन के विख्यात बाँकेबिहारी-मन्दिरों में गाया जाता था। उनके कुछ पदों को महान् संगीतज्ञ भातखंडे ने स्वरबद्ध किया था। उन्होंने 'श्रीकृष्ण-जन्म' एवं 'रुक्मणी मंगल' शीर्षक दो नाटक भी रचे थे। निस्सन्देह उनकी कविता शतशः पारम्परिक थी, किन्तु वह सर्वज्ञ अस्मितासम्पन्न है तथा उसमें देशप्रेम एवं एकता के सन्देश आधुनिकता के सूचक हैं। उनकी ब्रजभाषा में लालित्य विद्यमान है तथा वे छन्दरचना एवं पदरचना या गीतरचना में निष्णात् थे। शब्दशिल्प की दृष्टि से भी उनका काव्य अतीव प्रशस्य है। एक मौलिक एवं उत्कृष्ट उदाहरण देखें जिसमें लीला-दर्शन, रहस्यवाद, शब्दसौन्दर्य और संगीत काव्य रस से सराबोर मिलते हैंः

नहीं हम झूलै हरि के संग।
बड़ेई के ढंग।।
दृगनि धौं कहाँ न जानैं भरी, जितै चितवै हलचल खरभरी।
लखै ऊँचे घन बरसैं सलिल, लखै नीचे प्रफुलित् कल कलिल।
लखै आगे रबिजा में मौज, लखै पाछे विचलित अलि-फौज।
लखै दाएं चपला कौंधैं, लखै बाएं हम धैं।।
जाके दृग झूठहु मिले, रहै न धीर सँभाल।
ता सँग चढ़े हिंडोरने, कौन होयगो हाल।।
हिंडोरो चपल सील अँग-अँग।। 1।।

लीला की चिरन्तनता शुद्धद्वैतवाद का एक प्रमुख तत्त्व है। हिंडोले में भी भूमि के स्वर्गीकरण और स्वर्ग के भूमीकरण का दर्शन विद्यमान है। होली कृष्णलीला का एक अपरिहार्य अंग है, जिसके रंग दार्शनिकता से ऊभचूभ भी हैं; एकता की तो वह प्रतीक ही है। अतः 'पैंगे' हो या 'फाग', सर्वत्र दर्शन अथवा रहस्यवाद के दर्शन भी किए जा सकते हैं। 'राजेश्वर' (उपनाम) की छाप भी यत्र-तत्र श्लिष्ट है। कवि को दर्शन या रहस्यवाद का ज्ञान था (रवीन्द्र से मैत्री थी और विश्वकवि ने उन्हें आर्थिक सहायता हेतु लिखा भी था)। डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, महादेवी वर्मा, अमृतलाल नागर, शिवानी जैसे प्रसिद्ध साहित्यकारों ने उनके व्यक्तित्व-कृतित्व की सराहना ठीक ही की है। वे एक सरस-संगीतसिद्ध कवि थे। दाय गोपेश्वर बली एवं श्री प्रबुद्ध चेतन ने भी उनके कृतित्व पर प्रशस्य प्रकाश डाला है।

'राय' शब्द 'रयि' (धन) से संबद्ध है जो वैदिक है (रयिर्न चित्रा¨)। यह धनिकों, राजाओं इत्यादि के सन्दर्भों में प्रयुक्त होता था जो जाति से मुक्त थाः कृष्णदेव राय (महान् विजयनगर-सम्राट), राममोहन राय (ब्राह्मण), राय कृष्णदास (वैश्य) इत्यादि प्रमाण हैं। किन्तु यह कायस्थों का एक विशेषण भी रहा है। राय राजेश्वर बली के पूर्वजों को अकबर ने यह पदवी दी थी। वे कायस्थ-कुलभूषण थे। यदि हिन्दी-साहित्य भिखारीदास, धर्म आनन्द, प्रेमचन्द, शिवपूजन, महादेवी, वृन्दावनलाल वर्मा, डॉ. रामकुमार वर्मा, श्री भगवतीचरण वर्मा, श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा, डॉ. बाबूराम सक्सेना, बच्चन, नीरज, कुँवर बेचैन, निर्मल वर्मा, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, कमलेश्वर इत्यादि कायस्थ-बन्धुओं का कृतज्ञ है, तो भारतीय राष्ट्र डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, गणेशशंकर विद्यार्थी, लाला हरदयाल, लालबहादुर शास्त्री, जयप्रकाश नारायण इत्यादि हिन्दी क्षेत्रगत एवं विवेकानन्द, अरविन्द घोष, खुदीराम बोस, रास़बिहारी बोस, सुभाषचन्द्र बोस इत्यादि बंगीय एवं सम्भवतः इतिहास की सर्वश्रेष्ठ विभूति महापुरुष शंकरदेव (असम) का। कायस्थ-विभूतियों में भी राय राजेश्वर बली समाविष्ट हैं।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी (29 मार्च, 1927) के प्रथम अध्यक्ष धनी-मानी कश्मीरी सर तेजबहादुर सप्रू हिन्दीविरोधी, उर्दूभक्त और अंग्रेज़ी-प्रेमी वकील थे तथा प्रथम सचिव और कोषाध्यक्ष डॉ. ताराचन्द भारतीय इतिहास में 'सम्मिलित-संस्कृति' के नाम पर इस्लामी-अतिसंवेदन के वे वाहक जो आज के 'लाल इतिहास' (वैसे, श्वेत इतिहास एवं केसरिया-इतिहास भी विद्यमान हैं) के 'स्तभों' इर्फ़ान हबीब, रोमीला थापर, विपिनचन्द्र, रामशरण शर्मा इत्यादि के पिता कहे जा सकते हैं। इसकी स्थापना हिन्दी में उर्दू की रवानी न पानेवाले नेहरू के प्रभाव से हुई लगती है, क्योंकि सप्रू 'चाचा जी' थे और ताराचन्द अनन्य-भक्त। अतः यह महात्मा मालवीय एवं राजर्षि टंडन के हिन्दी साहित्य, सम्मेलन के समक्ष न ठहर सकी। बदली, पर देर से! उधर नेशनलिस्ट पार्टी 'बेहद-उदारता' के कारण

टाँय-टाँयें-फिस्स हो गई। इन कारणों से राय राजेश्वर बली का ध्यान बहुत कम लोगों को रहा। किन्तु अपने शिक्षामन्त्री काल में उन्होंने जो गौरवशाली कार्य किए, ब्रजभाषा में जो ललितकाव्य रचा, वह सर्वथा स्मरणीय एवं आदरणीय है।

जयप्रकाश नारायण

प्रख्यात नेता जयप्रकाश नारायण (11 अक्टूबर, 1902–8 अक्टूबर, 1979) स्वातन्त्र्य सेनानी, समाजवादी नेता, 1942 ई. के अग्रणी क्रान्तिकारी, चंबल घाटी की डाकू-समस्या के समाधानकर्त्ता, सर्वोदय-नेता, 1977-79 के लगभग तीन वर्षों में भारत के सर्वोच्च लोकनायक, जनता पार्टी के संस्थापक प्रभृति ऐतिहासिक बिन्दुओं के कारण अमर हैं। निस्सन्देह, वे सुभाष के स्तर के नेता थे। उनका जन्मग्राम सिताब दियारा (बलिया) एव कर्मक्षेत्र कदम कुआँ (पटना का एक मोहल्ला) तीर्थ बन चुके हैं। बचपन में बेहद कम बोलने और चुपचाप गुमसुम रहने के कारण उन्हें 'बाउल जी' कहा जाता था। पिता कहते, ''ई तू बूढ़ लरिका हड्अन''! विश्वपुरुष वैज्ञानिक-शिरोमणि आइंस्टाइन का बचपन ऐसा ही था जो एंट्रेंस-परीक्षा में अनुत्तीर्ण भी हो गए थे। जयप्रकाश के साथ ऐसा नहीं घटा। वे ऐंट्रेन्स में फ़र्स्ट क्लास थे। अमेरिका में भी पढ़े। यथासमय वे प्रख्यात हुए। वे एक गम्भीर वक्ता भी थे। उनका व्यक्तित्व राहुल, दिनकर, अज्ञेय के सदृश था; ऊँचा-पूरा, आकर्षक, भव्य। निस्सन्तान रहे। गाँधी के सदृश वे हिन्दी-कवि भी थे। दो बानगियाँ देखें जो चंडीगढ़ जेल में लिखी गईं :

1. सफलता और विफलता

जीवन विफलताओं से भरा है,
सफलताएं जब कभी आयीं निकट,
दूर ठेला है उन्हें निज मार्ग से।
तो क्या वह मूर्खता थी?
नहीं।
सफलता और विफलता की
परिभाषाएं भिन्न हैं मेरी।
इतिहास से पूछो कि वर्षों पूर्व,
बन नहीं सकता प्रधानमन्त्री क्या?
किन्तु मुझ क्रान्तिशोधक के लिए
कुछ अन्य ही पथ मान्य थे; उद्दिष्ट थे
पथ त्याग के, सेवा के, निर्माण के;
पथ संघर्ष के, सम्पूर्ण क्रान्ति के।
जग जिन्हें कहता विफलता,
थीं शोध की वे मंजिलें।
मंजिलें वे अनगिनत हैं,
गन्तव्य भी अति दूर है।
रुकना नहीं मुझको कहीं,
अवरुद्ध जितना मार्ग हो।
निज कामना कुछ है नहीं,
सब है समर्पित देश को।
तो, विफलता पर तुष्ट हूँ अपनी
औ' यह विफल जीवन

शत-शत धन्य होगा—
यदि समानधर्मा प्रिय तरुणों का
कंटकाकीर्ण मार्ग
यह कुछ सुगम बना जाये।

(9 अगस्त, 1975)

2. एक चिड़ा और एक चिड़ी की कहानी

एक था चिड़ा और एक थी चिड़ी,
एक नीम् के दरख्त पर उनका था घोंसला।
बड़ा गहरा प्रेम था दोनों में।
दोनों साथ घोंसले से निकलते;
साथ चारा चुगते,
या कभी-कभी चारे की कमी होने पर
अलग-अलग उड़ जाते।
और शाम को जब घोंसले में लौटते
तो तरह-तरह से एक-दूसरे को प्यार करते;
फिर घोंसले में साथ सो जाते।
एक दिन आया (जब)
शाम को चिड़ी लौट कर नहीं आयी;
चिड़ा बहुत व्याकुल हुआ।
कभी अन्दर जाकर खोजे,
कभी बैठ कर चारों ओर देखे;
कभी उड़के एक तरफ, कभी दूसरी तरफ
चक्कर काट के लौट आवे।
अँधेरा बढ़ता जा रहा था;
निराश होकर घोंसले में बैठ गया,
शरीर और मन दोनों से थक गया था।
उस रात चिड़े को नींद नहीं आयी
उस दिन तो उसने चारा भी नहीं चुगा,
और बराबर कुछ बोलता रहा,
जैसे चिड़ी को पुकार रहा हो।
दिनभर ऐसा ही बीता।
घोंसला उसको सूना लगे,
इसलिए वहाँ ज्यादा देर रुक न सके;
फिर अँधेरे में उसे अन्दर रहने को मजबूर किया।
दूसरी भोर हुई।
फिर चिड़ी की वैसी ही तलाश,
वैसे ही बार-बार पुकारना।
एक बार जब घोंसले के द्वार पर जा बैठा था,

तो एक नयी चिड़ी उसके पास आकर बैठ गयी
और फुदकने लगी।
चिड़े ने उसे चोंच से मार-मार कर भगा दिया।
फिर कुछ देर बाद चिड़ा उड़ गया,
और उड़ता ही चला गया।
उस शाम को चिड़ा लौटकर नहीं आया।
वह घोंसला अब पूरा वीरान हो गया
और कुछ ही दिनों में उजड़ गया
कुछ तो हवा ने काम किया,
कुछ दूसरी चिड़ियाँ चोंचों में
भर-भर के तिनके और पत्तियाँ
निकाल ले गयीं।
अब उस घोंसले का नामोनिशां भी मिट गया,
और उस नीम के पेड़ पर
चिड़ा-चिड़ी के एक दूसरे जोड़े ने
एक नया घोंसला बना लिया।

(11 सितम्बर, 1975)[1]

डॉ. श्यामसुन्दर घोष

'मधुयामा' (1951 ई.), 'नया मसीहा' (1953 ई.), 'ज्वाल संकल्पित' (1977 ई.), 'परिप्रेक्ष्य कुहरों ढँका' (1984 ई.), 'अरण्यायन' (1993 ई.), 'नेताचरितसंकीर्तन' (प्रकाश्य) इत्यादि के कवि तथा 'अध्ययन-विश्लेषण', 'उपन्यासकार प्रेमचन्द', 'बच्चन का परवर्ती काव्य', ''सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला'', 'साहित्य के नए रूप' इत्यादि के आलोचक डॉ. श्यामसुन्दर घोष (20 नवम्बर, 1934) ने हास्य-व्यंग्य, उपन्यास तथा कहानी विधाओं में भी सृजन किया है। बंगबन्धुओं का हिन्दी से सम्बन्ध 'व्रजबुलि' या 'व्रजबोली' के कारण कम-से-कम छह सौ वर्ष पुराना है (रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी भानुसिंह बनकर 'भानुसिंहरे पदावली' रची)। प्रथम मुद्रण (फोर्ट विलियम कॉलेज कलकत्ता जिसके कारण 1803 ई. में लल्लू ज़ी 'लाल' कृत 'प्रेमसागर' एवं सदल मिश्र कृत 'नासिकेतोपाख्यान' प्रकाश में आए) एवं प्रथम संवादपत्र या समाचार-पत्र (1823 ई. में युगल किशोर शुक्ल सम्पादित 'उदन्त मार्तण्ड') का ऐतिहासिक महत्त्व स्वयंसिद्ध है। लल्लू जी 'लाल', सदल मिश्र, बालमुकुन्द, बनारसीदास चतुर्वेदी, निराला, उग्र जैसे शिवपूजन सहाय अमर साहित्यकारों से लेकर नलिनीमोहन सान्याल (प्रथम हिन्दी-एम. ए.), प्रभाकर माचवे, प्रभाकर श्रोत्रिय (साहित्यिक-पत्रकार) इत्यादि-इत्यादि तक कलकत्ता (कोलकाता) से संपृक्त रहे हैं। राममोहन राय, नवीनचन्द्र राय, चिन्तामणि घोष, ज्योतिषचन्द्र घोष, मन्मथनाथ गुप्त, प्रणवकुमार वंद्योपाध्याय, श्यामसुन्दर घोष प्रभृति हिन्दी-रचनाकार राष्ट्रभाषा के गौरवाकाश के जाज्वल्यमान् नक्षत्र हैं।

यद्यपि डॉ. श्यामसुन्दर घोष ने कई विधाओं में लिखा है, तथापि कविता उनकी प्रमुख विधा है तथा यही उनके अंतस् के सर्वाधिक निकट है। 1951 ई. में लिखित तथा 1977 ई. में प्रकाशित (मन नहीं मानता कि यह सत्रह साल के कवि की चार दिनों में रचित कृति है किन्तु महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति' तो जिए ही सत्रह वर्ष थे और चैटर्टन अठारह, तोरु दत्त इक्कीस, कीट्स पच्चीस—अकह-कहानी....) तथा परवर्ती सुधारादि से निष्पन्न 'ज्वाल संकल्पित' उनकी प्रथम उल्लेख्य काव्यकृति है जो पाँच प्रकरणों का कथाकाव्य (पाँच सर्गों का खंडकाव्य) है। रामनरेश त्रिपाठी कृत 'पथिक और स्वप्न' तथा प्रसाद कृत, 'प्रेमपथिक' के सदृश कल्पित वृत्त पर आधृत, निराला के 'तुलसीदास' के छन्द से प्रेरित, अभिव्यक्ति में पन्त कृत 'नौका-विहार' से प्रभावित, इस मौलिक काव्य में वैयक्तिक प्रेम एवं सामाजिक दायित्व का द्वन्द्व चित्रित तो है किन्तु समरसता के साथ; काव्य सुखान्त है। स्वतन्त्र (खंडित ही सही)

---

[1] यंग इंडियन (नई दिल्ली), 13-19 अक्टूबर 2001, पृष्ठ 20।

भारत में जनमन की आकांक्षाओं का एक दर्पण यह काव्य अब (खिन्न राष्ट्र को) भी भावपरक-ऐतिहासिकता के कारण आकृष्ट कर सकता है :

चेतना मनुज की अब न भ्रान्त
अब वह कुछ करने को अशांत
संस्सृति को अपना नियम बदलना होगा
जग-जीवन का संकेत जिधर
जाना होगा अब उसे उधर
उसके इंगित पर ही अब चलना होगा

स्वार्थी छद्म-क्रान्तिकारियों ने जनता को प्रगति नहीं अपितु अगति के पथ पर लगाकर राष्ट्र को असह्य-जनसंख्या-भाराक्रान्त, हिंस्र, निरुदेद्दश्य-अपराधग्रस्त बना डाला। दायित्वरहित-अधिकारबोध अपराध का प्रतीक बन जाता है। 'एक सड़ी हुई क़ौम'?[1] "कहीं आग लग गई" वाले खूब तापे, "कहीं गोली चली गई" वाले नाम कमा गए। दीनता-दरिद्रता की रोटी सेंककर दर्ज़नों लखपति-करोड़पति बन गए। स्वतन्त्रता स्वच्छन्दता बन गई। 'नेता' शब्द गाली बन गया। साहित्यकार जमूरा हो गया। ऐसे में शालीन 'ज्वाल-संकल्पित' ध्यान देने योग्य कृति लगती है। आज कम-से-कम राख तो मौजूद है!

परिप्रेक्ष्य 'कुहरों ढँका' (रचना 1967 ई., प्रकाशन 1984 ई.) पाँच प्रकरणों में विभक्त प्रौढ़ एवं मौलिक कृति है जिसमें प्राचीन कथा अथवा पात्र पर आधृत कृतियों के स्थान पर रचनाकार की अस्मिता को उजागर करने की उपपत्ति स्थापित है। पूँजीवाद या साम्यवाद या गाँधीवाद की लाठी टेकते प्राचीन पात्रों को क्षत-विक्षत करना एक साहित्य-रोग ही है। यह सत्य है कि समय एक-अखंड है, मानव एक अखंड है; किन्तु इस एकता-अखंडता को देखने के लिए जो दृष्टि चाहिए वह बहुत कम कवियों में ही सम्भव है। युग-चिर की संपृक्ति बहुत अधिक प्रतिभाशाली कवि या कलाकार ही कर सकता है। छुटभैया बस नाम-दाम-काम बनाकर चुक जाता है। अतः डॉ. श्यामसुन्दर घोष का यह उद्गार मननीय हैः

अब कला संबोधनों के सहारे
सम्प्रेष्य होती नहीं
प्रश्न विश्वस्तरीय बनने, दीखने का अब नहीं उठता।

'अरण्यायन' (1990 ई. में लिखित, प्रकाशन 1993 ई.) में प्रकृति का सहज चित्रण, शब्दों का सहज विन्यास, खेत-वन-गुफा-नदी-पशु इत्यादि का सहज वर्णन प्रतीकों से निष्पन्न भी माना जा सकता है। "मैं कविता और जीवन में सहजता का पक्षपाती हूँ" का कवि-कथन काव्य पर लागू तो होता है, किन्तु साधारणीकरण की दृष्टि से रचना प्रभावी नहीं बन पाई।

'नेताचरितसंकीर्तन' (प्रकाश्य) स्फीत व्यंग्य-काव्य है जिसमें देशनाशक नेताओं का व्यापक चित्रण प्रभावी भी है, उत्कृष्ट भी। सम्भवतः यह डॉ. घोष की प्रमुख कृति मानी जाएगी क्योंकि इसमें अस्मिता के उद्गार एवं व्यापक युगसत्य का रोचक संव्यूहन प्राप्त होता है। मुझे अपना नौ-सर्गीय काव्य 'नेता चरित्रम्' याद आता है!

एक निर्दिष्ट जीवन-दर्शन तथा प्रखर-प्रतिपादन के अभाव में भी डॉ. श्यामसुन्दर घोष का कवि-रूप उल्लेख्य है, इसमें सन्देह नहीं।

डॉ. रंजना गुप्त

डॉ. रंजना गुप्त राजकीय महिला महाविद्यालय, गर्दनीबाग़, पटना में दर्शनशास्त्र की प्राध्यापिका हैं तथा अपने वैदुष्य के कारण सारे देश में पत्रपठन एवं भाषण हेतु आमन्त्रित की जाती हैं। उनका पी-एच. डी. शोधप्रबन्ध 'द थ्योरीज़ ऑफ ट्रूथ इन वेस्टर्न फिलॉसॉफी' (पाश्चात्य दर्शन में सत्य के सिद्धान्त) निस्सन्देह एक गहन ग्रन्थ है जो 1997 ई. में प्रकाशित हुआ। 5 अक्टूबर, 2005 को उन्होंने यह मौलिक बात कहकर कि गाँधी की लँगोटी नितान्त निराशाजनक है, बात तब बनती है जब वे राष्ट्र के दरिद्रों को

---

[1] मेरा एक उपन्यास। 'बीसवीं सदी' में पूर्ण सत्य। 'झूठै लेना झूठै देना' में नग्नतम सत्य।

वस्त्र-सम्पन्न बनाते—मुझे चमत्कृत कर दिया था। किन्तु बड़ी-बड़ी आँखों में कविता समाई हुई है (1964 ई. में प्रकाशित अपने संग्रह 'बौद्धिकरस' की 'कवि और दार्शनिक' कविता को उद्घृत करने का मन होता है):

बोला दार्शनिक कवि से:
भावात्मक-दार्शनिक तुम!
मस्तक झुका बोला कवि:
तुम हो विचारात्मक-कवि!!
दोनों एकसाथ बोले :
हम-तुम तो एक हैं!!!

प्लेटो से नीत्शे तक विचारात्मक-कवि का अनन्त-प्रस्तार विद्यमान है; तुलसी से पन्त तक भावात्मक-दार्शनिक रूपों में गणनातीत स्रष्टाओं के दर्शन होते हैं। डॉ. रंजना गुप्त के हृदय से कविता नेत्रों पर झलकती रही और बिना व्यक्त हुए नहीं रह सकी: 'ओस की बूँद' (1995 ई.) बनकर प्रकट हो गई। 25 पृष्ठों की इस पुस्तिका में 16 कविताएँ हैं: 'मैं', 'तुम', 'मैं और तुम तुम और मैं', 'जीवनः प्रश्न! समस्या', 'दर्द', 'विजय-दर्पण', 'सम्पूर्ण क्रान्ति', 'सूनापन', 'पलकों की बातें', 'भूख', 'चार दिन चार रूप', 'एक ख़त माँ के नाम', 'वैदिक लोरी', 'ओस की बूँद', 'क्रान्ति-गीत' एवं अंततः-प्रार्थना'; सोलह कविताएँ कहूँ या सोलह कलाएँ या सोलहशृंगार? गागर में सागर! घट में संसार! विविध आयाम; रहस्यवाद, यथार्थवादी, जीवनवाद...और हाँ, अन्तःसलिला के सदृश गुप्त (वे हैं ही गुप्त!) स्नेह की चुभन भी अनुभूत की जा सकती है। रंजना का अध्यात्म महादेवी के अध्यात्म से भिन्न है क्योंकि उसमें एक ख़ास निजीपन है; उनका रहस्यवाद विद्यावती मिश्र, विद्यावती 'कोकिल', स्वरूपकुमारी बक्सी इत्यादि के रहस्यवाद से भिन्न है क्योंकि उसके अहं में ताज़गी भी है और जुझारूपन भी; वे भी कृष्ण भक्त हैं किन्तु इक्कीसवीं सदी की, न कि माधवीलता शुक्ल के सदृश उन्नीसवीं सदी की। वे सुमन राजे, मालती शर्मा, मधुरिमा सिंह, शामा, कुमारी राधा इत्यादि की तरह पुरुष के विरुद्ध नारीवादी-युद्ध नहीं छेड़तीं, किन्तु पुरुष के पुरुष से नितान्त अनभिज्ञ भी नहीं हैं। शीला गुजराल की भाँति वे जीवन को सहज रूप में देखने का यत्न करती हैं। शकुन्त माथुर के सदृश, सूक्ति में उनकी रुचि नहीं: क्षण का महत्त्व है किन्तु अक्षुण्ण सर्वोपरि है। सुमन राजे, मालती शर्मा प्रभृति के सदृश, बीभत्स से उनका कोई सरोकार नहीं। छोटी-सी 'ओस की बूँद' के दो रूप देखिए :

1. ज़िन्दगी एक सिगरेट है
जिसे जला कर
ओठों से कश लगा कर
मुँह से बाहर फेंक दिया जाता है...

2. मैं समता में विश्वास करूँ, महिमा तेरी कैसे स्वीकार करूँ?
धरती पर रहकर, तू ही बता आकाश! कैसे तुमसे आँखें चार करूँ?

नन्हीं-सी 'ओस की बूँद' में अस्मिता विद्यमान है! 'ओस की बूँद' आकाश से आती है, पर उसका जीवन धरती की निधि होता है। सावित्री स्वर्ग में नहीं बसी; धरती पर लौटीं। नचिकेता ने स्वर्ग नहीं चाहा, धरती को वरीयता प्रदान की। सूर प्रभृति की भ्रमरगीत-संबद्ध राधा एवं गोपिकाएँ निवृत्ति पर प्रवृत्ति को वरीयता प्रदान करती हैं। प्रवृत्ति सत्यतर भी है, बलवत्तर भी। 'ओस की बूँद' धरती की विजय की प्रतीक है।

1995 ई. में ही रंजना जी की 86 कविताओं का संग्रह 'सप्तवर्णी मन, तू और रहस्यवाद' प्रकाशित हुआ:

हुआ सुखद आश्चर्य है अनुरंजित निर्माण—
सप्तवर्ण मन रंजना चरणों पर निर्वाण!

(रामप्रसाद मिश्र)

संस्कृत की विदुषी, वेदमयी डॉ. किरणकुमारी के अनुसार, इस संग्रह में ''सृष्टि के गूढ़ रहस्य अथवा समाज-हृदय की सूक्ष्म भावनाएँ वर्णित हैं''। 'मैं पागल मेरा मन पागल': कबीर के ''राना माता नाम का पीया प्रेम अघाय'' से मीराँ (मीरा) के ''दरद दिवाणीं'' तक पागलपन फैला है; महादेवी भी 'मतवाली' न होतीं तो अमर न हो पातीं। ताज बेग़म की ''कुर्बान तेरी सूरत पर'' में भी पागलपन

की चमक है। पागल होना रहस्यवाद की पहली शर्त है। वैसे, पागल हुए बिना न कोई हुतात्मा (शहीद), भक्त, देशभक्त, निर्माता बन सकता है न कवि, गायक चित्रकार, मूर्तिकार। ईसा की माँ को लगता था कि बेटा पागल हो गया है, वलीद बिन-मुग़ीरा मोहम्मद को सरे-आम पागल कहता था! काँट और नीत्शे, क्रिस्टॉफर स्मार्ट और एज़्रा पॉउंड, राहुल और निराला इत्यादि पागल हो गए थेः

जीवन-ज्वाला से बचा, आ, पागलपन! तार!
अनुपम कृतियाँ दे मुझे, बनें विश्व-गलहार।।

(रामप्रसाद मिश्र)

रंजना जी का पागलपन उनके रहस्यवाद को ललित बनाता है; आनन्दशंकर माधवन् का रहस्यवाद शास्त्रीयता-बोझिल है, डॉ. भावुशंकर मेहता का विज्ञान-बोझिल। रंजना जी का रहस्यवाद निकटतर है :

1. ज़िन्दगी तार-तार बन फैली
तुमने भी फैलाई चादर मैली
बोल, री दुनिया! कैसे ओढ़ लूँ मैं?
नहीं है मेरी यह पारम्परिक शैली।

2. मैं पागल, मेरा मन पागल, मेरा तन पागल
मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे हो आई
पर कहीं भी न मैं रम पाई
मैं एक ऐसी अनथक भटकन हूँ
जो पत्थर के बुतों में न भरमाई।
मैं पागल, मेरा मन पागल, मेरा तन पागल।

'खोजी मन है हताश', 'मन तोड़ता है सीमाएँ', 'मन वैरागी प्यासा रहा', मृगतृष्णा', 'मैं एक पुकार हूँ', 'रहस्यवाद', 'विश्व सत्य की लाश चाहता है' इत्यादि में 'क्वासि?', 'कस्मै देवाय?', ''प्सासा हूँ मैं अब भी प्यासा'' (प्रसाद) ''हिरण्मयेन पात्रेन सत्यस्यापिहितं मुखम्'' के चिरंतन सत्य युगवाणी के रूप में व्यक्त हुए हैं; और 'माँ' तो सर्वत्र है ही! डॉ. पवनकुमार ने लिखा है, ''डॉ. रंजना गुप्ता हृदय से कवि, व्रत से गम्भीर समाजसेविका तथा वृत्ति से प्राध्यापिका हैं''। उनकी कविता में दर्शन बन जाता है और दर्शन कविता बन जाता है। स्वाभाविक है।

'भाव-बंध : जीवन-अनुबन्ध संवेदना-सुगन्ध' रंजना जी का तीसरा प्रकाशित कवितासंग्रह है, जिसमें चार पड़ावों में राशि-राशि रचनाएँ संगृहीत हैं। आरम्भ 'भावांजलि' से है जिसमें एक नई गीतांजलि के दर्शन होते हैं; यह रंजना जी की 'नीरजा' है। यह पहला पड़ाव है जिसमें सत्ताइस रचनाएँ हैं। किन्तु रंजना जी का रहस्यवाद 'इस पार' का है, 'उस पार' का नहीं (इक्कीसवीं सदी के रहस्यवाद में 'इस पार' पर ही रीझा जा सकता है); उसमें द्वन्द भी हैः

मैंने कहा—
मैंने कहा मुझे थोड़ा धैर्य देना
तुमने मेरा धैर्य भी मुझसे छीन लिया!
मैंने कहा—
मुझे थोड़ा विश्वास देना
तुमने मेरा विश्वास भी मुझसे ले लिया....

दूसरा पड़ाव 'सम्बन्धों का इन्द्रधनुष' है जिसमें माता-पिता की स्मृतियाँ अत्यन्त मार्मिक हैं; भ्राता, अन्य की भी। ये स्मृतियाँ अगले पड़ाव तक फैली हैं तथा ग्रन्थ को कवयित्री की भावात्मक-आत्मकथा भी सिद्ध करती हैं। तोरनदेवी शुक्ल 'लली' और प्राणमोहन 'प्राण' की पुत्र-स्मृतियाँ ध्यान में आ जाती हैं, किन्तु रंजना जी ने अधिक लिखा है। राकेशनंदिनी गुप्त की करुणा का ध्यान आता है। मुकुचन्द शर्मा कृत 'सम्बन्धों की सुगन्ध' तो पारिवारिकता की कृति ही है। मचकुन्द शर्मा, राकेशनंदिनी, रंजना पारिवारिकता के रचनाकार भी हैं। पच्चीस रचनाएँ; ऋजु-सरल। तीसरा पड़ाव 'जीवन-सागर' है जिसमें अध्यात्म, सम्बन्ध, मानव-वैषम्य, देश-दुर्दशा इत्यादि के अनेक नद आ मिले हैं तथा आशावाद से क्रान्तिवाद तक का प्रस्तार भी विद्यमान है। इसमें साठ रचनाएँ हैं। चौथा पड़ाव 'विचार-बिन्दु' है जिसमें जीवन

के प्रायः सभी पक्षों के दर्शन होते हैं; युग-विडम्बना की प्रधानता है। इन रचनाओं में मुक्तक और क्षणिकाओं की अधिकता है, जिनमें विदुषी कवयित्री की विद्वत्ता एवं उसका जीवन-बोध विवृत हुआ है। इसमें एक सौ-चौंत्तीस रचनाएँ हैं।

निस्सन्देह, 'भाव-बन्धः जीवन-अनुबन्ध संवेदना-सुगन्ध' डॉ. रंजना गुप्त का प्रतिनिधि एवं प्रकृष्ट कविता संग्रह है; व्यापक एवं विशद भी, जिसमें जीवन के सारे रंग खिले हैंः अध्यात्म, रहस्य, माता, पिता भ्राता, अंतःसलिला-सी स्नेह की चुभन, ढेरों यादें, युग-विडम्बनाएँ इत्यादि का गहन उन्मेष है। उनकी मौलिकता विलक्षण है। वे किसी का अनुकरण नहीं करतीं। वास्तव में उन्हवेंने जो ख़ास-अपना जीवन जिया है जिसमें अवसान, शारीरिक कष्ट, पथ्य, संघर्ष, 'एकाकीपन', सत्य का दण्ड, अध्ययन, अनुशीलन, चिन्तन, विश्लेषण, संश्लेषण आत्मसात् किए हैं, वे उन्हें आत्मपरक-कविता का सहज-अधिकार प्रदान करते हैं। उनकी मौलिकता उनके व्यक्तित्व से अनुस्यूत है। उनकी कविता उनके व्यक्तित्व का उद्गार है। कविता में रचनाकार का ऐसा उद्गार निराला की याद दिलाता है जो कला एवं शिल्प के विचक्षण आचार्य भी थे।

रंजना जी की कविताएँ अनगढ़ कही जा सकती हैं। उनमें कला का चटकीलापन और शिल्प की पॉलिश नहीं है। आज की अधिकांश 'नई कविता' ऐसी ही है; ब्रजभाषा तथा अन्य विभाषाओं की अधिकांश कविता कला (छन्द, शब्दशक्ति, अलंकार, रस इत्यादि) का ध्यान रखती है, किन्तु शिल्प की प्रयोगवादी लकलक-दगदग उसमें भी नहीं है। रंजना जी का जीवन साध्वी का जीवन रहा है (जिसका प्रदर्शन उन्होंने कभी नहीं किया); अतः उनकी कविता भी सहज-कविता है, कृत्रिम-प्रयास नहीं। उनका अनुभूति-पक्ष ही उनकी कविता की प्रमुख विशेषता है। उनकी कविता वंक-कविता नहीं है, किन्तु वह रंक-कविता भी नहीं है (वैसे रंक-कविता की एक अलग रंगत होती है)। निस्सन्देह, वे अधुनातन कवयित्रियों में किसी से कम नहीं हैं; कारण है 'निजता' (मौलिकता) और दार्शनिकता (गहनता)। उनकी कविताएँ स्वागत-योग्य तो हैं ही, आदर-योग्य भी हैं।

'नूतन'

वैसे तो सनेही-मंडल के एक प्रमुख कवि शिवदुलारे त्रिपाठी 'नूतन' (1889–20 अक्टूबर, 1973, मौरावाँ जिला उन्नाव) 'पुरातन' अधिक हैं (भाषा में, छन्द में, शृंखार में, प्रकृतिचित्रण में, जीवनयापन में) किन्तु नेतृवन्दन, देशभक्ति और एकल-विलक्षण 'हिटलर-बावनी' (उनके गुरु सनेही ने रोका था परन्तु उन्होंने अभिव्यक्ति के अधिकार को वरीयता प्रदान की, क्योंकि जनता ने 1939-45 ई. के द्वितीय विश्वयुद्ध काल में 'आर्यवाद' और स्वस्तिक-चिह्न के कारणों से हिटलर की स्तुति भी की थी और यह कृति इस 'सत्य' की प्रतीक होने के कारण स्मरणीय है) उन्हें 'नूतन' भी सिद्ध करती है। इतिहास झूठों का पुलिन्दा है। आज के लाल-इतिहास, हरा-इतिहास, सफेद-इतिहास (सफेदझूठ-इतिहास) और केसरिया-इतिहास क्रमशः दल-दलदलगत, मजहबी, काँग्रेस छाप और भाजपा मानते हैं, शुद्ध इतिहास नहीं। इस समय तो इतिहास-पाठ्यक्रम-लेखक-लेखिका मात्र विद्यमान हैं, इतिहासकार इक्के-दुक्के छिपे बैठे हैंः नकटों में नकुओं की तरह। हिटलर का भी नितान्त एकांगी निरूपण प्राप्त होता है। निस्सन्देह फैसिज़्म या डंडावाद या नात्सीवाद निंद्य सिद्ध हुआ। किन्तु मोची का बेरोजगारी गली-गली की ठोकरें खानेवाला बेटा पश्चिम का रावण बना, यह मामूली बात नहीं। सामयिक ही सही, पर विचारणीय छन्द देखें :

स्टालिन की टर्र को छुड़ाए दे रहा है एक,
दूसरा भी न्यू मिनी को कीन्हें देत छार है।
प्रतिद्वंद्वियों को ललकार ललकार कर,
दोनों ओर जोर घनघोर मारा मार है।
रंग बदरंग अमरीका काँग्रेस का है,
बिस्मित बिलोकिए ब्रिटिश सरकार है।
विश्व के विजेता वीर नेता व्योम मंडल के,
देखे कहैं दोनों की अजय तलवार है।।47।।[1]

*

---

[1] 'हिटलर बावनी' (नूतन रचनावली) में केवल 48 छन्द हैं या मिल पाए हैं (52 या अधिक नहीं)।

बचपन में ''बड़ा जालिम है हिटलर करूँ क्या बयान'' पंक्ति सुनी जी, बड़ों की बातों में हिटलर की तारीफ सुनी थी, बाद में सुभाष का हिटलर से मिलना सुना है और चित्र देखा था। अंततः हिटलर को आत्मघात करना पड़ाः दूसरा मोची-पुत्र स्टालिन विजयी हुआ, मित्र-राष्ट्रों ने फासिस्ट ताक़तों को हरा दियाः लोहार-पुत्र मुसोलिनी को फाँसी दी गई, जापान के तोजो तेजहत होते मृत्युदंड में गए और उनकी तलवार से अमेरिकन जनरल डगलस मैकआर्थर ने अपनी हज़ामत के लिए छुरे बनवाए! किन्तु 'हिटलर-बावनी' संसार-साहित्य में युगसत्य की एक विलक्षण कृति अवश्य है।

'नूतन' के काव्य के प्रकृत विषय चार हैंः वीररस, भक्ति, प्रकृति, व्यंग्य क्रमशः, वीररस के छन्द वाणीवन्दना, राना बेनीमाधव, शिवाजी, झाँसी की रानी, विक्रमादित्य, 'हिटलर-बावनी' इत्यादि भक्ति अष्टक-चतुष्टय एवं ब्रज-माधुरी, प्रकृति अन्य कविताओं के अतिरिक्त षड्ऋतु-वर्णन, व्यंग्य 'रईस-रहस्य' में व्यक्त हैं। उनकी भाषा में खड़ीबोली-अवधी-ब्रज का गड्डमगड्ड है; वैसे, तीनों के पृथक्-पृथक् छन्द भी रचे हैं। छन्द की दृष्टि से वे प्रायः कविता में बद्ध हैं वे सनेही, हितैषी, बिहारी (श्यामबिहारी शर्मा 'बिहारी') जैसे उन्नाव जनपद के ही अन्य सिद्ध-प्रसिद्ध कवियों के सदृश बहुआयामी न होते हुए भी, एक सर्वथा स्मरणीय कवि अवश्य हैं। मौरावाँ के कवियों में भवानीभीख पाठक 'भावन', धनसिंह भट्ट, कवि सालिक, सोनेलाल द्विवेदी 'ललनेश', शिवनाथ गुप्त, दिनकर त्रिपाठी, जनार्दन शुक्ल 'बन्धु', डॉ. अरुणप्रकाश अवस्थी प्रभृति में वे 'भावन' के साथ प्रमुख हैं।

'नूतन' युग-सजग कवि भी थे। अनेक नेताओं, विशेषतः गाँधी तथा साहित्यकारों, विशेषतः आ. महावीरप्रसाद द्विवेदी पर उन्होंने भावपूर्वक लिखा है। सोमवार, 17 जुलाई, 1927 को मौरावाँ में हुए हिन्दू-मुस्लिम दंगे पर उनकी एक स्मरणीय कविता प्राप्त है। इसमें जसवन्त, भूषण, सूदन इत्यादि की परिपाटी पर मुसलमानों या म्लेच्छों की निन्दा की गई है।

यदि 'नूतन' की कविता की आत्मा एक शब्द में बतानी हो तो वह शब्द होगा, वीरपूजा। प्रमुखतः वे ओज के कवि थे। वाणी से याचना हो या दयानन्द की प्रशस्ति, वे वीरत्व-व्यंजक कवि हैं; वीरों पर कृतित्व में तो सहज वीररस व्यक्त हुआ ही है। राष्ट्रीय अस्मिता के पोषक 'नूतन' निस्सन्देह एक वन्दनीय कवि हैं। हर्ष है कि मोरावाँ के कवि-विद्वान् डॉ. अरुणप्रकाश अवस्थी के परिश्रम, कानपुर की संस्था 'अनुरंजिका' के प्राण एवं गहन-गीतकार स्व. श्री वीरेश कात्यायन के प्रकाशन एवं कानपुर की विविधायागी साहित्यिक गतिविधियों के प्रतीक डॉ. प्रतीक मिश्र के सम्पादन के फलस्वरूप 'नूतन' रचनावली' (2001 ई.) प्राप्त हो गई है। इसका प्रभावी लोकार्पण 24 फरवरी, 2002 को मर्चेन्ट्स चैम्बर कानपुर में हुआ। इसमें 'नूतन' का एक साफ उभरा चित्र भी है, जिसमें उन्हें 'त्रिवेदी' बताया गया है अन्यत्र 'त्रिपाठी' लिखा है। वैसे, तिवारी, त्रिपाठी, त्रिवेदी एक ही हैं। फिर भी, यह अन्तर 'नूतन रचनावली' में न होना चाहिए था। मैंने पहले भी 'त्रिपाठी' ही लिखा था। चित्र में 'नूतन' तेजस्वी किन्तु उग्र प्रतीत होते हैं। मुखपृष्ठ में पीछे 'नूतन' जी के मौरावाँ स्थित आवास के वे रंगीन चित्र बहुत अच्छे उतरे हैं जिसके लिए छायाकार डॉ. मिश्र की कला की प्रशंसा करनी पड़ती है। 'नूतन रचनावली' की प्रस्तुति हेतु डॉ. प्रतीक मिश्र, कविश्री वीरेश कात्यायन एवं डॉ. अरुणप्रकाश साधुवाद के अधिकारी हैं।

छन्द की वापसी

''यदि कविता कामिनी है तो रस उसकी आत्मा, छन्द शरीर और अलंकार आभूषण हैं'', यह मान्यता प्रचलित रही है। छन्द कविता को अनुशासित रखता है। छन्दबद्ध होने के ही कारण प्राचीन कवि कम ही लिख पाते थे किन्तु जो लिखते थे वह अमर हो जाता था। बंधन अवलम्बन भी होंता है; घड़ा बन्धन के कारण ही कूप से भरा निकलता है। किन्तु जब युग बदला, शरीर बदले, परिधान बदले, कूप के स्थान पर पाइप लगे; स्वतन्त्रता का युग आया और कम-से-कम भारत में 'स्वच्छन्दता' बनकर आया जो अराजकता में बदल गया, तब 'स्वच्छन्द'-कविता का आना भी स्वाभाविक हो गया। अमेरिका और यूरोप में उन्नीसवीं सदी (ई.) के अन्तिम चरणों और बीसवीं सदी के आरम्भिक चरणों में 'स्वच्छन्द' कविता के दर्शन हुए; वाल्ट ह्विट्मैन, एज़्रा पॉउण्ड, टॉमस स्टर्न एलियॅट इत्यादि ने नेतृत्व किया। हिन्दी में इनके अनुकरण में निराला की 'स्वच्छन्द' कविता बहुत जोर-शोर से आई। किन्तु ह्विट्मैन, पॉउण्ड, एलिअॅट इत्यादि ने स्वच्छन्दता के साथ भी एक संगति (सिम्फॉनी) का ध्यान रखा। निराला अपनी 'मुक्त'-कविताएँ वीणा पर गाकर सुनाते थे! समाजोन्मुख निराला से प्रभावित अज्ञेय ने व्यक्तिवादी दर्शन के अतिरेक का प्रदर्शन करते हुए कविता की अनुभूति हो या अभिव्यक्ति सभी को कवि की मनःतरंग पर आधृत कर दिया। परिणामतः जो चाहे कवि बन गया! कवियों की बाढ़ में कविता बह गई। कवि

भी उसी में समा गए। एक भी 'स्वच्छन्द' या 'मुक्त' कवि न साहित्य में टिक पाया, न जनता में। आज साहित्य पर राजनीति का आतंक-व्याप्त है। विभिन्न दलों वाले केवल 'अपनों', को साहित्यकार मानते हैं और उन्हीं को पाठ्यक्रमों, पुरस्कारों, सम्मानों इत्यादि से उपकृत करते हैं। 'मुक्त' या 'नई' या 'यह' या 'वह' कविता राजनीति की बैसाखियों के सहारे विश्वविद्यालयों, विद्यालयों, आयोजनों में डगर रही है।

इस-सब की प्रतिक्रिया यह हुई कि छन्दबद्ध कविता के प्रति रुझान बढ़ा; गीत धूमधाम से लौटा (नवगीत, अनुगीत, अगीत मूलतः गीत ही है) और आज अनेकानेक पत्रिकाएँ ऐसी हैं जो केवल छन्दबद्ध कविता या गीत ही छापती हैं। जो पत्रिकाएँ 'नई' कविता की झंडाबरदार हैं, वे भी छन्दकविता या गीत छापने पर विवश हैं। जनता छन्दकविता और गीत ही पढ़ना, सुनना पसन्द करती है। 'नई' कविता को पाठक कम और श्रोता नहीं मिल रहे।

कविता का अतीत समग्र विश्व में छन्दबद्ध रहा है (तुक की बात भिन्न है), 'स्वच्छन्द' और 'नई' (अतिस्वच्छन्द) कविता के युग में भी छन्दकविता का प्रभावी अस्तित्व विद्यमान रहा। वर्तमान में छन्द वापस लौट चुका है। भविष्य में भी वह प्रभावी रहेगा। क्यों? छन्द एक रूप है, एक संगति है; छन्द एक अनुशासन है जो कविता को रूपवान्, संगत एवं अनुशासित रखता है। छन्द कविता की बन्धनशृंखला कम है, उसका मर्यादित-रूप अधिक है।

व्यक्तिगत रूप से मैं कविता की परिभाषा करता हूँ: अन्तस्थल का वह गहन उद्गार जो केवल कविता में ही व्यक्त हो सकता है। उसका रूप कोई भी हो सकता है– छन्दबद्ध, गीतबद्ध, मुक्त रस हो या विचार (बौद्धिकरस), स्वागत योग्य है। इसीलिए, मुझे छन्दकविता, गीत या अगीत या नवगीत या अनुगीत, 'मुक्त' कविता का 'नई' (अतियुक्त) कविता, सब में मूलांतर नहीं होता: मैं सहज एवं सशक्त अनुभूति या अनुभव या रस (भाव) या विचार ढूँढ़ता हूँ और यदि उद्गार में वह सफलतापूर्वक अभिव्यक्त होता है तो प्रभावित या तल्लीन या अभिभूत हुए बिना नहीं रहता। किन्तु छन्द की सशक्त वापसी तथा गीत का व्यापक पुनर्प्रभाव एक सत्य है, जिसे नकारना सत्य की अवहेलना करना होगा।

❑❑❑

डॉ. रामप्रसाद मिश्र

विशिष्ट कृतियाँ

कविता : 1. दृष्टि (बाईस-सर्गीय मानववादी महाकाव्य)
2. नेताचरित्रम् (नौ-सर्गीय प्रथम व्यंग्य-काव्य)
3. स्वर्गता (सात-सर्गीय शोककाव्य)
4. सार्वभौम (विशाल कवितासंग्रह)
5. पुरुषोत्तम (अड़तीस-सर्गीत महाकाव्य)
6. कल्पान्त (पंद्रह-सर्गीय महाभारतपरक महाकाव्य)
7. वेदायन (बारह-सर्गीय काव्य)
8. मोहम्मद (सात-सर्गीय ऐतिहासिक काव्य)

आलोचना : 1. विश्वकवि तुलसी और उनके काव्य
2. तुलसी-साहित्य के सर्वोत्तम अंश
3. प्रसाद : आलोचनात्मक सर्वेक्षण
4. हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिपरक इतिहास
5. आलोचना-सागर
6. दोसौअस्सी साहित्यकार
7. हिंदी साहित्य का वस्तुपरक इतिहास

उपन्यास : 1. जागता गाँव (आंचलिक)
2. मसीहा (ऐतिहासिक : ईसा पर)
3. पिटा हुआ मोहरा (सामाजिक)

निबंध संग्रह : 1. विश्व के सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य
2. आधुनिक साहित्य के विविध पक्ष
3. भारत की एकता
4. दिल्लीनामा

हास्यव्यंग्य : 1. मौर्ख्यशास्त्र (ईडिऑटिक्स)
2. मच्छर-सभा : अध्यक्षीय भाषण
3. मौर्ख्य और साहित्य
4. हास्यसागर

अंग्रेज़ी : 1. हिंदूधर्म : फ़ेथ ऑफ़ फ़्रीडम
2. ऑउट्लाइंस ऑफ़ हिंदी लिटरेचर

प्रस्तुत ग्रंथ वस्तुतः हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास है जो लगभग पचास वर्षों के अध्ययन अनुशीलन, सुदीर्घ सुनियोजन एवं इतिहास, दर्शन, धर्म, राजनीति इत्यादि से समन्वित हिंदी की बारह सौ वर्ष की साहित्य-यात्रा का इतिहास प्रस्तुत करता है। सौ के लगभग 'इतिहासों' की बाढ़ व्यर्थता प्रमाणित कर चुकी है क्योंकि अब भी मिश्रबंधु कृत 'विनोद' तथा उसकी विपुल सामग्री का प्रशस्य एवं प्रातिभ प्रयोग करने वाला रामचंद्र शुक्ल कृत 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' [illegible] ग्रंथ है। 'विनोद' आधुनिकता को परिभाषित [illegible] था। शुक्ल जी ने पाठ्यक्रम-द्वारा की [illegible] किया था। डॉ. नगेंद्र ने अभाव की सूचना [illegible] ग्रंथ इन सारे बिंदुओं को ध्यान में रखकर लिखा गया है। इसकी अपूर्व विशेषताएं हैः

हिंदी की विश्वभाषा एवं राष्ट्रभाषा रूपों में प्रस्तुति।

अंगी-हिंदी के विभाषा-रूपी अंगों (खड़ीबोली, अवधी, व्रज राजस्थानी, भोजपुरी, मैथिली, अंगिका, बघेली, बुंदेली, कुमाउँनी इत्यादि) के साथ न्याय।

तंरगवादी और विजातीयतावादी दृष्टिकोणों से मुक्त वस्तुवादी दृष्टि।

प्रचार, पुरस्कार, राजनीति इत्यादि से पृथक् प्रतिभा का वास्तविक आकलन।

इतिहास के सत्यो की निस्संग विवृति।

बारहसौ वर्षों की कविता का एकमात्र स्वर्णकोष।

उत्कृष्ट गद्य-उदाहरण।

आलोचना का विश्वकोश क्योंकि विशिष्ट स्रष्टओं पर व्यापक प्रकाश डाला गया है तथा लगभग सात सौ साहित्यकारों का बेलाग आकलन किया गया है। संदर्भगत सहस्रों साहित्यकारों के उल्लेख किए गए हैं।

विभिन्न विधाओं पर भी समुचित प्रकाश डाला गया है।

ISBN 81-8129-151-4
9788181291516

नमन प्रकाशन
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
दूरभाप : 23247003, 23254306

दो खण्डों का
मूल्य 2200/-